

आचार्य जिनसेन विरचित

# आदिपुराण

[ द्वितीय भाग ]

(हिन्दी अनुवाद तथा परिशिष्ट आदि सहित)

सम्पादन-अनुवाद

डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य



भारतीय ज्ञानपीठ

---

नौवाँ संस्करण : 2003 □ मूल्य : 225 रुपये

## विषयानुक्रमणिका

४४

पृष्ठ

### बहुविंशतिम् पर्व

चक्रवर्ती भरतने विधिपूर्वक चक्रारणका ३३-३५  
पूजा की और फिर पुत्रोत्पत्तिका उत्सव  
मनाया। नगरीकी सभाबाट की गयी।  
अनन्तर दिविजयके लिए उद्घत हुए। उस  
समय शरव् ऋतुका विस्तृत वर्णन।  
दिविजयके लिए उद्घत चक्रवर्तीका वर्णन।  
तत्कालोचित सेनाकी शोभाका वर्णन। पूर्व  
दिशामें प्रयाणका वर्णन। गंगाका वर्णन। १-१७

### सप्तविंशतिम् पर्व

सारथी-द्वारा गंगा तथा बनकी शोभाका  
वर्णन। हाथी तथा छोड़ा आदि सेनाके अंगों-  
का वर्णन। १८-३२

### अष्टाविंशतिम् पर्व

द्वासरे दिन प्रातःकाल होते ही दिविजयके  
लिए आगे प्रयाण किया। चक्रररन उनके  
आगे-आगे चल रहा था। सात्कालिक सेना-  
की शोभाका वर्णन। क्रमशः चलकर वे  
गंगाद्वारपर पहुँचे। वहाँ वे उपसमुद्रको देखते  
हुए स्थलमार्गसे गंगाके किनारेके उपरिमें  
प्रविष्ट हुए। वहाँ सेनाको ठहराया। अनन्तर  
समुद्रके किनारेपर पहुँचे, वहाँ समुद्रका  
विस्तृत वर्णन। ३३-४४

भरत चक्रधर लबणसमुद्रमें स्थलकी तरह  
बैगसे आगे बढ़ गये। बारह योजन आगे  
चलकर उन्होंने अपने नामसे चिह्नित  
एक चाण छोड़ा, जो कि मागध देवकी  
सभामें पहुँचा। पहले तो मागधदेव बहुत  
बिगड़ा पर बादमें बाणपर चक्रवर्तीका नाम  
देख गर्वरहित हुआ तथा, हार, लिहासन  
और कुण्डल साथ लेकर चक्रवर्तीके स्वागतके  
लिए पहुँचा। चक्रवर्ती उसकी वित्तयसे बहुत  
प्रसन्न हुए।

४५-५०

समुद्रका विविध छन्दों-द्वारा विस्तृत वर्णन।  
उच्चारणे लिख-खुश-खुशकला वालहम्म-खुशकला। ५१-५२

### एकत्रिंशत्तम् पर्व

अनन्तर चक्रवर्ती दक्षिण दिशाकी ओर आगे  
बढ़े। मार्गमें अनेक राजाओंको वश करते  
जाते थे। बीचमें मिलनेवाले विविध देशों,  
नदियों और पर्वतोंका वर्णन। ६२-७१  
दक्षिण समुद्रके तटपर चक्रवर्तीने अपनी  
समस्त सेना ठहरायी। वहाँकी प्राकृतिक  
शोभाका वर्णन। चक्रवर्तीने रथके ढारा  
दक्षिण समुद्रमें प्रवेश कर वहाँके अधिष्ठित  
अनन्तरदेवको जीता। ७२-८०

### त्रिंशत्तम् पर्व

सप्ताद् भरत दक्षिण दिशाको विजय कर  
पश्चिमको ओर बढ़े। वहाँ विविध बनों,  
पर्वतों और नदियोंकी प्राकृतिक सुषमा देखते  
हुए वे बहुत ही प्रसन्न हुए। क्रमशः वे  
विच्छय गिरियर पहुँचे। उसकी बिलरी ही  
शोभा देखकर उनका चित्त बहुत ही प्रसन्न  
हुआ। वहाँ उन्होंने अपनी सेना ठहरायी।  
अनेक बनोंके स्वामी उनके पास तरह-तरहकी  
मेट लेकर मिलनेके लिए आये। भरतने  
सबका पथोचित सम्मान किया। समुद्रके  
किनारे-किनारे जाकर वे पश्चिम लबण-  
समुद्रके तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने दिव्य  
षास्त्र धारण कर पश्चिम समुद्रमें बारह  
योजन प्रवेश किया और अनन्तराधिगति  
प्रभास नामक देवको वशमें किया। पुण्यके  
प्रभावसे व्या नहीं होता? ८१-९५

### एकत्रिंशत्तम् पर्व

अनन्तर अठारह करोड़ छोड़ोंके अधिष्ठित  
भरत चक्रधरने उत्तरकी ओर प्रस्थान

किया। क्रमशः चलते हुए विजयार्थी पर्वतकी सप्तरथकामें पहुँचे। वहाँ वे अपनी समस्त सेना ठहराकर विश्वरूप मृत्युपता चलकर पर विजयार्थिदेव अपने समस्त परिकरके साथ इनके पास आया और उनका आज्ञाकारी हुआ। विजयार्थिको जोत लेनेसे इनकी दिविविजयका अर्धभाग पूर्ण हो गया। अनन्तर उन्होंने उत्तरभारतमें प्रवेश करनेके अभिप्राय से दण्डरत्न-द्वारा विजयार्थी पर्वतके गुहाहार का उद्घाटन किया। १६-११८

### द्वात्रिशत्तम् पर्व

गरमी शान्त होनेपर उन्होंने गुहाके मध्यमें प्रवेश किया। काकिणी रत्नके द्वारा मार्गमें प्रकाश होता जाता था। शीघ्रमें उन्मनजला तथा निमनजला नामकी नदियाँ मिलीं। उनके तटपर सेनाका विभास हुआ। स्वपति-रत्नने अपने बुद्धि-बलसे गुल तेयार किया जिससे समस्त सेना उस पार हुई। गुहागमसे निकलकर सेनासहित भरत उत्तर भरत-खेत्रमें पहुँचे। चिलात और आवर्त नामके राजा बहुत कृपित हुए। वे परस्परमें मिलकर चक्रवर्तीसे युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए। नाग जातिके देवोंकी सहायतासे उन दोनोंने चक्रवर्तीकी सेनापर बनधोर वर्षा की जिससे ७ दिन तक चक्रवर्तीकी सेना चर्मरत्नके बीचमें नियन्त्रित रही। अनन्तर जयकुमारके आगेय बाणसे नाग जातिके देव भाग खड़े हुए और सब उपद्रव शान्त हुआ। चिलात और आवर्त दोनों ही म्लेच्छ राजा निवाय होकर शरणमें आये। क्रमशः भरतने उत्तर-भरतके समक्ष म्लेच्छ खण्डोंपर विजय प्राप्त की। ११२-१३०

### त्रयस्त्रिशत्तम् पर्व

दिविविजय करनेके बाद चक्रवर्ती सेनासहित अपनी नगरीके प्रति बापस लौटे। मार्गमें अनेक देशों, नदियों और पर्वतोंको उल्लिखित करते हुए कैलास पर्वतके समीप आये। वहाँसे श्री कृष्ण जिनेन्द्रकी पूजा करनेके लिए कैलास पर्वतपर गये। अनेक राजा

उनके साथ थे। पुरोहितके द्वारा कैलास पर्वतका वर्णन। १३१-१३६

समविश्वरूपका संक्षिप्तवर्णन। समविश्वरूपमें स्थित श्री कृष्ण जिनेन्द्रका वर्णन। सम्राट्के द्वारा भगवानुकी रत्नलिका वर्णन। १३७-१५०

### चतुर्त्रिशत्तम् पर्व

कैलाससे उत्तरकर अयोध्या नगरीकी ओर ग्रस्थान। चक्ररत्न अयोध्या नगरीके बाहरपर आकर रुक गया, जिससे सबको आहर्चर्य हुआ। चक्रवर्ती स्वयं सोच-विचारमें पड़ गये। निमित्तशानी पुरोहितने बतलाया कि अभी आपके भाइयोंको वश करना चाहिए है। पुरोहितकी सम्मतिके अनुसार राजदूत भाइयोंके पास भेजे गये। उन्होंने भरतकी आज्ञामें रहना स्वीकार नहीं किया और श्री कृष्णभन्नाथ स्वामीके पास जाकर दीक्षा ले ली। १५१-१७१

### पञ्चत्रिशत्तम् पर्व

मब भाई तो दीक्षित हो चुके, परन्तु बाहुबली राजदूतकी बात सुनकर क्षुभित हो उठे। उन्होंने कहा कि जब पिताजीने सबको समान रूपसे राजपद दिया है, तब एक सम्राट् हो और दूसरा उसके अधीन रहे यह समझ नहीं। उन्होंने दूसरकी फटकारकर बापस कर दिया, अन्तमें दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ हुईं। १७२-१९९

### षट्त्रिशत्तम् पर्व

युद्धके लिए इस ओरसे भरतकी सेना आगे बढ़ी और उस ओरसे बाहुबलीकी सेना आगे आयी। बुद्धिमान् मन्त्रियोंने विचार किया कि इस भाई-भाईकी लड़ाईमें सेनाका उपर्य ही संहार होगा। इसलिए अच्छा हो कि स्वयं ये दोनों भाई ही लड़ें। सबने मिलकर नेत्रयुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध, ये तीन युद्ध निश्चित किये। तीनों ही युद्धोंमें जब बाहुबली विजयी हुए तब भरतने कृपित होकर चक्ररत्न चला दिया, परन्तु उससे बाहुबलीकी कुछ भी हानि नहीं हुई। बाहुबली चक्रवर्तीकी इस अवहारसे बहुत ही विश्रवत हुए और जंगलमें आकर उन्होंने

दीक्षा ले ली । वे एक वर्ष का प्रतिमायोग के कायोत्सर्ग करते हुए तपश्चरण करते रहे । भरत चक्रवर्तीने उनके चरणोंमें अपना मस्तक टेक दिया । बाहुबली केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षको प्राप्त हुए । २००-२२०

### सप्तरिंशत्तम पर्व

चक्रवर्तीने बड़े वैभवके साथ अयोध्या नगरमें प्रवेश किया । उनके वैभवका बर्णन । २२१-२३९

### अष्टरिंशत्तम पर्व

एक दिन भरतने सोचा कि हमने जो वैभव प्राप्त किया है उसे कही लर्ज करना चाहिए । जो भूमि है, वे तो यनसे निःस्फूर हहते हैं । अतः अणुकृतधारी गृहस्थोंके लिए ही धनादिक देना चाहिए । एक दिन भरत चक्रवर्तीने नगरके सब लोगोंको किसी उत्सवके बहाने अपने घर बुलाया । घरके अन्दर पहुँचनेके लिए जो मार्ग थे वे हरित अंकुरोंसे आच्छादित करा दिये । बहुत-से लोग उन मार्गोंसे चक्रवर्तीके महलके भीतर प्रविष्ट हुए । परन्तु कुछ लोग बाहर लड़े रहे । चक्रवर्तीने उनसे भीतर न आनेका जब कारण पूछा तब उन्होंने कहा कि मार्गमें उत्पन्न हुई हरी पास आदिमें एकेन्द्रिय जीव होते हैं । हम लोगोंके बलमें वे सब मर जायेंगे अतः दयाकी रक्षाके लिए हम लोग भीतर आनेमें असमर्य हैं । चक्रवर्ती उनके इस उत्सवसे बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने उन्हें दूसरे प्रामुख मार्गसे भीतर बुलाया और उन्हें दयालु समझकर आवक संज्ञा दी, वही ब्राह्मण कहलाये । इन्हें ब्राह्मणोंचित क्रियाकाण्ड आदिका उपदेश दिया । अनेक क्रियाओंका उपदेश दिया । सबसे पहले गमनिक्य क्रियाओंका उपदेश दिया । २४०-२६८

### एकोनचत्वारिंशत्तम पर्व

तदनन्तर भरत चक्रवर्तीने दीक्षान्वय क्रियाओंका उपदेश दिया । २६९-२७६  
फिर कर्त्रन्वय क्रियाओंका निरूपण किया । २७७-२८९

### चत्वारिंशत्तम पर्व

बोद्ध संस्कार तथा हवतके योग्य मन्त्रोंका वर्णन । २९०-३१६

### एकचत्वारिंशत्तम पर्व

कुछ समय ब्यतीत होनेपर भरत चक्रधरने एक दिन रात्रिके अन्तिम भागमें अद्भुत फल दिखलानेवाले कुछ स्वप्न देखे । स्वप्न देखनेके बाद उनका चित्त कुछ अस्त हुआ । उनका वास्तविक फल जाननेके लिए वे भगवान् आदिनाथके समवसरणमें पहुँचे । वहाँ जिनेन्द्र वश्वनाथके अनन्तर उन्होंने श्री कालाज्ञिनेन्द्रसे निषेदन किया कि मैंने ब्राह्मण वर्णकी सुषिक्षा की है । वह लाभप्रद होगी या हानिप्रद । तथा मैंने कुछ स्वप्न देखे हैं उनका फल क्या होगा ? भरतके उत्तरमें श्री भगवान्नने कहा कि वरस ! यह ब्राह्मण वर्ण आगे चलकर ममदिका लोप करनेवाला होगा यह कहकर उन्होंने स्वप्नोंका फल भी बतलाया, जिसे सुनकर चक्रवर्तीने अयोध्या नगरीमें बापस प्रवेश किया । और दुःस्वप्नोंके फलकी शास्त्रिके लिए जिनाभिषेक आदि कार्य कर सुखसे प्रजाका पालन किया । ३१७-३३०

### द्विचत्वारिंशत्तम पर्व

एक दिन भरत सप्ताह राजसभायें बैठे हुए थे । पास ही अनेक जन्य राजा विश्वान थे । उस समय उन्होंने विविध दृष्टान्तोंके द्वारा राजाओंको राजनीति तथा वर्णप्रियं वर्णका उपदेश दिया । ३३१-३५०

### त्रिचत्वारिंशत्तम पर्व

यहाँसे गुणभद्राचार्यकी रचना है । सर्वप्रथम उन्होंने गुरुवर जिससेवके प्रति भक्षित प्रकट कर अपनी लघुता प्रदर्शित की । अनन्तर शेणिकने समवसरणसभायें सड़े होकर श्री योत्तम गणधरसे प्रार्पना की कि भगवन् ! अब वै श्री यज्ञकुमारका चरित सुनना चाहता हूँ कृपा कर कहिए । उत्तरमें गणधर स्वामी-

ने जयकुमारका विस्तृत चरित कहा। काशी-  
राज अकम्पनकी सुपुत्री सुलोचनाने स्वर्यवर-  
मण्डगमें जयकुमारके गलेमें बरमाला  
डाल दी।

३५१-३८५

**चतुर्छत्वारिंशत्तम् पर्वे**  
स्वर्यवर समाप्त होते ही चक्रवर्ती भरतके पुत्र  
अर्ककीति और जयकुमारके श्रीन घनघोर  
युद्ध हुआ। अन्तमें जयकुमार विजयी हुए।  
अकम्पन तथा भरतकी दूरदर्शितासे युद्ध  
शायत हुआ तथा दोनोंका मनमुटाव दूर  
हुआ।

३८६-४१४

एटु बौधा और बड़े वैभवके साथ सुखसे रहने  
लगे।

४४१

इधर किसी कारणबशा सुलोचनाके पिता  
अकम्पनको संसारसे विरक्षित हो गयो। उन्होंने  
वैरायभावनाका चिन्तन कर अपनी विरक्षित-  
को खड़ाया तथा रानी सुप्रभाके साथ दीक्षा  
धारण कर निर्वाण प्राप्त किया। सुप्रभा  
यथायोग्य स्वर्गमें उत्पन्न हुई।

४४२-४४३

जयकुमार और सुलोचनाके विविध भोगोंका  
वर्णन।

४४३-४४५

**षट्चत्वारिंशत्तम् पर्वे**

किसी एक दिन जयकुमार अपनी प्राणबछुभा  
सुलोचनाके साथ मकानकी छतपर बैठे हुए  
थे कि अचानक उनकी दृष्टि आकाशमार्गसे  
जाते हुए विद्याधर-दम्पतिपर पड़ी। दृष्टि  
पड़ते ही 'हा मेरी प्रभावती' कहकर जय-  
कुमार मूर्च्छित हो गये और सुलोचना भी  
'हा मेरे रतिवर' कहती हुई मूर्च्छित हो  
गयी। उपचारके बाद दोनों सचेत हुए।  
जयकुमारने सुलोचनासे मूर्च्छित होनेका  
कारण पूछा तब वह पूर्वभवका वृत्तान्त कहने  
लगी। विस्तारके साथ दोनोंकी भवावलिका  
वर्णन।

४४६-४७९

**सप्तचत्वारिंशत्तम् पर्वे**

जयकुमार और सुलोचना पूर्व भवकी चर्चा  
कर रहे थे, कि जयकुमारने उससे श्रीपाल  
चक्रवर्तीके विषयमें पूछा। सुलोचनाने अपनी  
सरस बाणीके द्वारा श्रीपाल चक्रवर्तीका  
विस्तृत कथानक प्रकट किया। अनन्तर दोनों  
सुखसे अपना समय बिताने लगे।

४८०-५००

**देव-द्वारा** जयकुमारके शीलको परीक्षा।  
जयकुमारका संसारसे विरक्षित होना और  
भगवान् ऋषभदेवके समवसरणमें गणधर  
पद प्राप्त करना।

५०१-५१२

भरत चक्रवर्तीका दीक्षाग्रहण, केवलज्ञानकी  
प्राप्ति, भगवान्का अन्तिम विहार और  
निर्वाणप्राप्ति।

५१३-५१५

- ४१५-४१६ ४१६-४१७ ४१७-४१८  
अकम्पनने पुत्रोंके शील और सन्तोषकी  
प्रशंसा की तथा अर्ककीतिकी प्रशंसा कर  
उन्हें शान्त किया। तथा चक्रवर्ती भरतके  
पास दूत भेजकर अपने अपराधके प्रति अपा-  
याचना की। चक्रवर्तीने उसके उत्तरमें  
अकम्पन और जयकुमारकी बहुत ही  
प्रशंसा की।

४२५-४३१

जयकुमार और सुलोचनाका प्रेममिलन—जब  
जयकुमारने अपने नगरकी ओर वापस आनेका  
विचार प्रकट किया तब अकम्पनने उन्हें बड़े  
वैभवके साथ दिला किया। मार्गमें जयकुमार  
चक्रवर्ती भरतसे मिलनेके लिए गये। चक्र-  
वर्तीने उनका बहुत सत्कार किया।  
अयोध्यासे लौटकर जब जयकुमार अपने  
पहाड़की ओर गंगाके मार्गसे जा रहे थे तब  
एक देवीने मगरका रूप धरकर उनके  
हाथोंको ग्रस लिया जिससे जयकुमार हाथी-  
सहित गंगामें डूबने लगे तब सुलोचनाने  
पंचनमस्कार मन्त्रकी आराधनासे इस उप-  
सर्गको दूर किया।

४३२-४४०

बड़ी धूमधामके साथ जयकुमारने हस्तिनापुर-  
में प्रवेश किया। नगरके नर-नारियोंने  
सुलोचना और जयकुमारको देखकर अपने  
नीचे सफल किये। जयकुमारने हेमांगद  
आदिके समक्ष ही सुलोचनाको पटरानीका

## आदिपुराण भाग दो के सुभाषित

'अहो कष्टा दरिद्रता ।'	२६।४९
'रस्य हारि न कस्य वा ।'	२७।१९
'नूनं तीक्ष्णप्रतापानां माध्यस्थमपि तापकम् ।'	२७।१००
'महतां चित्रमीहितम् ।'	२८।२७
'अहो स्त्यं यं महात्मनाम् ।'	२८।५७
'विभृतिं यः पुमान् प्राणान् परिभूतिमलीमसान् । न गुणैर्लङ्घमात्रेण पुमानेष प्रतीयते ॥'	२८।१२९
'सचित्रपुरुषो वास्तु चक्षुपुरुष एव च । यो विनापि गुणः पौस्ते नाम्नव पुरुषामते ॥'	२८।१३०
'स पुमान् यः पुनीते स्वं कुरुं जन्म च पौर्वं । भट्टशुश्री जनो यस्तु तस्यास्त्वभवनिर्भुवि ॥'	२८।१३१
'सत्यं परिभ्रवः सोहुमशक्यो मामशालिनाम् । बलवद्विविरोधस्तु त्वपराभवकारणम् ॥'	२८।१३२
'बलिनामपि सन्त्येव बलीयांसो मनस्विनः । बलवानहृमहमीति नोत्सेक्तव्यमतः परम् ॥'	२८।१४२
'इहोमुन च जन्मूनामुन्मत्ये पूज्यपूजनम् । तापं तशानुबद्धनाति पूज्यपूजाभ्यतिक्रमः ॥'	२८।१५१
'सम्भोगेरतिरसिको न तुष्टीह'	२८।१९०
'पुण्ये बलीयसि किमस्ति जगत्यजग्यम्'	२८।२१४
'पुण्यात्परं न खलु साधनमिष्टिद्वयं'	२८।२१५
'पुण्यात्परं न हि बशीकरणं जगत्याम्'	२८।२१६
'पुण्यं जले स्थलमिवाभ्यवपद्यते नून् पुण्यं स्थले जलमिवाशु निष्ठिति तापम् । पुण्यं जलस्थलमये शरणं तृतीयं पुण्यं कुरुव्यमत एव अना जिनोक्तम् ॥'	२८।२१७
'पुण्यं परं शरणमापदि दुविलङ्घयं पुण्यं दरिद्रति अने धनदायि पुण्यम् । पुण्यं सुखायिनि अने सुखायि रत्नं पुण्यं जिनेन्द्रपरिपूजामसाध्यमाद्यं पुण्यं सुपात्रगतदानसमुत्थमन्थत् ।	२८।२१८
'पुण्यं ब्रतानुचरणादुपवासयोगात् पुण्यायिनश्चिति चक्षुष्यमज्जीयम् ॥'	२८।२१९
'किमु कल्पतरोः सेवास्थपकलाल्पकलापि वा'	२९।३३
'सत्यं बहुनटो नृपः'	२९।३७
'सर्वो हि बाञ्छति अनो विषयं मनोऽनम्'	२९।४३
'प्रभदो मित्रभाविणः'	३४।३०

'कोधान्वतमसे भग्नं यो नात्मानं समृद्धरेत् । स कृत्यं संवायं द्वैवाश्रोत्तरोत्तुमलन्तराम् ॥'	३४।७४
'कि तरा त स विजानाति कायकार्यमनात्मवित् । यः स्वान्तःप्रभवान् जेतुमरीच प्रभवेत् प्रभुः ॥'	३४।७५
'स्थायुके हि यशो लोके गत्यर्थं ननु सम्पदः ।' 'किमस्तद् दिवोजान्त्सूक्ष्मदेवाभ्युद्दितः तुम्बोवनश्चत्तमस्येति प्राणान्तेऽपि मधुव्रतः'	३४।८६
'मुक्ताकलाञ्छमापाय यगताम्बुदवाम्बुदात् । शुष्यत्सरोऽपि कि वाञ्छेदुदन्यन्तपि च ॥'	३४।१०७
'उन्निष्ठते सम मुक्त्यर्थं बद्धकवा मुमुक्षवः' 'सर्वं हि परिकर्मेदं वाह्यमव्यात्मशुद्धये'	३४।१६७
'प्रादुरासन् विशुद्धं हि तपः सूते महत्कलम्' 'अर्यं खलु खलाचारो यद् बलात्कारवर्णनम् । स्वगुणोत्तीर्तं दोषोऽद्वावनं च परेषु यत् ॥'	३४।२१३
'विद्युणोति खलोऽन्येषां दोषान् स्वांश्च गुणान् स्वयम् । संवृणोति च दोषान् स्वान् परकीयान्मुणानपि ॥'	३४।२१४
'अनिराङ्कुतसंतापा भुमनोभिः समुज्जिताम् । फलहीनां व्यवत्यजः खलतां खलतामिव ॥'	३५।१९५
'सतामसम्मतां विष्वगावितां विरसैः फलैः । मन्ये दुःखलतामेनां खलतां लोकतापिनीम् ॥'	३५।१९६
'नैकान्तश्चमनं साम समानात् सहोष्मणि । स्तिन्द्येऽपि हि जने तप्ते सपिष्ठोदाम्बुदेचनम् ॥'	३५।१९७
'उपप्रदानमव्येकं प्रार्थं भन्ये महोष्मणि । समित्सहस्रदानेऽपि दोप्तस्याग्नेः कृतः शमः ॥'	३५।१००
'लोहस्येवोपतप्तस्य मृदुता न मनस्विनः । दण्डोऽयनुनयग्राह्ये सामजे न सुगद्विषि ॥'	३५।१०१
'जरशपि गजः कक्षां ग्राहते कि हरे : शिशोः ।' 'तेजस्वी भानुरेवेकः किमन्योऽप्यस्त्यतः परम् ॥'	३५।१०२
'स्वदोद्दृमफलं इलाघ्यं यटिकचन मनस्विनाम् । न चातुरन्तमव्यैश्यं परञ्जूलिंकाफलम् ॥'	३५।१०३
'पराज्ञोपहतो खद्मीं यो वाञ्छेदग्रादिवोऽपि सम् । सोऽपार्थ्यति तामुक्ति सर्पोक्तिमिव हुणहभः ॥'	३५।११३
'परावधानमलिनां भूति धर्मे नृपोऽपि यः । भृपशोहतस्य नन्देष भारो राज्यपरिष्ठादः ॥'	३५।११४
'मानभञ्जाजितैर्भौतीयः प्राणाम्बुद्मीहसे । सस्य मनस्वरदस्येव द्विरदस्य कृतो सिदा ॥'	३५।११५
'क्षत्रभञ्जादिनाप्यत्य छायाभञ्जोऽभिलक्षयते । यो मानभञ्जभारेण विभृत्यवनसं लिरः ॥'	३५।११६
'मूलयोऽपि समानाश्चेत् त्वक्तस्मोगपरिष्ठादः । को नाम राज्यभोगार्थी पुमानुक्षेत्समानसाम् ॥'	३५।११७
'बरं वनाविवासोऽपि वरं प्राणविसर्जनम् । कुलाभिमानिनः पुंसो न पराज्ञाविषेयता ॥'	३५।११८

'मानमेवाभिरक्षत्तु घीरा: प्राणैः प्रणश्वरैः । तन्वलंकृहते विश्वं शशवस्मानाजितं यथा: ॥'	३५१११९
'वचोभिः पोषयन्त्येव पण्डिताः परिकल्पिति । प्रक्रान्तायां स्तुताविष्टः सिद्धो ग्राममुगो ननु ॥'	३५११२१
'ननु सिद्धो जपत्येकः संहितानापि वर्गितमः ।'	३६१३०
'को नाम मतिमानीप्सेद् विषयान्विषदारुणान् । येषां वशगतो जन्मः यात्यनर्थपरम्पराम् ॥'	३६१७३
'करं विषं यदेकस्मिन्भवे हस्ति न हस्ति च । विषयास्तु पुनर्धन्ति हस्त जन्मनस्तरशः ॥'	३६१७४
'आपातमात्ररम्याणां विपाककट्टुकात्मनाम् । विषयाणां कृते नान्नो यात्यनर्थानपार्थकम् ॥'	३६१७५
'अत्यन्तरसिकानादी पर्यन्ते प्राणहारिणः । किपाकपाकविषमान् विषयान् कः कृती भजेत् ॥'	३६१७६
'प्रसह्य पायतन् भूमो गात्रेषु कृतवेष्युः । जरापातो नृणां कहो ज्वरः शीत इबोद्धूदन् ॥'	३६१८६
'अङ्गसादं मतिभ्रेषं वाचामस्कुटहर्त्तिः ॥ ३६१८७ ॥ अङ्गसादं मतिभ्रेषं वाचामस्कुटहर्त्तिः ॥ ३६१८७ ॥ जरा सुरा च निविष्टा घटयत्याशु देहिनाम् ॥'	३६१८७
'नाम्यं नाम परं तपः । 'ज्ञानशुद्धधा तपःशुद्धिरस्यासीदतिरेकिणी । ज्ञानं हि तपसो मूलं यद्यन्मूलं महातरोः ॥'	३६१९७
'सूते हि फलमक्षीणं तपोऽखूषमुपासितम् ॥' 'महतो हि मनोऽवृत्तिर्नोत्सेकपरिरस्मिभणी'	३६१९८
'रत्नानि ननु तान्येव यानि यान्त्युपयोगिताम् ॥' 'तपः श्रुतं च जातिश्च त्रयं आह्वायकारणम् । तपःश्रुतास्यां यो हीनो जातिकाह्वाण एव सः ॥'	३६१९९
'सत्रियो न्यायजीकिकः । 'प्रजा कामदुषा घेनुर्मता न्यायेन योजिता । 'राजकृतमिदं विष्टि यन्यायेन घनार्जनम् । वर्धनं रक्षणं चास्य तीर्थं च प्रतिपादनम् ॥'	३८१४३
'अज्ञानकुलधर्मो हि कुर्वतीर्थयेत्कुलम्' 'रक्षितं हि भवेत्सर्वं नृपेणात्मनि रक्षिते'	३८१२६२
'हिसोपदेशि यद्वाक्यं न वेदोऽसौ कृतान्तवाक्' 'पुरुषं धर्मकास्त्रं च तस्याद् वधनिषेधि ग्रन्त् । बघोपदेशि यत्ततु ज्ञेयं धूर्तप्रणेतृकम् ॥'	३८१२६९
'भन्नास्त एव धर्मासु ये क्रियासु नियोजिताः । दुर्भन्नास्तेऽन्न विशेषा ये मुक्ताः प्राणिमारणे ॥'	३९१२६
'स्यान्निरामिषभोजित्वं शुद्धिराहास्योचराः । सर्वक्षास्तु ते ज्ञेया ये स्युरामिषभोजिनः ॥'	३९१२९
'अहिंसाशुद्धिरेषां स्याद् मे निःसङ्का दयालवः । रताः पशुवधे ये तु न ते शुद्धा दुरुपश्याः ॥'	३९१३०
'न्यायो दयाद्वृत्तिमन्यायः प्राणिमारणम् ।' 'को हि नाम तसो नीशं हन्मादन्यज्ञ भास्कराम् ।'	३९१४१
	४०१९

'धर्मशीले महोपाले याति तच्छीलतां प्रजाः । अताभ्युल्यमतच्छीले यथा राजा तथा प्रजा ॥'	४११९७
'दानं पूजां च शीलं च दिसे पर्वण्युपोषितम् । धर्मस्वतुविधः सोऽयमाम्नातो गृहमेघिनाम् ॥'	४११९८
'धर्मं हि चिन्तिते सर्वे चिन्त्यं स्यादनु चिन्तितम्' 'धर्मो रक्षत्युपायेभ्यो धर्मोऽभीष्टफलप्रदः ।	४११९९
धर्मः श्रेयस्करोऽमुतं धर्मेणहाभिनन्दयुः ॥'	४१२१६
'धर्मर्थं ननु केनापि नादशि विरसं क्वचित्' 'दोषानुग्रान् गुणी गृह्णन् गुणान् दोषांस्तु दोषवान् ।	४३१६
सदसज्जानयोदित्यनमन माहात्म्यमीदृशम् ॥'	४३१२०
'गुणिनां गुणमादाय गुणी भवतु सञ्जनः । असद्विषयसमादानाद् दोषवान् दुर्जनोऽद्भुतम् ॥'	४३१२१
'कविरेव कवेऽस्ति कामं कावयपरिक्षमम्, वन्ध्या स्तनन्धयोत्पत्तिवेदनामिव नाकविः'	४३१२४
'गुणागुणानभिजेन कृता निगदाद्यका स्मृतिः । जात्यन्धस्येव धृष्टस्य रूपे हासाय केवलम् ॥'	४३१२६
'गणयन्ति महान्तः कि शुद्धोपद्रवमल्पवत्, दाहं तृणामिना तूलं पत्युस्तापोऽपि नामसाम् ॥'	४३१२८
'कष्ठजोऽपि दहत्यमिः काष्ठं तं तत्तु वर्धयेत् । क्षेत्रेण एवित्तमेताम्यां इत्यसद्मूलत्वालेन ॥'	४३१२९
'हृदि धर्ममहारत्नमागमाम्भोषिसम्भवम् । कौस्तुभादधिकं मत्वा दशातु पुरुषोत्तमः ॥'	४३१३५
'आकरेषिव रत्नानाभूहानां नाशये क्षयः । विचित्रालङ्कृतीः कर्तुं दोषं त्यं किं कवेः कृतीः ॥'	४३१४२
'नार्णिनो विमुखाम्यन्तः कुर्वते तद्विद्वत्तम्' 'सस्तोऽवसरवादिनः'	४३१३२
'न सहस्रे ननु स्त्रीणां तिर्थोऽपि पराभवम्' 'आभिजात्यं वयोर्लभं विद्या वृत्तं यशःशियम् ।	४३१३३
क्षिभूत्वं विक्रमं कान्तिमैहिकं पारलोकिकम् ॥ प्रीतिमप्रीतिमादेयमनादेवं कृपां कृपाम् ।	४३१९९
हार्णि वृद्धिं गुणाम्भोषाम्भगणयन्ति न योषितः ॥'	४३१०२।१०१
'वृद्धिचक्ष्य हि विष्णु पश्चात्प्रगणस्य विष्णुं पूरः । योषितां दूषितेच्छानां विष्वतो विष्वमं विष्वम् ॥'	४३१०५
'जालकैरित्यजालेन वज्र्या ग्रास्या हि मायया । ताभिः सेन्द्रो गुरुर्व्यस्तन्मायामातरः स्त्रियः ॥'	४३१०६
दोषाः कि तन्मयास्तासु दोषाणां कि समुद्भवः । तासां दोषेभ्य इत्यत्र न कर्त्यापि विनिष्वयः ॥'	४३१०७
'निर्गुणान्गुणिनो मन्तुं गुणिनः स्त्र॒ निर्गुणान् । नाशकत् परमात्मापि मन्यन्ते ता हि हृलया ॥'	४३११०
'आयणामपि वाभूयो विचार्या कार्यवेदिभिः । वज्र्याया : कि पुनर्नायीः कामिनो का विचारणा ॥'	४३११५
'कनीयसोऽपि सम्बन्धं नेच्छन्ति ज्ञायसा सद्'	४३१८८

श्रीमद्भिन्नसेनचार्यविरचितम्

## आदिपुराणम्

[ द्वितीयो भागः ]

### अथ षड्विंशतितम् पर्व

अथ चक्रधरः पूजा चक्रस्य विधिवत् अथधात् । सुतोपसिमपि श्रीमानभ्यनन्दनुक्रमात् ॥ १॥  
 'नाशस्त्रीजनः कश्चिच्च विभोस्तस्मिन् महोम्बवे । दारिष्यमर्थिलाभे<sup>१</sup> तु जाते<sup>२</sup> विश्वाशितंभवे ॥ २॥  
 चतुष्केषु<sup>३</sup> च रथासु<sup>४</sup> पुरस्याभृत्यहिः<sup>५</sup> पुरम् । पुर्णीकृतानि रत्नानि तदाथिभ्यो ददौ नृपः ॥ ३॥  
 अभिवारं क्रियेवार्थाचकर्त्तास्य विद्विषाम् । जगतः शान्तिकर्मेन जातकमन्यभूतदा ॥ ४॥  
 सतोऽस्य दिग्गंशोद्योगममये शरदापतन् । जयलक्ष्मीरिवासु<sup>६</sup> प्रसन्ना विमलास्त्ररा<sup>७</sup> ॥ ५॥  
 अन्यका इष्ट संरक्षणस्या<sup>८</sup> भ्रुकरबजाः । सप्तक्षदप्रसूनोवरजोभूषितविग्रहाः<sup>९</sup> ॥ ६॥  
 प्रसन्नमभवन्तोयं सरपां सरिताभवि । कवीनामिव सत्काङ्क्षं जनताविलभूतनम् ॥ ७॥  
 नितच्छदावर्ली<sup>१०</sup> रेजे संपतन्ती समन्ततः । स्थूलमुक्तावर्ली नदा कविठकेव शरस्त्रियः ॥ ८॥

अथानन्तर श्रीमान् चक्रवर्ती भरत महाराजने विधिपूर्वक चक्ररत्नकी पूजा की और फिर अनुक्रमसे पुत्र उत्पन्न होनेका आनन्द मनाया ॥ १ ॥ राजा भरतके उस महोत्सव के समय संसार-भरमें कोई दरिद्र नहीं रहा था किन्तु दरिद्रता सबको सन्तुष्ट करनेवाले याचकोंके प्राप्त करनेमें रह गयी थी । भावार्थ—महाराज भरतके द्वारा दिये हुए दानसे याचक लोग इतने अधिक सन्तुष्ट हो गये कि उन्होंने हमेशाके लिए याचना करना छोड़ दिया ॥ २ ॥ उस समय राजाने चौराहोमें, गलियोमें, नगरके भीतर और बाहर सभी जगह रहनेके द्वे किये थे और वे सब याचकोंके लिए दिये थे ॥ ३ ॥ उस समय भरतने जो चक्ररत्नकी पूजा की थी वह उसके शत्रुओंके लिए अभिनार क्रिया अर्थात् हिंसाकायके समान मालूम हुई थी और पुत्र-जन्मका जो उत्पन्न किया था वह संसारको शान्ति कर्मके समान जान पड़ा था ॥ ४ ॥ तदनन्तर भरतने दिग्विजयके लिए उद्योग किया, उसी समय शरदकृतु भी आ गयी जो कि भरतकी जयलक्ष्मीके समान प्रसन्न तथा निर्मल अम्बर ( आकाश ) को धारण करनेवाली थी ॥ ५ ॥ उस समय सप्तपाणं जातिके फूलोंसे उठी हुई परागसे जिनके शरीर मुशोभित हो रहे हैं ऐसे भ्रमरोंके समूह इस शरदकृतुके अलकों ( केशपाश ) के समान शोभायमान हो रहे थे ॥ ६ ॥ जिस प्रकार कवियोंका उत्तम काव्य प्रसन्न अर्थात् प्रसाद गुणसे सहित और जनसमूहके चित्तको आनन्दित करनेवाला होता है उसी प्रकार तालाबों और नदियोंका जल भी प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ और मनुष्योंके चित्तको आनन्द देनेवाला बन गया था ॥ ७ ॥ चारों ओर उड़तो हुई हंसोंकी पंक्तियाँ ऐसी मुशोभित हो रही थीं मानो शरदकृतु रूपी लक्ष्मी-

१ दरिद्रो नाभूत् । नो दरिद्री जनः ल० । न दरिद्री जनः द०, इ०, अ०, प०, च० । २ याचकजनप्राप्ती ३ सकलनृप्तिजनके । ४ चतुष्प्रयक्तमण्डणेषु । ५ शीशिषु । ६ 'वहि: पर्यायो च' हनि गमामः । ७ मारणक्रिया । ८ आगता । ९ निर्मलाकाशा निर्मलवसना च । १० शरलक्ष्म्या । ११ आच्छादित । १२ हंसपङ्क्तिः ।

सरोजलमभूक्षान्तं सरोजरजसा नतम् । सुवर्णेरजसाकीर्णमिव कुट्टिमभूतलम् ॥१॥  
 सरः सरोजरजसा परितः स्थगिलोदकम् । कादम्बं जायाः संप्रेष्य मुहुर्गुहः स्थलशङ्कया ॥२॥  
 कषजकिञ्जलकपुष्पजेन विज्जरा वद्पदावली । मौवर्णसणिहृषेत्रं शरदः कण्ठिका वर्भी ॥३॥  
 सरोजलं 'ममायेदुपुष्पवरा: सितपक्षिणः' । 'वदात्यकुलमुद्भूतमांगल्यमिव' वन्दिनः ॥४॥  
 नदीनां पुलिनान्यामन् शुचीनि शरदागमे हृष्टान्तर्वित्तिर्वित्तिर्वित्तिर्वित्तिर्वित्तिर्वित्ति  
 सर्वमि वक्षरोजानि सोशला 'वप्रभूमयः' । महंसमैकता॑ नथो॑ 'जद्विष्टेतांसि कामिनाम् ॥५॥  
 प्रथमसिलिला रेतुः वरस्यः सहमास्त्राः । कृजिनैः कलहंसानां जिनैः पुरशिलिजिनैः ॥६॥  
 नीलोत्पलेश्वरा॒ रेते॑ शरक्षी॑ पक्षजानना॑ । व्यक्तमासाषमाणेव कलहंसीक्षलस्वनैः ॥७॥  
 पक्षजालिभूतो नक्षकणिशा॑ पिष्टजरश्चियः । स्ताना॑ 'हरिद्रियेवामन् शरक्षलप्रियागमे ॥८॥  
 मन्दसाना॑ 'मदं॑ सञ्जुः सहसाना॑' मदं जहुः । शरहस्मी॑ समालोक्य शुद्धयशुद्धयोरव्य॑ निजः ॥९॥

की बड़े-बड़े मोतियोंकी मालासे बनी हुई कण्ठमाल ( गलेमें पहननेका हार ) ही हों ॥ ८ ॥  
 कमलोंकी परागसे व्याप्त हुआ सरोवरका जल ऐसा सुन्दर जान पड़ता था मानो सुवर्णकी  
 धूलिसे व्याप्त हुआ रुलजटित पृथिवीका तल ही हो ॥ ९ ॥ जिसका जल चारों ओरसे कमलों-  
 की परागसे ढैंका हुआ है ऐसे सरोवरको देखकर कादम्ब जातिके हंसोंकी स्त्रियाँ स्थलका  
 मन्देह कर बार-बार मोहमें पड़ जाती थीं अर्थात् सरोवरको स्थल समझने लगती थीं ॥ १० ॥  
 जो अमरोंकी पंक्तियाँ कमलोंकी केशरके समूहसे पीली-पीली हो गयी थीं वे ऐसी जान पड़ती  
 थीं मानो सुवर्णमय मनकाओंमें गूँथा हुआ शरदकृतुका कण्ठहार ही हो ॥ ११ ॥ जिस प्रकार  
 चारण लोग प्रमिद्ध दानी पुरुषके समीप उसकी कीर्ति गाते हुए पहुँचते हैं उसी प्रकार हंस पक्षी  
 भी शब्द करते हुए अतिशय सुगन्धित सरोवरके जलके समीप पहुँच रहे थे ॥ १२ ॥ शरद  
 कृतुके आते ही नदियोंके किनारे स्वच्छ हो गये थे और ऐसे जान पड़ते थे मानो सफेद वस्त्रों-  
 से बने हुए हंसोंके विछौने ही हों ॥ १३ ॥ कमलोंसे सहित सरोवर, नील कमलोंसे सहित  
 खेतोंकी भूमियाँ और हंसोंसहित किनारोंसे युक्त नदियाँ ये सब कामी मनुष्योंका चित्त हरण  
 कर रहे थे ॥ १४ ॥ जिनमें स्वच्छ जल भरा हुआ है और जो सारस पक्षियोंके जोड़ोंसे सहित  
 है ऐसे छोटे-छोटे तालाब, तूपुरोंके शब्दकी जीतनेवाले कलहंस पक्षियोंके सुन्दर शब्दोंसे बहुत  
 ही अधिक सुधोभित हो रहे थे ॥ १५ ॥ नीलोत्पल ही जिसके नेत्र हैं और कमल ही जिसका  
 मुख है ऐसी शरदकृतुकी लक्ष्मीरूपी स्त्री कलहंसियोंके मधुर शब्दोंके बहाने वार्तालाप करती  
 हुई-सी जान पड़ती थी ॥ १६ ॥ जिनमें बाले नीचेको और ऊपर गयी हैं और जिनकी शोभा कुछ-  
 कुछ पीली हो गयी है ऐसी पके चावलोंकी पृथिवियाँ उस समय ऐसी जान पड़ती थीं मानो शरद  
 कालरूपी पतिके आनेपर हल्दी आदिके उवठन-द्वारा स्नान कर सुसज्जित ही बैठी हों ॥ १७ ॥  
 उस शरदकृतुकी शोभा देखकर हंस हर्षको प्राप्त हुए थे और मयूरोंने अपना हर्ष छोड़ दिया  
 था । सो ठीक ही है क्योंकि शुद्ध और अशुद्धिका वही स्वभाव होता है । भावार्थ-  
 हंस शुद्ध अर्थात् सफेद होते हैं इसलिए उन्हें शरदकृतुकी शोभा देखकर हर्ष हुआ परन्तु मयूर  
 अशुद्ध अर्थात् नीले होते हैं इसलिए उन्हें उसे देखकर दुःख हुआ । किसीका वैभव देखकर शुद्ध  
 अर्थात् स्वच्छ हृदयवाले पुरुष तो आनन्दका अनुभव करते हैं और अशुद्ध अर्थात् मलिन  
 स्वभाववाले-दुर्जित पुरुष दुःखका अनुभव करते हैं, यह इनका स्वभाव ही है ॥ १८ ॥

१ कलहंसस्त्रियः । २ कादम्बः कलहंसः स्थाद॑इत्यमिष्ठानात् । ३ मोहयन्ति स्म । ४ रचिता । ५ जगुः ।  
 ६ हंसाः । ७ त्यागिसमूहम् । ८ सौहार्दम् । ९ केवार । १० पुलिन । ११ अग्नहरन्ति स्म । १२ रजन्या ।  
 १३ हंसाः । मन्दसाना॑ ल० । १४ हर्षम् । १५ मयूराः । सहसाना॑ ल० । १६ अयमात्मोषगुणो हि ।

कलहंसा बन्धुजीव चिरहते: सम शिखण्डिनः । अहो<sup>१</sup> जडप्रिया यूथमिति निर्मलसूतेयः ॥१६॥  
 चित्रवर्णी<sup>२</sup> बनामन्त्रहच्छो मिरिसंश्रयाः । समं<sup>३</sup> शतमखेवासैर्वर्हिणः स्वोश्वर्तिं जहुः ॥२०॥  
 वन्धूकैरिन्द्रगोपश्चीरासेने वनराजिपु । शरदलक्ष्मयेव निष्ठयौस्ताम्बूलरसविन्दुभिः ॥२१॥  
 विकासं बन्धुजीवेषु<sup>४</sup> शरदविर्भवस्यधात् । सतीव<sup>५</sup> सुप्रसन्नाशां<sup>६</sup> विपद्मकौ<sup>७</sup> विशदाम्बरां ॥२२॥  
 हंसस्वनात्काकाशकणिशोज्ज्वलचामरा<sup>८</sup> पुण्डरीकातपश्चार्याहिन्द्योरथेव सा शरत ॥२३॥  
 दिशां<sup>९</sup> प्रसाधनावाधाद्<sup>१०</sup> बाणासनपरिच्छदम् । शरद्वकालो<sup>११</sup> जिगीषेहि इलाच्यो वाणासनप्रदः ॥२४॥  
 घनावली कृषा पाण्डुरासीदाशा विमुक्तती । घनागमविद्योगोत्थक्षित्येवाकुलीकृता ॥२५॥  
 नमः सतारमारेजे विहसकुमुदाकरम् । कुमुदूतीवनं चाभाज्यत्तारकितं नमः ॥२६॥

निर्मल शरीरको धारण करनेवाले हंस मधुर शब्द करते हुए ऐसे जान पढ़ते थे मानो अहो तुम लोग जडप्रिय – मूर्खप्रिय ( पक्षमें जलप्रिय ) हो इस प्रकार कहकर मयूरोंकी हँसी ही उड़ा रहे हों ॥ १९ ॥ जिनका वर्ण अनेक प्रकारका है, जिनकी रुचि-इच्छा ( पक्षमें कान्ति ) मेघोंमें लग रही है और जो पर्वतोंके आश्रय हैं ऐसे मयूरोंने इन्द्रधनुषोंके साथ-ही-साथ अपनी भी उच्चति छोड़ दी थी । भावार्थ – उस शरदकृष्टतके समय मध्यर और इन्द्रधनुष द्वीपोंकी शोभा नष्ट हो गयी थी ॥ २० ॥ बन्धुपक्षितयोंमें शरदकृष्टतुरुपी लक्ष्मीके द्वारा थूके हुए ताम्बूलके रसके वृद्धोंके समान शोभा देनेवाले बन्धूक ( दुष्प्रिया ) पुण्डोंने क्या इन्द्रगोप अर्थात् बद्धोंकर्त्तुमें होनेवाले लाल रंगके कीड़ोंकी शोभा नहीं बढ़ायी थी ? अर्थात् अवश्य ही बढ़ायो थी । बन्धुक पुण्ड इन्द्रगोपोंके समान जान पढ़ते थे ॥ २१ ॥ जिस प्रकार निर्मल अन्तःकरणवाली, पापरहित और स्वच्छ वस्त्र धारण करनेवाली कोई सती स्त्री घरसे बाहर प्रकट हो अपने बन्धुजनोंके विषयमें विकास अर्थात् प्रेमको धारण करती है उसी प्रकार शुद्ध दिशाओंकी धारण करनेवाली कीचड़रहित और स्वच्छ आकाशवाली शरदकृष्टतुरुपी भी प्रकट होकर बन्धुजीव अर्थात् दुष्प्रियाके कुलोंपर विकास धारण किया था – उन्हें विकसित किया था । तात्पर्य यह है कि उस समय दिशाएँ निर्मल थीं, कीचड़ चूब गया था, आकाश निर्मल था और बनोंमें दुष्प्रियाके कुल खिले हुए थे ॥ २२ ॥ उस समय जो हंसोंके शब्द हो रहे थे वे नगाड़ोंके समान जान पढ़ते थे, बनोंमें काशके फूल फूल रहे थे वे उज्ज्वल चमरोंके समान मालूम होते थे, और तालाबोंमें कमल खिल रहे थे वे क्षत्रके समान सुशोभित हो रहे थे तथा इन सबसे वह शरदकृष्ट ऐसों जान पढ़ती थी मानो उसे दिग्बिजय करनेकी इच्छा ही उत्पन्न हुई हो ॥ २३ ॥ उस शरदकृष्टतुरुपे दिशाओंको प्रसाधन अर्थात् अलंकृत करनेके लिए बाणासन अर्थात् बाण और आमन जातिके पुण्डोंका समूह धारण किया था सो ठोक ही है क्योंकि शत्रुओंको प्रसाधन अर्थात् वश करनेके लिए जिगीषु राजाको बाणासन अर्थात् धनुषका शत्रुण करना प्रशंसनीय ही है ॥ २४ ॥ उस समय समस्त आशा अर्थात् दिशाओं ( पक्षमें संगमकी इच्छाओं )को छोड़ती हुई मेघमाला कृषा और पाण्डुवर्ण हो गयी थी सो उससे ऐसी जान पढ़ती थी मानो वर्षकालके विशेषसे उत्पन्न हुई चिन्तासे व्याकुल होकर ही बैसी हो गयी हो ॥ २५ ॥ उस शरदकृष्टके समय ताराओंमें सहित आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो कुमुदिनियोंसहित सरोवरकी हँसी ही कर रहा हो

<sup>१</sup> जलप्रिया ८०, ८०, ८०, ८०, ८० । <sup>२</sup> मेवकृष्टवाम्बराः । <sup>३</sup> इन्द्रवापं । <sup>४</sup> बन्धुजीवकः । बन्धूकैरिन्द्रभिधानात् । <sup>५</sup> बन्धूक-कुमुदेषु, पथे सुहृजीवेषु । <sup>६</sup> पुण्डराङ्गनेव । <sup>७</sup> सुप्रसन्नदिक्, पथे सुप्रसन्नमानसा । सुप्रसन्नात्मा-८० । <sup>८</sup> विगतकर्दमा, पक्षे शोषरहिता । <sup>९</sup> पक्षे निर्मलवस्त्राः । <sup>१०</sup> अलंकाराय । जयार्थं च । <sup>११</sup> मिष्टिकुमुमसर्जककुमुमपरिकरम् । पक्षे धनुपरिकरम् । <sup>१२</sup> जेतुमिञ्छाः ।

तारकाकुमुदाकीर्णे नभःसरसि निर्मले । हंसायते सम शीतांगुविक्षिप्तकरपक्षतिः ॥२७॥  
 नभोगुहाङ्गमे तेजुः श्रियं उप्योपहारजाम् । तारकादिग्वधूहारतारमुक्ताफलत्विषः ॥२८॥  
 वभुष्मभोऽस्तुधी ताराः स्फुरमुक्ताफलामलाः । करकै इव मंधोर्धनिहिताै हिमशीतलाः ॥२९॥  
 अपीत्सनासलिलसंभूता इव त्रुद्गुदपद्मक्षयः । तारका स्त्रिमातेनुविप्रकाराणां नभोऽङ्गमे ॥३०॥  
 तन्मूलपयोवेणीै नेत्राः परिहृषा दद्युः । विशुका घनकालेन विरहित्य इवाद्यगताः ॥३१॥  
 अनुद्वता गमीरुचं भेदुः स्वच्छजलोऽग्निः ॥३२॥ सरिनिवयो षनापापाद् वैथव्यमित्रै संश्लिताः ॥३२॥  
 दिग्मृगना षनापापायप्रकाराभूतमूर्तयः । व्यावहासीमिवातेनुः प्रसन्ना हंसमण्डलैः ॥३३॥  
 कुजितैः कलहंसानां विजिता इव तस्यजुः । केकायितानिै शिखिनः सर्वः कालवलान् बली ॥३४॥  
 अपीत्सनाकुकूलवसना लसमध्यत्रमालिकाै । बन्धुजीवाप्यरा रंजे निर्मला शरदकृता ॥३५॥  
 अपीत्सना कीर्तिमिवातम्बन् विधुर्गनमण्डले । शरदूर्मी समायाय सुराजेवाच्युतसराम् ॥३६॥  
 वन्धुजीवेषुै विष्वस्तरागाै वाणकृतश्चितःै । हंसी सखीशृता रंजे नवोङ्कृतं शरदधृः ॥३७॥

और कुमुदिनियोंसे सहित सरोवर ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओंसे सुशोभित आकाश-  
 को ही जीत रहा हो ॥ २६ ॥ तारकारूप कुमुदोंसे भरे हुए आकाशरूपो निर्मल सरोवरमें  
 अपने किरणरूप पंखोंको फैलाता हुआ चन्द्रमा ठीक हंसके समान आचरण करता था ॥ २७ ॥  
 जिनकी कान्ति दिशारूपी स्त्रियोंके हारोंमें लगे हुए बड़े-बड़े मोतियोंके समान हैं ऐसे तारामण  
 आकाशरूपो घरके आँगनमें फूलोंके उपहारसे उत्पन्न हुई शोभाको बढ़ा रहे थे ॥ २८ ॥ देवीप्य-  
 मान मुक्ताफलोंके समान निर्मल तारे आकाशरूपी समुद्रमें ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो मेघों-  
 के समूहने बर्फके समान शीतल ओले ही धारण कर रखे हों ॥ २९ ॥ आकाशरूपी  
 आँगनमें जहाँ-तहाँ बिखरे हुए तारामण ऐसी शोभा धारण कर रहे थे मानो चाँदनीरूप जलसे  
 उत्पन्न हुए बबूलोंके समूह ही हों ॥ ३० ॥ वर्षाकालरूपो पतिसे बिछुड़ी हुई नदियाँ विरहिणी  
 स्त्रियोंके समान अत्यन्त कृश होकर जलकी सूखम प्रवाहरूपी चोटियोंको धारण कर रही थीं ॥ ३१ ॥  
 वर्षाकालके नष्ट हो जानेसे नदीरूप स्त्रियाँ मानो वैथव्य अवस्थाको ही प्राप्त हो गयी  
 थीं, क्योंकि जिस प्रकार विधवाएँ उद्धतता छोड़ देती हैं उसी प्रकार नदियोंने भी उद्धतता छोड़  
 दी थी, विधवाएँ जिस प्रकार स्वच्छ ( सफेद ) वस्त्र धारण करती हैं उसी प्रकार नदियाँ भी  
 स्वच्छ वस्त्ररूपी जल धारण कर रही थीं, और विधवाएँ जिस प्रकार अगम्भीर वृत्तिको धारण  
 करती हैं उसी प्रकार नदियाँ भी अगम्भीर अर्थात् उथली वृत्तिको धारण कर रही थीं ॥ ३२ ॥  
 मेघोंके नष्ट हो जानेसे जिनकी मृति-आकृति प्रकाशित हो रही है ऐसी दिशारूपी स्त्रियाँ  
 अत्यन्त प्रसन्न हो रही थीं और हंसरूप आभरणोंके छलसे मानो एक-दूसरेके प्रति हँस ही रही  
 थीं ॥ ३३ ॥ उस समय मयूरोंमें अपनी केका बाणी छोड़ दी थी, मानो कलहंस पक्षियोंके  
 मयूर शब्दोंसे पराजित होकर ही छोड़ दी हो, सो ठीक ही है क्योंकि समयके बलसे सभी बलवान्  
 हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ चाँदनीरूपी रेशमी वस्त्र पहने हुए, देवीप्यमान नक्षत्रोंकी माला ( पक्ष-  
 में सत्ताईस मणियोंवाला नक्षत्रमाल नामका हार ) धारण किये हुए और दुष्परियाके फूल  
 रूप अधरोंसे सहित वह निर्मल शरदकृतुरूपी स्त्री अतिशय सुशोभित हो रही थी ॥ ३५ ॥  
 शरदकृतुकी शोभा पाकर आकाशमण्डलमें चाँदनीरूपी कीर्तिको फैलाता हुआ चन्द्रमा किसी  
 उत्तम राजाके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥ ३६ ॥ वह शरदकृतु नवोदा स्त्रीके समान

१ किरणा एव पक्षतिः मूलं पद्म । २ वर्षोपलाः । ३ निक्षिप्ताः । ४ पर्यःप्रवाहा इत्यर्थः । ५ पक्षे  
 एवेतस्थूलवस्त्राः । ६ विधवाया भावः । ७ परस्परहासम् । ८ हंसमण्डलाः प०, इ०, द० । हंसमण्डलात् ल० ।  
 ९ मयूररक्षणि । १० तारकावलो, पक्षे हारभेदः । ११ वस्त्रकेषु वान्धवेषु च । १२ छिण्ठि, पक्षे शर ।  
 १३ विकासः, पक्षे कान्तिः । १४ नूतनविवाहिता ।

स्वयं धौतमभाद् व्योम स्वयं प्रचक्षालितः शशी । स्वयं प्रसादिता<sup>१</sup> नदः स्वयं संमाजिना दिशः ॥३६॥  
शरण्यक्षमीमुखालोकदर्पणे शशिमण्डुले । प्रजातशो धृति भेजुरसंसृष्टुर्गवले ॥३७॥  
वनराजीस्ततामोदाः कुसुमामरणोज्जवलाः । मधुशता भजन्ति सम कृतकोलाहलस्वनाः ॥३८॥  
तन्म्यो<sup>२</sup> वनलता रेणुविकाखिकुसुमभिताः । सालज्ञा इव गन्धान्धाविलोकामेकुलाकुलाः ॥३९॥  
दर्पेत्रिरा: सुरोस्वालमुवस्ताम्रीकृतक्षणाः । शूषा<sup>३</sup> प्रतिवृषालोककुपिताः प्रतिसस्त्रनुः ॥४०॥  
अवास्तिकरम्भं शृग्गम्बैर्षुषमा धीरनिःस्वनाः । वनस्यली<sup>४</sup> स्थलास्मोजसृणालक्षकलाचिताः ॥४१॥  
वृथाः कुदृश्येलग्नमृदः कुमुदपाणिदुराः । व्यक्ताङ्गस्य सृग्गम्बिमहस्तदा ॥४२॥  
क्षीरपञ्चमयी कृत्सनामातम्बाना वनस्यलीम् । प्रसन्नवाचा वनान्तेषु प्रसन्नकुर्मोमतलिकाः<sup>५</sup> ॥४३॥  
कुण्डोध्योऽमूलपिण्डेन<sup>६</sup> वित्ता इव निर्मलाः । गोगृष्णयो<sup>७</sup> वनान्तेषु शरच्छ्रिय इवारुच्यन्<sup>८</sup> ॥४४॥

सुशोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार नबोदा स्त्री बन्धुजीव अर्थात् भाई-बन्धुओंपर राग अर्थात् प्रेम रखती है उसी प्रकार वह शरदकृतु भी बन्धुजीव अर्थात् दुपहरियाके फूलोंपर राग अर्थात् लालिमा धारण कर रही थी, नबोदा स्त्री जिस प्रकार देदीप्यमान होती है उसी प्रकार शरदकृतु भी बाण जातिके फूलोंसे देदीप्यमान हो रही थी और नबोदा स्त्री जिस प्रकार सखियोंसे चिरी रहती है उसी प्रकार कह शरदकृतु भी हंसीहंषी सखियोंसे चिरी रहती थी ॥३७॥ उस समय आकाश अपने-आप साफ किये हुएके समान जान पड़ता था, चन्द्रमा अपने आप धोये हुएके समान मालूम होता था, नदियाँ अपने-आप स्वच्छ हुई-सी जान पड़ती थीं और दिशाएँ अपने-आप शाढ़-बुहारकर साफ की हुईके समान मालूम होती थीं ॥३८॥ जो शरदकृतुरुषी लक्ष्मीके मुख देखनेके लिए दर्पणके समान है और जो बिना साफ किये ही अत्यन्त उज्ज्वल है ऐसे चन्द्रमण्डलमें प्रजाके नेत्र बढ़ा भारी सन्तोष प्राप्त करते थे ॥३९॥ जिनकी मुग्निध चारों ओर फैल रही है और जो कुलरूप आभरणोंसे उज्ज्वल हो रही है ऐसी वन-पक्षियोंको भ्रमर कोलाहल शब्द करते हुए सेवन कर रहे थे ॥४०॥ जो कूले हुए पुष्परुषी मन्द हास्यसे सहित थीं तथा गन्धसे अन्धे हुए भ्रमरोंके समूहसे व्याप्त होनेके कारण जो सुन्दर केशोंसे सुशोभित थीं ऐसी वनकी लताएँ उस समय कृषा शरीरवाली स्त्रियोंके समान शोभा पा रही थीं ॥४१॥ जो खुरोंसे पृथिवीको खोद रहे थे, जिनकी आँखें लाल-लाल हो रही थीं और जो दूसरे बैलोंके देखनेसे कोधित हो रहे थे ऐसे भदोन्मत्त बैल अन्य बैलोंके शब्द सुनकर बदलेमें स्वयं शब्द कर रहे थे ॥४२॥ उसी प्रकार गम्भीर शब्द करते हुए वे बैल अपने सींगोंके अग्रभागसे स्थलकमलोंके मूणालके टुकड़ोंसे व्याप्त हुई वनकी पृथिवीको खोद रहे थे ॥४३॥ इसी तरह उस शरदकृतुमें जिनके कांधीलपर मिट्टी लग रही है और जो कुमूद पुष्पके समान अत्यन्त सफेद है ऐसे वे बैल स्पष्ट चिह्नवाले चन्द्रमाकी शोभा धारण कर रहे थे ॥४४॥ जिनसे अपने-आप दूध निकल रहा है ऐसी उत्तम गायें वनकी सम्पूर्ण पृथिवीको दुम्घ प्रवाहके रूप करती हुई बनोंके भीतर जहाँ-तहाँ फिर रही थीं ॥४५॥ इसी प्रकार जिनके स्तन कुण्डके समान भारी हैं और जो अमृतके पिण्डसे बनी हुईके समान अत्यन्त निर्मल हैं ऐसी तुरन्तकी प्रसूत हुई गायें बनोंके मध्यमें शरदकृतुकी शोभाके समान जान पड़ती थीं ॥४६॥

१ आसना प्रसश्चमित्यर्थः । २ प्रसधोकृताः । ३ कृथाः अङ्गनाश्च । ४ उत्तहाः । ५ वृषभाः ।  
६ किरन्ति सम । ७ वनस्पती ल० । ८ -चिताम् ल० । ९ शरन्ति सम । १० प्रशस्तगामः ।  
'मतलिलका मध्यिका प्रकाण्डमुखतललजो । प्रशस्तवा वकान्यमूनि' इत्यभिधानात् । ११ पिठराधीनाः । 'पिठरः स्वाल्पुला कुण्डमि'त्यभिधानात् । 'ऊषस्तु कलीदमापीनम्' । 'ऊधसोऽनम्' इति सूत्रात् सकारस्य नकारादेशः ।  
१२ सङ्कृतप्रसूता गायः । 'गृष्टः सङ्कृतप्रसूतिका' इत्यभिधानात् । १३ इवाभवन् ल० ।

इम्भारतभूतोऽ वस्तानापिष्ठेन्त्रकृतस्वनाम् । पीनापीनाऽपयस्त्विन्यः पश्चीयूषमुखुकाः ॥४७॥  
 श्रीरस्यतोऽ निजान् वस्तान् हुम्भागम्भीरनिःस्वनान् । धेनुष्याऽपाययस्ति सम गोपैरपि निष्ठन्त्रिताः ॥४८॥  
 प्राकस्त्रीया जलदा जाता: शिलिनामपियास्तदा । रिका जलधनापायादहो कष्टा दरिद्रता ॥४९॥  
 'व्यावहासीमिवातेनुर्गिर्यः उपित्तैर्मूर्मैः । व्याघ्रुक्षीमिव' तन्वानाः स्फुरक्षिरक्षीकरैः ॥५०॥  
 'प्रदृढवयस्तोऽ रेणुः कलमा भुशमानताः । परिणामात्प्रशुभ्यन्ते' जरन्तः' पुरुषा हव ॥५१॥  
 'विरेखुरसनापुष्पैर्मदालिपटलाकृतैः । इन्द्रनीलकृतान्तर्यैः' सौबणैरिव भूषणैः ॥५२॥  
 घनावरणनिर्मुक्ता दधुराशा दग्धा सुदम् । नटिका' हव नेपध्यगृहाङ्गमुपागताः ॥५३॥  
 अदधुर्वेदवृन्दानि मुकासाराणि' भूधराः । सदसानीव' वासासि' निष्ठवाणीनि' सानुभिः ॥५४॥  
 'एवनावोरणाहृदाभेमुर्मूर्मदनितनः' । सान्तगेजा निकृपजेकु' सासारमदशीकराः ॥५५॥  
 शुकाश्वलीप्रवालाभचम्बुसेने दिवि' श्रियम् । हरिन्मणिनद्वेव लोरणाली सप्तग्रभाः ॥५६॥

जिनके स्तन बहुत ही स्थूल हैं और जो हम्भा शब्द कर रही हैं ऐसे दूधवाली गायें दूध पीनेके लिए उत्सुक तथा बाल्कोंहम्भा शैद्योंकरते हुए अपने बच्चोंको दूधरूपी अमृत पिला रही थीं ॥४७॥ जो गायें खालाओंके यहाँ बन्धकरूपसे आयी थीं अथवि दूधके ठेकापर आयी थीं, उन्होंने उन्हें यद्यपि बांध रखा था तथापि वे 'हम्भा' ऐसा गम्भीर शब्द करनेवाले एवं दूध पीनेके लिए उत्सुक अपने बच्चोंको दूध पिला ही रही थी ॥४८॥ जो मेघ पहले मयूरोंको अत्यन्त प्रिय थे वे ही अब शरदऋतुमें जलरूप धनके नष्ट हो जानेसे खाली होकर उन्हें अप्रिय हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि दरिद्रता बहुत ही कष्ट देनेवाली होती है ॥४९॥ उस समय फूले हुए वृक्षोंसे पर्वत ऐसे जान पड़ते थे मानो परस्परमें हँसी ही कर रहे हों और बरने हुए झरनोंके छोटोंसे ऐसे जान पड़ते थे मानो फाग ही कर रहे हों ~ विनोदवश एक-दूसरेके ऊपर जल डाल रहे हों ॥५०॥ कलमी जातिके धान, जो कि बहुत दिनके थे अथवा जिनके समीप बहुत पक्षी बैठे हुए थे, जो खूब नव रहे थे और जो अपने परिपाकसे जगतके समस्त जीवोंका पोषण करते थे, वे ठीक बृद्ध पुरुषोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥५१॥ सहजनाके वृक्ष मदोन्मत्त भ्रमरोंके समूहसे घिरे हुए अपने फूलोंसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनके मध्यभागमें इन्द्रनील मणि लगा हुआ है ऐसे मुदर्णस्य आभूषणोंसे ही सुशोभित हो रहे हों ॥५२॥ जिस प्रकार आभूषण आदि पहननेके परदेवाले घरसे निकलकर रंगभूमिमें आयी हुई नृत्यकारिणी नेत्रोंको आनन्द देती है उसी प्रकार मेघोंके आवरणसे छूटी हुई दिशाएँ नेत्रोंको अतिशय आनन्द दे रही थीं ॥५३॥ पर्वतोंने जो अपनी शिखरोंपर जलरहित सफेद बादलोंके समूह धारण किये थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो अंचलसहित नवीन वस्त्र ही हों ॥५४॥ जिनपर वायुरूपी महावत बैठे हुए हैं, जो भीतर-ही-भीतर गरज रहे हैं और जो लतागृहोंमें जलकी बूँदेंरूपी मदधाराकी बूँदें छोड़ रहे हैं ऐसे मेघरूपी हाथी जहाँ-तहाँ किर रहे थे ॥५५॥ जिनकी चोंच मूँगाके समान लाल है ऐसी तोताओंकी १ हैमा इत्यनुकरणाराष्ट्रभूतः । २ पाययन्ति सम । ३ प्रकर्षण कृत । ४ प्रवृद्धीधसः । ५ धेनवः । ६ -मुत्सु-काम् ८० । ७ क्षीरमात्मानमिच्छून् । ८ 'धेनुष्या बन्धके स्थिता' इत्यभिवानात् । ९ परस्परहसनम् । १० परस्परसेचनम् । ११ वृद्धवयस्काः प्रवृद्धपक्षिणश्च । १२ परिपक्वात् । १३ वृद्धाः । १४ सर्जकाः । १५ मध्यैरित्यर्थः । १६ नर्तकाः । १७ अलंकारयुहात् । १८ वपीणि । १९ वस्तिसहितानि । 'स्त्रियां बहुत्वे वस्त्रस्य दशा स्फुर्वस्त्रयः' इत्यभिवानात् । अन्यदपि दशावत्तिवस्त्राणां वस्त्रान्ते स्फुर्वशा अपि । २० वस्त्राणि । २१ नूतनानि । 'अनाहतं निष्ठ्रवाणि तन्वकं च नवाम्बरे' इत्यभिवानात् । २२ हस्तिपक । 'आघोरणो नस्तिपकः' इत्यभिवानात् । २३ मेघ । २४ सानुपु । २५ आकाश । २६ पद्मरागसहिता ।

खेतामि<sup>१</sup> वरण। क्षेपजीविन। मुद्रतात्मनाम् । पुंमा च्युताश्चिकाराणामिष दैत्यसुपागमन् ॥५७॥  
 प्रतापा भुवनस्यैकं चक्रुनित्यमहोदयः । आस्थानाकास्तनेत्रहर्षी ब्रह्मासे मरतेशबद् ॥५८॥  
 हृषि प्रसादुषन्त्रां क्षुप्रहासे शरदागमं । चक्रे दिग्बिजयोर्योगं चक्री चक्रपुरस्तरम् ॥५९॥  
 प्रस्थानभयो गम्भोरप्रधानाः प्रहतास्तदा । श्रुता वहिमित्रद्विष्टेनाहृष्टवरवाङ्गिभिः ॥५०॥  
 कृतमङ्गलनेपथ्यो वभारोरस्थलं प्रभुः । शरक्षम्येव स्वभक्ते महारहरिदण्डनम् ॥५१॥  
 अप्योन्नामये दुर्घटे च शुक्ले परिद्वारौ नृपः । शरच्छ्रुयोपमीते वा सृषुप्ती दिव्यवाससी ॥५२॥  
 आजानुलम्बिना वृष्टागृथेण चिवर्भी तिभुः । हिमाद्रिरिषि गङ्गाम्बुधवाहेण तटस्पृशा ॥५३॥  
 “तिरियोदग्मप्राणीं कणीन्यां कुपड्ले दृच्यौ । चन्द्राकंमण्डले षक्तुमिदायाते जयोत्सवम् ॥५४॥  
 वक्षःस्थलेऽस्य रुहचे रुचिरः कौसल्यो मणिः । जयलक्ष्मीसमुद्राहमङ्गलाद्यमिदीपवद् ॥५५॥

पंकित आकाशमें ऐसी शोभा बढ़ा रही थी मात्रो पश्चराग मणियोंकी कान्तिसहित हरित मणियों-  
की बनी हुई बन्दनमाला ही हो ॥५६॥ जिस प्रकार अधिकारसे भ्रष्ट हुए मनुष्योंके चित्त  
दीनताको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार नावोंके द्वारा आजीविका करनेवाले उद्धत मल्लाहोंके  
चित्त दीनताको प्राप्त हो रहे थे । भावार्थ - शरदऋतुमें नदियोंका पानी कम हो जानेसे नाव  
चलानेवाले लोगोंका व्यापार बन्द हो गया था इसलिए उनके चित्त दुखी हो रहे थे ॥५७॥  
उस समय सूर्य भी ठोक महाराज भरतके समान देवीप्यमान हो रहा था, क्योंकि जिस प्रकार  
भरत प्रतापी थे उसी प्रकार सूर्य भी प्रतापी था, जिस प्रकार भरत लोकके एकमात्र नेत्र थे  
अर्थात् सबको हिताहितका मार्ग दिखानेवाले थे उसी प्रकार सूर्य भी लोकका एकमात्र नेत्र  
था, जिस प्रकार भरतका तेज प्रतिदिन बढ़ता जाता था उसी प्रकार सूर्यका भी तेज प्रतिदिन  
बढ़ता जाता था, और जिस प्रकार भरतने अन्य तेजस्वी राजाओंको दबा दिया था उसी प्रकार  
सूर्यने भी अन्य चन्द्रमा तारा आदि तेजस्वी पदार्थोंको दबा दिया था - अपने तेजसे उनका  
तेज नष्ट कर दिया था ॥५८॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल चन्द्रमाकी किरणें ही जिसका  
हास्य है ऐसी शरदऋतुके आनेपर चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्न आगे कर दिविजय करनेके लिए  
उद्योग किया ॥५९॥

उस समय गम्भीर शब्द करते हुए प्रस्थान कालके नगाड़े बज रहे थे, जिन्हें नेष्ठके आडम्बरकी शंका करनेवाले मयूर अपनी श्रीदा ऊँची उठाकर सुन रहे थे ॥६०॥ उस समय जिन्होंने मंगलमय वस्त्राभूषण धारण किये हैं ऐसे महाराज भरत हार तथा सफेद चन्दन-से सुशोभित जिस वक्ष-स्थलको धारण किये हुए थे वह ऐसा जान पड़ता था मानो शरदऋतु-रुपी लक्ष्मी ही उसकी सेवा कर रही हो ॥६१॥ महाराज भरतने चाँदनीसे बने हुएके समान सफेद, बारीक और कोमल जिन दो दिव्य वस्त्रोंको धारण किया था वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शरदऋतुरुपी लक्ष्मीके द्वारा ही उपहारमें लाये गये हों ॥६२॥ घुटनों तक लटकते हुए व्रह्मसूत्रसे महाराज भरत ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसा कि तटको स्पर्श करनेवाले गंगा जलके प्रवाहसे हिमवान् पर्वत सुशोभित होता है ॥६३॥ मुकुट लगानेसे जिनका मस्तक बहुत ऊँचा हो रहा है ऐसे भरत महाराजने अपने दोनों कानोंमें जो कुण्डल धारण किये थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो जयोत्सवकी बधाई देनेके लिए सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल ही आये हों ॥६४॥ भरतेश्वरके वक्ष-स्थलपर देवीयमान कौस्तुभ मणि ऐसा सुशोभित होता था,

१ द्वौषुदुपाशुपजीविनाम् । नदोत्तारकाणामित्यर्थः । २ मङ्गलाल्पकारः । ३ सेवितम् । ४ किरीटोदय - क०,  
द०, अ०, स० ।

विद्युतिम्बशतिरस्थि<sup>१</sup> द्रेष्टस्यातपवारणम् । तस्मिभेनैन्द्रवं विम्बमागत्येव मिषेत्रिषु ॥६६॥  
 लदस्य लचिमातेन शतमातपवारणम् । चूडारकांशुभिर्मिक्षं साहणांश्चिव<sup>२</sup> पक्षजम् ॥६७॥  
 स्वधुनोशीकरस्थिं चामराणं कदम्बकम् । तु उचुर्वारिनाऽस्य दिक्षत्या इव संत्रिलाः<sup>३</sup> ॥६८॥  
 ततः स्वपतिरेन निर्ममे<sup>४</sup> स्वन्दनो महान् । सुचर्णमणिचित्राङ्को<sup>५</sup> मेरकुञ्जश्चिव<sup>६</sup> हसन् ॥६९॥  
 चक्रनलप्रतिस्थितक्षितव्यसंगतः । वज्राक्षवटितो<sup>७</sup> रेते रथोऽस्येव भनीरथः ॥७०॥  
 कामगौरीयुरेहोमिः<sup>८</sup> कुमुदोज्जवलकान्तिमिः । यशोवितानसंकारीः स रथोऽयोजि<sup>९</sup> वाजिमिः ॥७१॥  
 स तं स्वन्दनमारुभयुक्तमारथ्यधिष्ठितम्<sup>१०</sup> । नितरवंशमदीशाः<sup>११</sup> सुरसाङ्किव चक्रराट् ॥७२॥  
 ततः प्रास्थानिकं<sup>१२</sup> पुण्यनिवौदैरभिनन्दितः । प्रतस्ये हिंजयोरुक्तः कृतप्रस्थानमङ्गलः ॥७३॥  
 तदा नमोऽङ्गणं कृत्वनं अथधीरैरहृष्टत । नृपाङ्गणं च संरक्षमभवत् सैन्यनायकैः ॥७४॥  
 महासुकुटवद्वास्तं परिवृपुः समन्ततः । दूरात् भणतमृशनिः सुराजमिवाभराः ॥७५॥  
 प्रचचाल बलं विष्वगारुदपुर्वाधिकम् । महायोधमर्या<sup>१३</sup> सुष्टिरपूर्वेवाभवत्तदा ॥७६॥

मानो विजयलद्मीके विवाहरूपी मंगलकी सूचना देनेवाला दीपक ही हो ॥ ६५ ॥ उन्होंने  
 चन्द्रमण्डलके साथ सप्तर्षी करनेवाले जिस छात्रको धारण किया था वह ऐसा जान पड़ता था  
 मानो उस छात्रके बहानेसे स्वयं चन्द्रमण्डल ही आकर उनकी सेवा करना चाहता हो ॥ ६६ ॥  
 महाराज भरतने जो छत्र धारण किया था वह चन्द्रमण्डलकी सेवा करना चाहता हो ॥ ७६ ॥

पुरः १ पादात्मादीर्यं रथकद्वा<sup>२</sup> च हास्तिकम् । क्रमान्विरी<sup>३</sup> युरावेष्ट्य सप्ताकं रथं प्रमोः ॥७४॥  
 रथ्या<sup>४</sup> स्थ्याश्वसंधट्टादुन्निवैहैमरेणुभिः । बलझोदाश्वमास्योम समुष्टेतुरिव<sup>५</sup> स्वयम् ॥७५॥  
 रीकमै रजोभिराकाण्य तदा रेजे नमोऽजिरम् । स्पृहै<sup>६</sup> वालातपेनेव पठवासेन वाततम्<sup>७</sup> ॥७६॥  
 शनैः शनैङ्गंनैसुरुक्ता विरंजुः पुर्वीधयः । कलोलैरिव<sup>८</sup> वेलोऽयैर्महावधेस्तीरभूमयः ॥७०॥  
 पुराह्यगनाभिस्तमुक्ता<sup>९</sup> सुभनोन्जलयोऽपतन् । सौधवातायनस्थाभिर्द्विष्टातैः समं प्रसा ॥७१॥  
 जयेश विजयिन् विश्वे विजयस्व दिशो दश । पुण्याशिर्कां शनैरित्यं पौराः प्रभुमयूयुजन्<sup>१०</sup> ॥७२॥  
 सम्भाद् पश्यज्ञयोध्यायाः परां भूति<sup>११</sup> तदाततीम्<sup>१२</sup> । शनैः प्रतोली<sup>१३</sup> संव्रापद् रथन्तोरणभासुराम् ॥७३॥  
 पुरो थहिः पुरः पश्चात् समं च यिभुनाऽभुना । ददशे द्विष्टयेन्तससङ्कुविष्ट तद्वक्तम् ॥७४॥  
 जगतः प्रसवागारादिव तस्मात् पुराद् वलम् । निरियाय निरुच्छ्रास्य<sup>१४</sup> शनैराह्यगोपुरम् ॥७५॥  
 किमिदं प्रलयक्षोमान् भुभिलं वारिवेजलम् । किमुत त्रिजगत्सर्गः<sup>१५</sup> प्राप्यमोऽर्थं विजृम्भते ॥७६॥  
 इत्याशङ्क्य नमोभाग्यः सुरः साहचर्यमीक्षितम् । प्रसवात् बलं विष्वक्षुरतिरियं चक्रिणः ॥७७॥

पोदाओंकी एक अपुर्व सृष्टि ही उत्पन्न हुई हो ॥ ७६ ॥ सबसे पहले पैदल बलनेवाले सैनिकोंका समूह था, उसके पीछे घोड़ोंका समूह था, उसके पीछे रथोंका समूह और उसके पीछे हाथियों-का समूह था । इस प्रकार वह सेना पताकाओंसे सहित महाराजके रथको धेरकर अनुक्रम-से निकली ॥७७॥ जिन मार्गोंसे वह सेना जा रही थी वे मार्ग रथ और घोड़ोंके संघटनसे उठी हुई सुवर्णमय धूलिसे ऐसे जान पड़ते थे मानो सेनाका आघात सहनेमें असमर्थ होकर स्वयं आकाशमें ही उड़ गये हों ॥ ७८ ॥ उस समय सुवर्णमय धूलिसे भरा हुआ आकाशमयी आंगन ऐसा मुशोभित हो रहा था मानो बालमूर्यकी सुनहली प्रभासे स्थग किया गया हो, और सुयन्धित चूणसे ही व्याप्त हो गया हो ॥७९॥ धीरे-धीरे लोग नगरको गलियोंका छोड़कर आगे निकल गये जिससे खाली हुई वे गलियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो ज्वारभाटासे उठी हुई लहरोंके चले जानेपर खाली हुई समुद्रके किनारेकी भूमि ही हो ॥ ८० ॥ उस समय बड़े-बड़े मकानोंके झरोखोंमें खड़ी हुई नगरनिवासिनी स्त्रियोंके द्वारा अपने-अपने कटाक्षोंके साथ छोड़ी हुई पुण्यांजलियाँ महाराज भरतके ऊपर पड़ रही थीं ॥८१॥ हे ईश, आपकी जय हो, हे विजय करनेवाले महाराज, आप संसारका विजय करें और दशों दिशाओंको जीतें; इस प्रकार सैकड़ों पुण्याशीर्वादोंके द्वारा नगरनिवासी लोग भरतकी पूजा कर रहे थे—उनके प्रति सम्मान प्रकट कर रहे थे ॥ ८२ ॥ इस प्रकार उस समय होनेवाली अयोध्याकी उत्कृष्ट विभूतिको देखते हुए सम्भाद् भरत धीरे-धीरे रत्नोंके तोरणोंसे देवीप्यमान गोपुरद्वारको प्राप्त हुए ॥ ८३ ॥ उस समय महाराज भरतको ज्वाहर अपने आगे-पीछे और साथ-साथ जहाँतक दृष्टि पड़ती थी वहाँतक असंख्यात सेना ही सेना दिखाई पड़ती थी ॥ ८४ ॥ जगत्की उत्पत्तिके धरके समान उस अयोध्यापुरीसे वह सेना गोपुरद्वारको रोकती हुई बड़ी कठिनतासे धीरे-धीरे बाहर निकली ॥८५॥ क्या यह प्रलय कालके क्षोभसे क्षोभको प्राप्त हुआ समुद्रका जल है? अथवा यह तीनों लोकोंकी नवीन सृष्टि उत्पन्न हो रही है? इस प्रकार आशंका कर आकाशमें खड़े हुए देव लोग जिसे बड़े आश्चर्यके साथ देख रहे हैं ऐसी चक्रवर्तीको वह सेना नगरसे निकल-कर चारों ओर फैल गयी ॥८६-८७॥

१ पश्चातीनां समूहः । २ - कटवा ल० । ३ निर्गच्छन्ति स्म । ४ रथनिवृत्तवाणी । रथाश्वः २०, ल०, इ० । ५ उत्पत्तिं स्म । ६ स्पृहै ल० । ७ वाततम् । ८ जलविकारोत्पैः 'अज्ज्वान्नुविकृता वेला' इत्यभिधानात् । ९ -मपूजयन् ल० । १० सम्पदम् । ११ तत्कालजाम् । १२ गोपुरम् । १३ उच्छ्वासान्विष्टान्तं यथा भक्ति तथा । सप्तकटमिति यावत् । १४ विलोकसृष्टिः ।

तमः प्राचो दिशं जेन्तु कृतोदयोऽपि विशांपतिः । प्रथयौ प्राचुर्यो भन्ना चक्ररत्नमनुवज्ञन ॥८८॥  
 चक्रमस्य उपलक्ष्योऽभिन्नं प्रथाति सम् तुर्योऽप्तीः । सुर्योऽप्तीकृतो विशांपतिः स्व द्विभवते भोग्यरम् ॥८९॥  
 चक्रानुवायि तद्वेजे<sup>१</sup> निर्धीनामीविशुर्वेलम् । गुरोरिच्छानुवतिंणु सुनीनामिव मण्डपम् ॥९०॥  
 दण्डरत्नं पुरुषाय सेनानीश्चण्डीरभूत । स्थगुटानि<sup>२</sup> समीकृतं त्रृप्तलकुर्वाण्ययवान्तः ॥९१॥  
 अब्रण्णा दण्डरत्नं पथि राजपथीकृते । यथेषु प्रथयौ वैन्यं कविदप्यहस्यलद्वानि ॥९२॥  
 ततोऽप्तनि विशामीशः सोऽप्यश्चछारही श्रियम् । दिशां प्रसाधनी कीर्तिमामीशामिव निर्मलाम् ॥९३॥  
 सरामि केगलामोऽसुद्रमस्ति शरच्छुरः । मुम्बायितानि संप्रेश्य सोऽप्यनन्ददर्धीशिता ॥९४॥  
 य हंसात् सरयो तीरेष्वपश्यत् कृतशिवज्ञनान्<sup>३</sup> । मृगालयोभसंतुष्टान्<sup>४</sup> शरदः पुष्टकानिव ॥९५॥  
 नद्वद्वा मृणालमुत्तुष्य हंसो हंस्यै समर्पयन् । राजहंसस्य<sup>५</sup> हंसस्य<sup>६</sup> महतीं धृतिमान्ते ॥९६॥  
 सर्वीत्यै वीचिवंहृदामपश्यन् परितः<sup>७</sup> सरः । कोको<sup>८</sup> कोहृष्यमानोऽस्य मनसः प्रीतिमानोत् ॥९७॥  
 हस्युत्तमज्ञिनेऽज्ञलकरजःपिङ्गरितो निजाम् । वृश्च विभूतो<sup>९</sup> सोऽप्यश्चच्चक्रवाकीविशङ्कया ॥९८॥  
 सर्वीत्यैवर्द्धाभृतविग्रहां कोककामिनीम् । व्यामोहादनुधावन्तं स<sup>१०</sup> जरद्वेसमैश्वत ॥९९॥  
 नदीपुलिपद्मेष्ठु हंसस्यारभहारिषु । शयनेविवरं तस्यामीद् धृतिः शुचिमसीमसु<sup>११</sup> ॥१००॥

तदनन्तर जिन्होने सबसे पहले पूर्व दिशाको जीतनेका उद्योग किया है । ऐसे महाराज भरतने चक्ररत्नके पीछे-पीछे जाते हुए पूर्वकी ओर मुख कर प्रथाण किया ॥८८॥ सूर्यमण्डल-के समान देवीप्यमान और चारों ओरसे देव लोगोंके द्वारा घिरा हुआ जाऊरुल्यमान चक्ररत्न आकाशमें भरतेश्वरके आगे-आगे चल रहा था ॥८९॥ जिस प्रकार मुनियोंका समूह गुरुकी इच्छानुसार चलता है उसी प्रकार निधियोंके स्वामी महाराज भरतकी वह सेना चक्ररत्न-की इच्छानुसार उसके पीछे चल रही थी ॥९०॥ दण्डरत्नको आगे कर सेनापति सबसे आगे चल रहा था और वह ऊचे-नीचे दुर्गम वनस्थलोंको लीलापूर्वक एक-सा करता जाता था ॥९१॥ आगे चलनेवाला दण्डरत्न सब सार्गको राजमार्गके समान विस्तृत और सम करता जाता था इसलिए वह सेना किसी भी जगह स्खलित न होती हुई इच्छानुसार जा रही थी ॥९२॥ तदनन्तर मार्गमें प्रजापति-भरतने दिशाओंको अलंकृत करनेवाली अपनी कीर्तिके समान निर्मल वरदकृतुकी शोभा देखी ॥९३॥ शरदकृतुलपी लक्ष्मीके मुखके समान जो सरोवर कमल-की सुगन्धि छोड़ रहे थे उन्हें देखकर महाराज भरत बहुत ही प्रसन्न हुए ॥९४॥ सरोवरोंके किनारेपर मधुर शब्द करते हुए और मृणालहणी मवखन खाकर पुष्ट हुए हंसोंको भरतेश्वर-ने शरदकृतुके पुत्रोंके समान देखा ॥९५॥ जो हंस अपनी चोंचसे मृणालको उठाकर हंसीके लिए दे रहा था उसने, सब राजाओंमें श्रेष्ठ इन भरत महाराजके हृदयमें बड़ा भारी सम्प्रोप उत्पन्न किया था ॥९६॥ जो चक्रवा लहरोंसे रुकी हुई चक्रीको न देखकर सरोवरके चारों ओर शब्द कर रहा था उसने भी भरतके मनकी प्रीतिको अत्यन्त विस्तृत किया था ॥९७॥ एक तरण हंसने कमल केशरकी धूलिसे पीली हुई अपनी हंसीको चक्री समझकर धूलसे छोड़ दिया था महाराज भरतने यह भी देखा ॥९८॥ लहरोंसे जिसका शरीर सफेद हो गया है ऐसी चक्रीको हंसी समझकर और उसपर मोहित होकर एक बूढ़ा हंस उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा था - महाराज भरतने यह भी देखा ॥९९॥ जिनकी सीमाएं अत्यन्त पवित्र हैं जो हंस तथा

१ पूर्वम् । २ परिवृत् ल० । ३ सूर्यविम्बम् । ४ सद्वेजे ल० । ५ निम्नोन्नतानि । ६ शिङ्गिजतान् प०, द०, ल० । ७ धीरवनीत । स्वप्योनवनीहमित्यर्थः । ८ राजश्चेष्ठस्य । ९ हृदये । १० प्रियाम् । ११ सरसः समानात् । १२ भृशं स्वरं कुबणिः । १३ तरणहंसेन । १४ अवज्ञायाम् । १५ चक्री । १६ शुचित्वस्यावधिप् ।

‘रोधोलताशिखोत्सृष्टपुण्यप्रकटशोभिनीः । सरित्तीरभुवोऽदर्शजस्तोच्छासतरकिञ्चतः ॥ १०१ ॥  
 लतालयेषु रस्येषु रतिरस्य प्रपश्यतः । स्वधं गताप्त्यसूनीवरचितप्रस्तरेष्वभूत् ॥ १०२ ॥  
 कवचिलतागृहान्तःस्थधन्द्रकान्तशिलाश्रितान् । स्वयशोगानसंसक्तान् किञ्चरान् प्रभुर्भूत ॥ १०३ ॥  
 वदचिलसाः प्रसुनेषु विलीनमधुपाकर्णीः । विलोक्य लक्ष्मकेवीकां लक्ष्मार प्रिययोशिताम् ॥ १०४ ॥  
 सुमनोवर्णमातेनुः प्रीत्येवास्याधिमूर्धजस्मै । पदनाधूतशाखामाः प्रफुल्ला मार्गशाश्विनः ॥ १०५ ॥  
 सच्छायान् सफलान् तुरुगान् सर्वसंभोग्यसंपदः । मार्गद्रुमान् समद्राशीत् स नृपाननुकर्वतः ॥ १०६ ॥  
 सरस्तीरभुवोऽपश्यत् सरोजरजसा ततः । सुवर्णकुट्ठैर्माशक्तामप्यन्यहृदि सम्वर्णीः ॥ १०७ ॥  
 वलरेणुभिराहुदे दोषांमन्यै नमस्यसौ । करुणं लदत्तीं वीक्षाजक्रे चक्राहुकामिनीम् ॥ १०८ ॥  
 गवां गणानथापश्यत्सूर्यद्वारप्यचारिणः । क्षीरमेघानिकाजञ्चं क्षरस्तीरप्लुतान्तिकान् ॥ १०९ ॥  
 सौरभेष्यान् स शङ्खाग्रस्युत्त्यातस्यलाभुजान् । सृष्टालानि यशोर्याव विरतोऽपश्यत्तुन्मदान् ॥ ११० ॥

सारस आदि पक्षियोंसे मनोहर हैं, और जो बिछी हुई शाथ्याओंके समान जान पड़ते हैं ऐसे नदी-किनारेके प्रदेशोंपर महाराज भरतको भारी सन्तोष हुआ ॥ १०० ॥ जो किनारेपर लगी हुई लताओंके अग्रभागसे गिरे हुए फूलोंके समूहसे सुशोभित हो रही हैं और जो जलके प्रवाहसे उठी हुई लहरोंसे व्याप्त हैं ऐसी नदियोंके किनारेकी भूमि भी भरतेश्वरने बड़े प्रेमसे देखी थी ॥ १०१ ॥ जिनमें अपने-आप गिरे हुए फूलोंके समूहसे शाथ्याएँ बनी हुई हैं ऐसे रमणीय लतागृहोंको देखते हुए भरतको उत्तम भारी प्रीति उत्पन्न हुई थी ॥ १०२ ॥ उन भरत महाराज-ने कहीं-कहींपर लतागृहोंको भीतर पड़ी हुई चम्द्रकान्त मणिकी शिलाओंपर बैठे हुए और अपना यशगान करनेमें लगे हुए किनारोंको देखा था ॥ १०३ ॥ कहीं-कहींपर लताओंके फूलोंपर बैठे हुए भगरोंके अग्रहोंको देखकर जिनकी चौटियां ढोली होकर नीचेकी ओर लटक रही हैं ऐसी प्रिय स्त्रियोंका स्मरण करता था ॥ १०४ ॥ जिनकी शाखाओंके अग्रभाग वायुसे हिल रहे हैं ऐसे फूले हुए मर्त्तक वृक्ष मानों बड़े प्रेमसे ही भरत महाराजके मस्तकपर फूलोंकी वर्णी कर रहे थे ॥ १०५ ॥ वह भरत मार्गके दोनों ओर लगे हुए जिन वृक्षोंको देखते जाते थे वे वृक्ष राजाओंका अनुकरण कर रहे थे क्योंकि जिस प्रकार राजा सच्छाय अर्थात् उत्तम कान्तिसे सहित होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी सच्छाय अर्थात् उत्तम छांहरीसे सहित थे, जिस प्रकार राजा लाहूल अर्थात् अनेक प्रकारको आयसे सहित होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष सफल अर्थात् अनेक प्रकारके फूलोंसे सहित थे, जिस प्रकार राजा तुंग अर्थात् उदार प्रकृतिके होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी तुंग अर्थात् ऊँचे थे और जिस प्रकार राजाओंकी सम्पदाएँ सबके उपभोगमें आती हैं उसी प्रकार तुंग वृक्षोंकी फल पृष्ठ पल्लव आदि सम्पदाएँ भी सबके उपभोगमें आती थीं ॥ १०६ ॥ जो सरोवरोंके किनारेकी भूमियाँ कमलोंकी परागसे व्याप्त हो रही थीं और इसीलिए जो पथिकोंके हृदयमें ‘वया यह मुवर्णकी धूलियोंसे व्याप्त हैं,’ इस प्रकार शंका कर रही थीं, उन्हें भी महाराज भरत देखते जाते थे ॥ १०७ ॥ सेनाकी धूलिसे भरे हुए और इसीलिए रात्रिके समान जान पड़नेवाले आकाशमें रात्रि समझकर रोती हुई चक्रवीको देखकर महाराज भरतके हृदयमें बड़ी दया उत्पन्न हो रही थी ॥ १०८ ॥ कुछ आगे चलकर उन्होंने जंगलोंकी गोचरभूमिमें चरते हुए गायोंके समूह देखे, वे गायोंके समूह दूधके मेघोंके समान निरन्तर झरते हुए दूधसे अपनी सभोपवतीं भूमिको तर कर रहे थे ॥ १०९ ॥ जिन्होंने अपने सींगोंके

१ तटलता । २ ‘कूलं रोथद्य तीरश्च तटं त्रिप्’ इत्यभियानात् । ३ केशेषु । ४ रजसा-ल० ।  
 ५ आत्मानं दोषा रात्रि मन्यत्व इति । ६ किंश्चाविशेषणानां नपुसकत्वं द्वितीया वक्तव्या । ७ आलुलोके ।  
 ८ गोगम्यवन् ।

वाल्मीकीरसंपोषादिव निर्मलविग्रहम् । सोऽपश्यत्तापलस्येव परा कोटि कृतोरप्लुतिम् ॥१११॥  
सं पक्षकणिशानन्त्रकलमश्चेत्त्रमैक्षत । नौदक्ष्यं फलयोगीति नृपां वक्षुमिवीष्टतम् ॥११२॥  
वप्रान्तं भुवसाग्रातुमिवीष्टलमिकामतात् । सं कैदायेषु<sup>३</sup> कलमान् वीक्ष्यानन्दं परं यदौ ॥११३॥  
फलाननान् स्तम्बकर्णान् सोऽपश्यद् वप्रभुमिषु । स्वजमहेतुन् केदाराग्रमस्यत इवादरात् ॥११४॥  
आगीतपथसः प्राज्यक्षीरा लोकोपकारिणीः । पृथस्थिनीरिवापश्यद् प्रसूताः शालिसंपदः ॥११५॥  
‘अवतस्त्रितर्वीलाल्लाज्ञाः कजरेणुश्रितस्तनीः । इशु दृढभूतोऽपश्यच्छालीङ्गोकुर्वत्ताः<sup>४</sup> स्त्रियः ॥११६॥  
हारिणीतस्वनाकृष्टेष्टिवा हंसमण्डलैः । शालिगोप्यो दशीरस्य सुदं तेनुर्वधृतिकाः ॥११७॥  
कृताध्वगोपरीधानि गीतानि दधतीः सतीः । स्वस्तावत्तनाः कणिकौः शालिगोपीदंददां सः ॥११८॥  
सुगन्धिकुखनिःश्वासा अमरसाकुलीकृताः । मनोऽस्य जहुः शालीनां पालिकाः<sup>५</sup> कुलवालिकाः ॥११९॥  
उपाख्यं<sup>६</sup> प्रकृतेष्टथान् क्षेत्रिणः परिधावतः । शलोपरीष्वायस्तानैऽक्षतासौ<sup>७</sup> सकौतुकम् ॥१२०॥

अग्रभागसे स्थलकमल उखाड़ डाले हैं और जो अपने यशके समान उनकी मृणालोंको जहाँ-  
तहाँ फेंक रहे हैं ऐसे उनमत्त बैल भी भरत महाराजने देखे थे ॥११०॥ दूधसे पालन-पीषण  
होनेके कारण ही मानो जिनका निर्मल-सफेद शरीर है, जो चंचलताकी अन्तिम सीमाके समान  
जान पड़ते हैं और जो बार-बार उछल-कूद रहे हैं ऐसे गायोंके बछड़ोंके समूह भी भरतेश्वर  
देखते जाते थे ॥१११॥ भरत महाराज पकी हुई बालोंसे नम्रीभूत हुए धानोंके खेत मी देखते  
जाते थे, उस समय वे खेत ऐसे मालूम होते थे मानो ‘लोगोंको उद्घतपना फल देनेवाला नहीं  
है’ यही कहनेके लिए तैयार हुए हों ॥११२॥ जो खेतके भीतर उत्पन्न हुए कमलोंको सूँधनेके  
लिए ही मानो नम्रीभूत हो रहे हैं ऐसे खेतोंमें लगे हुए धानके पौधोंको देखकर भरत महाराज  
परम आनन्दको प्राप्त हो रहे थे ॥११३॥ उन्होंने खेतकी भूमियोंमें फलोंके भारसे झुके हुए धानके  
उन पौधोंको भी देखा था जो कि अपने जन्म देनेके कारण खेतोंको बड़े आदरके साथ नमस्कार  
करते हुए से जान पड़ते थे ॥११४॥ उन्होंने जहाँ-तहाँ फैलो हुई धानरूप सम्पदाओंको  
गायोंके समान देखा था, क्योंकि जिस प्रकार गायें जल पीती हैं उसी प्रकार धान भी जल पीते  
है ( जलसे भरे हुए खेतोंमें पैदा होते हैं ) जिस प्रकार गायोंमें उत्तम दूध भरा रहता है उसी  
प्रकार धानोंमें भी पकनेके पहले दूध भरा रहता है और गायें जिस प्रकार लोगोंका उपकार  
करती हैं उसी प्रकार धान भी लोगोंका उपकार करते हैं ॥११५॥ जिन्होंने नालसहित  
कमलोंको अपने कर्णका आभूषण बनाया है, कमलकी पराग जिनके स्तनोंपर पड़ रही है, जो  
हाथमें ईलका दण्डा लिये हुए हैं और जो धान रखानेके लिए ‘छो-छो’ शब्द कर रही हैं ऐसी  
स्त्रियोंको भी उन्होंने देखा था ॥११६॥ जो अपने मनोहर गीतोंके शब्दोंसे खिचकर आये हुए  
हंसोंके समूहोंसे घिरी हुई हैं ऐसी धानकी रक्षा करनेवाली नवीन स्त्रियाँ भरत महाराजके नेत्रोंका  
आनन्द बढ़ा रही थीं ॥११७॥ जो पथिकोंको रोकनेवाले सुन्दर गीत गा रही हैं और जिन्होंने  
धानकी बालोंसे कर्णभूषण बनाकर धारण किये हैं ऐसी धानकी रखानेवाली स्त्रियोंको भरतने  
थड़े प्रेमसे देखा था ॥११८॥ जो अपने मुखकी सुगन्धित निःश्वाससे आये हुए भ्रमरोंसे  
व्याकुल हो रही हैं ऐसी धान रखानेवाली सुन्दर लड़कियाँ महाराज भरतके मनको हरण  
कर रही थीं ॥११९॥ जो सेनाके लोगोंसे मार्गके समीपवर्ती खेतोंकी रक्षा करनेके लिए उनके

१ भूवः अन्तः अन्तर्भुवम् । २ -मेवाननान् ल०, इ०, प० । ३ सस्यक्षेत्रसमूहेषु । ४ धनूः । ५ स  
पतसित-इ० । ६ उत्कषणि् कुर्वतीः । ७ कुलवालिकाः ल०, इ०, द० । ८ मार्गसमीये । ९ कृत ।  
१० क्लेशितान् ।

उपशस्यभुत्रोऽद्वाक्षीश्चिगमानभिलो विभुः । १ केदारलावैराकीर्णः स भास्यद्वयः लूषीवलैः ॥१२१॥  
सोऽपश्यक्षिगमोपान्ते पथः<sup>१</sup> संस्यानकर्दमान्<sup>२</sup> । प्रव्यतर्गोसुरक्षोदस्थपुष्टानतिसङ्कटान् ॥१२२॥  
निशमाप्त् परितोऽपश्यद् ग्रामसुखान्<sup>३</sup> महाबलान्<sup>४</sup> । पथस्तिवन्ते जनैः सेष्यान्<sup>५</sup> महारामतस्तपि ॥१२३॥  
ग्रामान् कुकुटसम्पाप्यान् सोऽत्यगाद् वृत्तिस्तिर्वृतान् ।<sup>६</sup> कोशात्कीलतापुक्ष्यगिताभिरितोऽसुतः ॥१२४॥  
कुटीपरिसरेष्वस्य द्वितिरालीन् प्रथस्यतः । फलपुष्पानता बल्लीः प्रसवाक्ष्याः<sup>७</sup> सर्तीरपि ॥१२५॥  
चोषितो<sup>८</sup> निष्कमाला निर्वल्येष्व विभूषिताः । पश्यतोऽस्य मनो जाह्नवीमीणाः<sup>९</sup> संश्रिता सृतीः<sup>१०</sup> ॥१२६॥  
हृष्यहृगवीनकलशीर्द्वामपि निहित्रैः<sup>११</sup> । ग्रामेषु फलवेदैऽस्य तमद्वाक्षुर्महत्तराः ॥१२७॥  
सती विग्रहसुखलक्ष्य सोऽध्यानं पृतनावृतः । गह्यामुपासदद् वीरः<sup>१२</sup> प्रथाणीः<sup>१३</sup> कलिर्थिरपि ॥१२८॥  
हिमवद्विश्वा पूज्यो<sup>१४</sup> सतामालिन्दुगमिनीम् । शुचित्रवाहामाकल्पवृत्ति कीर्तिमिकामनः ॥१२९॥  
शाकरीप्रेक्षणासुद्वातरद्वगच्छ्रुविनतंनाम् । वनराजीष्वरुच्छाटीपरिधानां वधुमित्र ॥१३०॥

चारों ओर दीड़ रहे हैं और सेनाके लोगोंकी जबरदस्ती करनेपर खेदखिल हो रहे हैं, ऐसे खेतोंके मालिक किसानोंको भी भरतेश्वरने बड़े कौतुकके साथ देखा था ॥१२०॥ जो सेत काटनेवाले इधर-उधर घूमते हुए किसानोंसे व्याप्त हो रही हैं ऐसी प्रत्येक ग्रामोंके चारों ओरकी निकट-वर्ती भूमियोंको भी भरतेश्वरने देखा था ॥१२१॥ जो स्पष्ट दिखनेवाले गायोंके खुरोंके चिह्नोंसे ऊँचे-नीचे हो रहे हैं और जो अत्यन्त सवाड़े हैं ऐसे कुछ-कुछ कोचड़ेसे भरे हुए गाँवके सभीपवर्ती मागोंको भी भरत महाराज देखते जाते थे ॥१२२॥ उन्होंने ग्रामोंके चारों ओर खड़े हुए महाबलवान् गाँवके मुखिया लोगोंको देखा था तथा पक्षी तियंच और मनुष्योंके द्वारा सेवा करने वाले बड़े-बड़े बगीचोंके वक्ष भी देखे थे ॥१२३॥ जो जहाँ-तहाँ लौकी अथवा तुरईकी लताओंके फूलोंसे ढकी हुई वाड़ियोंसे घिरे हुए हैं और जिनपर एकसे दूसरेपर मुरगा भी उड़कर जा सकता है ऐसे गाँवोंको वे दूसरे ही छोड़ते जाते थे ॥१२४॥ ज्ञोंपड़ियोंके समीपमें फल और फूलोंसे झुकी हुई लताओंको तथा पुत्रोंसे युक्त सती स्त्रियोंको भी देखते हुए महाराज भरत-को बड़ा आनन्द आ रहा था ॥१२५॥ जो सुवर्णकी मालाओं और कड़ोंसे अलंकृत हैं तथा वाड़ियोंकी ओटमें खड़ी हुई हैं ऐसी गाँवोंकी स्त्रियाँ भी देखनेवाले भरतका मन हृण कर रही थीं ॥१२६॥ गाँवोंके बड़े-बड़े लोग धीके धड़े, दहीके पात्र और अनेक प्रकारके फल भेंट कर उनके दर्शन करते थे ॥१२७॥

तदनन्तर श्रीरघुर भरत सेनासहित कितनी ही मंजिलों-द्वारा लम्बा मार्ग लय कर गंगा नदीके समीप जा पहुँचे ॥१२८॥ वहाँ जाकर उन्होंने गंगा नदीको देखा, जो कि उनकी कीर्तिके समान सुशोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार उनकी कीर्ति हिमवान् पर्वतसे धारण की गयी थी उसी प्रकार गंगा नदी भी हिमवान् पर्वतसे धारण की गयी थी, जिस प्रकार उनकी कीर्ति पूज्य और उत्तम थी उसी प्रकार गंगा नदी भी पूज्य तथा उत्तम थी, जिस प्रकार उनकी

१ ग्रामान्तभुकः । “ग्रामान्त उपशस्य स्यात्” इत्यभिधानात् । २ केदारान् लुनतीति केदारलावास्तः ।  
३ मार्गान् । ४ ईषदाद्रकर्दमान् । ५ ग्राममहत्तरान् । ६ महाकलान् ८०, ९० । ७ वयस्तिरोजनैः  
ल० । क्षीरोपायनान् क्षीरिणहच । ८ महाग्राम-इत्यपि कवचित् । ९ पटोरिका । ‘कोशात्की  
ज्योतिस्तिरायामपामार्गेष्पि सा भवेत्’ इत्यभिधानात् । १० गृह । ११ पुत्रैरुद्धाम । १२ सुवर्णमालाभिः ।  
१३ ग्रामे भवाः । १४ ‘संवृतावृतीः संसृतासृतीः’ इत्यपि कवचित् । १५ वृत्तकुम्भैः । १६ भाजनविधेषैः ।  
१७ – सदयूषीरः ८० । १८ कृतिपर्गैः । १९ सती-ल० । २० मीननेत्राम् ।

विस्तीर्णेऽनसंभोग्यैः कृजदंसालिमेत्वलैः । तद्ग्रन्थसनैः काम्ता<sup>१</sup> तुलिनैर्जनैरिव ॥ ३३१ ॥  
 'लोलंमिहस्तमिर्दूषक्षिमालाकलस्वनैः । किमयालयितुं यत्नं तन्त्रस्ती वा तटदमैः ॥ ३३२ ॥  
 शर्वा वैन्येमदन्तास्ती रोधोजघनवतिनीः । स्त्रवतीमविभास्येव लसदृमिदुक्तुकैः ॥ ३३३ ॥  
 रोमराजीमिवानीलो वनराजीं विवृण्वस्तीम् । 'सिद्धमानामिवादत्यक्षसनामिसुदन्वते ॥ ३३४ ॥  
 विलोलवीचिसंवहादुत्थिता पत्तावलिम् । पत्ताकामिव विभाणां लवधा सर्वपगाजयात् ॥ ३३५ ॥  
 समांसमीनां<sup>२</sup> पर्याप्तपयसं धीरनिःस्वनाम् । जगती पावनी मान्यां हस्तस्ती गोमसहितकाम् ॥ ३३६ ॥  
 गुरुप्रवाहप्रसृतां तीर्थकामैरुपालिताम् । गम्भीरशब्दसंभूति जैनी श्रुतिमिवामकाम् ॥ ३३७ ॥

कीर्ति समुद्र तक गमन करनेवाली थी उसी प्रकार गंगा नदी भी समुद्र तक गमन करनेवाली थी, जिस प्रकार उनकी कीर्तिका प्रवाह पवित्र था उसी प्रकार गंगा नदीका प्रवाह भी पवित्र था और जिस प्रकार उनकी कीर्ति कल्पान्त काल तक टिकनेवाली थी उसी प्रकार गंगा नदी भी कल्पान्त काल तक टिकनेवाली थी । अथवा जो गंगा किसी स्त्रीके समान जान पड़ती थी, क्योंकि मछलियाँ ही उसके नेत्र थे, उठती हुई तरंगे ही भौंहोंका नचाना था और दोनों किनारोंके बनकी पंचित ही उसकी साड़ी थी । जो स्त्रियोंके जघन भागके समान सुन्दर किनारों-से सहित थी, उसके बे किनारे बहुत ही बड़े थे । शब्द करती हुई हँसोंकी माला ही उनकी करधनी थी और लहरें ही उनके बस्त्र थे ।—चंचल लहरोरूपी हाथोंके द्वारा उड़ाये हुए पक्षि-समूहोंके मनोहर शब्दोंसे जो ऐसी जान पड़ती थी मानो किनारेके वृक्षोंके साथ कुछ वार्तालाप करनेके लिए प्रयत्न ही कर रही हो ।—जो अपनी छलकती हुई लहरोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो तटरूपी नितम्ब प्रदेशपर जंगली हाथियोंके द्वारा किये हुए दाँतोंके धावोंको समुद्ररूप पतिके डरसे शोभायमान लहरोरूपी बस्त्रमें छूँक ही रही हो । जो दोनों ओर लगी हुई हरी-भरी बनश्चेणियोंके प्रकट करने तथा साफ-साफ दिखाई देनेवाली भौंबरोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो किसी स्त्रीकी तरह अपने समुद्ररूप पतिके लिए रोमराजि और नाभि ही दिखला रही हो ।—जो चंचल लहरोंके संघटनसे उड़ी हुई पक्षियोंकी पंचितको धारण कर रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो सब नदियोंको जीत लेनेसे प्राप्त हुई विजयपताकाको ही धारण कर रही हो । जो किसी उत्तम गायकी हँसी करती हुई-सी जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार उत्तम गाय समांस-मीना अर्थात् प्रति वर्ष प्रसव करनेवाली होती है उसी प्रकार वह नदी भी समांस-मीना अर्थात् परिपुष्ट मछलियोंसे सहित थी, जिस प्रकार उत्तम गायमें पर्याप्त पय अर्थात् दृध होता है उसी प्रकार उस नदीमें भी पर्याप्त पय अर्थात् जल था, जिस प्रकार उत्तम गाय गम्भीर शब्द करती है उसी प्रकार वह भी गम्भीर कल-कल शब्द कर रही थी, उत्तम गाय जिस प्रकार जगत्को पवित्र करनेवाली है उसी प्रकार वह भी जगत्को पवित्र करनेवाली थी और उत्तम गाय जिस प्रकार पूज्य होती है उसी प्रकार वह भी पूज्य थी । अथवा जो जिनवाणीके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार जिनवाणी गुरु-प्रवाह अर्थात् आचार्य परम्परासे प्रसृत हुई है उसी प्रकार वह भी गुरुप्रवाह अर्थात् बड़े भारी जलप्रवाहसे प्रसृत हुई थी-प्रवाहित हुई थी । जिस प्रकार जिन वाणी तीर्थ अर्थात् धर्मको इच्छा करनेवाले पुरुषों

१ काम्ता: ल० । २ दालोमिन० । ३-र्वनेभ: ल० । ४ तीरु । ५ प्रदर्शयन्तीम् । ६ मांसभक्षक-मीनसहिताम् । प्रतिवर्ष गर्भ गृहणन्तीम् । 'समांसमीना सा यैव प्रतिवर्षं प्रकृतते' । ७ प्रशस्तगाम् । गोमचिकाम् ल०, इ०, इ० ।

राजहंसैः १ कृतोपास्यामलकृच्छ्रा किञ्चतुष्यति म् ॥ १४३॥  
 विलसत्यश्च संभूता॒ जनतात्मदाचिनीम् । जगद्भोग्यामिवाभीयां श्रियमाचतिशालिनीम् ॥ १४४॥  
 विजयार्थतदाक्रामिति॑ कृतक्षणाघां॒ सुरंहसम्॑ । अभग्नप्रसरां दिष्यो विजामिव पताकिनीम् ॥ १४५॥  
 व्यालोलोमिकरास्तुष्टैः स्वर्तीरवनपादैः । दधन्मिरड्कुरोद्भेदै माश्रितां कामुकैरिव ॥ १४६॥  
 रोद्रोलतालयासीनान्॒ स्वेच्छया सुखम्पतीन् । हसन्तीमिव सुख्वानैः॑ शीकरोत्पैर्विसारिभिः ॥ १४७॥  
 किञ्चराणां कलशाणैः सगानैरुपर्वीणितैः । सेष्यवर्द्धत्मभूमागलतामण्डपमाहनाम् ॥ १४८॥

के द्वारा उपासित होती है उसी प्रकार वह भी तीर्थ अर्थात् पवित्र तीर्थ-स्थानकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके द्वारा उपासित होती अथवा किनारेपर रहनेवाले मनुष्य उसमें रनान आदि किया करते थे, जिस प्रकार जिनवाणीसे गम्भीर शब्दोंकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार उसमें भी गम्भीर अर्थात् बड़े जोरके शब्दोंकी उत्पत्ति होती थी, और जिस प्रकार जिनवाणी मल अर्थात् पूर्वागर विरोध आदि दोषोंसे रहित होती है उसी प्रकार वह भी मल अर्थात् कीचड़ आदि गौदले पदार्थोंसे रहित थी ।—अथवा जो अपनी ( भरतकी ) विजयलक्ष्मीके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार विजयलक्ष्मीकी उपासना राजहंस अर्थात् बड़े-बड़े राजा लोग करते थे उसी प्रकार उस नदीकी भी उपासना राजहंस अर्थात् एक प्रकारके हंसविशेष करते थे, जिस प्रकार जयलक्ष्मीका कोई उल्लंघन—अनादर नहीं कर सकता था उसी प्रकार उस नदोंका भी कोई उल्लंघन नहीं कर सकता था, जयलक्ष्मीका आयति अर्थात् भविष्यत्काल जिस प्रकार स्पष्ट प्रकट था इसी प्रकार उसकी आयति अर्थात् लम्बाई भी प्रकट थी, जयलक्ष्मी जिस प्रकार स्फीत अर्थात् विस्तृत थी उसी प्रकार वह भी विस्तृत थी और जयलक्ष्मी जिस प्रकार समुद्र तक गयी थी उसी प्रकार वह गंगा भी समुद्र तक गयी हुई थी । अथवा जो भरतकी राज्यलक्ष्मीके समान मालूम होती थी क्योंकि जिस प्रकार भरतकी राज्यलक्ष्मी शोभायमान पद्म अर्थात् पद्म नामकी निधिसे उत्पन्न हुई थी उसी प्रकार वह नदी भी पद्म अर्थात् पद्म नामके सरोवरसे उत्पन्न हुई थी, भरतकी राज्यलक्ष्मी जिस प्रकार जनसमूहको आनन्द देनेवाली थी उसी प्रकार वह भी जनसमूहको आनन्द देनेवाली थी, भरतकी राज्यलक्ष्मी जिस प्रकार जगत्‌के भोगने योग्य थी उसी प्रकार वह भी जगत्‌के भोगने योग्य थी, और भरतकी लक्ष्मी जिस प्रकार आयति अर्थात् उत्तरकालसे मुशोभित थी उसी प्रकार वह आयति अर्थात् लम्बाईसे मुशोभित थी ।—अथवा जो भरतकी सेनाके समान थी, क्योंकि जिस प्रकार भरतकी सेना विजयार्थं पर्वतके तटपर आक्रमण करनेसे प्रशंसाको प्राप्त हुई थी उसी प्रकार वह नदी भी विजयार्थं पर्वतके तटको आक्रान्त करती हुई बही है । जिस प्रकार भरतकी सेनाका वेग तेज था उसी प्रकार उस नदीका वेग भी तेज था । जिस प्रकार भरतकी सेनाके फैलावको कोई नहीं रोक सकता था उसी प्रकार उसके फैलावको भी कोई नहीं रोक सकता था और भरतकी सेना जिस प्रकार दिव्य अर्थात् सुन्दर थी उसी प्रकार वह नदी भी

१ सेवाम् । २ विवृतायतीए ल० । ३ पथल्दे जाताम् । पक्षे निधिविशेषजाताम् । ४ आक्रमण ।  
 ५ इलाध्यां ल०, द० । ६ सुवेगाम् । ७ रोमाङ्गम् । ८ हीरलतागृहस्थितान् । ९ सुख्वानैः  
 ल० । स्वस्वानैः इ० ।

भारिभिः किञ्चरेत्यीतैराहूना हरिणाङ्गनाः । दधनीं तीरकच्छेषु प्रसारितगत्यूग्नाः ॥ १४४ ॥  
हयैः सप्तासप्तारवैः पुलिमैर्दिव्ययोषिताम् । नितम्यानि सकाञ्ज्ञानि हसन्तीमिव विस्तृतैः ॥ १४५ ॥  
चतुर्दशमिरन्वितां सहस्रैरविद्ययोषिताम् । <sup>३</sup> अद्वीर्चानामिवार्द्धान्विं शाहूना परिम्भणे ॥ १४६ ॥  
दृष्ट्याक्रिष्णतसंशोभां जग्हर्वामैश्चन प्रमुः । हिमरद्विगिरिणाम्भोद्येः प्रदिनामिव कण्ठिकाम् ॥ १४७ ॥

## मालिनीषृज्ञम्

शरदुपौ हितकार्मित प्रवृत्तकान्तास्त्राजी-  
विरचितपश्चिनां सैकतारेदरम्याम् ।  
युवतिमिव गमीरावर्तनामिं प्रपद्यन्  
प्रमदमसुलमृहे इमाचतिः स्वास्त्रवन्तीम् ॥ १४८ ॥  
सरसिज्जमकान्दोद्यमस्त्रिवराधुतरोधो-  
उत्तमिष्टयमध्यदां दोलनोद्यमाम्याः ।  
असकृदमरसिम्बोराधुमामस्तरह्या-  
नहुत तुपवधूलामध्यव्येदं सर्मारः ॥ १४९ ॥

सुन्दर थी । जो चंचल लहरोंरूपी हाथोंसे स्पर्श किये गये और अंकुररूपी रोमांचोंको धारण किये हुए अपने किनारेके बनके वृक्षोंसे आथित थी और उससे ऐसी माझूम होती थी मानो कासी जनोंसे आश्रित कोई स्त्री ही हो । — जो जलकणोंसे उत्पन्न हुए तथा चारों ओर फैलते हुए मनोहर शब्दोंसे अपनी इच्छानुसार किनारेपर के लतागृहोंमें बढ़े हुए देव-देवांगनाओंकी हँसी करती हुई-सी जान पड़ती थी । किन्नरोंके मधुर शब्दवाले गायन तथा वीणाकी झनकारसे सेवनीय किनारेकी पूथिकोपर बने हुए लतागृहोंसे जो बहुत ही अधिक सुशोभित हो रही थी । — किन्नर देवोंके मनोहर गानोंसे बुलायी हुई और सुखसे ग्रीवाको लम्बा कर बैठी हुई हरिणियों-को जो अपने किनारेकी भूमिपर धारण कर रही थी । — जिनपर सारस पक्षी कतार बाँधकर मनोहर शब्द कर रहे हैं ऐसे अपने बड़े-बड़े सुन्दर किनारोंसे जो देवांगनाओंके करधनीसहित नितम्बोंकी हँसी करती हुई-सी जान पड़ती थी । — जिन्होंने आलिंगन करनेके लिए तरंगरूपी भुजाएँ ऊपरकी ओर उठा रखी हैं ऐसी सखियोंके समान जो चौदह हजार सहायक नदियोंसे सहित है । — इस प्रकार जिसकी शोभा प्रकट दिखाई दे रही है और जो हिमवान् पर्वतके ढारा समुद्रके लिए भेजी हुई कण्ठमालाके समान जान पड़ती है ऐसी गंगा नदी महाराज भरतने देखी ॥ १२९—१४७ ॥ शरदऋतुके ढारा जिसकी कान्ति बढ़ गयी है, किनारेके बनोंकी पंचित ही जिसके बस्त्र हैं, जो बालूके टोलेरूप नितम्बोंसे बहुत ही रमणीय जान पड़ती है, गम्भीर भूंवर ही जिसकी नाभि है और इस प्रकार जो एक तरण स्त्रीके समान जान पड़ती है ऐसी गंगा नदीको देखते हुए राजा भरतने अनुपम आनन्द धारण किया था ॥ १४८ ॥ जो कमलोंकी मकरन्दसे सुगम्भित है, कुछ-कुछ कमिगत हुए किनारेके बनके पल्लवोंके धीरे-धीरे हिलनेसे जिसका मन्दपना प्रकट हो रहा है और जो गंगा नदीकी तरगोंको बार-बार हिला रहा

<sup>१</sup> तीरथनेषु । <sup>२</sup> प्रसारितो भूत्वा सुलातिशयेनाशो गलदगलो यामां ताः । <sup>३</sup> सखीनाम् ।  
<sup>४</sup> वीचिकाहूनां ल० । <sup>५</sup> गंगाम् । <sup>६</sup> प्राप्त । <sup>७</sup> सैकतनितम्ब ।

## षड्क्रिंशतितम् पर्व

१७

### शार्दूलविक्रीडितदृक्षम्

तामाक्रान्तवरिमुखम्<sup>१</sup> कृतरजोधृति<sup>२</sup> जगत्पात्रनी –  
मासेष्यां<sup>३</sup> द्विजकुञ्जरविश्वं संतापविष्टेन्द्रियम् ।  
जैनीं कीर्तिमिवात्तामपमलां शशशज्जननमिद्दिनों  
निष्पात्यन्<sup>४</sup> विशुधापगां निषिपत्तिः प्राप्ति परमासदत् ॥ ५५० ॥

इत्याख्यं भगवज्जिनसेना वार्यप्रख्याते त्रिषट्टितक्षणमहापुराणसंश्लेष्मे भरतराज-  
दिविजयोग्योगवर्णीनं नाम षड्क्रिंशतितम् पर्व ॥ २६ ॥



है ऐसा वहाँका बायु रानियोंके भागके परिश्रमको हरण कर रहा था ॥ १४९ ॥ वह गंगा  
ठीक जिनेन्द्रदेवकी कीर्तिके समान थो क्योंकि जिस प्रकार जिनेन्द्र देवकी कीर्तिने समस्त दिशाओं-  
को व्याप्त किया है उसी प्रकार गंगा नदीने भी पूर्व दिशाको व्याप्त किया था, जिनेन्द्र भगवान्-  
की कीर्तिने जिस प्रकार रज अर्थात् पापोंका नाश किया है उसी प्रकार गंगा नदीने भी रज  
अर्थात् धूलिका नाश किया था, जिनेन्द्र भगवान्की कीर्ति जिस प्रकार जगत्को पवित्र करती  
है उसी प्रकार गंगा नदी भी जगत्को पवित्र करती है, जिनेन्द्र भगवान्की कीर्ति-जिस प्रकार  
द्विज कुञ्जर अर्थात् श्रेष्ठ ब्राह्मण ऋत्रिय और वैश्योंके द्वारा सेवित है उसी प्रकार गंगा नदी  
भी द्विज कुञ्जर अर्थात् पक्षियों और हाथियोंके द्वारा सेवित है, जिनेन्द्र भगवान्की कीर्ति जिस  
प्रकार निरन्तर संसार-भ्रमण-जन्य सन्तापको दूर करती है उसी प्रकार गंगा नदी भी सूर्यको  
किरणोंसे उत्पन्न सन्तापको नष्ट करती थी और जिनेन्द्र भगवान्की<sup>५</sup> कीर्ति जिस प्रकार विस्तृत,  
निर्मल और सदा लोगोंको आनन्द देनेवाली है उसी प्रकार वह गंगा नदी भी विस्तृत, निर्मल  
तथा सदा लोगोंको आनन्द देती थी । इस प्रकार उस गंगा नदीको देखते हुए निषियोंके स्वामी  
भरत महाराज परम प्रीतिको प्राप्त हुए थे ॥ १५० ॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत विषष्टिलक्षण भग्नपुराणसंश्लेष्मके  
हिन्दी-भाषानुवादमें भरतराजकी दिविजयके उद्घोगको वर्णन  
करनेवाला छब्बीसवां पर्व पूर्ण हुआ ।



१ दिक्षमुखम् । २ रजोनाशनम् । ३ पक्षिग्रन्थः विप्रादिमुख्येश्वर । ४ अवलोकणम् ।

## सप्तविंशतितम् पर्व

अथ न्यायापारयामास दर्श तत्रै चिकां पतिः । प्रसन्नैः सलिलैः पाण्यं विसरन्यामिवात्मनः ॥ १ ॥  
 ग्राह्यपौरीतदा तत्रै प्रभुमालैः सारथिः । प्राप्तिवसरैमिष्युचे वच्छितोऽनुरजनम् ॥ २ ॥  
 हथमाह्नादिवाशेषभुवना देवनिभनगा । रजो विपुन्द्रती भासि भारतीव स्वयंभुवः ॥ ३ ॥  
 पुनर्तीयं हिमादिं च सागरं च महानदीं । प्रसूतैः च प्रवेशे च गम्भीरा निर्मलाशया ॥ ४ ॥  
 हमी वनगजाः प्राप्त्य निवान्त्येते मददश्युतः । मुनीन्द्राद्व उद्दिद्यां गम्भीरां तापविद्विद्वम् ॥ ५ ॥  
 हृतः पिवन्ति वन्येताः पयोऽस्याः कृतिःस्वनाः । इतीऽमी पूरथन्येना मुक्तासाराः शरद्वनाः ॥ ६ ॥  
 अस्याः प्रवाहमस्भोगिर्थते गम्भीर्योगतः । अपोऽव विजयार्थेन तुङ्गेनाप्यचलात्मना ॥ ७ ॥  
 अस्याः पयःप्रवाहेण नूनमदिधविन्दृ भवेत् । क्षारेण पवसा स्वेन द्वामानांतराशयः ॥ ८ ॥  
 पण्डदादिमवतः प्रसज्जादिव मानसान् । प्रसूता प्रथे पृथ्यां शुद्धजन्मा हि पृज्यते ॥ ९ ॥  
 व्योमपगामिमो प्राहुर्वियतः पतितां क्षिती । गङ्गादेवीगुहं विद्वगाप्लाष्य स्वजलामृदैः ॥ १० ॥

अथानन्तर वहाँपर जो स्वच्छ जलसे अपने लिए ( भरतके लिए ) पादोदक प्रदान करती हुई-सी जान पड़ती थी ऐसी गंगा नदीपर महाराज भरतने अपनी दृष्टि डाली ॥ १ ॥ उस समय सारथिने महाराज भरतको गंगापर दृष्टि डाले हुए देखकर चित्तको प्रसन्न करनेवाले निम्नलिखित समयानुकूल बचन कहे ॥ २ ॥ हे महाराज ! यह गंगा नदी ठीक क्रृषभदेव भगवान्‌की वाणीके समान जान पड़ती है, क्योंकि जिस प्रकार क्रृषभदेव भगवान्‌की वाणी समस्त संसारको आनन्दित करती है उसी प्रकार यह गंगा नदी भी समस्त लोकको आनन्दित करती है और क्रृषभदेव भगवान्‌की वाणी जिस प्रकार रज अर्थात् पापोंको नष्ट करनेवाली है उसी प्रकार यह गंगा नदी भी रज अर्थात् धूलिको नष्ट कर रही है ॥ ३ ॥ गम्भीर तथा निर्मल जलसे भरी हुई यह गंगा नदी उत्पत्तिके समय तो हिमवान् पर्वतको पवित्र करती है और प्रवेश करते समय समुद्रको पवित्र करती है ॥ ४ ॥ जिस प्रकार गम्भीर और सन्तापको नष्ट करनेवाली सद्विद्या ( सम्यग्ज्ञान ) को वाकर बड़े-बड़े मुनि लोग मद अर्थात् अहंकार छोड़कर मुक्त हो जाते हैं उसी प्रकार ये जंगली हाथी भी इस गम्भीर तथा सन्तापको नष्ट करनेवाली गंगा नदीको पाकर मद अर्थात् गण्डस्थलसे ज्ञानेवाले तोषविशेषको छोड़कर शान्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥ इधर ये वनके हाथी शब्द करते हुए इसका पानी पी रहे हैं और इधर जलकी वृष्टि करते हुए ये शरदक्रह्नुके मेघ इसे भर रहे हैं ॥ ६ ॥ अत्यन्त ऊँचा और सदा निश्चल रहनेवाला विजयार्थ पर्वत भी जिसे धारण नहीं कर सका है ऐसे इसके प्रवाहको गम्भीर होनेसे समुद्र सदा धारण करता रहता है ॥ ७ ॥ सम्भव है कि अपने खारे जलसे जिसका अन्तःकरण निरन्तर जलता रहता है ऐसा समुद्र इस गंगा नदीके जलके प्रवाहसे अवश्य ही न्यायरहित हो जायेगा ॥ ८ ॥ यह गंगा प्रसन्न मनके समान निर्मल हिमवान् पर्वतके पद्म नामक सरोवरसे निकलकर पृथिवीपर प्रसिद्ध हुई है सो ठीक ही है क्योंकि जिसका जन्म शुद्ध होता है वह पूज्य होता ही है ॥ ९ ॥ यह गंगा अपने जलके प्रवाहसे गंगादेवीके घरुको चारों ओरसे भिगोकर आकाश-

१ गङ्गायाम् । २ उत्पत्तिस्थाने । ३ सुक्लिनो भवन्ति मुक्ताद्वच । ४ मददश्युतः ल० ।  
 ५ परमागमहत्याम् । ६ सोहुमग्नक्षयम् । दत्तुमशक्तप्रमित्यर्थः । ७ विषतः ल०, इ०, द० ।

विभाति हिमवानेनां शशाङ्ककरनिमंलाम् । आ सिन्धोः प्रसूतां कर्तिमिव स्वां लोकपावनीम् ॥ ११॥  
वनराजीहृथेनेयं विभाति तद्विसेमा । वासलोरिव युगमेन विनीलेन कृतश्रियाऽै ॥ १२॥  
स्वतटाश्रयिणी धर्ते हंसमालां कलस्वनाम् । काञ्चीमिवैयमम्भोजरजः पिअरविग्रहाम् ॥ १३॥  
नदीसंपारियं स्वच्छं मृणालशकलामलाः । संविभाति रवसात्कृत्य सरये श्लाघ्यं हि तादृशम् ॥ १४॥  
राजहंसैरियं<sup>१</sup> सेम्या लक्ष्मीरिव विभाति से । तन्वती जगतः प्रतिमलकृयमहिमा परः ॥ १५॥  
वनवेद्मियं धर्ते समुत्तुष्ट्यां हिरण्मरीम् । आजामिव तवाळकृयां नभोमार्गं विलक्षिनम् ॥ १६॥  
इतः प्रसीद देवेम । शरलक्ष्मीं विलोकय । वनराजिषु संलडाऽै सरित्सु सरसाषु च ॥ १७॥  
इसे सप्तच्छदाः पौर्णं विक्रिनि रजोऽमिलः । पट्टासमिवामोदसंवासितहरिन्मुखम् ॥ १८॥  
बाणैः<sup>२</sup> कुसुमवागस्य बाणैरिव विकासिभिः । हिते<sup>३</sup> कामिनो चेतो रम्यं हारि न कस्य वा ॥ १९॥  
विक्षमित सरोजानि सरस्सु समसुख्यां । विकासिलोचनार्णीष उद्दत्तानि शारचिद्धृषः ॥ २०॥  
पठ्कजेषु विलीयम्भे<sup>४</sup> भ्रमरा गन्धलोलुपाः । कामिनीमुखपद्मेषु कामुका दृव काहलाः<sup>५</sup> ॥ २१॥  
मनोजशारपुरुषाण्यः पञ्चमधुकरा इमं । विक्षरन्त्यविजनीषष्ठं मकरन्दरसोत्सुकाः ॥ २२॥

से अर्थात् हिमवान् पर्वतके ऊपरसे पृथिवीपर पड़ी है इसलिए इसे आकाशगंगा भी कहते हैं ॥ १० ॥ जो जन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल है, समुद्र तक फैली हुई है और लोकको पवित्र करनेवाली है ऐसी इस गंगाको यह हिमवान् अपनी कीर्तिके समान धारण करता है ॥ ११ ॥ यह गंगा अपने तटवर्ती दोनों ओरके बनोंसे ऐसी सुशोभित हो रही है मानो इसके नीले रंगके दो वस्त्र ही धारण कर रखे हों ॥ १२ ॥ कमलोंके परागसे जिनका शरीर पीला-पीला हो गया है और जो भूमिहर शब्द कर रहा है ऐसी हसाँकों पंचितयोंको यह नदी इस प्रकार धारण करती है मानो मन्द-मन्द शब्द करती हुई सुवर्णमय करधनी ही धारण किये हो ॥ १३ ॥ यह नदी स्वच्छ मृणालके टुकड़ोंके समान निर्मल अन्य सखी स्वरूप सहायक नदियोंको अपने-में मिलाकर धारण करती है सो ठीक ही है क्योंकि ऐसे पुरुषोंकी मित्रता ही प्रवासनीय कहलाती है ॥ १४ ॥ अनेक राजहंस ( पक्षमें बड़े-बड़े राजा ) जिसकी सेवा करते हैं, जो संसारको प्रेमी उत्पन्न करनेवाली है, और जिसकी महिमा भी कोई उल्लंघन नहीं कर सकता ऐसी यह गंगा आपको राजलक्ष्मीके समान सुशोभित हो रही है ॥ १५ ॥ जो अत्यन्त कैची है, सोनेकी बती हुई है, आकाश-मार्गको उल्लंघन करनेवाली है और आपकी आज्ञाके समान जिसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता ऐसी वनवेदिकाको यह गंगा नदी धारण कर रही है ॥ १६ ॥ हे देव, प्रसन्न होइए और इधर वनपंक्तियों, नदियों और तालाबोंमें स्थान जमाये हुई शरदकृतु-की इस शोभाको निहारिए ॥ १७ ॥ ये सप्तपर्ण जातिके वृक्ष अपनी सुगन्धिसे समस्त दिशाओं-को सुगन्धित करनेवाले सुगन्धिचूर्णके समान फूलोंकी परागको चारों ओर विस्तेर रहे हैं ॥ १८ ॥ इधर कामदेवके बाणोंके समान फूले हुए बाण जातिके वृक्षों-द्वारा कामी मनुष्योंका चित्त अपहृत किया जा रहा है सो ठीक ही है क्योंकि रमणीय वस्तु क्या अपहृत नहीं करती ? अथवा किसे मनोहर नहीं जान पड़ती ? ॥ १९ ॥ इधर तालाबोंमें नील कमलोंके साथ-साथ साधारण कमल भी विकसित हो रहे हैं और जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो जिनमें नेत्र विकसित हो रहे हैं ऐसे शरदकृतुरूपी लक्ष्मीके मुख ही हों ॥ २० ॥ इधर ये कुछ-कुछ अव्यक्त शब्द करते हुए सुगन्ध-के लोभी भ्रमर कमलोंमें उस प्रकार निलीन हो रहे हैं जिस प्रकार कि चाटुकारी करते हुए कामी जन स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोंमें निलीन—आसक्त होते हैं ॥ २१ ॥ जो मकरन्द रसका पान

<sup>१</sup> विभाति ल० । <sup>२</sup> वृत्तविद्या ल०, द०, इ० । <sup>३</sup> स्वच्छमृणाल-ल० । <sup>४</sup> तादृशाम्-ल० । <sup>५</sup> पञ्चे राजश्रेष्ठे ।  
<sup>६</sup> प्रसिद्धाम् । <sup>७</sup> सिंष्टिभिः । <sup>८</sup> अपहृतम् । <sup>९</sup> आशिलध्यन्ति । निलीयन्ते ल० । <sup>१०</sup> अस्फुटवचनाः ।

रूपिता: कञ्जकिनज्जरैरामान्वये म बुद्धता: । ५ सुवर्णकपिैररङ्गैः कामगनेत्रिव सुमुराः ॥२३॥  
स्थलेषु स्थलप्रिन्यो विक्षेपन्यश्चकासति । शरदिल्लयो जिरीषन्या दृश्यशालौ इवोच्चिताः ॥२४॥  
स्थलाञ्जशाङ्किनी हंसी सरस्यवजरजतते । संहस्र पश्चिमेषं विशान्तीयं निमञ्जति ॥२५॥  
हंसोऽर्थं निजशावाय चलच्छाद्य लसहितम् । पौथशुद्धया ददात्यस्मै शशाङ्ककरकोमलम् ॥२६॥  
कृतयत्ना: प्लवन्तेऽमी राजहंसाः सरोजलं । सरोजिनीरजकीणे पूतप्रधाः तानैः अनैः ॥२७॥  
चक्रबाकीं सरस्तीर्ते तरङ्गैः स्थगिताममूर्म् । अपश्यन् कहर्ण रौति चक्राङ्गः साश्रुलोचनः ॥२८॥  
अभ्येति वरटाशक्कीं धार्तराष्टः ॥२९॥ कृतस्वसम् । सरस्तरकृगुभाङ्गां कोककान्तामनिष्ठतीम् ॥२१॥  
अनुगङ्गात्तदं भाति साप्तपर्णमिदं बनम् । सुमनोरेणुभिर्योम्नि वितानश्रियमादधृत् ॥२०॥  
मन्दाकिनीतरङ्गोत्थपवमोऽध्वश्रमं हस्त् । शनैः सृष्टाति नौङ्गानि रोधोवनविभूननः ॥२१॥  
आतिथ्यमिवै नस्तन्वन् हस्तगङ्गाम्बुद्धीकरः ॥२२॥ अभ्येतिैः पवमानोऽयं बनवीधीर्भिर्भूननः ॥२३॥  
अगोष्यदमिदंै देव देवैरध्युषितं बनम् । लतालयैर्विभाष्यन्तःैः ॥२४॥ कुसुमप्रस्तराश्चितैः ॥२५॥

करनेके लिए उत्कण्ठित हो रहे हैं ऐसे ये अमर कामदेवके बाणोंकी मूठके समान आभावाले अपने पंखोंसे कमलिनियोंके समूहमें जहाँ-तहाँ विचरण कर रहे हैं, घूम रहे हैं ॥ २२ ॥ जिनके अंगोपांग कमलकी केशरसे रूपित होनेके कारण सुवर्णके समान पीले-पीले हो गये हैं ऐसे ये अमर कामरूपी अग्निके स्फुलिङ्गोंके समान जान पड़ते हैं ॥ २३ ॥ जगह-जगह पृथिवीपर फूले हुए स्थल-कमलिनियोंके पेड़ ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सबको जीतनेकी इच्छा करनेवाली शरदकृतुरूपी लक्ष्मीके खड़े हुए कपड़ेके तम्बू ही हों ॥ २४ ॥ जो कमलोंकी परागसे व्याप्त हो रहा है ऐसे सरोवरमें कमलको स्थलकमल समझती हुई यह हंसी पंखोंके विक्षेपको रोककर अथवा पंख हिलाये बिना ही प्रवेश करती है और पानीमें ढूब जाती है ॥ २५ ॥ यह हंस चन्द्रमाकी किरणोंके समान कोमल और देदीप्यमान मृणालको अपनी चौंचसे उठाकर और क्षीरसहित मध्यस्थनके समान कोई पदार्थ समझकर अपने बच्चेके लिए दे रहा है ॥ २६ ॥ कमलिनीके परागसे भरे हुए तालाबके जलमें ये हंस धीरे-धीरे पंख हिलाते हुए बड़े प्रयत्नसें तैर रहे हैं ॥ २७ ॥ तालाबके तीरपर तरंगोंसे तिरोहित हुई चक्रबीको नहीं देखता हुआ यह हंस अंखोंमें अंसू भरकर बड़ी करणाके साथ रो रहा है ॥ २८ ॥ सम्भोगकी इच्छा करनेवाला यह शब्द करता हुआ हंस, तालाबकी तरंगोंसे जिसका जरीर सफेद हो गया है ऐसी चक्रबी-के सम्मुख जा रहा है जब कि बड़े चक्रबी इस हंसकी इच्छा नहीं कर रही है ॥ २९ ॥ गंगा नदी-के किनारे-किनारे यह सप्तपर्ण जातिके वृक्षोंका बन ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो अपने फूलोंकी परागसे बाकाशमें चैदोवाकी शोभा ही धारण कर रहा हो ॥ ३० ॥ मार्गकी थकावट-को दूर करता हुआ और किनारेके बनोंको हिलाता हुआ यह गंगाकी लहरोंसे उठा हुआ पवन हम लोगोंके शरीरको धीरे-धीरे स्पर्श कर रहा है ॥ ३१ ॥ बनकी पंक्तियोंको हिलाता हुआ यह वायु ग्रहण की हुई गंगाके जलकी बूँदोंसे ऐसा जान पड़ता है मानो हम लोगोंका अतिथि-सत्कार करता हुआ ही आ रहा हो ॥ ३२ ॥ हे देव, जो गायोंके संचारसे रहित है अथवा अत्यन्त दुर्गम ए आच्छादिताः । ३ कनकवत् पिङ्गलैः । ४ विस्फुलिङ्गाः । ५ पटकुटवः । 'दूष्यं वरुते च तदगृहे' । ६ सधीशनवनीतवृद्धया । ७ कृतयत्नं ल०, द०, इ०, अ०, प०, स० । ८ स्तनिताम् आच्छादिताम् । ९ आलोकयन् । १० हंसकान्तेति शहकावान् । 'वरटा हंसकान्ता स्यात् वरटा वरलापि च' इति वैजयन्ती । ११ सितेतरचक्रचरणवान् हंसः । 'राजहंसास्तु ते चक्रचुश्चरणैः लोहितैः सिताः । मलिनैस्तिलिकाशास्त्रीर्थतेराष्ट्राः सितेतरैः इत्यभिधानात् । १२ कृतस्वनाम् अ० । १३ अहमाकम् । १४ तटवन् । १५ अतिथित्वम् । १६ शीकरैः ल०, प०, इ० । १७ अभिमुखमागच्छति । १८ प्रमणरहितम् । प्रवेष्टुमशब्दं वा । १९ निभात्येतैः इ०, ल०, द० । २० शमन ।

भृत्येषु अन्तर्गतः । ३५ लोके अति दीप्तिरात्रे इह उर्मा विद्युतः ।  
मन्दासवनवीथीनो सान्द्रच्छायाः समाप्तिः । चन्द्रकान्तरशालास्वते रंगमयने न मःपदः ॥३५॥  
अहो तटवस्यास्य रामणीयकमद्भुतम् । अवधृतनिजवासा ॥३६॥  
मनोभवनिवेशस्य लक्ष्मीरत्न वितन्यते । मुरदम्यतिभिः स्वैरमारधरमिविभ्रमैः ॥३६॥  
इर्य निशुद्धनासक्तः सुरस्तीरतिकोमलाः । हसतीष्व लरुगोस्यैः शीरकरमरपगा ॥३७॥  
इतः किञ्चरसंगीतमितः मिद्दोषवीणितम् । इतो विद्याधरीनृत्यमितस्तद्वृत्तिचित्रमः ॥३८॥  
नृत्यमप्सरसो पद्मन् दृष्ट्वस्तद्गीतनिःस्वनम् । वाजिवश्चोऽयमुद्गीवः समभासते रघुनात्या ॥३९॥  
१० निष्पर्यायं वनेऽमुमिनृतुवर्गो विवर्धते । परस्परमित्र व्रष्टमुन्मुकायितमानसः ॥३९॥  
अशोकतरुत्राय ततुते पुष्पमंजरीम् । लाक्षारक्षैः खगस्तीणां अरणीरभितादितः ॥४०॥  
११ उपस्तोकिलाकलापमुखरीकृतदिह मुखः । चूतोऽयं मञ्जरीर्थसे मदनस्पेष तीरिकः ॥४०॥  
कम्पका विकसन्तोऽन्ने कुसुमती<sup>११</sup> वितन्दति<sup>१२</sup> । प्रदीपनित्र पुष्पीचान् दृष्टीमे<sup>१३</sup> मनोभुवः ॥४१॥  
सहकारेष्वमी भृता विरुद्धनि<sup>१४</sup> मधुवताः । विजितीष्वोरनक्ष्यास्य काहला इत्य पूरितम् ॥४२॥  
कोकिलानकमिःस्वानैरलिङ्गारवजूमित्तैः । १५ अभियेणयसीवाय मनोभूम्भुवनत्रयम् ॥४२॥

है और जो देवोंके द्वारा अधिष्ठित है अर्थात् जहाँ देव लोग आकर क्रीड़ा करते हैं ऐसा यह वन फूलोंके बिछौनोंसे सुशोभित है लतागृहोंसे अतिशय सुशोभित हो रहा है ॥ ३३ ॥ इधर मन्दार वृक्षोंकी बन-पंक्तियोंकी घनी छायामें बैठे हुए ये देव लोग चन्द्रकान्त मणियोंकी शिलापर बार-बार क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ३४ ॥ अहा, इस किनारेके बनकी सुन्दरता कैसी आश्चर्य-जनक है कि देव लोग भी अपने-अपने निवासस्थान छोड़कर यहाँ क्रीड़ा करते हैं ॥ ३५ ॥ जिन्होंने अपनी इच्छानुसार रति-क्रीड़ा प्रारम्भ की है ऐसे देव-देवांगनाओंके द्वारा यहाँ काम-देवके धरकी शोभा बढ़ायी जा रही है । भावार्थ ~ देव-देवांगनाओंकी स्वच्छन्द रतिक्रीड़ाको देखकर मालूम होता है कि मानो यह कामदेवके रहनेका घर ही हो ॥ ३६ ॥ यह गंगा अपनी तरंगोंसे उठी हुई जलकी बूँदोंसे ऐसी जान पड़ती है मानो समझोग करनेमें असमर्थ होकर दीनतामेरे असमृद्ध शब्द करनेवाली देवांगनाओंकी हँसी ही कर रही हो ॥ ३७ ॥ इधर किन्नरोंका संगीत हो रहा है, इधर सिद्ध लोग बीणा बजा रहे हैं, इधर विद्याधरियाँ नृत्य कर रही हैं और इधर कुछ विद्याधरियाँ विलासपूर्वक ठहल रही हैं ॥ ३८ ॥ इधर यह किन्नर अपनी काल्पन-के साथ-साथ अप्सराओंका नृत्य देखता हुआ, और उनके संगीत शब्दोंकी सुनता हुआ सुखसे गला ऊँचा कर बैठा है ॥ ३९ ॥ परस्परमें एक-दूसरेको देखनेके लिए जिसका मन उत्कण्ठित हो रहा है ऐसा क्रहतुओंका समूह इस वनमें एक साथ इकट्ठा होता हुआ बढ़ रहा है ॥ ४० ॥ लाखसे रंगे हुए विद्याधरियोंके चरणोंसे ताड़ित हुआ यह अशोक वृक्ष इस वनमें पुष्प-मंजरियोंकी धारण कर रहा है ॥ ४१ ॥ कोकिलोंके आलापसे जिसने समस्त दिशाओंको वाचालित कर दिया है ऐसा यह आम्रवृक्ष कामदेवकी आँखोंकी पुतलियोंके समान पुष्प-मंजरियोंकी धारण कर रहा है ॥ ४२ ॥ वसन्तक्रहतुके फैलनेपर इस वनमें जो चम्पक जातिके वृक्ष विकसित हो रहे हैं और फूलोंके समूह धारण कर रहे हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कामदेवके दीपक ही धारण कर रहे हों ॥ ४३ ॥ इधर ये मदोन्मत्त भ्रमर आम्र वृक्षोंपर ऐसा शब्द कर रहे हैं मानो सबको जीतनेकी इच्छा करनेवाले कामदेवरूपी राजाके बाजे ही बज रहे हों ॥ ४४ ॥ कोयलों-१. अवकाश । २. रन्तुमिच्छन्ति । ३. यस्मात् कारणात् । ४. शक्ताः ल०, इ० । ५. रतिकाहलाः ल०, द०, इ० । ६. नृत्यम् अ०, इ० । ७. युगपत् । निष्पर्यायो प०, ल०, द०, अ०, स० । ८. पुरुक्षोंकिलानामालापः ल० । ९. वाणाः । तारकाः ल० । १०. विकसन्त्यत ल०, द०, इ०, अ०, प०, स० । ११. वसन्तकाले । १२. विस्तृते सहि । अविवितकर्मकोऽकर्मक इत्यकर्मकत्वमत्र । १३. दधतोऽसी ल०, द०, इ०, अ०, प०, स० । १४. द्वन्द्विति । १५. सेनया अभियाति । णिज्वहूलं कृजादिपुणिन् ।

निचुलः सहकारण विकसनव्र माधवीम् । तनोति लक्ष्मीमक्षुणामहो प्राशृद्धिया समभ् ॥४६॥  
 मा॑ श्वीस्तवकेद्वयं माधवोऽय विजूम्भते । वनलक्ष्मीप्रहासत्वं लीलां तन्यस्तु विवशलः ॥४७॥  
 वासन्त्यो विकसम्येता वसन्तसुस्मितश्रियम् । तन्यानाः कुसुमामोदैराकुलीकृतष्टपदः ॥४८॥  
 मणिलकावितलामोदैर्यिलोर्लकृतष्टपदः । पादपेतु पदं धर्मे त्रुचिः॑ पुष्पगुच्छिमितः ॥४९॥  
 कदम्बामोदसुरमिः केतकीभूषिभूलरः । तापात्ययानिलो॒ देव निरयमन्त्र विजूम्भते ॥५०॥  
 माधविति कोकिलः शशवत् सममन्त्र शिखण्डिमिः । कलहंसीकलस्वामैः संमूछित्विकृजिताः ॥५१॥  
 कृष्णिति कोकिला मत्ताः केकायन्ते॑ कलापिनः । उमवस्थास्य वर्गस्य हंसाः॑ प्रत्यालयस्थमी ॥५२॥  
 हलोऽमी किञ्चरीगीतमनुकृजिते॑ पदपदाः । सिद्धोपवीणितान्येतु निहनुतेऽन्यभृतवत्तमः ॥५३॥  
 जितन्तपुराणकारमितो हंसविकृजितम् । इतदेव खेचरीनुत्यमनुनृत्यचित्रणावलम्॑२ ॥५४॥  
 इतदेव लैकलीत्वम् सुप्तान् हंसान् खण्डावकान् । प्रातः प्रबोधयत्पुष्टम्॑३ खेचरीनपुराणवः ॥५५॥  
 इतदेव रचितामल्पपुष्टपल्लवमनोहराः । चन्द्रकाम्तशिलागर्मा सुरभोग्या लतालयाः ॥५६॥

— अपुरशब्दहृषी शंखङ्गो और अमरोंकी गुजार रूप प्रत्यंचाकी टंकारध्वनिसे यही ऐसा मालूम होता है मानो कामदेव तीनों लोकोंको जीतनेके लिए सेनासहित चढ़ाई ही कर रहा हो ॥ ४५ ॥ अहा, कैसा आश्चर्य है कि आम्रवृक्षके साथ-साथ फूलता हुआ यह निचुल जातिका वृक्ष इस वनमें वषाकृतुकी शोभाके साथ-साथ वसन्तकृतुकी भारी शोभा बढ़ा रहा है ॥४६॥ इधर इस वनमें चारों ओरसे वन-लक्ष्मीके उल्कष्ट हास्यकी शोभा बढ़ानेवाले माधवीलता-के गुच्छोंपर आज वसत्त बड़ी वृद्धिको प्राप्त हो रहा है ॥ ४७ ॥ जो अपने विकाससे वसन्त-ऋतुके हास्यकी शोभा बढ़ा रही हैं और जो फूलोंकी सुगन्धिसे अमरोंको व्याकुल कर रही हैं ऐसी ये वसन्तमें विकसित होनेवाली माधवीलताएँ विकसित हो रही हैं — फूल रही हैं ॥४८॥ जिसने मालतीकी फैली हुई सुगन्धिसे अमरोंको चंचल कर दिया है और फूल ही जिसका पवित्र हास्य है ऐसा यह ग्रीष्मकृतु वृक्षोंपर पैर रख रहा है — अपना स्थान जमा रहा है ॥४९॥ हे देव, कदम्ब पुष्पोंकी सुगन्धिसे सुगन्धित तथा केतकीकी धूलिसे धूसर हुआ यह वषाकृतु-का वायु इस वनमें सदा बहता रहता है ॥५०॥ इस वनमें मयूरोंके साथ-साथ कोयल सदा बोलते हैं ॥५१॥ इधर उन्मत्त कोकिलाएँ कुह कुह कर रही हैं, मयूर केका वाणी कर रहे हैं और ये हंस इन दोनोंके शब्दोंकी प्रतिध्वनि कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ इधर ये अमर किष्मतियोंके द्वारा गाये हुए गीतोंका अनुकरण कर रहे हैं और इधर यह कोयल सिद्धोंके द्वारा बजायी हुई वीणाके शब्दोंकी छिपा रहा है ॥५३॥ इधर नूपुरोंकी अकारको जीतता हुआ हंसोंका शब्द हो रहा है, और इधर जिसका अनुकरण कर मयूर नाच रहे हैं ऐसा विद्याधरियोंका नृत्य हो रहा है ॥ ५४ ॥ इधर बालूके टीलोंकी गोदमें अपने बच्चोंसहित सोये हुए हंसोंकी प्रातःकालके समय यह विद्याधरियोंके नूपुरोंका ऊँचा शब्द जगा रहा है ॥५५॥ इधर जो बहुत-से फूलोंसे बनायी हुई शय्याओंसे मनोहर जान पड़ते हैं, जिनके मध्यमें चन्द्रकान्त मणिकी शिलाएँ पड़ी हिजुलः । 'निचुलो हिजुलोऽम्बुजः' इत्यभिधानात् । २ वसन्ते भवाम् । 'अलिमुखः पुष्टकः स्थाद वासन्ती माधवी लता' इत्यभिधानात् । एनानि पुष्टदेशी वसन्तकाले बाहुलेन जायमास्य नामानि । ३ वासन्तोगुच्छकेषु । 'स्थाद गुच्छकृतु रसवकः' इत्यभिधानात् । ४ व्रेष्मः । ५ पुष्पात्येव शुचिरितं यस्य सः । ६ ईष्टपाण्डः । 'ईष्टताऽहस्तु धूसरः' इत्यभिधानात् । ७ वर्षकालवायुः । ८ मिश्रित । ९ केकां कुर्वन्ति । १० प्रत्युत्तरं कुर्वन्ति । ११ वर्षलापं कुरुते । १२ अनुगतं नृत्यन् शिखावलो यस्य । १३-त्युच्छैः व० ।

हतीदं वनमत्यस्तुरमणीयः परिष्ठौः । सर्वोद्यानगते प्रीतिं जनयेत् सवःसदा<sup>१</sup> सदा ॥५७॥  
 चहिस्तटवनामेतद् दद्यते काननं महत् । नानावृभलतागुरुमधीरुद्भिरतिदुर्गमम्<sup>२</sup> ॥५८॥  
 दृष्टीनामन्यगदयेऽस्मिन् वले सुगक्षद्वक्षम् । नानाजातीयमुद्भास्तं सैन्यकोभात् प्रधावति ॥५९॥  
 हृदभस्तमृबलकोभादुत्प्रस्तसुगसंकुलम् । वनमाकुलितप्राणमिवामात्यन्धकारितम् ॥६०॥  
 गजयूथयितः 'कच्छादन्यकारमिवामितः । चिलिष्टं वलसं भौभादपसर्वतितुतम् ॥६१॥  
 शबैः प्रवालि संजिप्तन्<sup>३</sup> दिवाः प्रेक्षिसपुकरः । स महाहिरिवादीन्दो भद्रोऽयं गजयूथयः ॥६२॥  
 महाहिरिवादीन्दो निमान्ते इदं वृक्षाद्यम् । अनामद्वान्द्रामुद्भास्ते<sup>४</sup> वृक्षाद्यामुद्भास्तरीरकः ॥६३॥  
 'शायुपोला निकुञ्जेषु' मुम्बीभूता वसन्यमी । 'वनस्येवान्त्रसंतानादयम्' भौभाद्विनिःसूताः ॥६४॥  
 असमेककरः<sup>५</sup> पोक्षसमुख्यातान्तिकस्थलः<sup>६</sup> । हणद्वि वर्त्म सैन्यस्य वराहरसीवरोपणः ॥६५॥  
 सैनिकैर्वर्यमारुदः<sup>७</sup> पाषाणलकुटादिभिः । व्याकुलीकुलते<sup>८</sup> सैन्यं गण्डो<sup>९</sup> गण्ड<sup>१०</sup> हृष्टस्फुटम् ॥६६॥  
 प्राणा हृष्ट वृक्षाद्यस्माकृ चिनिक्षामन्ति सम्तातः । मिहा वृद्धवज्वालो<sup>११</sup> चुन्वाना केमरच्छदाः ॥६७॥

हुई हैं और जो देवोंके उपभोग करने योग्य हैं ऐसे लतागृह बने हुए हैं ॥५६॥ इस प्रकार यह वन अत्यन्त रमणीय सामग्रीसे देवोंके सदा तन्दत वनको प्रीतिको उत्पन्न करता रहता है ॥ ५७ ॥

इधर किनारेके वनके बाहर भी एक बड़ा भारी वन दिखाई दे रहा है जो कि अनेक प्रकारके वृक्षों, लताओं, छोटे-छोटे पौधों और झाड़ियोंसे अत्यन्त दुर्गम है ॥ ५८ ॥ जिसमें दृष्टि भी नहीं जा सकती ऐसे इस वनमें सेनाके क्षोभसे घबड़ाया हुआ यह अनेक जातिके मृगों-का समूह बड़े जोरसे दीड़ा जा रहा है ॥५९॥ जो हमारी सेनाके क्षोभसे भयभीत हुए हरिणों-से व्याप्त है तथा जिसमें जीवोंके प्राण आकुल हो रहे हैं ऐसा यह वन अन्धकारसे व्याप्त हुए-के समान जान पड़ता है ॥ ६० ॥ इधर सेनाके क्षोभसे अलग-अलग हुआ यह हाथियोंका छुण्ड गंगा किनारेके जलवाले प्रदेशसे अन्धकारके समान चारों ओर बड़े बेगसे भागा जा रहा है ॥ ६१ ॥ हाथियोंके छुण्डकी रक्षा करनेवाला यह भद्र गजराज सौङ्को ऊँचा उठाता हुआ तथा दिशाओंको सूर्घंता हुआ धीरे-धीरे ऐसा जा रहा है मानो शेषनागसहित सुमेरु पर्वत ही जा रहा हो ॥ ६२ ॥ जिसने अपने शरीरके ऊर्ध्वभागको ऊँचा उठा रखा है ऐसा यह बड़ा भारी सर्व जलवाले प्रदेशसे सौंस लेता हुआ इस प्रकार आ रहा है मानो वृक्षोंकी लम्बाईको नापता हुआ ही आ रहा हो ॥६३॥ इधर इस लतागृहमें इकट्ठे हुए ये अजगरके बच्चे इस प्रकार श्वास ले रहे हैं मानो सेनाके क्षोभसे बनकी अंतिमियोंके समूह ही निकल आये हों ॥६४॥ जो अकेला ही फिरा करता है, जिसने अपनी नाकसे समीपके स्थल खोद डाले हैं, और जो अत्यन्त क्रोधी है ऐसा यह शूकर सेनाका मार्ग रोक रहा है ॥६५॥ सेनाके लोगोंने जिसे पश्चर लकड़ी आदिसे रोक रखा है ऐसा यह गण्ड अर्थात् छोटे पर्वतके समान दिखनेवाला गैंडा हाथी स्पष्ट रूपसे सेनाको आकुल कर रहा है ॥६६॥ जो दावानलकी ज्वालाके समान पीले और विस्तृत गरदनपर-के बालोंके समूहोंको हिला रहे हैं ऐसे ये सिंह इस वनसे इस प्रकार

१ नाकिनाम् । २ प्रतानिनीलताभिः । 'सता प्रतानिनी वीरत् गुलिमन्युपलमित्यपि' इत्यभिधानात् ।  
 ३ वृहुजलप्रदेशात् । 'जलप्रायमनूर्णं स्यात् पुंसि कच्छस्तथादिवः ।' इत्यभिधानात् । ४ विभक्तम् ।  
 ५ आद्याणवन् । ६ प्रमिति कुर्वन्निव । ७ दीर्घीभवति । यमुण्डः स्वेऽङ्गे चाजाः" इत्यात्मनेष्वदी । -शान्तिलते  
 ल०, इ० । ८ अजगरशिशवः । ९ निकुञ्जेऽस्मिन् ल०, द०, इ० । १० पुरीत् । ११ एकाकी ।  
 १२ मुखाय । 'मुखाये क्लोडहलयोः पोक्षम्' इत्यभिधानात् । 'पोक्षपोहलकोइमुखे नक्ट' इति सूत्रेण विद्धिः ।  
 १३ वेष्टिनः । १४ आहुषी-ल० । १५ लद्गीमृगः । १६ गण्डशील हृष्ट । १७ दबज्ज्वालसदृगः ।

गुण्युलता<sup>१</sup> वनादेष महिषो घनकर्तुरः । निर्यति सृत्युद्धामविषाणाप्रातिभीषणः ॥६८॥  
 ललद्वालधयो लोलजिह्वा व्यालोहितेक्षणाः । व्यालाः<sup>२</sup> वलस्य संशोभममी सन्दून्त्यनाकुलाः ॥६९॥  
 परमः<sup>३</sup> संसुन्पथ्य पतसुसापितोऽपि सन् । नैष तुःस्थासिकां वेष्ट<sup>४</sup> चरणैः पृष्ठवतिमिः ॥७०॥  
 चमरोऽय<sup>५</sup> चमूरोधाद् विशुतो<sup>६</sup> द्रुतसुन्पवन् । क्षोभं तनोति सैन्यस्य तर्पीरुपीव<sup>७</sup> दुर्धर्षः ॥७१॥  
 शशः शशशश्य<sup>८</sup> देष सैनिकेननुकृतः । शशणायव मीनात्मा सप्तयस्त्वं निलीयते ॥७२॥  
 सारङ्गोऽयं तनुच्छायाकहमवित्वनः<sup>९</sup> शवैः । ग्रायति स्फुक्तभरेण शालिनेव ग्राशुप्यता ॥७३॥  
 दक्षिणेभूतया<sup>१०</sup> विद्वग्मिधावन्त्यपीक्षिता<sup>११</sup> । प्रजानुपालनं न्यायं तवाचष्टे भृगप्रजा<sup>१२</sup> ॥७४॥  
 कलापी वर्हभारेण मन्दं मन्दं वजात्यस्ती । केशपाशशिं तन्धन् वनलक्ष्म्यास्तनुरुहैः ॥७५॥  
 नेत्रावलीमिवतन्धन् वनभूत्याः सचन्त्रवैः । कलापिनामर्थं संघो विभाष्यस्मिन् वनस्थले ॥७६॥  
 अंक्रीडतो<sup>१३</sup> रथाङ्गानां रथनमाकर्णयन् सुदुः । हरिणानामिदं यृथं नापस्पन्ति वर्मनः<sup>१४</sup> ॥७७॥

निकल रहे हैं मानो उसके प्राण ही निकल रहे हों ॥६७॥ जो मेघके समान कर्वर वर्ण है, जिसके सींगका अग्रभाग यमराजकी दाढ़के समान है तथा जो अत्यन्त भयंकर है ऐसा यह भैसा इस गूगुलको बनसे बाहर निकल रहा है ॥६८॥ जिनकी पूँछ हिल रही है, जिह्वा चंचल हो रही है और नेत्र अत्यन्त लाल हो रहे हैं ऐसे ये सिंह आदि क्रूर जीव स्वयं व्याकुल न होकर ही सेनाका क्षोभ बढ़ा रहे हैं ॥६९॥ मह अष्टापद आकाशमें उछलकर यद्यपि पीठके बल गिरता है तथापि पीठपर रहनेवाले पैरोंसे यह दुखका अनुभव नहीं करता । भावार्थ-अष्टापद नामका एक जंगली जानवर होता है उसके पीठपर भी चार पाँव होते हैं । जब कभी वह आकाशमें छलांग मारनेके बाद चित्त अर्थात् पीठके बल गिरता है तो उसे कुछ भी कष्ट नहीं होता क्योंकि वह अपने पीठपर-के पैरोंसे सैंभलकर खड़ा हो जाता है ॥७०॥ जो मूर्तिमान् अहंकारके समान है, दुर्जय है और सेनासे घिर जानेके कारण जल्दी-जल्दी छलांग मारता हुआ इधर-उधर दौड़ रहा है ऐसा यह मृग सेनाका क्षोभ बढ़ा रहा है ॥७१॥ हे देव, यह खरगोश दीड़ रहा है, यद्यपि सेनिकोंने इसका पीछा नहीं किया है तथापि यह भीरु होनेसे इधर-उधर दौड़कर शरण छूँड़नेके लिए आपकी सेनाके बीचमें ही कहीं छिप जाता है ॥७२॥ जिसने अपने शरीरकी कान्तिसे बनको भी काला कर दिया है ऐसा यह कृष्णसार जातिका मृग सूखे हुए वृक्षके समान अनेक शाखाओंवाले सींगोंके भारसे धीरे-धीरे जा रहा है ॥७३॥ देखिए, दाहिनी ओर धाव लगनेसे जो चारों ओर चक्कर लगा रहा है ऐसा यह हरिणोंका समूह मानो आपसे पहीं कह रहा है कि आपको सब जीवोंका पालनं करना योग्य है ॥७४॥ जो अपनी पूँछके ढारा बनलक्ष्मीके केशपाशको क्षोभाको बढ़ा रहा है ऐसा यह मधूर पूँछके भारसे धीरे-धीरे जा रहा है ॥७५॥ इधर इस वनस्थलमें यह मधूरोंका समूह ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो अपनी पूँछपर-के चन्द्रकोंसे बनकी पृथिवीरूपी स्त्रीके नेत्रोंके समूहकी शौभां ही बढ़ा रहा हो ॥७६॥ इधर देखिए, चलते हुए रथके पहियेके शब्दको बार-बार सुनता हुआ यह हरिणोंका समूह मार्ग

१ कौशिकानाम् । कुम्भोरुलकलकं कलीबे कौशिको गुग्गुलः पुरु<sup>२</sup> इत्यभिधानात् । २ घलत् । ३ दृष्टमृगाः ।  
 ४ निर्भीताः । ५ अष्टापदः । ६ अद्वैतमुखचरणो भूतवा । ७ जानाति । ८ व्याघ्रः । ९ सेनानिरोधात् ।  
 १० धावमानः । ११ रूपी च ल० । १२ 'शश प्लुतगती' चत्प्लुत्य गच्छन् । १३ अनुगतः । १४ सैन्यसैद्ध्ये ।  
 १५ अन्तहितो भवति । विलोयते थ०, इ० । १६ शब्दितः । १७ दक्षिणभागे कृतव्रणतया । 'दक्षिणे गतया  
 विद्वग्मिधावन् प्रवीक्षताम् । प्रजानुपालनं न्यायं तवाचष्टे मृगप्रजः ॥' ल० । १८ सेनिकैरवलोकिताः ।  
 १९ मृगसमूहः । २० चीत्कारं कुर्वताम् । 'क्षीडोऽकूजे' इति अहूजायें तड़विधानात् कूजायें परस्मैषदी । २१  
 वर्त्मनः ल० । त्रूरतः अ० ।

१ हरिणोप्रेशितेष्वेताः पृथग्निं लकुलुहलम् । स्वां लेखशीर्मां कामिन्यो वर्हिवहेषु मृद्गजान् ॥७६॥  
इत्यनाकुलमेवेदं सैन्यैत्याकुलीकृतम् । वनमाकश्यते विश्वगंसं प्राप्तमृगाद्विजम् ॥७७॥  
जैरयोऽप्यातपो नायमिहास्मान् देव आधते । वर्ते महातहस्ताया मैरस्तर्यानुजन्विनि ॥७८॥  
दृमं वनद्रुमा भान्ति सान्दृष्टाया मनोरमाः । अद्रमवर्यै वनलक्ष्येव मण्डपा विनिवेशिनाः ॥७९॥  
सरस्यः स्वच्छसलिला चारितोऽणास्तटद्रुमैः । स्थापिना वनलक्ष्येव प्रपां भान्ति कलमचिन्ददः ॥८०॥  
बहुआग्नासनार्कणभिदं खड्गभिरानतम् । सर्वास्तिकमपर्यन्तं वर्ते युम्मद्वलायते ॥८१॥  
इत्थं वनस्य सामृद्धयं निरूपत्रति सारथी । बनभूमिमर्तीयाय सम्राङ्गिवितान्तराम् ॥८२॥  
तद्राष्ट्रीयखुरोद्वात्तुत्पिता वनरेण्वः । दिशो मुखेषु संलग्नास्तेनुर्येवमिकाश्रियम् ॥८३॥  
सादिनोऽवार्षाणनि॑ स्वृतान्यपि॒ सितांशुकैः । कापायुणीय जासनि॑ लतानि॑ वनरेण्युभिः ॥८४॥  
वनरेणुभिरालग्नैर्जंडीभूतानि॑ योषितः । रहनांशुकमि॑ कृच्छ्रेण इधुरेष्वश्रमालसाः ॥८५॥  
कुम्भस्थलीषु संखकाः करिणामश्वरेण्वः । मिन्द्ररथियमातेनुर्धातुभूमिसमुत्पिताः॑ ॥८६॥

से एक और नहीं हट रहा है ॥७७॥ ये स्त्रियाँ हरिणियोंके नेत्रोंमें अपने नेत्रोंकी शोभा बड़े कौतूहलके साथ देख रही हैं और हरिणोंकी पूँछोंमें अपने केशोंकी शोभा निहार रही हैं ॥७८॥ जिसमें हरिण पक्षी आदि सभी जीव एक-दूसरेको बाधा किये बिना ही निवास कर रहे हैं ऐसा यह वन यद्यपि सैनिकोंके द्वारा व्याकुल किया गया है तथापि आकुलतासे रहित ही प्रतीत हो रहा है ॥७९॥ हे देव, जो बड़े-बड़े वृक्षोंकी धनी छायासे सदा सहित रहता है ऐसे इस वनमें रहनेवाले हम लोगोंकी यह तीव्र धाम कुछ भी बाधा नहीं कर रहा है ॥८०॥ ये धनी छायावाले वनके मनोहर वृक्ष ऐसे जान पड़ते हैं मानो आपकी भक्तिके लिए वनलक्ष्यमीके द्वारा लगाये हुए मण्डप ही हों ॥८१॥ किनारेपरके वृक्षोंसे जिनकी सब गरमी दूर कर दी गयी है ऐसे स्वच्छ जलसे भरे हुए ये छोटे-छोटे तालाब ऐसे मालूम होते हैं मानो वनलक्ष्यमीने कलेश दूर करनेवाली व्याघ्र ही स्थापित की हों ॥८२॥ हे प्रभो, यह वन आपकी सेनाके समान जान पड़ता है क्योंकि जिस प्रकार आपकी सेना बहुत-से बाणासन अर्थात् धनुषोंसे व्याप्त है उसी प्रकार यह वन भी बाण और असन जातिके वृक्षोंसे व्याप्त है, जिस प्रकार आपकी सेना खड़गी अर्थात् गंडा हाथियोंसे भरा हुआ है, जिस प्रकार आपकी सेना हाथियोंके समूहसे सहित है उसी प्रकार यह वन भी हाथियोंके समूहसे सहित है और जिस प्रकार आपकी सेनाका अन्त नहीं दिखाई देता उसी प्रकार इस वनका भी अन्त नहीं दिखाई देता ॥८३॥ इस प्रकार सारथिके वनकी समृद्धिका वर्णन करते रहनेपर सम्राट् भरत उस वनभूमिको इस तरह पार कर गये कि उन्हें उसकी लम्बाईका पता भी नहीं चला ॥८४॥ उस समय धोड़ोंके समूहके खुरों-के आघातसे उठी हुई वनकी धूलि समस्त दिशाओंमें व्याप्त होकर परदेकी शोभा धारण कर रही थी ॥८५॥ चुड़सवारोंके कबच, यद्यपि ऊपरसे मफेद वस्त्रोंसे ढैंके हुए ये तथापि वनकी धूलिसे व्याप्त होनेके कारण ऐसे मालूम पड़ते थे मानो कणाय रंगसे रंगे हुए ही हों ॥८६॥ मार्गके परिश्रमसे अलसाती हुई स्त्रियाँ वनकी धूलि लगनेसे भारी हुए स्तन ढैंकनेवाले वस्त्रों-को बड़ी कठिनाईसे धारण कर रही थीं ॥८७॥ गेहुं रंगकी भूमिसे उठी हुई मार्गकी धूलि

१ लोचनेषु । २ पद्मो । ३ प्रदृढः । ४ तव भजनाय । ५ पानीयशालिकाः । 'प्रसा पानीयशालिका' इत्यभिधानात् । ६ शिष्ठि सर्जक, पथे चाप । ७ गण्डमूर्तीः, पक्षे आयुधकैः । ८ उभयत्रापि गजसमूहम् । ९ अज्ञातान्तरमवधिर्दिम्बन्त्यपकर्मणि । १० अश्वारोहकायाम् । 'अश्वारोहकायाम्' इत्यभिधानात् । ११ कञ्जकुकाः । 'कञ्जकुकोवारवाणोऽस्त्रो' इत्यभिधानात् । १२ युतानि । १३. कणायरच्छितानि । १४ गैरिक ।

ततो<sup>१</sup> गच्छन्देऽप्यथो दिर्दीपे तीव्रमंशुमान् । विजिगीषु रिक्षास्त्रप्रसापः शुद्धमण्डलः ॥८७॥  
सरस्तीरतरुच्छायामाश्रयन्ति रम पत्रिणः<sup>२</sup> । शरदातपसंतापान् संकुचयत्रैसंवदः ॥८८॥  
हंसाः कलमध्येषु पुष्टीभूतान् स्वशावकान् । एमैराच्छाव्यामासुरसोदजरठालपान् ॥८९॥  
वन्याः स्तम्बेसमा भेजुः सरसीरवग्नहितुम् । मदस्तुतिषु तसासु सुक्ष्मा मधुकरवर्जीः ॥९०॥  
शास्त्राभृत्तैरुत्तच्छायाः प्रयास्तो गत्तशूधयाः । वार्षीकारमिवत्तम्बन् खरांशी कर्षीदिताः ॥९१॥  
यूर्यं वनवराहाणाहु पर्दुपरि पुष्टितम् । तत्रा प्रविश्व वेशमधिशिश्यं सकर्दमम् ॥९२॥  
मृणालैरक्रमावेष्य स्थिता हंसा विरेत्रिरे । प्रविदः शरणायेव शशाङ्करपञ्चरम् ॥९३॥  
चक्रवाक्युवा भंजे घनं शैवलमाततम् । सर्वाङ्गलम्भुषणालुविन्नलमित्रं कम्बुकम् ॥९४॥  
पुण्डरीकातपत्रेण कृतच्छायोऽविजनीवने । राजहसस्तशा भंजे हंसीभिः सह मञ्जनम् ॥९५॥  
विसम्भृः कृताहारा मृणालैरत्र पुष्टिता<sup>३</sup> । विविन्नपत्रसल्लेषु शिविये हंसवायकाः ॥९६॥  
एतद्विषयात्तिवेच्छिर्विषयः अवस्थाः लोकदलये । भुजिमेहु प्रसांख्ये न हंसा धृतिमादधुः ॥९७॥

हाथियोंके गण्डस्थलोंमें लगकर सिन्दूरकी शोभा धारण कर रही थी ॥८८॥ तदनन्तर मध्याह्न-  
का समय निकट आनेपर सूर्य अत्यन्त देवीप्रभान होने लगा । उस समय वह सूर्य किसी विजि-  
गीषु राजाके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार विजिगीषु राजा प्रताप ( प्रभाव )  
धारण करता है उसी प्रकार सूर्य भी प्रताप ( प्रकृष्ट गरमी ) धारण कर रहा था और जिस  
प्रकार विजिगीषु राजाका मण्डल ( स्वदेश ) शुद्ध अर्थात् आन्तरिक उपद्रवोंसे रहित होता है  
उसी प्रकार सूर्यका मण्डल ( विम्ब ) भी मेघ आदिका आवरण न होनेसे अत्यन्त शुद्ध ( निर्मल )  
था ॥८९॥ शरदकृतुके घामके सन्तापसे जितके पंखोंकी शोभा संकुचित हो गयी है ऐसे पक्षी  
सरोबरोंके किनारेके वृक्षोंकी छायाका आश्रय लेने लगे ॥ ९० ॥ जो मध्याह्नकी गरमी सहन  
करनेमें असमर्थ हैं और इसीलिए जो कमलोंके समूहमें आकर इकट्ठे हुए हैं ऐसे अपने बच्चोंको  
हंस पक्षी अपने पंखोंसे ढैंकने लगे ॥ ९१ ॥ मदका प्रबाह गरम हो जानेसे जिन्हें धमरोंके समूह-  
ने छोड़ दिया है ऐसे जंगली हाथी अवगाहन करनेके लिए सरोबरोंकी ओर जाने लगे ॥ ९२ ॥  
मूर्यकी किरणोंसे गीढ़ित हुए हाथी वृक्षोंकी डालियाँ तोड़-तोड़कर अपने ऊपर छाया करते  
हुए जा रहे थे और उनसे ऐसे मालूम होते थे मानो शाखाओंका उद्धार ही कर रहे हों ॥९३॥  
उस समय जंगली शूकरोंका ममूह कीचड़सहित छोटे-छोटे तालाबोंमें प्रवेश कर परस्पर एक  
दूसरेके ऊपर इकट्ठे हो शयन कर रहे थे ॥ ९४ ॥ अपने शरीरको मृणालके तन्तुओंसे लपेट-  
कर बैठे हुए हंस ऐसे मुशोभित हो रहे थे मानो अपनी रक्षा करनेके लिए चन्द्रमाकी किरणोंसे  
बने हुए पिंजड़ोंमें ही चुस गये हों ॥ ९५ ॥ जो उषणता सहन करनेमें असमर्थ है ऐसे किसी तरण  
चकवाने अपने सर्व शरीरमें लगे हुए, मोटे-मोटे तथा विस्तृत शेवालको धारण कर रखा था  
और उससे वह ऐसा मालूम होता था मानो नीले रंगका कुरता ही धारण कर रहा हो ॥९६॥  
जिसने कमलिनियोंके बनमें सफेद कमलरूप छत्रसे छाया बना ली है ऐसा राजहंस उस मध्याह्न-  
के समय अपनी हंसियोंके साथ जलमें गोते लगा रहा था ॥ ९७ ॥ जिन्होंने मृणालके टुकड़ोंका  
आहार किया है और मृणालके तन्तुओंसे ही जितका शरीर ढैंका हुआ है ऐसे हंसोंके बच्चे कमलिनी-  
के पत्ररूपी शर्वापर सो रहे थे ॥ ९८ ॥ इस प्रकार शरदकृतुका धाम तीव्र सन्ताप फैला रहा

<sup>१</sup> मध्याह्नकाले । <sup>२</sup> पक्षिणः ल० । <sup>३</sup> पक्ष । <sup>४</sup> शाखाखण्डः । <sup>५</sup> पर्वतवानि गृहीत्या आक्षोशम् । <sup>६</sup> पर्वतम् ।  
अलसर इत्यर्थः । ‘वेशान्तः पत्त्वात् चालासरः’ इत्यभिधानात् । <sup>७</sup> उषणमसहमानः। ‘शीतोष्णवयादेषः आलुः’ ।  
<sup>८</sup> आच्छादिता ।

था और उससे तपे हुए नदियोंके किनारोंपर हँसींको सन्नोष नहीं हो रहा था ॥१०५॥ उस समय सूर्य पद्मपत्र स्थ था—आकाशके बीचबीच स्थित था, पक्षपातरहित था तथापि वह पृथिवीको बहुत ही सन्तप्त कर रहा था सो ठीक ही है क्योंकि तीव्र प्रतापी पदार्थोंका मध्यस्थ रहना भी सन्ताप करनेवाला होता है ॥१००॥ जिस प्रकार कमलिनियाँ ( कमलकी लताएँ ) जलकी बैंदोंसे सुशोभित कमलोंको धारण करती हैं उसी प्रकार महाराज भरतकी स्त्रीयाँ पसीनेकी बैंदोंसे जिनपर मोतियोंका जाल-सा बन रहा है ऐसे अपने मुख धारण कर रही थीं ॥१०१॥ रानियोंके मुख-कमलोंपर जो पसीनेकी बैंदे उठी हुई थीं वे निकलते हुए सौन्दर्य रूपी रसके प्रवाहके समान शोभाको पुष्ट कर रही थीं ॥१०२॥ जिनसे पसीनेकी बैंदे टपक रही हैं ऐसे रानियोंके मुख ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो ओसकी बैंदोंसे व्याप्त हुए कमल ही हों ॥१०३॥ जिन पसीनेकी बैंदोंसे रानियोंके मुख-कमल सुशोभित हो रहे थे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो केशपाणिको अलंकृत करनेवाले मोती ही पिघल-पिघलकर तरल रूप हो गये हों ॥१०४॥ उस समय सूर्य बड़ी तेजीके साथ तप रहा था इसलिए जो घोड़े रथोंको ले जा रहे थे उनके मुख परिश्रमसे खुल गये थे, उनमें केन निकल आया था और उनके खुर समान जमीनपर भी स्खलित होने लगे थे ॥१०५॥ जिनके खुर छोटे और गोल हैं, जिनपर छोटे और चिकने रोम हैं, जो बहुत ऊँचे हैं, जिनका आसन अर्थात् पीठ बहुत बड़ी है, और जिनका बेग वायुके समान है ऐसे बड़े-बड़े उत्तम घोड़े भी जल्दी-जल्दी दौड़े जा रहे थे ॥१०६॥ जो तीव्र बेगसे सहित हैं, जो अपने आगे के खुरोंको मुखसे उगलते हुएके समान जान पड़ते हैं, जिनका बअःस्थल बड़ा है और जिनकी नाकके नथने कुछ-कुछ हिल रहे हैं ऐसे बड़े-बड़े घोड़े जल्दी-जल्दी जा रहे थे ॥१०७॥ जिनके आगे का भाग बहुत ऊँचा है, जिनके शरीरपर-के भैंवर अत्यन्त शुद्ध है, और जिनका बेग मनके समान है ऐसे घोड़े उस छोटे-से मार्गमें बड़ी शोध्रताके साथ जा रहे थे ॥१०८॥ जो बुद्धि-बल और बेगसे सहित हैं, विनयवान् हैं तथा सुन्दर गमनके धारक हैं ऐसे घोड़े पृथिवीको ( रजस्वला अर्थात् धूलिसे युक्त-पक्षमें रजोधर्मसे युक्त-समझ ) उसके स्पर्श करनेमें घृणा करते हुए ही मानो बड़े बेगसे जा रहे थे ॥१०९॥ पैदल चलनेवाले

१ जालसमूहानि । कोरकाणि का । २ प्रालेप । 'अवद्यायस्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिम् । प्रालेपं मिहिका  
च' इत्यभिधानात् । ३ रथाश्वाः । ४ उस्तुष्टाः । - रथस्तैः इत्यपि पाठः । ५ समानभूतस्तेऽपि ।  
६ पृथुतपृथुधाराः । ७ वायुवेणाः । ८ घोणाः । ९ देवमणिगमुखगुमात्रतः । १० असम्पूर्णेषु सर्वतु ।  
११ कुसमानाः । १२ वेगवद् वथा भवति तथा । १३ सवादवाणीः ।

शाकितकः । सह याद्वीकः प्रासिका॑ भन्वमि॒ समम् । नैश्चिकाश्च॑ तेऽन्योन्यं स्पर्येव यशुद्दृतम् ॥ १३५ ॥  
 पुरः प्रधवितैः॑ प्रेष्ट्विद्वारवाण॑ गपलवाः । जातपश्चा इवोर्तुय भवा वरसुरतिषुतम् ॥ १३६ ॥  
 प्रयात धावतपैत मार्गं मा रुध्वमगतः । इत्युच्चरुच वरुद्वाप्तः॑ एवैष्ट्विद्वारवाण॑ इत्युर्त्वाम् ॥ १३७ ॥  
 इतोऽप्सर्वतार्थ्यादितो धावत हास्तिकात् । इतो रथादपक्रहता॑ दूरं नश्यते नश्यते ॥ १३८ ॥  
 अमुमाज्जनसंप्रदावुत्थापयत दित्यकान्॑ । इतो॑ हस्त्युरसादृश्वानपवारथत द्रुतम् ॥ १३९ ॥  
 इतः॑ प्रस्थानमाहृत्य लिथतोऽयं वादुको गजः । मध्येऽध्य॑ प्राजितुदोषात्॑ पवस्तोऽयमितोरथः ॥ १४० ॥  
 कमेलकोऽप्यमुखस्तः॑ प्रलीप॑ पथि धावति । उत्सृष्टमारी लम्बोष्टो जनानिव विहस्यन् ॥ १४१ ॥  
 चित्रस्ताद्वैसरादेनां पतन्तीमवरोधिकाम् । संभारयन् तपातेऽस्मिन्॑ सौचिदरुणः॑ पतन्ययम् ॥ १४२ ॥  
 यवीयामेष॑ पश्यद्वीमुखालोकनविस्मितः । पालितोऽप्यश्वसंघटैनत्मानं वेद॑ शून्यधीः ॥ १४३ ॥  
 हरिद्रारस्त्रितक्षमश्चः॑ कञ्जलादिक्तत्त्वोचतः ।॑ कुट्ठिनीमनुयज्ञेष॑ प्रवयाहतरणायते ॥ १४४ ॥  
 इति प्रयाणसंजल्पैरकालाः॑ वपरिश्रमाः । सैनिकाः॑ शिविरं प्रापन् सेनान्याः॑ प्राढनिवेशितम् ॥ १४५ ॥

सैनिक जूता पहने हुए पैरोंसे दूँठ काटि तथा पत्थर आदिको लाँघते हुए घोड़े और रथोंसे भी जल्दी जा रहे थे ॥११०॥ शक्ति नामके हथियारको धारण करनेवाले लटु धारण करनेवालोंके साथ, भाला धारण करनेवाले धनुष धारण करनेवालोंके साथ और तलवार धारण करनेवाले लोग परस्पर एक-दूसरेके साथ स्पर्धा करते हुए ही मानो बड़ी शीघ्रताके साथ जा रहे थे ॥१११॥ अगे-आगे दौड़नेसे जिनके कवचके अग्रभाग कुछ-कुछ हिल रहे हैं ऐसे योद्धा लोग इतनी जल्दी जा रहे थे मानो पंख उत्पन्न होनेसे वे उड़े ही जा रहे हों ॥११२॥ चलो, दौड़ो, हटो, आगेका मार्ग मत रोको इस प्रकार जोर-जोरसे बोलनेवाले योद्धा लोग अपने सामनेके लोगोंको हटा रहे थे ॥११३॥ अरे, इन घोड़ोंके समूहसे एक ओर हटो, इन हाथियोंके समूहसे भागो, और बिचले हुए इन रथोंसे भी दूर भाग जाओ ॥११४॥ अरे, इन बच्चोंको लोगोंकी इस भीड़से उठाओ और इन हाथियोंके आगेसे घोड़ोंको भी शीघ्र हटाओ ॥११५॥ इधर यह दुष्ट हाथी रास्ता रोककर खड़ा हुआ है और इधर यह रथ सारथिकी गलतीसे मार्गके बीचमें ही उलट गया है ॥११६॥ इधर देखो, जिसने अपना भार पटक दिया है, जिसके लम्बे होंठ हैं और जो बहुत घबड़ा गया है ऐसा यह कैंट मार्गमें इस प्रकार उलटा दौड़ा जा रहा है मानो लोगोंकी बिड़म्बना ही करना चाहता हो ॥११७॥ इधर इस कंची जमीनपर घबड़ाये हुए बच्चरपर-से गिरती हुई अन्तःपुरकी स्त्रीको कोई कंचुकी बीचमें ही धारण कर रहा है परन्तु ऐसा करता हुआ वह स्वयं गिर रहा है ॥११८॥ यह तरण पुरुष वेश्याका मुख देखनेसे आश्चर्य-चकित होता हुआ घोड़ेके धक्केसे गिर गया है, परन्तु वह मूर्ख 'मैं' गिर गया हूँ इस तरह अब भी अपने-आपको नहीं जान रहा है ॥११९॥ जिसने अपने बाल लिजाबसे काले कर लिये हैं, जिसकी आँखोंमें काजल लगा हुआ है और जो किसी कुट्टीनीके पीछे-पीछे जा रहा है ऐसा यह बूँदा ठीक तरण पुरुषके समान आचरण कर रहा है ॥१२०॥ इस प्रकार चलते समयकी बाल-

१ शब्दितः प्रहरणं देषां ते शाक्तिकाः । २ यद्विहेतिकैः । ३ कौतिकाः । ४ असिहेतिकाः । ५ प्रधावनैः ।  
६ चलत्कञ्जकुकैः । ७ पुरोगमिनः । ८ भोविगतभयाः । ९ बालकान् । दिस्मयकान् ल०, द०, ह०, अ०,  
प०, स० । १० हस्तिमुहमत् । ११ गमनम् । पश्यान-ल० । १२ मार्गमध्ये । १३ सारथे । 'नियन्ता  
प्राजिता यन्ता सूतः खत्ता च सारथः' । इत्यमिथानात् । १४ उत्तानितः । १५ उद्धुः । १६ भीति यतः ।  
१७ प्रतिकूलम् । अभिमुखमित्यर्थः । १८ प्रगतस्तु तटीभृगः । १९ कञ्जकुको । २० युवा । २१ जानाति ।  
२२ पलितप्रतीकारार्थं प्रदुष्यनौषधिविदोषरज्जित । २३ शफरीम् । 'कुड्डी शफरो समे' इत्यमिथानात् ।  
२४ अनुगच्छन् । २५ वृद्धाः । 'प्रवागः स्थविरौ वृद्धो जोनो जीर्णो जरन्नपि' इत्यमिथानात् ।

सतोऽष्टोधनवद्युमुखच्छायाविकल्पिनिन्। मध्यन्दिनात्मेसञ्चाट् संप्राप शिविरान्तकम् ॥ १२२॥  
 छहरनकृतष्ठायो दिव्यं रथमधिष्ठितः । न तदातपसंभाधां चिदामासै विशांपतिः ॥ १२३॥  
 वर्णयोमिरथासङ्गेरसंबसु खसेकथः । प्रत्यात्मपि नाभ्यानं विदेह भरताधिपः ॥ १२४॥  
 नोद्बातः कोऽप्यभूदल्लो रथाक्षगणरिक्तमैः ॥ रथवेगेऽपि जास्याभूत क्लेशो दिव्यानुभवतः ॥ १२५॥  
 रथवेगानिलोदस्तं द्व्यात्मतं तदूष्यजाग्रकम् । प्रद्यादागामिर्युक्त्यात्मामिव सागंसस्त्रश्वरैः ॥ १२६॥  
 रथोङ्गतगतिकोभादुभूताङ्गपरिश्रमः । कथं कथमपि प्रापय् रथिनोऽन्ये रथं प्रभोः ॥ १२७॥  
 १८ तमध्येष्वमध्वन्वैस्तुराक्षरथयाहयम् ॥ सादिनः प्रभुणा सार्वं शिविरं प्रविदिक्षवः ॥ १२८॥  
 दूरादूर्यकुटीभेदानुष्ठितान् प्रसुरेक्षत । सेनानिवेशममितः ॥ सौधशोभायासिमः ॥ १२९॥  
 रीष्यदण्डेषु विम्बस्तान् विस्तृतान् पटमण्डपान् । सोऽपश्यज्जनतासापहारिणः सुजनानिव ॥ १३०॥  
 किंमतानि स्थलाक्षजानि हंसयूथान्यमूर्तिं वा । इत्याशाल्क्य स्थूलायाणि दूरादूषिते जनैः ॥ १३१॥  
 सामग्र्हानां निवेशेषु कायमान्तानि नैकशोः ॥ निवेशितानि विन्यासैर्विद्यौ प्रभुरेक्षतः ॥ १३२॥  
 परितः कायमानानि वीक्ष्य कण्टकिनीर्हृती । निष्कण्टके निजे राज्ये मैने तानेव कण्टकान् ॥ १३३॥

चीतसे जिन्हें मार्गका परिश्रम भी मालूम नहीं हुआ है ऐसे सैनिक लोग सेनापतिके द्वारा पहले-  
 से ही तैयार किये हुए शिविर अर्थात् ठहरनेके स्थानपर जा पहुँचे ॥ १२१ ॥ तदनन्तर जब  
 मध्याह्नका सूर्य अन्तःपुरकी स्त्रियोंके मुखको कान्तिको मलिन कर रहा था तब सञ्चाट् भरत  
 शिविरके समीप पहुँचे ॥ १२२ ॥ जिनपर छत्ररत्नके द्वारा छाया की जा रही है और जो  
 देवनिर्मित सुन्दर रथपर बैठे हुए हैं ऐसे महाराज भरतको उस दोपहरके समय भी गरमीका  
 कुछ भी दुख मालूम नहीं हुआ था ॥ १२३ ॥ जिन्होंने समीपमें चलनेवाले बृद्ध जनोंके साथ-साथ  
 अनेक प्रकारकी कथाएँ प्रारम्भ की हैं ऐसे भरतेश्वरको बीते हुए मार्गका भी पता नहीं चला  
 था ॥ १२४ ॥ दिव्य सामर्थ्य होनेके कारण रथके पहियोंकी चालसे उनके शरीरमें कुछ क्लेश  
 उदधात ( दचका ) नहीं लगा था और न रथका तीव्र वेग होनेपर भी उनके शरीरमें कुछ क्लेश  
 हुआ था ॥ १२५ ॥ रथके वेगसे उत्पन्न हुए वायुसे ऊपरकी ओर फहराता हुआ उनकी ध्वजा-  
 का लम्बा वस्त्र ऐसा जान पड़ता था मानो पीछे आनेवाली सेनाके लिए मार्ग ही सूचित कर  
 रहा है ॥ १२६ ॥ रथकी उद्धत गतिके क्षोभसे जिनके अंग-अंगमें पीड़ा उत्पन्न हो रही है ऐसे रथ-  
 पर सवार हुए अन्य राजा लोग बड़ो कठिनाईसे महाराज भरतके रथके समीप पहुँच सके थे  
 ॥ १२७ ॥ जो घुड़सवार लोग महाराज भरतके साथ ही शिविरमें प्रवेश करना चाहते थे उन्होंने  
 बचे हुए मार्गको अपने उन्हीं चलते हुए श्रेष्ठ घोड़ोंसे बड़ी शीघ्रताके साथ तय किया था  
 ॥ १२८ ॥ जो राजभवनोंकी शोभाकी ओर भी हँस रहे हैं ऐसे शिविरके चारों ओर खड़े किये  
 हुए रावटी तम्बू आदि डेराओंको महाराज भरतने दूरसे ही देखा ॥ १२९ ॥ उन्होंने धारीके  
 खम्भोंपर खड़े किये हुए बहुत बड़े-बड़े कपड़ेके उन मण्डपोंको भी देखा था जो कि सज्जन पुरुषोंके  
 समान लोगोंका सन्ताप दूर कर रहे थे ॥ १३० ॥ क्या ये स्थलकमल हैं अथवा हँसोंके समूह  
 हैं इस प्रकार आशीका कर लोग दूरसे ही उन तम्बुओंके अग्रभागोंको देख रहे थे ॥ १३१ ॥  
 सामन्त लोगोंकी ठहरनेकी जगहपर अनेक प्रकारकी रचना कर जो तम्बू बगैरह बनाये गये  
 थे उन्हें भी महाराज भरतने सामनेसे देखा था ॥ १३२ ॥ तम्बुओंके चारों ओर जो कटीली

१ दिनाधिपे ट० । मध्याह्नमूर्ये । २ विविदे । ३ कुलबृद्धादिभिः । ४ मुख ल० । ५ अतिदूरं गतम् ।  
 ६ पीड़ा । ७ रथचक्रभ्रमणः । ८ कलमः ट० । श्रमः । ९ उद्धतम् । १० अवशेषयत् । ११ अज्ञनि साधुभिः ।  
 १२ अतिकम्प प्रापय् । १३ प्रवेष्टुमिष्ठलः । १४ सेनारचनायाः समन्तात् । १५ पटकृष्टयायाणि । 'दूर्य स्थूलं  
 पटकुटीगुणलयनिष्ठेयिका तुल्या' इति दैज्यन्ती । १६ कुटीभेदाः । १७ नामाप्रकारा । १८ ददर्श ।

तद्वायामसंवतपर्याणादि<sup>१</sup> परिच्छदान् । स्कन्धावाराद् बहिः कांहिचिदावासान् प्रभुरेकत ॥ १३४॥  
 वहिनिवेशमित्यादीन् विशेषान् स विलोकयन् । प्रवेशे शिविरस्थास्य महाद्वारमधासदन् ॥ १३५॥  
 तदनन्तर समं सैन्यैः संगच्छन् किञ्चिदनन्तरम् । महाभिसमनिवेषिमाससाद् वणिक्यथम् ॥ १३६॥  
 शुक्रोपशोभभावद्वतोरणे विश्रेकतनम् । वणिगिरिस्त्रुद्वरल्वावै<sup>२</sup> स जगाहे वणिक्यथम् ॥ १३७॥  
 प्रथापणमसी तत्र रथराशोऽस्त्रियनिव । पश्यन् मेने निर्वायसां<sup>३</sup> प्रसिद्धैव तथास्थिताम् ॥ १३८॥  
 समाप्तिकं स्फुरद्वरने जनतोऽकलिकाकुलम्<sup>४</sup> । रथा वणिक्यथासंविधि पौता इव ललकृष्णरे ॥ १३९॥  
 चलदद्वीयकरुलोलैः स्फुरजिस्त्रिशशोहितैः<sup>५</sup> । राजमार्गोऽस्त्रुधेलौलां महेममकरंरथात् ॥ १४०॥  
 राजन्यकैन संख्यः समन्तादानुपालयम् । तदासी विष्णीमार्गः सर्वे राजपथोऽभवत् ॥ १४१॥  
 ततः पर्यन्तदिव्यस्तरनासुरतोरणम् । रथकल्याणे<sup>६</sup> परिष्टेपकृतवाहापरिच्छदम् ॥ १४२॥  
 आहृष्यसानमश्वीर्यहस्तिकेनातिकुरुगमम् । वहुनागवनं<sup>७</sup> जुहं<sup>८</sup> कलभैश्च करेणुमिः ॥ १४३॥  
 उत्तरपणकुतच्छाये भग्नोपानमिव पवचित् । पवचिस्तामन्तमण्डलम् ॥ १४४॥

बाहिर्यां बनायी गयी थीं उन्हें देखकर महाराज भरतने अपने निष्कण्टक राज्यमें वे ही कटि हैं ऐसा माना था । भावार्थ – भरतके राज्यमें बाढ़ीके कटि छोड़कर और कोई कटि अर्थात् शत्रु नहीं थे ॥ १३३ ॥ जहाँपर वृक्षोंकी ढालियोंके अग्र भागपर घोड़ोंके पलान आदि अनेक वस्तुएँ टैंगी हुई हैं और जो शिविरके बाहर बने हुए हैं ऐसे कितने ही डेरे महाराज भरतने देखे ॥ १३४ ॥ इस प्रकार शिविरके बाहर बनी हुई अनेक प्रकारकी विशेष वस्तुओंको देखते हुए महाराज शिविरमें प्रवेश करनेके लिए उसके बड़े दरवाजेपर जा पहुँचे ॥ १३५ ॥ बड़े दरवाजेको उल्लंघन कर सैनिकोंके साथ कुछ दूर और गये तथा जिसमें समुद्रके समान गम्भीर शब्द हो रहे हैं ऐसे बाजारमें वे जा पहुँचे ॥ १३६ ॥ जिसकी बहुत अच्छी सजावट की गयी है जिसमें तोरण बँधे हुए हैं, अनेक प्रकारकी ध्वजाएँ फहरा रही हैं और व्यापारी लोग जिसमें रत्नों-का अर्च लेकर खड़े हैं ऐसे उस बाजारमें महाराजने प्रवेश किया ॥ १३७ ॥ वहाँपर प्रत्येक दूकानपर निधियोंके समान रत्नोंकी राशि देखते हुए महाराज भरतने माना था कि निधियों-की संख्या प्रसिद्धि भावसे ही निश्चित की गयी है । भावार्थ – प्रत्येक दूकानपर रत्नोंकी राशियाँ देखकर उन्होंने इस बातका निश्चय किया था कि निधियोंकी संख्या नी है यह प्रसिद्धि भाव है, वास्तवमें वे असंख्यात हैं ॥ १३८ ॥ जो मोतियोंसे सहित है, जिसमें अनेक रत्न देदीप्यमान हो रहे हैं और जो मनुष्योंके समूहरूपी लहरोंसे व्याप्त हो रहा है ऐसे उस बाजाररूपी समुद्र-की रथोंने जहाजके समान पार किया था ॥ १३९ ॥ उस समय वह राजमार्ग चलते हुए घोड़ों-के समुद्रायरूपी लहरोंसे, चमकती हुई तलवाररूपी मछलियोंसे और बड़े-बड़े हाथीरूपी मगरों-से ठीक समुद्रकी शीभा धारण कर रहा था ॥ १४० ॥ उस समय वह बाजारका रास्ता महाराज-के तम्बू तक चारों ओरसे अनेक राजकुमारोंसे भरा हुआ था इसलिए वास्तवमें राजमार्ग हो रहा था ॥ १४१ ॥ तदनन्तर जिसके समीप हो रत्नोंके देदीप्यमान तोरण लग रहे हैं, घेरकर रखे हुए रथोंके समूहसे जिसकी बाहरकी शीभा बड़ रही है – जो घोड़ोंके समूहसे भरा हुआ है, हाथियोंके समूहसे जिसके भीतर जाना कठिन है, जो हाथियोंकी बड़ी भारी सेनासे सुशोभित है, हाथियोंके बच्चे और हथिनियोंसे भी भरा हुआ है । अनेक छोड़ोंके समूहकी छाया होनेसे

१. पलथयनादिपरिकरान् । २. शिखरात् । ३. कटकाद् बहिः । ४. धृतरत्नार्थम् । ५. प्रमाणम् ।  
 ६. तवनिष्ठिरुपेण स्थिताम् । तथास्थितान् ल० । ७. तरङ्गाकुलम् । ८. मत्स्यविशेषः । ९. रथसमूहपरिवेष्टन  
 कृतवाहापरिकरम् । १०. ईषदसमाप्तनागवतम् । नागवनसदृशमिति यावत् । ११. वेचितम् ।

प्रधितदूसिद्ध निर्यदभिरार्थन्तेनियोगिभिः । महाब्रह्मेष्व कहोलैस्तयमावि र्णव इत्यनि ॥१४५॥  
जनतोऽप्यारणाध्यग्रमहादौवारालकम् । कृतमहाकृति वीर्यं वामदेव्येव कुतास्तदम् ॥१४६॥  
विरानुभूतमधेष्वमापूर्वमिति शोभया । तृष्णो तृष्णाङ्गं पश्यन् किमप्यासीत् सविस्मयः ॥१४७॥  
निवयो वस्य पर्यन्ते मध्ये सन्नात्यनन्तशः । महतः शिविरस्प्रास्त्र त्रितेवं कोऽनुवर्णयेत् ॥१४८॥

### शाश्वतविक्रीडितम्

स श्रीमानिति चिदवतः स्वशिक्षिरं लक्ष्म्या निवासायितं  
पश्यत्तात्तत्त्विक्षिण्ड्य विशिखा<sup>१</sup> स्वर्गायहामित्रितः ।  
संभास्यन्त्रितिहारस्त्वजनतासंबाधमुक्तेतनं  
प्राविक्षतु<sup>२</sup> कृतमनिवेशमेचिरादामीलक्ष्मीपापितः ॥१४९॥  
तत्राविकृतमठुगले सुरसरित्रीर्णीभुवा वायुना  
संस्थाठुगागवेदिके विकिरता तापच्छिदः भीकरान् ।  
शस्त्रे वास्तुनि<sup>३</sup> विस्तृते स्थपतिना सथः मसुखापिते  
लक्ष्मीमान् सुखमाषस्याधिपतिः प्राची<sup>४</sup> दिशं निर्जयन् ॥१५०॥

जो कहीं पर किसी बड़े भारी बगीचाके समान जान पड़ता है और कहीं अनेक राजाओंकी मण्डलीमें युक्त होनेके कारण सभामण्डपके समान मालूम होता है, जो प्रवेश करते हुए और बाहर निकलते हुए अनेक कर्मचारियोंसे लहरोंसे शब्द करते हुए किसी महासागरके किनारेके समान जान पड़ता है । जहाँपर बड़े-बड़े द्वारपाल लोग मनुष्योंकी भीड़को दूर हटानेमें लगे हुए हैं, जहाँ अनेक प्रकारके मंगलमय शब्द हो रहे हैं और इसीलिए जो ऐसा जान पड़ता है मानो सरस्वती देवीने ही उसमें अपना निवास कर रखा हो तथा जो चिरकालसे अनुभूत होनेपर भी अपनी अनोखी शोभासे अपूर्वके समान मालूम हो रहा है ऐसे राजभवनके आँगनको देखते हुए महाराज भरत भी कुछ-कुछ आश्चर्यचकित हो गये थे ॥१४२-१४७॥ जिसके चारों ओर निधियों रखी हुई हैं और बीचमें अनेक प्रकारके रत्न रखे हुए हैं ऐसे उस बड़े भारी शिविर-की दिशेषताका कौन वर्णन कर सकता है ॥१४८॥ इस प्रकार लक्ष्मीके निवासस्थानके समान सुशोभित अपने शिविरको चारों ओरसे देखते हुए जो अत्यन्त सन्तुष्ट हो रहे हैं ऐसे लक्ष्मीपति श्रीमान् भरतने, चारों ओर दौड़ते हुए द्वारपालोंके द्वारा जिसमें मनुष्योंकी भीड़का उपद्रव दूर किया जा रहा है, जिसपर अनेक पताकाएं फहरा रही हैं, और जिसमें अनेक प्रकारकी रस्तना की गयी है ऐसे अपने तम्बूमें शीघ्र ही प्रवेश किया ॥१४९॥ जिसमें मंगल-द्रव्य रखे हुए हैं, गंगा नदीकी लहरोंसे ढत्यन्त हुए तथा सन्तापको दूर करनेवाली जलकी बूंदोंको बरसाते हुए वायुसे जिसके आँगनकी वेदी साफ की गयी है, जो प्रशंसनीय है, विस्तृत है तथा स्थपति ( शिलावट ) रत्नके द्वारा बहुत शीघ्र खड़ा किया गया है, बनाया गया है ऐसे तम्बूमें पूर्व दिशाको जीतनेवाले, निधियोंके स्वामी श्रीमान् भरतने सुखपूर्वक निवास किया

<sup>१</sup> रथ्या । <sup>२</sup> 'रथ्या प्रतोली विशिखा' इत्यमरः । <sup>३</sup> विहितमम्यगरस्तनम् । <sup>४</sup> भरतेश्वरः । <sup>५</sup> सम्माजित । <sup>६</sup> पूर्वाम् ।

आदिपुराणम्

राजमावस्थेपु शान्तजनताक्षोभेपु पीताम्भसा-

महावार्णं पद्मपद्मपु निवहे स्वैरं तुग्गमासिनि ।  
गङ्गातीस्यरोवगाहिनि वनेष्वालानितं हास्तके

जित्योदयकर्क चिरादिव फूतावासं नदा लक्ष्यते ॥ १८६ ॥  
तथासीतमुपाथनैः कुलधनैः कस्याप्रदानादिभिः

प्राप्या मण्डलभूभुजः समुचितैराध्यन् ग्याधनैः ।

सरुद्वा: प्रविहाय मानसये प्राणशिष्टपुश्यक्रिण

तुरादानतमौल्यो जिनमिव प्राज्योदयं<sup>५</sup> नाकिनः ॥ १३२ ॥

इत्यार्थं भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणाते क्रियमित्तलक्षणमहापुराणतं प्रहे भरतराजविजय-  
प्रयाणवर्णनं नाम सप्तविशतितम् पर्वत ॥२७॥

॥१५०॥ जिस समय राजाओंके सम्बूझोंमें मनुष्योंकी भीड़का क्षोभ शान्त हो गया था, घोड़ों-के समूह जल पीकर कपड़ेके बने हुए मण्डपोंमें अपने इच्छानुसार वास खाने लगे थे, और हाथियों-के समूह गंगा नदीके किनारेके सरोवरोंमें अवगाहन कराकर-स्नान कराकर-बनोंमें बाँध दिये गये थे उस समय विजयी महाराज भरतकी वह सेना ऐसी जान पड़ती थी मानो चिरकालसे ही वहाँ रह रही हो ॥१५१॥ जिस प्रकार श्रेष्ठ महिमाको धारण करनेवाले तथा समवसरण सभामें विराजमान जिनेन्द्रदेवकी देव लोग आराधना करते हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ वैभवको धारण करनेवाले तथा उस मण्डपमें बैठे हुए महाराज भरतको पूर्वदिशाके राजाओंने अपनी कुल-परम्परासे आया हुआ धन भेटमें देकर, कल्याण प्रदान कर तथा और भी अनेक योग्य वस्तुएं देकर उनकी आराधना-सेवा की थी। इसी प्रकार उनकी सेनाके द्वारा रोके हुए अन्य कितने ही राजाओंने अहंकार छोड़कर दूरसे ही मस्तक झुकाकर चक्रवर्तीके लिए प्रणाम किया था ॥१५२॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध भगवज्जितसेवाचार्यप्रणीति शिपष्टिलक्षण श्रीमहादुरागंसंग्रहके भाषानुकादमें भरतराजका राजाओंकी विजयके लिए प्रथाण कहना इस बातका वर्णन करनेवाला सत्ताईसवर्बी पर्व समाप्त हुआ।

## अष्टाविंशतितम् पर्व

अथान्येदुद्दिनारम्भे कृतप्राज्ञातिकक्रियः । प्रयागमकरोचको चक्रतानुमार्गवै<sup>१</sup> ॥१॥  
 अन्तर्घट्यं चक्रमाक्रान्तपरचक्रप्राक्षमस्म् । दण्डरत्न दण्डित्वारतिर्द्वयमस्य<sup>२</sup> पुरोऽस्मवत् ॥२॥  
 रथयं देववहस्तेण यक्षं द्वा हस्त लाद्याः । जयाक्षमिदमंव्यास्य द्वयं शेषः परिच्छदृ<sup>३</sup> ॥३॥  
 विजयाधीर्थलिप्यधिव्यमणिं यागहस्तिनम्<sup>४</sup> । प्रतस्ये प्रभुराहुष्य नामना विजयपर्वतम् ॥४॥  
 प्राचीं दिशमधो जेनुभाष्योधेस्तमुद्यातम् । नूर्व<sup>५</sup> हत्येवमव्याजाद्वृहे<sup>६</sup> विजयपर्वतः<sup>७</sup> ॥५॥  
 सुरेभं<sup>८</sup> शरदभ्राममारुद्धो जयकुञ्जरम् । स रेते दीपमुकुडः सुरेभं<sup>९</sup> सुरराहिव ॥६॥  
 मितातपश्रमस्योऽविचृतं श्रियमादधे । यशस्वा प्रसवागारमिव<sup>१०</sup> तदृशज्ञानमितम् ॥७॥  
 लक्ष्मीप्रहासविशदा चामराली समन्तसः । अधूयतास्य विज्यसतापा अयोत्सवे शारदी ॥८॥  
 जयद्विरदमारुद्धो उवलज्जैव्रास्तभासुरः । जयलक्ष्मीकटाक्षाणामगमत् स शरव्यताम्<sup>११</sup> ॥९॥  
 महामुकुटव्यदानो सहस्राणि<sup>१२</sup> समन्तसः । हत्येवुप्रस्तुमिलु रम्भमुखिविश्विमिवामदात् ॥१०॥

अथानन्तर—दूसरे दिन सबेरा होते ही जो प्रातःकालके समय करने योग्य समस्त क्रियाएँ कर चुके हैं ऐसे चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्नके पीछे-पीछे प्रस्थान किया ॥१॥ शत्रु-समूहके पराक्रमको नष्ट करनेवाला तथा स्वयं दूसरोंके द्वारा उल्लंघन न करने योग्य चक्ररत्न और शत्रुओंको दण्डित करनेवाला दण्डरत्न, ये दोनों ही रत्न चक्रवर्तीकी सेनाके आगे-आगे रहते थे ॥२॥ चक्ररत्न एक हजार देवोंके द्वारा रक्षित था और दण्डरत्न भी इतने ही देवोंके द्वारा रक्षित था । वास्तवमें चक्रवर्तीकी विजयके कारण ये दो ही थे, शेष सामग्री तो केवल शोभाके लिए थी ॥३॥ अबकी बार चक्रवर्तीने, जिसका शरीर विजयाधीर्थ पर्वतके साथ स्पर्धा कर रहा है ऐसे विजयपर्वत नामके पूज्य हाथीपर सवार होकर प्रस्थान किया था ॥४॥ उस समय ऐसा मालूम होता था मानो समुद्र पर्यन्त पूर्व दिशाको जीतनेके लिए उद्यत हुए महाराज भरतको उस हाथीके छलसे विजयाधीर्थ पर्वत ही धारण कर रहा हो ॥५॥ जिस प्रकार देवीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढ़ा हुआ सुशोभित होता है उसी प्रकार देवीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला भरत शरदकृतुके बादलोंके समान सफेद और देवोंके द्वारा दिये हुए उस विजयपर्वत हाथीपर चढ़ा हुआ सुशोभित हो रहा था ॥६॥ भरतेश्वरके ऊपर लगा हुआ सफेद छत्र ऐसी शोभा धारण कर रहा था मानो छत्रके बहानेसे पशकी उत्पत्तिका स्थान ही हो ॥७॥ लक्ष्मीके हास्यके समान निर्मल और शरदकृतुकी चाँदनीके समान सन्तापको नष्ट करनेवाली चमरोंकी पक्षित महाराज भरतके चारों ओर ढोली जा रही थी ॥८॥ विजय नामके हाथीपर आरूढ़ हुए और विजय प्राप्त करनेवाले प्रकाशमान अस्त्रोंसे देवीप्यमान होनेवाले भरतेश्वर जयलक्ष्मीके कटाक्षोंके लक्ष्य बन रहे थे । भावार्थ—उनकी ओर विजयलक्ष्मी देख रही थी ॥९॥ जिस प्रकार देव लोग इन्द्रके पीछे-पीछे चलते हैं उसी प्रकार हजारों मुकुट-बद्ध बड़े-बड़े राजा लोग चारों ओर भरत महाराजके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥१०॥ ‘आज बद्ध बड़े-बड़े राजा लोग चारों ओर भरत महाराजके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥१०॥’

१ अनुमनात् । २ अरिनिकर । ३ परराष्ट्र वा । ४ चक्रिणः । ५ परिकर । ६ विजयाधीरिणा स्पर्धमान-देहम् । ७ पूजोपेतग्रन्थम् । ८ ननु ल० । ९ विजयाधीरिः । १० सुशब्दम् । ११ ऐरावतम् । १२ शत्रव्याज । १३ लक्ष्यताम् । ‘लक्ष्यं लक्ष्यं शरव्यं च’ इत्यमिथानात् । १४ अपरिमिता इत्यर्थः ।

दूरस्य प्रयातव्यं निवेष्ट्यसुपार्णवम् । २ द्वरध्वमिति सेनान्यः वैनिकानुदतिष्ठयन् ॥ ११ ॥  
 अव्ययोः प्रस्थितो देवो दक्षीयद्वच् प्रयाणकम् । बलाधिकारिणामित्रेण वचो बलमनुक्षुभत् ॥ १२ ॥  
 अद्याभिन्धुः प्रयातव्यं गङ्गाद्वारे निषेशनम् । ३ संशाल्यो मागधोऽर्जैव चिलङ्घ्य पयमा निधिम् ॥ १३ ॥  
 समुद्रस्य पश्यामः समुद्रङ्गसरङ्गकम् । ४ समुद्रं लहोऽर्जैव समुद्रं शासनं विमोः ॥ १४ ॥  
 अन्योन्यस्येति संजल्यैः संप्राप्तिष्ठक्ते सेनिकाः । प्रयाणभरीज्ञवानस्तदोद्यम् ५ यामदिष्ठनते ॥ १५ ॥  
 ततः प्रचलिता सेना गानुगङ्ग ध्रुतायतिः । गिमानेव तदायामं पश्ये प्रथितम्भनिः ॥ १६ ॥  
 सच्चामरा चलकंसो यत्वलाङ्का६ पताकिनो७ । अन्वियाय चमूर्गङ्गा सतुरङ्गा नरङ्गिणीम् ॥ १७ ॥  
 राजहंसैः कृताध्याया क्वचिद्वयस्त्वलद्यातिः । चमूर्गिंष्ठ प्रति प्रायानै८ सा दिनीयेव जाह्नवी ॥ १८ ॥  
 ९ विपरीतामतदृति९ निम्नगा१० मुखतस्थितिः । त्रिमार्गां व्यजंष्टायौ पृतना अहुमार्गंगा ॥ १९ ॥

बहुत दूर जाना है और समुद्रके समीप ही ठहरना है इसलिए 'जल्दी करो' इस प्रकार सेनापति लोग सेनिकोंको जल्दी-जल्दी उठा रहे थे ॥ ११ ॥ 'अरे जल्दी करो, महाराज प्रस्थान कर गये, और आजका पड़ाव बहुत दूर है' इस प्रकार सेनापतियोंके बचन सेनाको क्षीभित कर रहे थे ॥ १२ ॥ 'आज समुद्र तक चलना है, गंगाके द्वारपर ठहरना है और आज ही समुद्रको उल्लंघन कर मागधेवको बश करना है ॥ १३ ॥ आज हम लोग, जिसमें ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं ऐसे समुद्रको देखेंगे और आज ही' समुद्रको उल्लंघन करनेके लिए महाराजकी भहर सहित आज्ञा है' ॥ १४ ॥ इस प्रकार परस्पर वासीलाप करते हुए सेनिकोंने प्रस्थान किया, उस समय प्रयाण-कालमें बजनेवाले नगाड़ीके उठे हुए शब्दने आकाशको शब्दायमान कर दिया था ॥ १५ ॥ तदनन्तर, जिसका शब्द सब और फैल रहा है ऐसी वह सेना गंगा नदीके किनारे-किनारे लम्बी होकर इस प्रकार चलने लगी मानो उसकी लम्बाईका नाप करती हुई ही चल रही हो ॥ १६ ॥ उस समय वह सेना ठीक गंगा नदीका अनुकरण कर रही थी क्योंकि जिस प्रकार गंगा नदीमें हंस चलते हैं उसी प्रकार उस सेनामें चमर हुळाये जा रहे थे, जिस प्रकार गंगा नदीमें बगुला उड़ा करते हैं उसी प्रकार उस सेनामें ध्वजाएँ फहरायी जा रही थीं और जिस प्रकार गंगा नदीमें अनेक तरंग उठा करते हैं उसी प्रकार उस सेनामें अनेक धोड़े उछल रहे थे ॥ १७ ॥ वह सेना समुद्रकी ओर इस प्रकार जा रही थी मानो दूसरी गंगा नदी ही जा रही हो क्योंकि जिस प्रकार गंगा नदीमें राजहंस निवास करते हैं उसी प्रकार उस सेनामें भी राजहंस अर्थात् थेषु राजा लोग निवास कर रहे थे और जिस प्रकार गंगा नदीकी गति कहीं भी स्खलित नहीं होती उसी प्रकार उस सेनाकी गति भी कहीं स्खलित नहीं हो रही थी ॥ १८ ॥ अथवा उस सेनाने गंगा दीको जीत लिया था क्योंकि गंगा नदी विपरीत अर्थात् उलटी प्रवृत्ति करनेवाली थी ( पक्षमें वि-परीत - पक्षियोंसे व्याप्त थी ) परन्तु सेना विपरीत नहीं थी अर्थात् सदा चक्रवर्तीके आज्ञानुसार ही काम करती थी, गंगा नदी निम्नगा अर्थात् नीच पुरुषको प्राप्त होनेवाली थी ( पक्षमें छालू स्थानकी ओर बहनेवाली थी ) परन्तु सेना उसके विश्व उश्मतगा अर्थात् उश्मत पुरुष-चक्रवर्तीको प्राप्त होनेवाली थी और इसी प्रकार गंगा त्रिमार्गंगा अर्थात् तीन मार्गोंसे गमन करनेवाली थी ( पक्षमें त्रिमार्गंगा, यह गंगाका एक नाम है ) परन्तु

१ अर्णवसमीपे । २ वेग कुरुध्वम् । ३ दूरतरम् । ४ आ समुद्रम् । ५ साधनीयः । संसाध्यो इ०, अ०, द०, ल० । ६ उच्चैश्वलद्वीचिकम् । ७ समुद्रलङ्घनैज्यैवं ल०, द०, इ० । ८ सुदृशा सहितम् । ९ गस्तुमुपकान्त-कलः । १० खम् । ११ छवनिमकारयत् । १२ विसक्षिष्ठकासहितम् । १३ सपत्नाकावती । १४ तरुणवतीम् । १५ अगच्छत् । १६ पक्षिभिः परिवृताम् । प्रतिकूलाभिति ध्वनिः । १७ विपरीत-दृतिरहितेत्यर्थः । १८ नीच-पक्षगामिति ध्वनिः ।

अतुग्रहात्तं यान्ति ध्वजिनी सा चर्मोद्युक्तः । वर्षेणुभिराक्षण्यं संममज्जेव खाल्गणम् ॥२०॥  
 दुर्विगाहा महाप्राहा<sup>१</sup> सैन्यान्युचेस्तस्तरे । गजानुगा<sup>२</sup> धुर्मीर्ष्णांषुराजकुलस्थिती<sup>३</sup> ॥२१॥  
 मार्गे<sup>४</sup> बहुविधान् वेशान् सरिनः पर्वतानपि ।<sup>५</sup> वनधीन वत्तदुर्गाणि खर्मीरप्यस्यगान् प्रसुः ॥२२॥  
 अगोपदेष्वरप्येषु<sup>६</sup> दशं व्यापारयन् विभुः । भूमिच्छद्रविधानाच<sup>७</sup> क्षणं यज्ञभिवातनोत् ॥२३॥  
 पथि प्रणीमुरागस्य संभान्ता मण्डलाधिपाः । दण्डोपनत्युत्तस्य<sup>८</sup> विषयोऽयमिति प्रभुम् ॥२४॥  
 स<sup>९</sup> चक्र धेहि<sup>१०</sup> राजेन्द्र सधुर<sup>११</sup> प्राज<sup>१२</sup> सारथे । संजल्य इति नास्यासीदयत्तावनस्त्रिषः ॥२५॥  
 प्रतियोदुमशक्तास्तं<sup>१३</sup> प्रथनेषु जिर्गाषयः । तथादं प्रणतिव्याजात् सर्वालिभिरकाङ्क्षयन् ॥२६॥  
 २७॥ किमुलभरिष्ठेषु दुर्गामधुरजन्म<sup>१४</sup> उक्तक्षेषु इव सौधस्त महतां चित्रमाहितम् ॥२७॥

सेना अनेक मार्गोंसे गमन करनेवाली थी ॥१९॥ गंगानदीके किनारे-किनारे जाती हुई वह सेना अपनी फहराती हुई ध्वजाओंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो वनकी धूलिसे भरे हुए आकाशरूपी अंगनको ध्वजाओंके बस्तोंसे साफ ही कर रही हो ॥२०॥ महाराज भरतकी सेनाओंने गंगाकी ओर आनेवाली उन अनेक नदियोंको पार किया था जो राजकुलकी स्थितिके समान जान पड़ती थीं वयोंकि जिस प्रकार राजकुलकी स्थिति दुर्विगाह अर्थात् दुःखसे जाननेके घोम्य होती है उसी प्रकार वे नदियाँ भी दुर्विगाह अर्थात् दुःखसे प्रवेश करने योग्य थीं और राजकुलकी स्थिति जिस प्रकार महायाह अर्थात् महास्वीकृतिसे सहित होती है उसी प्रकार वे नदियाँ भी महायाह अर्थात् बड़े-बड़े मगर-मच्छोंसे सहित होती ही ॥२१॥ धनवान् महाराज भरत मार्गमें पड़ते हुए अनेक देश, नदियाँ, पर्वत, वन, किले और खान आदि सबको उल्लंघन करते हुए आगे चले जा रहे थे ॥२२॥ गाय आदि जानवरोंके संचारसे रहित अर्थात् अगम्य बनोंमें हृषि ढालते हुए भरतेश्वर ऐसे जान पड़ते थे मानो पृथिवीके छिद्रोंको टाँकनेके लिए धरण-भरके लिए न यत्न ही कर रहे हों ॥२३॥ मार्गमें घबड़ाये हुए अनेक मण्डलेश्वर राजा भरतको यह सौचकर प्रणाम कर रहे थे कि यह देश दण्डरत्नके धारकका है ॥२४॥ मार्गमें महाराज भरतेश्वरके समस्त शत्रु विना प्रयत्नके ही नम्रीभूत होते जाते थे इसलिए उन्हें कभी यह शब्द नहीं कहने पड़ते थे कि हे राजेन्द्र, आप चक्ररत्न धारण कीजिए और हे सारथे, तुम रथ चलाओ ॥२५॥ जीतनेकी इच्छा करनेवाले अन्य कितने ही राजा लोग युद्धमें भरतेश्वरसे लड़नेके लिए समर्थ नहीं हो सके थे इसलिए नमस्कारके बहाने अपने मुकुटोंसे ही उनके परोंकी ताड़ना कर रहे थे ॥२६॥ महाराज भरत जिस प्रकार अपने राज्यमें विभूत्व अर्थात् ऐश्वर्य धारण करते थे उसी प्रकार शत्रुओंके राज्योंमें भी विभूत्व अर्थात् पृथिवीका अभाव धारण करते थे—उनकी भूमि छीन लेते थे, (विगत भूयेषां तेषां भावः विभूत्वम् ) और जिस प्रकार अपने राज्यमें भूप-रागानुरूजन अर्थात्

१ महातकाः, पक्षे महार्दीकाराः । २ नदीः । ३ राजकुलस्थितेः समाः [ प्रकारायै वहुत् ] । ४ वहुसंख्यान् ।  
 अहुस्थितान् ल०, इ० । वहुतिवान् ट० । ५ सरोवरान् । धनवान् ल०, प०, इ० । वलवान् अ०, स० ।  
 ६ अगम्येषु । ७ भूयतच्छादनाव । ८ दण्डेन प्राप्तं वृत्तं पर्य सत्यं । ९ प्रणामः । १० प्रसिद्धस्त्वम् ।  
 ११ धारय । १२ यानमुखम् । 'धूः स्त्री कलोबे यानमुखम्' इत्यभिधानात् । १३ प्रेरय, 'अज प्रेरणे च' ।  
 १४ युद्धेषु । प्रधनेषु ल०, द०, इ०, प०, स०, अ० । १५ प्रभुत्वम्, व्यापिल्वं च । १६ स्वरात्मूपक्षे भूपाना-  
 मनुरामरक्षजनम् । अरिसात्मपक्षे भूक्षः परामरणजनम् ।

संव्यादिविषये<sup>१</sup> नास्थ समक्षोऽहि पार्थिवः । २ षाढगुप्तमत एषाहिमन् चरितार्दमभूत् प्रभी<sup>२</sup> ॥२८॥  
प्रतिराष्ट्रमुपानीतप्राभृतान् विषयाधिष्ठान् । संभाषयन् प्रसादेन सोऽप्यग्राम् विषयान् वहृन् ॥२९॥  
नास्त्रै व्यापारितो हस्तो मार्को धनुषि नार्पिता । केवलं प्रभुमाकर्त्त्वं व्राची दिविजिताऽमुना ॥३०॥  
गोकुलानामुपान्तेषु सोऽप्यश्वद् युवचलमान्<sup>३</sup> । वगवालीभिराङ्गदजटकार्ण् गोऽभिरक्षिणः ॥३१॥  
मन्याकर्षश्रमोद्भूतस्वेदविष्टुचिताननाः । मध्यती<sup>४</sup> सकुचोक्तम् सलीलक्रिकनतैर्णः ॥३२॥  
मन्थरजगुसमाकृष्टिवलान्तत्राहुः<sup>५</sup> । श्लथोऽनुकाः । ऊस्तस्तनांशुका लक्ष्यत्रिवलीभृण्डादराः ॥३३॥  
भुवधाभिघातोचलितस्थलगोरसविष्टुभिः । ६ वरलरङ्गसलगनः शोभा कामपि पुष्टपतीः ॥३४॥  
मन्यारत्रानुमारेण किञ्चिदास्त्वधमूर्छनाः<sup>७</sup> । विष्वस्तकवरीवधाः कामस्येव पताकिकाः ॥३५॥  
गोष्टाङ्गेषु सलापैः<sup>८</sup> स्वैरमारद्धमन्थनाः । प्रभुर्गोपवधूः पद्यन् किमायासीन् समुत्सुकः ॥३६॥  
वने वनगर्जुनुष्टे<sup>९</sup> प्रभुमेनं वर्त्तचराः । दन्तैर्केनकरीक्षाणामद्राष्टुः सह मौकिकैः ॥३७॥

राजाओंके प्रेमपूर्ण अनुरागको धारण करते थे उसी प्रकार शत्रुओंके राज्योंमें भी भू-परागा-  
नुरंजन अर्थात् पृथिवीकी धूलिसे अनुरंजन धारण करते थे, शत्रुओंको धूलिमें मिला देते थे,  
सो ठीक ही है, क्योंकि महापुरुषोंकी चेष्टाएँ आश्चर्य करनेवाली होती होती हैं ॥२७॥ सन्धि  
आदि गुणोंके विषयमें कोई भी राजा महाराज भरतके बराबर नहीं था इसलिए सन्धि आदि  
छहों गुण उन्होंमें चरितार्थ हुए थे । भावार्थ – कोई भी राजा इनके विरुद्ध नहीं था इसलिए  
इन्हें किसीसे सन्धि, विश्रह, यान, आसन, द्विधीभाव और आश्रय नहीं करने पड़ते थे ॥२८॥  
प्रत्येक देशमें भेट लेकर आये हुए वहांके राजाओंका बड़ी प्रसन्नतासे आदर-सत्कार करते हुए  
महाराज भरत बहुत-से देशोंको उल्लंघन कर आगे बढ़ते जाते थे ॥२९॥ भरतेश्वरने न तो  
कभी तलवारपर अपना हाथ लगाया था और न कभी डोरी ही धनुषपर चढ़ायी थी । उन्होंने  
केवल अपनी प्रभुत्वशक्तिसे ही पूर्व दिशाको जीत लिया था ॥३०॥ उन्होंने गोकुलोंके समीप  
ही गायोंकी रक्षा करनेवाले तथा वनकी लताओंसे जिन्होंने अपने शिरके बालोंका जूँड़ा बांध रखा  
है ऐसे तरण रवाला देखे ॥३१॥ कढ़नियोंके खीचनेके परिश्रमसे उत्पन्न हुए पसीनेकी बूँदोंसे  
जिनके मुख व्याप्त हो रहे हैं, जो लीलापूर्वक नितम्बोंको नचा-नचाकर स्तनोंको हिलाती हुई  
दही भय रही है, कढ़नियोंके खीचनेसे जिनकी भुजाएँ थक गयी हैं, जिनके सब बस्त्र ढीले पड़  
गये हैं, जिनके स्तनोंपर-का बस्त्र भी तीचेका ओर लिंसक गया है, जिनके कृश उदरमें त्रिवलीकी  
रेखाएँ साफ-साफ दिख रही हैं, रई (फूल) के आशातसे उछल-उछलकर शरीरसे जहाँ-तहाँ  
लगी हुई दहीकी बड़ी-बड़ी बूँदोंसे जो एक प्रकारकी विचित्र शोभाको पुष्ट कर रही हैं, मन्थनसे  
होनेवाले शब्दोंके साथ-साथ ही जिन्होंने कुछ गाना भी प्रारम्भ किया है, जिनके केशपाशका  
बन्धन खुल गया है और इसीलिए जो कामदेवकी पताकाओंके समान जान पड़ती हैं, तथा  
गोदालाके अंगनोंमें अपने इच्छानुसार बालालाप करती हुई जिन्होंने दहीका मधना प्रारम्भ  
किया है ऐसी गवालाओंकी स्त्रियोंको देखते हुए महाराज भरतेश्वर कुछ उत्कण्ठित हो उठे थे  
॥३२-३६॥ जंगली हाथियोंसे भरे हुए बनमें रहनेवाले भील लोगोंने जंगली हाथियोंके  
दौत और मोती भेटकर महाराजके दर्शन किये थे ॥३७॥ जिनका शरीर इशाम है जिनके

१ सन्धिविषयहयानासनद्वयाशयानां विषये । २ समानप्रतिष्ठितिकः । ३ सन्ध्यादिगुणसमूहः । ४ कृतकृत्यम् ।  
५ प्रभोः स०, अ०, द० । ६ नाशी ल०, द०, ई० । ७ तह्णगोपालान् । ‘भीषे गोपालगोसंह्यागोदुग्धभीर-  
वस्त्वावाः’ इत्यभिधानात् । ८ केशपाशान् । ९ मथनं कुर्वतीः । १० नितम्ब । ‘त्रिका कूपस्य वेमो स्यात्  
विकं पृष्ठवरे त्रये’ इत्यभिवानात् । ११ समाकर्षणालाना । १२ मनोऽन् । १३ मथन । १४ स्वरविश्रवण ।  
१५ गोस्थान । ‘गोष्टं गांहस्थानकम्’ इत्यभिषानात् । १६ मिथो भाषणैः । १७ सेविते ।

इथामाहगीरनभिव्यक्तरोमराजीस्तनद्दरीः । परिधानीकृतालोकपदकवन्धवसंकुर्ताः ॥४८॥  
 चमरीबालकाविदूकप्रतीक्षेवन्तुराः । २ कलिनीकलसंक्रमान्तरचितकपित्रिकाः ॥४९॥  
 कस्तूरिकासुगान्यासवालिताः सुरमीमृदः । संचिन्वतीर्बनामोगे प्रसाधनजिघक्षया ॥५०॥  
 पुलिन्दकन्धकाः सैन्यसमालोकनविस्मिताः । ३ अर्थाजसुन्दराकारा दूरादालोकपद प्रसुः ॥५१॥  
 चमरीबालकान् केचित् केचित् कस्तूरिकाण्डकान् । प्रमोहपायनीहृष्य दद्युम्लेष्ठराजकाः ॥५२॥  
 तत्रान्तपालदुर्गाणां सहस्राणि सहस्राणः । लघुध्वचक्षयरादेशः सेनानीः समविभियम् ॥५३॥  
 अपूर्वरत्नसंदर्भे: ४ कुप्यसारवर्तरपि । अन्तपालाः प्रमोराज्ञां सप्रणामैरमालयन् ॥५४॥  
 सतो विदूसुललक्ष्य सोऽध्यानं सह सेतुम् । गद्यप्राप्तवान्तपात् ५ उमित्रालक्ष्यमर्जवम् ॥५५॥  
 वहिः ६ सुद्धसुद्धिकरं द्वै४५५ निर्मोपरं नलम् । सुद्धसुद्धिरेव ७ मित्रमन्तरेशाद् अलोकपद् ॥५६॥  
 वर्षारम्भो दुग्धरम्भे चोऽसूद् कालानुभावतः ॥८ । ततः प्रभृति संदृशं जल द्वापान्तमाद्योन् ॥५७॥  
 अलकृष्णवान् ९ महीयस्त्वाद् द्वै४५६ पर्यवैन्तवेष्टनात् । द्वै४५७ मस्तु १० समुद्रिक्षतमगादुपसमुद्रताम् ॥५८॥  
 पदप्रसुपत्तमुद्रं तं गत्वा स्थलपथेन ११ सः । गद्योपत्तनवेदम्भगे १२ सै४५८ न्यर्वाविशाद् ॥५९॥

शरीरपर अभी रोमराजी प्रकट नहीं हुई है, उदर भी जिनका कृश है, वस्त्रके समान धारण किये हुए चंचल पत्तोंसे जिनके शरीरका संवरण प्रकट हो रहा है, चमरी गायके बालोंसे बंधे हुए केशपादोंसे जो बहुत ही सुन्दर जान पड़ती हैं, गुजाफलोंसे बनी हुई मालाओंको जिन्होंने अपना कण्ठहार बनाया है, कस्तूरी मृगके बैठनेसे सुगन्धित हुई मिट्टीको आभूषण बनाने-की इच्छासे जो बनके किसी एक प्रदेशमें इकट्ठी कर रही हैं, जिनका आकार वास्तवमें सुन्दर है और जो सेनाके देखनेसे विस्मित हो रही हैं ऐसी भीलोंकी कन्याओंको भरतने दूरसे ही देखा था ॥४८-४९॥ कितने ही म्लेच्छ राजाओंने चमरी गायके बाल और कितने ही ने कस्तूरी-मृगकी नाभि भेट कर भरतके दर्शन किये थे ॥४१॥ वहांपर सेनापतिने चक्रवर्तीकी आज्ञा प्राप्त कर अन्तपालोंके लाखों किले अपने वश किये ॥४२॥ अन्तपालोंने अपूर्व-अपूर्व रत्नों-के समूह तथा सोना चाँदी आदि उत्तम धन भेट कर भरतेश्वरको प्रणाम किया तथा उसकी आज्ञा स्वीकार की ॥४४॥ तदनन्तर सेनाके साथ-साथ बहुत कुछ दूर मार्गको व्यतीत कर वे गंगाद्वारको प्राप्त हुए और उसके बाद ही अपने समान अलंधनीय समुद्रको प्राप्त हुए ॥४५॥ उन्होंने समुद्रके समीप ही; समुद्रसे बाहर उछल-उछलकर गहरे स्थानमें इकट्ठे हुए ढीपसम्बन्धी उस जलको देखा जो कि समुद्रके निष्पत्तिके समान मालूम होता था अथवा समुद्रके जलके समान ही निष्चल-स्थायी था अर्थात् उपसमुद्रको देखा, समुद्रका जो जल उछल-उछलकर समुद्रके समीप ही ढीपके किसी गहरे स्थानमें इकट्ठा होता जाता है वही उपसमुद्र कहलाता है । उप-समुद्र ढीपके भीतर होता है इसलिए उसका जल द्रुप्य कहलाता है । उपसमुद्रका जल ऐसा जान पड़ता था मानो समुद्रका स्वेद ही इकट्ठा हो गया हो ॥४६॥ कर्मभूमिरूप युगके प्रारम्भ-में जो वर्षा हुई थी तबसे लेकर कालके प्रभावसे बहुत हुआ वही जल ढीपके अन्त भाग तक पहुँच गया था ॥४७॥ जो जल समुद्रसे उछल-उछलकर ढीपमें आया था वह अलंधनीय था, बहुत गहरा था और उसने ढीपके सब समीपवर्ती भागको धेर लिया था इसलिए वही उप-समुद्र कहलाने लगा था ॥४८॥ उस उपसमुद्रको देखते हुए भरतने सुखकर मार्गसे जाकर १ अभ्यन्तरप्रदेशः । २ गुञ्जारचित् । ३ अनुपाति । ४ अवाद । ५ कार्पासश्रीखण्डादि ।  
 ६ अपूर्वयन् । ७ समुद्रस्य वहिः । ८ ढीपसंवन्धि । ९ अगाधभावप्राप्तम् । १० प्रस्त्रणम् । ११ सामर्थ्यतः ।  
 १२ अस्यन्तमहत्त्वात् । १३ उत्कटम् । १४ सुखपथेन ल०, सुलपथेन इ०, ल० । 'सुखेन लायते गृह्णते  
 इति सुक्तः', इति 'इ' दिग्दण्डाम् । १५ वेदान्तभागे ल० ।

तेऽग्निर्गतं ग्रन्थाद्वारमस्मि १ तत्रोच्छ्रुतं महत् । शनैस्तेन २ प्रविष्या अस्तर्णं संन्यं त्यक्षिक्षत ॥५०॥  
 लभे ३ बास्तु बद्धाद्वय किञ्चित्संक्षिप्तायतः । स्कन्धावारनिवेशोऽभूदलद्वयव्यूहविस्तृतिः ४ ॥५१॥  
 नन्दनप्रतिमे ५ नस्मिन् वसे रुद्धातपाङ्गित्येव । गङ्गाराजीतानिलस्पर्शौस्तद्वलं सुखमाशसन् ६ ॥५२॥  
 तस्मिन् ७ पौरुषसाध्यं अपि कृत्यं ८ देवं प्रमाणयन् । लबणादिवज्योदयक्तः सोऽभ्युद्धृद् देविकीं क्रियाम् ॥५३॥  
 ९ अधिकासित्पञ्चास्त्रास्त्रा । स विराशमुपयोगिवान् । मन्त्रानुस्मृतिपूताम् । शुचिः १० ॥५४॥  
 सायं ११ ग्रातिकनिः प्रेषकरणीये समाहितः । पुरोधोऽविष्टितां पूजां स व्यपात् परमं हिनाम् ॥५५॥  
 सेनान्यं वलरक्षार्थं नियोज्य त्रिभिरुद्धृतिः १२ उद्धृतेः शुक्लविलोक्येऽपिष्ठायुर्लवणास्तुष्ठिम् ॥५६॥  
 १३ अतिग्रहापासागादिचिन्ताऽभूजास्य चेतसि । १४ विलिलद्वयविधारिष्ठिमहो १५ स्त्रैर्यं महात्मनाम् ॥५७॥  
 अजितं जयमारुपद् रथं दिव्याक्षसंस्मृतम् । योजितं व्रजिभिर्दिव्यर्जकस्थलविलक्षिभिः ॥५८॥  
 १६ प्रतिग्रहापासागादिचिन्ताऽभूजास्य चेतसि । १७ वाहा १८ दिव्यसञ्चेष्ट्वोदिताः १९ ॥५९॥  
 ततोऽहम् दत्तगुण्याशीः पुरोधा २० धृतमङ्गलः । २१ देव विजयरक्षेति स २२ इमामृतमापठत् ॥६०॥

गंगाके उपवनकी वेदीके अन्तभागमें सेनाका प्रवेश कराया ॥५०॥ वहाँ वेदिकामें एक बड़ा  
 भारी तोरणद्वार है जो कि उत्तर द्वार कहलाता है, उसी द्वारसे धीरे-धीरे प्रवेश कर बनके  
 भीतर सेना ठहरी ॥५०॥ वहाँ चक्रवर्तीका जो शिविर था डेरोंके कारण उसकी लम्बाई कुछ  
 संकुचित हो गयी थी पर सेनाकी रचनाका विस्तार अलंघनीय था ॥५१॥ जो नन्दन बनके  
 समान है तथा जिसके नृथ मूर्यके आतापको रोकनेवाले हैं ऐसे उस बनमें भरतकी वह सेना गंगा  
 नदीके शीतल वायुके सर्वांसे सुखपूर्वक निवास करती थी ॥५२॥ यद्यपि मागध देवको वजा करना  
 वह कार्य पौरुषसाध्य है अर्थात् पुरुषार्थसे ही सिद्ध हो सकता है तथापि उसमें देवकी प्रमाणता  
 मानकर लबण समुद्रको जीतनेके लिए तत्पर हुए भरत महाराजने भगवान् अरहन्त देवके आराधन  
 करनेका विचार किया ॥५३॥ जिसने मन्त्र-तन्त्रोंसे विजयके शस्त्रोंका संस्कार किया  
 है, तीन दिन उपवास किया है, मन्त्रके स्मरणसे जिसका आत्मा पवित्र है, जो पवित्र शश्यापर  
 बैठा हुआ है, स्त्रयं पवित्र है, सायंकाल और प्रातःकालकी समस्त क्रियाओंमें सावधान है और  
 पुरोहित जिसके समीप बैठा है ऐसे उस भरतने पञ्च परमेष्ठीकी पूजा की ॥५४-५५॥ भरतने  
 विधिपूर्वक सेनाकी रक्षाके लिए सेनापतिको नियुक्त किया और स्वयं दिव्य अस्त्र धारण कर लबण  
 समुद्रको जीतनेकी इच्छासे प्रस्थान किया ॥५६॥ समुद्रको उल्लंघन करनेकी इच्छा करने-  
 वाले भरतके चित्तमें यह भी चिन्ता नहीं हई थी कि क्या-क्या साथ लेना चाहिए और क्या-  
 क्या यहाँ छोड़ देना चाहिए सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंका धैर्य ही आश्चर्यजनक होता  
 है ॥५७॥ जो देवोपनीत अस्त्र-शस्त्रोंसे भरा हुआ है और जिसमें जल स्वल दोनोंपर समान  
 रूपसे चलनेवाले दिव्य धोड़े जुते हुए हैं ऐसे अजितंजय नामके रथपर भरतेश्वर आरूढ़ हुए  
 ॥५८॥ जो पत्नोंके समान हरितवर्ण है, जिसपर बहुत ऊने चब्रके आकारसे चिह्नित ध्वजा  
 फहरा रही है और जो दिव्य सारथिके द्वारा प्रेरित है—हाँका जा रहा है—ऐसे उस रथको वेग-  
 शाली धोड़े ले जा रहे थे ॥५९॥ तदनन्तर है देव, आपकी जय हो इस प्रकार भरतके लिए  
 १ तत्रोत्तरं द०, ल० । २ द्वारेण । ३ गृहसामर्थ्यतः । ४ बलविद्यासविस्तारः । ५ सदृशो । ६ —माविशात्  
 ल० । ७ मागधामरुमाध्यनरूपकार्ये । ८ मन्त्रसंस्कृतः । ९ अस्तमनप्रभातसंबन्धिः । १० स्वीकारत्यजनादि ।  
 ११ विलद्विगुमिच्छोः । १२ मतास्थिर्य व०, स०, इ० । १३ वाहनवाजिभिः इश्यामवणीकृतरथम् । अनेक-  
 तदधाराः हरिदण्ड इत्युक्ताः । १४ वेगितः । १५ दिव्यसारथिप्रेरिताः । 'नियन्ता प्राविता यन्ता सूतः  
 द्वितीया च सारथिः । सव्येष्टदक्षिणस्थी च संजारथकुटुम्बिनः' इत्यभिधानात् । ( सव्येष्टेति अद्वन्त इति  
 केचित् ), १६ चोक्षितं ल० । नोदिताः स०, अ० । १७ धृतमङ्गलम् अ०, स०, इ० । १८ वृहचं मन्त्रमित्यर्थः ।

जयग्निं विशुलागेव वन्यता धर्मनायकः । २४ अर्मविजयी भूत्वा तत्प्रसादाज्जयाग्निलम् ॥६१॥  
सम्भव्यदिवनिलया देवास्त्रं द्रभुक्त्यन्तनिंवासिनः । लान् विजेतुमयं कालस्त्वेष्युर्चेतुं घोष च ॥६२॥  
तनः कतिपयैरेव नायकैः परिवारितः । <sup>३</sup>जगतीतलमालभूत् गण्डगाढारस्य चक्रभूत् ॥६३॥  
न केवलं समुद्रान्तःप्रवेशद्वारमेव तत् । कार्यसिद्धेष्वपि द्वारं तदमस्तु रथाङ्गभूत् ॥६४॥  
भूतमधुशालब्देष्वस्य <sup>४</sup> तद्रेष्यारोहणं विमोः । विजयश्रीमसुद्राहवेष्यारोहणवृत्त्वम् ॥६५॥  
मद्युध्यक्षेत्रं लितीत्रं जायर्थाद्विक्षित्यप्यद्युध्यक्षेत्रं एवाद्यक्षेत्रं लित्याद्युध्या महादर्शी ॥६६॥  
म ग्रतिज्ञामिष्वाल्लो जगतीं नां महायतिम् । विस्तीर्णमिव <sup>५</sup> तथ्यारं पारावात्मजीगणत् ॥६७॥  
सुहुः प्रचलदुद्रेष्यकल्लोलमनिलाहतम् । विलक्ष्यनामयाद्युर्च्छः कृत्युर्वन्नमिष्वारकैः ॥६८॥  
र्वीचित्ताहुमिरम्भुक्तैः सरनैः दीक्षोर्कर्तः । वायं स्वस्यव तन्वानं मौकितकाभूतमिष्विनैः ॥६९॥  
अमधुश्यशुश्यमाकान्तविष्वद्वीपमयारकम् । पैरेष्वलहुव्यमभोभ्यं स्ववलौघानुकारिणम् ॥७०॥  
<sup>६</sup>उत्केनजूम्भिकारम्भैः माप्तस्मारमिष्वोल्लष्णम् । केनायशव्यमाधर्तुं कवचिद्यनवस्त्रितम् ॥७१॥

पवित्र आशीर्वाद देकर मंगलद्रव्य धारण किये हुए पुरोहितने इस नीचे लिखी हुई क्रत्याको पढ़ा ॥६०॥ समस्त कर्मवन्धनको नष्ट करनेवाले धर्मनायक-सीर्वकर देव सदा जयवन्त रहते हैं इसलिए उनके प्रसादसे तू भी धर्मपूर्वक विजय प्राप्त कर, सबको जीत ॥६१॥ उसी समय पुरोहितने यह भी जोरसे घोषणा की कि हे देव, इस समुद्रमें निवास करनेवाले देव आपके उपभोग करने योग्य क्षेत्रके भीतर हो रहते हैं इसलिए उन्हें जीतनेके लिए आपका यह समय है ॥६२॥ तदनन्तर कुछ दीर पुरुषोंसे बिरे हुए चक्रवर्ती भगत गंगाढारकी वेदीपर जा चढ़े ॥६३॥ चक्रवर्तीने उस गंगाढारकी वेदीको केवल समुद्रके भीतर प्रवेश करनेका द्वार ही नहीं समझा था किन्तु अपने कार्यकी सिद्धि होनेका भी द्वार समझा था ॥६४॥ मंगल वेषको धारण करनेवाले चक्रवर्तीका उस वेदीपर आरूढ़ होना विजय-लक्ष्मीके विवाहकी वेदीपर आरूढ़ होनेके समान बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था ॥६५॥ यह वेदी मेरे घरके आंगनकी वेदी है इस प्रकार कल्पना करते हुए भरतने महासागरपर कृत्रिम नदीकी बृद्धिसे दृष्टि डाली थी । भावार्थ – भरतने अपने बलकी अधिकतासे गङ्गाकी वेदीको ऐसा समझा था मानो यह हमारे घरके आंगनकी ही वेदी है और सहस्रमुद्रको ऐसा माना था मानो यह एक छोटी-सी नहर ही है ॥६६॥ वे उस बड़ी लम्बी वेदीपर इस प्रकार आरूढ़ हुए थे जैसे अपनी प्रतिज्ञापर ही आरूढ़ हुए हों और समुद्रको उन्होंने ऐसा माना था जैसे उसके दूसरे किनारेपर ही पहुँच गये हों ॥६७॥ उस वेदीपर-से उन्होंने समुद्र देखा, उस समुद्रमें बारबार तटको उल्लंघन करनेवाली लहरें डठ रही थीं, पवन उसका ताढ़न कर रहा था और वह अपने गम्भीर शब्दोंसे ऐसा मालूम होता था मानो उल्लंघनके भयसे रो ही रहा हो । तरंगलमी भुजाओंसे किनारेपर छोड़े हुए रत्नसहित जलके छोटे-छोटे कणोंसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो भरतके लिए मोती और अक्षतोंसे मिला हुआ अर्घं ही दे रहा हो । उस समुद्रमें असंख्यात शंख थे, उसने समस्त द्वीपोंको आक्रान्त कर लिया था, वह पाररहित था, उसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता था और न उसे कोई क्षोभित ही कर पाता था इसलिए वह ठोक भरतकी सेनाके समूहका अनुकरण कर रहा था क्योंकि उसमें भी बजाये जानेवाले असंख्यात शंख थे, उसने भी समस्त द्वीप आक्रान्त कर लिये थे—अपने अधीन बना लिये थे, वह भी अपार था, वह भी दूसरोंके द्वारा अलंघनीय लधा क्षोभित करनेके अयोग्य था । वह समुद्र किसी अपस्मार (मृगी)

<sup>१</sup> तीर्थकराः । <sup>२</sup> त्वस्यालक्षोत्र । <sup>३</sup> वेदिभुवम् । <sup>४</sup> रथाङ्गधृत् द०, इ०, ल० । <sup>५</sup> महासालकारस्य । <sup>६</sup> 'कुल्याल्पा कुत्रिमा सहित्' । <sup>७</sup> पारंगतम् । <sup>८</sup> उद्गतहिणीरामिवृद्धिः । पक्षे उद्गतकैत ।

अकस्मान् दुर्बलान्मनिभिः स चलाचलम् । अकारणकृतावर्तमति स कुकुसुकस्थितिम् ॥३२॥  
 हमन्तमिव केनोघ्नेऽप्यत्मिवै वौचिभिः । चलन्तमिव कल्लोलैर्मायन्तमिव शूणितैः ॥३३॥  
 मरन्तमुहयणविष्टं मुक्तश्चकारमाकरम् । स्फुक्तस्फुनिमोक्तं स्फुरन्तमिव भोगिनम् ॥३४॥  
 अयग्नुपानादुद्गिक्तप्रतिश्याथमिकाधिकम् । क्षुतानीत्र चिकुर्वाणं अवतितानि सहज्ञशः ॥३५॥  
 आद्यूनमसकुर्व्यात्विवस्त्रोत्तिवनीरम्भम् । रसातिरेकाद्वद्गारं तन्वानमिव खात्वृतैः ॥३६॥  
 निजगम्भीरपातालमहागत्ताष्वेशतर्तः । अनुपमन्तमिवाभोभिरातालुविवृताननम् ॥३७॥

के रोगीके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार अप्स्मारका रोगी केनसहित आती हुई जूमिभक्तों अर्थात् जमुहाइयोंसे व्याकुल रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी केनसहित उठती हुई जूमिभक्ता अर्थात् लहरोंसे व्याकुल था, जिस प्रकार अप्स्मारका रोगी किसीके द्वारा पकड़कर नहीं रखा जा सकता उसी प्रकार वह समुद्र भी किसीके द्वारा नहीं रोका जा सकता और जिस प्रकार अप्स्मारका रोगी किसी भी जगह स्थिर नहीं रहता इसी प्रकार वह समुद्र भी किसी जगह स्थिर नहीं था-लहरोंके कारण चंचल हो रहा था । वह समुद्र अकस्मान् ही गम्भीर शब्द करता था, बिना कारण ही चंचल था और बिना कारण ही उसमें आवर्त अथवा भैंवर पड़ते थे, इसलिए उसकी दशा किसी अत्यन्त अस्थिर मनुष्यसे भी, बढ़कर हो रही थी क्योंकि अत्यन्त अस्थिर मनुष्य भी अचानक शब्द करने लगता है, चिल्ला उठता है, बिना कारण ही कौपने लगता है, और बिना कारण ही आवर्त करने लगता है, इधर-उधर भागने लगता है । वह समुद्र केन उठनेसे ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो, ज्वार-भाद्राओंसे ऐसा मालूम होता था मानो लास्य (नृत्य) ही कर रहा हो, लहरोंसे ऐसा मुशोभित होता था मानो चल हो रहा हो और हिलनेसे ऐसा दिखाई देता था मानो नशेमें झूम ही रहा हो अथवा वह समुद्र किसी सर्पके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार सर्प रत्नसहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी रत्नसहित था, जिस प्रकार सर्पमें उत्कट विष अर्थात् जहर रहता है उसी प्रकार समुद्रमें भी उत्कट विष अर्थात् जल था, जिस प्रकार सर्प सू सू आदि फुंकारोंसे भयंकर होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी सू सू आदि शब्दोंसे भयंकर था, जिस प्रकार सर्पके देदीप्यमान कांचली होती है उसी प्रकार उस समुद्रके भी देदीप्यमान लहरें थीं, और जिस प्रकार सर्प चंचल रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी चंचल था । अथवा वह समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो अधिक पानी पीनेसे उसे सर्दीं (जुकाम) ही हो गयी हो और इसीलिए हजारों शब्दोंके बहाने छींके ही ले रहा हो । अथवा वह समुद्र किसी आद्यून अर्थात् बहुत खानेवाले-पेटू मनुष्य-के समान जान पड़ता था, क्योंकि जिस प्रकार आद्यून मनुष्य बहुत खाता है और बादमें भोजन-की अधिकता होनेसे डकारें लेता है उसी प्रकार उस समुद्रने भी समस्त नदियोंका जल पी लिया था और बादमें जलकी अधिकता होनेसे वह भी शब्दोंके बहाने डकारें ले रहा था । वह समुद्र अपने गम्भीर पातालरूपी महाउदरके बहानेसे जलसे कभी तृप्त नहीं होता था और इसीलिए मानो उसने तालु पर्यन्त अपना मुख खोल रखा था । भावार्थ-वह समुद्र किसी ऐसे मनुष्यके समान जान पड़ता था जो बहुत खानेपर भी तृप्त नहीं होता, क्योंकि जिस प्रकार तृप्त नहीं होनेवाला मनुष्य बहुत कुछ खाकर भी तृष्णासे अपना मुख खोले रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी बहुत कुछ जल प्रहृण कर चुकनेपर भी तृष्णासे अपना मुख खोले रहता था-नदियों

१ चञ्चलम् । २ नितराम् अस्थिरस्थितिम् । 'असंकुमुकोऽस्थिरे' इत्यमरः । दिशेषनिष्ठनवर्गः । ३ नृत्यमत्तम् । ४ उत्कटजलम् । ५ सौकरम् प० । ६ उत्कटपीनसम् 'प्रतिश्यावस्तु पीनसः' इत्यभिवानात् । ७ औदरिकम् । तृप्तिरहितस्थिरः । ८-गर्भप-ल० ।

दिशो रात्रिः साक्षात् यच्चलग्राहौ विभीषणम् । रक्षसामिव संपातमतिकामैः महोदरम् ॥७८॥  
 वीर्चं गाहुमिरचलन्तमजले सद्बेदिकाम् । समयदिवमग्रहत्य आवयवत्मिवान्मनः ॥७९॥  
 चलद्विरचलोद्येः कल्लोर्लितवर्तिनम् । सरिशुबलिभेगादसंभासमिवात्मनि ॥८०॥  
 तरडिग्रन्तत्वं वृद्धं पृथुक् अचकरक्षिगतम् । सरन्नमतिकान्ताङ्गे सप्राहमतिभीषणम् ॥८१॥  
 लाक्राण्येऽपि न संभोग्ये गामीर्येऽप्यनविभित्तम् । महस्वेऽपि छत्राक्षोऽप्यक्षमेव जलाशयम् ॥८२॥  
 न चास्य मदिरास्तद्गो न कोऽपि मदनज्वरः । सवाप्युक्तिन्कम्भृप्तमास्तुविक्रियम् ॥८३॥

का अन्य जल ग्रहण करनेके लिए तत्पर रहता था । वह समुद्र समस्त दिशाओंमें व्याप्त होकर शब्द कर रहा था इसलिए 'रावण' था, उसने अनेक पहाड़ अपने जलके भीतर ढुका लिये थे इसलिए 'अचलग्राह' था । वह सब जीवोंको भय उत्पन्न करता था इसलिए विभीषण था, अत्यन्त बड़ा था इसलिए 'अतिकाय' था और बहुत गहरा होनेसे 'महोदर' था इस प्रकार वह ऐसा जान पड़ता था मानो राक्षसोंका समूह ही हो । वह समुद्र अपनी तरंगरूपी भुजाओं-के द्वारा किनारेकी वेदीपर तिरन्तर आघात करता रहता था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो धबका देकर उसे अपने समयदिग्नेको ही सुना रहा हो । वह पर्वतके समान ऊँची उठती हुई लहरोंसे किनारेको उल्लंघन कर रहा था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो नदीरूप स्थिरोंके साथ सम्भोग करनेसे अपने-आपमें ही नहीं समा रहा हो । उसके शरीरमें अनेक तरंग-रूपी सिकुड़नें उठ रही थीं इसलिए वह वृद्ध पुरुषके समान जान पड़ता था, ( पक्षमें अत्यन्त बड़ा था ) अथवा वह समुद्र किसी पृथुक् अर्थात् बालकके समान मालूम होता था ( पक्षमें पृथुक् अर्थात् है । जल-जिससे-ऐसा-इस- १) २ क्योंकि लिला-प्रकार बालक पृथिवीपर घटनोंके बल चलता है उसी प्रकार वह समुद्र भी लहरोंके द्वारा पृथिवीपर चल रहा था, जिस प्रकार बालक सरकता है उसी प्रकार वह भी लहरोंसे सरकता था, जिस प्रकार बालक अत्यन्त सुन्दर होता है उसी प्रकार वह भी अत्यन्त सुन्दर था । इसके सिवाय वह समुद्र मगरमच्छ आदि जलचरणों-से सहित था तथा अत्यन्त भयकर था अथवा वह समुद्र स्पष्ट ही जलाशय ( ड और ल में अमेद होनेसे जड़ाशय ) अर्थात् मूर्ख या क्योंकि लावण्य रहनेपर भी वह उपभोग करने योग्य नहीं था जो लावण्य अर्थात् सुन्दरतासे सहित होता है वह उपभोग करने योग्य अवश्य होता है परन्तु समुद्र बैसा नहीं था ( पक्षमें लावण्य अर्थात् खारापन होनेसे किसीके पीने योग्य नहीं था ) गम्भीरता होनेपर भी वह स्थिर नहीं था, जो गम्भीरता अर्थात् धैर्यसे सहित होता है वह स्थिर अवश्य रहता है परन्तु समुद्र ऐसा नहीं था ( पक्षमें गम्भीरता अर्थात् गहराई होनेपर भी वह लहरोंसे चंचल रहता था ) और महत्त्वके रहते हुए भी वह चिल्लाता रहता था-गालियाँ बका करता था, जो महत्त्व अर्थात् बड़प्पनसे सहित होता है वह बड़ा शान्त रहता है, चिल्लाता नहीं है परन्तु समुद्र ऐसा नहीं था ( पक्षमें बड़ा भारी होनेपर भी लहरोंके आघातसे शब्द करता रहता था ) इन सब कारणोंसे स्पष्ट है कि वह जड़ाशय अवश्य था ( पक्षमें जल है आशयमें जिसके अर्थात् जलसे भरा हुआ था ) । उस समुद्रके यद्यपि मद्यका संगम नहीं था-मद्यपानका अभाव था तथापि वह आहुद मधुविक्रिय था अर्थात् मद्यपानसे उत्पन्न होनेवाले त्रिकार-नशाको धारण कर रहा था, इसी प्रकार यद्यपि उसके काम-ज्वर नहीं था तथापि वह उद्दिक्त-कन्दर्प था अर्थात् तोब्र काम-विकारको धारण करनेवाला था । भावार्थ-इस श्लोकमें श्लेष-१ रोतीलि रात्रिणस्तम् । शब्दं कुर्वन्तमिति यावत् । पक्षे दशास्यम् । २ पर्वतस्वीकारवन्तम् । पक्षे अचलग्राहमिति कंचिद् राक्षसम् । ३ भरंकरम् । पक्षे रावणानुजम् । ४ अतिशयं मूतिम् महान्तमित्यर्थः । पक्षे अतिकायमिति कंचिद्मुरम् । ५ महाकुञ्जिम् । पक्षे महोदरमिति राक्षसम् । ६ उत्कटकामम्, पक्षे उस्कटजलदर्पम् ।

अनाशितंभवं<sup>१</sup> वीर्या सुस्वादुसरितो जलम् । मतागतानि कुर्वन्तं संतोषादिव वीचिभिः ॥८४॥  
नदीवधूभिरासेच्यं कृतरत्नपरिग्रहम् । <sup>२</sup>महामोगिभिरारथं पानुरत्नमिव<sup>३</sup> प्रभुम् ॥८५॥  
यादोदोवर्तनिष्ठाति<sup>४</sup> द्वैरोद्योक्तिशीकरैः । सप्ताकमिवाजेषोषाणेविनिजथात् ॥८६॥

कुलाचलप्रथुस्तमजम्बुदीपमहौकसः<sup>५</sup> । विनीलरत्ननिर्माणमेकं सालमिवोच्छ्रुतम् ॥८७॥

अनादिमहतपर्यन्तस्तस्तिस्ताथ्यतिगाहनम् । गमीरशब्दसंदर्भं श्रुतस्कन्त्रमिवापरम् ॥८८॥

निष्ठप्रवृत्तशब्दत्वाद् द्रव्याधिकन्याश्रितम् । वीचीनां क्षणभङ्गिस्त्वान् पश्यविनयगोचरम् ॥८९॥

निष्ठामुवद्वत्प्रयत्नं शश्वजलपरिमहात् । गुरुणां<sup>६</sup> च तिरस्कारात् किंराजानमित्रान्वहम् ॥९०॥

मूलक विरोधाभास अलंकार है इसलिए प्रारम्भ-कालमें विरोध मालूम होता है परन्तु बादमें उसका परिहार हो जाता है । परिहार इस प्रकार समझना चाहिए कि वह मन्द्यके संगमसे रहित होकर मधु अर्थात् पुष्परसकी विक्रिया धारण कर रहा था अथवा मनोहर जलपक्षियों-की क्रियाएं धारण कर रहा था और कामज्वरसे रहित होकर भी उद्दिक्त-कन्दर्प था अर्थात् जलके अहंकारसे सहित था । वह समुद्र किनारेपर आती-जाती हुई लहरोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो जिससे कभी तृप्ति न हो ऐसा नदियोंका मीठा जल पीकर लहरों-द्वारा सन्तोषसे गमनागमन ही कर रहा हो । अथवा वह समुद्र चक्रवर्तीके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार चक्रवर्ती अनेक स्त्रियोंके द्वारा सेवित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी नदीहृषी अनेक स्त्रियोंके द्वारा सेवित था, जिस प्रकार चक्रवर्तीके पास अनेक रत्नोंका परिग्रह रहता है उसी प्रकार उस समुद्रके पास भी अनेक रत्नोंका परिग्रह था, जिस प्रकार चक्रवर्ती महामोगी अर्थात् बड़े-बड़े राजाओंके द्वारा आराधन करने योग्य होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी महामोगी अर्थात् बड़े-बड़े सर्पोंके द्वारा आराधन करने योग्य था और जिस प्रकार चक्रवर्ती जारों और प्रसिद्ध रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी जारों और प्रसिद्ध था-व्याप्त था । जल-जन्तुओंके आघातसे उड़ी हुई और बहुत दूर तक ऊँची हुई जलकी बूँदोंसे वह समुद्र ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बाकीके समस्त समुद्रोंको जीतनेसे अपनी विजय-पताका ही फहरा रहा हो । उस समुद्र-का नीले रंगका पानी वायुके वेगसे ऊपरको उठ रहा था जिससे वह ऐसा जान पड़ता था मानो कुलाचलहृषी बड़े-बड़े खम्भोंपर बने हुए जम्बूदीपहृषी विशाल घरका नील रत्नोंसे बना हुआ एक ऊँचा कोट ही हो । अथवा वह समुद्र दूसरे श्रुतस्कन्धके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार श्रुतस्कन्ध आदि-अन्त-रहित है उसी प्रकार वह समुद्र भी आदि-अन्त-रहित था, जिस प्रकार श्रुतस्कन्ध समस्त पदार्थोंका अवगाहन-निरूपण करनेवाला है उसी प्रकार वह समुद्र भी समस्त पदार्थोंका अवगाहन-प्रवेशन-धारण करनेवाला है, और जिस प्रकार श्रुतस्कन्ध-में गम्भीर शब्दोंकी रचना है उसी प्रकार उस समुद्रमें भी गम्भीर शब्द होते रहते थे—अथवा वह समुद्र द्रव्याधिक नयका आश्रय लेता हुआ-सा जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार द्रव्याधिक नयसे प्रत्येक पदार्थमें निष्ठ शब्दकी प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार उस समुद्रमें भी निष्ठ शब्द-की प्रवृत्ति हो रही थी अर्थात् निरन्तर गम्भीर शब्द होता रहता था । अथवा उसकी लंहरें क्षण-भंगुर थीं इसलिए वह पर्यायाधिकके गोचर भी मालूम होता था क्योंकि पर्यायाधिक नय पदार्थोंको क्षणभंगुर अर्थात् अनिष्ट बतलाता है । अथवा वह समुद्र किसी दुष्ट राजा के समान मालूम होता था क्योंकि जिस प्रकार दुष्ट राजा सदा तृष्णासे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी सदा तृष्णासे सहित रहता था अर्थात् प्रतिक्षण अनेक नदियोंका जल ग्रहण करते रहने-  
१ अतृप्तिकरम् । २ महासर्पः । ३ सार्वत्रिकं प्रसिद्धमित्यर्थः । ४ आनुरद्ध-स०, इ०, अ०, प० । ५ निरूतै-  
ल० । ६ महागृहस्य । ७ जडस्त्रीकारात् । ८ गुरुद्रव्याणामध्यकरणात् । ९ कुत्सितराजानम् ।

सप्तस्त्रमतिगम्भीरं भोगिभिरुत्वेककम् । सुरजा/नमिवान्युर्बृत्ति मर्यादिया श्वतम् ॥६१॥

अनेकमन्तरहीपमन्तर्भिलिमात्मनः । दुर्गेष्वमिवाहायै पालवन्तमलङ्घनः ॥६२॥

गणेशिरसिगम्भीरं नमोद्यापिभिरुजितेः । आपूर्यमाणमस्मोभिर्नार्जिः किञ्चुरस्त्रिः ॥६३॥

१ रक्षितैश्वलितैः श्वोमैश्वर्यमैश्वरैः विषतैः । प्रहाविष्टमिवान्नुभूमैः खच्छान् च सद्युर्जितम् ॥६४॥

रवांशुचिश्रिततलं मुक्ताशब्दितापांसम् । ग्राहैर॒यासितं दिष्टवक्षुग्यालोकं च भाषणम् ॥६५॥

नदीनैः स्वसूयिष्टमप्याप्ते विरजीवितम् । समुद्रमण्डे वोन्मुदे<sup>१०१</sup> शपकेनुगमन्मथम्<sup>११</sup> ॥६६॥

पर भी सन्तुष्ट नहीं होता था, जिस प्रकार दुष्ट राजा जल (जड़) अर्थात् मूर्ख मनुष्योंसे घिरा रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी निरन्तर जल अर्थात् पानीसे घिरा रहता था, और जिस प्रकार दुष्ट राजा गुरु अर्थात् पूज्य महापुरुषोंका तिरस्कार करता है उसी प्रकार वह समुद्र भी गुरु अर्थात् भारी वजनदार पदार्थोंका तिरस्कार करता रहता था अर्थात् उन्हें डुबोता रहता था । अथवा वह समुद्र किसी उत्तम राजा के समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार उत्तम राजा सत्त्व अर्थात् पराक्रमसे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी सत्त्व अर्थात् जल-जन्तुओंसे सहित था, जिस प्रकार उत्तम राजा अत्यन्त गम्भीर होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी अत्यन्त गम्भीर अर्थात् गहरा था, जिस प्रकार उत्तम राजा के समीप अनेक भोगी अर्थात् राजा लोग विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार उस समुद्रकी बेला (तट) पर भी अनेक भोगी अर्थात् सर्प विद्यमान रहते थे, जिस प्रकार उत्तम राजा की वृत्ति उच्च होती है उसी प्रकार उस समुद्रकी वृत्ति भी उच्च थी अर्थात् उसका जल हवासे ऊँचा उठ रहा था और जिस प्रकार उत्तम राजा मर्यादा अर्थात् कुल-परम्परासे आयी हुई समीक्षीन पढ़तिसे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी मर्यादा अर्थात् पालीसे सहित था । वह समुद्र अपने मध्यमें रहनेवाले अनेक अन्तर्द्वीपोंकी रक्षा कर रहा था वे अन्तर्द्वीप उसके अलंधनीय तथा हरण करनेके अयोग्य किलोंके समान जान पड़ते थे । वह अतिशय गम्भीर समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो सेवकोंके समान निरन्तर बढ़ते हुए, गरजते हुए और आकाशमें फैले हुए मेधोके द्वारा ही जलसे भरा गया हो अथवा वह समुद्र किसी ग्रहाविष्ट अर्थात् भूत लगे हुए मनुष्यके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार ग्रहाविष्ट मनुष्य जमीनपर रेंगता है, चलता है, क्षुब्ध होता है, ऊँचा उछलता है और इधर-उधर घूमता है अथवा करवटे बदलता है उसी प्रकार वह समुद्र भी लहरीसे पृथिवीपर रेंग रहा था, चल रहा था, क्षुब्ध था, ऊँचा उछलता और इधर-उधर घूमता था अर्थात् कभी इधर लहरता था तो कभी उधर लहरता था, तथा ग्रहाविष्ट मनुष्य जिस प्रकार उज्जूम्भ अर्थात् उठती हुई जमुहाइयोंसे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी उज्जूम्भ अर्थात् उठती हुई लहरोंसे सहित था, जिस प्रकार ग्रहाविष्ट मनुष्य शब्द करता है उसी प्रकार समुद्र भी शब्द कर रहा था और जिस प्रकार ग्रहाविष्ट मनुष्य कौपिता रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी वायुसे कौपिता रहता था । उस समुद्रका तल भाग रत्नोंकी किरणोंसे चित्र-विचित्र हो रहा था, उसका जल मोतियोंसे चित्रित था, और वह चारों ओर मगरमच्छोंसे भरा हुआ था इसलिए वह देखनेमें अच्छा भी लगता था और भयानक भी मालूम होता था । वह समुद्र अनेक रत्नोंसे

१ मूलसंपूर्णः । २ जलनैः । ३ उत्थानैः । ४ भ्रमणैः । ५ उज्जूम्भणम् । पक्षे जृमिभकामहितम् । ६ सरित्-पतिम् । निस्त्रवसदृगम् । 'नश्चात्रे निषेधे च स्वरूपार्थं व्यतिक्रमे । इष्टदर्थं च सादृश्ये तद्विरुद्धतदन्वयोः ॥' इत्यभिधानात् । ७ आपः प्राणं यस्य स तम् । पक्षे गतप्राणम् । ८ चिरकालस्थायिनम् । -जीविनम् अ०, प०, ब०, स०, इ० । ९ सुद्रवा सहितम् । १० सुद्रारहितम् । महान्तमित्यर्थः । ११ अष्टाङ्गिकितम् । १२ मत् मनो मन्मातीति मन्मथः न मन्मथः अमन्मथस्तं मनोहरमित्यर्थः ।

अदृष्टपारमभोन्यमयंहार्यं मनुत्तरम् । सिद्धालयमिव अपत्तमव्यक्तमसूलास्पदम् ॥१७॥  
 कचिन्महोपलक्ष्यायै धृतसंव्याघ्रविश्वमम् । कृतान्धतमसारम्भं कचिच्छीलास्मरहिमभिः ॥१८॥  
 हरिन्मणिप्रभोत्तरैः कचिं संदिग्धं जंवलम् । कचिच्छ कौशुमीं कान्ति तन्वानं विद्युमाङ्गुरः ॥१९॥  
 कचिच्छकुमितुर्यज्ञेदसमुच्चितमनिकम् । सारकानिकराकीर्णं हसन्तं जलं नुपथम् ॥२०॥  
 वेत्यापर्यन्तसम्बूद्धं सर्वरत्नांशुश्रांकिरः ३ । कचिदिन्द्रियजुलेखां लिखन्तमिव साङ्गये ॥२० ३॥  
 रथाङ्गपाणिरस्मिन्द्वयः संदृतं रथकोटिभिः । महानिधिमिवापूर्वमपद्यम्यकराकरम् ॥२० ४॥

भरा हुआ था इसलिए नदीन अर्थात् दीन नहीं था यह उचित था ( पक्षमें 'नवी इन' नदियोंका स्वामी था ) १ उत्तरलुग्न अध्यात्माभृति २ प्राणरहित होकर भी चिरजीवित अर्थात् बहुत समय तक जीवित रहनेवाला था, समुद्र अर्थात् मुद्रासहित होकर भी उन्मुद्र अर्थात् मुद्रारहित था और झण्केतु अर्थात् मछलीरूप पताकासे सहित होकर भी अमन्मथ अर्थात् कामदेव नहीं था यह विरुद्ध बात थी किन्तु नीचे लिखे अनुसार अर्थमें परिवर्तन कर देनेसे कोई विरुद्ध बात नहीं रहती । वह प्राणरहित होनेपर भी चिरजीवित अर्थात् चिरस्थायी रहनेवाला था अथवा चिरकालसे जलसहित था, समुद्र अर्थात् सागर होकर भी उन्मुद्र अर्थात् उत्कृष्ट आनन्दको देनेवाला था ( उद्युक्तां मुद्रं हृष्टं राति-ददातीति उन्मुद्रः ) और झण्केतु अर्थात् समुद्र समुद्र स्पष्ट ही सिद्धालयके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार सिद्धालयका पार दिखाई देता है उसी प्रकार उस समुद्रका भी पार दिखाई नहीं देता था — दोनों ही अदृष्टपार थे, जिस प्रकार सिद्धालय अक्षोभ्य है अर्थात् आकुलतारहित है ३ उसी प्रकार समुद्र भी अक्षोभ्य सिद्धालयका कोई संहार नहीं कर सकता था, जिस प्रकार सकता था, जिस प्रकार सकता था, जिस प्रकार समुद्र भी अव्यवत अर्थात् अगम्य था और सिद्धालय जिस प्रकार अमृतास्पद अर्थात् अमृत (मोक्ष) का स्थान है उसी प्रकार वह समुद्र भी अमृत (जल) का स्थान था । कहीं तो वह समुद्र पच्चराग-मणियोंसे सन्ध्याकालके बादलोंकी शोभा अथवा सन्देह धारण कर रहा था और कहीं नील मणियोंकी किरणोंसे गाढ़ अन्धकारका प्रारम्भ करता हुआ-सा जान पड़ता था । कहीं हरित कुंकुमकी कान्तिके प्रसारसे उसमें शेवालका सन्देह हो रहा था और कहीं वह मूँगाओंके अंकुरोंसे उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओंके समूहसे भरे हुए आकाशकी ओर हँस ही रहा हो । तथा कहींपर किनारेके समीप ही समस्त रत्नोंकी किरणोंसहित जलकी छोटी-छोटी बूँदें पड़ रही थीं उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशरूपी औंगतमें इन्द्रधनुषकी रेखा ही लिख रहा हो । इस प्रकार जो केवे तक करोड़ों रत्नोंसे भरा हुआ था ऐसे उस समुद्रको चक्रवर्तीनि अपूर्व महानिधिके समान देखा ॥ ६८-१०२ ॥

१ अविनाशयम् । २ न विद्यते उत्तरः वेष्ठो यस्मात् स तम् । ३ सलिलपीयुषनिवासम् । ४ एवं अभ्यस्थानम् । 'सुधाकरयजशेषसलिला अयमोक्षावन्वत्तरिविषकन्दच्छिष्ठसहायदिविजेष्टमृतम्' इत्यभिधानात् । ५ पच्चराग-मणिकर्ण । ६ लिप्त । सन्देहविषयीकृत । ७ समुत्सर्पनात्तरलमरीचियुतशीकरैः । ८ —संकरैः प० । ९ मकरालयम् ल० ।

हृष्टवाऽथ तं महाभागः<sup>१</sup> कृतधीर्घोरमि:स्वनम् । हृष्टयैषामुलयक्षकी गोप्यद्रावज्याण्यवम् ॥ १०३ ॥  
 ततोऽभिमतसंसिद्धैः कृतस्तिद्वन्मस्तिक्यः । रथं प्रचोदयेत्युच्चैः<sup>२</sup> प्राजितारमन्त्रोदयत् ॥ १०४ ॥  
 विसुकप्रग्रहैष्विरुद्धमानो मनोजैः । क्लवणाठैः द्रुतं<sup>३</sup> प्रायाद् यानपात्रायितो रथः ॥ १०५ ॥  
 रथो मनोरथात् दूरं रथात् पूर्वं मनोरथः । इति संसार्यवेगोऽसौ रथो दाखिं व्यगाहत् ॥ १०६ ॥  
 जलस्तम्भः प्रदुरुक्ते नु जलं न स्थलतां गतम् । स्यन्दर्भं यदमी वाहा जले निन्युः स्पलास्थया<sup>४</sup> ॥ १०७ ॥  
 तथैव चक्रचीत्कारः तथैवोच्चैः प्रधैरितम्<sup>५</sup> । यथा वहिर्जलं<sup>६</sup> पूर्वमहो पुण्यं रथाक्षिनः ॥ १०८ ॥  
 महद्भिरपि कल्लोलैः<sup>७</sup> शीर्षमानास्तुरक्षमाः । रथं निम्नुरनायासात् प्रस्तुरैः<sup>८</sup> सै विश्रमः<sup>९</sup> ॥ १०९ ॥  
 रथस्त्रक्लसमुत्तीर्णाज्ञालौपीडः<sup>१०</sup> खसुष्टतन् । न्यवाद् श्वर्जोशुके जाडयं जलानामीक्षी गतिः ॥ ११० ॥  
 नक्षरागस्तुरक्षाणामाद्रितः अमघमितैः<sup>११</sup> । शालितः खुरवेगोत्तैः केवले शीर्षररपाम् ॥ १११ ॥  
 क्षणं रथाङ्गस्त्रव्याज्ञालमद्वेदिंधाऽभवत् । व्यभावि भाविनो वर्त्मं चक्रिणामिव सूक्षितम् ॥ ११२ ॥  
 रथोऽस्याभिमतां भूमि प्रापस्तारपित्तोदितः । मनोरथोऽपि संसिद्धिं पुण्यसारविचौक्तिः ॥ ११३ ॥

तदनन्तर—महाभाग्यशाली दुष्टिमान् भरतने गम्भीर शब्द करते द्वारे उस समुद्रको देखकर, दृष्टि मान्त्रसे ही उसे गायके खुरके समान तुच्छ समझ लिया ॥ १०३ ॥ और फिर अपने मनोरथकी सिद्धिके लिए सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार कर ‘शीघ्र ही रथ बढ़ाओ’ इस प्रकार सारथिके लिए जोरसे प्रेरणा की ॥ १०४ ॥ जिनकी रास ढीली कर दी गयी है और जिनका वेग मनके समान है ऐसे घोड़ोंके द्वारा ले जाया जानेवाला वह रथ लवणसमुद्रमें जहाजकी नाई शीघ्रताके साथ जा रहा था ॥ १०५ ॥ मनोरथसे पहले रथ जाता है अथवा रथसे पहले मनोरथ जाता है इस प्रकार जिसके वेगकी सम्भावना की जा रही है ऐसा वह रथ समुद्रमें बड़े वेगके साथ जा रहा था ॥ १०६ ॥ क्या वह जलस्तम्भिती विद्यासे थैंभा दिया गया था अथवा स्थलपतेको ही प्राप्त हो गया था क्योंकि चक्रवर्तीकि घोड़े स्थल समझकर ही जलमें रथ खींचे लिये जा रहे थे ॥ १०७ ॥ जिस प्रकार जलके बाहर पहियोंका चील्कार शब्द होता था उसी प्रकार जलके भीतर भी हो रहा था और जिस प्रकार जलके बाहर घोड़े दीड़ते थे उसी प्रकार जलके भीतर भी दीड़ रहे थे, अहा ! चक्रवर्तीका पुण्य भी कैसा आश्चर्यजनक था ! ॥ १०८ ॥ वे घोड़े बड़ी-बड़ी लहरोंसे सींचे जानेपर भी बिना किसी परिश्रमके रथको ले जा रहे थे । उन लहरोंसे उन्हें कुछ दुख नहीं होता था बल्कि उनका परिश्रम दूर होता जाता था ॥ १०९ ॥ रथके पहियेके आधातसे आकाशकी ओर उछलनेवाले जलके समूहने ध्वजाके बस्त्रमें भी जादू अर्थात् भारीपन ला दिया था सो ठीक ही है क्योंकि जलका ऐसा ही स्वभाव होता है । भावार्थ—संस्कृत काव्योंमें ड और ल के बीच कोई भेद नहीं माना जाता इसलिए जलानामकी जगह जडानाम् पहकर चतुर्थ चरणका ऐसा अर्थ करना चाहिए कि मूर्ख मनुष्योंका यही स्वभाव होता है कि वे दूसरोंमें भी जादू अर्थात् मूर्खता उत्पन्न कर देते हैं ॥ ११० ॥ घोड़ोंके शरीर-पर लगाया हुआ झंगराम (लेप) परिश्रमसे उत्पन्न हुए पसीनेसे गीला नहीं हुआ था केवल खुरोंके वेगसे उठे हुए जलके छीटोंसे ही धुल गया था ॥ १११ ॥ रथके पहियेके संघटनसे क्षण-भरके लिए जो समुद्रका जल फटकर दोनों ओर होता जाता था वह ऐसा मालूम होता था मानो बागे होनेवाले सगर आदि चक्रवर्तियोंके लिए सूत्र ढालकर मार्ग ही तैयार किया जा रहा हो ॥ ११२ ॥ सारथिके द्वारा चलाया हुआ चक्रवर्तीका रथ उनके अभिलिखित स्थानपर पहुँच

१ महाभाग्य ल० । २ सारथिम् । ३ त्यक्तरज्जुभिः । ४ अगच्छत् । ५ स्थलमिति बुद्धधा । ६ मतिविशेषाकालम् । ७ जलाद् बहिः । ८ स्थले इत्यर्थः । ९ सेवनविधिः । १० धम्हरणकारणम् । ११ समुत्पीडनात् । १२ जलसमूहः । जलानो जडानामिति ध्वनिः । १३ स्वेदैः ।

गच्छा कनिष्ठद्वयोऽधीर्जननि रथः प्रभो । स्थूला इतजलमाक्रम्य ग्रस्तविव इव वाधिना ॥११४॥  
 द्विषट्योजनमाग्राद् विशेषं सध्येऽर्थवं रथे । रथाङ्गपाणिराहुणे<sup>३</sup> जग्राह किल कामुकम् ॥११५॥  
 कुरुत्यर्थं वज्रकाण्डं तद्बनुराशेषितं चढा । तदा जीवितसंबोहदोलारुदमभूजगत ॥११६॥  
 सुरन्मार्वित्येनस्य मुहुः प्रवानश्च दिशः । प्रशोभमनवद्वाधिं चलतिभिकुलाकुलम् ॥११७॥  
 सहायः<sup>४</sup> किमसुव्यादिभूत विद्वभिर्द जगत् । इत्याशङ्क्य अणं तस्ये तदा नससि खेचरः ॥११८॥  
 वक्रऽपि गुणव्याधिस्मद्गुजुकर्मणि कामुके । अमोघं संदधे वाणं इलाध्यं<sup>५</sup> स्थानकमालितः ॥११९॥  
 अहं हि भरतो नाम चक्री वृषभनन्दनः । मलसाद्भवन्तु<sup>६</sup> मद्भुक्तिवासिनो व्यस्तरामरा ॥१२०॥  
 एति व्यक्तिपित्यासा दृतमुख्य इव दुतम् । स पर्वी चक्रिणा सुकः<sup>७</sup> प्राढ्मुखीमालितो गतिम् ॥१२१॥  
 जितनिर्वातनिर्वेषं धृतिं कुर्वत्तमस्तलात् । न्यपत्तमागधावाले तत्त्वमयं क्षीममानयन् ॥१२२॥  
 किमेष क्षुभितोऽस्मीधिः कल्पान्तपवनाहतः । निघतः किंस्त्रिदुद्ध्वान्तो भूमिकम्पो तु जृमते ॥१२३॥  
 इत्याकुलाकुलविष्टलज्जिकायोपगः सुराः । परिवत्तुरपेष्यनं सबदा मागवं प्रसुम् ॥१२४॥  
 व दीपः शरः कांपि पतिसोऽस्मन्यमाङ्गणे । तेनायं प्रकृतः<sup>८</sup> क्षोभो न किञ्चिकारणान्तरम् ॥१२५॥

गया भीत्र पुण्यहपी सारथिके द्वारा प्रेरित हुआ उनका मनोरथ भी सफलताको प्राप्त हो गया ॥११३॥ महाराज भरतका रथ समुद्रमें कुछ योजन जाकर जलके भीतर ही खड़ा हो गया मानो सभुदने ऊपरकी ओर बढ़कर उसके घोड़े ही थाम लिये हों ॥११४॥ जब वह रथ समुद्रके ॥११५॥ जिसकी प्रत्यंचा ( डोरी ) स्फुरायमान है और काण्ड बजके समान है ऐसा वह धनुष रूपी अव्यापर आसू हो गया था अर्थात् समस्त संसारको अपने जीवित रहनेके सन्देह था ॥११६॥ समस्त दिशाओंको वार-वार शब्दायमान करते हुए चक्रवर्तीके धनुषकी स्फुराय-कर दिया था ॥११७॥ क्या यह चक्रवर्ती इस समुद्रका संहार करना चाहता है अथवा समस्त संसारका ? इस प्रकार आजांका कर विद्याधर लोग उस समय क्षण-भरके लिए आकाशमें खड़े हो गये थे ॥११८॥ जो टेढ़ा होकर भी गृणवान् ( पक्षमें डोरीसे सहित ) और सरल कार्य-योग्य आसनसे खड़े होकर भी व्यर्थ न जानेवाला अमोघ नामका बाण रखा ॥११९॥ 'मैं वृषभ-देवका पृथ्र भरत नामका चक्रवर्ती हूँ इसलिए मेरे उपभोगके पोष्य क्षेत्रमें रहनेवाले सब व्यन्तर देव मेरे अधीन हों इति प्रकार जिमपर स्पष्ट अक्षर लिखे हुए हैं ऐसा हुआ वह चक्रवर्तीके द्वारा चलाया हुआ बाण मूर्ख दृतकी तरह पूर्व दिशाकी ओर मुख कर चला ॥१२०-१२१॥ और जिसने वज्रपातके शब्दको जीत लिया है ऐसा भारी शब्द करता हुआ तथा मागध देवकी मैनामें दोभ उत्पन्न करता हुआ वह बाण आकाश-तलसे मागध देवके निवासस्थानमें जा पड़ा ॥१२२॥ क्या यह कल्पन्त कालके वायुसे ताड़ित हुआ समुद्र ही थोभको प्राप्त हुआ है ? अथवा जोरे शब्द करता हुआ वज्र पड़ा है ? अथवा भूमिकम्प ही हो रहा है ? इस प्रकार जिनकी चुड़ि अत्यन्त व्याकुल हो रही है ऐसे उसके समीप रहनेवाले व्यन्तरदेव तैयार होकर मागध देवके पास आये और उसे बेरकर खड़े हो गये ॥१२३-१२४॥ हे देव, हमारे सभ-१ जलमध्य । २ अर्णवमध्ये । ३ श्रुदः । ४ स्फुरन्ती च्या मौर्खी यस्य स तम् । ५ चक्रिणः । ६ स्पानकम्-पत्तालोदाविस्थानम् । ७ मदधीना भवन्तु । ८ मम क्षेत्रवालिन इत्यर्थः । ९ बाणः । १० पूर्वाभिमुखीम् । ११ अत्याकुलशब्दवः । १२ विद्वितः ।

येनायं प्रहितः पत्रा नाकिना दानवेन च। तस्य कर्तुं प्रतीकारभिम सज्जा दर्शनं प्रभो ॥१२६॥  
इत्यारक्षिभैस्त्वर्णमन्य विजापितः प्रभुः। अलमार्घं भट्टालार्पित्युद्देशः प्रस्तुवाच तान् ॥१२७॥  
यूथं तं पव मद्ग्रास्थाः सोऽहमेवास्मि मागधः। अतपूर्वमिदं किं चः सोदपूर्वो मयेष्यसि ॥१२८॥  
विमतिं यः पुमान् प्राणान् । 'परिभूतिमर्लीमसान् । न गुणेऽप्त्यग्नामाश्रेण पुमानेष प्रतीयते ॥१२९॥  
त चित्रपुरुषो वास्तु चापुरुषं पूष च ॥ यो विनापि गुणैः पौर्णैर्नीन्द्रैः पुरुषायते ॥१३०॥  
य पुमान् यः पुर्णैते रथं कुर्व जन्म च पीहैः। भट्टालो जनो यस्तु तस्याह्वै भवनिभुवि ॥१३१॥  
विजिगीषुलया देवा॑ वय नेष्ठाविहारतः॑ । तसोऽरिविजयादेव र्षभस्तु सदापि नः ॥१३२॥  
वस्तुवाहनराज्याकृ॒राराध्यति चः परम् । परमोगीणमैश्वर्य॑ तस्य मन्ये विडम्बनम् ॥१३३॥  
शरणाली प्रभुः कोऽपि मत्तोऽयं॑ धनर्माप्सति । धनायतोऽस्य दास्यामि निधनं प्रथमः॑ समम् ॥१३४॥  
विचार्येन शरं तावन् कोपाश्वेः प्रथमेभ्यनम् । करवाणीदमेवाह्वु॑ तनुशशकैहपेन्थनम्॑ ॥१३५॥

भदनके ओगनमें कोई देवीप्यमान बाण आकर पड़ा है उसीसे यह क्षोभ हुआ है इसका दूसरा कारण नहीं है ॥१२५॥ हे प्रभो, जिस किसी देवता अल्लाह द्वानल्ले अहु आण्डोद्वाहै लूम-द्वाहै लोग उसका प्रतिकार करनेके लिए तैयार हैं ॥१२६॥ इस प्रकार रक्षा करनेवाले बीर योद्धाओं-ने शीघ्र ही आकर अपने स्वामी मागध देवसे निवेदन किया और मागध देवने भी बड़े जोरसे उन्हें उत्तर दिया कि चुप रहो, इस प्रकार बीर वाक्योंसे कुछ लाभ नहीं है ॥१२७॥ तुम लोग वे ही मेरे अधीन रहनेवाले देव हो और मैं भी वहो मागध देव हूँ, क्या मुझे कभी पहले अपना शक्तु सहन हुआ है? यह बात तुम लोगोंने पहले भी कभी सुनी है? ॥१२८॥ जो पुरुष पराभव-में मलिन हुए अपने प्राणोंको धारण करता है वह गुणोंसे पुरुष नहीं कहलाता किन्तु केवल लिंग-में ही पुरुष कहलाता है ॥१२९॥ जो पुरुष, पुरुषोंमें पाये जानेवाले गुणोंके बिना केवल नामसे ही पुरुष बनना चाहता है वह या तो चित्रमें लिखा हुआ पुरुष है अथवा तृण काष्ठ कीरहसे बना हुआ पुरुष है ॥१३०॥ जो अपने पराकमसे अपने कुल और जन्मको पवित्र करता है वास्तवमें वही पुरुष कहलाता है, इसके विपरीत जो मनुष्य झूठमूठ ही अपनेको बीर कहता है पृथिवीपर उसका जन्म न लेना ही अच्छा है ॥१३१॥ हम लोग शत्रुओंको जीतनेसे ही 'देव' कहलाते हैं, इच्छानुसार जहाँ-तहाँ विहार करनेमात्रसे देव नहीं कहलाते इसलिए हम लोगोंकी सम्पत्ति सदा शत्रुओंको विजय करनेमात्रसे ही प्राप्त हो ॥१३२॥ जो मनुष्य रत्न आदि वस्तु, हाथी घोड़े आदि वाहन और छत्र चमर आदि राज्यके चिह्न देकर किसी दूसरेकी आराधना-सेवा करता है उसका ऐश्वर्य दूसरोंके उपभोगके लिए हो और मैं ऐसे ऐश्वर्यको केवल विडम्बना समझता हूँ ॥१३३॥ बाण चलानेवाला यह कोई राजा मुझसे धन चाहता है सो इसके लिए मैं युद्धके साथ-साथ निधन अर्थात् मृत्यु हूँगा ॥१३४॥ सबसे पहले मैं इस बाण-को चूर कर अपने क्रोधरूपी अस्तिका पहला ईंधन बनाऊँगा, यही बाण अपने छोटे-छोटे दुकड़ों-

१ प्रभो वेयम् स०, अ०, प०, इ० । २ अङ्गरक्षिभट्टैः । ३ तृष्णीं तिष्ठत । ४ ते पूर्वस्मिन् विद्यमाना एव । ५ परिभव । ६ तृणपुरुषः । 'वज्रोऽनलादिनिमणे वज्रा तु तृणपूरुषे' इत्यभिधानात् । करिकलभन्धायमाश्रित्य युनः पुरुषशब्दप्रयोगः । ७ चा ल०, अ०, प०, स०, द०, इ० । ८ पुरुषसंबन्धिभिः । ९ अनुत्पत्तिः । 'तडो ति शामे' इति अनिप्रत्ययान्तः । १० दोषवत्ति विजिगीषमतीति देवाः । ११ ईवैरविहारतः । कोशाविहारत इति भावः । १२ परभोगिष्ठो हितम् । १३ वस्त्रम् । १४ प्रथमः द०, इ०, ल०, अ०, प०, स० । युद्धः । 'युद्धमायोषनं जन्यं प्रथमं प्रविदारणम्' इत्यभिधानात् । १५ अलगाकलः ( चूर्णकृतशरीरेन्थनः ) । शत्रुशरोरवाकलः । १६ संघृषणम्, अग्निरुदालनम् ।

भाक्षेपस्ति संरस्मादुदीर्घं गिरमुर्जिताम् । अवर्मान् दशनज्योत्सनां संहस्रम्/गथामरः ॥१३६॥  
 ततस्तमस्तुरभ्यणः सुरा दृष्टपरम्पराः । प्रभुं शमयिनुं क्रोधाद् विद्यु वृद्धिर्विमोःै स्थितिः ॥१३७॥  
 यथार्थे॑ वरमर्थे॒ चै मितं च अहुविश्वरम् । अनाकुले च गम्भीरे॑ लाभियामीहसां वचः ॥१३८॥  
 सत्यं परिभवः सौदुमशक्यो मालशालिनाम् । बलवद्भिर्विरोधस्तु रुपपरामवकारणम् ॥१३९॥  
 सत्यमेव यशो रक्ष्यं प्राणैरपि धनैरपि । ततु प्रभुमनाभित्य कथं लभ्येत धीधनैः ॥१४०॥  
 अलदध्यमाक्षो इवार्थपरिभ्रम्यमित्यपि । तु अस्तु त्यग्नां त्यग्नां जिनीषोर्माश्रयं विना ॥१४१॥  
 शिलिनामपि सत्येव वलीयांसो भनस्तिः । बलवान्हमस्मीति नोन्सेष्टवयमतः परम् ॥१४२॥  
 न किञ्चिद्व्यनालोक्य विधेयं मिद्विकाम्यता॑ । ततः शारः कुतद्योऽयं किमीयो॑ चेति मृग्यनाम् ॥१४३॥  
 शुरं च बहुशोऽक्षमामिरातीय॑ पुरुक्लं वचः । जिनाइवक्षरेहपार्थं वन्स्यन्ताहसि भारते ॥१४४॥  
 तजं चक्षिण प्रवायं जयाशंसा शरागमः । धूतान्धतमसोषीतः संभाष्योऽन्यन्तं किं रवेः॑ ॥१४५॥  
 अथवा खलु॑ संशय्य चक्षयागेस्यं शरः । अवलक्षित व्यक्तमेवैते॒ तत्त्वामाश्रमालिका ॥१४६॥

से मेरी क्रोधस्ति असिनको प्रज्वलित करनेवाला हो ॥१३५॥ इस प्रकार वह मामथ देव क्रोधसे तिरस्कारके साथ-साथ कठोर वचन कहकर दाँतोंकी कान्तिको संकुचित करता हुआ जब नुप हो रहा ॥१३६॥ तब कुल-परम्पराको देखनेवाले समीपवर्ती देव उसका क्रोध शमन करनेके लिए उससे कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि राजा लोगोंकी स्थिति विद्याकी अपेक्षा बृद्ध हुए मनुष्योंसे ही होती है, भावार्थ—जो मनुष्य विद्यावृद्ध अथत् विद्याकी अपेक्षा बड़े हैं उन्हींमें राजा लोगोंकी मर्यादा स्थिर रहती है किन्तु जो मनुष्य केवल अवस्थासे बड़े हैं उनसे कुछ लाभ नहीं होता ॥१३७॥ उन देवोंने जो वचन कहे थे वे समयके अनुकूल थे, अर्थसे भरे हुए थे, परिमित थे, अर्थकी अपेक्षा बहुत विस्तारवाले थे, आकुलतारहित थे और गम्भीर थे सो ठीक ही है क्योंकि मूखोंके ऐसे वचन कभी नहीं निकलते हैं ॥१३८॥ उन देवोंने कहा कि हे प्रभो, यह ठीक है कि अभिमानी मनुष्योंको अपना पराभव सहन नहीं हो सकता है परन्तु बलवान् पुरुषोंके साथ विरोध करना भी तो अपने पराभवका कारण है ॥१३९॥ यह बिलकुल ठीक है कि अपने प्राण अथवा धन देकर भी यशकी रक्षा करनी चाहिए परन्तु वह यश किसी समर्थ पुरुषका आश्रय किये बिना बुद्धिमान् मनुष्योंको किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ? ॥१४०॥ प्राप्त नहीं हुई वस्तुका प्राप्त होना और प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा करना ये दोनों ही कार्य किसी विजितीषु राजाके आश्रयके बिना मुख्यपूर्वक प्राप्त नहीं हो सकते ॥१४१॥ हे प्रभो, बलवान् मनुष्योंकी अपेक्षा और भी अधिक बलवान् तथा बुद्धिमान् हैं इसलिए॑ से बलवान् हैं इस प्रकार कभी गर्व नहीं करना चाहिए ॥१४२॥ सिद्धि अथत् सफलताकी इच्छा करनेवाले पुरुषको बिना विचारे कुछ भी कार्य नहीं करना चाहिए इसलिए॑ यह बाण कहाँसे आया है ? और किसका है ? पहले इस बातकी खोज करनी चाहिए ॥१४३॥ इस भारतवर्षमें चक्रवर्तियोंके साथ तीर्थंकर निवास करेंगे, अवतार लेंगे ऐसे आप्त पुरुषोंके यथार्थ वचन हम लोगोंने अनेक बार सुने हैं ॥१४४॥ विजयको सूचित करनेवाला यह बाण अवश्य ही चक्रवर्तीका ही होगा क्योंकि सघन अन्धकारको नष्ट करनेवाला प्रकाश व्या सूर्यके सिवाय किसी अन्य वस्तुमें भी सम्भव हो सकता है ? अथत् नहीं ॥१४५॥ अथवा इस विषयमें संशय करना व्यर्थ है । यह बाण चक्रवर्तीका ही है, क्योंकि इसपर खुदे हुए नामके अक्षरोंकी माला साफ-साफ ही

१ प्रभोः स्थितिविद्यावृद्धंसंवति हि । २ प्रभोः ल० । ३ यथावसरमत्यं च द०, ल०, अ०, प०, स०, इ० । ४ अभिलषणीयम् । ५ बुद्धिहीनाम् । ६ सिद्धि वाङ्गुला । ७ कस्त्र संवन्धि । ८ विचार्यताम् । ९ आप्तसंवन्धि । १० रवि विवर्ज्य । ११ शङ्कुं मा कार्योः । १२ चक्रिनामाखर ।

तदेन शहस्रभ्यवर्य गम्भयाहया शतादिभिः । पूजायैव विमोराजा गत्वास्माभिः शरापणा ॥१४३॥  
मा भा मागध वैचित्यं<sup>१</sup> कार्यमेतद् विनिश्चित्तु । न पुक्षं तत्प्रतीपर्वं<sup>२</sup> तत्र तदेशावासिनः<sup>३</sup> ॥१४४॥  
तदले देव संरथ्य<sup>४</sup> तत्प्रातीप्य<sup>५</sup> न शान्तये । महतः सरिदोधस्य<sup>६</sup> कः प्रतीपं तरत् सुखी ॥१४५॥  
बलवान् तु वस्य इच्छदनुनेयोऽय चक्षुत । भहरसु वैतसी<sup>७</sup> बुद्धिमामनन्त्यविपक्तीम् ॥१४६॥  
इहामुखं च जम्हामुक्तांश्च पूज्यपूजनम् । ताप्तं तदेशावज्ञाति पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ॥१४७॥  
इति तदुच्चनाम्निकचित् प्रबुद्ध इव<sup>८</sup> तत्प्रगम् । अहातमेष्वमेतत्प्रादित्यसौ प्रत्यपद्धतिं<sup>९</sup> ॥१४८॥  
सप्तं चक्रभृतामायो भरतीऽलङ्घशशासनः । प्रतीक्ष्य<sup>१०</sup> सर्वधार्मामिरनुनेयव्य यादरम् ॥१४९॥  
सोऽयं चक्रभृतामायो भरतीऽलङ्घशशासनः । प्रतीक्ष्य<sup>११</sup> सुरेन्द्रसौ<sup>१२</sup> ॥१५०॥  
चक्रित्वं चरमाङ्गनं पुञ्चावं च जगदग्नीः । हृत्यस्य पूज्यमेकैकं किं पुनस्ताम्यमुचितम् ॥१५१॥  
इति निश्चित्य<sup>१३</sup> संभान्तैरनुयातः सुरोत्तमैः । सहसा चक्रिणं द्रष्टुमुच्चारु स मागधः ॥१५२॥

चक्रवर्तीको प्रकट कर रही है ॥१४६॥ इसलिए गन्ध माला अक्षत आदिसे इस बाणकी पूजा कर हम लोगोंको आज ही वही जाकर उनका यह बाण उन्हें अर्पण कर देना चाहिए और आज ही उनकी आज्ञा मान्य करनी चाहिए ॥१४७॥ हे मागध, आप किसी प्रकारके विकारको प्राप्त नहीं हैं, और हम लोगोंके द्वारा कहे हुए इस वक्तायका अवश्य ही निश्चय कीजिए, क्योंकि भत्त हूजिए, और हम लोगोंके द्वारा कहे हुए इस वक्तायका अवश्य ही निश्चय कीजिए, क्योंकि उनके देशमें रहनेवाले आपको उनके साथ विरोध करना उचित नहीं है ॥१४८॥ इसलिए उनके देशमें रहनेवाले आपको उनके साथ विरोध करना उचित नहीं है ॥१४९॥ इसलिए उनके देशमें रहनेवाले आपको उनके साथ विरोध करना उचित नहीं होगी क्योंकि नदीके हे देव, क्रोध करना व्यथा है, चक्रवर्तीके साथ वैर करनेसे कुछ शान्ति नहीं होगी क्योंकि नदीके बड़े भारी प्रवाहके प्रतिकूल तरनेवाला कौन सुखी हो सकता है ? अथात् कोई नहीं ॥१५०॥ यदि बलवान् तु वस्यको अनुकूल बनाये रखता चाहिए यह नीति है तो चक्रवर्तीको आज ही प्रसन्न करना चाहिए, क्योंकि बड़े पुरुषोंके विषयमें बैतके समान नम्र वृत्ति ही दुख दूर करनेवाली है ऐसा विद्वान् लोग भानते हैं ॥१५१॥ पूज्य मनुष्योंकी पूजा करनेसे इस लोक तथा परलोक-दोनों ही लोकोंमें जीवोंकी उत्तमति होती है और पूज्य पुरुषोंकी पूजाका उल्लंघन अर्थात् अनादर करनेसे दोनों ही लोकोंमें पापबन्ध होता है ॥१५२॥ इस प्रकार उन देवोंके बचनमें जिसे उसी समय कुछ-कुछ बोध उत्पन्न हुआ है ऐसे उस मागध देवने मुझे यह हाल मालूम नहीं था यह कहते हुए उनके बचन स्वीकार कर लिये ॥१५३॥ उस समय उसके हाल मालूम नहीं था यह कहते हुए उनके बचन स्वीकार कर लिये ॥१५४॥ उस समय उसके चित्तमें कुछ घबड़ाहट, कुछ भय, कुछ आशंका, कुछ उद्देश और कुछ प्रबोध-सा उत्पन्न हो रहा रहा था ॥१५५॥ तदनन्तर थोड़ी ही देरमें निमंल हुई और क्रोधके नष्ट हो जानेसे शान्त रहा था ॥१५६॥ इस प्रकार निश्चय कर वह मागध देव शीघ्र ही चक्रवर्तीको देखनेके लिए है ? ॥१५७॥ इस प्रकार निश्चय कर वह मागध देव शीघ्र ही चक्रवर्तीको देखनेके लिए आकाश-मार्गसे चला, उस समय सम्भ्रमको प्राप्त हुए अनेक अच्छे-अच्छे देव उसके पीछे-पीछे

१ विद्विकारम् । २ चक्रप्रतिकूलत्वम् । ३ -वर्तिनः ल० । ४ संरस्मै मा कार्याः । ५ प्रातिकूल्यम् ।  
६ प्रवाहस्य । ७ वेत्ससंवन्धिनीम् । अनुकूलतामित्यर्थः । ८ पापं ल० । ९ जन्मती । १० एव । ११ अनु-  
मेने । १२ इव अवधारणे । १३ प्रसन्नवर्ती । १४ अहाकालेनेव । १५ उपशमवती । १६ पूज्यः । सांशयिकः,  
संशयापन्नमानसः । १७ सम्भ्रमवद्भिः ।

समुन्मणितिरीटांशुरचितेनद्रशारासनम् । क्षणेनोलुहंव संप्रापनं तं देशं यत्र चक्रभूत् ॥ १५८॥  
 पुरोधायै शरं रक्षपथे सुनिवेशितम् । माराधः प्रभुमानसी<sup>१</sup> दार्य स्वीकृत मामिति ॥ १५९॥  
 वक्रोन्पतिक्षणे भज्रं यज्ञायामी<sup>२</sup> नमित्यकाः । महान्तमपराधं नस्वं क्षमस्वार्थितो<sup>३</sup> सुइः ॥ १६०॥  
 युष्माणादरजः स्पर्शाद् वार्धितं न केवलम् । पूता वयमपि श्रीमन् व्यत्यादाम्बुजसेवया ॥ १६१॥  
 रत्नास्यमृश्यनर्धाणि स्वर्गेऽप्यसुलभानि च । अधो<sup>४</sup> निर्धीनमाधातुं सौपद्योगानि सन्तु ते ॥ १६२॥  
 हारोऽयमतिरोचित्युरधाराहै<sup>५</sup> रशुकिंजः । अवेषु द्विपसंभूतैः दद्यो मुक्ताकर्णयुजैः<sup>६</sup> ॥ १६३॥  
 तथ वअः स्थलाद्यलैः<sup>७</sup> दुर्पया दुपहारताम्<sup>८</sup> । स्फुरन्ती<sup>९</sup> कुण्डले चामृ कर्णमिङ्गात् पवित्रताम् ॥ १६४॥  
 इत्यहमै कुण्डले दिव्ये हारं च वित्तार सः । ग्रैलोक्यमारसंदोहमिर्बिक्यासुपागतम्<sup>१०</sup> ॥ १६५॥  
 रक्षैदत्ताभ्यस्त्वं स्वेशं माराधः प्रीतमानसः । प्रभोरवासुसत्कारः तन्मतात् स्वमग्नेः पदम् ॥ १६६॥  
 अथ हत्रस्थ एवार्थित्यान्तर्हीपं विलोकयन् । ग्रभुर्यित्यस्मये<sup>११</sup> किंचिद् अद्वाइत्यो हि वारिष्ठिः ॥ १६७॥  
 ततः कुतूहलाद् वार्धि पश्यन्ते धूरातः<sup>१२</sup> पतिम् । तमिष्युदात्वं दन्तांशुसुमनोमञ्जरीः किरन् ॥ १६८॥

### प्रथमित्यृत्तम्

अर्थं अलधिरुच्चलक्षरलचाचित्वाद्युक्तस्फुरन्मणिगणार्चनो धवनदसद्यवशङ्गाकुलः ।  
 तवार्बमित्र संविचित्सुरनुवेलसुचैर्नदन् समद्युक्तजलानको दिशनु शशदानम्बुद्धुम्<sup>१३</sup> ॥ १६९॥

जा रहे थे ॥ १५७॥ देवीप्यमानं मणियोसे जडे हुए मुकुटकी किरणोसे जिसमें इन्द्रधनुष बन रहा है ऐसे आकाशको क्षण-भरमें उल्लंघन कर वह माराध देव जहाँ चक्रवर्ती था उस स्थान-पर जा पहुँचा ॥ १५८॥ रत्नके पिटारेमें रखे हुए बाणको सामने रखकर माराध देवने भरतके लिए नमस्कार किया और कहा कि हे आर्य, मुझे श्वीकार कीजिए—अपना ही समझिए ॥ १५९॥ हे भद्र, हम अज्ञानी लोग चक्र उत्पन्न होनेके समय ही नहीं आये सो आप हमारे इस भारी अपराधको क्षमा कर दीजिए, हम बार-बार प्रार्थना करते हैं ॥ १६०॥ हे श्रीमन्, आपके चरणोंकी धलिके स्पर्शसे केवल यह समुद्र ही पवित्र नहीं हुआ है किन्तु आपके चरणकमलोंकी सेवा करनेसे हम लोग भी पवित्र हो गये हैं ॥ १६१॥ हे प्रभो, यद्यपि ये रत्न अमूल्य हैं और स्वर्गमें भी दुर्लभ हैं तथापि आपकी निधियोंके नीचे रखनेके काम आवें ॥ १६२॥ यह अतिशय देवीप्यमान तथा सूअर, सीप, बाँस और हाथीमें उत्पन्न न होनेवाले दिव्य मोतियोंसे गुथा हुआ हार आपके बक्षःस्थलके आलिंगनसे पूज्यताको प्राप्त हो तथा ये देवीप्यमान-चमकते हुए दोनों कुण्डल आपके कानोंकी संगतिसे पवित्रताको प्राप्त हों ॥ १६३—१६४॥ इस प्रकार उस माराध देवने एकरूपताको प्राप्त हुए तीनों लोकोंकी सार वस्तुओंके समान सुशोभित होनेवाला हार और दोनों दिव्य कुण्डल भरतके लिए समर्पित किये ॥ १६५॥ तदनन्तर जिसका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है ऐसे माराध देवने अनेक प्रकारके रत्नोंसे रत्नोंके स्वामी भरत चक्रवर्तीकी पूजा की और फिर उनसे आदर-सत्कार पाकर उन्हींकी सम्मतिसे वह अपने स्थानपर चला गया ॥ १६६॥

अथानन्तर—वहाँ खडे रहकर ही अन्तर्दीपोंसहित समुद्रको देखते हुए महाराज भरत-को कुछ आश्चर्य हुआ सो ठीक ही है क्योंकि वह लवणसमुद्र अनेक आश्चर्योंसे सहित था ॥ १६७॥ तदनन्तर दाँतोंकी किरणेंरुपी पूष्पमंजरीको बिलेरता हुआ सारथि कौतूहल-से समुद्रको देखनेवाले भरतसे इस प्रकार कहने लगा ॥ १६८॥ कि, उछलती हुई चंचल लहरों

१ अये कृत्वा । २ नमस्करोति स्म । ३ आगताः । ४ प्रार्थितः । ५ निधि प्रयत्नेन स्थापयित्युमधः शिलाकर्तुं सप्रयोजनानि भवन्त्वति भावः । ६ न सूकरजैः । ७ इक्षुजैः । ८ संगात् । ९ उपगच्छत् । १० पूज्यताम् । ११ स्फुरलौ कुण्डले चैमे च० । १२ एकप्रकारम् । १३ विस्मितवान् । १४ यातसुर्व गतः । १५ वारिष्ठिरित्यर्थः । १६ आनन्दम् ।

अमुव्यजलमुव्यतदगगनमेतदालक्ष्यते शशाङ्कको मलवडिविभिराततं शीर्करः ।

प्रहासमिव दिग्बधूषिविवाय विश्वगदधत् तितांसै दिव चात्मनः प्रतिशिशो यशो भागशः ॥१७०॥

कचित्सुक्तिलक्ष्मीकिंकरत्सं सतारं नभो जयन्त्यलिम्लीमर्सं मकरमीनराशिशितम् ।

कचित्स्वलिलमस्य भोगिकुलं संकुलं सूक्ष्मं नरेन्द्रकुलमुखस्थिपतिजिगीषीवोद्दटम् ॥१७१॥

इती विशिति गाङ्गमम्बु शरदमनुदाच्छुद्धिं सुते हिमदलोऽमुतश्च सुरसं पथः सैम्यवम् ।

तथापि अ जलाममेन धतिरस्य पोष्यते भ्रुवं न जलसंग्रहैरिह जलाशयोऽ द्रायति ॥१७२॥

### बसन्ततिलकावृत्तम्

व्याप्योदरं चलकुलाचलसंनिकाशाः पुत्रा इवास्य लिभयः पयसा प्रतुषाः ।

कलोलकाश्च परिभारहिताः समस्ताद्योन्यथद्वलपराः सम्मानमन्ति ॥१७३॥

रूपो भुजाओंके द्वारा धारण किये हुए देवीघमान मणियोंके समूह ही जिसकी पूजाको सामग्री है, जो शब्द करते हुए असंख्यात बांधोंसे आकुल है, जो प्रत्येक बेलाके साथ जोरसे शब्द कर रहा है, बायुके द्वारा कम्पित हुआ जल ही जिसके नगाड़े हैं और जो इन सबसे ऐसा जान पढ़ता है मानो आपके लिए अर्थ ही देना चाहता हो ऐसा यह समुद्र सदा आपके लिए आनन्द देवे ॥१६९॥ आकाशकी ओर उछलता हुआ और चन्द्रमाकी किरणोंके समान कोमल कान्तिवाले जलके छोटे-छोटे छीटोंसे व्याप्त हुआ दृश्यतरामुद्रका गुह्यलक्ष्मीसहस्रांगांगहाले दिल्लाक्ष्मी स्त्रियोंके साथ परिचय करनेके लिए चारों ओरसे हास्य ही कर रहा हो अथवा अपना यश बाटकर प्रत्येक दिशामें फैलाना ही चाहता हो ॥१७०॥ खुली हुई सीपोंके भोतियोंसे व्याप्त हुआ, भ्रमरके समान काला और मकर, मोन, मगर-मच्छ आदि जल-जन्मुओंकी राशि—समूहसे भरा हुआ यह समुद्रका जल कहीं तराओंसहित, भ्रमरके समान श्याम और मकर मोन आदि राशियों से भरे हुए आकाशको जीतता है तो कहीं राजाओंके कुलको जीतना चाहता है क्योंकि जिस प्रकार राजाओंका कुल भोगी अर्थात् राजाओंके समूहसे व्याप्त रहता है उसी प्रकार यह जल भी भोगी अर्थात् सर्पोंके समूहसे व्याप्त है, जिस प्रकार राजाओंका कुल सून्नत अर्थात् अत्यन्त उत्कृष्ट होता है उसी प्रकार यह जल भी सून्नत अर्थात् अत्यन्त ऊँचा है, जिस प्रकार राजाओंका कुल उत्तम स्थिति अर्थात् भर्यादासे सहित होता है उसी प्रकार यह जल भी उत्तम स्थिति अर्थात् अचधि (हृद) से सहित है, और राजाओंका कुल जिस प्रकार उद्धृट अर्थात् उत्कृष्ट योद्धाओंसे सहित होता है उसी प्रकार यह जल भी उद्धृट अर्थात् प्रबल है ॥१७१॥ इधर हिमदान् पर्वत-से निकला हुआ तथा शरदऋतुके बादलोंके समान स्वच्छ कान्तिको धारण करनेवाला गंगा नदीका जल प्रवेश कर रहा है और उस ओर सिंधु नदीका मीठा जल प्रवेश कर रहा है, फिर भी जलके आनेसे इसका सन्तोष पूरा नहीं होता है, सो ठीक ही है क्योंकि जलाशय (जिसके बीचमें जल है, पक्षमें जड़ आशयवाला-मूर्ख) जल (पक्षमें जड़-मूर्ख) के संग्रहसे कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता है । भावार्थ — जिस प्रकार जलाशय-जड़ाशय अर्थात् मूर्ख मनुष्य जलसंग्रह-जड़संग्रह अर्थात् मूर्ख मनुष्योंके संप्रहसे सन्तुष्ट नहीं होता उसी प्रकार जलाशय अर्थात् जलसे भरा हुआ समुद्र या तालाब जल संग्रह अर्थात् पानीके संग्रह करनेसे सन्तुष्ट नहीं होता ॥१७२॥ इस समुद्र-के उदर अर्थात् मध्यभाग अथवा पेटमें व्याप्त होकर पय अर्थात् जल अथवा दूधसे अत्यन्त पुष्ट हुए तथा चलते हुए कुलाचलोंके समान बड़े-बड़े इसके पुत्रोंके समान मगरमच्छ और प्रमाणरहित

१ विस्तारितुमिच्छत् । २ सर्वममूह वर्षे भोगिममूह । ३ सिंधुनदीर्बन्धि । ४ जलाधारः जड़बुद्धिश्च । ५ द्रायति सृष्टि । द्रै तृष्टी । — ६ माविशन्ति ८०, ८० ।

आपो धनं द्वतसा: सरितोऽस्य वाराः पुत्रीयिता॑ जलचराः सिकताथ रमभ् ।

११८४। अहस्यै तिभूक्ति॑ इव धुर्मुखैलिलौ॒ विवेद्वै॑ धै॒ से महोदधिरिति॑ प्रथि॑ मानमेषः ॥ १७४॥

निःशास्त्रमूलमिनाः॒ कणमण्डलान्तः॑ सुन्धै॒ नकरतरुचयः॒ परितो अमन्तः॑ ।

ष्ट्रायच्छमानतनवां॑ रथितै॑ रक्तस्माद्वै॒ सुकुक्षिर्यमर्मा॑ द्वते॒ रणीन्द्राः ॥ १७५॥

॑ पादैरयं जलनिधिः॒ शिशिरर्पान्दोरास्पृश्यमानसलिलः॒ सहसा॒ ग्रुमुदन् ।

रीषादियोष्टलति॒॑ सुकुक्षमर्मार्मार्मो॒ वेलाच्छलेन॒॑ न महान्॒ सहनेऽभिभूतिम्॒॑ ॥ १७६॥

नाकांक्षां॒ द्वतरसं॒॑ सहकामिनीभिराक्षिर्यमानिः॒॑ सुमनोहरकाननानि ।

द्वीपरुधलानि॒ हचिराणि॒ सहस्रशोऽस्मिन्॒ सम्पत्तरीपमिव॒॑ दुर्गनिवेशनानि॒॑ ॥ १७७॥

अनेक लहरें ये सब चारों ओरसे एक दूसरेको धक्का देते हुए एक ही साथ इस समुद्रमें निवास कर रहे हैं ॥ १७३॥ हे प्रभो, इस समुद्रके जल ही धन है, रस अर्थात् जल अथवा शृंगार या स्नेहको धारण करनेवाली नदियाँ ही इसकी स्त्रियाँ हैं, मगर मच्छ आदि जलचर जीव ही इसके पुत्र हैं और बालू ही इसके रत्न हैं इस प्रकार यह थोड़ी-सी विभूतिको धारण करता है तथापि महोदधि इस भारी प्रसिद्धिको धारण करता है यह आश्चर्यकी बात है । भावार्थ – इस श्लोकमें कविने समुद्रकी दरिद्र अवस्थाका चित्रण कर उसके महोदधि नामपर आश्चर्य प्रकट किया है । दरिद्र अवस्थाका चित्रण इस प्रकार है । हे प्रभो, इस समुद्रके पास आजीविकाके योग्य कुछ भी धन नहीं है । केवल जल ही इसका धन है अर्थात् दूसरोंको पानी पिला पिला कर ही अपना निर्वाह करता है, इसकी नदीरूप स्त्रियोंका भी बुरा हाल है वे बेचारी रस-जल धारण करके अर्थात् दूसरेका पानी भर-भरकर ही अपनी आजीविका चलाती हैं । पुत्र हैं परन्तु वे सब जलचर अर्थात् ( जड़चर ) मूर्ख मनुष्योंके नौकर हैं अथवा मूर्ख होनेसे नौकर हैं अथवा पानीमें रहकर शेवाल बीनना आदि तुच्छ कार्य करते हैं, इसके सिवाय कुलपरम्परासे आयी हुई सोना-चांदी रत्न आदिकी सम्पत्ति भी इसके पास कुछ नहीं है – बालू ही इसके रत्न हैं, यद्यपि इसमें अनेक रत्न पैदा होते हैं परन्तु वे इसके निजके नहीं हैं उन्हें दूसरे लोग ले जाते हैं इसलिए दूसरेके ही समझना चाहिए इस प्रकार यह बिलकुल ही दरिद्र है फिर भी महोदधि ( महा + उ + दधिः ) अर्थात् लक्ष्मीका बड़ा भारी निवासस्थान इस नामको धारण करता है यह आश्चर्यकी बात है । आश्चर्यका परिहार ऊपर लिखा जा चुका है ॥ १७४॥ जो निःश्वासके साथ निकलते हुए धूमसे मलिन हो रहे हैं, जिनके फणाओंके मध्यभागमें रत्नोंकी कान्ति स्पष्ट रूपसे प्रकट हो रही है, जो चारों ओर गोलाकार धूम रहे हैं, जिनके शरीर बहुत लम्बे हैं, और जो अक्समात् ही क्रोध करने लगते हैं ऐसे ये सर्व इस समुद्रमें अलातचक्रकी शोभा धारण कर रहे हैं ॥ १७५॥ इस समुद्रका जल चन्द्रमाके शीतल पादों अर्थात् पैरोंसे ( किरणोंसे ) स्पर्श किया जा रहा है, इसलिए ही मानो यह क्रोधसे गम्भीर शब्द करता हुआ ज्वारकी लहरोंके छलसे बदला चुकानेके लिए अक्समात् आकाशकी ओर उछलकर दौड़ रहा है सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुष तिरस्कार नहीं सह सकते ॥ १७६॥ इस समुद्रके जलके

१ पुत्रा इष्ट आचरिताः । २ विभूतेरेष्वर्यस्य लबो लेशस्तेन दुर्लितो दुर्गर्वः । लबशब्दोऽन्न विचित्र-  
कारणम् । ३ प्रसिद्धताम् । ४ कणमण्डलमध्ये । ५ सुप्रकट । ६ दीर्घभवच्छरीराः । ७ रोषः । ८ अलात-  
शोभाम् । ९ किरणः चरणैरिति चन्द्रिः । १० – दिवोच्छ्रवलति ल० । ११ जलविकारव्याजेन । 'अङ्गम्बुविकृता  
क्षीडनानि येषु तानि । १२ पराभवम् । १३ क्रियाविवेषणम् । मतिरसः द० । प्रतरसां ल० । १४ आसमन्तात्  
पदन्तवर्णिणस्तटम् ।' इत्यभिवानात् । १५ सुमनोहर इत्यपि कवचित् पाठः । १६ अन्तर्दीपिमिव । 'द्वीपोऽस्त्रियामन्तरोपं  
\* 'दधि शीरोत्तरावस्थाभाष्ये श्रीवाससर्जयोः' इति मेदिनी ।

मालिनीवृत्तम्

अयमनिभृतवेलो<sup>१</sup> रुद्रोदोऽन्तरालैरनिलबलविलोल्मुखिक्षोलजालैः ।

तदवनमभिहन्ति व्यक्तमस्मै<sup>२</sup> प्रहृयन् सम किल वहिरस्माद्वित् शृणिसुधेति ॥१७८॥

अविगगितमहरवा यृथमस्मान् स्वपादैरनिहथे<sup>३</sup> किमलक्ष्यं वो युधा तौकथमंतन् ।

वथमिव किमलक्ष्याः किं गर्वारा इतीत्थं परिवदति<sup>४</sup> वितावैनैः मङ्गिः कुलाद्वीन् ॥१७९॥

ग्रहणिणीवृत्तम्

अन्नायं भुजगशिशुविलाभिशङ्का<sup>५</sup> अथासास्यं लिमिमभिधावति प्रहृष्टः ।

तं सोऽपि स्वगलविलावलभ्रलम्<sup>६</sup> स्वान्त्राद्वा<sup>७</sup> विहितद्यो न जेगिकाति ॥१८०॥

दोधकवृत्तम्

एष<sup>८</sup> महामणिरदिमविकीर्ण तोषमसुप्य<sup>९</sup> धत्तामिषशङ्कः ॥१८१॥

मीनगणोऽनुसरन् सहस्रास्माद् वहिभिया युनरप्यपयानि ॥१८१॥

लोलतद्विलोलितद्विद्वतरोऽसुभितः<sup>१०</sup> सुभते<sup>११</sup> मः ।

ही रथमेष लिमिकिलशङ्का पद्यति पद्यति लिमिः<sup>१२</sup> स्त्रिमिताक्षः ॥१८२॥

भुजङ्गप्रयातवृत्तम्

इहामी भुजङ्गः सरस्नैः फणादैः ससुक्षिप्तं भोगान्<sup>१३</sup> चमुद्वीक्षमाणाः ।

विभाष्यम्त एसे तरङ्गोऽहस्तैर्दृता शीपिक्षीघा महावार्धिनेष ॥१८३॥

भीतर अपनी देवांगनाओंके साथ बड़े वेगसे आते हुए देवोंके हजारों क्रीड़ा करनेके स्थान हैं, हजारों मनोहर बन हैं और हजारों सुन्दर द्वीप हैं तथा वे सब ऐसे जान पड़ते हैं मानो इसके भीतर बने हुए किले ही हों ॥१७७॥ ज्वार-भाटाओंसे चंचल हुआ यह समुद्र इस बनके बाहर भेरा जाना नहीं हो सकता है इसलिए इसपर प्रकट क्रोध करता हुआ अपने किनारेके बनको बायुके वेगसे अतिशय चंचल और पृथिवी तथा आकाशके मध्य भागको रोकनेवाली अनेक लहरोंके समूहसे व्यर्थ ही ताढ़न कर रहा है ॥१७८॥ हे प्रभो, यह गरजता हुआ समुद्र ऐसा जान पड़ता है मानो अपने ऊँदे शब्दोंसे कुल पर्वतोंको यही कह रहा है कि हे कुलपर्वतों, तुम्हारी ऊँचाई बहुत है इसलिए क्या तुम अपने पैरों अर्थात् अन्तके भागोंसे हम लोगोंकी ताढ़ना कर रहे हो ? तुम्हारी यह व्यर्थकी ऊँचाई क्या उल्लंघन करनेके अयोग्य है ? क्या तुम हमारे समान अलंध्य अधबा गम्भीर हो ? ॥१७९॥ इधर यह सौपका बच्चा अपना बिल समझकर प्रसन्न होता हुआ, मुख फाड़े हुए मच्छके मुखमें दौड़ा जा रहा है और वह भी अपने गले रूप बिलमें लगे हुए इस सौपके बच्चेको अपनी आँत समझ दयाके कारण नहीं निगल रहा है ॥१८०॥ इधर यह मछलियोंका समूह पद्यराग मणिकी किरणोंसे व्याप्त हुए इस समुद्रके जलको मांस समझकर उसे लेनेके लिए दौड़ता है और फिर अकस्मात् ही अग्नि समझकर वहसे लौट आता है ॥१८१॥ हे देव, इधर देखिए, चंचल लहरोंसे जिसकी दृष्टि चंचल हो रही है और जो बहुत ही बूढ़ा है ऐसा यह मच्छ इस रथको मछलियोंको खानेवाला बड़ा मच्छ समझकर निश्चल दृष्टिसे देख रहा है, हमारा स्वयाल है कि यह बड़ा कुर्बांदि है ॥१८२॥ इधर

१ अस्थिर । अचलमित्यर्थः । २ आकाशमण्डलः 'भूम्याकाशरहःप्रयोगानयेषु रोधस्' । ३ तटवनाय । ४ वृषा । ५ अभिताङ्गयथ । ६ पक्षिध्वनिभिः । ७ इव । ८ विवृताननम् । ९ मध्य । मध्यमं चाकलग्नं च तुष्योऽत्वी' इत्यमरः । १० निजपुरोतदविद्याकृतकृतयः (?) [ निजपुरीतदिभ्रमकृतदयः ] । ११ भूं गिलति । १२ पद्यराग । १३ समुद्रस्य । १४ पलल । १५ अर्दोभनवृद्धिः । १६ सापुज्ञातम् । १७ मरस्यः । १८ 'स्त्रिमिता वाद्वर्षनिश्चलामित्यभिधानात् । १९ शशीराणि । 'भोगः सुखे रथादिभृतावहेष्व फणकाययोः' ।

स्वप्नेऽप्यन्तं अप्यतः प्राणे लुभितिरुपता अति शुभरत्व  
भुजग्नप्रयान्तरिदं वासिराशोजलं लक्ष्यतेऽन्तःस्फुरद्रक्षकंडि ।  
महानीलवेश्मेव दाष्ठेरनेकेज्वलज्जिभ्वलज्जिस्तथान्तनुष्टि ॥ १८४ ॥

## मत्तमयूरवृत्तम्

वाग्यावाताऽपुक्तवायव्यनियुचैस्तन्वानेऽधो ममद्रगम्भीरं कृतलास्याः ।  
द्विषोपान्ते सन्ततमस्मिन् सुरकन्या रसवन्तं मत्तमयूरः समसंवादः ॥ १८५ ॥  
नीलं व्यामाः कृतरवसुचैर्थतनादा<sup>१</sup> विद्युदन्ता<sup>२</sup> स्फुरितभुजङ्गात्कणरक्षम् ।  
आदिलक्ष्यन्ता जलदसमहा जलमस्य व्यक्तिं नोपवजितुमल<sup>३</sup> ते<sup>४</sup> घनकाले ॥ १८६ ॥  
पश्याभोधेरनुतटमेना वनराजी राजीवास्य<sup>५</sup> प्रशमिततापां विततापाम्<sup>६</sup> ।  
वेलोन्मपंजलकणिकामि<sup>७</sup> परिधीतां नीलां शारीमिव<sup>८</sup> सुमनेभिः प्रविक्षीणम् ॥ १८७ ॥

## तोटकवृत्तम्

परितः<sup>१</sup> सरसी<sup>२</sup> सर्वैः कमलैः सुहिता<sup>३</sup> सुचिरं विचरन्ति सृगाः ।  
<sup>४</sup> उपतीरमसुध्य निशर्गसुखां वत्ति<sup>५</sup> निरुपद्रुतिमेस्य इते ॥ १८८ ॥  
अनुरीश्वने<sup>६</sup> सृगदूशमिदं कनकस्थलसुउच्छलितं सृचिभिः ।  
परिवीक्ष्य द्रवानलशक्ति भृशा<sup>७</sup> परिधाष्टति धावति तीरभुवः ॥ १८९ ॥

रत्नसहित फणाके अश्रभागसे अपने मस्तकको ऊँचा उठाकर आकाशकी ओर देखते हुए ये सर्व ऐसे जान पड़ते हैं मानो इस महासमुद्रने अपने तरंगोंरूपी बड़े-बड़े हाथोंसे दीपकोंके समूह ही वारण कर रखे हों ॥ १८३ ॥ जिसके भीतर करोड़ों रत्न देवीयमान हो रहे हैं ऐसा यह महासमुद्रका जल सर्पोंके इधर-उधर जानेसे ऐसा दिखाई देता है मानो फैले हुए अन्धकारको नष्ट करते हुए, जलते हुए और चलते हुए अनेक दीपकोंसे सहित महानील मणियोंका बना हुआ घर हो हो ॥ १८४ ॥ जिस समय यह समुद्र वायुके आघातसे पुष्कर ( एक प्रकारका बाजा )के समान गम्भीर और ऊँचे शब्द करता है उस समय इस द्वीपके किनारेपर इन उन्मत्त मयूरोंके साथ साथ नृत्य करती हुई ये देवकन्याएँ निरन्तर क्रीड़ा किया करती हैं ॥ १८५ ॥ वर्षाक्रिहतुमें बादलोंके समूह और इस समुद्रका जल दोनों एक समान रहते हैं क्योंकि वर्षाक्रिहतुमें बादलोंके समूह काले रहते हैं और समुद्रका जल भी काला रहता है, बादलोंके समूह जोरसे गरजते हुए आनन्दित होते हैं और समुद्रका जल भी जोरसे शब्द करता हुआ आनन्दित होता है – लहराता रहता है, बादलोंके समूहमें बिजली चमकती है और समुद्रके जलमें भी सर्पोंके ऊँचे उठे हुए फणाओं-पर रत्न चमकते रहते हैं, इस प्रकार बादलोंके समूह अपने समान इस समुद्रके जलका आलिंगन करते हुए वर्षाक्रिहतुमें किसी दूसरी जगह नहीं जा सकते यह स्पष्ट है ॥ १८६ ॥ कमलके समान सुन्दर मुखको धारण करनेवाले हैं देव, समुद्रके किनारे-किनारेकी इन वनपक्षियोंको देखिए जिनमें कि सूर्यका सन्ताप बिलकुल ही शान्त हो गया है, जहाँ-तहाँ विस्तृत जल भरा हुआ है, जो फूलोंसे व्याप्त हो रही हैं और जो बड़ी-बड़ी लहरोंके उछलते हुए जलकी बूँदोंसे धोई हुई तीले रंगकी साड़ियोंके समान ज्ञान पड़ती हैं ॥ १८७ ॥ इस समुद्रके किनारेके बनमें उपद्रव-रहित तथा स्वभावसे ही सुख देनेवाले स्थानपर आकर सरस कलमी धानोंको खाते हुए ये हरिण बहुत काल तक इन तालाबोंके चारों ओर घूमा करते हैं ॥ १८८ ॥ इस किनारेके बनमें कान्ति

<sup>१</sup> व्याप्तान्धकारनाशकः । <sup>२</sup> जलमिति वाद्य अथवा चर्मनद्वाद्यभेदः । <sup>३</sup> समपेतः ल०, इ० ।  
४ धूतमोदा ल० । <sup>५</sup> तडिद्रवन्तः । <sup>६</sup> व्यक्तिं ल० । <sup>७</sup> गन्तुम् । <sup>८</sup> मेषसम्हाः । <sup>९</sup> कमलास्य ।  
१० रिस्तृतज्जलाम् । <sup>११</sup> जललवैः । ‘कणिका कष्टतेऽस्यन्ता सूक्ष्मवस्त्रविनिमयथयोः’ ॥ <sup>१२</sup> वस्त्रम् ।  
१३ सरसीनां समन्ततः । <sup>१४</sup> पोषिताः । <sup>१५</sup> तटे । <sup>१६</sup> निरुपद्रवाम् । <sup>१७</sup> तटवने । <sup>१८</sup> परिषण्डले (वेलायाम)

प्रहर्षिणी

लायाथादगमभिसारयन्<sup>१</sup> चरित्वीरालस्तप्रतनुजलांशुकाहतरङ्गैः ।  
आदिलायन्मुहुरपि नोप्याति मृहि संमोर्गरसिरसिको न तुप्तीह ॥ १६० ॥

वसन्ततिलका

री<sup>२</sup> श्वेषोऽस्य तनुशीकरवारिसिवतः संमाजिला विरलमुखलितैस्तरङ्गैः ।  
भानीह संततलसाविगालत्रमूननिष्ठोपहारसुमगा युसदो<sup>३</sup> निषेद्या ॥ १६१ ॥

मन्दाकान्ता

स्वगीयानश्चियमित्र<sup>४</sup> हसस्युत्प्रसूने अनेऽस्मिन् मन्दाराणां सरलि<sup>५</sup> पश्चमे भन्दमम्बद वनाम्तान ।  
मन्दाकान्ता<sup>६</sup> साललितपदं किञ्चिदारवधगानाऽप्यकृम्यन्ते लगयुवत्यस्तीरणेष्वमुप्य ॥ १६२ ॥

प्रहर्षिणी

अन्दर्य<sup>७</sup> हितमित्यमाजिघर्सुरारादभ्येति द्रुतममिभाषु<sup>८</sup> कोप्त्युयोनिम्<sup>९</sup> ।  
शीलोकान्ति निगिलस्तिर्मामितोऽन्यो अत्यस्तो<sup>१०</sup> सममसुना युचुलमानः ॥ १६३ ॥

शृण्डी

बलादजयरसितमि शशुभपि<sup>११</sup> स्वप्लादप्सुजो<sup>१२</sup> विकर्षति<sup>१३</sup> युसुलस्या<sup>१४</sup> कृतदग्धहो<sup>१५</sup> दुर्बह<sup>१६</sup> ।  
तथापि न जयो मिथोऽस्ति समकक्ष्योरनयोर्ध्रुवं न<sup>१७</sup> समकक्ष्योरिह जयेतप्रक्रमः<sup>१८</sup> ॥ १६४ ॥

से प्रकाशमान मुवर्णमय स्थानोंको देखकर जिसे दावानलकी शंका हो रही है ऐसा यह हरिणों-का समूह बहुत शीघ्र किनारेकी पृथ्वीकी ओर लौटता हुआ दीड़ा जा रहा है ॥ १६५ ॥ यह समुद्र, जिनके जलरूपी सूक्ष्म वस्त्र कुछ-कुछ नीचेकी ओर लिपक गये हैं ऐसी नदीरूपी स्त्रियों-को लावण्य अर्थात् सुन्दरताके कारण ( पश्चमे खारापनके कारण ) अपनी ओर बुलाता हुआ तथा तरंगोंके द्वारा बार-बार उनका आलिगन करता हुआ भी कभी तृप्तिको प्राप्त नहीं होता सो ठीक ही है क्योंकि जो अत्यन्त रसिक अर्थात् कामी ( पश्चमे जलसहित ) होता है वह इस संसार-में अनेक बार सम्भोग करनेपर भी तृप्त नहीं होता है ॥ १६० ॥ जो छोटी-छोटी बूँदोंके पानी-के सीचनेसे स्वच्छ हो गयी हैं, निरन्तर लताओंसे गिरते हुए फूलोंके उपहारसे जो सदा सुन्दर जान पड़ती हैं, और जो देवोंके द्वारा सेवन करने पोम्य हैं ऐसी ये यहाँकी किनारेकी भूमियाँ विरल-विरल रूपसे उछलती हुई लहरोंसे अत्यन्त सुशोभित हो रही हैं ॥ १६१ ॥ स्वर्गके उपवनकी शोभाकी ओर हैसनेवाले तथा फूलोंसे भरे हुए इस बनमें मन्दार वृक्षोंके बनके मध्य भागसे यह वायु धीरे-धीरे चल रहा है और इसी समय जिन्होंने कुछ-कुछ गाना प्रारम्भ किया है ऐसी ये धीरे-धीरे चलनेवाली विद्याधरियाँ इस समुद्रके किनारेके प्रदेशोंपर लीलापूर्वक पैर रखती उठाती हुई टहल रही हैं ॥ १६२ ॥ इधर, इस जलमें उत्पन्न हुए अन्य अनेक भृष्टोंको लिरस्कार कर उनके मारनेकी इच्छा करता हुआ यह इसी जलमें उत्पन्न हुआ बड़ा मच्छ बहुत शीघ्र दूरसे उनके सन्मुख आ रहा है और पर्वतके समान बड़े-बड़े मच्छोंको निश्चलता हुआ यह दूसरा बड़ा मच्छ उस पहले बड़े मच्छके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करता हुआ सड़ा है ॥ १६३ ॥ इधर, यह अजगर जलमें-से किसी बड़े मच्छको अपनी ओर खीच रहा है और भजबूतीसे पकड़ने-

१ अभिसारिकाः कुर्वन् । २ इलक्षण । ३ तटभूमयः । ४ देवानाम् । ५ हसतोति हसत् तस्मिन् ।  
६ सरतीति सरत् तस्मिन् । ७ मन्दगमनाः । ८ अप्तु भवः । ९ आहस्तुमिच्छुः । १० अभिभवशीलः ।  
११ शाहस्रं जलचरं था । १२ वैपरीत्येन स्थितः । १३ अजगरम् । १४ मत्स्यः । १५ आकर्षति ।  
१६ योद्धुमिच्छया । १७ परस्परविहितदृढप्राहणम् । ग्रहः स्त्रीकारः । १८ गृहीतुमशक्यः । १९ ममबलयोः ।  
२० अपजयः ।

वने वनगतैरिदं जलनिधेः समाहरालितं वनं वनगतैरिच स्फुटिभिसुक्षसांराविणम् ।  
भृद्रक्षपस्त्रिवादनश्चियमुपादधिक्षटे तनोति तटसुखलसपदि दत्तसंमार्जनम् ॥ १९५॥  
तरत्तिमिकलेवरं स्फुटित्तुकिशालकं चितं स्फुरत्परुषनिःस्वर्वं विष्वतरनश्चपातालकम् ।  
भयानकमितो जलं जलनिधेलं सत्पत्तगप्रसुक्ततनुं कृतिसंशयितवीचिमालाकुलम् ॥ १९६॥  
इनो तु नवनोऽनिलः शिशिरशीकरानाकिरञ्जपैति शनकैस्तद्गुमसुगन्धिपुण्याहरः ॥  
इतइच प्रस्थोऽनिलः स्फुरति धूतकल्पीलसात् कृतस्वनमयानकस्तिमिकलेवरानाधुनन् ॥ १९७॥

## शार्दूलविकीडितम्

अस्त्रोपान्तभुवद्यकासति तरां वेलोऽकलन्मौक्तिकैराकाणाः कुसुमोपहारजनितां लक्ष्मीं दधाना भृशम् ।  
मेष्वन्ते यह मुन्दरीभिरमरा याः स्वगेलोकान्तरं मनवाना<sup>१</sup> भृतस्मद्वास्तटवनरचायात्तलसंश्रिताः ॥ १९८॥  
एते ते मकरादयो उक्तिविश्वामिति त्रिवेष त्रिशिरभृतिर्वै शारोऽस्त्रीशमनक्तरामधिकं युधीर्वै इवास्त्रौरमाः ।  
भागस्यै प्रतिलिप्तप्रथा नु<sup>२</sup> जनकस्थाकोशातोप्यग्रसो युध्यन्ते मिलिताः परस्परमहो अद्वकुष्ठो चिग्धनम् ॥ १९९॥  
लोकानन्दिभिरप्रभार्वै परिगतैरुक्तावस्मीभौरिना<sup>३</sup> मारुदैरधिमस्तकं<sup>४</sup> युचितमैः संतापविष्टेदिनिः ।  
पातालैर्विवृतानन्मुक्तुरपि प्राप्तव्ययैर्खण्डसारमसुव्य नास्ति विगमो<sup>५</sup> रत्नैर्जलैर्विरषि ॥ २००॥

बाला यह हुए मच्छ भी लड़नेकी इच्छासे उसे जमीनपर-से अपनी ओर खीच रहा है तथापि एक समान बल रखनेवाले इन दोनोंमें परस्पर किसीकी जीत नहीं हो रही है सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें जो समान शक्तिवाले हैं उनमें परस्पर जय और पराजयका निर्णय नहीं होता है ॥ १९४॥ जंगली हाथियोंके द्वारा अतिशय ताढ़न किया हुआ यह समुद्रका जल, जिसमें जंगली हाथी स्पष्ट रूपसे गर्जना कर रहे हैं ऐसे किसी वनके समान तथा भृदंग बजनेकी शोभाको धारण करता हुआ और दिशाओंमें उछलता हुआ किनारेको बहुत शीघ्र शुद्ध कर रहा है ॥ १९५॥ जिसमें अनेक मछलियोंके शरीर तैर रहे हैं, जो खुली हुई सीपोंके टुकड़ोंसे व्याप्त है, जिसमें कठोर शब्द हो रहे हैं, जिसने अपने रम्धोंमें पातालको भी धारण कर रखा है, और जो तैरते हुए सीपोंसे छूटी हुई काँचलियोंसे लोगोंको ऐसा सन्देह उत्पन्न करता है मानो लहरोंके समूहसे ही व्याप्त हो ऐसा पह समुद्रका जल इधर बहुत भयानक हो रहा है ॥ १९६॥ इधर, वनको हिलाता हुआ, शीतल जलकी बूँदोंको बरसाता हुआ और बृक्षोंके मुगन्धित फूलों-की सुगन्धिका हरण करता हुआ वायु धीरे-धीरे किनारेकी ओर बह रहा है और इधर बड़े-बड़े मच्छोंके शरीरको कैपाता हुआ तथा हिलती हुई लहरोंके शब्दोंसे भयंकर यह प्रचण्ड वायु बह रहा है ॥ १९७॥ जो बड़ी-बड़ी लहरोंसे उछलते हुए मोतियोंसे व्याप्त होकर फूलोंके उपहारसे उत्पन्न हुई अतिशय शोभाको धारण करती हैं, किनारेके वनके छायादार वृक्षोंके नीचे बैठे हुए देव लोग हर्षित होकर अपनी-अपनी देवांगनाओंके साथ जिनकी सेवा करते हैं और इसीलिए जो दूसरे स्वर्गलोककी शोभा बढ़ाती हैं ऐसी ये इस समुद्रके किनारेकी भूमिर्था अत्यन्त सुशोभित हो रही है ॥ १९८॥ ये मगरमच्छ आदि जलचर जीव, जिसके पास अनन्त धन है ऐसे इस समुद्रको अपने उदरका पालन-पोषण करनेवाला पिता समझकर सगे पुत्रोंके समान उसका धन बैटकर अपने भाग (हिस्से)को अधिक रूपसे लेनेकी इच्छासे, गर्जनाके शब्दोंके बहाने चिल्लते हुए पिताके सामने ही इकट्ठे होकर क्रोधित होते हुए परस्परमें लड़ रहे हैं, हाय ! ऐसे धनको धिक्कार हो ॥ १९९॥ मूँह खोलकर पड़े हुए अनेक यातालों अर्थात् विवरों और

१ जलम् । २ शक्ति । ३ ललत्यन्दूम्—ल०, अ०, द०, इ०, प०, स०, ब०, । चक्षुसंपर्य ।  
४ निर्भौकि । ५ पुण्याप्याहतुं शीलः । ६ तन्वाना प० । ७ स्वोदरपूरकम् । 'उभावास्मीभृतिः कुशिभृतिः  
स्वोदरपूरके ।' इत्यभिघानात् । ८ उरति भवाः । ९ भागं लक्ष्मिच्छया । १० इव । ११ प्रभाणरहितः ।  
१२ नानाप्रकारः । १३ मस्तके । १४ वियोगः ।

### सारधरा

वज्रदोष्यामपुत्र्य लक्ष्मिव जउरे व्यक्तमुद्गुदुदास्तुमकृज्ञातालरभ्रोच्छ्रवनदनिलबलाद्विष्वमावर्तमालम् ।  
प्रस्तीणनेकरक्षान्यपहरति जनेनूनमुक्तसमन्तः प्रायो राखां<sup>१</sup> वियोगो जनयति महतोऽप्युप्रमम्बिंदाहम् ॥२०१॥

### प्रहर्षिणी

आयुष्मस्ति बहुविस्मयोऽयमविधः सद्गुलः सकलजग्मनोपर्जीवयः ।  
गम्भीरमकृतिरनल्पसत्त्वयोगः प्रायस्त्वामनुहरते<sup>२</sup> विना जिङ्गा<sup>३</sup> ॥२०२॥

### वसन्ततिथका

इत्यं नियमतरि<sup>४</sup> परो श्रियमस्तुरागोरावर्णयस्यनुगैर्वैचर्वनिविच्चित्रैः ।  
प्राय प्रमोदमधिकं नविराज्य सम्भाद् सेनानिवेशमसियातुमना बभूव ॥२०३॥

बड़वानलोके द्वारा बार-बार हास होनेपर भी जिनका कभी क्षय नहीं हो पाता है, जो लोगोंको आनन्द देनेवाले हैं, प्रमाण-रहित हैं, अनेक प्रकारके हैं, सर्वोंके फणाओंपर आमृह हैं, अत्यन्त पवित्र हैं, और सन्तापको नष्ट करनेवाले हैं ऐसे रत्नों तथा जलके समूहोंकी अपेक्षा इस समुद्रका जबतक संसार है तबतक कभी भी नाश नहीं होता । भावार्थ-पद्यपि इस समुद्रके अनेक रत्न इसके विवरों-विलोमें घुसकर नष्ट हो जाते हैं और जलके समूह बड़वानलमें जलकर कम हो जाते हैं तथापि इसके रत्न और जलके समूह कभी भी विनाशको प्राप्त नहीं हो पाते क्योंकि जितने नष्ट होते हैं उससे कहीं अधिक उत्पन्न हो जाते हैं ॥२००॥ बहुत बड़े पातालरूपी छिद्रोंके द्वारा ऊपरकी ओर बढ़ते हुए बायुके जोरमे जो चारों ओर घूम रहा है और जिसमें जलके अनेक बबूले उठ रहे हैं ऐसा यह समुद्रका उदर अर्थात् मध्यभाग बज्जकी कड़ाहीमें खोलता हुआ-सा जान पड़ता है अथवा लोग इसके जहाँ-तहाँ फैले हुए-अनेक रत्न ले जाते हैं इसलिए मानो यह भीतर ही भीतर सन्तप्त हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि धनका वियोग प्रायः करके बड़े-बड़े पुरुषोंके हृदयमें भी भयंकर दाह उत्पन्न कर देता है ॥२०१॥ हे आयुष्मन्, जिस प्रकार आप अनेक आश्चर्योंसे भरे हुए हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी अनेक आश्चर्योंसे भरा हुआ है, जिस प्रकार आपके पास अच्छे-अच्छे रत्न हैं उसी प्रकार इस समुद्रके पास भी अच्छे-अच्छे रत्न हैं, जिस प्रकार संसारके समस्त प्राणी आपके उपजीव्य हैं अर्थात् आपकी सहायतासे ही जीवित रहते हैं उसी प्रकार इस समुद्रके भी उपजीव्य हैं अर्थात् समुद्रमें उत्पन्न हुए रत्न मोती तथा जल आदिसे अपनी आजीविका करते हैं, जिस प्रकार आप गम्भीर प्रकृतिवाले हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी गम्भीर (गहरी) प्रकृतिवाला है और जिस प्रकार आप आप अनल्पसत्त्व योग अर्थात् अनन्त शक्तिको धारण करनेवाले हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी अनल्पसत्त्व योग अर्थात् बड़े-बड़े जलचर जीवोंसे सहित है अथवा जिस प्रकार आप अनालसत्त्व योग अर्थात् आलस्यके सम्बन्धसे रहित हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी अनालसत्त्व योग अर्थात् नाल (नरा) रहित जीवोंके सम्बन्धसे सहित हैं इस प्रकार यह समुद्र ठीक आपका अनुकरण कर रहा है । यदि अन्तर है तो केवल इतना ही है कि यह जलकी आदिसे सहित है और आप जल अर्थात् मूर्ख (जड़) मनुष्योंको आदिसे सहित हैं ॥२०२॥ इस प्रकार जब सारथिने समुद्रकी उत्कृष्ट शोभाका वर्णन किया तब सम्भाद् भरत बहुत ही अधिक आनन्दको प्राप्त हुए तथा शीत्र ही अपनी छावनीमें जानेके लिए उद्यत हुए ॥२०३॥

१—वर्त्यमानम् द१, प०, ल० । २ धनानाम् । ३ अनुकरोति । ४ जडत्वेन । ५ सारथी । ६ जायु ।

मालिनी

अथ रथपरिवृत्य<sup>१</sup> सारथी कुरुकुचक्षाद् विग्रहवलने<sup>२</sup> भुग्मीवमध्यापनुयो<sup>३</sup> ।

भुवनि मरुति मन्दूं वौचिकेगायशास्ते शिविरमभिनिर्धीनामीशिता संप्रतस्थे ॥ २०४ ॥

कथमपि रथचक्रं सारथिवाम्भुरुदं प्रवहण कृतकोपन् वा जिमे इन्द्रसाध्यं ।

रथमधि जलमध्यै चोदयामास्य सतो जलभिरपि त्रुपं न वृज्य येदोऽच्चाल ॥ ३०५ ॥

अयमयमुद्भारे वास्त्रादीर्घरूपं स्थगति रथवेगादेषु भिन्नोभिन्निः ।

इति किंतु तदस्मिन्दलवर्यमाणो रथीऽयं जबनतरस्य इहः ॥ प्राप्तं पादेष्वसद्भूमे ॥ ३०६ ॥

ଶିଖିତା

<sup>१०</sup> तरकारीयस्तोऽयं <sup>१३</sup> समवित्तिस्य वर्त्तकवृद्धनो रथः असात् प्राप्तो रथवृण्णहेषिद्वचे<sup>१४</sup> कुरुती ।

तस्मा चैताता जलधियलिलैरक्षतव्वरा महत्पुरुषं जिष्योरिति किंल उत्तमस्तद्वापि ॥ ३३ ॥

<sup>42</sup> अर्थात् यहाँ से उपराक्ष विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। इसका अध्ययन आवश्यक और ज़िक्र होनी चाहीं।

बहिर्दूर<sup>१७</sup> सैन्यसंगपदमकदोषितजयैविभृष्टः प्राप्तं सवित्विरुद्धहित्तोरुणभवत् ॥३०॥

अथानन्तर—जब सारथिने बड़ी कठिनाईसे रथ लौटानेके लिए विषम रूपसे धूमनेके कारण गलेको कुछ टेहा कर घोड़ोंको हाँका, मन्द-मन्द बायु बहने लगा और लहरोंका वेग शास्त्र हो गया तब निधियोंके स्वामी भरतने छावनीकी ओर प्रस्थान किया ॥२०४॥ पालीसे रुके हुए रथके पहियोंको किसी तरह बाहर निकालकर और बार-बार हाँकने अथवा बोझ धारण करनेके कारण कुपित हुए घोड़ोंको प्रसन्न कर सारथि समुद्रमें जलके भीतर ही रथ चला रहा था, और वह समुद्र भी उस रथके पीछे-पीछे जानेके लिए ही मानो उछल रहा था ॥२०५॥ अरे, यह समुद्रकी बड़ी भारी लहर रथकी छतरीको अवश्य ही ढक लेगी और इधर रथके बेगसे समुद्रकी लहरें भी फट गयी हैं इस प्रकार किनारेपर खड़े हुए लोग जिसके विषयमें अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क कर रहे हैं ऐसा वह वेगशाली घोड़ोंसे खीचा हुआ रथ समुद्रके किनारेपर आ पहुँचा ॥२०६॥ जिसके समस्त अंगोंकी रचना एक समान सुन्दर है ऐसा यह रथ लहरों-को उल्लंघन करता हुआ कुशलतापूर्वक किनारे तक आ गया है, चक्ररत्नको धारण करनेवाले चक्रवर्ती भरत भी सकुशल आ गये हैं और समुद्रके जलसे जिनके समस्त अंग धुल गये हैं तथा जिनके खुर भी नहीं बिसे हैं ऐसे घोड़े भी राजी-खुशी आ पहुँचे हैं । अहा ! विजयी चक्रवर्तीका बड़ा भारी पुण्य है, इस प्रकार किनारेपर खड़े हुए लोग परस्परमें वातलिप कर रहे थे ॥२०७॥ जो वेदीके नीचे गंगाद्वारपर नियुक्त किये गये हैं, जिन्होंने नवाये हुए मणिमय मुकुटों-पर अपने-अपने हाथ जोड़कर रखे हैं और जो जंय-जय शब्दका उच्चारण कर रहे हैं ऐसे राजा लोग, तथा दरवाजेके बाहर एक साथ बार-बार जयघोष करनेवाले सैनिक लोग जिसे देख

१ परिवर्तनाय । २ विषमाकर्षणकुटिलशीर्षं पथा भवति तथा । ३ प्रेरितुमिच्छी सति । ४ गमयित्वा ।  
 ५ प्रेरण । ६ प्रसादं नीता । ७ अनुगमनेन । ८ जलसमूहः । ९ तीरस्थः । १० वेणाश्वाकृष्टः ।  
 ११ समुद्रस्य पारम् । १२ तरड्गान् अत्यस्तः तरड्गात्यस्तः हति द्वितीयातत्पुरुषः । वरहचिना तथैकोक्तत्वात् ।  
 १३ समानं पथा भवति तथा यदित । १४ वक्तामुधः । १५ तदसेविनः । तीरस्था हत्यर्थः । १६ अधिकारिभिः ।  
 १७ द्वारस्य बाह्ये ।

शार्दूलविकोडितम्

तशोदीषितमङ्गलं जयजयेद्वानन्दितो बन्दिभिर्विवासः शिविरं नृपालयमहाद्वारं सभासादयन् ।  
‘अन्तर्बैशिकलोकवारवितादसाक्षताकासनः’ प्राविक्षणिजकंतनं निधिपतिवाहीकुसक्तेनम् ॥२०८॥

देवोऽयमक्षततनुर्विजिताविधरयात् ते यूथमानयत साक्षतसिद्धेषाः ।

आर्शीव्यमाध्वमिह॑ संमुखमेस्य तूर्णमित्युत्थितः कलकलः कट्टे तदाभूत् ॥२१०॥

जीवेति नन्दतु भवामिलि विधिर्वाङ्मा॒ इवेति निर्जयरिपूमिलि गाँ॑ जयेति ।

त्वं ‘स्ताप्तिरायुरिति कामितमाप्नुहीति॑ पुण्याशिष्ठा॒ शतमलमिम तदा स वृद्धैः ॥२११॥

जीयादर्शानिह॑ सधामिलि निर्जितारिदेव प्रशाधि॑ वसुवामिलि सिन्दुरळः ।

त्वं जीवताच्चिरमिलि प्रथमं चिरायुरायोगि॑ मङ्गलधिया॒ पुनरुक्तवाक्यैः ॥२१२॥

देवोऽयमभुवितमगावमलकृपारमुलकृप लक्ष्यविजयः पुनरप्युपादात्॑ ।

पुण्यैकसारथिरिहेति॑ दिनान्तरार्थैः पुण्यं प्रसेकुषि॑ नुणा॒ किमिवास्त्वलकृपम् ॥२१३॥

रहे हैं ऐसा वह भरत अपनी छावनीके बाहरवाली तोरणभूमिपर आ पहुँचा ॥२०८॥ वहाँपर जय जय इस प्रकार मंगलशब्द करते हुए बन्दीजन जिन्हें आनन्दित कर रहे हैं ऐसे वे महाराज भरत छावनीके भीतर जाकर राजभवनके बड़े द्वारपर जा पहुँचे वहाँ परिवारके लोगों तथा वेश्याओंने उन्हें मंगलाक्षत तथा आशीर्वदि दिये । इस प्रकार निधियोंके स्वामी भरतने जिसपर वायुके द्वारा ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे अपने तम्बूमें प्रवेश किया ॥२०९॥ जिन्होंने शरीरमें कुछ चौट लगे बिना ही समुद्रको जीत लिया है ऐसे ये भरत महाराज आ गये हैं, इसलिए तुम मंगलाक्षतसहित सिद्ध तथा शेषाक्षत लाओ, तुम आशीर्वदि दो और तुम बहुत शीघ्र सामने जाकर खड़े होओ इस प्रकार उस समय सेनामें बड़ा भारी कोलाहल उठ रहा था ॥२१०॥ हे देव, आप चिरकाल तक जीवित रहें, समृद्धिमात् हों, सदा बढ़ते रहें, आप शत्रुओंको जीतिए, पृथिवीको जीतिए, आप चिरायु रहिए और समस्त मनोरथोंको प्राप्त कीजिए – आपकी सब इच्छाएँ पूर्ण हों इस प्रकार उस समय वृद्ध मनुष्योंने भरत महाराजके लिए संकड़ों पवित्र आशीर्वदि प्राप्त कराये थे ॥२११॥ यद्यपि भरतेश्वर शत्रुओंको पहले ही जीत चुके थे तथापि उस समय उन्हें आशीर्वदि दिया गया था कि देव, आप शत्रुओंको जीतिए, यद्यपि उन्होंने चौदह रथोंको पहले ही प्राप्त कर लिया था तथापि उन्हें आशीर्वदि मिला था कि हे देव ! आप पृथिवीका शासन कीजिए, और इसी प्रकार वे पहले ही से चिरायु थे तथापि आशीर्वदिमें उनसे कहा गया था कि हे देव, आप चिरकाल तक जीवित रहें – चिरायु हों । इस प्रकार मंगल समस्कर लोगोंने उन्हें पुनरुक्त ( कायं हो चुकनेपर उसी अर्थको सूचित करनेके लिए फिरसे कहे हुए ) वचनोंसे युक्त किया था ॥२१२॥ एक पुण्य ही जिनका सहायक है ऐसे महाराज भरत अगाध और पाररहित समुद्रको उल्लंघन कर तथा योग्य उपायसे विजय प्राप्त कर बिना किसी विघ्न-बाधाके यहाँ वापस आ गये हैं सो ठीक ही है क्योंकि निर्मल पुण्यके रहते

१ कञ्जुकी । ‘अन्तर्बैशिका॒ अन्तःपुण्याविहारिणः ।’ ‘अन्तःपुण्येष्विकृतः॒ स्याद्वैशिको॒ जनः’ इत्यमिथानात् । २ आशीर्वदनः । ३ आशिपं कुषध्वम् । ४ भुवम् । ५ भव । ६ याहि । ७ शायु भनुषिष्ठौ लोद । ८ उपागमत् । ९ प्रसन्ने सति ।

पुण्योदयं भरत चक्रवर्ते जिगीयुहद्विवेलमनिलाहतवीष्मालम् ।

प्रोलहय वार्धिसमरं लहसा विनिष्टे पुण्ये अलीपसि किमहित अगत्यजस्यम् ॥२१३॥

पुण्योदयेन मकराकरवारिसामै पृथ्वीं स्पसादकृते चक्रवरः पृथुश्चीः ।

दुर्लभचमनिष्मवगाण विनोपवर्णैः पुण्यान् परं न खलु माधवमिष्टिद्वै ॥२१४॥

चक्रायुधोऽयमरिचकमयं करश्रीशकम्बु विन्युमतिर्माधवनक्रचकम् ।

चक्रे वशे सुरमवश्वमनन्यवद्यं पुण्यात् परं न हि वशीकरणं जगत्याम् ॥२१५॥

पुण्यं जले स्वलमिष्वाभ्यवपद्यते नून् पुण्यं स्थले जलमिष्वाशु नियन्ति तापम् ।

पुण्यं जलस्थलमये शरणं तुसीत्रं पुण्यं कुरुत्वमत् पृथ जना जिनोक्तम् ॥२१६॥

पुण्यं परं शरणमापदि दुर्विलक्ष्यं पुण्यं दरिद्रते जने धनशुश्रिये पुण्यम् ।

पुण्यं सुखार्थिनि जने सुखदायि इतं पुण्यं जिनोदिलमतः सुजनाशिष्वनुष्वम् ॥२१७॥

पुण्यं जिनेन्द्रपरिपूजनसाभ्यमायं पुण्यं सुपात्रगतदामसमुखमन्यत् ।

पुण्यं वतानुचरणादुपवासशोगात् पुण्यार्थिनामिति चतुर्द्यमर्जनीयम् ॥२१८॥

हुए मनुष्योंको क्या अलंघनीय ( प्राप्त न होने योग्य ) रह जाता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥२१३॥

सबको जीतनेकी इच्छा करनेवाले भरत चक्रवर्तीने पुण्यके प्रभावसे, जिसमें ज्वार-भाटा उठ रहे हैं और जिसमें लहरोंके समूह वायुसे ताहित हो रहे हैं ऐसे समुद्रको उल्लंघन कर शोध ही मागध देवको जीत लिया सो ठीक ही है क्योंकि अतिशय बलवान् पुण्यके रहते हुए संसारमें अजय्य अर्थात् जीतनेके अयोग्य क्या रह जाता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥२१४॥

बहुत भारी लक्ष्मीको धारण करनेवाले चक्रवर्ती भरतने पुण्यकर्मके उदयसे ही बिना किसी उपद्रवके उल्लंघन करनेके अयोग्य समुद्रका उल्लंघन कर समुद्रका जल हो जिसको सोमा है ऐसी पृथिवीको अपने अधीन कर लिया, सो ठीक ही है क्योंकि इष्ट पदार्थोंकी सिद्धिके लिए पुण्यसे बढ़कर और कोई साधन नहीं है ॥२१५॥ शशुओंके समूहके लिए जिनकी सम्पत्ति बहुत ही भयकर है ऐसे चक्रवर्ती भरतने अत्यन्त भयकर मगर-मच्छोंके समूहसे भरे हुए समुद्रका उल्लंघन कर अन्य किसीके वश न होने योग्य मागध देवको निश्चित रूपसे वश कर लिया, सो ठीक ही है क्योंकि लोकमें पुण्यसे बढ़कर और कोई वशीकरण ( वश करनेवाला ) नहीं है ॥२१६॥ पुण्य ही मनुष्योंको जलमें स्थलके समान हो जाता है, पुण्य ही स्थलमें जलके समान होकर शीघ्र ही समस्त सन्तापको नष्ट कर देता है और पुण्य ही जल तथा स्थल दोनों जगहके भयमें एक तीसरा पदार्थ होकर शरण होता है, इसलिए हे भव्यजनो, तुम लोग जिनेन्द्र भगवान्-के द्वारा कहे हुए पुण्यकर्म करो ॥२१७॥ पुण्य ही आपत्तिके समय किसीके द्वारा उल्लंघन न करनेके योग्य उत्कृष्ट शरण है, पुण्य ही दरिद्र मनुष्योंके लिए धन देनेवाला है और पुण्य ही सुखकी इच्छा करनेवाले लोगोंके लिए सुख देनेवाला है, इसलिए हे सञ्जन पुरुषो ! तुम लोग जिनेन्द्र भगवान्-के द्वारा कहे हुए पुण्यरूपी रूपका संचय करो ॥२१८॥ जिनेन्द्र भगवान्-की पूजा करनेसे उत्पन्न होनेवाला पहला पुण्य है, सुपात्रको दान देनेसे उत्पन्न हुआ, दूसरा पुण्य है व्रत पालन करनेसे उत्पन्न हुआ, तीसरा पुण्य है और उपवास करनेसे उत्पन्न हुआ, चौथा पुण्य है इस प्रकार पुण्यकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको ऊरर लिखे हुए चार प्रकारके पुण्योंका

१ सीमा॑ ल०, इ०, द०, ब०, प०, स० । २ स्वाधीनं चकार । ३ समुद्रम् । ४ ग्रान्तोति ।  
— मिवाभ्युपपश्यते ल०, द० । ५ दग्धियति ।

दृथं स्वपुण्यपरिपाकजमिष्टलाभं<sup>१</sup> संश्लाघयन्<sup>२</sup> जनतया<sup>३</sup> शुलपुण्यघोषः ।  
चक्री सभागृहगतो नृपत्तकमध्ये शक्रोपमः पृथुनृपासनमध्यवाससीत्<sup>४</sup> ॥२२०॥

### हरिणी

शुततटबने रक्षाकोकप्रबालपुटोभिरि<sup>५</sup> सूर्याति पवने मन्दं तरङ्गविभविनि ।  
अनुसरसरित्येन्यैः सार्वं प्रभुं सुखमादसञ्चलनिविजयश्लाघाशीर्भिर्जिनाननुविज्ञान् ॥२२१॥

इत्याखे भगवज्जनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे  
पूर्वार्द्धवद्वारविजयवर्णनं लक्ष्मणहिंश पर्य ॥२२२॥

संचय करना चाहिए ॥ २१९ ॥ इस प्रकार जिसने लोगोंके समूहसे पुण्यकी घोषणा सुनी है ऐसे चक्रवर्ती भरत, अपने पुण्यकमके उदयसे प्राप्त हुए हृषि वस्तुओंके लाभकी प्रशंसा करते हुए सभाभवनमें पहुँचे और वहाँ राजाओंके समूहके मध्यमें इन्द्रके समान बड़े भारी राज-सिंहासनपर आरूढ़ हुए ॥ २२० ॥ जिस समय किनारेके बनको हिलानेवाला, रक्त अशोक वृक्षकी कोंपलोंके संपुटको भेदन करनेवाला और लहरोंको भिन्न-भिन्न करनेवाला वायु धीरेधीरे बह रहा था उस समय समुद्रको जीतनेकी प्रशंसा और आशीर्वादके साथ-साथ जिनेन्द्र भगवान्का स्मरण करते हुए भरतने गंगा नदीके किनारे-किनारे ठहरी हुई सेनाके साथ सुख-से निवास किया था ॥२२१॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध भगवज्जनसेनाचार्यप्रणीत त्रिष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहके  
भाषानुवादमें पूर्वसमुद्रके द्वारको विजय करनेका वर्णन  
करनेवाला अष्टाविंशती पर्य समाप्त हुआ ।

<sup>१</sup> उदयवर्म । <sup>२</sup> स इलाघयन् ल० । <sup>३</sup> जनसमूहेन । <sup>४</sup> अघिवसति स्म । <sup>५</sup> पल्लवपुटोदभेदिनि ।

## एकोनश्रिंशसमं पर्वं

अथ चक्रधरो जनीं हृत्वेद्यामिष्टसाधनाम् । प्रतस्थे दक्षिणामाशां जिगीपुरनुतोवधि ॥ १॥  
 २ यतोऽस्य पददक्षानां विनिरामन्द्रमुच्चरन् । मुष्ठितः काहलारावैरक्षिप्तकारं हिरोदधे ॥ २॥  
 ३ प्रयाणभैरीनिःहवानः सम्भूर्द्यन् गजसुहितैः । दिक्षुखान्यनयत् क्षीरं हृदयानि च विद्विषाम् ॥ ३॥  
 ४ विवसुः पवनोदधूता जिगीपोर्जयकेतनाः । वारिधेरिव कहोलालुग्नेलानाङ्गुहृषवः ॥ ४॥  
 ५ एकलो लवणाम्भोधिरन्यतोऽस्युपसागरः । तन्मध्ये याम्बलीघोऽस्य तृतीयोऽविधिरिवावस्तौ ॥ ५॥  
 ६ हस्यवरयपादातं देवाश्च सनमध्यराः । षड्ग्रां अलमस्येति पश्ये व्याप्त्य रोदसी ॥ ६॥  
 ७ पुरः प्रतस्थे दण्डेनैः चक्रेण तदनम्भरम् । ताम्यां विशीघ्रिते मार्गे तद्वलं प्रयथो सुखम् ॥ ७॥  
 ८ तच्चकमरिचकस्य केवलं ऋकचायितम् ॥ ८ । दाढोऽपि दण्डपक्षस्य कालदण्डैः इवापरः ॥ ८॥  
 ९ प्रयथो निक्षयाम्भोधिः समया तटवेदिकाम् ॥ ९ । अनुबेलावनं सन्नाट् सैन्यैः संश्रावयन् ॥ ९॥  
 १० अनुवादितं कर्वकालकृत्या स्वामनीकिनीम् । आज्ञालता नुपादीणां सूर्धिं रोपयति स्म सः ॥ १०॥  
 ११ तद्वित्तिः लक्ष्मिः लक्ष्मिः लक्ष्मिः लक्ष्मिः लक्ष्मिः लक्ष्मिः लक्ष्मिः लक्ष्मिः ॥ ११॥

**अथनितर – चक्रवर्तीं भरत समस्त इष्ट वस्तुओंको सिद्ध करनेवाली जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर दक्षिण दिशाको जीतनेकी इच्छा करते हुए समुद्रके किनारे-किनारे चले ॥ १ ॥ जिस समय चक्रवर्तीं जा रहे थे उस समय तुरहीके शब्दोंसे मिली हुई पदल्पी नगाडोंकी गम्भीर ध्वनि समुद्रकी गर्जनाको भी ढक रही थी ॥ २ ॥ हाथियोंकी चिंगाडोंसे मिले हुए प्रस्थानके समय बजनेवाले नगाडोंके शब्द समस्त दिशाओं तथा शत्रुओंके हृदयोंको क्षोभ प्राप्त करा रहे थे ॥ ३ ॥ जीतनेकी इच्छा करनेवाले चक्रवर्तींकी वायुसे उड़ती हुई विजय-पताकाएँ ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो ज्वारसे उठी हुई समुद्रकी लहरोंको ही बुला रही हों ॥ ४ ॥ उस सेनाके एक और ( दक्षिणकी ओर ) तो लवण समुद्र था और दूसरी ( उत्तरकी ) ओर उपसागर था उन दोनोंके बीच जाता हुआ वह सेनाका समूह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो तीसरा समुद्र ही हो ॥ ५ ॥ हाथी, घोड़े, रथ, पियादे, देव और विद्याधर यह छह प्रकारकी चक्रवर्तींकी सेना आकाश और पृथिवीके अन्तरालको व्याप्त कर सब ओर फैल गयी थी ॥ ६ ॥ सेनामें सबसे आगे दण्डरत्न और उसके पीछे चक्ररत्न चलता था तथा इन दोनोंके द्वारा साफ किये हुए मार्गमें सुखपूर्वक चक्रवर्तींकी सेना चलती थी ॥ ७ ॥ चक्रवर्तींका वह एक चक्र ही शत्रुओंके समूहको नष्ट करनेके लिए करोतके समान था तथा दण्ड ही दण्ड देने योग्य शत्रुओंके लिए दूसरे यमदण्डके समान था ॥ ८ ॥ सन्नाट् भरत समुद्रके समीप-समीप किनारेकी वेदीके पास-पास किनारेके अनुसार अपनी सेनाके द्वारा दिशाओंको गुजाते हुए – सचेत करते हुए चले ॥ ९ ॥ अपनी अलंघनीय सेनाको समुद्रके किनारे-किनारे चलाते हुए चक्रवर्तीं भरत अपनी आज्ञारूपी लताको राजारूपी पर्वतोंके भस्तकपर चढ़ाते जाते थे ॥ १० ॥ महाराज भरतके शत्रु उनके सेनापतियोंके समान थे, क्योंकि जिस प्रकार महाराजके चलनेकी इच्छा होते ही सेनापति**

१ गच्छतः । २ पृ० १०, १०, १० । ३ मिथितः । ४ आङ्गादयति स्म । ५ मिश्रोभवन् । ६ उज्जृमितान् ।  
 ७ लप्दां कर्तुमिच्छवः । ८ गच्छन् । ९ द्यावापृथिव्यौ । 'भूद्यावी रोदस्यो रोदसी च ते' इत्यमरः । १० दण्ड-  
 रत्नेन । ११ करपत्रमिवाचरितम् । १२ यमस्य दण्डः । १३ अम्भोद्रेः समीपम् । 'निक्षया त्वन्तिके मध्ये' ।  
 १४ तटवेदिकायाः समीपे । १५ साधयन् । १६ प्रापयन् । १७ भरते ।

निष्कान्त इति संभास्तीरथात् इति भीष्मैः । प्राप्तं इत्यनवस्थैश्च प्रणेमं सोऽस्मिपैः ॥१३॥

<sup>३</sup> महापगारयस्येव तस्य स्वयं बलीयसः । यो यः 'प्रतीपसम्बवन् स स निर्मूलतां यथौ ॥१३॥

'प्रतीपद्वचिमादौ छायात्मानं' च नामनः । चिकमैकस्यश्च क्री सोऽसोऽक्षिमुत द्विषम् ॥१४॥

चमूरबश्चादेवं कैश्चिदस्य विरोधिभिः । 'चमूरूप्तमारुष्मलितूरं पलायिनैः' ॥१५॥

<sup>४</sup> 'महाभोर्मनैः कैश्चिद् भयातुस्तुष्मपद्गलैः' । भुजङ्गैरिव निर्मैकस्तत्प्रजेऽपि परिच्छदः ॥१६॥

प्रदुषान् भोगिनः<sup>५</sup> कौशित प्रसुरूप्त्य मन्त्रतः<sup>६</sup> । वल्मीकिपित्रव दुर्गेषु<sup>७</sup> कुवानम्यानतिष्ठिष्टन्<sup>८</sup> ॥१७॥

पहले ही चलनेके लिए तैयार हो जाते हैं उड़ी प्रकार उड़नेके शब्द भी महाराजको चलनेके लिए तत्पर सुनकर स्वयं चलनेके लिए तत्पर हो जाते थे अर्थात् स्थान छोड़कर भागनेकी तैयारी करने लगते थे अथवा भरतकी ही शरणमें आनेके लिए उद्यत हो जाते थे, जिस प्रकार महाराज-के नगरसे बाहर निकलते ही सेनापति उनसे पहले बाहर निकल आते हैं उसी प्रकार उनके शब्द भी महाराजको नगरसे बाहर निकला हुआ सुनकर स्वयं अपने नगरसे बाहर निकल आते थे अर्थात् नगर छोड़कर बाहर जानेके लिए तैयार हो जाते थे अथवा भरतसे मिलनेके लिए अपने नगरसे बाहर निकल आते थे और जिस प्रकार महाराजके प्रस्थान करते ही सेनापति उनसे पहले प्रस्थान कर देते हैं उसी प्रकार उनके शब्द भी महाराजका प्रस्थान सुनकर उनसे पहले ही प्रस्थान कर देते थे अर्थात् अन्यथा भाग जाते थे अथवा चक्रवर्तीसे मिलनेके लिए आगे बढ़ आते थे ॥११॥ चक्रवर्ती भरत नगरसे बाहर निकला यह सुनकर जो व्याकुल हो जाते थे, चक्रवर्ती आया यह सुनकर जो भयभीत हो जाते थे और वह समीप आया यह सुनकर जो अस्थिरचित्त हो जाते थे ऐसे शब्द राजा लोग उन्हें जगह-जगह प्रणाम करते ॥१२॥ जिस प्रकार किसी महानदीके बलवान् वेगके विरुद्ध खड़ा हुआ वृक्ष निर्मूल हो जाता है-जड़सहित उखड़ जाता है उसी प्रकार जो राजा उस बलवान् चक्रवर्तीके विरुद्ध खड़ा होता था-उसके सामने विनयभाव धारण नहीं करता था वह निर्मूल हो जाता था-जड़सहित नष्ट हो जाता था ॥१३॥ एक पराक्रम ही जिसे प्रिय है ऐसा वह भरत जब कि दर्पणमें उलटे पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बको भी सहन नहीं करता था तब शब्द राजाओंको किस प्रकार सहन करता ? ॥१४॥ कितने ही विरोधी राजाओंने तो उनकी सेनाका शब्द सुनते ही बहुत दूर भागकर हरिणकी वृत्ति प्रारम्भ की थी ॥१५॥ और कितने ही वैभवशाली बड़े-बड़े राजाओंने भयसे अपने-अपने देश छोड़कर छत्र चमर आदि राज्य-चिह्नोंको उस प्रकार छोड़ दिया था जिस प्रकार कि बड़े-बड़े फणाओंको धारण करनेवाले सर्वे अपने बलयाकार आसनको छोड़कर काँचली छोड़ देते हैं ॥१६॥ जिस प्रकार दुष्ट सर्पोंको मन्त्रके जोरसे उठाकर वामीमें डाल देते हैं उसी प्रकार भरतने अन्य कितने ही भोगी-विलासी दुष्ट राजाओंको मन्त्र (मन्त्रियोंके साथ की हुई सलाह) के जोरसे उखाड़कर किलोमें डाल दिया था, उनके स्थानपर अन्य कुलीन राजाओंको बैठाया

१ समीपं प्राप्तः । २ अवस्थामतिकान्तैः । ३ त्यक्तपूर्वस्वभावैरित्यर्थः । ४ महानदीवेगस्य । ५ प्रतिकूलवृत्तिम् । ६ छायास्वरूपम् । 'आत्मा यत्तो धूतिर्बुद्धिः स्वभवो ब्रह्म ब्रह्म च' इत्यमरः । ७ सहति स्म । ८ सेनास्वनिसमाकरणनात् । ९ कम्भोजादिदेशब्रह्मण्डिशेषवर्तनम् । 'कदली कदली चीनश्चमूरुप्रियकाव्यि । समूरुप्तेति हरिणा अमी अजिनयोनयः' इत्यभिधानात् । १० पलायिभिः ल०, प०, द०, । ११ पञ्चे महाकाव्यः । 'भोगः सुखे स्थादिभूतावहेत्वं कणकादयोः' इत्यभिधानात् । १२ त्यक्तभूभागैः । पञ्चे त्यक्तवलयैः । १३ परिच्छदोऽपि छत्रचामरादिपरिकरोऽपि परित्यक्ततः । १४ पञ्चे सप्तन् । १५ मन्त्रशक्तिः । १६ सत्कुलजाम् । १७ स्थापयति स्म ।

अनन्यशरणैर्नैस्तापविच्छेदमिष्टमुभिः । तत्पादपादपञ्चाशा न्यवेषि सुखशीतला ॥१८॥  
 केषांचित् प्रभूमेभक्ते छायावैक्षेष्यं दूसुखम् । विष्टपविभिर्विश्वामित्यः ३ समभ्यर्णशकार सः ॥१९॥  
 इत्स्तोषमप्रसरा॑ गाढमुष्ट्यसन्तोऽन्तराकुलाः । प्राप्तेऽस्मिन्॒ वैरभूषाला॑ प्रापुर्मर्त्यशेषलाम्॑ ॥२०॥  
 ४ वैरकाम्यति वर्त्य स्मास्मिन् प्रापेष विवराशा सः । ५ विदिष्यापविषुर्विंश्टि शलभः कुशली किम् ॥२१॥  
 वस्तुवाहनसर्वस्वमाधिष्ठै० प्रभुराहरन्११ । अरिष्वमरिचकेषु॑ व्यक्तमेव चकार सः ॥२२॥  
 १२ स्वयमर्पितसर्वस्वा समभ्यशक्तवत्तिनम् । इर्वमप्यस्यः एतादविकारिष्वमावरन्॑ ॥२३॥  
 १३ 'साधनैरमुनाकाम्ता या धरा द्वत्साभ्यसा॑' । साधनैरेव तं लोषं नीच्वाऽभूद्वत्साभ्यसा ॥२४॥  
 १४ कुल्या॑ कुलधनाम्यस्मै द्वया॑ स्वां मुक्तमाजिज्ञन्॑१५ । कुल्या॑ धनजलौघस्य जिर्विषोस्ते हि पार्थिवाः ॥२५॥  
 प्रजाः करमराकाम्ता यस्मिन्॒ स्वामिनि दुःस्थिताः॑१६ । तसुदृश्य पदे तस्य॑ युक्तदण्डं न्यज्ञाप्त्विमुः ॥२६॥

था ॥१७॥ जिन्हें अन्य कोई शरण नहीं थी और जो अपना सन्ताप नष्ट करना चाहते थे ऐसे कितने ही राजाओंने सुख तथा शान्ति देनेवाली भरतके चरणरूपी वृक्षोंकी छायाका आश्रय लिया था ॥१८॥ जिस प्रकार समीप आया हुआ श्रीष्म क्रतु वृक्षोंके पत्र अर्थात् पतोंका नाश कर देता है और उनकी छाया अर्थात् छाँहरीका अभाव कर देता है उसी प्रकार समीप आये हुए भरतने कितने ही राजाओंके पत्र अर्थात् हाथी घोड़े आदि वाहनों (सवारियों) का नाश कर दिया था और उनकी छाया अर्थात् कान्तिका अभाव कर दिया था । भावार्थ—भरतके समीप आते ही कितने ही राजा लोग वाहन छोड़कर भाग जाते थे तथा उनके मुखकी कान्ति भयसे नष्ट हो जाती थी ॥१९॥ महाराज भरतके समीप आते ही शत्रु राजाओंका सब तेज (पक्षमें गरमी) नष्ट हो गया था, उनके भारी-भारी श्वासोच्छ्वास चलने लगे थे और वे अन्त करणमें व्याकुल हो रहे थे, इसलिए वे मरणोन्मुख मनुष्यकी समानताको प्राप्त हो रहे थे ॥२०॥ जिस पुरुषने भरतके साथ शत्रुता करनेकी इच्छा की थी वह पहले ही नष्ट हो चुका था, सो ठीक ही है क्योंकि अग्निको बुझानेकी इच्छा करनेवाला पतंगा क्या कभी सकुशल रह सकता है ? अर्थात् नहीं ॥२१॥ महाराज भरतने शत्रुओंके हीरा मोती आदि रत्न तथा सबारी आदि सब धन छीन लिया था और इस प्रकार उन्होंने समस्त अरि अर्थात् शत्रुओंके समूहको स्पष्ट रूपसे अरि अर्थात् धनरहित कर दिया था ॥२२॥ अपने आप समस्त धन भेंट कर चक्रवर्तीको नमस्कार करनेवाले राजा लोग यद्यपि पहले शत्रु थे तथापि पीछेसे वे बड़े भारी अधिकारी हुए थे ॥२३॥ जो पृथिवी पहले भरतकी सेनासे आकान्त होकर भयभीत हो रही थी वही पृथिवी अब अपने धनसे भरतको सन्तोष प्राप्त कराकर निर्भय हो गयी थी ॥२४॥ उच्च कुलोंमें उत्तम हुए अनेक राजाओंने भरतेश्वरके लिए अपनी कुल-परम्परासे चला आया धन देकर फिरसे अपनी पृथिवी प्राप्ति की थी सो ठीक ही है क्योंकि वे राजा विजयाभिलाषी राजाके लिए धनरूपी जालके प्रवाहकी प्राप्तिके लिए 'कुल्या'—नदी अथवा नद्वरके समान होते हैं । भावार्थ—विजयी राजाओंको धनकी प्राप्ति साधारण राजाओंसे होती है ॥२५॥ जिस राजाके रहते हुए प्रजा करके बोझसे दबकर दुःखी हो रही थी,

१ वाहनतिष्ठाम् पक्षे पर्यविनाशम् । २ तेजोहानिम् । ३ समीपस्यः । ४ निरस्तप्रभावप्रसराः । पक्षे निरस्तोषमप्रसराः । ५ भरते । ६ भरणकालप्राप्तपुरुषसमानतामित्यर्थः । ७ वैरमिच्छति । ८ यो नास्मिन् इ० । ( ना पुमान् इति इ० टिष्ठणी ) । ९ क्षपयितुमिच्छुः । १० आकृष्य । ११ स्वीकृष्टन् । १२ न विद्यते रा॒ धनं येषां तानि वरीणि तेषां भावस्तत्त्वम्, निर्धनत्वमित्यर्थः । १३ अधिकण्ठात्मुत्त्वमिति छवनिः । १४ सैर्वः । १५ निरस्तभीतिः । १६ कुलजाः । १७ उपार्जयति स्म । ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु । १८ सरितः । 'कुल्या कुलवधुः सरित्' । अथवा कृत्रिमसरितः । तत्पक्षे 'कुल्यालपा कृषिमा सरित्' । १९ दुःखिताः ल० । २० योग्य-दण्डकारिपूर्वक स्थापयामास ।

लिजग्राह नृपान् दहाननुजग्राहै सत्क्षयान् । न्याय्येः क्षात्रोऽयमित्येव प्रजाहितशिखित्याः॥२७॥  
योगक्षेमौ जगत्स्थित्यै न प्रजास्वेद केवलम् । प्रजापालैत्यपि प्रायस्तस्य चिन्मत्यत्वम् यतुः ॥२८॥  
पातिव्रस्त्रैकरात्मस्यै मता वर्णशमाः प्रजाः । पाधिवा: सार्वभौमस्य प्रजाः यज्ञेन ते चूताः ॥२९॥  
पुण्यं साधनमस्त्रैकं चक्रं तस्यैव पोषकम् । तद्वृद्धं याध्यसिद्ध्यङ्गं सेनाङ्गानि विभूतये ॥३०॥  
इति मण्डलभूपालान् वलान् प्राणमयायम् ॥३१॥ मानमेवाभनक् तेषां न सेवाप्रणार्थं विभुः ॥३१॥  
प्रतिप्रथाणमस्येत्य ॥३२॥ प्राणसिद्धुरमु नृपाः । प्राणरक्षामिचास्याजां वहन्तः स्वेषु मर्त्यसु ॥३२॥  
प्रणताननुजग्राह सातिरेकैः ॥३३॥ प्रभुः । किमु कठपतरोः सेवास्त्वयफलात्पफलापि वा ॥३३॥  
३४॥ संप्रेक्षितैः हिमतैर्हर्षिः सविश्रम्भेष्व जहिष्वैः ॥३४॥ समाद् संभावयामास नृपान् संमाननैरर्पि ॥३४॥  
स्मितैः प्रसादं संजल्यैर्विलम्भं हसितैर्मुदम् । प्रेक्षितैरनुरागां च व्यवक्षि स्म नृपेषु सः ॥३५॥

भरतने उसे हटाकर उसके पदपर किसी अन्य नीतिमान् राजाको बैठाया था ॥२६॥ उन्होंने अहंकारी राजाओंको दण्डस किया था और सत्कार अथवा उत्तम कार्य करनेवाले राजाओं-पर अनुग्रह किया था सो ठीक ही है क्योंकि प्रजाका हित करनेकी इच्छासे क्षत्रियोंका यह धर्म ही त्याध्यपूर्ण है ॥२७॥ राजा भरतने जगत्की स्थितिके लिए केवल प्रजाके विषयमें ही योग (नवीन वस्तुको प्राप्त करना) और क्षेम (प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा करना) की चिन्ता नहीं की थी किन्तु प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाओंके विषयमें भी प्रायः उन्हें योग और क्षेमकी चिन्ता रहती थी ॥२८॥ किसी एक देशके राजाकी प्रजा आह्वान, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्ण रूप मानी जाती है परन्तु चक्रवर्तीकी प्रजा नशीभूत हुए राजा लोग ही माने जाते हैं इसलिए चक्रवर्तीको प्रजाके साथ-साथ राजाओंकी चिन्ता करना भी उचित है ॥२९॥ भरतके समस्त कार्योंको सिद्ध करनेवाला एक पुण्य ही भूख्य साधन था, और चक्ररत्न उस पुण्यकी पुष्टि करनेवाला था, पुण्य और चक्ररत्न ये दोनों ही उसके साध्य (सिद्ध करने योग्य विजय रूप कार्य) की सिद्धिके अंग थे, बाकी हाथी घोड़े आदि सेनाके अंग केवल वैभवके लिए थे ॥३०॥ हस प्रकार मण्डलेश्वर राजाओंसे बलपूर्वक प्रणाम करते हुए चक्रवर्तीनि उनका केवल सान भंग ही किया था, अपनी सेवाके लिए जो उनका प्रेम था उसे नह नहीं किया था ॥३१॥ प्राणोंकी रक्षाके समान भरतकी आज्ञाको अपने भस्तकपर धारण करते हुए अनेक राजा लोग प्रत्येक पड़ावपर आकर उन्हें प्रणाम करते थे ॥३२॥ प्रणाम करनेवाले राजाओंको महाराज भरतने बहुत अधिक फल देकर अनुगृहीत किया था सो ठीक ही है क्योंकि कल्यवृक्षकी सेवा क्या कभी फलरहित अथवा थोड़ा फल देनेवाली हुई है ? ॥३३॥ सम्राट् भरतने कितने ही राजाओंकी ओर देखकर, कितने ही राजाओंकी ओर मुसकराकर, कितने ही राजाओंकी ओर हँसकर, कितने ही राजाओंके साथ विश्वासपूर्वक वार्तालाप कर, और कितने ही राजाओं-का सन्मान कर उन्हें प्रसन्न किया था ॥३४॥ उन्होंने कितने ही राजाओंपर मुसकराकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी, कितने ही राजाओंपर वार्तालाप कर अपना विश्वास प्रकट किया था, कितने ही राजाओंपर हँसकर अपना हृषि प्रकट किया था और कितने ही राजाओंपर प्रेमपूर्ण

१ निप्रहृत करोति स्म । २ दर्पाद्विष्टान् । ३ स्वीकृतवान् । ४ न्यायादनपेतः । ५ क्षत्रियधर्मः । ६ पांशुवेषु ।  
७ एकदेशवतः । ८ क्षत्रियादिवर्णः अहृतवर्णाद्या आश्रमाः । ९ प्रजायन्ते प०, ल० । १० पाधिवा: ।  
११ स्वीकृताः । १२ प्रलोभूतानकुर्वन् । १३ गर्वमैव । १४ मर्दयति स्म । 'भृजोऽवमर्दने' । १५ नमस्कुर्वन्ति  
स्म । १६ तंदेहघनात् साधिकैः । १७ स्तिव्यावलोकनैः । संप्रेक्षणैः ल० । १८ सविष्वासैः । 'समी विष्वास-  
विष्वासी' इत्यमरः । १९ वचनैः । २० वस्त्राभरणादिपूजनैः ।

अनाक्षित प्रणानेय स्मैमनापर्वाद् विरोधिनः । शमप्रतापी क्षमा जनुः पारथिवस्योक्तिं गुणौ ॥३६॥  
 प्रव्यजया दर्शवास्य प्रमादः प्रणते रिपौ । अशुभद्रेनास्फुटल कोषः सत्यं बहुनदीं तृष्णः ॥३७॥  
 अङ्गान्मणिमिरत्यहैतीक्ष्णं सुज्ञैर्मतं फूजः । तैश्च नैश्च कमिल्लेशान् सोऽभ्यनस्तुपानतान् ॥३८॥  
 'मारगवायितमेताम्य स्फुटं' मागधिकैर्वै । कीर्तयदिर्गुणानुरूपैः प्रगादमभिलाषुकैः ॥३९॥  
 कृस्तवर्तीन् पाञ्चालान् काशीश्च सह कोमलैः । वैदर्मानप्यनायासादाचक्षरं चमूर्पतिः ॥४०॥  
 'वजनं मद्राश्च कच्छाश्च चेदीन् वलवान् लसुष्टुकान् । पुण्ड्रानोपद्राश्च गौदीश्च' सत्यमत्राचयद् विज्ञोः ॥४१॥  
 दशार्णान् कामरूपाश्च कार्त्तिरानप्युक्तीनरान् । मध्यमानपि भूपालान् सोऽस्त्रियान् वशमानयत् ॥४२॥  
 ददुरस्मै तृष्णाः प्राच्यकलिङ्गाकारजान् । गिरीनिव महोऽद्वायान् ॥४३॥  
 'दशार्णकवनोऽन्तरानपि चेत्रिककृशजान्' । दिह्नागासाधिनो नागा 'आदुनांग' वनाधिपाः ॥४४॥  
 विभोवेन्नतरकानि गर्भिणीयैः वसुमधरा ॥४५॥

दृष्टि डालकर अपना प्रेम प्रकट किया था ॥३५॥ उन्होंने नम्रीभूत राजाओंको सन्तुष्ट किया था और विरोधी राजाओंको अच्छी तरहसे सन्तुष्ट किया था सो ठीक ही है क्योंकि पृथिवीको जीतनेके लिए जानित और प्रताप ये दो ही राजाओंके योग्य गुण माने गये हैं ॥३६॥ राजा भरत नमस्कार करनेवाले पुरुषपर अपनी प्रसन्न दृष्टिसे प्रसन्नता प्रकट करते थे और साथ ही शत्रुके ऊपर भीह टेढ़ी कर क्रोध प्रकट करते जाते थे इसलिए यह उकित सब भालूम होती है कि राजा लोग नट तुल्य होते हैं ॥३७॥ उत्तम-उत्तम मणियोंको भेट कर नमस्कार करते हुए अंग देशके राजाओं-पर और मणि तथा हाथोंदोनोंको भेट कर नमस्कार करते हुए कलिंग देशके राजाओंपर वह भरत बहुत ही प्रसन्न हुए थे ॥३८॥ भरतेश्वरके प्रसादकी इच्छा करनेवाले मगध देशके राजा उनके उत्कृष्ट गुण गा रहे थे इसलिए वे ठीक मागध अर्थात् बन्दीजनोंके समान जान पड़ते थे ॥३९॥ भरत महाराजके सेनापतिने कुरु, अवन्ती, पांचाल, काशी, कोशल और वैदर्भ देशोंके राजाओंको बिना किसी परिश्रमके अपनी ओर खींच लिया था अर्थात् अपने वश कर लिया था ॥४०॥ मद्र, कच्छ, चेदि, वत्स, मुह्य, पुण्ड्र, औषड़ और गौड़ देशोंमें जा-जाकर सेनापतिने सब जगह भरत महाराजकी आज्ञा मुनायी थी ॥४१॥ उसने दशार्ण, कामरूप, कश्मीर, उशीनर और मध्यदेशके समस्त राजाओंको बहुत शीघ्र वश कर लिया था ॥४२॥ वहाँके राजाओं-ने जिनसे मदके निझरने झर रहे हैं ऐसे, पूर्व देशमें उत्पन्न होनेवाले तथा कलिंग और अंगार देशमें उत्पन्न होनेवाले, पर्वतोंके समान ऊँचे-ऊँचे हाथी महाराज भरतके लिए भेटमें दिये थे ॥४३॥ जिनमें हाथी उत्पन्न होते हैं ऐसे बनोंके स्वामियोंने दिग्गजोंके साथ स्पर्द्धा करनेवाले, दशार्णक बनमें उत्पन्न हुए तथा चेदि और ककूश देशमें उत्पन्न हुए हाथी महाराजके लिए प्रदान किये थे ॥४४॥ उस समय भरतेश्वरको पृथिवीपर जहाँ-तहाँ अनेक रत्न भेटमें मिल रहे थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो गर्भिणीके समान पृथिवीने चक्रवर्तीकी सेनाके बोझसे उत्पन्न हुए दुःसह शोभको न सह सकनेके कारण ही अनन्त रत्न उत्पन्न किये हुए हों ॥४५॥

१ तर्पयामास । २ सन्तापयति स्म । ३ जेतुं ल०, इ०, अ०, प०, स० । ४ व्यक्तो वभूव । ५ नटसदृशः ।  
 ६ अङ्गदेशाधिपान् । ७ अनद्यैः । ८ आनतान् । ९ मागधीयित—म०, इ० । रत्नतिपाठका इवाचरितान् ।  
 १० मगधाधिपैः । ११ स्वीकृतवान् । १२ गच्छन् । १३ शासनम्, आज्ञामित्यर्थः । १४ प्राकृदिव्यसंबन्धिक-  
 लिङ्गदेशाङ्गारजान् । १५ गलत् । १६ दशार्णदेशसंबन्धिः । १७ चेदिकसेनान् ल०, इ० । १८ दधति स्म ।  
 १९ गजवन् । २० गर्भस्थशिगुरिव ।

आपाषङ्करमिरिप्रस्पादा च वैभारथ्यंताम् । आशैलाश् गोरथादस्य विचेऽर्घयकुञ्जरा: ॥४६॥  
 वहास्तपुण्ड्रमगधान् मलदान् काशिकौसलान् । सेनानीः परिवाम जिगीपुर्जयसाधनैः ॥४७॥  
 कालिन्दकालकूटी च किरातविषयं तथा । मल्लदेवान् च संपापस्मैतादस्यै चमूपतिः ॥४८॥  
 तुर्णी सुमागधीं गङ्गां गोमतीं च कपीवतीम् । रथास्फोँ च मर्दीं सीत्वां ओमुरस्य अमूरगजाः ॥४९॥  
 गम्भीरामलिगम्भीरां कालतोयां च कौशिकीम् । नदीं कालमहीं ताम्रामरणां निचुरामपि ॥५०॥  
 तं लौहित्यं समुद्रं च कम्बुकं च महत्परः । अमूरतज्जास्तस्य भेजुः प्राच्यैवनोपेणाः ॥५१॥  
 दक्षिणेनैः नदं शोणमुत्तरेण च नर्मदान् । बीजानदीमुभयतः परिसो मेखलानदीम् ॥५२॥  
 विवेहः स्वखुरोदृतभूलीसंखदिशुखाः । १३ जविनोऽस्य स्फुरत्रोथा॒१४ जयसाधनचाचिनः ॥५३॥  
 औदुम्बरी॑२३ च पतसा॒ तमसा॒ प्रमूरशामपि । १५ पशुरस्य द्विपाः शुक्लिमती॒ च यसुनामपि ॥५४॥  
 चेदिपर्वतसुलुहृषे चेदिरादृ॑१६ विजिम्यिरे॑१७ । पम्पो॑१८ सरोऽस्मीऽतिगमा॒ विमोरस्य तुरंगमाः ॥५५॥  
 तमूरस्यमूकमालम्ब्य कोलाहलगिरिं शिला: । प्राच्यमालयगिरिमासेदुर्जिनोऽस्य जयद्विपाः ॥५६॥  
 नागप्रियाद्रिमालम्ब्य॑१९ कुतपावहया विभोः । सेनावराः सवसाम्बुद्धजांदेदिककृष्णजान्॑२० ॥५७॥  
 नदीं वृत्रवर्ती॑२१ क्रान्त्या वन्येभक्षतरोधसम्॑२२ । भेजुच्चित्रवतीमस्य अमूरीरास्तुरंगमैः ॥५८॥

हिमवान् पर्वतके निचले भागसे लेकर वैभार तथा गोरथ पर्वत तक सब जगह भरत महाराजके विजयी हाथी धूम रहे थे ॥४६॥ सबको जीतनेकी इच्छा करनेवाला भरतका सेनापति अपनी विजयी सेनाके साथ-साथ बंग, अंग, पुण्ड्र, गगध, मालव, काशी और कोशल, देशोंमें सब जगह धूमा था ॥४७॥ भरतकी सम्मतिसे वह सेनापति कालिन्द, कालकूट, भीलोंका देश, और मल्ल देशमें भी पहुँचा था ॥४८॥ उनकी सेनाके हाथी सुमागधी, गंगा, गोमती, कपीवती और रथास्फा नदीको तैरकर जहाँ-तहाँ धूम रहे थे ॥४९॥ पूर्व दिशाके पास-पास जानेवाले उनकी सेनाके हाथी अत्यन्त गहरी गम्भीरा, कालसोया, कीशिकी, कालमही, साम्रा, अरुणा और निचुरा आदि नदियों तथा लौहित्य समुद्र और कंबुक नामके बड़े-बड़े सरोवरोंमें धूमे थे ॥५०-५१॥ जिन्होंने अपने खुरोसे उठी हुई धूलिसे समस्त दिशाएँ भर दी हैं, जो बड़े वेगशाली हैं और जिनके नथनें चंचल हो रहे हैं ऐसे महाराज भरतकी विजयी सेनाके घोड़े शोण नाम-के नदकी दक्षिण ओर, नर्मदा नदीकी उत्तर ओर, बीजा नदीके दोनों ओर और मेखला नदीके चारों ओर धूमे थे ॥५२-५३॥ भरतके हाथियोंने उदुम्बरी, पतसा, तमसा, प्रमूरा, शुक्लिमती और यसुना नदीका पान किया था ॥५४॥ अक्षवर्तीके घोड़ोंने पम्पा सरोवरके जलको पार किया था तथा चेदि नामके पर्वतको उल्लंघन कर चेदि नामके देशको जीता था ॥५५॥ सबको जीतनेवाले भरतके विजयी हाथी ऋष्यमूक पर्वतका उल्लंघन कर कोलाहल पर्वत तक जा पहुँचे थे और फिर माल्य पर्वतके पूर्व भागके समीप भी जा पहुँचे थे ॥५६॥ भरतकी सेनाके लोगोंने देहली-जैसा समझ अवज्ञापूर्वक नागप्रिय पर्वतका उल्लंघन कर चेदि और कृष्ण देशमें उत्पन्न हुए हाथियोंको अपने अधीन कर लिया था ॥५७॥ उनकी सेनाके बीर पुरुष घोड़ोंके द्वारा वृत्रवती नदोंको पार कर जिसके किनारे जंगली हाथियोंसे खूंदे गये हैं ऐसी चित्र

१ अरन्ति स्म । २ मलयान् इ०, अ० । मालयान् प० । मालवान् ल०, द० । ३ आजातः । ४ चक्रिणः ।  
 ५ रथस्यां अ० । रेवस्यां प०, ट० । रवस्थी द० । ६ अवतीर्य । ७ निचुरामपि ल० । ८ लौहित्यसमुद्रानाम-  
 सरोवरम् । ९ पूर्व । १० शोणनदस्य दक्षिणस्यां दिशि । ११ चेगिनः । १२ नासिका । १३ उदुम्बरी स०,  
 इ०, अ०, प०, द०, ल० । १४ 'युः' इत्यपि पाठः । यानमकुर्वन् । १५ चेदिदेशम् । १६ जयन्ति स्म ।  
 १७ पम्पासरोजलमतिक्रान्ताः । १८ देहली । १९ -सेनावरान् ल०,-द० । २० वृत्रवर्ती इ० । छत्रवर्ती प० ।  
 वृत्रवर्ती अ०, स०, । २१ वनगजक्षुण्णतदाम् ।

हृष्टा माल्यवतीं नदनं वन्दे भसं कुलम् । यासुनं च पयः पात्रा जिग्मुरस्य द्विषा दिशः ॥५९॥  
 अनुवेणुमनीर्तीर्तं गत्वा स्थ जयसाधनम् ॥ वत्सभूमि समाक्रम्य दशार्णमिष्टलकुञ्जत् ॥६०॥  
 विशाला नालिका सिन्धुं परा निष्कुन्दरीमपि । बहुवज्रां च रम्यां च नदीं सिकतिनीमपि ॥६१॥  
 अहोऽच्च रम्यां च कंजामपि कंपीवत्नाम् । निविन्द्यां च खुनों जम्बूमतीं च सरितुलमाम् ॥६२॥  
 वसुमत्यापगामदिवगामिनीं शकंरावतीम् । सिप्रा च कृतमाला च परिज्ञां पनसामपि ॥६३॥  
 नदीमवन्तिकामां च हस्तिपानीं च निस्तनगाम् । कागम्बुमापगा<sup>१</sup> व्याघ्रीं खुनों चर्मणवतीमपि ॥६४॥  
 शतभीगा<sup>२</sup> च नन्दा<sup>३</sup> च नदीं करभवेगिनीम् । तुलिलापीं च रेवां च सप्तपारां च कौशिकीम् ॥६५॥  
 लरितोऽमूरगामापा विष्वगाहृष्ट तदलम् । तुरं गमखुरीप्रखाततीरा विस्तारिणीर्ष्यधात् ॥६६॥  
 सैरश्चिकं गिरि क्रान्तवा हृष्टा वैदूर्यभूषरम् । भट्टा<sup>४</sup> कूटाविमुखज्ञव्य पारियात्रमशिशिवन् ॥६७॥  
 गत्वा पुष्पगिरे प्रस्थान्<sup>५</sup> सानून् सितगिरेरपि<sup>६</sup> । गदागिरेनिंकुञ्जेषु<sup>७</sup> चलान्धस्य विशाश्रमुः<sup>८</sup> ॥६८॥  
 वातपृष्ठदर्शीभागा<sup>९</sup> दृश्वन्ते<sup>१०</sup> कुक्षिभिः<sup>११</sup> समम् । तस्मैनिकाः अथन्ति सम कस्यलादितदान्यपि ॥६९॥  
 वासवत्तं महार्णेलं चिलहृष्यासुरधूपने<sup>१२</sup> । स्थिवाऽस्य सैनिकाः प्रापन् भद्रेभानक्षरेयिकान्<sup>१३</sup> ॥७०॥  
 निःसंपत्तिभ्ये सुरितश्चेत्तद्वा सैनिकाः । द्विपान् चनकिमागेषु<sup>१४</sup> कर्षीन्तोऽस्य मिज्जराज्ञः ॥७१॥

दुस्तरा<sup>१५</sup> सुतरा जाताः संभुक्ताः सरितो बलैः । स्वारोहाश्च<sup>१६</sup> दुरारोहा गिरयः भूषणसानवः ॥७२॥

बती नदीको प्राप्त हुए थे ॥५८॥ जगली हाथियोंसे भरे हुए माल्यवती नदीके किनारेके बनको घेरकर तथा यमुना नदीका पानी पीकर भरतके हाथियोंने उस ओरकी समस्त दिशाएं जोत ली थीं ॥५९॥ उनकी विजयी सेनाने वेणुमती नदीके किनारेनकिनारे जाकर वत्स देशकी भूमिपर आक्रमण किया और फिर दशार्णा (धसान) नदीका भो उल्लंघन किया – पार किया ॥६०॥ भरतकी सेनाने विशाला, नालिका, सिन्धु, पारा, निष्कुन्दरी, बहुवज्रा, रम्या, सिकतिनी, कुहा, समतोया, कंजा, कंपीवती, निविन्द्या, नदियोंमें थोड़ जम्बूमती, वसुमती, समुद्र तक जानेवाली शकंरावती, सिप्रा, कृतमाला, परिज्ञा, पनसा, अवन्तिकामा, हस्तिपानी, कागम्बु, व्याघ्री, चर्मणवती, शतभागा, नन्दा, करभवेगिनी, चुलिलतापी, रेवा, सप्तपारा, और कौशिकी इन अगाध जलसे भरी हुई नदियोंको चारों ओरसे घेरकर जिनके किनारे घोड़ों-के खुरोंसे खुद गये हैं ऐसी उन नदियोंको बहुत चौड़ा कर दिया था ॥६१–६६॥ सैनिकोंने तैरश्चिक नामके पर्वतोंको लोधिकर वैदूर्य नामका पर्वत जा घेरा और फिर कूटाचलका उल्लंघन कर पारियात्र नामका पर्वत प्राप्त किया ॥६७॥ भरतकी वह सेना पुष्प गिरिके शिखरोंपर चढ़कर सितगिरिके शिखरोंपर जा चढ़ी और फिर वहाँसे चलकर उसने गदा नामक पर्वतके लतामृहोंमें विश्राम किया ॥६८॥ भरतके सैनिकोंने ऋक्षवान् पर्वतकी गुफाओं-के साथ-साथ वातपृष्ठ पर्वतकी गुफाओंका आश्रय लिया और फिर वहाँसे चलकर कम्बल नामक पर्वतके किनारोंपर आथ्रय प्राप्त किया ॥६९॥ वे सैनिक वासवन्त नामके महापर्वतका उल्लंघन कर असुरधूपन नामक पर्वतपर ठहरे और फिर वहाँसे चलकर मदेभ आतंग और रेमिक पर्वतपर जा पहुँचे ॥७०॥ सेनाके लोग उन देशोंको शत्रुरहित समझकर अपने हाथियोंके द्वारा बनके प्रदेशोंमें हाथी पकड़ते हुए जहाँ-तहाँ घूम रहे थे ॥७१॥ जो नदियां दुस्तर अर्थात् कठिनाईसे तैरने योग्य थीं वे ही नदियां सैनिकोंके द्वारा उपभुक्त होनेपर सुतर अर्थात् सुखसे १ बलम् । २ 'दशार्णन्' इत्यपि बवचित् । ३ कुहा ल० । ४ कागम्बुम्यापगाम् । ५ सानून् । ६ स्मितगिरे-ल० ।  
 ७ नितम्बेषु । ८ विश्राम्यन्ति सम । ९ वातपृष्ठगिरिकन्दरप्रदेशान् । १० भल्लूका इव । ११ तदीरस्थित-  
 गुहाभिः सह इत्यर्थः । १२ असुरधूपन इति पर्वतविशेषे । १३ मदेभस्त्र आनहृग्यश्च रेयिकश्च तान् । १४ स्वी-  
 कुर्वतः । १५ सुखारोहाः ।

राष्ट्राण्यवद्यस्तेषां राष्ट्रीयाद्वच महीभुजः । फलाय जग्निरे भर्तुर्योजिताश्चामुना॑ कर्लः ॥७३॥  
 नृपत्वारपाणीणान्॒ दैत्यानपुषसागरे॑ । बर्ली बलैरबद्धम्य॑ प्रापोपवनजान्॒ गजान् ॥७४॥  
 रक्षान्यपि विचित्राणि तेभ्यो लक्ष्या यथेष्यितम् । तानेवास्थाप्यत्तत्र संतुष्टः प्रसुराज्ञया ॥७५॥  
 महान्ति गिरिदुर्गाणि निभद्रुगर्णि च प्रभोः । सिद्धानि बलरुद्धानि किमसाम्यं भर्तीयसाम् ॥७६॥  
 हरथं स पृथिवीमध्यान्॒ पौरस्थाक्षिर्जयदृष्ट्यान्॒ । प्रतस्थे दक्षिणामाशां॑ दक्षिणास्यजिगीचया ॥७७॥  
 यतो यतो बलं जिव्योः प्रचलयुद्धनायकम् । ततस्तत्त्वाः स्म लामस्ता नमस्यानश्चमौलयः ॥७८॥  
 त्रिकलिङ्गाधिषानोद्धान्॒ कच्छान्द्विषयाधिषान्॒ । प्रातरान्॒ केरलांश्चोलान्॒ पुजागांश्च व्यजेष्ट सः ॥७९॥  
 कुदुम्बानोलिकांश्चैव स माहिषकमेकुशान्॒ । पाण्डित्यानन्तरपाण्डित्यांश्च दण्डेन॑ वशमानयत् ॥८०॥  
 नुपानेतान्॒ विजित्याग्नु प्रणमय्य स्वपादयोः । हृत्वा तत्साररक्षानि प्रसुः प्राप्त यरां मुदम् ॥८१॥  
 सेनानीरपि बभ्राम॑ विभोराज्ञां समुद्धन्॒ । गिरीन्॒ सरसरितो देशान्॒ कालिङ्गक्वनाश्रितान्॒ ॥८२॥  
 स साधनैः समं भेजे तैलामिक्षुमतीमपि । नदीं नकरवां वङ्गां इवसनां च महानदीम् ॥८३॥

तैर्से योग्य हो गयी थीं । इसी प्रकार जो पर्वत दुरारोह अर्थात् कठिनाईसे चढ़ने योग्य थे वे ही पर्वत संनिकोंके द्वारा शिखरोंके चूर्ण हो जानेसे उत्तरोह अर्थात् सुखापूर्णकृत्त्वात् योग्य ज्ञे गये थे ॥७२॥ देश, उनकी सीमाएँ और देशोंके राजा लोग सम्राट् भरतेश्वरको फल प्रदान करने-के लिए ही उत्पन्न हुए थे तथा बदलेमें भरतने भी उन्हें अनेक फलोंसे युक्त किया था । भावार्थ – सम्राट् भरत जहाँ-जहाँ जाते थे वहाँ-वहाँके लोग उन्हें अनेक प्रकारके उपहार दिया करते थे और भरत भी उनके लिए अनेक प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान करते थे ॥७३॥ जो राजा लोग उपसमुद्रके उस पार रहते थे अथवा उप-समुद्रके भीतर ढीपोंमें रहते थे उन सबको बलवान्॒ भरतने सेनाके द्वारा अपने वश किया था तथा वनमें उत्पन्न होनेवाले हाथियोंको पकड़-पकड़-कर उनका पोषण किया था ॥७४॥ महाराज भरतने उन राजाओंसे अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकारके रत्न लेकर सन्तुष्ट हो अपनी आज्ञासे उनके स्थानोंपर उन्हींको फिरसे विराजमान किया था ॥७५॥ जो बड़े-बड़े किले पहाड़ोंके ऊपर थे और जो जमीनके नीचे बने हुए थे वे सब सेनाके द्वारा विरकर भरतके वशीभूत हो गये थे, सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंको व्या असाध्य है ? ॥७६॥ इस प्रकार भरतने पूर्व दिशाके समस्त राजाओंको जीतकर दक्षिण दिशाके राजाओंको जीतनेकी इच्छासे उस पृथिवीके मध्यभागसे दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥७७॥ उत्कृष्ट सेनापति सहित विजयी भरतकी सेना जहाँ-जहाँ जाती थी वहाँ-वहाँ के राजा लोग सामन्तोंसहित मस्तक झुका-झुकाकर उन्हें नमस्कार करते थे ॥७८॥ दक्षिणमें भरतने त्रिकलिंग, ओद्र, कच्छ, प्रातर, केरल, चेर और पुजाग देशोंके सब राजाओंको जीता था ॥७९॥ तथा कूट, ओलिक, महिष, कमेकुर, पाण्डव और अन्तरपाण्डव देशके राजाओंको दण्डरत्नके द्वारा अपने वशीभूत किया था ॥८०॥ सम्राट् भरतने इन सब राजाओंको शीघ्र ही जीतकर उनसे अपने चरणोंमें प्रणाम कराया और उनके सारभूत रत्न लेकर परम आनन्द प्राप्त किया ॥८१॥ चक्रवर्तीकी आज्ञा धारण करता हुआ सेनापति भी कालिंगक देशके समीपवर्ती अनेक पहाड़ों, नदियों तथा देशोंमें बूमा था ॥८२॥ वह अपनी सेनाओंके, साथ-साथ तैला, इश्युमती, नकरवा, बंगा और इवसना आदि महानदियोंको प्राप्त हुआ था

१ सेनान्या । २ उभयतीरे भवान् । ‘पारावारपरेभ्यः हति खः’ इति प्राग् जितीयेऽर्थं खः । ‘पारावारे परे तीरे’ इत्यमरः । ३ ढीपे जातान् । ४ घाटीं कृत्वा । ५ पुषोष वनजान् ल०, द०, इ०, अ० । ६ पूर्वदिशभवान् । ७ दक्षिणदिशि जाता । ८ चेरान् ल०, द० । ९ बलेन । १० प्रभो-ल० । ११ कलिङ्गदेशसंबन्धि ।

धुनीं वैतरणीं माषवतीं च समहेन्द्रकाम् । सैनिकैः समसुरीयं यदौ शुष्कनदीमपि ॥८४॥  
 सप्तगोदावरं सं॒र्का॑ पश्यन् गोदावरीं शुचिभ् । सरे मानसमासाधं सुभुदे शुचिमाससः ॥८५॥  
 ३ सुप्रयोगां नदीं तीर्त्वा कृष्णवेणा॑ च मिम्नगाम् । सज्जीरां च प्रवेणीं च व्यशीयाय समे बलैः ॥८६॥  
 कुब्जा धैर्या॑ च चूर्णीं च वेणा॑ सूकरिकामपि । ४ अभेणां च नदीं पश्यन् दाक्षिणात्यानशुश्रुतं ॥८७॥  
 महेन्द्रादिं समाक्रामन् विन्ध्योपान्तं च मिर्जंथन् । ५ नागपर्वतमध्याध्य प्रयदौ मलयाचलम् ॥८८॥  
 गोशीर्षं ददुरुद्दिं च गिरि पाण्डित्यकवाटकम् । स शीतगुहमासीदनं गं श्रीकटनाङ्गयम् ॥८९॥  
 श्रीपर्वतं च किञ्चिकल्पं विजयश्चयसाधनैः । तत्र तत्रोचितैर्लिंगवर्धेत् चमूपसिः ॥९०॥  
 कर्णटिकान् स्फुटादो॑ पवित्रिकोऽन्नैवेषकान् । हरिव्रात्रनलाम्बूप्रियान् प्रायो यशोधनान् ॥९१॥  
 आम्भान् १० हन्दप्रहरेषु कृतलक्षान् ११ कदर्यकान् १२ । पावाणकठिनान्नैर्न परं हृदयैरपि ॥९२॥  
 कालिकान् गजं १३ प्रायसाधनान् सकलाधनान् । प्रायेण तादशानोदान् जडानुदृ॑१४ मरप्रियान् ॥९३॥  
 १५ चोलिकासालिकप्रायान् १६ प्रायशोऽमृतुचेष्टितान् १७ । केरलान् सरलालापान् कलागोष्ठीषु॑१८ मुशुकान् ॥९४॥  
 १९ वृद्धकान् प्रचलक्षणे॑२० एव्यापित्तान्तरालिपान्तराल । प्रायो गृजप्रियान् धनिवकुम्तभूयिहसाधनान् ॥९५॥

॥८३॥ तथा वैतरणी, माषवती और महेन्द्रका इन नदियोंको अपने सैनिकोंके साथ पार कर वह शुष्क नदीपर जा पहुँचा था ॥८४॥ सप्तगोदावरको पार कर पवित्र गोदावरीको देखता हुआ वह पवित्र हृदयवाला सेनापति मानस सरोवरको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥८५॥ तदनन्तर उसने सेनाओंके साथ-साथ सुप्रयोगा नदीको पार कर कृष्णवेणा, सज्जीरा और प्रवेणी नामकी नदीको पार किया ॥८६॥ तथा कुब्जा, धैर्या, चूर्णी, वेणा, सूकरिका और अभ्यर्णी नदीको देखते हुए उसने दक्षिण दिशके राजाओंको चक्रवर्तीकी आज्ञा सुनायी ॥८७॥ फिर महेन्द्र पर्वतको उल्लंघन कर विन्ध्याचलके समीपवर्ती प्रदेशोंको जीतता हुआ नागपर्वतपर चढ़कर वह सेनापति मलय पर्वतपर गया ॥८८॥ वहांसे अपनी सेनाके साथ-साथ गोशीर्ष, ददुर, पाण्डित्य, कवाटक और शीतगुह नामके पर्वतोंपर पहुँचा तथा श्रीकटन, श्रीपर्वत और किञ्चिकल्प पर्वतोंको जीतता हुआ वहांके राजाओंसे यथायोग्य लाभ पाकर वह सेनापति अतिशय वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥८९-९०॥ प्रकट रूपसे धारण किये हुए आडम्बरोंसे जिनका वेष विकट तथा शूरवीरताको उत्पन्न करनेवाला है, जिन्हें हृदयी, ताम्बूल और अंजन बहुत प्रिय हैं; तथा प्रायः कर जिनके यश ही धन है ऐसे कर्णटिक देशके राजाओंको, जो कठिन प्रहार करनेमें सिद्धहस्त हैं जो बड़े कृपण हैं और जो केवल शरीरकी अपेक्षा ही पाषाणके समान कठोर नहीं हैं किन्तु हृदय-की अपेक्षा भी पाषाणके समान कठोर हैं ऐसे आन्ध्र देशके राजाओंको, जिनके प्रायः हाथियों-की सेना है और जो कला-कौशल रूप वनसे सहित हैं ऐसे कलिंग देशके राजाओंको, जो प्रायः कलिंग देशके समान हैं, मूर्ख हैं और लड़नेवाले हैं ऐसे ओण्ड्र देशके राजाओंको, जिन्हें प्रायः शूठ बोलना प्रिय नहीं है और जिनकी चेष्टाएँ कुटिल हैं ऐसे चौल देशके राजाओंको, मधुर गोष्ठी करनेमें प्रवीण तथा सरलतापूर्वक वातलाप करनेवाले बेरल देशके राजाओंको, जिनके भुजदण्ड अत्यन्त बलिष्ठ हैं, जिन्होंने शत्रुओंके समूह नष्ट कर दिये हैं, जिन्हें हाथी बहुत प्रिय हैं और जो युद्धमें प्रायः धनुष तथा भाला आदि शस्त्रोंका अधिकतासे प्रयोग करते हैं ऐसे पाण्डित्य

१ तीर्थ अ०, स०, ल० । २ 'सुप्रवेगाम्' इत्यपि कवचित् । ३ कृष्णवर्णी ल० । ४ अभ्यणी ल० । ५ आव-यति स्म । ६ नागपर्वते स्थित्वा । ७ आगमत् । ८ गर्व । ९ मनोहरः । १० 'विकटः सुन्दरे प्रोवतो विशालविक-रांलयोः' इत्यभिधानात् । ११ दुःख । १२ कृतव्याजान् । 'ध्याजोऽपदेशो लक्ष्यं च' इत्यमरः । १३ कृपणान् । 'कदर्यं कृष्णक्षुद्रकिष्यचान्मितंपचाः' इत्यमरः । १४ करिबहलसेनान् । १५ द्राविडान् । १६ अलोक अनूत । १७ वक्रवर्तमान् । १८ कलगोष्ठीषु चञ्चुरान् ल०, द० । १९ प्रतीतान् ।

१ इष्टपत्रानानन्यांश्च तत्र सत्र बुद्धित्वान् । जयसैन्यैरवस्थम्<sup>१</sup> सेनानीरनयद् वशम् ॥६६॥  
 ते च सरकृत्य सेनान्यं पुरस्कृत्य सप्ताष्वसम् । चक्रिणं प्रणमस्ति हम दूरादूरी कृतायतिम्<sup>२</sup> ॥६७॥  
 करप्रहेण संपीड्य दक्षिणाशां वधूमिष ।<sup>३</sup> प्रसमं हततस्तारो दक्षिणाद्विमगात् प्रभुः ॥६८॥  
 ४ लवकूलवलीप्रायमेषागुलमलतानिकम्<sup>४</sup> । वेलोषाम्बवनं पश्यन् महती धृतिमाप सः ॥६९॥  
 तमासिषेविरं मम्दमान्दोलितसरोजलाः । पूलासुगानथयः सौम्या वेलान्तर्थनवायवः ॥७०॥  
 महतुदृतशाखाप्रविकाण्यसुमनोऽभिलिः । नूनं प्रत्यगुह्यादेन वनोहेषो विशांशतिम् ॥७०॥  
 पवनाधृतशाखाग्रैर्यस्तप्तपदमिःस्वनैः । विश्वान्त्यै सैषिकानस्य व्याहरजिर्व पादपाः ॥७०॥  
 अथ स्तिमन् वनामोर्गे<sup>५</sup> येन्यमावासयद् विभुः । वैजयम्भूतमहाद्वारनिकटेऽस्मुनिषेस्तटे ॥७०॥  
 सन्नागे<sup>६</sup> बहुपुञ्चागे<sup>७</sup> सुमनोभिः<sup>८</sup> रघिष्ठितम् । बहुपत्ररथ<sup>९</sup> जिष्ठोवेलं तद्रनमावमन<sup>१०</sup> ॥७०॥

देशके राजाओंको और जिन्होंने प्रतिकूल खड़े होकर अपना पराक्रम दिखलाया है ऐसे अन्य देशके राजाओंको सेनापतिने अपनी विजयी सेनाके द्वारा आक्रमण कर अपने अधीन किया था ॥६१-६६॥ उन राजाओंने सेनापतिका सत्कार कर तथा भयसहित कुछ भेट देकर जिन्होंने उनका भविष्यत्काल अर्थात् आगे राजा बना रहने देना स्वीकार कर लिया है ऐसे चक्रवर्तीको दूरसे ही घणाम किया था ॥६७॥ जिस प्रकार पुरुष करग्रह अर्थात् पाणिप्रहण संस्कारसे किसी स्त्रीको वशीभूत कर लेता है उसी प्रकार चक्रवर्ती भरतने करग्रह अर्थात् टैक्स वसूलीसे दक्षिण दिशाको अपने वश कर लिया था और फिर जबरदस्ती उसके सार पदाधींको छीन-कर दक्षिण समुद्रकी ओर प्रवाण किया था ॥६८॥ वहाँ वह चक्रवर्ती, जिसमें प्रायः लवंग और लवलीकी लताएँ लगी हुई हैं तथा जो इलायचीके छोटे-छोटे पीधोंकी लताओंसे सहित है ऐसे किनारेके समीपवर्ती वनको देखता हुआ बहुत भारी सन्तोषको प्राप्त हुआ था ॥६९॥ जो तालाबोंके जलको हिला रहा है, जिसमें इलायचीकी सुगन्धि मिली हुई है और जो सौम्य है ऐसे किनारेके वनकी बायु उस चक्रवर्तीकी सेवा कर रही थी ॥७०॥ बायुसे हिलती हुई शाखाओंके अग्रभागसे जिसने फूलोंकी अंजलि बिखेर रखी है ऐसा वह वनका प्रदेश ऐसा जान वालोंके अग्रभागसे जिसने फूलोंकी अंजलि बिखेर रखी है ऐसा वह वनका प्रदेश ऐसा जान पड़ता था बायु बायुसे हिल रहे थे और उनपर भ्रमर स्पष्ट शब्द कर रहे थे, जिससे ऐसा जान पड़ता था बानों वे नक्ष हाथ हिला-हिलाकर भ्रमरोंके शब्दोंके बहाने पुकार-पुकारकर विश्वाम करनेके लिए भारतके सैनिकोंको बुला ही रहे हों ॥७०॥

अथान्तर-चक्रवर्तीने उस वनके मैदानमें समुद्रके किनारे वैजयन्त नामक महाद्वारके निकट अपनी सेना ठहरायी ॥७०३॥ वह वन और भरतकी सेना दोनों ही समान थे क्योंकि जिस प्रकार वन सनाग अर्थात् मोथाके पौधोंसे सहित था उसी प्रकार सेना भी सनाग अर्थात् हाथियोंसे सहित थी, जिस प्रकार वन बहुपुञ्चाग अर्थात् नागकेशरके बहुत वृक्षोंसे सहित था उसी प्रकार सेना भी बहुपुञ्चाग अर्थात् अनेक उत्तम पुरुषोंसे सहित थी, जिस प्रकार वन सुमन अर्थात् फूलोंसे सहित था उसी प्रकार वह सेना भी सुमन अर्थात् देव अथवा अच्छे हृदय-वाले पुरुषोंसे सहित थी, और जिस प्रकार वन बहुपत्ररथ अर्थात्-अनेक पक्षियोंसे सहित होता

१ दृष्टसामध्यति । २ अपादानं कर्मणि स्यादतिवृत्तेऽवस्थाणम् । ३ आक्रम्य ।  
 ४ आद्वीकृतसंपदम् । ५ बलात्कारेण । ६ बन्दनलता । ७ 'तताद्वितम्' इत्यपि व्यक्तित् । ततं विस्तृतम् ।  
 ८ आहूयन्ति स्मेव । ९ विस्तारे । १० प्रशस्तमजम् । सुनागवृक्षं च । ११ पुरुषश्चेष्ट नागकेसरं च । १२ देवः  
 कृसुमैश्च । १३ बहुवाहनस्यन्दनम् बहुलविहगं च । 'पत्रिपत्रिपत्रगपत्पत्रत्रयाण्डाः' इत्यभिषानात् ।  
 १४ एवंविष्व बलमेवविष्वं वनमावसत् ।

सच्छायान् १ स कलांहनुज्ञान् २ व्रहुपत्र॑ परिच्छदान् । अवेक्षत जनाः प्रोक्ष्या ३ वार्षिकाहतापविच्छिन्नः ॥ १०५॥  
 सच्छायानायसंभाव्याकलान् ४ प्रोक्ष्य सहायुमान् । सकलान् विश्वच्छत्यावप्यहो शिशिर्युज्ञनाः ॥ १०६॥  
 ५ आकर्षिकीमनाहन्य चहित्यायां तदासर्नीम् । भास्त्रिनीं तस्मैषु हायामाशिशिर्युज्ञनाः ॥ १०७॥

वनस्पतीस्तरकार्यानिहत्यमणित्विषः । चमजानयस्तरस्तरेवव्याविषत संशिकाः ॥१०८॥

१०९॥ विश्वामित्रसुरस्त्रियोऽपि विनाशकृत्वा अप्यपादयां कलही वथनम् हुवनद्वामः ॥ १०९॥

कपयः ॑ कपिकर्त्तुनामुदननाः फलच्छट्टाः ॥ सैनिकानाकुलोऽकुर्विविहान् चौरुषामधः ॥ १३०

है उसी प्रकार वह सेना भी अनेक सवारियों और रथोंसे सहित थी, इस प्रकार भरतकी वह सेना अपने समान बनमें ठहरी ॥१०४॥ उस बनके पार्थिव अर्थात् वृक्ष ( पृथिव्या भवः, 'पार्थिवः' ) पार्थिव अर्थात् राजाओं ( पृथिव्या अधिपः 'पार्थिवः' ) के समान थे, क्योंकि जिस प्रकार राजा सच्छाय अर्थात् उत्तम कान्तिसे सहित होते हैं उसी प्रकार उस बनके वृक्ष भी सच्छाय अर्थात् उत्तम छाया (छाँहरी) से सहित थे, जिस प्रकार राजा लोग सफल अर्थात् आय-से सहित होते हैं उसी प्रकार उस बनके वृक्ष भी सफल अर्थात् फलोंसे सहित थे । जिस प्रकार राजा लोग तुंग अर्थात् लेंबी प्रकृतिके – उदार होते हैं उसी प्रकार उस बनके वृक्ष भी तुंग अर्थात् ऊँचे थे, जिस प्रकार राजा लोग बहुपश्चरिच्छद अर्थात् अनेक सवारी आदिके बैभवसे सहित होते हैं उसी प्रकार उस बनके वृक्ष भी बहुपश्चरिच्छद अर्थात् अनेक पनोंके परिवारसे सहित थे और जिस प्रकार राजा लोग ताप अर्थात् दरिद्रतासम्बन्धी दुखको नष्ट करनेवाले होते हैं उसी प्रकार उस बनके वृक्ष भी ताप अर्थात् सूर्यके घामसे उत्पन्न हुई गरमीको नष्ट करनेवाले थे, इस प्रकार भरतके सैनिक, राजाओंकी समानता रखनेवाले वृक्षोंका आश्रय बड़े प्रेमसे ले रहे थे ॥१०५॥ सेनाके कितने ही लोग उत्तम छायासे सहित होनेपर भी जिनसे फल मिलनेकी सम्भावना नहीं थी ऐसे बड़े-बड़े वृक्षोंको छोड़कर थोड़ी छायावाले किन्तु फलयुक्त वृक्षोंका आश्रय ले रहे थे । भावार्थ – जिस प्रकार वनाद्य होनेपर भी उचित वृक्ष न देनेवाले कंजूस स्वामीको छोड़कर सेवक लोग अल्पधनी किन्तु उचित वृक्ष देनेवाले उदार स्वामीका आश्रय लेने लगते हैं उसी प्रकार सैनिक लोग फलरहित बड़े-बड़े वृक्षोंको छोड़कर फलसहित छोटे-छोटे वृक्षोंका आश्रय ले रहे थे ॥१०६॥ सेनाके लोग उस समयकी थोड़ी देर रहनेवाली बाहरकी छाया छोड़कर वृक्षोंके नीचे आगे आनेवाली छायामें बैठे थे ॥१०७॥ वनस्थलीके वृक्षोंकी छायासे जिनपर सूर्यकी धूप रुक गयी है ऐसे कितने ही सैनिक अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित तालाबोंके किनारोंपर बैठे हुए थे ॥१०८॥ परस्परके प्रेमसे बैठे हुए राजा लोग अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित जिनके नीचे बैठे हुए हैं ऐसे बनके वृक्ष कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुई शोभाको स्पष्ट करासे धारण कर रहे थे । भावार्थ – बनके बै वृक्ष कल्पवृक्षोंके समान जान पढ़ते थे और उनके नीचे बैठे हुए स्त्री-पुरुष भोगभूमिके आर्य तथा आर्याओंके समान मालूम होते थे ॥१०९॥ वहाँ कर्त्तेवकी कलियोंको हिलाते हुए बानर उन लताओंके नीचे बैठे हुए सैनिकोंको व्याकुल कर रहे थे क्योंकि कर्त्तेवकी फलियोंके रोयें शरीरपर लग जानेसे खुजली उठने लगती है ॥११०॥ तालाबोंके समीप ही इच्छानुसार चरने योग्य तथा भाससे ही दृटनेवाले सुकोमल घासके

४ सच्चायान् तेजस्विनश्च । ५ बहुकल्परिकरात्, बहुवाहमपरिकरांश्च । ६ वृक्षान् नुपतीश्च । ७ अस्थिराम् ।  
८ -माशिभियुर्जनाः ल०, द० । ९ स्त्रीसहिताः । १० मर्कटीनाम् । 'कपिकच्छुच्च मर्कटी' इत्यमिधानात् । ११ फल-  
यज्ञरीः । १२ लतानाम् । १३ सर्वत्रप्रदेशोप सूलभेरित्यर्थः । १४ कोमलैः ।

अवतास्तिप्रयणि॑ मुखमाण्डा॒ युपहकरा॑ । स्फुरत्प्राणै॒ मुखै॒ रथवै॑ ॥११२॥  
 सान्द्रयग्ररजः कीर्णो॑ सरसामन्तिकस्थले॑ । मन्दे॑ तु धुकुरहूणानि॑ वाहा॑ । कृतविवर्तनाः॑ ॥११३॥  
 विगभावभैरे॑ करजरजः पुञ्जी॒ अनिली॒ वृतः॑ । अवश्नै॒ रचितो॑ इवानामिवोरचै॑ । प्रथमपद्यः॑ ॥११४॥  
 रजद्रक्षा॑ मही॒ स्युद्ध॑ झुगुस्व इवो॒ विश्वेता॑ त्रुतं॑ विश्वेतुर्भासि॑ अरेत्विश्वेतुर्भवेत्वा॑ ॥११५॥  
 दाहि॑ वारिजकिङ्ग्रकततान्यशा॑ विगाहिताः॑ । धौतमध्यक्षरागं॑ सर्वं॑ भेजुरभ्योजरेषुमिः॑ ॥११६॥  
 वरोदया॑ हनिर्घृतश्वसा॑ पीताम्पसो॑ हया॑ । आमी॑ लिताश्वमध्युषुर्वितहान्॑ प्रमाणयन्॑ ॥११७॥  
 नः किंकरडुमेष्टायां॑ दुवितो॑ वर्षमशालिनः॑ । निवेशो॑ हस्तिकस्वास्य॑ विभोस्तालीवनेषु च॑ ॥११८॥  
 प्रपत्तालिकैरौघस्वपुष्टा॑ वनभूमयः॑ । हस्तिमां॑ स्पानतमीयुर्सैव॑ श्रान्तसारिते॑ ॥११९॥  
 द्विपानुद्यतश्लीष्ट॑ अमधुष्यतिभ्रमान्॑ । निन्युर्जलीपयोगाय॑ सर्वस्वभिनिषादिने॑ ॥१२०॥  
 तां॑ चैर्गतेन॑ सूडयक्तमार्गं॑ संजनितश्वसान्॑ । ग्रन्ताधीरणा॑ निन्युः॑ सरसारवगाहने॑ ॥१२१॥

अकुरोंसे सुन्दर, चक्रवर्तीके घोड़ोंकी बृहसपालें थीं ॥१११॥ जिनपर-से पलाव और लगाम आदि सामग्री उतार ली गयी है ऐसे घोड़े जमीनपर लोटनेकी इच्छा करते हुए, हिलते हुए तथनों-से युक्त मुखोंसे जमीनको सूँघ रहे थे ॥११२॥ कमलोंकी सान्द्र परागसे भरे हुए, तालाबके समीपवर्ती प्रदेशपर लोटकर वे घोड़े धूलि झाड़नेके लिए धीरे-धीरे अपने शरीर हिला रहे थे ॥११३॥ जो कमलोंको परागका समूह बायुसे उड़कर आकाशमें छा गया था वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो घोड़ोंके लिए वहुत ऊँचा कपड़ेका मण्डप ही बनाया गया हो ॥११४॥ बड़े-बड़े घोड़े पृथिवीकी रजस्वला अर्थात् धूलिसे युक्त ( पक्षमें रजोधर्म-से युक्त ) देखकर ग्लानि करते हुए-से उठे और शीघ्र ही सरोवरोंके जलमें घुस गये ॥११५॥ कमलकी केशरसे भरे हुए जलमें प्रविष्ट हुए घोड़ोंका अंगराग ( जोभाके लिए शरीरपर लगाया हुआ एक प्रकारका लेप ) यद्यपि घुल गया था तथापि उन्होंने कमलोंके परागसे अपने उस अंगरागको पुनः प्राप्त कर लिया था । भावार्थ-कमलोंकी केशरसे भरे हुए गानीमें स्नान करनेसे उनके शरीरपर जो कमलोंकी केशरके छोटे-छोटे कण लग गये थे उनसे अंगराग-की कमी नहीं मालूम होती थी ॥११६॥ सरोवरोंमें घुसकर स्नान करनेसे जिनका सब परिश्रम दूर हो गया है और जिन्होंने इच्छानुसार जल पी लिया है ऐसे घोड़े कपड़ेके बड़े-बड़े मण्डपों-में कुछ-कुछ नेत्र बन्द किये हुए खड़े थे ॥११७॥ ऊँचे-ऊँचे शरीरोंसे सुशोभित होनेवाले, महाराज भरतके हाथियोंके डेरे नारियल और ताढ़ वृक्षके बनोंमें बनाये गये थे जो कि सर्वथा उचित थे ॥११८॥ जो वनकी भूमि ऊपरसे पड़ते हुए नारियलोंके समूहसे ऊँची-नीची हो रही थी वही नारियलोंके एक ओर हटा देनेसे हाथियोंके धोम्य स्थान बन गयी थी ॥११९॥ जिन्हें बहुत प्यास लगी है तथा जो बमथु अर्थात् सूँडसे निकाले हुए जलके छोटोंसे अपना परिश्रम प्रकट कर रहे हैं ऐसे हाथियोंको महावत लोग पानी पिलानेके लिए तालाबोंपर ले गये थे ॥१२०॥ जो धीरे-धीरे चलनेसे मार्गमें उत्पन्न हुए परिश्रमको प्रकट कर रहे हैं ऐसे हाथियोंको महावत

१ पत्वयनस्त्वलीनादिपरिकरः । २ आद्रापयन्ति स्म ३ विकतंयितुमिच्छवः । ४-कीर्णे स० ।  
 ५ कम्पन्ति स्म । ६ -निलोदधुतः स० । ७ अयं तु ल० । ८ कुशुमरजोवतीम्, कृतुमतीमिति इति । ९ दृष्टवा  
 ल०; द० । १० जलानीत्यर्थः । ११ गमाणम् । 'वर्षं देहप्रमाणयोः' इत्यभिधानात् । १२ गर्जेरेव ।  
 १३ स्वकर्तैर्भूत्याकारेण पर्यन्तप्रसारितैः । १४ लृषितान् । 'उद्दमा तु पिपासा सृद्' इत्यभिधानात् । १५ करशी-  
 करप्रकटित । 'वरथुः करशीकरः' इत्यभिधानात् । १६ हस्त्यारोहाः । 'हस्त्यारोहा तिषादितः' इत्यमरः ।  
 १७ मन्दगमनेन । स्खलदगमनेन वा । अगमनेनत्यर्थः । 'अस्ते जीर्णंहस्त्युच्चैः' । १८ अवगाहनार्थम् ।

प्रवेष्टुमदिजनीपवचलज्जं नागो नवग्रहः । नैच्छत् प्रचोषमानोऽपि वारि वारी<sup>१</sup>विशङ्कया ॥१२२॥  
 चनं विलोकयन् स्वैरं कवलोचितपहलवम् । गजादिचरगुर्हानोऽपि किमश्चासीद् समुद्दुकः ॥१२३॥  
 स्वैरं न पपुरम्मासि नागृहन् कवलानपि । केवलं चनसंभीगसुखाना<sup>२</sup> लस्मर्गन्जाः ॥१२४॥  
 उत्पुकरान्<sup>३</sup> स्फुरद्दैक्षम् कक्ष्याक्षिन्युर्दिपान् लरः । सशाश्चनिव<sup>४</sup> नीलार्द्दीन् सवियुत हवाम्बुदान् ॥१२५॥  
 चनद्विपमदामोदवाहिने गन्धवाहिने<sup>५</sup> । अजः कुम्भलोपास्तं निन्ये कृष्णाक्षिषादिना ॥१२६॥  
 अकस्मात् कृपितो द्रन्ती शिरस्तिर्यग्निधूमयन् । अमृतावशशसीवमादीरणमत्तेदयत् ॥१२७॥  
 वन्ध्यामेकपरम्भोगम्यकान्तमदवासनाम् । विसोदुं सरसीं नैक्षण्मदेमः करिणीमिव ॥१२८॥  
 पीतं चलादितीय पूर्वमृदु अद्वलन्तवितम् ॥ द्विवद्विवेण संजिग्रन्<sup>६</sup> नापादास्फालयत् परम् ॥१२९॥  
 पीताम्भसो मदासारैर्द्विं निन्युः सरोजलम् । गजा मुधा धनादानं नूनं चावल्लन्ति सौजतः ॥१३०॥  
 उत्पुकरं सरोमध्ये निमग्नोऽपि मदद्विपः । रंरणद्विभिः<sup>७</sup> खमुत्पत्य व्यउथते स्म मधुवर्तीः ॥१३१॥  
 पीताम्बुरम्बुदस्यधिं चूहितो मदकुंजरः । हुधाव<sup>८</sup> गश्चकाष्ठयो<sup>९</sup> चण्डगण्डुषवारिमिः ॥१३२॥

लोग नहलानेके लिए तालाबोंपर ले गये थे ॥१२१॥ कोई नवीन पकड़ा हुआ हाथी बार-बार प्रेरित होनेपर भी कमलिनीके पत्तोंसे उके हुए जलमें समुद्रकी आशंकासे प्रवेश नहीं करना चाहता था ॥१२२॥ अहुत दिनका पकड़ा हुआ भी कोई हाथी अपने इच्छानुसार खाने योग्य नवीन पत्तोंबाले बनको देखता हुआ विलक्षण रीतिसे उत्कण्ठित हो रहा था ॥१२३॥ कितने ही हाथियोंने इच्छानुसार न तो पानी ही पिया था और न ग्रास ही उठाये थे, वे केवल बनके सम्भोगसे उत्सन्न सुखोंका स्मरण कर रहे थे ॥१२४॥ जिनकी सूँड़ ऊँची उठी हुई है और जिनकी बगलमें सुवर्णकी मालाएँ देवीप्रमाण हो रही हैं ऐसे हाथियोंको महावत लोग सरोवरोंपर ले जा रहे थे, उस समय वे हाथी ऐसे जान पड़ते थे मानो अजगरसहित नील पर्वत ही ही अथवा बिजलीसहित मेघ ही हों ॥१२५॥ जो जंगली हाथीके मदकी गन्धको धारण करनेवाले बायुसे कुपित हो रहा है ऐसे किसी हाथीको उसका महावत बड़ी कठिनाईसे जलके समीप ले जा सका था ॥१२६॥ अचानक कुपित हुआ कोई हाथी अपने शिरको तिरछा हिला रहा था, वह अकुशके बश भी नहीं होता था और महावतको खेदखिला कर रहा था ॥१२७॥ जंगली हाथीके सम्भोगसे जिसमें मदकी वास फैल रही है ऐसी हथिनीको जिस प्रकार कोई मदोन्मत्त हाथी नहीं चाहता है उसी प्रकार जिसमें जंगली हाथियोंकी क्रीड़ासे मदकी गन्ध मिली हुई है ऐसी सरोवरीमें कोई मदोन्मत्त हाथी प्रवेश नहीं करना चाहता था ॥१२८॥ जिस पानीको पहले बनके हाथी पी चुके थे और इसीलिए जो मदकी गन्धसे भरा हुआ था ऐसे पानीको सेनाके हाथियोंने नहीं पिया था, वे केवल सूँडसे सूँघ-सूँघकर उसे उछाल रहे थे ॥१२९॥ जिन हाथियोंने तालाबका पानी पिया था उन्होंने अपना मद बहान्वहाकर तालाबका वह पानी बढ़ा दिया था, सो ठीक ही है क्योंकि जो उन्नत अर्थात् बड़े होते हैं वे किसीका व्यर्थ ही धन लेनेकी इच्छा नहीं करते हैं ॥१३०॥ कोई मदोन्मत्त हाथी यद्यपि सूँड ऊपर उठाकर तालाबके मध्यभागमें ढूबा हुआ था तथापि आकाशमें उड़कर शब्द करते हुए अमरीसे 'वह यही है', इस प्रकार साफ समझ पड़ता था ॥१३१॥ जो पानी पी चुका है और जिसकी गज़ना मेघोंके साथ स्पर्श कर रही है ऐसा कोई मदोन्मत्त हाथी अपने कुरलेके जलकी तेज फटकारसे कपोलोंकी खुजली शान्त कर रहा था ।

विमुक्तं द्यन्नसूक्तारं करमुक्षिष्य वारणैः । वारि स्फटिकदण्डस्य लक्ष्मीमूर्हं विमुक्तलत्<sup>१</sup> ॥१३३॥

उदगाहैविनिर्भूतश्रमाः कैचिन्मत्सङ्गाः । <sup>२</sup> विसम्भैरुषुप्तिं हेलया कवलीकृतैः ॥१३४॥

मृणालैरधिदस्ताग्रमर्पितैर्विभुर्गाजाः । अजस्मम्बुसंसेकादृ रथैः<sup>३</sup> प्रारोहिनैरिव<sup>४</sup> ॥१३५॥

प्रमाणन् द्विरदः कश्चिभृणालं स्वकरोदधतम् । द्रदावालान् द्वृष्टैव नियम्भै द्विगुणीकृतम् ॥१३६॥

चरणालग्नमाक्षयन् मृणालं मालुका गजः । बहिःसरस्तद॑ व्यादप्रदम्बुसम्तुकशङ्गाम<sup>५</sup> ॥१३७॥

कौरुरुक्षिष्य पश्चानि स्थिताः स्तम्भेरमा वभुः । देवतानुस्मृतिं किञ्चिद् कुर्वन्तोऽधोरित्वोदृष्टैः ॥१३८॥

सरस्तरङ्गवैताङ्गा रेणुस्तुका मतङ्गाजाः । शङ्कारिता इवाकरनैः सान्द्रैरम्बोजरेणुभिः ॥१३९॥

यथुः करिमिरास्वर्द्धं परिहृष्य<sup>६</sup> सरोजलम् । पतञ्जिणः सरस्तीरं तद्युक्तमधलीयसाम् ॥१४०॥

सरोवराहनिर्गिक्षमूर्त्योऽपि<sup>७</sup> मतङ्गाजाः । <sup>८</sup> रजःप्रमाणैरात्मानं चक्रुरेव मलीभसम् ॥१४१॥

वयं जात्यैव मातङ्गा<sup>९</sup> मवेनोदीपिताः पुनः । कुलस्या शुद्धिरस्माकमित्यात्मं तु<sup>१०</sup> रजो गजैः ॥१४२॥

### बसन्तसिलकाधृतम्

तृत्यं सरस्यु रुचिरं प्रविहृत्य नागाः संतापमन्त<sup>११</sup> लदितं प्रशमन्यं तोयैः ।

तीरुमानुपयन्तुः किमपि प्रतीषादृ वर्धं तु तत्र नियतं न विदांवभूषु<sup>१२</sup> ॥१४३॥

॥१३२॥ कितने ही हाथी सूँड ऊँची उठाकर सू सू शब्द करते हुए ऊपरको पानी छोड़ रहे थे, उस समय आकाशकी ओर उछलता हुआ वह पानी ठीक स्फटिक मणिको बने हुए दण्डेकी शोभा वारण कर रहा था ॥१३३॥ पानीमें प्रवेश करनेसे जिनका सब परिश्रम दूर हो गया है ऐसे कितने ही हाथी लीलापूर्वक मृणालको टुकडे खाकर सन्तोष धारण कर रहे थे ॥१३४॥ कितने ही हाथी अपने दौतोंके अग्रभागपर रखे हुए मृणालोंसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निरन्तर पानीके सींचनेसे उनके दौत ही अंकुरित हो उठे हों ॥१३५॥ मदसे अत्यन्त उन्मत्त हुआ कोई हाथी अपनी सूँड़से ऊपर उठाये हुए मृणालको बाँधनेकी साँकल समझकर उसे दोहरी कर महाबतको दे रहा था ॥१३६॥ अपने पैरमें लगे हुए मृणालको खींचता हुआ कोई भी हाथी उसे बाँधनेकी साँकल समझकर तालाबके बाहरी तटपर ही खड़ा रह गया था ॥१३७॥ अपनी सूँड़ोंसे कमलोंको उठाकर खड़े हुए हाथी ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो हाथोंमें अर्ध लेकर किसी देवताका कुछ स्मरण ही कर रहे हों ॥१३८॥ जिनके शरीर तालाबकी लहरोंसे धूल गये हैं ऐसे ऊँचे-ऊँचे हाथी सघन रूपसे लगे हुए कमलोंकी परागसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो स्नान कराकर उनका शृंगार ही किया गया हो ॥१३९॥ हाथियोंसे घिरे हुए तालाबके जलको छोड़कर सब पक्षी तालाबके किनारेपर चले गये थे सी ठीक ही है क्योंकि निर्बल प्राणियोंको ऐसा ही करना योग्य है ॥१४०॥ तालाबोंमें प्रवेश करनेसे जिनके शरीर निर्मल हो गये हैं ऐसे कितने ही हाथी धूल उड़ाकर फिरसे अपने-आपको मैला कर रहे थे ॥१४१॥ प्रथम तो हम लोग जातिसे ही मातंग अर्थात् चाण्डाल हैं ( पक्षमें-हाथी हैं ) और फिर मद अर्थात् मदिरासे ( पक्षमें-गण्डस्थलसे बहते हुए तरल पदार्थसे ) उत्तेजित हो रहे हैं इसलिए हम लोगोंकी शुद्धि अर्थात् पवित्रता ( पक्षमें-निर्मलता ) कहाँसे रह सकती है ऐसा समझकर ही मानो हाथियोंने अपने ऊपर धूल डाल ली थी ॥१४२॥ इस प्रकार वे हाथी बहुत देर तक सरोवरोंमें क्रीड़ा कर और अन्तरंगमें उत्पन्न हुए सन्तापको जलसे शान्त कर किनारेके वृक्षों-

<sup>१</sup> खम्बृद्धवलत् ल०, द०, इ०, अ०, प०, स० । <sup>२</sup> जगावाहैः । <sup>३</sup> मृणालबण्डैः । <sup>४</sup> धूतकलैः ।

<sup>५</sup> दन्तैः ल०, द० । <sup>६</sup> संजातश्रारीहैः, अङ्गुरितैः । <sup>७</sup> बन्धनरज्जुः । <sup>८</sup> आरोहकाय । <sup>९</sup> सरस्तटीशाहूप्रदेशैः ।

<sup>१०</sup> प्रक्षिपति स्म । 'असु शेषणे' । <sup>११</sup> शृङ्गलासूत्र । 'अथ शृङ्गले । 'अन्दुको निगलोऽस्त्री स्याद्' इत्यभिधानात् । <sup>१२</sup> स्यक्त्वा । <sup>१३</sup> शुद्ध । <sup>१४</sup> धूलिप्रक्षेपैः । <sup>१५</sup> श्वपन्चाः इति व्यनिः । <sup>१६</sup> इव । <sup>१७</sup> अभ्यन्तरोद्भूतम् । <sup>१८</sup> न विदन्ति स्म ।

हृष्टा सरोऽम्बु वरिष्ठो निजदानवारि संबद्धिं 'विनिमयादनृणाश्च' सन्तः ।  
 तद्वच्छिहस्तजनिसप्रतिरोधशक्वा व्यासंगिनो नु सरसः प्रसर्व निर्सेयुः ॥१४४॥  
 आद्येरणा मदमर्थीमलिनान् कर्मदान् निषेक्तुं मम्बु सरसामयगाहयन्तः ।  
 शेषु रुद्रं कंचलमयासुपर्थं गामात्रं 'तीरस्थिताननु नर्यस्तदर्शकरन्त' ॥१४५॥  
 रवैरं नवाभ्युपरिषीतमथलभ्यतीरदुमेषु न कृतः कंचलग्रहोऽपि ।  
 उच्चास्त्रलम्भं न तु विश्वमणं प्रभिष्ठेः<sup>१</sup> स्तम्बेरमैवेत मदः खलु नामनीनः ॥१४६॥  
 नाभ्या द्वारं शुद्धतरपि नातियातो शुद्धेषु जानु न किमप्यपरादमेमिः ।  
 सारथसारुच्च कणिः सविशेषमेव व्याप्तात्प्रथनिभृता<sup>२</sup> हति दिक्षलस्तम् ॥१४७॥  
 अर्थात् नः किमिलि हम्मत विनापरापाज् जार्मासं<sup>३</sup> भोः<sup>४</sup> प्रलिफलत्यचिरादिदं चः ।  
 इस्तु उच्चलस्तम्भिः<sup>५</sup> 'विभूत शिरामि बन्धे वैरं नु यन्तुषु गजाः स्म विभावयन्ति ॥१४८॥  
 आशातुको<sup>६</sup> द्विरादिनः सविशेषमेव गामापरान्तकरं बालधिषु न्यथोजि ।  
 बन्धेन सिद्धुरवरास्त्वितरे<sup>७</sup> तथा नां गाढीभवस्यविशतान्<sup>८</sup> परत्र<sup>९</sup> बन्धः ॥१४९॥

के समीप आ गये थे, यद्यपि वहाँ उनके बाधिनेका स्थान नियत था तथापि क्रीड़ासे उत्पन्न हुए अतिशय सन्तोषसे उन्हें उसका कुछ भी ज्ञान नहीं था ॥१४३॥ हाथियोंने तालाबोंका जो पानी पिया था उसे मानो अपना बदला चुकानेके लिए ही अपने मदरूपी जलसे बढ़ा दिया था, इस प्रकार प्यासरहित हो सुखकी साँस लेते हुए वे हाथी, 'ये तालाब अपनी लहरेंरूपी हाथोंसे कही हमें रोक न ले' ऐसी आशंका कर तालाबोंसे शीघ्र ही बाहर निकल आये थे ॥१४४॥ मदरूपी स्याहीसे मलिन हुए हाथियोंको निमंल करनेके लिए तालाबोंके जलमें प्रवेश कराते हुए महावत जब उन्हें जलके भीतर प्रविष्ट नहीं करा सके तब उन्होंने केवल जल ही पिलाना चाहा परन्तु बहुत कुछ अनुत्य-विनय करनेपर भी वे किनारेपर खड़े हुए उन हाथियोंको केवल जल भी पिलानेके लिए समर्थ नहीं हो सके थे । भावार्थ – मदोन्मत्त हाथी न तो पानीमें ही शुसे थे और न उन्होंने पानी ही पिया था ॥१४५॥ मदोन्मत्त हाथियोंने न तो अपने इच्छानुसार विना यत्के प्राप्त हुआ पानी ही पिया था, न किनारेके वृक्षोंसे कुछ तोड़कर खाया ही था और न वृक्षोंकी छायामें कुछ विश्वास हो प्राप्त किया था, खेद है कि यह मद कभी भी आत्माका भला करनेवाला नहीं है ॥१४६॥ इन हाथियोंने शरीर भारी होनेसे शीघ्र ही मार्ग तय नहीं किया यह बात नहीं है अर्थात् इन्होंने भारी होनेपर भी शीघ्र ही मार्ग तय किया है, इन्होंने युद्धमें भी कभी अपराध नहीं किया है और ये भार ढोनेके लिए भी सबसे अधिक समर्थ हैं, फिर भी केवल चंचल होनेसे इन्हें बद्ध होना पड़ा है इसलिए इस चंचलताको ही धिक्कार हो ॥१४७॥ तुम लोग इस प्रकार बिना अपराधके हम लोगोंको क्यों बांध रहे हो ? तुम्हारा यह कार्य तुम्हें शीघ्र ही इसका बदला देगा यह तुम खूब समझ लो इस प्रकार बाधिनेके कारण महावतोंमें जो बैर था उसे वे हाथी अंकुशको ऊपर उछालकर मस्तक हिलाते हुए स्पष्ट रूपसे जतला रहे थे ॥१४८॥ जो हाथी जीर्णोंका घात करनेवाले थे वे शरीरके आगे पीछे तथा भूँड़ और पूँछ आदि

१ नैमेयास् । 'परिदानं परोवर्तं नैमेयनियमावपि' इत्यभिधानात् । २-दत्तुणः श्वसन्तः ल० । -दनृणः श्वसन्तः द० । ३ शुद्धान् कर्तुम् । ४ तीरे स्थितान्-ल० । ५ कारयन्ति स्म । ६ तैत्र । ७ मनः । 'अभिष्ठो गजितो मतः' इत्यभिधानात् । ८ आरम्भहितम् । ९ नानुयातो प०, ल० । १० चञ्चलाः । ११ बन्धनं कुहृष्ट । १२ लोट् । १३ भोः पूष्यम् । १४ उच्चलदकुण्डं यथा भवति तथा । 'अंकुशोऽस्त्री सूर्णः स्त्रियाम्' इत्यभिधानात् । १५ हिलकः । 'शरारुद्धातुको हिलः' इत्यभिधानात् । १६ अपराधावान्तः । शरीरापरभाग । 'द्वौ पूर्वपश्चाद्-जङ्घादिदेशी गामापरे क्लमाद्' इति रभसः । गामे इत्युक्ते पूर्वजङ्घा, अपरे इत्युक्ते हस्तिनः अपरजङ्घा, अन्त इत्युक्ते हस्तिनो मष्प्रदेशः, कर इत्युक्ते हस्तिनो हस्तः, बालधिरित्युक्ते पुच्छविशेषः शरीरमध्य । १७ अषातुकाः । १८ असंयतात् । अन्नतिकादित्यर्थः । १९ संयते ।

आलानिता बनतहृवतिमात्रमुच्चस्कंधेषु मिन्दुरवराश्च 'तथोचकीर्यत्' ।  
तश्चूमाश्रयणमिष्टमुदात्मेष संधारणाय भहतामहतात्मसारम् ॥१५०॥  
इत्थं नियन्तुमिरनेकपृष्ठन्दमुच्चरालानितं तरुषु यामि॑ निमीलिताक्षम् ।  
तस्थौ मुखं विष्टुरोण॑ कृताङ्गहार॑ लीलोपयुक्तकवलं स्फुटकर्णतालम् ॥१५१॥  
उत्तारितायिलपरिच्छदलाघवेन प्रवयत्रितद्रुतगतिकै॒ मलक्ष्यत्रेगाः ।  
आपातुमम्बुमरमां परितः प्रसकुरुच्छुक्तुलै॒ रनुगताः कलमैः करिष्यः ॥१५२॥  
प्राक्पीतमम्बु सरसा॑ कृतमीष्टकेण॑ स्वोदगाल॑ दृष्टिसुपात्तद्रुगम्भम्॑ ।  
नापातुम्बुदिदृन्य॑ वितोऽपि चक्षे॑ सर्वौ हि वाल्मुति जनो विषयं मनोजम् ॥१५३॥  
पीतं पुरा गजतया सलिलं मदाम्बु संवासितं सरसिजाकरमेत्य तृष्णम् ।  
प्रीत्या पपुः कलभकाश करेणवश्च संभीगहेतुरुदितो॑ हि सगम्भ॑ भावः ॥१५४॥

### प्रहविष्णो

पीत्वाऽम्भो व्यपगमितान्तरक्षतापाः संतापं बहिरुदितं सरोवगाहैः ।  
नीत्वाम्भं॑ गजकलमैः समं करिष्यः संभोज्यं सपदि बनदुमान् विचेतुः ॥१५५॥

सब जगह बन्धनोंसे युक्त किये गये थे और जो हाथी किसीका धात नहीं करते थे वे बन्धनसे युक्त ही थे किये आये थे इतसे॑ अहृ॒ लिद्धं होता है॑ कि जो अविरत अर्थात् हिंसा आदि पापोंके त्यागसे रहित हैं उन्हींके कर्मबन्धन सुदृढ़ रूपसे होता है और जो विरत अर्थात् हिंसा आदि पापोंके त्यागसे सहित हैं उनके कर्मका बन्ध नहीं होता ॥१५५॥ जिनके स्कन्ध बहुत ऊँचे गये हैं ऐसे बनके वृक्षोंमें ही सेनाके ऊँचे-ऊँचे हाथी बाँधे गये थे सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी धारण करनेके लिए जिसकी स्वशक्ति नष्ट नहीं हुई है ऐसा बहुत बड़ा ही आश्रय चाहिए ॥१५०॥ इस प्रकार महावतोंके द्वारा केवे वृक्षोंमें बाँधा हुआ वह हाथियोंका समूह अपनी आधी आँखें बन्द किये हुए सुखसे खड़ा था, उस समय वह अपना सब शरीर हिला रहा था, लीलापूर्वक ग्रास ले रहा था और कान फड़फड़ा रहा था ॥१५१॥ पलान आदि सब सामान उतार लेनेसे हल्की होकर जिन्होंने जल्दी-जल्दी चलकर अपनी शीघ्र गति प्रकट की है, तथा चंचल बच्चे जिनके पीछे-पीछे आ रहे हैं ऐसी हथिनियाँ तालाबोंका पानी पीनेके लिए चारों ओर से जा रही थीं ॥१५२॥ तालाबोंके जिस पानीको पहले ऊटोंके समूह पी चुके थे, जो ऊटोंके उगालसे दृष्टित हो गया था और जिसमें ऊटोंके शरीरकी गन्ध आने लगी थी ऐसे पानीको हाथीका बच्चा प्यासा होनेपर भी नहीं पीना चाहता था, सो ठीक ही है क्योंकि सभी कोई अपने मनके विषयभूत पदार्थके अच्छे होनेकी चाह रखते हैं ॥१५३॥ जिसे पहले हाथियोंके समूह पी चुके थे और जिसमें उनके मद जलकी गन्ध आ रही है ऐसे पानीको हथिनियाँ तथा उनके बच्चे बहुत शो तालाबपर जाकर बड़े प्रेरणसे पी रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि समानता ही साथ-साथ खानेपीने आदि सम्भोगका कारण होती है ॥१५४॥ जिन्होंने जल पीकर अन्तरंगका सन्ताप दूर किया है और तालाबमें घुसकर बाहरी सन्ताप नष्ट किया है ऐसी हथिनियाँ अपने

१ आधोरणः । २ यहमात् कारणात् । ३ अर्थ । ४ विदूश्यानि विगतानि चत्वारि यस्य तेन । ५ अङ्गविक्षेपम् ।  
६ पाद । ७ स्वच्छदवृत्तिभिः । ८ सम्पूर्णम् । ९ उष्ट्रसमूहेण । १० निष्ठोदगार । ११ उष्ट्रशरीरगन्धम् ।  
१२ भृत्या तृष्णितः । १३ तदणगजः । विषकः अ० । १४ उष्ट्रः । १५ परिमलत्वं मित्रस्वं च । १६ नाशम् ।

वल्लीनां सकुसुमपलवाग्रमग्नान् गुहमौधानपि सरसां कड़गरोऽशे ।  
 सुस्वादून् मृदुविटपान् बनदुमाणां तथूर्थं कवलयति स्म धेनुकानाम् ॥ १५६॥  
 कुओषु प्रसन्नुगणाकुरान् प्रभूद्वन्नर्वं व्यामत्तानपि रवैः शर्मिविनिघ्नव् ।  
 वद्वल्यम्भ्रसन्तचणः ५ फलेष्ठिः ६ सन् व्यालोलः कलमगणक्षिरं विजहु ॥ १५७॥  
 प्रस्त्रप्राप्तिः किसलयिनीर्गुहाण शाखा भर्तु रुद्धुर्वैवनगाहनं निर्वीदं कुम्भे ।  
 संभोग्यानुपसरसहकीवनान्तानिषेवं ८ व्यहृतं वने करेणुवर्णः ॥ १५८॥  
 संभोगीर्वनमिति निर्विशान् ९ अथेषु द्वालन्त्यान्मुहुरपि १० धूर्णतैर्निवदुः ।  
 वद्वल्यः सहकलमः करेणुवर्णः संप्रापत् यसुचितमात्मलो निवेशम् ॥ १५९॥  
 विश्रहतैरप्यमुपाहतस्तुर्गैः पर्यस्तो ११ रथ इह १२ भगवधूर्णिरक्षः ।  
 एतास्ता मुतमप्याम्त्यपेत्य मार्गाद् वारजीवद्वनपराश्र वेगसर्वः ॥ १६०॥  
 विश्रस्तः १३ करमनिरीक्षणाद् गजोऽयं भीसुर्वं प्रकटयति प्रधावमामः ।  
 १४ उत्त्रस्तात्पतति च वेसरादमुम्भाद् विश्रस्तस्तनजघनांशुका पुरन्धी ॥ १६१॥  
 इत्युच्चैर्व्यतिवदतां १५ पुष्परजनानो संजल्यैः शुभितपरोद्गौशकैश्च ।  
 १६ अयाक्रोशीर्जनितरवैश्च सैनिकानां संक्षीभः क्षणममवाम्भुपु राज्ञाम् ॥ १६२॥

बच्चोंके साथ खानेके लिए शीघ्र ही बनके बुखोंकी ओर चली गयीं ॥ १५५॥ वह हथिनियोंका समूह लताओंके पुष्पसहित नवीन पत्तोंके अग्रभागोंको, छोटे-छोटे पीवोंको, रसीले कड़गरि बृक्षोंको और बनके बुखोंकी स्वादिष्ट तथा कोमल शाखाओंको खा रहा था ॥ १५६॥ लतागृहोंमें पतली धासके अंकुरोंको खूंदता हुआ खेतोंकी मेड़को अपने दीतोंसे धीरे-धीरे तोड़ता हुआ, लताओंके अग्रभागके खानेमें चतुर तथा फलोंको तोड़ता हुआ वह चंचल हाथियोंके बच्चों-का समूह चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा था ॥ १५७॥ पत्तेवाली नवीन लताओंको ग्रहण कर, ऊँची-ऊँची शाखाओंसे युक्त सघन बनमें जा, लतागृहमें बैठ और खानेके योग्य सल्लकी बनोंके समोप जा इस प्रकार महावतोंकी आज्ञासे वह हथिनियोंका समूह बनमें इधर-उधर विहार कर रहा था ॥ १५८॥ इस प्रकार जो अनेक प्रकारकी क्रीड़ाओंके द्वारा बनका अपनी इच्छानुसार उपभोग कर रहा है, स्वतन्त्रतापूर्वक आगे चलनेसे महावत लोग जिसे रोक रहे हैं और जो बांधनेके योग्य हैं ऐसा वह हथिनियोंका समूह बच्चोंके साथ अपने ठहरने योग्य स्थानपर जा पहुँचा ॥ १५९॥ इधर हाथियोंसे डरे हुए इन घोड़ोंने यह रथ कुमार्गमें ले जाकर पटक दिया है, इसका धुरा और भीरा टूट गया है तथा वेश्याओंको ले जानेमें तत्पर ये खच्चरियां अपना मार्ग छोड़कर बहुत शीघ्र भागी जा रही हैं ॥ १६०॥ इधर यह ऊँट देखनेसे डरा हुआ हाथी दौड़ा जा रहा है और उससे अपना भीसुपता प्रकट कर रहा है तथा इधर जिसके स्तन और जघन-परका वस्त्र स्विसक गया है ऐसी यह स्त्री डरे हुए खच्चरसे गिर रही है ॥ १६१॥ इस प्रकार जोर-जोरसे बोलते हुए साधारण पुरुषोंकी बातचीतके शब्दोंसे, भीभको प्राप्त हुए गधे, ऊँट तथा बैलोंके शब्दोंसे और परस्पर बुलानेसे उत्पन्न हुए सैनिकोंके कठोर शब्दोंसे राजाओंकी

१ शुसानि । 'कड़गरो बुर्स कलीवे' इत्यमिधानात् । २ करिणीनाम् । 'करिणी धेनुका वशा' इत्यमरः ।  
 मुरभीणाम् । ३ कोमल । ४ मर्दयन् । ५ सात्वत्तान् । 'स्नूर्वप्रः सानुरस्त्रियाम्' इत्यमरः । ६ भक्षणसमर्थः ।  
 ७ कलानि गृह्णन् । ८ मद्गं कुरु । ९ आस्त्र । १० सादिजनानुत्यः । ११ विहाति स्म । १२ अनुभवन् ।  
 १३ सादिभिः । १४ निषिद्धः । १५ उत्तानं यथा पतिः । १६ भगवयानमुखः । १७ निर्गतावयवः ।  
 १८ वेसराः । १९ भयं गतः । २० चकितात् । २१ परस्परभाषमाणानाम् । २२ वृषभः । २३ परस्पराहृषीः ।

मालिनी

अवनिषत्प्रियमाजेनानुयातास्तुरंगेरकृशविभवयोगाचिर्यन् लोकपालान् ।  
प्रतिदिनसुपश्चउज्जाशिववक्षाणिः शिविरमविशदुच्छैर्वैम्बिदनां पुण्यधोरैः ॥१६३॥  
अथ सरसितिर्विनां गन्धमादाय सान्द्रं भुततटवनवीर्यमन्दभावान् समन्तात् ।  
श्वममविलमनौर्यान् करुमस्योपचारं प्रहित इव अप्यवल्लैसिल्पुकृष्णविष्वकृष्णः तु उद्देश्यात् ॥१६४॥  
भविदितपरिमाणेरन्वितो रक्षशङ्कैः स्फुरितमणिशिरामैर्भौगिभिः सेवनीयः ।  
सत्तमुपचितात्माैरुद्दिवचक्रवालो जलनिधिमनुजहूँ तस्य सेवानिवेशः ॥१६५॥

शार्दूलविक्रीडितम्

तत्रावासितसाधनोै निविषतिगत्वा रथेनाम्बुधिं जैवास्त्रप्रतिलिपिंतामरसमस्तं व्यन्तरावीक्षरम् ।  
जित्वा मागधवत् धृणाहृतनुं तत्त्वाद्वामभोनिधेद्वैर्यं शशदलं चकार यदासा कल्पास्तरहवायिना ॥१६६॥  
लेभेऽमेयमुरद्वलं वरतनोऽप्तिवेयकं च स्फुरचूडारक्षमुदंशु दिव्यकटकान् सूर्यं च रमोउज्ज्वलम् ।  
सद्वैरिति गृजितः ए भगवान् श्रीवैद्यत्रस्तार्णव-द्वारण प्रतिसंनिवृत्य कटकं प्राविश्वरुत्सौरणम् ॥१६७॥

सेनाओंमें धण-भरके लिए बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया था ॥१६२॥ घोड़ोंपर बैठे हुए अनेक राजाओंका समूह जिसके पीछे-पीछे चल रहा है ऐसा वह चक्रवर्ती अपने बड़े भारी वैभवसे लोकगालोंको जीतता हुआ सथा प्रत्येक दिशासे बन्दीजनोंके मंगल गानोंके साथ-साथ आशीर्वद मुनता हुआ अपने उच्च शिविरमें प्रविष्ट हुआ ॥१६३॥

अथानन्तर जो फिनारेके बनकी निधियोंको हिला रहा है ऐसा वायू कमलिनियोंको उत्कट गन्ध लेकर धीरे-धीरे चारों ओर बह रहा था और समुद्रके द्वारा भेजे हुए किसी खास सम्बन्धीके समान चक्रवर्तीके समस्त परिश्रमको दूर कर रहा था ॥१६४॥ उस समय वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान ( पडाव ) ठोक समुद्रका अनुकरण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार समुद्र प्रमाणरहित शंख और रत्नोंसे सहित होता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी प्रमाणरहित शंख आदि निधियों तथा रत्नोंसे सहित था, जिस प्रकार समुद्र, जिनके मस्तक-पर अनेक रत्न देवीप्यमान हो रहे हैं ऐसे भोगी अर्थात् सप्तोंसे सेवनीय होता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी, जिनके मस्तकपर अनेक मणि देवीप्यमान हो रहे हैं ऐसे भोगी अर्थात् राजाओंके द्वारा सेवनीय था, जिस प्रकार समुद्र निरन्तर बढ़ता रहता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी निरन्तर बढ़ता जाता था, और जिस प्रकार समुद्र सब दिशाओंको घेरे रहता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी सब दिशाओंको घेरे हुए था ॥१६५॥ जिसने अपनी सेना समुद्रके किनारे ठहरा दी है और जिसने अपने विजय-शील शस्त्रोंसे मागध देवकी सभाको जीत लिया है ऐसे निधियोंके स्वामी चक्रवर्तीने रथके द्वारा समुद्रमें जाकर मागध देवके समान व्यन्तरोंके स्वामी वरतनु देवको भी जीता और समुद्रके भीतर रहनेवाले उसके वरतनु नामक द्वीपको कल्पान्त काल तक स्थिर रहनेवाले अपने यशसे सदाके लिए अलंकृत कर दिया ॥१६६॥ भरतने वरतनु देवसे कभी न टूटनेवाला कवच, देवीप्यमान हार, चमकता हुआ चूडारल, दिव्य कड़े और रत्नोंसे प्रकाशमान यज्ञोपवीत इतनी वस्तुएँ प्राप्त कीं । तदनन्तर उत्तम रत्नोंसे जिसकी पूजा की गयी है ऐसे ऐश्वर्यशाली

१ अशच्छन् । २ अपनयति स्म । ३ बन्धुः । ४ समुद्रेण । ५ चक्रादिरत्नशङ्खनिधिभिः । ६ पश्चीकितकादि-रत्नशङ्खसः । ७ पश्चीकाराः । ८ बद्धितस्वरूपः । ९ अनुकरोति स्म । १० निवासितवलः । ११ पूज्यः ।

स्वच्छं सर्वं हृदयं स्फुर्तं प्रकटयन्मुक्तापलच्छग्ना सर्वं चान्तर्गतरागमाधु कथयश्चाद्यप्रवालाद्युः ।  
सर्वस्वं य यमर्पयक्षुपन्यस्त्वर्यर्थं<sup>१</sup> दक्षिणो वारां राशिरमान्यथाद्विभुमयौ निर्वाजमारात्रयस् ॥१६८॥  
आस्थाने जयदुन्दुर्भाननु नदन्<sup>२</sup> प्राभातिके महाले गम्भीरव्यनिमेऽर्यध्वनिमित्र प्रसपादसुकारयन् ।  
स्वद्यज्ञं य जलाशयोऽप्यजलं धीवरिष्यति धीषसि निभृत्यस्थितिरमिवसात्र सुचिरं दाको यथाहं जिनम्  
इत्याधैं भगवत्तिजनसेनाचार्यप्रलयिते त्रिविट्यश्चरामहापुराणसंग्रहे  
दक्षिणार्द्धवद्वारविजयतर्णनं नामैकोनत्रिशं पर्व ॥१६९॥

■

भरतने वैजयन्त नामक समुद्रके द्वारसे वापस लौटकर अनेक प्रकारके तोरणोंसे सुशोभित किये गये अपने शिविरमें प्रवेश किया ॥१६७॥ उस समय वह दक्षिण दिशाका लबणसमुद्र ठोक मन्त्रीकी तरह छलरहित हो भरतकी सेवा कर रहा था, क्योंकि जिस प्रकार मन्त्री अपने स्वच्छ हृदयको प्रकट करता है उसी प्रकार वह समुद्र भी मोतियोंके छलसे अपने स्वच्छ हृदय (मध्यभाग) को प्रकट कर रहा था, जिस प्रकार मन्त्री अपने अन्तर्गतका अनुराग (प्रेम) प्रकट करता है उसी प्रकार वह समुद्र भी उत्पन्न होते हुए मूगाओंके अंकुरोंसे अपने अन्तर्गतका अनुराग (लाल बर्ण) प्रकट कर रहा था, जिस प्रकार मन्त्री अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है उसी प्रकार समुद्र भी अपना सर्वस्व (जल) समर्पण कर रहा था, जिस प्रकार मन्त्री अपना गुप्त धन उनके समीप रखता है उसी प्रकार वह समुद्र भी अपना गुप्त धन (मणि आदि) उनके समीप रख रहा था, जिस प्रकार मन्त्री दक्षिण (उदार सरल) होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी दक्षिण (दक्षिणदिशावर्ती) था ॥१६८॥ अथवा जिस प्रकार इन्द्र दास होकर अनन्त चतुष्प्रयरूप लक्ष्मीके स्वामी प्रथम जिनेन्द्र भगवान् वृषभदेवकी सेवा करता था उसी प्रकार वह समुद्र भी दास होकर राज्यलक्ष्मीके अधिष्ठित भरत चक्रधरकी सेवा कर रहा था, क्योंकि जिस प्रकार इन्द्र आस्थान अर्थात् समवसरण सभामें जाकर विजय-दुन्दुभि बजाता था उसी प्रकार वह समुद्र भी भरतके आस्थान अर्थात् सभामिष्टपके समीप अपनी गर्जनासे विजय-दुन्दुभि बजा रहा था, जिस प्रकार इन्द्र प्रातःकालके समय पढ़े जानेवाले मंगल-पाठके लिए जय जय शब्दका उच्चारण करता था उसी प्रकार वह समुद्र भी प्रातःकालके समय पढ़े जानेवाले भरतके मंगल-पाठके लिए अपने गम्भीर शब्दोंसे जय जय शब्दका स्पष्ट उच्चारण कर रहा था, जिस प्रकार इन्द्र जलाशय (जडाशय) अर्थात् केवलज्ञानकी अपेक्षां अल्पज्ञानी होकर भी अपने ज्ञानकी अपेक्षा अजलधी (अजडधी) अर्थात् विद्वान् (अजड धीर्यस्य सः) अथवा अजड (ज्ञानपूर्ण परमात्मा) का ध्यान करनेवाला (अजडं ध्यायतीत्यजडधीः) था उसी प्रकार वह समुद्र भी जलाशय अर्थात् जलयुक्त होकर भी अजलधी अर्थात् जल प्राप्त करनेकी इच्छासे (तास्ति जले धीर्यस्य सः) रहित था, इस प्रकार वह समुद्र चिरकाल तक भरतेश्वर-की सेवा करता रहा ॥१६९॥

इस प्रकार आर्थ नामसे प्रसिद्ध भगवत्तिजनसेनाचार्यप्रणीत विषष्टिलक्षण महापुराणमेंहके  
भागवानुवादमें दक्षिण समुद्रके द्वारके विजयका वर्णन करनेवाला  
उनतीसवीं पर्व समाप्त हुआ ।

■

## श्रिंशत्तमं पर्व

१ अथापरान्ते<sup>१</sup> निर्जेतुसुधतः २ प्रभुरुद्ययौ । ३ दक्षिणापद्मिगार्वं वर्णीकृवैन् स्वनाथैः ॥१॥  
 पुरः प्रयातसम्भीयैरन्वक्तैरचलितं रथैः । ४ मध्ये हस्तिवडा ५ प्रायान् सर्ववैवाच एतयः ॥२॥  
 ६ सर्ववधलमिल्यस्य चतुरझे शिखावलस्म् । विद्यामूर्त्ती वलैः साङ्केतिभूमिरक्षिप्यप्रथम् ॥३॥  
 प्रवचलद्वलसंक्षेपादुच्चचाल किलार्णवः । महतामनुवृत्ति तु श्रावयस्तनुजीविनाम् ॥४॥  
 वलैः प्रसादा<sup>५</sup> निर्मुक्ताः<sup>६</sup> प्रद्वन्ति स्म<sup>७</sup> महीभुजाः<sup>८</sup> । सरितः कर्दमन्ति<sup>९</sup> स्म रथलन्ति स्म महाद्रवः ॥५॥  
 सुरसाः<sup>१०</sup> कृतनिर्वाणाः<sup>११</sup> सृष्टहर्णीया तु सुकुमिः<sup>१२</sup> । महजिः समसुधोर्गैः<sup>१३</sup> कलन्ति<sup>१४</sup> स्मास्त सिद्धयः<sup>१५</sup> ॥६॥  
 अभेद्या ददसंवान्ता<sup>१६</sup> विपक्षजयै<sup>१७</sup> हेतवः । १८ शक्तयोऽहम् स्मास्त स्म येनाश्र विजिरीपुषु ॥७॥  
 फलेन<sup>१९</sup> योजितास्तीक्ष्णाः सप्तशा<sup>२०</sup> दृशगमिनः । नाराचैः<sup>२१</sup> समाप्तस्य योधा जग्मुज्ज्वाङ्गताम् ॥८॥

अथानन्तर-पश्चिम दिशाको जीतनेके लिए उद्यत हुए चक्रवर्ती भरत अपनी सेनाके द्वारा दक्षिण और पश्चिम दिशाके मध्यभाग ( नैऋत्य दिशा ) को जीतते हुए निकले ॥१॥ उनकी सेनामें घोडोंके समूह सबसे आगे जा रहे थे, रथ सबसे पीछे चल रहे थे, हाथियोंका समूह बीचमें जा रहा था और प्यादे सभी जगह चल रहे थे ॥२॥ हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे इस प्रकार चार तरहकी भरतकी सेना देव और विद्याधरोंकी सेनाके साथ-साथ चल रही थी । इस प्रकार वह सेना अपने छह अंगोंके द्वारा चारों ओर विस्तार पा रही थी ॥३॥ उस चलती हुई सेनाके झोमसे समूद्र भी क्षुभित हो उठा था – लहराने लगा था और ऐसा जान पड़ता था मानो ‘सबको महापुरुषोंका अनुकरण करना चाहिए’ यही बात सेवक लोगोंको सुना रहा हो ॥४॥ सेनाके द्वारा जबरदस्ती आक्रमण किये हुए राजा लोग नम्र हो गये थे, नदियोंमें कीचड़ रह गया था और बड़े-बड़े पहाड़ समान – जमीनके सदृश-हो गये थे ॥५॥ जिनका उपभोग अत्यन्त मनोरम है, जो सत्तोष उत्पन्न करनेवाली हैं, और जो उपभोगकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके द्वारा चाहने योग्य हैं ऐसी इस चक्रवर्तीकी समस्त सिद्धिर्या इसके बड़े भारी उद्योगोंके साथ-ही-साथ फल जाती थीं अथवा सिद्ध हो जाती थीं – ॥६॥ जिन्हें कोई भेद नहीं सकता है, जिनका संगठन अत्यन्त मजबूत है और जो शत्रुओंके धयका कारण हैं ऐसी भरतकी शक्ति तथा सेना दोनों ही शत्रु राजाओंपर आगा प्रभाव ढाल रहे थे ॥७॥ भरतके योद्धा उनके बाणोंके समान थे, क्योंकि जिस प्रकार योद्धा फल अर्थात् इच्छानुसार लाभसे युक्त किये जाते थे उसी प्रकार बाण भी फल अर्थात् योहेकी नोकसे युक्त किये जाते थे, जिस प्रकार योद्धा तीक्ष्ण अथवा तेजस्वी थे उसी प्रकार बाण भी तीक्ष्ण अर्थात्

१ ‘रूप्यादिनाथनतमौलिकिराजिरत्नसंदोहनिर्गतितदीप्तिमयाद्विग्रहम् । देवं नमामि सततं जगदेकगाथं भक्ष्या प्रणघ्नुरितं जगदेकनाथम् ॥’ त’ पुस्तकेऽधिकोऽयं इतोऽकः । २ अपरदिग्वायिम् । ३ अभ्यूदयवान् । ४ नैऋत्य-दिग्भागम् । ५ पदचात् । ६ अगच्छत् । ७ संदेवं ल० । ८ प्रकाशते स्म । ९ भटानाम् । १० बलात्कारेण । ११ निजिताः । १२ प्रणता इव आचरन्ति स्म । १३ महीभुजाः वृक्षा वा । १४ कर्दमा द्वाचरिताः । १५ मिद्धिष्ठे रागसहिताः । फलयस्ते रससहिताः । ‘गुणे रामे द्रवे रसः’ इत्यमरु । १६ कृतसुखाः । १७ भोक्तु-मिच्छुभिः । आधितजनैरित्यर्थः । १८ उत्साहैः । १९ फलानीषाचरन्ति स्म । २० कार्यसिद्धयः । २१ दृढ-संबन्धाः । २२ –क्षय-ल० । २३ प्रभुमन्त्रोत्साहरूपाः । २४ तीरिक्लेन अभीष्टक्लेन च । २५ पत्रसहिताः सहायात्र । २६ बाणैः ।

दूरमुखादितः मैन्यैः परिष्करित्तदा॑ः । विषयाः सत्यमेत्रास्य॑ विषयात्मकमुक्तायुः ॥५॥  
 आक्रान्तं भूभूतो नित्यं भुज्ञानाः फलसंपदम्॑ । कुपतित्व॑ यनुभित्रं कोपेऽप्यस्य विरोधिनः ॥६॥  
 संघिविग्रहचिन्तास्य॑ पश्चिमास्त्रं भूतं परम् । धूतयाँ तत्पक्षस्य क संधानं क विग्रहः ॥७॥  
 दृश्ययोवध्यपक्षोऽपि यदर्थं दिग्जयोर्यतः । तद्भूतं भुक्तिमार्मीयां तद्याजेन॑ परीयितान्॑ ॥८॥  
 आक्रान्ता॑ सैनिकैरस्य विभोः पारेऽणेव॑ भुवः । पूर्णद्वामकृतच्छाया नालिकेरथनैस्तताः ॥९॥  
 निषेद॑ नालिकराणां तरुणानां लुतो॑ रसः । सरस्तीरतरुष्टाया विश्रामतैरस्य सैनिकैः ॥१०॥

पिने थे, जिस प्रकार योद्धा सपक्ष अर्थात् सहायकोंसे सहित थे उसी प्रकार बाण भी सपक्ष अर्थात् पक्षोंमें सहित थे, और जिस प्रकार योद्धा दूर तक गमन करनेवाले थे उसी प्रकार बाण भी दूर तक गमन करनेवाले थे, इस प्रकार वे दोनों साथ-साथ ही विजयके अंग हो रहे थे ॥१॥ भरत-के विषय ( विहृदः पक्षो येषां ते विषयाः ) अर्थात् शत्रुओंको उनकी सेनाने दूर भग्ना दिया था और उनके छब्बी चमर आदि सब सामग्री भी छीन ली थी इसलिए वे सबमुच्च ही विपक्ष-पनेको ( विगतः पक्षो येषां ते विषयात्मेषां भावस्तत्त्वम् ) प्राप्त हो गये थे अर्थात् सहायरहित हो गये थे ॥२॥ यह एक आश्चर्यकी बात थी कि भरतके विरोधी राजा सेनाके द्वारा आक्रमण किये जानेपर तथा उनके क्रोधित होनेपर भी अनेक प्रकारकी फल-सम्पदाओंका उपभोग करते हुए कुपतित्व अर्थात् पृथिवीके स्वामीपनेको प्राप्त हो रहे थे । भावार्थ – इस इलोकमें इलेष-मूलक विगोधाभास अलंकार है इसलिए पहले तो विरोध मालूम होता है बादमें उसका परिहार हो जाता है । इलोकका जो अर्थ ऊपर लिखा गया है उससे विरोध स्पष्ट ही झलक रहा है क्योंकि भरतके क्रोधित होनेपर और उनकी सेनाके द्वारा आक्रमण किये जानेपर कोई भी शत्रु सुखी नहीं रह सकता था परन्तु नीचे लिखे अनुसार अर्थ बदल देनेसे उस विरोधका परिहार हो जाता है—भरतके विरोधी राजा लोग, उनके कुपित होने तथा सेनाके द्वारा आक्रमण किये जानेपर अपनी राजधानी छोड़कर जंगलोंमें भाग जाते थे, वहाँ फल खाकर ही अपना निर्वाह करते थे और इस प्रकार कु-पतित्व अर्थात् कुत्सित राजवृत्ति ( दरिद्रता ) को प्राप्त हो रहे थे ॥३॥ उस भरतको सन्धि ( स्वर अथवा व्यजनोंको मिलाना ) और विग्रह ( व्युत्पत्ति ) की चिन्ता केवल व्याकरण शास्त्रमें ही हुई थी अन्य शत्रुओंके विषयमें नहीं हुई थी सो ठीक ही है क्योंकि जिसने समस्त शत्रुओंको नष्ट कर दिया है उसे कहाँ सन्धि ( अपना पक्ष निर्बल होनेपर बलवान् शत्रुके साथ मेल करना ) करनी पड़ती है ? और कहाँ विग्रह ( युद्ध ) करना पड़ता है ? अर्थात् कहाँ नहीं ॥४॥ इस प्रकार भरतके यद्यपि जीतने योग्य कोई शत्रु नहीं था तथापि वे जो दिग्विजय करनेके लिए उद्यत हुए थे सो केवल दिग्विजयके छलसे अपने उपभोग करने योग्य क्षेत्रमें चक्कर लगा आये थे — घूम आये थे ॥५॥ महाराज भरतके सैनिकोंने, जहाँ सुपारीके वृक्षोंके द्वारा छाया की गयी है और जो नारियलके बनोंसे व्याप्त हो रही है ऐसे समुद्रके किनारेकी भूमिपर आक्रमण किया था ॥६॥ सरोबरोंके किनारेके वृक्षोंकी छायामें विश्राम करनेवाले भरतके सैनिकोंने नारियलके तरुण अर्थात् बड़े-बड़े वृक्षों

१ सहायपुरुषरहितत्वम् । २ आक्रान्ता भूभूतो ल० । भूभूतः राजानः पर्वताश्च । ३ अभीष्टफलसंपदम्, वन-स्वतिकलसंपदं च । ४ भूपतित्वं कुत्सितपतित्वं च । ५ संधानयुद्धचिन्ता च । ६ शब्दशास्त्रेषु । ७ निरस्त-शत्रुपक्षम् । ८ पालनशेषम् । ९ दिग्विजयछयना । १० प्रदक्षिणीकृतवान् । ११ समुद्रतीरम् । ‘पारे वध्येऽप्य-यज्ञया’ । १२ पारं क्रियते स्म । १३ निसृतः ।

स्फुरन्पद्मसंपातपवनाधूमोभितः । तालीवनेषु<sup>१</sup> तत्संन्ध्यः शुधुषे मर्मरध्वनिः ॥१३॥  
 समं लाम्बूलवलीभिरगृहत् कमुकान् चिभुः । एककार्यत्वमस्माकमितीव<sup>२</sup> मिलितान्मिथः ॥१४॥  
 नृपस्ताम्बूलवलीनामुपच्छान्<sup>३</sup> कमुकमुमान् । लिघ्यायन् वेष्टैतांस्ताभिर्मुदे दम्पतीयितान् ॥१५॥  
 रथाध्यायमि व कुबाणान् वनेष्विरसदवान् ।<sup>४</sup> वोम्युनीनिव सोऽपश्वद् वत्रास्त्वित्तासिनः ॥१६॥  
 पतसानि मृदूल्यन्तः कण्ठकीनि वहिस्त्वचि । सुरसान्यमृतानीव जनाः प्रादन् यथेष्पितम् ॥१७॥  
 नालिकररसः पानं पतसान्यशानं परम् । मरीचान्त्युपदंशश्च वन्या<sup>५</sup> वृत्तिरहो सुखम् ॥२०॥  
 सरसानि मरीचानि किमध्यास्वाद्य विकिरान् । रुचतः<sup>६</sup> प्रभुरद्राशीद् गलदश्विलोचनान् ॥२१॥  
 विदृश्य<sup>७</sup> मञ्जरीस्तीक्ष्णा मरीचानां सशक्तिम् । शिरो विद्युष्वतोऽपश्वद् प्रभुस्तस्यमर्कटान् ॥२२॥  
 वनस्पतीन् कलानामान् वीक्ष्य लोकोपकारिणः । जाताः करण्डुमाहित्स्वं<sup>८</sup> निरारेकासदाजनाः ॥२३॥  
 लताधुवतिरसन्नः प्रसाराण्डा वन्युभाः । करद्वारै<sup>९</sup> हृत्र सहस्रासन् प्रीणयन्तः फलैर्जनान् ॥२४॥  
 नालिकेरासमैर्मत्ताः<sup>१०</sup> किञ्चिद्वात्मूर्णितेक्षणाः । यशोऽप्यत्युपमन्तरुद्धरते<sup>११</sup> मिलिताङ्गुष्ठान्तः<sup>१२</sup> तद्वायामः ॥२५॥

से निकला हुआ रस सूब्र पिया था ॥१४॥ वहाँ भरतकी सेनाके लोगोंने ताढ़ वृक्षोंके बनोंमें वायुके हिलनेसे उठी हुई बहुत कठोर सूखे पत्तोंकी मर्मरध्वनि सुनी थी ॥१५॥ वहाँ सम्राट् भरतने हम लोगोंका एक ही समान कार्य होगा यही समझकर जो पानकी बेलोंके साथ-साथ परस्परमें मिल रहे थे ऐसे सुपारीके वृक्ष देखे ॥१६॥ जो पानोंकी लताओंके आथव थे तथा जो उनके साथ लिपटकर स्त्री-पुरुषके समाद जान पड़ते थे ऐसे सुपारीके वृक्षोंको बड़े गीरके साथ देखकर महाराज भरत बहुत ही प्रसन्न हुए थे ॥१७॥ उन बनोंमें सूर्यस्तके समय निवास करनेवाले जो पक्षी निरन्तर शब्द कर रहे थे और ऐसे जान पड़ते थे मानो सूर्यस्तके समय निवास करनेवाले तथा स्वाध्याय करते हुए मूनि ही हों उन्हें भरतने देखा था ॥१८॥ जो भीतर कोमल हैं तथा बाहरी त्वचापर काँटोंसे युक्त हैं ऐसे बमृतके समान मीठे कटहूलके फल सेनाके लोगोंने अपनी इच्छानुसार खाये थे ॥१९॥ वहाँ पीनेके लिए नारियलका रस, खानेके लिए कटहूलके फल और व्यजनके लिए मिरचें मिलती थीं, इस प्रकार सेनिकोंके लिए बनमें होनेवाली भोजनकी व्यवस्था भी सुखकर मालूम होती थी ॥२०॥ जो सरस अथव गीली मिरचें खाकर कुछ-कुछ शब्द कर रहे हैं और जिनकी आँखोंमें आँसू गिर रहे हैं ऐसे पक्षियोंको भी भरतने देखा था ॥२१॥ जो तरुण बानर बहुत तेज मिरचोंके गुच्छोंको निःशक्त हृपसे खाकर बादमें चरपरी लगनेसे सिर हिला रहे थे उन्हें भी महाराजने देखा ॥२२॥ उस समय वहाँ फलोंसे झुके हुए तथा लोगोंका उपकार करनेवाले वृक्षोंको देखकर लोग कल्प-वृक्षोंके अस्तित्वमें शंकारहित हो गये थे ॥२३॥ जो लताहूल स्त्रियोंसे लिए हुए हैं और अनेक फलोंसे युक्त हैं ऐसे बनके वृक्ष अपने फलोंसे सेनाके लोगोंको सत्तुष्ट करते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो भरतके लिए कर हो दे रहे हों ॥२४॥ जो नारियलकी मदिरा पीकर उन्मत हो रही हैं और इसीलिए जिनके नेत्र कुछ-कुछ घूम रहे हैं ऐसी सिंहल द्वीपकी स्त्रियाँ वहाँ गदगद

१ तालवनेषु । २ शुष्कपर्णध्वनिः । 'अद मर्मरः, स्वनिते वस्त्रपर्णनाम्' इत्यभिधानात् । ३ पर्णकमुकमेलनादेक-कार्यत्वमिति । ४ आधवभूतान् । 'स्थादुपद्मोऽर्घ्निकाश्वये' इत्यभरः । ५ विद्याय वै—ल० । ६ —स्वनम् ल० । ७ विहणन् । ८ वन रविरस्तं गतस्त्र वासिनः । ९ भक्षित्वन्तः इत्यर्थः । १० वनवायः । ११ रवं कुर्वतः । १२ भज्यत्वा । १३ निस्सन्देहः । १४ करं सिद्धाय ददतीति करदा:, कुटुम्बजना इवेत्यर्थः । 'आलस्योपहृतः पादः पादः पाषण्डमाधितः । राजानं सेवते पादः पादः कृषिमुपागतः ॥' १५ प्रचलायित । १६ गम्भीरगहरे यथा भवति तथा । गदगदभहितकमरनं कुहरशब्देनोच्यते ।

विकूटै मलयोऽसङ्गे गिरे पाण्डिकवाटके । जगुरस्य यशो मन्द्रमृष्ट्युनाः किञ्चराङ्गनाः ॥२६॥  
 मलयोपात्तकान्तारे मल्याचलवनेषु च । यतोऽवनेचरस्वाभिरुजगेऽस्य जयाजितम् ॥२७॥  
 चन्द्रोऽथानसाध्य मन्द्रं गन्धवहा वत्तौ । भलयाचलकुम्भेभ्यो हरभिरशीकरान् ॥२८॥  
 विष्वगिरिसारी दाक्षिण्यं स मुख्यानि खोडनिलः । संभावयत्तिवृत्तिविभेः ऋमगपाहरत् ॥२९॥  
 एलालवासं वस्तुभिरुचित्तमवभरमन्तर्यैः । स्तर्नरापाण्डुभिः सान्द्रचन्द्रनप्रवचित्तैः ॥३०॥  
 'सर्वलभुत्तुभिर्यात्तमित्तमवभरमन्तर्यैः । दिमतैरन्नपुण्यास्वस्तथकोद्भेदविभयैः ॥३१॥  
 कंकिलालामधुरैर्जवलितैः ( जलितैः ) सनलिस्फुर्तैः । मृदुषाहुलताल्दीलसुभगैश्च विषेषितैः ॥३२॥  
 लास्यैः इकलरपृथ्यासैसुक्तप्रवैर्विद्युष्यैः । मदमद्भुभिरुर्द्वात्तिर्विलालिकुलशित्तैः ॥३३॥  
 तमालद्वन्द्वारीपु संवरन्त्यो यद्युद्यो । मनोऽस्य जहरारुद्योधनाः केरलक्षियः ॥३४॥  
 प्रसाद्य दक्षिणामाशां॑ चिसुस्वैराज्यपालकान् । समं प्रणमयामास विजित्य जयसाधनैः ॥३५॥

बण्ठसे महाराज भरतका यश गा रही थी ॥२५॥ विकूट पर्वतपर, मलयगिरिके मध्यभाग-पर और पाण्डिकवाटक नामके पर्वतपर किञ्चर जातिकी देवियाँ गम्भीर स्वरसे चक्रवर्ती-का यश गा रही थी ॥२६॥ इसो प्रकार मलय गिरिके समीपवर्ती वनमें और सह्य पर्वतके वनोंमें भीलोंकी स्त्रियाँ विजयसे उत्पन्न हुआ महाराजका यश जोर-जोरसे गा रही थी ॥२७॥ उस समय मलय गिरिके लतागृहोंसे झरनोंके जलके छोटे-छोटे कण हरण करता हुआ तथा चन्दनके बगीचेको हिलाता हुआ वायु धीरे-धीरे वह रहा था ॥२८॥ वह वायु दक्षिण दिशा-को छोड़कर चारों ओर बह रहा था और ऐसा जान पड़ता था मानो अतिथि-सत्कारके द्वारा भरतका सम्मान करता हुआ ही उनका परिश्रम दूर कर रहा था । भावार्थ—इस श्लोकमें दाक्षिण्य शब्दके इलेष तथा अपि शब्दके सन्निधानसे नीचे लिखा हुआ विरोध प्रकट होता है—‘वह वायु यद्यपि दाक्षिण्य ( स्वामीके इच्छानुसार प्रवृत्ति करना ) भावको छोड़कर स्वच्छन्दता पूर्वक चारों ओर धूम रहा था तथापि उसने एक आजाकारी सेवककी तरह भरतका अतिथि-सत्कार कर उनका सब परिश्रम दूर कर दिया था, जो स्वामीके विरुद्ध आचरण करता है वह उसकी सेवा क्यों करेगा ? यह विरोध है परन्तु दाक्षिण्य शब्दका दक्षिण दिशा अर्थ लेनेसे वह विरोध दूर हो जाता है ( ‘दक्षिणो दक्षिणोद्भूतसरलच्छन्दवर्तिषु’ इति मेदिनी, दक्षिणस्य भावो दाक्षिण्यम्, पञ्चो दक्षिणेव दाक्षिण्यम् ) ॥२९॥ तमाल वृक्षोंके वनकी गलियोंमें इच्छानुसार इधर-उधर धूमती हुई केरल देशकी तरुण स्त्रियाँ इलायची, लौंग आदि सुगन्धित वस्तुओंके सम्बन्धसे जिनके निःश्वास सुगन्धित हो रहे हैं ऐसे मुखोंसे, जो घिसे हुए चन्दनके गाढ़ लेपसे सुशोभित हो रहे हैं ऐसे स्तनोंसे, नितम्बोंके भारसे मन्थर लीलासहित सुकोमल गमनसे, जो कामदेवके पुष्परूपी शस्त्रोंके गुच्छोंके खिलनेके समान सुशोभित हो रहे हैं ऐसे मन्द हास्यसे, कोयलकी कूकके समान मनोहर तथा अव्यक्त वाणीसे, सुकोमल बाहु-रूपी लताओंके इधर-उधर फिरानेसे सुन्दर चेष्टाओंसे, जिसमें स्खलित होते हुए पैर पड़ रहे हैं ऐसे नृत्योंसे, अधिकतर मोतियोंके बने हुए आभूषणोंसे, ऋमरसमूहकी गुंजारको जीतनेवाले मदसे मनोहर उत्कृष्ट भीतोंसे चक्रवर्ती भरतका मन हरण कर रही थी ॥३०-३४॥ इस प्रकार महाराज भगतने अपनी विजयी सेनाके द्वारा दक्षिण दिशाको यश कर चौल, केरल और पाण्डिय-

१ विकूटे म०, द० ल०, अ०, प०, स० । विकूटगिरिमलयाचलसानी । २ बनचर-ल० । ३ विसरणशोलः ।  
 ४ दक्षिणदिमभाग । आत्मकल्पन च । ५ अतिथो साधुभिः उपचारैरित्यर्थः । ६ उच्छ्रवासैः । ७ गमनैः ।  
 ८ मन्दैः । ९ जलितैः ववनैः । १० सिञ्जनैः अ०, प०, व०, स० । ११ विराज्येषु जातान् । चोरकेरल-पाण्डियान् ।

कालिङ्गोकीर्णवरस्य मलयोपान्तभायरा । ३ तुलयांज्ञरिवोन्मानमाकान्तः स्वेन वर्षणा ॥३४॥  
दिशां प्रास्तं पु लिङ्गार्थस्त्रियोऽस्तु तत्त्वान्तः १ द्विष्टुक्तं एवान्तके षोभस्त्रियोन्मानम् ॥३५॥  
ततोऽपान्तमाहार्यं सहाचलतयोपगः । पश्चिमार्णववेदान्तं पालकानजयद् विभुः ॥३६॥  
जयमाधनमस्थावयेऽपान्तारे व्यजुस्मते । महामाधनमप्युच्छैः २ पर्यापादमन् ॥३७॥  
उपग्निन्दु ३ रिति व्यक्तमुभयोर्स्वारयोबलम् । द्वृष्टस्य नाधवसामुम्यजिकामूद्राकुलाकुलः ॥४०॥  
ततः स्म अलसंओभादिती वापि प्रसर्पति । इतः स्म यलसंओमान् ततोऽधिः प्रतिसर्पति ॥४१॥  
हरित्सणिग्रभीस्त्वैस्ततमव्येक्षभौ जलम् । विशाव् विशुक्तमस्यैव ४ सक्षेष्वलमधेष्वलम् ॥४२॥  
पश्चारागांशुभिर्विश्वं एवनाव्येज्यभाजलम् । श्रीभादिवास्य ५ हच्छीर्णमुखलच्छोणितरङ्गटम् ॥४३॥  
सह्यांसद्वे ६ लुद्धविश्वन्ते दुःखं न्यवेदयन् । योऽपि संधारयन्ते अन्युकृत्यमिवातनोद् ॥४४॥  
अव्याहौवेलसंवैष्टैः सहाः ७ अव्याहिर्वितः । शाखोद्धारमिष्य ८ व्यक्तमकरोद् हरणपादपैः ॥४५॥

इन तीन राजाओंको एक साथ जीता और एक ही साथ उनसे प्रणाम कराया ॥३५॥ जो अपने शरीरसे मानो मलय पर्वतकी ऊँचाईकी ही तुलना कर रहे हैं ऐसे कलिंग देशके हाथियोंने मलय पर्वतके सभीपवतीं अन्य समस्त छोटे-छोटे पर्वतोंको व्याप्त कर लिया था ॥३६॥ दिविवजयके समय दिशाओंके अन्त भागमें विश्राम करनेवाले भरतके हाथियोंने दिग्गजपना अपने अधीन कर लिया था अर्थात् स्वयं दिग्गज बन गये थे इसलिए अन्य आठ दिग्गजोंकी कथा केवल श्रीभाके लिए ही रह गयी थी ॥३७॥ लदनन्तर पदिच्चमी भागपर आळड होकर सह्य पर्वतके किनारे के सभीप होकर जाते हुए भरतने पश्चिम समुद्रकी बेदीके अन्तकी रक्षा करनेवाले राजाओंको जीता ॥३८॥ भरतकी वह विजयी सेना समुद्रके सभीप किनारे-किनारे सब जगह फैल गयी थी और वह इतनी बड़ी थी कि उसने समुद्रका दूसरा किनारा भी व्याप्त कर लिया था ॥३९॥ उस समय हवासे लहराता हुआ उपसमुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो दोनों किनारेपर भरतकी सेना देखकर भयसे ही अत्यन्त आकुल हो रहा हो ॥४०॥ उस किनारेका उपसमुद्र सेनाके छोभसे इस किनारेकी ओर आता था और इस किनारेका उपसमुद्र सेनाके छोभसे उस किनारे-की ओर जाता था ॥४१॥ ऊपर फैली हुई हरे मणियोंकी कान्तिसे व्याप्त हुआ वह समुद्रका जल ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इस समुद्रका शेवालसहित नीचेका भाग ही बहुत समय बाद उलटकर ऊपर आ गया हो ॥४२॥ कहीं-कहींपर पश्चराग मणियोंकी किरणोंसे व्याप्त हुआ समुद्रका जल ऐसा जान पड़ता था मानो सेनाके छोभसे समुद्रका हृदय ही फट गया हो और उसीसे खूनकी छटाएं निकल रही हों ॥४३॥ सह्य पर्वतकी गोदमें लोटता हुआ ( लहराता हुआ ) वह समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो उससे अपना दुःख ही कह रहा हो और सह्यपर्वत भी उसे धारण करता हुआ ऐसा भालूम होता था मानो उसके साथ अपना बन्धुभाव ( भाई-चारा ) ही बढ़ा रहा हो ॥४४॥ सेनाके असह्य संघटनोंसे अत्यन्त पीड़ित हुआ वह सह्यपर्वत अपने टूटे हुए वृक्षोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो अपने मस्तकपर लकड़ियोंका गटा रस-

१ कलिङ्गादने जाते: । कलिङ्गवनजाता उप्रतकामाद्य । उक्तं च दण्डना देशविरोधप्रतिपादनकाले 'कलिङ्ग-वनसंभूता मूर्गप्राणा मत्तद्वाजात' इति । २ मलयदेशासभीपस्थपर्वताः । ३ गुणद्वयः— अ०, इ०, स० । ४ दिग्गजः सन्तीति कथाभेदः । ५ अपरदिवभागम् । ६ व्याप्त्य । ७ वेलान्त-इत्यपि व्याप्तिः । ८ प्रभुः ल० । ९ विजूमिभतम् ल० । १०—मत्युच्चैः द०, ल०, अ०, प०, स० । ११ अपरतीरम् । १२ अशिष्यित् । १३ उपसमुद्रः । १४ परिणतम् । विरकालप्रवतितम् । १५ हृत हृदयम् शीर्ण विदेशो सत् । १६—मुख्यस्त-ल०, द० । १७ सह्यगिरिसानो । १८ पश्चिमार्णवपर्वतः । १९ पल्लवं गृहीत्वा आकोशम् । २० भून् । 'हणं भूमे' इत्यमरः । भूगत-ल० । भूगत-द० ।

चलसत्त्वे<sup>१</sup> गुहारधैर्यिं सुज्ञाकुलं स्वनम् । <sup>२</sup> महाप्राणोऽद्विस्त्रकान्ति<sup>३</sup> मिथायेव बलक्षतः ॥४६॥  
 चलस्त्राखीं चलस्त्रदः चलचित्तियुग्मेखलः । नाभैवाचलतो भेजे सोऽद्विरेतं चलाचलः ॥४७॥  
 गजताथन् संभोगस्तुक्त्वात्त्रहनैः । सहोत्सङ्गभुवः क्षुणाः स्थलीभावं क्षणाद् ययुः ॥४८॥  
 आपश्चित्तमाणेवन्दादा च मध्यमपर्वतात् । अतुप्रवरकपदेस्तुक्त्वाग्नोपलाक्षितात् ॥४९॥  
 तं कृष्णगिरिमुलङ्घय तं च शैलं सुमन्दरम् । मुकुन्दं आदिमुद्रासा जयेभास्तस्य बभ्रमुः ॥५०॥  
 तत्रापरान्तकान् नागान् हस्तप्रीचान् परान् स्वैः । युक्तान्<sup>४</sup> पीनायतस्त्रिग्नैः इयामान्<sup>५</sup> स्वभावं स्तुतुवचः ॥५१॥  
<sup>६</sup> महोत्सङ्गानुद्ग्राहान् रक्षिष्ठोष्टतालुकान् । मानिनो दीर्घवालोषान् पश्चान्त्यमद्युतः ॥५२॥  
 संतुष्टान् रुवे वने शूरान् दृष्टपादान् सुवर्णणः । स भेजे तद्वाधीर्णीः संस्क्रमसुपाहतान्<sup>६</sup> ॥५३॥  
 वनरोमावर्णीस्तुक्तटायेहा<sup>७</sup> बहुर्नदीः । पूर्वपिराविधगः<sup>८</sup> सोऽत्यैत् सहाद्रेदुर्दितृरिव<sup>९</sup> ॥५४॥  
 संचरज्जीवणग्राहैभीमां<sup>१०</sup> भैमरथीं नदीम् । नक्षत्रकुत्तावतेदीरुवेणां च दारुणाम् ॥५५॥

कर भरतके प्रति अपनी पराजय ही स्वीकृत कर रहा हो ( पूर्व कालमें यह एक पद्धति थी कि पराजित राजा सिरपर लकड़ियोंका गद्वा रखकर गलेमें कुल्हाड़ी लटकाकर अथवा भुखमें तृण दबाकर विजयी राजाके सामने जाते थे और उससे झामा माँगते थे । ) ॥४५॥ वह पर्वत-रूपी बड़ा भारी प्राणी सेनाके द्वारा धायल हो गया था, उसके शिखर टूट-फूट गये थे, उसका सत्त्व अर्थात् धैर्य विचलित हो गया था—उसके सब सत्त्व अर्थात् प्राणी इधर-उधर भाग रहे थे, वह गुफाओंके छिद्रोंसे व्याकुल शब्द कर रहा था और इन सब लक्षणोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो बहुत शीघ्र मरना ही चाहता हो ॥४६॥ उस पर्वतके सब वृक्ष हिलने लगे थे, सब प्राणी इधर-उधर चंचल हो रहे थे—भाग रहे थे और उसके चारों ओरका मध्यभाग भी शिथिल होकर हिलने लगा था इस प्रकार वह पर्वत नाममात्रसे ही अचल रह गया था, वास्तवमें चल हो गया था ॥४७॥ लोगोंकी बनक्कीड़ाओंसे तथा घोड़ोंके खुरोंके संघटनसे उस सहृ पर्वतके ऊपरकी भूमि चूर-चूर होकर धण-भरमें स्थलपनेको प्राप्त हो गयी थी अर्थात् जमीनके समान सपाट हो गयी थी ॥४८॥ चक्रवर्ती भरतके मदोन्मत्त विजयी हाथी, पश्चिम समुद्रके किनारेसे लेकर मध्यम पर्वत तक और मध्यम पर्वतसे लेकर ऊँची-ऊँची चट्टानोंसे चिह्नित तुंगवरक पर्वत तक, कृष्ण गिरि, सुमन्दर तथा मुकुन्द नामके पर्वतको उल्लंघन कर, चारों ओर धूम रहे थे ॥४९—५०॥ जिनकी गरदन कुछ छोटी है, जो देखनेमें उल्कृष्ट हैं, मोटे लम्बे और चिकने दीतोंसे सहित हैं, काले हैं, जिनकी सब इन्द्रियाँ अच्छी हैं, चमड़ा कोमल है, पीठ चौड़ी है, शरीर ऊँचा है, जोभ, होंठ और तालु लाल हैं, जो मानी हैं, जिनकी पूँछ और होंठ लम्बे हैं, जिनसे कमलके समान गन्धवाला मद झार रहा है, जो अपने ही वनमें सन्तुष्ट हैं, शूरवीर हैं, जिनके पीर मंजूबूत हैं, शरीर अच्छा है और जिन्हें उन वनोंके स्वामी बड़े हर्षं या क्षोभके साथ भेंट देनेके लिए लाये हैं ऐसे पश्चिम दिशामें उत्पन्न होनेवाले हाथी भी भरतने प्राप्त किये थे ॥५१—५३॥ वन ही जिनकी रोमावली है और ऊँचे किनारे ही जिनके नितम्ब हैं ऐसी सहृ पर्वतकी पुश्पियोंके समान पूर्व तथा पश्चिम समुद्रकी ओर बहनेवाली अनेक नदियाँ महाराज भरतने उल्लंघन की थीं—पार की थीं ॥५४॥ चलते-फिरते हुए भयंकर भगरमच्छोंसे भयानक भीमरथी नदी, नाकुओंसे समूहसे की हुई आवतोंसे भयंकर दारुवेणा नदी, किनारे

<sup>१</sup> गुह्यरस्त्रैः ल० । <sup>२</sup> सिहादिस्त्वरूपमहाप्राणः । ‘प्राणो हनुमारुते चोले काले जीवेऽनिले बले ।’ इत्यभिधनितः । <sup>३</sup> मरणावस्थाम् ( मृतिम् ) । <sup>४</sup> जनता ल०, द० । <sup>५</sup> पश्चिमदिक्षसमीक्षान् । <sup>६</sup> कुञ्जस्त्रकन्धोक्त्वान् । <sup>७</sup> पीनायित-ल० । <sup>८</sup> सुनेत्रान् । <sup>९</sup> बृहदुपरिभागान् । <sup>१०</sup> उपायनीकृतान् । <sup>११</sup> नितम्बाः । <sup>१२</sup> क्षगात् । <sup>१३</sup> पुत्रीरिव । <sup>१४</sup> भीमरथीं ल० ।

नीरां हीरस्थवानीरैशाखा ग्रस्थगितास्मसम् । मूलों कूलं कषीरो वै स्मृलिततद्वुमासे ॥५३॥  
 ब्रह्मामविद्वा वाणीं केतु श्वामस्तुतं दृताम् । कर्त्तरितै तदोप्सङ्गां कर्त्तरीं सरिदुत्तमाम् ॥५४॥  
 प्रहरा॑ विषमग्राहै दृष्टिमासतीभिव । मुररो कुरुर॑ सेष्यामण्डङ्गो॒ सर्वाभिव ॥५५॥  
 पारो पारेजलं कृजलकं द्विकादृष्टं पै॑ मारयाम् । दृमनां समनिम्नेषु॑ समानामस्यलद्गनिम् ॥५६॥  
 मद्वृष्टि॑ मिवाप्तवेणिको॑ स्वाधृत्तिलः । गोदावरीमविच्छिन्नशब्दवहामतिविस्तृताम् ॥५७॥  
 करीस्वण॑ सरद्वत्तप्यन्तभुतलाम् । सारीमातपसंतापात् कवीष्णा विभृतीमयः ॥५८॥  
 रम्यां तीरतहृष्टायासंसुस्तमृशशाखकाम् । खालामिवापरान्तस्य॑ नदीं लाङ्गलखातिकाम् ॥५९॥  
 सरितोऽम्रः यमं सैन्यैरहत्ततार चमूरुनिः । तत्र तत्र॑ समाकर्षस्मदिनो चनयामजान् ॥६०॥  
 प्रसासितसरिज्जिज्ञां योऽधिकं पातुमिवोद्यतः । सद्गाचलं तमुलङ्घय विन्द्यादिं प्राप लद्वकम् ॥६१॥  
 भूसुतो॑ पतिमुच्छं पृथुवंशो॑ धृतायसिम्॒ । पैरेलकृदमज्ञादी॑ विन्द्यादिं स्वमिव प्रसुः ॥६२॥

पर स्थित बेतोंको शाखाओंके अग्रभागसे जिसका जल ढैंका हुआ है ऐसी नीरा नदी, किनारेको तोड़नेवाले अपने प्रवाहसे जिसने किनारेके वृक्ष उखाड़ दिये हैं ऐसी मूला नदी, जिसमें निरन्तर शब्द होता रहता है ऐसी बाणा नदी, जलसे भरी हुई केतवा नदी, जिसके किनारेके प्रदेश हाथियोंने तोड़ दिये हैं अथवा जिसके किनारेके प्रदेश करीर वृक्षोंसे व्याप्त हैं ऐसी करीरी नामकी उत्तम नदी, विषमप्राह् अर्थात् नीच भनुष्योंसे दूषित व्यभिचारिणी स्त्रीके समान विषम ग्राह अर्थात् बड़े-बड़े मगरमच्छोंसे दूषित प्रहरा नदी, सती स्त्रीके समान अपका अर्थात् कीचड़-रहित, (पक्षमें-कलंकरहित) तथा कुरर पक्षियोंके द्वारा सेवा करने योग्य मुररा नदी, जिसके जलके किनारेपर क्रीच, कलहंस (वदक) और सारस पक्षी शब्द कर रहे हैं ऐसी पारा नदी, जो समान तथा नीची भूमिपर एक समान जलसे भरी रहती है तथा जिसकी गति कहीं भी स्थलित नहीं होती है ऐसी मदना नदी, जो सहृ पर्वतरूपी हाथीके बहते हुए मदके समान जान पड़ती है, जो अनेक धाराएँ बांधकर बहती है, जिसका प्रवाह बीचमें कहीं नहीं टूटता, और जो अत्यन्त चौड़ी है ऐसी गोदावरी नदी, जिसके किनारेके समोपकी भूमि करीर वृक्षोंके बनोंसे भरी हुई है और जो धूपकी गरमीसे कुछ-कुछ गरम जलको धारण करती है ऐसी तापी नदी, तथा जिसके किनारेके वृक्षोंकी छायामें हरिणोंके बच्चे सो रहे हैं और जो पश्चिम देशकी परिखाके समान जान पड़ती है ऐसी मनोहर लंगलखातिका नदी, इत्यादि अनेक नदियों-को सेनापतिने अपनी सेनाके साथ-साथ पार किया था। उस समय वह सेनापति मदोन्मत्त जंगली हाथियोंको भी पकड़वाता जाता था ॥५५-६३॥ जो अपनी नदियोंरूपी जीभोंको फैलाकर मानो समुद्रको पीनेके लिए ही उच्चत हुआ है ऐसे उस सहृ पर्वतको उल्लंघन कर भरतकी सेना विन्ध्याचलपर पहुँची ॥६४॥ चक्रवर्ती भरतने उस विन्ध्याचलको अपने समान ही देखा था क्योंकि जिस प्रकार आप भूभूत अर्थात् राजाओंके पति थे उसी प्रकार विन्ध्याचल भी भूभूत अर्थात् पर्वतोंका पति था, जिस प्रकार आप उत्तुग अर्थात् अत्यन्त उदार हृदय थे उसी प्रकार वह विन्ध्याचल भी उत्तुग अर्थात् अत्यन्त ऊँचा

१ वेतस् । २ प्रवाहैः । ३ अविच्छिद्यनिदयग्नाणम् । अविरतः आवाणो यस्या सा । ४ केतवा ल० । ५ गज्ज्वेरित ।  
६ विषममकरैः, पष्ठो नीचप्रहणैः । ७ पश्चिमिश्रैः । ८ अपगतकर्दमाम् । पष्ठो अपगतदोषफङ्काम् ।  
९ तीरजले । १० कलहंस । ११ मदनां ल०, द० । १२ समानप्रदेशोषु । निष्ठदेशोषु च । १३ अलेन समानाम् ।  
१४ मदमवणम् । १५ प्रवाहाम् । कुल्याम् वा । १६ वेणुबन । १७ जातिकाम् । १८ पश्चिमदेशस्य ।  
१९ ह्वीकुर्वन् । २० राजां गिरीणां च । २१ महास्वर्यं महावेणुं च । २२ षृतधनागमम् । धूतायाम् च । 'आयति-  
र्थितायां स्पात प्रभूतागामिकालयोः ।'

भानि यः गिर्वरस्तुक्षेत्रं रव्या यतनिर्जनैः । सपताकैविभानौ वैविभिन्नमायेव संश्लिष्टः ॥६६॥  
 यः पूर्वापरकोटिभ्यः विशाखाम्बुनिधि हिष्पतः । नूनै दावत्रयात् सख्यै ममुना प्रचिकीर्यति ॥६७॥  
 नयन्ति विश्वेरा यस्य शश्वत्सुष्टि तद्वामान् । स्वपादाश्रयिणः पोश्याः प्रभुणेतीत्र शस्तिम् ॥६८॥  
 तद्वस्थपुटं पाषाणगस्त्रलितो लक्षिताम्भसः । नदीवधूः कुलश्वानं निर्जरहस्तीष्य यः ॥६९॥  
 वृत्ताभ्योगमपर्यन्तं यस्य दर्शुमिवान्नमः । सूर्युपाताय दावाग्निः शिखराण्यधिरोहति ॥७०॥  
 उच्चलहात्रपरीतानि यस्कुडानि वनेच्चैः । वामीकरमयानीय लक्ष्यत्वे युचिं सज्जिधी ॥७१॥  
 समातहैं वनं यस्य समुज्ज्ञपरिहम् । विजाति कण्ठकाकीर्णं क्वचिद्दृच्छेऽतिकष्टाम् ॥७२॥  
 अर्णवं कुञ्जरव्यंगेऽपि कविदशीत्वकुञ्जरम् ॥७३॥ विषत्रमविं सत्पत्रपल्लवं भाति यद्वनम् ॥७३॥

या, जिस प्रकार आप पृथुवंश अर्थात् विस्तृत-उत्कृष्ट वंश ( कुल ) को धारण करनेवाले थे उसी प्रकार वह विन्द्याचल भी पृथुवंश अर्थात् बड़े-बड़े बाँसके वृक्षोंको धारण करनेवाला था, जिस प्रकार आप धृतायति अर्थात् उत्कृष्ट भविष्यको धारण करनेवाले थे उसी प्रकार वह विन्द्याचल भी धृतायति अर्थात् लम्बाईको धारण करनेवाला था, और जिस प्रकार आप दूसरोंके द्वारा अलंध्य अर्थात् अजेय थे उसी प्रकार वह विन्द्याचल भी दूसरोंके द्वारा अलंध्य अर्थात् उल्लंघन न करने पोग्य था ॥६५॥ जिनसे बहुत दूर तक फैलनेवाले झरने झर रहे हैं ऐसे ऊने-ऊने शिख में वह पर्वत ऐसा मृशोभित हो रहा था मानो पताकाओंसहित अनेक विमानोंके समूह ही विध्राम करनेके लिए उसपर छहरे हों ॥६६॥ वह पर्वत अपने पूर्व और पश्चिम दिशाके दोनों कोणोंसे समुद्रमें प्रवेश कर खड़ा हुआ था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो दावानलके डरमें समुद्रके साथ चिरंक्रीत हो करना चाहती है ॥६७॥ उसे विन्द्याचलके झरने 'स्वाभीको अपने बरणोंको आधय लेनेवाले पुरुषोंका अवय्य ही पालन करना चाहिए' मानो यह सूचित करनेके लिए ही अपने किनारेके वृक्षोंका सदा पालन-पोषण करते रहते थे ॥६८॥ वह पर्वत शब्द करते हुए निर्जनोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो अपने किनारेके ऊने-नीचे पत्थरोंसे सखलित होकर जिनका पानी ऊपरकी ओर उठल रहा है ऐसी नदीरुपी स्त्रियोंकी हँसी ही कर रहा हो ॥६९॥ उस पर्वतके शिखरोंपर लगा हुआ दावानल ऐसा जान पड़ता था मानो उसके शोमारहित बहुत बड़े बनप्रदेशको जलानेके लिए असमर्थ हो ऊपरसे गिरकर आत्म-भात करनेके लिए ही उसके शिखरोंपर चढ़ रहा हो ॥७०॥ आषाढ़ महीनेके शमीप जलते हुए दावानलसे घिरे हुए उस पर्वतके शिखर वहाँके भीलोंको मुक्त्यसे बने हुएके समान दिखाई देते थे ॥७१॥ उस पर्वतका वन कहीं-कहीं मातंग अर्थात् हाथियोंसे सहित था अथवा मातंग अर्थात् चाण्डालोंसे सहित था, भुजंग अर्थात् सपेक्षि परिवारसे युक्त था अथवा भुजंग अर्थात् नीच ( विट-गुण्डे ) लोगोंके परिवारसे युक्त था और अनेक प्रकारके कौटोंसे भरा हुआ था अथवा अनेक प्रकारके उपद्रवी लोगोंसे भरा हुआ था इसलिए वह बहुत ही दुखदायी अथवा शोचनीय अवस्थाको धारण कर रहा था ॥७२॥ उस पर्वतपर-का वन क्षीबकुंजर अर्थात् मदोन्मत्त हाथियोंसे युक्त होकर भी अक्षीबकुंजर अर्थात् मदोन्मत्त हाथियोंसे रहित था, और विषत्र अर्थात् गत्तोंसे रहित होकर भी सत्पत्रपल्लव अर्थात् पत्तों तथा कौपलोंसे सहित

१ इव । २ मिश्वम् । ३ समुद्रेण । ४ कर्तुमिच्छति । ५ तदनिमोषत । ६ प्रपातपत्तनाय । 'प्रपातस्त्वतदो भृगुः' इत्यभिधानात् । ७ श्रीम । ८ सागरं पक्षे सवाण्डालम् । ९ सपर्ण, पक्षे सविद् । १० पश्चिमाति, पक्षे नीच जानि । ११ मत्तगज । १२ अक्षीबं समुद्रलवणम् 'सामुद्रं यतु लवणमक्षीबं विशिरङ्गच तत्' । कुञ्जो गुलमगुदान्ती रानीति ददातीति । १३ वीतां पत्राणि पक्षा पद्मिन् सत्तीति, अथवा विगताङ्गम् ।

स्फुटदेणूहोन्मुक्तैर्यस्तैसुक्षापलैः कवित् । बनलक्ष्मीव स्फुटदृष्टांशु<sup>१</sup> यद्वने ॥७४॥

गुहासुखस्फुरद्वारनिर्शरप्रतिशब्दकैः । गर्जतीव हृतस्पर्धो महिला यः कुलाचलैः ॥७५॥

<sup>२</sup> 'स्फुटक्षिक्षोज्ञातोदैश्चित्रवर्णं धानुभिः<sup>३</sup>' । मृगहर्षतवर्णं चित्राकारं विभर्ति यः ॥७६॥

ज्वलन्तयोशधयो यस्य बनाम्बेषु तमीमुखे । देवताभिरिदोपित्राऽ<sup>४</sup> दीपिकास्त्रिमिरचिद् ॥७७॥

कवित्स्मृगेमद्विशेषकुम्भोष्ठलिलमैकिकैः<sup>५</sup>' । भद्रुपान्तस्थलं घर्ते प्रकीर्णकुम्भियम्<sup>६</sup> ॥७८॥

स लमालोकथन् नूरादाससाद महागिरिम् । आहृष्टन्तमिदाससहै मरुदृतैस्ताद्युमेः ॥७९॥

स तद्वत्गतान् दूरादपशाद् अस्तुरुराज् ॥८०॥ अस्तुरुरुक्षुद्वृक्षिलताद्युक्तिलोकिति च ॥८०॥

<sup>७</sup> सरिद्वधूस्तदुख्यं<sup>८</sup> विवृत्तशक्तीक्षणाः । तडलभा इवापद्यते स्फुरद्विरुतमन्मनाः ॥८१॥

था इस प्रकार विरोधरूप होकर भी सुशोभित हो रहा था । भावार्थ – इस श्लोकमें विरोध-भास अलंकार है, विरोध ऊपर दिखाया जा चुका है अब उसका परिहार देखिए – वहाँका वन क्षीबकुंजर अथात् मदोन्मत्त हाथियोंसे युक्त होनेपर भी अक्षीबकुंजर अर्थात् समुद्री नमक तथा हाथीदाँतोंको देनेवाला था अथवा सहजनों के लतामण्डपोंको प्रदान करनेवाला था और विषन्त्र अर्थात् पक्षियोंके पंखोंसे सहित होकर भी उत्तम पत्तों तथा नवीन कोंपलोंसे सहित था (अक्षीबं च कुञ्जश्चेत्यक्षीबकुञ्जौ, तौ राति ददातीत्यक्षीबकुञ्जरम् अथवा 'अक्षीबाणां शोभाऽजनानां कुञ्जं लतागृहं राति ददाति', 'सामुद्रं यत् लवणमक्षीबं वशिरं च तत्' 'कुञ्जौ दन्तेऽपि त शिव्याम्' 'शोभाऽजने शिश्रुतीक्षणगन्धकाक्षीबमोचकाः इति सर्वद्रामरः) ॥७३॥ उस पर्वतके बनमें कहीं-कहींपर फटे हुए बाँसोंके भीतरसे निकल-कर चारों ओर फैले हुए मोतियोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो बनलक्ष्मियाँ ही दाँतोंकी किरणें फैलाती हुई हैंस रही हों ॥७४॥ गुफाओंके द्वारोंमें निकलती हुई झरनोंकी गम्भीर प्रतिष्ठनियों-से वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो अपनी महिमाके कारण कुलाचलोंके साथ स्पर्धा करता हुआ गरज ही रहा हो ॥७५॥ वह पर्वत ऊंचे नोचे प्रदेशोंसे, अनेक रंगकी धातुओंसे और हरिणोंके अचिन्तनीय बणोंसे प्रकट रूप ही एक विचित्र प्रकारका आकार धारण कर रहा था ॥७६॥ उस पर्वतके बनोंमें रात्रि प्रारम्भ होनेके समय अनेक प्रकारकी औषधियाँ प्रकाश-मान होने लगती थीं जो कि ऐसी जान पड़ती थीं मानो देवनाओंने अन्धकारको नष्ट करनेवाले दीपक ही जलाकर लटका दिये हों ॥७७॥ कहीं-कहींपर उस पर्वतके समीपका प्रदेश, सिंहोंके द्वारा फाड़े हुए हाथियोंके मस्तकोंसे उछलकर पड़े हुए मोतियोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो बिल्कुरे हुए फूलोंकी शोभा ही धारण कर रहा हो ॥७८॥ जो बायुसे हिलते हुए किनारेके वृक्षों-से बुलाता हुआ-सा जान पड़ता था ऐसे अपनेमें आसक्त उस महापर्वतको दूरसे ही देखते हुए चक्रवर्ती भरत उसपर जा पहुँचे ॥७९॥ वहाँ जाकर उन्होंने उस पर्वतके बनोंमें रहनेवाले झुण्डके सुण्ड भील और हाथी देखे । वे भील मेघोंके समान काले थे और धनुषोंके बाँसोंको ऊँचा उठाकर कन्धोंपर रखे हुए थे तथा हाथी भी मेघोंके समान काले थे और धनुषके समान ऊँची उठी हुई पीठकी हड्डीको धारण किये हुए थे ॥८०॥ उस पर्वतके किनारेपर उन्होंने चंचल मछलियाँ हो जिनके नेत्र हैं और बोलते हुए पक्षियोंके शब्द ही जिनके मनोहर शब्द हैं ऐसी उस विन्ध्याचलकी प्यारी स्त्रियोंके समान नदीरुपी स्त्रियोंको बड़ी ही उल्कण्ठाके साथ

<sup>१</sup> स्फुरदृष्टांशु-ल० । २ व्यक्त । ३ गैरिकादिमि । ४ उद्वृताः । ५ - च्छवलत-ल०, द० । ६ पुष्पोपहार-शोभाम् । ७ अनवरतम् । ८ सप्तमूहान् । ९ उद्गतधनुषो वेणून् । उद्गतधनुराकारपृष्ठस्थानम् । १० पर्वतसामी । ११ विहगघ्वनिरवायक्तवाचो यासां ताः । —मुम्पनाः ल०, द० ।

मध्येविन्ध्यमथैक्षिष्ठै नर्मदा सरिवुत्तमाम् । प्रततामिव तत्कीर्तिमासमुद्रमपारिकाम् ॥८२॥  
 तरङ्गितपयोवेगां भुवो<sup>१</sup> वेणीमिवायताम् । पताकानिक विन्ध्याद्रे: शेषादिजयशसिनीम् ॥८३॥  
 सा भुनी वलसंक्षेपादुडीभिहगावलिः । विभोहपारामे वद्वतोरणेष्व अर्ण अवभाव् ॥८४॥  
 नर्मदा<sup>२</sup> सत्यमेवातीजर्मदा चृपयोचिताम् । यदुपोहत्तरन्तीस्ताः शकरीभिरघट्यत् ॥८५॥  
 तासुतीर्य जनक्षोमादुत्पलपलगावलिम्<sup>३</sup> । वलं विन्ध्योत्तरप्रस्थासाकामत् कुतुषाहयता<sup>४</sup> ॥८६॥  
 तस्यां दक्षिणतोऽपह्यत् विन्ध्यमुक्तरतोऽप्यसौ । द्विधाकृतमिवामानमपर्यन्तं दिशोद्देशोः ॥८७॥  
 स्कन्धावारमिवेषोऽस्य नर्मदामभितोऽशुतत् । प्रथिम्ना<sup>५</sup> विन्ध्यमावेष्य स्थितो विन्ध्य इवापरः ॥८८॥  
 गजैर्गण्डोपलैरसैरक्षवक्षैश्च<sup>६</sup> विन्धुतैः । स्कन्धावारः स विन्ध्यइव मिदां<sup>७</sup> नावापतुर्मिथः ॥८९॥

बलोपभुक्तमिःशेषफलपलुवपादपः । अप्रसूतलतावीहद्विन्ध्यो वन्ध्यस्तदामतत् ॥९०॥  
 वैणवैस्तपदुलैसुर्काफलमिश्रैः कुतार्चनाः । अध्यपुः<sup>८</sup> सैनिकाः स्वैर रथ्या विन्ध्याच्छलस्थर्ली<sup>९</sup> ॥९१॥  
 देखा ॥८१॥ तदनन्तर उन्होंने विन्ध्याचलके मध्य भागमें समुद्र तक फैली हुई और किसी-  
 से न रुकनेवाली उसकी कीर्तिके समान नर्मदा नामकी उत्तम नदी देखी ॥८२॥ जिसके जल-  
 का प्रवाह अनेक लहरोंसे भरा हुआ है ऐसी वह नर्मदा नदी पृथिवीरूपी स्त्रीकी लम्बी छोटी-  
 के समान जान पड़ती थी अथवा शेष सब पर्वतोंको जीत लेनेकी सूचना करनेवाली विन्ध्याचल-  
 की विजय-पताकाके समान मालूम होती थी ॥८३॥ सेनाके क्षोभसे जिसके ऊपर पक्षियोंकी  
 पक्षियां उड़ रही हैं ऐसी वह नदी अण-भरके लिए ऐसी जान पड़ती थी मानो उसने चक्रवर्ती-  
 के आनेपर तोरण ही बांधे हों ॥८४॥ चूंकि वह नर्मदा नदी जलको पार करनेवाली रानियोंके  
 लिए उनकी जांधोंके पास मछलियोंके द्वारा घक्का देती थी इसलिए वह सचमुच ही उन्हें नर्मदा  
 अर्थात् क्रीड़ा प्रदान करनेवाली हुई थी ॥८५॥ मनुष्योंके क्षोभसे जिसके पक्षियोंकी पक्षित ऊपर-  
 को उड़ रही है ऐसी उस नर्मदा नदीको पार कर उस सेनाने देहली समझकर विन्ध्याचलके उत्तर-  
 की ओर आक्रमण किया ॥८६॥ वही भरतने दक्षिण और उत्तर दोनों ही ओर विन्ध्याचलको  
 देखा, उस समय दोनों ओर दिखाई देनेवाला वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो अपने दो  
 भाग कर दोनों दिवाओंको ही अर्पण कर रहा हो ॥८७॥ भरतकी सेनाका पड़ाव नर्मदा नदी-  
 के दोनों किनारोंपर था और वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अपने विस्तारसे विन्ध्याचल-  
 को धेरकर कोई दूसरा विन्ध्याचल ही ठहरा हो ॥८८॥ उस समय सेनाका पड़ाव और विन्ध्या-  
 चल दोनों ही परस्परमें किसी भेद ( विशेषता ) को प्राप्त नहीं हो रहे थे क्योंकि जिस प्रकार  
 सेनाके पड़ावमें हाथी थे उसी प्रकार विन्ध्याचलमें भी हाथियोंके समान ही गण्डोपल अर्थात्  
 बड़ी-बड़ी काली चट्टानें थीं और सेनाके पड़ावमें जिस प्रकार अनेक धोड़े इधर-उधर फिर रहे  
 थे उसी प्रकार उस विन्ध्याचलमें भी अनेक अश्ववक्ष अर्थात् धोड़ोंके मुखके समान मुखवाले  
 किन्नर जालिके देव इधर-उधर फिर रहे थे ( कवि-सम्बद्धायमें किन्नरोंके मुखोंका वर्णन धोड़ोंके  
 मुखोंके समान किया जाता है ) ॥८९॥ सेनाने उस विन्ध्याचलके समस्त फल, पत्ते और  
 कूबोंका उपभोग कर लिया था और लताओं तथा छोटे-छोटे पौधोंकी पुष्परहित कर दिया था  
 इसलिए वह विन्ध्याचल उस समय विन्ध्याचल अर्थात् फल-पुष्प आदिसे रहित हो गया था ॥९०॥  
 मोतियोंसे मिले हुए बीसी चावलोंसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते हुए सैनिक लोगोंने वही इच्छा-

<sup>१</sup> -मवैक्षिष्ठ अ०, स०, इ० । <sup>२</sup> प्रवेणीम् । <sup>३</sup> नर्म ऋडा तां ददातीति नर्मदा । <sup>४</sup> ऊरसमीपे । यद्यो  
 हप्तसरन्ती-ल० । <sup>५</sup> पक्षी । <sup>६</sup> देहलीति बुद्धया । <sup>७</sup> नर्मदायाः । <sup>८</sup> दक्षिणस्यां दिशि स्थितः । <sup>९</sup> उत्तरस्या  
 दिशि स्थितम् । <sup>१०</sup> विन्ध्याचलम् नर्मदाविन्ध्याचलमध्ये विभिन्न द्विधाकृत्य गतेति भावः । <sup>११</sup> पृष्ठुक्षेत्र ।  
<sup>१२</sup> गण्डवोलः । <sup>१३</sup> किन्नरैः । <sup>१४</sup> भेदम् । <sup>१५</sup> निवसन्ति हम् । <sup>१६</sup> -स्थितिः ल० ।

कुतावासं च तत्रैनं दद्युस्तद्वाग्निः । वर्ष्यैरुपायनैः इडाश्चैरस्यादैश्च महीषधैः ॥६२॥  
 उपनिन्द्युः करोन्द्राणां दत्तानस्मै समान्किकान् । किरातवर्षा<sup>१</sup> वर्षा हि स्वोचिता सरिक्षया प्रभा<sup>२</sup> ॥६३॥  
 पश्चिमायैनैः विन्ध्यादिसुलह्योत्तीर्यं नर्मदाम् । चिजेतुमपरामाशां प्रतहये चक्षिणो बलम् ॥६४॥  
 गवा किंचिदुद्गम्भूयः प्रतीर्ची<sup>३</sup> दिशमानशे । प्राक् प्रतापोऽस्य दुर्वारः सचकं चरम्<sup>४</sup> बलम् ॥६५॥  
 तदा प्रचलदश्वीवखुरोदूर्ते<sup>५</sup> महीरजः । न केवलं द्विषां तेजो रुद्धो धुमणेरपि ॥६६॥  
 लाटा ललाट<sup>६</sup> संवृष्टभूष्ठाइचादुभागिणः । लालाटिकपद<sup>७</sup> भेषुः प्रभोराशावशीकृताः ॥६७॥  
 केचित्स्मीराधिकैर्नगैः परे<sup>८</sup> पाञ्चनैर्गैर्जैः । सं तद्रानाग्निपा व्रीक्षांचक्षिरे चक्षालिताः ॥६८॥  
 चक्षसंदर्शनादेव अस्ता मिर्मण्डलप्रहाः<sup>९</sup> । महा<sup>१०</sup> इव नृपाः केचिन् चक्षिणो बशमाययुः ॥६९॥  
 दिशानिष्ठ<sup>११</sup> ग्रिष्मन् क्षमापान्तृष्टुवंशामदोद्धुरान् । प्रथके<sup>१२</sup> प्रगुणांशक्ती बलादाकम्य विष्पतीन् ॥७०॥  
 नृपान् सौराश्वकानुधृत्वामीशतभूतोपदान् ।<sup>१३</sup> समायन् पभुभेने रस्या रैवतकस्थलीः<sup>१४</sup> ॥७१॥

नुसार निवास किया था सो ठीक ही है क्योंकि विन्ध्याचलपर रहना बहुत ही समीय होता है ॥७१॥ विन्ध्याचलके बनोके राजाओंने बनोमें उत्पन्न हुई, रोग दूर करनेवाली और प्रशंसनीय बड़ी-बड़ी ओषधियाँ भेट कर बहापर निवास करनेवाले राजा भरतके दर्शन किये ॥७२॥ भोलोके राजाओंने बड़े-बड़े हाथियोंके दांत और भोती महाराज भरतकी भेट, किये सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीका सत्कार अपनी योग्यताके अनुसार ही करना चाहिए ॥७३॥ विन्ध्याचलको पश्चिमी किनारेके अन्तभागसे उल्लंघन कर और नर्मदा नदीको पार कर चक्रवर्ती-की सेनाने पश्चिम दिशाको जीतनेके लिए प्रस्थान किया ॥७४॥ वह सेना पहले तो कुछ उत्तर दिशाकी ओर बढ़ी और फिर पश्चिम दिशामें व्याप्त हो गयी । सेनामें सबसे आगे महाराज भरतका दुनिवार प्रताप जा रहा था और उसके पीछे-पीछे चक्रसहित सेना जा रही थी ॥७५॥ उस समय वेगसे चलते हुए घोड़ोंके समूहके सूरसे उड़ी हुई पृथिवीको धूलिने केवल शत्रुओंके ही तेजको नहीं रोका था किन्तु सूर्यका तेज भी रोक लिया था ॥७६॥ जिन्होंने अपने ललाटसे पृथिवीतलको विसा है और जो मधुर भाषण कर रहे हैं ऐसे भरतकी आज्ञासे वश किये हुए लाट देशके राजा उनके लालाटिक पदको प्राप्त हुए थे । ( ललाट पश्यति लालाटिकः—स्वामी क्या आज्ञा देते हैं ? यह जाननेके लिए जो सदा स्वामीके मुखकी ओर ताका करते हैं उन्हें लालाटिक कहते हैं । ) ॥७७॥ चक्र रत्नसे विचलित हुए कितने ही बनके राजाओंने सोरठ देशमें उत्पन्न हुए और कितने ही राजाओंने पंजाबमें उत्पन्न हुए हाथी भेट देकर भरतके दर्शन किये ॥७८॥ जो चक्रके देखनेसे ही भयभीत हो गये हैं और जिन्होंने अपने देशका अभिमान छोड़ दिया है ऐसे कितने ही राजा लोग सूर्य चन्द्र आदि ग्रहोंके समान चक्रवर्तीके वश हो गये थे । भावार्थ—जिस प्रकार समस्त ग्रह भरतके वशीभूत थे—अनुकूल थे उसी प्रकार उस दिशाके समस्त राजा भी उनके वशीभूत हो गये थे ॥७९॥ चक्रवर्ती भरतने दिग्गजोंके समान पृथुवंश अर्थात् उक्तुष्ट वंशमें उत्पन्न हुए ( पक्षमें-पीठपर-की चौड़ी रीढ़से सहित ) और मदो-द्वार अर्थात् अभिमानी ( पक्षमें-मदजलसे उल्कट ) राजाओंको जबरदस्ती आक्रमण कर अपने वश किया था ॥८०॥ सेकड़ों ऊँट और घोड़ियोंकी भेट लेकर आये हुए सोरठ देशके राजाओंसे

१ व्याधिधातर्कः । २ उपनिनीकृत्य नयन्ति स्म । उपनिन्द्युः थ०, इ०, प०, स०, द० । ३ श्रेष्ठः । ४ वर्षा  
 ल० । ५ विमी स०, थ० । ६ पश्चिमान्तेन ल०, द० । ७ उत्तरदिशम् । ८ पश्चिमाम् । ९ पश्चात् ।  
 १० खुरोद्भूतमहीरजः ल० । ११ संदष्ट-इ०, प०, द० । १२ विशिष्टभूत्यपदम् । 'लालाटिकः प्रभोभविदर्शी  
 नार्यक्षमश्च यः' इत्यभिधानात् । १३ पञ्चवनदीपु जातीः । १४ देशप्रहणरहिताः । १५ आदितप्रहाः ।  
 १६ दिशि भवान् । १७ प्रगतान् । १८ उद्याश्वसमूर्ध्योपदान् । १९ तोषवन् । २० ऊर्जयस्तदिरस्तलीः ।

सुरभ्येवं यन्ता हि मद्रिराजमिवाभिष्ठतम् । यथा प्रदक्षिणीकृत्य भावितीर्थमनुस्मरन् ॥१०२॥  
 क्षमांशुकुकुलैश्च चीनपट्टामवैरपि । पटीभैरवै देशेषां ददशु रत्नमुपायनैः ॥१०३॥  
 काँडिक्षत् संमानदानात्म्यां काँडिक्षाहै लभ्ममावितैः । प्रसन्नैर्द्वाक्षितैः कांडिद् भूषान्विभुरभयते ॥१०४॥  
 गजप्रवैकजां यद्यै रन्नरपि पृथगिवर्धैः । तमान्तर्मुखोपास्तुष्टाः स्त्रशाखोपगतं प्रसुम् ॥१०५॥  
 तरणिवभिर्तुमेष्वावयः स्त्रशगुणान्वितैः । तुरंगमेस्त्राकां शौचं भूमारापत्रत् परे ॥१०६॥  
 केचिं काँडबोजवाहुकैतिलारहैर्वर्धतैः । वानायुकैः यगान्वारकापैर्य रपि वाजामैः ॥१०७॥  
 कुलोभकुलसंभौतेनानिदिग्देशाचारिभिः । आजानेयैः समग्राङ्गैः प्रसुमैक्षन्त पाशिकाः ॥१०८॥  
 प्रतिप्रयाणमिन्यस्थ रत्नलाभौ न केवलम् । यशोलोभद्रै दुःसाध्यान् बलान् साधयतो नृपान् ॥१०९॥  
 जलस्थलपयान् विवगाहस्य जग्यमाध्यनैः । प्रस्त्रमतपालमूपलानजयस्तच्चमूपतिः ॥११०॥  
 विलङ्घ्य विविधान् देशान्तर्यामीः सरिद्विर्गीन् । तद तत्र विभोराजांसेनानीराइवत्तुशुष्टुत् ॥१११॥  
 प्रात्यानिव स भूपालान् प्रसीच्यानप्यनुकमान् । श्रावयन् द्वृततन्मानधनः प्रापापरामुचिद् ॥११२॥

सेवा करते हुए अथवा उससे प्रीतिपूर्वक साक्षात्कार ( मुलाकात ) करते हुए चक्रवर्ती भरत गिरनार पर्वतके मनोहर प्रदेशोंमें जा पहुँचे ॥१०१॥ भविष्यत् कालमें होनेवाले तीर्थ कर नेमिमाथका स्मरण करते हुए वे चक्रवर्ती सोरठ देशमें सुसिंह पर्वतके समान ऊंचे गिरनार पर्वतकी प्रदक्षिणा कर आगे बढ़े ॥१०२॥ उन-उन देशोंके राजाओंने उत्तम-उत्तम रेशमी वस्त्र, चावना सिल्क तथा और भी अनेक प्रकारके अच्छे-अच्छे वस्त्र भैंट देकर महाराज भरतके दर्शन किये ॥१०३॥ भरतने कितने ही राजाओंको सन्मान तथा दानसे, कितने ही राजाओंको विश्वास तथा श्नेहपूर्ण वातनीतसे और कितने ही राजाओंको प्रसन्नतापूर्ण दृष्टिसे अनुरक्त किया था ॥१०४॥ कितने ही राजाओंने सन्तुष्ट होकर उत्तम हाथी, कुलीन घोड़े और अनेक प्रकारके रत्नोंसे अपने देशमें आये हुए महाराज भरतको पूजा की थी—॥१०५॥ अन्य कितने ही राजाओंने वेगसे चलनेवाले, तथा शरीर, वृद्धि, अवस्था और बल आदि गुणोंसे सहित तुरुषक आदि देशोंमें उत्पन्न हुए घोड़ोंके द्वारा भरतकी सेवा की ॥१०६॥ कितने ही राजाओंने उसी देशके घोड़े-घोड़ियोंसे उत्पन्न हुए, तथा एक देशके घोड़े और अन्य देशकी घोड़ियोंसे उत्पन्न हुए, नाना दिशाओं और देशोंमें संचार करनेवाले, कुलीन और पूर्ण अंगोपांग धारण करनेवाले, काम्बोज, वाल्हीक, तैतिल, आरटू, सन्धव, वानायुज, गान्धार और वापि देशमें उत्पन्न हुए घोड़े भैंट कर महाराजके दर्शन किये थे ॥१०७-१०८॥ इस प्रकार भरत-को प्रत्येक पड़ावपर केवल रत्नोंकी ही प्राप्ति नहीं हुई थी किन्तु अपने पराक्रमसे बड़े-बड़े दुःसाध्य (कठिनाइयोंसे जीसे जाने योग्य) राजाओंको जीत लेनेसे यशकी भी प्राप्ति हुई थी ॥१०९॥ भरतके सेनापतिने अपनी विजयो मेनाओंके द्वारा चारों ओरसे जल तथा स्थलके मार्ग रोककर पहाड़ी राजाओंको जीता ॥११०॥ सेनापतिने अनेक प्रकारके देश, बड़े-बड़े जंगल, नदिर्वां और पर्वत उल्लंघन कर सब जगह शीघ्र ही सम्राट् भरतकी आशा स्थापित की ॥१११॥ इस प्रकार चक्रवर्ती क्रम-क्रमसे पूर्व दिशाके राजाओंके समान पश्चिम दिशाके राजाओंको भी वश करता हुआ तथा उसके अभिधान और धनका हरण करता हुआ पश्चिम समुद्रकी ओर

१ सूक्ष्मस्त्रद्वयं पटी । २ स्नेह । ३ श्रेष्ठः । ४ नानाविधिः । ५ तुष्टकदेशजात्यार्थः । ६ तैतिल-आरटू-सिन्धुदेशजैः । ७ वानायुदेशों जातैः । ८ वापिदेशभवैः, पार्श्वेण्यः द०, वाणये ल० । ९ कुलीनैः । 'आजानेयाः कुलीनाः स्युः' इत्यभिवानात्, जात्यवैरित्यर्थः । १० प्रभो— ल० । ११ श्रावयति स्म ।

‘वेलासरिकरान्वाहिरतिवृर् प्रसारयन् । नूने<sup>१</sup> प्रत्यग्गहीश्च नानारकार्षमुद्भवत् ॥ ११३ ॥  
 शूर्पेन्मेयानि॒ रक्षानि॒ घार्षेत्थप्रश्ना॑ विनी॑ । आनयात्रमहामनिरुम्मेयान्यथा॒ तानि॒ यत् ॥ ११४ ॥  
 नाम्नैव॒ लवणाम्भोधिरित्युदन्वान्॒ लभुकृतः॑ । रक्षाकरोऽथमित्युच्चैर्द्धु॑ मने॒ तदा॒ नृपैः॑ ॥ ११५ ॥  
 पतन्त्यथ॒ पतन्नैश्च॑ नेजसा॑ यानि॒ मन्त्रताम् । दिर्दीपं॒ लत्र॑ तेजोऽह्य॑ प्रतीच्याँ॑ अयतो॒ नृपान् ॥ ११६ ॥  
 धारयंश्चक्रत्वस्थ॑ पारयः॑ संगरंदधेऽ॑ । द्रिष्ण॑ मुदे॑ जयस्तीवं॑ स लिङ्मांशुरिवाच्युतन् ॥ ११७ ॥  
 अनुवादिं॑ तटं॑ गच्छ॑ लिङ्मुद्धरे॑ न्यज्ञेवलग्नान् । लक्ष्मीलक्ष्मीम्॑ लक्ष्मीलक्ष्मीम्॑ लक्ष्मीलक्ष्मीम्॑ ॥ ११८ ॥  
 यिन्धोस्तटत्वते॑ रम्य॑ न्यविक्षकास्य॑ सैनिकाः । चमुकिरदृम्भोगनिकुञ्जीभूतपादपैः॑ ॥ ११९ ॥  
 लक्ष्माधिवासितानीङ्गः॑ युरश्वरणकर्मवित्॑ । युरोधा॑ धर्मचक्रेशान्॑ प्रपूज्य॑ विधिवत्ततः ॥ १२० ॥  
 सिद्धशेषाक्षतैः॑ युष्म्यैगन्धोदकविमिश्रितैः । अभ्यनन्दसुयज्वा॑ तं पुण्यार्दीमिश्र॑ चक्रिणम् ॥ १२१ ॥  
 ततोऽस्मै॑ धूतद्विष्यास्त्रो॑ रथमारुण्या॑ रूपवत्॑ । जगां॑ लवणाम्भोधि॑ गोप्यदावश्या॑ प्रसुः ॥ १२२ ॥

चला ॥ ११२ ॥ उस समय वह समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो किनारेपर बहनेवाली नदियाँल्ली हाथोंको बहुत दूर तक फैलाकर नाना प्रकारके रत्नरूपी अष्टको धारण करता हुआ महाराज भरतकी अगवानी ही कर रहा हो अर्थात् आगे बढ़कर सत्कार ही कर रहा हो ॥ ११३ ॥ जो लोग कहा करते हैं कि समुद्रके रत्न सूपसे नापे जा सकते हैं वे उसकी ठीक-ठीक प्रशंसा नहीं करते बल्कि अप्रशंसा ही करते हैं क्योंकि यहाँ तो इतने अधिक रत्न हैं कि जो बड़े-बड़े जहाजरूप नापोंमें भी नापे जा सकते हैं ॥ ११४ ॥ यह समुद्र ‘लवण समुद्र’ इस नामसे बिलकुल ही सुच्छ कर दिया गया है, बास्तवमें यह रत्नाकर है इस प्रकार उस समय भरत-आदि राजाओंने उस बहुत बड़ा माना था ॥ ११५ ॥ जिस दिशामें जाकर सूर्य भी अपने तेजकी अपेक्षा मन्द ( फीका ) हो जाता है उसी दिशामें पश्चिमी राजाओंको जीतते हुए चक्रवर्ती भरत का तेज अतिशय देदीप्यमान हो रहा था ॥ ११६ ॥ चक्ररत्नको धारण करता हुआ, युद्धरूपी समुद्रको पार करता हुआ और शत्रुओंको उद्विग्न करता हुआ वह भरत उस समय ठीक सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा था ॥ ११७ ॥ जो राज्यलक्ष्मीसे युक्त है ऐसे उस भरत-ने समुद्रके किनारे-किनारे जाकर अपने हृदयके समान कभी क्षुब्ध न होनेवाला अपनी सेनाका पड़ाव सिन्धु नदीके द्वारपर लगवाया । भावार्थ – जहाँ सिन्धु नदी समुद्रमें जाकर मिलती है वहाँ अपनी सेनाके डेरे लगवाये ॥ ११८ ॥ सेनाके हाथियोंकि उपभोगसे जहाँके वृक्ष निकुञ्ज अर्थात् लतागृहोंके समान हो गये हैं ऐसे सिन्धु नदीके किनारे के मनोहर बनमें भरतकी सेनाके लोगोंने निवास किया ॥ ११९ ॥ तदनन्तर कार्यके प्रारम्भमें करने योग्य समस्त कार्योंको जानेवाले पुरोहितने वहाँपर मन्त्रोंके द्वारा चक्ररत्नकी पूजा कर विधिपूर्वक धर्मचक्रके स्वामी अर्थात् जिनेन्द्रदेवकी पूजा की और फिर गन्धोदकसे मिले हुए पवित्र सिद्ध शेषाक्षतों और पुण्यरूप अनेक आशीर्वादोंसे चक्रवर्ती भरतको आनन्दित किया ॥ १२०—१२१ ॥ तदनन्तर १ वेलासरित एव करात तान् । २ इव । ३ प्रस्फोटनेन उत्पातुं योग्यानि । प्रस्फोटनं शूर्वप्रस्त्रीत्यभिधानात् । ४ वेला । —रिष्यप्रशंसिभिः ल० । प्रशस्तेऽपि न प्रशस्या । ( प्रशस्ताऽपि न प्रशस्या ) । ५ सूर्यः । ६ प्रतीच्यानिति पाठः । ७ चक्ररत्नं धारयन् । ८ प्रतिज्ञासमुद्रं समाप्तं कुर्वन् । ९ शशून् । १० कम्पयन् । ( एज कम्पने इति धातुः । ‘दारिष्णारिवेषुदेवजेतिसाहिसाहित्यिन्द्रोपसगति॑ इति॑ कर्तरि॑ शप॑ प्रत्ययः॑ । ‘भृष्ये॑ कर्तरि॑ शप॑’ इति॑ शब्दविधानात्॑ एज्यादेशः॑ । ) । ११ नितरां हृष्णीभूत । १२ समन्वकं पूजितचक्ररत्नः॑ ( अनः॑ शक्टम्॑ तस्याङ्गम्॑ चक्रम्॑ ) । १३ पूर्वसेवा । १४ पञ्चपरमेष्ठिनः॑ । १५ पुरोहितः॑ सुषुदु॑ दृष्टवान्॑ । ‘यज्वा॑ तु॑ विधिनेष्ठवान्॑’ इत्यमरः॑ । ‘सुवजोऽवनिष्प॑’ इति॑ अतीतार्थे॑ सुयज्वातुम्भा॑ द्वन्तिप्रत्ययः॑ । १६ मागध-विजये॑ पथा॑ ।

प्रभा॑ समजमत्तम् प्रभास॒ व्यन्तराधिषम् । प्रभासमूहमकस्य स्वभासा॑ तज्ज्यन्प्रसुः ॥१२३॥  
जयश्रीशफरीजालै॑ मुक्ताजालं ततोऽमरात् । लेभे सान्तानिकै॑ मालो हेममालां च चक्रभूत् ॥१२४॥  
इति पुण्योदयाज्ञिष्युर्यजेषामरसत्तमात् । तस्मात् पुण्यधनं प्राज्ञाः शशदर्जयतोजितम् ॥१२५॥

## शार्दूलचिक्रीडितम्

त्वं॑ तु तुरक्षसाधनकुरुणा॑ न्महीस्थण्डिलाद्  
उद्भूतैरणरै॑ गुमिलं लनिधेः कालुष्यमापादवर्न् ।  
सिन्धुद्वारमुपेत्य तत्र विधिना वित्ता प्रभासामरं  
तस्मात्सारधनान्यवापदतुलश्रीरघ्रणीश्चकिणम् ॥१२६॥  
लक्ष्म्याम्बूद्गौलै॑ लतामिकोरसि द्वयत् संतानपुण्याह्वानं  
मुक्ताहेमसयेन॑ जालयुग्लेनालंकृतोवैस्तुः ।  
लक्ष्म्युद्वाह॑ गृहादिवाप्रतिमयो॑ निर्यजिधेरम्भसा॑  
लक्ष्मीशो रुद्धे भूतं नववरच्छाया॑ परामुद्भवन् ॥१२७॥

जिसने दिव्य अस्त्र धारण किये हैं ऐसे भरतने पहले के समान रथपर चढ़कर गोष्ठदके समान तुच्छ समझते हुए लवण समुद्रमें प्रवेश किया ॥१२२॥ अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाके समूहको तिरस्कृत करते हुए भरतने वहाँ जाकर अतिशय कान्तिमान् प्रभास नामके व्यन्तरोंके स्वामी-को जीता ॥१२३॥ तदनन्तर चक्रवर्तीने उस प्रभासदेवसे जयलक्ष्मीरूपी भछलीको पकड़ने के लिए जालके समान मोतियोंका जाल, कल्पवृक्षके फूलोंकी माला और सुवर्णका जाल भेट स्वरूप प्राप्त किये ॥१२४॥ इस प्रकार विजयी भरतने अपने पुण्यकर्मके उदयसे अच्छे-अच्छे देवोंको भी जीता इसलिए हे पण्डितजन, तुम भी उल्काष्ट फल देनेवाले पुण्यरूपी धनका सदा उपार्जन करो ॥१२५॥ अनुपम लक्ष्मीके धारक भरत, उच्छलते हुए बड़े-बड़े घोड़ोंकी सेना-के खुरोंसे खुदी हुई पृथिवीसे उड़ती हुई रथकी धूलिके द्वारा समुद्रको कलृष्टता प्राप्त करते हुए (गैंदला करते हुए) सिन्धुद्वारपर पहुँचे और वहाँ उच्छ्वोने विधिपूर्वक प्रभास नामके देवको जीतकर उससे सारभूत धन प्राप्त किया ॥१२६॥ जो अपने वक्षःस्थलपर लक्ष्मीके क्षुला-की लताके समान कल्पवृक्षके फूलोंकी माला धारण किये हुए है, जिसका ऊँचा शरीर मोती और सुवर्णके बने हुए दो जालोंसे अलंकृत हो रहा है, जो निर्भय है और लक्ष्मीका स्वामी है ऐसा यह भरत लक्ष्मीके विवाहगृहके समान समुद्रसे निकल रहा है और नवीन वरकी उल्काष्ट कान्तिको धारण करता हुआ अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥१२७॥ इस प्रकार समुद्र-पर्यन्त पूर्व दिशाके राजाओंको, वंजयन्त पर्वत तक दक्षिण दिशाके राजाओंको और पश्चिम समुद्र

१ प्रकृष्टशीप्तिम् । २ जयश्रीरेव शफरी भत्ती तस्या जालम् पाशः । ३ कल्पवृक्षजाताम् । ४ अस्त्रात् । ५ चूर्णी-कृतात् । ६ पार्कराप्रापदेयात् । ७ सङ्गारपांशुभिः । ८ संयादयन् । ९ लक्ष्म्याः प्रेड्लोलिकारज्ज्वम् । १० मालायुग्मेन । ११ विवाह । १२ भयरहितः । १३ नूतनवरदोभाम् ।

प्राच्या नाजलत्रे॑ रपाच्यनृपती॒ नावैज्ञान्ताजथन्  
निर्जित्यापरसिन्धुसीमघटितामाशां प्रतीचीमणि ।  
दिक्गालानिव पार्थिवान्त्रणमधकाकभयकाकिनो  
दिक्चक्रं विजितारिष्यकमकरोद्दिध्यं स भूम्यप्रभुः ॥१२८॥  
पुण्याद्यैकधरधिवं विजयिनीमैस्त्रीं च दिव्यधिय  
पुण्यासीर्थकरधिवं च परमो नैःश्रेयसीचाइनुते ।  
पुण्यादित्यसुभृष्टिक्षयां चतसृणामाविर्भवेद् माजनं  
तस्मात्पुण्यसुपार्बयन्तु सुधियः पुण्याज्ञिनेऽग्रामात् ॥१२९॥

इहार्थे॑ भगवज्जितसेनाचार्यपृष्ठीरो॒ किष्णित्वक्षणप्रतापुराणसंग्रहे  
पश्चिमार्णवद्वारविजयवर्णनं नाम त्रिशं पर्व ॥३०॥



को सीमा तक पश्चिम दिशाको जीतकर दिक्गालोंके समान समस्त राजाओंसे नमस्कार कराते हुए तथा देवोंको भी कम्पायमान करते हुए राजाधिराज भरतने समस्त दिशाओंको शत्रुरहित कर दिया ॥१२८॥ पुण्यसे सबको विजय करनेवाली चक्रवर्तीकी लक्ष्मी मिलती है, इन्द्रकी दिव्य लक्ष्मी भी पुण्यसे मिलती है, पुण्यसे ही तीर्थकरकी लक्ष्मी प्राप्त होती है और परम कल्याणरूप मोक्षलक्ष्मी भी पुण्यसे ही मिलती है इस प्रकार यह जीव पुण्यसे ही चारों प्रकारकी लक्ष्मीका पात्र होता है, इसलिए हे सुधी जन ! तुम लोग भी जिनेन्द्र भगवानुके पवित्र आगमके अनुसार पुण्यका उपार्जन करो ॥१२९॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध भगवज्जितसेनाचार्यप्रणीत क्रिष्णित्वक्षण महापुराणसंग्रहके भाषानुवादमें पश्चिमसमुद्रके द्वारका विजय वर्णन करनेवाला शीसर्वा पर्व समाप्त हुआ ।



## एकर्त्रिंशासनम् पर्व

कौवेरीमथ निर्जेतुमाशामभ्युषतो विभुः । प्रतस्थे वाजिभूयिष्ठः साधनैः स्थगयन् दिशः ॥३॥  
 धौरितैर्गंभैसुखाहैः सर्वं शिक्षा च लाभते । जाति॑ वपुर्गणैस्तज्ञास्तदाश्वानां विजक्तिरे<sup>३</sup> ॥४॥  
 धौरितं गतिचातुर्यमुख्याहस्तु पराक्रमः । शिआविनयसंपर्ता रोमच्छाया वपुर्गुणः ॥५॥  
 पुरोभागा निवायेतु<sup>४</sup> पश्चायागं<sup>५</sup> कुलोद्यमाः । प्रयुक्तुतस्थ्यानमधनीनां स्तुरहमाः ॥६॥  
 स्तुरोद्युतान् महीरेणून् स्वाक्षर्यस्तीस्त्रयमिति । केचिद्गत्यार्थ्यत्वं<sup>६</sup> यदाश्वः कृतस्तिक्ष्माः ॥७॥  
 छायात्मानां<sup>७</sup> सहोस्थानै<sup>८</sup> केचिस्तोदुमिवाक्षमाः । स्तुरेवद्यन् वाहाः स तु सांख्याकादाधितः ॥८॥  
 केचिभूतमिवातेनुभावीर्के तुरङ्गमाः । अर्मेऽप्यकृक्मणास्मे<sup>९</sup> कृतमद्भुक्वादनैः<sup>३</sup> ॥९॥  
 स्थिरप्रकृतिसर्वानामधानां चलताऽमवत् । प्रचलत्युरसंशुगणभुवां गतिषु केवलम् ॥१०॥  
 कोट्योऽष्टादशास्य स्युवीजिनां वायुरंहस्याम्<sup>१०</sup> । आजानेयप्रधानानां<sup>११</sup> योग्यानां चक्रवर्तिनः ॥११॥  
 कुरुधीवनाकुण्णातटभूर्हायमयन्त्यपः । सिन्धोः<sup>१२</sup> प्रतीपलां<sup>१३</sup> भेजे प्रयान्ती सा पताकिनी ॥१२॥

अथानन्तर—उत्तर दिशाको जीतनेके लिए उच्चत हुए चक्रवर्ती भरत जिनमें अनेक घोड़े हैं ऐसी सेनाओंसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए निकले ॥१॥ उस समय घोड़ोंके गुण जानने वाले लोगोंने धौरित नामकी गतिसे उनकी चाल जानी, उत्साहसे उनका बल जाना, स्फूर्तिके साथ हूलकी चाल चलनेसे उनकी शिक्षा जानी और शरीरके गुणोंसे उनकी जाति जानी ॥२॥ गतिकी चतुराईको धौरित, उत्साहको पराक्रम, विनयको शिक्षा और रोमोंकी कान्तिको शरीरका गुण कहते हैं ॥३॥ अच्छी तरह मार्ग तय करनेवाले घोड़े मार्गमें बहुत जल्दी-जल्दी जा रहे थे और ऐसे जान पड़ते थे मानो अपने पीछेके भागोंसे अगले भागोंको उल्लंघन ही करता चाहते हों ॥४॥ अपने खुरोंसे उड़ती हुई पृथिवीकी धूलिका कहीं हमारे ही शरीरके साथ स्पर्श न हो जावे इस भयसे ही मानो अनेक बड़े-बड़े घोड़े अपना पराक्रम प्रकट करते हुए मार्गमें उस धूलिको उल्लंघित कर रहे थे ॥५॥ कितने ही घोड़े अपनी छायाका भी अपने साथ चलना नहीं सह सकते थे इसलिए ही मानो वे उसे अपने खुरोंसे तोड़ रहे थे परन्तु सूक्ष्म होनेसे उस छायाको कुछ भी बाधा नहीं होती थी ॥६॥ कितने ही घोड़े ऐसे जान पड़ते थे मानो चलनेके प्रारम्भमें बजते हुए नगाड़े आदि बाजोंके साथ-साथ अपने पैरोंसे पृथ्वीलपी रंगभूमिपर नृत्य ही कर रहे हों ॥७॥ जिनका स्वभाव और पराक्रम स्थिर है परन्तु जिन्होंने अपने चलते हुए खुरोंसे पृथ्वी खोद डाली है ऐसे घोड़ोंकी चंचलता केवल चलनेमें ही थी अन्यत्र नहीं थी ॥८॥ जिनका वेग वायुके समान है, जो उल्लम जातिके हैं और जो योग्य हैं ऐसे चक्रवर्तीके घोड़ों-की संख्या अठारह करोड़ थी ॥९॥ जिसने किनारेके बन रोक लिये हैं, जिसने किनारेकी पृथिवी-

१ धाराभिः । ‘आस्कन्दितं धौरितकं रेचितं बलिगतं प्लुतम् । गतयोऽप्तुः पञ्च धाराः ।’ पदेष्टप्लुत्योत्प्लुत्यम् गमनम् आस्कन्दितम् । कड़कशिखिक्रोडनकुलगतैः सदृशम् धौरितकम् । मध्यमवैगेन चक्रवद् भ्रमणम् रेचितम् । पदभिर्बलिगतम् बलिगतम् । मृगसाम्येन लड्बनं प्लुतम् । आस्कन्दिताश्रीनि पञ्चपदानि धाराशब्दवाच्यानि । धारेत्यक्षगतिः, सा ये आस्कन्दितादिभेदेन पञ्चविद्वा भवतीस्यर्थः । २ गमनम् । ३ वृद्धिरे । ४ पूर्वकापात् । ५ अतिगमन्तुम् । ६ अपरकार्यः । ७ अध्वनि समर्थः । ८ अतीत्यागच्छन् । ९ मार्गः । १० छायास्वरूपस्य । ११ छायात्मा । १२ शीघ्रगमनारम्भे । १३ वाद्यशिष्यः । १४ पदवेगिनाम् । १५ जात्यश्वमुख्यानाम् । १६ सिन्धुनद्याः । १७ प्रतिकूलताम् ।

प्रभोरिवागमासुषा सिन्धुः सैन्याधिनायकान् । तरङ्गपवनैमन्द्रमासिषेवे सुखाहरैः ॥११॥  
गङ्गाबर्णनयोपतीं फेलाधी॑ संमुखागलाम् । तो पश्यन्नुसामाशां जिलां मेने निधीश्वरः ॥१२॥  
अनुसिन्धुतटं सैन्यैस्त्रीच्यान् साधयन्नुगान् । विजयाद्वाचिलोपान्तमासलाद शनैर्मनुः ॥१३॥  
स गिरिमणिनिर्माणनष्टकूटविशक्तः ३ । ददको प्रभुणा वूराद् धृतार्थ इव राजतः ॥१४॥  
स वैलः पवनाधूलचक्षशाखाग्रवाहुमिः । दूराद्भ्यागतं जिष्णुमासुहावेव पादैः ॥१५॥  
सोऽचलः शिखरोपान्तनिपत्तिक्षिराम्बुमिः । प्रभोरुपागमे पाद्यं संविघिसुस्त्रिवाचकात् ॥१६॥  
स नयो नागुमागद्वामित्रुमस्कृदैः ४ । रम्यस्तद्वनोदैशीरक्षत् प्रभुमिवासितुम् ॥१७॥  
रजो वितान्यन् वौष्ठ पवनैः परितो वनम् । सोऽम्बुद्धिष्ठिवास्यासीत् कृजस्कोक्तिलिण्डिमः ॥१८॥  
किमत्र बहुना चोऽक्षिर्द्विदिविज्ञेयम् ५ प्रत्यैरादिति दूरीत्याग्नैरतिरक्षुदैः ॥१९॥  
११ पिनद्वतोरणा मुच्चैरत्तीत्य वनचेदिकाम् । नियन्त्रिते ६ बलाध्यर्जेजंगाहेऽन्तर्वर्णं बलम् ॥२०॥  
वनोपान्तसुवः वैन्यैरारुद्धा रुद्धिक्षुदैः । उद्धीनविहगप्राप्या निरुच्छवासासतदाभवन् ॥२१॥

तोड़ दी है और जो जलको कम करती जाती है ऐसी चलती हुई वह सेना मानो सिन्धु नदीके साथ शत्रुता ही धारण कर रही थी । भावार्थ—वह सेना सिन्धु नदीकी हानि पहुँचाती हुई जा रही थी ॥१०॥ वह सिन्धु नदी मानो चक्रवर्ती भरतके आनेसे सन्तुष्ट होकर ही सुख देनेवाली अपनी लहरोंके पवनसे धीरे-धीरे सेनाके मुख्य लोगोंकी सेवा कर रही थी ॥११॥ जो गंगा नदीके समस्त वर्णनसे सहित है और केनोंसे भरी हुई है ऐसी सामने आयो हुई सिन्धु नदीको देखते हुए निधिपति—भरत उत्तर दिशाको जीती हुईके समान समझने लगे थे ॥१२॥ सिन्धु नदीके किनारे-किनारे अपनी सेनाओंके द्वारा उत्तर दिशाके राजाओंको वश करते हुए कुलकर—भरत धीरे-श्रीरे विजयार्थं पर्वतके समीप जा पहुँचे ॥१३॥ जो मणियोंके बने हुए नीं शिखरोंसे बहुत विशाल मालूम होता था ऐसा वह चाँदीका विजयार्थं पर्वत भरतने दूरसे ऐसा देखा मानो शिखरोंके बहानेसे अर्ध ही धारण कर रहा हो ॥१४॥ जिनकी शाखाओंकी अग्रभागरूपी भुजाएं वायुसे हिल रही हैं ऐसे वृक्षोंसे वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो दूरसे सन्मुख आये हुए विजयी भरतको बुला ही रहा हो ॥१५॥ शिखरोंके समीपसे ही पड़ते झरनोंके जलसे वह पर्वत ऐसा अच्छा सुशोभित हो रहा था मानो चक्रवर्ती भरतके आनेपर उनके लिए पाद्य अथत् पैर धोनेका जल ही देना चाहता हो ॥१६॥ वह पर्वत पुन्नाग, नागकेसर और सुपारी आदिके वृक्षोंसे भरे हुए तथा मनोहर अपने किनारेके बनके प्रदेशोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो विश्राम करनेके लिए स्वामी भरतको बुला ही रहा हो ॥१७॥ जो अपने बनके चारों ओर वायुसे उड़ते हुए फूलोंकी परागका चँदोबा तान रहा है और शब्द करते हुए कोकिल ही जिसके नगाड़े हैं ऐसा वह पर्वत भरतका सन्मान करनेके लिए सामने खड़े हुए के समान जान पड़ता था ॥१८॥ इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? इतना ही बहुत है कि वह पर्वत बड़े प्रेमसे प्रकट किये हुए सत्कारके सब साधनोंसे दिग्विजय करनेके लिए उद्यत हुए भरतका मानो सत्कार ही कर रहा था ॥१९॥ जिसके चारों ओर तोरण बंधे हुए हैं ऐसी बनकी ऊँची देवीका उल्लंघन कर सेनापतिशोंके द्वारा नियन्त्रित की हुई ( वश की हुई ) सेनाने बनके भीतर प्रवेश किया ॥२०॥ समस्त दिशाओंमें फैलनेवाली सेनाओंसे उस बनके समीप

१ सुखस्थाहरणम् स्वीकारी येष्य(पञ्चमी) इति तैः, सुखाकरेत्यर्थः । २ फेनाहयाम् प०, ल० । ३ विशालः ।  
४ रजसमयः । ५ संविधातुमिच्छुः । ६ अभात् । ७ मंकुलः, ल०, प०, द०, स०, अ०, इ० । ८ बलम् ।  
९ विस्तारयन् । १० अभिमुखमुष्ठितन् । ११ विभक्त अ०, प०, द०, स०, ल०, इ० । १२ निधिमितम् ।

अभूतपर्यन्तमुद्भुतप्रनिवालं बलव्वनिस् । शुद्धा ॥ अलवदुन्देसु स्तिर्यज्ञो वनसोवराः ॥ २२ ॥  
 वलश्रोभादिभोऽनिर्वन् वलश्रोभाद् वनान्तरात् । नुरेभः सुविनकाङ्गः सुरभै हव वर्षमग्ना ॥ २३ ॥  
 पत्रोध त्रुम्भग्नादुरुप्य व्याददीः किल केपरा । न मेऽस्यस्तर्वयं किञ्चित् पद्यनेऽर्ताव दुर्शेषन् ॥ २४ ॥  
 नरवो रम्यादुर्व्यमुच्यत्वोलानितः पतन् । सुस्थ पूर्व पर्वते वृष्टौ रम्भिक्ष्मुक्ताशन्तात् ॥ २५ ॥  
 १६ विषयांलिखिलस्कन्धां सप्तिमाऽऽताप्रितेश्वरणः ॥ १७ । वृत्तिवात्प्रतिभिः स्त्रैवदेवो मडिष्ठो विभीः ॥ १८ ॥  
 चभूरवश्वोद्भूते न्यात्वयाः शुद्धका सृग्माः । विजयार्थगुहोत्सगान् युग्मश्वय ॥ इवात्प्रत्यन् ॥ २९ ॥  
 असुद्धुवा ॥ सृग्माः शावैः पलायां चक्रिरऽभितः । विद्रस्ति वेषभानाङ्गः ॥ ३० ॥ सिन्काभयर्थविव भृत्या  
 वराहाररनि ॥ सुक्ष्मा वराहा सुक्ष्मपलवक्ता ॥ ३१ ॥ विनेषु ॥ विनेषु ॥ शुद्धोभादिनोऽसुः ॥ ३२ ॥  
 ३२ वरणावरणास्तस्युः करिणोऽन्ये समद्वताः । हरिणो हरिणो रातिगुहान्तानपिशिद्धिरे ॥ ३३ ॥

की समस्त भूमियों भर गयी थीं, उनके पक्षीरूपी प्राण उड़ गये थे और उस समय वे ऐसी जान  
 प्रदेशी भी स्त्रासे द्वाक्षोच्चुपालोत्तिलः द्वी हो गयी हों । अर्थात् मेनाओंके घोड़से दबकर मानो  
 मर ही गयी हों ॥ २१ ॥ जो पहले कभी मुननेमें नहीं आया था और जिसकी प्रतिवेनि उठ रही  
 थी ऐसा सेनाका कलकल शब्द सुनकर वनमें रहनेवाले पशु बहुत ही भयभीत और दुखी हो  
 गये थे ॥ २२ ॥ जो अपने शरीरकी अपेक्षा ऐसावत हाथीके समान था, जिसके समस्त अंगों-  
 पांगोंका विभाग ठीक-ठीक हुआ था, और जो मधुर गर्जना कर रहा था ऐसा कोई अफेद रंगका  
 हाथी सेनाके धोमसे बनके भीतरसे निकलता हुआ बहुत ही अच्छा मुझेभित हो रहा था ॥ २३ ॥  
 मेरे मनमें कुछ भी भय नहीं है जिसकी इच्छा हो सो देख के इस प्रकार दिखलाता हुआ ही  
 मानो कोई मिह जागकर जमुहाई लेता हुआ मैंह खोल रहा था ॥ २४ ॥ अष्टापद यहे वेगसे  
 ऊरकी और उछलकर ऊरकी ओर मैंह करके तीव्रे पड़ गया था परन्तु वनानेवाले (नामकर्म)  
 की चतुराईसे पीठपर-के ऐरें ठीक-ठीक आ खड़ा हुआ था—उसे कोई चोट नहीं आयी थी  
 ॥ २५ ॥ जो पत्थरसे अपने कन्धे धिस रहा है, जिसके नेत्र कोधित होनेसे कुछ-कुछ लाल हो  
 रहे हैं और जो सुरोंसे पृथिवी खोद रहा है ऐसा एक निर्भय भैंसा सेनाके लोगोंने देखा था ॥ २६ ॥  
 सेनाके शब्द मुननेमें जिनके भय उत्पन्न हो रहा है ऐसे छोटे-छोटे पशु प्रलयकालके समान विजयार्थ  
 पर्वतकी गुफाओंके मध्य भागका आश्रय ले रहे थे । भावार्थ—जिस प्रकार प्रलयकालके  
 समय जीव विजयार्थकी गुफाओंमें जा छिपते हैं उसी प्रकार उस समय भी अनेक जीव सेनाके  
 शब्दोंसे डरकर विजयार्थकी गुफाओंमें जा छिपते हैं ॥ २७ ॥ जिनके पीछे-पीछे बच्चे दौड़ रहे  
 हैं और जिनका शरीर कौप रहा है ऐसे उरे हुए हरिण जारी और भाग रहे थे तथा वे उस समय  
 ऐसे मालूम होते थे मानो भयरूपी रससे सौंचे ही गये हों ॥ २८ ॥ मेनाके धोमसे जिन्होंने  
 जलसे भरे हुए छोटे-छोटे तालाब (तलैया) छोड़ दिये हैं और जिनके झुण्ड विखर गये हैं ऐसे  
 गूबर अपने उत्तम आहारमें प्रेम छोड़कर इधर-उधर बुझ रहे थे ॥ २९ ॥ किन्तु ही अन्य हाथी  
 भयसे भागकर वृक्षोंसे डकी हुई जगहमें छिपकर जा खड़े हुए थे और हरिण सिंहोंकी गुफाओं

१ अधिकम् । २ तत्रसुः । ३ ववलः । ४ रेजे । ५ शोभनश्वतिः । ६ सुवर्कतावयवः । ७ देवगणः । ८ विवृत-  
 मकरोन् । ९ पृष्ठवर्त्तिभिः । १० निमणिकर्म अथवा त्रिविः । ११ पापाणी ल० । १२ रोपेयाहर्षीकृतः ।  
 १३ निर्भीतिः । १४ मेनावन्याकर्णनान्तरात् । १५ प्रलयकाले यथा । १६ अनुगताः । १७ कम्भमानशरीराः ।  
 १८ उच्छिष्ठारप्रोतिम् । १९ विक्षेपान्तरात् । २० नशान्ति स्म । विविषुः ल० । २१ विष्वकीर्णवृद्धाः ।  
 २२ वृक्षविद्येयावचारात्मा गत्वः । २३ मिहः ।

इति-सद्या वनस्येव प्राणाः प्रचलिता भृशम् । प्रत्यापिनि<sup>१</sup> चिरादीयुः<sup>२</sup> सैन्यशोभं प्रसेदुष्टि<sup>३</sup> ॥३१॥  
 प्रथायामुक्तं किञ्चिद्दन्तरं तदनन्तरम् ।<sup>४</sup> रुद्धावैर्मध्यमं कूटं संनिकृप्य<sup>५</sup> स्थितं बलम् ॥३२॥  
 तत्तदनन्तरम् वने भन्दं मरुतां दीलितद्वम्बे । नृपाज्ञया खलाध्यक्षाः स्कन्धायारं म्यवेशायन् ॥३३॥  
 स्वैरं जग्नुहुरावास्यान् सैनिकाः सानुभृते<sup>६</sup> । स्वयं गलन्प्रसूनीर्घ्यनशालि घने वने ॥३४॥  
 सरस्तरस्तद्व्यात्ताक्तामपद्वयोवराः । रथ्या बभूवुरावासाः सैनिकानाभ्यतन्तः ॥३५॥  
 वनप्रवेशसुन्मुखाः<sup>७</sup> प्रादुर्वैराग्यकास्यम् । तथ्यवेशो<sup>८</sup> यत्तस्तेषामभवद् रागबृह्यं ॥३६॥  
 अथ तत्र कृतावासं शत्रुं मनियमं प्रभुम् । आगाम्यामवत् इष्टुं विजयाद्वाधिषः सुरः ॥३७॥  
 निरीटशिखरोदयो लम्बप्रालम्बनिङ्गरः<sup>९</sup> । स मासवक्टको<sup>१०</sup> रेजे राजतात्रिरिवापरः ॥३८॥  
 सितोगुक्त्वरः ऋक्ती हरिचन्द्रमस्त्वितः । स एवं धृतस्त्रावर्णो निधिः शङ्कु इबोधिष्ठितः ॥३९॥  
 सरसंध्रमं च सौभद्रेत्य प्रहृतामगमध्यम्बोः । सरस्कारं च तं चक्री मद्रासममलम्बयत् ॥४०॥

के भीतर ही जा ठहरे थे ॥३०॥ इस प्रकार वनके प्राणोंके समान अत्यन्त चंचल हुए प्राणी सेनाका क्षोभ शान्त होतेर बढ़त देरमें अपने-आने-जाने-करने-करने-लौहे ॥३१॥ तदनन्तर वह सेना वन ही वन कुछ दूर जाकर विजयार्थं पर्वतके पाँचवें कूटके समीप पहुँचकर ठहर गयी ॥३२॥ सेनाके ठहरनेपर सेनापतियोंने महाराजकी आज्ञासे, जिसके बूक्ष मन्द-मन्द वायुसे हिल रहे थे ऐसे उस वनमें सेनाके डेरे लगवा दिये थे ॥३३॥ जिसमें अपने आप फूलोंके समूह गिर रहे हैं और जो बने-घने लगे हुए वृक्षोंसे सवन हैं ऐसे विजयार्थं पर्वतके किनारेके वनमें सैनिक लोगोंने अपने इच्छानुसार डेरे ले लिये थे ॥३४॥ सरोवरोंके किनारेके वृक्षोंके समीप ही जो लतागृहोंके स्थान थे वे दिना प्रयत्न किये ही सेनाके लोगोंके भनोहर डेरे हो गये थे ॥३५॥ 'वनमें प्रवेश करना वैराग्यका कारण है, ऐसा मूर्ख मनुष्य ही कहते हैं क्योंकि उस वनमें प्रवेश करना उन सैनिकोंकी रागबृद्धिका कारण हो रहा था । भावार्थ-वनमें जानेसे सेनाके लोगोंका राग बढ़ रहा था इसलिए वनमें जाना वैराग्यका कारण है ऐसा कहनेवाले पुरुष मूर्ख ही हैं ॥३६॥

अथानन्तर-महाराज भरतको वहाँ नियमानुसार ठहरा हुआ जानकर विजयार्थं पर्वतका स्वामी विजयार्थं नामका देव मागध देवके समान भरतके दर्शन करनेके लिए आया ॥३७॥ उस समय वह देव किसी दूसरे विजयार्थं पर्वतके समान सुशोभित हो रहा था, क्योंकि जिस प्रकार विजयार्थं पर्वत शिखरसे ऊँचा है उसी प्रकार वह देव भी मुकुटहृषी शिखरसे ऊँचा था, जिस प्रकार विजयार्थं पर्वतपर हारने ज्ञरते हैं उसी प्रकार उस देवके गलेमें भी ज्ञरतों-के समान हार लटक रहे थे और जिस प्रकार विजयार्थं पर्वतका कटक अर्थात् मध्यभाग देवीप्यमान है उसी प्रकार उसका कटक अर्थात् हाथोंका कड़ा भी देवीप्यमान था ॥३८॥ जो सफेद वस्त्र धारण किये हुए हैं, मालाएँ पहने हैं, जिसके शरीरपर सफेद चन्दन लगा हुआ है और जो रत्नोंका अर्घ धारण कर रहा है ऐसा वह देव खड़ी की हुई शंख नामक निधिके समान सुशोभित हो रहा था ॥३९॥ उस देवने बड़ी शीघ्रताके साथ आकर चक्रवर्तीको नमस्कार किया और

<sup>१</sup> पुनस्तत्प्राप्ति पूर्वस्थितिभित्यर्थः । २ जग्मुः । ३ प्रशान्ते सति । ४ गत्वा । ५ रोप्यदेः प०, द०, ल० । रूपादेः अ०, स०, द० । ६ समीपं गत्वा । ७ अद्रिसातौ । ८ 'निषु निमित्तसमारोहपरिणाहवनोद्यन्ननिवेष्वसंघागृह्यत्यादानाङ्गासन्ननिमित्तप्रस्तगण' । इति भूत्रेण निमित्तार्थनिवेष्वद्वा निपातितः निमित्त-शब्दः समारोहपरिणाहे वर्तते ऊब्बेविशालतायां वर्तते इत्यर्थः । समारोहपरिणाह 'परिणाहो विशालता' उत्सेवः विशालः इत्यर्थः । अस्मिन्नर्थे वनोद्यन्ननिवेष्वनिवेष्वसंघागृह्यत्यादानाङ्गासन्ननिमित्तप्रस्तगणा इति निपातनात् सिद्धिः । ९ जडः । १० यस्मात् कारणात् । ११ क्रमुलम्बिहारः । १२ करबलयः एव सानु ।

‘गोपयिता॑हमस्याद्रेमंध्यम् कृष्णाष्वप्नू। स्वैरचारी चिरादृश्य त्वयाऽस्मि परवान्<sup>१</sup> विमो ॥४१॥  
 विद्वि मां विजयाद्विव्यमभुं च गिरिमूर्जिलम् । अन्योऽन्यै संध्याद्यावासलंध्याद्यश्वलस्थिती ॥४२॥  
 देव दिग्बिजयस्याहौ विभजन्नेष लाजुमान् । विजयाद्विश्रुतिं धर्मे<sup>२</sup> सात्त्वप्यात् तद्वृद्यो<sup>३</sup> वयम् ॥४३॥  
 आयुष्मन्त्रं युज्मदीयाकां सूर्या लजमिवोद्दहन् । <sup>४</sup>पदातिनिर्विशेषोऽस्मि विज्ञाप्यं किमतः परम् ॥४४॥  
 इति श्रुत्वस्तथोत्याय <sup>५</sup>शिवैस्तीयम्भुमिः प्रभुम् । <sup>६</sup>सोऽन्यविज्ञात् सूरः साहौ रुद्धं नियोमं निवेदयन् ॥४५॥  
 तदा प्रणदुरासन्द्रमानकाः पथि वामुचाय् । विचर्षयस्तो मन्द्रमाधूतवनवीथयः ॥४६॥  
 ननृतुः सुरनर्तक्यः सलीलानर्तितभुवः । जगुक्ष मङ्गलान्यस्य जयशंसीनि किञ्चराः ॥४७॥  
 कृताभिषेकमेनं च शुभ्नेपद्यधारिणभ् । युद्धोज स्तनलाभेन लभ्मयन् स जयाशिषः ॥४८॥  
 स तस्मै रात्मभुक्तां सितमालपद्मारणम् । प्रकीर्णकं युगं दिव्यं ददौ च हरिविष्टरम् ॥४९॥  
 इति प्रसाधितस्तेन वचोमिः सानुवर्तनैः । प्रसादतरकां दृष्टिं तत्र स्वापारथत् प्रभुः ॥५०॥  
 विसर्जितश्च सानुहं प्रभुणा कृतसविक्षयः । सूख्यर्त्तं प्रतिपद्यास्य स्वमोक्षः प्रत्यगात् सुरः ॥५१॥  
 विजयाद्वै जिसे कृतस्ते जितं दक्षिणमारतम् । मन्वानो विधिराद् तत्त्वं चक्ररसमपूजयत् ॥५२॥

चक्रवर्तीनि भी उसे सत्कारपूर्वक उत्तम आसनपर बैठाया ॥४०॥ भरतसे उस देवने कहा कि मैं इस पर्वतका रक्षक हूँ और इस पर्वतके बीचके शिखरपर रहता हूँ । हे प्रभो, मैं आजतक अपनी इच्छानुसार रहता था—स्वतन्त्र था परन्तु आज बहुत दिनमें आपके अधीन हुआ हूँ ॥४१॥ मुझे तथा इस ऊँचे पर्वतको आप विजयार्थ जानिए अर्थात् हम दोनोंका नाम विजयार्थ है और हम दोनों ही परस्पर एक दूसरेके आश्रयसे अलंध्य तथा निश्चल स्थितिसे युक्त हैं ॥४२॥ हे देव, यह पर्वत दिग्बिजयका आधा-आधा विभाग करता है इसलिए ही यह विजयार्थ नामको धारण करता है और उसपर रहनेसे मेरा भी विजयार्थ नाम रुक्ष हो गया है ॥४३॥ हे आयुष्मन्, मैं आपकी आज्ञाको मालाके समान मस्तकपर धारण करता हूँ और आपके पैदल चलनेवाले एक सैनिकके समान ही हूँ, इसके सिवाय मैं और क्या प्रार्थना करूँ ? ॥४४॥ इस प्रकार कहता हुआ और ‘दिग्बिजय करनेवाले चक्रवर्तियोंका अभिषेक करना मेरा काम है’ इस तरह अपने नियोगकी सूचना करता हुआ वह देव उठा और अनेक देवोंके साथ-साथ कल्याण करनेवाले तीर्थंजलसे सम्राट् भरतका अभिषेक करने लगा ॥४५॥ उस समय आकाशमें गम्भीर शब्द करते हुए नगाड़े बज रहे थे और वन-गलियोंको कम्पित करता हुआ वायु धीरे-धीरे वह रहा था ॥४६॥ लीलापूर्वक भौंहोंको नचाती हुई नृत्य करनेवाली देवांगनाएं नृत्य कर रही थीं और किन्त्र देव भरतकी विजयको सूचित करनेवाले मंगलगीत गा रहे थे ॥४७॥ तदनन्तर जिनका अभिषेक किया जा चुका है और जो सफेद वस्त्र धारण किये हुए हैं ऐसे भरतको विजय करनेवाला आशीर्वाद देते हुए उस देवने अनेक रत्नोंको प्राप्तिसे युक्त किया अर्थात् अनेक रत्न भेट किये ॥४८॥ उस देवने उनके लिए रत्नोंका भूंगर, सफेद छत्र, दो चमर और एक दिव्य सिंहासन भी भेट किया था ॥४९॥ इस प्रकार ऊपर लिखे हुए सत्कारसे तथा विनय-सहित वचनोंसे प्रसन्न हुए भरतने उस देवपर प्रसन्नतासे चंचल हुई अपनी दृष्टि ढाली ॥५०॥ अनन्तर भरतने जिसका आदर-सत्कार किया है और ‘जाओ’ इस प्रकार आज्ञा देकर जिसे बिदा किया है ऐसा वह विजयार्थ देन उनका दासपना स्वीकार कर अपने स्थानपर बापस चला गया ॥५१॥ विजयार्थ पर्वतके जीत लेनेपर समस्त दक्षिण भारत जीत लिया गया

१ रक्षिता । २ नाथवान् परवश इत्यर्थः । ‘परवान्नाथवानपि’ इत्यभिवानात् । ३ परस्परमाधाराषेवरुप-संध्यात् । ४ तस्मिन् तिष्ठति इति तत्स्थः तस्य भावः तात्त्वप्य तस्मात् । ५ विजयाद्वै इति रुद्रः । ६ पतिष्ठदुशः । ७ मञ्जुर्लः । ८ विजयाद्वकुमारः । ९ आमरयुगलम् ।

गन्तव्यैः पुर्वपैश्च दीपैश्च सजलाक्षतैः । कर्लैश्च चहभिर्द्वयंश्चक्रेष्यां निरवर्तयत् ॥५३॥  
 विजयार्द्धजयेऽन्यासीदमन्दोऽस्य जयोधमः । उत्तरार्थेजयाशंसा॑ प्रस्यागूर्णस्य॒ अक्रियः ॥५४॥  
 ततः प्रतीपमागच्चैः सूष्याद्रेः॑ पश्चिमां गुहाम् । निकैषा यनभारत्य बलैरीशो न्यविक्षत ॥५५॥  
 दक्षिणेऽन्तर्लक्ष्मीदृष्टे॑ मध्ये॒ गेत्तिकार्योऽस्योऽप्यत्यन्तं विभिन्निरी लरुः॑ शिवोस्तदनाद् अहिः ॥५६॥  
 भूयो व्रष्टस्यमन्नास्ति वस्त्राश्चयैः धराधरे । इति सत्र चिरावासं वहु मने किलाधिराद् ॥५७॥  
 चिरासनेऽपि॑ तत्रास्य नासीत् स्वल्पोऽप्युपसयः॑ ।॑ प्रस्युतापूर्वलाभेन प्रभुरापूर्वतामिष्वद् ॥५८॥  
 कृतासनं च तत्रैनं श्रुत्वा ब्रह्मद्वयामन् । पार्थिवाः पृथिवीमध्यात् मध्ये॑ नशोदूर्योः दिव्यतः ॥५९॥  
 दूरानतचलन्मौलिसदृष्टकरुद्गुलाः॑ । प्रणमन्तः स्फुटीचकुः प्रसौ मर्कि महीमुजः ॥६०॥  
 कुकुमागारु॑ कर्दूरसुवर्णमणिमौक्तिकैः । रक्षैरन्वैङ्ग रक्षेशो भवत्यानर्तुर्नृथः परम् ॥६१॥  
 विद्वगापूर्वमाणस्य रसाशिभिरनारतम् । कोशै॑ प्रावेशरखानामियसां कोऽस्य निर्णयेत् ॥६२॥  
 देशाभ्यक्षा बलाद्यक्षेत्रेण सुकृतरभणम् । यवसेष्वन्॑ संधानैस्तदशीपणगृ॑ हुश्चिरम् ॥६३॥  
 उत्तरार्द्धजयोधीयं प्रमोः श्रुत्वा तद्रागमन् । पार्थिवाः कुरुताजाग्राः॑ सम्प्रबलवाहनाः ॥६४॥

ऐसा मानते हुए चक्रवर्तीने चक्ररत्नकी पूजा की ॥५२॥ उन्होंने चक्ररत्नकी पूजा गन्ध, पुण्य, धूप, दीप, जल, अक्षत, फल और दिव्य नैवेद्यके द्वारा की थी ॥५३॥ विजयार्थ पर्वत तक विजय कर लेनेपर भी उत्तरार्थको जीतनेकी आशासे उद्धत हुए चक्रवर्तीका विजयका उद्घोग शिथिल नहीं हुआ था ॥५४॥ तदनन्तर—वह भरत कुछ पीछे लौटकर विजयार्थ पर्वतकी पश्चिम गुहाके समीपवर्ती बनको अपनी सेवाके द्वारा धेरकर ठहर गया ॥५५॥ विजयार्थ पर्वतके दक्षिणकी ओर पर्वत तथा बन दोनोंकी वेदियोंके बीचमें सिन्धु नदीके किनारेके बनके बाहर भरतकी सेना ठहरी थी ॥५६॥ अनेक आश्चर्योंसे भरे हुए इस पर्वतपर बहुत कुछ देखने योग्य है यही समझकर चक्रवर्तीने वहाँ बहुत दिन तक रहना अच्छा माना था ॥५७॥ वहाँपर बहुत दिनतक रहनेपर भी भरतका थोड़ा भी खर्च नहीं हुआ था, बल्कि अपूर्व-अपूर्व बस्तुओंके लाभ होनेसे वह समुद्रके समान भर गया था ॥५८॥ भरतको वहाँ रहता हुआ सुनकर गंगा और सिन्धु दोनों नदियोंके बीचमें रहनेवाले अनेक राजा लोग अपनी-अपनी पृथ्वीसे उनके दर्शन करनेके लिए आये थे ॥५९॥ दूरसे शुके हुए चंचल मुकुटोंपर जिन्होंने अपने हाथ जोड़कर रखे हैं ऐसे नमस्कार करते हुए राजा लोग महाराज भरतमें अपनी भक्ति प्रकट कर रहे थे ॥६०॥ उन राजाओंने केशर, अगुरु, कपूर, सुवर्ण, मोती, रत्न तथा और भी अनेक बस्तुओंसे भक्तिपूर्वक चक्रवर्तीका उत्तम सम्मान किया था ॥६१॥ उनकी राशियों-से निरन्तर चारों ओरसे भरते हुए भरतके खजानेमें प्रविष्ट हुए रत्नोंकी मर्यादा ( संख्या ) का भला कौन निर्णय कर सकता था ? भावार्थ—उसके खजानेमें इतने अधिक रत्न इकट्ठे हो गये थे कि उनकी गणना करना कठिन था ॥६२॥ उस समय समीपवर्ती देशोंके राजाओंने, सेनापतियोंके द्वारा जिसकी अच्छी तरह रक्षा की गयी है ऐसी भरतकी सेनाको चिरकाल तक भूसा, ईंधन आदि वस्तुएं देकर उपकृत किया था ॥६३॥ महाराज भरत विजयार्थ पर्वतसे उत्तर भागको जीतनेका उद्घोग कर रहे हैं यह सुनकर कुछ देशोंके राजा जयकुमार

१ इच्छामुद्दिश्य । २ उद्यतस्य । ३ पविष्टमदिशम् । ४ रीपाह्वः प० । रूप्याह्वः अ०, स०, इ० । ५ बनस्य समीपम् । ६ तस्य अद्रीन्दस्य दक्षिणस्यां दिशि । ७ पवेतवेदिकावनवेदिकयोः । ८ बहुकालनिवासने सत्यपि । ९ धनव्ययः । १० पुनः किमिति चेत् । ११ गड्णासिन्धुनदीमध्यात् । १२ कुहमला: द०, ल०, अ०, स०, इ० । १३ कालागृह 'कालागृहंगुहः स्थाद्' इत्यमरः । १४ भाण्डागारप्रवेशयोग्य । १५ तुण । १६ चपकारं चक्रः । १७ सोमप्रभपुत्राश्चाः ।

आहुत्याः केचिदाज्ञामुः प्रभुणा मण्डलाधिषाः । अनाहूताश्च संभेदुर्बिभूत्यारभटाः परे ॥६५॥

विदेशैः किल यासव्यो जेतन्या म्लेच्छभूमिषाः ३ । हृति संचिन्त्य सामन्तैः प्रायः सज्जं ४ धनुर्वलम् ॥६६॥

धन्त्विनः शरनाशावसंभूतेषुशिवन्धनैः । अथवेदयज्ञिवायामानमृणदालमधीशिनाम् ॥६७॥

धनुर्धरा धनुः सज्जयमां स्फालयै चक्षुः परे । चिकीर्षिव इवारंणां जीवाकर्त्त्वं सहुकृताः ॥६८॥

करवालान् करे कृत्वा तुलयन्ति स्म कंचन । स्वामिसत्कारभारेण नूनं तान् प्रमिमिलसष्टः ॥६९॥

१ संवर्मिता भृशां रेतुर्भटाः प्रोल्हासितासवः २ । मिर्मोक्तेरिव ३ विशिलङ्गैः ४ ललजिह्वामहाहयः ॥७०॥

साठोपं स्फुटिषाः ५ केचिद् यत्वग्निं स्वामितो भटाः । अस्युपाताः ६ पुरोऽरातीन् पद्मवस्तुं ७ इव संमुखम् ॥

८ अर्थित्वात् ९ उत्तरेणैः १० त्रृतीयैः ११ त्रिलोकैः १२ सञ्जुक्तैः । इत्युर्जयनशालानां १३ लाला १४ रथ्याः सुसंभूता ॥७१॥

रथिनां १५ रथकल्पासु १६ गुबींरायुधसंपदः । समारोप्यापि पत्तिम्यो भंजुरेत्वातिगौरवम् १७ ॥७२॥

तथा और भी अनेक राजा लोग अपनी समस्त सेना और सवारियाँ लेकर उसी समय आ पहुँचे ॥६४॥ कितने ही मण्डलेश्वर राजा भरतके बुलाये हुए आये थे और कितने ही शूर वीर लोग बिना बुलाये ही उसके समीप आ उपस्थित हुए थे ॥६५॥ अब विदेशमें जाना है और म्लेच्छ राजाओंको जीतना है यही विचार कर सामन्तोंने प्रायः धनुष-बाणको धारण करने वाली सेना तैयार की थी ॥६६॥ धनुष धारण करनेवाले योद्धा छोटे-बड़े बाणोंसे भरे हुए तरकासोंके बाँधनेसे ऐसे जान पड़ते थे मानो वे अपने स्वामियोंसे यही कह रहे हों कि हम लोग आपके ऋणके दास हैं अर्थात् आज तक आप लोगोंने जो हमारा भरण-पोषण किया है उसके बदले हम लोग आपकी सेवा करनेके लिए तत्पर हैं ॥६७॥ हुंकार शब्द करते हुए कितने ही धनुषधारी लोग अपने डोरीसहित धनुषको आसफालन कर खींच रहे थे और उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शत्रुओंके जीवोंको ही खींचना चाहते हों ॥६८॥ कितने ही योद्धा लोग हाथमें तलवार लेकर उसे तोल रहे थे मानो स्वामींसे प्राप्त हुए सत्कारके भारके साथ उसका प्रमाण ही करना चाहते हों ॥६९॥ जो कवच धारण किये हुए हैं और जिनकी तलवारें चमक रही हैं ऐसे कितने ही योद्धा इतने अच्छे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनकी काँचली कुछ ढोली हो गयी है और जीभ वार-बार बाहर लपक रही है ऐसे बड़े-बड़े सर्व ही हों ॥७०॥ कितने ही योद्धा अभिमानसहित हाथमें तलवार उठाये और गर्जना करते हुए चारों ओर इस प्रकार घूम रहे थे मानो शत्रुओंको अपने सामने ही देख रहे हों ॥७१॥ आग्नेय बाण आदि अस्त्र, महास्तम्भ आदि व्यस्त्र, तलवार धनुष आदि शस्त्र, शिरकी रक्षा करनेवाले लोहके टोप और कवच आदिसे भरे हुए रथोंके समूह ठोक आयुधशालाओंकी शोभा धारण कर रहे थे ॥७२॥ रथोंमें सवार होनेवाले योद्धा धृत्यापि भारी-भारी शस्त्रोंको रथोंपर रखकर जा रहे थे तथापि

१ वीरभटाः । २ शूरवीरश्च विक्रान्तो भरहचारभटो मतः ३ हृति हलायुधः । २ नानादेशः । ३ भूम्यजः म०, द०, अ०, प०, स०, ल०, इ० । ४ समद्वीकृतम् । ५ ज्यासहितम् । ६ आताहृष्ट, टण्टकारं कृत्वा । स्फालया चक्षुः व०, द०, अ०, म०, प०, स०, ल०, इ० । ७ आर्कर्षयन्ति स्म । ८ भारेण सह । ९ प्रमातुमिच्छतः । १० धृतकवचाः । ११ प्रकर्षणोल्लासितव्यह्यगः । १२ शिविलः । १३ चलत् । १४ आसफालिते भूजाः । १५ रथगे उशूवताः । १६ शत्रून् प्रत्यक्षशालोकमप्नित्र । १७ दिव्यायुधः । १८ गरलगुडाद्यायुधः । १९ सामान्यायुधः । २० शीर्यकः । २१ शस्त्रशालानाम् । २२ वीर्याः । २३ रथिकाः । २४ रथसमूहेषु । २५ अतिशलाघनम् । अति भारयुक्तमिति ध्वनिः, अत्यर्थ वैर्ग गता इत्यर्थः ।

हस्तिनां पदस्थायै सुमभ योजिता नृपः । राजव्यैः सह युध्यानः कृताश्चाभिनिपादितः ॥७४॥  
 प्रदीपा राजयुध्यानः व्लृप्ताः पचिषु तायकाः । अद्यर्थ्यै<sup>१</sup> च मन्त्राहाहाः<sup>२</sup> सोत्रज्ञा स्तुरंगिणः ॥७५॥  
 आरचय्य वल्मीके दशानीक्षात्किरे नृपाः । दण्डसाङ्गत्यावृष्टेः<sup>३</sup> सुयोजितः ॥७६॥  
 चक्रिणोऽवधरै<sup>४</sup> कोऽस्य योऽस्मामि<sup>५</sup> स्याऽयतेऽल्पकः । भक्तिरंपा तु नः काले प्रभोर्यदनुसर्पणम्<sup>६</sup> ॥७७॥  
 प्रभोरवसरः स्यार्थः प्रसार्य नो यशोऽथनम् । विरोधिवल्मुखार्थ संवार्य एुल्पवनम् ॥७८॥  
 इष्टद्या विविधा देशा लक्ष्यव्याख्य जाग्रिषः । इन्द्रियात्रकिरेऽन्यौन्यं मयाः आर्थ्यरुद्धाहत्तः ॥७९॥  
 गिरिद्विगौऽयमुल्लङ्घो महायः सरितोऽस्त्रो<sup>७</sup> । इत्यपार्थिणः केऽविद्यालं<sup>८</sup> वशं मेविरं ॥८०॥  
 हृति नानाविधैभविः संजल्येष्व लघुत्थिताः । प्रस्तिताः सैनिकाः प्रापन् सेश्वराः<sup>९</sup> शिक्षिरं प्रभोः ॥८१॥

वे पैदल चलनेवाले सैनिकोंकी अपेक्षा अधिक गौरव अर्थात् भारीपन ( पक्षमें श्रेष्ठता ) को प्राप्त हो रहे थे । भावार्थ—पैदल चलनेवाले सैनिक अपने शस्त्र कन्धेपर रखकर जा रहे थे और रथोपर सवार होनेवाले सैनिक अपने सब शस्त्र रथोपर रखकर जा रहे थे तो भी वे पैदल चलनेवालोंकी अपेक्षा अधिक भारी हो रहे थे यह बड़े आचर्यकी दात है परन्तु अति गौरव शब्दका अर्थ अलिङ्ग श्रेष्ठता लेसेपर वह आश्चर्य दूर हो जाता है । पैदल सैनिकोंकी अपेक्षा रथपर सवार होनेवाले सैनिक श्रेष्ठ होते ही हैं ॥७३॥ राजाओंने हाथियोंके पैरोंकी रक्षा करनेके लिए जिन शूरवीर योद्धाओंको नियुक्त किया था वे अनेक राजाओंके माथ युद्ध करते थे और उन हाथियोंके चारों ओर विश्वान रहते थे अथवा समय-पर महावत भी बनाये जाते थे ॥७४॥ जो राजाओंके माथ भी युद्ध करनेवाले थे ऐसे श्रेष्ठ शूरवीर पैदल सेनाके सेनापति बनाये गये और जो शुद्धसवार कवच पहने हुए तथा लहराते हुए नदीके प्रवाहके समान थे उन्हें शुद्धसवार सेनाका सेनापति बनाया था ॥७५॥ जिनने ही राजा लोग अच्छी तरह योजित किये हुए दण्डव्यूह, मण्डलव्यूह, भोगव्यूह और अमृहतव्यूहसे अपनी सेनाकी रक्षा कर उसे देख रहे थे ॥७६॥ इस चक्रवर्तीका ऐसा कार्य है जिसका हम तुच्छ लोग समरण भी कर सकते हों अर्थात् कार्यका सिद्ध करना तो दूर रहा उसका स्मरण भी नहीं कर सकते, फिर भी हम लोग जो स्वामीके पीछे-पीछे चल रहे हैं सो यह हम लोगोंकी इस समयपर होने वाली भक्ति ही है । हम लोगोंको स्वामीका कार्य मिद्द करना चाहिए, अपना धर्माधीन धन फैलाना चाहिए, शशुओंकी सेना दूर हटानी चाहिए, पुरुषार्थ धारण करना चाहिए, अनेक देश देखने चाहिए और विजयके अनेक आशीर्वाद प्राप्त करने चाहिए, इस प्रकार प्रशंसनीय उदाहरणोंके द्वारा योद्धा लोग परस्परमें बातचीत कर रहे थे ॥७७-७९॥ यह दूर्गम पर्वत उल्लंघन करना है और दीनमें बड़ी-बड़ी नदियाँ पार करती हैं इस प्रकार अनेक विद्व-बाधाओंका विचार करते हुए कितने ही लोग आगे नहीं जाता ही अच्छा समझते थे ॥८०॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके भावों और परस्परकी बातचीतके माथ जलदी उठकर जिन्होंने प्रस्थान किया है ऐसे सैनिक लोग अपने-अपने स्वामियोंसहित चक्रवर्तीके शिविरमें जाए हुए ॥८१॥

<sup>१</sup> अश्वसमूहे । <sup>२</sup> सक्रवचाः । <sup>३</sup> ऊमिसमानाः । <sup>४</sup> दण्डाशीति चत्वारि व्यूहमेश्वरामानि । अशाभिष्मानम्-<sup>५</sup> तिर्यग्कृतिस्तु दण्डः स्याद् भोगोऽन्यावृत्तिरेव च । मण्डलं सर्वतो दृत्तिः प्रागवृत्तिरसंहृतः । <sup>६</sup> समयः । <sup>७</sup> समर्थते द०, ल०, अ०, प०, ह०, स० । <sup>८</sup> अनुवर्तनम् । <sup>९</sup> प्रापणीयः । <sup>१०</sup> ऊचिरे । <sup>११</sup> मध्ये मध्ये । <sup>१२</sup> वाहनरहितत्वम् अथवा अगमनम् । <sup>१३</sup> निजस्वामिसहितः ।

प्रवेलुः सर्वसामग्रया नृपाः संभूतकोष्ठिकाः । प्रभोष्ठिवरं जयोषोगमाकलय्याहि भाचलम् ॥८२॥  
 भट्टर्लाङ्कुटिकैः३ केचिद्दृष्टता लालाटिकैः४ परे । नृपाः पश्चात्कृतानीका विभोर्निकटभाययुः ॥८३॥  
 समन्वादिति सामन्तैरापत्तिः सर्साधनैः । समिद्धशासनधक्री समेत्य जयकारितः५ ॥८४॥  
 सामवाचिकै सामन्तासमाज्ञरिति सर्वतः । सरिदोषैरिचाम्भोधिरापूर्यते विभोर्बैलम् ॥८५॥  
 सवनः६ सावनिः सोऽप्तिः परितो रूधे वलैः । जिनजन्मोत्सवे मेहरनीकैरिवै नाकिनाम् ॥८६॥  
 विजयाहर्वचिलप्रस्थाः७ विभोरध्यासिता वलैः । स्वर्गावासशिवं तेनुर्विनक्षैर्नृपमन्दिरैः८९ ॥८७॥  
 प्रक्षेपितैर्धै विभूक् प्रहैविततुरं गमम् । प्रकृहितगं तैन्यं अवनिसादकरोदै९ गिरिम् ॥८८॥  
 बलध्वानं गुहारन्धैः प्रतिशुद्धै१० सुद्धहन् । सोऽप्तिरुद्धिरुक्तद्वीधौ११ ध्रुवं कूरकारमातनोत् ॥८९॥  
 अन्नान्तरे उवलन्मौलिप्रभापित्तरिताम्भरः । दद्वते प्रभुणा व्योऽप्ति गिरेरवतरता सुरः ॥९०॥  
 स ततोऽवतरन्नद्वैर्वर्षमौ१२ सानुचरोऽभरः । सवनः१३ कल्यशाखीव लसदाभरणांशुकः ॥९१॥

भरतेश्वरका हिमवान् पर्वत तक विजय प्राप्त करनेका उद्योग बहुत समयमें पूर्ण होगा ऐसा समझकर राजा लोग सब प्रकारकी सामग्रीसे कीठे भर-भरकर निकले ॥८२॥ कितने ही राजा लाठी धारण करनेवाले योद्धाओंके साथ, और कितने ही ललाटकी, और देखनेवाले उत्तम सेवकोंके साथ, अपनी सेना पीछे छोड़कर भरतके निकट आये ॥८३॥ इस प्रकार अपनी-अपनी सेना सहित चारों ओरसे बाते हुए अनेक सामन्तोंने एक जगह इकट्ठे होकर, जिनकी आगा१४ संज्ञा जगह देवीव्यक्तिमान है ॥ऐसे१५ व्यक्तित्वोंका जय-जयकर किया ॥८४॥ जिस प्रकार नदियोंके समूहसे समुद्र भर जाता है उसी प्रकार सहायता देनेवाले सामन्तोंके समूहसे भरतकी सेना सभी ओरसे भर गयी थी ॥८५॥ जिस प्रकार भगवान्के जन्म-कल्याणके समय वन और भूमि सहित सुमेरु पर्वत देवोंकी सेनाओंसे भर जाता है उसी प्रकार वह विजयार्थ पर्वत भी वन और भूमिसहित चारों ओरसे सेनाओंसे भर गया था ॥८६॥ भरतकी सेनाओंसे अधिष्ठित हुए विजयार्थ पर्वतके शिखर अलग-अलग तने हुए राजमण्डपोंसे स्वर्गकी शोभा धारण कर रहे थे ॥८७॥ जिसमें चारों ओरसे रथ चल रहे हैं, घोड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी गरज रहे हैं ऐसी उस सेनाने उस विजयार्थ पर्वतको एक शब्दोंके ही अधीन कर दिया था अर्थात् शब्दमय बना दिया था ॥८८॥ गुफाओंके छिद्रोंसे जिसकी प्रतिष्ठनि निकल रही है ऐसे सेना-के शब्दोंको धारण करता हुआ वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मातो सेनासे घिर जानेके कारण फू फू शब्द ही कर रहा हो अर्थात् रो ही रहा हो ॥८९॥

इसी बीचमें भरतने, देवीप्यमान मुकुटकी कान्तिसे जिसने आकाशको भी पीला कर दिया है और जो पर्वतपर-से नीचे उतर रहा है ऐसा एक देव आकाशमें देखा ॥९०॥ जिसके आभूषण तथा वस्त्र देवीप्यमान हो रहे हैं ऐसा वह देव अपने सेवकोंसहित उस पर्वतसे उत्तरता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो जिसके आभूषण और वस्त्र देवीप्यमान हो रहे हैं ऐसा वनसहित

१ भूपाः ल० । २ लण्डुलादिभारवाहकबलीबद्धाः । ३ लकुटम् आयुर्ध येषां तैः । ४ प्रभोभविदशिभिः 'लालाटिकः प्रभोभविदशी कार्यक्षमश्च यः' इत्यभिधानात् । ५ जयकारं नीतः संजातजयकारो वा जय जयेति स्तुत इति पातत् । ६ मिलित । ७ वनसहितः । ८ अवनिसहितः । ९ सैन्यः । १० सानवः । ११ मधुकः ल० । १२ सिहनादिति 'इवेदा तु सिहनादः स्थात्' इत्यभिधानात् । १३ शब्दमयमकरोत् । १४ प्रतिष्ठनिभूतम् 'सती प्रतिशुतप्रतिष्ठाने' इत्यभिधानात् । १५ उल्कटसेनानिरोषः । १६ अनुचरैः सहितः । १७ वनेन सहितः

दिव्यः प्रमाणयः<sup>१</sup> कोऽपि संमुख्ये<sup>२</sup> किमस्त्रे । तदिष्पूजः किमन्त्यचिरिति<sup>३</sup> इष्टः क्षणं अनैः ॥१२॥

किमत्येतद्विज्योतिरिष्यादावविशेषतः । पश्चादवश्यकन्त्वा प्रव्यक्तपुरुषाकृतेः ॥१३॥

कृतमालधूसिन्यक्षयै<sup>४</sup> कृतमालः स चरणैः । कृतमाल इष्टोकुलो निदर्थे<sup>५</sup> प्रभुणाऽव्रतः ॥१४॥

सप्रणामं च संग्रासं तं वीक्ष्य सहसा विभुः । वथार्हप्रतिपत्त्याऽस्मा शासनं प्रत्यपादयन् ॥१५॥

प्रभुणाऽनुमतश्चायं कृतासनपरिमहः । क्षणं विभिसिमयं पश्यन् धामा<sup>६</sup> मुख्याति<sup>७</sup> भानुषम् ॥१६॥

संभाषितश्च संब्राजा पूर्वी<sup>८</sup> पूर्वाद्यमाधिणा । सुरः प्रचक्रमे वक्तुमिति प्रश्यवद्वृचः ॥१७॥

क वयं क्षुद्रका वेदाः क मधान् दिव्यमानुषः । पौत्रन्यै<sup>९</sup> मुचितं मन्ये<sup>१०</sup> वाचाटयति<sup>११</sup> नः स्फुटम् ॥१८॥

आयुष्मन् कुशलं प्रदु जिहीमः<sup>१२</sup> शासितुस्तव । एवदायत्ता वतः<sup>१३</sup> कृत्स्ना जगतः कुशलकिया ॥१९॥

लोकस्य कुशलाधाने<sup>१४</sup> निरुद्धं<sup>१५</sup> यस्य कौशलम् । कुशलं<sup>१६</sup> दक्षिणस्त्राऽस्य वाहोस्ते क्षमा जिगीषतः १००

देवानां प्रिय देवस्वर्य तवाशेषजगत्यात् । नामैव तु वयं देवा जातिमात्रकृतोक्त्वः ॥१०१॥

गीर्वाणा<sup>१७</sup> वयमन्यत्र<sup>१८</sup> जिगीषी शितगीशशरा<sup>१९</sup> । त्वयि कुण्ठगिरो<sup>२०</sup> जाताः प्रदत्तलद्वगर्भग्रन्थदाः १०२

कल्पवृक्ष ही हो ॥१९॥। क्या कोई दिव्य प्रभाका समूह आकाशमें कैल रहा है ? अथवा क्या बिजलीका समूह है ? अथवा क्या अग्निकी ज्वाला है ? इस प्रकार अनेक कल्पनाओं-से लोगोंने जिसे क्षण-भर देखा था जो पहले तो यह कोई कान्तिका समूह है इस प्रकार सामान्य रूपसे देखा गया था, परन्तु बादमें अवयवोंके प्रकट होनेसे जिसका पुरुषका-सा आकार साफ-रूपसे देखा गया था, जो अपना कृतमाल नाम प्रकट करनेके लिए चम्पाके फूलोंकी माला पहने हुआ था और जो उससे फूले हुए कृतमाल वृथके समान जान पड़ता था ऐसे उस देवको चक्रवर्ती भरतने अपने सामने खड़ा हुआ देखा ॥१९२-१४॥। आनेक साथ ही नमस्कार करते हुए उस देवको अकस्मात् अपने सामने देखकर भरतने उसे यथायोग्य सत्कारके साथ आसन दिया ॥१९५॥। भरतकी आङ्गासे वह देव आसनपर बैठा और उनके लोकोत्तर तेजको देखता हुआ क्षण-भरके लिए आश्चर्यं करने लगा ॥१९६॥। प्रथम ही, पहले बोलनेवाले सन्नाद् भरतने जिसके साथ बातचीत की है ऐसा वह देव नीचे लिखे अनुसार विनयसहित वचन कहने लगा ॥१९७॥। हे देव, हम क्षुद्र देव कही ? और आप दिव्य मनुष्य कही ? तथापि मैं ऐसा मानता हूँ कि हम लोगोंका यथायोग्य देवपना ही हम लोगोंको स्पष्ट रूपसे वाचालित कर रहा है अर्थात् जबरदस्ती बुलवा रहा है ॥१९८॥। हे आयुष्मन्, आप-जैसे शासन करनेवालोंका कुशल-मंगल पूछनेके लिए हम लोग लज्जित हो रहे हैं वयोंकि इस जगत्का सब तरहका कल्याण करना आपके ही अधीन है ॥१९९॥। जगत्का कल्याण करनेके लिए जिसकी चतुर्दश प्रसिद्ध है और जो समस्त पृथिवीको जीतना चाहती है ऐसी आपकी इस दाहिनी भुजाकी कुशलता है न ? ॥२००॥। हे देव, आप देवोंके भी प्रिय हैं, आपने समस्त जगत्को जीत लिया है इसलिए यह देवपना आपके ही योग्य है हम लोग तो अत्यन्त तुच्छ देव हैं—केवल देव जातिमें जन्म होनेसे ही देव कहलाने लगे हैं । यहाँ पर 'देवानां' 'प्रिय' ये दोनों ही पद पृथक्-पृथक् हैं, अथवा ऐसा

१ प्रमाणंतानः । २ व्याजोति । ३ अग्निश्चामतिकान्तः । ४ कृतमालनामा । कृतमाल वारग्रधः । 'आरग्रधे राजवृक्षः शम्भाकचतुर्गुलः । आरेवत्प्राविष्ठातकृतमालसुवर्णकाः ॥' इत्यमिष्ठानात् । ५ दुर्यते स्म । ६ प्रापयत् । ७ तेजः । ८ चक्रिणः । ९ मानुषमतीतम् । १० संस्कृतभाषिणा । पूर्वाभिः—अ०, प०, स०, द०, ल० । ११ पूर्वानाथाः अपत्यं पौत्रनः तस्य भावः पौत्रन्यम् । देवत्वमित्यर्थः । १२ तूनम् । १३ वाचालं करोति । १४ ऊज्जामहे । १५ यस्मात् कारणात् । १६ क्षेमकरणे । १७ प्रलयातम् । १८ धेमं किम् । १९ गीरेव शापानुष्ठह-समर्था वाणा । साधर्वं नियहानुष्ठयोरेकाभिति गीर्वणाः देवा इत्यर्थः । २० जिगीषोः त्वस्तः अन्यत्र । २१ शीत-समर्था वाणा । मन्दानामीश्वरा इत्यर्थः । शीते वेरते एते शीताशयः तेषामीश्वरा कुक्षियासु मन्दानामीश्वरा इत्यर्थः । 'मूढाल्पापद्मनिर्माण्याः । मन्दाः ह्युः ।' इत्यमरः । २२ मन्दवचसः ।

१ राजोनिस्वर्णि राजेन्द्र राजेन्नन्यगामिनी । अवण्डमण्डलां कुरुस्तो षट्यष्टुं शो नियस्तुति ॥ १०३ ॥  
 २ चक्ररथना द्वचलत्येष प्रतापस्तव तुःयहः । वथने दृष्टवीर्तिश्च दृष्टिरत्नलाद् विभोः ॥ १०४ ॥  
 ३ ईशितव्या॑ मर्ही कुरुस्ता न्यन्यस्यमर्थाश्चरः । निभिरवदिरैश्चय॑ कः परस्त्वादेषः प्रभुः ॥ १०५ ॥  
 ४ अमन्येषाकिनी लोकं शशर्क्षिरनगौला॑ । सरस्वती च वाचाला कथं ते ते॑ प्रिये॑ प्रभोः ॥ १०६ ॥  
 ५ इति प्रतीतमप्यहास्ये च्वां यभाग्यिनु॑ दिवः । च्वद्वल॑ च्वानसंक्षेपमात्यस्यात् चयमागता॑ ॥ १०७ ॥  
 ६ कुरुस्ता दयमस्याद॒ लयवद्व॑ दिविवालिनः । भूभिरेतावती॑ तावत् त्वया नेत्रावतारिता॑ ॥ १०८ ॥  
 ७ विष्णुष्टुतान्तराद्यावधायिनां व्याप्तता॑ त्रयम् । मंत्रिधेयास्यवर्त्त॑ दानीं प्रत्यासन्त्वा॑ यदात्मयः ॥ १०९ ॥  
 ८ विदि मां गिर्जयाद्वद्वा॑ मर्जजस्तुताश्चनम् । कृतमालं गिरेस्य कुटेऽसुप्तिम् कृतालयम् ॥ ११० ॥  
 ९ मयि गुरुशत्कृते॑ देव स्त्रीकृतोऽनं सहाचलः । सगुह्याकाननस्यास्य गिरेंर्गमंविद्यहम् ॥ १११ ॥  
 १० गर्जजोऽहं गिरेंगम्मी॒ य व्यप्तिमिद्यसुद्यने॑ । द्वीपाक्षिप्तवक्षं कुरुस्ते॑ नास्माकं कोऽप्यरोचरः ॥ ११२ ॥

अर्थ करना चाहिए कि हे प्रिय, समस्त जगन्को जीतनेसे आप देवोंके भी देव हैं ॥ १०१ ॥  
 हम गीवणि हैं और आपके अलिखित विजयकी दृच्छा करनेवाले किसी दूसरे पुरुषके विषय-  
 में व्यापि हम वचनहारी ही हैं तथा लोगोंको लाला करनेवाले हैं, लाला पि व्यापके विषयमें हम लोग  
 कुण्ठितबन्न हो रहे हैं, हमारा अहंकार जाता रहा है और हमारे वचन गदगद स्वरसे निकल  
 रहे हैं ॥ १०२ ॥ हे राजेन्द्र, आप छह खण्डोंमें बैठी हुई समस्त प्रदेशासहित इस सम्पूर्ण पृथिवी-  
 का शासन करते हैं इसलिए दूसरी जगह नहीं रहनेवाली राजोवित आपमें ही सुशोभित हो  
 रही है—आप ही वास्तवमें राजा हैं ॥ १०३ ॥ हे विभो, चक्ररत्नके बहानेसे यह आपका  
 दुःसह प्रसाप देदीथमन हो रहा है और दण्डरत्नके छलसे आपकी दण्डनीति प्रसिद्ध हो रही  
 है ॥ १०४ ॥ यह समस्त पृथिवी आपके अधीन है—पालन करने योग्य है, आप इसके स्वतन्त्र  
 ईश्वर हैं और निधियाँ तथा रत्न ही आपका ऐश्वर्य है इसलिए आपके समान ऐश्वर्यशाली  
 दूसरा कीन है ? ॥ १०५ ॥ हे प्रभो, आपकी कीर्ति स्वच्छन्द हीकर समस्त लोकमें सदा  
 अकेली किरा करती है और सरस्वती वाचाल है अथवा बहुत बोलनेवाली है किर भी न जाने  
 ये दोनों ही स्त्रियाँ आपको प्रिय क्यों हैं ? ॥ १०६ ॥ इस प्रकार जिनका माहात्म्य प्रसिद्ध  
 है ऐसे आपकी सेवा करनेके लिए हम लोग आपकी सेवाके शब्दके शोभसे भयभीत हो आकाश-  
 से यहाँ आये हैं ॥ १०७ ॥ हे देव, हम लोग इस पर्वतके शिखरपर रहते हैं और  
 अपने स्थानसे कभी भी विचलित नहीं होते परन्तु इस भूमिपर आपके हारा ही अवतारित हुए  
 हैं—उतारे गये हैं ॥ १०८ ॥ हम लोग दूर-दूर तक अनेक स्थानोंमें रहनेवाले व्यन्तर हैं अब आप  
 हम लोगोंको अपने समीप रहनेवाले सेवक बना लीजिए ॥ १०९ ॥ आप मुझे इस पर्वतके इस  
 शिखरपर रहनेवाला और विजयार्थ पर्वतका मर्म जाननेवाला कृतमाल नामका देव जानिए ॥ ११० ॥ हे देव, आपने मुझे बश कर लिया है इसलिए इस महापर्वतको अपने अधीन हुआ  
 ही समझिए, क्योंकि मैं गुफाओं और बनसप्तका लोक नहीं हूँ यह बहुत ही थोड़ा कहा गया  
 है क्योंकि समस्त द्वीप और समुद्रोंके भीतर ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है जो हम लोगोंका जाना

१ राजेति शब्दः । २ शासनि । ३ ऐश्वर्यवती भवितुं योग्या । ४ प्रतिवर्धरहिता । ५ कीर्तिसरस्वत्यौ ।  
 ६ प्रियतमे (बभूत्वम्) । ७ सेवितुम् । ८ स्वस्थानात् । ९ एतावदभूमिर्मन्तम् । 'यावत्तावच्च साक्ष्येश्वरी  
 मानेऽधारणे' । १० मंविवाप्यवितुं योग्या । ११ त्रदधीने कृते ।

‘बटहथानवटस्थानै कृष्टस्थान कोटरोटजानै ।’<sup>१</sup> अभपाटान् क्षपाटांश्च विद्धि नः सार्वसर्वगान्<sup>२</sup> ॥ ११३॥  
हुति प्रशान्तमीजहिं<sup>३</sup> वचः संभाष्य सादरम् । सोऽप्यरे विर्ततारामै भूषणानि चकुर्दशा<sup>४</sup> ॥ ११४॥  
तान्यनन्धोपलम्ब्यानि प्राप्य चक्री परा मुदम् । भेजे<sup>५</sup> ताकृतसत्कारैः सुरः सोऽप्याप संमदम् ॥ ११५॥  
तं रूप्यादिगुहाद्वारप्रवेशोपाथक्षमिनम् । प्रचिसर्ज्य स्वसेनाम्यं प्राहिणोप्र प्रभुरप्रतः ॥ ११६॥  
स्वमुदाटय गुहाद्वारं यावक्षिवर्ति<sup>६</sup> सा गुहा । तावत् पाश्चात्यमखण्डस्य<sup>७</sup> निर्जयाथ कुरुषमम् ॥ ११७॥  
हुति चक्रधरादेशो<sup>८</sup> सुप्ता माल्यमिक्षीद्वाहन् । कृतमालामरोद्दिष्टकृत्स्नोपायप्रयोगवित् ॥ ११८॥  
कृती कतिपयैरेष तुरगैः सपरिच्छुदैः । प्रतस्थे चाजिरक्षेन दण्डपाणिशमूपतिः ॥ ११९॥  
किञ्चिचान्तरमुलुक्ष्य स सिन्धोर्वन्वेन्द्रिकाम् । विगाहा विजयाद्वृत्य संप्राप्त तटवेदिकाम् ॥ १२०॥  
तत्सोपनेन रूप्याद्वेराहम् जगतीतलम् । प्रत्यक्ष्यतो<sup>९</sup> गुहोस्यंगे<sup>१०</sup> मासमाद चमूपतिः ॥ १२१॥  
जयसाक्षकवर्तीति सोऽश्वरक्षमधिष्ठितः<sup>११</sup> । दण्डेन<sup>१२</sup> ताढयामास गुहाद्वारं स्फुरदध्वनिः ॥ १२२॥  
दण्डरत्नमिवासेन गुहाद्वारे निरग्नेले<sup>१३</sup> । तदूगमाद् बलवानप्मा निर्यातौ किल संततः<sup>१४</sup> ॥ १२३॥  
दधहण्डाभिधातोर्थं<sup>१५</sup> केङ्कारमरीपुटम्<sup>१६</sup> । सवेदनमिवास्वेदि<sup>१७</sup> निर्गतासु गुहोप्मणा ॥ १२४॥

हुआ न हो ॥ ११२॥ हे सार्व अथर्वि सबका हित करनेवाले, बटके वृक्षोंपर, छोटे-छोटे गढ़ोंमें, पहाड़ोंके शिखरोंपर, वृक्षोंकी खोलों और पत्तोंकी छोड़दियोंमें उद्धनेताले । तथा दिन और रात्रिमें अमण करनेवाले हम सोगोंको आप सब जगह जानेवाले समझिए ॥ ११३॥ इस प्रकार आदरसहित शान्त और ओजपूर्ण वचन कहकर उस देवने भरतके लिए चौदह आभूषण दिये ॥ ११४॥ जो किसी दूसरेको प्राप्त नहीं हो सकते थे ऐसे उन आभूषणोंको पाकर चक्रवर्ती परम हर्षको प्राप्त हुए और चक्रवर्तीके द्वारा किये हुए सत्कारोंसे वह देव भी अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुआ ॥ ११५॥ तदनन्तर विजयार्थं पर्वतकी गुफाके द्वारसे प्रवेश करनेका उपाय बतलानेवाले उस देवको भरत चक्रवर्तीने विदा किया और गुफाका द्वार खोलनेके लिए सबसे आगे अपना सेनापति भेजा ॥ ११६॥ चक्रवर्तीनि सेनापतिसे कहा कि तुम गुफाका द्वार उघाड़कर जबतक गुफा शान्त हो तबतक पश्चिम खण्डको जीतनेका उद्योग करो ॥ ११७॥ इस प्रकार चक्रवर्तीकी आज्ञाको मालाके समान मस्तकपर धारण करता हुआ और कृतमाल देवके द्वारा बतलाये हुए समस्त उपायोंके प्रयोगको जाननेवाला वह चतुर सेनापति कुछ धोड़े और सेनिकोंके साथ दण्डरत्न हाथमें लेकर अद्वरत्नपर आरूढ़ होकर चला ॥ ११८-११९॥ और कुछ धोड़ी दूर जाकर तथा सिन्धु नदीके बनकी वेदीको उल्लंघन कर विजयार्थं पर्वतके तटकी वेदीपर जा पहुँचा ॥ १२०॥ प्रथम ही वह सेनापति सोद्धियोंके द्वारा विजयार्थं पर्वतकी वेदिकापर चढ़ा और फिर पश्चिमकी ओर मुँहकर गुफाके आगे जा पहुँचा ॥ १२१॥ अद्वरत्नपर बैठे हुए सेनापतिने चक्रवर्तीकी जय हो इस प्रकार कहकर दण्डरत्नसे गुफाद्वारका ताङ्गन किया। जिससे बड़ा भारी शब्द हुआ ॥ १२२॥ दण्डरत्नकी चोटसे गुफाका द्वार खुल जानेपर उसके भीतरसे बड़ी भारी गरमी निकलने लगी ॥ १२३॥ दण्डरत्नके प्रहारसे उत्पन्न हुए क्रेङ्कार शब्दको धारण करते हुए दोनों किवाड़ ऐसे जान पड़ते थे मानो वेदनासे सहित होनेके

१ अपोधस्थान् । २ पातालस्थान् । ‘गतविटो भुवि इव च’ इत्यभिधानात् । इव अगतविटागादा भुवी विवरवाचका<sup>३</sup> इति कात्येनोक्तम् । ३ वृक्षदिवरस्यांशालासु जातान् ‘पर्णशालोद्गोद्दिविधानम्’ इत्यभिधानात् । ४ राक्षसेभ्योऽन्यान् । ५ क्षणा रात्रिः तस्यामदन्तीति क्षणाटा तान् राक्षसानित्यर्थ । ‘पलंरुषो रात्रिमटो रात्रिमटो जललोहितः’ इत्यभिधानात् । ६ सहितान् । ७ तेजोऽन्वितम् । ८ ददी । ९ तिलकादिचतुर्दशाभरणानि । १० चक्रिकृत । ११ उपशान्तिमेति । १२ पश्चिमखण्डस्य । १३ आज्ञाम् । १४ पश्चिमाभिमुखः । १५ समीपम् । १६ आरूढ़ । १७ दण्डरत्नेव । १८ अग्नलरहिते सति । १९ विस्तुतः । २० इवनिविषेषः । २१ कवाटपुगलम् ‘कटावमररं तुल्ये’ इत्यभिधानात् । २२ स्विद्यति स्म स्वेदितमित्यर्थः ।

उद्गटितकवार्टन द्वारेणोपमाणसुद्भवन् । रराज राजतः शैलो लब्धोरुच्चासदिचरादिव ॥१२५॥  
 कवाटयुद्धिक्षेषादुच्चार महान् ध्वनिः । दण्डेनाभिहतस्यादेराकोश इव विस्फुरन् ॥१२६॥  
 गुहोध्याणा स नाइलेवि<sup>१</sup> विद्वरभपवाहितः<sup>२</sup> । तरश्चिनाऽश्वरकेन वेष्वतमिति रक्षितः ॥१२७॥  
 निषेतुरमरुर्णीणां दक्षेष्वैः सममम्बरात् । सुमनःप्रकराद्यतस्मिन् हासा इव जयमित्यः ॥१२८॥  
 तद्वेदीं ससोपानां रूप्यादेः समर्तायिवान् । सोऽभ्यैत<sup>३</sup> सतोरणो लिङ्घोः पश्चिमां वनवेदिकाम् ॥१२९॥  
 वेदिको लामतिकम्य संजगाहे<sup>४</sup> परा<sup>५</sup> भुषम् । नानाक्षरपुरामसीमारामैर्लङ्घताम् ॥१३०॥  
 प्रविद्मात्र एवास्मिन् ग्रजास्त्रासमुपाययुः । सम<sup>६</sup> द्वारगवैस्त्वा घटन्ते स्म<sup>७</sup> पलायितुम् ॥१३१॥  
 केचित् कृतवियो धीरा: साधीः पुण्याक्षसादिभिः । प्रत्यग्रहीषुरभ्येत्य सकलं वलनायकम् ॥१३२॥  
 न भेतव्यं न भेतव्यमाद्यमाद्यं यथासुखम्<sup>८</sup> । हृत्य<sup>९</sup> स्वाज्ञाकरा<sup>१०</sup> विष्वग्भेषुराभ्यासितप्रजाः ॥१३३॥  
 म्लेच्छलपद्मखण्डाज्ञः परिक्रमन् प्रदक्षिणम् । तत्र तत्र विमोराक्षां म्लेच्छराजैरजिप्रहत<sup>११</sup> ॥१३४॥  
 हृदं वक्षधरथेत्रं स चैष निकटे<sup>१२</sup> प्रसुः । तमाराधयितुं यूयं व्यरध्वं सह साधनैः ॥१३५॥  
 भरतस्यादिराजस्य चक्रिणोऽप्रतिशासनम्<sup>१३</sup> । शासनं शिरसा दर्श<sup>१४</sup> यूयमित्यन्वशास्त्रं तान् ॥१३६॥

कारण चिल्ला ही रहे हों, उन्हें दुखसे पसीना ही आ गया हो और गुफाके भीतरकी गरमी-से उनके प्राण ही निकले जा रहे हों ॥१२४॥ जिसके किवाढ़ सुल गये हैं ऐसे द्वारसे गरमी-को निकालता हुआ वह विजयार्थं पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो बहुत दिन बाद उसने उच्छ्रवास दर्शन<sup>१५</sup> ही लिया है ॥१२५॥ उसके कियाद्वाकि खुलाई से एक बड़ा भारी शब्द हुआ था और वह ऐसा जान पड़ता था मानो दण्डरत्नके द्वारा ताढ़ित हुए पर्वतके रोनेका शब्द ही हो ॥१२६॥ वेगशाली अश्वरत्न जिसे बहुत दूर तक भगा ले गया है और देवताओंने जिसकी रक्षा की है ऐसे उस सेनापतिको गुफाकी गरमी छू भी नहीं सकी थी ॥१२७॥ उस समय उस सेनापतिपर देवांगनाओंके कटाक्षोंके साथ-साथ आकाशसे फूलोंके समूह पड़ रहे थे और वे जयलक्ष्मी-के हासके समान जान पड़ते थे ॥१२८॥ सेनापति सीदियोंसहित विजयार्थं पर्वतके किनारे-की वेदीका उल्लंघन करता हुआ तोरणसहित सिन्धु नदीके पश्चिम ओरवाली वनकी वेदिका के समुख पहुँचा ॥१२९॥ उसने उस वेदिकाका भी उल्लंघन कर अनेक खानि, पुर, ग्राम, सीमा और बाग-बगीचोंसे सुन्दर म्लेच्छखण्डकी उत्तम भूमिमें प्रवेश किया ॥१३०॥ उस भूमिमें सेनापतिके प्रवेश करते ही वहाँकी समस्त प्रजा घबड़ा गयी, उसमें-से कितने ही लोग स्त्रियों तथा गाय-भैंस आदिके साथ भागनेके लिए तैयार हो गये ॥१३१॥ कितने ही बुद्धिमान् तथा धीर वीर पुरुष पवित्र अक्षत आदिका बना हुआ अर्ध लेकर सेनासहित सेनापतिके समुख गये और उसका सत्कार किया ॥१३२॥ अरे डरो मत, डरो मत, जिसको जिस प्रकार सुख हो उसी प्रकार रहो इस प्रकार प्रजाको आश्वासन देते हुए चक्रवर्तीके सेवक चारों ओर घूमे थे ॥१३३॥ अखण्ड आज्ञाको धारण करनेवाला वह सेनापति प्रदक्षिणा रूपसे म्लेच्छखण्ड में घूमता हुआ जगह-जगह म्लेच्छ राजाओंसे चक्रवर्तीकी आज्ञा स्वीकृत करवाता जाता था ॥१३४॥ सेनापतिने म्लेच्छ राजाओंको यह भी सिखलाया कि यह चक्रवर्तीका क्षेत्र है और वह प्रसिद्ध चक्रवर्ती सभीप ही है इसलिए तुम सब अपनी-अपनी सेनाओंके साथ उनकी सेवा करनेके लिए शोष्रता करो । चक्रवर्ती भरत इस युगके प्रथम अथवा सबसे मुख्य राजा हैं इसलिए कभी भूग नहीं होनेवाली उनकी आज्ञाको तुम सब अपने भस्तकपर धारण करो ॥१३५-१३६॥

१ न आलिङ्गितः । २ अपनीतः । ३ अरुपमच्छत् । ४ प्रविशति स्म । सजगाहे ल० । ५ पश्चिमाम् ।  
 ६ ( इन्द्रसमासः ) कलत्रषेनुभिः । ७ चेष्टन्ते स्म । ८ यथासुखं तिष्ठत । ९ सेनान्यः । १० मृत्याः । ११ अप्राह-  
 यत् । १२ समीपे आस्ते । १३ न विद्यते प्रतिशासनं यस्य । १४ भारयत । १५ शास्ति स्म ।

जाता वयं चिरादृश सनाथा हनुदाशिषः१ । केचिक्कधरस्याशामशाद२ प्रत्यपलसत३ ॥१४७॥  
 संधिविग्रहयानादिषाङ्गुण्यकुतविषमाः । बलात् प्रमाणिताः केचिद् ऐश्वर्यस्तद्वृषिलाः ॥१४८॥  
 कांशिरुगांशितान् म्लेच्छानवस्कन्दनिरोधनैः४ । सेनानीवैशमानिन्ये नमस्यज्ञोऽधिकं धतः५ ॥१४९॥  
 केचिद् बलैरक्षण्या६ स्तथीडों सोहुमक्षमाः । शासने चक्रिणस्तस्युः सनेहो नार्पलितात् खलात् ॥१४०॥  
 हनुपार्यैरपायज्ञः साधयन्त्वलेच्छभूमुजः । तेभ्यः कन्यादिरक्षानि प्रभोभौग्यान्युपाहरम् ॥१४१॥  
 धर्मकर्मत्रहिर्भूता७ हन्यमीं म्लेच्छका मताः । अन्यथाऽन्यैः८ समाचारैरायविर्तम्९ ते समाः ॥१४२॥  
 इति प्रसाध्य तां भूमिमभूमि१० धर्मकर्मणाम् । म्लेच्छराज्ञबलैः साहौं सेनानीन्यैवृत्तत् पुनः ॥१४३॥  
 राज राजराजस्थ साक्षरत्वचमूर्णिः । सिद्धिविजयी जैद्रः प्रताप॑ इव मूर्तिमान् ॥१४४॥  
 सहोरणामतिकम्य स लिन्धोवैर्वदेविकाम् । विगाहदृष्ट॑२ ससोपानां रूप्याद्वैस्तवेदिकाम् ॥१४५॥  
 आरुदो जगतीमद्वैर्यूदोरस्को३४ भग्नभुजः । वद्भिर्मालैः प्रशान्तोऽप्य सोऽध्यवासीद्४ गुहासुखम्५ ॥१४६॥  
 तत्रासीनश्च संशोध्य अङ्गपायं गुहोहरम् । कृतारक्षाविधिः सम्यक् प्रायावाचिष्ठविर॑६ प्रमोः ॥१४७॥

'आज हम लोग बहुत दिनमें सनाथ हुए हैं इसलिए जोर-जोरसे आशीर्वदि देते हुए कितने ही बुद्धिमान् लोगोंने चक्रवर्तीको आज्ञा स्वीकृत की थी ॥१४७॥ जिन्होंने सन्धि, विग्रह और यान आदि छह गुणोंमें अपना पराक्रम दिखाया था और जो थोड़े-से ही ऐश्वर्यसे उन्मत्त हो गये थे ऐसे कितने ही राजाओंसे सेनापतिने जबरदस्ती प्रणाम कराया था ॥१४८॥ किलेके भीतर रहनेवाले कितने ही म्लेच्छ राजाओंको सेनापतिने उनका चारों ओरसे आदागमन रोककर वश किया था सो ठीक ही है क्योंकि अज्ञानी लोग अधिक दुःखी किये जानेपर ही नमोभूत होते हैं ॥१४९॥ कितने ही राजा म्लेच्छकोंके बहारण अक्षिरक्त उससे उत्पन्न हुए दुःखको सहन करनेके लिए असर्थ हो चक्रवर्तीकि शासनमें स्थित हुए थे, सो ठीक ही है क्योंकि दिना पेले खल अर्थात् खलीसे स्नेह अर्थात् सेल उत्पन्न नहीं होता ( पञ्चमें बिना दुःखी किये हुए खल अर्थात् दुर्जनसे स्नेह अर्थात् प्रेम उत्पन्न नहीं होता ) ॥१५०॥ इस प्रकार उपायोंको जाननेवाले सेनापति-ते अनेक उपायोंके द्वारा म्लेच्छ राजाओंको वश किया और उनसे चक्रवर्तीकि उपभोगके योग्य कन्या आदि अनेक रत्न भेटमें लिये ॥१५१॥ ये लोग धर्मक्रियाओंसे रहित हैं इसलिए म्लेच्छ माने गये हैं, धर्मक्रियाओंके सिवाय अन्य आचरणोंसे आर्यखण्डमें उत्पन्न होनेवाले लोगोंके समान हैं ॥१५२॥ इस प्रकार वह सेनापति, धर्मक्रियाओंसे रहित उस म्लेच्छभूमिको वश कर म्लेच्छराजाओंकी सेनाके साथ फिर बापस लौटा ॥१५३॥ जिसने दिविजय कर लिया है, सबको जीतना ही जिसका स्वभाव है, और जो अश्वरत्नसे सहित है ऐसा वह राजाभिराज भरतका सेनापति ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो मूर्तिमान् प्रताप ही हो ॥१५४॥ तोरणोंसहित सिन्धु नदीके बनकी वेदीको उल्लंघन कर वह सेनापति सीढियोंसहित विजयार्थ पर्वतके बनकी वेदीपर जा चढ़ा ॥१५५॥ जिसका वक्षःस्थल बहुत बड़ा है और जिसकी भुजाएं बहुत लम्बी हैं ऐसा वह सेनापति पर्वतकी वेदिकापर चढ़कर छह महीनेमें जिसकी गरमी शान्त हो गयी है ऐसी गुफाके द्वारपर ठहर गया ॥१५६॥ वहाँ ठहरकर उसने अनेक विघ्नों-से भरे हुए गुफाके भीतरी भागको शुद्ध (साफ) कराया और फिर अच्छी तरहसे उसकी रक्षा

१ उदगताशीर्वैवनः । २ निष्कपटवृत्तयो भूत्वा । ३ अद्गीकारं कृतव्यतः । ४ धाटीनिरोधनैः । निष्पहस्तु निरोधः स्याद्' हनुमरः । अभ्यासावनात्मकनियहैः । उक्तं च विद्यधृदामणी 'अभ्यवस्कन्दनं त्वर्म्यासाधनम्' ( वेरेका नाम ) । ५ अधिकं पीडितो भूत्वा । ६ वेष्टितः । ७ विवाहादिभिः । ८ पुण्यभूम्या आर्यखण्ड-नेत्रव्यैः । 'आर्यवित्तः पुण्यभूमिः' इत्यभिधानात् । ९ अस्थानम् । १० प्रविष्टः । ११ विशालवक्षस्थलः । १२ तस्थी । १३ गुहाद्वारम् । १४ सक्ष्यावारं प्रत्यगात् ।

अथ संसुखमागच्य १ सानीकैतृपसत्त्वैः । प्रत्यगुद्भूत सेनाओः सज्यानकनिःहृत्वनम् ॥ १४८ ॥  
 विभक्तोरणामुखैः प्रचलकेतुमालिकाम् । महावीरीमतिक्रम्य प्राविश्वत् स नृपालयम् ॥ १४९ ॥  
 तुरंगमवरादवृत्तम् कृताचततरणः कृती । प्रभोनृपासनस्थस्य प्रापदास्थानमण्डपम् ॥ १५० ॥  
 दूरानतचलन्मौलिसंदृष्टकरुदुमलः । प्रणनाम प्रमुँ सम्यैर्वीक्ष्यमाणः सविसिमतैः ॥ १५१ ॥  
 सुखैर्जयकरेण म्लेच्छराजैः सप्ताधसम् । प्रणेमे प्रभुरम्येण ललाटस्पृष्टभूलैः ॥ १५२ ॥  
 तदुपाहृतेरकाशैर्चंचकुपद्माकितैः २ । नामवेशैः ३ कृतामस्मै प्रभवेऽसौ न्यवेदयत् ॥ १५३ ॥  
 सप्रसादं ४ च संमान्य सकृतास्ते भवीभुजः । प्रभोरनुभवाद् भूयः स्वमोक्षः प्रत्ययासिषुः ५ ॥ १५४ ॥  
 इत्यं पुण्योदयाष्टकी बलात् प्रत्यन्तपालकान् ६ । विजित्ये दण्डमात्रेण जयः पुण्याहृते कृतः ॥ १५५ ॥

## मालिनी

अथ नृपतिसमाजेनाचितः सानुरागं विजितसकलद्वयः प्रदृश्यन् म्लेच्छमाथान् ।  
 पुनरपि विजयाथायोजि त्रोऽप्रेसरत्वे जय हृत जयचिह्नमानिती रक्षमश्री ॥ १५६ ॥  
 जयति जिनवराणां शासनं चथप्सादात् पद्मिदमधिराजो प्राप्यते हृलयैष ।  
 समुचितनिधिरसप्राऊयभोगोपसांगशकटितसुखसारं भूरि संपथप्राप्तम् ॥ १५७ ॥

का उपाय कर वह चक्रवर्तीकी छावनीमें बापस लौट आया ॥ १४७ ॥ सेनापतिके वहाँ पहुँचने-पर अनेक उत्तम-उत्तम राजाओंने अपनी सेनाओंके साथ सामने जाकर विजयसूचक नगाड़ोंके शब्दोंके साथ-साथ उसका स्वागत-स्तकार किया ॥ १४८ ॥ जिसमें अनेक तोरण लगे हुए हैं और जिसमें बहुत ऊँची अनेक पताकाओंके समूह फहरा रहे हैं ऐसे राजमार्गको उल्लंघन कर वह सेनापति महाराज भरतके डेरेमें प्रविष्ट हुआ ॥ १४९ ॥ वह व्यवहार कुशल सेनापति दूरसे ही उत्तम घोड़पर-से उत्तर पड़ा और जहाँ महाराज भरत राजसिंहासनपर बैठे हुए थे उस सभा-मण्डपमें जा पहुँचा ॥ १५० ॥ दूरसे ही दूके हुए ऊंचल मुकुटपर जिसने अपने दोनों हाथ जोड़कर रखे हैं और सभासद् लोग जिसे आश्चर्यके साथ देख रहे हैं ऐसे सेनापतिने महाराज भरतको नमस्कार किया ॥ १५१ ॥ जिन्होंने अपने ललाटसे पृथिवीतलका स्पर्श किया है और जो जय-जय शब्द करनेसे बाचालित हो रहे हैं ऐसे म्लेच्छ राजाओंने भयसहित सामने आकर भरत-को नमस्कार किया ॥ १५२ ॥ उन म्लेच्छ राजाओंके द्वारा उपहारमें लाये हुए रत्न आदिको सामने रखकर सेनापतिने महाराज भरतसे नाम ले लेकर सबका परिचय कराया ॥ १५३ ॥ महाराजने प्रसन्नताके साथ सन्मान करके उन सब राजाओंका स्तकार किया, तदनन्तर वे राजा महाराजकी अनुमतिसे अपने-अपने स्थानपर बापस चले गये ॥ १५४ ॥ इस प्रकार चक्रवर्ती-ने पुण्य कर्मके उदयसे केवल दण्डरत्नके द्वारा ही म्लेच्छ राजाओंको जबरदस्ती जीत लिया था सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यके बिना विजय कहाँसे हो सकती है ? ॥ १५५ ॥

अथानन्तर-अनेक राजाओंके समूहने प्रेमपूर्वक जिसका स्तकार किया है, जिसने सब किले जीत लिये हैं, जिसने म्लेच्छ राजाओंको नम्रीभूत किया है, जो साक्षात् विजयके सामान सुशोभित हो रहा है और विजयके चिह्नोंसे जिसका सन्मान किया गया है ऐसे उस सेनापति-को रत्नोंके स्वामी भरत महाराजने विजय प्राप्त करनेके लिए फिर भी प्रधान सेनापतिके पदपर नियुक्त किया ॥ १५६ ॥ योग्य निश्चियाँ, रत्न तथा उत्कृष्ट भोग-उपभोगकी वस्तुओं

१ संस्कृतः । २ तन्म्लेच्छराजेभ्य आहृत । ३ पूजयन् । ४ प्रभोः समीपं नीतैः । ५ नामोदेशम् । ६ म्लेच्छ-राजान् । ७ निजावासं संप्रतिजम्भुः । ८ म्लेच्छराजान् 'प्रत्यन्ती म्लेच्छदेशः स्वादित्यभिधानात् ।

शार्दूलविक्रीडितम्

ऋग्ने चन्द्रकरोपहासि सचिरं चार्भाकरप्रोऽज्ञवलद्-  
दण्डं चामरकुम्भकं मुसमरिद्विष्टीरपिष्ठुद्वद्यिः ।  
कृमादेस्ति खंविभक्तमपि कूटं मृगेन्द्रामातं  
लेभेऽसौ शिजयन्हनाथविजयाद्रवान्यथान्यान्ययि ॥१५८॥  
रीवांशः कृतमाल इयभिमतः संपूर्णं ह सदारे  
प्रादाद्वापरणानि शनि न गुनस्तंषाभिहास्युभिमिति ।  
सम्राट् सैखकाद्यकृततमुः कल्पकुमः पुण्यिती  
मेरोः यानुमित्वाभिनो भणिमयं संडध्यानितो विष्वरम् ॥१५९॥

इत्यापैः भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्टुलक्षणमहापुराणसंप्रवृत्ते  
विजयार्जुहाद्वारोदाटनवर्णनं नामैकत्रिशो पर्य ॥३८॥

के द्वारा जिसमें सुखोंका सार प्रकट रहता है, और जिसमें अनेक सम्पदाओंका प्रसार रहता है ऐसा यह चक्रवर्तीका पद जिसके प्रमादसे लीलामात्रमें प्राप्त हो जाता है ऐसा यह जिनेन्द्र भगवान्का शासन सदा जयवन्त रहे ॥१५७॥ महाराज भरतने विजयार्थं पर्वतके स्वामीको जीतकर उससे चन्द्रमाकी किरणोंकी हँसी करनेवाला सुन्दर छत्र, मुवर्णभय देवीयमान दण्डोंसे युक्त तथा गंगा नदीके फेनके समान कान्तिवाले दो मनोहर चमर, सुमेह पर्वतसे अलग किये हुए उसके शिखरके समान सिंहासन तथा और भी अन्य अनेक रत्न प्राप्त किये थे ॥१५८॥ 'कृतमाल' इस नामसे प्रसिद्ध देवने मत्कार कर महाराज भरतके लिए जो आभू-पण दिये थे इस भरतक्षेत्रमें उनकी उषमा देने योग्य कोई भी पदार्थ नहीं है । उन अनुपम आभूषणोंसे जिनका शरीर अलंकृत हो रहा है और जो भणियोंके बने हुए मिहासनपर विराजमान हैं ऐसे महाराज भरतेश्वर उस समय मेरु पर्वतके शिखरपर स्थित फूले हुए कल्प वृक्षके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१५९॥

इस प्रकार आपं नामसे प्रसिद्ध, भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिष्टुलक्षण महापुराणांप्रदके  
हित्यी भापानुवादमें विजयार्थं पर्वतकी गुफाका द्वार उषाहनेका  
वर्णन करनेवाला इकलीसवीं पर्वं समाप्त हुआ ।

आत्रिशास्त्रम् पर्व

अथान्येषु रूपास्त्रुतसंभवैर्कलनायकैः । प्रत्यपालम्<sup>१</sup> संमदः प्रयाणसमयः प्रभोः ॥१॥  
 गजताशीथरथ्यानां पादाहानां<sup>२</sup> च संकुलैः । न नृपाजिरमेवासीद् रुद्रमध्येयं नृपमि ॥२॥  
 जग्नकुञ्जरमालहः परीतो<sup>३</sup> नृपकुञ्जरैः । रेते<sup>४</sup> निर्यन्त्रयाणाय सत्राट् शक इवामर्दैः ॥३॥  
 किञ्चित् पश्चान्मुख्यं<sup>५</sup> गत्वा सेनान्या शोधिते पथि । भवजिनी संकुञ्जन्त्यासीदीर्घाशुद्धिं अतिक्रम सा ॥४॥  
 प्रगुणहवानसोपानां<sup>६</sup> रूप्याद्रैः श्रेणिमशमाल् । मुमे<sup>७</sup> शुद्धिरिक श्रेणीमारुद्धा सा पताकिनी<sup>८</sup> ॥५॥  
 तमिक्षेति गुहा यासौ गिरिष्वाससमायति<sup>९</sup> । उचिष्ठश योजनान्यष्टौ<sup>१०</sup> ततोऽद्वैषिकविस्तृतिः<sup>११</sup> ॥६॥  
 वात्रं कपाटयोर्युरम् चा स्त्रोऽश्रुायमितोच्छ्रुति । दधे पृथक्<sup>१२</sup> हृषिष्कर्मसाधिकद्व्यंशविस्तृतिः<sup>१३</sup> ॥७॥  
 पदाध्यैमणिनिर्माणहचिमद्द्रुत्वन्धना ।<sup>१४</sup> तदधृष्टलनिस्तरैस्तस्मिषुसोलोषिशजिता ॥८॥  
 अशक्योद्धाटनाऽन्येषो मुकुटा चक्रिचमूपतिम् । तक्षिर्गंगलितवाच्च<sup>१५</sup> प्रागेव कृतनिरूपिः<sup>१६</sup> ॥९॥

अथानन्तर—दूसरे दिन जिन्हें जल्दी हो रही है और जो हरएक प्रकारसे तैयार हैं ऐसे सेनापति लोग चक्रवर्तीके चलनेके समयकी प्रतीक्षा करने लगे ॥१॥ हाथियोंके समूह, घोड़ोंके समूह, रथोंके समूह और पैदल चलनेवाले सेनिक, इन सबकी भीड़से केवल महाराजका आगन ही नहीं भर गया था किन्तु विजयार्थ पर्वतके बन भी भर गये थे ॥२॥ विजयी हाथीपर चढ़ा हुआ और अनेक श्रेष्ठ राजाओंसे विरा हुआ चक्रवर्ती जब विजयके लिए निकला तब ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि ऐरावत हाथीपर चढ़ा हुआ और देवोंसे विरा हुआ इन्द्र सुशोभित होता है ॥३॥ भरतकी वह सेना कुछ परिचमकी ओर जाकर सेनापतिके द्वारा शुद्ध किये हुए भारगमें संकुचित होकर चल रही थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो वह ईर्यापिय शुद्धिको ही प्राप्त हुई हो ॥४॥ जिस प्रकार मुनियोंकी विशुद्धता उत्तम गुणस्थान ( आठवें, नौवें, दशवें रूपी सीदियोंसे युक्त श्रेणी ( उपशम श्रेणी अथवा क्षपकश्रेणी ) पर चढ़ती है उसी प्रकार चक्रवर्तीकी सेना, जिसपर उत्तम सीदियाँ बनी हुई हैं ऐसी विजयार्थ पर्वत-की श्रेणीपर जा चढ़ी थी ॥५॥ वहाँ तमिस्ता नामकी वह गुफा थी जो कि पर्वतकी चौड़ाई-के बराबर लम्बी थी, आठ योजन ऊँची थी और उससे ढेवड़ी अर्थात् बारह योजन चौड़ी थी जो अपनी ऊँचाईके बराबर ऊँने और कुछ अधिक छह-छह योजन चाँड़े बजमयी किवाड़ोंके धुगल धारण कर रही थी, जिसके दरवाजेकी चौखट महामूल्य रत्नोंसे बनी हुई होनेसे अत्यन्त देवीप्यमान थी, जो अपने नीचेसे निकलते हुए सिन्धु नदीके प्रवाहसे सुशोभित थी, चक्रवर्तीके सेनापतिको छोड़कर जिसे और कोई उघाड़ नहीं सकता था, जो सेनापतिके द्वारा पहले ही उघाड़ दी जानेसे शान्त पड़ गयी थी—भीतरकी गरमी निकल जानेसे ठण्डी पड़ गयी थी । जो यद्यपि जगत्की सुष्टुके समान अनादि थी तथापि किसीके द्वारा बनायी हुईके समान मालूम

१ प्रतीक्ष्यते सम् । २ सैन्धानाम् ल० । ३ पदातीनाम् ल० । ४ परिवृतः । ५ निर्गच्छन् । ६ पश्चिमाभि-  
मुखम् । ७ कहुसंस्थानसोपानां प्रकृष्टगुणस्थानसोपानांच । ८ सेना । ९ पञ्चाशाश्वोजनाशामेति भावः ।  
१० अष्टयोजनोत्सेषात् । ११ द्वादशयोजनविस्तारेत्यर्थः । १२ यमलकवाटे एकैककवाटम् । १३ द्वादशयोजन-  
विस्तारवद् गुहायाः साधिकद्वितीय विस्तारम् । यमलरूपकवाटे एकैककवाटस्य साधिकषड्योजनविस्तुति-  
रित्यर्थः । १४ द्वारबन्धादवस्तलनिर्गच्छत् । देहल्पा अथस्तले निर्गच्छदिति भावः । १५ तेन चमूपतिना  
समुद्धाटितकवाटत्वात् । १६ कृतोपशान्तिः ।

१० लक्ष्मिभिर्विद्युत्प्रसादः विद्युत्प्रसादः । ११ नीरुतिरिचोपात्तगम्भीरो मुनिभिर्मता ॥ १० ॥  
 अथवता जीविताशेष सूर्योदयं च तमोमर्या । गतेवोलावतां<sup>१</sup> कृष्णान्मुकोप्सा शोधितोदरा<sup>२</sup> ॥ ११ ॥  
 कुटीय च ग्रस्ताया निविद्यान्यप्रवेशना । कृतरक्षाविद्यिद्विरे उत्तमङ्गलसंविधि: ॥ १२ ॥  
 सामालोक्य अले<sup>३</sup> जिल्लोद्वादासीस्य साध्वसम् । तमसा सूचिभेदेन कज्जलेनेव अभृताम् ॥ १३ ॥  
 चक्रिणा जापितो भूयः सेनानीः सपुरोहितः । तस्मोनिर्गमोपाये प्रयत्नमकरोत्तः ॥ १४ ॥  
 काकिणीमणिरक्षामर्या प्रतियोजनमालिखत् । गुहाभित्तिक्षये सूर्यसोमयोमण्डलदृश्यम् ॥ १५ ॥  
 तद्यकाशकृतोमीतं सूर्योर्स्तात्मसंविधिम् । शुहामर्यमप्यवान्तं अथगाहत ततो अलम् ॥ १६ ॥  
 चक्ररत्नङ्गलद्वये समेनान्या<sup>४</sup> पुरः स्थिते । अलं तदनुभागेण प्रविभज्य द्विधा यर्या ॥ १७ ॥  
 परिसिन्धु नदीस्तोतः प्राक् पश्चात्त्वीभयोः<sup>५</sup> पथोः । अलं प्रायजलं सिन्धोरुपयुज्योपयुज्य तत् ॥ १८ ॥  
 पथि हैर्धे<sup>६</sup> स्थिता तस्मिन् सेनाप्रथा नियन्त्रिता<sup>७</sup> । सा चमूः संशयहैर्धे<sup>८</sup> तदा प्रापद द्विगाश्रयम्<sup>९</sup> ॥  
 ततः प्रथाणकैः कैश्चित् प्रभूतयवसोदकैः<sup>१०</sup> । गुहार्द्वसंमितां<sup>११</sup> भूमि अर्हीयाय<sup>१२</sup> पलिविशाम् ॥ २० ॥

होती थी, अत्यन्त गम्भीर ( गहरी ) होनेके कारण जिसे मुनि लोग जिनवाणीके समान मानते थे क्योंकि जिनवाणी भी अन्त्यन्त गम्भीर ( गूढ़ अर्थोंसे भरी हुई ) होती है । जो जीवित रहनेकी आशाके समान लम्बी थी, मूँछकी समान अन्धकारमर्यी थी, गरमीं निकल जाने तथा भीतरका प्रदेश शुद्ध हो जानेसे जो नीरोग अवस्थाको प्राप्त हुईके समान जान पड़ती थी, जिसमें चक्रवर्तीकी सेनाको छोड़कर अन्य किसीका प्रवेश करना मना था, जिसके द्वारपर रक्षाकी सब विधि की गयी थी, जिसके समीप मंगलदृश्य रखे हुए थे और इसलिए जो प्रमूता ( बच्चा उत्पन्न करनेवाली ) स्त्रीकी कुटी ( प्रसूतिगृह ) के समान जान पड़ती थी ॥ ६-१२ ॥ सुई-की नोकसे भी जिसका भेद नहीं हो सकता ऐसे कञ्जलके समान गाढ़ अन्धकारमें भरी हुई उस गुफाको देखकर चक्रवर्तीकी सेना दूरसे ही भयभीत हो गयी थी ॥ १३ ॥ तदनन्तर जिसे चक्रवर्ती-ने आज्ञा दी है ऐसे सेनापतिने पुरोहितके साथ-साथ, उस अन्धकारसे निकलनेका उपाय करने-के लिए फिर प्रयत्न किया ॥ १४ ॥ उन्होंने गुफाकी दोनों ओरकी दीवालोंपर काकिणी और चूडामणि रत्नसे एक-एक योजनकी दूरीपर सूर्य और चन्द्रमाके मण्डल लिखे ॥ १५ ॥ तदनन्तर उन मण्डलोंके प्रकाशसे जिसमें प्रकाश किया जा रहा है, चौदही और धूप दोनों ही जिसमें मिल रहे हैं तथा जिसका सब अन्धकार नष्ट हो गया है, ऐसे गुफाके मध्य भागमें सेनाने प्रवेश किया ॥ १६ ॥ आगे-आगे सेनापतिके साथ-साथ चक्ररत्नरूपी देवीप्रभान दीपक चल रहा था और उसके पीछे-पीछे उसी मार्गसे दो भागोंमें विभक्त होकर सेना चल रही थी ॥ १७ ॥ वह सेना सिन्धु नदीके प्रवाहको छोड़कर पूर्व तथा परिचमकी ओरके दोनों मार्गोंमें सिन्धु नदीके जलका उपयोग करती हुई जा रही थी ॥ १८ ॥ उन दोनों मार्गोंपर चलती हुई तथा सेनापतिके द्वारा वश की हुई वह सेना उस समय दिशाओंसम्बन्धी संशयकी द्विविधताको प्राप्त हो रही थी अर्थात् उसे इस बातका संशय हो रहा था कि पूर्वदिशा कौन है ? और परिचम दिशा कौन है ? ॥ १९ ॥ तदनन्तर जिनमें घास और पानी अधिक है ऐसे कितने ही मुकाम चलकर महाराज

१ निमित्तेष । २ केनकित् पुरुषेण । ३ परमागमः । ४ क्रज्जुत्वं गतेव । 'उल्लाधो निर्गतो गदात्' । ५ शोधिता-न्तरा ल० । ६ गुहाम् । ७ सेनापतिसम्बिते । ८ सिन्धुनदीप्रवाहे अर्जयित्वा । परिशब्दस्य वर्जनार्थत्वात् । ९ पश्चात् पूर्वापर । १० अमच्छत् । ११ द्विप्रकारवती । १२ निमित्ता । १३ संशयभेदं संशयविनाशं वा । १४ चप्रवेशार्थये वा संशयभेदं प्राप्त । पूर्वादिदिश्यभेदे सेना समेतुवसी जातेत्यर्थः । १५ तृण् घास । 'घासो यवसं तु गमर्जुमि'त्यभिधानात् । १६ गुहानामद्वप्रमिताम् । १७ अत्यगात् ।

१ वर्त्रान्मध्यजला मिन्दुर्निर्मध्यजलया समम् । प्रविष्टा तिर्यगुदेशं<sup>१</sup> तं<sup>२</sup> प्राप्य जलमीशितुः ॥२१॥  
 तथोरात्रात्तदे भैन्यं निवेश्य भरतेश्वरः । वैष्णव्यमुखयोर्नदोः प्रेक्षांचके सकौतुकम् ॥२२॥  
 एकाऽधः पातयन्दन्त्या द्वार्चाद्युपल्लावत्यरम् । मिथो विरुद्धसांचये संगते ते कर्थस्तन ॥२३॥  
 नद्योरुत्तरणोपायः को तु स्यादिमि नक्यन् । द्रुतमाहापयामाम् तदास्थः स्थपति पतिः ॥२४॥  
 तथोरात्रात्तदे पश्यकुत्पत्तिपत्तजलम् । इष्टैव तुलयामासै जलाङ्गिमिव<sup>३</sup> क्षणम् ॥२५॥  
 उपर्युच्छ्रवासयस्येनां महान् वायुः स्फुरभ्यः । वायुस्तदन्यथारूप्तिरसुप्तां च चिजमते ॥२६॥  
 उपनाहाद्यै कोऽन्यः प्रतीकारोऽनयोरिति । भिषग्वर इवारंभे संक्रमोपकर्म<sup>४</sup> कृती ॥२७॥  
 अमानुपेष्वरण्येषु ये केचन महाद्रुमाः । स तानानाययामाम्य<sup>५</sup> दिव्यशक्त्यनुभावतः ॥२८॥  
 सारदारुमिहतस्य<sup>६</sup> स्तम्भानन्तर्जलस्थितान्<sup>७</sup> । स्थपति स्थापयामासै तेषामुपरि संक्रमम्<sup>८</sup> ॥२९॥  
 वलव्यसनमाशक्षय<sup>९</sup> चिरवृत्तौ<sup>१०</sup> स धीरधीः । क्षणाच्चित्प्रादयामाम् संकरं प्रसुप्तासनात् ॥३०॥  
 कृतः कलकलः सैन्यैर्निष्ठिते सेतुकर्मणि । तदेव च वलं कृत्स्नसुत्ततार परं हटम्<sup>११</sup> ॥३१॥

भरतने गुफाकी आधी भूमि तय की ॥२०॥ और जहाँपर 'उन्मग्नजला' नदी 'निमग्नजला' नदीके साथ-साथ दोनों तरफकी दीवालोंके कुण्डोंसे निकलकर सिन्धु नदीमें प्रविष्ट होती है उस स्थानपर चक्रवर्तीकी सेना जा पहुँची ॥२१॥ महाराज भरतेश्वर उन दोनों नदियों-के किनारेके समीप ही सेना ठहराकर कौतुकके साथ उन दोनों नदियोंकी विगमता देखते लगे ॥२२॥ इन दोनोंमें से एक अर्थात् निमग्नजला तो लकड़ी आदिको शीघ्र ही नीचे ले जा रही है और दूसरी अर्थात् उन्मग्नजला प्रत्येक पदार्थको शीघ्र ही ऊपरकी ओर उछाल रही है । यद्यपि ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं तथापि किसी प्रकार यहाँ आकर सिन्धु नदीमें मिल रही हैं ॥२३॥ इन नदियोंके उत्तरनेका उपाय क्या है ? इस प्रकार विचार करते हुए चक्रवर्तीने वहाँ खड़े-खड़े ही शीघ्र ही अपने स्थपति (सिलावट) रत्नको बुलाया ॥२४॥ जिनका पानी ऊपर तथा नीचेकी ओर जा रहा है ऐसी उन दोनों नदियोंको देखते हुए सिलावट रत्नने उन्हें अपनी दृष्टिमानसे ही क्षण-भरमें अंजलि-भर जलके समान तुच्छ समझ लिया ॥२५॥ उसने समझ लिया कि इस उन्मग्नजला नदीको इसके नीचे रहनेवाला महावायु ऊपरकी ओर उछालता है और इस निमग्नजला नदीको उसके ऊपर रहनेवाला महावायु नीचेकी ओर ले जाता है ॥२६॥ इसलिए इन दोनोंका पुल बांधनेके सिवाय और क्या उपाय हो सकता है ऐसा विचार कर उत्तम वैद्यके समान कार्यकुशल सिलावट रत्नने उन नदियोंके पार होनेका उपाय अर्थात् पुल बांधनेका उपाय प्रारम्भ कर दिया ॥२७॥ उसने अपनी दिव्य शक्तिकी सामर्थ्यसे निर्जन वनोंमें जो कुछ बड़े-बड़े वृक्ष थे वे मैंगवाये । भावार्थ - अपने आश्रित देवोंके द्वारा सधन जंगलोंसे बड़े-बड़े वृक्ष मैंगवाये ॥२८॥ उसने मजबूत लकड़ियोंके द्वारा जलके भीतर मजबूत खम्मे खड़े कर उनपर पुल तैयार कर दिया ॥२९॥ अधिक समय लगनेपर सेनाको दुख होगा इस बातका विचार कर उस गम्भीर बुद्धिके धारक सिलावटने भरतेश्वरकी आज्ञा-से क्षण-भरमें ही पुल तैयार कर दिया था ॥३०॥ पुल तैयार होते ही सेनाओंने आनन्दसे कोलाहल किया और उसी समय चक्रवर्तीकी समस्त सेना उत्तरकर नदियोंके उस किनारे

१ यस्मिन् प्रदेशे । २ पूर्वपिरभित्तिद्वयदण्डान् निर्गत्य । ३ प्रदेशम् । ४ काषादि । ५ स तत्रदीद्यम् ल०, इ०, अ०, प०, स० । ६ ददर्शत्यर्थः । ७ उत्पत्तिपत्तरूपत्वादञ्जलियुक्तजलवत् । ८ अधीगमनवृत्तिः । ९ बन्धनात् विना । १० सेतुपक्रमम् । ११ आनयति स्म । १२ विन्यस्य । १३ जलं स्थिरात् व०, द० । जले स्थिरात् इ० । १४ स्तम्भानाम् । १५ सेतुम् । १६ बलस्य पीडा भविष्यस्तीति विशक्षय । १७ चिरकालेऽतीते सति । १८ अपरतीरम् ।

नायकैः सममन्येषुः प्रभुगंजघटाद्युतः । महापर्थेन तेजैव जलदुर्गं व्यलङ्घयत् ॥३२॥  
 ततः कृतिपौरेव प्रयाणीरतिवाहितैः॑ । गिरिदुर्गं विलङ्घ्योदयमुहाक्रौरमवासदते॒ ॥३३॥  
 निर्गंगलीकृतं द्वारं॑ पौरस्थैरिभसात्वनैः । व्यसीत्य प्रभुरस्याद्वेष्युक्तास बनावनिम् ॥३४॥  
 अधिगच्छ गुहागर्भं चिरं मातुरिचोदरम् । लब्धं जस्मान्तरं भेने॑ निःशृतैः सैनिकर्वहिः ॥३५॥  
 गुहेष्यमतिगृष्टप्रेव॑ गिलिष्वा॑ जनतामिमाम् । जरणाशक्तिर्व॑ नृन्मुजगाल॑ लहिः पुनः ॥३६॥  
 व्यजनैरिच शाखामैर्वैज्ञप्तन् बनवीरुधाम् । गुहोष्टुणां चिरं चिक्षां चमूमाश्वासयन्मरुत् ॥३७॥  
 तद्वनं पवनाधूतं चलश्वाखाकरोकरैः । प्रभोरुपागमे तोषाक्षन्तेऽव धृतात्मवन्मै॑ ॥३८॥  
 पूर्ववत् पश्चिमे खण्डे अलाग्रण्या प्रसाधितं । विजेन्मं मध्यमं खण्डं साधनैः प्रभुरुद्ययी ॥३९॥  
 न करैः पीडितो लोको न भुवः शोषितो रसः । नार्कणेव जनस्तसः प्रभुणाऽभ्युद्यताप्युदक् ॥४०॥  
 कौचेरीं दिशमासधाय॑ तप्तिकान्ततः॑ करैः॑ भीमुमहारीजस्तु मुखस्तीप्रयमिकरैत् ॥४१॥  
 कृतम्भुहानि॑ सैन्धानि॑ संहतानि॑ परस्परम् । नातिभूमि॑ चयुजिणोर्न स्वैरं परिक्षभ्युः ॥४२॥

पर जा पहुँची ॥३१॥ दूसरे दिन हाथियोंके समूहसे घिरे हुए महाराज भरतने अनेक राजाओं-के साथ-साथ उसी जलमय महाभागसे कठिन रास्ता तय किया ॥३२॥ तदनन्तर कितने ही मुकाम चलकर और उस पर्वतरुपी दुर्ग (कठिन मार्ग) को उल्लंघन कर बै उस गुफाके उत्तर द्वारपर जा पहुँचे ॥३३॥ आगे चलनेवाली हाथियोंकी सेनाके द्वारा उवाइ हुए उत्तर द्वारको उल्लंघन कर चक्रवर्तीने विजयार्थं पर्वतके बनकी भूमिमें निवास किया ॥३४॥ माताके उदर-के समान गुहाके गर्भमें चिरकाल तक निवास कर बहासे बाहर निकले हुए सेनिकोंने ऐसा माना था मानो दूसरा जन्म ही प्राप्त हुआ हो ॥३५॥ सेनाको बाहर प्रकट करती हुई वह गुफा ऐसी जान पड़ती थी मानो पहले वह बड़ी भारी तृणा इस मनुष्य-समूहको निगल गयी थी परन्तु पचानेकी शक्ति न होनेसे अब उसे फिर बाहर उगाल रही हो ॥३६॥ उस समय पश्चिमके समान बनलताओंकी शाखाओंके अग्रभागसे हवा करता हुआ वायु ऐसा जान पड़ता था मानो चिरकाल तक गुफाकी गरमीसे दुःखी हुई सेनाको आश्वासन ही दे रहा हो ॥३७॥ जिसने कृतु-सम्बन्धी अनेक फल-कूल धारण किये हैं और जो वायुसे हिल रहा है ऐसा वह बन उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो चक्रवर्तीके आनेपर सन्तुष्ट होकर हिलते हुए अपने शाखा रुपी हाथोंके समूहसे नृत्य ही कर रहा हो ॥३८॥ जब सेनापति पहलेकी तरह यहाँके भी पश्चिम म्लेच्छ खण्डको जीत नुका तब महाराज भरत अपनी सेनाओंके द्वारा मध्यम म्लेच्छ खण्डको जीतनेके लिए उद्यत हुए ॥३९॥ यद्यपि भरत सूर्यके समान उत्तर दिशाकी ओर निकले थे तथापि जिस प्रकार सूर्य अपने कर अर्थात् किरणोंसे लोगोंको पीड़ित करता है, पृथिवी-का रस अर्थात् जल सुखा देता है, और मनुष्योंको सन्तापत करता है उस प्रकार उन्होंने अपने कर अर्थात् टेक्ससे लोगोंको पीड़ित नहीं किया था, पृथिवीका रस अर्थात् आनन्द नहीं मुखाया था-नष्ट नहीं किया था और न मनुष्योंको सन्ताप अर्थात् दुःखी ही किया था ॥४०॥ सूर्य उत्तर दिशामें पहुँचकर अपनी किरणोंसे सन्ताप करता है परन्तु महाराज भरतने पृथिवीका सन्ताप दूर कर दिया था ॥४१॥ जिसमें अनेक व्यूहोंकी रचना की गयी है और जो परस्परमें मिली हुई है ऐसी भरतकी सेनाएँ न तो उनसे बहुत दूर ही जाती थीं और न स्वच्छन्दतापूर्वक

१ अपनीतैः । २ उत्तरम्भुहानाम् । ३ पुरोगतैः । ४ दत्तभूमिम् । ५ मन्यते स्म । ६ अतिवाज्ञया ।  
 ७ निगरणं कृत्वा । ८ जरणशक्त्यभावात् । ९ उद्गिलति स्म । १० कृतौ भवम् आत्मस् पृष्ठादि । कृतमातृत्वं  
 येन तत् । ११ उत्तरदिग्भागः । १२ उत्तरस्यां दिशि स्थित्वा । १३ नितराम् । १४ विहितरचनानि ।  
 १५ संबद्धानि निलितानि था ।

प्रसाधितानि दुर्गाणि कृतं चाशक्वसाधनम् । परचक्रमवश्वधू<sup>१</sup> चक्रिणो जयसाधनैः ॥४३॥  
 बलबाकाभिर्योज्ज्यो<sup>२</sup> रक्षणीयाद्वच संशिताः । यतिक्षयं जितिवाणे जिगीषोर्कृतमाद्वशम् ॥४४॥  
 इत्यलङ्घवलाङ्घकी चक्ररत्नमनुधजन् । कियतीमपि तां<sup>३</sup> भूमिमवाष्टम्भीत् स्वसाधनैः ॥४५॥  
 तावच परचक्रेण<sup>४</sup> स्वचक्रस्य<sup>५</sup> परमवम् । चिलातावत्तनामानौ प्रभू शुश्रुवतुः किल ॥४६॥  
 अभूतपूर्वमेतत्स्त्री<sup>६</sup> परचक्रमुपस्थितम् । व्यसनं प्रतिकर्तव्यमित्यास्तो संगतौ मिथः ॥४७॥  
 ततो धनुर्धरप्रायं सहार्थीयं सहास्तिकम् । इतोऽमुतश्च संजग्म<sup>७</sup> तस्मैन्यं म्लेच्छराजयोः ॥४८॥  
 कृतोऽचविग्रहारभौ संस्मरं प्रतिपद्य ती । विकल्प्य<sup>८</sup> चक्रिणः सैन्यैर्मेजसुविजिगीषुताम् ॥४९॥  
 न किञ्चिदप्यनालोक्य विधेयं सिद्धिकाम्यता<sup>९</sup> । अनालोचितकार्याणां द्वीयस्यो<sup>१०</sup> ईर्धसिद्ध्यः ॥५०॥  
 कोऽयं प्रभुरवश्वमभी कुतस्त्वयो वा कियद्वलः<sup>११</sup> । बलबान् इत्यनालोच्य नामिषेष्यः<sup>१२</sup> कथंचन<sup>१३</sup> ॥५१॥  
 विजयाद्वचलोलक्षी नैष सामान्यमानुषः । दिव्यो<sup>१४</sup> दिव्यानुभावो<sup>१५</sup> वा भवेदेष न संशयः ॥५२॥

इधर-उधर ही घूमती थीं ॥४२॥ चक्रवर्तीकी विजयी सेनाओंने अनेक किले अपने वश किये, जिन्हें कोई वश नहीं कर सकता था, ऐसे राजाओंको वश किया और शत्रुओंके देश घेरे ॥४३॥ बलबानके साथ युद्ध नहीं करना, शरणमें आये हुएकी रक्षा करना, और अपनी पृथिवीकी रक्षा करनेमें प्रयत्न करना यही विजयकी इच्छा करनेवाले राजाके योग्य आचरण हैं ॥४४॥ इस प्रकार जिनकी सेना अथवा पराक्रमको कोई उल्लंघन नहीं कर सकता ऐसे चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्नके पीछे-पीछे जाते हुए अपनी सेनाके द्वारा वहाँकी कितनी ही भूमिको अपने अधीन कर लिया ॥४५॥ इतनेमें ही चिलात और आवर्त नामके दो म्लेच्छ राजाओंने शत्रुओंकी सेनाके द्वारा अपनी सेनाका पराभव होता सुना ॥४६॥ हमारे देशमें शत्रुओंकी सेना आकर उपस्थित होना यह हम दोनोंके लिए बिलकुल नयी बात है, इस आये हुए संकटका हमें प्रतिकार करना चाहिए ऐसा विचारकर वे दोनों ही म्लेच्छ राजा परस्पर मिल गये ॥४७॥ तदनन्तर जिसमें प्रायः करके धनुष धारण करनेवाले योद्धा हैं, तथा जो हाथियों और बोड़ोंके समूहसे सहित हैं ऐसी उन दोनों राजाओंकी सेना इधर-उधरसे आकर इकट्ठी मिल गयी ॥४८॥ जिन्होंने भारी युद्ध करनेका उद्योग किया है ऐसे वे दोनों ही राजा क्रोधित होकर तथा पराक्रम प्रकट कर चक्रवर्तीकी सेनाओंके साथ विजिगीषुपनको प्राप्त हुए अर्थात् उन्हें जीतनेकी इच्छासे उनके प्रतिद्वन्द्वी हो गये ॥४९॥ इसीके बीच, बुद्धिमान् धीर-धीर सथा सफलतापूर्वक कार्य करनेवाले मन्त्रियोंने उन दोनों राजाओंको युद्धके उद्योगसे रोककर नीचे लिखे अनुसार हितकारी वचन कहे ॥५०॥ हे प्रभो, सिद्धिकी इच्छा करनेवालोंको बिना विचारे कुछ भी नहीं करना चाहिए क्योंकि जो बिना विचारे कार्य करते हैं उनके कार्योंकी सिद्धि बहुत दूर हो जाती है ॥५१॥ हमारी सेनाको रोकनेवाला यह कौन राजा है ? कहांसे आया है ? इसकी सेना कितनी है और यह कितना बलबान् है इन सब बातोंका विचार किये बिना ही उसकी सेनाके सम्मुख किसी भी तरह नहीं जाना चाहिए ॥५२॥ विजयार्थं पर्वतको उल्लंघन करनेवाला यह कोई साधारण मनुष्य नहीं है, यह या तो कोई देव होगा या कोई दिव्य प्रभावका धारक होगा इसमें

१ व्याप्तम् । २ अभिवेणनीयः । ३ महतीम् । ४ वेष्टयति स्म । ५ परस्मैन् । ६ स्वराष्ट्रस्य ७ आवयोः ।  
 ८ सांतमभूत् । ९ अधिकां शब्दित विचार । १० सिद्धिमिच्छता । ११ दूरस्तरः । १२ कियद्वल अ०, स०। १० ।  
 १३ सेनया अभियातव्यः । १४ सर्वथा । १५ देवः । १६ दिव्यसामध्यः ।

तदास्तो समरारम्भः संभाष्यो दुर्गंसंशयः । तदाश्रितैरनायासात् जेतुं शक्यो रिपुमहान् ॥ ५४ ॥  
 हग्मावद्युर्गमेतकः क्षेत्रं केवलमिभूते । हिमवत्तिजयाद्विग्रामेऽस्मिन्द्युतटावधि ॥ ५५ ॥  
 अन्यद्य देवताः समिति सत्यमस्मद्कुलोचिताः । नागामेष्वमुखा नाम ते गिराम्बन्धु शान्तवान् ॥ ५६ ॥  
 इति तद्युच्चन्तातजयादांसी जनेश्वरौ । देवतानुसृति सद्यः चक्रुः कृतपूजनौ ॥ ५७ ॥  
 तत्रस्ते जलद्वाकारधारिणो घनगर्जिताः । परितो दृष्टिमातेनुः सानिलामनिलाशनाः ॥ ५८ ॥  
 तप्तलं जलदोद्यार्णं वलमाप्काव्यं जैव्यावर्त्म । अधिलीयं गधोऽच्छं च समन्तादभ्यद्वयते ॥ ५९ ॥  
 न चेलैक्नोपमस्थासीत् शिविरे दृष्टिरीशितुः । बहिरेकार्णवं कृत्स्नमकरोद् व्याप्त्य रोदसी ॥ ६० ॥  
 छब्ररक्षमुपवर्त्तीत्वामैरक्रमभोऽपवत् । ताभ्यामावेष्य तदुद्देश्यं वलं द्यूतमिवामितः ॥ ६१ ॥  
 मध्येरक्षद्वयस्थास्य स्थितमाससमाद् दिनात् । जलमूषे वलं भर्तुष्व्येत्तमण्डावितं तदा ॥ ६२ ॥  
 वक्ररक्षहृतोद्योते रुद्धादशयोजने । तत्राणवके स्थितं जिज्ञोमिरावाधमभूद् वलम् ॥ ६३ ॥  
 प्रविमहत्तुद्वारं सेनाम्यान्तःसुरजितम् । बहिर्जप्तुमारेण रक्षे किल तद्वलम् ॥ ६४ ॥  
 तदा पद्मुदीमेदाः ॑ कीडिकाव्य विवाहाः ॑ । हृताः स्थपतिरसेन ॑ रथाभाववरणोक्ताः ॥ ६५ ॥

कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ५३ ॥ इसलिए युद्धका उद्योग दूर रहे, हम लोगोंको किसी किलेका आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि किलेका उद्योग लेनेवाले भुग्य कर्त्तव्यक्तिये दातुकहे अहम ही जीत सकते हैं ॥ ५४ ॥ हिमवान् पर्वतसे विजयार्थं पर्वतं तक और गंगा नदीसे सिन्धु नदीके किनारे तक का यह हमारा क्षेत्र स्वभावसे ही किलेके समान है, इसका पराभव कौन कर सकता है ? इसे कौन जीत सकता है ? ॥ ५५ ॥ और दूसरी बात यह भी है कि हमारी कुल-परम्परासे वले आये नागमुख और मेष्वमुख नामके जो देव हैं वे अवश्य ही शत्रुओंको रोक लेंगे ॥ ५६ ॥ इस प्रकार मन्त्रियोंके वचनोंसे जिन्हें विजय करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है ऐसे उन दोनों राजाओं-ने शीघ्र ही पूजन कर देवताओंका स्मरण किया ॥ ५७ ॥ स्मरण करते ही नागमुख देव, बादलों-का आकार धारण कर घनधोर गर्जना करते हुए चारों और झंझावायुके साथ-साथ जलकी वृष्टि करने लगे ॥ ५८ ॥ मेष्वोंके द्वारा बरसाया हुआ वह जल भरतेश्वरकी सेनाको ढुबोकर ऊपर नीचे तथा अग्न-बग्ल चारों और बहने लगा ॥ ५९ ॥ यद्यपि वह जल इतना व्यधिक बरसा था कि उसने आकाश और पृथिवीके अन्तरालको व्याप्त कर बाहर एक समुद्र-सा बना दिया था परन्तु चक्रवर्तीके शिविर ( छावनी )में वस्त्रका एक टुकड़ा भिगोने योग्य भी वृष्टि नहीं हुई थी ॥ ६० ॥ उस समय भरतकी सेनाके ऊपर छव्ररत्न था और नीचे चर्मरत्न था, उन दोनों रत्नोंसे घिरकर रुकी हुई सेना ऐसी मालूम होती थी मानो चारों ओरसे सी ही दी गयी हो अर्थात् चर्मरत्न और छव्ररत्न इन दोनोंमें चारों ओरसे टके लगाकर बोचमें ही रोक दी गयी हो ॥ ६१ ॥ उस जलके प्रवाहमें भरतकी वह सेना सात दिनतक दोनों रत्नोंके भीतर ठहरी थी और उस समय वह ठीक अण्डाके समान जान पड़ती थी ॥ ६२ ॥ जिसमें चक्ररत्नके द्वारा प्रकाश किया जा रहा है ऐसे उस बारह योजन लम्बे-बौद्धे अण्डाकार तम्बूमें ठहरी हुई भरतकी सेना सब तरहकी पीड़ासे रहित थी ॥ ६३ ॥ उस बड़े तम्बूमें चारों दिशाओंमें चार दरवाजे विभक्त किये गये थे, उसके भीतरकी रक्षा सेनापतिने की थी और बाहरसे जय-कुमार उस सेनाकी रक्षा कर रहे थे ॥ ६४ ॥ उस समय सिलावट रत्नने अनेक प्रकारके कपड़े-के तम्बू, घासकी बड़ी-बड़ी झोपड़ियाँ और आकाशमें चलनेवाले रथ भी तैयार किये थे ॥ ६५ ॥

१ गाङ्गसिन्धु-ल० । २ नागमेष्व-ल० । ३ नागः । ४ जिज्ञोद्यक्षक्रिणः संहिति । ५ अभिधावति सम । ६ पटमाद्रं यथा भवति । ७ ऊतम् तन्तुना संबद्धमित्यर्थः । ८ अष्टमिवाचरितम् । ९ पञ्चजरे । १० कीटिकाः कुटीराः, शालाः । कीटिकाद्य ल०, व०, अ० प०, स० । ११ विशालाः । १२ रथाः संबरगोचराः प० ।

वह्निः कलकलं धूत्वा किमेतदिति पार्थिवाः । करं व्यापासयामासुः कुद्धाः कौश्लेयके प्रति ॥६६॥  
ततश्चकधराद्विद्यां गगबद्धामरास्तदा । नागानुत्सारयामासु राहृष्टो हुंकुलैः भग्नात् ॥६७॥  
वलवान् कुरुतोऽपि सुक्ष्मिस्त्रप्रगर्जितः । दिव्यासैरजयकागान् रथं दिव्यमधिष्ठितः ॥६८॥  
तदा रणाङ्गे वर्षन् शरवारामनारनस् । स रेजे धूतसञ्चाहः प्रायूषेण्यं इवाम्बुदः ॥६९॥  
तन्मुक्ता विशिखा दीपा रंजिरे समराजिरे । द्रष्टुं लिरोहिताकागान् दीपिका इव बोधितः ॥७०॥  
ततो निवृत्तैः जिखा नागान् मेघमुखानसी । कुमारो रणसंरम्भात् प्राप्तमेघस्वरश्रुतिः ॥७१॥  
कुरुतो जस्तदा स्फूर्जत्पर्जन्ये स्तनितोजितैः । गर्जितैनिर्जन्मन् मेघमुखान् ख्यातस्तदाहृत्वा ॥७२॥  
तोषितैरचदानेनैः घोषिलोऽस्य जयोऽभर्तः । दन्तवनद्वुन्दुभिष्यान्त्रधिरीकृतदिव्यमुखैः ॥७३॥  
ततो दष्टापदानोऽये तुष्टुते चक्रिणा सुदुः । निर्बोधितश्च सत्कृत्य वीरो वीरापर्णीपदे ॥७४॥  
इन्द्रजालं इवामुभिन्नं व्यतिक्रान्ते इहित्रित्वे । एत्यापत्तिमगाद् भूत्यो वलभाविर्भवजयम् ॥७५॥  
विध्वस्ते पश्चानीके विवलैः भ्लेच्छनायका । चक्रिणश्चरणावेत्य भयक्षान्ती प्रणमतुः ॥७६॥  
धनं यशोधनं चास्मै कृतागः परिशोधनस् ॥ दत्ता प्रसीद देवेति तां भूस्यत्वमुपेयतुः ॥७७॥

बाहर कोलाहल सुनकर 'यह क्या है' इस प्रकार कहते हुए राजाओंने क्रोधित होकर अपना हाथ तलवारकी ओर बढ़ाया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर उस समय जिन्हें चक्रवर्तीने आदेश दिया है ऐसे गणबद्ध जातिके देवोंने कुद्ध होकर अपने हुंकार शब्दोंके द्वारा क्षण-भरमें नागमुख देवोंको हटा दिया ॥ ६७ ॥ अतिशय वलवान् कुरुतेशी राजा जयकुमारने भी दिव्य रथपर बैठकर सिंह-गर्जन्कामकर्त्तृहुए, वृद्धलक्षणाद्वारे लक्ष्मीकृत लक्ष्मीचुड़ात्मेवोंको जीता ॥ ६८ ॥ उस समय युद्धके अंगनमें निरन्तर बाणोंकी वर्षी करता हुआ और जशीरपर कबच धारण किये हुए वह जयकुमार वर्षीश्वतुके बादलके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ६९ ॥ जयकुमारके द्वारा छोड़े हुए वे देवीप्रभान बाण युद्धके अंगनमें ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो छिपे हुए नागमुखोंको देखनेके लिए जलाये हुए दीपक ही हों ॥ ७० ॥ तदनन्तर वह जयकुमार नागमुख और मेघ-मुख देवोंको जीतकर तथा मेघेश्वर नाम पाकर उस युद्धसे बापस लौटा ॥ ७१ ॥ उस समय वह जयकुमार विजली गिरानेके पहले भयंकर शब्द करते हुए बादलोंकी गर्जनाके समान अपनी तेज गर्जनाके द्वारा मेघमुख देवोंको जीतता हुआ मेघेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ था ॥ ७२ ॥ बार-बार बजते हुए दुन्दुभियोंके शब्दोंसे जिन्होंने समस्त दिशाएँ बहिरी कर दी हैं ऐसे देवोंने इस जयकुमारके पराक्रमसे सन्तुष्ट होकर इसका जयजयकार किया था ॥ ७३ ॥ तदनन्तर जिसका पराक्रम देख लिया गया है ऐसे इस जयकुमारकी चक्रवर्तीने भी बार-बार प्रशंसा की और उस बीरका सल्कार कर उन्होंने उसे मुख्य शूरवीरके पदपर नियुक्त किया ॥ ७४ ॥ हन्द्रजालके समान वह नागमुख देवोंका उपद्रव शान्त हो जानेपर जिसकी जीत प्रकट हो रही है ऐसी वह भरतकी सेना पुनः स्वस्थताको प्राप्त हो गयी अर्थात् उपद्रव टल जानेपर सुखका अनुभव करने लगी ॥ ७५ ॥ नागमुख देवोंकी सेनाके भाग जानेपर वे दोनों ही चिलात और आवर्त नामके भ्लेच्छ राजा निर्बल हो गये और भयसे धबड़ाकर चक्रवर्तीके चरणोंके समीप आकर प्रणाम करने लगे ॥ ७६ ॥ उन्होंने अपराध क्षमा कराकर भरतके लिए बहुत-सा धन तथा यशरूपी धन दिया और 'हे देव, प्रसन्न होइए' इस प्रकार कहकर उनकी दासता स्वीकार

१ स्वदगम् । २ आजापिता: । ३ पलावितान् चक्रुः । ४ कुद्धाः । ५ जयकुमारः । ६ यृतकवचः । ७ प्रावृष्य भवः । ८ समरांगणे । ९ न्यवृत्तः । १० प्राप्तमेघस्वरसंज्ञः । ११ मेघः । १२ पराक्रमणे । १३ दृष्टावदातोऽप्य स०, ल०, द० । दृष्टावदानोऽये द०, प० । दृष्टसामध्यः । १४ सूर्यते स्म । १५ पुर्वस्त्रितिस् । स्वरूपात् प्रचयुतस्य पुनः स्वरूपे अवस्थानम्, आवकासमित्यर्थः । १६ कुतदोषस्य परिशोषनं यस्मात् तत् ।

निस्मपत्ना महीमेनां कुर्वन्नर्क्षमिधीक्षवरः । आ हिमाविताद् भूयः प्रयाणमकरोद् वलैः ॥७३॥  
 सिन्धुरोधोभुवै शुन्दनै ग्रयापे जयसिन्धुरैः ४ सिन्धुप्रपातं मासीदन् ५ सिन्धुरेष्या न्यवेचि॒सः ॥७४॥  
 शास्त्रा समाप्तं जिष्यु॑ केवि स्वावासगोचरम् । उपेयाय॑ समुद्रै॒य रत्नार्च॑ सपरिष्ठदर्दा॑ ॥७५॥  
 उपर्यैः॑ सिन्धु नलैरेन हेमकुमभशलोदै॑ सैः । साभ्यशिक्षत् स्वहस्तेन भद्रासननिवेशितम् ॥७६॥  
 कृतमहूलनेपथ्यमम्यनन्दजयाशिषा । देव एव इर्षामादय पूलाऽस्मीत्यवदत्य तम् ॥७७॥  
 तत्र भद्रासनं दिष्यं लब्ध्या तदुपकौक्षितम् । कृतानुवजन्मै॑ किञ्चिद् सिन्धुदेवीं व्यसर्जयत् ॥७८॥  
 हिमाचलमनुप्राप्तस्तस्टानि अथ॑ जयम् । कैहिष्वल्पयाणकैः प्राप्त् हिमवक्टसंनिधिम् ॥७९॥  
 उरोहितसखस्तत्र कृतोपवसनक्षियः । अध्यशेष॑ शुचि॒शब्दां दिव्यास्त्राण्यधिवासयन् ॥८०॥  
 विधिरेष न चाशक्षितरिति॑ संभाषितो नृपैः । स राज्यमकरोज्याय॑ वज्रकाण्डमयन्तः ॥८१॥  
 तत्रामोघं शरं दिष्यं॑ समधत्तोर्धर्वगमिष्यम् । वैशालीस्थानमास्थाय॑ स्वनामाक्षरचिह्नितम् ॥८२॥  
 मुक्तसिंहप्रणावेन यदा सुकृतः शरोऽमुक्ता॑ । तदा सुरगणैस्तु ईर्षुक्तोऽस्य कुसुमाजलिः ॥८३॥

की ॥७७॥ इस समस्त पृथिवीको शान्तुरहित करते हुए प्रथम निधिपति—चक्रवर्तीने फिर अपनी सेनाके साथ-साथ हिमवान् पर्वतके किनारे तक गमन किया ॥७८॥ गमन करते समय अपने विजयी हाथियोंके द्वारा सिन्धु नदीके किनारेकी भूमिको खूँदते हुए भरतेश्वर जब सिन्धुप्रपात-पर पहुँचे तब सिन्धु देवीने उनका अभिषेक किया ॥७९॥ वह देवी भरतको अपने निवास-स्थानके समीप आया हुआ जानकर रत्नोंका अर्घ लेकर परिकारके साथ उनके पास आयी थी ॥८०॥ और उसने अपने हाथसे सुवर्णके सैकड़ों कलशोंमें भरे हुए सिन्धु नदीके पवित्र जलसे भद्रासनपर बैठे हुए महाराज भरतका अभिषेक किया था ॥८१॥ अभिषेक करनेके बाद उस देवीने मंगलरूप वस्त्राभूषण पहने हुए महाराज भरतको विजयसूचक आशीषदिओंसे आनन्दित किया तथा यह भी कहा कि हे देव, आज आपके दर्शनसे मैं पवित्र हुई हूँ ॥८२॥ वही उस सिन्धु देवीका दिया हुआ दिव्य भद्रासन प्राप्त कर भरतने आगे के लिए प्रस्थान किया और कुछ हूर तक पीछे-पीछे आती हुई सिन्धु देवीको बिदा किया ॥८३॥ हिमवान् पर्वतके समीप पहुँचकर उसके किनारोंको जीतते हुए भरत कितने ही मुकाम चलकर हिमवत् कृटके निकट जा पहुँचे ॥८४॥ वही उन्होंने पुरोहितके साथ-साथ उपवास कर और दिव्य अस्त्रोंकी पूजा कर ढाभकी पवित्र शय्यापर शयन किया ॥८५॥ अस्त्रोंकी पूजा करना यह एक प्रकारकी विधि ही है, कुछ चक्रवर्तीका असमर्थना नहीं है, ऐसा विचार कर राजाओंने जिनका सन्मान किया है ऐसे भरतराजने बिना प्रयत्नके ही अपना वज्रकाण्ड नामका धनुष डोरीसे सहित किया ॥८६॥ और वैशाली नामका आसन लगाकर अपने नामके अक्षरोंसे चिह्नित तथा ऊपरकी ओर जानेवाला अपना अमोघ (अव्यर्थ) दिव्य बाण उस धनुषपर रखा ॥८७॥ जिस समय सिंहनाद करते हुए भरतने वह बाण छोड़ा था उस समय देवोंके समूहने सन्तुष्ट होकर उपर फूलोंकी अंजलियां छोड़ी थीं, अर्थात् फूलोंकी वर्षा की थी ॥८८॥

? उल्काएनिधिपति: १ 'वरे लवर्गि'त्यभिधानात् । २ सिन्धुनदीतीरभूमीः । ३ संचूर्णयन् । ४ सिन्धुनदी-पतनकुण्डम् । ५ आगच्छन् । ६ न्यवेदि द० । सेवते स्म । ७ उपाययी । ८ सपरिकरा । ९ पवित्रः । १० विद्विनानुगमनाम् । ११ जयन् जयन् ल०, अ०, इ० । जयं जयन् प०, स० । १२ हिमवन्नामकृट । १३ अधिशेते स्म । १४ मन्त्रैरभिपूजयन् । १५ शब्दभावो न । १६ मौर्कीसहितम् । १७ संधानमकरोत् । १८ वैशालीस्थाने स्थिता, वितस्त्यन्तरेण स्थिते पादद्वये विशालः, तथा जोक्तं धनुर्वेदे । वामपादप्रसारे दक्षिणसंकोचे प्रत्यलोदं दक्षिणजंघाप्रसारे वामसंकोचे चालीषम् । तुल्यपादयुगम् समपदम् । वितस्त्यन्तरेण स्थिते पादद्वये विशालः, मण्डलाकृति पादद्वयं मण्डलम् । १९ चक्रिणा ।

य तर्गे दस्मुन्याच्च चत्वारिंशस्त्रिलक्षणिः । १ संग्रामविमवन्कुर्व नद्वेशमाकम्पयन् पतन् ॥१६॥  
 य यागशक्ताभ्यार्थं त्रिस्त्रियकथशामः । उष्टस्त्राल चलन्मौलिस्त्रियार्थी<sup>१</sup> सुरोत्तमः ॥१७॥  
 संग्रामवन्कुर्व नसुहेशं यमध्यास्ते स्म चक्रस्तुत् । दशोपहृद्देसंस्त्रियो धनुज्यमिसकुर्त्सपूशन् ॥१८॥  
 तुङ्गोऽयं हिमशानदिरलङ्घयश्च प्रथमज्ञैः<sup>२</sup> । लङ्घितीऽयं त्रिया देव त्वद्वृत्समित्तमानुषम् ॥१९॥  
 विप्रकुषान्तरा; क्यास्मद्वावाम्याः दत्त भवद्वद्वरः<sup>३</sup> । तथाप्याकम्पितास्तेन<sup>४</sup> पत्तैकपदे<sup>५</sup> वशम् ॥२०॥  
 त्वद्विष्टापः शरव्याज्ञानुपतन् गग्नाङ्गणम् । गणवद्वपदे कर्त्तुमस्तमान् नाहृत्वान् ध्रुवम् ॥२१॥  
 विजिताच्छिः समाक्रान्तविजयार्थं गुहोदरः । हिमाद्रिशिस्त्रियव्य ज्ञस्तेने ते योग्यामः<sup>६</sup> ॥२२॥  
 जयवादोऽनुवादोऽयं<sup>७</sup> मिहुदिग्विजयस्य ते । जयतात् नन्दलाजिज्ञायो विनिष्ठीष्ट भवानिति ॥२३॥  
 स्मुच्चरन् जयव्यामसुश्वरः स सुरीः समम् । प्रभुं समाजयामास<sup>८</sup> सोपचारं सुरोत्तमः ॥२४॥  
 अभिषिद्य च राजेन्द्रं राजवद्विधिनां<sup>९</sup> ददौ । गोशीर्धचन्दनं<sup>१०</sup> सोऽस्मै सम्भौषधिमालया<sup>११</sup> ॥२५॥  
 वन्मुक्तिवासिनो<sup>१२</sup> देव वृत्तमित्तमालयः । देवाहृत्वामानमन्त्येते त्वद्विष्टादामिकाडिक्षणः ॥२६॥

जिसकी गति कहीं भी सखलित नहीं होती ऐसा वह बाण ऊपरकी ओर दूर तक जाकर वहाँपर रहनेवाले देवके भवन्तेन उड़ात्तर उसके स्त्रियोंको हिमवत्कुर्त्सपूशन कुर्त्सपूशन कर जा पहुँचा ॥१६॥ मागध देवके समान कुछ विचार कर जिसने चक्रवर्तीका आगमन समझ लिया है ऐसा वहाँका रहनेवाला देव अपना मस्तक कुकाता हुआ चला ॥१७॥ और जिसने अपना कुछ क्रोध रोक लिया है ऐसा वह देव धनुषकी चापका स्पर्श करता हुआ उस स्थानपर जा पहुँचा जहाँपर कि चक्रवर्ती विराजमान थे ॥१८॥ वह देव भरतसे कहने लगा कि हे देव, यह हिमवान् पर्वत अत्यन्त ऊँचा है और साधारण पुरुषोंके द्वारा उल्लंघन करने योग्य नहीं है फिर भी आज आपने उसका उल्लंघन कर दिया है इसलिए आपका चरित्र मनुष्योंका उल्लंघन करनेवाला अर्थात् लोकोत्तर है ॥१९॥ हे देव, बहुत दूर बने हुए हम लोगोंके आवास कहाँ ? और आपका बाण कहाँ ? तथापि पढ़ते हुए इस बाणने हम सबको एक ही साथ कम्पित कर दिया ॥२०॥ हे देव, यह आपका प्रताप बाणके ब्याजसे आकाशमें उछलता हुआ ऐसा जान पढ़ता था मानो हम लोगोंको गणवद्द ( चक्रवर्तीके अधीन रहनेवाली एक प्रकारकी देवोंकी सेना ) देवोंके स्थानपर नियुक्त होनेके लिए बुला ही रहा था ॥२१॥ जिसने समुद्रको भी जीत लिया है और विजयार्थं पर्वतकी गुफाओंके भीतर भी आक्रमण कर लिया है ऐसा यह आपका विजय करनेका उद्दम आज हिमवान् पर्वतके शिखरोंपर भी फैल रहा है ॥२२॥ हे प्रभों, आपका समस्त दिग्विजय सिद्ध हो चुका है इसलिए हे जयशील, आपकी जय हो, आप समृद्धिमान् हों और सदा बढ़ते रहें इस प्रकार आपका जयजयकार बोलना पुनरुक्त है ॥२३॥ इस प्रकार उच्चारण करता हुआ जो जय जय शब्दोंसे बाचाल हो रहा है ऐसा वह उत्तम देव अन्य अनेक उत्तम देवोंके साथ-साथ सब तरहके उपचारोंसे भरतकी सेवा करने लगा ॥२४॥ तथा राजाओंके योग्य विधिसे राजाविराज भरतका अभिषेक कर उसने उनके लिए थीषधियोंके समूहके साथ गोशीर्ध नामका चन्दन समर्पित किया ॥२५॥ और कहा कि हे देव, आपके क्षेत्रमें रहनेवाले ये देव आपकी प्रसन्नताकी इच्छा करते हुए दूरसे ही मस्तक कुकाकर आपके लिए नमस्कार

१ संप्रापद्विम- १०, १० । २ विवायेस्यर्थः । ३ हिमवत्कुट्टवासी । हेमवाश्राम । ४ ईश्वतीडित ।  
 ५ सामान्यः । ६ दिव्यमिस्यर्थः । ७ दूर । ८ भवतो बाणः । ९ शरेण । १० पुषपत् । ११ योग्योगः ।  
 १२ सार्थकं पुनर्बचनमनुवादः । १३ संभावयामास । १४ राजाहविषानेन । १५ हरिचन्दनम् ।  
 १६ वनपुष्पमालया । १७ तवं पालनक्षेत्रवासिनः ।

धेहि॑ देव ततोऽस्माम् प्रतादतरलो दशम् । सवामिप्रमादकामो हि वृत्तदामो॒ उनुजीविनाम्॑ ॥ १०० ॥  
 निदेशी॑ सचिनैश्वास्मान् संना॒ इयितुमर्द्दमि॑ । वृत्तिलाभादपि प्रायस्तत्त्वामः॑ किंकरैर्मतः ॥ १०१ ॥  
 मानवज्ञिनि॑ तद्वाक्यं॑ स तानमस्तत्त्वान् । इवसर्जयत्वसत्कृत्य यथास्त्रं कृतमाननान् ॥ १०२ ॥  
 हिमवज्ञायशंगीनि॑ मङ्गलान्यस्य किलराः । जगुस्तर्कुञ्जदेशेषु॑ स्वैरमारुष्मुड्डर्णना ॥ १०३ ॥  
 असकृत् किलरस्त्रियामातुनवामाः॑ स्वनामृती॑ । सरोक्षीचिभिदो भन्दमावसुरहनानिला॑ ॥ १०४ ॥  
 स्थलादि॑ जनीघनादिरक्षक् किरन् किंजलक्षणं रजः । हिमी हिमाद्रिकुञ्जे॒ भ्यस्तं सिथेवे सभीरणः ॥ १०५ ॥  
 स्थलादि॑ भन्दमोरुहिणीदार्द॑ गतिर्मै॒ सत्त्वं॑ लक्ष्मिवा॑ । हिमाचलनिकुञ्जेषु॑ पश्येत्॑ दिग्जयाजिता॑ ॥ १०६ ॥  
 हिमाचलस्यलेष्यस्य धनिरासीत् प्रपश्यतः । कृतोपहारकुञ्जेषु॑ स्थलाम्भोजैर्विकस्त्रैः ॥ १०७ ॥  
 तमुच्चैर्ज्ञिमाक्रान्तदिक्चक्रं विद्वायसिष्ठ॑ । स्वमिषानस्यत्वदिं हिमाद्रि॑ वह्यमन्त॑ सः ॥ १०८ ॥

कर रहे हैं ॥ १०९ ॥ इसलिए हे देव, हम लोगोंपर प्रसन्नतासे चंचल हुई दृष्टि डालिए, क्योंकि स्वामीकी प्रसन्नता प्राप्त होना ही सेवक लोगोंकी आजीविका प्राप्त होना है । भावार्थ – स्वामी लोग सेवकोंपर प्रसन्न रहे मही उनकी उचित आजीविका है ॥ १०० ॥ हे स्वामिन्, आप उचित आजाओंके द्वारा हम लोगोंको सन्मानित करनेके योग्य हैं अर्थात् आप हम लोगोंको उचित आजाएं दीजिए, क्योंकि सेवक लोग स्वामीकी आज्ञा मिलनेको आजीविका ( तनल्लवाह )की प्राप्तिसे भी कहीं बढ़कर मानते हैं ॥ १०१ ॥ इस प्रकारके उस देवके बचनोंकी प्रशंसा करते हुए भरतने उन सब उत्तम देवोंका सत्कार किया और सबको अपने अधीन कर बिदा कर दिया ॥ १०२ ॥ उस समय अपने इच्छानुसार स्वरोंका चढ़ाव-उत्तार करनेवाले किश्चर देव उस पर्वतके लतागृहोंके प्रदेशोंमें ‘भरतने हिमवान् देवको जीत लिया है’ इस बातको सूचित करनेवाले मंगलगीत गा रहे थे ॥ १०३ ॥ उस समय वही किश्चर देवोंकी स्त्रियोंके स्तन ढकनेवाले वस्त्रोंको बार-बार हिलाता हुआ तथा तालाबकी तरंगोंको छिन्न-भिन्न करता हुआ उस हिमवान् पर्वतके बनोंका बायु धीरे-धीरे बह रहा था ॥ १०४ ॥ स्थल-कमलिनियोंके बनके चारों ओर केशरसे उत्पन्न हुआ रज फैलाता हुआ तथा हिमवान् पर्वतके लतागृहोंमें फैल रही थी ॥ १०५ ॥ जिन्होंने फूले हुए स्थल-कमलोंसे उपहारका काम किया है ऐसे हिमवान् पर्वतके स्थलोंमें चारों ओर देखते हुए भरतको बहुत ही सन्तोष होता था ॥ १०६ ॥ वह हिमवान् पर्वत ठीक भरतके समान था क्योंकि जिस प्रकार भरत उच्चैर्वृत्ति अर्थात् उल्लङ्घ व्यवहार धारण करनेवाले थे उसी प्रकार वह पर्वत भी उच्चैर्वृत्ति अर्थात् बहुत ऊँचा था, जिस प्रकार भरतने अपने तेजसे समस्त दिशाएं व्याप्त कर ली थीं उसी प्रकार उस पर्वतने भी अपने विस्तार से समस्त दिशाएं व्याप्त कर ली थीं, जिस प्रकार भरत आयति अर्थात् उत्तम भवितव्यता ( भविष्यत्काल ) धारण करते थे उसी प्रकार वह पर्वत भी आयति अर्थात् लम्बाई धारण कर रहा था और जिस प्रकार भरतके पास अनेक रत्नरूपी सम्पदाएं थीं उसी प्रकार उस पर्वत-के पास भी अनेक रत्नरूपी सम्पदाएं थीं । इस प्रकार अपनी समानता रखनेवाले उस हिमवान्

१ शुरु । २ जीवितलाभः । ‘आजीवो जीविका वार्ता॑ वृत्तिर्वर्तनबीकने॑’ इत्यभिषानात् । ३ सेवकानाम् ।  
 ४ वासनः । ‘अपवादस्तु निदेशो निदेशः वासनं च सः । शिष्टिष्वाज्ञा च’ इत्यभिषानात् । ५ आज्ञालामः ।  
 ६ पूजयन् । ७ तदेवस्य बचनम् । ८ हिमवश्रिकुञ्जजप्रदेशु । ‘निकुञ्जकुञ्जबी वा कलीबे लतादिपिहितोवरे॑’  
 इत्यभिषानात् । ९ उरोजाच्छादनकस्त्राणि । १० सह । ‘साकं सत्रा समं सह’ इत्यभिषानात् । ११ प्रकृष्टो॑  
 इत्यभिषानात् । १२ विहितपृष्ठोपहारव्यापारेषु । १३ भूतधनागमम् । १४ बहुमानमकरोत् ।

अत्रान्तरे<sup>१</sup> गिरीन्द्रेऽहिमन् स्वापारितदर्शं प्रसुम् । चिनोदयितुमित्युच्चैः पुरोधा गिरमभ्यधात् ॥ १०६॥  
 हिमवानयमुलुकः संगतः सततं श्रियां<sup>२</sup> । कुलक्षोणीभृतां धूर्यो<sup>३</sup> धते युज्मदनुक्तियाम्<sup>४</sup> ॥ १०७॥  
 अहो महान्मृतो दौलो दुर्गामृतो दुर्लालो<sup>५</sup> । दिव्यसंस्कारदेव लिहो<sup>६</sup> युज्मन्महोश्वात् ॥ १०८॥  
 चिन्द्रेस्तंकुता रक्षैरस्य श्रेणी हिरण्मयी । शतशोकममात्रोधा द्वृच्छित्रेष्व भात्यसौ ॥ १०९॥  
 स्वपूर्वपरकोटिभ्यां विगाह लवणार्णवम् । स्थितोऽयं गिरिशमाति मानदण्डाचितो भुवः ॥ ११०॥  
 दिविस्तुतोऽयमद्रीन्द्रो भरताद् भरतर्षम्<sup>७</sup> । मूले चौपरिभारे च तुल्यविस्तारसंभविः<sup>८</sup> ॥ १११॥  
 अस्यानुसानु रथेयं बनराजी चिराजते । शशदध्युषिता सिद्धविद्याधरमहोरगैः ॥ ११२॥  
 तटाभोगा<sup>९</sup> विभान्त्यस्य उबलमणिविचित्रितः । चित्रिता द्रव संक्रास्तैः स्वर्वधूप्रसिद्धिकैः ॥ ११३॥  
 पर्यटन्ति सटेत्वस्य सप्रेयस्यो<sup>१०</sup> नमहकराः । स्वैरसंभोगयोग्येषु हारिभिर्लितिकागृहैः ॥ ११४॥  
 विविक्ते<sup>११</sup> रमणीयेषु सानुवस्य छनोस्सवाः । न इति दृपतेऽन्यज्ञ गीर्वाणाः साप्तसीरणाः ॥ ११५॥

पर्वतको भरतने बहुत कुछ माना था—आदरकी दृष्टिसे देखा था ॥ १०८ ॥ इसी दीर्घमें, जब कि महाराज भरत अपनी दृष्टि हिमवान् पर्वतपर ढाले हुए थे—उसकी शोभा निहार रहे थे तब पुरोहित उन्हें आनन्दित करनेके लिए नीचे लिखे अनुसार उत्कृष्ट वचन कहने लगा ॥ १०९ ॥ हे प्रभो, यह हिमवान् पर्वत बहुत ही उत्तुंग अर्थात् ऊँचा है, सदा श्री अर्थात् शोभा-से सहित रहता है और कुलक्षोणीभृत् अर्थात् कुलाचलोंमें थोष है इसलिए आपका अनुकरण करता है—आपकी समानता धारण करता है क्योंकि आप भी तो उत्तुंग अर्थात् उदारमना है, सदा श्री अर्थात् राज्यलक्ष्मीसे सहित रहते हैं और कुलक्षोणीभृत् अर्थात् वंशपरम्परासे आये हुए राजाओंमें थोष हैं ॥ ११० ॥ अहा, कितना आश्चर्य है कि यह बड़ा भारी पर्वत, जो कि कठिनाईसि चढ़ने योग्य है और जिसका पार होना अत्यन्त कठिन है, डोरोपर बाण रखते ही आपके पुण्य प्रतापसे आपके बश हो गया है ॥ १११ ॥ इसकी सुवर्णमयी श्रेणी अनेक प्रकार-के रत्नोंसे सुशोभित हो रही है, सौ योजन ऊँची है और ऐसी जान पड़ती है मानो टौकीसे गढ़ कर ही बनायी गयी हो ॥ ११२ ॥ अपने पूर्व और पश्चिमके कोणोंसे 'लवण समुद्रमें प्रवेश कर' पड़ा हुआ, यह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो पृथिवीके नापनेका एक दण्ड ही हो ॥ ११३ ॥ है भरतश्रेष्ठ, यह थ्रेषु पर्वत भरतक्षेत्रसे दूने विस्तारवाला है और मूल, मध्य तथा ऊपर तीनों भागोंमें इसका समान विस्तार है ॥ ११४ ॥ जिसमें सिद्ध, विद्याधर और नागकुमार निरन्तर निवास करते हैं ऐसी यह मनोहर बनकी पंक्ति इस पर्वतके प्रत्येक शिखरपर शोभायमान हो रही है ॥ ११५ ॥ देवीप्यमान मणियोंसे चित्र-विचित्र हुए इस पर्वतके किनारेके प्रदेश बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे हैं और भीतर पड़ते हुए देवांगनाओंके प्रतिबिम्बोंसे ऐसे जान पड़ते हैं मानो उनमें अनेक चित्र ही खीचे गये हों ॥ ११६ ॥ सुन्दर लतागृहोंसे अपनी दृच्छानुसार उपभोग करने योग्य इस पर्वतके किनारोंपर अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ विद्याधर लोग ठहल रहे हैं ॥ ११७ ॥ जो देव लोग अपनी अप्सराओंके साथ इस पर्वतके निर्जन पवित्र और रमणीय किनारोंपर क्रीड़ा कर लेते हैं फिर उन्हें किसी दूसरी जगह सन्तोष नहीं होता

१ अस्मिन्नवसरे । २ श्रीदेव्या लक्ष्म्या च । ३ मुहरः । ४ तवानुकरणम् । ५ अवतरितुमशान्तः ।  
 ६ रादो ल० । ७ दिग्युणविस्तारः । ८ भरतश्रेष्ठ । ९ तुल्या विस्तार—ल०, द० । १० सानुविस्तारः ।  
 ११ प्रियतमासहितः । १२ पवित्र । 'विविक्तो पूतविजनो' इत्यभिधानात् ।

पर्यन्तेऽस्य<sup>१</sup> वज्रोदशा विकासि कुसुमसिमतः । हसन्तीवामरोद्यानश्चियमात्मीयया श्रिया ॥११९॥

स्वेन मूर्खा विभूत्येष श्रियं नित्यानपाशिनीम् ।

स्मार्ताः स्मरन्ति यो शत्र्याः सौभाग्यमदक्षिणीम् ॥१२०॥

मूर्खि पग्नहुदोऽस्यास्ति धृतश्री वैदुष्यर्णवः । प्रसङ्गवारिलकुहैमपक्षजमण्डनः ॥१२१॥

हृदस्यास्य पुरुःप्रत्यक्षो रणे द्वारनिर्गतं । गङ्गासिम्भू महानशी धसेऽयं धरणीधरः ॥१२२॥

सरिलं रोहितास्यां च दधात्येष शिलोच्चरः । तमुदक्षोरणे द्वाराजिःसूत्योदक्षुर्णी<sup>२</sup> गताम् ॥१२३॥

महापगाभिरित्याभिरलङ्घयाभिर्विभात्ययम् । तिसूभिः शक्तिभिः स्वं वा भूभृजार्च विभावयन् ॥१२४॥

शिखरंरेष कुर्कीलः कीलयज्ञिव खाङ्गणम् । सिद्धाध्वानं<sup>३</sup> रणद्वीद्वैः परार्थ्ये रुद्रदिक्षुर्णैः ॥१२५॥

<sup>४</sup>परश्चात्मिहार्द्वन्द्वे सन्त्यावासाः सुधाशिनाम् । येऽन्तर्यां काषज्ञां<sup>५</sup> लक्ष्मी हसन्तीव हवसंपदा ॥१२६॥

हृत्यनेकगुणेऽप्यस्मिन् दोषोऽस्त्वेषो महान् गिरो । यन पर्यन्तगतान्धते गुहरप्यगुह्यमान्<sup>६</sup> ॥१२७॥

अलङ्घयमहिमोद्ग्रो गरिमाकान्तविष्टयः । जगद्गुरोः<sup>७</sup> पुरोदामामये धत्ते धराधरः ॥१२८॥

है ॥ ११८ ॥ जो फूले हुए फूलरूपी हास्यसे सहित हैं ऐसे इसके किनारे के बनके प्रदेश ऐसे जान पड़ते हैं मानो अपनी शोभासे देवोंके बगीचेकी शोभाकी हँसी ही कर रहे हों ॥ ११९ ॥

यह पर्वत अपने मस्तक ( शिखर ) से उस शोभाको धारण करता है, जो कि, सदा नाशरहित है और स्मृतिके जानकार पण्डित लोग जिसे श्लोकीकृत सीमहारामः अहंकारः द्वृक्षेवर्णली<sup>८</sup> कहते हैं ॥ १२० ॥

इसके मस्तकपर पश्च नामका वह सरोवर है जिसमें कि श्री देवीका निवास है, शास्त्रकारोंने जिसका बहुत कुछ वर्णन किया है, जिसमें स्वच्छ जल भरा हुआ है, और जो फूले हुए सुबर्ण कमलोंसे सुशोभित है ॥ १२१ ॥ यह पर्वत क्रमसे इस पञ्चसरोवरके पूर्व तथा पश्चिम तोरणसे निकली हुई गंगा और सिन्धुनामकी महानदियोंको धारण करता है ॥ १२२ ॥

तथा पश्च सरोवरके उत्तर तोरणद्वारसे निकलकर उत्तरकी ओर गयी हुई रोहितास्या नदीको भी यह पर्वत धारण करता है ॥ १२३ ॥ यह पर्वत इन अलंघ्य तीन महानदियोंसे ऐसा सुशोभित होता है मानो उत्साह, मन्त्र और प्रभुत्व इन तीन शक्तियोंसे अपना भूभृदभाव अर्थात् राजापना ( पक्षमें पर्वतपना ) ही प्रकट कर रहा हो ॥ १२४ ॥ देवीप्यमान तथा दिशाओंको व्याप्त करनेवाले अपने अनेक शिखरोंसे यह पर्वत ऐसा जान पड़ता है मानो आकाशरूपी औंगन-की कीलोंसे युक्त कार देवोंका मार्ग ही रोक रहा हो ॥ १२५ ॥ इस पर्वतराजपर देवोंके अनेक आवास हैं जो कि अपनी शोभासे स्वर्गकी बहुत भारी शोभाकी भी हैंसी करते हैं ॥ १२६ ॥

इस प्रकार इस पर्वतमें अनेक गुण होनेपर भी एक बहः भारी दोष है और वह यह कि यह स्वयं गुरु अर्थात् बड़ा होकर भी अपने चारों ओर लगे हुए अगुरु द्रुम अर्थात् छोटे-छोटे वृक्षोंको धारण करता है ( परिहार पक्षमें अगुरु द्रुमका अर्थ अगुरु चन्दनके वृक्ष लेना चाहिए ) ॥ १२७ ॥

यह पर्वत जगद्गुरु भगवान् वृषभदेवकी सदृशता धारण करता है क्योंकि जिस प्रकार भगवान् वृषभदेव अपनी अलंघ्य महिमासे उदय अर्थात् उल्कष हैं उसी प्रकार यह पर्वत भी अपनी अलंघ्य महिमासे उदय अर्थात् ऊँचा है और जिस प्रकार भगवान् वृषभदेवने अपनी गरिमा अर्थात् गुहपनेसे समस्त विश्वको व्याप्त कर लिया है उसी प्रकार इस पर्वतने भी अपनी गरिमा अर्थात् भारीपनसे समस्त विश्वको व्याप्त कर लिया है । भावार्थ – जिस प्रकार भगवान् वृषभ-देवका गुहपना समस्त लोकमें प्रसिद्ध है उसी प्रकार इस पर्वतका भारीपना भी लोकमें प्रसिद्ध

१ पर्यन्तस्य ल० । २ स्मृतिरेदिनः । ३ वृता श्रीः ( देवी ) येन स । ४ पूर्वेऽदिव्यमदिव्यस्थलोरण ।

५ तत्पर्यसरोदरस्योत्तरदिव्यस्थतोरण । ६ उत्तरदिव्यमुखीम् । ७ देवभेदमार्गम् । ८ अपरिमिताः । ९ पर्यन्तस्य शताधिकात् । १० कालागुरुत्तर०, लघुत्तरनिति ध्वनिः । ११ उपमाम् ।

इत्यस्यादेः परां शोभा शंखशुर्यः<sup>१</sup> पुरोधसि । प्रशंसनं तमद्वान्द्रं संप्रीतो मरताधिषः ॥१२६॥  
 इव भुग्निक्षेत्रसोमानं सौऽभिनन्दये<sup>२</sup> हिमाचलम् । प्रश्नाशृतत् प्रभुर्दण्ड<sup>३</sup> वृषभादि कुतूहलात् ॥१२७॥  
 यो योजनशतोच्छायो मूले तावच विस्तृतः । तदद्विस्तृतिभूमिं सुबो मौलिरियोद्गतः ॥१२८॥  
 यस्योऽसंगसुबो रथः कवली<sup>४</sup> पथुमणिहतैः । संयोगाय नमोगानां करुणसे स्म<sup>५</sup> लतालयैः ॥१२९॥  
 सनाशम् सनागैश्च<sup>६</sup> सपुत्राणैः परिष्कृतम् । यदुपान्ते वनं सेव्यं मुच्यते जातु नामैः ॥१३०॥  
 इव तटस्फटिकोत्पर्यभादिरधर्मिस्त्रिम् । शशाङ्कैरित्यात्मद्वयुम्<sup>७</sup> शशमोक्षस्त् ॥१३१॥  
 तं तीलं भुवनस्त्वैकं ललामेव<sup>८</sup> मिलपयन्<sup>९</sup> । कल्यामास लक्ष्मीवान् स्त्रयशः प्रतिमात्रकम्<sup>१०</sup> ॥१३२॥  
 तमेकपाण्डुर<sup>११</sup> शीलमाकरुणः नन्दनवरम् । स्वयं शोराशिनीकाणां<sup>१२</sup> पश्यत्तमिनमन्द सः ॥१३३॥  
 सोऽचलः प्रभुमायान्त<sup>१३</sup> मायाम्तमस्तिलहिषाम् । प्रश्नाग्रहीदिवाभ्येत्य<sup>१४</sup> विष्वद्वयमिवनामिलैः ॥१३४॥  
 तस्टोपान्तविश्रान्तलक्षणेऽग्निकारैः । श्रोद्गीयमामममलं शुश्रुते<sup>१५</sup> स्वयं शोऽमुना ॥१३५॥  
 अयलश्मीसुखालोकमालादर्शविभ्रमाः । तत्त्वाभिस्त्वयो जहर्मनोऽस्य स्फटिकामलाः ॥१३६॥

है, अथवा इस पर्वतने अपने विश्वारसे लोकका बहुत कुछ अंश व्याप्त कर लिया है ॥१२८॥  
 इस प्रकार जब पुरोहित उस पर्वतकी उत्कृष्ट शोभाका वर्णन कर चुका तब भरतेश्वरने भी  
 प्रसन्न होकर उस पर्वतकी प्रशंसा की ॥१२९॥ अपने उपभोग करनेयोग्य क्षेत्रकी सीमा  
 स्वरूप हिमवान् पर्वतकी प्रशंसा कर महाराज भरत कुतूहलवश वृषभाचलको देखनेके लिए  
 लौटे ॥१३०॥

जो सी योजन ऊँचा है, मूल तथा ऊपर क्रमसे सौ और पचास योजन चौड़ा है एवं  
 ऊपरकी ओर उठा हुआ होनेसे पृथिवीके मस्तकके समान जान पड़ता है । जिसके ऊपरके मनोहर  
 प्रदेश केलोंके समूहसे सुशोभित लतागृहोंसे आकाशगामी देव तथा विद्याधरोंके उपभोग करने  
 योग्य हैं, नाग, सहजना और नागकेशरके वृक्षोंसे चिरे हुए तथा सेवन करने योग्य जिस पर्वत-  
 के समीपके वनोंको देव लोग कभी नहीं छोड़ते हैं । अपने तटपर लगे हुए स्फटिक मणियोंकी  
 फैलती हुई प्रभासे जिसने समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली हैं, जिसका शारीर शरदश्रृतुके बादलोंसे  
 बना हुआ-सा जान पड़ता है और जो सदा देव-तथा विद्याधरोंसे सहित रहता है, ऐसे उस  
 पर्वतको लोकके एक आभूषणके समान देखते हुए श्रीमान् भरतने अपने यशका प्रतिबिम्ब  
 माना था ॥१३१-१३५॥ जो एक सफेद रंगका है और जो कल्पान्त काल तक कभी नष्ट  
 नहीं होता ऐसे उस वृषभाचलको अपने यशकी राशिके समान देखते हुए महाराज भरत बहुत  
 ही आनन्दित हुए थे ॥१३६॥ उस समय वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त शशुओं-  
 की सर्वमुखी भाग्यको नष्ट करनेवाले चक्रवर्ती भरतको अपने समीप आता हुआ जानकर चारोंओर  
 बहनेवाले वनके वायुके द्वारा सामने जाकर उनका स्वागत-सत्कार ही कर रहा हो ॥१३७॥  
 वहांपर भरतने उस पर्वतके किनारेके समीप विश्राम करते हुए विद्याधर नागकुमार और  
 किस्तर देवोंके हारा गाया हुआ अपना निर्मल यश भी सुना था ॥१३८॥ स्फटिकके समान

१ शुति कुर्वति सति । २ प्रशंस्य । ३ व्याशुटिसवान् । ४ खण्ड-अ०, द०, स०, ल० । ५ समर्थि भवस्ति ।  
 ६ नागवृक्षसहितम् । ७ सर्जकतहभिः । ८ यदुपान्तवनं ल०, प०, द०, अ०, प०, स० । ९ लिप्तदिव्युख्यम् ।  
 १० घटित । ११ आकाशस्पर्शनसहितम्, देव-विद्याधर-सहितम् । १२ तिळकम् । १३ विलोक्यन् ।  
 १४ सदृशम् । १५ केवल धब्दलम् । १६ समानम् । १७ आ समन्तान् अथः आयः तस्य अन्तः अन्तकः नाश  
 इत्यर्थः । विभूत्यन्तकम् समन्तात्पृष्ठनाशकमित्यर्थः । 'अतः शुभावहो विधि' रित्यभिशानात् । १८ समन्तान्  
 प्रसारिभिः । विष्वदध्य विष्वाकृतीत्यभिशानात् । १९ शूले स्म ।

अधिमंखलमस्पासीचिलाभितिषु चकिणः । सवनामाश्रविन्यासे धृतिर्विशक्षमाजिलः<sup>१</sup> ॥ १४० ॥  
 काकिणीरकमादाय पदा लिलिखिष्टयम्<sup>२</sup> । तदा राजसहस्राणां<sup>३</sup> नामान्यत्रैक्षताभिराट् ॥ १४१ ॥  
 असंख्यकरुपकोटीषु येऽतिक्रान्ता भरामुजः । तेषां नामभिराकीर्णं तं पश्यत् स सिसिष्यते ॥ १४२ ॥  
 ततः किञ्चित् स्वरुद्गर्बो विलक्षीभूच्छ्वानिराट् । करुद्विश्वसमाभिमुख्यं विक्षेपाकाङ्क्षीमूर्खः ॥  
 स्वर्यं कस्यचिदेकस्य निरस्यक्षामशासनम् । स मेने निखिलं लोकं प्रायः रवार्थपरायणम् ॥ १४३ ॥  
 अथ तत्र शिलापदे सवहस्ततलनिहत्तेः<sup>४</sup> । प्रशस्तिभित्युदात्तार्थं व्यक्तिखत् स दशोद्धनः ॥ १४४ ॥  
 स्वस्तीक्ष्वाकुकुलम्बोभतलप्रालेयदीधितिः । चानुरन्तं महीभर्ता<sup>५</sup> भरतः शातमातुरः<sup>६</sup> ॥ १४५ ॥  
 श्रीमानानश्चनिःशोषलचरामरभूचरः । प्राजापत्यो<sup>७</sup> मनुमन्यः शूरः शुचिरुदारधीः ॥ १४६ ॥  
 चरभाक्षधरो धीरो<sup>८</sup> धौरेयश्वकधारिणाम् । परिकान्तं धराचक्रं जिष्णुना येष दिग्जये ॥ १४७ ॥  
 यस्मादादशकोट्योऽक्षा जलस्थलविलक्षिनः । लक्षाश्चतुरशीतिश्च मदेसा जयसाधने ॥ १४८ ॥  
 यस्य दिग्विजये विष्वग्नलरेणुभित्यतैः । सदिष्मुखं रमाहृदं कपोलगालकर्तुरैः ॥ १४९ ॥

निर्मल और विजयलक्ष्मीके मुख देखनेके लिए मंगलमय दर्पणके समान उस वृषभाचलके किनारे-  
 की दीवारें भरतका मन हरण कर रही थीं ॥ १३९ ॥ समस्त पृथिवीको जीतनेवाले चक्रवर्तीं  
 भरतकी उस पर्वतके किनारेकी शिलाकी दीवारोंपर अपने नामके अक्षर लिखनेमें बहुत कुछ  
 सन्तोष हुआ था ॥ १४० ॥ चक्रवर्तीं भरतने काकिणी रत्न लेकर ज्यों ही वहाँ कुछ लिखनेकी  
 इच्छा की त्यों ही उन्होंने वहाँ लिखे हुए हजारों चक्रवर्तीं राजाओंके नाम देखे ॥ १४१ ॥ असंख्यात  
 करोड़ कल्पोंमें जो चक्रवर्तीं हुए थे उन सबके नामोंसे भरे हुए उस वृषभाचलको देखकर भरत-  
 को बहुत ही विस्मय हुआ ॥ १४२ ॥ तदनन्तर जिसका कुछ अभिमान दूर हुआ है ऐसे चक्र-  
 वर्तीनि आश्चर्यचकित होकर इस भरतक्षेत्रकी पृथिवीको अनन्यशासन अर्थात् जिसपर दूसरेका  
 शासन न चलता हो ऐसा नहीं भाना था । भावार्थ – वृषभाचलकी दीवालोंपर असंख्यात  
 चक्रवर्तीयोंके नाम लिखे हुए देखकर भरतका सब अभिमान नष्ट हो गया और उन्होंने स्वीकार  
 किया कि इस भरतक्षेत्रकी पृथिवीपर मेरे समान अनेक शक्तिशाली राजा हो गये हैं ॥ १४३ ॥  
 चक्रवर्तीं भरतने किसी एक चक्रवर्तींके नामकी प्रशस्तिकी स्वर्य – अपने हाथसे भिटाया और  
 बेसा करते हुए उन्होंने प्रायः समस्त संसारको स्वार्थपरायण समझा ॥ १४४ ॥

अथानन्तर – यह ही जिसका धन है ऐसे चक्रवर्तीनि अपने हाथके तलभागके समान  
 चिकने उस शिलापटपर नीचे लिखे अनुसार उत्कृष्ट अर्थसे भरी हुई प्रशस्ति लिखी ॥ १४५ ॥  
 स्वस्ति श्री इक्ष्वाकु वंशरूपी आकाशका चन्द्रमा और चारों दिशाओंकी पृथिवीका स्वामी  
 मैं भरत हूँ, मैं अपनी माताके सौ पुत्रोंमें-से एक बड़ा पुत्र हूँ, श्रीमान् हूँ, मैंने समस्त विद्यावर  
 देव और भूमिगोचरी राजाओंको नम्रोभूत किया है, प्रजापति भगवान् वृषभदेवका पुत्र हूँ,  
 मनु हूँ, मान्य हूँ, शूरवीर हूँ, पवित्र हूँ, उत्कृष्ट बुद्धिका धारक हूँ, चरमशरीरी हूँ, धीर वीर हूँ,  
 चक्रवर्तीयोंमें प्रथम हूँ और इसके सिवाय जिस विजयीने दिग्विजयके समय समस्त पृथिवीमण्डल-  
 की परिक्रमा दी है अर्थात् समस्त पृथिवीमण्डलपर आकमण किया है, जिसके जल और स्थल-  
 में चलनेवाले अठारहूँ करोड़ घोड़े हैं, जिसकी विजयी सेनामें चौरासी लाख मदोन्मत्त हाथी

१ संतोषः । २ सकलमहीविजयिनः । ३ लिलितुमिच्छति । ४ अपरिमितानां राजाभित्यर्थः । ५ विस्मयान्वितो  
 भूत्वा । ‘विलक्षो विस्मयान्विते’ इत्यभिषात् । ६ वर्तुले समतले इत्यर्थः । ७ चतुरलो द०, ५०, ६०,  
 ७०, ८० । ८ विसमुद्र-हिमवद्गिरिपर्वतमहीनाथः । ९ यतस्य माता शतमाता तस्य अपर्य शतमातुरः ।  
 १० प्रजापते पुरोरपत्यं पुमान् । ११ मूरुषः ।

प्रशाशितदिशो यस्य यशः शशिकलामलम् । सुरैरत्कुदुर्गात् कुलभोणीधकुक्षिषु ॥ १५१ ॥  
 दिव्यजयं यस्य लैन्यानि विश्रान्तान्यधिदिक्षाम् । चक्रानुभ्रास्तिसान्तानि<sup>१</sup> क्रान्तवा हेमयतीस्थलीः ॥ १५२ ॥  
 नसा श्रीनाभिराजस्य पुत्रः श्रीनृष्टभेशिनः । वदूषगृह्णितामेनो यः स्म शास्त्रविलो महीम् ॥ १५३ ॥  
 मत्वाऽन्यो गव्यरी<sup>२</sup> लक्ष्मीं जिव्यरः<sup>३</sup> सर्वसूक्ष्माम् । जगद्विसूक्ष्मरी<sup>४</sup> कीर्तिमतिषिदिहाचले ॥ १५४ ॥  
 इति प्रशस्तिमासीयां विलिखने<sup>५</sup> स्वयमश्वरः । प्रसूनप्रकर्मुक्तैर्नुपोऽवधकिरेऽसैः ॥ १५५ ॥  
 तत्रोच्चैरुद्धरवानामन्द्रदुन्द्रभयोऽध्वनन् । दिवि देवा जगेत्यशीशरात्पुर्वैरेवयन् ॥ १५६ ॥  
 स्वतुनासांकरामारवाहनो गन्धवाहिनः । भग्न्द्रविचरुराधृतं सान्द्रमन्दारनन्दनाः ॥ १५७ ॥  
 न केवलं शिलाभिसाक्षस्य नामाभ्यरात्रली । लिखितानेन चार्द्रेऽपि श्रिमं तत्त्वाश्वनचलान् ॥ १५८ ॥  
 लिखितं<sup>६</sup> साक्षिणे भुक्तिरित्यस्तीहापि शासने । लिखितं सोऽष्वली भुक्तिरित्यसे लाक्षिणोऽमराः ॥ १५९ ॥  
 अहो महानुभाषोऽर्यं चक्री दिवचक्निर्जये । येनाक्रान्तं महीषकमानक्रवसतिशिकान्<sup>७</sup> ॥ १६० ॥  
 उच्चराद्विरुद्धार्थाऽपि हेत्यालक्षितोऽमुना । कीर्तिः सूखलाभिजनीवास्य रुद्गा हैमाचलस्थले ॥ १६१ ॥

हैं, जिसकी दिविजयके समय चारों ओर उठी हुई कवृतरके गलेके समान कुछ-कुछ मलिन सेनाकी धूलिसे समस्त दिशाओंके साथ-साथ आकाश भर जाता है, समस्त दिशाओंको वश करनेवाले जिसका चन्द्रमाकी कलाओंके समान निर्भल यश कुलपर्वतोंके मध्यभागमें देव लोग बार-बार गाते हैं, दिविजयके समय चक्रके पीछे-पीछे चलनेसे थकी हुई जिसकी सेनाओंने हिमवान् पर्वतकी तराईका उल्लंघन कर दिशाओंके अन्तभागमें विश्राम लिया है, जो श्री नाभिराजका पीत्र है, श्री वृषभदेवका पुत्र है, जिसने छह खण्डोंसे सुशोभित इस समस्त पृथिवीका पालन किया है और जो समस्त राजाओंको जीतनेवाला है ऐसे मुझ भरतने लक्ष्मीको नश्वर समझकर जगत्‌में फैलनेवाली अपनी कीर्तिको इस पर्वतपर स्थापित किया है ॥ १४६ – १५४ ॥ इस प्रकार चक्रवर्तीनि अपनी प्रशस्ति स्वयं अक्षरोंके द्वारा लिखी, जिस समय चक्रवर्ती उक्त प्रशस्ति लिख रहे थे उस समय देव लोग उनपर फूलोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ १५५ ॥ वहाँ जोर-जोरसे शब्द करते हुए गम्भीर नगाड़े बज रहे थे, आकाशमें देव लोग जय-जय इस प्रकार संकहों आशी-र्वाद रूप शब्दोंका उच्चारण कर रहे थे ॥ १५६ ॥ और गंगा नदीके जलकी धूँदोंके समृहको धारण करता हुआ तथा कल्पवृक्षोंके सघन वनको हिलाता हुआ वायु धीरे-धीरे वह रहा था ॥ १५७ ॥ भरतके नामके अक्षरोंकी पंक्ति केवल शिलाकी दीवारपर ही नहीं लिखी गयी थी किन्तु उन्होंने काले चिह्नके बहानेसे चन्द्रमाके मण्डलमें भी लिख दी थी । भावार्थ ~ चन्द्रमा-के मण्डलमें जो काला-काला चिह्न दिखाई देता है वह उसका चिह्न नहीं है, किन्तु भरतके नामके अक्षरोंकी पंक्ति ही है, यहाँ कविने अपहृति अलंकारका आश्रय लेकर बण्नन किया है ॥ १५८ ॥ अन्य प्रशस्तियोंके समान भरतकी इस प्रशस्तिमें भी लेख, साथी और उपभोग करने-योग्य क्षेत्र ये तीनों ही बातें थीं क्योंकि लेख तो वृषभाचलपर लिखा ही गया था, दिविजय करनेसे छह खण्ड भरत उपभोग करनेयोग्य क्षेत्र था और देव लोग साक्षी थे ॥ १५९ ॥ अहा, यह चक्रवर्ती बड़ा प्रतापी है क्योंकि इसने समस्त दिशाओंको जीतते समय पूर्व पश्चिम और दक्षिणके तीनों समुद्रपर्यन्त समस्त भूमण्डलपर आक्रमण किया है – समस्त भरत-को अपने वश कर लिया है । यद्यपि विजयार्थं पर्वत उल्लंघन करनेयोग्य नहीं है तथापि इसने

१ चक्रानुगमनेन भिन्नानि । २ गमतशीलाम् । ३ जयतशीलः । ४ विसरणशीलाम् । ५ अपलिखत् ल०, अ०, द०, स० । ६ आकीर्णः । ७ – राध्मात् ल० । ८ पत्रम् । ९ पूर्वदक्षिणपरिच्छमसामुद्रपर्यन्तम् ।

इति दृष्टावदानं<sup>१</sup> तं तुष्टुयुन्नकिनायकाः । दिष्ठयां सम वर्षयन्तयेन सामूहाश्र नमश्वरः ॥१६२॥  
 भूयः प्रोत्साहितो देवैर्जयोद्योगमनृतयन्<sup>२</sup> । गङ्गापातमसीयत्वे<sup>३</sup> व्याहृत इष्ट तत्त्वनैः ॥१६३॥  
 गलद्वग्नाम्नुनिष्टयूताः शीकरा मनश्चीकरैः । संमैच्छुर्नैपेभाणां<sup>४</sup> व्यात्युक्तौ<sup>५</sup> वा लिहांसवर्णः ॥१६४॥  
 पतदगङ्गाजलावर्णयस्त्रिर्दिवकौतुकः । प्रथाप्राहि स स्त्पातं गङ्गादेव्या शतावद्या ॥१६५॥  
 यिहाम्यने निवेदयैनं प्राणात्मं सुखशीकरैः । सोऽभ्यधिक्षज्ञार्गाङ्गैः शशाङ्ककरहास्यमिः ॥१६६॥  
 क्रुतमङ्गलसङ्गीतनान्दीत्यरवाकुलम् । निर्वर्त्य मज्जनं जिष्णुमेंजे मण्डवमध्यतः ॥१६७॥  
 अथास्मै व्यतैरत् प्रांशु<sup>६</sup> रत्नोद्युस्थगिताभ्यरम् । सेन्द्रज्ञापमिवाद्रीष्टशिखरं हरिविष्टरम् ॥१६८॥  
 चिरं वर्द्धस्व वर्द्धिणो जीवनाकन्दलाद् मवात् । हृष्यनन्तरमाकास्य लिशेऽभूत् सा विसर्जिता ॥१६९॥  
 अनुगङ्गात्मदं सैम्येरावजन्विषयाधिरैः । सिषेवे पवमानैश्च गङ्गामुकणवाहिमिः ॥१७०॥  
 गङ्गातउवनोपाननिवेशेषु विशाम्पनिम् । सुखयामासुरन्वीपमायाता<sup>७</sup> वनभारुता<sup>८</sup> ॥१७१॥

उसे लीलामात्रमें ही उल्लंघन कर दिया है और इसकी कीर्ति स्थल-कमलिनीके समान हिमालय पर्वतकी शिखरपर आढ़त हो गयी है । इस प्रकार जिनका पराक्रम देख लिया गया है ऐसे उन भरत महाराजकी बड़े-बड़े देव भी स्तुति कर रहे थे और अपनी-अपनी स्त्रियोंसे सहित विद्याधर लोग भी भाग्यसे उन्हें बढ़ा रहे थे अर्थात् आशीर्वाद दे रहे थे ॥१६०-१६२॥

तदनन्तर-जिन्हें देवोने किर भी उत्साहित किया है ऐसे महाराज भरतने अपने विजयके उद्योगको कम न करते हुए गंगापात ( जहाँ हिमवान् पर्वतसे गंगा नदी पड़ती है उसे गंगापात कहते हैं ) के सम्मुख इस प्रकार गये मानो उसके शब्दोंके द्वारा बुलाये ही गये हों ॥१६३॥ ऊपरसे गिरती हुई गंगा नदीके जलके समीपसे उछटे हुए छोटे-छोटे जलकण राजाओंके हाथियों-के मदकी बूँदोंके साथ इस प्रकार मिल रहे थे मानो वे दोनों परस्पर फाग ही खेलना चाहते हों अर्थात् एक दूसरेको सीचना ही चाहते हों ॥१६४॥ पड़ते हुए गंगाजलकी भौवरोंसे जिसका कीतूहल बढ़ रहा है ऐसे भरतका गंगापातके स्थानपर अर्व धारण करनेवाली गंगादेवीने सामने आकर सत्कार किया ॥१६५॥ गंगादेवीने चक्रवर्ती भरतको पूर्व दिशाकी ओर मुख कर सिहासनपर बैठाया और फिर सुखकारी, शीतल तथा चन्द्रमाकी किरणोंकी हँसी करनेवाले गंगा नदीके जलसे उनका अभिषेक किया ॥१६६॥ जिसमें मंगल संगीत, आशीर्वाद वचन और तुरही आदि बाजोंके शब्द मिले हुए हैं ऐसे अभिषेकको समाप्त कर विजयशील भरतने उसी गंगादेवीसे सब वस्त्राभूषण भी प्राप्त किये ॥१६७॥ तदनन्तर देदीप्यमान रत्नोंकी किरणोंसे जिसने आकाश भी व्याप्त कर लिया है और जो इन्द्रधनुषसहित सुमेरु पर्वतके शिखरके समान जान पड़ता है ऐसा एक सिहासन गंगादेवीने भरतके लिए समर्पित किया ॥१६८॥ और फिर 'सदा बढ़नेवाले हे भद्राराज भरत, आप चिर काल तक बढ़ते रहिए, चिरकाल तक जीवित रहिए और चिरकाल तक आनन्दित रहिए अथवा समृद्धिमान् रहिए इस प्रकार आशीर्वाद देकर महाराज भरतके द्वारा विदा हो वह गंगादेवी तिरोहित हो गयी ॥१६९॥

अथानन्तर-सेनाके साथ-साथ गंगाके किनारे-किनारे जाते हुए भरतकी अनेक देशोंके स्वामी-राजाओंने और गंगा नदीके जलकी बूँदोंको धारण करनेवाले वायुने सेवा की थी ॥१७०॥ गंगा किनारेके बनोंके समीपवर्ती भागोंमें पीछेसे आता हुआ बनका वायु चक्रवर्ती

१ दृष्टावदानम् । दृष्टावदानं प०, अ० । दृष्टावदानं ल० । २ सन्तोषेण । ३ अनूनं कुर्वन् गंवर्द्धश्चित्यर्थः ।  
 ४ अभिमुखमगच्छत् । ५ प्रसरन्ति सम् । ६ नृपसंबन्धिगजानाम् । ७ परस्परसेचनम् । ८ विस्तारितुमिच्छवः ।  
 ९ ददौ । १० उच्चत । ११ अनुकूलताम् । १२ बनवायवः ल० ।

वने वनचरस्तीणामुदस्यकालकावर्णः । मुदुस्स्वलन् कपालेषु नृथद्वनशिखण्डनाम् ॥ १७२ ॥  
 विलोलितालिरायुन्वक्षुफुला वनवल्लीः । गिरिनिर्देशसंक्षेपशिक्षिरो महदावर्णः ॥ १७३ ॥  
 प्रतिप्रयाणमानक्रा नृपास्तदेशाक्षिनिः । प्रभुमाराध्यांचक्रुकाकास्ता जयसाधनैः ॥ १७४ ॥  
 कृष्णमिति प्रसादैवनामुत्तरो भरतविनिम् । प्रथासीददध्यो जिष्णुविजयार्द्धचलस्थलीः<sup>१</sup> ॥ १७५ ॥  
 तत्रावासितसैन्यः च सेनान्यः प्रभुरादिशत् । अपाहृतैरुदायाः प्राच्यलग्नैः उत्तेजयस्मै<sup>२</sup> ॥ १७६ ॥  
 यावदभ्येति सेनानीम्लेच्छशजजयोदमात् । तावदप्यमोः किलासीयुमासाः पद् सुखसंगिनः ॥ १७७ ॥  
 दक्षिणोत्तरयोः भ्रेण्योः निवलन्तोऽम्बरचराः । विद्याधराधिष्ठैः सार्वं प्रभुं व्रद्धुमिहावयुः<sup>३</sup> ॥ १७८ ॥  
 विद्याधरधराधीशीराराद्वानव्यामीलिभिः । नत्वांशुमालिकाभ्याजादाशास्य शिरसा धृता ॥ १७९ ॥  
 नमित्व विनमिइष्टव विद्याधर्द्वराधिष्ठैः । स्वसाधनसामग्र्या विभुः<sup>४</sup> प्रदुमुपेयतुः ॥ १८० ॥  
 विद्याधरधरासाधनोपायनसंपदा । <sup>५</sup> तदुपानीत्याऽनन्वलभ्यवासीद्विभीर्धतिः ॥ १८१ ॥  
 तदुपाकृतरत्नावैः कन्यास्तपुरःसरैः । सरिदोषैरिवोदध्यामापूर्यत तदा प्रभुः ॥ १८२ ॥  
 स्वसारैः<sup>६</sup> च नमेष्टन्यो सुभद्रा नामकम्यकाम् । उदुवाहै<sup>७</sup> स लक्ष्मीवान् करुणाः व्यवरोचितैः ॥ १८३ ॥

को सुखी कर रहा था ॥ १७१ ॥ वहकि बनमें भीलोंकी स्त्रियोंके केशोंके समूहको उड़ाता हुआ नृथ करते हुए बनमयूरोंकी पूँछपर बार-बार टकराता हुआ भ्रमरोंको इधर-उधर भगाता हुआ, फूली हुई बनकी लताओंको कुछ कुछ हिलाता हुआ और पहाड़ी झरनोंके स्पर्शसे शीतल हुआ वायु चारों ओर बह रहा था ॥ १७२-१७३ ॥ विजय करनेवाली सेनाके द्वारा दबाये हुए उन देशोंमें निवास करनेवाले राजा लोग नम्र होकर प्रत्येक पड़ावपर महाराज भरतकी आराधना करते थे ॥ १७४ ॥ इस प्रकार उत्तर भरत क्षेत्रकी समस्त पृथिवीको वश कर विजयो महाराज भरत फिरसे विजयार्थ पर्वतकी तराईमें आ पहुँचे ॥ १७५ ॥ वहाँपर उन्होंने सेना ठहराकर सेनापति म्लेच्छराजाओंको जीतकर बापस आया तबतक सुखपूर्वक रहते हुए महाराज भरतके छह महीने वहाँपर व्यतीत हो गये ॥ १७६ ॥ विजयार्थ पर्वतकी दक्षिण तथा उत्तर श्रेणीपर निवास करनेवाले विद्याधर लोग अपने-अपने स्वामियोंके साथ महाराज भरतका दर्शन करनेके लिए वहाँपर आये ॥ १७८ ॥ दूरसे ही मस्तक मुकानेवाले विद्याधर राजाओंने नखोंकी किरणोंके समूहके बहानेसे महाराज भरतकी आज्ञा अपने सिरपर धारण की थी । भावार्थ-नमस्कार करते समय विद्याधर राजाओंके मस्तकपर जो भरत महाराजके चरणोंके नखोंकी किरणें पड़ती थीं उनसे वे ऐसे यालूम होते थे भानो भरतकी आज्ञा ही अपने मस्तकपर धारण कर रहे हों ॥ १७९ ॥ नमि और विनमि दोनों ही विद्याधरोंके राजा अपने भूख्य धनकी सामग्रीके साथ भरतके दर्शन करनेके लिए समीप आये ॥ १८० ॥ नमि और विनमि जो अन्य किसीको नहीं मिलनेवाली विद्याधरोंके देशकी मुख्य धनरूप सम्पत्ति भेटमें लाये थे उससे महाराज भरतको भारी सन्तोष हुआ था ॥ १८१ ॥ जिस प्रकार नदियोंके प्रवाहसे समुद्र पूर्ण हो जाता है उसी प्रकार उस समय नमि और विनमिके द्वारा उपहारमें लाये हुए कन्यारत्न आदि अनेक रत्नोंके समूहसे महाराज भरतकी इच्छा पूर्ण हो गयी थी ॥ १८२ ॥ श्रीमान् भरतने राजा नमिकी धृहिन सुभद्रा नामकी उत्तम कन्याके साथ

<sup>१</sup> स्थलीम् ल०, द०, इ०, अ०, स० । <sup>२</sup> सैन्यस्त ल० । <sup>३</sup> विभुः । <sup>४</sup> उद्घाटित । <sup>५</sup> पूर्वसंष्कम् ।  
<sup>६</sup> शीघ्रम् । <sup>७</sup> आगच्छन् । <sup>८</sup> क्षेत्र । <sup>९</sup> प्रभु ल०, अ०, स०, इ०, द० । <sup>१०</sup> विद्याधरैष्यपायनीकृतया ।  
<sup>११</sup> भगिनीम् । 'भगिनी स्वसा' इत्यभिष्मानात् । <sup>१२</sup> परिणीतवान् ।

१ मनोजैसल्येत् कुर्ति संवादः तदामृतः स्तुते सकलं जन्म परमानन्दनिर्मरः ॥ १४४ ॥  
 तायाजिजितनिशेषम्लेच्छराजबलो वलैः । जयलक्ष्मीं पुरस्कृत्य सेनानीः प्रभुमैक्षत ॥ १४५ ॥  
 कृतकार्यं च सत्कृत्य तं तांश्च म्लेच्छनायकान् । विसर्यं सञ्चाट् सज्जोऽभूत् प्रस्थायासुमणाह्यमहीम् ॥ १४६ ॥  
 जयप्रयाणशासि॒यस्तदा भेर्यः प्रदध्यनुः । विष्ववल्लार्णवे क्षेभमातम्बन्तयो महीभूताम् ॥ १४७ ॥  
 ता काण्डकप्रपाताल्या प्रागेष्वद्वितीया गुहाम् । प्रविवेश वलं जित्योऽक्षरादपुरोगमाम् ॥ १४८ ॥  
 गङ्गापगोभयप्रात्महाबीषीहृदयेन सा । ज्यतीयाय गुहां सेना कृतद्वारो चमूभूता॑ ॥ १४९ ॥  
 मुर्खमाना गुहा॑ सैन्यैहिचराहुच्छ्वसितेव सा । चमूरपि गुहारोधाज्ञि॒सृत्योज्जितेव सा ॥ १५० ॥  
 नाट्यमालामरस्तत्र रक्षाचैः प्रभुमर्चयन् । प्रथयगृहाद् गुहाहारि पूर्णकुम्भादिमङ्गलैः ॥ १५१ ॥  
 कृतोपच्छन्दनं॑ चामुं नाट्यमालं सुरवैभम्॑ । ज्यसर्जयथयोदेवा॑ सत्कृत्य मरतर्यमः ॥ १५२ ॥  
 कृतोदयमिनं श्वासात्परितो गगनेष्वरा । परिषेहुर्नमोमार्गमारुद्य धृतसायकाः ॥ १५३ ॥

### मालिनीवृत्तम्

नमिविनमिपुरा॑ गैरनिवतः खेचरेष्टैः खचरगिरिगुहान्तर्धर्वान्तमुत्सार्य दूरम् ।  
 रविरिव किरणौषधी॑तयन्दिग्विभागान् निधिपसिरुद्वियाय॑ प्रीणयन् जीवलोकम् ॥ १५४ ॥  
 सरसकिसलयान्तःस्पन्दमन्दे सुरक्षीस्तनसटपरिलग्नभौमसंकान्तवासे॑ ।  
 सरसि॑ महाति भन्दे क्ष्वद्विभर्तुनिधिपसिशिविराणा प्रादुरासशिवेशाः ॥ १५५ ॥

विद्याधरोंके योग्य मंगलाचारपूर्वक विवाह किया ॥ १८३ ॥ रसकी धाराके समान भनोहर उस सुभद्राको पाकर उल्कुष्ट आनन्दसे भरे हुए चक्रवर्तीने अपना जन्म सकल माना था ॥ १८४ ॥ इतनेमें ही जिसने अपनी सेनाके द्वारा समस्त म्लेच्छ राजाओंकी सेना जीत ली है ऐसे सेनापति-ने जयलक्ष्मीको आगे कर महाराज भरतके दर्शन किये ॥ १८५ ॥ जिसने अपना कार्य पूर्ण किया है ऐसे सेनापतिका सन्मान कर और आये हुए म्लेच्छ राजाओंको बिदा कर सञ्चाट् भरतेश्वर दक्षिणकी पृथिवीकी ओर आनेके लिए तैयार हुए ॥ १८६ ॥ उस समय विजयके लिए प्रस्थान करनेकी सूचना देनेवाली भेरिया॑ राजाओंकी सेनारूपी समुद्रमें क्षेभ उत्पन्न करती हुई चारों ओर झज रही थीं ॥ १८७ ॥ चक्ररत्न जिसके आगे चल रहा है ऐसी भरतकी सेनाने पहलेसे ही उघाड़ी हुई काण्डकप्रपात नामकी प्रसिद्ध गुफामें प्रवेश किया ॥ १८८ ॥ उस सेनाने गंगा नदीके दोनों किनारोंपर-की दो बड़ी-बड़ी गलियोंमें-से, सेनापतिके द्वारा जिसका द्वार पहलेसे ही खोल दिया गया है ऐसी उस गुफाको पार किया ॥ १८९ ॥ सेनाके द्वारा छोड़ी हुई वह गुफा ऐसी जान पड़ती थी मानो चिरकालसे उच्छ्वास ही ले रहो हो और वह सेना भी गुफाके रोध-से निकलकर ऐसी मालूम होती थी मानो फिरसे जीवित हुई हो ॥ १९० ॥ वहीं नाट्यमाल नामके देवने दक्षिण गुफाके द्वारपर पूर्णकलश आदि मंगलद्रव्य रखकर तथा रसोंके अर्थसे अर्घ देकर भरत महाराजकी अगवानी की थी - सामने आकर सत्कार किया था ॥ १९१ ॥ भरत महाराजने अनेक प्रकारकी स्तुति करनेवाले उस नाट्यमाल नामके श्रेष्ठ देवका सत्कार कर उसे अपने स्थानपर जानेके लिए बिदा कर दिया ॥ १९२ ॥ वनुष-बाण धारण करनेवाले विद्याधर चारों ओरसे आकाशमार्गको धेरकर, सूर्यके समान अन्धकारसे परे रहकर उदित होनेवाले चक्रवर्तीकी परिचर्या करते थे ॥ १९३ ॥ जिनमें नमि और विनमि मुख्य हैं ऐसे विद्याधरोंसहित तथा विजयार्थं पर्वतकी गुफाके भीतरी अन्धकारको दूर हटाकर सूर्यके समान किरणोंके समूहसे दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ वह निधियोंका अधिपति चक्रवर्ती समस्त जीवलोकको आनन्दित करता हुआ उदित हुआ अर्थात् गुफाके बाहर निकला ॥ १९४ ॥ रस-

१ मनोज्ञां रसस्येव । २ दक्षिणभूमिम् । ३ सेनान्या । ४ कृतसान्त्वनम् । ५ सुरश्वेष्टम् । ६ निजदेशमनति-क्रम्य । ७ पुरसरे । ८ उदेति स्म । ९ सुगन्धे । १० वाति सति ।

किंतु यथा पुष्टि भवती देवदारुद्रुमाणामसकुम्भमरसिन्धोः सीकरान्वयाधुनानः ।

अमसलिलमसुण्डा दुष्टसंभृण्ये जिष्ठोः खचरगिरितास्ताक्षिप्यत न्मातरिष्ठा ॥ १९६ ॥

नपदिविजश्वसैन्यैर्निर्जितम्लेष्टुखण्डः संमुपहतजयश्रीइष्टकिणादिष्टमात्रात् ।

जिनमिव जयलक्ष्मी सक्षितानं निधीना परि वृद्धमुपतस्थौ नम्रमौलिष्टम्भृत् ॥ १९७ ॥

### शादूलविक्रीडितम्

जित्वा म्लेच्छनुपौ विजित्य चै सुरं आलेयशैलेशिनं<sup>१</sup> देव्यौ च प्रणमय्य दिव्यमुमयं स्त्रीकृत्य भद्रासनम् ।

देव्यौ निर्वितासैद्धिविग्रह दिव्यस्त्राम्भृत् जयन् सेनाम्या विजयी द्यजेष्ट निखिला पट्टस्त्रृभूषा भुवम् ॥ १९८ ॥

पुष्यादित्ययमाहिमाह्यगिरेरातीयधे<sup>२</sup> प्रान्तनादाचापां च्यपयोनिधेजलनिवेरा च प्रतीक्ष्यादितः ।

चक्रेश्मामरिचक्रै भीकरकरशक्रेण चक्री वक्षो तस्मात्पुष्यमुपार्जयन्तु सुषियो जैने सते सुस्थिताः ॥ १९९ ॥

इत्यापै भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे  
भरतोत्तरार्द्धविजयवर्णनं नाम द्वाश्रित्वा एव ॥ २०० ॥



युक्त नवीन कोमल पनोंके भीतर प्रवेश करनेसे मन्द हुआ तथा देवांगनाओंके स्तनतटपर लगे हुए रेशमी वस्त्रोंमें जिसको सुगन्धि प्रवेश कर गयी है ऐसा वायु जिस समय उस विजयार्धं पर्वतकी गुफाओंमें धीरे-धीरे बह रहा था उस समय निधियोंके स्वामी चक्रवर्तीकी सेनाके डेरोंकी रचना शुरू हुई थी ॥ १९५ ॥ देवदारु वृक्षोंके कोभल पत्तोंके सम्मुटको भेदन करनेवाला तथा गंगा नदीके जलकी बूँदोंको बार-बार हिलाता हुआ और विजयार्धं पर्वतके किनारेके अन्त भागसे आता हुआ वायु गरमीसे उत्पन्न हुए महाराज भरतके पसीनेको दूर कर रहा था ॥ १९६ ॥ चक्रवर्तीके द्वारा आज्ञा प्राप्त होनेमात्रसे ही जिसने अपनी विजयी सेनाओंके द्वारा बहुत शोध्र समस्त म्लेच्छ खण्ड जीत लिये हैं और जो जयलक्ष्मीको ले आया है ऐसा सेनापति अपना मस्तक झुकाये हुए, निधियोंके स्वामी भरत महाराजके समीप आ उपस्थित हुआ । उस समय भरत ठीक जिनेन्द्रदेवके समान मालूम होते थे क्योंकि जिस प्रकार जिनेन्द्र देवके समीप सदा जयलक्ष्मी विद्यमान रहती है उसो प्रकार उनके समीप भी जयलक्ष्मी सदा विद्यमान रहती थीं ॥ १९७ ॥ विजयी भरतने ( चिलात और आनंद नामके ) दोनों म्लेच्छराजाओंको जीतकर हिमवान् पर्वतके स्वामी हिमवान्<sup>३</sup> देवको कुछ ही समयमें जीता, तथा ( गंगा सिन्धु नामकी ) दोनों देवियोंसे प्रणाम कराकर ( उनके द्वारा दिये हुए ) दो दिव्य भद्रासन स्त्रीकृत किये, और विजयार्धं पर्वतको लीला मात्रमें जीतकर उसके समीपवर्ती राजाओंको जीतते हुए उन्होंने सेनापतिके साथ-साथ छह खण्डोंसे सुशोभित भरत क्षेत्रकी समस्त पृथिवीको जीता ॥ १९८ ॥ जितका हाथ अथवा ठैक्स गत्रुओंके समूहमें भय उत्पन्न करनेवाला है ऐसे चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्नके द्वारा पुण्यसे ही हिमवान् पर्वतसे लेकर पूर्वे दिशाके समुद्र तक और दक्षिण समुद्रसे लेकर पश्चिम समुद्र तक समस्त पृथिवी अपने वश की थी । इसलिए बुद्धिमान् लोगोंको जैन-मतमें स्थिर रहकर सदा पुण्य उपार्जन करना चाहिए ॥ १९९ ॥

इस प्रकार अर्थ नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिष्टिलक्षण महापुराण संग्रहके हिन्दी भाषानुवादमें उत्तरार्थं भरतकी विजयका वर्णन करनेवाला ।

बहीसवा पर्वे समाप्त हुआ ।



१ अनाशयत् । २ उष्णसंजातम् । ३ आगच्छन् । ४ आशातः । ५ नाथम् । ६ प्राप्तवानित्यर्थः । ७ सुचिरं ल०, द० । ८ हिमवद्विप्रतिभू । ९ गङ्गादेवीसिन्धुदेव्यो । १० पूर्वात् । ११ दक्षिणसमुद्रात् । १२ भर्यकर-करः । 'भर्यकरं प्रतिभय'मित्यभिधानात् ।

## अयस्तिशतम् पर्व

श्रीमानामभिताकोवनृपविद्यापरामरः । सिद्धदिग्बिजयशक्ती न्यवृत्तवर्षा उर्णे प्रति ॥१॥  
 नवास्य निधयः सिद्धा रसान्यपि चतुर्दश । <sup>१</sup>सिद्धविद्याधरैः साङ्कृष्ट्यण्डधरणीभुजैः ॥२॥  
 जित्वा महीमिमां कृत्स्ना लबणाभ्योधिमेललाम् । प्रथाणमकरोचक्ती साकेतनगरं प्रति ॥३॥  
 प्रकीर्णकचलद्वीचिरलुमच्छब्दकुद्दा । निर्वयी विजयाद्वाक्तिताद् गग्नेव सा चमूः ॥४॥  
 करिणीनौभिरक्षीयकलौलैजनतीमिभिः । दिशो हन्धनवलाभ्योधिः प्रसस्पर्य भुग्नवनिः ॥५॥  
 चलतां रथचकाणां चीर्कारहयेवितैः । त्रिहितैश्च गजन्दाणां शब्दाद्वर्त्ततदाभवत् ॥६॥  
 भेद्यः प्रस्थानशेसिन्यो नेतुरामन्दनिःस्थनाः । अकालस्तनिं ताशकामातम्वानाः शिखपिण्डनाम् ॥७॥  
 तदाऽभूद्भूद्भूमर्श्याच्य हास्तिकेन प्रसर्पता । व्यरोधि पत्तिवृन्दं च प्रयान्त्या रथकल्पया ॥८॥  
 पादातकृतसंबाधात् पवः “दर्यन्तपातितः” । हया राजा चरुधाइष भेजुस्तिर्यक्प्रबोदिताः ॥९॥  
 पर्वतोद्गमारुडो गजं विजयपर्वतम् । प्रतस्थे विचलन्मौलिः चक्री शक्तमर्थतिः ॥१०॥  
 अनुग्रहात्तदं देशान् विकल्पय समरिद्विरीन् । कैलासशेलसाक्षिध्यैः प्रापत्तचक्रिणो वलम् ॥११॥

**अथानन्तर –** जिन्होंने समस्त राजा विद्याधर और देवोंको नम्रोभूत किया है तथा समस्त दिग्बिजयमें सफलता प्राप्त की है ऐसे श्रीमान् चक्रवर्तीं भरत अग्नी अयोध्यापुरीके प्रति लौटे ॥१॥ इन महाराज भरतको ना निधियाँ और चौदह रत्न सिद्ध हुए थे तथा विद्याधरोंके साथ-साथ छह खण्डोंके समस्त राजा भी इनके वश हुए थे ॥२॥ लबण समुद्र ही जिसकी मेखला है ऐसी इस समस्त पृथिवीको जीतकर चक्रवर्तीने अपने अयोध्या नगरकी ओर प्रस्थान किया ॥३॥ ढूलते हुए चमर ही जिसकी लहरें हैं और ऊपर चमकते हुए छव ही जिसके बबूले हैं ऐसी वह सेना गंगाके समान विजयार्थं पर्वतके तटसे निकली ॥४॥ हथिनीहृषी नावोंसे, घोड़ोंके समूहहृषी लहरोंसे और मनुष्योंके समूहहृषी छोटी-छोटी तरणोंसे दिशाओंको रोकता हुआ तथा खूब शब्द करता हुआ वह सेनाहृषी समुद्र चारों ओर फैल गया ॥५॥ उस समय चलते हुए रथोंके पहियोंके चीत्कार शब्दसे, घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे और हाथियोंकी गजनासे शब्दाद्वैत हो रहा था अर्थात् सभी और एक शब्द-ही-शब्द नजर आ रहा था ॥६॥ जिनका शब्द अतिशय गम्भीर है ऐसे प्रस्थान-कालको सूचित करनेवाली भेरियाँ मयूरोंको असमयमें ही बादलोंके गरजनेकी शंका बढ़ाती हुई शब्द कर रही थीं ॥७॥ उस समय दौड़ते हुए हाथियों-के समूहसे घोड़ोंका समूह रुक गया था और चलते हुए रथोंके समूहसे पैदल चलनेवाले सिपाहियों-का समूह रुक गया था ॥८॥ पैदल सेनाके द्वारा जिन्हें कुछ बाधा की गयी है ऐसे हाथी घोड़ और रथ – घोड़ी दूर तक कुछ तिरछे चलकर ठीक रास्तेपर आ रहे थे । भावार्थ – सामने पैदल मनुष्योंकी भीड़ देखकर हाथी घोड़ और रथ बगलसे बरककर आगे निकल रहे थे ॥९॥ जिनका मुकुट कुछ-कुछ हिल रहा है और जिनकी कान्ति इन्द्रके समान है ऐसे चक्रवर्तीने पर्वत-के समान ऊचे विजय पर्वत नामके हाथीपर सवार होकर प्रस्थान किया ॥१०॥ चक्रवर्ती की वह सेना गंगा नदीके किनारे-किनारे अनेक देश, नदी और पर्वतोंको उल्लंघन करती हुई

१ सिद्धा विद्या-ल०, द०, द०, अ०, स०, प० । २ षट्खण्डस्थितमहीपालाः । ३ मेवधनि । ४ मार्गनि ।  
 संबाधान्पथः अ०, प०, स०, द०, द० । ५ मार्ग विहाय पर्यन्ते वर्तमाना भूत्वा । ६ संप्रापच्चक्रिणा बलम् ल० ।

कैलासाचलमध्यर्णमथालोक्य रथाक्रम्बृत् । निवेद्य निकटे सैन्यं प्रययौ जिनमर्जितुम् ॥ १२॥  
 प्रयान्तमनुजग्मुस्तं मरकेशं महायुतिम् । रोचिष्युमौलयः क्षमापाः सौधमेन्द्रमिवामराः ॥ १३॥  
 अचिराच्च तेमासाथ शरदृश्वरसच्छविम् । जिनस्येव यशोराशिमध्यनन्दहितो पतिः ॥ १४॥  
 निपत्तिज्ञरारावैराद्युपत्तमिवामरान् । श्रिजगद्युरुमेत्यारात् सेवधमिति सादरम् ॥ १५॥  
 महदान्दोलितोदप्रशास्यामैस्तदशादपैः । प्रतोषादिव नृत्यन्तं विकासिकुसुमस्मितैः ॥ १६॥  
 तटनिर्वारसंपातैर्दीर्तुं पाद्यमिवोद्यतम् । वन्दारो भैरव्यवृन्दस्य विष्वगास्तकम्बरो त्रितम् ॥ १७॥  
 शिखरोल्लिंगिताम्बोदपदलोद्ग्रीणंवारिमिः । दावभीत्येव सिङ्गम्तं स्वपर्यन्तलतावनम् ॥ १८॥  
 शुचिप्राप्तविनिमणिः शिखरैः स्थगिताम्बरैः । गतिप्रसरमकंश्य न्यक्कुर्वाणमिवोषिष्टैः ॥ १९॥  
 क्षचित् किनरसंभोव्यैः क्षचित् पश्चासेवितैः । क्षचित् लक्ष्मराक्षैर्वैराशिष्टैरुत्तियम् ॥ २०॥  
 क्षचिद्विरलनीलाशुभिलितैः स्फटिकोपकैः । वाशाक्षमप्तलाशक्षामातन्वन्ते<sup>१०</sup> नमोशुभाम् ॥ २१॥  
 हरिन्मणिप्रभाजालैर्मात्तालैश्च व्रभाक्षमनाम्<sup>११</sup> । क्षचिद्विष्वधनुलेखामालिखन्तं नमोऽङ्गणे ॥ २२॥

क्रमसे कैलास पर्वतको समीप जा पहुँची ॥ ११॥ तदनन्तर चक्रवर्तीने कैलास पर्वतको समीप ही देखकर सेनाओंको वहीं पासमें ठहरा दिया और स्वर्य जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करनेके लिए प्रस्थान किया ॥ १२॥ जिस प्रकार सौधर्म इन्द्रके पीछे-पीछे देवीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाले अनेक देव जाते हैं उसी प्रकार आगे-आगे जाते हुए अतिशय कान्तिमान् महाराज भरतके पीछे-पीछे देवीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाले अनेक राजा लोग जा रहे थे ॥ १३॥ जिसकी कान्ति शरदृक्कृतुके बादलोके समान है और इसीलिए जो जिनेन्द्र भगवान्के यथाके समूहके समान जान पड़ता है ऐसे उस कैलास पर्वतको बहुत शीघ्र पाकर महाराज भरत बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ १४॥ जो पड़ते हुए झरनोंसे शब्दोंसे ऐसा<sup>१२</sup> जीन पड़ता है मानो समीप आकर तीनों जगत्के गुह भगवान् वृषभदेवको सेवा करो इस प्रकार देव लोगोंको आदरपूर्वक बुला ही रहा हो – जिनकी ऊँची-ऊँची शाखाओंके अग्रभाग वायुके द्वारा हिल रहे हैं और जिनपर फूले हुए फूल उनके मन्द हास्यके समान मालूम होते हैं ऐसे अपने किनारोंपर-के वृक्षोंसे जो ऐसा जान पड़ता है मानो सन्तोषसे नृत्य ही कर रहा हो – जो किनारोंपर-से झरनोंके पड़नेसे ऐसा जान पड़ता है मानो जिनेन्द्र भगवान्की बन्दना करनेके लिए चारों ओरसे आते हुए भव्य जीवों-के समूहके लिए पैर धोनेके लिए जल देनेको ही उच्चत हुआ हो – जो शिखरोंसे विदोर्ण हुए बादलोंके समूहसे गिरते हुए जलसे ऐसा जान पड़ता है मानो दावानलके डरसे अपने समीपवर्ती लताओंके बनको सींच ही रहा हो – जो स्फटिक मणिके सफेद पत्थरोंसे बने हुए और आकाश-को घेरनेवाले अपने ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे ऐसा जान पड़ता है मानो सूर्यकी गतिके कैलावको रोक ही रहा हो – जिनमें कहीं तो किस्तर जातिके देव सम्भोग कर रहे हैं, कहीं नागकुमार जाति-के देव सेवा कर रहे हैं और कहीं विद्याशर लोग क्लीडा करते हैं ऐसे अनेक बनोंसे जिसकी शोभा प्रकट हो रही है – जो कहींपर कुछ-कुछ नीलमणियोंकी किरणोंसे मिले हुए स्फटिक मणियोंके पत्थरोंसे देवोंको चन्द्रमण्डलकी आशंका उत्पन्न करता रहता है । जो कहींपर हरे रंगके मणियों-की प्रभाके समूहसे और स्फटिक मणियोंकी प्रभाके समूहसे आकाशरूपी आगनमें इन्द्रधनुष-की रेखा लिख रहा था । कहींपर पश्चराग मणियोंकी किरणोंसे मिले हुए स्फटिक मणियोंकी किरणोंसे जिसके किनारेका समीपभाग कुछ-कुछ लाली लिये हुए सफेद रंगका हो गया है और

१ कैलासम् । २ वन्दनशीलस्य । ३ आगच्छतः । ४ विद्यारित । ५ उद्गत । ६ स्फटिकपाषाण । ७ संभोगैः ८०, अ०; स० । ८ सैचरा-प० । ९ लक्ष्मराणाम् आसमन्तात् क्लीडा येषु तानि । १० -मात्तवान्-८०, ल०, अ०, स०, इ० । ११ पश्चरागाणाम् ।

पापरागोऽगुमिभिर्हैः॑ स्फटिकोपलरङ्गभिः । आरक्षेतवप्रान्तं॒ किलासिनभिव॑ क्षचित् ॥२३॥  
 क्षचिद्दिविलह॑ शीलेयपदलैर्बहुद्वृणैः॑ । भुगेन्द्रनखोलेखसहैर्गण्डोपलैस्ततम् ॥२४॥  
 क्षचिद्गुहाम्तरा॒ द् गुञ्जन्तरोन्द्रप्रतिनादिनोः । तटीदधानमुद्गद्यमैः॑ परिहतापैः ॥२५॥  
 क्षचित् सिंहोपलोत्संगचारिणीरमराङ्गनाः॑ । विभाणं शरदधाम्तर्वर्तिनीरिव विच्छुतः ॥२६॥  
 क्षमित्यनुतया लक्षणा पौरीं भूसतां पलिम् । स्वमित्रालक्ष्यमालोक्य चक्रपाणिरगान्मुदम् ॥२७॥  
 गिरेरवस्तले दूराद् चाहनादिपरिष्ठदम् । विद्याय पादचारेण वर्षी किल स भर्त्यधीः ॥२८॥  
 पद्मधामारोहतोऽस्याद्रि नासीद् खेदो ममागपि । हितार्थिनां हि लेदाय नामनीषैः॑ क्रियाविधिः ॥२९॥  
 आहरोह स तं लौलं सुरशिलिपिभिर्भिर्हैः॑ । विभिन्नैर्मणिसोपामैरस्त्वर्गंह्येवाधिरोहणैः ॥३०॥  
 अधित्यकासु॑ सोऽस्याष्टे॑ प्रस्थाय बनराजिषु । लम्भितो॑ इतिथिसत्कारमिव शीतैर्बनानिलैः ॥३१॥  
 क्षचिदुकुलमन्दारवणीशीषिहारिणीः॑ । भृगीरपश्यदारक्ष्वै॑ नृदुरोमन्थमन्थराः ॥३२॥  
 क्षचित्ति॑ कुञ्जसंसुसान् शृहतः॑ शशु॑ पोतकान् । उरुतिकरान्द्रेस्तिपश्यासु पुजितान् ॥३३॥  
 क्षचित् यजमानोदवासितान् गणहशीलकान् । दर्शो॑ हरिरारोषादुलिलकाषताद्वैः ॥३४॥

इसलिए जो ऐसा जान पड़ता है मानो उसे किलास (कुष्ठ) रोग ही हो गया हो । जिनपर कहीं-कहीं अनेक धातुओंके टुकड़े टूट-टूटकर पड़े हैं तथा जो सिंहोंके नखोंका आघात सहनेवाली है और इसलिए जो ऐसी जान पड़ती हैं मानो उनपर बहुत-सा दाद हो गया हो ऐसी अनेक चट्ठानों-से जो व्याप्त हो रहा है । कहीं-कहींपर जितमें गुफाओंके भीतर गरजते हुए सिंहोंकी प्रतिध्वनि व्याप्त हो रही है और इसोलिए जिन्हें मदोन्मत्त हाथियोंने छोड़ दिया है ऐसे अनेक किनारोंको जो धारण कर रहा है—और जो कहीं-कहींपर शरदऋतुके बादलोंके भीतर रहनेवाली विजलियोंके समान स्फटिक मणियोंकी शिलाओंपर चलनेवाली देवांगनाओंको धारण कर रहा है—इस प्रकार अद्भुत शोभासे सहित उस कैलास पर्वतको देखकर चक्रवर्ती भरत बहुत ही बानन्दको प्राप्त हुए । और उसका खास कारण यह था कि चक्रवर्तीके समान ही अलंध्य था और भूमृत अथवा पर्वतों (पश्चमें राजाओं) का अधिपति था ॥१५—२७॥ घर्मबुद्धिको धारण करनेवाले महाराज भरत पर्वतके नीचे दूरसे ही सवारी आदि परिकरको छोड़कर पैदल चलने लगे ॥२८॥ पर्वतपर पैदल चढ़ते हुए भरतको थोड़ा भी लेद नहीं हुआ था सो ठीक ही है क्योंकि कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको आत्माका हित करनेवाली क्रियाओंका करना लेद-के लिए नहीं होता है ॥२९॥ स्वर्गकी सीढियोंके समान देवरूपी कारीगरोंके द्वारा बनायी हुई पवित्र मणिमयी सीढियोंके द्वारा महाराज भरत उस कैलास पर्वतपर चढ़ रहे थे ॥३०॥ चढ़ते-चढ़ते वे उस पर्वतके ऊपरकी भूमिपर जा पहुँचे और वहाँ उन्होंने बनकी पंक्तियोंमें बनकी शोतल वायुके द्वारा मानो अतिथिसत्कार ही प्राप्त किया था ॥३१॥ वहाँ उन्होंने कहीं तो फूले हुए मन्दार बनकी गलियोंमें घूमती हुई तथा फूलोंके पवित्र आभूषण धारण किये हुई बनदेवियोंको देखा ॥३२॥ कहीं बनके भीतर अपने बच्चोंके साथ लेटी हुई और धीरे-धीरे रोमन्थ करती हुई हरिणियोंको देखा ॥३३॥ कहीं संकुचित होकर सोते हुए और एक जगह इकट्ठे हुए अजगरके उन बड़े-बड़े बच्चोंको देखा जो कि उस पर्वतकी अंतिमियोंके समूहके समान जान पड़ते थे ॥३४॥ और कहींपर हाथियोंके मदसे सुवासित बड़ी-बड़ी काली चट्ठानोंको हाथी

१ विलितः । २ पाटलसाम्बन्धम् । 'इवेतरक्तस्तु पाटलः' हस्यभिषानात् । ३ सिम्बलम् । 'किलासी सिंहमल' हस्यभिषानात् । ४ विविलितकुमुमसमूहैः । ५ वदुरोगिसदृशैः । 'वदुणो वदुरोगी स्याद्' हस्यभिषानात् । ६ स्फटिकशिलामध्य । ७ आरमहितः । ८ ऊर्ध्वभूमिषु । ९ प्राप्तिः । १० विभिन्न । ११ उपक्रान्त । १२ निकृञ्ज ल०, द०, अ०, प०, इ०, स० । १३ अजगरधिष्ठान् । १४ अक्षसमूहान् । १५ दृश्यते स्म ।

किंचिदन्तेष्माल्य पश्यत्तदेः परां श्रियम् । प्राप्तावसरमित्यून्ते वचनं च पुरीधसा ॥३६॥  
 पृथग देव गिरेस्य प्रदेशाभ्युचित्प्रयान् । रमन्ते शिदशा यत्र स्वर्गवासेऽनादराः ॥३७॥  
 पश्यामश्वत्तेष्माल्य प्राप्तान्ते अनादित्यसुपुः तेषोऽर्थनाल्यस्याल्ये श्वर्गत्यगुहः पुरुः ॥३८॥  
 महाग्रिस्यमुख्यसंसंगिनीः सरिद्वज्ञाः । शशद् विभर्ति कामीव गलकीलजलांशुकाः ॥३९॥  
 क्रीडाहेतोरहित्योऽपि मृगेन्द्रो गिरिकदरात् । महाहिमयमाकर्षन्देव्यन्तुम्भृत्यपारयन् ॥४०॥  
 सर्वद्वन्द्वैसहान्त्यावर्त्ते अनत्तात्पद्माखिणः । मुनीनिव वनामोगनेषु धत्तेऽधिमेष्यलम् ॥४१॥  
 हरीष्वरनिर्मितमद्विरतमस्तकान् । निष्ठेऽपि पापभीर्येव तर्जयत्येष सारवेः ॥४२॥  
 धत्ते सानुचरान्<sup>१</sup> भद्रान् उच्चैर्शान्<sup>२</sup> स्वव्याहान्<sup>३</sup> । वनाद्विपानयं शीलो भवानिव भवीसुजः<sup>४</sup> ॥४३॥  
 धवनतो घनसंधातान्<sup>५</sup> शरमा रमसादमी । द्विरदाशङ्कयोत्पत्य पतन्तो यान्ति शोच्यतोम् ॥४४॥  
 कपोलकाषसंहरणवचो<sup>६</sup> मदजलाविकाः<sup>७</sup> । द्विपानां घनसंभोगं सूचयन्तीहै<sup>८</sup> शाश्विनः ॥४५॥

समझकर नखरुपी अंकुरोंसे विदारण करता हुआ सिंह देखा ॥४५॥ भरत महाराज कुछ दूर आगे चढ़कर जब पर्वतकी शोभा देखने लगे तब पुरोहितने अवसर पाकर नीचे लिखे अनुसार बचन कहे ॥४६॥ हे देव, इस पर्वतके अनेक आश्चर्योंसे भरे हुए उन प्रदेशोंको देखिए जिनपर कि देव लोग भी स्वर्गवासमें अनादर करते हुए क्रीड़ा कर रहे हैं ॥४७॥ समस्त लोकको उल्लंघन करनेवाली इस पर्वतकी महिमा इतनी ही बहुत है कि चर और अचर-सभीके गुरु भगवान् वृषभदेव इसपर विराजमान हैं ॥४८॥ यह महापर्वत अपनी गोदी अर्थात् नीचले मध्यभागमें रहनेवाली और जिनके नीले जलरुपी वस्त्र छूट रहे हैं ऐसी नदीरुपी स्त्रियोंको कामी पुरुषकी तरह सदा धारण करता है ॥४९॥ यह सिंह अहिंसक होनेपर भी केवल क्रीड़ा-के लिए पर्वतकी गुफामेंसे एक बड़े भारी सर्पको खीच रहा है परन्तु लम्बा होनेसे खीचनेके लिए असमर्थ होता हुआ उसे छोड़ भी रहा है ॥५०॥ यह पर्वत अपने तटभागपर ऐसे अनेक वनके प्रदेशोंको धारण करता है जो कि ठीक मुनियोंके समान जान पड़ते हैं क्योंकि जिस प्रकार मुनि सब प्रकारके द्वन्द्व अर्थात् शीत उष्ण आदिकी बाधा सहन करते हैं उसी प्रकार वे वनके प्रदेश भी सब प्रकारके द्वन्द्व अर्थात् पशुपक्षियाँ आदिके युगल सहन करते हैं—धारण करते हैं, जिस प्रकार मुनि सबका कल्याण करते हैं उसी प्रकार वनके प्रदेश भी सबका कल्याण करते हैं और जिस प्रकार मुनि जनसमूहके सन्ताप अर्थात् मानसिक व्यथाको दूर करते हैं उसी प्रकार वनके प्रदेश भी संताप अर्थात् सूर्यके धामसे उत्पन्न हुई गरमीको दूर करते हैं ॥५१॥ यह पर्वत शब्द करते हुए अरनोंसे ऐसा जान पड़ता है मानो जिन्होंने अपने नखोंसे मदोन्मत्त हाथियों-के मस्तक विदारण किये हैं ऐसे सिंहोंको पापके डरसे तर्जना ही कर रहा हो-डाट ही दिखा रहा है ॥५२॥ हे नाथ, जिस प्रकार आप सानुचर अर्थात् सेवकोंसहित, भद्र, उच्च कुलमें उत्पन्न हुए और उत्तम शरीरवाले अनेक राजाओंको धारण करते हैं—उन्हें अपने अधीन रखते हैं, उसी प्रकार यह पर्वत भी सानुचर अर्थात् शिखरोंपर चलनेवाले, पीठपर-की उच्च रीढ़से युक्त और उत्तम शरीरवाले भद्र जातिके जगली हाथियोंको धारण करता है ॥५३॥ इधर ये अष्टापद, गरजते हुए मेघोंके समूहको हाथी समझकर उनपर ढछलते हैं परन्तु फिर नीचे गिरकर शोचनीय दशाको प्राप्त हो रहे हैं ॥५४॥ कपोलोंके घिसनेसे जिनकी छाल घिस

<sup>१</sup> अवानुकोऽपि । <sup>२</sup> समर्थो भूत्वा । <sup>३</sup> प्राणियुगल, पक्षे दुःख । <sup>४</sup> सर्वहितान् । <sup>५</sup> गिरिः । <sup>६</sup> अवनिसहितैः । <sup>७</sup> सानुपुर चरतोति सानुचरास्तान्, पक्षे अनुचरः सहितान् । <sup>८</sup> उन्नतपृष्ठास्थीन्, पक्षे इक्षाक्षादिवंशान् । <sup>९</sup> स्वविहान् द० । शोभनललाटान् । ‘अवग्रहो ललाटं स्वाद्’ इत्यमिथानात् । पक्षे—सुञ्जु स्वतन्त्रहानियेधान् । ‘अवग्रह इति रुग्नो बुद्धिरोधे गजालिके । स्वतन्त्रानिवेषेऽपि प्रतिबन्धेऽप्यवग्रहः’ इत्यमिथानात् । <sup>१०</sup> भूतीन् । <sup>११</sup> मेघसमूहान् । <sup>१२</sup> गण्डस्वलनिष्ठवर्णसंभवन् । <sup>१३</sup> आद्राः । <sup>१४</sup> गिरी ।

शाखासूरा<sup>१</sup> मृगेन्द्राणो गर्जितैरिह तर्जिताः । पुत्रीभूता निकुञ्जे यु पश्य तिष्ठन्ति साम्बमात् ॥४६॥  
 मुनीन्द्रपाठनिषेधैरिनो रथमिदं वनम् । तृणाम्रकबलप्रामिकुरंगकुलसंकुलम् ॥४७॥  
 इतश्च हरिणारातिै कलोरारषभीषणम् । विमुक्तकबलच्छेदपलाचितकुञ्जस्म् ॥४८॥  
 जरजरस्तै श्वसाप्रक्षतवल्मीकरोषमः२ । इतो रथ्या वनोदेशा वराहोरवातपल्वलाः३ ॥४९॥  
 मृगैः प्रविष्टवेशान्तै४ वैशस्तम्बोपगैः५ गर्जैः । सूच्यते हरिणाकान्तं वनमेतद् भयानकम् ॥५०॥  
 वनप्रवेशिभिर्निर्व्यं निर्व्यं६ व्यपिष्टलशायिभिः । न मुख्यतेऽयभव्याम्भौ७ मृगैभुनिगणैरपि ॥५१॥  
 इति प्रशान्तो रौद्रश्च सदैवार्थं धराधरः । सक्षिवानाजिनेन्द्रस्य शान्तं एवाधुना पुनः ॥५२॥  
 गर्जैः पश्य मृगेन्द्राणो संवासमिर्ह कानने । नखरक्षतमार्गेषु८ स्वैरमासपृशतामिमान् ॥५३॥  
 ९ चारणाध्युषिलामेते९ गुहोर्संगानशक्तिः । विश्वस्यनुगताः शोषैः पाकसर्वैः१० लभं११ मृगाः१२ ॥५४॥  
 अहो परममाश्चर्यं तिरश्चामपि चद्गणैः । अनुयातं१३ मुनीन्द्राणामज्ञातमयसंपदाम् ॥५५॥  
 सोऽयमष्टापदैर्जुष्टौ१४ मृगैरन्वर्थनामभिः१५ । उनरहापदल्लाति॑१६ युरेति॑१७ वदुपक्रमम्॑१८ ॥५६॥  
 स्फुरम्भणितोपार्थं लालकाचक्मापतम्॑१९ । न याति॒ व्यक्तिमस्यादेष्टद्वौचित्तशमपहलम् ॥५७॥

गयी है और जो मदरूपी जलसे मलिन हो रहे हैं ऐसे इस वनके वृक्ष हाथियोंकी वनक्रीड़ाको साफ-साफ सूचित कर रहे हैं ॥४५॥ इधर देखिए, सिहोंकी गर्जनासे डरे हुए ये बन्दर भयसे इकट्ठे होकर लतामण्डपोंमें बैठे हुए हैं ॥४६॥ यह वन इधर तो बड़े-बड़े मुनियोंके पाठ करने-के शब्दोंसे रमणीय हो रहा है और इधर तृणोंके अग्रभागका ग्रास खानेवाले हरिणोंके समूहसे व्याप्त हो रहा है ॥४७॥ इधर सिहोंके कठोर शब्दोंसे भयंकर हो रहा है और इधर खाना-पीना छोड़कर हाथियोंके समूह भाग रहे हैं ॥४८॥ इधर, जिनमें बृद्ध जंगली भैसाओंने सोंगोंकी नोकसे बामियोंके किनारे खोद दिये हैं और सूअरोंने छोटे-छोटे तालाब खोद डाले हैं ऐसे ये सुन्दर-सुन्दर वनके प्रदेश हैं ॥४९॥ छोटे-छोटे तालाबोंमें घुसे हुए हरिणों और बाँसकी झाड़ियोंके सभीप छिपकर खड़े हुए हाथियोंसे साफ-साफ सूचित होता है कि इस भयंकर वनपर अभी-अभी सिहने आक्रमण किया है ॥५०॥ सदा वनमें प्रवेश करनेवाले और सदा जमोनपर सोनेवाले हरिण और मुनियोंके समूह इस वनको कभी नहीं छोड़ते हैं ॥५१॥ इस प्रकार यह पर्वत सदा शान्त और भयंकर रहता है परन्तु इस समय श्री जिनेन्द्रदेवके सप्त्रिधानसे शान्त ही है ॥५२॥ इधर, इस वनमें सिहोंका हाथियोंके साथ सहवास देखिए, ये सिह अपने नखोंसे किये हुए हाथियोंके घावोंका इच्छानुसार स्पर्श कर रहे हैं ॥५३॥ जिनके पीछे-पीछे बच्चे चल रहे हैं ऐसे हरिण, सिह, व्याघ्र आदि दुष्ट जीवोंके साथ-साथ चारण-मुनियोंसे अधिष्ठित गुफाओंमें निर्भय होकर प्रवेश करते हैं ॥५४॥ अहा, बड़ा आश्चर्य है कि पशुओं-के समूह भी, जिन्हें वनके भय और शोभाका कुछ भी पता नहीं है ऐसे मुनियोंके पीछे-पीछे फिर रहे हैं ॥५५॥ सार्थक नामको धारण करनेवाले अश्रापद नामके जीवोंसे सेवित हुआ यह पर्वत आपके चढ़नेके बाद अश्रापद नामको प्राप्त होगा ॥५६॥ जिसपर अनेक मणि देदी-प्यमान हो रहे हैं ऐसे इस पर्वतके किनारेके सभीप आता हुआ नश्वरोंका समूह उन मणियोंकी किरणोंसे अपना मण्डल तिरोहित हो जानेसे प्रकटताको प्राप्त नहीं हो रहा है । भावार्थ -

१ मर्कटाः । २ सिह । ३ बृद्धमहिष । ४ वामलूरुतटाः । 'वामलूरुरुच नाकुश्य लल्मोक्तं पुश्पपुसकम्' इत्यभिधानात् । ५ अल्पसरोवराः । ६ पल्वलैः । 'वेशन्तं पल्वलं चात्पसर' इत्यभिधानात् । ७ वेणुपुक्तजसमीपगीः । ८ सहवासम् । ९ नखरक्षतकोर्मपेक्षितयु । १० चारणमुनिभिराचितान् । ११ गुहामण्ड्यान् । १२ सिहणादूलादि-क्रूरमृगैः । १३ हरिणादयः । १४ अनुगतम् । १५ सेवितः । १६ साषडिभिरानैः । १७ भविष्यत्स्काले आग-मिष्यति । १८ त्वया प्रथमोपक्रमं यथा भवति तथा । १९ आगच्छत् ।

ज्वलयोषधिजालेऽपि निशि नाभ्येति किञ्चतः । तमोविशङ्क्याऽस्थाद्रेस्त्रीलमयीस्तटीः ॥५४॥  
हरिन्मणितदोत्तर्पन्मयूखानन्त्र भूधरे । शृणाङ्गुधधियोपेत्य सृगा यान्ति विलक्ष्यताम् ॥५५॥  
सरोजरार्गेत्सोशुच्छ्रिताँ वनराजयः । तताः संध्यातपेतेव ै पुण्यान्तीह परां क्षियम् ॥५६॥  
सूर्याशुभिः परामृष्टाः सूर्यकान्ता उच्चलस्यमी । प्रायस्तेजस्त्विसंपर्कस्तेजः पुण्याति ताद्वाम् ॥५७॥  
इदेन्दुकरसंस्यात्यक्षरन्तोऽप्यनुक्षपम्<sup>१</sup> । चन्द्रकान्ता न हीयन्ते<sup>२</sup> विचित्रा पुद्गलधियतिः ॥५८॥  
सुराणामभिगम्यत्वात् सिंहासनपरिप्रहात्<sup>३</sup> । महस्वादचलत्वात् गिरिरेष जिनायसे ॥५९॥  
शुद्धस्फटिकसंकाशनिर्मलोदारविग्रहः । शुद्धायेष शिवायास्तु तवायभचलधिपः ॥६०॥  
इति शंसर्ति<sup>४</sup> तस्याद्रेः परो शोभां पुरोधसि । शंसाद्वृत्<sup>५</sup> हवानन्दं परं प्राप परंतपः<sup>६</sup> ॥६१॥  
किञ्चित्कान्तरमुलुक्ष्य प्रसक्तेनान्तस्तमाना । प्रत्यासज्जिनास्थानं विद्वामास विदांबरः ॥६२॥  
निषत्पुष्पवर्णेण दुन्दुभीनां च निःस्वनैः । विदांबभूवै<sup>७</sup> लोकेशमभ्यासकृतसंनिच्छिम्<sup>८</sup> ॥६३॥

किनारेके समीप संचार करते हुए नक्षत्रोंके समूहपर मणियोंकी कान्ति पढ़ रही है जिससे वे मणियोंके समान ही जान पड़ते हैं, पृथक् रूपसे दिखाई नहीं देते हैं ॥५७॥ यद्यपि यहाँ रात्रिके समय ओषधियोंका समूह प्रकाशमान रहता है तथापि किञ्चर जातिके देव अन्धकारकी आशंका-से इन्द्रनोल मणियोंके बने हुए इस पर्वतके किनारोंके सम्मुख नहीं जाते हैं ॥५८॥ इस पर्वत-पर हरित मणियोंके बने हुए किनारोंकी केलती हुई किरणोंको हरी घासके अंकुर समझकर हरिण आते हैं परन्तु वास न मिलनेसे बहुत ही आश्चर्य और लज्जाको प्राप्त होते हैं ॥५९॥ इधर पद्मराग मणियोंकी किरणों-सी व्याप्त हुई बनकी पंक्तियाँ ऐसी उत्कृष्ट शोभा धारण कर रही हैं मानो उनपर सन्ध्याकालकी लाल-लाल धप ही फैल रही हो ॥६०॥ ये सूर्यकान्त मणि सूर्यकी किरणोंका स्पर्श पाकर जल रही हैं सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः तेजस्वी पदार्थका सम्बन्ध तेजस्वी पदार्थके तेजको पुष्ट कर देता है ॥६१॥ इस पर्वतपर चन्द्रमाकी किरणोंका स्पर्श होनेपर चन्द्रकान्त मणियोंसे यद्यपि प्रत्येक रात्रिको पानी झरता है तथापि ये कुछ भी कम नहीं होते सो ठीक ही है क्योंकि पुद्यलका स्वभाव बड़ा ही विचित्र है ॥६२॥ अथवा यह पर्वत ठीक जिनेन्द्रदेवके समान जान पड़ता है क्योंकि जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवके समीप देव आते हैं उसी प्रकार इस पर्वतपर भी देव आते हैं, जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवने सिंहासन स्वीकार किया है उसी प्रकार इस पर्वतने भी सिंहके आसनोंको स्वीकार किया है – इसपर जहाँ-तहाँ सिंह बैठे हुए हैं अथवा सिंह और असन वृक्ष स्वीकार किये हैं, जिस प्रकार जिनेन्द्रदेव महान् अर्थात् उत्कृष्ट हैं उसी प्रकार यह पर्वत भी महान् अर्थात् ऊँचा है और जिनेन्द्रदेव जिस प्रकार अचल अर्थात् अपने स्वरूपमें स्थिर हैं उसी प्रकार यह पर्वत भी अचल अर्थात् स्थिर है ॥६३॥ हे देव, जिसका उदार शरीर शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल है ऐसा यह पर्वतराज कैलास शुद्धात्माकी तरह आपका कल्याण करनेवाला हो ॥६४॥ इस प्रकार जब पुरोहितने उस पर्वतकी उत्कृष्ट शोभाका वर्णन किया तब शत्रुओंको सन्तप्त करनेवाले महाराज भरत इस प्रकार परम आनन्दको प्राप्त हुए मानो सुखरूप ही हो गये हों ॥६५॥ विद्वानोंमें श्रेष्ठ भरत चक्रवर्तीं प्रसन्न चित्तसे कुछ ही आगे बढ़े थे कि उन्हें वहाँ समीप ही जिनेन्द्रदेवका समवसरण जान पड़ा ॥६६॥ ऊपरसे पड़ती हुई पुष्पवृष्टिसे और दुन्दुभि बाजोंके शब्दोंसे उन्होंने जान

१ विलक्ष्यताम् । २ पद्मराग । ३ मिश्रिताः । ४ वर्द्धयन्ति । ५ रात्रौ रात्रौ । ६ न कुशा भवन्ति । ७ हरि-विष्णुस्वीकारात्, पक्षे सिंहानामशनवृक्षाणां च स्वीकारात् । ८ स्तुति कुर्वति चति । ९ सुक्षायतः । १० परं शाशुकापयतीति परंतपश्चकी । ११ जगनाति स्म । १२ समीपविहितस्त्रियतिम् ।

मन्दारकुसुमोद्गन्धिराष्ट्रोलितलतावनः । एवनस्तमीयायै प्रसुषाज्जिव पावनः ॥६८॥  
 सुमनोद्विषिरपतदापूरितनभीङ्गणा । जिरजीकृतभूलोकैः समं शीतैरपैः कर्णः ॥६९॥  
 ३ शुधुवे ध्वनिरामन्द्रो दुन्दुमीनां नभोऽङ्गणे । श्रुतः केकिभिरुप्रीवैर्वनस्तनितशक्तिमिः ॥७०॥  
 गुलफदम्प्रसूनीधर्षं मर्दसृदुना पथा॑ । तमद्विशेषमश्रान्तः॒ प्रवययौ स लृपाग्रणीः ॥७१॥  
 ततोऽधिश्वस्तं बैलमपश्यत् सोऽस्यै मृधनि । प्रागुक्तवर्णनोपतं जैममास्थानमण्डलम् ॥७२॥  
 समेत्यावसरावेक्षास्तिष्ठत्यस्मिन् सुरासुराः । इति तज्ज्ञनिरुक्तं तस्तरणं समवादिकम्॑ ॥७३॥  
 आखण्डलघनुलेखासत्परिमण्डलम् । जनयन्तं निजोद्योतैर्भूलीसालमयासदत्॑ ॥७४॥  
 हेमस्तमाग्रविष्ट्यस्तरक्तोरणमासुरम् । धूलीसालमतीत्यासौ मानस्तमसपूजयत् ॥७५॥  
 मानस्तमस्य यत्यन्ते॑ सरसीः ससरोरुद्धाः । जैमीरिव श्रुतीः स्वच्छवीतलापो॑३ ददृशै सः ॥७६॥  
 धूलीसालपरिक्षेपस्याऽतमग्ने समन्ततः । वीध्यम्तरेषु सोऽपश्यद् देवाकासोचिता भुव्रः॑४ ॥७७॥  
 अतीत्य परतः किंचिद् ददर्श जलस्त्रातिकाम् । सुप्रसरकामगाढां च मनोऽवृत्तिं सहामित्र ॥७८॥  
 चहीवनं लतोऽवाक्षीज्ञानायुष्यलताततम् । पुष्पासवरसामस्तमङ्गमरसंकुलम् ॥७९॥

लिया था कि श्रिलोकीनाथ जिनेन्द्रदेव समीप ही विराजमान हैं ॥६७॥। मन्दार वृक्षोंके फूलों-से सुगन्धित और लताओंके बनको कम्पित करनेवाला वायु उनके सामने इस प्रकार आया था मानो उनकी अगवानी ही कर रहा हो ॥६८॥। जिन्होंने पृथ्वीको धूलिरहित कर दिया है ऐसी जलकी शीतल बैंदोंके साथ-साथ आकाशरूपी आँगनको भरती हुई फूलोंकी वर्षा पढ़ रही थी ॥६९॥। जिन्हें मेघोंकी गजना समझनेवाले मयूर, अपनी गरदन ऊँची कर सुन रहे हैं ऐसे आकाशरूपी आँगनमें हीभेदोंले दुन्दुभि जाजोंके वाम्भीर शब्द भी महाराज भरतने सुने थे ॥७०॥। राजाओंमें श्वेष महाराज भरत, पैरकी गाँठों तक ऊँचे फैले हुए फूलोंके सम्मदिसे जो अत्यन्त कोमल हो गया है ऐसे भागके द्वारा बिना किसी परिश्रमके बाकी बचे हुए उस पर्वत-पर चढ़ गये थे ॥७१॥। तदनन्तर उस पर्वतपर चढ़कर भरतने उसके भस्तकपर पहले कही हुई रचनासे सहित जिनेन्द्रदेवका समवसरणमण्डल देखा ॥७२॥। इसमें समस्त सुर और अमुर आकर दिव्य ध्वनिके अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए बैठते हैं इसलिए जानकार गणधरादि देवोंने इसका समवसरण ऐसा सार्थक नाम कहा है ॥७३॥।

अथानन्तर—महाराज भरत, जो अपने प्रकाशसे अखण्ड मण्डलवाले इन्द्रधनुषकी रेखा-को प्रकट कर रहा है ऐसे धूलिसालके समीप जा पहुँचे ॥७४॥। सुवर्णके खम्भोंके अग्रभागपर लगे हुए रत्नोंके तोरणोंसे जो अत्यन्त देवीप्रमाण हो रहा है ऐसे धूलिसालको उल्लंघन कर उन्होंने मानस्तमभकी पूजा की ॥७५॥। जिनमें स्वच्छ और शीतल जल भरा हुआ है और कमल फूल रहे हैं ऐसी जिनेन्द्र भगवान्की वाणीके समान मानस्तमभके चारों ओरकी बावड़ियाँ भी महाराज भरतने देखी ॥७६॥। धूलिसालकी परिधिके भीतर चारों ओरसे गलियोंके बीच-बीचमें उन्होंने देवोंके निवास करने योग्य पृथ्वी भी देखी ॥७७॥। कुछ और आगे चलकर उन्होंने जलसे भरी हुई परिखा देखी। कह परिखा सज्जन पुरुषोंके चित्तकी वृत्तिके समान स्वच्छ और गम्भीर थी ॥७८॥। तदनन्तर जो अनेक प्रकारके फूलोंकी लताओंसे व्यग्र हो रहा है और जो फूलोंके बासबरूपी रससे मत्त होकर फिरते हुए भ्रमरोंसे व्याप्त है ऐसा लता-

१ अभिमुखं जगाम । २ जलासाम् । ३ भरतेन अूक्ते स्म । ४ धृष्टिकप्रमाण । 'तद्यन्ती धृष्टिके गुलकौ' इत्यभिधानात् । ५ मार्गेण । ६ अमरहितः । ७ कैलासस्य । ८ समरगत्य । ९ प्रभोरवचरमालोकयन्तः । १० समवसरणम् । ११ आगमत् । १२ पर्यन्तसरसी ल० । १३ शैत्यजलाः, पञ्चे वाम्भिजलाः । १४ वैष-प्रासादभूमीः ।

ततः किञ्चित्पुरो गच्छन् सामाद्यं व्यलोकयत् । निषधाद्रितस्पर्धिपुरं रक्षमालुषम् ॥८०॥  
 सुरदौत्ररिकाद्वत्प्रतीर्लितलाप्रितान् । सोऽपव्यन्मङ्गलद्रष्ट्यमेवांस्तत्राशृष्टा स्थितान् ॥८१॥  
 ततोऽन्तः अदिशावीक्ष्य हितयं नाभ्यशालयोः । प्रीतिं प्राप्य परां चक्री शक्तिं वर्तनोचितम् ॥८२॥  
 स धूपवट्टयोर्मुग्मं तत्र वीथ्युभयान्तयोः । सुगन्धीन्धनसंदीहोद्गन्धिभूषं व्यलोकयत् ॥८३॥  
 कक्षान्तरे द्वितीयेऽस्मिन्शर्वी वस्त्रतुष्टयम् । निदध्यै<sup>१</sup> दिग्लक्ष्येऽप्यैः कृतार्वमिव शशिभिः ॥८४॥  
<sup>२</sup>प्रकुलवनमाशोकं यासपर्णं च चाम्पकम् । आश्रेदितं वने<sup>३</sup> प्रेक्षय सोऽभूदाक्रेडिसोत्सवः<sup>४</sup> ॥८५॥  
 तत्र चैत्यद्वुमांस्तुक्षान् जिनविष्वैरथिहितान् । पूजयामास लक्ष्मीवान् पूजिताकुसुरेशिनाम् ॥८६॥  
 तत्र किञ्चरनार्तणो गतिरामन्दमूर्खयनैः । लेसे पर्णं एति चक्री गायत्रीना जिनोत्सवम् ॥८७॥  
 सुगन्धिपवनामोदिनिःशासा कुसुमसिमता । वनश्चीः कोकिलालायैः संजजलेवै चक्रिणा ॥८८॥  
 भृक्षीसंगीतसंमुच्छनै<sup>५</sup> कोकिलानकनिस्त्रैनैः । अनङ्गविजयं जिष्णोर्वनानीबोद्धोषयम् ॥८९॥  
 ग्रिजगञ्जनताजास्त्रप्रवेशरम्भोनितम् । तत्राशृणोन्महाबोषमपो धोषमिदोद्धेः ॥९०॥  
 वनदेवीमध्यापद्यत् वनरुद्धावने परम् । वनराजीविलासिष्ठाः काञ्चीमिव कणन्मणिम्<sup>६</sup> ॥९१॥  
 तदृगोपुरावनिं क्रन्तवा ष्वजरुद्धावनिं सुराद् । आयुहै पुमिवाऽपद्यत्नमहद्भूतैर्घर्जातुकैः ॥९२॥

वन देखा ॥९३॥ वहसि कुछ आगे जाकर उन्होंने पहला कोट देखा जो कि निषध पर्वतके किनारेके साथ स्पर्धा कर रहा था और रत्नोंकी दीप्तिसे सुशोभित था ॥८०॥ देवरूप द्वारपाल जिसकी रक्षा कर रहे हैं ऐसे गोपुरद्वारके समीप रखे हुए आठ मंगलद्रव्य भी उन्होंने देखे ॥८१॥ तदनन्तर भीतर प्रवेश करते हुए चक्रवर्ती भरत इन्द्राणीके नृत्य करनेके घोष दोनों ओरकी दो नाट्यशालाओंको देखकर परम श्रीतिको प्राप्त हुए ॥८२॥ वहसि कुछ आगे चलकर मार्गके दोनों ओर बगलमें रखे हुए तथा सुगन्धित ईंधनके समूहके द्वारा जिनसे अत्यन्त सुगन्धित धूम निकल रहा है ऐसे दो धूपवट देखे ॥८३॥ इस दूसरी कक्षामें उन्होंने चार वन भी देखे जो कि जड़ते हुए फूलोंवाले वृक्षोंसे अर्च देते हुएके समान जान पड़ते थे ॥८४॥ फूले हुए अशोक वृक्षोंका वन, सातपर्ण वृक्षोंका वन, चम्पक वृक्षोंका वन और आमोंका सुन्दर वन देखकर भरत महाराजका आनन्द भी दूना हो गया था ॥८५॥ श्रीमात् भरतने उन वनोंमें जिनप्रतिमाओंसे अधिष्ठित और इन्द्र नरेन्द्र आदिके द्वारा पूजित बहुत ऊचे चैत्यवृक्षोंकी भी पूजा की ॥८६॥ उन्हीं वनोंमें किंवर जातिकी देवियाँ भगवान्‌का उत्सव गा रही थीं, उनके गम्भीर तात्त्वाले गीतोंसे चक्रवर्ती भरतने परम सन्तोष प्राप्त किया था ॥८७॥ सुगन्धित पवन ही जिसका सुगन्धिपूर्ण निश्वास है और फूल ही जिसका मन्द हास्य है ऐसो वह वनकी लक्ष्मी कोयलोंके मधुर शब्दोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो चक्रवर्तीके साथ वातलिष्य ही कर रही हो ॥८८॥ अमरियोंके संगीतसे मिले हुए कोकिलारूपी नगाड़ोंके शब्दोंसे वे वन ऐसे जान पड़ते थे मानो जिनेन्द्र भगवान्‌ने जो कामदेवको जीत लिया है उसीकी धोषणा कर रहे हों ॥८९॥ वहाँपर तीनों लोकोंके जनसमूहके निरन्तर प्रवेश करनेकी उतावलीसे जो समुद्रके जलकी गर्जनाके समान बड़ा भारी कोलाहल हो रहा था उसे भी भरत महाराजने सुना था ॥९०॥ तदनन्तर उन वनोंसे रुकी हुई पृथिवीके आगे उन्होंने वनपर्कितरूपी विलासिनी स्त्रीकी मणिमयी मेललाके समान मणियोंसे जड़ी हुई वनकी देवी देखी ॥९१॥ वनवेदीके मुख्य द्वारकी भूमिको उल्लंघन कर चक्रवर्ती भरतने ध्वजाओंसे रुकी हुई पृथिवी देली, वह पृथिवी उस समय ऐसी मालूम हो रही थी मानो वायुसे हिलते हुए ध्वजाओंके वस्त्रोंके द्वारा

१ ददर्श । २ प्रफुल्लवन—ल० । ३ आश्रेदितवनं ल० । ४ आम्रमिति स्तुतम् । ५ द्वित्रिगुणितस्ववः । ६ जल्पति त्वम् । ७ संमिथीभवत् । ८ स्फुरद्वलाम् । ९ सुराद् ल०, द० । १० आङ्गातुमिच्छुम् ।

सावनि: सावनीशोषद् ध्वजमालातताम्बरा । सचका सगजा रेजे जिनराजजयोजिता ॥१३॥  
 केतवो हरिवज्राक्षवहिणेभगवत्प्रभाम् ।<sup>१</sup> सगुणहंसचक्राणां दशधेन्का जिनेशितः ॥१४॥  
 तानेकशः<sup>२</sup> शतं चाष्टी ध्वजान् प्रतिदिशं स्थितान् । वरीवश्वक्षणाक्षकी स तत्रुदावनेः परम् ॥१५॥  
 द्वितीयमार्जुनं सालं सगोपुरव्युष्टुष्टम् । उत्तीर्ण्य परतोऽपश्वक्षणाक्षालादिपूर्ववते<sup>३</sup> ॥१६॥  
 तत्र पश्यन्सुरस्त्रीणां नृत्यं गीतं निशामयन्<sup>४</sup> । धूषामोदं च संजिवन्<sup>५</sup> सुप्रीताङ्गोऽभवद् विसुः ॥१७॥  
 कक्षाम्भरे सतस्तस्मिन् कल्पवृक्षवनाक्षलिम्<sup>६</sup> । स्वग्वस्त्रामणार्द्दैष्ठलदो म निश्चपत्रम्<sup>७</sup> ॥१८॥  
 सिद्धार्थपादपांहत्य सिद्धिमैरधिष्ठितान् । परत्य प्रणमन् प्राचीवृचिताकाकिनायकः ॥१९॥  
 वनबेदी ततोऽतीत्य चतुर्गोपुरमण्डनाम् । प्रायादृढ़ामष्टमी स्तूपात्य प्रभुरुक्तन् ॥१००॥  
 प्रासादा विविदास्तत्र सुराक्षासाय करिष्यतः । त्रिष्टुप्यज्ञभूत्याक्षा<sup>८</sup> नामाच्छुन्दैरलंकृताः ॥१०१॥  
 स्तूपात्य रक्षनिर्माणः सान्तरा रक्षतोरपैः । समन्ताजिनशिमैस्ते निषिताद्वा<sup>९</sup> काशिरे ॥१०२॥  
 तां पश्यकर्त्त्वंहतांश्च तांश्च स कीर्तयन् । तां च कक्षां अथर्वाय<sup>१०</sup> विस्मये परमायिकान् ॥१०३॥

उन्हें बुला ही रही हो ॥१२॥ वह ध्वजाभूमि यज्ञभूमिके समान सुशोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार यज्ञभूमिका आकाश अनेक फहराती हुई ध्वजाओंके समूहसे व्याप्त होता है उसी प्रकार उस ध्वजाभूमिका आकाश भी अनेक फहराती हुई ध्वजाओंके समूहसे व्याप्त हो रहा था, जिस प्रकार यज्ञभूमि धर्मचक्र तथा हाथी आदिके मांगलिक चिह्नोंसे सहित होती है उसी प्रकार वह ध्वजाभूमि भी जिनेन्द्रदेवके जय अर्थात् जयजयकार शब्दोंसे व्याप्त होती है उसी प्रकार वह ध्वजाभूमि भी जिनेन्द्रदेवके जयजयकार शब्दोंसे व्याप्त थी अथवा कर्मचक्री शशुओंको जीत लेनेसे प्रकट हुई थी ॥१३॥ जिनराजकी वे ध्वजाएँ सिंह, वस्त्र, कमल, स्यूर, हाथी, गरुड़, माला, बैल, हंस और चक्र इन चिह्नोंके भेदसे दश प्रकारकी थी ॥१४॥ वे ध्वजाएँ प्रत्येक दिशामें एक-एक प्रकारकी एक सौ आठ स्थित थीं, उन सबकी पूजा करते हुए चक्रवर्ती महाराज उस ध्वजाभूमिसे आगे गये ॥१५॥ आगे चलकर उन्होंने चार गोपुर दरवाजोंसहित चाँदीकाः बना हुआ दूसरा कोट देखा और उसे उल्लंघन कर उसके आगे पहलेके समान ही नाट्यशाला आदि देखीं ॥१६॥ वहाँ देवांगनाओंके नृत्य देखते हुए, उनके गीत सुनते हुए और वृपकी सुगन्ध सूँघते हुए महाराज भरतकी इन्द्रियों वहुत ही सन्तुष्ट हुई थीं ॥१७॥ आगे चलकर उन्होंने उसी कक्षाके मध्यमें माला, वस्त्र और आभृषण आदि अभोष्ट फल देनेवाली कल्प वृक्षोंके बनकी भूमि देखी ॥१८॥ उसी वनभूमिमें उन्होंने सिद्धोंकी प्रतिमाओंसे अधिष्ठित और इन्द्रोंके हारा पूजित सिद्धार्थ वृक्षोंकी प्रदक्षिणा दी, उन्हें प्रणाम किया और उनकी पूजा की ॥१९॥ तदनन्तर चार गोपुर दरवाजोंसे सुशोभित बनकी वेदीको उल्लंघन कर चक्रवर्तीने अनेक महलोंसे भरी हुई पृथिवी और स्तूप देखे ॥२०॥ वहाँ देवोंके रहनेके लिए जो महल बने हुए थे वे तीन खण्ड, चार खण्ड, पाँच खण्ड आदि अनेक प्रकारके थे तथा नाना प्रकारके उपकरणोंसे सजे हुए थे ॥२१॥ जिनके बीच-बीचमें रत्नोंके तोरण लगे हुए हैं और जिनपर आरों औरसे जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं ऐसे वे रत्नमयी स्तूप भी बहुत अधिक सुशोभित हो रहे थे ॥२२॥ उन स्तूपोंको देखते हुए, उनकी पूजा करते हुए और उन्हींका वर्णन करते हुए जिन्हें परम आश्चर्य प्राप्त हो रहा है ऐसे भरतने क्रम-क्रमसे उस कक्षाको उल्लंघन

<sup>१</sup> यज्ञसंबन्धिनीति । सवनः यज्ञः । <sup>२</sup> मालावृषभ । <sup>३</sup> एकैकलिमन् ( दिशि ) । <sup>४</sup> पूजयन् । <sup>५</sup> प्रथमसात्रो-कृतवृत् । <sup>६</sup> स्तूपवन् । <sup>७</sup> आघ्नीणयन् । <sup>८</sup> ग्रीतेन्द्रियः । <sup>९</sup> बनावनिम् ल०, प० । <sup>१०</sup> पश्यन् । <sup>११</sup> स्वस्तिक-सर्वतोभद्रतस्यावत्तरहचकवर्षमातादिरचनाचिशेषैः । <sup>१२</sup> अप्तीतवान् ।

नमःस्फटिकनिमणं प्राकारवलयं ततः । १ ग्रन्थासतेजिनस्येव लब्धशुद्धिं ददर्श सः ॥ १०४॥  
 तप्र कल्पोपयै॒ दृष्टे॑ भैरवै॒ महादौ॒ वारपालै॑ः । सादर्द सोऽभ्यनुज्ञातः प्रविवेश समाँ विमोः ॥ १०५॥  
 समन्ताद्योजनायामविष्कम्भपरिमण्डलम् । श्रीमण्डपं जगद्विष्कम्भपश्वम्भान्तमामनि ॥ १०६॥  
 तत्रापश्चन्मुनीनिहृतेधान्देवीशं कल्पजाः । सार्थिका नूपकान्ताश्च ज्योतिर्वन्धोरणामरीः ॥ १०७॥  
 भावनव्यन्तरज्योतिः कल्पेन्द्राश्चार्थिवान्दृगान् । भगवत्पादसंप्रेक्षाप्रीतिप्रोक्तुलुप्तोचनान् ॥ १०८॥  
 गणान्तिं क्रमात् पद्यन्वर्गयाच्य परंतपः । त्रिमेखलस्य पीठस्य प्रथमां मेखलां शिरः ॥ १०९॥  
 तत्रानन्दं मुदा चक्री धर्मचक्रचतुष्यम् । यशेन्द्रविद्वितं मूर्खां व्यभिज्ञानुकारि यत् ॥ ११०॥  
 हितीयमेखलायां च १ ग्रावंषट्ठौ महाध्वजान् । चक्रेभोक्त्रां ज्योतिः व्यस्तरवक्तव्यहडाङ्गितान् ॥ १११॥  
 मेखलायां तृतीयस्यामधैश्चित्तं जगद्गुरुम् । दृष्टमं स कृती यस्यो श्रीमद्भुतकुटीस्थिता ॥ ११२॥  
 तदगमे रजसंदर्भस्त्रिरे हरिविष्टरे । मेरम्भ हृषोदुक्ते सुनिविष्टं महातनुम् ॥ ११३॥  
 उत्त्रवयकुरुष्टायमप्यच्छायमघच्छिवम् । स्वलेजोमपद्मलाकान्तानुसुरासुरमण्डलम् ॥ ११४॥  
 अशोकशालिविष्टेन व्यञ्जयन्तमिवाभसा । स्वपादाश्रयिणो शोकनिरासे॑ शक्तिमात्मनः ॥ ११५॥  
 चक्रव्यक्तिर्णकाकीर्णपर्यन्तं व्याप्तिर्णुम् । शासद्विमिषः व्यञ्जिते॑ ग्रन्थस्त्रिरत्नंकुलः दृष्टादृष्टः ॥ ११६॥

किया ॥ १०३॥ आगे चलकर उन्होंने आकाशस्फटिकका बना हुआ तीसरा कोट देखा । वह कोट ऐसा जान पड़ता था मानो जिनेन्द्रदेवकी समीपताके कारण उसे शुद्धि ही प्राप्त हो गयी हो ॥ १०४॥ वही महाद्वारपालके रूपमें खड़े हुए कल्पवासी देवोंसे आदरसहित आज्ञा लेकर भरत महाराजने भगवान्की सभामें प्रवेश किया ॥ १०५॥ वही उन्होंने चारों ओरसे एक योजन लम्बा, चौड़ा, गोल और अपने भीतर समस्त जगत्को स्थान देनेवाला श्रीमण्डप देखा ॥ १०६॥ उसी श्रीमण्डपके मध्यमें उन्होंने जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंके दर्शन करनेसे उत्पन्न हुई प्रीतिसे जिनके नेत्र प्रफुल्लित हो रहे हैं ऐसे क्रमसे बैठे हुए उज्ज्वल ज्ञानके थारी मुनि, कल्पवासिनी देवियाँ, आयिकाओंसे सहित रानी आदि स्त्रियाँ, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवोंकी देवियाँ, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देव, राजा आदि मनुष्य और मृग आदि पशु ऐसे बारह संघ देखे तथा इन्हींको देखते हुए महाराज भरतने तीन कट्ठनीदार पीठकी प्रथम कट्ठीका आश्रय लेकर उसकी प्रदक्षिणा दी ॥ १०७—१०९॥ उस प्रथम कट्ठीपर चक्रवर्तीने, जिन्हें यक्षोंके इन्द्रोंने अपने भस्तकपर धारण कर रखा है और जो सूर्यके बिम्बका अनुकरण कर रहे हैं ऐसे चारों दिशाओंके चार धर्मचक्रोंकी प्रसन्नताके साथ पूजा की ॥ ११०॥ दूसरी कट्ठीपर उन्होंने चक्र, हाथी, बैल, कमल, सिंह, माला, वस्त्र और गरुड़के चिह्नोंसे चिह्नित आठ महाध्वजाओंकी पूजा की ॥ १११॥ तदनन्तर विद्वान् चक्रवर्तीने, जिसपर शोभायुक्त मन्थकुटी स्थित थी ऐसी तीसरी कट्ठीपर जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव-को देखा ॥ ११२॥ उस गन्थकुटीके भीतर जो रत्नोंकी बनावटसे बहुत ही सुन्दर और मेर पर्वतके शिल्पके समान ऊंचे सिंहासनपर बैठे हुए थे, जिनका शरीर बड़ा — जिनपर तीन छत्र छाया कर रहे थे परन्तु जो स्वयं छायारहित थे, पापोंको नष्ट करनेवाले थे, जिन्होंने अपने प्रभामण्डलसे मनुष्य, देव और धरणेन्द्र सभीके समूहको व्याप्त कर लिया था—जो अशोक वृक्षके चिह्नसे ऐसे जान पड़ते थे मानो अपने चरणोंका आश्रय लेनेवाले जीवोंका शोक दूर करनेके लिए अपनी शक्ति ही प्रकट कर रहे हों—जिनके समीपका भाग चारों ओरसे दुलते हुए चामरोंसे व्याप्त हो रहा था, जो सुन्दर शरीरके धारक थे और इसीलिए जो उस सुमेर

तेजसा चक्रवालेन स्फुरता परिषो वृत्तम् । परिवेष्वृतस्याक्षमप्त्वलस्यानुकारकम् ॥ ११३ ॥  
 विषद्दुन्मुभिर्मंश्रधोषीहृषोवितोदयम् । सुमनोवर्णिमिदिव्यजी<sup>४</sup> मूर्तैहर्जिसशियम् ॥ ११४ ॥  
 स्फुरदग्भीरनिघोषप्रीणितत्रिजगात्समम् । प्रायूषेष्य<sup>५</sup> पदोवाहमिष धर्माम्बुद्धिणम् ॥ ११५ ॥  
 नानामाधिगिकां दिव्यमाषामेकात्मिकामपि । प्रथयन्तमयत्वेन हृष्टवासं तुदती नृणाम् ॥ १२० ॥  
 अमेषवीर्चमाहार्यविरहे<sup>६</sup> इष्यतिसुन्दरम् । सुवार्थिभवमुत्संसौरमं शुभलक्षणम् ॥ १२१ ॥  
 अस्वेदमलमच्छायमयक्षमस्पन्दवभुरम् । सुसंस्थानमभेष्य<sup>७</sup> व दधानं वपुरुर्जितम् ॥ १२२ ॥  
 रस्यप्रतक्षयमाहार्यं दूराद्वालोक्यन् जिमम् । प्रद्वोऽभूतस महीसपृष्ठं जानुरामश्वनिर्मारः ॥ १२३ ॥  
 दूरानतच्चलम्भालिरालोक्यणिकुण्डलः । स रेजे प्रणमन् भक्त्या जिनं रक्षैरिवार्घयन् ॥ १२४ ॥  
 ततो विभिवदानचे जलगाम्यस्वगक्षते । चरुअदीपथूपैश्च सफलैः स फलेष्यत्या ॥ १२५ ॥  
 कृतपूजाविधिर्भूयः प्रणम्य परमेष्ठिमम् । स्तोतुं स्तुतिभिरस्तुवैरारेभे भरताधिपः ॥ १२६ ॥  
 त्वां स्तोत्र्ये परमाभ्यानमपासगुणमच्युतम् । चोदितोऽहं बलाद् भक्त्या शब्द्या मन्दोऽप्यमन्दया ॥ १२७ ॥

पर्वतके समान जान पड़ते थे जो कि शिखरोंके समीप भागसे पड़ते हुए ज्ञानोंसे व्याप्त हो रहा है—जो चारों ओरसे फैलते हुए कान्तिमण्डलसे व्याप्त हो रहे थे और उससे ऐसे जान पड़ते थे मानो गोल परिधिसे घिरे हुए सूर्यमण्डलका अनुकरण ही कर रहे हों—गम्भीर शब्द करने-वाले आकाशकुटुभियोंके द्वारा जिनका माहात्म्य प्रकट हो रहा था तथा फूलोंकी वर्षा करने-वाले दिव्य मेघोंके द्वारा जिनकी शोभा बढ़ रही थी—जिन्होंने चारों ओर फैलती हुई अपनी गम्भीर गर्जनासे तीनों लोकोंके जीवोंकी सभाको सन्तुष्ट कर दिया था और इसीलिए जो धर्मरूपी जलकी वर्षा करते हुए वषक्रितुके मेघके समान जान पड़ते थे, जो उत्पत्तिस्थानकी अपेक्षा एक रूप होकर भी अतिशयवश श्रोताओंके कर्णकुहरके समीप अनेक भाषाओंरूप परिणमन करनेवाली और जीवोंके हृदयका अन्धकार दूर करनेवाली दिव्य ध्वनिको बिना किसी प्रयत्न-के प्रसारित कर रहे थे—जो अनन्त चीर्यको धारण कर रहे थे, आभूषणरहित होनेपर भी अतिशय सुन्दर थे, बाणीरूपी उत्तम विभूतिके धारक थे, जिनके शरीरसे सुगन्धि निकल रही थी, जो शूभ लक्षणोंसे सहित थे, पसीना और मलसे रहित थे, जिनके शरीरकी छाया नहीं पड़ती थी, जो आँखोंके पलक न लगनेसे अतिशय सुन्दर थे, समचतुरस् संस्थानके धारक थे, और जो छेदन-भेदनरहित अतिशय बलवान् शरीरको धारण कर रहे थे—ऐसे अचिन्त्य माहात्म्यके धारक श्री जिनेन्द्र भगवान्को दूरसे ही देखते हुए भरत महाराज आनन्दसे भर गये तथा उन्होंने अपने दोनों घुटने जमीनपर टेककर श्री भगवान्को नमस्कार किया ॥११३—१२३॥ दूर-से ही नम्र होनेके कारण जिनका मुकुट कुछ-कुछ हिल रहा है और मणिमय कुण्डल चंचल हो रहे हैं ऐसे भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेवको प्रणाम करते हुए चक्रवर्ती भरत ऐसे जान पड़ते थे मानो उन्हें रत्नोंके द्वारा अर्धं ही दे रहा हो ॥१२४॥ लदनन्तर उन्होंने सोकरूपी फल प्राप्त करनेकी इच्छासे विधिपूर्वक जल, चन्दन, पुष्पमाला, अक्षत, नैवेद्य, दीप, धूप और फलोंके द्वारा भगवान्की पूजा की ॥१२५॥ पूजाकी विधि समाप्त कर चुकनेके बाद भरतेश्वरने परमेष्ठी वृषभदेवको प्रणाम किया और फिर अच्छे-अच्छे स्तोत्रोंके द्वारा उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥१२६॥ हे भगवन्, आप परमात्मा हैं, अपार गुणोंके धारक हैं, अविनश्वर हैं और मैं शक्तिसे हीन हूँ तथापि बड़ी भारी भक्तिसे जबरदस्ती प्रेरित होकर आपकी स्तुति करता

१ विष्वग् २० । २ आकाशे अवनदुम्बुभिः । ३ सुरभेदैः । ४ प्रावृषि भवत् । ५ आभरणाद् विरहितेऽपि ।  
६ समचतुरल । ७ महीपुष्ट ल० ।

क से गुणा गगेन्द्राणामप्यगच्छा<sup>१</sup> क मादशः । तथापि प्रयत्ने<sup>२</sup> स्वेतुं भस्त्रा त्वदगुणनिवृया<sup>३</sup> ॥१२४॥  
 फलाथ त्वदगसा भक्षिरनस्पाथ प्रकल्पते । स्वामिसंपत्प्रयुषाति ननु संपत्प्रस्पराम् ॥१२५॥  
 धातिकमेंसलापायात् प्रापुरासन् गुणास्तव । घनाचरणनिसुर्कमूर्जेभानोर्थाऽक्षवः ॥१२६॥  
 वथार्थदर्शनज्ञानसुखर्वार्यादिलक्ष्यः । क्षायिक्यस्तव निजता<sup>४</sup> धातिकमर्यिनिर्जयात् ॥१२७॥  
 केवली<sup>५</sup> परं ज्योहस्तत्र त्वं च यदोदयात् । तदा लोकमलोकं च त्वमदुद्धा विनावधे ॥१२८॥  
 सार्वज्ञं तत्र वर्णाश वचः शुद्धिरशेषगा<sup>६</sup> । न हि वाग्विभवो मन्दिरियामस्तीह पुष्कर्लः ॥१२९॥  
 वक्तुप्रामाण्यतो देव वचःप्रामाण्यमित्यते । न छानुदतराद् चकुः प्रभवन्त्युज्ज्वला गिरः ॥१३०॥  
 सप्तमङ्गव्याख्यिकेयं ते भारती विद्वग्नेचरा । आप्तप्रतीति<sup>७</sup> ममलो त्वद्युज्ज्वाचयितुं क्षमा ॥१३१॥  
 स्यादस्त्येव हि नाहस्येव स्यादवक्षत्यमित्यपि । स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्यमिति<sup>८</sup> ते सार्व<sup>९</sup> भारती॥१३२॥

हैं ॥१२६॥ हे देव, जो गणधर देवोंके द्वारा भी गम्य नहीं हैं ऐसे कहाँ तो आपके अनन्त गुण और कहाँ मुझ सरीखा मन्द पुरुष ? तथापि आपके गुणोंके अवीन रहनेवाली भवित्वसे प्रेरित होकर आपकी स्तुति करनेका प्रयत्न करता हूँ ॥१२८॥ हे भगवन्, आपके विषयमें की हुई धोड़ी भक्ति भी बहुत भारी फल देनेके लिए समर्थ रहती है सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीकी सम्पत्ति सेवक जनोंकी सम्पत्तिकी परम्पराको पुष्ट करती ही है ॥१२९॥ हे नाथ, जिस प्रकार मेघोंके आवरणसे छूटे हुए सूर्यकी अनेक किरणें प्रकट हो जाती हैं उसी प्रकार धातिया कर्महपी मलके दूर ही जानेमें आपके अनेक गुण प्रकट हुए हैं ॥१३०॥ हे प्रभो, धातिया कर्मोंको जीत लेनेमें आपके यथार्थ दर्शन, ज्ञान, मुख और वीर्य आदि क्षायिक लक्ष्ययों प्रकट हुई हैं ॥१३१॥ हे देव, जिस समय आपके केवलज्ञान नामकी उन्हें ज्योति प्रकट हुई थी उसी समय आपने मयदिके विना ही समस्त लोक और अलोकको जान लिया था ॥१३२॥ हे ईश, सब जगह जानेवाली अथवा संसारके सब पदार्थोंका निरूपण करनेवाली आपके वचनोंकी शुद्धि आपके सर्वज्ञपतेको प्रकट करती है सो ठीक ही है क्योंकि इस जगत्में मन्द बुद्धिवाले जीवोंके इतना अधिक वचनोंका वैभव कभी नहीं हो सकता है ॥१३३॥ हे देव, वक्ताकी प्रमाणतासे ही वचनोंकी प्रमाणता मानी जाती है क्योंकि अत्यन्त अशुद्ध वक्तासे उज्ज्वल वाणी कभी उत्पन्न नहीं हो सकती है ॥१३४॥ हे नाथ, समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाली आपकी यह सप्तभंगरूप वाणी ही आपमें आप्तपतेकी निर्मल प्रतीति उत्पन्न करानेके लिए समर्थ है ॥१३५॥ हे सबका हित करनेवाले, आपकी सातभंगरूप वाणी इस प्रकार है कि जीवादि पदार्थ कथंचित् हैं ही, कथंचित् नहीं ही हैं, कथंचित् दोनों प्रकार ही हैं, कथंचित् अवकृतव्य ही हैं, कथंचित् अस्तित्व रूप होकर अवकृतव्य हैं, कथंचित् नास्तित्व रूप होकर अवकृतव्य हैं और कथंचित् अस्तित्व तथा नास्तित्व-दोनों रूप होकर अवकृतव्य हैं । विशेषार्थ-जैनधर्ममें प्रत्येक वस्तुमें एक-एक धर्मके प्रतिपक्षी धर्मकी अपेक्षासे सात-सात भंग माने गये हैं, जो कि इस प्रकार हैं—१ स्यादस्त्येव, २ स्यान्नास्त्येव, ३ स्यादस्ति च नास्त्येव, ४ स्यादवकृतव्यमेव, ५ स्यादस्ति चावकृतव्यं च, ६ स्यान्नास्ति चावकृतव्यं च और ७ स्यादस्ति नास्ति चावकृतव्यं च । इनका स्पष्ट अर्थ यह है कि संसारका

१—सूर्याम्बा ल० । २ प्रयत्ने करिष्ये । ३ त्वदगुणधोनतया । ४ नितरा जाना । ५ उद्देति रूप । ६ सर्वज्ञताम् । ७ सर्वशा । ८ सम्पूर्णः । ९ आप्तरूप निश्चितिम् । १० स्यादस्त्येवेत्यादिना राप्तभंगी योजनीया, कथमिति चेत्; (१) स्यादस्त्येव, (२) स्यान्नास्त्येव, (३) द्वयमपि मिलित्वा स्यादस्तिनास्त्येव, (४) स्यादवकृतव्यमेव, (५) स्यादवकृतव्यपदेन सह स्यादस्ति नास्तीति द्वयं योजनीयम्, कथम् ? स्यादस्त्येवकृतव्यम्, (६) स्यान्नास्त्येवकृतव्यमिति, (७) स्यादस्तिनास्त्येवकृतव्यमिति । ११ सर्वहित ।

विहृष्टाथद्वापजालहद्व्यामुख्यनुदिष्टु । अश्रद्वेषमनासेषु सावैर्हर्यं विविति तिष्ठते ॥ १३७ ॥

रविः पर्योधरोत्संगसुप्रदिमर्विकासिभिः । सूच्यतेऽङ्गजीर्यं वा तद्वदुम्बैवाग्निमन्त्रेभान् ॥ १३८ ॥

प्रत्येक पदार्थ स्वचतुष्टय ( द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव ) की अपेक्षा अस्तित्व रूप ही है, परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तित्व रूप ही है और एक साथ दोनों धर्म नहीं कहे जा सकनेके कारण अवक्तव्य रूप भी है, इस प्रकार प्रत्येक पदार्थमें मुख्यतासे अस्तित्व, नास्तित्व और अवक्तव्य ये तीन धर्म पाये जाते हैं। इन्हीं मुख्य धर्मोंके संयोगसे सात-सात धर्म हो जाते हैं। जैसे 'जीवोऽस्ति' जीव है। यहाँपर जीव और अस्तित्व क्रियामें विशेष्य विशेषण सम्बन्ध है। विशेषण विशेष्यमें ही रहता है इसलिए जीवका अस्तित्व जीवमें ही है दूसरी जगह नहीं है, इसी प्रकार 'जीवो नास्ति'-जीव नहीं है यहाँपर भी जीव और नास्तित्वमें विशेष्य-विशेषण सम्बन्ध है इसलिए उपर कहे हुए नियमसे नास्तित्व जीवमें ही है दूसरी जगह नहीं है। जीवके' इन अस्तित्व और नास्तित्व रूप धर्मोंको एक साथ कह नहीं सकते इसलिए उसमें एक अवक्तव्य नामका धर्म भी है। इन तीनों धर्मोंमें-से जब जीवके केवल अस्तित्व धर्मकी विवक्षा करते हैं तब 'स्याद् अस्त्येव जीवः' ऐसा पहला भंग होता है, जब नास्तित्व धर्मकी विवक्षा करते हैं तब 'नास्त्येव जीवः' ऐसा दूसरा भंग होता है, जब दोनोंकी क्रम-क्रमसे विवक्षा करते हैं तब 'स्यादस्ति च नास्त्येव जीवः' इस प्रकार तीसरा भंग होता है, जब दोनोंकी अक्रम अर्थात् एक साथ विवक्षा करते हैं तब दो विरुद्ध धर्म एक कालमें नहीं कहे जा सकनेके कारण 'स्यादवक्तव्यमेव' ऐसा चौथा भंग होता है, जब अस्तित्व और अवक्तव्य इन दो धर्मोंकी विवक्षा करते हैं तब 'स्यादस्ति चावक्तव्यं च' ऐसा पाँचवाँ भंग होता है, जब नास्तित्व और अवक्तव्य इन दो धर्मोंकी विवक्षा करते हैं तब 'स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च' ऐसा छठा भंग हो जाता है और जब अस्तित्व, नास्तित्व तथा अवक्तव्य इन धर्मोंकी विवक्षा करते हैं तब 'स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यं च' ऐसा सातवाँ भंग हो जाता है। संयोगकी अपेक्षा प्रत्येक पदार्थमें प्रत्येक धर्म सात-सात भंगके रूप रहता है इसलिए उन्हें कहनेके लिए जिनेन्द्र भगवान् ने सप्त-भंगी ( सात भंगोंके समूह ) रूप वाणी-के द्वारा उपदेश दिया है। जिस समय जीवके अस्तित्व धर्मका निरूपण किया जा रहा है उस समय उसके अवशिष्ट धर्मोंका अभाव न समझ लिया जाये इसलिए उसके साथ विवक्षा-सूचक स्याद् शब्दका भी प्रयोग किया जाता है तथा सन्देह दूर करनेके लिए नियमवाचक एव या च आदि निपातोंका भी प्रयोग किया जाता है जिससे सब मिलाकर 'स्यादस्त्येव जीवः' इस वाक्यका अर्थ होता है कि जीव किसी अपेक्षासे है ही। इसी प्रकार अन्य वाक्योंका अर्थ भी समझ लेना चाहिए। जैनधर्म अपनी व्यापक दृष्टिसे पदार्थके भीतर रहनेवाले उसके समस्त धर्मोंका विवक्षानुसार कथन करता है इसलिए वह स्याद्वादरूप कहलाता है। वास्तवमें इस सर्वमुखी दृष्टिके बिना वस्तुका पूर्ण स्वरूप कहा भी तो नहीं जा सकता ॥ १३६ ॥ हे देव, जिनकी बुद्धि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरुद्ध तथा सम्बन्धरहित वचनोंके जालमें फँसकर व्यापुरध हो गयी है ऐसे कुदेवोंमें श्रद्धान् नहीं करने विरोध सर्वज्ञता आपमें विराजमान है। भावार्थ - सर्वज्ञ वही हो सकता है जिसके वचनोंमें कहीं भी विरोध नहीं आता है। संसारके अन्य देवो-देवताओं-के वचनोंमें पूर्वापर विरोध पाया जाता है और इसीसे उनको भ्रान्त बुद्धिका पता चल जाता है इन सब कारणोंको देखते हुए 'वे सर्वज्ञ ये' ऐसा विश्वास नहीं होता परन्तु आपके वचनों अर्थात् उपदेशोंमें कहीं भी विरोध नहीं आता तथा आपने वस्तुके समस्त धर्मोंका वर्णन किया है इससे आपकी बुद्धि-ज्ञान-निर्भ्रान्ति है और इसीलिए आप सर्वज्ञ हैं ॥ १३७ ॥ जिस प्रकार मेघोंके १ प्रमाणभूते निर्णयात् लिष्टतीत्यर्थः । 'स्वेयप्रकाशने इति स्वेयविषये आत्ममेपदे-विकादपदे निर्णता प्रमाण-भूतः पुरुषः स्वयः ।

यथान्धसमसे दूरात्मक्यं ते विस्तृतः शिखी<sup>३</sup> । तथा त्वमपि सुव्यक्तैः सूक्ष्मैरासोऽन्तिमर्हसि<sup>४</sup> ॥ १४५ ॥  
 आह्नामात्यान्तिर्कीर्त्य ते ज्ञानसंप्रभमहोदया । वहिर्विभूतिरेवैषा शास्त्रिनः ज्ञासृता<sup>५</sup> त्वयि ॥ १४६ ॥  
 पराच्यमासनं सैंहं कल्पितं सुरशिलिपिभिः । इवारुक्तुरिलैः भाति तावकं मेहश्वस्त् ॥ १४७ ॥  
 'सुरैरहस्तिष्ठुतमेतत्पे छत्राणां अत्यमूर्जितम् । विजगात्रामध्ये<sup>६</sup> चिह्नं न प्रतीमः कर्थं वयम् ॥ १४८ ॥  
 चामरणि तवामूर्जि वीज्यमानानि चाभरैः । शंसन्त्यनन्यसामान्यमैश्वर्यं भुवनगतिगम् ॥ १४९ ॥  
 परित्पस्वत्सभां देव वर्षन्तयेते सुराम्बुदाः । सुमनोवर्षसुवृगनिधि च्याहूतम्बुपत्रजम् ॥ १४१ ॥  
 सुरदुम्बुमयो मन्द्रं ध्वनस्येते<sup>७</sup> अभोऽङ्गणे । सुरकिंकरहस्ताग्रतादित्यासवज्ञयोत्सवे ॥ १४५ ॥  
 सुरैरासेवितोपाम्लो अवताशोकतापनुसु<sup>८</sup> । प्रायस्वामयमन्वेति<sup>९</sup> तवाशोकमहीरुहः ॥ १४६ ॥  
 त्वद्देहदीपयो दीप्राः प्रसरम्बन्धितः सभाम् । धृतबालासपच्छायास्तन्वाना नयनोत्पत्तयम् ॥ १४७ ॥

बीचमें जिसकी समस्त किरणें छिप गयी हैं ऐसा सूर्य यद्यपि दिखाई नहीं देता तथापि फूले हुए कमलोंसे उसका अस्तित्व सूचित हो जाता है उसी प्रकार आपका प्रत्यक्ष रूप भी दिखाई नहीं देता तथापि आपके श्रेष्ठ बचनोंके बैभवके द्वारा आपके प्रत्यक्ष रूपका अस्तित्व सूचित हो रहा है । भावार्थ – आपके महान् उपदेश ही आपको सर्वज्ञ सिद्ध कर रहे हैं ॥१३८॥ अथवा जिस प्रकार सधन अन्यकारमें यद्यपि मग्न दिखाई नहीं देता तथापि अपने शब्दोंके द्वारा दूर-से ही पहचान लिया जाता है उसी प्रकार आपका आप्तपना यद्यपि प्रकट नहीं दिखाई देता तथापि आप अपने स्पष्ट और सत्यार्थ बचनोंसे आत कहलानेके योग्य हैं ॥१३९॥ अथवा हे देव, जिसका बड़ा भारी अभ्युदय है ऐसी यह आपकी अध्यात्मसम्बन्धी ज्ञानरूपी सम्पत्ति दूर रहे, आपकी यह बाह्य विभूति ही हम लोगोंको आपके हितोपदेशीपनका उपदेश दे रही है । भावार्थ – आपकी बाह्य विभूति ही हमें बतला रही है कि आप मोक्षमार्गरूप हितका उपदेश देनेवाले सच्चे वक्ता और आप्त हैं ॥१४०॥ हे भगवन्, देवरूप कारीगरोंके द्वारा बनाया हुआ और रत्नोंकी किरणोंसे मिला हुआ आपका यह श्रेष्ठ सिंहासन मेरु पर्वतके शिखर-के समान सुशोभित हो रहा है ॥१४१॥ देवोंके द्वारा ऊरकी ओर धारण किया हुआ यह आपका प्रकाशमान छत्रश्रय आपकी तीनों लोकोंकी प्रभुताका चिह्न है ऐसा हम क्यों न विश्वास करें ? भावार्थ – आपके मस्तकके ऊपर आकाशमें जो देवोंने तीन छत्र लगा रखे हैं वे ऐसे मालूम होते हैं मानो आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं यही सूचित कर रहे हों ॥१४२॥ देवोंके द्वारा हुलाये हुए ये चपर तीनों जगत्को उल्लंघन करनेवाले आपके असाधारण ऐश्वर्यको सूचित कर रहे हैं ॥१४३॥ हे देव, ये देवरूपी मेष आपकी सभाके चारों ओर अत्यन्त सुगन्धित तथा भ्रमरोंके समूहको बुलानेवाली कुलोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥१४४॥ हे प्रभो, आपके विजयोत्सवमें देवरूप किकरोंके हाथोंके अग्र भागसे ताढ़ित हुए ये देवोंके दुन्दुभि बाजे आकाश रूप औंगनमें गम्भीर शब्द कर रहे हैं ॥१४५॥ जिसका समीप भाग देवोंके द्वारा सेवित है अर्थात् जिसके समीप देव लोग बैठे हुए हैं और जो जनसमूहके शोक तथा सन्तापको दूर करनेवाला है ऐसा यह अशोकवृक्ष प्रायः आपका ही अनुकरण कर रहा है क्योंकि आपका समीप भाग भी देवोंके द्वारा सेवित है और आप भी जनसमूहके शोक और सन्तापको दूर करनेवाले हैं ॥१४६॥ जिसने प्रातःकालके सूर्यकी कान्ति धारण की है और जो नेत्रोंका उत्सव बड़ा रही है ऐसी यह आपके शरीरकी देवीप्यमान कान्ति सभाके चारों ओर फैल रही है । भावार्थ –

१ वहि । २ श्रुतेयोग्यो भवसि । ३ शिक्षकत्वम् । ४ रत्नकान्तिमिश्रितम् । ५ त्वत्संबन्धिः । ६ देवीरुद्रुतम् ।  
७ वैलोकयप्रभुत्वे । ८ कथं त विश्वासं कुर्मः । ९ नदन्तयेते ल० । १० संतापहारि । ११ अनुकरोति ।

दिव्यमात्रा तवारेवमाषा। भेदानुकाहिगी । निरहशनि मतोऽचान्तमताऽयासपि॑ देविनाम् ॥ १४५ ॥  
 प्रतिदृष्टमद्ये भूतिरियमष्टतर्थी प्रभो । महिमानं तवाच्छै विश्वस्त्रै विष्वपातिगम् ॥ १४६ ॥  
 त्रिमेघलस्य पीठस्य मेरोरिव गत्तियसः । चूलिकेव विमात्युच्चैः सेष्या गन्धकुर्ती तत्र ॥ १४७ ॥  
 बहुद्वाहणो मुर्मुक्ष्वाणां स्तोत्रप्रहिरवैर्मुहुः । स्तोत्रकामेष्व भक्ष्या एवा सैषा भास्यतिसेमदान् ॥ १४८ ॥  
 पराधर्मरत्ननिमीणमेनामत्यन्तमात्मवराम् । त्वैभूत्वासौभाग्यानां नाकैनाजै भूत्रस्त्वंभूत् ॥ १४९ ॥  
 संशिखामणयोऽभीषां नक्षाणां भान्ति॒ भौलयः । सदीपा इव रक्षार्थी॑ स्थापितास्तत्परद्वितीय॑ ॥ १५० ॥  
 नक्षाणां सुरकोटीनां अकासत्यधिमहतकम् । ग्रसादांशा इवालम्ना युग्मत्पादनवांशतः ॥ १५१ ॥  
 नखदर्पणसंकास्त्विष्वास्थ्यमस्योषिताम् । दृधत्यमूर्ति॑ धक्षाणि त्वद्वृपाङ्ग्रजम्बुजश्रियम् ॥ १५२ ॥  
 वक्त्रेष्वमरक्षारीणां संवत्से कुहुमश्रियम् । युग्मत्पादलक्षणाया प्रसरमती जयाऽक्षणा ॥ १५३ ॥  
 गणरयुषितै॑ भूमागमस्यवर्ती त्रिमेघलः । पीठद्विरथमाभाति॑ तवाचिप्कृतमङ्गलः ॥ १५४ ॥  
 प्रथमोऽहश परिक्षेपो धर्मचक्रैरलंकृतः । द्वितीयोऽपि॑ तवऽसीमिदिक्षवष्टासु॑ महाध्वजैः ॥ १५५ ॥  
 श्रीमण्डपयनिवेशस्ते योजनप्रमितोऽप्यवस्था॑ । त्रिलगजमताऽजस्तप्रावेशोपप्रहश्मः॑ ॥ १५६ ॥  
 धूलीसालपरिक्षेपो भानस्तमभाः॑ सर्वासि॑ च । खातिका॑ सलिलार्णा॑ वलीषनपरिच्छदः ॥ १५७ ॥

आपके भामण्डलकी प्रभा सभाके चारों ओर फैल रही है ॥१४७॥ समस्त भाषाओंके भेदोंका अनुकरण करनेवाली अर्थात् समस्त भाषाओं रूप परिणत होनेवाली आपकी यह दिव्य ध्वनि जो बचन नहीं बोल सकते ऐसे पशु पक्षी आदि तियनोंके भी हृदयके अन्धकारको दूर कर देती है ॥१४८॥ हे प्रभो, आपकी यह प्रातिहार्यरूप आठ प्रकारकी विभूति आपकी लोकोत्तर महिमाको स्पष्ट रूपसे प्रकट कर रही है ॥१४९॥ मेह वर्वतके समान ऊने तीन कटनीदार पीठपर सबके द्वारा मेवन करने थोग्य आपकी यह ऊची गन्धकुटी मेहकी चूलिकाके समान सुशोभित हो रही है ॥१५०॥ वन्दना करनेवाले उत्तम मुनियोंकी स्तोत्रोंकी प्रतिध्वनिसे यह गन्धकुटी ऐसी जान पड़ती है मानो भक्तिवश हर्षसे आपकी सुन्ति ही करना चाहती हो ॥१५१॥ हे प्रभो, जो श्रेष्ठ रत्नोंसे बनी हुई और अतिशय देदीप्यमान इस गन्धकुटीमें विराजमान हैं ऐसे आपकी, स्वर्गमें रहनेवाले देव नम्र होकर सेवा कर रहे हैं ॥१५२॥ हे देव, जो अग्रभागमें लगे हुए मणियोंसे सहित हैं ऐसे इन नमस्कार करते हुए देवोंके मुकुट ऐसे जान पड़ते हैं मानो आपके चरणोंके समीप दोपक्षसहित रत्नोंके अर्ध ही स्थापित किये गये हों ॥१५३॥ नमस्कार करते हुए करोड़ों देवोंके मस्तकोंपर जो आपके चरणोंके नखोंकी किरणें पड़ रही हैं वे ऐसी सुशोभित हो रही हैं मानो उनपर प्रसन्नताके अंश ही लग रहे हों ॥१५४॥ आपके नखरूपी दर्शनमें जिनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है ऐसे ये देवांगनाओंके मुख आपके चरणोंके समीपमें कपलोंकी शोभा धारण कर रहे हैं ॥१५५॥ जवाके फूलके समान लाल वर्ण जो यह आपके नंदोंके तलबोंको कान्ति कील रही है वह देवांगनाओंके मुखोंपर कुकुमकी शोभा धारण कर रही है ॥१५६॥ जो बारह सभाओंसे भरी हुई पृथिवीके मध्यभागमें बर्तमान है और जिसपर अनेक मंगल द्विव्य प्रकट हो रहे हैं ऐसा यह तीन कटनीदार आपका पीठरूपी पर्वत बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा है ॥१५७॥ इस पीठकी पहली परिधि, धर्मचक्रोंसे अलंकृत है और दूसरी परिधि भी आठों दिशाओंमें फहराती हुई आपकी इन बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे सुशोभित है ॥१५८॥ यद्यपि आपके श्रीमण्डपकी रचना एक ही योजन लम्बी-चौड़ी है तथापि वह तीनों जगत्के जनसमूहके निरन्तर प्रवेश कराते रहने रूप उपकारमें समर्थ है ॥१५९॥ हे प्रभो, यह धूलीसालकी परिवि, ये मानस्तम्भ, सरोवर, स्वच्छ जलसे भरी हुई परिखा, लता-

साक्षितयमुकुर्वनुगोपुरमणिष्ठतम् । मङ्गलद्रव्यसंदोहो निधयस्तोरणानि च ॥ १६१ ॥  
 ताद्यशालाक्षये दीप्ते लप्तवृष्टीक्षेत्रम् । वनराजिपरिक्षेपश्चैत्यत्रुमपरिष्कृतः ॥ १६२ ॥  
 वनवेदीद्वयं प्रोक्षेष्वजमालांततामनिः । कल्पवृमध्यनामंग्रामं स्तूपहम्यविलीभ्यपि ॥ १६३ ॥  
 सदोऽवनिैरियं नेव नमुरासुरपावनी । त्रिजगन्त्वारसंदोह हृष्टेकथा निवेशितः ॥ १६४ ॥  
 अहिविभूतिरित्युचैरात्रिकृतमहोदयाः । लक्ष्मीमात्मानिमिको व्यक्तं व्यनक्ति जिव लावकीम् ॥ १६५ ॥  
 सभापरिच्छदः सोऽत्र सुरसत्र चिनिर्मितः । वैराग्यातिशयं नाथ नोपहन्त्यप्रतकितः ॥ १६६ ॥  
 हृष्टमूलमाहाम्याच्छिजगद्गुरुभो भवान् । १ स्तुत्योपतिष्ठमार्वं माँ पुर्वातात्मशासनः ॥ १६७ ॥  
 अलं स्तुतिप्रपञ्चेन तवाच्छिन्ध्यतमा गुणाः । जयेशान नमस्तुभ्यमिति संक्षेपतः स्तुते ॥ १६८ ॥  
 जयेश जय निर्दधकमेन्द्रवनजयाजर । जय लोकगुरो सार्वं जयताजय जिवर्व ॥ १६९ ॥  
 जय लक्ष्मीपते जिणो जयानम्तरगुणोज्जबल । जय विश्ववगाहन्त्यो जय विश्वजगद्वित ॥ १७० ॥  
 जयाखिलजगद्विदिन् जयाखिलसुखोदय । जयाखिलजगज्येष्ठ जयाखिलजगद्गुरो ॥ १७१ ॥  
 जय निर्जितमोहारे जय तर्जितमन्मथ । जय जन्मजरात्मविजयिन् विजितान्तक ॥ १७२ ॥

**वनोंका समूह** – ऊँचे-ऊँचे चार गोपुर दरवाजोंसे मुशोभित तीन कोट, संगल द्रव्योंका समूह, निधियाँ, तोरण – दो-दो नाट्यशालाएँ, दो-दो सुन्दर घूप घट, चैत्यवृक्षोंसे सुशोभित वन पंक्तियोंकी परिधि – दो वनवेदी, ऊँची-ऊँची वेळाओंकी पंक्तिसे भूमि कुर्ही दृशिकी, लक्ष्मीओंके वनका विस्तार, स्तूप और मकानोंकी पंक्ति – इस प्रकार मनुष्य देव और वरणेन्द्रोंको पवित्र करनेवाली आपकी यह सभाभूमि ऐसी जान पड़ती है भानो तीनों जगत्की अच्छी-अच्छी वस्तुओंका समूह ही एक जगह इकट्ठा किया गया हो ॥ १६०-१६४ ॥ हे जिनेन्द्र, जिससे आपका महान् अभ्युदय या ऐश्वर्य प्रकट हो रहा है ऐसी यह आपकी अतिशय उत्कृष्ट बाह्य विभूति आपकी अन्तरंग लक्ष्मीको स्पष्ट रूपसे प्रकट कर रही है ॥ १६५ ॥ हे नाथ, जिसके विषयमें कोई तर्क-वितर्क नहीं कर सकता ऐसी यह देवोंके द्वारा रची हुई आपके समव-सरणकी विभूति आपके वैराग्यके अतिशयको नष्ट नहीं कर सकती है । भावार्थ – समवसरण सभाको अनुपम विभूति देखकर आपके हृदयमें कुछ भी रागभाव उत्पन्न नहीं होता है ॥ १६६ ॥ इस प्रकार जिनकी अद्भुत महिमा है, जो तीनों लोकोंके स्वामी हैं, और जिनका शासन अतिशय पवित्र है ऐसे आप स्तुतिके द्वारा उपस्थान ( पूजा ) करनेवाले भुझे पवित्र कीजिए ॥ १६७ ॥ हे भगवन्, आपकी स्तुतिका प्रपञ्च करना व्यर्थ है क्योंकि आपके गुण अत्यन्त अचिन्त्य हैं इसलिए मैं संक्षेपसे इतनी ही स्तुति करता हूँ कि हे ईशान, आपकी जय हो और आपको नमस्कार हो ॥ १६८ ॥ हे ईश, आपकी जय हो, हे कर्मरूप ईशनको जलानेवाले, आपकी जय हो, हे जरारहित, आपकी जय हो, हे लोकोंके गुरु, आपकी जय हो, हे सबका हित करनेवाले, आपकी जय हो, और हे जयशील, आपकी जय हो ॥ १६९ ॥ हे अनन्तचतुष्प्रयरूप लक्ष्मीके स्वामी जयनशील, आपकी जय हो । हे अनन्तमुणोंसे उज्जबल, आपकी जय हो । हे समस्त जगत्-के बन्धु, आपकी जय हो । हे समस्त जगत्का हित करनेवाले, आपकी जय हो ॥ १७० ॥ हे समस्त जगत्को जाननेवाले, आपकी जय हो । हे समस्त सुखोंको प्राप्त करनेवाले, आपकी जय हो । हे समस्त जगत्में श्रेष्ठ, आपकी जय हो । हे समस्त जगत्के गुरु, आपकी जय हो ॥ १७१ ॥ हे मोहरूपी शत्रुको जीतनेवाले, आपकी जय हो । हे कामदेवको भर्त्सना करने

१ अलंकृतः 'परिष्कारो विभूषणम्' इत्यमिथानात् । २ नवाभोगः द०, इ०, । ३ समवसरणमूमिः । ४ नाशयति । ५ कहातीतः ऊहितुमशब्द इत्यर्थः । ६ स्तोत्रेणाच्चयनम् । ७ पवित्रं कुरु । ८ जयशील ।

जय निर्मदि निर्माणि जय निर्माहि निर्मम । जय निर्मलि निर्द्वन्द्व जय निष्कलौ<sup>१</sup> पुष्कल ॥ १७३ ॥  
 जय प्रबुद्ध सन्मार्ग जय तुमार्गशेषम् । जय कर्मारिममाविद्वै मंचक जयोद्धरै<sup>२</sup> ॥ १७४ ॥  
 जयाध्वरपते यज्ञवन् जय पूज्य महोदय । जयोद्धर जयाचिन्त्यै सखर्मरथसारथे ॥ १७५ ॥  
 जय निस्तीर्णसंसारपारवासगुणाकर । जय निःरोषनिर्दीतविद्यारहाकर प्रभो ॥ १७६ ॥  
 नमस्ते परमानन्तसुखरूपाय तायिने<sup>३</sup> । नमस्ते परमानन्दमयाय परमात्मने ॥ १७७ ॥  
 नमस्ते भुवनोभासिशानभाभासिने<sup>४</sup> । नमस्ते नयनानन्दिपरमादरिकरिष्ये ॥ १७८ ॥  
 नमस्ते मस्तकम्ब्यस्तस्वाहस्ताऽलिकुष्टमैः । स्तुताय त्रिदशाधीशैः स्वर्गाकरणोत्सवे ॥ १७९ ॥  
 नमस्ते प्रचलम्भौलिघटिताङ्गलिवन्धनैः । नुतायै भेदजीडाभस्नाताय सुरसत्तमैः ॥ १८० ॥  
 नमस्ते मुकुटोपाग्रलभहस्तपुटोदर्दैः । लोकान्तिकैरधीष्टायै परिनिष्कर्मणोत्सवे ॥ १८१ ॥  
 नमस्ते शक्तिरीटाप्रतवानावास्त्वुभिभिः । कराम्बमुकुटैः प्राप्तकेवलेज्याय नाकिनाम् ॥ १८२ ॥  
 नमस्ते पारनिर्धारिकल्याणेऽपि प्रवर्त्यति<sup>५</sup> । पूजनीयाय वद्धीन्द्रैञ्जलम्मुकुटकोटिभिः ॥ १८३ ॥

बाले, आपकी जय हो । हे जन्मजरारूपी रोगको जीतनेवाले, आपकी जय हो । हे मृत्युको जीतनेवाले, आपकी जय हो ॥ १७२ ॥ हे मदरहित, मायारहित, आपकी जय हो । हे मोहरहित, ममतारहित, आपकी जय हो । हे निर्मल और निर्द्वन्द्व, आपकी जय हो । हे शरीररहित, और पूर्ण ज्ञानसहित, आपकी जय हो ॥ १७३ ॥ हे समीचीन मार्गको जाननेवाले, आपकी जय हो । हे मिथ्या मार्गको रोकनेवाले, आपकी जय हो । हे कर्मरूपी शत्रुओंके मर्मको वेधन करनेवाले, आपकी जय हो ॥ १७४ ॥ हे अर्मचक्रके द्वारा चित्तस्त्रप्तिकरणमें उत्कृष्ट, आपकी जय हो ॥ १७५ ॥ हे पश्चके अविपत्ति, आपकी जय हो । हे कर्मरूप ईधनको ध्यानरूप अग्निमें होम करनेवाले, आपकी जय हो । हे पूज्य तथा महान् वैभवको धारण करनेवाले, आपकी जय हो । हे उत्कृष्ट दयारूप चित्तसे सहित तथा हे समीचीन धर्मरूपी रथके सारथि, आपकी जय हो ॥ १७६ ॥ हे संसाररूपी समुद्रको पार करनेवाले, हे गुणोंकी खानि, आपकी जय हो । हे समस्त विद्यारूपी समुद्रका पान करनेवाले, हे प्रभो, आपकी जय हो ॥ १७७ ॥ आप उत्कृष्ट अनन्त सुखरूप हैं तथा सबकी रक्षा करनेवाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो । आप परम अनन्दमय और परमात्मा हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १७८ ॥ आप समस्त लोकको प्रकाशित करनेवाले ज्ञानकी दीप्तिके समूहसे देवीप्यमान हो रहे हैं इसलिए आपको नमस्कार हो । आपके परमादारिक शरीरकी कान्ति नेत्रोंको आनन्द देनेवाली है इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १७९ ॥ हे देव, स्वर्गवितरण अर्थात् गर्भकल्याणके उत्सवके समय इन्द्रोंने अपने हाथोंकी अंजलिरूपी बिना खिले कमल अपने मस्तकपर रखकर आपकी स्तुति की थी इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १८० ॥ अपने नम्र हुए मस्तकपर दोनों हाथ जोड़कर रखनेवाले उत्तमउत्तम देवोंने जिनकी स्तुति की है तथा सुमेरु पर्वतके अग्रभागपर जिनका जन्माभिषेक किया गया है ऐसे आपके लिए नमस्कार है ॥ १८१ ॥ दीक्षाकल्याणके उत्सवके समय अपने मुकुटके समीप ही हाथ जोड़कर लगा रखनेवाले लोकान्तिक देवोंने जिनका अधिष्ठान अर्थात् स्तुति की है ऐसे आपके लिए नमस्कार हो ॥ १८२ ॥ अपने मुकुटके अग्रभागमें लगे हुए रत्नोंका चुम्बन करनेवाले देवोंके हाथरूपी मुकुलित कमलोंके द्वारा जिनके केवलज्ञानकी पूजा की गयी है ऐसे आपके लिए नमस्कार हो ॥ १८३ ॥ हे भगवन्, जब आपका मोक्षकल्याणक होगा

१ शरीररूपनरहित । २ मर्म विद्यति ताड्यतीति मर्मादित् तस्य संबुद्धिः । ‘नहिवृतिवृष्टिविद्यविद्यसहितनिहितवृष्टी कारकस्पेति’ दीर्घः । ३ उद्भट । ४ दयाचित्त द०, ल०, इ०, थ०, प०, स० । ५ पालकाय । ६ ज्ञानकिरणसमूहप्रकाशिने । ७ स्तुताय । ८ भ्रमदृष्टिः, समर्थः वा । ९ अधिकमिष्टाय सत्कारानुमतायेत्यर्थः । १० भाविनि ।

नमस्ते प्रावकल्याणमहेऽपाथ महोजसे । प्राज्ञयत्रैक्यराज्ञाय ज्यायसे ज्यायसामपि ॥ १८३ ॥  
 नमस्ते नहनार्काम्बुद्चूलारत्नाचित्तद्वयं । नमस्ते हुर्जयारालिनिर्जयोपार्जिनश्चित्ते ॥ १८४ ॥  
 नमोऽस्तु तुभ्यमिद्द्वये सपयोभवते पराम् । रहोरजोऽरिवाताच्चे प्रासतज्जामरुद्यये<sup>१</sup> ॥ १८५ ॥  
 जितान्तक नमस्तुभ्यं जितमोह नमोऽस्तु ते । जितानङ्ग नमस्ते स्याद् विरागाय स्वयंभुवे ॥ १८६ ॥  
 त्वा नमस्यन्<sup>२</sup> जननेष्वैनम्यते सुकृती गुमान् । गो जयेजितजेत<sup>३</sup> व्यस्तचज्जोद्दोषणात्कृती ॥ १८७ ॥  
 त्वस्तुते<sup>४</sup> पूतवागस्मि त्वंसुते<sup>५</sup> पूतमानसः । त्वस्ते<sup>६</sup> पूतदेहोऽस्मि धन्योऽस्यथ त्वदीक्षणात् ॥ १८८ ॥  
 अहमध कृताधोऽस्मि इन्माय सकृदं लक्ष्मि सुनिर्देलैऽद्योऽमेऽद्युम्भुद्यस्तक्षणोऽद्य मेऽद्युम्भुद्य ॥  
 त्वसीर्थसरसि स्वध्ये पुण्यतोवसुसंभृते । सुस्तातोऽहं चिरादय पूतोऽस्मि सुखनिर्दृतः ॥ १८९ ॥  
 त्वस्ताद्वन्यमाजालस्तिरस्तकवमैः । अधिमस्तकमालवर्नरभिविक्त इवास्यहम् ॥ १९० ॥  
 एकतः सार्वभौमश्रीस्तिमप्रलिशासना । एकतश्च भवत्पादसंबालोक्तपावनी ॥ १९१ ॥

उस समय भी देवीपथमान मुकुटोंको धारण करनेवाले वल्लिकुमार देवोंके इन्द्र आपकी पूजा करेंगे इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १८३ ॥ हे नाथ, आपको गर्भ आदि कल्याणकोंके समय बड़ी भारी पूजा प्राप्त हुई है, आप महान् तेजके धारक हैं, आपको तीन लोकका उत्कृष्ट राज्य प्राप्त हुआ है और आप बड़ोंमें भी बड़े अथवा श्रेष्ठोंमें भी श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १८४ ॥ नमस्कार करते हुए स्वर्गके इन्द्रोंके मुकुटमें लगे हुए मणियोंसे जिनके चरणोंकी पूजा की गयी है ऐसे आपके लिए नमस्कार हो और जिन्होंने कर्मरूपी दुर्जेय शत्रुओंको जीतकर अनन्तचतुष्प्रयरूपी उत्तम लक्ष्मी प्राप्त की है ऐसे आपके लिए नमस्कार हो ॥ १८५ ॥ हे उत्कृष्ट कृदियोंको धारण करनेवाले, आप उत्कृष्ट पूजाके घोग्य हैं तथा रहस् अर्थात् अन्तराय रज अर्थात् ज्ञानावरण दर्शनावरण और अरि अर्थात् मोहनीय कर्मके नष्ट करनेसे आपने 'अरिहन्त' ऐसा सार्थक नाम प्राप्त किया है इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १८६ ॥ हे मृत्युको जीतनेवाले, आपको नमस्कार हो । हे मोहको जीतनेवाले, आपको नमस्कार हो । और हे कामको जीतनेवाले, आप वीतराग तथा स्वयम्भू हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १८७ ॥ हे नाथ, जो आपको नमस्कार करता है वह पुण्यात्मा पुरुष अन्य अनेक नम्र पुरुषोंके द्वारा नमस्कृत होता है और जो आपके विजयकी घोषणा करता है वह कुशल पुरुष जीतने घोग्य समस्त कर्मरूप शत्रुओंको जीतकर गो अर्थात् पृथिवी या वाणीको जीतता है ॥ १८८ ॥ हे देव, आज आपकी स्तुति करनेसे मेरे वचन पवित्र हो गये हैं, आपका स्मरण करनेसे मेरा मन पवित्र हो गया है, आपको नमस्कार करनेसे मेरा शरीर पवित्र हो गया है और आपके दर्शन करनेसे मैं धन्य हो गया हूँ ॥ १८९ ॥ हे भगवन्, आज मैं कृतार्थ हो गया हूँ, आज मेरा जन्म सफल हो गया है, आज मेरे नेत्र सन्तुष्ट हो गये हैं और आज मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया है ॥ १९० ॥ हे देव, स्वच्छ और पुण्यरूप जलसे खूब भरे हुए आपके तीर्थरूपी सरोवरमें मैंने चिरकालसे अच्छी तरह स्नान किया है इसीलिए मैं आज पवित्र तथा सुखसे सन्तुष्ट हो रहा हूँ ॥ १९१ ॥ हे प्रभो, जिसने समस्त पाप नष्ट कर दिये हैं ऐसा जो यह आपके चरणोंके नखोंकी कान्तिका समूहरूप जल मेरे मस्तकपर लग रहा है उससे मैं ऐसा मालूम होता हूँ मानो मेरा अभिवेक ही किया गया हो ॥ १९२ ॥ हे विभो, एक ओर तो मुझे दूसरेके शासनसे रहित यह चक्रवर्तीकी विभूति प्राप्त हुई है और एक ओर

<sup>१</sup> पूजाया: घोग्याय । <sup>२</sup> अन्तरायज्ञानावरणमोहनीयघातात् । <sup>३</sup> अहंशिति नामप्रसिद्धाय । <sup>४</sup> भवतु ।  
 ५ नमस्तुवन् । <sup>६</sup> भोजितजेतद्यप्तम् । <sup>७</sup> अन्यन्तसुखवत्यो । <sup>८</sup> सुखतृप्तः ।

यहि आन्तिविमुदेन महेनो<sup>३</sup> मया अजितम् । तत्त्वसंदर्शनालीन<sup>४</sup> तमो नैशं<sup>५</sup> रवेयथा ॥ १९४ ॥  
तथा परस्मृतिमार्दण पुमानेति पवित्रताम् । किमुत तदगुणस्तुत्या भक्त्यैवं सुप्रयुक्त्या ॥ १९५ ॥  
भगवन्तवद् गुणस्तोत्राद् यन्मया पुण्यमाजितम्<sup>६</sup> । तेनास्तु त्वयदाम्नोजे एता भक्तिः सदापि मे ॥ १९६ ॥

बसन्ततिलकावृतम्

इथं चराचरगुरुं परमादिदेवं सुत्वाऽधिराट् धरणिषः सममिद्विधातः ।  
आनन्दवाप्यलवसिक्तुरुः प्रदेशो भवत्या ननाम करकुड्मललम्भौलिः ॥ १९७ ॥  
अत्था पुराणपुरुषाच्च पुराणधर्मं कर्मारिक्तकजयलक्ष्मिशुद्धिधात् ।  
संघीतिमाप परमां भरताधिराजः प्रायो धृतिः कृतधियो रवहितप्रदृत्यौ ॥ १९८ ॥  
आमृत्युच्च स्वगुरुमादिगुरुं निर्धीशो ज्यालोलभौलितटतादितपादीठः ।  
भूयोऽनुगम्य च मुनीन् प्रणतेन मूर्खा स्वाधासभूमिमभिगन्तुमना वभूव ॥ १९९ ॥  
भक्त्यादिता सजमिवाधिपदं जिनस्य इवां दृष्टिमन्वितलस्तुमनोविकासाम्<sup>७</sup> ।  
दोषास्थैर्यैव<sup>८</sup> च पुर्विनिवृत्य कुच्छात् चक्राधिषो जिनसमाभवात्प्रतस्ये ॥ २०० ॥

समस्त लोकको पवित्र करनेवाली आपके चरणोंकी सेवा प्राप्त हुई है ॥ १९३ ॥ हे भगवन्, दिशाभ्रम होनेसे विमूढ होकर अथवा दिग्बिजयके लिए अनेक दिशाओंमें भ्रमण करनेके लिए मुग्ध होकर मैंने जो कुछ पाप उपार्जन किया था वह आपके दर्शन भावसे उस प्रकार विलीन हो गया है । जिस प्रकार कि मर्यादान्तर्मुखी दर्शनसे रुद्धिला अन्धकार विलीन हो जाता है ॥ १९४ ॥ हे देव, आपके चरणोंके स्मरणमात्रसे ही जब मनुष्य पवित्रताको प्राप्त हो जाता है तब फिर इस प्रकार भक्तिसे की हुई आपके गुणोंकी स्तुतिसे क्यों नहीं पवित्रताको प्राप्त होगा ? अर्थात् अवश्य ही होगा ॥ १९५ ॥ हे भगवन्, आपके गुणोंकी स्तुति करनेसे जो मैंने पुण्य उपार्जन किया है उससे यही चाहता हूँ कि आपके चरणकमलोंमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे ॥ १९६ ॥ इस प्रकार चर अचर जीवोंके गुरु सर्वोल्कृष्ट भगवान् वृषभदेवको नमस्कार कर जिसने आनन्द-के ऊसुओंकी बूँदोंसे सामनेका प्रदेश सीच दिया है, जिसका ज्ञान प्रकाशमान हो रहा है, और जिसने दोनों हाथ जोड़कर अपने मस्तकसे लगा रखे हैं ऐसे चक्रवर्ती भरतने भक्तिपूर्वक भगवान्-को नमस्कार किया ॥ १९७ ॥ कर्मरूपी शत्रुओंके समूहको जीतनेसे जिन्हें विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ है ऐसे पुराण पुरुष भगवान् वृषभदेवसे पुरातत धर्मका स्वरूप सुनकर भरताधिपति महाराज भरत बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषोंको ग्रायः अपना हित करनेमें ही सन्तोष होता है ॥ १९८ ॥ तदनन्तर अपने चंचल मुकुटके किनारेसे जिन्होंने भगवान्-के पादपीठका स्पर्श किया है ऐसे निधियोंके स्वामी भरत महाराज अपने पिता आदिनाथ भगवान्-से पूछकर तथा वहाँ विराजमान अन्य मुनियोंको नम्र हुए मस्तकसे नमस्कार कर अपनी निवासभूमि अयोध्याको जानेके लिए तत्पर हुए ॥ १९९ ॥ चक्राधिपति भरतने जिसमें अनुक्रमसे खिले हुए सुन्दर फूल गुंधे हुए हैं और जो श्री जिनेन्द्रदेवके चरणोंमें भक्तिपूर्वक अर्पित की गयी है ऐसी भालाके समान, सुन्दर मनकी प्रसन्नतासे युक्त अपनी दृष्टिको शेषाक्षत समझ बड़ी कठिनाईसे हटाकर भगवान्-के समाभवन अर्थात् समवसरणसे प्रस्थान किया ॥ २०० ॥

१ दिग्बिजयभ्रमणमूढेन । २ महत्यापम् । ३ नष्टम् । ४ आदित्यस्य । ५ —सजितम् ल० । ६ शोभनमनो-विकासाम्, सुपुण्यविकासां च । ७ सिद्धशेषास्थया ।

आलोकयन् जिनसभावनि भूतिमिहां चित्कारितेभणद्युगो युगदीर्घवाहुः ।  
 युवीश्वरैरनुगतः प्रणलोकमाङ्गैः प्रथासृष्टवसदनं मनुवंशकेतुः ॥२०१॥  
 पुण्योदयाजिधिपलिविजिताजिलाशस्तजिर्जितौ<sup>१</sup> गमितष्ठिसमाँसहनः ।  
 श्रीरामाभिवन्न जिनमाप परं प्रमोदं<sup>२</sup> तस्पुण्यसंप्रहविधौ सुधियो यसद्वम्<sup>३</sup> ॥२०२॥

इत्याख्ये भगवजिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे  
 भरतराजकैलासभिगमनवर्णनं नाम श्रवस्त्रशुतम् पर्व ॥२०३॥

भगवजिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे

भगवान् के समवसरणकी प्रकाशमाल विभूतिको देखनेसे जिनके दोनों नेत्र खुल रहे हैं, जिनकी भुजाएँ युग ( जुबारी ) के समान लम्बी हैं, मस्तक झुकाये हुए अनेक राजा लोग जिनके पीछे-पीछे चल रहे हैं और जो कुलकरीके बंशकी पताकाके समान जान पड़ते हैं ऐसे भरत महाराज अपने धरकी और लौटे ॥२०१॥ चूँकि पुण्यके उदयसे ही चक्रवर्तीने समस्त दिशाएँ जीतीं, तथा उनके जीतनेमें साठ हजार वर्ष लगाये और फिर श्रीतिपूर्वक जिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर उठकृष्ट आनन्द प्राप्त किया । इसलिए हे बुद्धिमान् जन, पुण्यके संग्रह करनेमें प्रयत्न करो ॥२०२॥

इस प्रकार आर्थ नामसे प्रसिद्ध भगवजिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिष्ठिलक्षण  
 महापुराणसंग्रहके आषानुवादमें भरतराजका कैलास पर्वतपर  
 जानेका वर्णन करनेवाला तैतोसवौ पर्व समाप्त हुआ ।

१ निखिलदिम्ये । २ संवत्सर । ३ तस्मात् कारणात् । ४ प्रथमं कुरुच्चम् ।

## चतुर्सिंशतम् पर्व

अ शब्दस्य<sup>१</sup> कैलासाद्वीन्द्रादिवे<sup>२</sup> तेजराद् । अक्षी प्रथाणमकरोद् विनीतमिमुनं कुर्ति ॥१॥  
 मैन्यैरनुगती रंजे<sup>३</sup> प्रयोध्याकी निजालयम् । गङ्गावे<sup>४</sup> हृष्ट दुर्बाहिः सरिदोषंरपाम्पतिः ॥२॥  
 ततः कतिपैरेव प्रयोध्याशक्तिणो वलम् । अयोध्यां प्राप्यदाशवतोरणो चित्रकेतनाम् ॥३॥  
 अन्दनद्वयंनिक्तसुमंसुष्टु<sup>५</sup>महीतला । पुरी स्नातानुलिसेव सा रंजे पश्युरागेष ॥४॥  
 नामिद्वैर्निविष्ट्य प्रवेशसमये प्रभोः<sup>६</sup> । चक्रमस्तारि चक्रं च नाम्नेस्तु पुरगोपुरम् ॥५॥  
 सा पुरी गोपुरोपान्तस्थितचक्रांशुरजिता । इतमंध्यानपेवासीत् कुदुमापिभरच्छविः ॥६॥  
 सम्यं भरतराजोऽर्थं धौरेयशक्तिणामिति । इतदिष्ट्यवे<sup>७</sup> सा जडे उल्लक्षका पुरः<sup>८</sup> पुरी ॥७॥  
 ततः कतिपैर्य<sup>९</sup> देवाशक्तिरक्षमिरक्षिणः । हिथसमेकपर्व<sup>१०</sup> चक्रं वीक्ष्य विश्वमयमायुः ॥८॥  
 सुरा जातरुपः केचित्किं किमिष्युचरद्वगिरः । अलातचक्रत्वे<sup>११</sup> केसुः करवालापितैः करैः ॥९॥  
 किमस्वरमणेविष्वमस्वराम्परिष्वते । प्रतिसूर्यः किमुक्तु इत्यस्ये<sup>१२</sup> सुसुहुर्दुःहः ॥१०॥

अथानन्तर – सुमेह पर्वतसे इन्द्रकी तरह कैलास पर्वतसे उतरकर उस बुद्धिमान् चक्रवर्ती-  
 ने अयोध्याकी ओर प्रस्थान किया ॥१॥ सेनाके साथ-साथ आगे घरकी ओर प्रस्थान करता  
 हुआ चक्रवर्ती ऐसा सुशोभित होता था मानो नदियोंके समूहके साथ किसीसे न रुकनेवाला  
 गंगाका प्रवाह समुद्रकी ओर जा रहा हो ॥२॥ तदनन्तर कितने ही मुकाम तय कर चक्रवर्ती-  
 की वह सेना जिसमें तोरण बैधे हुए हैं और अनेक ध्वजाएं फहरा रही हैं ऐसी अयोध्या नगरी-  
 के समीप जा पहुँची ॥३॥ जिसकी बुहारकर साफ की हुई पृथिवी विसे हुए गीले चत्वन्तसे  
 सीधी गयी है ऐसी वह अयोध्यानगरी उस समय इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो उसने  
 पतिके आनेपर स्नान कर चत्वनका लेप ही किया हो ॥४॥ महाराज भरत नगरीके समीप ही  
 ठहरे हुए थे वहांसे नगरीमें प्रवेश करते समय जिसने समस्त शत्रुओंके समूहको नष्ट कर दिया  
 है ऐसा उनका चक्ररत्न नगरके गोपुरद्वारको उल्लंघन कर आगे नहीं जा सका – बाहर ही  
 हक गया ॥५॥ गोपुरके समीप रुके हुए चक्रकी किरणोंसे अनुरक्त होनेके कारण जिसकी  
 कान्ति कुंकुमके समान कुछ-कुछ पीली हो रही है ऐसी वह नगरी उस समय इस प्रकार जान  
 पड़ती थी मानो उसने सन्ध्याकी लालिमा ही धारण की हो ॥६॥ जिसके आगे चक्र-  
 रत्न देवीप्यमान हो रहा है ऐसी वह नगरी उस समय ऐसी जान पड़ती थी मानो  
 यह भरतराज सचमुच ही सब चक्रवर्तीमें मुख्य है, अपनी इस बातकी प्रामाणिकता  
 सिद्ध करनेके लिए उसने तप्त अयोगोलक आदिको ही धारण किया हो ॥७॥ तदनन्तर  
 चक्ररत्नकी रक्षा करनेवाले कितने ही देव चक्रको एक स्थानपर खड़ा हुआ देखकर  
 आद्वचर्यको प्राप्त हुए ॥८॥ जिन्हें कोष उत्पन्न हुआ है ऐसे कितने ही देव, क्या है ?  
 क्या है ? इस प्रकार चिल्लाते हुए हाथमें तलवार लेकर अलातचक्रकी तरह चारों ओर  
 घूमते लगे ॥९॥ क्या यह आकाशसे सूर्यका विष्व लटक पड़ा है ? अथवा कोई दूसरा ही  
 सूर्य उदित हुआ है ? ऐसा विचार कर कितने ही लोग बार-बार मोहित हो रहे थे ॥१०॥

१ अवसीर्य । २ मेरोः । ३ गच्छन् । ४ गांगीष ल०, । ५ सुष्कुसंभाजित । ६ समीपे । ७ विभोः ल०,  
 द० । ८ प्रवेश नाकरोत् । ९ पुष्टोपुरे र०, ल० । १० शपथ । ११ अयभागे । १२ केचन । १३ युगपर  
 सपदि वा । १४ चक्रवर्तकाष्ठानिभ्रमणवत् । १५ भूहर्षमिति स्म ।

कल्याण्यकालचक्रेण पतितव्यं विरोधिनः । क्रूरेण व्रग्हेणाद्य यतश्चक्रेण वक्षितम् ॥ १३॥  
 अथवाद्यापि जेतव्यः<sup>१</sup> पक्षः कोऽप्यस्ति चक्रिणः । चक्रस्तत्त्वलनहः कैश्चिदित्यं रज्जुं विसर्कितम् ॥ १४॥  
 सेवानीश्चमुखाहतावत् प्रभवे<sup>२</sup> तत्त्वयवेदयन् । तद्वार्ता<sup>३</sup> कर्णाम्बुद्धकी किमप्यासीस्त्विशमयः ॥ १५॥  
 अभिन्नतयस्व किं नाम चक्रमप्रलिपास्तमे । मयि स्थिते सखलत्यय क्षिद्व्यहम्बलदूरगति ॥ १६॥  
 संप्रधार्यमिद्द्वयाद्य एुरोधसम् । धीरो श्रीरत्नां वाचमित्युच्चैराजग्नी मनुः ॥ १७॥  
 वदनोऽस्य मुखाम्भोजाद् न्यक्षाकूला<sup>४</sup> सरस्वती । निर्यतौ सद्वलकारा शासफलीचै<sup>५</sup> जयत्रियः ॥ १८॥  
 चक्रमाक्रान्तदिक्चक्रमरिचक्रमयंकरम् । कस्माक्षासमखुरद्वारि क्रमते न्यकृताकंसक् ॥ १९॥  
 विश्वदिग्विजये पूर्वदक्षिणापरवान्दिषु । यदासीदसखलदद्वचि रुद्यादेष्व एुहादये ॥ २०॥  
 चक्रं तदधुना कस्मात् सखलत्यस्मद्गृहाकृणे । प्रायोऽस्माभिर्विस्त्रेन मधितव्यं जिर्भीषुणा ॥ २१॥  
 किमयाद्यो द्विषलक्ष्मिदस्यस्मद्गन्धिगोचरे<sup>६</sup> । सनाभिः<sup>७</sup> कोऽपि किं वाऽस्मात् द्वेष्टि मुद्यन्तराशयः ॥ २२॥  
 यः कोऽप्यकारणद्वेषी खलोऽस्माभाभिनम्दति । प्रायः सखलनिति चेतांसि महत्स्वपि दुराध्यनाम् ॥ २३॥  
 विमलसराणि चेतांसि महतां परमुद्दिषु । भस्मर्णणि तु लाघ्वेष शुद्धाणामन्यशुद्दिषु ॥ २४॥  
 अथवा दुम्दाविष्टः कश्चिदप्रणतोऽस्ति मे । सखवर्ग्यस्तन्मद्वीच्छत्वै<sup>८</sup> नूनं चक्रेण वक्षितम् ॥ २५॥

आज यह चक्र क्रूरग्रहके समान वक्र हुआ है इसलिए अकालचक्रके समान किसी विरोधी शत्रु-पर अवश्य ही पड़ेगा ॥ ११॥ अथवा अब भी कोई चक्रवर्तीके जेतव्य पक्षमें हैं – जीतने योग्य शत्रु विद्यमान है इस प्रकार चक्रके रुक जानेसे चक्रके स्वरूपको जाननेवाले कितने ही लोग विचार कर रहे थे ॥ १२॥ सेवापति आदि प्रमुख लोगोंने यह बात चक्रवर्तीसे कही और उसके नुनते ही वे कुछ आश्चर्य करने लगे ॥ १३॥ वे विचार करने लगे कि जिसकी आज्ञा कहीं भी नहीं रुकती ऐसे मेरे रहते हुए भी, जिसकी गति कहीं भी नहीं रुकी ऐसा यह चक्ररत्न आज क्यों रुक रहा है ? ॥ १४॥ इस बातका विचार करना चाहिए यही सोचकर धीर वीर मनु-ने पुरोहितको बुलाया और उसने नीचे लिखे हुए बहुत ही गम्भीर वचन कहे ॥ १५॥ कहते हुए भरत महाराजके मुखकमलसे स्पष्ट अभिप्रायवाली और उत्तम-उत्तम अलंकारोंसे सजी हुई जो बाणी निकल रही थी वह ऐसी जान पड़ती थी मानो विजयलक्ष्मीकी दृती ही हो ॥ १६॥ जिसने समस्त दिशाओंके समूहपर आक्रमण किया है जो शत्रुओंके समूहके लिए भयकर है और जिसने सूर्यकी किरणोंका भी तिरस्कार कर दिया है ऐसा यह चक्र मेरे ही नगरके द्वारमें क्यों नहीं आगे बढ़ रहा है – प्रवेश कर रहा है ? ॥ १७॥ जो समस्त दिशाओंको विजय करनेमें पूर्व-दक्षिण और पश्चिम समूद्रमें कहीं नहीं रुका, तथा जो विजयार्धकी दोनों गुफाओंमें नहीं रुका वही चक्र आज मेरे धरके आंगनमें क्यों रुक रहा है ? प्रायः मेरे साथ विरोध रखनेवाला कोई विजिगीषु (जीतकी इच्छा करनेवाला) ही होना चाहिए ॥ १८-१९॥ क्या मेरे उपभोगके योग्य क्षेत्र (राज्य) में ही कोई असाध्य बातु मौजूद है अथवा दुष्ट हृदयवाला मेरे गोक्रका ही कोई पुरुष मुक्षसे द्वेष करता है ॥ २०॥ अथवा बिना कारणं ही द्वेष करनेवाला कोई दुष्ट पुरुष मेरा अभिनन्दन नहीं कर रहा है – मेरी वृद्धि नहीं सह रहा है सो ठीक ही है क्योंकि दुष्ट पुरुषोंके हृदय प्रायः कर बड़े आदमियोंपर भी बिगड़ जाते हैं ॥ २१॥ महापुरुषोंके हृदय दूसरोंकी वृद्धि होनेपर मात्सर्यसे रहित होते हैं परन्तु क्षुद्र पुरुषोंके हृदय दूसरोंकी वृद्धि होनेपर ईर्ष्यासहित होते हैं ॥ २२॥ अथवा दुष्ट अहंकारसे घिरा हुआ कोई मेरे ही धरका

१ अपमूल्यना । २ गन्तव्यम् मर्तव्यमित्यर्थः । ३ जेतव्यपक्षः ल०, द० । ४ चक्रिणे । ५ विचार्यम् । ६ व्यक्षा-मिश्राया । ७ कुटृणी । ८ भुक्तिशेषे । ९ सपिष्ठः । ‘सपिष्ठास्तु सनाभयः’ इत्यमिश्रानात् । नाभिसंबन्धोत्यर्थः । १० आत्मवर्गे भवः ।

खलूपेष्ठैः लवीयानपुच्छेयो लघुं तारशः । क्षुद्रो रे गुरिकाक्षिस्थो रुजस्यरिह्यंशितः ॥२४॥  
बलादुद्धरणीयो हि शोदीयानपि कण्डकः । अनुद्रुतः पदस्थोऽसौ भवेत्पीडाकरो मृशम् ॥२५॥  
चक्रे नाम परं दैवं रक्षानामिदमग्निमम् । गतिस्थलं नमेतस्य न विना कारणाद् भवेत् ॥२६॥  
ततो बाल्यमिदं कार्यं यज्ञक्रेणार्थं सूचितम् । सूचिते खलु राज्याङ्गे विळुतिर्वाल्यकारणात् ॥२७॥  
तदत्र कारणं दिव्यं त्वया धीमत्तिदस्तर्यां । अनिरुपितं कार्याणां नेह नामुग्रं गिर्दयः ॥२८॥  
व्याधिं कार्यविज्ञानं लिष्टेऽन्तिर्विष्ट्यचक्षुषि । उम्मलो देवते कौन्त्यः प्रस्त्रेवंशुभालिजः ॥२९॥  
निवेद्य कार्यमित्यस्मै दैवज्ञाय ॥३०॥ मित्राक्षरैः । विरामं प्रभुः प्रायः प्रभद्वो मित्रमाचिगः ॥३०॥  
ततः प्रसङ्गमभीरपदालंकारकोभलाम् । भारती भरतेशस्य प्रदोभायेति सोऽववीत् ॥३१॥  
अस्ति माधुर्यमस्योजस्तदस्ति पदसौष्ठवम् । अस्त्यधार्तुगमोऽन्यतिं ३ यज्ञास्ति वदुचोमये ॥३२॥  
शास्त्रज्ञा वयसेकाम्लात् नाभिज्ञा कार्ययुक्तिः । शास्त्रप्रयोगदित् कोऽन्यस्तवस्मो राजनीतिपु ॥३३॥  
त्वमादिराजो राजर्विस्तद्विधात्वे तुष्टममम् ॥३४॥ तद्विदस्तत्त्वयुज्ञाना न जिहीमः कथं व्यम् ॥३५॥

मनुष्य नम्र नहीं हो रहा है, जान पड़ता है यह चक्र उसीका अहंकार दूर करनेके लिए बक्र हो रहा है ॥२३॥ शक्तु अत्यन्त छोटा भी हो तो भी उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, द्वेष करनेवाला छोटा होनेपर भी शीघ्र ही उच्छ्रेद करने योग्य है क्योंकि आखमें पढ़ी हुई धूलिको कणिकाके समान उपेक्षा किया हुआ छोटा शत्रु भी पीड़ा देनेवाला हो जाता है ॥२४॥ कौटा यदि अत्यन्त छोटा हो तो भी उसे जबरदस्ती निकाल डालना चाहिए क्योंकि पैरमें लगा हुआ कौटा यदि निकाला नहीं जायेगा तो वह अत्यन्त दुःखका देनेवाला हो सकता है ॥२५॥ यह चक्ररत्न उत्तम देवस्त्र है और रत्नोंमें मुख्य रत्न है इसकी गतिका स्तरलन विना किसी कारणके नहीं हो सकता है ॥२६॥ इसलिए हे आर्य, इस चक्रने जो कार्य सूचित किया है वह कुछ छोटा नहीं है क्योंकि यह राज्यका उत्तम अंग है इसमें किसी अल्पकारणसे विकार नहीं हो सकता है ॥२७॥ इसलिए हे बुद्धिमान् पुरोहित, आप इस चक्ररत्नके रुक्नेमें क्या कारण है इसका अच्छी तरह विचार कीजिए क्योंकि विना विचार किये हुए कार्योंकी सिद्धि न तो इस लोकमें होती है और न परलोक ही में होती है ॥२८॥ आप दिव्य नेत्र हैं इसलिए इस कार्यका ज्ञान आपमें ही रहता है अर्थात् आप ही चक्ररत्नके रुक्नेका कारण जान सकते हैं क्योंकि अन्धकारको नष्ट करनेमें सूर्यके सिवाय और कौन समर्थ हो सकता है ? ॥२९॥ इस प्रकार महाराज भरत थोड़े ही अक्षरोंके द्वारा इस निमित्तज्ञानोंके लिए अपना कार्य निवेदन कर चुप हो रहे सो ठीक ही है क्योंकि प्रभु लोग प्रायः थोड़े ही बोलते हैं ॥३०॥ तदनन्तर निमित्तज्ञानों पुरोहित भरतेश्वरको समझानेके लिए प्रसन्न तथा गम्भीर पद और अलंकारोंसे कोमल वचन कहने लगा ॥३१॥ जो माधुर्य, जो ओज, जो पदोंका सुन्दर विन्यास और जो अर्थकी सरलता आपके वचनोंमें नहीं है वह क्या किसी दूसरी जगह है ? अर्थात् नहीं है ॥३२॥ हम लोग तो केवल शास्त्रको जाननेवाले हैं कार्य करनेकी युक्तियोंमें अभिज्ञ नहीं हैं परन्तु राजनीतिमें शास्त्रके प्रयोगको जाननेवाला आपके समान दूसरा कौन है ? अर्थात् कोई नहीं है ॥३३॥ आप राजाओंमें प्रथम राजा हैं और राजाओंमें कृषिके समान श्रेष्ठ होनेसे राजर्वि हैं यह राजविद्या केवल आपसे ही उत्पन्न हुई है इसलिए उसे जाननेवाले हम लोग

१ नोपेश्वरीयः । २ अतिशयने लघुः । ३ शीघ्रम् । ४ पीटां करोति । ५ वित्तशयेन शुद्धः । ६ सुष्टुचिते ।  
७ चक्रे । ८ प्रतीयमानस्वरूपतया । ९ अविचारित । १० निश्चिर्त भवति । ११ नेमित्तिकाय । १२ अप्यकलं प०,  
ल० । १३ तत्र वचन-प्रणश्यते । १४ राजविद्या । १५ त्वदुपक्रमात् ल० । त्वया पूर्वं प्रवत्तिं कार्यविज्ञानम् ।

तथापि त्वकूलोऽस्मासु सत्कारोऽनन्यगोचरः । तनोलि गौरवं लोके ततः स्मो बहुमुद्रातः ॥३५॥  
हयं तु श्रुतमस्माभिदेव दैवशशासनम्<sup>१</sup> । नास्ति चक्रस्य विश्वान्तः सावशेषे दिशो जये ॥३६॥

जप्तु अर्थात् करोले त्री अभिमत्तमिदं सतः<sup>२</sup> सेस्तमितमिकात्मक्ये<sup>३</sup> पुरद्वारि विलम्बते ॥३७॥

अभिमित्रमरेभित्र मित्रमित्रमिति श्रुतिः । श्रुतिमात्रे स्थिता देव प्रजास्वर्वाच्युतासति ॥३८॥

तथाप्यस्येवं जंतव्यः पक्षः कोऽपि तवाशुना । योऽन्तर्गृहे कृतीत्यामः इत्रो रोग हृषीकरे ॥३९॥

अहिर्मण्डलसंवासीश् परिकाम्तमिदं त्वया । अन्तर्मण्डलसंचुदिमनामायापि जायते ॥४०॥

जितजेतस्यपक्षस्य न नश्चा भातरस्तथ । व्युत्थिताश्च<sup>४</sup> सजातीया विघाताय न तु प्रभोः ॥४१॥

स्वप्नभैरेव तेजस्वी महानपुण्ड्रद्वयते<sup>५</sup> । प्रत्यक्षमकंकान्ते<sup>६</sup> उवक्तेदमुक्ताहतम्<sup>७</sup> ॥४२॥

विवलोऽपि यजातीयो लब्ध्वा तीक्ष्णं प्रतिष्कलम्<sup>८</sup> । दण्डः परश्वधर्षेवं निवहंयति पार्थिवम्<sup>९</sup> ॥४३॥

आतरोऽस्मी तवाजरया बलिनो मानशालिनः । यजौषास्तेषु धौरेयो धीरो बाहुबली बली ॥४४॥

<sup>१२</sup>एकाज्ञशतसंग्रामते<sup>१३</sup> सोइर्या वीर्यकालिनः । प्रभोरातिगुरोनीर्ण्यं प्रणमाम इति स्थिताः ॥४५॥

आपके ही सामने उसका प्रयोग करते हुए क्यों न लक्षित हों ॥३४॥ तथापि आपके द्वारा किया हुआ हमारा असाधारण सत्कार लोकमें हमारे गौरवको बढ़ा रहा है इसलिए ही मैं कुछ कहनेके लिए तैयार हुआ हूँ ॥३५॥ हे देव, हम लोगोंने निमित्तज्ञानियोंका ऐसा उपदेश सुना है कि जबतक दिविजय करना कुछ भी बाकी रहता है जबतक चक्ररल विश्वाम नहीं लेता अर्थात् चक्रवर्तीकी इच्छाके विरुद्ध कभी भी नहीं सकता है ॥३६॥ जो जलती हुई ज्वालाओं-से भयंकर है ऐसा वह आपका विजयी शस्त्र नगरके द्वारपर गृह्ण रीतिसे रोकेहुएके समान अटक-कर रह गया है ॥३७॥ हे देव, आपके प्रजाका शासन करते हुए शत्रु, भिन्न, शत्रुका मित्र, और मित्रका मित्र ये शब्द केवल शास्त्रमें ही रह गये हैं अर्थात् व्यवहारमें न आपका कोई मित्र है और न कोई शत्रु ही है सब आपके सेवक हैं ॥३८॥ तथापि अब भी कोई आपके जीतने योग्य रह गया है और वह उदरमें किसी भयंकर रोगके समान आपके घरमें ही प्रकट हुआ है ॥३९॥ आपके द्वारा यह बाह्यमण्डल ही आकान्त – पराजित हुआ है परन्तु अन्तर्मण्डलकी विशुद्धता तो अब भी कुछ नहीं हुई है। भावार्थ – यद्यपि आपने बाहरके लोगोंको जीत लिया है तथापि आपके घरके लोग अब भी आपके अनुकूल नहीं हैं ॥४०॥ यद्यपि आपने समस्त शत्रु पक्षको जीत लिया है तथापि आपके भाई आपके प्रति नश्च नहीं हैं – उन्होंने आपके लिए नमस्कार नहीं किया है। वे आपके विरुद्ध खड़े हुए हैं और सजातीय होनेके कारण आपके द्वारा विघात करने योग्य भी नहीं हैं ॥४१॥ तेजस्वी पुरुष बड़ा होनेपर भी अपने सजातीय लोगों-के द्वारा रोका जाता है यह बात सूर्यके सम्मुख जलते हुए सूर्यकान्त मणिके उदाहरणसे स्पष्ट है ॥४२॥ सजातीय पुरुष निर्बल होनेपर भी किसी बलवान् पुरुषका आश्रय पाकर राजा-को उस प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार निर्बल दण्ड कुलहाड़ीका तीक्ष्ण आश्रय पाकर अपने सजातीय बृक्ष आदिको नष्ट कर देता है ॥४३॥ ये आपके बलवान् तथा अभिमानी भाई बजेय हैं और इनमें भी अतिशय युवा और बीर तथा बलवान् बाहुबली मुख्य है ॥४४॥ आपके ये निन्यान्वे भाई बड़े बलशाली हैं, हम लोग भगवान् आदिनाथको छोड़कर और

१ विभिन्नशास्त्रम् । २ –मिवात्यर्थं स०, द०, अ० । –मिवाव्यवतं प०, ल० । ३ विरुद्धावरणः । ४ बाध्यते ।

५ सूर्यकान्तपादाणेन । ६ उदाहरणं हृतम् । ७ प्रतिश्वयम् प०, ल० । सहायम् । ८ परशोः । ‘परशुइ परश्वधः’ इत्यभिधानात् । ९ नाशयति ( लूप वहं हिंसायाम् ) । १० पुष्पिष्यां भवम् । वृक्षं नृपं च ।

११ कनिष्ठः । ‘जघायजे स्युः कनिष्ठयसीयोऽवरजानुजा’ इत्यभिधानात् । १२ एकीन-ल०, द०, द०, प० ।

१३ बाहुबलिना रहितेन सह इयं संस्था, वृषभसेनेन प्रागेव दीक्षावप्रहृणात् ।

तदन्ने प्रतिकर्तव्यमात्रु चक्रधर त्वया । अणग्रणाग्निशक्त्वा ज्ञेयं नोपेक्षते कृती ॥४६॥  
 राजन् राजन्वती भूत्वा त्वयैवेण चसुंधरा । माभूद्वाजवती<sup>१</sup> तेषां भूमा द्वैराज्यद्वःस्थिता<sup>२</sup> ॥४७॥  
 त्वयि राजनि राजोक्तिदेव नाम्यत्र राजते । लिहे स्थिते सूर्योक्तिं हरिणा विशृङ्खुः कथम् ॥४८॥  
 देव त्वामनुवर्त्ततां आतरो धूतमस्तरा । उवेष्ट्य कालमुख्यस्य शास्त्रोक्तमनुवर्त्तनम् ॥४९॥  
 तच्छासनहरा<sup>३</sup> गत्वा सोपायमुपजप्त्य तान् । त्वदाशानुवशान् कुरुर्विंगृह्य<sup>४</sup> वृश्यरन्वथा ॥५०॥  
 मिथ्यामदोक्तः कोऽपि नोपेषाच्चादि ते वशम् । स नाशयेद्वात्मामात्मगृह्य<sup>५</sup> च राजकम् ॥५१॥  
 रात्रयं कुलकुलत्रं च भैरवं साधारणं दृष्टम् । भुद्वके सार्वं परैर्यस्तत्त्वं नरः पहुरेव सः ॥५२॥  
 किमत्र अद्विनोक्तेन त्वामेत्य अणमन्तु ते । याम्नु वा शरणं देवं ब्रातारं जगतो जिनम् ॥५३॥  
 न तृतीया गतिस्तेषामेवेषां<sup>६</sup> द्वितीयी गतिः<sup>७</sup> । प्रविशम्भु त्वदास्थानं दनं वामी चूर्णः समम् ॥५४॥  
 दक्षकुलाम्बुद्विकामीव<sup>८</sup> दहस्त्वननुवर्त्तते । अनुवर्त्तते तात्प्रेव नेत्रहयामन्तश्चुः परम्<sup>९</sup> ॥५५॥

किसीको प्रणाम नहीं करेंगे ऐसा ये निश्चय कर बैठे हैं ॥४५॥ इसलिए हे चक्रधर, आपको इस विषयमें शीघ्र ही प्रतिकार करना चाहिए क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ऋण, धाव, अग्नि और शत्रुके बाकी रहे हुए थोड़े भी अंशकी उपेक्षा नहीं करते हैं ॥४६॥ हे राजन्, यह पृथिवी के बल आपके हारा ही राजन्वती अर्थात् उत्तम राजासे पालन की जानेवाली हो, आपके भाइयों-के अधिक होनेसे अनेक राजाओंके सम्बन्धसे जिसकी स्थिति बिगड़ गयी है ऐसी होकर राजवती अर्थात् अनेक साधारण राजाओंसे पालन की जानेवाली न हो । भावार्थ—जिस पृथिवीका शासक उत्तम हो वह राजन्वती कहलाती है और जिसका शासक अच्छा न हो, नाममात्रका ही हो वह राजवती कहलाती है । पृथिवीपर अनेक राजाओंका राज्य होनेसे उसकी स्थिति छिन्न-भिन्न हो जाती है इसलिए एक आप ही इस रूपमयी वसुन्धराके शासक हों, आपके अनेक भाइयोंमें यह विभक्त न होने पावे ॥४७॥ हे देव, आपके राजा रहते हुए राजा यह शब्द किसी दूसरी जगह सुशोभित नहीं होता सो ठीक ही है क्योंकि सिहके रहते हुए हरिण मृगेन्द्र शब्दको किस प्रकार धारण कर सकते हैं ? ॥४८॥ हे देव, आपके भाई हृष्या छोड़कर आपके अनुकूल रहें क्योंकि आप उन सबमें बढ़े हैं और इस कालमें मूल्य हैं इसलिए उनका आपके अनुकूल रहना शास्त्रमें कहा हुआ है ॥४९॥ आपके दूत जावें और युक्तिके साथ बातचीत कर उन्हें आपके आज्ञाकारी बनावें, यदि वे इस प्रकार आज्ञाकारी न हों तो विग्रह कर (बिगड़कर) अन्य प्रकार भी बातचीत करें ॥५०॥ मिथ्या अभिमानसे उद्भव होकर यदि कोई आपके वश नहीं होगा तो खेद है कि वह अपने-आपको तथा अपने अधीन रहनेवाले राजाओंके समूहका नाश करावेगा ॥५१॥ राज्य और कुलवती स्त्रियां ये दोनों ही पदार्थ साधारण नहीं हैं, इनका उपभोग एक ही पुरुष कर सकता है । जो पुरुष इन दोनोंका अन्य पुरुषोंके साथ उपभोग करता है वह नर नहीं है पशु ही है ॥५२॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है या तो वे आकर आपको प्रणाम करें या जगत्की रक्षा करनेवाले जिनेन्द्रदेवकी शरणको प्राप्त हों ॥५३॥ आपके उन भाइयोंकी तीसरी गति नहीं है, इनके ये ही दो मार्ग हैं कि या तो वे आपके शिविरमें प्रवेश करें या मृगोंके साथ बनमें प्रवेश करें ॥५४॥ सजातीय लोग परस्परके विरुद्ध आचरणसे अंगरेके

१ कारणात् । २ कुरिसतराग्रवती । 'सुरांशि देशे राजन्वान् स्याततोऽन्यत्र राजवान्' इत्यमिषानात् । ३ इयो राजो राज्येन दुःस्थिताः । ४ त्वच्छाशान-द०, ८० । दूताः । ५ उक्तवा । ६ विवादं कृत्वा । ७ आत्मना स्वीकरणीयम् । ८ सर्वेषामनुभवनीयम् । ९ द्वयम् । १०—मैर्वेषां ८० । ११ उपम् । १२ स्वयोन्नाशि । त्व आत्मर इत्यर्थः । १३ परः ८०, ९०, १० ।

प्रशान्तमनुकूलं देवं अस्त्वा सत्यं अस्थिरं न विमोऽस्थि । सीदवाः सुखमध्याः ॥ वर्तमानादाभिकाण्डिश्वणः ॥५६॥  
 इति शास्त्रति शास्त्रज्ञे पुरोधसि सुमेधसि । प्रतिपद्यादि तत्कार्यं चक्री चुक्रोध तत्कारणम् ॥५७॥  
 आचक्षकलुषां दृष्टिं किपन्दिदिश्वव दिग्बलिम् । सधूमामिष कोपाग्नेः शिखां भृकुटिसुक्षिपन् ॥५८॥  
 आवुभां इक्षुवासर्वविषवेगमिवोद्दमन् । वाक्ष्मलेनोऽचलत् रोषाद् वसावे पहचा गिरः ॥५९॥  
 किं किमात्थं तुराज्ञानो भ्रातरः प्रणतां न माम् । एवय भद्रपुष्पण्डोऽकापासासान् शशक्तसाकृतान् ॥६०॥  
 अदृष्टमधुतं कृत्यमिदं वैरमकारणम् । अदृष्ट्याः किल तु वर्त्तवादिति<sup>१</sup> तेषां मनीषितम् ॥६१॥  
 अकरां भोक्तुमिष्ठनिति<sup>२</sup> गुहदसामिमान्तके<sup>३</sup> । तस्मि<sup>४</sup> भद्रावलेषेन<sup>५</sup> सुक्षिं ते श्रावयन्तु<sup>६</sup> मे ॥६२॥  
 प्रतिशब्दामिषातेन<sup>७</sup> भुक्षिं ते साधयन्तु वा । शितास्तकण्डकोत्संगवतिताङ्गारणाङ्गेण ॥६३॥  
 क्व वयं जितजेतव्या भोक्तव्ये<sup>८</sup> संगताः क्व ते । तथापि<sup>९</sup> संविभागोऽस्तु तेषां मदनुवर्त्तने ॥६४॥

समान जलाते रहते हैं और वे ही लोग परस्परमें अनुकूल रहकर नेत्रोंके लिए अतिशय आनन्द रूप होते हैं ॥५५॥ इसलिए ये आपके भाई मात्सर्य छोड़कर शान्त हो मस्तक क्षुकाकर आपको नमस्कार करें और आपको प्रसन्नताकी इच्छा रखते हुए सुखसे बृद्धिको प्राप्त होते रहें ॥५६॥ इस प्रकार शास्त्रके जाननेवाले बुद्धिमान् पुरोहितके कह चुकनेपर चक्रवर्ती भरतने उसीके कहे अनुसार कार्यं करना रक्षीकार कर उसी क्षण क्रोध किया ॥५७॥ जो क्रोधसे कलुषित हुई अपनी धूमसहित शिखाके समान भृकुटियाँ ऊँची चढ़ा रहे हैं, भाईरूपी मूलधनपर किये हुए क्रोधरूपी विषके वेगको जो वचनोंके छलसे उगल रहे हैं और जो क्रोधसे उछल रहे हैं ऐसे महाराज भरत नीचे लिखे अनुसार कठोर वचन कहने लगे ॥५८-५९॥ हे पुरोहित, क्या कहा ? क्या कहा ? वे दुष्ट भाई मुझे प्रणाम नहीं करते हैं, अच्छा तो तू उन्हें मेरे दण्डरूपी प्रचण्ड उल्कापातसे टुकड़े किया हुआ देख ॥६०॥ उनका यह कार्यं न तो कभी देखा गया है, न सुना गया है, उनका यह वेर बिना कारण ही किया हुआ है, उनका ख्याल है कि हम लोग एक कुलमें उत्पन्न होनेके कारण अवध्य हैं ॥६१॥ उन्हें यौवनके उन्मादसे उत्पन्न हुआ योद्धा होनेका कटिन बायुरोग हो रहा है इसलिए जलते हुए चक्रके सन्तापसे पसीना आना ही उसका प्रतिकार-उपाय है ॥६२॥ वे लोग पूज्य पिताजीके द्वारा दी हुई पृथिवीको बिना कर दिये ही सुनावें कि भरत ही इस पृथिवीका उपभोग करनेवाला है हम सब उसके अधीन हैं या युद्धके मैदानमें तीर्थण शस्त्ररूपी काटोंके ऊपर जिनका शरीर पड़ा हुआ है ऐसे वे भाई प्रतिशब्द्या-द्वासरी शब्द्या अर्थात् रणशब्द्यापर पड़कर उसका उपभोग प्राप्त करें । भावार्थ-जीते-जी उन्हें इस पृथिवीका उपभोग प्राप्त नहीं हो सकता ॥६३-६४॥ जिसने जीतने योग्य समस्त लोगोंको जीत लिया है ऐसा कहाँ तो मैं, और मेरे उपभोग करने योग्य क्षेत्रमें स्थित कहाँ वे लोग ? तथापि मेरे आज्ञानुसार चलनेपर उनका भी विभाग (हिस्सा)

१ 'भाग्व भपणम् इति भाग्वमूला विभिन्नते । नदीनाथे तुरंगाणां भूषणे भाजनेऽपि च' । २ उत्पत्तन् ।  
 ३ वदसि । ४ खण्ड । ५ कुले भवाः कुलवास्तेषां भावः तस्मात् । ६ वयं भट्टा इति गवः । ७ दुनिवर्तः ।  
 ८ अबलिम् । 'भागधेयः करो बलिः' इत्यमिधानात् । ९ मूमिम् । १० कुसिताः । ११ तहिः । १२ भद्रगवेण ।  
 १३ सावधनित्वत्यर्थः । १४ पूर्वे शब्दायाः प्रतिशब्द्या-अन्य शब्दात्स्यां निपातेन सरणगत्या इत्यर्थः ।  
 १५ वृत्तिक्षेपे । १६ सम्यक्षेपदिविभागः ।

न मौनकुमभ्यशाकारे<sup>१</sup> महीं तेष्यो इदाम्यहम् । कथंकारभिद्<sup>२</sup> चक्रं द्रिघर्सं यात्वतज्जये<sup>३</sup> ॥६६॥  
इदं मधुदनार्थयेऽयं वरप्राज्ञो वन्धुवत्सलः । स बाहुबलिसाह्नोऽपि<sup>४</sup> भजते विकृतिं कृती ॥६७॥  
अथाहुबलिनानेन<sup>५</sup> राजकेन नतेन किम् । नगरेण गरणेष्व<sup>६</sup> भुजेनापोदनेन<sup>७</sup> किम् ॥६८॥  
किं किर्करः करालास्त्रप्रतिनिर्जितं शाश्वतः । अवाज्ञावशामेतस्मिन् नवविक्रमशालिनि<sup>८</sup> ॥६९॥  
किं वा सुरमर्टेभिरुद्भट्टारसीरसैः<sup>९</sup> । मयैवमसमां स्पष्टौ तस्मिन्कुर्वति गविते ॥७०॥  
इति जल्पति संरम्भार्थ<sup>१०</sup> कपाणाद्युपक्रमम्<sup>११</sup> । तद्यापचक्रम् कलुं पुनरार्थं पुराहतः ॥७१॥  
जितजेतत्यतां देव शोषयत्तपि किं मुधा । जितोऽसि क्रोधवेगेन प्राप्तजयो लक्षिनां हि सः ॥७२॥  
बालास्ते बालभावेन<sup>१२</sup> विलै<sup>१३</sup> सन्त्वयेऽन्वलम् । तेवे जितारिषद्विग्ने न तमः<sup>१४</sup> स्थानुमईति ॥७३॥  
क्रोधान्धतमसे मम्नं यो नात्मानं समुद्धरेत् । स कृत्यसंशयद्वैधाशो<sup>१५</sup> तरीतुमलंतराम् ॥७४॥  
किं तरां स विजानाति कार्यकार्यभनारमवित् । यः स्वान्तःप्रभवान् जेतुमरीष्म प्रभवेत्प्रभुः ॥७५॥  
तदेव विरमामुप्मात् संरम्भादपकारिणः । जितास्मानो जयन्ति द्वां क्षमया हि जितीष्वः ॥७६॥

हो सकता है ॥६५॥ और किसी तरह उनके उपभोगके लिए मैं उन्हें यह पृथिवी नहीं दे सकता हूँ । उन्हें जीते त्रिना यह चक्ररत्न किस प्रकार विश्राम ले सकता है ? ॥६६॥ यह बड़ी निन्दाकी बात है कि जो अतिशय बुद्धिमात् है, भाइयोंमें प्रेम रखनेवाला है, और कार्यकुशल है वह बाहुबली भी विकारको प्राप्त हो रहा है ॥६७॥ बाहुबलीको छोड़कर अन्य सब राज-पुत्रोंने नमस्कार भी किया तो उससे क्या लाभ है और पोदनपुरके त्रिना विष्के समान इस नगरका उपभोग भी किया तो बया हुआ ॥६८॥ जो नवीन पराक्रमसे शोभायमान बाहुबली हमारी आज्ञाके बया नहीं हुआ तो भयंकर शत्रुओंसे शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले सेवकोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥६९॥ अथवा अहंकारी बाहुबली जब इस प्रकार मेरे साथ अयोग्य ईर्ष्या कर रहा है तब अतिशय गूरबीरतारूप रसको धारण करनेवाले मेरे इन देवरूप योद्धाओंसे क्या प्रयोजन है ? ॥७०॥ इस प्रकार जब चक्रवर्तीं क्रोधसे बहुत बढ़-बढ़कर बातचीत करने लगे तब पुरोहितने उन्हें शान्त कर उपायपूर्वकं कार्यं प्रारम्भ करनेके लिए नीचे लिखे अनुसार उद्योग किया ॥७१॥ हे देव, मैंने जीतने योग्य सबको जीत लिया है ऐसी शोषणा करते हुए भी आप क्रोधके वेगसे व्यर्थ ही क्यों जीते गये ? जितेन्द्रिय युरुषोंको तो क्रोधका वेग पहले ही जीतना चाहिए ॥७२॥ वे आपके भाई बालक हैं हसलिए अपने बालस्वभाव-से कुमार्गमें भी अपने इच्छानुसार क्रीड़ा कर सकते हैं परन्तु जिसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्यं इन छहों अन्तरंग शत्रुओंको जीत लिया है ऐसे आपमें यह अन्धकार ठहरने-के योग्य नहीं है अर्थात् आपको क्रोध नहीं करना चाहिए ॥७३॥ जो मनुष्य क्रोधरूपी गाढ़ अन्धकारमें डूबे हुए अपने आत्माका उद्धार नहीं करता वह कार्यके संशयरूपी द्विविधासे पार होनेके लिए समर्थ नहीं है । भावार्थ – क्रोधसे कार्यकी सिद्धि होनेमें सदा सन्देह बता रहता है ॥७४॥ जो राजा अपने अन्तरंगसे उत्पन्न होनेवाले शत्रुओंको जीतनेके लिए समर्थ नहीं है वह अपने आत्माको नहीं जाननेवाला कार्य और अकार्यको कैसे जान सकता है ? ॥७५॥ इसलिए हे देव, अपकार करनेवाले इस क्रोधसे दूर रहिए क्योंकि जीतकी इच्छा रखनेवाले जिते-

१ अन्यथा । २ कथम् । ३ तेषां जयाभाष्ये । ४ अवाच्यम् । ५ बाहुबलिनामा । ६ बाहुबलिकुमाररहितेन ।  
७ गरलेनेव । ८ पोदनपुररहितेन । ९ तजित – ल०, द० । १० बाहुबलिनि । ११ अधिकभयानकरसः ।  
१२ क्रोधात् । १३ युद्धारम्भम् । १४ बालत्वेन । १५ गविता भूत्वा वर्तन्त इत्यर्थः । १६ अज्ञानम् ।  
१७ कार्यसदेहद्वैविष्यात् ।

विजितेन्द्रियवर्गाणां सुश्रुतश्चुतसंपदाम् । परलोकजिगीयूणां क्षमा साधनसुखमम् ॥७७॥  
 लेखस्तथे च कार्येऽस्मिन् विकलोऽतिपरिभ्रमः । तृणाङ्कुरे तत्त्वद्वेषे कः 'परक्षवचमुदरेत्' ॥७८॥  
 ततहितसिक्षमाणेनैः साप्त्यो भास्तुगच्छस्थवः । सोपचारं प्रयुक्तेन वचोहरणेन सः ॥७९॥  
 अर्थैव च प्रहेतस्थाः समं लेखैर्वचोहराः । गव्या शूद्युश्च तानेत् चक्रिणं भजताप्रजन् ॥८०॥  
 कल्पानोऽक्षसेवेव तत्सेवाऽभीष्मदायिनी । गुरुक्षणोऽग्रजइचक्षी स मात्यः ३ सर्वभाषि वः ॥८१॥  
 विद्वस्यैनं सुधमाभिरैश्वर्यं तस्य राजते । तारागणैर्माससैरिव विम्बं निशांपलेः ॥८२॥  
 साम्राज्यं वास्य तोषाय यदभवद्भिर्विना अवेत । सहसोम्यं हि वन्धमामभिराज्यं सत्ता मुदे ॥८३॥  
 इदं<sup>४</sup> वाचिकमन्यात् लेखाधिदृशधार्यताम् । इति सोपायनैलैः प्रस्ताव्यास्ते<sup>५</sup> मनस्विनः ॥८४॥  
 यशस्य भिद्मेवार्थं कार्यं श्रेयस्यमेव<sup>६</sup> च । विन्यमुत्तरकार्यं च साम्ना तेष्ववदेषु वै ॥८५॥  
 विभ्यता 'जनमिक्षादादनुषेयमिदं त्वथा । स्थायुक<sup>७</sup> हि चाहो लोके 'गत्वयो ननु संपदः ॥८६॥  
 इति तद्वचनार्थकी वृत्तिमारमटीं जहाँ । अनुवर्तनसाध्या हि महावो वित्तमृत्यः ॥८७॥  
 अस्तां भुजबली तावद् यस्तसाध्यो<sup>८</sup> महावकः । लोकैरेव परीक्षिष्ये भास्तुमिस्तद् द्विजिहृताम्<sup>९</sup> ॥८८॥

न्द्रिय पुरुष केवल क्षमाके द्वारा ही पृथिवीकी जीतते हैं ॥७६॥ जिन्होंने इन्द्रियोंके समूहको जीत किया है, शास्त्ररूपी सम्पदाका अच्छी तरह श्रवण किया है और जो परलोकको जीतने की इच्छा रखते हैं ऐसे पुरुषोंके लिए सबसे उत्कृष्ट साधन क्षमा ही है ॥७७॥ जो लेख लिख-कर भी किया जा सकता है ऐसे इस कार्यमें अधिक परिश्रम करना व्यर्थ है क्योंकि जो तृणका अंकुर नखसे तोड़ा जा सकता है उसके लिए भला कौन कुलहाड़ी उठाता है ॥७८॥ इसलिए आपको शान्त रहकर भेटसहित भेजे हुए दूसोंके द्वारा ही यह भाइयोंका समूह वश करना चाहिए ॥७९॥ आज ही आपको पत्रसहित दूत भेजना चाहिए, वे जाकर उनसे कहें कि थलो और अपने बड़े भाईकी सेवा करो ॥८०॥ उनकी सेवा कल्पवृक्षकी सेवाके समान आपके सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली होगी । वह आपका बड़ा भाई पिताके तुल्य है, चक्रवर्ती है और सब तरहसे आप लोगोंके द्वारा पूज्य है ॥८१॥ जिस प्रकार दूर रहनेवाले तारागणोंसे चन्द्रमाका विम्ब सुशोभित नहीं होता है उसी प्रकार दूर रहनेवाले आप लोगोंसे उनका ऐश्वर्य सुशोभित नहीं होता है ॥८२॥ आप लोगोंके बिना यह राज्य उनके लिए सन्तोष देनेवाला नहीं हो सकता क्योंकि जिसका उपभोग भाइयोंके साथ-साथ किया जाता है वही साम्राज्य सञ्जन पुरुषोंको आनन्द देनेवाला होता है ॥८३॥ 'यह मौखिक सन्देश है, वाकी समाचार पत्रसे मालूम कीजिए' इस प्रकार भेटसहित पत्रोंके द्वारा उन प्रतापी भाइयोंको विश्वास दिलाना चाहिए ॥८४॥ हे आर्य, आपके लिए यही कार्य यश देनेवाला है और यही कल्याण करनेवाला है यदि वे इस तरह शान्तिसे वश न हों तो फिर आगेके कार्यका विचार करना चाहिए ॥८५॥ आपको लोकापवादसे डरते हुए यही कार्य करना चाहिए क्योंकि लोकमें यश ही स्थिर रहनेवाला है, सम्पत्तिर्यां तो नष्ट हो जानेवाली हैं ॥८६॥ इस प्रकार पुरोहितके वचनोंसे चक्रवर्तीने अपनी क्रोधपूर्ण वृत्ति छोड़ दी सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी चित्तकी वृत्ति अनुकूल वचन कहनेसे ही ठीक हो जाती है ॥८७॥ इस समय जो प्रयत्नसे वश नहीं किया जा सकता ऐसा महाबलवान् बाहुबली दूर रहे पहले शेष भाइयोंके द्वारा ही

४ परशुम् । ५ सहमानेन । ६ आगच्छत । ७ पूज्यः । ८ सदेशकाक् । 'सदेशवाग् वाचिकं स्याद्' इत्यमिधानात् ।  
 ९ विश्वास्याः । १० मक्षस्करम् । ११ श्रेयस्करम् । १२ जनापवादात् । १३ स्थिरतरम् । १४ गमनशीलाः ।  
 १५ पत्र साध्या महाभुजः ॥१०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७ । १६ बाहुबलिनः कुटिलताम् ।

हति निर्दीर्घं कार्यज्ञान् कार्यव्युत्थाने विविक्तधीः । प्रादिणोक्त्य निष्पृष्ठार्थन्<sup>१</sup> दूताननुजसंनिधिम् ॥८९॥  
गत्था च ते<sup>२</sup> यथोदेशं दद्वा तांस्तान्यथोचित्तम् । जगुः सर्वेशमीक्षास्थ संभ्रो दूता यथास्थितम् ॥९०॥  
अथ ते यह संभूय कृतकार्यनिवेदनात् । दूतानिन्युत्तुराहुप्रभृत्यमदकर्माः ॥९१॥  
यकुलस्मादिराजेन तत्त्वत्वं<sup>३</sup> बोडमिसंभतम् । गुरोरसंनिधौ पूज्यो ज्यायान्नाताऽनुजैरिति ॥९२॥  
प्रत्यक्षो गुरुस्माकं प्रतपत्त्वेषै विश्वाक् । स नः प्रमाणमैश्वर्यं तद्वितीर्णमिदं हि नः ॥९३॥  
नदय गुरुपादाश्च तन्नां<sup>४</sup> न स्वैरिणो<sup>५</sup> वथम् । न देवं भरतेन नादेनमिह किञ्चन ॥९४॥  
यत्तु वः संविमागार्थमिदमामन्त्रणं कुतम् । चक्रिणा तेन सुप्रीता<sup>६</sup> प्रीणाश्च वयभागलात् ॥९५॥  
द्विःसम्मुख्य तान्नकृत्य एवम्यैः द्विलिङ्गोद्दृढः ॥९६॥ प्रथमः प्रतिलेखैर्वर्यसर्जयन् ॥९६॥  
दूतसामृतसन्मानाः<sup>७</sup> प्रसुताकृतवीचिकाः<sup>८</sup> । गुरुस्माकृत्य तत्कार्य<sup>९</sup> प्रापुस्ते गुरुसंनिधिम् ॥९७॥  
गत्था च गुरुमवाक्युमितोचित्पुरिच्छवाः<sup>१०</sup> । महागिरिमित्रोत्तुङ्ग कैलासशिखरालयम्<sup>११</sup> ॥९८॥  
प्रणिष्ट्य विधानेन प्रपूज्य च यथाविधि । व्यजिङ्गपक्षिदं वाक्यं कुमारा मारजिहिषम् ॥९९॥  
वत्तः स्मो लब्धजन्मासस्वतः प्राप्ताः परां त्रियम् । त्वंप्रसादैषिणो देव त्वसो नान्यमुपास्यह<sup>१२</sup> ॥१००॥

उनकी कृतिलताकी परीक्षा कर रहे थे जिसकी बुद्धि कभी भी मीहित नहीं होती ऐसे चक्रवर्तीनि कार्यके जानवेवाले तिःसृष्टार्थं दूतोंको अपने भाइयोंके समीप भेजा ॥८८-८९॥ उन दूतोंने भरतके आशानुसार आकर उनके योग्यरीतिसे दर्शन किये और उनके लिए चक्रवर्तीका सन्देश सुनाया ॥९०॥ तदनन्तर-प्राप्त हुए ऐश्वर्यके मदसे जो कठोर हो रहे हैं ऐसे वे सब भाई दूतोंके द्वारा कार्यका निवेदन ही चुकनेपर परस्परमें मिलकर उनसे इस प्रकार बचन कहने लगे ॥९१॥ कि जो आदिराजा भरतने कहा है वह सच है और हम लोगोंको स्वीकार है क्योंकि पिताके न होनेपर बड़ा भाई ही छोटे भाइयोंके द्वारा पूज्य होता है ॥९२॥ परन्तु समस्त संसारको जानने-देखनेवाले हमारे पिता प्रत्यक्ष विराजमान हैं वे ही हमको प्रमाण हैं, यह हमारा ऐश्वर्य उन्हींका दिया हुआ है ॥९३॥ इसलिए हम लोग इस विषयमें पिताजीके चरणकमलोंकी आङ्गाके अधीन हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं। इस संसारमें हमें भरतेश्वरसे न तो कुछ लेना है और न कुछ देना है ॥९४॥ तथा चक्रवर्तीने हिस्सा देनेके लिए जो हम सबको आमन्त्रण दिया है अर्थात् बुलाया है उससे हम लोग बहुत सत्तुष्ट हुए हैं और गले तक तृप्त हो गये हैं ॥९५॥ इस प्रकार राजाओंकी तरह योग्य सन्मानोंसे उन दूतोंका सत्कार कर तथा भरतके लिए उपहार देकर और बदलेके पश्च लिखकर उन राजकुमारोंने दूतोंको शीघ्र ही बिदा फर दिया ॥९६॥ इस प्रकार जिन्होंने दूतोंका सन्मान कर भरतके लिए योग्य उत्तर दिया है ऐसे वे सब राजकुमार, पूज्य पिताजीका दिया हुआ कार्य उन्हींको सौंपनेके लिए उनके समीप पहुँचे ॥९७॥ जिनके पास परिमित तथा योग्य सामग्री है ऐसे उन राजकुमारोंने किसी महापर्वतके समान ऊँचे और कैलासके शिखरपर विद्यमान पूज्य पिता भगवान् बृषभदेवके जाकर दर्शन किये ॥९८॥ उन राजकुमारोंने विधिपूर्वक प्रणाम किया, विधिपूर्वक पूजा की और फिर कामदेवको नष्ट करनेवाले भगवान्से नीचे लिखे बचन कहे ॥९९॥ हे देव, हम लोगोंने आपसे ही जन्म पाया है, आपसे ही यह उल्लृष्ट विभूति पायी है और अब भी आपकी प्रसन्नताकी दृच्छा रखते हैं, हम लोग आपको छोड़कर और किसीकी उपासना नहीं

१ न्यस्तार्थन् । असकृतसंपादितप्रयोजनानित्यर्थः । २ कुमाराः । ३ अस्माकम् । ४ प्रकाशते । ५ प्रशानाः ।  
६ स्वेच्छाचारिणः । ७ सत्तोषिताः । ८ सुष्टाः । ९ कन्धरपर्यन्तम् । १० कृतप्राभृताः । ११ दूतानामायसीकृत ।  
१२ भरतायत्तोकृतसंदेशाः । १३ भरतकृतकार्यम् । १४ परिकराः । १५ कैलासशिखरमालपो यस्य ।  
१६ आराध्यामः ।

गुह्यसाद इत्युच्चेजनो वक्तव्येष केवलम् । वयं तु तदसामिक्षास्तथासादाजितश्चित्यः<sup>१</sup> ॥१०१॥  
 त्वंप्रणामानुरागानो त्वंप्रसादामिकाकृशिणाम् । त्वद्वचःकिंकरणो नो चदा तदाऽस्तु नापरम् ॥१०२॥  
 इति स्थितं प्रणामार्थं भरतोऽस्माऽऽहूषति<sup>२</sup> । तत्त्वात्र कारणं विद्यः किं मदः किञ्चु मत्वरः ॥१०३॥  
 शुभमत्प्रणामनाभ्याससंस्कुर्लितं<sup>३</sup> शिरः । नान्यप्रणमने देव धृतिं वज्जाति जातु नः ॥१०४॥  
 किमप्यरःशिरोजान्ते<sup>४</sup> सुमनोग्रन्थलालितः । तुम्हीवनान्तं<sup>५</sup> मध्येति<sup>६</sup> प्राणाम्तेऽपि मधुबतः ॥१०५॥  
 मुक्ताकलाच्छमापाय<sup>७</sup> गतानाम्बुद्धास्तुदाव । शुभमत्प्रणमोऽस्तु किं वाम्भेदुद्धम्यज्ञपि<sup>८</sup> चातकः ॥१०६॥  
 इति शुभमत्पदावजन्म<sup>९</sup> रजोरजितमस्तकः । प्रणम्भुमसदासौ<sup>१०</sup> नामिहामुत्र<sup>११</sup> च मेदमहे<sup>१२</sup> ॥१०७॥  
 परप्रणामशिमुखीं भयसंगविवर्जिताम् । वीरदीक्षा वयं धर्तुं भवत्पाद्यमुपागताः ॥१०८॥  
 तदेव कथयास्माकं हितं पथं च दर्शयत् । येनेहामुत्र च स्पाम<sup>१३</sup> त्वद्वक्तिवद्यात्मनाः ॥१०९॥  
 परप्रणामसंजातमानमङ्गमयालिगाम<sup>१४</sup> । पदबीं तावकीं<sup>१५</sup> देव भवेमहि<sup>१६</sup> भवे भवे ॥११०॥  
 मानख० इत्यसंभूतपरिभूति<sup>१७</sup> मयालिगाः । योगिनः सुखमेभन्ते वनेषु हरिभिः समम् ॥१११॥

करता चाहते ॥१००॥ इस संसारमें लोग यह 'पिताजीका प्रसाद है' ऐसा केवल कहते ही हैं परन्तु आपके प्रसादसे जिन्हें उत्तम सम्पत्ति प्राप्त हुई है ऐसे हम लोग इस वाक्यके रसका अनुभव ही कर चुके हैं ॥१०१॥ आपको प्रणाम करनेमें तत्पर, आपकी प्रसन्नताको चाहनेवाले और आपके बचनोंके किकर हम लोगोंका चाहे जो हो परन्तु हम लोग और किसीकी उपासना नहीं करता चाहते हैं ॥१०२॥ ऐसी होनेवर भी भरत हम लोगोंको प्रणाम करनेके लिए बुलाता है सो इस विषयमें उसका मद कारण है अथवा मात्रस्य यह हम लोग कुछ नहीं जानते ॥१०३॥ हे देव, जो आपको प्रणाम करनेके अभ्यासके रससे मस्त हो रहा है ऐसा यह हमारा शिर किसी अन्यको प्रणाम करनेमें सन्तोष प्राप्त नहीं कर रहा है ॥१०४॥ क्या यह राजहंस मानसरोवरमें कमलोंकी परागकी समूहसे पीले हुए जलकी सेवा कर किसी अन्य तालाबके जलकी सेवा करता है ? अर्थात् नहीं करता है ? ॥१०५॥ क्या अप्सराओंके केशोंमें लगे हुए फूलोंकी सुगन्धसे सन्तुष्ट हुआ ऋमर प्राण जानेवर भी तूंबीके बनमें जाता है अर्थात् नहीं जाता है ॥१०६॥ अथवा जो चातक नबीन मेघसे गिरते हुए मोतीके समान स्वच्छ आकाश-गत जलको पी चुका है क्या वह प्यासा होकर भी सूखते हुए सरोवरके जलको पीना चाहेगा ? अर्थात् नहीं ॥१०७॥ इस प्रकार आपके चरणकमलोंकी परागसे जिसके मस्तक रंग रहे हैं ऐसे हम लोग इस लोक तथा परलोक-दोनों ही लोकोंमें आप्तभिन्न देव और मनुष्योंको प्रणाम करनेके लिए समर्थ नहीं हैं ॥१०८॥ जिसमें किसी अन्यको प्रणाम नहीं करना पड़ता, और जो भयके सम्बन्धसे रहित है ऐसी वीरदीक्षाको धारण करनेके लिए हम लोग आपके समीप आये हुए हैं ॥१०९॥ इसलिए हे देव, जो मार्ग हित करनेवाला और मुख पहुँचाने वाला हो वह हम लोगोंको कहिए जिससे इस लोक तथा परलोक दोनों ही लोकोंमें हम लोगोंकी वासना आपकी भक्तिमें दृढ़ हो जावे ॥११०॥ हे देव, जो दूसरोंको प्रणाम करनेसे उत्पन्न हुए मानभंगके भयसे दूर रहती है ऐसी आपकी पदबीको हम लोग भवभवमें प्राप्त होते रहें ॥१११॥ मानभंगसे उत्पन्न हुए तिरस्कारके भयसे दूर रहनेवाले योगी लोग बनों

१ गुह्यसादसामर्थ्यः २ प्रसादीजित-द०, ल० । ३ अक्षिचिद् भवति तदस्तु । ४ आहातुमिच्छति । ५ गवितम् ।  
 ६ दबस्त्रीणां केशमध्यपुल्यगन्धलालितः । ७ अलाचुवनमध्यम् । ८ अभिगच्छति । ९-मापीय द०, ल० ।  
 आपाय-पीत्वा । १० पिपासन्नपि । ११ पदकमल । १२ नमस्कर्तुम् । १३ अनाप्तानाम् । १४ समर्था न  
 भवामः । १५ भवाम । लोटु । १६ अतिक्रान्ताम् । १७ तद संबन्धिनीम् । १८ प्राप्नुमः । भू प्राप्तावात्मनेऽदम् ।  
 १९ परिभव ।

द्रुवाणानिति साक्षेपं स्थापयन्नभि शास्ते । भगवानिति तानुचैस्त्रशादनुशासिता<sup>१</sup> ॥ ११३ ॥  
 महाभाना<sup>२</sup> वगुणमन्तो<sup>३</sup> वप्यस्त्रवगुणानिवाः । कथमध्यस्य संकाढा यूयं भद्रा द्विषा हृष ॥ ११४ ॥  
 भक्तिनां<sup>४</sup> किमु राज्येन जीवितेन चलेन किम् । कि च भो ग्रीवनोभादैरेक्षयं वलदृशितैः ॥ ११५ ॥  
 किं वलैर्वलिनो गम्यैः किै हैर्वैस्त्रुत्राहनैः । तप्त्युप्तिशोधनैरेभिः कि अनैरित्यनैरित्व ॥ ११६ ॥  
 भुक्तवापिै सुविरं कालं वैनं तुमिः कूलभै॑ परम् । विषयैस्तैर्लं भृकैविरभिश्चैरित्वागनैः ॥ ११७ ॥  
 किं च भो विश्वास्वादः कोऽप्यमास्वादितोऽस्ति वः । स एव पुनरास्वादः कि तेनास्वासितं भवतः ॥ ११८ ॥  
 वर्त्त शस्त्राणि भिक्षाणि शश्रवः पुत्रवास्वादः । कलत्रं सर्वभोगीणां धरा राज्यं विगीशाम् ॥ ११९ ॥  
 सुखमु तृपशारूपो<sup>५</sup> भरतो भरताधनिम् । आत्रयुप्योदयस्तावत्प्रालं श्रोऽतितिश्चया<sup>६</sup> ॥ १२० ॥  
 तेनापिै न्यायमेवेदं राज्यं भक्तिैृ यदा यदा । हेतोरशाश्वतस्यास्य युध्यत्वे वत कि मुद्धा ॥ १२१ ॥  
 तदूर्लं स्पर्शया दध्वं यूयं भर्मभावतरोः । द्याकुसुममलानि वत्तनुकिरुलप्रदभैृ<sup>७</sup> ॥ १२२ ॥  
 पराराधनैर्देव्योनं पौरायाध्यमेव यत् । तद्वो महाभिमानानां तपो मानाभिरक्षणम् ॥ १२३ ॥  
 दीक्षा रक्षा गुणा भृत्या द्वयेण प्राणवलभा । इति उत्त्वायैै स्तपोराज्यमिदं इत्याध्यपरिच्छदम् ॥ १२४ ॥

में सिंहोंके साथ सुखसे बढ़ते रहते हैं ॥ ११२ ॥ इस प्रकार आक्षेपसहित कहते हुए राजकुमारों-को अविनाशी मोक्षमार्गमें स्थित करते हुए हितोपदेशी भगवान् वृषभदेव इस प्रकार उपदेश देने लगे ॥ ११३ ॥ महा अभिमानी और उत्तम शरीरको धारण करनेवाले तथा तारुण्य अवस्था, बल और गुणोंसे सहित तुम लोग उत्तम हाथियोंके समान दूसरोंके संबाह्य अर्थात् सेवक ( पक्षमें वाहन करने योग्य सवारी ) कैसे हो सकते हो ? ॥ ११४ ॥ हे पुत्रो, इस दिनाशी राज्यसे क्या हो सकता है ? इस चंचल जीवनसे क्या हो सकता है ? और ऐश्वर्यं तथा बलसे दूषित हुए इस यीवनके उन्मादसे क्या हो सकता है ? ॥ ११५ ॥ जो बलवान् मनुष्योंके द्वारा जीती जा सकती है ऐसी सेनाओंसे क्या प्रयोजन है ? जिनकी ओरी की जा सकती है ऐसे सोना, चाँदी, हाथी, छोड़ा आदि पदार्थोंसे क्या प्रयोजन है ? और इवनके समान तृष्णारूपी अग्निको प्रज्वलित करनेवाले इस धनसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥ ११६ ॥ चिरकाल तक भोग कर भी जिनसे तृप्ति नहीं होती, उलटा अत्यन्त परिश्रम ही होता है ऐसे विष मिले हुए भोजनके समान इन विषयोंका उपभोग करना व्यर्थ है ॥ ११७ ॥ हे पुत्रो, तुमने जिसका कभी आस्वादन नहीं किया हो ऐसा भी क्या कोई विषय बाकी है ? यह सब विषयोंका वही आस्वाद है जिसका कि तुम अनेक बार आस्वादन (अनुभव) कर चुके हो फिर भला तुम्हें इनसे तृप्ति कैसे हो सकती है ? ॥ ११८ ॥ जिसमें शस्त्र मित्र हो जाते हैं, पुत्र और भाई वर्गीरह राज्य हो जाते हैं तथा सबके भोगने योग्य पृथिवी ही स्त्री हो जाती है ऐसे राज्यको चिक्कार हो ॥ ११९ ॥ जबतक पुण्यका उदय है तबतक राजाओंमें श्रेष्ठ भरत इस भरत क्षेत्रकी पृथिवीका पालन करें इस विषयमें तुम लोगोंका क्रोध करना व्यर्थ है ॥ १२० ॥ यह विनश्वर राज्य भरतके द्वारा भी जब कभी छोड़ा हो जावेगा इसलिए इस अस्थिर राज्यके लिए तुम लोग व्यर्थ ही क्यों लड़ते हो ॥ १२१ ॥ इसलिए इष्वर्या करना व्यर्थ है, तुम लोग धर्मरूपी महावृक्षके उस दयारूपी फूलको धारण करो जो कभी भी म्लान नहीं होता और जिसपर मुक्तिरूपी महाफल लगता है ॥ १२२ ॥ जो दूसरोंकी आराधनासे उत्पन्न हुई दीनतासे रहित है बल्कि दूसरे पुरुष ही जिसकी आराधना करते हैं ऐसा तपश्चरण ही महा अभिमान धारण करनेवाले तुम लोगोंके मानकी रक्षा करनेवाला है ॥ १२३ ॥ जिसमें दीक्षा ही रक्षा करनेवाली है, गुण ही सेवक है, और यह दया ही प्राणवारी स्त्री है इस

१ उपदेशकः । २ महाभिमानिनः प्रभाणादच । ३ संकाढा । ४ विनश्वरेण । ५ हर्तुं योग्यैः । ६ ग्लानिः ।  
 ७ तृप्तिः । ८ राज्ये । ९ सर्वेषां भोगेभ्यो हिता । १० नृपश्रेष्ठः । ११ अक्षमया । १२ भरतेनापि । १३ यस्मिन्  
 काले विनश्वरमिति । १४ कारणात् । १५ महाफलम् ल० । १६ श्रेष्ठम् ।

इत्याकर्ण्य विभोवाकर्णं परं निर्वेदमागताः । महाप्राकाज्यमास्थायै निष्कान्तास्ते शृणुद्वन्मः ॥१२५॥  
 निर्दिष्टां गुरुणा साक्षादीक्षां त्ववधूमिव । नवा इव वराः प्राप्य रेतुस्ते युवपार्थिवाः ॥१२६॥  
 या कचप्रहृष्टवेणै प्रणये नातिभूमिगाँै । तथा पाणिगुहीवेणै दीक्षया ते इतिै दधुः ॥१२७॥  
 तपस्तीवमयासादा ते चकासुरूपवेण्यः । स्वतेजोरुद्विशासाै ग्रीष्ममकाँशबो यथा ॥१२८॥  
 तेऽतिर्तांश्चैस्तपंयोगैस्तनूभूतां तनुं दधुः । तपोलक्ष्म्या समुक्तीर्णमिव दीक्षां लपोगुणैः ॥१२९॥  
 स्थिताः सामयिके वृत्तैै जिनकल्पविशेषिते । ते तेपिरे तपस्तीर्णं ज्ञानशुद्धयुपवृहितम् ॥१३०॥  
 वैराग्यस्य पराँै कोटीमारुद्वास्ते युगेश्वराः । स्वसाक्षकुस्तपोलक्ष्मीं राज्यलक्ष्म्यामसुखुकाः ॥१३१॥  
 तपोलक्ष्म्या परिष्वक्ताैै मुक्तिलक्ष्म्यां कृतस्थृहाः । ज्ञानसंपदसक्तास्ते राजलक्ष्मीं विस्मृहः ॥१३२॥  
 द्वादशाङ्कश्रुतस्तकमध्यमधीर्ण्यते महाशिवः । तपो भावनयास्मानमर्लचक्रः प्रकृष्ट्या ॥१३३॥  
 स्वाध्यायेन मनोरोधस्ततोऽक्षणो विनिर्जितः । इत्याकलद्य से धीराः स्वाध्यायशिवमादधुः ॥१३४॥  
 आचारांगेन निःशेषं साध्वाचारमवेदिषुः । १३५ चर्याशुद्धिमतोैै रेतुरतिक्रमैै विवर्जिताम् ॥१३५॥

प्रकार जिसकी सब सामग्री प्रशंसनीय है ऐसा यह तपरूपी राज्य ही उत्कृष्ट राज्य है ॥१२४॥  
 इस प्रकार भगवान् के वचन सुनकर वे सब राजकुमार परम वैराग्यको प्राप्त हुए और महादीक्षा  
 धारण कर धरसे बनके लिए निकल पड़े ॥१२५॥ साक्षात् भगवान् वृषभदेवके द्वारा दी हुई  
 दीक्षाको नयी स्त्रीके समान पाकर वे तरुण राजकुमार नये वरके समान बहुत ही अधिक  
 मुश्लोभित हुए थे ॥१२६॥ उपर्युक्त दीक्षा किसी विवाहिता स्त्रीके समान जान पड़ती  
 थी क्योंकि जिस प्रकार विवाहिता स्त्री कवग्रह अर्थात् केश पकड़कर बड़े प्रणय अर्थात् प्रेमसे  
 सभीप आती है उसी प्रकार वह दीक्षा भी कवग्रह अर्थात् केशलोच कर बड़े प्रणय अर्थात् शुद्ध  
 नयोंसे उनके समीप आयी हुई थी इस प्रकार विवाहिता स्त्रीके समान मुश्लोभित होनेवाली दीक्षासे  
 वे राजकुमार अन्तःकरणमें सुखको प्राप्त हुए थे ॥१२७॥ अथानन्तर जिन्होंने अपने तेजसे  
 समस्त दिशाओंको रोक लिया है ऐसे वे राजीष तीव्र तपश्चरण धारण कर ग्रीष्म ऋतुके सूर्यकी  
 किरणोंके समान अतिशय देवीप्रभान हो रहे थे ॥१२८॥ वे राजीष जिस शरीरको धारण किये  
 हुए थे वह तीव्र तपश्चरणसे कृश होनेपर भी तपके गुणोंसे अत्यन्त देवीप्रभान हो रहा था  
 और ऐसा मालूम होता था मानो तपरूपी लक्ष्मीके द्वारा उकेरा ही गया हो ॥१२९॥ वे लोग  
 जिनकल्प दिग्मवर मुद्रासे विशिष्ट सामायिक चारित्रमें स्थित हुए और ज्ञानकी विशुद्धिसे ब्रह्म  
 हुआ तीव्र तपश्चरण करने लगे ॥१३०॥ देवग्रन्थकी चरम सीमाको प्राप्त हुए उन तरुण  
 राजीयोंने राज्यलक्ष्मीसे इच्छा छोड़कर तपरूपी लक्ष्मीको अपने वश किया था ॥१३१॥ वे  
 राजकुमार तपरूपी लक्ष्मीके द्वारा आलिंगित हो रहे थे, मुवितस्त्री लक्ष्मीमें उनकी इच्छा लग  
 रही थी और ज्ञानरूपी सम्पदामें आसक्त हो रहे थे । इस प्रकार वे राज्यलक्ष्मीको बिलकुल  
 ही भूल गये थे ॥१३२॥ उन महाबुद्धिमानोंने द्वादशांगरूप श्रुतस्कन्धका अध्ययन कर तपकी  
 उत्कृष्ट भावनासे अपने आत्माको अलंकृत किया था ॥१३३॥ स्वाध्याय करनेसे मनका  
 निरोध होता है और मनका निरोध होनेसे इन्द्रियोंका निग्रह होता है यही समझकर उन  
 धीर-वीर मुनियोंने स्वाध्यायमें अपनी बुद्धि लगायी थी ॥१३४॥ उन्होंने आचारांगके

१ आश्रित्य । २ वनं प्रति गुहाशिष्कान्ताः—निर्गताः । ३ प्रकृष्टनयेन स्तेहेन । ४ सीमातिक्रान्ता । ५ तस्याः  
 पाणिदृशीं प्राप्य सुखमन्तरुपागताः प०, ल० । पत्नी । ६ संतोषम् । ७ सकलदिशः । ८ ग्रीष्मकालं प्राप्य ।  
 ९ चारित्रे । १० काष्ठा—म०, अ०, प०, द०, स०, इ०, ल० । ११ आलिंगिताः । १२ चारित्रशुद्धिम् ।  
 १३ आचाराङ्गप्रिक्षानात् । १४ अतीचार ।

जात्वा सूत्रकृते<sup>१</sup> सूक्ष्म निखिल सूक्ष्मतोऽप्यतः । धर्मक्रियात्माधाने ते दद्युः सूक्ष्मधारतास् ॥ १३६॥  
 स्थानाध्ययनं मध्यायशतैर्गम्भीरमध्यिवृत् । विगाहा तस्वरक्षानामयुस्ते भेदमञ्जसा ॥ १३७॥  
 समन्वयात्मकं ते समधीन्य सुमेधसः । इत्यादिविषयं सम्यक् समवायं मभुत्सत् ॥ १३८॥  
 स्वस्यहतारपश्चात् इत्यादिव्याप्रज्ञसिसंजितात् । साध्यवादीधर्मे धीराः प्रक्षार्थान् विविधानसी ॥ १३९॥  
 शत्रुधर्मकथा सम्यक् बुद्ध्वा षोडशनांधयन् । धर्म्यां कथामर्मोहाते यथोक्ते<sup>२</sup> महर्विणा ॥ १४०॥  
 तेऽधीर्णोपासकाध्यायमङ्गे सप्तमभूजितम् । निखिलं आवकाचारं श्रोतृभ्यः संसुषादिशत् ॥ १४१॥  
 तथान्तकुद्दशाग्रज्ञात् सुनीनम्भृत्कृतो<sup>३</sup> दश ॥ तीर्थं प्रति<sup>४</sup> विदामासुः सौदासश्चोपसर्गकान् ॥ १४२॥  
 अनुत्तरविमानौपादिकान्दशा तादशान् । शमिनो नवमाइत्याद विदाच्छकुविदीवराः ॥ १४३॥  
 प्रश्नव्याकरणात्प्रश्नमुपादाय शरीरिणाम् । सुखदुःखादिसंप्राप्तिं न्याचकुस्ते समाहिताः ॥ १४४॥  
 विपाकसूत्रमिश्रात्सदसकं मंपद्मकथः । बद्रकशास्तदुष्टिष्ठाते<sup>५</sup> तपश्चकुस्तमिद्वातः ॥ १४५॥  
 दृष्टिवादेन विश्वलिप्तिभेदा जिनागमे । ते तेनुः परमां भर्ति परं संवेगमाश्रिताः ॥ १४६॥  
 तदन्तर्गते<sup>६</sup> निःशेषश्रुततस्त्वावधारिणः । चतुर्दशमहाविद्यात्मान्यथैवत क्रमात् ॥ १४७॥

द्वारा मुनियोंका समस्त आचरण जान लिया था इसीलिए वे अतिचाररहित चर्यकी विशुद्धता-  
 को प्राप्त हुए थे ॥ १४८॥ वे शब्द और वर्थसहित समस्त सूत्रकृतांगको जानकर धर्मक्रियाओं-  
 के आचरण करनेमें सूक्ष्मधारपना अथवा मुख्यताको धारण कर रहे थे ॥ १४६॥ जो सेकड़ों  
 अध्यायोंसे समुद्रके समान गम्भीर है ऐसे स्थानाध्ययन नामके तीसरे अंगका अध्ययन कर उन्होंने  
 तत्त्वरूपी रत्नोंके भेद शीत्रे<sup>७</sup> हो जात् लिये थे ॥ १४७॥ साधीच्छात् दुष्टिको<sup>८</sup> कारण करनेवाले  
 उन राजकुमारोंने समवाय नामके चौथे अंगका अच्छी तरह अध्ययन कर द्रव्य आदिके समूह-  
 को जान लिया था ॥ १४८॥ अच्छी तरह अभ्यास किये हुए व्याख्याप्रज्ञप्ति नामके पाँचवें  
 अंगसे उन धीर-वीर राजकुमारोंने अनेक प्रकारके प्रश्न-उत्तर जान लिये थे ॥ १४९॥  
 वे धर्मकथा नामके छठे अंगको जानकर और उसका अच्छी तरह अवगम कर भृष्णि भगवान्  
 वृषभदेवके द्वारा कही हुई धर्मकथाएँ अज्ञानी लोगोंको बिना किसी श्रुटिके ठीक-ठीक बतलाते  
 थे ॥ १५०॥ अतिशय श्रेष्ठ उपासकाध्ययन नामके सातवें अंगका अध्ययन कर उन्होंने श्रोताओंके  
 लिए समस्त आवकाचारका उपदेश दिया था ॥ १५१॥ उन्होंने अन्तःकुद्दशा नामके आठवें अंगसे  
 प्रत्येक तीर्थकरके तीर्थमें असह्य उपसर्गोंको जीतकर मुक्त होनेवाले दश अन्तःकृत मुनियों-  
 का वृत्तान्त जान लिया था ॥ १५२॥ जानेवालोंमें श्रेष्ठ उन राजकुमारोंने अनुत्तरविमा-  
 नौपादिक नामके नौवें अंगसे प्रत्येक तीर्थकरके तीर्थमें असह्य उपसर्ग जीतकर अनुत्तर  
 विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले दश-दश मुनियोंका हाल जान लिया था ॥ १५३॥ वे स्थिर चित्त-  
 वाले मुनिराज प्रश्नव्याकरण नामके दशवें अंगसे प्रश्न समझकर जीवोंके सुख-दुःख आदिका  
 वर्णन करने लगे ॥ १५४॥ विपाकसूत्र नामके व्याख्यात्मके अंगसे जिन्होंने कर्मोंकी शुभ-अशुभ  
 समस्त प्रकृतियाँ जान ली हैं ऐसे वे मुनि कर्मोंका नाश करनेके लिए तत्पर हो प्रमाद छोड़कर  
 शीत्र तपश्चरण करते थे ॥ १५५॥ दृष्टिवाद नामके बारहवें अंगसे जिन्होंने समस्त दृष्टिके  
 भेद जान लिये हैं ऐसे वे राजकुमार परम संवेगको प्राप्त होकर जैनशास्त्रोंमें उल्लङ्घ भक्ति  
 करने लगे थे ॥ १५६॥ उस बारहवें अंगके अन्तर्गत समस्त श्रुतज्ञानके रहस्यका निश्चय  
 करनेवाले उन मुनियोंने क्रमसे चौदह महाविद्याओंके स्थान अथवा चौदह पूर्वोंका भी अध्ययन

<sup>१</sup> अङ्गम् । <sup>२</sup> अङ्गम् । <sup>३</sup> समूहम् । 'सनत्तापश्चययो गण' इत्वभिव्यानात् । <sup>४</sup> अवधारयन्ति सम । <sup>५</sup> ज्ञात्वा  
 ल०, द० । <sup>६</sup> यथोक्ता ल०, द० । <sup>७</sup> संसारविनाशकारिणः । <sup>८</sup> दश प्रकारान् । <sup>९</sup> तीर्थकर-प्रवत्तंसकाल-  
 मुद्दिष्य । <sup>१०</sup> तदुच्छिद्यम् प्र०, द०, स० । <sup>११</sup> द्वादशाङ्गान्तर्गत ।

ततोऽमी श्रुतनिःशेषश्रुतार्थाः श्रुतचक्षुषः । श्रुतार्थमात्रनोक्तव्याद् ददुः शुद्धि तरोत्रिधी ॥ १४८ ॥  
 वाग्देव्या सममालाषो मया मौनमनारतम् । इतीर्थेति तंत्राप्यभस्तैषु तपःक्रिया ॥ १४९ ॥  
 तनुतापसंसर्वा से वहमाना मनस्त्रियः । बाह्यमाध्यात्मिकं चोप्रं तपः सुचिरमात्रन् ॥ १५० ॥  
 ग्रीष्मेऽक्कहस्तल्लाप्ते/सूहमाना/ संदूष्यत्वात् । ते अवश्यक्तव्यात्मात्मस्तकाः ॥ १५१ ॥  
 शिलातलेषु तसेषु निवेशितपदद्वयाः । प्रलभ्यितभुजास्तस्तुर्गिर्यग्रग्रवगोचरे ॥ १५२ ॥  
 तसपांसुक्षिता भूमिदीवद्वया बनस्थर्णी । याता जलाशयाः शोषं द्विषो भूमात्मकादितः ॥ १५३ ॥  
 इत्यत्युग्रतरं ग्रीष्मे संचुर्णे गिरिकानमे । तस्थुरातपयोरेन से सोवजरडातपा.<sup>३</sup> ॥ १५४ ॥  
 मंघान्धकारिता शेषदिक्चक्रे जलदातामे । योगिलो गमयन्ति हम तस्मूलेषु शर्वरीः ॥ १५५ ॥  
 मुसलस्थूलधाराभिर्वर्धन्ते जलस्त्रिषु<sup>४</sup> । निशामनैषुर्व्यव्याधिर्वर्धन्ते शर्वरीः ॥ १५६ ॥  
 ध्यानगार्भं गृहात्माहया धृतिप्रावारसंवृताः<sup>५</sup> । सहस्रे स्तम महासर्वास्ते घनाधनधुर्दिनम् ॥ १५७ ॥  
 ते हिमानीं परिछिट्ठां तनुयस्ति हिमागमे । ददुः रम्यवकाशेषु<sup>६</sup> शायाना मौनमात्रिकाः ॥ १५८ ॥  
 ७ अनग्रसुषिता<sup>७</sup> एव नमाश्वेऽमन्निसेवितः । धृतिसंवर्मिते<sup>८</sup> रंगैः सेहिरे हिममाहतान् ॥ १५९ ॥

किया था ॥ १४७ ॥ तदनन्तर जिन्होंने समस्त श्रुतके अर्थोंका शब्दण किया है और श्रुतज्ञान ही जिनके नेत्र हैं ऐसे वे मूनि श्रुतज्ञानकी भावनाके उत्कर्षसे तपश्चरणमें विशुद्धता धारण करने लगे ॥ १४८ ॥ ये लोग सरस्वती देवीके साथ तो बातचीत करते हैं और मेरे साथ निरन्तर मौन धारण करते हैं इस प्रकार इर्ष्या करती हुईके समान तपश्चरणकी क्रिया उन्हें बहुत सन्ताप देती थी ॥ १४९ ॥ असह्य कायकलेश सहन करते हुए वे तेजस्वी मुनि अतिशय कठिन अन्तरंग और बाह्य दोनों प्रकारका तप चिरकाल तक करते रहे ॥ १५० ॥ ग्रीष्मक्रहतुमें पर्वतोंके शिखरपर आरुढ़ होकर अत्यन्त असह्य सूर्यकी किरणोंके संतापको सहन करते हुए वे आतापन योगको प्राप्त हुए थे अर्थात् धूपमें बैठकर तपस्या करते थे ॥ १५१ ॥ पर्वतोंके अग्रभागकी चट्टानोंकी तपी हुई शिलाओंपर दोनों पैर रखकर तथा दोनों भुजाएँ लटका कर खड़े होते थे ॥ १५२ ॥ जिस ग्रीष्मक्रहतुमें पृथिवी तपी हुई धूलिसे व्याप्त हो रही है, वनके सब प्रदेश दावानलसे जल गये हैं, तालाब सूख गये हैं और दिशाएँ धूएँसे अन्धकारपूर्ण हो रही हैं इस प्रकारके अत्यन्त कठिन और जिसमें पर्वतोंके बन जल गये हैं ऐसी ग्रीष्मक्रहतुमें तीव्र सन्ताप सहन करते हुए वे मुनिराज आतापन योग धारण कर खड़े होते थे ॥ १५३—१५४ ॥ जिसमें समस्त दिशाओंका समूह बादलोंके छा जानेसे अन्धकारपूर्त हो गया है ऐसी वर्षाक्रहतुमें वे योगी वृक्षोंके नीचे ही अपनी रात्रियाँ बिता देते थे ॥ १५५ ॥ जब बादल मूसलके समान मोटी-मोटी धाराओंसे पानी बरसाते थे तब वे महर्षि वर्षाक्रहतुकी उन रात्रियोंको निश्चल होकर व्यतीत करते थे ॥ १५६ ॥ ध्यानरूपी गर्भगृहके भीतर स्थित और धैर्यरूपी ओढ़नी-को ओढ़े हुए वे महाबलवान् मुनि बादलोंसे ढके हुए दुदिनोंको सहन करते थे ॥ १५७ ॥ शीत-ऋतुके दिनोंमें मौन धारण कर खुलें आकाशमें शयन करते हुए वे मुनि बहुत भारी बर्फसे अत्यन्त दुखी हुई अपने शरीरको लकड़ीके समान निश्चल धारण करते थे ॥ १५८ ॥ वे मुनि नग्न होकर भी कभी अग्निसेवन नहीं करते थे, वस्त्रोंसे सहित हुएके समान सदा निर्द्वन्द्व रहते थे

१ पर्वतशिखरपाषाणप्रदेशे । २ संदग्ध । ३ प्रवृद्धातपाः । ४ मेषेषु । ५ नवन्ति हम । ६ निश्चला निर्भया इत्यर्थः । ७ वर्षकालसंबन्धिनीम् । ८ वासगृहम् । ९ वैर्यकम्बलपरिवेष्टिः । १० हिमसंहतिः । ११—रथाव—४०, ल० । १२ तरुलतागुल्मगुहादिरहितप्रबलवायुसहितप्रदेशोषु । १३ अनग्नं यथा भवति तथा सावरणमिवेत्यर्थः । १४ स्थिताः । १५ वैर्यकवचित्तैः ।

केमनीपु<sup>१</sup> त्रियामासु स्थगिताहते<sup>२</sup> हिमोष्यवैः । प्रावारितैरिवाङ्गैः स्वैर्धीराः स्वैर्तमशोरत ॥१६०॥  
त्रिकालविषयं योगमास्थायैवं<sup>३</sup> दुरुद्दहम् । सुचिरं धारयमिति स्म धीरास्ते धृतियोगतः ॥१६१॥  
दधानास्ते तपस्तापमन्तर्दीप्तं दुरासदम् । तेऽस्त्रियैरिवाङ्गैः प्रावारितैरिवाङ्गैः शुद्धिकृतप्रतिशिखा<sup>४</sup> ते स्त्रभुजोऽजिहतं भूयो नैच्छन् भोगपरिच्छदम् । निर्भुकमालयनिःसारं भन्यमाना मर्नाविष्णः ॥१६२॥  
फेनोमिहिमस्तन्त्या अवलं जावितमशिगाम् । मन्वाना इदमासकिं भेजुस्ते पथि शाश्वते ॥१६३॥  
संसारावासनिविष्णा गृहावासाहिनिःसूताः । जैमे मार्गे चिमुक्षयङ्गे ते परा धृतिमादधुः ॥१६४॥  
इतोऽन्यदुपर्य<sup>५</sup> नास्तीत्यारुद्दद्वभावनाः । तेऽमी मनोवचःकावैः आहशुरुल्लासमाम् ॥१६५॥  
तेऽभुरुक्ता जिनग्रीने सूक्ते धर्मे सनातने । उक्तिष्वन्ते स्म मुक्त्यर्थं बदकक्षा मुमुक्षवः ॥१६६॥  
संवेगजनितशक्ताः शुद्धे वर्त्मन्यनुन्तरे । दुरापां भावयामासुस्ते महावतभावनाम् ॥१६७॥  
अहिंसा सत्यमर्थ्येवं अद्वचर्यं चिमुक्षताम्<sup>६</sup> । रात्र्यमोजनवृष्टानि भ्रतान्येतात्यमावयन् ॥१६८॥  
यावजीवं अतेवेषु से दृढीकृतसंशाराः<sup>७</sup> । त्रिविधेन<sup>८</sup> प्रतिकान्तदोषाः शुद्धिं परा दधुः ॥१६९॥  
सर्वारम्भविमिमुंका निर्मला<sup>९</sup> निष्परिप्रहाः । मार्गमाराधयञ्जैर्न एयुस्त्रृतनुयष्ट्यः ॥१७०॥

और धैर्यरूपी कवचसे उके हुए अंगोंसे शीतल पवनको सहन करते थे ॥१६१॥ शीतऋतुकी रात्रियोंमें बफके समूहसे ढके हुए वे धीर-बीर मुनिराज स्वतन्त्रतापूर्वक इस प्रकार शयन करते थे मानो उनके अंग बस्त्रसे ही ढके हों ॥१६०॥ इस प्रकार वे धीर-बीर मुनि तीनों काल-सम्बन्धी कठिन योग लेकर अपने धैर्यगृणके धोगसे उन्हें चिर काल तक धारण करते थे ॥१६१॥ अन्तरंगमें देदीप्यमान और अतिशय कठिन तपके तेजको धारण करते हुए वे मुनि तरंगोंके समान अपने अंगोंसे ऐसे जान पड़ते थे मानो समुद्रका ही अनुकरण कर रहे हों ॥१६२॥ वे बुद्धिमान् अपने-द्वारा उपभोग कर छोड़ी हुई भोगसामग्रीको भोगमें आयी हुई मालाके समान सारहीन मानते हुए फिर उसकी इच्छा नहीं करते थे ॥१६३॥ वे प्राणियोंके जीवनको केन, ओस अथवा सन्ध्याकालके बादलोंके समान चंचल मानते हुए अविनाशी मोक्षमार्गमें दृढ़ता-के साथ आसक्तिको प्राप्त हुए थे ॥१६४॥ संसारके निवाससे विरक्त हुए और घरके आवास-से छूटे हुए वे मुनिराज मोक्षके कारणभूत जिनेन्द्रदेवके मार्गमें परम सन्तोष धारण करते थे ॥१६५॥ इससे बढ़कर और कोई शासन नहीं है इस प्रकारकी मजबूत भावनाएँ जिन्हें प्राप्त हो रही हैं ऐसे वे राज्यि मन बचन कायसे भगवानुके शासनका श्रद्धान करते थे ॥१६६॥ जिनेन्द्र भगवानुके द्वारा कहे हुए और अनादिसे चले आये यथार्थं जैनधर्ममें अनुरक्त हुए वे मोक्षाभिलाषी मुनिराज मोक्षके लिए कमर कसकर छड़े हुए थे ॥१६७॥ संवेग होनेसे जिन्हें शुद्ध और सर्वश्रेष्ठ मोक्षमार्गमें अद्वान उत्पन्न हुआ है ऐसे वे मुनि कठिनाईसे प्राप्त होने योग्य महाव्रतकी भावनाओंका निरन्तर चिन्तन किया करते थे ॥१६८॥ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अहूचर्य, परिप्रहत्याग और रात्रिभोजनत्याग इन छह महाव्रतोंका वे निरन्तर पालन करते थे ॥१६९॥ जिन्होंने ऊपर कहे हुए छह व्रतोंकी जीवनपर्यान्तके लिए दृढ़प्रतिका धारण की है और मन, बचन तथा कायसे उन व्रतोंके समस्त दोष दूर कर दिये हैं ऐसे वे मुनिराज परम विशुद्धिको धारण कर रहे थे ॥१७०॥ जिन्होंने सब प्रकारके आरम्भ छोड़ दिये हैं, जो ममता-रहित हैं, परिप्रहरहित हैं और शरीररूप लकड़ीसे भी जिन्होंने ममत्व छोड़ दिया है ऐसे वे

१ हिमालीपु ल०, प० । हेममतसंबन्धिनीषु । २ आच्छादितः । ३ हिमोचवयस्थगितान्तत्वात् प्रावरणान्वितंरित्व । ४ प्रतिज्ञां कृतवा । ५ गुरुशासनात् । ६ अधिकम् । ७ निःपरिप्रहताम् । ८ दृढीकृतप्रतिज्ञा । ९ मनोवाक्कायेन । १० प्रतिक्रमणस्त्रेण निरस्त्र । ११ निर्मला ल०, इ०, अ०, स०, प०, द० ।

सर्वोपविषयिनिमूला युक्ता । अर्थे जिनोदिले । नैकलत् वालाग्रमात्रं च हिघास्तात् परिग्रहम् ॥ १७२॥  
 निमूलद्वारा स्तैर्हेऽपि वर्मचर्मनि सुस्थिताः । संतोषमावनपास्ततृष्णाः सन्तो चिजहिर् ॥ १७३॥  
 वसन्ति समानिकेतास्ते यत्रादत् भानुमानितः । तत्त्वकर्त्र कविरेशे नैस्तर्वये परमास्थिताः ॥ १७४॥  
 विविज्ञकामतसेविष्वाद् ॥ प्रामेष्वेकाहवासिनः ॥ १ पुरेष्वयि च पश्चाहात्परं तस्युर्वृष्टयेः ॥ १७५॥  
 शून्यागारदमशानादिविविकालयगोचराः ॥ २ ते वीरवसतीमेजुलजिताः सप्तमिष्टयेः ॥ १७६॥  
 तेऽभ्यन्तरमहासरवाः पाकसत्त्वैरधिष्ठिताः । गिर्यग्रकल्पारंणवसतीः प्रतिकालरम् ॥ १७७॥  
 लिहर्खर्युक्तादैलतरक्तादि निषेचिते । चनास्ते ते वसन्ति स्तम तदासितभीषणे ॥ १७८॥  
 स्फुरत्पुरुषशान्तुलग्जितप्रतिनिःस्वनैः । आगुञ्ज्यवृत्तप्रान्ते ॥ ते स्तम तिहन्यसाध्वसाः ॥ १७९॥  
 कण्ठोस्वकिंशांराणां ॥ कठोरैः ॥ कपडनिस्वनैः । श्रोक्षादिनि ॥ वने ते स्तम निवसन्त्यस्तमीतयः ॥ १८०॥  
 तृष्णकवृत्तपर्यन्ते ॥ संचरद्वाकिनिशाः ॥ ३ प्रबद्धकौशिकध्वाननिहस्तो पास्तकाननाः ॥ १८१॥  
 ४ शिवानाम् ॥ शिवैष्वनिराहवासिलदिष्टुखा । महापितृवनोहेशा निशास्त्वेभिः ॥ ५ सिषेभिः ॥ १८२॥

मुनि जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहे हुए मोक्षमार्गकी आराधना करते थे ॥ १७१॥ सब प्रकारके परिग्रहसे रहित होकर जिनेन्द्रदेवके द्वारा कहे हुए धर्मका आचरण करते हुए वे राजकुमार वाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारके कहे हुए परिग्रहोंमें से बालकी तोकके बराबर भी किसी परिग्रहकी चाह नहीं करते थे ॥ १७२॥ जिन्हें अपने शरीरमें भी ममत्व नहीं है, जो धर्मके मार्गमें स्थित हैं और सन्तोषकी भावनासे जिन्होंने तृष्णाको दूर कर दिया है ऐसे वे उत्तम मुनिराज सब जगह विहार करते थे ॥ १७३॥ परिग्रह-त्याग वतको उत्कृष्ट रूपसे पालन करनेवाले वे गृहरहित मुनिराज जहाँ सूर्य छूब जाता था वही किसी एक स्थानमें ठहर जाते थे ॥ १७४॥ वे राज्यि एकान्त और पवित्र स्थानमें रहना पसन्द करते थे इसलिए गांवोंमें एक दिन रहते थे और नगरोंमें पांच दिनसे अधिक नहीं रहते थे ॥ १७५॥ वे मुनि सात भयोंसे रहित होकर शून्यगृह अथवा श्मशान आदि एकान्त-स्थानोंमें वीरताके साथ निवास करते थे ॥ १७६॥ वे महाबलवान् राजकुमार सिंह आदि दुष्ट जीवोंसे भरी हुई पर्वतोंकी गुफाओं और जंगलोंमें ही प्रतिदिन निवास करना अच्छा समझते थे ॥ १७७॥ सिंह, रीछ, भेड़िया, व्याघ्र, चीता आदिसे भरे हुए और उन्हींके शब्दोंसे भयंकर वनके बीचमें वे मुनिराज निवास करते थे ॥ १७८॥ चारों ओर फैलते हुए व्याघ्रकी गर्जनाकी प्रसिद्धनियोंसे गौजसे हुए पर्वतके किनारोंपर वे मुनि निर्भय होकर निवास करते थे ॥ १७९॥ सिंहोंके बच्चोंकी कठोर कण्ठगर्जनासे शब्दायमान वनमें मुनिराज भयरहित होकर निवास करते थे ॥ १८०॥ जहाँ नाचते हुए शिररहित धड़ोंके समीप डाकिनियोंके समूह फिर रहे हैं, जिनके समीपके वन उल्लुकोंके प्रचण्ड शब्दोंसे भर रहे हैं और जहाँ शृगालोंके अमंगलरूप शब्दोंसे सब दिशाएँ व्याप्त हो रही हैं ऐसी बड़ी-बड़ी श्मशानभूमियोंमें रात्रिके समय वे मुनिराज निवास करते थे ॥ १८१-१८२॥

१ स्थिता प०, ल० । २ बाह्याभ्यन्तररूपेण हिघा प्रोक्तम् । ३ निर्मोहाः । ४ चिह्नस्ति स्तम । ५ अनगाराः ।  
 ६ आश्वितः । ७ प्रायाः । ८ वचिदनियतप्रदेशो । ९ आश्रिताः । १० विशुद्धिजमप्रदेशेषु स्थातुं प्रियत्वादिति भावः । ११ एकविवसवासिनः । १२ निवसन्ति स्तम । १३ एकान्तप्रदेशो गोचरविषयो येषां ते ।  
 १४ ऋक्ष-भल्लूक-बृक्ष-ईहामृगशान्तुलद्वीपितरक्षुमृगादि । १५ तेषां सिंहादीनाम् आरावैर्भयंकरे ।  
 १६ इकान्त्यवृत्तसानुमध्ये । १७ सिंहशावनाम् । १८ कठिनैः प०, ल०, द० । १९ व्यनि कुर्वति ।  
 २० समीप । २१ प्रचण्ड ल०, द० । २२ कृतशूक्निनादम्याप्त । २३ जम्बुकामाम् । २४ अमद्गालः ।  
 २५ तपोषनः । २६ सेव्यमते स्तम ।

मिहा इव नृसिंहास्ते<sup>१</sup> तस्युभिर्गुहाश्रयाः । जिलोक्त्यनुगमीः स्वाभैरनुद्दिष्टैः समाहिताः ॥ १८३ ॥  
 पाकमस्त्वं शताकीणौ वनभूमि अयानकाम्<sup>२</sup> । तेऽध्यवाससुस्तं मिलासु<sup>३</sup> निशासु ध्यानमास्थितः ॥ १८४ ॥  
 न्यपेषन्त चनोहेशान् निषेष्यान्वनद्विषितः । ते तहन्ताप्रनिषिद्धत इत्युदित्तान्तरान् ॥ १८५ ॥  
 वनेषु वनभातक्ष्यु द्वितपतिनादिनीः । दरीस्तेऽध्युषु राहैराकान्तः करिशयुमिः<sup>४</sup> ॥ १८६ ॥  
 स्वाध्याययोगसंसक्ता न स्वपन्ति स्व रात्रिषु । सूत्रार्थमावनोद्युक्ता जागरुकाः<sup>५</sup> सदा यमी ॥ १८७ ॥  
 पल्यङ्गेन निषेष्यास्ते वीरासनजुषोऽथवा<sup>६</sup> । शयाना चैक्याख्येन वार्षीरत्यक्षाहयन्<sup>७</sup> ॥ १८८ ॥  
 त्यक्षोपविमर्श धीरा न्युरस्त्राक्षा निरव्वरा । नैकिचन्यविशुद्धास्ते मुक्तिमार्गममार्गयन् ॥ १८९ ॥  
 निष्यपिक्षा निराकाङ्क्षा वायुवीध्यमुगमिनः<sup>८</sup> । अ्यहरन् वसुधामेनो समामनगराकराम् ॥ १९० ॥  
 विहरन्तो महीं कुरुनो ते क्षयाप्यनभिद्वुः<sup>९</sup> । मालुक्षेषा दयालुत्त्वापुत्रकल्पेषु देहिषु ॥ १९१ ॥  
 औवाजीवविभागका ज्ञानोद्योतस्फुरदृशः । सावर्ण परिजहस्ते प्रासुकावसथाशनाः<sup>१०</sup> ॥ १९२ ॥  
 स्यायस्त्विचित्र सावर्ण तस्यद्वं विविधेन ते । रजनित्यनुद्युद्यर्थं यावजीवमवर्जयन् ॥ १९३ ॥  
 ग्रसान् हरितकायांश्च पृथिव्यप्यवनामलाम् । जीवकायानपायेभ्यस्ते<sup>११</sup> स्व रक्षन्ति यतः ॥ १९४ ॥

सिहके समान निर्भय, सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ और पर्वतोंकी गुफाओंमें ठहरनेवाले वे मुनिराज जिनेन्द्र-देवके उपदेशके अनुसार चलनेवाले खेदरहित चित्तसे शान्त होकर निवास करते थे ॥ १८३ ॥ वे मुनिराज औंधेरी रातोंके समय सैकड़ों दुष्ट जीवोंसे भरी हुई भयंकर वनकी भूमियोंमें ध्यान धारण कर निवास करते थे ॥ १८४ ॥ जो जंगली हाथियोंके द्वारा सेवन करने योग्य हैं तथा जिनके मध्यभाग हाथियोंके दीतोंके अच्छभागसे दूटे हुए बृक्षोंसे ऊचे नीचे हो रहे हैं ऐसे वन-के प्रदेशोंमें वे महामुनि निवास करते थे ॥ १८५ ॥ जिनमें जंगली हाथियोंकी मर्जनाकी प्रतिष्ठनि हो रही है और उस प्रतिष्ठनिसे कुपित हुए सिंहोंसे जो भर रही है ऐसी वनकी गुफाओंमें वे मुनि निवास करते थे ॥ १८६ ॥ वे मुनिराज स्वाध्याय और ध्यानमें आसक्त होकर रात्रियोंमें भी नहीं सोते थे, किन्तु सूत्रोंके अर्थके चिन्तवनमें तत्पर होकर सदा जागते रहते थे ॥ १८७ ॥ वे मुनिराज पर्यंकासनसे बैठकर, वीरासनसे बैठकर अथवा एक करवट-से ही सोकर रात्रियों बिता देते थे ॥ १८८ ॥ जिन्होंने परिग्रहका भार छोड़ दिया है, शरीरसे भमत्व दूर कर दिया है, जो वस्त्ररहित हैं और परिग्रहत्यागसे जो अत्यन्त विशुद्ध हैं ऐसे वे धीर-न्दीर मुनि मोक्षका मार्ग ही खोजते रहते थे ॥ १८९ ॥ किसीकी अपेक्षा न करनेवाले, आकांक्षाओंसे रहित और आकाशकी तरह निर्लेप वे मुनिराज गाँव और नगरोंके समूहसे भरी हुई इस पृथिवीपर विहार करते थे ॥ १९० ॥ समस्त पृथिवीपर विहार करते हुए और किसी भी जीवसे द्वेष नहीं करते हुए वे मुनि दयालु होनेसे समस्त प्राणियोंको पुक्के तुल्य मानते थे और उनके साथ माताके समान व्यवहार करते थे ॥ १९१ ॥ वे जीव और अजीवके विभाग-को जाननेवाले थे, ज्ञानके प्रकाशसे उनके नेत्र देवीव्यमान हो रहे थे अथवा ज्ञानका प्रकाश ही उनका स्फुरायमान नेत्र था, वे प्रासुक अर्थात् जीवरहित स्थानमें ही निवास करते थे और उनका भोजन भी प्रासुक ही था, इस प्रकार उन्होंने समस्त सावर्ण भोगका परिहार कर दिया था ॥ १९२ ॥ उन मुनियोंने रत्नत्रयकी विशुद्धिके लिए, संसारमें जितने सावर्ण ( पापारम्भ-सहित ) कार्य हैं उनका जीवन पर्यन्तके लिए त्याग कर दिया था ॥ १९३ ॥ वे ग्रसकाय, वनस्पति

१ पुरुषवेष्टा । २ अखेदितः । ३ कूरमृग । ४ भयंकराम् । ५ निवसन्ति स्व । ६ अन्धकारवतीषु 'तमिला तामसी रात्रिः' इत्यभिज्ञानात् । ७ आधितः । ८ निम्नोन्नतमध्यान् । ९ अधिवसन्ति स्व । १० सिहः । ११ जागरणशीलः । १२ वा । १३ नयन्ति स्व । १४ आयुवज्ञःपरिग्रहा इत्यर्थः । १५ अधातुकः । १६ निरवद्यान्तसाहाराः । १७ अपसार्य ।

अदीनमनसः शान्ताः परमोपेक्षयाम्बिताः । ३ मुक्तिशाठ्यास्त्रिभिर्गुप्ताः काममोगेष्विद्विमिताः ॥ १९५॥  
 जिनाज्ञानुगताः शश्वसंसारोहिममानसाः । गर्भवासैजरामृत्युपरिवर्तमभीरवः ॥ १९६॥  
 श्रुतज्ञानदशो दृष्टपरमार्था विचक्षणाः । ज्ञानदीपिकया साक्षात्कुस्ते पदमधरम् ॥ १९७॥  
 ते चिरं भावयन्ति सम सन्मार्गं मुक्तिशाश्वनम् । परदत्तविशुद्धात्मभोजिनः पाण्यमत्रकाः ॥ १९८॥  
 शक्तिमिहतो हिष्टक्यक्रीतादि॑ लक्षणम् । सूत्रे॒ निषिद्धमाहारे लैष्वल्पाणाम्यचेऽपि ते ॥ १९९॥  
 मिक्षां निशतवेलायां गृहपक्षस्यतिक्रमात् । तुद्वामाददिरे धीरा मुनिषुलौ॒ समाहिताः ॥ २००॥  
 शीतमुषां विरुद्धं च जिम्बं सलवर्णं न च । ततु स्थित्यर्थमाहारमाजद्वते॑ गतस्तुहाः ॥ २०१॥  
 अशक्तश्चणमार्थं त प्राणधृत्य॑ विषव्युः॒ । धर्मर्थसंवृ॑ च प्राणान् धारयन्ति सम केवलम् ॥ २०२॥  
 न तु द्यन्ति सम ते लठ्ठौ॑ व्यष्टीश्वाम्यलविधितः । मन्यमानास्तपोलाभसंविकं धुतकश्चमवाः ॥ २०३॥

काय, पृथिवीकाय, जलकाय, वायुकाय और अग्निकाय इन छह कायके जीवोंकी बड़े यत्न-  
 से रक्षा करते थे ॥ १९४॥ उन मुनियोंका हृदय दीनतासे रहित था, वे अत्यन्त शान्त थे,  
 परम उपेक्षासे सहित थे, मोक्ष प्राप्त करना ही उनका उद्देश्य था, तीन गुणियोंके घारक थे  
 और काम भोगोंमें कभी आश्चर्यं नहीं करते थे ॥ १९५॥ वे सदा जिनेन्द्रदेवकी आश्चाके अनु-  
 सार चला करते थे, उनका हृदय संसारसे उदासीन रहा करता था और वे गर्भमें निवास करना,  
 दुःखा और मृत्यु इन तीनोंके परिवर्तनसे सदा भयभीत रहते थे ॥ १९६॥ श्रुतज्ञान ही जिनके  
 नेत्र हैं और जो परमार्थको अच्छी तरह जीनते हैं ऐसे वे चतुर भुनिराज॑ शान्तरूपी दीपिका-  
 के द्वारा अविनाशी परमात्मपदका साक्षात्कार करते थे ॥ १९७॥ जो दूसरेके द्वारा दिये हुए  
 विशुद्ध अन्तका भोजन करते हैं तथा हाथ ही जिनके पात्र हैं ऐसे वे मुनिराज मोक्षके कारणस्वरूप  
 समीचीन मार्गका निरन्तर चिन्तन करते रहते थे ॥ १९८॥ अर्थात् जिसमें ऐसी  
 शंका हो जावे कि यह शुद्ध है अथवा अशुद्ध, अभिहृत अर्थात् जो किसी दूसरेके यहाँसे लाया  
 गया हो, उद्दिष्ट अर्थात् जो खासकर अपने लिए तैयार किया गया हो, और क्रयक्रीत अर्थात्  
 जो कीमत देकर बाजारसे खरीदा गया हो इत्यादि आहार जैन शास्त्रोंमें मुनियोंके लिए निषिद्ध  
 बताया है । वे मुनिराज प्राण जानेपर भी ऐसा निषिद्ध आहार लेनेकी इच्छा नहीं करते  
 थे ॥ १९९॥ मुनियोंकी वृत्तिमें सदा सावधान रहनेवाले वे धीर-बीर मुनि घरोंकी पंक्तियोंका  
 उल्लंघन न करते हुए निश्चित समयमें शुद्ध भिक्षा ग्रहण करते थे ॥ २००॥ जिनकी लालसा  
 नष्ट हो चुकी है ऐसे वे मुनिराज शरीरकी स्थितिके लिए ठण्डा, गरम, रुक्षा, चिकना, नमक-  
 सहित अथवा बिना नमकका जैसा कुछ प्राप्त होता था वैसा ही आहार प्रहण करते थे ॥ २०१॥  
 वे मुनि प्राण धारण करनेके लिए अक्षम्भूषण मात्र ही आहार लेते थे और केवल धर्मसाधन  
 करनेके लिए ही प्राण धारण करते थे । भावार्थ – जिस प्रकार गाढ़ी ओंगनेके लिए थोड़ी-  
 सी चिकनाईकी आवश्यकता होती है भले ही वह चिकनाई किसी भी पदार्थकी हो इसी प्रकार  
 शरीररूपी गाढ़ीको ठोक-ठीक चलानेके लिए कुछ आहारकी आवश्यकता होती है भले ही  
 वह सरस या नीरस कैसा ही हो । अल्प आहार लेकर मुनिराज शरीरको स्थिर रखते हैं और  
 उससे संयम धारण कर मोक्षकी प्राप्ति करते हैं वे मुनिराज भी ऐसा ही करते थे ॥ २०२॥  
 वे पापरहित मुनिराज, आहार मिल जानेपर सन्तुष्ट नहीं होते थे और नहीं मिलनेपर तपश्चरण

१ मुक्तसाध्या ३०, प०, इ०, स० । मुक्तिसाध्या ल० । २ जन्म । ३ पाणिपालकाः द०, ल०, स०, इ० ।  
 पाणिपृष्ठभाजनाः । ४ स्थूलतण्डुलाशनादिकं दस्वा स्वीकृत कलमोदनादिक । ५ आत्मानमुद्दिश्य । ६ पणादिकं  
 दस्वा स्वीकृतम् । ७ परमागमे । ८ निषेचितम् । ९ गत्याचारे । १० आददुः । ११ प्राणधारणार्थम् ।  
 १२ भुक्तते स्म । १३ धर्म-निमित्तम् । १४ लाभे सति ।

सुन्ति निन्दा सुखं दुःखं तथा मानं<sup>१</sup> विमाननाम्<sup>२</sup> । सममादेन लेऽपदधन् सर्वेन समदर्शिनः ॥२०४॥  
वाचं वमस्त्वं मात्राय चरन्तो<sup>३</sup> गोचराधिनः । निर्यान्ति स्माप्यलाभेन नामञ्च मौनसंगरम्<sup>४</sup> ॥२०५॥  
महोपवासम्भानाङ्गा यतस्ये स्म तनुस्थितौ । तत्राप्यज्ञुदमाहारं<sup>५</sup> नैविषुर्मनसाऽप्यमी ॥२०६॥  
गोचराग्रणता<sup>६</sup> योग्यं भुक्तवाच्छमित्यत्म्<sup>७</sup> । प्रत्याख्याय<sup>८</sup> पुनर्बीरा निर्यथुहने तपोवनम् ॥२०७॥  
तपस्तापतन् भूततम्बोऽपि सुनीश्वराः । अनुबद्धात्मयोगाङ्ग<sup>९</sup> चेतुर्दसंगराः<sup>१०</sup> ॥२०८॥  
तीव्रं तपस्यता<sup>११</sup> सेषा गात्रेषु क्षुथताऽमवद् । प्रतिज्ञा या हु सद्भ्यानमिद्वावशिभिलैव सा ॥२०९॥  
नाभूत्परिष्वै भङ्गस्तेषां चिरमुपोषुषाम् । गताः परिषदा एव भङ्गं तान् जेतुमक्षमाः ॥२१०॥  
तपस्तन्नपात्तापाद<sup>१२</sup> भूतेषां परायुतिः । निष्टस्थ सुवर्णस्य दीसिर्वन्वतिरेकिणी<sup>१३</sup> ॥२११॥  
तपोऽप्नितस्तीपाङ्गास्तेऽन्तःशुद्धिं परां दधुः । तपायां तनुमूषायां शुद्धयत्यात्मा हि इमवत् ॥२१२॥  
त्वगस्थिमात्रवेहास्ते ध्यानशुद्धिमधुस्तराम् । सर्वं हि परिकर्मेद<sup>१४</sup> बाहुप्रत्यामयुद्धये ॥२१३॥  
योगज्ञाः सिद्धप्रस्तेषामणिमादिगुणद्वयः । प्रादुरासन्विद्युद्धं हि तपः सुहे महस्तलम् ॥२१४॥

रूपी अधिक लाभ समझते हुए विषाद नहीं करते थे ॥२०३॥ सब पदार्थोंमें समान दृष्टि रखने-  
वाले वे मनि स्तूति, निन्दा, सुख, दुःख तथा मान-अपमान सभीको समान रूपसे देखते थे ॥२०४॥  
वे मुनि मौन धारण करके इयसिमितिसे गमन करते हुए आहारके लिए जाते थे और आहार  
न मिलनेपर भी मौनव्रतकी प्रतिज्ञा भंग नहीं करते थे ॥२०५॥ अनेक महोपवास करनेसे  
जिनका शरीर म्लान हो गया है ऐसे वे मुनिराज केवल शरीरकी स्थितिके लिए ही प्रयत्न करते  
थे परन्तु अशुद्ध आहारकी मनसे भी कभी इच्छा नहीं करते थे ॥२०६॥ गोचरीकृत्तिके धारण  
करनेवालोंमें मुख्य वे धीर-वीर मुनिराज शीघ्र ही योग्य अन्नका भोजन कर तथा आगेके लिए  
प्रत्याख्यान कर तपोवनके लिए चले जाते थे ॥२०७॥ यद्यपि तपश्चरणके सन्तापसे उनका  
शरीर कृश हो गया था तथापि दृढप्रतिज्ञाको धारण करनेवाले वे मुनिराज प्रारम्भ किये हुए  
तपसे विराम नहीं लेते थे ॥२०८॥ तीव्र तपस्था करनेवाले उन मुनियोंके शरीरमें यथापि  
शिथिलता आ गयी थी तथापि समीचीन ध्यानकी सिद्धिके लिएजो उनकी प्रतिज्ञा थी वह शिथिल  
नहीं हुई थी ॥२०९॥ चिरकाल तक उपवास करनेवाले उन मुनियोंका परीषहोंके ढारा  
पराजय नहीं हो सका था बल्कि परीषह ही उन्हें जीतनेके लिए असमर्थ होकर स्वयं पराजय-  
को प्राप्त हो गये थे ॥२१०॥ तपरूपी अग्निके सन्तापसे उनके शरीरकी कान्ति बहुत ही  
उत्कृष्ट हो गयी थी सो ठीक ही है क्योंकि तपे हुए सुवर्णकी दीप्ति बढ़ ही जाती है ॥२११॥  
तपश्चरणरूपी अग्निसे तप्त होकर जिनके शरीर अतिशय देवीप्रयमान हो रहे हैं ऐसे वे मुनि-  
राज अन्तरंगकी परंम विशुद्धिको धारण कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि शरीररूपी मूसा  
(सीचा) तपाये जानेपर आत्मा सुवर्णके समान शुद्ध हो ही जाती है ॥२१२॥ यद्यपि उनके  
शरीरमें केवल चमड़ा और हड्डी ही रह गयी थी तथापि वे ध्यानकी उत्कृष्ट विशुद्धता धारण  
कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि उपवास आदि समस्त बाह्य साधन केवल आत्मशुद्धिके लिए  
ही है ॥२१३॥ योगके प्रभावसे उत्पन्न होनेवाली अणिमा महिमा आदि क्रद्धियाँ उन मुनियों-  
के प्रकट हो गयी थीं सो ठीक ही है क्योंकि विशुद्ध तपबहुत बड़े-बड़े फल उत्पन्न करता है ॥२१४॥

१ पूजाम् । २ अक्षाम् । ३ मौनित्वम् । ४ गोचर । ५ मौनप्रतिज्ञाम् । ६ इच्छां न चक्षुः ।  
७ गोचरभिक्षायां मुहूर्तां गताः । ८ शीघ्रम् । ९ प्रत्याख्यानं गृहीत्वा । १० - लारेम्-  
अ०, स०, इ० प०, द० । ११ दृढप्रतिज्ञाः । १२ तपः कुर्वताम् । १३ तपोऽप्नितसंतापाद् ।  
१४ न व्यतिरेकिणी ल०, द० । १५ बनशनादि ।

तपोमयः प्रणीतोऽस्मि: कर्माण्णाहुतयोऽभवन् । विधिगास्ते सुयज्वानो मन्त्रः स्वायंमुक्तं बचः ॥ २१५॥  
 महाब्रह्मसिद्धेवो वृषभो दक्षिणा॑ दया । फलं कामित्यसिद्धिरपवर्णः क्रियावधिः ॥ २१६॥  
 'दर्तामामार्थमीमिदि॒ मन्त्रिलंघाय तेऽभ्यसा । प्राणीकृतं अनूचाना॑ स्वपोयज्जमनुत्तरम् ॥ २१७॥  
 इत्यमनगारणां परां संगीर्थं॑ मावनाम् । ते तथा॑ निर्वहन्ति सम निसर्गोऽप्य महावसाम् ॥ २१८॥  
 किमत्र बहुता धर्मक्रिया यावद्यविष्टुता । तां कृत्वां ते स्वसाक्षकुस्यकराजन्यविक्रियाः॑ ॥ २१९॥

## वसन्ततिलकायृत्तम्

इत्यं पुराणपुरुषादधिगम्य शोधि

तत्त्वीर्थमानससरःप्रियराजहंसाः ।

ये राज्यभूमिमवध्ये॑ विधूतमोहाः ।

प्राणाजिपुर्मरतराजमनस्तुकामाः॑ ॥ २२०॥

ते धीरत्रा॑ सुनिवरा॑ पुरुषैयसारा॑ ।

धीरामगारचरितेषु॑ कृतावधानाः ।

योगीश्वरात्॑ गतमार्यमनुप्रपञ्चाः ।

शौ॑ लो॑ दिशस्त्वयिललोकहितैकतानाः॑ ॥ २२१॥

जिसमें तपश्चरण ही संस्कारकी हुई अग्नि थी, कर्म ही आहुति अर्थात् होम करने योग्य द्रव्य थे, विधिविधानको जाननेवाले वे मुनि ही होम करनेवाले थे । श्री जिनेन्द्रदेवके बचन ही मन्त्र थे, भगवान् वृषभदेव ही यज्ञके स्वामी थे, दया ही दक्षिणा थी, इच्छित बस्तुकी प्राप्ति होना ही फल था और मोक्षप्राप्त होना ही कार्यकी अन्तिम अवधि थी । इस प्रकार भगवान् अष्टभदेवके द्वारा कहे हुए यज्ञका संकल्प कर उन तपस्वियोंने तपरूपो थेष्ठ यज्ञको प्रवृत्ति चलायी थी ॥ २१५-२१७ ॥ इस तरह वे मुनि, मुनियोंकी उल्कष्ट भावनाकी प्रतिज्ञा कर उसका अच्छी तरह निवाह करते थे सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंका यह स्वभाव ही है ॥ २१८ ॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है उन सब मुनियोंने राज्यव्यवस्थामें होनेवाले समस्त विकार भावोंको छोड़कर अनादि कालसे जितनी भी वास्तविक क्रियाएँ चली आती थीं उन सबको अपने अधीन कर लिया था ॥ २१९ ॥

इस प्रकार पुराणपुरुष भगवान् आदिनाथसे रत्नशयकी प्राप्ति कर जो उनके तीर्थरूपी मानससरोबरके प्रिय राजहंस हुए थे, जिन्होंने राज्यभूमिका परित्याग कर सब प्रकारका मोह छोड़ दिया था, जो भरतराजको नमस्कार नहीं करनेकी इच्छासे ही दीक्षित हुए थे, उल्कष्ट बैयं ही जिनका बल था, जो धीर-वीर मुनियोंके आचरण करनेमें सदा सावधान रहते थे, जो योगिराज भगवान् वृषभदेवके द्वारा अंगीकार किये हुए मार्गका पालन करते थे और जो

१ संस्कृताश्विनः 'प्रणीतः संस्कृतानलः' इत्यभिवानात् । २ तपोधनाः । ३ महायज्ञ । ४ होमात्ते पाचकादीनां देयद्रव्यम् । ५ क्रियावसानः । ६ अष्टभसंबन्धिनीभूम् । ७ यजनम् । ८ चक्रः । ९ प्रवचने साड़े अष्टीतिनः । 'अनूचानः प्रवचने साड़मेऽपोती' इत्यभिवानात् । १० प्रतिज्ञां कृत्वा । ११ संवहन्ति रूप स०, ल० । १२ त्यक्तराजसमूहविकाराः । १३ त्यक्तव्येत्यर्थः । १४ नमस्कारं न कर्तुकामाः । १५ पुरोः संबन्धिनः । १६ यस्याचारेषु । १७ अष्टीकृत्य । १८ सुखम् । १९ वो प०, स०, ल० । नः अस्माकम् । २० जनहितेऽनन्यवृत्तयः ।

शादूलविक्रीडितम्

नामा विश्वसृजं चराचरणुर्देवं दिक्षाशाचितं

नाम्यस्य प्रणाति वज्राम इति ये दीक्षां परां संभिताः ।

ते नः सन्तु तपोविशुतिसुचितां स्वीकृत्य सुचितियां

बद्वेच्छाबृष्टमात्मजा जिनजुषाम् भेसराः श्रेयसे ॥२२२॥

स श्रीमान् भरतेश्वरः प्रणिधिभिर्यात्महृषी नामयत्

संभोज्य निखिलां विभज्य वस्त्रां स्वार्द्धं च यैर्निश्चक्षत् ।

निर्बाणाय पितृष्ठभं जिनजुषं ये शिशियुः श्रेयसे

ते नो मानधना हरन्तु दुरितं विद्युष्कर्मेष्वनाः ॥२२३॥

इत्यावै भगवज्जनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपट्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे

भरतराजानुजदीक्षावर्णसं नाम चतुर्लिंगशतमं पर्व ॥३४॥

■

समस्त लोकका हित करनेवाले थे ऐसे वे भगवान् वृषभदेवके पुत्र तुम सबका कल्याण करें ॥२२०-२२१॥ अस और स्थावर जीवोंके गुरु तथा इन्द्रोंके द्वारा पूज्य भगवान् वृषभदेवको नमस्कार कर अब हम किसी दूसरेको प्रणाम नहीं करेंगे ऐसा विचार कर जिन्होंने उत्कृष्ट दीक्षा धारण की थी, जिन्होंने योग्य तपश्चरणरूपी विशुतिको स्वीकार कर मोक्षरूपी लक्ष्मीके प्रति अपनी इच्छा प्रकट की थी और जिनेन्द्र भगवान्‌की सेवा करनेवालोंमें सबसे मुख्य है ऐसे भगवान् वृषभदेवके पुत्र हम सबके कल्याणके लिए हों ॥२२२॥ वह प्रसिद्ध श्रीमान् भरत अपने दूतोंके द्वारा जिन्हें नम्रता प्राप्त नहीं करा सका और न विभाग कर जिनके साथ समस्त पृथिवीका उपभोग ही कर सका तथा जिन्होंने निर्विणके लिए अपने पिता श्री जिनेन्द्रदेवका आश्रय लिया ऐसे अभिमानरूपी धनको धारण करनेवाले और कर्मरूपी इंधनको जलानेवाले वे सुनिखण्ड हम सब लोगोंके पापोंका नाश करें ॥२२३॥

इस प्रकार आर्णनामसे प्रसिद्ध भगवज्जनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपट्टिलक्षण महापुराण

संग्रहके भाषानुवाकमें भरतराजके छोटे भाइयोंकी दीक्षाका वर्णन

करनेवाला चौतीसवीं पर्व समाप्त हआ ।

■

१ इन्द्र । २ जिन जूषन्ते सेवन्ते इति जिनजुषः तषाम् । ३ चरे । 'प्रणिषिः प्रार्थने चरे' इत्यनिधानात् । ४ समर्थी नाभूत् । ५ आथर्यन्ति सम् ।

## पञ्चश्रिंशासनं पर्व

अथ चक्रधरस्यासीत् किञ्चित् चिन्ताकुलं ममः । दोऽर्किष्मयनुभेतम्ये<sup>१</sup> युनि दीदेपंशालिनि ॥१॥  
 एवम् आद्याज्ञोऽस्माकं नाभिनन्दयति<sup>२</sup> नन्दद्युम्<sup>३</sup> । सनाभित्वादवस्थ्यत्वं मध्यमानोऽयमात्मनः ॥२॥  
 अवध्यं<sup>४</sup> शतमित्यास्था नूर्जं आत्मातस्थं नै । यतः<sup>५</sup> प्रणामविसुलं गतवाचः<sup>६</sup> प्रसीपताम्<sup>७</sup> ॥३॥  
 न तथाऽस्मादशा खेदो भवत्प्रश्नते द्विषि । युग्मविंश्य यथा जालिवर्णेऽन्तर्गतं हवर्तिनि ॥४॥  
 सुखैरनिष्टव्याग्निदीपितैरतिष्ठुमिताः । दहस्यलातव्य इवाः<sup>८</sup> प्रातिकूल्याविलेरिताः ॥५॥  
 प्रतीपहृत्यः<sup>९</sup> कामं सन्तु यान्ये कुमारकाः । यात्यात् प्रभृति येऽस्माभिः स्वातन्त्र्येणोपलालिताः ॥६॥  
 युवा तु दोर्जली प्राङ्गः कमलः प्रश्रवी<sup>१०</sup> पद्मः । कथं नाम गतोऽस्मासु विकिर्याः<sup>११</sup> सुजनोऽपि सन् ॥७॥  
 कथं च सोऽनुभेतम्यो<sup>१२</sup> बली मानधनोऽधुना । यथाह यस्य दोषेणः क्षाप्यते रणनूर्दनि ॥८॥  
 सोऽयं सुजबली बाहुबलशाली भदोद्धतः । महानिष गजो मात्रन् तुर्महोऽनुनयैर्विना ॥९॥  
 न स सामान्यसंदेशैः प्रङ्गीभवति तुमंदी । प्रहो दुष्ट इवाविष्टो<sup>१३</sup> मन्त्रविद्याचर्णैर्विना<sup>१४</sup> ॥१०॥

अथानन्तर भुजाओंके गर्वसे शोभायमान युवा बाहुबलीको वश करनेके लिए चक्रवर्ती-का मन कुछ चिन्तासे आकुल हुआ ॥१॥ वह विचारने लगा कि यह हमारे भाइयोंका समूह एक ही कुलमें उत्पन्न होनेसे अपने-आपको अवध्य मानता हुआ हमारे आनन्दका अभिनन्दन नहीं करता है अर्थात् हमारे आनन्द-वैभवसे दृष्ट्या रखता है ॥२॥ हमारे भाइयोंके समूहका यह विश्वास है कि हम सौ भाई अवध्य हैं इसीलिए ये प्रणाम करनेसे विमुख होकर मेरे शाश्वत हो रहे हैं ॥३॥ किसी शशुके प्रणाम न करनेपर मुझे बैसा खेद नहीं होता जैसा कि घरके भीतर रहनेवाले मिथ्याभिमानी भाइयोंके प्रणाम नहीं करनेसे हो रहा है ॥४॥ अनिष्ट वचन-रूपी अग्निसे उद्दीपित हुए मुखोंसे जो अत्यन्त धूमसहित हो रहे हैं और जो प्रतिकूलसारूपी वायुसे प्रेरित हो रहे हैं ऐसे ये मेरे निजी भाई गलातचक्की तरह मुझे जला रहे हैं ॥५॥ जिन्हें हमने बालकपनसे ही स्वतन्त्रतापूर्वक खिला-पिलाकर बड़ा किया है ऐसे अन्य कुमार यदि मेरे विरुद्ध आचरण करनेवाले हों तो खुशीसे हों परन्तु बाहुबली तरण, बुद्धिमान, परिपाटी-को जाननेवाला, विनयी, चतुर और सज्जन होकर भी मेरे विषयमें विकारको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥६-७॥ जो अतिशय बलवान् है, मानरूपी धनसे युक्त है, और विजयका अंग स्वरूप जिसकी भुजाओंका बल युद्धके अग्रभागमें बड़ा प्रशासनीय गिना जाता है ऐसे इस बाहुबलीको हस समय किस प्रकार अपने अनुकूल बनाना चाहिए ॥८॥ जो भुजाओंके बलसे शोभायमान है और अभिमानरूपी भदसे उद्धत हो रहा है ऐसा यह बाहुबली किसी मदोन्मत्त बड़े हाथीके समान अनुनय अर्थात् शान्तिसूचक कोमल वचनोंके बिना वश नहीं हो सकता ॥९॥ यह अहंकारी बाहुबली सामान्य सन्देशोंसे वश नहीं हो सकता क्योंकि शरीरमें जुसा हुआ दुष्ट पिशाच

१ बाहुबलिकुमारे । २ वशीकर्तुं योग्ये सति । ३ नाभिवद्यति । ४ आनन्दम् । ५ आत्मगणः । ६ बहुजन एकपुरुषेणावध्य इति बुद्धया । ७ आत्मगणस्य प०, ल०, द० । ८ यस्मात् कारणात् । ९ प्राप्तस्म् । १० प्रतिकूलवत्वम् । ११ आत्मवाचः । १२ प्रतिकूलवत्तताः । १३ विनयवान् । १४ विकारम् । १५ स्वीकार्यः । १६ प्रवेशितः । १७ प्रतीतः । समर्थरित्यर्थः ।

शेषक्षत्रिययूनां च तस्य चास्यन्तरे<sup>१</sup> महत् । मृगसामान्यं सानायैर्थतु<sup>२</sup> कि शब्दयते हरिः ॥११॥  
सोऽभेदो नीतित्तुच्छालू दण्डसाक्षो न विक्रमी । जैव सामययोगस्य विषयो विकृताशयः ॥१२॥  
उवलर्येव स तेजस्वी एमेहेनोपकृतोऽपि खन् । यृतामुलिप्रसंकेन यथेद्वार्चिर्मत्वानिलः<sup>३</sup> ॥१३॥  
स्वभावपरवे चास्मिन् प्रयुक्तं साम नार्थकृद् । वपुषि द्विरदस्येव योजितं छच्यमौषधम् ॥१४॥  
प्रायो व्याघ्रायात् पृष्ठास्य भावः शैवैः कुमारकैः । मदाशाधिमुखैस्यकराज्यभोगीर्वनोन्मुखैः<sup>४</sup> ॥१५॥  
भूषोऽप्यनुनयैरस्य परीक्षिष्यामहे मतम्<sup>५</sup> । तथाप्यप्रणते तस्मिन् विषेयं चित्स्यमुत्तरम् ॥१६॥  
ज्ञातिष्याजनिगृदास्तविंक्रियो<sup>६</sup> निष्पत्तिक्रियः । सोऽन्तर्ग्रहोथिथो वहिरिवाशेषं दहेत् कुलम्<sup>७</sup> ॥१७॥  
अन्तःप्रकृतिजः<sup>८</sup> कोषो विचालाय प्रभोर्मतः । तस्माक्षात्प्रसंघद्वजमा वहिर्यथा गिरेः ॥१८॥  
तदाशु प्रसिकतर्यं स अली बक्तो श्रितः । क्रूरे ग्रह इवासुमिन् प्रशान्ते शान्तिरेव नः ॥१९॥  
इति निश्चिय कार्यज्ञं दूतं मन्त्रविशारदम् । तत्रान्तं प्राहिणोषकी निसृष्टार्थतयाऽन्वितम्<sup>९</sup> ॥२०॥

मन्त्रविश्वामें चतुर पुरुषोंके बिना वश नहीं हो सकता ॥१०॥ शेष क्षत्रिय युवाओंमें और बाहुबलीमें बड़ा भारी अन्तर है, साधारण हरिण यदि पाशसे पकड़ लिया जाता है तो क्या उससे सिंह भी वैकड़ा जा सकता है ? अर्थात् नहीं । अवार्ध-हरिण और सिंहमें जितना अन्तर है उतना ही अन्तर अन्य कुमारों तथा बाहुबलीमें है ॥११॥ वह नीतिमें चतुर होनेसे अभेद्य है, अर्थात् फोड़ा नहीं जा सकता, पराक्रमी है इसलिए युद्धमें भी वश नहीं किया जा सकता और उसका आशय अत्यन्त विकारथुक्त हो रहा है इसलिए उसके साथ शान्तिका भी प्रयोग नहीं किया जा सकता । भावार्ध-उसके साथ भेद, दण्ड और साम तीनों ही उपायोंसे काम लेना व्यर्थ है ॥१२॥ जिस प्रकार यज्ञकी अग्नि धीकी आहुति पड़नेसे और भी अधिक प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार वह तेजस्वी बाहुबली स्नेह अर्थात् प्रेमसे उपकृत होकर और भी अधिक प्रज्वलित हो रहा है - क्रोधित हो रहा है ॥१३॥ जिस प्रकार हाथीके शरीरपर लगायी हुई चमड़ाको कोमल करनेवाली ओषधि कुछ काम नहीं करती उसी प्रकार स्वभावसे ही कठोर रहनेवाले इस बाहुबलीके विषयमें साम उपायका प्रयोग करना भी कुछ काम नहीं देगा ॥१४॥ जो मेरी आज्ञासे विमुख हैं, जिन्होंने राज्यभोग छोड़ दिये हैं और जो बनमें जानेके लिए उन्मुख हैं ऐसे बाकी समस्त राजकुमारोंने इसका अभिप्राय प्रायः प्रकट ही कर दिया है ॥१५॥ यद्यपि यह सब है तथापि फिर भी कोमल वचनोंके द्वारा उसकी परीक्षा करें । यदि ऐसा करनेपर भी नशीभूत नहीं हुआ तो फिर आगे क्या करना चाहिए इसका विचार करना चाहिए ॥१६॥ भाईपतेके कपटसे जिसके अन्तररंगमें विकार छिपा हुआ है और जिसका कोई प्रतिकार नहीं है, ऐसा यह बाहुबली घरके भीतर उठी हुई अग्निके समान समस्त कुलको भस्म कर देगा ॥१७॥ जिस प्रकार वृक्षोंकी शाखाओंके अग्नभागकी रगड़से उत्पन्न हुई अग्नि पर्वतका विधात करनेवाली होती है उसी प्रकार भाई आदि अन्तरंग प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ प्रकोप राजाका विधात करनेवाला होता है ॥१८॥ यह बलवान् बाहुबली इस समय प्रतिकूलताको प्राप्त हो रहा है इसका शीघ्र ही प्रतिकार करना चाहिए, क्योंकि क्रूर ग्रहके समान इसके शान्त हो जानेपर ही मुझे शान्त हो सकती है ॥१९॥ ऐसा निश्चय कर चक्रवर्तीनि कार्यको जाननेवाले, मन्त्र करनेमें चतुर तथा निःसृष्टार्थतासे सहित

१ भेदः । 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानात्तद्विभेदतादथ' इत्यभिधानात् । २ सामान्यं कुलम् । ३ जालः । 'आनायं पुसि जालं स्पाल्' इत्यभिधानात् । ४ पञ्चायिः । ५ कार्यकारी न । ६ लक्ष्मे हितम् । ७ मम शासनम् । ८ वनाभिमुखः । ९ अभिप्रायः । १० अन्तर्गृहविकारः । ११ गृहं गोत्रं च । १२ स्वर्वर्गं जातः । १३ असकृत् संपादितप्रयोजनतया ।

उचितं शुभ्यमारुतो वयसा नातिकर्त्तव्यः । अनुदूतेन वेषेण प्रतस्थे स तदनितकम् ॥२१॥  
 आत्मनेन द्विर्गीयेन स्त्रियेनानुगतो द्रुतम् । निजानुजाविलोक्ते हस्तशम्बलैर्वाहिना ॥२२॥  
 सोऽन्वीपं चक्षि वेदवैमहं वृथामकथमः । विगृहैर्यदि स वृथाद् विरहैर्विमहं वर्षैः ॥२३॥  
 संधिं च पणवन्धैः च कुर्यात् सोऽन्तरमेव नः । विक्रम्यैर्विप्रमेष्यामिैर्विजिरीषावसंगतैः ॥२४॥  
 गुणयन्निति संपत्तिविषयी स्वान्यपश्योः । स्वयं निगृहमन्त्रत्वादृनिभेदोऽन्यमन्त्रिभिः ॥२५॥  
 भन्नमेदुम्भाद् गृह्णं स्वप्नेकःैर्प्रथाणके । युद्धापलारभूमीश्चैस पश्यन् दूरमत्यगत् ॥२६॥  
 क्रमेण देशान् सिन्धूश्चैर्देशसंधीश्चैर्सोऽस्तियन् ॥२७॥ प्राप्तं संक्षयातरात्रैस्तद् पुरं पोदनमाहृतम् ॥२८॥  
 अहिःपुरमधासाध रथ्याः सस्यवतीर्द्विः । पक्षालिप्तीदेशान् स पश्यन् प्राप्तं नन्दिधुम् ॥२९॥  
 पश्यन् स्तम्बकरित्वान् प्रभृतफलैर्शालिनः । कृतरक्षान् जनैर्यस्तात् स मने रथार्थिनंैर्जनम् ॥२१॥  
 यकुटुम्बिमैर्स्त्रीैर्तृत्यद्विरमिन्दित्वान् । केदारलावैैसंघर्षत्ैर्यधोषास्त्वयामयत् ॥२१॥

द्रूतको बाहुबलीके समीप भेजा । भावार्थ—जिस द्रूतके लगर कार्य सिद्ध करनेका सब भार समीप दिया जाता है वह निःसृष्टार्थ द्रूत कहलाता है । यह द्रूत स्वामीके उद्देश्यकी रक्षा करता हुआ प्रसंगानुसार कार्य करता है । चक्रवर्ती भरतने ऐसा ही द्रूत बाहुबलीके पास भेजा था ॥२०॥ जो उमरमें न तो बहुत लोग था और वह बहुत बड़ा ही था ऐसा वह द्रूत अपने योग्य रथपर सवार होकर नम्रताके बैपसे बाहुबलीके समीप चला ॥२१॥ जिसने मार्गमें काम आने-वाली भोजन आदिकी समस्त सामग्री अपने साथ ले रखी है और जो प्रेम करनेवाला है ऐसे अपने ही समान एक सेवकसे अनुगत होकर वह द्रूत वहाँसे शीघ्र ही चला ॥२२॥ वह द्रूत मार्गमें विचार करता जाता था कि यदि वह अनुकूल बोलेगा तो मैं भी अपनी प्रशंसा किये जिना ही अनुकूल बोलूगा और यदि वह विरुद्ध होकर युद्धकी बात करेगा तो मैं युद्ध नहीं होनेके लिए उद्योग करूँगा ॥२३॥ यदि वह सन्धि अथवा पणवन्ध ( कुछ भेट देना आदि ) करता चाहेगा तो मेरा यह अन्तर्ग ही है अथवा मैं भी यही चाहता हूँ, इसके सिवाय यदि वह चक्रवर्तीको जीतनेकी इच्छा करेगा तो मैं भी कुछ पराक्रम दिखाकर शीघ्र बापस लौट आऊँगा ॥२४॥ इस प्रकार जो अपने पक्षकी सम्पत्ति और दूसरेके पक्षकी विपत्तिका विचार करता जाता था, जो अपने मन्त्रको छिपाकर रखनेसे दूसरे मन्त्रियोंके द्वारा कभी फोड़ा नहीं जा सकता था और जो मन्त्रमेदके डरसे पड़ावपर किसी एकान्त स्थानमें गुप्त रीतिसे श्रावन करता था ऐसा वह द्रूत युद्ध करने तथा उससे निकलनेकी भूमियोंको देखता हुआ बहुत दूर निकल गया ॥२५-२६॥ क्रम-क्रमसे अनेक देश, नदी और देशोंको सीमाओंका उल्लंघन करता हुआ वह द्रूत बाहुबली-के पोदनपुर नामक नगरमें जा पहुँचा ॥२७॥ नगरके बाहर धानोंसे युक्त मनोहर पृथिवी-को पाकर और पके हुए चावलोंके खेतोंको देखता हुआ वह द्रूत बहुत ही आनन्दको प्राप्त हुआ था ॥२८॥ जो बहुत-से फलोंसे शोभायमान हैं और किसानोंके द्वारा बड़े यत्नसे जिनकी रक्षा की जा रही है ऐसे धानके गुच्छोंको देखते हुए द्रूतने मनुष्योंको बड़ा स्वार्थी समझा था ॥२९॥ जो खेतोंको देखकर आनन्दसे नाच रहे हैं और खेत काटनेके लिए जिन्होंने हँसिया ऊँचे उठा रखे

१ बाहनम् । 'सर्वं स्पाद बाहनं धानं युध्यं पश्च च धोरणम्' इत्यभिधानात् । २ अनुचरजनेन । ३ पाषेय ।  
 ४ अनुकूलम् । ५ अनुकूलवृत्त्या । ६ अश्लाघमानः । ७ मक्षुकः । ८ कलहैर्कृत्वा । ९ नाशम् । १० करोमि ।  
 ११ निक्रमन्त्यम् । प्राभृतमित्यर्थः । १२ विक्रमं हृत्वा । १३ आगच्छामि । १४ संधिं न गते सति ।  
 १५ शयानः । १६ युद्धापलारणप्रोपमूर्मिः । १७ मध्यगत् । १८ विहिगुच्छान् । 'धान्यं ब्रोहिः स्तम्बकरिः स्तम्बो  
 सोम्नः । १९ अतीत्य गच्छत् । २० आनन्दम् । २१ ब्रीहिगुच्छान् । 'धान्यं ब्रोहिः स्तम्बकरिः स्तम्बो  
 गुच्छस्तूपादितः ।' इत्यभिधानात् । २२ बहूल । २३ निजप्रयोजनवक्त्तम् । २४ कुषीबलैः । २५ उद्गतलविश्रैः ।  
 २६ श्रेदन । २७ संमर्द । २८ अशृणोत् ।

कन्चिच्छ्रुकमुख्याकृष्णकणः । कणिशमञ्जरीः । शालिवपेषु सोऽपश्यद् विर्भुन्ना हवे लियः ॥३१॥  
सुगन्धिकलमामोदसंबादि अस्ति तानिहैः । बासयन्तीर्दिशः शालिकणिजैरवत्सिताः ॥३२॥  
पीतस्तनतटोत्सगशलदधर्माम्बुद्धिन्दुभिः । मुक्तालंकारजां लक्ष्मीं घटयन्तीनिजैरसि ॥३३॥  
सरजोऽवजरजः कौर्यसीमन्तहच्चिरैः कर्तैः । चूजामावधारीः स्वैरग्रन्थितोग्पलदामर्कः ॥३४॥  
दृधतीरातपक्षान्तमुखपर्यन्तसंगितीः । कावयस्त्रेव कणिकाः श्रमवर्मीम्बुविप्रुपः ॥३५॥  
शुकान् शुकच्छुदच्छावैरुचिराङ्गीस्तनांशुकैः । छोरकुर्वतीः कलकाणं सोऽपश्यच्छालिगोपिकाः ॥३६॥  
अमश्याम्बुद्धियन्त्रचीक्षारेत्कुवाटकान् । क्षुकुर्वत इवाप्राञ्छीदतिपीदामयेन सः ॥३७॥  
उपक्षेत्रे च गोधेन्महोशोमसम्प्यरा ॥३८॥ बात्सकेनोत्सुकाः स्तन्ये अस्तीनिंचत्तायै सः ॥३८॥  
हृति रम्यान् पुरस्याद्य सीमान्तान् स विक्षोक्यन् । मेने कृताध्यमामानं लक्ष्यत इर्जनोत्सवम् ॥३९॥  
उपशल्यमुवः ॥३९॥ कृष्णाप्रणालीप्रसूतोदकाः । शालीम्बुजीरक्षेत्रैर्षुतालुप्यै मनोऽहरन् ॥४०॥  
वारीकृपतदग्निं सारामैरम्बुजाकरः । पुरस्यास्य वाहिदेशास्तेनादश्यन्त हारिणः ॥४१॥  
पुरगोपुरमुलक्ष्य स निवायन् वणिकपथान् । तत्र पूरीकृतान् मेने रक्तराशीक्षिदीनिव ॥४२॥

है ऐसे कुटुम्बसहित किसानोंके द्वारा प्रशंसनीय, खेत काटनेके संघर्षके लिए दबती हुई तुरडेके बाब्दोंको भी वह दूत सुन रहा था ॥३०॥ कहीं धानके खेतोंमें वह दूत जिनके कुछ दाने तोताओं ने अपने मुखसे खीच लिये हैं ऐसी बालोंके समूह इस प्रकार देखता था मानो विट पुहारीके द्वारा भोगी हुई स्त्रियाँ ही हों ॥३१॥ जो सुगन्धित धानको सुगन्धिके समान सुवासित अपनी श्वासकी चायुसे दशों दिशाओंको सुगन्धित कर रही थीं, जिन्होंने धानकी बालोंसे अपने कानों-के आभृपण बनाये थे, जो अपने वक्षःस्थलपर स्थूल स्तनतटके समोपमें गिरती हुई पसीनेकी बूँदोंमें भोतियोंके अलंकारसे उत्पन्न होनेवाली शोभाको धारण कर रही थीं, जो परागसहित कमलोंकी रजसे भरे हुए मांगसे सुन्दर तथा अच्छी तरह गुंथी हुई नीलकमलोंकी मालाओंसे सुगोभित केशोंसे चोटियाँ बांधे हुई थीं, जो धामसे दुःखी हुए मुखपर लगी हुई सीन्दयंके छोटे-छोटे दुकड़ोंके समान पसीनेकी बूँदोंको धारण कर रही थीं, जिनके शरीर तोतेके पंखोंके समान कान्तिवाली-हरी-हरी चोलियोंसे सुशोभित हो रहे थे, और जो मनोहर शब्द करती हुई छो-छो करके तोतोंको उड़ा रही थीं ऐसी धानकी रक्षा करनेवाली स्त्रियाँ उस दूतने देखी ॥३२-३६॥ जो चलते हुए कोलहुओंके चीत्कार शब्दोंके बहाने अत्यन्त पीड़ासे मानो रो ही रहे थे ऐसे ईखके खेत उस दूतने देखे ॥३७॥ खेतोंके समीप ही, बड़े भारी स्तनके भारसे जो धीरे-धीरे चल रही हैं, जो बछड़ोंके समूहसे उत्कण्ठित ही रही हैं और जो दूध झरा रही है ऐसो नवीन प्रसूता गायें भी उसने देखी ॥३८॥ इस प्रकार इस नगरके मनोहर सीमाप्रदेशों-को देखता हुआ और उन्हें देखकर आनन्द प्राप्त करता हुआ वह दूत अपने आपको कृतार्थ मानने लगा ॥३९॥ जिनके चारों ओर नहरकी नालियोंसे पानी कैला हुआ है और जो धान ईख और जीरके खेतोंसे घिरी हुई हैं ऐसी उस नगरके बाहरकी पृथिवियाँ उस दूतका मन हरण कर रही थीं ॥४०॥ बाबड़ी, कुएँ, तालाब, बगीचे और कमलोंके समूहोंसे उस नगरके बाहरके प्रदेश उस दूतको बहुत ही मनोहर दिखाई दे रहे थे ॥४१॥ नगरके गोपुरद्वारको

? धान्यांशः । २ केदारेषु । ३ परिस्पर्थि । ४ उच्छ्रवास । ५ शिवाम् । 'दिवा चृदा केशपाशः' इत्यभिधानात् । ६ इश्वरपत्रगृह । ७ धोत्रसमीपे । ८ गोत्रवल्लिनिवाः । 'धनुः श्यामाच्यप्रसूतिवा' ९-१०भिप्रानात् । ९ महापीनभारमन्दगमनाः । १० श्वीरम् । ११ ददर्श । 'चावृत्र उमानिशामनयोः' । १२ श्रामान्तभूमिः । 'प्रामान्तमुपश्लयं स्याद्' इत्यभिधानात् । १३ दूतस्य । १४ वृन्दीकृतान् । 'पृष्ठः ऋषमुकुवृदयोः' इत्यभिधानात् । गुरुजीकृतानित्यर्थः । पुरुजीकृतान् ल० । पृथग्नाम अ०, ८०, ९०, १०० ।

नृपोपायनवाजीभलालामवज्ञनाविलम् । कृतच्छटमिद्वालोक्य सोऽन्यनदकृपाङ्गणम् ॥४३॥

स निवेदिस्त्रूतान्तो महादीपामपालकैः । तत्त्वं त्रूपामनालीत्सप्तार्थी द्वय वृत्तेन्द्रियः ॥४४॥

पृथुवक्षस्त् एव तुक्षमुक्त्येवंश्चक्षक्षम् । जयलक्ष्मीविलासिन्याः क्रीडाशैलमिवैककम् ॥४५॥

ललाटपट्टमारुदरवृष्टन्धे सुविलुत्तम् । जयश्रिय इयोद्धाहपट्टं दधतमुक्तकैः ॥४६॥

दधानं तुलिताशेषराजन्यकरशोधनम् । तुलादण्डमिवोद्गद्भूमारं भुजदण्डकम् ॥४७॥

मुखेन पद्मजच्छायां नेत्राभ्यामुपलक्षियम् । दृष्टसम्पूर्णां सक्षिजातिमजलाशयम् ॥४८॥

विक्षणमतिविस्तीर्णं मनो वक्षश्च यद्गद्यम् । वाग्देवीकमलावस्थीर्णतं निरवाकाशताम् ॥४९॥

रक्षादृतिपरिक्षेपं गुणग्रामं<sup>१</sup> महाफलम् । निवेशयन्तमारमाङ्गे मनःसु च महीयमाम् ॥५०॥

स्फुरदामरणोद्योतच्छश्चान्ता निलिला क्रिशः । प्रतापउवरुनेनेव लिप्तेन्तमलघीयसा ॥५१॥

मुखेन चन्द्रकान्तेन<sup>२</sup> एवरागेण<sup>३</sup> चाक्षणा । चरणेन विराजन्तं वद्रमारेण<sup>४</sup> वर्धणा ॥५२॥

उल्लंघन कर बाजारके मार्गोंको देखता हुआ वह दूत वहाँ इकट्ठी की हुई रत्नोंकी राशियोंको निवियोंके समान मानने लगा ॥४२॥ जो राजाकी भैटमें आये हुए थोड़े और हाथियोंकी लार तथा मदजलसे कीचड़सहित हो रहा था और उससे ऐसा मालूम होता था मानो उसपर जल ही छींटा गया हो ऐसे राजाके अंगनको देखकर वह दूत बहुत ही प्रसन्न हो रहा था ॥४३॥ जिसने मुख्य-मुख्य द्वारपालोंके द्वारा अपना वृत्तान्त कहला भेजा है ऐसा वह दूत राजसिंहासन-पर बैठे हुए महाराज बाहुबलीके सभीप जा पहुँचा ॥४४॥ वहाँ जाकर उसने महाराज बाहुबलीको देखा, उनका बद्धास्थल किनारके समान चौड़ा था, वे स्वयं ऊँचे थे और उनका मुकुट शिखरके समान उन्नत था इसलिए वे विजयलक्ष्मीरूपी स्त्रीके क्रीडा करनेके लिए एक अद्वितीय पर्वतके समान जान पड़ते थे—जिसपर यह बैधा हुआ है ऐसे लम्बे-चौड़े ललाटपट्टको धारण करते हुए वे ऐसे जान पड़ते थे मानो विजयलक्ष्मीका उक्तस्त्र विवाहपट्ट ही धारण कर रहे हों । वे बाहुबली स्वामी, जिसने समस्त राजाओंका यशरूपी धन तोल लिया है और जिसने समस्त पृथिवीका भार उठा रखा है ऐसे तराजूके दण्डके समान भुजदण्डको धारण कर रहे थे—यद्यपि वे मुखसे कमलकी और नेत्रोंसे उत्पलकी शोभा धारण कर रहे थे तथापि उनके सभीप न तो विजाति अर्थात् पक्षियोंकी जातियाँ थीं और न वे स्वयं जलाशय अर्थात् सरोवर ही थे । भावार्थ—इस श्लोकमें विरोधाभास अलंकार है इसलिए विरोधका परिहार इस प्रकार करना चाहिए कि वे यद्यपि मुख और नेत्रोंसे कमल तथा उत्पलकी शोभा धारण करते थे तथापि उनके पास विजाति अर्थात् वर्णसंकर लोगोंका निवास नहों था और न वे स्वयं जलाशय अर्थात् जड़ आशयवाले मूर्ख ही थे । वे बाहुबली जिनपर कमसे सरस्वती देवी और लक्ष्मीदेवोंका निरन्तर निवास रहता था ऐसे अत्यन्त विस्तृत ( उदार और लम्बे चौड़े ) मन और बद्धास्थलको धारण कर रहे थे—वे, प्रजाकी रक्षाके कारण तथा बड़े-बड़े कल देनेवाले गुणोंके समूहको अपने शरीरमें धारण कर रहे थे और अन्य महापुरुषोंके मनमें धारण करते थे—वे अपने देवीप्यमान आभूषणोंकी कानितके छलसे ऐसे जान पड़ते थे मानो अपने विशाल प्रतापरूपी अभिन्से समस्त दिशाओंको लिप्त ही कर रहे हों । वे चन्द्रकान्त मणिके समान मुखसे, पश्चराग मणिके समान सुन्दर चरणोंसे और बज्रके समान सुदृढ़ अपने

१ परन्पैः प्राभूतीकृत । २ कर्दमितम् । ३ उपागमत् । ४ सानुम् । ५ अनासन्नहीनजातिम् । पञ्चे पक्षिजातिम् । ६ अमन्दवृद्धिम् । ७ सरस्वतीलक्ष्म्योः । ८ गुणसमूहम् । निगम ( गौवि ) पिति ध्वनिः । ९ चन्द्रकान्त कान्तेन । १० चन्द्रकान्तशिलयेति ध्वनिः । ११ पश्चवदरूपेन । पश्चरागरत्नेनेति ध्वनिः । १२ बज्रवत् स्थिराक्षयवेन । बज्ज्वान्तःसारेणेति ध्वनिः ।

हरिन्मणिमयसत्तममिवैकं हरितविषम् । लोकावष्टममाधारं<sup>३</sup> सूक्ष्माद्येन वेपसा<sup>४</sup> ॥५३॥  
 'सवाङ्गसंगतं तेजो द्वयानं क्षम्यमूर्जितम् । नूनं<sup>५</sup> सेजोमध्यैरेष घटितं परमाणुमिः ॥५४॥  
 तमित्यालोकयन् दूराद् धार्मः<sup>६</sup> पुञ्चमिद्योचिक्षयम् । चत्ताल प्रणिष्ठिः<sup>७</sup> किञ्चित् प्रणिष्ठाना<sup>८</sup> जिथीशितः ॥५५॥  
 अणमेत्रणावेष्य दधद्वानतं लिपः । सप्तकारं कुमारेण नातिहृते न्यजेषि सः ॥५६॥  
 तं शासनहृतं जिल्लोनिकिष्टमुचितासने । कुमारो निजगादेति स्मितोऽनु विष्वगाकिरन् ॥५७॥  
 चिराद्यक्षधरस्याद्य वये<sup>९</sup> चिराद्यस्वमागताः । भद्रं भद्रं<sup>१०</sup> जगत्सुर्वदुचिन्त्यस्य चक्रिणः ॥५८॥  
 विश्वक्रं व्रजयोथोगमथापि न समापयन्<sup>११</sup> । स कष्टिद्<sup>१२</sup> भूभुजां भर्तुः कुरली दक्षिणो भुजः ॥५९॥  
 श्रुता विश्वदिशः सिद्धा जितात्म विखिला नृपाः । कर्तव्यशेषमस्थाय किमस्ति वद नास्ति वा ॥६०॥  
 इति प्रशास्तमोऽहित्र वचःसारं मिताक्षरम् । वदन् कुमारो दूरस्य वचनावसरं<sup>१३</sup> अथात् ॥६१॥  
 अधोपाचकम् वक्तुं वचो हारि<sup>१४</sup> वचोहरः । वागर्थाविष लंपिण्डम्<sup>१५</sup> दूरीयन् दशनांशुमिः<sup>१६</sup> ॥६२॥  
 त्वद्रुचः<sup>१७</sup> संमुखीनेऽस्मिन् कार्यं सुष्यकमीक्ष्यते । असंस्कृतोऽपि<sup>१८</sup> यशार्थं प्रत्यक्षश्रयति<sup>१९</sup> मादशः<sup>२०</sup> ॥६३॥  
 वयं वचोहरा नाम प्रमोः शासनहारिणः । गुणदोषविचारेषु भन्दास्तच्छन्दवर्तिनः<sup>२१</sup> ॥६४॥

शरीरसे बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे । उनकी कान्ति हरे रंगकी थी इसलिए वे ऐसे जान पड़ते थे मानो आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेवके द्वारा लोकको सहारा । देनेके लिए बनाया हुआ हरित मणियोंका एक खम्भा ही हो । समस्त शरीरमें फैले हुए अतिशय श्रेष्ठ क्षत्रियोंको धारण करते हुए महाराज बाहुबली ऐसे जान पड़ते थे मानो तेजरूप परमाणुओंसे ही उनकी रचना हुई हो । जिसकी ज्वाला ऊपरकी ओर उठ रही है ऐसे तेजके पुंजके समान महाराज बाहुबलीको दूरसे देखता हुआ वह चक्रवर्तीका दूत अपने ध्यानसे कुछ विचलित-सा हो गया अर्थात् घबड़ा-सा गया ॥४५-५६॥ दूरसे ही दूके हुए शिरको धारण करनेवाले उस दूतने जाकर कुमारके चरणोंमें प्रणाम किया और कुमारने भी उसे सत्कारके साथ अपने समीप ही बैठाया ॥५६॥ कुमार बाहुबली अपने मन्द हास्यकी फिरणोंको चारों ओर फैलाते हुए मोर्य आसनपर बैठे हुए उस भरतके दूतसे इस प्रकार कहने लगे ॥५७॥ कि आज चक्रवर्ती-मोर्य आसनपर बैठे हुए उस भरतके दूतसे इस प्रकार कहने लगे ॥५७॥ कि आज चक्रवर्ती-मोर्य आसनपर बैठे हुए उस भरतके दूतसे इस प्रकार कहने लगे ॥५८॥ जिसने समस्त बहुत लोगोंकी चिन्ता रहती है ऐसे चक्रवर्तीकी कुशल तो है न ? ॥५८॥ जिसने समस्त लोगोंकी चिन्ता रहती है ऐसे चक्रवर्तीकी कुशल तो है न ? ॥५९॥ सुना है कि भरतने समस्त दिशाएं वश की वह प्रसिद्ध दाहिनी भुजा कुशल है न ? ॥५९॥ सुना है कि भरतने समस्त दिशाएं वश कर ली हैं और समस्त राजाओंको जीत लिया है । हे दूत, कहो अब भी उनको कुछ कार्य बाकी रहा है या नहीं ? ॥६०॥ इस प्रकार जो अत्यन्त शान्त हैं, तेजरूपी हैं, साररूप हैं, और जिनमें थोड़े अक्षर हैं ऐसे वचन कहकर कुमारने दूतको कहनेके लिए अवसर दिया ॥६१॥

तदनन्तर दीतोंकी किरणोंसे शब्द और अर्थ दोनोंको मिलाकर दिखलाता हुआ दृत  
मनोहर वचन कहनेके लिए तैयार हुआ ॥६२॥ वह कहने लगा कि हे प्रभो, आपके इस वचन-  
रूपी दर्पणमें आगेका कार्य स्पष्ट रूपसे दिखाई देता है क्योंकि उसका अर्थ मुझ-जैसा मूर्ख भी  
प्रत्यक्ष जान लेता है ॥६३॥ हे नाथ, हम लोग तो दृत हैं केवल स्वामीका समाचार ले जाने-

१ आधारम् । २ आदिक्रहणेत्यर्थः । ३ सप्ताङ्ग अष्टवा सर्वेषांति । ४ हव । ५ भास्त्रां तेजसाम् । ६ चरः ।  
७ गुणकोषविचारानुस्मरणं प्रणिष्ठानम्, तस्मात् । अभिप्रायादित्यर्थः । ८ चिन्तितुं योग्याश्चिन्त्याः तेषां भावः  
चित्तपत्रम् । ९ कुशलम् । १० थेष-इ० । ११ सम्पूर्णं त छुर्वन् । १२ किम् । १३ वचनस्यावसरम् ।  
१४ मनोज्ञम् । १५ पिण्डीकृतय । १६ दत्तकास्त्रिभिः । १७ तत्र वास्त्रपूर्णे । १८ संस्काररहिताः ।  
१९ प्रस्तुक्षे करोति । २० मद्यविधः । २१ चक्रिवशवतितः । - च्छन्दवारिणः ८०, ८० ।

ततश्चक्वरेणायं यदादिष्टं<sup>१</sup> प्रियोचितम् । प्रयोक्तृगौत्वादेव तद्ग्राहां साध्यसाधु वा ॥६५॥  
गुरीर्वक्नमादेयमनिकल्पयेति<sup>२</sup> या श्रुतिः । समाप्ताण्डादसुख्याशा संविषेदा त्वयाधुला ॥६६॥  
ऐक्षवाकः<sup>३</sup> प्रथमो राजा भरतो भवद्यजः । परिकान्ता मही कृत्सना येन नामयताऽमरान् ॥६७॥  
ग्राहाहारं समुलङ्घय यो रथेनाप्रतिष्कशः<sup>४</sup> । चलदाविदकलोलं सकरीन्मकरालयम् ॥६८॥  
शरव्याजः प्रतापाप्तिर्वैलत्यस्य जलेऽम्बुधे । पर्णै न केवलं वार्षि मानं च विदिवौकसान् ॥६९॥  
मा नाम प्रणति वस्य वाजिषुर्युसदः कथम् । आकृष्णः शरणादेन प्राप्यकृत्यै शले वलात् ॥७०॥  
शरस्यमकरोत्यस्य शरणातो महाम्बुधौ । प्रसर्वं मगधादासं क्रान्तद्वादशयोजनः ॥७१॥  
विजयाद्वाचिले वस्य विजयो धोषितोऽमरः । अयतो विजयाद्वेशं शरेणामोधपातिना ॥७२॥  
कृतमालादयो देवा गता वस्य विधेयताम्<sup>५</sup> । कृतमस्योभवधेणीन्<sup>६</sup> मोरजयवर्णीनः ॥७३॥  
गुहासुखमपव्याप्ते<sup>७</sup> व्यतीस्य जयसाधनैः । उत्तरां विजयाद्वर्षेयो व्ययाहत तां महीम् ॥७४॥  
मुद्धकाननिच्छतोऽप्याज्ञा प्रव्याधु<sup>८</sup> जयसाधनैः । सेनाम्या यो जर्यं प्राप्य ब्रह्मदाविष्टु<sup>९</sup> लक्ष्मिन् ॥७५॥

बाले हैं हम लोग सदा स्वामोके अभिप्रायके अनुसार चलते हैं तथा गुण और दोषोंका विचार करनेमें भी असमर्थ हैं ॥६४॥ इसीलिए है आर्य, चक्रवर्तीने जो प्रिय और उचित आज्ञा दी है वह अच्छी हो या बुरी, केवल कहनेवालेके गौरवसे ही स्वीकार करने योग्य है ॥६५॥ गुरुके वचन बिना किसी तर्क-वितर्कके मान लेना चाहिए यह जो शास्त्रका वचन है उसे प्रमाण मानकर इस समय आपको चक्रवर्तीकी आज्ञा स्वीकार कर लेनी चाहिए ॥६६॥ वह भरत इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ है अथवा इक्ष्वाकु अर्थात् भगवान् वृषभदेवका पुत्र है, राजाओंमें प्रथम है, आपका बड़ा भाई है और इसके सिवाय देवोंसे भी नमस्कार करते हुए उसने समस्त पृथिवी अपने वश कर ली है ॥६७॥ उसने गंगाद्वारको उल्लंघन कर अकेले ही रथपर बैठकर समुद्रको जिसकी धंचल लहरें एक दूसरेसे टकरा रही हैं ऐसा कर दिया ॥६८॥ बाणके बहाने-से इसकी प्रतापरूपी अग्नि समुद्रके जलमें भी प्रज्वलित रहती है, उस अग्निने केवल समुद्र-को ही नहीं पिया है किन्तु देवोंका मान भी पी ढाला है ॥६९॥ भला, देव लोग उसे कैसे न नमस्कार करेंगे ? क्योंकि उसने बाणरूपी जालसे गलेमें बाधिकर उन्हें जबरदस्ती अपनी ओर खींच लिया था ॥७०॥ बारह घोजन दूर तक जानेवाले उसके बाणने महासागरमें रहनेवाले मागधदेवके निवासस्थानेको भी जबरदस्ती अपना निशाना बनाया था ॥७१॥ व्यर्थं न जानेवाले बाणके द्वारा विजयार्थं पर्वतके स्वामी विजयार्थदेवको जीतनेवाले उस भरतकी विजय-धोषणा देवोंने भी की थी ॥७२॥ कृतमाल आदि देव उसकी अवीनता प्राप्त कर लुके हैं और उत्तर दक्षिण दोनों श्रेणियोंके विद्याधरोंने भी उसकी जयधोषणा की है ॥७३॥ जिसका अन्धकार दूर कर दिया गया है ऐसे गुफाके दरवाजेको अपनी विजयी सेनाके साथ उल्लंघन कर उसने विजयार्थं पर्वतकी उत्तर दिशाकी भूमिपर भी अपना अधिकार कर लिया है ॥७४॥ म्लेच्छ लोग यद्यपि उसकी आज्ञा नहीं मानना चाहते थे तथापि उसने सेनापतिके द्वारा अपनी

१ उपदेशितम् । २ भेदमकृत्वा । ३ इक्षवाकोः सकाशात् संजातः । ४ वसहायः । ५ परस्परतादित ।  
अथवा कुटिल । 'आविद्धं कुटिलं भूमं वेलितं वक्रम्'हत्यभिष्ठानात् । ६ अग्नः । माड्योगादहभावः । ७ बन्धनं  
कृत्वा । 'प्राप्तं वन्धे' इति सूत्रेण लिप्तशायां 'लिपुत्वत्याइक्षन्यस्त तत्पुरुषः' इति समाप्तः, 'समाप्ते को नवः  
प्यः' इति कृत्वाप्रत्ययस्य प्रादेशः । ८ लक्ष्मयम् । ९ विनयप्राक्षिताम् । 'विनेयो विनयग्राही' हत्यभिष्ठानात् ।  
१० पर्याप्तिम् । ११ श्रेणीनभोगैर्जयवर्णनम् १०, १० । श्रेणिनभोगैर्जयवर्णनैः १० । १२ अपगतान्धकार  
कृत्वा । १३ संवेषण्य । १४ वसाद्यकृत्य ।

कृतोऽमिरेतो यस्यारादभ्येत्य सुख्यतमैः । यस्याचलेष्टदकृत्पु श्वलपश्यायिसं यथा ॥५६॥  
 रत्नावैः पर्युपासातां<sup>१</sup> यं सवर्तुन्यधिदेवते<sup>२</sup> । ब्रह्माद्वितटे येन उद्भूत्काण्डं कृतं यथा ॥५७॥  
 विद्वासीकृता लक्ष्मीः सुरा: किञ्चकरतो गताः । यस्य स्वार्थीनरत्नस्थ निधयः सुवर्तं धनम् ॥५८॥  
 स यस्य जयसंभवामि निर्जित्य निखिला दिशः । अमन्ति समाख्यिलाभ्योधितान्तवनम् मिष्टु ॥५९॥  
 त्वामायुपमन् अगन्मास्यो मानयन्<sup>३</sup> कुशलादिष्या । समाधिशन्ति चक्राङ्कां यवद्यधिराजताम् ॥६०॥  
 मदीर्थं राज्यमाकांतनिरिक्लद्वौपतागरम् । राजतेऽस्मत्प्रियधात्रा न वाहुचलिना यिना ॥६१॥  
 ता: संयुक्तस्तदैश्वर्यं ते भोगाः य एरिच्छदः । ये समं बन्धुभिर्मुक्ताः संविभक्तसुखादृष्टयः ॥६२॥  
 अन्यस्त नमिताशेषं नुसुरासुरस्त्रेष्वरम् । नाधिराज्यं विमात्यस्य<sup>४</sup> प्रणामविमुखे श्वर्यः ॥६३॥  
 न दुर्लिलं अनस्तीत्रं रिषुप्रणतस्तथा । बन्धुप्रणमन् गर्वाद् हुविंदग्धो यथा प्रसुम् ॥६४॥  
 तदुपेत्य प्रणामेन पूज्यतां प्रभुरक्षमी । प्रभुप्रणतिरेष्टा प्रसूतिर्ननु संपदाम् ॥६५॥  
 अवन्यशासनस्थास्य शासनं<sup>५</sup> ये विमन्वते<sup>६</sup> । शासनं<sup>७</sup> हिष्ठां तेषां चक्रमप्रतिशासनम् ॥६६॥  
 प्रकणदण्डनिर्वाति<sup>८</sup> निषातपरिखणिष्ठतान् । तदाज्ञाखण्डनस्यग्रान् पश्चैनान्<sup>९</sup> मण्डलाधिपान् ॥६७॥

सेनासे हराकर और जबरदस्ती उनका धन छीनकर उनपर विजय प्राप्त की है ॥७५॥ अच्छे-अच्छे देवोंने आकर उसका अभियेक किया है और उसका निर्मल यज्ञ बड़े-बड़े पर्वतोंके शिखरों-पर स्थलकमलोंके समान सुशोभित हो रहा है ॥७६॥ गंगा-सिन्धु दोनों नदियोंके देवताओं-ने रत्नोंके अर्धोंके द्वारा उसकी पूजा की है तथा बृहस्पति लक्ष्मी लक्ष्मण उद्धव आदना यज्ञ टांकीसे उधेरकर लिखा है ॥७७॥ उसने लक्ष्मीको घटदासी अर्थात् पानी भरनेवाली दासीके समान किया है, देव उसके सेवक हो रहे हैं, समस्त रत्न उसके स्वाधीन हैं और निधियाँ उमंथन प्रदान करती रहती हैं ॥७८॥ और उसकी विजयी सेनाओंने समस्त दिशाओंको जीतकर सब समुद्रोंके किनारेके वनोंको भूमिमें भ्रमण किया है ॥७९॥ हे आयुषमन्, जगतमें माननीय वही महाराज भरत अपने चक्रवर्तीपनेको प्रसिद्ध करते हुए कल्याण करनेवाले आशीर्वदियों आपका सन्मान कर आज्ञा कर रहे हैं ॥८०॥ कि समस्त द्वीप और समुद्रों तक फैला हुआ, यह हमारा राज्य हमारे प्रिय भाई बाहुबलीके बिना शोभा नहीं देता है ॥८१॥ सम्पन्नियाँ वही हैं, ऐश्वर्य वही है, भोग वही है और सामग्री वही है जिसे भाई लोग सुखके उदयको बौद्धते हुए साथ-साथ उपभोग करें ॥८२॥ इसरी एक बात यह है कि आपके प्रणाम करनेसे विमुच्य रहनेपर जिसमें समस्त मनुष्य, देव, धरणेन्द्र और विद्याधर नमस्कार करते हैं ऐसा उनका चक्रवर्तीपना भी सुशोभित नहीं होता है ॥८३॥ प्रणाम नहीं करनेवाला शत्रु स्वामीके मनको उतना अधिक दुःखी नहीं करता है जितना कि अपनेको झूठमूळ चतुर माननेवाला और अभिमानसे प्रणाम नहीं करनेवाला भाई करता है ॥८४॥ इसलिए आप किसी अपराधकी दमा नहीं करनेवाले महाराज भरतके समीप जाकर प्रणामके द्वारा उनका मरकार कीजिए क्योंकि स्वामीको प्रणाम करना अनेक सम्पदाओंको उत्तर करनेवाला है और यही सबको इष्ट है ॥८५॥ जिसकी आज्ञा कभी व्यर्थ नहीं जाती ऐसे उस भरतकी आज्ञाका जो कोई भी उल्लंघन करते हैं उन शत्रुओंका शासन करनेवाला उसका वह चक्ररत्न है जिसपर स्वर्य किसीका शासन नहीं चल सकता ॥८६॥ आप भरतकी आज्ञाका खण्डन करनेसे व्याकुल हुए इन मण्डलाधिपति राजाओंको देखिए जो भयकर दण्डल्पो वज्रके गिरनेसे खण्ड-खण्ड

५ अपूजयताम् । २ गंगासिन्धू देववौ । ३ पूजयन् । ४ चक्रिणः । ५ तत्कारणात् । ६ आक्राम् । ७ अद्वजा  
कुर्वन्ति । ८ शिथकम् । ९ बष्ठरत्नाशनि । १० पश्यतान् द०, अ०, प०, द०, स०, इ० ।

तदेत्य दुतमायुष्मन् पूर्वास्थ मनोरथम् । युवतीरत्न संशयात् संगतं निखिलं जगत् ॥५८॥  
 इति तदृचनस्यात्मे अनुभवस्मिते गुणम् । अर्दिर् तदृचनस्यात्मे अनुभवस्मिते विज्ञापणः ॥५९॥  
 साधुकं साधुवृत्तत्वं त्रिया घटयता प्रभोः । वाचस्पत्यं तदेवेष्ट पौष्टकं स्वसत्स्य यत् ॥६०॥  
 सामै दर्शयता नाम भेदवृण्डौ विशेषतः । प्रयुज्ञानेन साध्येऽप्येऽस्य त्रिशितं त्रिया ॥६१॥  
 हत्यतम्यस्य प्रमोः सत्यं च त्वमन्तश्चरणः । अस्यधा कथमेवास्य अप्यनेक्यन्तर्गतं गतम् ॥६२॥  
 निष्ठार्थतयाऽस्मासु निर्विद्यत्वं निर्विशिना । विशिष्टोऽसि न विशिष्टयं परमस्वपृणीदशम् ॥६३॥  
 अयं खलु खलाचारो यद्वलात्कारदर्शनम् । स्वगुणोत्तीर्त्तं दोषोन्नाकनं च परेषु यत् ॥६४॥  
 विष्णोति खलोऽस्येषो दोषान् स्वाक्षर्य गुणान् स्वयम् । संशुणोति च दोषान् स्वान् परकीयान् गुणानपि ॥६५॥  
 अनिराकृतसंतापां सुमनोभिः ॥६६॥ समुज्जिताम् । फलहीनो अवश्यजः ॥६७॥ खलतामिद् ॥६८॥  
 सतामसंमतां विष्वगाविलां विरसेः कलैः । मन्त्रे दुःखलतामनां खलतां लोकतापिनीम् ॥६९॥  
 सोपदानं ॥६१॥ सामाद्रौ प्रद्युक्षमपि वाभ्यते । पराभ्यो भेदवृण्डाभ्यो न्याय्ये ॥६२॥ विग्रहितवेदिनिः ॥६३॥

हो रहे हैं ॥८७॥ इसलिए हे दीर्घायु कुमार, आप शीघ्र ही चलकर इसके मनोरथ पूर्ण कीजिए। आप दोनों भाइयोंके मिलापसे यह समस्त संसार मिलकर रहेगा ॥८८॥ इस प्रकार उस दूतके कह कुकनेके बाद चतुर और जवान बाहुबली कुमार कुछ मन्द-मन्द हँसकर गम्भीर अर्थसे भरे हुए धीर वीर वचन कहने लगे ॥८९॥ वे बोले कि हे दूत, अपने स्वामी-की साधु वृत्तिको प्रकट करते हुए तूने सब सच कहा है क्योंकि जो अपने मतकी पुष्टि करनेवाला हो वही कहना ठीक होता है ॥९०॥ साम अर्थात् शान्ति दिखलाते हुए तूने विशेषकर भेद और दण्ड भी दिखला दिये हैं तथा उनका प्रयोग करते हुए तूने यह भी बतला दिया कि तू अपना अर्थ सिद्ध करनेमें कितना स्वतन्त्र है ? ॥९१॥ इस प्रकार कहनेवाला तू सचमुच ही अपने स्वतन्त्र स्वामीका अन्तरंग दूत है, यदि ऐसा न होता तो तू उसके हृदयगत अभिप्रायको कैसे प्रकट कर सकता था ॥९२॥ चक्रवर्तीने तुङ्गपर समस्त कार्यभार सीधकर मेरे पास भेजा है, यद्यपि तू चतुर है तथापि इस प्रकार दूसरेका मर्मछेदन करना चतुराई नहीं है ॥९३॥ अपनी जवरदस्ती दिखलाना वास्तवमें दुष्टोंका काम है तथा अपने गुणोंका वर्णन करता और दूसरोंमें दोष प्रकट करना भी दुष्टोंका ही काम है ॥९४॥ दुष्ट पुरुष, दूसरेके दोष और अपने गुणोंका स्वयं वर्णन किया करते हैं तथा अपने दोष और दूसरेके गुणोंको छिपाते रहते हैं ॥९५॥ खलता अर्थात् दुष्टता खलता अर्थात् आकाशकी बेलके समान है क्योंकि जिस प्रकार आकाशकी बेलसे किसीका सन्ताप दूर नहीं होता उसी प्रकार दुष्टतासे किसीका सन्ताप दूर नहीं होता, जिस प्रकार आकाशकी बेल सुमन अर्थात् फूलोंसे शून्य होती है उसी प्रकार दुष्टता भी सुमन अर्थात् विद्वान् पुरुषोंसे शून्य होती है और जिस प्रकार आकाशकी बेल फलरहित होती है उसी प्रकार दुष्टता भी फलरहित होती है अर्थात् उससे किसीको कुछ लाभ नहीं होता, ऐसी इस दुष्टताका केवल मूर्ख लोग ही आश्रय लेते हैं ॥९६॥ जो सज्जन पुरुषोंको इष्ट नहीं है, जो सब ओरसे विरस अर्थात् नीरस अथवा विडेषरूपी फलोंसे व्याप्त है तथा लोगोंको सन्ताप देनेवाली है ऐसी इस खलता-दुष्टताको मैं दुखलता अर्थात् दुखकी बेल ही समझता हूँ ॥९७॥ यदि न्यायपूर्ण विरोध करनेवाले पुरुषके विषय-

१ तत् कारणात् । २ वचः । ३ शान्तिम् । ४ परब्रह्मकरणादिप्रयोजने । ५ हृदये यर्तमानः । ६ अप्रकृतं  
करोषि । ७ बुद्धिम् । ८ असकृतसंपादितप्रयोजनतया । ९ नियुक्तः । १० कुसुमः । शोभनेहृदयैश्च ।  
११ अपन्त्यज्ञाः ल०, द० । १२ दुर्जीतत्वम् । १३ आकाशलत्तमिक । १४ दानसहितम् । १५ न्यायान्वितं  
पुरुषे । १६ भेददण्डाश्च विकारं गच्छति सति ।

यथा<sup>१</sup> विधश्मेविवासुपायानां जियोजनम् । सिद्धयज्ञं तद्विपर्यासः<sup>२</sup> फलिष्वति परामयम् ॥१९३॥  
नैकान्तशमनं साम समाक्षात् सहोष्मणि<sup>३</sup> । जिष्ठेऽपि हि जने तसे सर्पिषीवाम्बुदेचमम् ॥१९०॥  
उपप्रदानमायेवं प्राप्तं<sup>४</sup> भवेष्य महीजभिः । समिस्यहस्तदानेऽपि दीक्षस्थाप्तेः कुलः शमः ॥१९१॥  
लोहस्येवोपतप्तस्य<sup>५</sup> सदुता न मनस्विनः । दण्डोऽप्यनुनयप्राप्तं सामजे न मृगद्विषि<sup>६</sup> ॥१९२॥  
ततो विद्यासायज्ञेनां तुपायानसुपायविन् । स्वयं प्रयोगविगुण्वात् सीदत्येव न मारकः<sup>७</sup> ॥१९३॥

में पहले कुछ देनेके विधानके साथ सामका प्रयोग किया जावे और बादमें भेद तथा दण्ड उपाय काममें लाये जावे तो उनके द्वारा पहले प्रयोगमें लाया हुआ साम उपाय बाधित हो जाता है । भावार्थ—यदि न्यायवान् विरोधीके लिए पहले कुछ देनेका प्रलोभन देकर साम अर्थात् शान्तिका प्रयोग किया जावे और बादमें उसीके लिए भेद तथा दण्डकी धमकी दी जावे तो ऐसा करनेसे उसका पहले प्रयोग किया हुआ साम उपाय व्यर्थ हो जाता है क्योंकि न्यायवान् विरोधी उसकी कूटनीतिको सहज ही समझ जाता है ॥१८॥ साम, दाम, दण्ड, भेद इन चारों उपायोंका यथायोग्य स्थानमें नियोग करना कार्यसिद्धिका कारण है और विपरीत नियोग करना पराभवका कारण है । भावार्थ—जो जिसके प्रयोग है उसके साथ वही उपाय काममें लानेसे सफलता प्राप्त होती है और विरुद्ध उपाय काममें लानेसे तिरस्कार प्राप्त होता है ॥१९॥ प्रतापशाली पुरुषके साथ साम अर्थात् शान्तिका प्रयोग करना एकान्तरूपसे शान्ति करनेवाला नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रतापशाली मनुष्य स्तिर्घ अर्थात् स्नेही होनेपर भी यदि क्रोधसे उत्तर्पत हो जावे तो उसके साथ शान्तिका प्रयोग करना स्तिर्घ अर्थात् चिकने किन्तु गरम धीमें पानी सीचनेके समान है । भावार्थ—जिस प्रकार गरम धीमें पानी डालनेसे वह शान्त नहीं होता बल्कि और भी अधिक चटपटाने लगता है उसी प्रकार क्रोधी मनुष्य शान्तिके व्यवहारसे शान्त नहीं होता बल्कि और भी अधिक बड़बड़ाने लगता है ॥२०॥ इसी प्रकार अतिशय प्रतापशाली पुरुषको कुछ देनेका विधान करना भी मैं निःसार समझता हूँ क्योंकि हजारों रमियाएँ ( लकड़ियाँ ) देनेपर भी प्रज्वलित अग्नि कैसे शान्त हो सकती है ॥२१॥ जिस प्रकार लोहा तपानेसे नरम नहीं होता उसी प्रकार तेजस्वी मनुष्य कष्ट देनेसे नरम नहीं होता इसलिए उसके साथ दण्डका प्रयोग करना निरर्थक है क्योंकि अनुनय विनय कर पकड़ने योग्य हाथीपर ही दण्ड चल सकता है सिंहपर नहीं । विशेष—लोहा गरम अवस्थामें नरम हो जाता है इसलिए यहाँ लोहाका उदाहरण व्यतिरेकरूपसे मानकर ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है कि जिस प्रकार तपा हुआ लोहा नरम हो जाता है उस प्रकार तेजस्वी मनुष्य कष्टमें पड़कर नरम नहीं होता इसलिए उसपर दण्डका प्रयोग करना व्यर्थ है । अरे, दण्ड भी ग्रेम पुचकार कर पकड़ने योग्य हाथीपर ही चल सकता है न कि सिंहपर भी ॥२२॥ इसलिए इन साम दान आदि उपायोंका विपरीत प्रयोग करनेवाले और इसलिए ही उपाय न जाननेवाले आप जैसे लोग इन चारों उपायोंके प्रयोगका ज्ञान न होनेसे स्वयं दुखी होते हैं ॥२३॥

१ सामभेदादि गोप्युरूपमनस्तिक्रम्य । २ वचननियोजनम् । ३ सप्रतापे । ४ एतत्सदृशम् । ५ इन्धनसमूहः ।  
६ उपतप्तस्य लोहस्य यथा मृदुतास्ति तथा उपतप्तस्य मनस्विनो मृदुता नास्तीत्यर्थः । ७ सिंहे । ८ वैपरीत्येव  
मोजयन् । ९ श्रेतानु—क०, द०, अ०, प०, स० । समाख्यीन् । १० भवाकृष्णः द०, ल०, अ०, प०, स०, इ० ।

सावधि दुक्ति साधा व्रश्मि युपसंहो<sup>१</sup> । तेजोऽतेकं प्रयुज्ञानो व्यन्ते युग्मायते भवान् ॥१०४॥  
व्रश्मपात्रिक इन्द्रेव न उज्ज्वलो भरताधिपः । अरल्पि गगः कप्रो<sup>२</sup> गात्रते<sup>३</sup> किं हरे शिशोः ॥१०५॥  
प्रणयः प्रथमश्चेति संगतेषु स्वनामिषु । तेजेशासंगतेष्वङ्ग<sup>४</sup> तद्व्रष्टस्थ॒ हता गतिः ॥१०६॥  
ज्येष्ठः प्रणाम्य इन्द्रेत्वक्त्वा समस्थन्यदा भजा । सूर्योऽपि तख्दग्नस्य प्रणाम इति कः कमः ॥१०७॥  
दूत नो<sup>५</sup> दृश्यते चित्तमन्योऽसेकानुवर्णने<sup>६</sup> । तेजस्वी मानुरेतिकः किमस्योऽच्युत्यस्यतः परम्<sup>७</sup> ॥१०८॥  
राज्ञानिर्मिति तस्मिंश्च<sup>८</sup> संयिभक्ताऽदिवेषसा<sup>९</sup> । राजराजः<sup>१०</sup> स इत्यद्य<sup>११</sup> स्फोटी गणद्वय<sup>१२</sup> मूर्धनि<sup>१३</sup> ॥१०९॥  
कामं स राजराजोऽस्मु<sup>१४</sup> रक्षयतोऽतिगृह्णनाम् । वर्य राजा न इन्द्रेव सौराज्ये<sup>१५</sup> स्वे<sup>१६</sup> व्यवस्थिताः ॥११०॥  
बालानिव<sup>१७</sup> छलाद्यस्मान् आहृथ प्रणामस्य<sup>१८</sup> च । पिण्डीत्व०१९ इवाभासि मर्हाखण्डस्तवृपितः<sup>२०</sup> ॥१११॥  
स्वत्रोद्गुमफलं शाश्वं यस्त्विच्चन मनस्वनाम् । त<sup>२१</sup> यानुरन्तमध्येश्वर<sup>२२</sup> परभूलिकाफलम् ॥११२॥

हे दूत, हम लोग शान्तिसे भी बढ़ा नहीं किये जा सकते यह निदव्य होनेपर भी आप हमारे साथ अहंकारका प्रयोग कर रहे हैं, इससे स्पष्ट मालूम होता है कि आप मूर्ख हैं ॥१०४॥ भरतेश्वर उमरमें घड़े हैं इतने ही से वे प्रशंसनीय नहीं कहे जा सकते क्योंकि हाथी बूझा होनेपर भी वया सिहके बच्चेकी बराबरी कर सकता है ? ॥१०५॥ हे दूत, प्रेम और विनय ये दोनों परस्पर मिलै<sup>२३</sup> कुटुम्बीलाभोपि<sup>२४</sup> ही अभैव<sup>२५</sup> सक्ते हैं, अदि उन्हीं कुटुम्बियोंमें विरोध हो जावे तो उन दोनों ही की गति नष्ट हो जाती है । भावार्थ—जबतक कुटुम्बियोंमें परस्पर मेल रहता है तबतक प्रेम और विनय दोनों ही रहते हैं और ज्यों ही उनमें परस्पर विरोध हुआ त्यों ही दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥१०६॥ बहा भाई नमस्कार करने योग्य है यह बात अन्य समयमें अच्छी तरह हमेशा हो सकती है परन्तु जिसने मस्तकपर तलवार रख छोड़ी है उसको प्रणाम करना वह कौन-सी रीति है ? ॥१०७॥ हे दूत, दूसरेके अहंकारके अनुसार प्रवृत्ति करनेसे हमारा चित्त दुःखी होता है, क्योंकि संसारमें एक सूर्य ही तेजस्वी है । वया उससे अधिक और भी कोई तेजस्वी है ॥१०८॥ आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेवने 'राजा' पह शब्द मेरे लिए और भरतके लिए—दोनोंके लिए दिया है, परन्तु आज भरत 'राजराज' हो गया है सो यह कपोल-के ऊपर उठे हुए गूमडेके समान व्यर्थ है ॥१०९॥ अथवा रत्नोंके द्वारा अत्यन्त लोभको प्राप्त हुआ वह भरत अपने इच्छानुसार भले ही 'राजराज' रहा आये, हम अपने धर्मराज्यमें स्थिर रहकर राजा ही बने रहेंगे ॥११०॥ वह भरत बालकोंके समान छलसे हम लोगोंको बुलाकर और प्रणाम कराकर कुछ पृथिवी देना चाहता है तो उसका दिया हुआ पृथिवीका टुकड़ा खलीके टुकड़ेके समान तुच्छ मालूम होता है ॥१११॥ तेजस्वी भनुष्योंके लिए जो कुछ थोड़ा-बहुत अपनी भुजारूपी बृक्षका फल प्राप्त होता है वही प्रशंसनीय है, उनके लिए दूसरेकी भीहरूपी लताका फल अर्थात् भीहके इशारेसे प्राप्त हुआ चार समुद्रपर्यन्त पृथिवीका ऐश्वर्य भी

१ विरति मते सति । २ तत्र तूणीं स्थिते पुंसि । उत्सेकं साहसम्, गर्वमित्यर्थः । ३ समानताम् ।  
४ प्राप्तोति । ५ स्नेहः । ६ विनयः । ७ भोः । ८ प्रणवप्रथमस्य । ९ अस्माकम् । १० वर्तनः ल०, द०,  
अ०, प०, स० । ११ भानोः सकाशादिन्यः । १२ भरते । १३ आदिब्रह्मणा । १४ भरतेश्वरणके राज्ञा  
प्रभूणां राजा राजराजः, राज्ञां यक्षाणां राजा राजराजः लोभेजित इति ध्वनिः । भुद्विविष्ठो तिष्ठः शक्तयः  
पद्मणा: चतुर्हात्मा: सप्ताङ्गराजगानि एतेगुणैः राजन्त इति राजानः । १५ पिटकः । 'विस्फोट, पिटकस्त्रिपु'  
इत्यभिधानात् । १६ गलगण्डस्य । 'गलगण्डो गण्डमाला' इत्यभिधानात् । १७ उपरीत्यर्थः । १८ कुवेर इति  
ध्वनिः । १९ मुराज्यव्यापारे । २० ज्ञात्मीये । २१ बलादित्र द० । २२ व्याजात् । २३ नमस्कारयित्वा ।  
२४ पिण्डाक्षकलः । २५ भरतेन इतः । २६ चत्वारो दिग्नन्तो यस्य तत् । २७ प्रभुत्वम् ।

पराजीपहना लक्ष्मीं यो वास्तेन् पार्थिवोऽपि सद् । सोऽपार्थिवति तामुक्ति<sup>३</sup> सपोऽक्षिमिव हुण्डुभः<sup>४</sup> ॥११३॥  
परावर्मानमलिना भूतिं<sup>५</sup> धते नृपोऽपि यः । नृपशोस्तस्य<sup>६</sup> नम्बेष भारो राज्यपरिष्ठदः ॥११४॥  
मानभङ्गाजितैभोगीयः प्राणन्धर्तुर्माहते । तस्य मप्तरदस्येव हिरदस्य कुसी भिदा<sup>७</sup> ॥११५॥  
छत्रमङ्गादिनाव्यस्य<sup>८</sup> छायाभङ्गोऽमिलद्वयसे । यो मानभङ्गाभारेण विभर्थवन्तं शिरः ॥११६॥  
मुनयोऽपि समानाश्रेत् त्वक्भोगायरिष्ठदः । को नाम राज्यभोगार्थी पुमानुज्ञेत् समानताम् ॥११७॥  
चर्मवेदवासोऽस्मि चर्मप्राणभेदस्मिभूमि । कुलाभिमानिनः पुसो न पराजाविभेदता<sup>९</sup> ॥११८॥  
मानभेदाभिमिस्त्रान्तु धीरा: प्राणैः प्रणवैः । नम्बलंकुरुते विश्वं दश्चामानाजितं यशः ॥११९॥  
११ चारु चक्रधरस्याय त्वचाऽत्युक्तः<sup>१०</sup> पराक्रमः । कुतो यतोऽर्थवादोऽथ<sup>११</sup> स्तुतिनिदापरायणः<sup>१२</sup> ॥१२०॥  
वचोमिः षोषयन्त्येव पण्डितः परिष्ठावपि<sup>१३</sup> । प्रकृत्यावाणां<sup>१४</sup> स्तुताविष्टः विहो ग्रामसूगो<sup>१५</sup> पनु ॥१२१॥  
इदं कार्यनिकं कृप्तनं त्वदुक्तं प्रलिभाति नः । कास्य विनिविजयारम्भः क धनोऽष्टुन्<sup>१६</sup> चुम्बुला ॥१२२॥

प्रशंसनीय नहीं है ॥११२॥ जिस प्रकार पनया साँप 'सर्प' इस शब्दको निरर्थक करता है उसी प्रकार जो मनुष्य राजा होकर भी दूसरेकी आजासे उपहत हुई लक्ष्मीको धारण करता है वह 'राजा' इस शब्दको निरर्थक करता है ॥११३॥ जो पुरुष राजा होकर भी दूसरेके अपमानसे मलिन हुई विभूतिको धारण करता है तिद्वयसे उस मनुष्यरूपी पशुके लिए यह राज्यकी समस्त सामग्री भारके समान है ॥११४॥ जिसके दौत टूट गये हैं ऐसे हाथीके समान जो पुरुष मानभूग होनेपर प्राप्त हुए भोगोपभोगोंसे प्राण धारण करना चाहता है उस पुरुषमें और पशुमें भेद कैसे हो सकता है ? ॥११५॥ जो राजा मानभूगके भारसे शूके हुए शिरको धारण करता है उसको छायाका नाश छत्रभंग होनेके बिना ही हो जाता है । भावार्थ – यही छाया शब्दके दो अर्थ हैं अनातप और कान्ति । जब छत्रभंग होता है तभी छाया अर्थात् अनातपका नाश होता है परन्तु यहाँपर छत्रभंगके बिना ही छायाके नाशका वर्णन किया गया है इसलिए विरोध भालूम होता है परन्तु छत्र भंगके बिना ही उनकी छाया अर्थात् कान्तिका नाश हो जाता है, ऐसा अर्थ करनेसे उसका परिहार हो जाता है ॥११६॥ जिन्होंने भोगोपभोग-की सब सामग्री छोड़ दी है ऐसे मुनि भी जब अभिमान (आत्मगौरव) से सहित होते हैं तब फिर राज्य भोगनेकी इच्छा करनेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा जो अभिमानको छोड़ देगा ? ॥११७॥ बनमें निवास करना अच्छा है और प्राणोंको छोड़ देना भी अच्छा है किन्तु अपने कुलका अभिमान रखनेवाले पुरुषको दूसरेकी आजाके अधीन रहना अच्छा नहीं है ॥११८॥ धीर दीर पुरुषोंको चाहिए कि वे इन नश्वर प्राणोंके द्वारा अभिमानकी ही रक्षा करें क्योंकि अभिमान के साथ कमाया हुआ यश इस संसारको सदा सुशोभित करता रहता है ॥११९॥ तूने जो बहुत कुछ बढ़ाकर चक्रवर्तीके पराक्रमका वर्णन किया है सो ठीक है क्योंकि तेरा यह सब कहना स्तुति निन्दामें तत्पर है अर्थात् स्तुतिरूप होकर भी निन्दाको सूचित करनेवाला है ॥१२०॥ पण्डित लोग निःसार वस्तुको भी अपने बचनोंसे पुष्ट किया ही करते हैं सो ठीक ही है क्योंकि स्तुति प्रारम्भ करनेपर कुत्तोंको भी सिंह कहना पड़ता है ॥१२१॥ हे दूत, तेरे द्वारा कहा

१ अपगतार्थ करोहि । २ पार्थिवास्याम् । ३ राजिलः । 'समी राजिलहुण्डुभी' इत्यभिमानात् । ४ संपदम् ।  
५ मनुजानहुदः । ६ भेदः । ७ तेजोहानिः । ८ अभिमानात्विताः । ९ साभिमानिताम् । १० अबोनता ।  
११ चर्म ल०, द०, अ०, प०, स०, इ० । १२ अतिक्रम्योक्तः । १३ सत्येवादः अथवा असत्यारोपमर्येवादः ।  
१४ स्तुतिरूपोऽर्थवादो निन्दारूपोऽर्थवादरचेति द्वये तत्परः । १५ अतिनिस्सारवस्त्रविः । १६ प्रारम्भतात्रा  
सत्याम् । १७ सारमेयः । १८ धनापत्नयन ।

दयव्याक्षरी<sup>१</sup> दृप्ति वलि<sup>२</sup> भिश्मिवाहरन् । दीनताया: परं कोटि<sup>३</sup> प्रभुरारेपितस्वया ॥१२३॥  
मर्य दिग्विजये चक्री जितवानमरानिति । 'प्रथेयमिदमेतत्'<sup>४</sup> चिन्त्यमन्त्रै ननु स्वया ॥१२४॥  
स किं न दर्मशाश्वायां सुसी नोपोषिसोऽशक्ता । प्रवृत्तो जलमात्रायां<sup>५</sup> शरणातं समाचरन् ॥१२५॥  
कुतचक्षपरिआन्ति दृष्टेनाथस्तिशयलिना । घटयन्<sup>६</sup> पार्थिवानेष सुकुलालायते वत् ॥१२६॥  
आगः<sup>७</sup> परागमातन्त्रन् स्वयमेष कलंकितः । चिरं कलंकयत्येष कुलं<sup>८</sup> कुलभूलाभपि ॥१२७॥  
नृपानाकर्षतो दूरान्मन्त्रैस्तम्नैश्च योजितैः । श्लाष्यते किञ्चन्देस्त्वय पौरुषं लज्जावा विना ॥१२८॥  
दुनोनि नो भृशं दृतं श्लाष्यतेऽस्य यदाहवः । दोलायितं जले यस्य वलं मूरक्षबलैस्तथा ॥१२९॥  
यतोधनमसंहार्य शत्रुपुत्रेण रक्षयताम् । निष्ठनन्तो<sup>९</sup> निर्धान् भूमी वहवो निधनं<sup>१०</sup> गताः ॥१३०॥

इति<sup>११</sup> किञ्चित् वा कुलं युम्हारमिष्टान्ते<sup>१२</sup> कुलम् ॥११२ इति यकृते आयति केवलं निधनं नृपाः ॥१३१  
हुआ यह समस्त कार्य हम लोगोंको केवल बचनाडम्बर ही जान पड़ता है क्योंकि कहाँ तो इसका दिग्विजयका प्रारम्भ करना और कहाँ घन इकट्ठा करनेमें तत्पर होना ? ॥१२२॥ जिस प्रकार भिक्षुक चक्र धारण कर भिक्षा माँगता हुआ अतिशय दीनताको प्राप्त होता है उसी प्रकार चक्रवर्तीकी वृत्ति धारण कर भिक्षाके समान कर बसूल करता हुआ तेरा स्वामी भरत तेरे द्वारा दीनताकी परम सीमाको प्राप्त करा दिया गया है ॥१२३॥ यह ठीक है कि चक्रवर्तीने दिग्विजयके समय देवोंको भी जीत लिया है परन्तु यह बात केवल विश्वास करने योग्य है अन्यथा तू यहाँ इतना तो विचार कर कि जलस्तम्भन करनेमें प्रवृत्त हुए तेरे स्वामी भरतने जब बाण छोड़ा था तब वह बंया दर्भकी शव्यापर नहीं सोया था अथवा उसने उपवास नहीं किया था ॥१२४-१२५॥ जिस प्रकार कुम्हार आयति अर्थात् लम्याईसे शोभायमान डण्डेके द्वारा चक्रको घुमाता हुआ पार्थिव अर्थात् मिट्टीके घट बनाता है उसी प्रकार भरत भी आयति अर्थात् सुन्दर भविष्यसे शोभायमान डण्डे ( दण्डरत्न ) से चक्र ( चक्ररत्न ) को घुमाता हुआ पार्थिव अर्थात् पृथिवीके स्वामी राजाओंको वश करता फिरता है, इसलिए कहना पड़ता है कि तुम्हारा यह राजा कुम्हारके समान आचरण करता है ॥१२६॥ वह भरत पापकी घूलिको उड़ाता हुआ स्वयं कलंकित हुआ है और कुलीन मनुष्योंके कुलको भी सदाके लिए कलंकित कर रहा है ॥१२७॥ हे दूत, प्रयोगमें लाये हुए मन्त्र-तन्त्रोंके द्वारा दूरसे ही अनेक राजाओंको बुलानेवाले इस भरतका पराक्रम तू लज्जाके बिना कितना वर्णन कर रहा है ? ॥१२८॥ हे दूत, जिस समय तू इसके युद्धकी प्रशंसा करता है उस समय हम लोगोंको बहुत दुःख होता है क्योंकि उस समय म्लेच्छोंकी सेनाके द्वारा भरतको सेना पानीमें हिँड़ोले झूल रही थी अर्थात् हिँड़ोलेके समान कैप रही थी ॥१२९॥ क्षत्रियपुत्रको तो जिसे कोई हरण न कर सके ऐसे यशोली धनकी ही रक्षा करनी चाहिए क्योंकि इस पृथिवीमें निधियोंको गाढ़कर रखनेवाले अनेक लोग मर चुके हैं। भावार्थ-अमरता यशसे ही प्राप्त होती है ॥१३०॥ अथवा जो रत्न एक हाथ पृथिवी तक भी साथ नहीं जाते और जिनके लिए राजा लोग केवल मृत्युको ही प्राप्त होते हैं ऐसे रत्नोंसे वया निकल सकता है ? ॥१३१॥

१ चक्रस्येयं चाक्री सा चासी चरी च चाक्रघरी लाम् । चक्रचरसंबन्धिनोम् । चाक्रघरी १०, २०, ३०, ४०,  
५०, ६० । २ करम् । ३ परमप्रकर्षम् । ४ शपथं कृत्वा विश्वास्यम् । ५ वध्यमाणम् । ६ अमरजये ।  
७ समुद्रजलस्तम्भनरूपमायायाम् । ८ दण्डरत्नेन सैन्येन वा । ९ नृपान् । पृथिवीविकारदिव । मृतिपण्डान् ।  
१० परागः । अपराह्नरेण्म् । 'पापापराधपोरागः' इत्यभिषानात् । ११ ननूनाम् । कुलधृताभपि २० ।  
१२ निखिपत्तः । १३ चिनाशाम् । १४ हस्तप्रमिताम् । 'अरतिस्तु निष्कनिष्ठेन मृष्टिना' इत्यभिषानात् ।  
१५ गत्यन्तरगमनेन सह त यान्ति ।

तुलापुरुष एवायं यो नाम चिखिलैनैयैः । तुलितो रत्ने पुञ्जेन बत नैथर्यमीदगम् ॥ १३२ ॥  
 धुवं स्वगुहणा दत्तामाचिन्दित्वति॑ नो भुवम् । <sup>२</sup>प्रत्यारुपेयत्वसुरसूज्य युक्तोरस्य किमीषधम् ॥ १३३ ॥  
 दूत तातविसीणो नो महीमेनां कुलोचिताम् । आत्मायामिवाऽदित्सो नस्य लज्जा मवत्पतेः ॥ १३४ ॥  
 देयमस्यत् स्वतन्त्रेण यथाकामं जिगीयुणा । भुक्तवा कुलकुलव्रं च क्षमातलं च भुजार्जितम् ॥ १३५ ॥  
 भूयस्तं दलमालैर्यं स वा युद्धका महीतलम् । चिरमंकातपश्चाक्कमहं वा भुजविकमी ॥ १३६ ॥  
 कृतं दृथा मटालैर्येत्सिद्धिक्षित्वैः । सकृद्यामनिक्षे स्वक्षिः पौरुषस्य ममास्य च ॥ १३७ ॥  
 ततः समरसंबहृं यद्वा लक्ष्माऽस्तु नौ द्युयोः । नीरे॑ कमिदमेकं नो वधो हरै॑ वयोहरै॑ ॥ १३८ ॥  
 हृत्याविष्कृतमानेष कुमारेण वयोहरः । द्युतं चिसर्जितोऽगस्त्वत्॒ पति॑ मक्षाहयेत्॒ परम् ॥ १३९ ॥  
 तदा सुकुर्यसंवद्वादुर्घुर्त्तमणिकोदिमि॑ ॥२ । कृतोरुमुकै॑ शतक्षेयैः द्योपस्थे महीशिमिः ॥ १४० ॥  
 क्षणं समरसंवद्यपिष्ठुनो मठसंकटै॑ ॥३ । श्रूयते स्म यद्यालापो वले भुजवर्काशितुः ॥ १४१ ॥  
 १४२ अदित्यत् समरसंवद्यः । आस्तित्वेऽस्त्राप्त्विलैः ॥४ । कृतं द्युमिसत्कारादनृणीमवितुः ज्ञमाः ॥ १४२ ॥

जो समस्त राजाओंके द्वारा रत्नोंकी राशिसे तोला गया है ऐसा यह भरत एक प्रकारका तुलापुरुष है खेद है कि ऐसा ऐश्वर्य नहीं होता ॥ १३२ ॥ अबरथ ही वह भरत अपने पूज्य पिता श्री भगवान् वृषभदेवके द्वारा दी हुई हमारी पृथिवीको छीनना चाहता है सो दूस लोभीका प्रत्याव्यान अर्थात् तिरस्कार करनेके सिवाय और कुछ उपाय नहीं है ॥ १३३ ॥ हे दूत, पिताजीके द्वारा दी हुई यह हमारे ही कुलकी पृथिवी भरतके लिए भाईकी स्त्रीके समान है अब वह उसे ही लेना चाहता है सो तेरे ऐसे स्वामीको क्या लज्जा नहीं आती ? ॥ १३४ ॥ जो सनुष्ठ स्वतन्त्र हैं और इच्छानुसार शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा रखते हैं वे अपने कुलकी स्त्रियों और भुजाओंसे कमायी हुई पृथिवीको छोड़कर बाकी सब कुछ दे सकते हैं ॥ १३५ ॥ इसलिए बार-बार कहना व्यर्थ है, एक छत्रसे चिह्नित इस पृथिवीको वह भरत ही चिरकाल तक उपभोग करे अथवा भुजाओंमें पराक्रम रखनेवाला मैं ही उपभोग करूँ । भावार्थ—मुझे पराजित किये बिना वह इस पृथिवीका उपभोग नहीं कर सकता ॥ १३६ ॥ जो प्रयोजनकी सिद्धि से रहित हैं ऐसे शूरवीरताके इन व्यर्थ वचनोंसे क्या लाभ है ? अब तो युद्धरूपी कसौटीपर ही मेरा और भरतका पराक्रम प्रकट होना चाहिए ॥ १३७ ॥ इसलिए हे दूत, तू यह हमारा सन्देहरहित एक वचन ले जा अर्थात् जाकर भरतसे कह दे कि अब तो हम दोनोंका जो कुछ होना होगा वह युद्धकी भीड़में ही होगा ॥ १३८ ॥ इस प्रकार अभिमान प्रकट करनेवाले कुमार बाहुबलीने उस दूतको यह कहकर शीघ्र ही बिदा कर दिया कि जा और अपने स्वामी को युद्धके लिए जल्दी तैयार कर ॥ १३९ ॥ उस समय जिनके मृकुटोंके संधर्षणसे करोड़ों मणि उछल-उछलकर इधर-उधर पड़ रहे हैं और उन मणियोंसे जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो अग्निके सैकड़ों फुलियोंको ही इधर-उधर फेला रहे हों ऐसे राजा लोग उठ खड़े हुए ॥ १४० ॥ उसी क्षण अनेक योद्धाओंसे भरी हुई महाराज बाहुबलीकी सेनामें युद्धकी भीड़को सूचित करनेवाला योद्धा लोगोंका परस्परका आलाप सुनाई देने लगा था ॥ १४१ ॥ इस समय स्वामीके यह युद्धकी तैयारी बहुत दिनमें हुई है, क्या अब हम लोग स्वामीके सत्कारसे उश्छण (ऋणमुक्त) हो सकेंगे ? भावार्थ—स्वामीने आजतक पालन-पोषण कर जो हम लोगोंका महान् सत्कार किया है क्या उसका बदला

१ रत्नार्थम् । २ छेतुमिष्ठति॑ ३ निराकरणीयत्वम् । 'प्रत्याश्यातो निराकृतः' इत्यभिधानात् । हेयत्वमित्यर्थः (हेयत्वमेव बोधवित्यर्थः) । ४ लक्ष्मव्य । ५ अनुजकलनम् । ६ आदानुमिच्छोः । ७ तत् कारणात् । ८ वहु-प्रलापैरलम् । ९ निःसञ्चेहम् । १० स्वोकुरु । ११ भी दूत । १२ गच्छ पति॑ द०, ल०, । १३ सञ्चढ़ कुप । १४ रत्नसमूहः । १५ अलातः । १६ भटवमूहः ।

पोषयन्ति महीपाला शृंखलवसरं प्रति । न चेद्वसरः सायं<sup>१</sup> किमेभिस्तुणमासुवैः ॥ १४३ ॥  
 कलेवरमिदं त्याज्यमर्जनीयं यशोभनम् । जयश्रीर्थिजये लभ्या नाल्पोदको रणोऽस्तवः ॥ १४४ ॥  
 मन्दातपशारक्काये प्रथम्हार्गार्काणिजजं है । लभ्यमहे कदा नाम विश्रमं<sup>२</sup> रणमण्डपे ॥ १४५ ॥  
 प्रत्यनीककृतानेकबृहू<sup>३</sup> निर्मित सायकैः । शरवाद्यामसंबाधमध्याशिष्ये कदा न्वहम् ॥ १४६ ॥  
 कर्णतालानिलाधूति<sup>४</sup> विष्टुतसमरथमः । गजस्तकन्वे निषीशामि<sup>५</sup> कदाहं क्षणमूळितः ॥ १४७ ॥  
 दन्तिदन्ता<sup>६</sup> रामप्रोतोदग्धदन्त्रं स्वलद्वचा । जयलङ्घमीकटाभाणो कदाऽहं लक्ष्यतां भजे ॥ १४८ ॥  
 गजदम्भाम्भरालभिस्तवान्त्रमालावरया<sup>७</sup> । कहिं दोलामिवारोद्य तुल्यामि जयश्रियम् ॥ १४९ ॥  
 शुद्धाणीरिति सङ्ग्रामसरसिकैहृभैर्भटैः । शस्त्राणि सशिरस्त्राणि सजान्द्यासन् इले बले ॥ १५० ॥  
 ततः कुलभयं भयो मठ्छुकुटितजितैः । पलायितमित्र काऽपि<sup>८</sup> परिच्छित्तिमगादहः<sup>९</sup> ॥ १५१ ॥  
 अथोरुद्यद्मदानीकनेश्रक्काशार्पितो रुचम् । दधान इव तिमांशुगसीदारकमण्डलः ॥ १५२ ॥  
 क्षणमस्तु चलप्रस्थकाननक्षमायपहलवैः । सद्याग्नोहितच्छायो वरशोऽक्षुशुसंस्तरः<sup>१०</sup> ॥ १५३ ॥

हम कुछ दे सकेंगे ? ॥ १४२ ॥ राजा लोग किसी खास अवसरके लिए ही सेवक लोगोंका पालन-पोषण करते हैं, यदि वह अवसर नहीं साधा गया अर्थात् अवसर पड़नेपर स्वामीका कार्य सिद्ध नहीं किया गया तो फिर तृणसे बने हुए इन पुरुषोंसे क्या लाभ है ? भावार्थ—जो पुरुष अवसर पड़नेपर स्वामीका साथ नहीं देते वे धास-फूसके बने हुए पुरुषोंके समान सर्वथा सारहीन हैं ॥ १४३ ॥ अब यह शरीर छोड़ना चाहिए, यशरूपी धन कमाना चाहिए और विजय लाभकर जयलङ्घमी प्राप्त करनी चाहिए, यह युद्धका उत्सव कुछ थोड़ा फल देनेवाला नहीं है ॥ १४४ ॥ हम लोग, धावोसे जर्जर हुए शरीरके प्रत्येक अंगोसे, जिसमें धामको मन्द करनेवाली बाणोंकी छाया पड़ रही है ऐसे युद्धके मण्डपमें कब विश्राम करेंगे ? ॥ १४५ ॥ कोई कहता था कि मैं कब अपने बाणोंसे शत्रुओंकी सेनाके द्वारा किये हुए अनेक व्यूहोंको छेदकर विना किसी उपद्रवके मूळित होकर हाथीके कानरूपी ताढ़पत्रकी वायुके चलनेसे जिसके युद्धका सब परिश्रम हूर हो गया है ऐसा होता हुआ हाथीके कल्पेषर बैठूँगा ? ॥ १४६ ॥ हाथीके दाँतरूपी अर्गलोंमें ऐसा होता हुआ मैं कब जयलङ्घमीके कटाक्षोंका निशाना बन सकूँगा ? भावार्थ—वह दिन कब होगा जब कि मैं भरता हुआ भी विजय प्राप्त करूँगा ? ॥ १४७ ॥ कोई कहता था कि हाथियोंके विजयलङ्घमीको बैठाकर मैं कब उसे तोलूँगा ? ॥ १४८ ॥ इस प्रकार कहते हुए युद्धके प्रेमो बड़े-बड़े योद्धाओंने प्रत्येक सेनामें अपने-अपने शस्त्र तथा शिरकी रक्षा करनेवाली टोपियाँ सैंभाल लीं ॥ १४९ ॥

तदनन्तर दिन समाप्त हो गया सो एसा मालूम होता था मानो योद्धाओंकी भीहोंके तिरस्कारसे भयभीत होकर कहीं भाग ही गया हो ॥ १५१ ॥ अथानन्तर सूर्यका मण्डल लाल हो गया मानो उसने क्रोधित हुए योद्धाओंकी सेनाके नेत्रोंकी छायाके द्वारा दी हुई लाल कान्ति ही धारण की हो ॥ १५२ ॥ उस समय क्षण-भरके लिए सूर्यकी किरणोंका समूह अस्तावल

<sup>१</sup> न गम्यवचेत् । <sup>२</sup> विश्रामे ल०, द०, अ०, प०, स० । <sup>३</sup> शत्रुघ्नसेनारचनाम् । <sup>४</sup> अवधूतम् । <sup>५</sup> निषणो भवामि । 'कदाकहूर्वी' इति भविष्यदर्थे लद् । <sup>६</sup> परिष्व । <sup>७</sup>-तीदगलदस-ट० । निर्यद्रक्षतः । <sup>८</sup> निजपुरीतश्-मालदृष्यया । 'दूष्या कद्या वरता स्याद्' इत्यभिप्रानाम् । <sup>९</sup> कदा । <sup>१०</sup> विनाशम् । <sup>११</sup> दिवसः । <sup>१२</sup> अवाश्य-ल० । <sup>१३</sup> सानु । <sup>१४</sup> रविकिरणसमूहः ।

कर्त्तव्यं प्रसंलग्नः भासुरालक्ष्यत क्षणम् । पातमीत्या करालाग्रे<sup>१</sup> करालमविद्याश्रयन् ॥ १५४ ॥  
 पतन्त चारणी संगत् परिलुप्तिभावसुमृ<sup>२</sup> । नालभवत् बतास्ताद्विभानुं विष्यदिवैनसः<sup>३</sup> ॥ १५५ ॥  
 गतो नु दिनमन्वेष्टु<sup>४</sup> प्रविष्टो नु रथातकम् । तिरोहितो नु शृङ्गाग्रैस्ताद्वै नैशि भानुमान् ॥ १५६ ॥  
 विवटर्य तमो नैशं<sup>५</sup> कर्त्तव्यम्भूतः । द्विवावसा<sup>६</sup> ने पर्यस्थदहो<sup>७</sup> रविरन्शुकः<sup>८</sup> ॥ १५७ ॥  
 तिर्यक्षमपहड्गतैव<sup>९</sup> शश्वद् भानुर्व अमन् । <sup>१०</sup> विप्रकष्टिजनैर्मूर्द्धप्राहीवे<sup>११</sup> पतक्षधः ॥ १५८ ॥  
 अवसनेऽस्मिन्<sup>१२</sup> दिनेशस्य शुचेव परिपीडितः । विष्णायानि सुखान्युद्गु<sup>१३</sup> स्तमोरुद्वा दिग्दृग्मवः ॥ १५९ ॥

के शिखरपर लगे हुए बनके वृक्षोंकी कोपलोंके समान कुछ-कुछ लाल रंगका दिखाई दे रहा था ॥ १५३ ॥ उस समय वह सूर्य अस्ताचलके शिखरपर लगे हुए किरणोंसे क्षण-भरके लिए ऐसा जान पड़ता था मानो नीचे गिरनेके भयसे अपने किरणरूपी हाथोंसे किसीके हाथका सहारा ही ले रहा हो ॥ १५४ ॥ जो सूर्य वाहणी अर्थात् पश्चिम दिशा ( पक्षमें मदिरा ) के समागमसे पतित हो रहा है और जिसका कान्तिरूपी धन नष्ट हो गया है ऐसे सूर्यको मानो पापसे डरते हुए ही अस्ताचलने आलम्बन नहीं दिया था । भावार्थ – वाहणी शब्दके दो अर्थ होते हैं मदिरा और पश्चिम दिशा । पश्चिम दिशामें पहुँचकर सूर्य प्राकृतिक रूपसे नीचेकी ओर ढलने लगता है । यहाँ कविने इसी प्राकृतिक दृश्यमें श्लेषमूलक उत्प्रेक्षा अलंकारकी पुट देकर उसे और भी सुन्दर बना दिया है । वाहणी अर्थात् मदिराके समागमसे मनुष्य अपवित्र हो जाता है उसका स्पर्श करना भी पाप समझा जाने लगता है, सूर्य भी वाहणी अर्थात् पश्चिम दिशा ( पक्षमें मदिरा ) के समागमसे मानो अपवित्र हो गया था । उसका स्पर्श करनेसे कही में भी पापी न हो जाऊँ इस भयसे अस्ताचलने उसे सहारा नहीं दिया – गिरते हुएको हस्तालम्बन देकर गिरनेसे नहीं बचाया । सूर्य डूब गया ॥ १५५ ॥ उस समय सूर्य दिखाई नहीं देता था सो ऐसा जान पड़ता था मानो बीते हुए दिनको खोजनेके लिए गया हो, अथवा पाताललोकमें घृस गया हो अथवा अस्ताचलके शिखरोंके अग्रभागसे छिप गया हो ॥ १५६ ॥ जिस प्रकार कोई वीर पुरुष दारिद्र्यरूपी अन्धकारको नष्ट कर और अपने कर अर्थात् टैक्स-द्वारा भूभूत् अर्थात् राजाओंपर आक्रमण कर दिन अर्थात् भास्यके अन्तमें अनंशुक अर्थात् बिना वस्त्रके थों ही चला जाता है उसी प्रकार सूर्य रात्रिसम्बन्धी अन्धकारको नष्ट कर तथा कर अर्थात् किरणोंसे भूभूत् अर्थात् पर्वतोंपर आक्रमण कर दिनके अन्तमें अनंशुक अर्थात् किरणोंके बिना थों ही चला गया – अस्त हो गया, यह कितने दुःखकी बात है ॥ १५७ ॥ यह सूर्य तो मेर पर्वतके चारों ओर गोलाकार तिरछी गतिसे निरन्तर घूमता रहता है तथापि दूर होनेसे दिखाई नहीं देता इसलिए मूखं पुरुषोंको नीचे गिरता हुआ-सा जान पड़ता है ॥ १५८ ॥ सूर्यकी इस विपत्तिके समय मानो शोकसे पीड़ित हुई दिशारूपी स्त्रियाँ अन्धकारसे भर जानेके कारण कान्तिरहित मुख धारण कर रही थीं । भावार्थ – पतिकी विपत्तिके समय जिस प्रकार कुलवती स्त्रियोंके मुख शोकसे कान्तिहीन हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्यकी विपत्तिके समय दिशारूपी स्त्रियोंके मुख शोकसे कान्तिहीन हो गये थे । अन्धकार छा जानेसे दिशाओंकी

१ विस्तताग्रः । ‘करालो दन्तुरे तुङ्गे दिशाले विकृतेऽपि च’ हत्यभिधानात् । २ वरुणसंबन्धिदिक्संगात् ।  
 भद्रसंगांदिति ध्वनिः । ३ कान्तिरेव धनं यस्य । पक्षे दिभा च वसु च विभावसुनो, परिप्लुते विभावसुनो  
 यस्य तम् । ४ न धरति स्म । ५ पापात् । ६ गवेषणाय । ७ निशासंबन्धिः । ८ पर्वतानाम् । नृगंश्व ।  
 ९ दिवसाल्ते । भग्यवावसाने च । दिवाव – ल०, द० । १० पतितवान् । ११ कान्तिरहितः, वस्त्ररहित  
 इति ध्वनिः । १२ मेरुदक्षिणरूपतिर्यग्बिस्त्रामनेन । १३ दूरात् । १४ स्वीकृतः । १५ विपदि ।  
 १६ धरन्ति स्म ।

पश्चिन्योऽलग्नपश्चास्या द्विरस्तकषणास्तेः । योचन्यं इव संतुता वियंगादहिमतिषः ॥१६०॥  
 संध्यातपतनान्यात्वन् बनान्यम्भाव्युतः । परतानीव द्रावाग्निशिख्यातिकरणलयः ॥१६१॥  
 अनुरक्तपि लब्धेयं परित्यक्ता विवस्त्रता । प्रविष्टेकाग्निभारकलद्विरालक्ष्यनाम्बः ॥१६२॥  
 शनैराकाशवाराशिविष्णुमेवानराजिवत् । रुद्धे दिशि वाहण्यां संध्याभिन्दृतस्तद्विः ॥१६३॥  
 चक्रवक्तीमतरतपर्वतान्ते तु हुताशनः । प्रपथे पदिवसाशान्ते संध्यारागां उपारणः ॥१६४॥  
 'सांख्यो रागः स्फुर्द्र दिक्षु क्षणसंक्षिप्रिशागमे । मानिनीनो मनोरागः शृत्स्तोऽसूर्यजिवेकतः ॥१६५॥  
 शुतरनाशुकां संध्यासनुयान्तीं दित्याविष्मृतः । अहुमेन सतीं लोकः कृतानुमरणामित्वः ॥१६६॥  
 चक्रशक्तीं भूगोलकात्मनुयान्तीं कृतस्वत्ताम् । 'विजहावेद चक्राहो' नियति को तु लक्ष्येत् ॥१६७॥  
 रवेः किञ्चरापोऽयं कालस्य नियतिः किमु । रथाङ्गमिष्ठुनान्यासन् वियुक्तानि यतो भिथः ॥१६८॥  
 घनं तमो विनाकेण व्यानते निविला दिशः । विना तेजस्विवा प्रायरतमो रुद्धे तु संततम् ॥१६९॥  
 तमोऽवगुणिता रेते रजनी तारकात्तता । विर्जलवसना भास्वन्मर्ज्जिकेवाभिसारिका ॥१७०॥

शोभा जाती रही थी ॥१५९॥ कमलिनियोंके कमलरूपी मुख मुख्या गये थे जिससे वे ऐसी जान पढ़ती थीं मानो सूर्यका वियोग होनेसे भ्रमरोंके करुणाजनक शब्दोंके बहाने रुदन करती हुई शोक हो कर रही हों ॥१६०॥ सायंकालके लाल-लाल प्रकाशसे व्याप्त हुए अस्ताचलके बन ऐसे जान पढ़ते थे मानो अत्यन्त भर्यकर दावानलकी शिखासे ही घिर गये हों ॥१६१॥ यद्यपि यह सन्ध्या अनुरक्त अर्थात् प्रेम करनेवाली ( पक्षमें लाल ) थी तथापि सूर्यने उसे छोड़ दिया था इसलिए ही बहुल्याल रंगकी सन्ध्या ५ अक्षांशमें जलन जलदत्ती थी मानो उसने अग्निमें ही प्रवेश किया हो । भावार्थ – पतिव्रता स्त्रियों पतियोंके द्वारा अपमानित होनेपर अपनी विशुद्धताका परिचय देनेके लिए सीताके समान अग्निमें प्रवेश करती हैं यहांपर कविने भी समासोक्त अलंकारका आश्रय लेकर सन्ध्यारूपी स्त्रीको सूर्यरूपी पतिके द्वारा अपमानित होनेपर अपनी विशुद्धता – सच्चरित्रताका परिचय देनेके लिए सन्ध्या कालकी लालिमा रूपी अग्निमें प्रवेश कराया है ॥१६२॥ सिन्धुरके समान थेष्ठ कान्तिको धारण करनेवाली वह सन्ध्या धीरे-धीरे पदिच्चम दिशामें ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो आकाशरूपी समुद्रमें मूँगोंके बगीचोंकी पंक्ति ही हो ॥१६३॥ जबाके फूलके समान लाल-लाल वह सन्ध्याकालकी लाली पदिच्चम दिशाके अन्तमें ऐसी फैल रही थी मानो चक्रवियोंके मनके सन्तापको बढ़ानेवाली अग्नि ही हो ॥१६४॥ समस्त दिशाओंमें फैलती हुई सन्ध्याकालकी लाली क्षण-भरके लिए ऐसी दिखाई देती थी मानो पतियोंके आनेपर मान करनेवाली स्त्रियोंके मनका समस्त अनुराग ही एक जगह इकट्ठा हुआ हो ॥१६५॥ लाल किरणरूपी वस्त्र धारण कर सूर्यरूपी पतिके पीछे-पीछे जाती हुई सन्ध्याको लोग पतिके साथ मरनेवाली सतीके समान बहुत कुछ मानते थे ॥१६६॥ चक्रवाने बड़ी उल्कणासे अपने पीछे-पीछे आती हुई और शब्द करती हुई चक्रबीकी आखिर छोड़ ही दिया था सो ठीक ही है क्योंकि नियति अर्थात् ईविक नियमका उल्लंघन कौन कर सकता है ? ॥१६७॥ उस समय चक्रवा चक्रवियोंके जोड़े परस्परमें बिछुड़ गये थे – अलग-अलग हो गये थे, सो यह क्या सूर्यका अपराध है ? अथवा कालका अपराध है ? अथवा भावका ही अपराध है ? ॥१६८॥ सूर्यके बिना सब दिशाओंमें गाह अन्धकार कैल गया था सो ठीक ही है क्योंकि तेजस्वीके बिना प्रायः सब और अन्धकार ही भर जाता है ॥१६९॥ अन्धकारसे घिरी हुई और ताराओंसे व्याप्त हुई वह रात्रि ऐसी सुशोभित हो रही

१ उट्टीपनकानी । २ संध्यारागः ल०, द० । ३ प्रसर्वन् । ४ सममरणाम् । अग्निप्रवेशं कुर्वतीमित्यर्थः ।  
 ५ सुमूचै । ६ चक्राद्यको ल०, द०, अ०, स०, इ० । ७ व्याख्योति । ८ तमसाच्छादिता । ९ वेश्या ।

ततान्धतमसं लोकं जनैरुपमं किंतेश्वरैः । नादृयत मुहः किञ्चिन् मिथ्यावेनव दृष्टिः ॥ १७१ ॥  
 प्रसाद्यै तमसा रुद्धो लोकोऽन्यर्कुर्णभवन् । दृष्टिवैष्वर्यै दृष्टेनु चहु मेषे शयासुताम् ॥ १७२ ॥  
 दीपिका इच्छा रेजुः प्रतिवेशम् स्फुरत्विष्यः । २ घनान्धतमसोद्भेदे प्रकल्पाः ३ इव लूचिकाः ॥ १७३ ॥  
 तमो विधूय दूरेण जगत्तानन्दिभिः कर्तः । उद्दिक्षाय शशी लोकं श्रीरेण कालयश्चिद् ॥ १७४ ॥  
 अखण्डसनुवर्णं निजं मण्डलमुद्भवन् । सुरजेष्व कृतानन्दसुवर्गात् विद्युरुक्तरः ॥ १७५ ॥  
 द्वैवाकृष्टहरिणं हरिं हरिणलाङ्घनम् । तिमिर्माषः प्रदुद्राव करियुथसदग् महान् ॥ १७६ ॥  
 तततारावलो रेजे अयोस्तापूरः सुधारुद्धैः । सदुदुदुद इवाकाशसिन्धोरीधः परिश्रस्म् ॥ १७७ ॥  
 इसप्रत द्वान्नियच्छन् शशी तिमिर्मावलम् । तारा सहस्राक्षान्तं विजगाहे नभःसरः ॥ १७८ ॥  
 तमो निःशेषमुद्भूतं जगदाप्लावयत् कर्तः । प्रालेयाग्निस्तदा विश्वं सुपामयमिवातनोत् ॥ १७९ ॥  
 तमो दूरं विधुयाऽपि विधुरार्पात् कलद्वान् । निसर्गां तमो नूनं महताऽपि सुदुस्त्वजम् ॥ १८० ॥

थो मानो नील वस्त्र पहने हुई और चमकीले सोतियोंके आभूषण धारण किये हुई कोई अभिसारिणी स्त्री ही हो ॥ १७० ॥ जिस प्रकार मिथ्या दर्शनसे दूषित पुरुषोंको कुछ भी दिखाई नहीं देता – पदार्थके स्वरूपका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। उसी प्रकार गाढ़ अन्धकारसे भरे हुए लोकमें गुरुणोंको आँख खोलनेपर भी सामनेकी कुछ भी वस्तु दिखाई नहीं देती थी ॥ १७१ ॥ जबरदस्ती अन्धकारसे घिरे हुए लोग भीतर ही भीतर व्याकुल हो रहे थे और उनकी दृष्टि भी कुछ काम नहीं देती थी इसलिए उन्होंने सोना ही अच्छा समझा था ॥ १७२ ॥ घर-घरमें लगाये हुए शक्तिशाली दीपल, श्लेषे अद्यत्ते सुडाहेतिहास्तोजहेत्तुक्षेत्रमानो अत्यन्त गाढ़ अन्धकारको भेदन करनेके लिए वहुत-सी सुइयाँ ही तैयार को गयी हों ॥ १७३ ॥ इतने ही में जगत्को आनन्दित करनेवाली किरणोंसे अन्धकारको दूरसे ही नष्ट कर चन्द्रमा इस प्रकार उदय हुआ मानो लोकको दूधसे नहला ही रहा हो ॥ १७४ ॥ वह चन्द्रमा किसी उत्तम राजके समान संसारको आनन्दित करता हुआ उदय हुआ था, क्योंकि जिस प्रकार उत्तम राजा अनुराग अर्थात् प्रेमसे अपने अखण्ड ( सम्पूर्ण ) मण्डल अर्थात् देशको धारण करता है उसी प्रकार वह चन्द्रमा भी अनुराग अर्थात् लालिमासे अपने अखण्डमण्डल अर्थात् प्रतिविम्बको धारण कर रहा था और उत्तम राजा जिस प्रकार चारों ओर अपना कर अर्थात् टैक्स फैलाता है उसी प्रकार वह चन्द्रमा भी चारों ओर अपने कर अर्थात् किरणें फैला रहा था ॥ १७५ ॥ हरिणके चिह्न-वाले चन्द्रमाको देखकर अन्धकारका समूह बड़ा होनेपर भी इस प्रकार भाग गया था जिस प्रकार कि हरिणको पकड़े हुए सिहको देखकर हाथियोंका बड़ा भारी झुण्ड भाग जाता है ॥ १७६ ॥ जिसमें ताराओंकी पड़वित फौली हुई है ऐसा चन्द्रमाकी चाँदिनीका समूह उस समय ऐसा अच्छा ज्ञान पड़ता था मानो बुद्धुदोसहित ऊपरसे पड़ता हुआ आकाशरूपी समुद्रका प्रवाह ही हो ॥ १७७ ॥ हंसके बच्चेके समान वह चन्द्रमा अन्धकाररूपों शैवालको खोजता हुआ तारेहूपी हंसियोंसे भरे हुए आकाशरूपी सरोबरमें अवगाहन कर रहा था – इवर-उधर घूम रहा था ॥ १७८ ॥ समस्त अन्धकारको नष्ट कर जगत्को किरणोंसे भरते हुए चन्द्रमाने उस समय यह समस्त संसार अमृतमय बना दिया था ॥ १७९ ॥ अन्धकारको दूर करके भी वह चन्द्रमा कलंकी बन रहा था सो ठीक ही है क्योंकि स्वाभाविक अन्धकार बड़े पुरुषोंसे छूटना

भित्तिव र्कः स्पृष्टा दिशस्तिमिरभेदिभिः । शर्नैरेषा हवालोकमातेनुः शिशिरत्विवा ॥१८१॥  
 इति प्रदोषसमये जाते प्रस्पष्टतारके । सौधोऽसंगमुबो भेदुः पुरनश्च यः सह कामिभिः ॥१८२॥  
 चन्दनद्रवसिकाङ्गुः खण्डिष्यः<sup>१</sup> सावत्सिकाः । लसदाभरणा रेतुस्तन्यः कल्पलता हृष्व ॥१८३॥  
 हृतुपादैः समुक्तर्षमयाभ्यकरकेतनः । तदोदध्वानिवोद्वेलो मनोकृतिषु कामिनाम् ॥१८४॥  
 रमणा<sup>२</sup> रमणीयाश्च चन्द्रपादाः सचन्द्रमाः ।<sup>३</sup> मदांश्च मदनारम्भमातन्त्रन् रमणीजने ॥१८५॥  
 शशाङ्ककरज्ञेत्राज्ञेत्सर्वज्ञयज्ञित्विलं जगत् । तृष्णवलभिकावासान्मनोभूरभ्यवेणयन्<sup>४</sup> ॥१८६॥  
 नास्थादि भद्रिरा स्वैरं नाज्ञेव न करेऽपिता । केवल मदनावेशासहण्यो भेजुरकताम् ॥१८७॥  
 उपसंगसंगिनी भर्तुः काचिन्मदविभूतिर्ता । कामिनी मोहनाक्षेण वतान्मेन तर्जिता ॥१८८॥  
 सखीवचनसुलक्षण भक्त्यस्त्रा भानं निरग्नाला<sup>५</sup> । प्रथान्ती रमणावासं काष्ठन्मेन धीरिता<sup>६</sup> ॥१८९॥  
 शंकलीवचनदृत्ता काचित् पर्वशुलोचना । चकाङ्क्ष भृशं तेषं नायाति प्राणवलुभे ॥१९०॥  
 शून्यगानस्वनैः<sup>७</sup> छोणामलिज्याकलहस्तैः<sup>८</sup> । पूर्वरंगमिवामङ्गो रचयामास कामिनाम् ॥१९१॥

भी कठिन है ॥१८०॥ जिस प्रकार वैद्यके द्वारा तिमिर रोगको नष्ट करनेवाले हाथोंसे स्पर्श की हुई आँखें धीरे-धीरे अपना प्रकाश फैलाने लगती हैं उसी प्रकार चन्द्रमाके द्वारा अन्धकार को नष्ट करनेवाली किरणोंसे स्पर्श की हुई दिशाएँ धीरे-धीरे अपना प्रकाश फैलाने लगी थीं ॥१८१॥ इस प्रकार जिसमें तारागण स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं ऐसा सायंकालका समय होनेपर सब स्त्रियाँ अपने-अपने पतियोंके साथ महलोंकी छतोंपर जा पहुँचीं ॥१८२॥ जिनके समस्त शरीरपर घिसे हुए चन्दनका लेप लगा हुआ है, जो मालाएँ धारण किये हुई हैं, कानोंमें आभूषण पहने हैं और जिनके समस्त आभरण देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसी वे स्त्रियाँ कल्पलताओंके समान सुशोभित हो रही थीं ॥१८३॥ उस समय चन्द्रमाकी किरणोंसे जिस प्रकार समुद्र लहराता हुआ वृद्धिको प्राप्त होने लगता है उसी प्रकार कामी मनुष्योंके मनमें काम उद्भेदित होता हुआ बढ़ रहा था ॥१८४॥ सुन्दर पति, चन्द्रमाकी किरणें और चन्दन सहित मद ये सब मिलकर स्त्रियोंमें कामकी उत्पत्ति कर रहे थे ॥१८५॥ चन्द्रमाकी किरणेंरूपी विजयी शस्त्रोंके द्वारा समस्त जगत्को तिरस्कृत करता हुआ कामदेव राजाकी स्त्रियोंके निवासस्थानमें भी सेनासहित जा पहुँचा था ॥१८६॥ तरुण स्त्रियोंने न तो भद्रिराका स्वाद लिया, न इच्छानुसार उसे सूंधा और न हाथमें ही लिया, केवल कामदेवके आवेशसे ही उल्कण्ठाको प्राप्त हो गयीं, अर्थात् कामसे विहृल हो उठीं ॥१८७॥ पतिकी गोदमें बैठी हुई और मदसे झूमती हुई कोई स्त्री कामदेवके द्वारा मोहन अस्त्रसे ताड़ित की गयी थी ॥१८८॥ कामदेवसे प्रेरित हुई कोई स्त्री सखीके बचन उल्लंघन कर तथा मान छोड़कर स्वतन्त्र हो अपने पतिके निवासस्थानको जा रही थी ॥१८९॥ कोई स्त्री पतिके न आनेपर वापस लौटी हुई दूतीके बचनोंसे दुःखी होकर आँखोंसे आँसू छोड़ रही थी और चकड़ीके समान अत्यन्त विहृल हो रही थी – तड़प रही थी ॥१९०॥ शून्य हृदयसे गाये हुए स्त्रियोंके सुन्दर गीतोंसे तथा भ्रमरपंचितके मनोहर झंकारोंसे कामदेव कामी पुरुषोंके लिए पूर्वरंग अर्थात् नाटकके प्रारम्भमें होनेवाला एक अंग विशेष ही मानो बना रहा था । भावार्थ – उस समय स्त्रियाँ पतियोंकी प्राप्तिके लिए बेसुध होकर गा रही थीं और उड़ते हुए भ्रमरोंकी गुजार फैल रही थी जिससे ऐसा मालूम होता था मानो कामदेवरूपी नट कामकीड़ारूप नाटकके पहले होनेवाले संगीत विशेष ही दिखला रहा हो । नाटकके पहले जो मंगल-संगीत होता है उसे पूर्वरंग कहते हैं ॥१९१॥

<sup>१</sup> मालभारिणः । <sup>२</sup> प्रियतमा: । <sup>३</sup> मदारच ल० । <sup>४</sup> सेनया सहाम्यगमयन् । <sup>५</sup> उल्कण्ठाम् । <sup>६</sup> प्रतिबन्धरहिता । <sup>७</sup> धैर्यं नोता । <sup>८</sup> चित्तयांमोहनहेतुगोतविशेषः । <sup>९</sup> कलाध्वनिभेदः ।

‘गोत्रस्खलनसंवृद्धै मन्दुमन्यामनन्यजः । नोपेक्षिष्ठ प्रियोरसंगमनयज्ञसंगताम् ॥ १९३॥  
 नेनुपार्थेति लेसे नोहीरै जलाद्रथाै । खणित्वाै मानिनी काचिदन्तस्तापे बलीयमि ॥ १९४॥  
 काचिदुत्तापिभिर्वाणैस्तापिताऽपि मनोभुवा । निष्मिनी प्रतीकारं नैच्छहैयविलम्बिनी ॥ १९५॥  
 अनुस्कलया दूरं नीतया प्रणयोचिताम् । भूमिं दूनाऽन्यया सोदः संवेशःै परमाक्षरः ॥ १९६॥  
 आण्डैै त्वं नालिकैै ब्रूहि गतः किञ्चु विलक्षताम् ॥ १९७॥ प्रियानामाैै क्षैरैै क्षीणैै मोहान्मद्यवतारितैै ॥  
 यथा तत्र हृतं चेतस्तया लज्जाऽन्यहारि किम् । येन निष्पैै भूयोऽपि प्रणयोऽस्मासु तन्यते ॥ १९८॥  
 सैदानुवत्तनीयो ते सुभगंैै मन्यमानिनी । अस्थाने चोजिताै प्रीतिर्जायतेऽनुशयायैै तंैै ॥ १९९॥  
 इति प्राणप्रियां काचिद् संविशमतीैै सखीजने । युवा साकृतमध्येत्य नानुनिष्ट्यैै न मानिनीम् ॥ २००॥  
 अन्द्रपादास्तपस्तीव चन्दनं दहसीव माम् । संधुक्ष्यत इवाऽमीमिः कामाङ्गिर्व्यजनानिलैः ॥ २००॥

गोत्रस्खलन अर्थात् भूलसे किसी दूसरी स्त्रीका नाम ले देनेसे जिसका क्रोध बढ़ रहा है ऐसी किसी अन्य नवीन व्याही हुई स्त्रीकी भी कामदेवने उपेक्षा नहीं की थी किन्तु उसे भी पतिके समीप पहुँचा दिया था । भावार्थ-प्रीढ़ा स्त्रियोंकी अपेक्षा नवोढ़ा स्त्रियोंमें अधिक मान और लज्जा रहा करती है परन्तु उस चन्द्रोदयके समय वे भी कामसे उन्मत्त हो सब मान और लज्जा भूलकर पतियोंके पास जा पहुँची थीं ॥ १९२॥ जिस किसी स्त्रीका पति वचन देकर भी अन्य स्त्रीके पास चला गया था ऐसी अभिमानिनी स्पष्टिता स्त्रीके मनका सन्ताप इतना अधिक बढ़ गया था कि उसे न तो चन्द्रमाकी किरणोंसे सन्तोष मिलता था, न उशोर (खस) से और न पंखेसे ही ॥ १९३॥ धीरज धारण करनेवाली कोई स्त्री कामदेवके द्वारा अत्यन्त पोड़ा देनेवाले बाणोंसे दुःखी होकर भी उसका प्रतीकार नहीं करना चाहती थी । भावार्थ-अपने धैर्येणुणसे कामपीड़को चुपचाप सहन कर रही थी ॥ १९४॥ कोई तरुण पुरुष प्रेमसे भरी हुई अपनी अन्य स्त्रीको प्रेम करने योग्य किसी दूर स्थानमें ले गया था, वही वह उसके कठोर अक्षरोंसे भरे हुए सन्देशको चुपचाप सहन कर रही थी ॥ १९५॥ कोई स्त्री अपनी सखीसे कह रही थी कि हे सखि, सच वह कि क्या वह भ्रमसे मेरे विषयमें कहे हुए और अत्यन्त क्षीण अपनी प्रियाके नामके अक्षरोंसे कुछ अकित हुआ था ? ॥ १९६॥ कोई स्त्री अपने अपराधी पतिसे कह रही थी कि हे निर्लंज, जिसने तेरा चित्त हरण किया है क्या उसने तेरी लज्जा भी छीन ली है ? क्योंकि तू फिर भी मुझपर प्रेम करना चाहता है ॥ १९७॥ कोई स्त्री पतिको ताना दे रही थी कि आप अपने आपको बड़ा सीभाग्यशाली समझते हैं इसलिए जाइए उसी भान करनेवाली स्त्रीकी सेवा कीजिए क्योंकि अयोग्य स्थानमें की गयी प्रीति आपके सन्तापके लिए ही होगी । भावार्थ-मुझसे प्रेम करनेपर आपको सन्ताप होंगा इसलिए अपनी उसी प्रेयसीके पास जाइए ॥ १९८॥ इस प्रकार सखियोंके लिए सन्देश देती हुई किसी अहंकार करनेवाली प्यारी स्त्रीको उसका तरण पति आकर बड़े आदरके साथ नहीं मना रहा या क्या ? अर्थात् अवश्य ही मना रहा था ॥ १९९॥ कोई स्त्री अपनी सखीसे कह रही थी कि ये चन्द्रमाकी किरणें मुझे सन्ताप दे रही हैं, यह चन्दन जला-सा रहा है और यह पंखोंकी हवा मेरी कामानिको बड़ा

१ नामस्खलन । २ प्रवृद्धकोधाम् । ३ कामः । ४ नववृमित्यर्थः । ५ लामज्जकैः । 'मूलेऽस्योर्मीरमस्त्रियाम्' ।  
 'अभयं नलद्व सेष्यमयूणाल जलाशयम् । लामज्जकै लघुलघमवदाहेष्टकापये ।' इत्यभिधानात् । ६ अवश्यनेन ।  
 ७ वियुक्ता । ८ संधानम् (श्यामृहम्) । ९ वाचिकम् । १० भो सखि । ११ अनुत्तम् । १२ विस्मयाम्बिताम् ।  
 १३ दिव्यैः । १४ निर्लंज । १५ अहं सुभगेति मन्यमाना रामा । १६ पश्चात्तापाम् । १७ तव । १८ संज-  
 ल्पन्तीम् । वचनं प्रेषपन्तीम् । १९ न्येऽय ल०, द० । अनुनयं नाकरोदिति न । (अपि तु करोत्येव ) ।

तमानेवानुनीयेह नय मो वा सद्वन्तिकम् । त्वदधीना सम प्राणः प्राणेषो बहुवल्लभे<sup>१</sup> ॥२०१॥  
 हस्यनहातुरा कर्चित् संदिशस्ति सखीं मिथः<sup>२</sup> । भुजोपरोधमाद्येवि पत्ना प्रत्यग्रथिडता<sup>३</sup> ॥२०२॥  
 राज्ये मनोभवस्याद्यिमन् स्वैर् रंभ्यतामिति । कामिनीकलकांचीभिरुद्धोषीव घोषणा ॥२०३॥  
 कर्णोत्पलनिलीनालिङ्गलोकाहलस्वर्णः । उपजेपे<sup>४</sup> किमु स्त्रिणां कर्णजाहे<sup>५</sup> मनोभुवा ॥२०४॥  
 स्त्रियाङ्गरागसंमर्दी परिमोडसिनिदैयः । वयुधे कामिनीत्रेषु रेषमश्च कृत्यग्रहः ॥२०५॥  
 आरक्षकलुषा दृष्टिसुखमायाट लाधरम् । रक्तान्ते कामिनीमासीत् सौकृतं वाऽसकृत्युतम् ॥२०६॥  
 पुष्पसंमर्दसुरभीराजस्तजवनांशुकाम् । संमोगा वसतौ<sup>६</sup> शश्या भिधुनान्यधिशेषतः ॥२०७॥  
 केविद् वीरमट्टमीविरणा रम्भलोत्पवैः । ग्रियोपरोधान्मन्देष्ठैर्यासेवि रतोत्सवः ॥२०८॥  
 केविद् कौर्यङ्गनासंगमुखसंगकृतपृहाः । ग्रियाङ्गनापरिष्वग्मज्ञीचकुर्म मानिनः ॥२०९॥  
 निजितारिमैभीम्या ग्रिया मास्मामिर्त्यथा । इति आलिमटाः केविद्व भेद्यं शथनान्यविः ॥२१०॥  
 शरतलुपगतानस्यसुखसंकल्पतः परे । नाभ्यनश्वदम् ग्रियातलगमनल्पेच्छा मटोत्तमाः ॥२११॥  
 स्वकामिनीभिराशब्दवीरालार्यमटैः परैः । विभावरी विभाताऽपि<sup>७</sup> सा नावेदि रणोन्मुखैः ॥२१२॥

सी रही है ॥२००॥ इसलिए मनाकर या तो उन्हें यहाँ ले आ या मुझे हो उनके पास ले जल,  
 यह ठीक है कि प्राणपति के अनेक स्त्रियाँ हैं इसलिए उन्हें मेरी परवाह नहीं है किन्तु मेरे प्राण  
 तो उन्हींके अधीन हैं ॥२०१॥ इस प्रकार कामदेवसे पीड़ित होकर कोई स्त्री अपनी सखीसे  
 सन्देश कह ही रही थी कि इतनेमें उस नवीन विरहिणी स्त्रीको पास ही छिपे हुए उसके पतिने  
 दोनों भुजाओंसे पकड़कर परस्पर आलिंगन किया ॥२०२॥ उस समय मनोहर शब्द करती हुई  
 स्त्रियोंकी करथनियाँ मानो यही घोषणा कर रही थीं कि आप लोग कामदेवके इस राज्यमें  
 इच्छानुसार क्रीड़ा करो ॥२०३॥ उन स्त्रियोंके कर्णफूलके कमलोंमें छिपे हुए भ्रमरोंके समूह  
 कोलाहल कर रहे थे और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेव स्त्रियोंके कानोंके समीप  
 लगकर कुछ गुप्त बातें ही कर रहा हो ॥२०४॥ उस समय कामी लोगोंके समूहमें स्त्रियोंके  
 स्तनोंपर लगे हुए लेपको मद्दत करनेवाला और अत्यन्त निर्दय आलिंगन बढ़ रहा था तथा  
 वेगपूर्वक केशोंकी पकड़ा-पकड़ी भी बढ़ रही थी ॥२०५॥ सम्भोगके बाद कामी लोगोंके नेत्र  
 कुछ-कुछ लाल और कलुषित हो गये थे, मुख कुछ-कुछ मुलाबी अधरोंसे पुक्त हो गया था  
 तथा उससे सी-सी शब्द भी बार-बार हो रहा था ॥२०६॥ सम्भोग-क्रियाके समाप्त होनेपर  
 स्त्री और पुरुष दोनों ही उन शश्याओंपर सो गये जो कि फूलोंके सम्मर्दसे सुमन्धित हो रही थीं  
 और जिनपर खुलकर अधोवस्त्र पड़े हुए थे ॥२०७॥ जिन्हें होनेवाले युद्धके प्रारम्भमें बड़ा  
 आनन्द आ रहा था ऐसे कितने ही शूरवीर योद्धाओंने इच्छा न रहते हुए भी अपनी प्यारी  
 स्त्रियोंके आग्रहसे सम्भोग सुखका अनुभव किया था ॥२०८॥ कीर्तिरूपी स्त्रीके समागमसे  
 उत्पन्न होनेवाले सुखमें जिनकी इच्छा लग रही है ऐसे कितने ही मानी योद्धाओंने अपनी  
 प्यारी स्त्रियोंका आलिंगन स्वीकार नहीं किया था ॥२०९॥ ‘जब हम लोग शत्रुके योद्धाओंको  
 जीत लेंगे तभी प्रियाका उपभोग करेंगे अन्यथा नहीं’ ऐसी प्रतिज्ञा कर कितने ही स्वाभाविक  
 शूरवीर शश्याओंपर ही नहीं गये थे ॥२१०॥ बड़ी-बड़ी इच्छाओंको धारण करनेवाले  
 कितने ही उत्तम शूरवीरोंने बाणोंकी शश्यापर सोनेसे प्राप्त हुए भारी सुखका संकल्प किया  
 था इसलिए ही उन्होंने प्यारी स्त्रियोंकी शश्यापर सोना अच्छा नहीं समझा था ॥२११॥  
 जिन्होंने अपनी स्त्रियोंके साथ अनेक शूरवीरोंकी कथाएँ कहना प्रारम्भ किया है ऐसे युद्धके  
 १ बहुस्त्रीके सति । २ रहसि । ३ नूतनवियुक्ता । ४ रहो वभावे । भेदकुमन्त्रः सूचितः । ५ कर्णपूले ।  
 ६ ईषदरूण । ७ सुरतावसाने । नास्माभि-ल०, द०, अ०, प०, स०, ह० । ९ प्रभातापि ।

केचिद्गणरसासक्तमनसोऽपि पुरः स्थितम् । कान्तामंगरसं रूपैर्भेजः समरथा भयः ॥२१३॥  
 प्रहारकर्कषो दृष्टदशनरुद्रनिष्ठुरः । रतारम्भो रणारम्भनिविशेषो न्यवेषि तैः ॥२१४॥  
 रतानुवर्तनैर्गाढपरिरम्भसुखार्थैः । मनोसि कामिनो जदः कामिन्यस्तः स्मरनुराः ॥२१५॥  
 लग्नंदीपितैः स्वान्तर्मैर्मुखलक्ष्मिः ॥६४॥ अव्याप्तप्रलक्षित्वैवत्तरसमभूमिः ॥२१६॥  
 तासामकृतकर्मेहगमैः कृतकैतवैः । रमिकोऽभूद् रतारम्भः संभोगान्तेषु कामिनाम् ॥२१७॥  
 तेषां मिथुवनारम्भमित्युमिगतं तदा । संद्रष्टुभूतहन्तीय पर्यवर्तनं सा निशा ॥२१८॥  
 अलं दत्त चिरं रंचा द्रृपती ताम्यथो<sup>१</sup> तुवाम् । लम्बितेन्दुमुखी तस्थौ हृषीवापरदिवधूः ॥२१९॥  
 विघटक्य रथाङ्गानां मिथुनानि मिथोऽशुमान् । तापेन ताकृतेनेव<sup>२</sup> परिमोऽभूद्युदिवाय सः ॥२२०॥  
 तावदासीद् दिनारम्भो गतं नैशां तमो लयम् । सहस्रोशुकिंश्च प्राणी परिरम्भे<sup>३</sup> करोकरैः ॥२२१॥  
 किरणैस्तराणैरेव तमः शार्वरमुद्दृष्टम् । तरणेः करणीयं तु दिनश्रीपरिरम्भगम्य<sup>४</sup> ॥२२२॥  
 कोककान्तानुरागेण समं पश्याकरे शिवम् । पुण्णाङ्गाशुरुच्छक<sup>५</sup> मुष्णाम्कासुदी शिवम् ॥२२३॥

सन्मुख हुए अन्य योद्धा लोगोंको सबेरा होते हुए भी कह रात जान नहीं पड़ी थी । आवार्य – कथाएँ, बहते-कहते यादि समाप्त हो गयी, सबेरा हो गया फिर भी उन्हें मालूम नहीं हुआ ॥२१२॥ युद्ध और संभोगमें एक-सा आनन्द माननेवाले कितने ही योद्धाओंका चित्त थव्यपि युद्ध-के गम्भीर आसक्त हो रहा था उद्यागि उन्होंने सामने प्राप्त हुए स्त्रीसंभोगके रसका भी इच्छानुसार उपभोग किया था ॥२१३॥ उन योद्धाओंने रणके प्रारम्भके समान ही संभोगका प्रारम्भ किया था, क्योंकि जिस प्रकार रणका प्रारम्भ परस्परके प्रहारों ( चोटीं ) से कठोर होता है उसी प्रकार संभोगका प्रारम्भ भी परस्परके प्रहारों अर्थात् कच्चप्रह, नखक्षत आदिसे कठोर था, और जिस प्रकार रणका प्रारम्भ होंठ चबाये जानेसे निर्दय होता है उसी प्रकार संभोगका प्रारम्भ भी होंठोंके चुम्बन आदिसे निर्दय था ॥२१४॥ कामसे पीड़ित हुई कितनी ही स्त्रियों पतियोंका गाढ़ आलिंगन कर, चुम्बनके लिए उन्हें अपना मुख देकर और उनके साथ संभोगकर उनका मन हरण कर रही थी ॥२१५॥ आधी नजरसे देखना, भीतर-ही-भीतर हैसते हुए अव्यक्त शब्द कहना, असमयमें रुस जाना, बड़ी तेजीके साथ करवट बदलना, भौंहोंको आड़ी तिरछी चलाना और स्वाभाविक स्नेहसे भरा हुआ छूठा छल-कपट दिखाना आदि स्त्रियों-के अनेक व्यापारोंसे संभोगका एक दौर समाप्त हो जानेपर भी कामी पुरुषोंका पुनः संभोग प्रारम्भ हो रहा था और बड़ा ही रसीला था ॥२१६-२१७॥ उस समय वह रात्रि पोदन-पुरके स्त्री-पुरुषोंके उस बढ़े हुए संभोगको देख नहीं सकी थी इसलिए ही मानो उलट पड़ी थी अर्थात् समाप्त हो चुकी थी – प्रातःकालके रूपमें बदल गयी थी ॥२१८॥ जिसका चन्द्रमा-रूपी मुख नीचेकी ओर लटक रहा है ऐसी पद्मिनी दिशारूपी स्त्री मानो यही कहती हुई खड़ी थी कि हे स्त्री पुरुषो, रहने दो, बहुत देर तक क्रीड़ा कर चुके, नहीं तो तुम दोनों ही दुःख पाओगे ॥२१९॥ सूर्यने सार्यकालके समय चकवा-चकवियोंको परस्पर अलग-अलग किया था इसी सन्तापसे व्याप्त हुआ मानो वह फिरसे उदय होने लगा ॥२२०॥ इतनेमें ही दिनका प्रारम्भ हुआ, रात्रिका अन्धकार विलीन हो गया और सूर्यने अपनी किरणोंके समूहसे पूर्व-दिशाका आलिंगन किया ॥२२१॥ रात्रिका अन्धकार तो सूर्यकी लाल किरणोंसे ही तष्ठ हो गया था अब तो सूर्यको केवल दिशरूपी लक्ष्मीका आलिंगन करना बाकी रह गया था ॥२२२॥ सूर्य चकवियोंके अनुरागके साथ-ही-साथ कमलोंकी शोभा बढ़ा रहा था और उदय

<sup>१</sup> गाढ़ एरि ल० । <sup>२</sup> अव्यक्तभावणीः । <sup>३</sup> विषमभूमिः । <sup>४</sup> प्रलयं गता । <sup>५</sup> ताम्यता ल० । <sup>६</sup> विषट्म-हृतेन । <sup>७</sup> व्याप्तः । <sup>८</sup> आलिङ्गनं चकार । <sup>९</sup> आलिङ्गनम् । <sup>१०</sup> –शूद्रगच्छन् ल०, द० ।

‘तदेव तदेव दसु जात्या दिल्लुक्षणं प्रकाशयत् । जगद्गुड्डोऽस्मिन् ॥ वा व्यधादुष्टाकरः करः ॥ २२४॥  
‘प्रातस्तरामथो धाय पश्चाकरपरिग्रहम् । तदेव भानुः प्रतापेन जिगीषोऽरुचिमन्बगान् ॥ २२५॥  
सुकण्ठा पेतुरप्युद्दैः प्रभोः प्रावोधिकास्तदा । स्वयं प्रवृद्धमन्येन प्रबोधेन युक्तवः ॥ २२६॥

### हरिणीचलन्दः

अग्निशिरकरो लोकानन्दी जनैरभिनन्दितो  
चहुमतकरं तेजहतन्दितोऽथ मुद्रेष्यति ।  
तुष्वर जगतासुष्योताय त्वमप्युद्योचितं  
विधिमनुसरन् शश्योऽसंगं जहीहि मुने श्रियः ॥ २२७॥  
कतरकरोमें लाङान्ताहते अलैवैलक्षण्यालिमी  
भुजवलभिर्द लोकः प्रायो न वेति सवाहकः ।  
भरतपतिना सादृ युद्धे जयाय कृतोद्यमो  
नृपवर भवान् भूजाद् मर्ता तुवीरजयश्रियः ॥ २२८॥  
रविरविरलालभूम् जातानिवाश्रमशालिनो  
तुहिनकणिकपातानाशौ प्रसृत्य करोत्करैः ।  
अस्मद्यति प्रासानन्दैरितोऽम्बुजिनीवनैः  
दद्यसमये प्रसुष्यातोऽधृतार्वमिवाऽम्बुजैः ॥ २२९॥

होते ही चाँदनीकी शोभाको भी चुराता जाता था – नष्ट करता जाता था ॥ २२३॥ सूर्यने अपने किरणरूपी हाथोंसे अन्धकाररूपी किवाढ़ खोलकर दिशाओंके मुँह प्रकाशित कर दिये थे और समस्त जगत् नेत्र खोल दिये थे ॥ २२४॥ वह सूर्य विजयकी इच्छा करनेवाले किसी राजाकी वृत्तिका अनुकरण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार विजयकी इच्छा करनेवाला राजा बड़े सबेरे उठकर अपने प्रतापसे पश्चाकर अर्थात् लक्ष्मीका हाथ स्वीकार करता है उसी प्रकार सूर्य भी बड़े सबेरे उदय होकर अपने प्रतापसे पश्चाकर अर्थात् कमलोंके समूहको स्वीकार कर रहा था – अपने तेजसे उन्हें विकसित कर रहा था ॥ २२५॥ यद्यपि उस समय महाराज बाहुबली स्वयं जाग गये थे तथापि उन्हें जगानेका उत्थोग करते हुए सुन्दर कण्ठवाले बन्दीजन जोर-जोरसे नीचे लिखे हुए मंगलपाठ पढ़ रहे थे ॥ २२६॥ हे पुरुषोत्तम, जो लोगोंको आनन्द देनेवाला है और लोग जिसकी प्रशंसा कर रहे हैं ऐसा यह सूर्य सब लोगोंको अच्छा लगनेवाले तेजको फैलाता हुआ इधर पूर्व दिशासे उदय हो रहा है इसलिए आप भी जगत्को प्रकाशित और लक्ष्मीको आनन्दित करनेके लिए सूर्योदयके समय होनेवाली योग्य क्रियाओंको करते हुए शश्याका मध्यभाग छोड़िए ॥ २२७॥ हे राजाओंमें श्रेष्ठ, आपकी सेनाओंने कितने-कितने बलशाली राजाओंपर आक्रमण नहीं किया है, ये छोटे-छोटे लोग प्रायः आपकी भुजाओंके बलको जानते भी नहीं हैं । हे नरवीर, आपने भरतेश्वरके साथ युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिए उद्यम किया है इसलिए विजयलक्ष्मीके स्वामी आप ही हों ॥ २२८॥ हे देव, बगोचेके वृक्षोंपर पड़ी हुई ओसकी बूँदोंको निरन्तर पड़ते हुए आँसुओंके समान अपनी किरणोंके समूहसे शीघ्र ही पीछता हुआ यह सूर्य उदय हो रहा है और उदय होते समय ऐसा जान पड़ता है मानो कमलिनियोंके बन जिन्हें आनन्द प्राप्त हो रहा है ऐसे कमलोंके द्वारा अर्धं लेकर उसकी १ विवृतनेत्रम् । २ अतिशयप्रातःकाले । ३ अनुकरोति सम् । ४ प्रबोधन – द०, ल० । ५ योश्तुमिच्छवः । ६ अनुगच्छन् । ७ के के । ८ तव । ९ -नश्शुश्राता-द० । १० -कराता – ल०, द० । ११ प्रतिगृहीतः ।

अथमनुसरन् कोक्षः कान्तां तटान्तरशायिनी-  
 मविरलगलद्वायथायादिवीत्वज्ञतीं शुचम् ।  
 विशति चिसिनीपश्चत्ताज्ञा सरोत्तरस्तदीं  
 सरसिजरजःकोणों पश्ची विधृथ शनैः शनैः ॥२३०॥  
 जटिविसिनीकन्द्रद्वायायामुषस्तरलासित्रष-  
 स्तुहिनकिरणो दिक्षयैस्ताद्यं प्रतिसंहरन् ।  
 अनुक्तमुदिनीपश्चाद्याङ्गं तत्त्वन् करामस्तृत्युनो  
 द्रुत्यनि परिष्वज्ञासंगं श्रियोगभयादिव ॥२३१॥  
 चिमिरकरिणों यूथं भित्या तदस्त्वपरिष्टुता-  
 सिष्व तनुमयं विभ्रच्छेणों निशाकरकेसरी ।  
 वनमिव नभः क्रान्त्याऽस्त्वाऽग्नेगुहासहनान्त्यतः  
 श्रवनि निष्टत्तं निष्ट्रासगाद् विजिहिततारकः ॥२३२॥  
 सरति सरमीनीरं हंभः स्वारम्भक्तिर-  
 श्रद्धिति घटते कोकहन्द्रे विशापमित्रापुना ।  
 पतति<sup>१</sup> पतसा<sup>२</sup> दृष्ट्वा विष्वक् द्रुमेषु कृतारुतं<sup>३</sup>  
 गतमिव जगत्यत्यापत्ति<sup>४</sup> समुच्चिति<sup>५</sup> भास्त्रति<sup>६</sup> ॥२३३॥  
 उद्यशिश्वरिप्रावधेणीयरोसहरागिणी  
 गगनजलधेरात्माना<sup>७</sup> प्रवालवनश्रियम् ।  
 दिग्भवदने मिन्दूरश्रीरलक्षणपात्का  
 ग्रसरतितरां सम्भ्यादीसिदिंगाननमण्डनी<sup>८</sup> ॥२३४॥

अगवानी ही कर रहे हों ॥२३५॥ इधर देखिए, जो दूसरे किनारेपर सो रही है और निरन्तर वहते हुए आँसुओंके बहानेसे जो मानो शीक ही ढोड़ रही है ऐसी अपनी रक्षी चकवीके पीछे-पीछे जाता हुआ यह चकवा कमलोंके परागसे भरे हुए अपने दीनों पंखोंको झटकाकर कमलिनियोंके पत्तोंसे ढके हुए कमलसरोबरके तटपर धीरे-धीरे प्रवेश कर रहा है ॥२३०॥ यह चन्द्रमा पके हुए मृगालकी कान्तिको चुरानेवाली अगनी कान्तिको सब दिशाओंके अन्तसे खींच रहा है तथा अमृत बरसानेवाली अपनी किरणोंको प्रत्येक कुमुदिनियोंके समूहपर फैलाता हुआ वियोगके डरसे ही मानो उनके साथ आलिङ्गनके सम्बन्धको दड़ कर रहा है ॥२३१॥ जो अनधकारहूपी हाथियोंके समूहको भेदन कर उनके रक्तसे ही तर हुएके समान लाल-लाल दिखनेवाले घरीर ( मण्डल ) को धारण कर रहा है तथा नींद आ जानेसे जिसकी नक्षत्रहूपी आँखोंकी पुतलियां तिरोहित अथवा कुटिल हो रही हैं ऐसा यह चन्द्रमाहूपी मिहू वनके समान आकाशको उल्लंघन कर अब अस्ताचलकी गुहाहृष एकान्त स्थानका निदित्व स्वयं आश्रय ले रहा है ॥२३२॥ सूर्य उदय होते ही हंस, सारस पक्षियोंकी बोलीसे सहित सरोवरके किनारे-पर जा रहे हैं, चकवा चकवियोंके जोड़े परस्परमें इस प्रकार मिल रहे हैं मानो अब उनका शाप ही दूर हो गया हो, पक्षियोंके समूह चारों ओर शब्द करते हुए बृक्षोंपर पड़ रहे हैं और यह जगत् फिरसे अपने पहले रूपको प्राप्त हुआ-सा जान पड़ता है ॥२३३॥ उदयाचलकी चट्टानोंपर पौदा होनेवाले कमलोंके समान लाल तथा आकाशहूपी समुद्रमें मैंगके बतकी १ अभिनिवेशात् । २ वक्तितत्त्वारकः । ३ अवःकनोमिकेति ध्वनिः । ४ विमतशापम् । ५ आकोशमित्यर्थः । ६ आध-मति । ७ पतिणाम् । ८ कृत्वा मन्त्राद् ध्वनिः । ९ कृतारजं ल० । १० पूर्वस्थितिम् । ११ उदिते सति । १२ आदित्ये । १३ विदृपं । १४ मण्डयतीति मण्डनो ।

कमलमलिनी नार्थे<sup>१</sup> वैष्णवे<sup>२</sup> बत अविकस्त्वरं  
 गतमहण्टां बालाक्षयं ग्रसारिभिरंगुभिः ।  
 परिगतमिव<sup>३</sup> प्रादुर्घट्यद्वि: कण्ठेनिलाचिन्ता  
 नियतविषपरं धिग् व्यामुदिं यित्रेकपराङ्गुर्धीम् ॥२३५॥  
 उपनतनहनात्माना विलोक्यतपटपदाः  
 कृतपरिच्छया वीर्यचक्रैः स्वरस्य सरोक्षाम् ।  
 “रतिपासमलानाकर्षन्तः सरोक्षज्ञो जडाः”  
 प्रतिदिवशमर्भा मन्दं वानिते प्रगोत्समागताः ॥२३६॥

માલીનીચનુંદુઃ

त्रृपत्वं जिनभर्तुमङ्गलेरभिरिदैः  
 नामेऽस्ति अस्ति अस्ति अस्ति अस्ति अस्ति अस्ति अस्ति अस्ति अस्ति ।  
 भवति निषिलविश्वप्रशान्तिर्यतस्ते  
 रणशिरसि जयथीकामिनी कामुकस्थ ॥२३५॥  
 जयसि दिविजनार्थैः प्राप्तपूजद्विरहन्  
 तुनुरितपरागो वीतरागोऽपरागः ॥  
 उतनतिशयत्वं प्रज्वलन्मालिक-  
 चकुतिस्त्रिररोचिर्मञ्जरीपिञ्जराङ्ग्रिः ॥२३६॥

शोभा फूलाती हुई, दिशाहरी हाथियोंके मुखपर सिन्दूरके समान दिखनेवाली, महाबरके समान गुलाबी और दिशाओंके मुखोंको अलंकृत करनेवाली यह प्रभात-सन्ध्याकी कान्ति चारों ओर बड़ी तेजीसे फूल रही है ॥२३४॥ हे नाथ, यह खिला हुआ कमल लाल सूर्यकी फैलने-वाली किरणोंसे लाल-लाल हो रहा है और ऐसा मालूम होता है भानो अग्निके फूलते हुए फुलिगों-से व्याप्त ही हो रहा हो तथा इसी भयमें यह भ्रमरी उसमें प्रवेश करनेके लिए समर्थ नहीं हो रही है । आचार्य कहते हैं कि जिसमें अशान्ति सदा निरिचत रहती है और जो विवेकसे पराद्मुख है ऐसी मूर्खताको विकार है ॥२३५॥ हे राजन्, जो उपवनके वृक्षोंको हिला रहा है, भ्रमरों-को चंचल कर रहा है, जिसने कमलोंके तालाबमें लहरोंके साथ परिचय प्राप्त किया है, जो स्त्री-गुरुषोंके संभोगकी सुगन्धियोंको खींच रहा है, और जो कमलोंके परागसे भारी हो रहा है ऐसा यह प्रातःकालका ब्रायु सब दिशाओंमें धीरे-धीरे बह रहा है ॥२३६॥ हे राजाओंमें श्रेष्ठ, जिनमें जय-जयकी घोषणा प्रकट रूपसे की गयी है ऐसे जिनेन्द्र भगवानुके इन दृष्ट मंगलोंसे आप फिरसे जग जाइए व्योंकि दून्हीं मंगलोंके द्वारा रणके अग्रभागमें विजयलक्ष्मी रूपी स्त्रीको चाहने-वाले आपके समस्त विघ्नोंकी अच्छी तरह आन्ति होगी ॥२३७॥

अनेक इन्द्रोंके द्वारा जिन्हें पूजाकी कहानी प्राप्त हुई है, जिन्होंने पापरूपी धूल नष्ट कर डाली है, जो कीतराय है – जिन्होंने रामदेव नष्ट कर दिये हैं और नमस्कार करते हुए इन्द्रोंके देदीय-मान मुकुटके रत्नोंसे मिली हुई सुन्दर किरणोंकी मंजरीसे जिनके चरण कुछ-कुछ पीले हो

४ असुर्यः । २ प्रवेशाय । ३ व्याप्तम् । ४ सुरतसमये दम्पत्यनुभुक्तकस्तुरोकर्पूरादिगरिमलान् । ५ मन्दाः ।  
६ प्रातःकाले भव । ७ दीतरायवैषः । ८ इत्थ । ९ व्याप्त ।

जयति जयविलासः सूच्यते यस्य पात्प्री-  
रालकुलतेष्वा मनेजितानंगमुक्तः ।

<sup>१</sup>अनुपदयुगमन्त्यभक्तशोकादिकावि-

पृष्ठकरुणनिनार्दः सोऽयमाशो जिनेन्द्रः ॥२३५॥

जयति जितमनोभूर्भुरित्यामां स्वयम्भू-

जिनपतिरपरागः क्षालित्यागः परागः ।

सुरमुकुटिट्टोदृढै पादाम्बुजश्चाः—

जगदै जगदगारप्राप्तविद्यान्तबोधः ॥२४०॥

जयति मनवाणीरक्षतात्मापि चोऽधात्

श्रिमुदमजयलक्ष्मीकामिनीं वक्षसि हते ।

स्वयमदृतं च मुक्तिशेषसीं च विरूपां ।

प्रथमर्म सुखतात्तिं तन्वतीं सोऽयमहन् ॥२४१॥

जयति समरभेदामैरवारावर्भीमं

बलमरचि न कूजचण्डकोदण्डकाण्डम् ।

भुकुटिकुटिलमास्यं यन नाकारि बोच्चैः

मनसिजरिषुवातं सोऽयमाशो जिनेशः ॥२४२॥

स जयति जिनराजो दुर्विमावैः प्रभावः

प्रभुरसिभवितुं च नाशकन्मारकोऽन् ।

त्रिविजदिजयदूरामृदगवौडिपि॑ गवै

न हदि हृदिशयोऽधाद् यत्र॒॒॑॑ कुण्ठाक्षरीयः ॥२४३॥

रहे हैं ऐसे श्री अहंतदेव सदा जयवन्त रहें ॥२३८॥ जिनके भीतर अमरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं और उनसे जो ऐसे मालूम होते हैं मानो अपनी पराजयके शोकसे रोते हुए कामदेवके करुण कल्पनको ही प्रकट कर रहे हों तथा उसी हारे हुए कामदेवने अपने पुष्परूपी शस्त्र भगवानुके चरण-न्युगलके सामने डाल रखे हों ऐसे पुष्पोंके समूहसे जिनके विजयकी लीला सूचित होती है वे प्रथम जिनेन्द्र श्री वृषभदेव जयवन्त हों ॥२३९॥ जिन्होंने कामदेवको जीत लिया है, जिनका तेज अपार है, जो स्वयंभू हैं, जितपति हैं, वीतराग हैं, जिन्होंने पापरूपी धूलि धो छाली है, जिनके चरणकमलोंकी शोभा देव लोगोंने अपने मुकुटके अग्रभागपर धारण कर रखी है और जिनका ज्ञान लोक-अलोकरूपी घरके अन्त तक फैला हुआ है ऐसे श्री प्रथम जिनेन्द्र सदा जयवन्त रहें ॥२४०॥ जिनकी आत्मा कामदेवके बाणोंसे घायल नहीं हुई है तथापि जिन्होंने तीनों लोकोंकी जयलक्ष्मीरूपी स्त्रीको अपने वक्षःस्थलपर धारण किया है और मुक्तिरूपी स्त्रीने जिन्हें स्वयं वर बनाया इसके सिवाय वह मुक्तिरूपी स्त्री विरूपा अर्थात् कुरुपा (पक्षमें आकाररहित) होकर भी जिनके लिए उल्काष्ट सुख-समूहको बढ़ा रही है वे अहंतदेव सदा जयवन्त हों ॥२४१॥ जिन्होंने जगद्विजयी कामदेवरूपी शत्रुको नष्ट करनेके लिए न तो युद्धके नगाड़ोंके भयंकर शब्दोंसे भीषण तथा शब्द करते हुए धनुषोंसे युक्त सेना ही रची और न अपना मुँह ही भाँहोंसे टेढ़ा किया वे प्रथम जिनेन्द्र भगवान् वृषभदेव सदा जयवन्त रहें ॥२४२॥ जो सब जगत्के स्वामी हैं, कामदेवरूपी योद्धा भी जिन्हें जीतने-

<sup>१</sup>पदयुगमसमीक्षा । २ बहलतेजाः । ३ अवगतरागः । ४ बलभया वृत । ५ लोकालोकालयप्राप्त । ६ यारयति स्म । ७ अमूर्तापि, कुरुणापीति ष्वनिः । ८ अप्रमितमुखपरम्पराम् । ९ जिनेन्द्रः ल०, ८० । १० अचिन्त्य । ११ समर्थो ता भृत । १२ अत्यर्थ । १३ सर्वज्ञ । १४ मन्द । 'कुण्ठो मन्दः क्षियासु च' इत्यभिधानात् ।

जयति तस्मौको दुन्दुभिः उल्लब्धं  
चमरिरुहसमेतं विष्वरं सैहस्रदम् ।  
वचनमसमसुवृत्तातपत्रं च सेजः २

त्रिभुवनजयचिह्नं यस्य त्रिसार्वे जिक्रोऽसौ ॥ २४५ ॥  
जयति जननसापच्छेदि यस्य क्रमादभ्यं  
विपुलफलदमाराजना कीनद्रभृक्षम् ।  
समुपनतमानां प्रीणनं कल्पवृक्ष-

स्थितिमत्तुमहिमा ॥ त्रिभुवनार्त्तीर्थहृष्टः ॥ २४६ ॥  
नृवर भरतराज्योऽप्यजितस्यास्य सुषमत्-

सुजपरिधयुगस्य प्राप्तुयाज्ञेय कशाम् ।  
सुजबलमिदमात्मां दृष्टिमात्रेऽपि करते

रणनिषक्गतस्य स्थानुर्माशः क्षितीशः ॥ २४७ ॥  
तद्वलमधिप कालक्षेष्योगेन निष्ठा ।

जहिहि महति कृत्ये जागरूकस्वरमधि ।  
सपदिं च जयस्तक्षमीं प्राप्तय भूयोऽपि देवं

जिनभवतम् भक्त्या शासितात् जयात् ॥ २४८ ॥  
हरिणीच्छुन्दः

इति समुचितैरुच्चैरशावैर्जयमङ्गलैः

सुधटितपर्वैर्भूयोऽर्माभिर्जयाय विद्योधितः ।  
शयमसमुचित्रापायात् स पार्थिवकुञ्जः

सुरगाज इवोल्संगं गङ्गापतीरसुवः शमैः ॥ २४९ ॥

के लिए समर्थ नहीं हो सका तथा जिनके सामने, देवोंको जीतनेसे जिसका अहंकार बढ़ गया है ऐसा कामदेव भी शस्त्र और सामर्थ्यके कुण्ठित हो जानेसे हृदयमें अहंकार धारण नहीं कर सका ऐसे अचिन्त्य प्रभावके धारक वे प्रसिद्ध जिनेन्द्रदेव सदा जयवन्त रहें ॥ २४३ ॥ अशोक वृक्ष, दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि, चमर, उत्तम सिहासन, अनुपम वचन, ऊंचा छत्र और भामण्डल ये आठ प्रतिहार्य जिनके तीनों लोकोंको जीतनेके चिह्न हैं वे सबका हित करनेवाले श्री वृषभ-स्वर्ग मोक्ष आदि बड़े-बड़े फल देनेवाले हैं, दूरसे नमस्कार करते हुए इन्द्र ही जिनके भ्रमर हैं और जो शरणमें आये हुए लोगोंको कल्पवृक्षके समान सन्तुष्ट करनेवाले हैं ऐसे वे तीर्थकर भगवान् सदा विजयी हों और अपने विशाल माहात्म्यसे तुम सबकी रक्षा करें ॥ २४५ ॥ महाराज भरत भी आपके दोनों भुजारूपी अर्गलदण्डोंकी तुलना नहीं प्राप्त कर सकते हैं, अथवा भुजाओंका बल तो दूर रहे, जब आप युद्धके निकट जा पहुँचते हैं तब आपके देखने मात्रसे ही ऐसा कोन राजा है जो आपके सामने खड़ा रहनेके लिए समर्थ हो सके ॥ २४६ ॥ इसलिए हे अधीश्वर, समय व्यतीत करना व्यर्थ है, निद्रा छोड़िए, इस महान् कार्यमें सदा जागरूक रहिए और शीघ्र ही विजयलक्ष्मीको पाकर अन्य सब जगह विजय प्राप्त करनेके लिए सबपर इस प्रकार जिनमें अच्छे-अच्छे पदोंकी योजना की गयी है ऐसे अनेक प्रकारके

१ प्रशस्तम् । २ प्रभामण्डलम् । ३ सर्वहितः । ४ समानताम् । ५ तत् कारणात् । ६ जागरणशीलः ।  
७ भव । ८ नमस्कुर । ९ नानाप्रकारैः ।

जयकरिष्टावन्धे<sup>१</sup> रुधन्<sup>२</sup> शिशो मदविहृले-  
 चैलपहितृदैरस्तुश्रीरुद्रपराक्रमः ।  
 नृपकतिपयैराशाश्रेष्ठ प्रणाम्य दिवक्षितो  
 भुजवलि तुवा भेजे सैन्यभुवं समरोचिताम् ॥२४६॥

इत्याखे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्टुलस्तुतमहापुराणसंयहे  
 कुमाराद्वापुष्टिरुद्रोद्योदर्शर्थं नाम पञ्चत्रिंशतम् पर्व ॥२४७॥



उल्काष्टसथा राजाओंके योग्य, विजय करनेवाले मंगल-गीतोंके द्वारा बाहुबली महाराज विजय प्राप्त करनेके लिए जगे और जिस प्रकार ऐरावत हाथी निद्रा छूट जानेसे गंगाके किनारेकी भूमिका साथ धीरे-धीरे छोड़ता है उसी प्रकार उन्होंने भी निद्रा छूट जानेसे धीरे-धीरे शश्याका साथ छोड़ दिया ॥२४८॥ सेनाके मुख्य-मुख्य लोगोंके द्वारा जिसकी शोभा बढ़ रही है, जो स्वयं विशाल पराक्रम धारण किये हुए हैं और कितने ही राजा लोग दूर-दूरसे आकर प्रणाम करते हुए, जिसे देखना चाहते हैं ऐसा वह तरुण बाहुबली मदोन्मत्त विजयो हायियोंकी घटाओंसे दिशाओंको रोकता हुआ सेनाके साथ-साथ युद्धके योग्य भूमिमें जा पहुँचा ॥२४९॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत तिरसठलाकापुष्टिर्थोंका  
 कर्णन करनेवाले महापुराणसंग्रहमें कुमार बाहुबलीके युद्धका उद्योग  
 वर्णन करनेवाला पैतीसर्व पर्व समाप्त हुआ ।



## षट्क्रिंशत्तम् पर्व

अथ दूतवचश्चपदमस्तुवात्पूर्णितः । प्रथमाल बलाभ्योधिर्जिष्योराहय्य रोद्धर्मी<sup>१</sup> ॥१॥  
 साङ्ग्रामिक्यो<sup>२</sup> महामेर्यस्तुदा और प्रदृशनुः । <sup>३</sup>यद्युवानैः साध्वरं भेदुः "खद्गाभ्यग्रा नभवताः ॥२॥  
 बलानि प्रविमकानि<sup>४</sup> निधीशस्य शिनिर्युः । युरः पादातमशीयमाराहाराच्च<sup>५</sup> हास्तिकम् ॥३॥  
 रथकद्यपरिक्षेपो<sup>६</sup> बलस्योमयपश्चयोः । अग्रसः पृष्ठतश्चासीदृच्च च खचरामराः ॥४॥  
 षट्क्रिंशत्तमप्रया सम्प्रयः पार्थिवैर्मा<sup>७</sup> । प्रतस्थे भरताधीशो निजानुजमिगीवया ॥५॥  
 महान् गजघटाश्चन्धो<sup>८</sup> रेजे सजयकेतनः । गिरीणामिव संघातः संचारी सह शालिभिः<sup>९</sup> ॥६॥  
<sup>१०</sup> इच्योहन्मदजलासारसिक्खभूमिर्वद्धिष्ये<sup>११</sup> । प्रतस्थे रुद्रदिक्चक्रैः शैलैरिव सनिष्ठरैः ॥७॥  
 जयस्तम्भेरमा रेजुस्तुह्याः श्वङ्गारिताङ्गकाः । साम्भ्रसंज्ञातपक्रान्ताश्चकन्त हृष्ट भूष्वराः ॥८॥  
 चमूमतह्याजा रेजुः सज्जाः<sup>१२</sup> सजयकेतनाः । कुलशैला हृवायाताः प्रमोः स्वरूपदर्शने<sup>१३</sup> ॥९॥  
 गजस्कन्धगता<sup>१४</sup> रेजुर्भूर्गता शिष्टताङ्गकुशाः । प्रदीपोदमदर्शेष्वयो<sup>१५</sup> दपाः संविपिडता हृष्ट ॥१०॥

अथानन्तर—दूतके बचनरूपी लेज वायुके आघातसे ब्रेरित हुआ चक्रवर्तीका सेना रूपी समुद्र आकाश और पृथिवीको रोकता हुआ चलने लगा ॥१॥ उस समय युद्धकी सूचना करनेवाले बड़े-बड़े नगाड़े गम्भीर शब्दोंसे बज रहे थे और उनके शब्दोंसे तलवार उठानेमें व्यग्र हुए विद्याधर भयभीत हो रहे थे ॥२॥ चक्रवर्तीकी सेनाएँ अलग-अलग विभागोंमें विभक्त होकर चल रही थीं, सबसे आगे पैदल सैनिकोंका समूह था, उससे कुछ दूरपर घोड़ोंका समूह था और उससे कुछ दूर हटकर हाथियोंका समूह था ॥३॥ सेनाके दोनों ओर रथोंके समूह थे तथा आगे पीछे और ऊपर विद्याधर तथा देव चल रहे थे ॥४॥ इस प्रकार छह प्रकारकी सेना-सामग्रीसे सम्पन्न हुए महाराज भरतेश्वरने अपने छोटे भाईको जीतनेकी इच्छासे अनेक राजाओंके साथ प्रस्थान किया ॥५॥ उस समय विजय-पताकाओंसे सहित बड़े-बड़े हाथियोंके समूह ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो वृक्षोंके साथ-साथ चलते हुए पर्वतोंके समूह ही हों ॥६॥ जिनसे झरते हुए मदजलकी वृष्टिसे समस्त भूमि सीची गयी है और जिन्होंने सब दिशाएँ रोक ली हैं ऐसे मदोन्मत्त हाथियोंके साथ चक्रवर्ती भरत चल रहे थे, उस समय के हाथी ऐसे मालूम होते थे मानो झरनोंसे सहित पर्वत ही हों ॥७॥ जिनके समस्त शरीरपर शुंगार किया गया हो और जो बहुत ऊचे हैं ऐसे वे विजयके हाथी ऐसे सुशोभित होते थे मानो सन्ध्याकालकी सबन धूपसे व्याप्त हुए चलते-फिरते पर्वत ही हों ॥८॥ जो सब प्रकारसे सजाये गये हैं और जिनपर विजय-पताकाएँ फहरा रही हैं ऐसे वे सेनाके हाथी इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो महाराज भरतको अपना बल दिखानेके लिए कुलाचल ही आये हों ॥९॥ जिन्होंने देवीप्राप्तान तथा वीरसके योग्य वेष धारण किया है, और जिन्होंने अंकुश हाथमें ले रखा है ऐसे हाथियोंके कन्धोंपर बैठे हुए महाबत लोग ऐसे जान पड़ते थे मानो एक जगह

१ चावापृथिव्यौ । २ युद्धहेतवः । ३ सुष्वानैः ल० । ४ आयुषस्वीकाराभ्याङ्गुलाः । ५ संकरमकृत्वा प्रविभा-  
 ग्रितानि । ६ समीरे । ७ रथसमूद्धरित्युलिः । ८ उभयपाशव्योरित्यर्थः, मौलवैतनिकयोः, मूलं कारणं पुरुषं  
 प्राप्ताः । वैतनेन जीवन्तो वैतनिकाः । ९ सह । १० आसमूहः । ११ वृक्षैः । १२ स्वत् । १३ वैगवद्वर्यैः  
 'धारासंपात आसारः' । १४ सप्तद्वीकुलाः । १५ निषवलदर्शने । १६ गजारोहकमः । १७ वीररसालंकाराः ।

कौक्षेयकैनिशात्<sup>१</sup> ग्रधारायैः सादिनो<sup>२</sup> वभुः । मूर्त्तीभूय भुजोदाग्रलम्नैर्वा<sup>३</sup> स्वैः पराक्रमैः ॥११॥  
 धन्विनः शसनाराच्च संभृतेषुधयो<sup>४</sup> वभुः । वनक्रमाजा महाशास्त्राः कोटरस्थैरिवाहिमिः ॥१२॥  
 रथिनो रथकञ्चासु संभृतोचितहेतयः । सहग्रामवार्षितरणे<sup>५</sup> प्रस्थिता नाविका<sup>६</sup> इव ॥१३॥  
 मदा हस्त्युरसं<sup>७</sup> भेजुः सशिरस्त्रतनुक्रकाः । समुख्याननिशातासिपाण्यः पादरक्षणे<sup>८</sup> ॥१४॥  
 पुस्फुरु<sup>९</sup> स्फुरदण्डीवा मदाः संदृशिताः<sup>१०</sup> परे । औरपातिका<sup>११</sup> इशानीलाः सीरुकामंधा: समुचिताः ॥१५॥  
 करवालं करालाग्रं करे कृष्णा मडोऽपरः । पद्यन् सुलरमं तस्मिन्<sup>१२</sup> स्वशोर्यं परिजिवान् ॥१६॥  
 कराग्रशिष्ठतं खड्गं तुलयन् कोऽप्यभाद् भरः । <sup>१३</sup>प्रसिमि-सुरिवानेन<sup>१४</sup> स्वामिसल्कारगौरवम् ॥१७॥  
 महामुकुटवद्वानो साधनानि<sup>१५</sup> प्रतस्थिते । पादातहासितकाइवीयरथकट्टा परिष्कृतैः ॥१८॥  
 वभुमुकुटवद्वास्ते रत्नांशुदण्डमौलयः । सलीलालोकपालानामंशाः<sup>१६</sup> भुविवागताः ॥१९॥  
 परिवेष्ट्य निरैवभ्य<sup>१७</sup> पार्थिवाः पृथिवीक्षरम् । दूराद् स्वबलसामग्री दशैयन्तो पथायथम् ॥२०॥  
<sup>१८</sup>प्रत्यग्रसमरमरम्भसंश्वेतान्तचेतसः । <sup>१९</sup>भट्टीराजासामासु भैद्याः<sup>२०</sup> प्रथायय धीरितैः<sup>२१</sup> ॥२१॥

इकट्ठा हुआ अभिमान ही हो ॥१०॥ घुडसवार लोग, जिनकी आगेकी धारका अग्रभाग बहुत तेज है ऐसी तलवारोंसे ऐसे जान पढ़ते थे मानो उनके पराक्रम ही भूतिमान् होकर उनकी भुजाओंके अग्रभाग अर्थात् हाथोंमें आ लगे हों ॥११॥ जिनके तरकस अनेक प्रकारके बाणोंसे भरे हुए हैं ऐसे धनुधीरो लोग इस प्रकार जान पढ़ते थे मानो बड़ी-बड़ी शाखावाले बनके वृक्ष कोटरोंमें रहनेवाले सपोंसे ही सुशोभित हो रहे हों ॥१२॥ जिन्होंने रथोंके समूहमें यद्देके योग्य सब शस्त्र भर लिये हैं ऐसे रथोंपर बैठनेवाले योद्धा लोग इस प्रकार चल रहे थे मानो युद्धरूपी समूद्रको पार करनेके लिए नाव चलानेवाले खेवटिया ही हों ॥१३॥ जिन्होंने शिरपर टोप और शरीरपर कवच धारण किया है तथा हाथमें पैनी तलवार ऊँची उठा रखी है ऐसे कितने ही योद्धा ऐसे देदीप्यमान हो रहे थे मानो किसी उत्पातको सूचित करनेवाले उल्कासहित काले काले मेघ ही उठ रहे हों ॥१४॥ कोई अन्य योद्धा पैनी धारवाली तलवार हाथमें लेकर उसमें अपने मुखका रंग देखता हुआ अपने पराक्रमका परिज्ञान प्राप्त कर रहा था ॥१५॥ कोई अन्य योद्धा हाथके अग्र भागपर रखी हुई तलवारको तोलता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो वह उससे अपने स्वामीके आदर-सल्कारका गौरव ही तोलना चाहता हो ॥१६॥ पैदल सेना, हाथियोंके समूह, घुडसवार और रथोंके समूह आदि सामग्रीके साथ-साथ महामुकुट-बद्ध राजाओंकी सेनाएँ भी चल रही थीं ॥१७॥ रत्नोंकी किरणोंसे जिनके मुकुट ऊँचे ढठ रहे हैं ऐसे वे मुकुटबद्ध राजा इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो लीलासहित लोकपालोंके अंग ही पृथ्वीपर आ गये हों ॥१८॥ अनेक राजा लोग महाराज भरतको घेरकर चल रहे थे और दूरसे ही अपनी सेनाकी सामग्री यथायोग्यरूपसे दिखलाते जाते थे ॥२०॥ नवीन

१ निशित । २ अश्वारोहा: । 'अश्वारोहास्तु सादिनः' इत्यभिधानात् । ३ इव । ४ प्रस्तेत्वास्तु कराचाः । ५ इपुषिः तूषीरः । 'तूषोपासङ्गतूषीरनिषइगा इषुषिर्द्योः । तूष्यमित्यमिधानात् । संभृतेषुषमः ल०, इ०, अ०, प०, स०, इ० । ६ समरसमुद्रोद्वत्तरणार्थम् । ७ कर्णवाराः । 'कर्णवारस्तु नाविकः' इत्यभिधानात् । ८ हस्तिमूर्लम् । ९ कवच । १० पादरक्षणार्थम् । ११ स्फुरन्ति स्म । १२ कवचितः । 'सेनद्वो वितः सज्जो दंशितो अूढकण्ठकः' इत्यभिधानात् । १३ उत्पातहेतवः । १४ स्वं शीर्यम् ल० । १५ बूब्धे । १६ प्रसानुमिच्छुः । प्रसिमित्यु-द०, ल०, प०, इ०, अ०, स० । १७ खड्गेन सह । १८ बलानि । १९ परिकरैः । २० केचिल्लो-कपाला इत्यर्थः । २१ नियंतः । २२ नतनरणाम्भसेश्वरणादुद्भास्तचेती यसां तास्ताः । २३ भट्योषितः । २४ विश्वास्य । २५ धीरवचनैः ।

भूरेणवस्तदाधीयखुरीदृताः खलहृषिमः । अणविदितसंप्रेषाः<sup>१</sup> प्रचकुरमराहृगताः ॥२२॥  
 २ रजसंतमसे रुद्रिक्षक्रे व्योमलहृषिनि । चक्रोधोतो नृणां चक्रे दशः स्वविषयोन्मुखीः ॥२३॥  
 समुद्रमटरमप्रायै<sup>२</sup> भट्टालापैर्महोश्चराः । प्रयाणके धृतिं प्रापुर्जनजहैरपीढ़ीः ॥२४॥  
 रणभूमि<sup>३</sup> प्रसाध्यारात् स्थितो बाहुबली नृपः । अयं च नृपशार्दूलः<sup>४</sup> प्रस्थितो निनियन्त्रणाः ॥२५॥  
 न विनः किञ्चु ग्रहवत्र स्थान् आश्रोमयोरिति । प्रायो न शान्तये युद्धमानयोरनुजीविनाम्<sup>५</sup> ॥२६॥  
 विस्तृपक्षिद्वै<sup>६</sup> युद्धमारब्धं भरतेशिना । ऐश्वर्यमद्युवर्णाः स्वैरिणः प्रभवोऽप्यत्रो<sup>७</sup> ॥२७॥  
 हमे मुकुटबद्धाः कि नैनौ वारयितुं क्षमाः । येऽमी समग्रसामग्राः<sup>८</sup> सङ्ग्रामयितुमागताः ॥२८॥  
 अहो महानुभावोऽथ कुमारो सुजिक्षमी । कुद्रे चक्रघरेऽप्येवं यो योद्धुं सम्मुखं स्थितः ॥२९॥  
 ९ अथवा तन्त्रभूयस्वी<sup>९</sup> न जथाहृगं मनस्त्रिनः । ननु सिंहो जयरथेकः संहितानपि<sup>१०</sup> दन्तिनः ॥३०॥  
 अयं च चक्रमृद् देवो नेष्ठः सामान्यमानुषः । योऽभिरक्ष्यः सहस्रेण प्रणक्षणां सुधामुजाम्<sup>११</sup> ॥३१॥  
 १२ तन्मा भूदनयोर्युद्धं जनसंक्षयकारणम् । कुर्वन्तु देवताः शान्तिं यदि संनिहिता हमाः ॥३२॥  
 इनि माध्यस्थ्यवृत्त्यैके<sup>१३</sup> जमाः इकाच्यं चचो जगुः । पश्चातहसा केचित् स्वपञ्चोत्कर्षमुज्जगुः ॥३३॥

युद्धका प्रारम्भ सुनकर जिनके चित्त व्याकुल हो रहे हैं ऐसी स्त्रियोंको दीर योद्धा बड़ी धोरता के साथ समझाकर आद्वासन दे रहे थे ॥२१॥ उस समय योद्धोंके खुरीसे उठी हुई और आकाशको उल्लंघन करनेवाली पृथिवीकी धूल क्षण-भरके लिए देवांगनाओंके देखनेमें भी बाधा कर रही थी ॥२२॥ समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाले और आकाशको उल्लंघन करनेवाले उम धूलिसे उत्पन्न हुए अन्धकारमें चक्ररत्नका प्रकाश ही मनुष्योंके नेत्रोंको अपना-अपना चिपय ग्रहण करनेके सम्मुख कर रहा था ॥२३॥ राजा लोग रास्तेमें अत्यन्त उत्कट दीररसमें भरे हुए योद्धाओंके परस्परके बातालापसे तथा इसी प्रकारके अन्य लोगोंकी बात-चीतसे ही उत्माहित हो रहे थे ॥२४॥ उधर राजा बाहुबली रणभूमिको दूरमें ही युद्धके योग्य बनाकर उहरे हुए हैं और इधर राजाओंमें सिंहके समान तेजस्वी महाराज भरत भी यन्त्रणारहित ( उच्छृंखल ) होकर उनके सम्मुख जा रहे हैं ॥२५॥ नहीं मालूम इस युद्धमें इन दोनों भाइयोंका क्या होगा ? प्रायः कि इनका यह युद्ध सेवकोंकी शान्तिके लिए नहीं है । भावार्थ – इस युद्धमें सेवकोंका कल्याण दिखाई नहीं देता है ॥२६॥ भरतेश्वरने यह युद्ध बहुत ही अयोग्य प्रारम्भ किया है सो ठीक ही है क्योंकि जो ऐश्वर्यके मदसे रोके नहीं जा सकते ऐसे प्रभु लोग स्वेच्छाचारी ही होते हैं ॥२७॥ जो ये मुकुटबद्ध राजा समस्त सामग्रीके साथ युद्ध करनेके लिए आये हुए हैं वे क्या इन दोनोंको नहीं रोक सकते हैं ? ॥२८॥ अहो, भुजाओंका पराक्रम रथनेवाला यह कुमार बाहुबली भी महाप्रलापी है जो कि चक्रवर्तीकि कुपित होनेपर भी इस प्रकार युद्धके लिए सम्मुख खड़ा हुआ है ॥२९॥ अथवा शूरवीर लोगोंको सामग्रीकी अधिकता विजयका कारण नहीं है क्योंकि एक ही सिंह शुण्डके शुण्ड हायियोंको जीत लेता है ॥३०॥ नमस्कार करते हुए हजारों देव जिसकी रक्षा करते हैं ऐसा यह चक्रको धारण करनेवाला भरत भी साधारण पुरुष नहीं है ॥३१॥ इसलिए जो अनेक लोगोंके विनाशका कारण है ऐसा इन दोनोंका युद्ध नहीं हो तो अच्छा है, यदि देव लोग यहाँ समीपमें हों तो वे इस युद्धकी शान्ति करें ॥३२॥ इस प्रकार कितने ही लोग मध्यस्थ भावसे प्रशंसनीय वचन कह रहे थे

१ आकाशलहृषिनः । २ आलोकनाः । ३ रजोऽप्यकारे । ४ दीररसबहुलः । ५ अलंकृत्वा । ६ समीपे ।  
 ७ नृपश्रेष्ठः भरत इत्यर्थः । ८ निरदकुशः । ९ भटानाम् । १० कष्टम् । ११ -षी यतः ल० । १२ युद्ध-  
 कारपितुम् । १३ तथाहि । १४ सेनाबाहुलम् । १५ संयुक्तान् । १६ देवानाम् । १७ तत् कारणात् ।  
 १८ अन्ये ।

एवं श्रीमद्भागवते इति विनोदितम् । ३४। प्रापुस्तमुदेशं यत्र वीरामणीरसां<sup>१</sup> ॥३४॥  
 दीर्घर्षे<sup>२</sup> विगणय्याह्य मुविलकृयमरातिभिः । ब्रेसुः प्रतिभाः प्राप्तस्तस्मासन्निधी<sup>३</sup> ॥३५॥  
 कृत्यमन्यों बले जिणों वैलं भुजबलीशिनः । जलमध्येरिवाक्षुभ्यद् वीरध्वानिरुद्धिक् ॥३६॥  
 अथोभयबले धीराः<sup>४</sup> संनद्गजाजाजयः<sup>५</sup> । बलान्यारचयामासुरन्योऽन्यं प्रदुशुसया<sup>६</sup> ॥३७॥  
 तावस्मन्त्रिणो मुख्याः संप्रधार्यावद्भिति । शान्तये नैनयोर्युद्धं<sup>७</sup> ग्रहयोः क्रूरयोरिव ॥३८॥  
 चरमगात्रधरावेती नानयोः काष्ठम् क्षतिः । क्षयो जनस्य पक्षस्य<sup>८</sup> व्याजेनानेन<sup>९</sup> जृमितः ॥३९॥  
 इति निश्चिन्थ मम्ब्रज्ञा भीक्षा भूयो जनक्षयात् । तयोरनुमति लम्बता धर्म्य रणमधोषयन् ॥४०॥  
 अकारणरणेनार्थं जनसंहारकारिणा । महानेव<sup>१०</sup> धर्मर्मध गरीयांश्च यशोवधः<sup>११</sup> ॥४१॥  
 खलैस्त्वर्षपर्णेष्वभन्यथाऽप्युपपद्यते<sup>१२</sup> । तदस्तु युधयोरेव मिथो युद्धं शिशास्मकम् ॥४२॥  
 भूभ्रेन<sup>१३</sup> विना भङ्गः सोढध्यो युद्धयोरिह । विजयश्च विनोद्येष्वात्<sup>१४</sup> धर्मो छेष समाभिषु ॥४३॥  
 इत्युक्ता पार्थिवैः सर्वैः सोपरोषेष्व भन्त्रिमिः । तौ कृष्णात् प्रस्त्यपत्सातो<sup>१५</sup> लाद्यं युद्धमुद्वती ॥४४॥

और कितने ही पक्षपातसे प्रेरित होकर अपने ही पक्षकी प्रशंसा कर रहे थे ॥३३॥ प्रायः लोगोंके इसी प्रकारके वचनोंसे मन बहलाते हुए राजा लोग शीघ्र ही उस स्थानपर जा पहुँचे जहाँ वीरशिरोमणि कुमार बाहुबली पहलेसे विराजमान था ॥३४॥ बाहुबलीके समीप पहुँचते ही भरतके योद्धा, जिसका शत्रु कभी उल्लंघन नहीं कर सकते ऐसा बाहुबलीकी भुजओंका दर्प देखकर प्रायः कुछ डर गये ॥३५॥ इस प्रकार चक्रवर्ती भरतकी सेनाके समीप पहुँचनेपर वीरोंके शब्दोंसे दिशाओंको भरनेवाली बाहुबलीकी सेना समुद्रके जलके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥३६॥

अथानन्तर — दोनों ही सेनाओंमें जो शूरवीर लोग थे वे परस्पर युद्ध करनेकी इच्छासे अपने हाथी घोड़े आदि सजाकर सेनाकी रचना करने लगे — अनेक प्रकारके व्यूह आदि बनाने लगे ॥३७॥ इतनेमें ही दोनों ओरके मुख्य-मुख्य मन्त्री विचारकर इस प्रकार कहने लगे कि क्रूरग्रहोंके समान इन दोनोंका युद्ध शान्तिके लिए नहीं है ॥३८॥ क्योंकि ये दोनों ही चरम शरीरी हैं, इनकी कुछ भी क्षति नहीं होगी, केवल इनके युद्धके बहानेसे दोनों ही पक्षके लोगोंका क्षय होगा ॥३९॥ इस प्रकार निश्चय कर तथा भारी मनुष्योंके संहारसे डरकर मन्त्रियोंने दोनोंकी आज्ञा लेकर धर्मयुद्ध करनेकी घोषणा कर दी ॥४०॥ उन्होंने कहा कि मनुष्योंका संहार करनेवाले इस कारणहीन युद्धसे कोई लाभ नहीं है क्योंकि इसके करनेसे बड़ा भारी अघर्म होगा और यशका भी बहुत विघात होगा ॥४१॥ यह बलके उत्कर्षकी परीक्षा अन्य प्रकारसे भी हो सकती है इसलिए तुम दोनोंका ही परस्पर तीन प्रकारका युद्ध हो ॥४२॥ इस युद्धमें जो पराजय हो वह तुम दोनोंको भौहके चढ़ाये बिना ही — सरलतासे सहन कर लेना चाहिए तथा जो विजय हो वह भी अहंकारके बिना तुम दोनोंको सहन करना चाहिए क्योंकि भाई भाइयोंका यही धर्म है ॥४३॥ इस प्रकार जब समस्त राजाओं और मन्त्रियोंने बड़े आश्रह-के साथ कहा तब कहीं बड़ी कठिनतासे उद्धत हुए उन दोनों भाइयोंने वैसा युद्ध करना स्वीकार

१ एवमाद्यः । २ प्राप्ता ल०, प०, द० । ३ भुजबली स्थितः । ४ विचार्य । ५ बाहुबलिनि । ६ अत्यासन्ने सति ।  
 ७ भरतस्य । ८ वीराः ल०, द०, अ०, प०, स०, इ० । ९ वाजिनः अ०, स०, द० । १० प्रकर्षेण योद्धुमि-  
 च्छया । ११ नावयो — ल० । १२ सहायस्य । १३ युद्धच्छेन । १४ एवं सति । युद्धे सतीत्यर्थः । १५ कीर्ति-  
 नामः । १६ चट्टे इत्यर्थः । १७ उत् कारणात् । १८ क्रीष्णभावेनेत्यर्थः । १९ गवीभावादित्यर्थः । २० अनुमेनाते ।

जलदृष्टिनियुद्धेषु<sup>३</sup> येऽनयोजयमाप्स्यति । स जयश्रीविलासिन्या: पतिरस्तु सवर्णहृतः ॥४५॥  
 ईश्युद्धेष्यं कृतानन्दमनिविदन्या गमीरया । भूर्या चमप्रधानानां<sup>४</sup> न्यधुरेकत्र संनिधिम् ॥४६॥  
 चृपः भरतगृहणा ये तानेकत्र न्यवेशयन् । ये बाहुबलिगृहाण्ड पार्थिवास्तानतोऽन्यतः ॥४७॥  
 मध्ये महीकृतां तेषां रेजतुस्ता लृपौ स्थितौ । गतौ निषधनीलाद्री कुतश्चिदेव<sup>५</sup> संनिधिम् ॥४८॥  
 "तथोर्मुजवला रेजे गहडभावसच्छविः । जम्बुद्रुम हवोत्तङ्गः सञ्च्छ्रोऽसित<sup>६</sup> मूर्द्वजः ॥४९॥  
 रराज राजराजोऽपि लिरीदोदमविग्रहः । सचूलिक हवाद्रीन्द्रः तस्चामीकरण्डविः ॥५०॥  
 दधदीरतरा इटि निनिमेषामनुसदाम्<sup>७</sup> । इष्टियुद्धे जन्यं प्राप प्रसमं<sup>८</sup> भुजविक्रमी ॥५१॥  
 विनिवायं कृतकोभमनिवायं क्लाणेदम् । मर्यादिवा यज्ञीयांस्ते<sup>९</sup> जयेनायोजयभृपा: ॥५२॥  
 सरसीजलमागार्डी<sup>१०</sup> जलयुद्धे मदोषतौ । दिग्गजाविश तो दीर्घैर्यात्यु<sup>११</sup> कीमामसुभृजैः ॥५३॥  
 अधिवक्षस्तरं जिग्नो रेजुरुच्छा जलच्छटा: । शीलमत्तुरिवोत्सङ्खसंगित्यः<sup>१२</sup> मूलयोऽमसमाम् ॥५४॥  
 जलौचो भरतेश्वरं मुक्तो दोर्वलशालिनः ।<sup>१३</sup> प्रशीरश्राव्य कूरेण सुखमारात् समापत्तन् ॥५५॥

किया ॥४४॥ 'इन दोनोंके बीच जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध और बाहुमें जो विजय प्राप्त करेगा वही विजय-लक्ष्मीका स्वयं स्वीकार किया हुआ पति हो, इस प्रकार सबको आनन्द देनेवाली गम्भीर भेरियोके द्वारा जिसमें सबको हर्ष हो इस रीतिसे घोषणा कर मन्त्री लोगोंने सेनाके मुख्य-मुख्य पुरुषोंको एक जगह इकट्ठा किया ॥४५-४६॥ जो भरतके पक्षवाले राजा थे उन्हें एक और बैठाया और जो बाहुबलीके पक्षके थे उन्हें दूसरी ओर बैठाया ॥४७॥ उन सब राजाओं-के बीचमें बैठे हुए भरत और बाहुबली ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किसी कारणसे निषध और नीलपर्वत ही पास-पास आ गये हों ॥४८॥ उन दोनोंमें नीलमणिके समान सुन्दर छविको धारण करता हुआ और काले-काले केशोंसे सुशोभित कुमार बाहुबली ऐसा जान पहता था मानो भ्रमरोंसे सहित ऊँचा जम्बूदृक्ष ही हो ॥४९॥ इसी प्रकार मुकुटसे जिसका शरीर ऊँचा हो रहा है और जो तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिको धारण करनेवाला है ऐसा राज-राजेश्वर भरत भी इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानो चूलिकासहित गिरिराज - सुमेश ही हो ॥५०॥ अत्यन्त धीर तथा पलकोंके संचारसे रहित शान्त हृष्टिको धारण करते हुए कुमार बाहुबलीने दृष्टियुद्धमें बहुत शीघ्र विजय प्राप्त कर ली ॥५१॥ हृष्टिसे क्षोभ मचाते हुए बाहुबलीके दुर्निवार सेनारूपी समुद्रको रोककर राजाओंने बड़ी मर्यादाके साथ कुमार बाहुबलीको विजयसे युक्त किया अथवा दृष्टियुद्धमें उनकी विजय स्वीकार की ॥५२॥ तदनन्तर मदोन्मत्त दिग्गजोंके समान अभिमानसे उद्धत हुए वे दोनों भाई जलयुद्ध करनेके लिए सरोवरके जलमें प्रविष्ट हुए और अपनो लम्बी-लम्बी भुजाओंसे एक दूसरेपर पानी उछालने लगे ॥ ५३ ॥ चक्रवर्ती भरतके वक्षस्थलपर बाहुबलीके द्वारा छोड़ी हुई जलकी उज्ज्वल छटाएं ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो सुमेहपर्वतके मध्यभागमें जलका प्रवाह ही पड़ रहा हो ॥ ५४॥ भरतेश्वरके द्वारा छोड़ा हुआ जलका प्रवाह अत्यन्त ऊँचे बाहुबलीके मुखको दूर छोड़कर दूरसे ही नीचे जा पड़ा ॥ भवार्थ - भरतेश्वरने भी बाहुबलीके ऊपर पानी फेंका था परन्तु बाहुबलीके ऊँचे होनेके कारण वह पानी उनके मुख तक नहीं पहुँच सका, दूरसे ही नीचे जा पड़ा । भरतका शरीर पाँच-सौ धनुष ऊँचा था और बाहुबलीका पाँच-सौ पच्चीस

<sup>३</sup> जलयुद्धदृष्टियुद्धबाहुयुद्धेषु । 'नियुद्ध बाहुयुद्ध' इत्यमिधानात् । २ चक्रः । ३ कारणात् । ४ सम्मेलनमित्यर्थः । ५ तथोर्मध्ये । ६ नीलवेशः । ७ शान्ताम् । ८ शीघ्रम् । ९ अनुजम् । 'जषन्यजे स्युः कनिष्ठयवीयोऽवरजानुजाः' इत्यमिधानात् । १० प्रविष्टी । ११ परस्परं जलसेचनं चक्रतुः । १२ प्रवाहाः । १३ उन्नतस्य ।

भरतेशः किलात्रापि न यदाय जर्यं तदा । बलेभुजवलीशस्य भूयोऽप्युद्धाषितो जयः ॥५६॥  
नियुद्धस्यै संगीर्यै नृविर्हा॒ मिहविकमौ॑ । धीरात्राविष्टुकृतस्वदौ॑ तौ॒ रक्षसेवरतुः॑ ॥५७॥  
॑ वहिनतास्तो॒ उत्तिर्थिभिर॑ ॥ धरणीर्वन्ध॑ पीलितैः॑ । द्वौ॒ दृपैशालिनोरामीद॑ बाहुयुद्धं॑ तयांमहत्॑ ॥५८॥  
उबलम्बुकुटभावक्षो॑ हैलयोद्धुमितोऽमुना॑ । लीलामलातचक्रस्य॑ चक्रो॑ भेजे॑ क्षणं अमन्॑ ॥५९॥  
यवीयान्॑ नुपशादूलं अथायांसं॑ जितभारतम्॑ । जित्वा॑ पि नानयद॑ भूमि॑ प्रसुरित्यंत्र गौरवान्॑ ॥६०॥  
॑ भुजांपरोधमुद्धृत्य॑ स तं धते॑ हम दोर्वली॑ । हिमाद्रिमिव नीलाद्रिसंहाकरकभास्वरम्॑ ॥६१॥  
तदा॑ कलकलश्चके॑ पद्मैभुजवली॑ शिवः॑ । नृपैर्भरतगुड्डैस्तु॑ लज्जया॑ ममितं॑ शिरः॑ ॥६२॥  
गमकमीअभागेषु॑ पायित्वेष्टुम्येष्टुपि॑ । परां॑ विमानतां॑ प्राप्य॑ ययो॑ चक्रो॑ विलक्षताम्॑ ॥६३॥  
चहश्चुकुटिहङ्कान्तरुधिराहणलोचनः॑ । क्षणं॑ दुरीक्षतां॑ भेजे॑ चक्रो॑ प्रज्वलितः॑ कुधा॑ ॥६४॥  
क्रोधाम्बेन॑ तदा॑ दृथ्य॑ करुमस्य॑ पराजयम्॑ । चक्रमुक्तस्तनि॑ शेषद्विष्टुकं॑ निर्धाशिना॑ ॥६५॥  
॑ आध्यानमात्रमेत्याराददः॑ कृत्वा॑ प्रदक्षिणाम्॑ । अब्द्यस्यास्य॑ पर्वन्तं॑ तस्यै॑ मन्दीकृतपम्॑ ॥६६॥

धनुष । इसलिए बाहुबलीके द्वारा छोड़ा हुआ पानी भरतके मुख तथा बक्षःस्थलपर पड़ता था परन्तु भरतके द्वारा छोड़ा हुआ पानी बीचमें ही रह जाता था – बाहुबलीके मुख तक नहीं पहुँच पाता था ॥५५॥ इस प्रकार जब भरतेश्वरने इस जलयुद्धमें भी विजय प्राप्त नहीं की तब बाहुबलीकी सेनाओंने फिरसे अपनी विजयकी घोषणा कर दी ॥५६॥ अथानन्तर सिंहके समान पराक्रमको धारण करनेवाले धीर्खीदृश्य परस्पर लाल-लहरिलालें जै दोनों लाल-शाढूल – शेष पुलाय बाहुयुद्धकी प्रतिश्वा कर रंगभूमिये आ उतरे ॥५७॥ अपनी-अपनी भुजाओंके अहंकारसे सुशोभित उन दोनों भाइयोंका, अनेक प्रकारसे हाथ हिलाने, ताल ठोकने, पेतरा बदलने और भुजाओंके व्यायाम आदिसे बड़ा भारी बाहु पुढ़ ( मल्ल युद्ध ) हुआ ॥५८॥ जिसके मुकुटकी दीप्तिका समूह अतिशय देवीप्यमान हो रहा है ऐसे भरतको बाहुबलीने लीला मात्रमें ही धुमा दिया और उस समय धूमते हुए चक्रवर्तीनि क्षण-भरके लिए अलातचक्रकी लीला धारण की थी ॥५९॥ बाहुबलीने राजाओंमें शेष, बड़े तथा भरत श्रेष्ठको जीतनेवाले भरत-को जीतकर भी ‘ये बड़े हैं’ इ सी गीरवसे उन्हें पृथिवीपर नहीं पटका ॥६०॥ किन्तु भुजाओंसे पकड़कर ऊँचा उठाकर कन्धेपर धारण कर लिया । उस समय भरतेश्वरको कन्धेपर धारण करते हुए बाहुबली ऐसे जान पड़ते थे मानो नीलगिरिने बड़े-बड़े शिखरोंसे देवीप्यमान हिमवान् पर्वतको ही धारण कर रखा हो ॥६१॥ उस समय बाहुबलीके पक्षवाले राजाओंने बड़ा कोला-हूल मचाया और भरतके पक्षके लोगोंने लज्जासे अपना शिर झूका लिया ॥६२॥ दोनों पक्षके राजाओंके साक्षात् देखते हुए चक्रवर्ती भरतका अत्यन्त अपमान हुआ था इसलिए वे भारी लज्जा और आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥६३॥ जिसने भौंहें चढ़ा ली हैं, जिसकी रक्षके समान लाल-लाल अस्त्रें इधर-उधर किर रही हैं और जो क्रोधसे जल रहा है ऐसा वह चक्रवर्ती क्षण-भरके लिए भी दुनिरीक्ष्य हो गया अर्थात् वह क्रोधसे ऐसा जलने लगा कि उसे कोई क्षण-भर नहीं देख सकता था ॥६४॥ उस समय क्रोधसे अन्धे हुए निधियोंके स्वामी भरतने बाहुबलीकी पराजय करनेके लिए समस्त शत्रुओंके समूहको उखाड़कर केंकनेवाले चक्ररत्नका स्मरण किया ॥६५॥ स्मरण करते ही वह चक्ररत्न भरतके समीप आया, भरतने बाहुबलीपर चलाया

१ बाहुयुद्धम् । २ प्रतिज्ञां कृत्वा । ३ प्रकिष्टाषित्यर्थः । ४ वलयनभुजास्फालनः । वलिता – प०, ६० ।  
५ पदाक्षारिभिः । ६ बाहुबन्ध । ७ काष्ठगिन्नभ्रमणस्य । ८ अनुजः । ९ ज्येष्ठम् । १० बाहुपीडनं यथा भद्रति तथा । ११ परिभ्रमम् । १२ विसमयाग्नितम् । १३ उच्छिष्ट । – मुक्षिष्ट – क०, ८० । १४ स्मृत ।  
१५ एतच्चक्रम् । १६ भुजबलिनः । १७ समीपे ।

कृतं<sup>३</sup> कृतं पतानेत साहसेनेति धिक्कृतः । तदा महत्तमैश्वर्की जगामानुशयं<sup>४</sup> परम् ॥६३॥  
 ३ हृषीपदान हस्युच्चैः करण तुलयसूपम् । सोऽवकर्तीयास्ततो<sup>५</sup> धीरोऽनिकृष्टां<sup>६</sup> भूमिमापिष्ठं<sup>७</sup> ॥६४॥  
 सम्कृतः स जयाशंसमध्येत्य नृपसत्तमैः । मैते सोऽवकर्तीमात्मानं तदा भुजत्रली प्रभुः ॥६५॥  
 अचिन्तयस्त किञ्चाम कृते<sup>८</sup> राघ्यस्य भक्तिन् । लज्जाकरो विधिमात्रा ज्येष्ठेनायमनुष्ठितः<sup>९</sup> ॥६६॥  
 १० विपाककटुमात्राभ्यं भण्डवंसि धिगस्थिदम् । दुस्यजं त्वजदपेतदङ्गिभिर्दुष्कलश्वरात् ॥६७॥  
 अहो विषयस्मौख्याना वैरूप्यम्<sup>१०</sup> पकारिता ।<sup>११</sup> मङ्गुरत्वमहृत्यवं<sup>१२</sup> सकैर्नन्विष्यते<sup>१३</sup> जनैः ॥६८॥  
 को नाम मतिमार्नप्तेष्ट विषयान् वैषदाखणान् । यंशो वशागतो जम्हुर्यात्यमर्थपरम्पराम् ॥६९॥  
 वरं विषं मवेकस्मिन् भवे हन्ति न हन्ति वा । विषयास्तु पुनर्जन्मित हन्त जम्हूनन्वेत्तशः ॥७०॥  
 आपातमाय<sup>१४</sup> रम्याणां विपाककटुकारमनाम् । विषयाणां कृते<sup>१५</sup> नाशे<sup>१६</sup> वात्यनथनिपायंकम् ॥७१॥

परन्तु उनके अवध्य होनेसे वह उनकी प्रदक्षिणा देकर तेजरहित हो उन्हींके पास जा ठहरा । भावार्थ – देवोपनीत शस्त्र कुटुम्बके लोगोंपर सफल नहीं होते, बाहुबली भरतेश्वरके एकाग्रितृक भाई थे इसलिए भरतका चक्र बाहुबलीपर सफल नहीं हो सका । उसका तेज फोका पड़ गया और वह प्रदक्षिणा देकर बाहुबलीके समीप हो ठहर गया ॥६६॥ उस समय बड़े-बड़े राजाओंने चक्रवर्तीको विकार दिया और दुःखके साथ कहा कि 'बस-बस' 'यह साहस रहने दो' – बन्द करो, यह सुनकर चक्रवर्ती और भी अधिक सन्तापको प्राप्त हुए ॥६७॥ आपने खूब पराम्रम दिखाया, इस प्रकार उच्च स्वरसे कहकर धीर-कीर बाहुबलीने पहले तो भरतराजको हाथोंसे तोला और फिर कन्धेसे उतारकर नीचे जमीनपर रख दिया अथवा ( धीरो अनिकृष्टां ऐसा पदच्छेद करनेपर ) उच्च स्थानपर विराजमान किया ॥६८॥ अनेक अच्छे-अच्छे राजाओंने समीप आकर महाराज बाहुबलीके विजयकी प्रशंसा करते हुए उनका सत्कार किया और बाहुबलीने भी उस समय अपने आपको उल्लुष्ट अनुभव किया ॥६९॥ साथ ही साथ वे वह भी चिन्तवन करने लगे कि देखो, हमारे बड़े भाईने इस नश्वर राज्यके लिए यह शीर्षा लज्जाजनक कार्य किया है ॥७०॥ यह साम्राज्य फलकालमें बहुत दुःख देनेवाला है, और क्षणभंगुर है इसलिए इसे धिक्कार हो, यह व्यभिचारिणी स्त्रीके समान है क्योंकि जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री एक पतिको छोड़कर अन्य पतिके पास चली जाती है उसी प्रकार यह साम्राज्य भी एक पतिको छोड़कर अन्य पतिके पास चला जाता है । यह राज्य प्राणियोंको छोड़ देता है परन्तु अविवेकी प्राणी इसे नहीं छोड़ते यह दुःखकी बात है ॥७१॥ अहा, विषयोंमें आसक्त हुए पुरुष, इन विषयजनित सुखोंका निन्द्यपना, अपकार, क्षणभंगुरता और नीरस-पनेको कभी नहीं सोचते हैं ॥७२॥ जिनके वशमें पड़े हुए प्राणी अनेक दुःखोंकी परम्पराको प्राप्त होते हैं ऐसे विषके समान भयंकर विषयोंको कौन बुद्धिमाद पुरुष प्राप्त करना चाहेगा ? ॥७३॥ विष खा लेना कहीं अच्छा है क्योंकि वह एक ही भवमें प्राणीको मारता है अथवा नहीं भी मारता है परन्तु विषय सेवन करना अच्छा नहीं है क्योंकि ये विषय प्राणियोंको अनस्त बार किर-फिरसे मारते हैं ॥७४॥ जो प्रारम्भ कालमें तो मनोहर मालूम होते हैं परन्तु फलकाल-१ अल्पमलम् । २ पश्चात्ताम् । ३ कृतपराक्रमस्त्वमिति । कृतोगादान – अ०, ल० । ४ भुजशिखरान् ।  
 'स्वल्पो भुजशिरीऽसोऽस्त्रो' इत्यमिधानात् । ५ अवस्थाम् । ६ – मापपत् प०, ल० ।  
 ७ निमित्तम् । ८ विनश्वरस्य । ९ – मधिष्ठितः प०, ल० । १० परिणमन । ११ कृतिसतत्वम् ।  
 १२ विनश्वरस्य । १३ आसक्तीः । १४ न मृग्यते । १५ विचार्यत इत्यर्थः । १६ अनुभवनकाल ।  
 १७ निमित्तम् । १८ एमान् ।

अस्यन्तरसिकानादौ पर्यन्ते प्राणहारिणः । ५ किंपाकपाकविषमान् विषयान् कः कुती मजेत् ॥७५॥  
 शलभारदीपामिवज्ञाशनि भृत्याः । ग तथोऽद्वेजकाः सुंसां यथाऽमी विषयद्विषः ॥७६॥  
 प्रहृष्टश्चैक्षण्यमस्मीपापात्यस्मिन्दिगीर्वा । भौतिधिनो मजात्यज्ञा धनलाभं धनायया ॥७७॥  
 द्वृत्वं द्वृधातनिवास निधोविषयम् । कुते । आदसा आदसा पर्यां चरन्ति विषयाधिनः ॥७८॥  
 समाप्ततङ्गरथातनिरुद्गगनाङ्गम् । रणाङ्गां विशस्यस्तमिथो भौगीविलोभिताः ॥७९॥  
 चरन्ति द्वनमानुयां यत्र सत्रासलोचनाः । ताः पर्यट्यरण्यान् भौगीशोपहता जडाः ॥८०॥  
 सरितो विषमावत्स्मीषणा ग्राहमंकुलाः । ६ तितीर्षमित वताविष्टो विषमैविषयम्भैः ॥८१॥  
 आरोहन्ति दुरारोहान् गिरीनप्यमिथोऽङ्गिमः ॥ ७ इसायमरसशान् वलाज्ञात्विमोहिताः ॥८२॥  
 अनिष्टवनितेवेयमालिङ्गति वलाज्ञा । कुर्वती पलितल्लाजाद् रमसेन कच्चाहम् ॥८३॥  
 ८ मांगोप्यथ्युम्मुकः ग्रायो न च वेदैः हिताहितम् । भुक्तस्य जरसा जनतोऽर्दृतस्य च किमात्तरम् ॥८४॥  
 ९ प्रसङ्ग पातश्चन् भूमी गत्रेषु कृतवेपशुः ॥९ जरापातो नृणो कष्टो उवरः शीत हत्रोऽक्षरन् ॥८५॥

में कहवे ( दुःख देनेवाले ) जान पड़ते हैं ऐसे विषयोंके लिए यह अज्ञ प्राणी क्या व्यर्थ ही अनेक दुःखोंको प्राप्त नहीं होता है ? ॥७५॥ जो प्रारम्भ कालमें तो अत्यन्त आनन्द देनेवाले हैं और अन्तमें प्राणोंका अपहरण करते हैं ऐसे किषाक फल (विषफल) के समान विषम इन विषयों-को कौन बुद्धिमान् पुरुष सेवन करेगा ? ॥७६॥ ये विषयरूपी शत्रु प्राणियोंको जैसा उद्घेग करते हैं वैसा उद्घेग शस्त्रोंका प्रहार, प्रज्वलित अग्नि, वज्र, विजली और बड़े-बड़े सर्प भी नहीं कर सकते हैं ॥७७॥ भोगोंको इच्छा करनेवाले मूर्ख पुरुष घन पानेकी इच्छासे बड़े-बड़े समुद्र, प्रचण्ड युद्ध, भयंकर वन, नदी और पर्वतोंमें प्रवेश करते हैं ॥७८॥ विषयोंकी चाह रखनेवाले पुरुष जलचर जीवोंकी लम्बी-लम्बी भुजाओंके आघातसे उत्पन्न हुए वज्रपात-जैसे कठोर शब्दोंसे क्षुब्ध हुए समुद्रमें भी जाकर संचार करते हैं ॥७९॥ भोगोंसे लुभाये हुए पुरुष, चारों ओरसे पढ़ते हुए बाणोंके समूहसे जहाँ आकाशरूपी औंगन भर गया है ऐसे युद्धके मैदानमें भी निर्भय होकर प्रवेश कर जाते हैं ॥८०॥ जिनमें बनचर लोग भी भयसहित नेत्रोंसे संचार करते हैं ऐसे भयंकर बड़े-बड़े बनोंमें भी भोगोंकी आशासे पीड़ित हुए मूर्ख मनुष्य चूमा करते हैं ॥८१॥ कितने दुःखकी बात है कि विषयरूपी विषम ग्रहोंसे जकड़े हुए कितने ही लोग, ऊँची-नीची भवरोंसे भयंकर और मगरमच्छोंसे भरी हुई नदियोंको भी पार करना चाहते हैं ॥८२॥ रसायन तथा रस आदिके ज्ञानका उपदेश देनेवाले धूतोंके द्वारा मोहित होकर उद्योग करनेवाले कितने ही पुरुष कठिनाईसे चढ़ने योग्य पर्वतोंपर भी चढ़ जाते हैं ॥८३॥ यह जरा सफेद-बालोंके बहानेसे देगपुर्वक केशोंको पकड़ती हुई अनिष्ट स्त्रीके समान जबरदस्ती आँलिगन करती है ॥८४॥ जो प्राणी भोगोंमें अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा है वह हित और अहितको नहीं जानता तथा जिसे बृद्धावस्थाने थेर लिया है उसमें और भरे हुएमें क्या अन्तर है ? अर्थात् बेकार होनेमें बृद्ध मनुष्य भी मरे हुएके समान है ॥८५॥ यह बृद्धापा मनुष्यको शीतज्वरके समान अनेक कष्ट देनेवाला है क्योंकि जिस प्रकार शीतज्वर उत्पन्न होते ही जबरदस्ती जमीनपर

१ अस्वीरणक्रमकल । २ वज्ररूपाशनि । ३ भयंकराः । ४ घनलाभवाच्छया । ५ अशनि । ६ जलजग्नुताम् ।  
 'याहामि जलजन्तवः' इत्यभिधानात् । यादसां पत्थो समुद्रे । 'रस्ताकरो जलनिधिर्पदापतिरपां पतिः'  
 इत्यभिधानात् । ७ वनेचराः । ८ भयसहिताः । ९ तरीतुमिष्ठलिति । १० ग्रस्ता इत्यर्थः । ११-प्रभियोगिनः  
 इत्यभिधानात् । १२ भोक्तुं योग्यवस्तुपुः । १३ भोक्तुं योग्यवस्तुपुः ।  
 ल०, प०, अ०, ह० । १४ पलितस्तम्भौषधसिद्धरसज्ञानज्ञातवलवादामोहिताः । १५ भोक्तुं योग्यवस्तुपुः  
 १६ न ज्ञाताति । १७ भेदः । १८ बलास्कारेण । १९ कस्यः । २० प्राप्तिः ।

अङ्गस्वार्दै<sup>१</sup> मतिश्रेष्ठ<sup>२</sup> वाचामस्फुटतामपि । जरा सुरा च निर्किंष्टा<sup>३</sup> घटवस्यातु देहिनाम् ॥८७॥  
 कालव्यालग्नेदमायुरालानकं बलान् । चालयते यद्वलाधानं जीवितालस्थनं नृणाम् ॥८८॥  
 शरीरश्वसेतत्त्वं गजकण्ठवदस्थिरम् । रोगा<sup>४</sup> खूपहतं खेदं<sup>५</sup> जरदेहकुटीरकम् ॥८९॥  
 इत्यशाश्वतमन्त्येतद् राज्यादि भरतेश्वरः । शाश्वतं मन्त्रे कर्त्तुं मोहोपहतचेतनः ॥९०॥  
 चिरमाकुलयज्ञेवमग्नजस्यानुदातताम्<sup>६</sup> । अथाजहरैनसुहिश्य गिरः प्रपहवाभराः ॥९१॥  
 शृणु मो नृपशार्दूलं क्षणं वैलक्ष्यभुत्तद्वज । सुष्ठुतेदै<sup>७</sup> त्वयाऽङ्गित्वा दुरीहमतिसाहसम् ॥९२॥  
 अभेदे मम देहाद्री त्वया अकं नियोजितम् । विद्ध-पर्किंश्चिकरं<sup>८</sup> वाङ्मै शैले वज्रमित्रापतत् ॥९३॥  
 अन्यत्र आत्माण्डानि महस्त्रा राज्यं चर्दीप्तिसतम् । त्वया धर्मो यशश्चैव<sup>९</sup> तेन<sup>१०</sup> पेशलमजितम् ॥९४॥  
 चक्रमुद्भवतः सहुः सूतुराधस्य योऽग्रणीः । कुलस्योदारकः सोऽभूदिती<sup>११</sup> इऽस्थायि च त्वया ॥९५॥  
 जितां च भवतैवाय<sup>१२</sup> यत्पापोपहतमिमाम् । मन्यसेऽनन्यमोर्गीनां<sup>१३</sup> नृपश्रियमनधरीम् ॥९६॥  
 ग्रेयसीनं सर्वैवास्तु राज्यश्रीर्था त्वयाऽहता । नोक्तिर्णा ममायुष्मन् वर्ष्यो<sup>१४</sup> न हि सती मुद्रे ॥९७॥

पठक देता है उसी प्रकार बुद्धापा भी जबरदस्ती जमीनपर पटक देता है और जिस प्रकार शीतज्वर शरीरमें कम्पन पैदा कर देता है उसी प्रकार बुद्धापा भी शरीरमें कम्पन पैदा कर देता है ॥८६॥ शरीरमें प्रविष्ट हुई तथा उपभोगमें आयी हुई जरा और मदिरा दोनों ही लोगोंके शरीरको विशिल वज्र दिली है, उनकी जुड़ि अष्ट कर देती है और वज्रनोंमें अस्पष्टता ला देती है ॥८७॥ जिसके बलका सहारा मनुष्योंके जीवनका आलम्बन है ऐसा यह आवृहपी खम्भा कालरूपी दुष्ट हाथीके द्वारा जबरदस्ती उखाड़ दिया जाता है ॥८८॥ यह शरीरका बल हाथोंके कानके समान चंचल है और यह जीर्ण-शीर्ण शरीररूपी झोपड़ा रोगरूपी चूहोंके द्वारा नष्ट किया हुआ है ॥८९॥ इस प्रकार यह राज्यादि सब विनश्वर हैं, फिर भी मोहके उदयसे जिसकी चेतना नष्ट हो गयी है ऐसा भरत इन्हें नित्य मानता है यह कितने दुःखकी बात है ? ॥९०॥ इस प्रकार बड़े भाईको नीचताका चिरकाल तक विषार करते हुए बाहुबलीने भरतको उद्देश्य कर नीचे लिखे अनुसार कठोर अक्षरोंवाली वाणी कही ॥९१॥ हे राजाओंमें श्रेष्ठ, क्षण-भरके लिए अपनी लज्जा या झेंप छोड़, मैं कहता हूँ सो सुन । तूने मोहित होकर ही इस न करने योग्य बड़े भारी साहसका सहारा लिया है ॥९२॥ जो कभी भिन्न नहीं सकता । ऐसे मेरे शरीररूपी पर्वतपर तूने चक्र चलाया है सो तेरा यह चक्र वज्रके बने हुए पर्वतपर पड़ते हुए वज्रके समान व्यर्थ है ऐसा निरचयसे समझ ॥९३॥ दूसरी बात यह है कि जो तूने भाईरूप बरतनोंको शोड़कर राज्य प्राप्त करना चाहा है सो उससे तूने बहुत ही अच्छा धर्म और वशका उपार्जन किया है ॥९४॥ तूने अपनी यह स्तुति भी स्थापित कर दी कि चक्रवर्ती भरत आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेवका ज्येष्ठ पुत्र था तथा वह अपने कुलका उदारक हुआ था ॥९५॥ हे भरत, आज तूने जिसे जीता है और जो पापसे भरी हुई है ऐसी इस राज्य-लक्ष्मीको तू एक अपने ही द्वारा उपभोग करने योग्य तथा अविनाशी समझता है ॥९६॥ जिसका तूने आदर किया है ऐसी यह राज्यलक्ष्मी अब तुझे ही प्रिय रहे, हे आयुष्मन्, अब यह मेरे योग्य नहीं है क्योंकि बन्धन सज्जन पुरुषोंके आनन्दके लिए नहीं होता है । भावार्थ – यह लक्ष्मी स्वयं एक प्रकारका बन्धन है अथवा कर्म बन्धका कारण है इसलिए सज्जन पुरुष इसे

१ श्रमम् । २ भैश्वरम् । ३ अनुभुवता । ४ मूर्तिक । ५ जीर्ण । ६ निष्ठुरूपाम् । ७ वित्तमयान्वितत्वम् । ८ मुहूर्तीति मृश्यन् तेन । ९ न किञ्चित्कृत । किञ्चिपि कर्तुषसमर्थ इत्यर्थः । १० राज्यान्विलेण । ११ प्रशस्तम् । १२ स्तुति । १३ यस्मात् कारणात् । १४ अनन्यमोर्गामिताम् । १५ बन्धकारणपरिप्रहः ।

कभी नहीं चाहते ॥१७॥ यद्यपि यह तेरी लक्ष्मी फलवती है तथापि अनेक प्रकारके कौटोंसे -  
विषत्तियोंसे दूषित है। भला, ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो कठिकाली लताको हाथसे  
छुयेगा भी ॥१८॥ अब हम कण्टकरहित तपर्णी लक्ष्मीको अपने अधीन करना चाहते हैं  
इसलिए यह राज्यलक्ष्मी हम लोकोंसे छिप विषत्तियोंको छुयेको सहानु राज्य  
है ॥१९॥ अतएव जो मैंने यह ऐसा अपराध किया है उसे कामा कर दीजिए। मैं विनयसे  
च्युत हो गया था अर्थात् मैंने आपकी विनय नहीं की सो इसे मैं अपनी चंचलता ही समझता  
हूँ ॥२०॥ जिस प्रकार मैथसे निकलती हुई गर्जना सन्तप्त मनुष्योंको आनन्दित कर देती  
है उसी प्रकार महाराज बाहुबलीके मुखसे निकलते हुए वाणीके समूहने चक्रवर्ती भरतके सन्तप्त  
मनको कुछ-कुछ आनन्दित कर दिया था ॥२१॥ 'हा मैंने बहुत ही दुष्टताका कार्य किया है'  
इस प्रकार जोर-जोरसे अपनी नित्या करता हुआ चक्रवर्ती अपने पाप कर्मसे बहुत ही सन्तप्त  
हुआ ॥२२॥ जिसमें अनेक प्रकारके अनुनय-विनयका प्रयोग किया गया है इस रीतिसे  
अन्तिम कुलकर महाराज भरतको बार-बार प्रसन्न करता हुआ बाहुबली अपने संकल्पसे पीछे  
नहीं हटा सो ठीक ही है क्योंकि तेजस्वी पुरुषोंकी स्थिरता भी आश्चर्यजनक होती है ॥२३॥  
उसने अपने पुत्र महाबलीको राज्यलक्ष्मी सौंप दी और स्वयं गुरुदेवके चरणोंकी आराधना करते  
हुए जैनी दीक्षा धारण कर ली ॥२४॥ जिसने समस्त परिघह छोड़ दिया है तथा जो दीक्षा  
रूपी लतासे आलिंगित हो रहा है ऐसा वह बाहुबली उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो  
पत्तोंके गिर जानेसे कृष्ण लतायुक्त कोई वृक्ष ही हो ॥२५॥ गुहकी आशामें रहकर शास्त्रोंका  
अध्ययन करनेमें कुशल तथा एक विहारीपन धारण करनेवाले जितेन्द्रिय बाहुबलीने एक  
वर्ष तक प्रतिमा पोग धारण किया अर्थात् एक ही जगह एक ही आसनसे खड़े रहनेका नियम  
लिया ॥२६॥ जिन्होंने प्रशंसनीय व्रत धारण किये हैं, जो कभी भोजन नहीं करते, और  
जिनके समीपका प्रदेश वनकी लताओंसे व्याप्त हो रहा है ऐसे वे बाहुबली वामीके छिप्पोंसे  
निकलते हुए सपोंसे बहुत ही भयानक हो रहे थे ॥२७॥ जिनके कणा प्रकट हो रहे हैं ऐसे  
फुँकारते हुए सर्पके बच्चोंकी उछल-कूदसे चारों ओरसे घिरे हुए वे बाहुबली ऐसे सुशोभित

१ अस्यताम् । २ अपराधः । ३ मूरशमपश्यम् । ४ प्रवाहः । ५ भरतस्य । ६ दुष्टु ट० । निवा । 'निन्दायां  
दुष्टु सेष्टु प्रशंसने ।' इत्यभिषानात् । ७ विजवैराग्यादित्यर्थः । ८ आलिङ्गतः । ९ लतया सहितः ।  
१० पर्णमौखनकृष्णः । ११ अष्टीतकान् । १२ वषतिषि । १३ निभूतः । १४ स्तुत । १५ उपवासी ।  
१६ मयंकरः । १७ उच्छ्रुतसत् । १८ फण । १९ अडिघ्रसमीपे ।

दधानः स्कन्धे पर्यन्तलमित्वाः केशबलरीः । सोऽन्वगात् रक्षणा हिमपदलं हरिचन्दनम् ॥ १०५ ॥  
 माधवीक्लितया गावसुपर्गदः<sup>१</sup> प्रफुलया । शास्याकाहुभिरावेष्य भूर्भावेष्यै यहामया<sup>२</sup> ॥ १०६ ॥  
 विद्याधरी करालद्वं पलत्रा सा किळाशुष्टु । पादयोः कामिनीवास्य<sup>३</sup> सामि नव्रातुनेष्यता<sup>४</sup> ॥ १०७ ॥  
 रेजे स तदवस्थोऽपि तपो दुश्शरमाचरन् । कामीव सुक्तिकामित्यां सपृहथालुः कुर्णीमवन् ॥ १०८ ॥  
 तपस्तनुनयात्ताप<sup>५</sup> संतपस्यास्य केवलम् । शरीरमशुष्पज्ञोऽवैश्वीप<sup>६</sup> कर्मण्यशमेदम् ॥ १०९ ॥  
 सीमी तपस्यतोऽप्यस्य नामीत् काश्चित्पुष्पलचः । अस्तित्यं महानां धैर्यं धेनायानित<sup>७</sup> न विक्रियाम् ॥ ११० ॥  
 सृद्यमहः<sup>८</sup> खमामारं प्रशान्तं शीतलं द्रुलम् । विप्रसंगुप्यवनं दीप्तः<sup>९</sup> स लिगाय द्रुताशनम् ॥ १११ ॥  
 कुर्वते फिपाय । शीतोष्णं सदृशमशकद्वयम् । मागच्यवनमसिद्धयै<sup>१०</sup> द्रुन्दानि सहते स्म सः ॥ ११२ ॥  
 स नामन्य<sup>११</sup> परमं किञ्चित्तामेदीनिद्रयभूतंकैः । अहमचर्यस्य<sup>१२</sup> सा<sup>१३</sup> गुस्तिर्मित्यं नाम परं तपः ॥ ११३ ॥  
 सति चारतिसप्त्येष द्वितयं स्म लितिक्षमै<sup>१४</sup> । न रस्यरतिकाधा हि विषयानमिष्ठिङ्गाः<sup>१५</sup> ॥ ११४ ॥

हो रहे थे मानो उनके चरणोंके समीप विषके अंकूरे ही लग रहे हों ॥ १०८ ॥ कन्धों पर्यन्त लटकती हुई केशरूपी लताओंको धारण करनेवाले वे बाहुबली मूनिराज अनेक काले सर्पोंके समूहको धारण करनेवाले हरिचन्दन वृक्षका अनुकरण कर रहे थे ॥ १०९ ॥ फूली हुई बासन्ती-लता अपनी शाखारूपी भुजाओंके द्वारा उनका गाढ आलिंगन कर रही थी और उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो हार लिये हुए कोई सखी ही अपनी भुजाओंसे उतका आलिंगन कर रही हो ॥ ११० ॥ जिसके कोमल पत्ते विद्याधरियोंने अपने हाथसे तोड़ लिये हैं ऐसी वह बासन्ती लता उनके चरणोंपर पड़कर सूख गयी थी और ऐसी मालूम होती थी मानो कुछ नम्र होकर अनुनय करती हुई कोई स्त्री ही पैरोंपर पड़ी हो ॥ १११ ॥ ऐसी अवस्था होनेपर भी वे कठिन तपश्चरण करते थे जिससे उनका शरीर कृश हो गया था और उससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मुक्तिरूपी स्त्रीकी इच्छा करता हुआ कोई कामी ही हो ॥ ११२ ॥ तपरूपी अग्निके सन्तापसे सन्तप्त हुए बाहुबलीका केवल शरीर ही खड़े-खड़े नहीं सूख गया था किन्तु दुःख देनेवाले कर्म भी सूख गये थे अर्थात् नष्ट हो गये थे ॥ ११३ ॥ तीव्र तपस्या करते हुए बाहुबलीके कभी कोई उपद्रव नहीं हुआ था सो ठीक ही है क्योंकि वडे पुरुषोंका धैर्य अचिन्त्य होता है जिससे कि वे कभी विकारको प्राप्त नहीं होते ॥ ११४ ॥ वे सब बाधाओंको सहन कर लेते थे, अत्यन्त शान्त थे, परिग्रहहित थे और अतिशय देवीप्यमान थे इसलिए उन्होंने अपने गुणोंसे पृथ्वी, जल, वायु, और अग्निको जीत लिया था ॥ ११५ ॥ वे मार्गसे च्युत न होनेके लिए भूख, प्यास, शीत, गरमी, तथा डांस, मच्छर आदि परीषहोंके दुःख सहन करते थे ॥ ११६ ॥ उक्तपृष्ठ नामन्य द्रुतको धारण करते हुए बाहुबली इन्द्रियरूपी धूतोंके द्वारा नहीं भेदन किये जा सके थे । अहमचर्यकी उक्तपृष्ठ रूपसे रक्षा करना ही नामन्य व्रत है और यही उत्तम तप है । भावार्थ – वे यद्यपि नरन रहते थे तथापि इन्द्रियरूप धूतं उन्हें विकृत नहीं कर सके थे ॥ ११७ ॥ वे रति और अरति इन दोनों परिषहोंको भी सहन करते थे अर्थात् रागके कारण उपस्थित होनेपर किसीसे राग नहीं करते थे और द्वेषके कारण उपस्थित होनेपर किसीसे द्वेष नहीं करते थे सो ठीक ही है क्योंकि विषयों-

१ भुजशिखर । २ अनुकरोति स्म । ३ आलिङ्गितः । ४ सर्वया । ५ सहारया अ०, स०, इ०, ल० । ६ छेदित ।  
 ७ ईषद् । ८ अनुनयं कुर्वती । ९ अग्निः । १० 'उदध्वरात् पूः शुषः' इति ग्रन्थप्रत्ययात्तः । उदध्वरमूर्तं शरीर-  
 मित्यर्थः । ११ धैर्येण । १२ सकालपरीषहोपसर्गं सहमानः । १३ भूभारमित्यर्थः । १४ तपोविशेषेण दीप्तः ।  
 १५ परीषहान् । १६ नगन्तवम् । १७ प्रसिद्धा । १८ रक्षा । १९ सहते स्म । २० विषयवाङ्मारहितस्य ।

नास्यासीत् खीकृता बाधा भोगनिवेदमायुषः । शरीरमसुचि खैण<sup>१</sup> पश्यतश्चर्मपुत्रिकाम् ॥ ११५ ॥  
 स्थितश्चर्या निष्ठां च शश्यां चासोऽ हेलया । मनसाऽनभिसंज्ञयान्तर्छयनासनम् ॥ १२० ॥  
 स सेहे वधमाकोशं परमार्थविदां वरः । शरीरके स्वयं व्याज्ये निःस्वाहोऽनभिनन्दधुः ॥ १२१ ॥  
 'याच्चिक्षियेण नास्थेषा विवागेन<sup>२</sup> तनुस्थितिः । सेव्य बाच्चयमो<sup>३</sup> भूरबा याज्ञाबाधामसोऽ सः ॥ १२२ ॥  
 जहूं मलं तुणस्पर्शं सोऽसोऽत्रौ<sup>४</sup> दोषमक्षमः । व्युत्सद्वत्तुसंस्कारो निर्विशेषसुखासुखः ॥ १२३ ॥  
 रोगस्यायतनं<sup>५</sup> वेद्यमाऽथायन्<sup>६</sup> धीरधीरसां । विविधातवृजां बाधा सहते स्म सुनुःपहाम् ॥ १२४ ॥  
 प्रश्नपरिषहं प्राप्तो ज्ञानजं गर्वमुख्यजन् । आसर्वज्ञं<sup>७</sup> तदुत्कर्षत् स साहा<sup>८</sup> ससाहसः ॥ १२५ ॥  
 स सत्कारपुरस्कारे नासीजातु समुत्सुकः । पुरस्कृतो मुदं नागाद् सत्कृतो न स्म तुप्यति ॥ १२६ ॥  
 परीषहमलाभं च संतुष्टो जयति स्म सः । अज्ञानादर्शनोऽन्नता बाधासीजास्य घोगिनः ॥ १२७ ॥

की इच्छा न रखनेवाले पुरुषको रति तथा अरतिकी बाधा नहीं होती ॥ ११८ ॥ भोगोंसे विरक्त हुए तथा स्त्रियोंके अपवित्र शरीरको चमड़ेकी पुतलीके समान देखते हुए उन बाहुबली महाराजको स्त्रियोंके द्वारा की हुई कोई बाधा नहीं हुई थी अर्थात् वे अच्छी तरह स्त्रीपरिषह सहन करते थे ॥ ११९ ॥ वे हमेशा खड़े रहते थे और जूता तथा शयन आदिकी मनसे भी इच्छा नहीं करते थे इसलिए उन्होंने चर्या, निष्ठा और शश्या परिषहको लीला मात्रमें ही जीत लिया था ॥ १२० ॥ कलोत्कर्षं तष्टु होऽवलोक्तानेवाल्ये असीरातेनिःअृहृत्युद्देहे हैं और न उसमें कोई आनन्द ही मानते हैं ऐसे परमार्थके जाननेवालोंमें शेष बाहुबली महाराज वध और आक्रोश परिषहको भी सहन करते थे ॥ १२१ ॥ याचनासे प्राप्त हुए भोजनके द्वारा शरीरकी स्थिति रखना उन्हें इष्ट नहीं था इसलिए वे भौत रुक्कर याचना परिषहकी बाधाको सहन करते थे ॥ १२२ ॥ जिन्होंने उत्तम क्षमा धारण की है, शरीरका संस्कार छोड़ दिया है और जिन्हें सुख तथा दुःख दोनों ही समान हैं ऐसे उन मुनिराजने स्वेद मल तथा तृण स्पर्श परिषहको भी सहन किया था ॥ १२३ ॥ 'यह शरीर रोगोंका घर है' इस प्रकार चिन्तन करते ही वे धीर-वीर बुद्धिके धारक बाहुबली बड़ी कठिनतासे सहन करनेके योग्य रोगोंसे उत्पन्न हुई बाधाको भी सहन करते थे ॥ १२४ ॥ जानका उत्कर्ष सर्वज्ञ होने तक है अर्थात् जबतक सर्वज्ञ न हो जावे तबतक ज्ञान घटता बढ़ता रहता है इसलिए ज्ञानसे उत्पन्न हुए अहेकारका त्याग करते हुए अतिशय बुद्धिमान् और साहसी वे मुनिराज प्रश्ना परिषहको सहन करते थे । भावार्थ – केवलज्ञान होनेके पहले सभीका ज्ञान अपूर्ण रहता है ऐसा विचार कर वे कभी ज्ञानका गर्व नहीं करते थे ॥ १२५ ॥ वे अपने सत्कार पुरस्कारमें कभी उत्कण्ठित नहीं होते थे । यदि किसीने उन्हें अपने कार्यमें अगुआ बनाया तो वे हृषित नहीं होते थे और किसीने उनका सत्कार किया तो सन्तुष्ट नहीं होते थे । भावार्थ – अपने कार्यमें किसीको अगुआ बनाना पुरस्कार कहलाता है तथा स्वयं आये हुएका सम्मान करना सत्कार कहलाता है । वे मुनिराज सत्कार पुरस्कार दोनोंमें ही निरुत्सुक रहते थे – उन्होंने सत्कार पुरस्कार परिषह अच्छी तरह सहन किया था ॥ १२६ ॥ सदा सन्तुष्ट रहनेवाले बाहुबलीजीने अलाभ परिषहकी जीता था तथा अज्ञान और अदर्शनसे उत्पन्न होनेवाली बाधाएँ भी उन मुनिराजको नहीं हुई थीं ॥ १२७ ॥

१ निवेदं गतस्य । –मीयुषः प०, इ०, द० । २ स्त्रीसंबन्धिः । ३ अभिसंवान्मकुर्वन् । ४ पादवाणः । 'पादूरूपानत् स्त्री' इत्यभिधानात् । ५ आनन्दरहितः । ६ याङ्गनया निवृत्तेन । ७ भोजनेन । ८ तेन कारणेन । ९ मीनो भूत्वा । १० धृतः । ११ समानमुखदुःखः । १२ गृहम् । १३ स्पर्श । १४ ज्ञानोत्कर्षत् । उपर्युपरि केवलज्ञानादित्यर्थः । १५ सहते स्म ।

परीषहजयादस्य विषुला निजंराभवत् । कर्मणा निर्जरोपायः परीषहजयः परः ॥ १२८॥  
 क्रोधं तितिक्षयाऽ मातृस्त्रेके पूरितज्ञैः । मायामृततया लोभं संतोषेण जिगाय सः ॥ १२९॥  
 ३४५६निद्र्याप्यनायासात् सोऽजयज्जितमन्मथः । विषयेऽश्वदीस्य कामान्मेः शमनं तपः ॥ १३०॥  
 आहारमयसंज्ञे च समैयुनपरिग्रहे । अनहविजयादेतः संज्ञः कपचति स्म सः ॥ १३१॥  
 इत्यन्तराहशत्रूणां स भावन् 'प्रसरं सुहुः । जयति हमाऽस्त्रमाऽस्त्रमविद् विदितालिङ्गः' ॥ १३२॥  
 अतं च समितीः सर्वाः सम्यग्निद्र्यरोधनम् । अचेततां च केशानो प्रतिलुभ्यसंगैरम् ॥ १३३॥  
 अवश्यकेष्वसंबाधमहनानं जितिशापिताम् । अन्तधावनं स्थिरवा भुजिं भक्तं च नालहृत् ॥ १३४॥  
 प्राहुर्मूलगुणानेतात् तथोत्तरगुणाः परे । तेषां आराधये यज्ञं सोऽतनिष्ठातनुसुनिः ॥ १३५॥  
 १३५७पृष्ठवहापयन्<sup>१</sup> कांचिद् वत्तशुद्धिं परो श्रितः । सोऽर्दीपि किरणैस्त्वानित्र दीपैस्त्वयोऽशुनिः ॥ १३६॥  
 गौरवैचिमिरम्भुकः परां निःशक्यता गतः । १३७धर्मदेवानुरुद्धार्योऽभूमुकिवरमनि ॥ १३७॥  
 गुसित्रयमयी<sup>२</sup> गुसि श्रितो ज्ञानालिमासुरः । संवर्मितः<sup>३</sup> समितिमिः स भेदे विजिगीषुलोम ॥ १३८॥

इस प्रकार परिषहोंके जीतनेसे उनके बहुत बड़ी कर्मोंकी निजंरा हो गयी थी सो ठीक ही है क्योंकि परिषहोंको जीतना ही कर्मोंकी निजंरा करनेका श्रेष्ठ उपाय है ॥ १२८॥ उन्होंने अमासे क्रोधको, अहंकारके त्यागसे मानको, सरलतासे मायाको और सन्तोषसे लोभको जीता था ॥ १२९॥ कामदेवको जीतनेवाले उन मुनिराजने पाँच इन्द्रियोंकी अनायास ही जीत लिया था सो ठीक ही है क्योंकि विषयरूपी इच्छनसे जलती हुई कामरूपी अग्निको शमन करनेवाला तपश्चरण ही है । भावार्थ—इन्द्रियोंको बश करना तप है और यह तभी हो सकता है जब कामरूपी अग्निको जीत लिया जावे ॥ १३०॥ उन्होंने कामको जीत लेनेसे आहार, भय, मेथुन और परिग्रह इन संज्ञाओंको नष्ट किया था ॥ १३१॥ इस प्रकार अन्तरंग शत्रुओंके प्रसारको बार-बार नष्ट करते हुए उन आत्मज्ञानी तथा समस्त पदार्थोंको जाननेवाले मुनिराजने अपने आत्मा-के द्वारा ही अपने आत्माको जीत लिया था ॥ १३२॥ पाँच महाव्रत, पाँच समितियाँ, पाँच इन्द्रियदमन, वस्त्र परित्याग, केशोंका लोंच करना, छह आवश्यकोंमें कभी बाधा नहीं होना, स्नान नहीं करना, पृथिवीपर सोना, दातीन नहीं करना, खड़े होकर भोजन करना और दिन-म एक बार आहार लेना, इन्हें अट्टाईस मूलगुण कहते हैं । इनके सिवाय चौरासी लाख उत्तर गुण भी हैं, वे महामुनि उन सबके पालन करनेमें प्रयत्न करते थे ॥ १३३—१३५॥ इनमें कुछ भी नहीं छोड़ते हुए अर्थात् सबका पूर्ण रीतिसे पालन करते हुए वे मुनिराज तत्त्वोंकी उल्लङ्घ विशुद्धिको प्राप्त हुए थे तथा जिस प्रकार देवीप्यमान किरणोंसे सूर्य प्रकाशमान होता है उसी प्रकार वे भी तपकी देवीप्यमान किरणोंसे प्रकाशमान हो रहे थे ॥ १३६॥ वे रसगौरव, शब्द गौरव, और ऋद्धिगौरव इन तीनोंसे सहित थे, अत्यन्त निश्चल्य थे और दशधर्मोंके द्वारा उन्हें मोक्षमार्गमें अत्यन्त दृढ़ता प्राप्त हो गयी थी ॥ १३७॥ वे मुनिराज किसी विजिगीषु अर्थात् शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजाके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार विजिगीषु राजा किसी दुर्ग आदि सुरक्षित स्थानका आश्रय लेता है, तलवारसे देवीप्यमान होता है और कबच पहने रहता है उसी प्रकार उन मुनिराजने भी तीन गुप्तियोंरूपी दुर्गोंका आश्रय ले रखा था, वे भी ज्ञानरूपी तलवारसे देवीप्यमान हो रहे थे और पाँच समितियाँरूप कबच पहन रखा था । भावार्थ— यथार्थमें वे कर्मरूप शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा रखते थे

<sup>१</sup> क्षमया । २ गर्व । ३ त०, ब०, अ०, स०, इ०, प०, द० पुस्तकसंभवोऽप्य क्रमः । ल० पुस्तके १२९-१३० इलोक्योर्व्यतिक्रमोऽस्ति । ४ समहम् । ५ जगतसकलपदायः । ६ प्रतिज्ञाम् । ७ एकमुक्तमित्यर्थः । ८ मूलोत्तर-गुणानाम् । ९ महान् । १० प्रोक्तगुणेषु । ११ हानिमकुर्वत् । १२ उत्तमशयादिभिः । १३ रक्षाम् । १४ कवचितः ।

कथायतस्कर्तनेहि रहतं रक्षये धनम् । सदतं जागरुकस्य भूदो भूमोऽप्रभावलः ॥ १४८ ॥  
 बाचंयमस्यै तस्यासीष जानु विकथादः । नाभिष्ठेन्द्रियैरस्य मनोदुर्गं सुमंकृतम् ॥ १४९ ॥  
 मनोजारं भवत्यस्य बोधिता ज्ञानवृद्धिका । इवर्दीपि तते एवासन् विश्वेऽप्यां अवस्थापदः ॥ १५० ॥  
 मतिश्रुताभ्यां निःसेवमर्थतस्वं विचिन्ततः<sup>३</sup> । करामलकवद् विश्वं तस्य विश्वहतामगात् ॥ १५१ ॥  
 परिधृजवैदीसो विजितेन्द्रियशाश्रयः । कथायशाश्रुत्वर्णेण स तयोः राज्यमवभूत् ॥ १५२ ॥  
 थोजानो अद्वयस्तस्य श्रावु रासेन्द्रवेष्टात् । अतोऽस्यांवैरसूक्ष्मिङ्गैलोकवक्षोमणं प्रति ॥ १५३ ॥  
 चतुर्मेदेऽपि बोधेऽस्य समुक्तर्णस्तदोदभूत् । ततदावरणीयानां क्षमोपशम्भुमितः ॥ १५४ ॥  
 मतिज्ञानसमुक्तर्णात् कोष्ठुरमादयोऽमवन् । श्रुतज्ञाने<sup>४</sup> विशाङ्गपूर्वविरकादिविस्तरः ॥ १५५ ॥  
 परमावचिसुलक्षणं स सर्वावधिमासवत् । मनःपर्ययबोधे<sup>५</sup> च संप्रापद् विपुला<sup>६</sup> मतिम् ॥ १५६ ॥  
 ज्ञानजुदया तपःशुद्धिरस्यासीदतिरंकिणी । ज्ञानं हि तपसो मूलं यहस्मूलं महालरीः ॥ १५७ ॥

॥ १५८ ॥ कथायरूपी चोरोंके द्वारा उनका रत्नब्रह्मरूपी धन नहीं चुराया गया था क्योंकि वे सदा जागते रहते थे और बार-बार प्रमादरहित होते रहते थे । भावार्थ – लोकमें भी देखा जाता है कि जो मनुष्य सदा जागता रहता है और कभी प्रमाद नहीं करता उसकी चोरी नहीं होती । भगवान् बाहुबली अपने परिणामोंके शोधमें निरत्तर लबलोन रहते थे और प्रमादको पासमें भी नहीं आने देते थे इसलिए कथायरूपी चोर उनके रत्नब्रह्मरूपी धनको नहीं चुरा सके थे ॥ १५९ ॥ वे सदा मौनं रहते थे इसलिए कभी उनका विकथाओंमें आदर नहीं होता था । और उनका मनरूपी दुर्ग अत्यन्त सुरक्षित था इसलिए वह इन्द्रियोंके द्वारा नहीं तोड़ा जा सका था । भावार्थ – वे कभी विकथाएँ नहीं करते थे और पाँचों इन्द्रियों तथा मनको बशमें रखते थे ॥ १६० ॥ उनके मनरूपी विशाल घरमें सदा ज्ञानरूपी दीपक प्रकाशमान रहता था इसलिए ही समस्त पदार्थ उनके ध्येयकोटिमें थे अर्थात् ध्यान करने योग्य थे । भावार्थ – पदार्थोंका ध्यान करनेके लिए उनका ज्ञान होता आवश्यक है, मुनिराज बाहुबलीको सब पदार्थोंका ज्ञान था इसलिए सभी पदार्थ उनके ध्यान करने योग्य थे ॥ १६१ ॥ वे मति और श्रुत ज्ञान-के द्वारा संसारके समस्त पदार्थोंका चिन्तन करते रहते थे इसलिए उन्हें यह जगत् हाथपर रखे हुए अंविलेके समान अत्यन्त स्पष्ट था ॥ १६२ ॥ जो परिषहोंको जीत लेनेसे हेतीप्यमान हो रहे हैं और जिन्होंने इन्द्रियरूपी शश्वतोंको जीत लिया है ऐसे वे बाहुबली कथायरूपी शश्वतोंको छेदकर तपरूपी राज्यका अनुभव कर रहे थे ॥ १६३ ॥ तपश्चरणका बल पाकर उन मुनिराजके योगके निमित्तसे होनेवाली ऐसी अनेक ऋद्धियां प्रकट हुई थीं जिनसे कि उनके तीनों लोकोंमें क्षोभ पैदा करनेकी शक्ति प्रकट हो गयी थी ॥ १६४ ॥ उस समय उनके मतिज्ञान-वरण आदि कर्मोंके क्षमोपशमसे मतिज्ञान आदि चारों प्रकारके ज्ञानोंमें वृद्धि हो गयी थी ॥ १६५ ॥ मतिज्ञानको वृद्धि होनेसे उनके कोष्ठुद्धि आदि ऋद्धियां प्रकट हो गयी थीं और श्रुत ज्ञानके बद्धनेसे समस्त अंगों तथा पूर्वोंके ज्ञानने आदिको शक्तिका विस्तार हो गया था ॥ १६६ ॥ वे अवधिज्ञानमें परमावधिको उल्लंघन कर सर्वविधिको प्राप्त हुए थे तथा मनःपर्यय ज्ञानमें विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानको प्राप्त हुए थे ॥ १६७ ॥ उन मुनिराजके ज्ञानकी शुद्धि होनेसे तपकी शुद्धि भी बहुत अधिक हो गयी थी सो ठीक ही है क्योंकि जिस प्रकार किसी बड़े वृक्षके ठहरनेमें मूल कारण उसकी जड़ है उसी प्रकार तपके ठहरने आविमें मूल कारण ज्ञान है ॥ १६८ ॥

१ मौभवतिनः । २ ज्ञानवृपिकामाः सकाशात् । ३ विचिन्ततः । ४ उद्देति स्म । ५ दावशाङ्गचतुर्षापूर्ववेदित्य-तत्त्विकपणाविस्तरः । ६ बोधि प०, ल० । ७ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानम् ।

तपसीऽग्रेण चोद्योप्रतपसा चालिकर्षितः । स दीपतपसाऽत्यन्तं दिदीपे दीपिमानिव ॥ १४९ ॥  
 सोऽतप्यत तपस्तसं तयो घोरं महत् यत् । तथोत्तराश्ववि प्राप्तमुरकर्षात्यनुक्तमात् ॥ १५० ॥  
 तपोनिरकृतीरेभिः स बन्नी मुनिसत्तमः । चनोपरोधनिर्मुकः करैरिव गमस्तिमान् ॥ १५१ ॥  
 विक्रियाऽष्टतर्या<sup>१</sup> चित्रे प्रापुरासीत्पोवलात् । विक्रिया निरिलां हित्वा तीव्रभस्य तपस्यतः<sup>२</sup> ॥ १५२ ॥  
 प्राप्तीषधद्वेष्यासीत् सुनिधिर्जगते डितः । अमर्त्यन्तेष्व जलादै<sup>३</sup> प्राप्तिष्वात्पुष्करिणः ॥ १५३ ॥  
 'अनाशुषोऽपि तंस्वासीद्' रसद्विः शक्तिमात्रतः । तपोबलसमुज्जूता बलद्विरपि पश्यते ॥ १५४ ॥  
 अक्षीणावस्थः<sup>४</sup> सोऽभूत्प्राप्तक्षीणं ग्रहाशानः (मसः)<sup>५</sup> । सूते हि फलमक्षीणं तपोऽक्षु<sup>६</sup> णमुणसितम् ॥ १५५ ॥  
 निर्द्वृत्तिरध्यात्ममिति निर्विष्य जित्वरः । ध्यानाभ्यासे मनश्चक्षे योगी योगविदां वरः ॥ १५६ ॥  
 क्षमामधोत्तमा भेजे परं भाद्रमार्जवम् । सत्यं शौचं तपस्यागामाकिञ्चन्यं च संयमम् ॥ १५७ ॥  
 व्रह्मचर्यं च धर्मरूप्य ज्ञानस्यैता हि भावनाः । योगसिद्धौ परा<sup>७</sup> सिद्धिमामनन्तीह योगिनः ॥ १५८ ॥

वे महामुनि उग्र, और महाब्रह्म तपसे अत्यन्त कृश हो गये थे तथा दीप्त नामक तपसे सूर्यके समान अत्यन्त देवीप्यमान हो रहे थे ॥ १४९ ॥ उन्होंने तपत्वा और महाघोर नामके तपश्चरण किये थे तथा इनके सिवाय उत्तर तप भी उनके सूब बढ़ गये थे ॥ १५० ॥ इन छड़े-बड़े तपोंसे वे उत्तम मुनिराज ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो मेघोंके आवरणसे निकला हुआ सूर्य ही अपनी किरणोंसे सुशोभित हो रहा हो ॥ १५१ ॥ यद्यपि वे मुनिराज समस्त प्रकारकी विक्रिया अथर्वविकार भावोंको छोड़कर कठिन-तपस्या करते थे तथापि आश्चर्यकी बात है कि उनके तपके बलसे आठ प्रकारकी विक्रिया प्रकट हो गयी थी । भावार्थ – रागद्वेष आदि विकार भावोंको छोड़कर कठिन तपस्या करनेवाले उन बाहुबली महाराजके अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, और वशित्व भए आठ प्रकारकी विक्रिया ऋद्धि प्रकट हुई थीं ॥ १५२ ॥ जिन्हें अनेक प्रकारकी ओषध ऋद्धि प्राप्त है और जो आमर्त्य, इवेल तथा जल्ल आदिके द्वारा प्राणियोंका उपकार करते हैं ऐसे उन मुनिराजकी समीपता जगत्‌का कल्याण करनेवाली थी । भावार्थ – उनके समीप रहनेवाले लोगोंके समस्त रोग नष्ट हो जाते थे ॥ १५३ ॥ यद्यपि वे आहार नहीं लेते थे तथापि शक्ति मात्रसे हो उनके रसऋद्धि प्रकट हुई थी और तपश्चरणके बलसे प्रकट हुई उनकी बल ऋद्धि भी विस्तार पा रही थी । भावार्थ – भोजन करनेवाले मुनिराजके ही रसऋद्धिका उपयोग हो सकता है परन्तु वे भोजन नहीं करते थे इसलिए उनके शक्तिमात्रसे रसऋद्धिका सद्भाव बतलाया है ॥ १५४ ॥ वे मुनिराज अक्षीणसंवास तथा अक्षीणमहानस ऋद्धिको भी धारण कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि पूर्ण रीतिसे पालन किया हुआ तप अक्षीण फल उत्पन्न करता है ॥ १५५ ॥ विकल्परहित चित्तकी वृत्ति धारण करना ही अध्यात्म है ऐसा निश्चय कर योगके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ उन जितेन्द्रिय योगिराजने मनको जीतकर उसे ध्यानके अन्यासमें ल्याया ॥ १५६ ॥ उत्तमशमा, उत्तममादेव, उत्तमआर्जव, उत्तमसत्य, उत्तमशोच, उत्तमसंयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआकिञ्चन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ये दश धर्मध्यानकी भावनाएं हैं । इस लोकमें योगकी सिद्धि होनेपर ही उक्तृष्ण सिद्धि – सफलता – मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है ऐसा योगी लोग मानते हैं ॥ १५७-१५८ ॥

१ छृशीकृतः । २ रविः । ३ मेष । ४ तरणः । ५ अष्टप्रकारा । ६ विकारम् । ७ तपः कुर्वतः । ८ छदिः ।  
 ९ निष्ठोवन । १० स्वेदोत्क्षमलादैः । ११ वनशनक्षतिनः । १२ अमूलवादिः । १३ वालय । १४ महत् ।  
 १५ 'त०' पुस्तके 'महानसः' पाठः सुपाठः इति टिप्पणे लिहितम् । १६ ब्रन्योन्यम् । १७ ध्यानसिद्धज्ञे सति ।  
 १८ मुक्षिम् ।

अवित्यादाग्नं वरैकवाऽन्यत्वान्यशोचताम् । निर्जरास्त्रवसंरोधलोकस्थित्यनुचिन्तनम् ॥ १५९॥  
 धर्मस्याल्यात्मा बोधेनुर्लभत्वं च लक्षयन् । सोऽनुप्रेक्षाचिरि<sup>१</sup> दृश्यौ विशुद्धं द्वादशात्मकम् ॥ १६०॥  
 आज्ञापायौ विपाकं च संस्थानं चातुर्चिन्तयन् । सध्यानमभजन् धर्म्य कर्मादान् परिदातयन् ॥ १६१॥  
 दीपिकायामिदामुभ्यां ध्यानदासै निरीक्षिताः । क्षणं विशीर्णः कर्मादाः कज्जलादाः इवामितः ॥ १६२॥  
 तदेहाद्वासिग्रसरे दिक्षुसेषु परिस्फुरन् । तद्वने गाहाद्यावच्छायात्मा मिवातनोत् ॥ १६३॥  
 तत्प्रदोषान्तविश्वान्ता विश्वद्वा<sup>२</sup> सुग्रजातयः । वज्राचिरं सूर्योर्नान्तैः क्रूरकूरतां अितैः ॥ १६४॥  
 विरोधिनोऽप्यर्था सुकृतिर्भृत्यैर्मामिताः । तस्योपाकृष्टाभसितायाः शशोस्त्वैः भवत्वं सुनेः ॥ १६५॥  
 जरज्ज्वृकमाघ्राय मस्तकं व्याघ्रधेनुका । स्वदावनिर्विदोषं लामर्पीष्यन् स्तन्यमाम्यनः ॥ १६६॥  
 करिणो हरिणशरीरान्वीयुः सह यूथर्पैः । स्वानपानोसुका भेजुः करिणीः मिहपोतकाः ॥ १६७॥  
 कलभान्<sup>३</sup> कलभाङ्गारमुखरान् नखैः खरैः । कण्ठीरवः सृष्टान् कण्ठं नाम्यनमिदैः न यूथर्पैः ॥ १६८॥  
 करिष्यो विसिनीपत्रपुटैः दानीष्यमानयत् । तदोगपीठपर्यन्तभुवः समार्जनेच्छया ॥ १६९॥  
 १० पुष्करैः ११ पुष्करोदस्तैः न्यैर्हस्तैरधिपद्मद्वयम् । स्तन्यवेरमा सुनिं भेजुहो शमकरं तपः ॥ १७०॥  
 उपाङ्गिभोगिना<sup>४</sup> सोर्गविनीलैर्घर्षरुचम्भुविः । विन्यस्तैरर्द्धमायेष नीलैरुच्यलदामकैः ॥ १७१॥

अनित्य, अशारण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्य, आसृत, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ और धर्माल्यात्मत्व इन बारह भावनाओंका उन्होंने विशुद्ध चित्तसे चिन्तवन किया था ॥ १५९-१६०॥ वे आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थानका चिन्तवन करते हुए तथा कर्मोंके अशोंको क्षीण करते हुए धर्मध्यान धारण करते थे ॥ १६१॥ जिस प्रकार दीपिकाके प्रज्वलित होनेपर उसके चारों ओर कज्जलके अंश दिखाई देते हैं उसी प्रकार उनकी ध्यानरूपी दीपिकाके प्रज्वलित होनेपर उसके चारों ओर क्षणभर नष्ट हुए कर्मोंके अंश दिखाई देते थे ॥ १६२॥ सब दिशाओंमें फैलता हुआ उनके शरीरकी दीपिका समूह उस बनको नीलमणि-की कान्तिसे व्याप्त हुआ-सा बना रहा था ॥ १६३॥ उनके चरणोंके समीप विश्वाम करनेवाले मृग आदि पशु सदा विश्वस्त अथवि निर्भय रहते थे, उन्हें सिंह आदि दुष्ट जीव कभी बाधा नहीं पहुँचाते थे क्योंकि वे स्वयं वही आकर अकूर अर्थात् शान्त हो जाते थे ॥ १६४॥ उनके चरणों-के समीप हाथी, सिंह आदि विरोधी जीव भी परस्परका वैर-भाव छोड़कर इच्छानुसार उठते-बैठते थे और इस प्रकार वे मुनिराजके ऐरवर्यको सूचित करते थे ॥ १६५॥ हालकी व्यायो हुई सिंही भेसेके बच्चेका मस्तक सूंघकर उसे अपने बच्चेके समान अपना दूध पिला रही थी ॥ १६६॥ हाथी अपने झुण्डके मुखियोंके साथ-साथ सिंहोंके पीछे-पीछे जा रहे थे और स्तन-के पीनेमें उत्सुक हुए सिंहके बच्चे हथिनियोंके समीप पहुँच रहे थे ॥ १६७॥ बालकपतके कारण मधुर शब्द करते हुए हाथियोंके बच्चोंको सिंह अपने पीने नाखूनेसे उनकी गरदनपर स्पर्श कर रहा था और ऐसा करते हुए उस सिंहको हाथियोंके सरदार बहुत ही अच्छा समझ रहे थे – उसका अभिनन्दन कर रहे थे ॥ १६८॥ उन मुनिराजके ध्यान करनेके आसनके समीपकी भूमिको साफ करनेकी इच्छासे हथिनियों कमलिनीके पतोंका दोना बनाकर उनमें भर-भरकर पानी ला रही थी ॥ १६९॥ हाथी अपने सूँडके अग्रभागसे उठाकर लाये हुए कमल उनके दोनों चरणोंपर रख देते थे और इस तरह वे उनकी उपासना करते थे । अहा,

१ संवर । २ ध्यायति स्म । ३ आज्ञादिव्यापायविचरी । ४ कृशीकुर्वम् । ५ ध्यापाम् । ६ विश्वला । ७ विरोधाः ल०, प०, अ०, स०, ई०, । ८ जरज्ज्वृकम्भुक ल०, ई० । जरत् वृद् । ९ नवप्रसूतव्याघ्री । १० समानम् । ११ पाययति स्म । १२ स्तनकीरम् । १३ मनोज्ज्वनिनिविशेषान् । १४ द्वौ नवी पूर्ववर्ष गमयतः, अम्यमन्दीविद्यर्थः । १५ कमलः । १६ करायोडसः । १७ सपणि शरीरः ।

फणमात्रोद्गता रक्षाम्<sup>१</sup> फणिनः<sup>२</sup> शितयोऽयुतन् । कृताः कृष्णवैरेषीं सुभेरिव पदान्तिके त ॥१७३॥  
रेजुवैनलता नच्चैः शाखाप्रैः कुसुमोऽउवलैः । मुनिं नजन्यो भक्तयेव पुष्पादैनंतिपूर्वकम् ॥१७४॥  
शश्विकासिकुसुमैः शाखावैरनिलाहतैः । बभुवैनकुसुमास्तोषाक्षिकुस्तवचैः हवासकृत् ॥१७५॥  
कलैरण्डिहतोद्गानैः<sup>३</sup> फणिनो नन्तुः किल । उत्कणाः फणरक्षाकुदीप्रैः<sup>४</sup> मोर्गे<sup>५</sup> विवतितैः ॥१७६॥  
पुस्कीकिलकलालापद्धिपिङ्गमातुगनैर्लैः<sup>६</sup> । बधुः अवस्तु पश्चात्सु तद्विषोऽनदिषु<sup>७</sup> सुदुः ॥१७७॥  
महिशा शमिनः<sup>८</sup> शान्तमित्यभूत्वा काननम् । घृते हि महता योगः<sup>९</sup> शममित्यशमात्मसु<sup>१०</sup> ॥१७८॥  
शान्तस्त्रवैनंदन्ति सम वसान्तेऽस्मिन् शकुन्तयः । घोषयन्त इत्यात्यन्तं<sup>११</sup> शान्तमेतत्तरोचनम् ॥१७९॥  
तपोनुभावादस्यैवं प्रशान्तेऽस्मिन् वनाश्रये । विभिषातः<sup>१२</sup> कुतोऽयासीत् कस्यापि न कथञ्चन ॥१८०॥  
<sup>१३</sup> महावास्य तपोयोगजृभितेन महीयसा । बभुवैनदद्वावताः लिंगोऽयनमित्युहः<sup>१४</sup> ॥१८०॥  
गतिस्थलनतो जात्वा योगस्थं तं शुभीश्वरम् । असकुण्डजयामासुरवतीर्यं नमस्त्राः ॥१८१॥  
महिशाऽस्य तपोवीर्यजनितेनालबीयसा । सुहुरासनकम्पोऽभूत्वसूर्जा सुधाशिनाम् ॥१८२॥

तपश्चरण केसी शान्ति उत्पन्न करनेवाला है, ॥१७०॥ वे मुनिराज चरणोंके समीप आये हुए सपोंके काले फणाओंसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो पूजाके लिए नीलकमलोंकी मालाएँ ही बनाकर रखी हों ॥१७१॥ ब्राह्मीके छिद्रोंसे जिन्होंने केवल फण ही बाहर निकाले हैं ऐसे काले सर्प उस समय ऐसे जान पड़ते थे मानो सुनिराजके चरणोंके समीप किसीते नील-कमलोंका अर्ध ही बनाकर रखा हो ॥१७२॥ वनकी लताएँ फूलोंसे उज्ज्वल तथा नीचेको झुकी हुई छोटी छोटी ढालियोंसे ऐसी अच्छी सुशोभित हो रही थीं मानो फूलोंका अर्ध लेकर भक्तिसे नमस्कार करती हुई मुनिराजकी सेवा ही कर रही हों ॥१७३॥ वनके वृक्ष, जिनपर सदा फूल खिले रहते हैं और जो वायुसे हिल रहे हैं ऐसे शाखाओंके अग्रभागोंसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सन्तोषसे बार-बार नृत्य ही करना चाहते हों ॥१७४॥ जिनके फण ऊँचे उठ रहे हैं ऐसे सर्प, अमरोंके शब्दरूपी सुन्दर गानेके साथ-साथ फणाओंपर लगे हुए रत्नोंकी किरणोंसे देवीप्रमाण अपने फणाओंको घुमा-घुमाकर नृत्य कर रहे थे ॥१७५॥ मोर, कोकिलोंके सुन्दर शब्दरूपी डिण्डम बाजेके अनुसार होनेवाले लयके साथ-साथ सपोंके देखते रहते भी बार-बार नृत्य कर रहे थे ॥१७६॥ इस प्रकार अतिशय शान्त रहनेवाले उन मुनिराजके माहात्म्यसे वह वन भी शान्त हो गया था सो ठीक ही है, क्योंकि महापुरुषोंका संयोग क्रूर जीवोंमें भी शान्ति उत्पन्न कर देता है ॥१७७॥ इस वनमें अनेक पक्षी शान्त शब्दोंसे धृष्ट रहे थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो इस बातकी घोषणा ही कर रहे हों कि मह तपोवन अत्यन्त शान्त है ॥१७८॥ उन मुनिराजके तपके प्रभावसे यह वनका आश्रम ऐसा शान्त हो गया था कि यहकि किसी भी जीवको किसीके भी द्वारा कुछ भी उपद्रव नहीं होता था ॥१७९॥ तपके सम्बन्धसे बड़े हुए मुनिराजके बड़े भारी तेजसे तिथंचोंके भी हृदयका अन्धकार दूर हो गया था और अब वे परस्परमें किसीसे द्वीप नहीं करते थे – अहिंसक हो गये थे ॥१८०॥ विद्याधर लोग गति भंग हो जानेसे उनका सङ्क्राव जान लेते थे और विमानसे उत्तरकर ध्यान-में बैठे हुए उन मुनिराजकी बार-बार पूजा करते थे ॥१८१॥ तपकी शक्तिसे उत्पन्न हुए मुनि-राजके बड़े भारी माहात्म्यसे जिनके मस्तक झुके हुए हैं ऐसे देवोंके आसन भी बार-बार कम्पाय-१ वर्षीकविलात् । २ कृष्णाः । ३ नर्तिसुमिष्ठवः । ४-दमीतः ल० । ५ दीते-इ०, ल० । ६ शरीरः ।  
७ तालनिष्ठदः । ८ सर्वेषु । 'कुण्डली गूढपाचक्षुश्वावाः काकोवरः फणो' इत्यमिथानात् । ९ सर्पद्विषः । सयुरा  
इत्यर्थः । १० नर्तिसुमिष्ठवः । ११ यते । १२ संयोगः । १३ क्रूरलबूषेषु । १४ अत्यन्तं प्रसक्षम् । १५ बाधेत्यर्थः ।  
१६ तेजसा । १७ अहिंसकाः ।

विद्याधर्यः कदाचित् क्रोडाहेतोहपागनाः । बलीहदेहामासु<sup>१</sup> सुनेः सर्वाङ्गसंगिनीः ॥१४३॥  
इत्युपास्तु सद्व्यानवलेहूद्देहूः । सूर्योऽस्तु उद्दिमाल्लास्तु<sup>२</sup> रात्र्यामोऽप्तुलोऽस्तु ॥१४४॥  
बरतरानशनस्यात्मे भरतेशेन पूजितः । स भेषे परमउयोतिः केवलाक्षण्यं यदक्षरम् ॥१४५॥  
संक्षिष्टो भरताधीशः सोऽस्मस्तु<sup>३</sup> इति चक्रिक्षु । हृष्णस्य<sup>४</sup> हार्द<sup>५</sup> तेनासीद् तत्पूजाऽपेक्षिः केवलम् ॥१४६॥  
केवलाक्षण्यात् प्राक्त्वं पश्चात् विधिवद् स्वधात् । सपर्या भरताधीशो योगिनोऽस्य व्रस्तस्थीः ॥१४७॥  
‘स्वागत्प्रमाज्ञाधेऽज्या’<sup>६</sup> प्राक्त्वी भरतेशिनः । ‘पात्रास्याऽप्त्यामताऽपीज्या’<sup>७</sup> केवलोत्पत्तिमन्वभूत् ॥  
या कृता भरतेशेन महेऽज्या स्वानुजन्मनः । प्राप्तकेवलम् वैस्य को हि तदृणे ज्ञमः ॥१४९॥  
‘स्वजन्मानुगमो’<sup>८</sup> इत्येको धर्मरागस्तथाऽपरः । जन्मान्तरामुखन्यश्च<sup>९</sup> प्रेमवन्धोऽतिनिर्मरः ॥१५०॥  
‘हृष्णेकशोऽप्यमी मन्त्रिकर्षेऽस्य प्रथोजकाः । तेषां तु सर्वसामग्री को न तुष्णाति सर्वक्षयाम् ॥१५१॥  
सामात्यः समहीपालः<sup>१०</sup> साम्तःपुरुषोहितः । सं बाहुबलियोगीन्द्रं प्रणामाभिराद् सुदा ॥१५२॥

मान होने लगते थे ॥१४२॥ कभी-कभी कीड़ाके हेतुसे आयी हुई विद्याधरियाँ उनके सर्वं शरीर-पर लगी हुई लताओंको हटा जाती थीं ॥१४३॥ इस प्रकार धारण किये हुए सभीधीनधर्म-ध्यानके बलसे जिनके तपकी शक्ति उत्पन्न हुई है ऐसे वे मुनि लेश्याकी विशुद्धिको प्राप्त होते हुए शुक्लध्यानके सम्मुख हुए ॥१४४॥ एक वर्षका उपवास समाप्त होनेपर भरतेश्वरने आकर जिनकी पूजा की है ऐसे महामुनि बाहुबली कभी नष्ट नहीं होनेवाली केवलज्ञानरूपी उत्कृष्ट ज्योतिको प्राप्त हुए । भावार्थ – दीक्षा लेते समय बाहुबलीने एक वर्षका उपवास किया था । जिस दिन उनका वह उपवास पूर्ण हुआ उसी दिन भरतने आकर उनकी पूजा की और पूजा करते ही उन्हें अविनाशी उत्कृष्ट केवलज्ञान प्राप्त हो गया ॥१४५॥ वह भरतेश्वर मुझसे संक्लेशको प्राप्त हुआ है अर्थात् मेरे निमित्तसे उसे दुःख पहुँचा है यह विचार बाहुबलीके हृदयमें विद्यमान रहता था, इसलिए केवलज्ञानने भरतकी पूजाकी अपेक्षा की थी । भावार्थ – भरतके पूजा करते ही बाहुबलीका हृदय निश्चन्त हो गया और उसी समय उन्हें केवलज्ञान भी प्राप्त हो गया ॥१४६॥ प्रसन्न है बुद्धि जिसकी ऐसे सम्भाद् भरतने केवलज्ञानरूपी सूर्यके उदय होनेके पहले और पीछे – दोनों ही समय विधिपूर्वक उन मुनिराजकी पूजा की थी ॥१४७॥ भरतेश्वरने केवलज्ञान उत्पन्न होनेके पहले जो पूजा की थी वह अपना अपराध नष्ट करनेके लिए की थी और केवलज्ञान होनेके बाद जो बड़ी भारी पूजा की थी वह केवलज्ञानकी उत्पत्तिका अनुभव करनेके लिए की थी ॥१४८॥ जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे अपने छोटे भाई बाहुबलीकी भरतेश्वरने जो बड़ी भारी पूजा की थी उसका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥१४९॥ प्रथम तो बाहुबली भरतके छोटे भाई थे, दूसरे भरतको धर्मका प्रेम बहुत था, तीसरे उन दोनोंका अन्य अनेक जन्मोंसे सम्बन्ध था, और चौथे उन दोनोंमें बड़ा भारी प्रेम था इस प्रकार इन चारोंमेंसे एक-एक भी भक्तिकी अधिकताको बढ़ानेवाले हैं, यदि यह सब सामग्री एक साथ मिल जाये तो वह कौन-सी उत्तम क्रियाको पुष्ट नहीं कर सकती अर्थात् उससे कौन-सा अच्छा कार्य नहीं हो सकता ? ॥१५०-१५१॥ सम्भाद् भरतेश्वरने

१ मोष्यामासु । २ प्रकटीभूत । ३ गङ्गाधन । ४ मत् । ५ भुजबलिनः । ६ स्नेहः । ‘प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः’ इत्यभिधानात् । ७ हादेन । ८ भरतपूजापेक्षिः । ९ केवलज्ञानम् । १० निजप्रराधनिवारणार्थी । ११ प्राप्तमवा । १२ पश्चाद्भवा । १३ अत्यधिका । १४ निजज्ञननेन । १५ अनुगमनम् । सहोत्पत्ति रित्यर्थः । १६ – नृवद्वर्ष व०, अ०, स०, प०, इ० । १७ एकीकरणिः । १८ प्रहीपालः सहितः ।

किमय वहुना रहैः कृतोऽर्थः स्वर्णदीजलम् । पाथं रवाचिंषो दीपास्तग्नुलेज्या च मौक्षिकैः ॥१९३॥  
 हचिः<sup>१</sup> पीशूपिष्ठेन भूषो देवद्रुमोशकैः<sup>२</sup> । पुण्याच्च वारिजातादिसुरागसुमनश्चैः ॥१९४॥  
 सरस्वा निधयः सर्वे फलस्थाने निशोजिताः । पूजा रवमर्यामित्यं रवेशो निरवर्तयत् ॥१९५॥  
 सुराक्षासनकम्येन ज्ञाततर्कवलीदयाः । चक्रस्त्र परामिज्यां शतां द्वरपुरस्सराः ॥१९६॥  
 वदुर्मन्दं स्वरुप्यात्तरुधूनन्तुभवः । तदा सुगन्धयो व्राताः स्वर्णुर्नीशीकराहसाः ॥१९७॥  
 मन्द्रं पथोमुचां मार्गे दध्वनुश्च सुरामकाः । पुण्योऽकरो द्विवीड्यनन् कल्पानोकहसंभवः ॥१९८॥  
 रवातप्रमह्योऽस्त्रिनिर्मितं सुरशिल्पिभिः । परार्थ्यमणिनिर्माणमभाद् द्विव्यं च विष्ट्रम् ॥१९९॥  
 स्वयं व्यधूयतास्थोऽस्त्री<sup>३</sup> प्रान्तयोश्चामरोऽकरः । सभावनिश्च तदोम्या पश्ये प्रथितोदया ॥२००॥  
 सुरैरित्यचितः प्रासकेवलर्दिः स योगिराद् । व्यधूतान्मुनिभिर्जुषः<sup>४</sup> शर्वांबोद्धुभिराक्षितः ॥२०१॥  
 वातिकर्मक्षयोऽन्तामुद्वहन् परमेष्टिताम् । विजहार महीं कुरुनां सोऽभिगम्य<sup>५</sup> सुधाशिनाम् ॥२०२॥  
 इत्यं स विश्वद्विश्वं प्रीणयन् स्ववच्छोऽमृतैः । कैलासमध्ये प्राप्त यूतं संनिधिना गुरोः<sup>६</sup> ॥२०३॥

मन्त्रियोंके साथ, राजाओंके साथ और अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियों साथ पुरोहितके साथ उन बाहुबली मुनिराजको बड़े हृष्टसे नमस्कार किया था ॥१९२॥ इस विषयमें अधिक कहाँतक कहा जावे, संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि उसने रत्नोंका अर्घ बनाया था, गंगाके जलकी जलधारा दी थी, रत्नोंकी ज्योतिके लीकल, चढ़ाये थे, ओर्डिनेशन्स लालकी पूजा की थी, अमृतके पिण्डसे नैवेद्य अर्पित किया था, कल्पवृक्षके टुकड़ों ( चूर्णे ) से धूपकी पूजा की थी, पारिजात आदि देववृक्षोंके फूलोंके समूहसे पुष्पोंकी अर्चा की थी, और फलोंके स्थानपर रत्नों-सहित समस्त निधियाँ चढ़ा दी थीं इस प्रकार उसने रत्नभयी पूजा की थी ॥१९३-१९५॥ आसन कम्पायमान होनेसे जिन्हें बाहुबलीके केवलज्ञान उत्पन्न होनेका बोध हुआ है ऐसे इन्द्र आदि देवोंने आकर उनकी उत्कृष्ट पूजा की ॥१९६॥ उस समय स्वर्गके बगीचेके वृक्षोंको हिलानेमें चतुर तथा गंगा नदीकी बूँदोंको हरण करनेवाला सुगन्धित वायु धीरे-धीरे बह रहा था ॥१९७॥ देवोंके नगाड़े आकाशमें गम्भीरतासे बज रहे थे और कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुआ फूलों-का समूह आकाशमें पड़ रहा था ॥१९८॥ उनके ऊपर देवरूपी कारीगरोंके द्वारा बनाया हुआ रत्नोंका छब सुशोभित हो रहा था और नीचे बहुमूल्य मणियोंका बना हुआ द्विव्य सिंहासन देवीप्यमान हो रहा था ॥१९९॥ उनके दोनों ओर ऊँचाईपर चमरोंका समूह स्वयं ढूल रहा था तथा जिसका ऐश्वर्य प्रसिद्ध है ऐसी उनके योन्य सभाभूमि अर्थात् गन्धकुटी भी बनायी गयी थी ॥२००॥ इस प्रकार देवोंने जिनकी पूजा की है और जिन्हें केवलज्ञानरूपी कृद्धि प्राप्त हुई है ऐसे वे योगिराज अनेक मुनियोंसे घिरे हुए इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रों-से घिरा हुआ चन्द्रमा ही हो ॥२०१॥ जो वातियाकर्मके क्षयसे उत्पन्न हुई अहंत परमेष्टी-की अवस्थाको धारण कर रहे हैं तथा इसीलिए देव लोग जिनकी उपासना करते हैं ऐसे भगवान् बाहुबलीने समस्त पूर्यिकोंमें विहार किया ॥२०२॥ इस प्रकार समस्त पदार्थोंको जानतेक्ले बाहुबली अपने वचनरूपी अमृतके द्वारा समस्त संसारको सन्तुष्ट करते हुए, पूज्य पिता भगवान् वृषभदेवके सामीप्यसे पवित्र हुए कैलास पर्वतपर जा पहुँचे ॥२०३॥

१ अहः । २ हरिचन्द्रनशकर्लः । ३ इन्द्र । ४ उभयपाइर्वयोः । ५ सेवितः । ६ आराध्यः । ७ वृक्षमस्य ।

मालिनी

सकलनृपसमाजे<sup>१</sup> दृष्टिमलास्तुयुद्धे-  
विजितभरतकीतिर्थः प्रब्रह्माज मुक्त्वै ।  
कृष्णसिव विगणत्य प्राप्य साक्षात्यभारं  
चरमतनुधरणामपर्णीः सोऽवताद् चः ॥२०४॥  
भरतविजयलक्ष्मीजर्तिवै कृष्णस्तुर्था  
यमिनममिसरस्ती क्षत्रियाणां समक्षम् ।  
चिरतस्मवै भूतापत्रपापै त्रमासी-  
दधिगतगुरुमार्गः सोऽवताद् दोर्बली चः ॥२०५॥  
स जयति जयलक्ष्मीसंगै माशामवस्थां  
विदधदधिकथामा संनिधौ पार्थिवानाम् ।  
सकलजगद्गारव्यासकीर्तिस्तपस्या<sup>२</sup>-  
ममजत यशसे यः सूनुरादस्य धातुः ॥२०६॥  
जयति मुजवलीशो बाहुबीर्यै स वस्य  
प्रथितमसवद्ध्रेष्ठ क्षत्रियाणां निशुद्धे ।  
मरतनृष्टिनामां यस्य नामाक्षरणि  
स्मृतिपथसुपयान्ति<sup>३</sup> प्राप्य युद्धं तुमन्ति त्रेषु इति ॥२०७॥  
जयति भुजगवक्ष्मो हृष्टान्तजिर्यदूरराजिः<sup>४</sup>  
प्रशममसकृदापत् प्राप्य पादौ यदीयौ ।  
सकलसुवनमान्यः सेवरखीकराप्रो-  
दधिकवितरवीहृषेष्टितो दोर्बलीशः ॥२०८॥

जिन्होंने समस्त राजाओंकी सभामें दृष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध और जलयुद्धके द्वारा भरत-की समस्त कीति जीत ली थी, जिन्होंने बड़े भारी राज्यके भारको तृणके सभान तुच्छ समक्षकर मुक्ति प्राप्त करनेके लिए दीक्षा धारण की थी और जो चरमशरीरियोंमें सबसे मुख्य थे ऐसे भगवान् बाहुबली तुम सबकी रक्षा करें ॥२०४॥ सब क्षत्रियोंके सामने भरतकी विजय-लक्ष्मी देवीप्यमान चक्रकी मूर्तिके बहानेसे जिन बाहुबलीके समीप गयी थी परन्तु जिनके द्वारा सदाके लिए तिरस्कृत होकर लज्जाका पात्र हुई थी और जिन्होंने अपने पिताका मार्ग (मुनिमार्ग) स्वीकृत किया था वे भगवान् बाहुबली तुम सबकी रक्षा करें ॥२०५॥ जो अनेक राजाओंके सामने सफल हुई अयलक्ष्मीके समागमकी आशाको धारण कर रहे थे, सबसे अधिक तेजस्वी थे, जिनकी कीर्ति समस्त जगत्रूपी घरमें व्याप्त थी और जिन्होंने वास्तविक यशके लिए तप धारण किया था वे आदिष्ट्वा भगवान् वृषभदेवके पुत्र सदा जयवन्त हों ॥२०६॥ जिनकी भुजाओंका बल क्षत्रियोंके सामने भरतराजके साथ हुए मल्लयुद्धमें प्रसिद्ध हुआ था, और जिनके नामके अक्षर स्मरणमें आते ही प्राणियोंके समूहको पवित्र कर देते हैं वे बाहुबली स्वामी सदा जयवन्त हों ॥२०७॥ जिनके चरणोंको पाकर सर्पोंके मैतृके उच्छ्वाससे निकलती हुई विषकी अग्नि बार-बार शान्त हो जाती थी, जो समस्त लोकमें मान्य हैं, और जिनके शरीरपर फैली हुई लताओंको विद्याधरियों अपने हाथोंके अग्रभागसे हटा देती थीं वे बाहुबली स्वामी

१ समझे । २ भूक्षण जवक्त् । ३ भुजवलिना अवधीरता । ४ लज्जाभशजनम् । ५ संगवाङ्गाम् । ६ तप इत्यर्थः । ७ सह । ८ उपागतानि भूत्वा । ९ विषाग्निः ।

जथति भरतराजप्राज्ञमैल्यप्रद्वौ-

पल्लुलितमस्तु च एवाप्य सतः ।

## भुजगकुलकला पैराकलैन्स कलाएं

धृतिबलकस्ति यो योगभूमैव भंजे ॥ २०५ ॥  
शिलिभिरलिकला भैरामज्ज्ञ लक्षणमात्रः

३५१ विहितमुजविटको मुद्दाजीवेली तार्थः ।

जलधरयरिरोधाममूर्द्य भूधः

अथमपुष्टदन्तनो दोषलीयः स नोऽस्यात् ॥२१०॥  
स जयति हिमकाले चो हिमानीपर्वतः

विष्णु द्वारा लिखित

मध्यपनस्तिलीं धैर्यं श्रु धौतोऽस्तमाहे

खरघृणि किरणानप्युप्ताकाले विषेदः ॥ २११ ॥

जगति 'जयितमेन योगिन् योगिवर्ये-

रधिगतमहिमाने मानितं॑ मानवीयः

समर्थि इदि निताम्ब यः स शान्तान्तराम् १०

इत्यापेभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्टुलक्षणमहापूर्णालक्षणे

मुजबलिजलमस्तृदृष्टियज्ञविजयदीप्ताकेवलोत्पत्तिष्ठर्णनं नाम पदक्रियाचासं पूर्वे ॥ ३६ ॥

सदा जयवन्त हों ॥२०८॥ भरतराजके कँचे मुकुटके अग्र भागमें लगे हुए रत्नोंसे जिनके चरण-  
के नखरूपी चन्द्रभा अत्यन्त चमक रहे थे, जो धैयं और बलसे सहित थे तथा जो इसलिए ही  
क्षेत्रको प्राप्त हुए सर्वोंके समूहसे कभी आकुलताको प्राप्त नहीं हुए थे वे आदि ब्रह्मा भगवान्  
वृषभदेवके पुत्र बाहुबली योगिराज सदा जयवन्त रहें ॥२०९॥ अमरोंके समूहके समान काले,  
भुजाओं तक लटकते हुए तथा जिनका अग्रभाग दैड़ा हो रहा है ऐसे मस्तकके बालोंसे जिनकी  
भुजाओंका अग्रभाग ढक गया है और इसलिए ही जो मेघोंके आवरणसे मलिन शिखरबाले  
पर्वतकी पूर्ण शोभाको पुष्ट कर रहे हैं वे भगवान् बाहुबली हम सबको रक्षा करें ॥२१०॥  
जो शीतकालमें बर्फसे ढके हुए कँचे शरीरको धारण करते हुए पर्वतके समान प्रकट होते थे,  
वर्षाक्षितुमें नवीन मेघोंके जलके समूहसे प्रक्षालित होते थे – भीगते रहते थे और ग्रीष्मकालमें  
सूर्यकी किरणोंको सहन करते थे वे बाहुबली स्वामी सदा जयवन्त हों ॥२११॥ जिन्होंने  
अन्तरंग-बहिरंग शशुओंपर विजय प्राप्त कर ली है, बड़े-बड़े योगिराज ही जिनकी महिमा  
जान सकते हैं, और जो पूज्य पुरुषोंके द्वारा भी पूजनीय हैं ऐसे इन योगिराज बाहुबलीको  
जो पुरुष अपने हृदयमें स्मरण करता है उसका अन्तरात्मा शान्त हो जाता है और वह शीघ्र  
ही जिनेन्द्रभगवान्की अजय्य ( जिसे कोई जीत न सके ) विजयलक्ष्मी – मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त  
होता है ॥२१२॥

इस प्रकार आप नाम से प्रसिद्ध भगवज्ज्ञन सेना आर्य प्रणीति त्रिधृष्टि लक्षण महापुराण संग्रह के भाषानुशासन में बहुबली का जल-युद्ध, मर्ल-युद्ध और नेत्र-युद्ध में विजय प्राप्त करना, दीक्षा वारण करना, और केवल शान उत्पन्न होने का वर्णन करने वाला छत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ।

१ कृष्णः । २ आच्छादितवाऽनुबलभीः । ३ वक् । ‘अविरुद्धं कुटिलं भुग्नं वेलिकं वक्सित्यपि’ इत्यभिषानात् ।  
४ हिमसंहतिष्ठितम् । ‘हिमानी हिमसंहतिः’ इत्यभिषानात् । ५ श्रावृद्धकाले । ६ सूर्यः । ७ सहति सम् ।  
८ अयशीक्षण् । ९ पूजितम् । १० उपवास्त्वविस्तः ।

सप्तशतम् पर्व

Wingfield, John A., 1872-1947, author

अय निर्वर्तिताशेषदिग्जयो भृत्येभ्रः । दुर्ल सकेतमुलकेतु प्राविक्षत् परवा लिया ॥१॥

<sup>३</sup>सप्तास्यै न पशाद्वैरविवेकः कृतो मुदा । <sup>४</sup>चामुरलज्जय श्रीहते प्रथमो सुवनेषिति ॥ २ ॥

तमस्य वृषभानुलोकयना हृता हुदा । यातुराद्यन्तार्थं त्रिपुरा । तमस्य वृषभानुलोकयना हृता हुदा । यातुराद्यन्तार्थं त्रिपुरा ।

प्रायः अभियोगे वर्तन्ते विभिन्ने प्रत्येकितः । स सबैं जापि शीर्थामुखं सारादि शब्दो नूपैः ॥५॥

<sup>१</sup> तारामिलिका द्वारा दिया गया। १५८५ में इसको अधिकारी ने उत्तराखण्ड के प्रशासनिक समिति को दिया था।

तथाऽमायनः सत्त्वविद्यनाऽलक्षणाऽचराद् । सर्वविजयवाचादः ब्रह्मुक्तः सामरूपः ॥  
सीरु सम्भव दिले परिणिः सम्भवः । सीरु सर्पिनो होकः परामादासंपदा ॥ १५

<sup>१</sup> अप्युपात्र सम्भवोऽप्युपात्रोऽप्युपात्रोऽप्युपात्रः । अप्युपात्रिभिर्विनोदोऽप्युपात्रोऽप्युपात्रः । ॥४॥

तथाऽनन् महाधारा भवद्विषया भवनकाः । प्रसुरुद्यावशनवादा यसा धारयः कृ

आनाम्बूद्ध्यो महाभेदस्तपेषाभेदता सुहुः । सगातावाधरारक्षः तथा प्रसदमण्डप ॥२॥

**मूर्धान्निषिद्धः** प्राप्तमिषेकस्यास्याजनि शुतिः । भैरवाधिकाभिषेकस्य भाकोन्द्राकृष्णभैरवः ॥१॥

गङ्गासिन्धु सरिद्यो लाक्षतेर्तीर्थवारिमि । अभ्यैक्षिणी तमभ्येत्य इन्द्रभूक्तारसभृतः ॥ ३४ ॥

कृताभियेकमैनं च नृपासनमधिष्ठितम् । १० राणवद्वामरा भेजुः प्रणवस्त्रणीमौलिनिः ॥ ११ ॥

अथानन्तर जिसने समस्त दिव्यजय समाप्त कर लिया है ऐसे भरते

एक लड़ाई में फड़ा रही है। ऐसे असोध्यात्मकरमें बड़े वैभवके साथ प्रवेश किया।

जयसे उत्पन्न हुई आपकी लक्ष्मी संसारमें अतिशय वृद्धि और प्रसिद्धिको प्राप्त होती रहे यही बार कर बड़े-बड़े राजाओंने उस अयोध्या नगरमें हृषके साथ महाराज भरतका अभिषेक किया था ॥२॥ हे देव, आप दीर्घजीवी होते हुए चिरकाल तक पृथिवीका राज्य करें, इस कार कहते हुए अन्तःपुर तथा पुरीहितोंके साथ नगरके लोगोंने उनका अभिषेक किया था ॥३॥ जो विधि भगवान् वृषभदेवके राज्याभिषेकके समय हुई थी, तीर्थोंका जल इकट्ठा करना एवं वह सब विधि महाराज भरतके अभिषेकके समय भी राजाओंने की थी ॥४॥ देवोंके साथ-साथ राजाओंने भगवान् वृषभदेवके समान ही भरतेश्वरका अभिषेक किया था, उसी प्रकार परिवारके साथ-साथ राजाओंका सत्कार किया गया था, और उसी प्रकार दानमें दी हुई वृत्तिसे सब लोग सन्तुष्ट किये गये थे ॥५॥ जिनके शब्दोंने क्षेत्रित हुए समुद्रके शब्दको तिस्कृत कर दिया था ऐसे बड़े-बड़े शब्दोंबाले मांगलिक नगाड़े उसी प्रकार बजाये गये थे ॥६॥ उसी प्रकार आनन्दकी महाभेरियाँ बार-बार बजायी जा रही थीं और आनन्दमण्डपमें गीतकी विधि भी उसी प्रकार प्रारम्भ की गयी थी ॥७॥ मेर पर्वतपर इन्द्रोंके द्वारा अभिषेक हुए आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेवकी जैसी कान्ति हुई थी उसी प्रकार राजाओंके द्वारा भिषेकको प्राप्त हुए महाराज भरतकी भी हुई थी ॥८॥ गंगा-सिन्धु नदियोंकी अषिष्ठानी गंगा-सिन्धु नामकी देवियोंने आकर रत्नोंके भूंगारोंमें भरे हुए अक्षत सहित तीर्थंजलसे भरतका भिषेक किया था ॥९॥ जिनका अभिषेक समाप्त हो चुका और जो राजसिंहासनपर हुए हैं ऐसे महाराज भरतकी अनेक गणबद्धदेव अपने भणिमयी मुकुटोंको नवान्वाकर

१ साकेतप्रथमः । २ चक्रिणः । ३ चतुर्दिक्षा भवा जयलक्ष्मीः । चातुर्हस्त-ल०, ल०, प०, स०, इ० । ४ यजु

५ सम्भव । ६ यथा द्रुष्टभोजभिषिक्तः । एवमृतरत्नापि योज्यम् । ७ चर्ममङ्गलरक्षा । ८ ज्ञानवक्त्रं च

९ अक्षराधारेश।

୧୮୫୨

हिमवद्विजयार्थेत्रौ मागधाद्याश्च देवताः । खेचरश्चेभयश्चेष्ठोस्तं नेमुनेन्नमौलयः ॥१२॥  
 सोऽभिविक्षोऽपि नोदिसको बभूव तृपसत्तमैः । महतां हि मनोशृणिनैस्तेकैपरिक्षिभगी ॥१३॥  
 चामैर्वैर्विमानोऽपि नैमिद्वृतिमगाद् विभुः । भ्रातृष्वसंविमना श्रीरितीहानुशयानुराः ॥१४॥  
 दोर्वलिभ्रानुसंघर्षत् नास्य तेजो विकर्षितम् । प्रस्तुतोऽकर्षितेजो वा घृष्टस्य निकर्षोपले ॥१५॥  
 निष्कण्ठकमिति प्राप्य साम्राज्यं भरताधिपः । वभौ भास्त्रानिवोदिक्षप्रतापः शुद्धमण्डलः ॥१६॥  
 क्षेमैकतानता भेदुः प्रजासत्सिमन् सुराजनि । योगक्षेमौ विसन्वाने मन्वानाः स्वां सनात्यसाम् ॥१७॥  
 यथास्वं संविभाष्यामी संसुक्ता निधयोऽसुना । संभोगः संविभागश्च फलमर्थार्जिने दूषम् ॥१८॥  
 रजान्त्वपि यथाकामं निविष्टानि निधीशिना । रजानि ननु तान्येष यानि वास्त्वुपयोगिताम् ॥१९॥  
 भनुश्चक्षुतामाप्यः षट्खण्डभरताधिपः । राजराजोऽधिराट् सञ्चाहित्यस्योद्दोषितं यशः ॥२०॥  
 नन्दनो वृषभेषास्य भरतः शारमातुरः । इत्यस्य रोदसी व्याप शुभा कीर्तिरनश्चरी ॥२१॥  
 कीटक् परिच्छुदस्तस्य विमवश्चक्षितिनः । इति प्रभवशादस्य विमदोदेशकीर्तनम् ॥२२॥  
 गलम्बदजलास्तस्य गजाः सुरगजोपमाः । लक्षाइचतुरशीसिस्ते रदैवद्वैः<sup>१</sup> सुक्लितैः ॥२३॥

तेवा कर रहे थे ॥११॥ त्रिमवान् और विजयार्थं पर्वतके अधीश्वर हिमवान् तथा विजयार्थ-देव, मागध आदि अन्य अनेक देव, और उत्तर-दक्षिण श्रेणीके विद्याधर अपने मस्तक शुका-शुकाकर उन्हें नमस्कार कर रहे थे ॥१२॥ अनेक अच्छे-अच्छे राजाओंके द्वारा अभिषिक्त होनेपर भी उन्हें कुछ भी अहंकार नहीं हुआ था सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी मनोवृत्ति अहंकारका स्पर्श नहीं करती ॥१३॥ यद्यपि उनके ऊपर चमर ढुलाये जा रहे थे तथापि वे उससे सन्तोषको प्राप्त नहीं हुए थे क्योंकि उन्हें निरन्तर इस बातका पछतावा हो रहा था कि मैंने अपनी विभूति भाइयोंको नहीं बाँट पायी ॥१४॥ भाई बाहुबलीके संघर्षसे उनका तेज कुछ कम नहीं हुआ था किन्तु कसौटीपर धिसे हुए सोनेके समान अधिक ही हो गया था ॥१५॥ इस प्रकार निष्कण्ठक राज्यको पाकर महाराज भरत उस सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहे थे जिसका कि प्रताप बढ़ रहा है और मण्डल अत्यन्त शुद्ध है ॥१६॥ योग ( अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति करना ) और क्षेम ( प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा करना ) को फैलानेवाले उन उत्तम राजा भरतके विद्यमान रहते हुए प्रजा अपने आपको सनात्समक्षती हुई कुशल मंगलको प्राप्त होती रहती थी ॥१७॥ महाराज भरतने निधियोंका यथायोग्य विभाग कर उनका उपभोग किया था सो ठीक ही है क्योंकि स्वयं सम्भोग करना और दूसरेको विभाग कर देना ये दो ही बन कमानेके मुख्य फल हैं ॥१८॥ निधियोंके स्वामी भरतने रत्नोंका भी इच्छानुसार उपभोग किया था सो ठीक ही है क्योंकि वास्तवमें रत्न वही हैं जो उपयोगमें आवें ॥१९॥ यह सोलहवीं भनु है, चक्रवर्तियोंमें प्रथम चक्रवर्ती है, षट्खण्ड भरतका स्वामी है, राजराजेश्वर है, अंधिराट् है और सम्राट् है इस प्रकार उसका यश उद्धोषित हो रहा था ॥२०॥ यह भरत भगवान् वृषभदेवका पुत्र है और इसकी माताके सौ पुत्र हैं इस प्रकार इसकी कभी नष्ट नहीं होनेवाली उज्ज्वल कीर्ति आकाश तथा पृथिवीमें व्याप्त हो रही थी ॥२१॥ उस चक्रवर्ती-का परिवार कितना था ? और विभूति कितनी थी ? राजा श्रेणिकके इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए शीतमस्वामी उसकी विभूतिका इस प्रकार वर्णन करने लगे ॥२२॥ महाराज भरतके, जिनके गण्डस्थलसे भद्ररूपी जल भार रहा है, और जो जड़े हुए सुसज्जित दाँतोंसे सुझो-

<sup>१</sup> उत्तरेकः अहंकारवान् । गर्वालिङ्गिनी । २ सुजम् । ३ अनुभुत्तानि । ४ वेणिप्रश्नवशात् । ५ रदैः उपलक्षिताः । ६ स्वर्णकटककण्डैः ।

दिव्यरवविनिर्णयथास्तावन्<sup>१</sup> पूर्व हि । मनोवायुजवा: सूर्यस्यप्रस्पर्धिरहसः<sup>२</sup> ॥२४॥  
 कोटयोऽष्टादशाभानां भूजलाम्बरचारिणाम् । यश्चुराग्राणि औतानि पूर्तेष्विषयगाः<sup>३</sup> जलैः ॥२५॥  
 चतुर्भिरधिकाशीति: कोटयोऽस्य पदात्यः । येषां सुभद्रसंमदें निरुद्धं<sup>४</sup> पुरुषवत्तम्<sup>५</sup> ॥२६॥  
 वज्ञास्थिवन्धनं<sup>६</sup> वाज्ञवैलयैवेष्टिते वपुः । वज्ञनाराचनिर्भिन्नम्<sup>७</sup> भेदमववन् प्रभोः ॥२७॥  
 सप्तसप्तविभक्ताः<sup>८</sup> वृत्तवृत्तं<sup>९</sup> सुप्तहन्ति<sup>१०</sup> । वपुः सुन्दरमस्यासीलं संस्थानेनादिना विभोः ॥२८॥  
 निष्टसकनकच्छाय सञ्चतुष्टिलक्षणम् । रुद्रवै व्यञ्जनेस्तस्य तिसर्गंसुभगं वपुः ॥२९॥  
 शारीरं यज्ञ यावद् वलं पट्टवृक्षभूभुजाम् । ततोऽधिकतरं तस्य बहामासीद् वर्णावसः ॥३०॥  
 शासनं तस्य चक्राङ्गमास्त्रिन्दीरनिवारितम् । शिरोभिरुद्रमारुद्विक्तमैः पृथिवीश्वरैः ॥३१॥  
 द्वाशिशमौलिकदानां सहस्राणि महीशिताम्<sup>११</sup> । कुलाच्छ्लैरिवाद्रीन्द्रः स रेजे देवः परिष्कृतः ॥३२॥  
 तावन्येव सहस्राणि देशानां सुनिवेशिनाम् । वैरलंकृतमाभानि चक्रभृक्षेत्रमायतम् ॥३३॥  
 कलाभिजात्यभृपक्षा देवस्तावत्प्रमास्तस्रातः । रूपलाघातकान्तीनां याः शुद्धाकरभूमयः ॥३४॥  
 म्लेच्छराजादिभिर्द्वास्तावत्तयो नुपवल्लभाः । अप्सरःसंकथाः क्षोणी यकाभिरवसारिताः ॥३५॥  
 अवहदाव्य सावन्त्यस्तन्ययः कोमलविग्रहाः । मदनोहीपनैर्यासां इष्टिवाणिंजितं जगत् ॥३६॥

भित है ऐसे ऐरावत हाथीके समान चौरासी लाख हाथी थे ॥२३॥ जिनका वेग भन और वायुके समान है अथवा जिनकी तेज चाल सूर्यके साथ स्पर्धा करनेवाली है ऐसे दिव्य रत्नोंके बने हुए उतने ही अर्थात् चौरासी लाख ही रथ थे ॥२४॥ जिनके ग्वरोंके अग्रभाग पवित्र गंगा-जलसे धुले हुए हैं और जो पृथिवी, जल तथा आकाशमें समान रूपसे चल सकते हैं ऐसे अठारह करोड़ थोड़े हैं ॥२५॥ अनेक योद्धाओंके मर्दन करनेमें जिनका पुरुषार्थ प्रसिद्ध है ऐसे चौरासी करोड़ पैदल सिपाही थे ॥२६॥ महाराज भरतका शरीर वज्रकी हड्डियोंके बन्धन और वज्रके ही करोड़ थोड़े से बेहित था, वज्रमय कीलोंसे कीलित था और अमेघ अर्थात् भेदन करने योग्य नहीं था । भावार्थ – उनका शरीर वज्रवृपभनाराचसंहननका धारक था ॥२७॥ उनका शरीर चतुरसूथा – चारों ओरसे मनोहर था, उसके अंगोपांगोंका विभाग समानरूपसे हुआ था, अंगोंकी मिलावट भी ठीक थी और समचतुरसू नामके प्रथम संहननसे अत्यन्त सुन्दर था ॥२८॥ जिसकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान थी और जिसपर चौसठ लक्षण थे ऐसा उसका स्वभावसे ही सुन्दर शरीर तिल आदि व्यंजनोंसे बहुत ही सुशोभित हो रहा था ॥२९॥ छहों खण्डके राजाओंका जो और जितना कुछ शारीरिक बल था उससे कहीं अधिक बल उस बलवान् भरतके शरीरमें था ॥३०॥ जिसका चक्र ही चिह्न है और समुद्रपर्यन्त जिसे कोई नहीं रोक सकता ऐसे उसके शासनको बड़े-बड़े पराक्रमको धारण करनेवाले राजालोग अपने शिरपर धारण करते थे ॥३१॥ उनके बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा थे, उन राजाओंसे बेहित हुए महाराज भरत कुलाचलोंसे घिरे हुए सुमेह पर्वतके समान सुशोभित होते थे ॥३२॥ महाराज भरतके अच्छी-अच्छी रचनावाले बत्तीस हजार ही देश थे और उन सबसे सुशोभित हुआ चक्रबर्तीका लम्बा-चौड़ा क्षेत्र बहुत ही अच्छा जान पड़ता था ॥३३॥ उनके उतनी ही अर्थात् बत्तीस हजार ही देवियाँ थीं जो कि उच्च कुल और जातिसे सम्पन्न थीं तथा रूप लावण्य और कान्तिकी शुद्धखानिके समान जान पड़ती थीं ॥३४॥ इनके सिवाय जिन्होंने पृथिवीपर अप्सराओंकी कथाओं-को उतार लिया था ऐसी म्लेच्छ राजा आदिकोंके द्वारा दी हुई बत्तीस हजार प्रिय रानियोंथीं ॥३५॥ इसी प्रकार जिनका शरीर अत्यन्त कोमल था और कामको उत्तेजित करने-

१ चतुरशीसिलक्षा एव । २ वेगः । ३ गङ्गा । ४ प्रसिद्धम् । ५ पौष्ट्रम् । ६ वधनैर्वा –ल० । ७ कीलितम् ।  
 ८ मनोजाम् । ९ सुमंबद्धम् । १० भूभृजाम् । ११ कुलजारथभि –ल० ।

ପ୍ରାଚୀନ କବିତା ଓ ମହାକବିଦଙ୍କର ଜୀବନ ଓ କାମକାଳୀଙ୍କରିତା

नर्यांशुकुसुभोद्देवरार्थैः पाणिपल्लवैः । तास्तन्त्रयोः सुजशास्त्रमिमैऽजुः कल्पलतात्रियम् ॥३७॥  
 स्तनात्मकुट्टमलैरास्त्रपङ्कजैश्च चिकासिमिैः । अव्विन्द्य हृषि ता रेणुमंदनावायभूमिकाैः ॥३८॥  
 मन्ये पात्राणि गात्राणि तासां कामग्रहोच्छितौ । पदावेशवशादेषैः दशां प्राप्तोऽतिवर्तीम् ॥३९॥  
 शङ्केैः निशातपात्राणाज्ञानासां मनोभुवः । एत्रोपारुद्धैः तैऽधृण्यैः स्वैरविद्यत् कामिनः इर्हैः ॥४०॥  
 सर्वं भवेषुधी जग्ने तासां भद्रनधनिवनः । कामस्यादोहनिःश्रेणीैः स्थानीयाबूद्धपङ्ककौ ॥४१॥  
 कटी कुटी मनोजस्य काञ्चीसालकृताकृतिः । नाभिरासां गभीरका कूपिका चित्तजन्मनः ॥४२॥  
 मनोभुवोऽतिष्ठृद्धस्य मन्येऽवष्टम्यै वहिका । रोमराजिः स्तनी आसां कामरत्नकरणदक्षौ ॥४३॥  
 कामपात्रायतौ वाहु शिरीचोद्गमकोमलौ । कामस्त्रोच्छवलितैः कण्ठः सुकण्ठीसां मनोहरः ॥४४॥  
 सुखं रतिसुखागामप्रसुखंैः सुखवधनम्ैः । वैराग्यरससंगस्य तासां च दक्षानच्छदृः ॥४५॥  
 एगिदलासाः पात्रासासां कर्णान्तौ लक्ष्यते गलौ । भूवलुरी धनुर्धिरिजिगीषोः पुण्यधनिनः ॥४६॥  
 कलाटाभोगभेदासां मन्ये वाहालिकांैः स्थलम् । अवकल्पुपत्रेतिष्ठौैः मोगकल्पुकचारिणः ॥४७॥  
 १२ अलकाः कामकृथ्याहेैः शिक्षावैः॒॑ परिषुकिताः॒॑ । हुक्षिताः॒॑ केशवसुर्यो॒॑ भद्रस्येव वाग्यराः॒॑ ॥४८॥

वाले जिनके नेत्ररूपी बाणोंसे यह समस्त संसार जीता गया था ऐसी बत्तीस हजार रानियाँ और भी उनके अन्तःपुरमें थीं ॥३६॥ वे छियानबे हजार रानियाँ नखोंकी किरणरूपी कूलों-के खिलनेसे, कुछ-कुछ लाल हथेलीरूपी पल्लवोंसे और भुजारूपी शाखाओंसे कल्पलताकी शोभा धारण कर रहीं थीं ॥३७॥ कामदेवके निवास करनेकी भूमिस्थरूप वे रानियाँ स्तनरूपी कमलोंकी बोडियोंसे और खिले हुए मुखरूपी कमलोंसे कमलिनियोंके समान सुशोभित हो रही थीं ॥३८॥ मैं समझता हूँ कि उन रानियोंके शरीर कामरूपी पिशाचकी उन्नतिके पात्र थे क्योंकि उनके आवेशके बशसे ही यह कामदेव सबको उल्लंघन करनेवाली विशाल अवस्थाको प्राप्त हुआ था ॥३९॥ अथवा मुझे यह भी शंका होती है कि उन रानियोंके नस, कामदेवके बाण पैने करनेके पाषाण थे क्योंकि वह उन्हींपर धिसकर पैने किये हुए बाणोंसे कामी लोगों-पर प्रहार किया करता था ॥४०॥ यह भी सच है कि उनकी जंधाएँ कामदेवरूपी धनुष्ठारीके बड़े-बड़े तरकस थे और ऊरुण्ड ( घुटनोंसे ऊपरका भाग ) कामदेवके चढ़नेकी नसेनीके समान थे ॥४१॥ करधनीरूपी कोटसे घिरी हुई उनकी कमर कामदेवकी कुटीके समान थी और उनकी नामि कामदेवकी गहरी कूपिका ( कुइयाँ ) के समान जान पड़ती थी ॥४२॥ मैं मानता हूँ कि उनकी रोमराजि कामदेवरूपी अत्यन्त बृद्ध पुरुषके सहारेकी लकड़ी थी और उनके स्तन कामदेवके रत्न रखनेके पिटारे थे ॥४३॥ शिरीषके फूलके समान कोमल उनकी दोनों भुजाएँ कामदेवके पाषाके समान लम्बी थीं और अच्छे कण्ठवाली उन रानियोंका मनोहर कण्ठ कामदेवके उच्छ्वासके समान था ॥४४॥ उनका मुख रति ( प्रीति ) रूपी सुखका प्रधान भवन था और उनके होंठ वेराग्यरसकी प्राप्तिके भुखबन्धन अर्थात् द्वार बन्द करनेवाले कपाट थे ॥४५॥ उन रानियोंके नेत्रोंके कटाक्ष विजयको इच्छा करनेवाले कामदेवके बाणोंके समान थे, कानके अन्तभाग उसके लक्ष्य अर्थात् निशानोंके समान थे और भौहरूपी लता धनुषकी लकड़ीके समान थी ॥४६॥ मैं समझता हूँ कि उन रानियोंके ललाटका व्रिस्तार इष्टभोग रूपी गेंदसे खेलनेवाले कामदेवरूपी राजाके खेलनेका मानो मैदान ही हो ॥४७॥ उनके

१ अक्री । २ शाक्तां करोमि । ३ प्राप्त । ४ सदृशी हत्यर्थः । ५ आधार । ६ जीवितम् । ७ प्रकृष्टहृदारम् । ८ पीनाहः । 'पीनाहो मुखबन्धनमस्य यत्' हत्यभिषानात् । ९ रवनच्छदः—ल० । १० सेतुः । 'सेतुराली स्त्रिया पुमान्' । ११ हृष्ट्रीया एव कान्तुक । १२ चूर्णकुन्तला । 'अलकाश्चूर्णकुन्तला' हत्यभिषानात् । १३ शावकाः । 'पुष्यकः शावकः शिष्मः' हत्यभिषानात् । १४ मुगबन्धनो ।

दृष्ट्यनक्षमयोः सुष्ठुं तम्बानाः स्वाक्षर्यसंगिनीम् । मनोऽस्य<sup>१</sup> जगृहुः कान्ताः कान्तैः स्वैः कामचेष्टितैः॥४६॥  
तासां मुदुकरस्यैः प्रेमस्थिनभैश्च चीक्षितैः । महती शृणिरस्यासीजलिपनैरपि मन्मनैः॥४७॥  
स्मितेष्वासां दरोग्निको<sup>२</sup> हसितेषु चिक्षवैः । फलितैः परिस्मेषु<sup>३</sup> रसिकोऽभृतद्रुमः॥४८॥  
सुखेष्वयनव्रपाप्यैः उक्षेष्वस्त्रीकृतैः । <sup>४</sup>बहुर्गरणस्तासां स्मरोऽभृत सकृदग्रहः॥४९॥  
ग्यरः प्रणयनभयु कोषवनुचय सुदुः । स्तक्ष्वा अथलीकमनेषु मुग्धः प्रणयकैत्वे॥५०॥  
निर्दयः परिस्मेषु सानुशानो मुख्याप्यै । प्रतिपत्तिषु संमृहः पटुः करणचेष्टिते॥५१॥  
संक्षेष्वाहितोत्कर्षैः मन्दः प्रत्यग्रमंगमे । प्रारम्भे रसिको दीप्तः प्रान्ते करुणकात्मः॥५२॥  
दृष्ट्युक्षावच्छां<sup>५</sup> भेजे लालां धीरः स मन्मथः । प्रायो मित्रसः कामः कामिदां हृदयंगमः॥५३॥  
प्रकाभमधुराभिन्यं कामाभ्<sup>६</sup> कामातिरेकिणः । स ताभिन्विशन् रेमे<sup>७</sup> व्रयुष्मानिव मन्मथः॥५४॥  
ताथ तद्वित्तहारिण्यस्तरुणः प्रणयोद्भूरः । बभूदुः प्राप्तसाम्राज्या इव<sup>८</sup> रत्युत्सवश्चियः॥५५॥

इकट्ठे हुए आगेके सुन्दर बाल कामदेवरूपी काले सर्पके बच्चोंके समान जान पड़ते थे तथा कुछ-कुछ टेढ़ी हुई केशरूपी लताएँ कामदेवके जालके समान जान पड़ती थीं ॥४८॥ इस प्रकार अपने शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली काममयी रचनाको प्रकट करती हुई वे रानियाँ अपनी सुन्दर कामकी चेष्टाओंसे महाराज भरतका मन हरण करती थीं ॥४९॥ उनके कोमल हाथोंके स्पर्शसे, प्रेमपूर्ण सरस अबलोकनसे, और अव्यक्त मधुर शब्दोंसे इसे बहुत ही सन्तोष होता था ॥५०॥ रससे भरा हुआ सुरतरूपी वृक्ष इन रानियोंके मन्द-मन्द हँसनेपर कुछ खिल जाता था, जोरसे हँसनेपर पूर्णरूपसे खिल जाता था और आँलिगन करनेपर फलोंसे युक्त हो जाता था ॥५१॥ भींहोंके चलानेहृष्य यन्त्रोंसे फेंके हुए पत्थरोंके ढारा तथा दृष्टियोंके फेंकनेहृष्यी यन्त्र विशेषों ( गृथनों ) के ढारा उन स्त्रियोंका बहुत प्रकारका किलेबन्दीका युद्ध होता था और कामदेव उसमें सबकी चोटी पकड़नेवाला था । भावार्थ – कामदेव उन स्त्रियोंसे अनेक प्रकारकी चेष्टा करता था ॥५२॥ कामदेव इनके प्रेमपूर्ण क्रोधके समय कठोर हो जाता था, झूठा अभिमान करनेपर उद्दण्ड हो जाता था, प्रेमपूर्ण कपट करते समय भोला या अनजान हो जाता था, आँलिगनके समय निर्दय हो जाता था, चुम्बनके लिए मुख प्रदान करते समय आज्ञा देनेवाला हो जाता था, स्वीकार करते समय विचार मूढ़ हो जाता था, हाव-भाव आदि चेष्टाओंके समय अत्यन्त चतुर हो जाता था, संकल्प करते समय उल्कर्षको धारण करनेवाला हो जाता था, नवीन समागमके समय लज्जासे कुछ मन्द हो जाता था, सम्भोग प्रारम्भ करते समय अत्यन्त रसिक हो जाता था और सम्भोगके अन्तमें कहणासे कातर हो जाता था । इस प्रकार उन रानियोंका अत्यन्त प्रज्वलित हुआ कामदेव ऊँच-नीची अवस्थाको प्राप्त होता था अर्थात् घटता-बढ़ता रहता था सो ठीक ही है जो काम प्रायः भिन्न-भिन्न रसोंसे भरा रहता है वही कामी पुरुषोंको सुन्दर मालूम होता है ॥५३-५६॥ इस प्रकार वह चक्रवर्ती उन रानियोंके साथ अत्यन्त मधुर तथा इच्छाओंसे भी अधिक भोगोंको भोगता हुआ शरीरधारी कामदेवके समान कीड़ा करता था ॥५७॥ भरतके चित्तको हरण करनेवाली और प्रेमसे भरी हुई वे तरुण स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती थीं भानो साम्राज्यको प्राप्त हुई रत्युत्सवरूपी लक्ष्मी ही हों ॥५८॥ उनकी

१ भरतस्य । २ अव्यक्तैः । ३ ईषत्रिकसित । ४ फलितः ल० । ५ आँलिग्नमेषु । ६ दुर्युद्धसदृशः । ७ नव ।  
८ करुणरसातुरः । ९ तानालंकारताम् । १० मनोरथवृद्धिकरात् । ११ मूलिमान् । १२ रत्युत्सवे श्रियः ल० ।

नाटकानां सहस्राणि त्रायिंश्च प्रमितानि वै । यातोषानि सगेयानि यानि रम्याणि भूमिभिः ॥५९॥  
 ह्रामसतिः सहस्राणि<sup>१</sup> पुरामिन्द्रपुरश्चियम् । स्वर्गलोक इवाभाति नूलोको वैरलंकृतः ॥६०॥  
 ब्रामकोदयश्च विज्ञेया विभोः पण्डवतिप्रमाः । नन्दनोदेशजित्यर्थो<sup>२</sup> यामामारामभूमयः ॥६१॥  
 द्रोणामुख्यसहस्राणि<sup>३</sup> नवतिर्नवं चैव हि । अनश्वान्यसमृद्धीनामचिह्नानानि यानि वै ॥६२॥  
 पतनानां सहस्राणि चत्वारिंश्चत्त्राऽष्ट च । रक्षाकरा इवाभान्ति येषामुद्गां<sup>४</sup> वणिक्षपथाः ॥६३॥  
 पोडींव सहस्राणि खेतानां पुरिमा मता । प्राकारगोपुराद्वाल॑ खातवप्रादिशोभिनाम् ॥६४॥  
 भन्नेशुरन्तरद्वीपाः पृष्ठपञ्चाशत्प्रमामिताः । कुमानुषजनार्काणां च॒र्णवस्य लिलायिताः<sup>५</sup> ॥६५॥  
 यंवाहानां सहस्राणि संख्यातानि<sup>६</sup> चतुर्दश । चहन्ति यानि लोकस्य योगज्ञेभवित्वायिधिम्<sup>७</sup> ॥६६॥  
 स्थालीनां कोटिरेकोक्ता सन्धमे<sup>८</sup> या नियोजिता । <sup>९</sup>१ पक्षी स्थालीविलीयानां<sup>१०</sup> तपतुलानां महानसे ॥६७॥  
<sup>११</sup>२ कोटीश्चिद्वृक्षहृष्टे रथाद्वृक्षहृष्टे कुलिम्बै<sup>१२</sup> लक्ष्मीकृष्णै<sup>१३</sup> कर्त्तव्यस्त्रियै<sup>१४</sup> वस्य विनियोगी निरन्तरः ॥६८॥  
 तिस्रोऽस्यै<sup>१५</sup> वज्रकोष्ठः स्वर्गोऽकुलैः शशदाकुलाः । यत्र मन्थरवाकृष्टादितष्टमिति स्माध्यमाः क्षणम् ॥६९॥  
<sup>१६</sup>१ कुक्षिवासदान्वस्य ससैर्योक्तानि कोविदैः । <sup>१७</sup>२ प्रत्यन्तवासिनो यत्र स्यवास्मुः<sup>१८</sup> कृतसंश्रयाः ॥७०॥

विभूतिमें बत्तीस हजार नाटक थे जो कि भूमियोंसे मनोहर थे और अच्छे-अच्छे बाजों तथा गानोंसे सहित थे ॥५९॥ इन्द्रके नगर समान शोभा धारण करनेवाले ऐसे बहतर हजार नगर थे जिनसे अलंकृत हुआ यह नरलोक स्वर्गलोकके समान जान पड़ता था ॥६०॥ उस चक्रवर्तीके ऐसे छियानबे करोड़ गाँव थे कि जिनके बगीचोंकी शोभा नन्दन बनको भी जीत रही थी ॥६१॥ जो धन-धान्यकी समृद्धियोंके स्थान थे ऐसे नित्यानबे हजार द्रोणामुख अर्थात् बन्दरगाह थे ॥६२॥ जिनके प्रर्गसनीय बाजार रत्नाकर अर्थात् समुद्रोंके समान सुशोभित हो रहे थे ऐसे अड़तालीस हजार पतन थे ॥६३॥ जो कोटि, कोटि के प्रमुख दरवाजे, अटारियाँ, परिखाएँ और परकोटा आदिसे शोभायमान हैं ऐसे सोलह हजार खेट थे ॥६४॥ जो कुभोग-भूमि या मनुष्योंसे व्याप्त थे तथा समुद्रके सारभूत पदार्थके समान जान पड़ते थे ऐसे छप्पन अन्तरद्वीप थे ॥६५॥ जो लोगोंके योग अर्थात् नवीन वस्तुओंकी प्राप्ति और क्षेम अर्थात् प्राप्त हुई वस्तुओंकी रक्षा करना आदिकी समस्त व्यवस्थाओंको धारण करते थे तथा जिनके चारों ओर परिखा थी ऐसे चौदह हजार संवाह थे\* ॥६६॥ पकानेके काम आनेवाले एक करोड़ हण्डे थे जो कि पाकशालामें अपने भीतर ढाले हुए बद्रुत-से चावलोंको पकानेवाले थे ॥६७॥ फसल आनेके बाद जो निरन्तर खेतोंको जीतनेमें लगाये जाते हैं और जिनके साथ दोज बोनेकी नाली लगी हुई है ऐसे एक लाख करोड़ हल थे ॥६८॥ दही मधनेके शब्दोंसे आकर्षित हुए पर्याप्त लोग जहाँ धाण-भरके लिए ठहर जाते हैं और जो निरन्तर गायोंके समूहसे भरी रहती हैं ऐसी तीन करोड़ द्वंज अर्थात् गोशालाएँ थीं ॥६९॥ जहाँ आश्रय पाकर समीपवर्ती लोग आकर ठहरते थे ऐसे कुक्षिवासीकी संख्या पण्डित लोगोंने सात-सी

१ वैये । २ पुराणाम् । ३ जयशीलः । ४ नवाधिकनवतिः । ५ प्रशस्ताः । ६ शूलिकुट्रिम । ७ अप्रतिहत-स्वानायितः । 'द्रे लिलाप्रहृते समे' इत्यमिदानात् । ८ सखातानि - ल० । ९ विधानप्रकारम् । १० पचने । ११ पचनकरी । १२ स्थालीविलमहंतीति स्थालीविलीयास्तेषाम् । पचनार्हताम् इत्यर्थः । १३ कोटीनां लक्षम् । १४ कुलियः द०, अ०, प०, स०, इ० । कुलिम्बैः ल० । कुटिभैः द० । १५ आसन्नफलविषयक्षेत्रकर्त्तणे । १६ योस्थानकम् । 'द्रजो गोष्ठाद्ववृद्देषु' इत्यमिदानात् । १७ रत्नानां क्रयविक्रयस्थान । १८ म्लेच्छाः । १९ निवसन्ति स्म । २० पहाड़ोंपर बसनेवाले नगर संकाह कहलाते हैं । \* जहाँ रत्नोंका व्यापार होता है उन्हें कुक्षिवास कहते हैं ।

दुर्गादी<sup>१</sup> सहस्राणि तस्याह्विंशतिर्मता । <sup>२</sup> बनधन्वाननिज्ञादिविनागैर्या विभागिनाः ॥७१॥  
 म्लेच्छराजसहस्राणि तस्याह्वदशसंख्यया । <sup>३</sup> रत्नात्मामुद्भवक्षेत्रं यैः<sup>४</sup> समस्ताद्विषितम् ॥७२॥  
 कालास्वर्णमहाकालो नैस्सर्प्यः पाण्डुकाङ्क्षया । पश्चाणवपिङ्गाहजे<sup>५</sup> सर्वरथपदादिकाः ॥७३॥  
 निधयो नव तस्यासन् प्रसीरितिनामन्तः । वैरवं गृहवत्तायो<sup>६</sup> निश्चिन्तोऽभूजिष्ठीश्वरः ॥७४॥  
 निधिः पुण्यनिधिरस्य कालाख्यः प्रथमो मतः । यतो<sup>७</sup> लौकिकशब्दादिचार्तानां प्रभत्रोऽन्तरहम् ॥७५॥  
 हन्त्रियार्थां मनोज्ञा ये बीणावंशानकावयः । सान् प्रसूते वथाकालं निधिरेष विशेषतः ॥७६॥  
 असिमव्यादिषट्कर्मसाधनद्वयसंपदः । यतः शश्वत् प्रसूत्यन्ते महाकालो निधिः स वै ॥७७॥  
 शश्वत्यासनलयादीना नैःसप्तर्त्तु प्रमत्तो निधेः । पाण्डुकाङ्क्षयमंभूतिः पद्मसौत्यसिरपदतः ॥७८॥  
 पट्टीशुकदुक्षुलादिवस्त्राणां प्रमत्तो यतः । स पश्चाख्यो निधिः पश्चागर्भाविभाजितोऽयुतत् ॥७९॥  
 दिव्याभरणभेदानामुद्भवः पिङ्गलाजितेः । माणवानीतिशास्त्राणां शस्त्राणो च समुद्भवः ॥८०॥  
 शङ्कात् प्रदक्षिणावर्तत् सौवर्णी सृष्टिसुत्सूर्य । स शङ्कुनिधिरेष्मेष्टुकमरोचिर्जितार्कहक् ॥८१॥  
 सर्वरक्षाम्महानीलवीलस्थूलो<sup>८</sup> पलादयः । प्रादुःसम्भिर्मणिष्ठायारचितेऽद्वायुषत्विषः ॥८२॥  
 रक्षानि द्वित्यान्यस्य जीवाजीविभागतः । <sup>९</sup> क्षमाश्राणैश्वर्यसंमोगसाधनानि एतुर्देश ॥८३॥

बतलायी है ॥७०॥ अद्वाईस हजार ऐसे सधन बन थे जो कि निर्जल प्रदेश और ऊंचे-ऊंचे पहाड़ी विभागोंमें विभवत थे ॥७१॥ जिनके चारों ओर रत्नोंके उत्पन्न होनेके क्षेत्र अर्थात् खाने विद्यमान हैं ऐसे अठारह हजार म्लेच्छ राजा थे ॥७२॥ महाराज भरतके काल, महाकाल, नैस्सर्प्य, पाण्डुक, पश्च, माणव, पिण्ड, शंख और सर्वरत्न इन प्रसिद्ध नामोंसे युक्त ऐसी नौ निधियाँ थीं कि जिनसे चक्रवर्ती घरकी आजीविकाके विषयमें बिलकुल निश्चिन्त रहते थे ॥७३-७४॥ पुण्यकी निधिस्वरूप महाराज भरतके पहली काल नामकी निधि थी जिससे प्रत्येक दिन लौकिक शब्द अर्थात् व्याकरण आदिके शास्त्रोंकी उत्पत्ति होती रहती थी ॥७५॥ तथा बीणा, बासुरी, नगाड़े आदि जो-जो इन्द्रियोंके मनोज्ञ विषय थे उन्हें भी यह निधि समयानुसार विशेष रीतिसे उत्पन्न करती रहती थी ॥७६॥ जिससे असि, मणि आदि छह कर्मोंके साधनभूत द्रव्य और संपदाएँ निरन्तर उत्पन्न होती रहती थीं वह महाकाल नामकी दूसरी निधि थी ॥७७॥ शश्या, आसन तथा मकान आदिकी उत्पत्ति नैसर्प्य नामकी निधिसे होती थी । पाण्डुक निधिसे धान्योंकी उत्पत्ति होती थी । इसके सिवाय छह रसोंकी उत्पत्ति भी इसी निधिसे होती थी ॥७८॥ जिससे रेशमी सूती आदि सब तरहके वस्त्रोंकी उत्पत्ति होती रहती है और जो कमलके भीतरी भागोंसे उत्पन्न हुएके समान प्रकाशमान है ऐसी पश्च नामकी निधि अत्यन्त देदीप्यमात्र थी ॥७९॥ पिण्ड नामकी निधिसे अनेक प्रकारके दिव्य आभरण उत्पन्न होते रहते थे और माणव नामकी निधिसे नीतिशास्त्र तथा अनेक प्रकारके शास्त्रोंकी उत्पत्ति होती रहती थी ॥८०॥ जो अपने प्रदक्षिणावर्त नामके शंखसे सुवर्णकी सृष्टि उत्पन्न करती थी और जिसने उछलती हुई सुवर्ण-जैसी कान्तिसे सूर्यकी किरणोंकी जीत लिया है ऐसी शंख नामकी निधि थी ॥८१॥ जिसके मणियोंकी कान्तिसे इन्द्रधनुषकी शोभा प्रकट हो रही है ऐसी सर्वरत्न नामकी निधिसे महानील, नील तथा पश्चराग आदि अनेक तरहके रत्न प्रकट होते थे ॥८२॥ इनके सिवाय भरत महाराजके जीव और अजीवके भेदसे दो विभागोंमें बैटे हुए चौदह रत्न भी थे जो कि पृथिवीकी रक्षा और ऐश्वर्यके उपभोग करनेके साधन थे ॥८३॥

१ महभूमि । 'समानो मरुषव्यानो' इत्यभिधानात् । २ धन्वन्निमानिम्नादि-इ० । बनधन्वननन्नादि-ल० ।  
 ३ कुक्षिवासम् । ४ म्लेच्छराजैः । ५ पिङ्गल पिङ्गल । अर्जन कमल । ६ व्यापारे । ७ कालनिधेः । ८ जनयन् ।  
 ९ उच्चलत् । १० पश्चरागः । ११ प्रकटीभवन्ति । १२ पृथ्वीरक्षा ।

चक्रातपत्रदण्डासिमण्यश्वर्म काकिणी । चमृगृहपर्ति भाष्यो वित्तक्षयुरोधसः ॥८४॥  
 १४ क्रासिदण्डरत्नानि सच्छन्नायायुधालयाल् । जातानि मणिचर्माभ्यां काकिणी श्रीगृहोदरे ॥८५॥  
 खारलगजवाजीनो ग्रभत्रोऽहं प्रशेलतः । रत्नान्यस्थानि साकेताज्ञिरे निधिभिः समस् ॥८६॥  
 निधीनो सद रत्नानो गुणान् को नाम वर्णयेत् । २३ वैरावजित्तमूर्जित्ते इत्यर्थ उहवित्तः ॥८७॥  
 भेजे षट्कर्तुजानिष्टान् भोगान् पञ्चन्द्रियोचितान् । खारस्त्वारथ धिस्तदि निधानं सुखसंपदाभ्यः ॥८८॥  
 कान्तारत्नमभूतस्य सुभद्रेत्यनुपदुत्तर्म् । २४ भद्रिकाऽसौ प्रकृत्यैवै जात्या विद्याधरान्वया ॥८९॥  
 शिरीषसुकुमाराङ्गी २५ चम्पकच्छदसच्छविः । षड्कुलामोदनिः आसा पाठ्का २६ पाठ्काधराः ॥९०॥  
 प्रबुद्धपश्चसौम्यास्या नैलोभ्यलदलेक्षणा । सुभूरलिकुलानीलमृदुकुञ्जितमूर्ढजा ॥९१॥  
 तन्दरी वरारोहा २७ चामोरुनिविडस्तनी । मृदुयाहुलता साऽभूमदनामेरिवारणी २८ ॥९२॥  
 तत्कर्मी २९ नृपुरामञ्जुगुञ्जितैसुखरीकृतौ । भद्रनद्विरदस्येव तेनमुर्जयविष्टितम् ॥९३॥  
 नि श्रेणीकृत्य तज्ज्ञे सवृद्धारकन्धनाम् । वासगोहास्यवाऽनङ्गस्तम्भूणी ३० नृत्यासदत् ॥९४॥

चक्र, छत्र, दण्ड, असि, मणि, चर्म और काकिणी ये सात अजीव रत्न थे और सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, सिलावट और पुरोहित ये सात सजोव रत्न थे ॥८४॥। चक्र, दण्ड, असि और छत्र ये चार रत्न आयुधशालामें उत्पन्न हुए थे तथा मणि, चर्म और काकिणी ये तीन रत्न श्रीगृहमें प्रकट हुए थे ॥८५॥। स्त्री, हाथी और घोड़ाको उत्पत्ति विजयार्थी शैलपर हुई थी तथा अन्य रत्न निधियोंके साथ-साथ अयोध्यामें ही उत्पन्न हुए थे ॥८६॥। जिनके द्वारा सेवन किया हुआ चक्रवर्तीका हृदय अतिशय बलिष्ठ हो रहा था उन निधियों और रत्नोंका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥८७॥। वह चक्रवर्ती स्त्रीरत्नके साथ-साथ छहों कृतुओंमें उत्पन्न होनेवाले पंचेन्द्रियोंके योग्य भोगोंका उपभोग करता था सो छीक ही है क्योंकि स्त्री ही समस्त सुख सम्पदाओंका भण्डार है ॥८८॥। महाराज भरतके रोगादि उपद्रवोंसे रहित सुभद्रा नामकी स्त्रीरत्न थी, वह सुभद्रा स्वभावसे ही भद्रा अर्थात् कल्याणरूप थी और जातिसे विद्याधरोंके बंशकी थी ॥८९॥। उसके समस्त अंग शिरीषके फूलके समान कोमल थे, कान्ति चम्पाकी कलीके समान थी, श्वासोच्छ्वासं बकौली ( मौलश्री ) के फूलके समान सुगन्धित था, अधर गुलाबके फूलके समान कुछ-कुछ लाल थे, मुख प्रफुल्लित कमलके समान सुन्दर था, नेत्र नील कमलके दलके समान थे, भींहें अच्छी थीं, केश भ्रमरोंके समूहके समान काले, कोमल और कुछ-कुछ टेढ़े थे, उदर कृश था, नितम्ब सुन्दर थे, जींहें मनोहर थीं, स्तन कठोर थे और भुजा-रूपी लताएँ कोमल थीं, इस प्रकार वह सुभद्रा कामरूपी अरिन्तको उत्पन्न करनेके लिए अरणिके समान थी । भावार्थ – जिस प्रकार अरणि नामकी लकड़ीसे अरिन उत्पन्न होती है उसी प्रकार उस सुभद्रासे दर्शकोंके मनमें कामाग्नि उत्पन्न हो उठती थी ॥९०-९२॥। नृपुरोंकी मनोहर झँकारसे बाचालित हुए उसके दोनों चरण ऐसे जान पड़ते थे मानो कामदेवरूपी हाथीके विजयके नगाड़े ही बजा रहे हों ॥९३॥। ऐसा मालूम होता था मानो कामदेव अपने निवासगृहपर पहुँचनेकी इच्छासे उस सुभद्राकी दोनों जंघाओंको नसेनी बनाकर जिसमें उत्तम ऊरु ही

१ चक्रदण्डासि-ल०, द०, अ०, प०, स०, इ० । २ उत्पत्तिः । ३ रत्नसहितानाम् । ४ रत्ननिधिभिः । ५ वशी-कृतम् । ६ सहायः । ७ स्त्रीरत्नम् । ८ स्थानम् । ९ रोगादिभिरपीच्छितम् । १० मञ्जलमूर्तिः । ११ स्वभावेन । १२ चम्पककुसुमदल । १३ कुवेराशी । १४ ईषदरूप । १५ उत्तमनितम्बा । “वरारोहर मत्तकाशिन्युतमा वरवर्णिनी” इत्यनिधानात् । १६ मनोहर । १७ अनिमन्यनकाष्ठम् । १८ सुभद्रावरणी । १९ कटिम् । ‘कटो ना श्रोणिफलकं कटिः श्रोणिः कुद्रमर्ती’ इत्यनिधानात् ।

निःसुख नाभिवहीकात् कामरूपाभुजंगमः । रोमावलीठलेनासया ययौ कुचकरणहकौ<sup>१</sup> ॥९५॥  
निर्भौकमिव कामाहे: दधानोदृ<sup>२</sup> स्तनाशुकम् । भुजगीमिव तद्वत्पै<sup>३</sup> सैकामेकाश्वरीमधात् ॥९६॥  
वचे हारलता कण्ठलग्ना सा नाभिलभिन्नाम् । मन्त्ररक्षामिकान्तर्मधिता कामशीपिनीम् ॥९७॥  
हारक्रान्तस्तनामोगा सा रम धते परां श्रियम् । सीतेव<sup>४</sup> यमकाविशृक्षप्रवाहा सरिदुर्लभा ॥९८॥  
ब्राहु तस्या जितानश्चपाशी लक्ष्मीमुकुहतुः<sup>५</sup> । कामकलाग्रुमस्येव प्ररोहौ दोषभूतणी ॥९९॥  
रेजे करतलं तस्या: सूक्ष्मरेखामिरातसम् । जयरेखा इवाविभद्रयसीनिर्जयार्जिता ॥१००॥  
सुग्रेसुकु तद्वद्धरित्वराणापाकमधोक्तमौ । दशरथाद्विष्टमित्यात्मोः<sup>६</sup> ॥१०१॥  
वक्त्रमस्याः शशाङ्कस्य कान्ति जित्वा स्वशोभया । दधे तु भूपतकाङ्क्ष कर्णभित्या जययत्रम् ॥१०२॥  
“हेमपत्राङ्कितौ सन्त्वयाः<sup>७</sup> कण्ठौ लीकामवापतुः । इवर्वद्यनिजंयायेव कृतप्रावलम्बनौ ॥१०३॥  
कपोलाशुज्ज्वलौ तस्या दधतुर्दर्पणश्रियम् । व्रद्धुकामस्य कामस्य<sup>८</sup> द्वा दशा दशभा स्थिताः ॥१०४॥  
“मध्येचक्षुर्धीराक्षया नासिकाऽभान्मुखोन्मुखी<sup>९</sup> । तदामोदमिवाघातुं कृतयता कुतुहलात् ॥१०५॥  
कृत्वा श्रोतृपदे<sup>१०</sup> कण्ठौ तस्त्रेवे विभैर्मिथ्यः । कृतस्पर्धे इवाभालां पुष्पवाणी<sup>११</sup> समापत्तौ ॥१०६॥

दरवाजेके बन्धन हैं ऐसे उसके नितम्बोंपर जा पहुँचा हो ॥९४॥ रोमावलीके छुलसे कामदेव-रूपी काला सर्व उसकी नाभिरूपी बासीसे निकलकर उसके स्तनरूपी पिटारोंके समीप जा पहुँचा था ॥९५॥ वह सुभद्रा कामरूपी सर्वकी काँचलीके समान सुन्दर स्तनवस्त्र ( चोली ) धारण करती थी और उस कामरूप सर्वको सन्तुष्ट करनेके लिए सपिणीके समान श्रेष्ठ एकावली हारको धारण करती थी ॥९६॥ वह कण्ठमें पड़ी हुई, नाभि तक लटकती हुई और कामको उद्दीपित करनेवाली जिस हाररूपी लताको धारण कर रही थी वह ऐसी मालूम होती थी मानो कामदेवके द्वारा गूँथा हुआ और मन्त्रोंसे मन्त्रित हुआ रक्षाका ढोरा ही हो ॥९७॥ जिसके स्तनोंका मध्यभाग हारसे व्याप्त हो रहा है ऐसी वह सुभद्रा इस प्रकारकी उल्कृष्ट शोभा धारण कर रही थी मानो जिसका प्रवाह दोनों ओरके यमक पर्वतोंको स्पर्श कर रहा है ऐसी उत्तम सीता नदी ही हो ॥९८॥ कामदेवके पाशको जीतनेवाली तथा देवीप्यमान आभूषणोंसे सुशोभित उसकी दोनों भुजाएँ ऐसी शोभा धारण कर रही थी मानो कामरूपी कल्पवृक्षके दो अंकूरे ही हों ॥९९॥ सूक्ष्म रेखाओंसे व्याप्त हुआ उसका करतल ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अन्य स्त्रियोंके पराजयसे उत्पन्न हुई विजयकी रेखाएँ ही धारण कर रहा हो ॥१००॥ जिसकी भीहैं ऊपरको उठी हुई हैं और जिसमें चंचल कटाक्ष हो रहे हैं ऐसा उस कृशोदरीका मुख ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बाण और महाधनुषसे सहित कामदेवकी आयुशशाला ही हो ॥१०१॥ उसका मुख अपनी शोभाके द्वारा चन्द्रमाकी कान्तिको जीतकर वया कानोंके बहानेसे भौहूलपी पताकाके चिह्नसहित विजयपत्र ( जीतका प्रमाणपत्र ) ही धारण कर रहा था ॥१०२॥ सोनेके पत्रोंसे चिह्नित उसके दोनों कान ऐसी शोभा धारण कर रहे थे मानो उन्होंने देवांगनाओंको जीतनेके लिए कागज-पत्र ही ले रखे हों ॥१०३॥ उसके दोनों उज्ज्वल कपोल ऐसे जान पढ़ते थे मानो अपनी दश प्रकारकी अवस्थाओंको देखनेकी इच्छा करनेवाले कामदेवके दर्पणकी शोभा ही धारण कर रहे हों ॥१०४॥ उस चंचल लोचनवाली सुभद्राकी नाक आँखोंके बीचमें मुँहकी ओर झुकी हुई थी और उससे

१-करण्डकम् द०, ल०, इ०, अ० प०, स० । २-प्रशस्तम् । ३-कामाहे: संतोषाय । ४-मुख्याम् । ५-सीता-नदी । ६-ददाते रम । ७-महाचापसहितम् । ८-शशशालाम् । ९-अनहगस्य । १०-इव । ११-कर्णपत्र । १२-तस्याः ल०, इ० । १३-आत्मोयाः । १४-चक्षुषोमिथ्ये । १५-मुखस्याभिमुखी । १६-श्रोतुजनस्थाने । १७-कामे सभापत्तौ सति ।

अभूत कान्तिशकोराक्षया ललाटे लुलितालके । हेमगद्वान्तसंलक्ष्मीलोपलविद्विभिन्नी ॥१०७॥  
 तस्या विनीलविक्ष्वस्तकवर्णवन्धवन्धुरम्<sup>१</sup> । केशपाशमनङ्गस्य मध्ये पाशं प्रसारितम् ॥१०८॥  
 इत्यस्या रूपसुद्भूतसौहर्वं विजगजयि । मन्द्यानङ्गस्तदग्रेषु संनिधानं व्यधात् ध्रुवम् ॥१०९॥  
 तद्रूपालोकनोच्छुस्तद्गात्रस्तर्णोत्सुकः । तनुखामोदमाजिघन् रसयंश्चासकुमुखम् ॥११०॥  
 तद्वग्यक्षलनिकाणश्रुतिसंसक्तकर्णकः । तद्वात्रविपुलारम्भे स रेम सुखनिर्वतः ॥१११॥  
 पञ्च वाणानन्दस्य वदन्त्यतानं कुषित्वान्<sup>२</sup> । पुण्येषुसंकथालोके प्रसिद्धर्यैव यता प्रथाम् ॥११२॥  
 धनुर्लंता मनोजस्य प्राहुः पुण्यमर्थी लोठालोचुकमास्त्रहृष्टीये लोपुलोत्तिर्विनिर्वतः ॥११३॥  
 पञ्चाणानन्दस्य नियम्यन्ति<sup>३</sup> कुर्तो<sup>४</sup> जडाः । यदेव कामिनां हारि तदस्त्रं कामर्दीपनम् ॥११४॥  
 स्मितमालोकितं हासो जहितं मदमन्मनम् । कामाङ्गमिदर्भवान्यत् कैलवं तस्य वोषकम् ॥११५॥  
 आरुद्यौवनोध्याणीं स्तनावस्या हिमागमे । रोमणी<sup>५</sup> हृषितमस्याङ्गे शिशिरोथं विनियतुः<sup>६</sup> ॥११६॥  
 हिमानिलैः कुचोऽप्यमाहित<sup>७</sup> सा द्रुतवलमैः । <sup>८</sup> प्रेयस्करतलस्यश्चैरपनिन्द्री<sup>९</sup> इक्षाविनी ॥११७॥

वह ऐसी जान पड़ती थी मानो कौतूहलसे मुहका सुगन्ध सूंघनेके लिए प्रयत्न ही कर रही हो ॥१०५॥ उसके दोनों नेत्र ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो कामदेवके सभापति रहते हुए कानों-को साक्षी बनाकर परस्परमें हात-भावके द्वारा स्पर्धा ही कर रहे हों ॥१०६॥ जिसपर काली-काली अलके बिखर रही हैं ऐसे चकोरके समान नेत्रवाली उस सुभद्राके ललाटपर जो कान्ति थी वह सुवर्णके पटियेपर लटकती हुई नीलकमलकी मालाके समान बहुत ही सुन्दर जान पड़ती थी ॥१०७॥ अत्यन्त काले और नीचेकी ओर लटकते हुए कबरीके बन्धनसे सुशोभित उसके केशपाश ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो फेला हुआ कामदेवका पाश ही हो ॥१०८॥ इस प्रकार जिसकी उत्तमता प्रकट है ऐसे उस सुभद्राके रूपको तीनों जगत्का जीतनेवाला जानकर ही मानो कामदेवने उसके प्रत्येक अंगोंमें अपना निवासस्थान बनाया था ॥१०९॥ उसका रूप देखनेके लिए जो सदा चक्षुओंको ऊपर उठाये रहता है, उसके शरीरका स्पर्श करनेके लिए जो सदा उत्कण्ठित बना रहता है, जो बार-बार उसके मुखका स्वाद लिया करता है और उसके संगीतके सुन्दर शब्दोंके सुननेमें जिसके कान सदा तल्लीन रहते हैं ऐसा वह चक्रवर्ती उस सुभद्राके शरीररूपी बड़े बगीचेमें सुखसे सन्तुष्ट होकर कीड़ा किया करता था ॥११०-१११॥ कविलोग, जिनका कहीं प्रतिबन्ध नहीं होता ऐसा सुभद्राका रूप, कोमल स्पर्श, मुखकी सुगन्ध, ओढ़ोंका रस और संगीतमय सुन्दर शब्द इन पाँचको ही कामदेवके पाँच बाण बतलाते हैं । लोकमें जो कामदेवके पाँचों बाणोंकी चर्चा है वह रुद्धि मात्रसे ही प्रसिद्ध हो गयी है ॥११२॥ मूर्ख लोग कहते हैं कि कामदेवका धनुष फूलोंका है परन्तु वास्तवमें स्त्रियोंका अत्यन्त कोमल शरीर ही उसका धनुष है ॥११३॥ न जाने क्यों मूर्ख लोग कामदेवको पाँच बाण ही प्रदान करते हैं अर्थात् उसके पाँच बाण बतलाते हैं क्योंकि जो कुछ भी कामी लोगोंके चित्तको हरण करनेवाला है वह सभी कामको उत्तेजित करनेवाला कामदेवका बाण है । भावार्थ – कामदेवके अनेक बाण हैं ॥११४॥ स्त्रियोंका मन्द हार्य, तिरछी चित्तवन, जोरसे हँसना और कामके आवेशसे अस्पष्ट बोलना यही सब कामदेवके अंग हैं इनके सिवाय जो उनका कपट है वह इन्हीं सबका पोषण करनेवाला है ॥११५॥ जो जवानीके कारण गर्म हो रहे हैं ऐसे सुभद्राके दोनों स्तन हेमन्तकृतुमें ठण्डसे उठे हुए भरतके शरीरके रोमांचोंको दूर करते थे ॥११६॥ गोदमें शयन करनेवाली सुभद्रा शीतलवायुके

१ गलित । २ मुखतृप्तः । ३ तद्रूपादीन् । ४ अमन्दान् । ५ स्त्रिया इदम् । ६ नियमयन्ति । ७ कि कारणम् ।  
 ८ मदेनाव्यक्तभाविणम् । ९ कामस्य । १० रोमाञ्चवम् । 'रोमाञ्चो रोमहर्षणम्' इत्यभिधानात् । ११ नाशं  
 चक्रतुरित्यर्थः । १२ कृतम् । १३ प्रियतमहस्ततल । १४ अपहरति स्म ।

लाशोककलिका॑ चूलमभरी॒ कर्णसंगिर्नाम् । दृष्टी॑ चम्पकप्रोत्ते॑ केशान्तैः साऽहस्यमध्ये ॥११८॥  
 मध्ये॑ मधुमदारकलोचनामास्त्वलदृशतिम् । बहु॑ मने प्रियः कान्तां मूर्त्तमिष्ठ मदधिष्यम् ॥११९॥  
 कलैरलिकुलकाणी॑ सान्ध्यपुष्टविकूजितैः । मधुरं मधुरम्यष्टौ॑ तुष्टयेकामु॑ विशाम्पतिम् ॥१२०॥  
 १११ कलकण्ठीकलकाणमूर्छितैरलिंशांकृतैः । अवृथते स्म स्मराकाण्डावस्कन्दो॑ हिण्डमायितैः ॥१२१॥  
 ११२ पुष्टयचूतवनोद्यन्धितकुलकमलाकरः । प्रये सुरभिर्मासः॑ सुरमीकृतदिम्मुखः ॥१२२॥  
 हुतालिकुलम्भंकारः संचरमलयानिलः । अनङ्गनृपतेरात्माद् घोषथक्षिव शासनम् ॥१२३॥  
 संध्यामूलाणां कलामिन्दोमें लोको जगद्गुमः॑ । करालाभिष्ठ रक्षाकार॑ दंडां मदनरक्षसः ॥१२४॥  
 दन्मत्तकोकिले काले तस्मिन्मूलमत्तवट्पत्रे । नामुम्मत्ती जनः कोऽपि मुक्त्वानङ्ग॑ दुहो मुर्नीन् ॥१२५॥  
 सायमुदगाहनिर्गिर्ज॑ रक्षेन्दुहिनर्तात्तलैः । ग्रीष्मे मदनतापात॑ सास्थाङ्ग॑ निरवापयन् ॥१२६॥  
 चन्दनद्रवसंसिक्तसुन्दराङ्गलतां प्रियाम् । परित्व्य॑ हहै द्रोभवां स लेभे गात्रनिर्दृतिम् ॥१२७॥  
 मदनज्वरतापात॑ तीव्रग्रीष्मोप्रनिःसहाम् । स तां निर्बापयामाम स्वाङ्गस्पर्शसुलाम्बुमिः ॥१२८॥

द्वारा उत्पन्न हुई स्तनोंकी कैपकैपीको बलेश दूर करनेवाले प्रिय पतिके करतलके स्पर्शसे दूर करती थी ॥११७॥ अशोकबृक्षजी॑ कलीके साक्षसाथ कहुते॑ लहि हुई शत्रुघ्नी मंजरीको धारण करती हुई वह सुभद्रा वसन्तऋतुमें चम्पाके फूलोंसे गुंथी हुई चोटीसे बहुत ही अधिक सुशोभित हो रही थी ॥११८॥ वसन्तऋतुमें मधुके मदसे जिसकी आँखें कुछ-कुछ लाल हो रही हैं और जिसकी गति कुछ-कुछ लड़खड़ा रही है – स्खलित हो रही है ऐसी उस सुभद्राको भरत महाराज मूर्तिमती मदकी शोभाके समान बहुत कुछ मानते थे ॥११९॥ वह वसन्तऋतु सन्तुष्ट होकर भ्रमरोंकी सुन्दर झंकार और कोकिलाओंकी कमनीय कूकसे मानो राजा भरतकी सुन्दर स्तुति ही करता था ॥१२०॥ कोयलोंके सुन्दर शब्दोंसे मिली हुई भ्रमरोंकी झंकारसे ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेवने तगड़ोंके साथ अकस्मात् आक्रमण ही किया हो – छापा ही मारा हो ॥१२१॥ फूले हुए आमके बनोंसे जो अत्यन्त सुगन्धित हो रहा है, जिसमें कमलोंके समूह फूले हुए हैं और जिसने समस्त दिशाएँ सुगन्धित कर दी हैं ऐसा वह वसन्तका चैत्र मास चारों ओर फैल रहा था ॥१२२॥ ऋमरसमूहको झंकारको हरण करनेवाला, चारों ओर फिरता हुआ मल्यसमीर ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेवरूपी राजाके शासनकी घोषणा ही कर रहा हो ॥१२३॥ उस समय सन्ध्याकालकी लालीसे कुछ लाल हुई चन्द्रमाकी कलाको लोग ऐसा मानते थे मानो जगत्को निगलनेवाले कामदेवरूपी राक्षसकी रबतसे भीगी हुई भयंकर ढाँढ़ ही हो ॥१२४॥ जिसमें कोयल और भ्रमर सभी उन्मत्त हो जाते हैं ऐसे उस वसन्तके समय कामदेवके साथ द्रोह करनेवाले मुनियोंको छोड़कर और कोई ऐसा भनुष्य नहीं था जो उन्मत्त न हुआ हो ॥१२५॥ सायंकालके समय जलमें अवगाहन करनेसे जो स्वच्छ किये गये हैं और जो बर्फके समान शीतल हैं ऐसे अपने समस्त अंगोंसे वह सुभद्रा श्रीष्मकालमें कामके सन्तापसे सन्ताप हुए भरतके शरीरको शान्त करती थी ॥१२६॥ जिसकी शरीररूपी सुन्दर लतापर धिसे हुए चन्दनका लेप किया गया है ऐसी अपनी प्रिया सुभद्राको भरत महाराज दोनों हाथोंसे गाढ़ आलिंगन कर अपना शरीर शान्त करते थे ॥१२७॥ जो कामज्वरके सन्तापसे पीड़ित हो रही है और जिसे श्रीष्मकालकी तोड़ गरमी विलकुल ही सहन

१ बधनमती ल० । २ खचितैः । ३ वसन्ते । ४ स्त्रीति स्म । ५ तोपेणैव । ६ कोकिला । ७ मिथितैः ।  
 ८ प्रकटोक्तियते स्म । ९ कामकालयाटीः । १० पुष्टप्रवृत्त । पुष्टचूत-इ०, अ०, ४०, स०, द०, ल० ।  
 ११ वसन्तः । १२ आज्ञाम् । १३ लोकभक्षकहृप । १४ रुधिरलिङ्काम् । १५ कामधातुकान् । १६ सन्ध्याकाल-  
 जलप्रवेण्यशद्दैः । १७ उण्ठ परिहृत्य दीर्घं चकारेत्यर्थः । १८ आलिङ्ग्य । १९ शरीरसुखम् । २० असहमानाम् ।

उक्तुलमलिकामोदवाहिभिर्गन्धे वा हिमिः । सैसार्थप्रातिकैर्मेजे द्युतिं रतिसुखाहरैः<sup>१</sup> ॥ १२६॥  
 उक्तुलपाटलोद्गन्धि मलिकामालभारिणीम्<sup>२</sup> । उपगृह्ण<sup>३</sup> प्रियां प्रेमणा नैदाधीं<sup>४</sup> सोऽनयज्जिशाम् ॥ १२७॥  
 सा घनस्तनितव्याजात् तर्जितेव मनोसुखा ॥ भुजोपपीडमालिष्य<sup>५</sup> शिश्ये पत्या तपात्यये<sup>६</sup> ॥ १२८॥  
 नवाम्बुकलुषाः पूरा ध्वनिस्तमदकेकिनाम् । कदम्बामोदिनो वासाः कामिना<sup>७</sup> ईतयेऽभवन् ॥ १२९॥  
 आरुढकालिकां पश्यन् वलाकामालभारिणीम् । घनाली पथिकः साश्रुदिशी मेनेऽनधकारिताः ॥ १३०॥  
 पारारञ्जुमिरानद्वा वागुरेव<sup>८</sup> प्रसारिता । रोधाय पथिकैणानां<sup>९</sup> लुध्वकेनेव हृतुच ॥ १३१॥  
 कृतावधिः प्रियो नागादगाच्च जलदागमः । हत्युदीक्ष्य<sup>१०</sup> घनाम्<sup>११</sup> काच्छिद् हृषि शून्याऽभवत् सर्वी ॥ १३२॥  
 विभिन्दन्<sup>१२</sup> केतकीसूचीस्तत्पासूनाकिरन्मरुत् । पान्थानां ईहिरोधाय धूलिक्षेपमिषाकरेत् ॥ १३३॥  
 हत्यभ्यर्णतमे लस्मिन् काले जलदमालिनि । स वासभवने रस्ये प्रियासरमयन्तुहुः ॥ १३४॥  
 आकृष्टनिचुलामोद<sup>१३</sup> तद्वक्त्रामोदमाहरन् । तत्याः हतनतदीत्यसंगे सोऽनैर्षीद् वार्षिकीं<sup>१४</sup> निशाम् ॥ १३५॥  
 स रेषे शारदारम्भे विहरन् कान्तया समम् । घनेष्वमिनवोद्भिरसपच्छद्वसुगन्धिषु ॥ १३६॥

नहीं हो सकती ऐसी उस सुभद्राको महाराज भरत अपने शरीरके स्पर्शसे उत्पन्न हुए सुखरूपी जलसे शान्त करते थे ॥ १२८॥ खिली हुई मालतीकी सुगन्धको धारण करनेवाले तथा रति-समयमें सुख पहुँचानेवाले सार्थकाल और प्रातःकालकी वायुके द्वारा चक्रवर्ती भरत बहुत ही अधिक सन्तोष प्राप्त करते थे ॥ १२९॥ फूले हुए गुलाबकी सुगन्धयुक्त मालतीकी मालाओंको धारण करनेवाली उस सुभद्राको आलिंगन कर महाराज भरत बड़े प्रेमसे ग्रीष्मकालकी रात व्यतीत करते थे ॥ १३०॥ वर्षाक्रितुमें मेघोंकी गर्जनाके बहानेसे मानो कामदेवने जिसे घृड़की दिखाकर भयभीत किया है ऐसी वह सुभद्रा भुजाओंसे आलिंगन कर पतिके साथ शयन करती थी ॥ १३१॥ उस वर्षाक्रितुमें नर्य जलसे मालन हुए नदियोंके प्रवाह, उन्मत्त मयूरोंके शब्द और कदम्बके फूलोंकी सुगन्धिसे युक्त वायु ये सब कामी लोगोंके सन्तोषके लिए थे ॥ १३२॥ जिसपर कालिमा ढायी हुई है और जो बगुलाओंको पंचितको धारण कर रही है ऐसी मेवभालाको देखते हुए पथिक बांसू डालते हुए दिशाओंको अन्धकारपूर्ण मानते थे ॥ १३३॥ उस वर्षाक्रितुमें जो जलकी धाराएँ पड़ती थीं उनसे रस्सियोंके समान व्याप्त हुई यह पृथिवी ऐसी जान पड़नी थी मानो कामदेवरूपी शिकारीने पथिकरूपी हिरण्योंको रोकनेके लिए जाल ही फैलाया हो ॥ १३४॥ जो आनेकी अवधि करके गया था ऐसा पति अबतक नहीं आया और यह वर्षाक्रितु आ गयी इस प्रकार बादलोंको देखकर कोई पतित्रता स्वी अपने हृदयमें शून्य हो रही थी अथवा चिन्तासे उसकी विचारशब्दित नष्ट हो गयी थी ॥ १३५॥ केतकीकी बौद्धियोंको भेदन करता हुआ और उनकी धूलको वारों ओर बिखेरता हुआ वायु ऐसा जान पड़ता था मानो पथिकोंकी दृष्टि रोकनेके लिए घूलि ही उड़ा रहा हो ॥ १३६॥ इस प्रकार उस वर्षाकालमें जब बादलोंके समूह अत्यन्त निकट आ जाते थे तब चक्रवर्ती भरत अपने मनोहर महलमें प्रिया सुभद्राको बार-बार प्रसन्न करता था—उसके साथ क्रीड़ा करता था ॥ १३७॥ जिसने पानीमें उत्पन्न होनेवाले बैंतकी सुगन्धि खोंच ली है ऐसे उस सुभद्राके मुखकी सुगन्धको ग्रहण करता हुआ चक्रवर्ती उसके स्तनतटके समीप हीं वर्षाक्रितुकी रात्रि व्यतीत करता था ॥ १३८॥ शरदक्रितु-

१ पदनं: १,२ संघाकालप्रभातकालभेदैः । ३ रतिसुखकरैरित्यर्थः । ४ विभ्रतीम् । ५ आलिङ्गन । उपगृह्ण व०, ४०, द० । उपगृह्ण अ०, ल०, स० । ६ निदावसंबन्धिनीम् । ७ भुजाभ्यां पीडवित्वा । ८ वर्षकिले । ९ संतोषाय । १० मृगनन्धिनी । ११ पान्थमृगाणाम् । १२ आलोक्य । १३ यनानन्तस्तेषे प्रोपितभतृका द० । १४ अद्यान् । १५ हिञ्जुल । ‘निचुलो हिञ्जुलोऽन्मुजः’ इत्यभिधानात् । १६ वर्षाकालसंबन्धिनीम् ।

स कान्तो रमयामास हारज्योन्नाश्रितस्तनीम् । शारदी निर्विशन् उवीक्षा सौधोन्नसेपु हारिषु ॥ १४० ॥  
 सोत्पला<sup>१</sup> कुबजकैर्णवा<sup>२</sup> माला चूडान्तलम्बिनीम् । आळा पत्युरुसंगाम्भेने बहुरतिष्ठियम् ॥ १४१ ॥  
 इति सोत्पर्वमेवास्था प्रथयन् प्रेमनिष्ठताम्<sup>३</sup> । स रेमे रतिसाम्भतो<sup>४</sup> भोगाङ्गदेशाधोदितैः ॥ १४२ ॥  
 मस्त्रा निधयो दिव्याः<sup>५</sup> पुरं शश्यासने चमूः । नाड्यं सभाजने<sup>६</sup> भोग्यं बाहनं चेति तानि वै ॥ १४३ ॥  
 दशाङ्गमिति भोगाङ्ग निर्विशन् स्वाक्षितं<sup>७</sup> भवम् ।<sup>८</sup> स चिरं पालयामास सुवर्मकोष्ठवारणाम्<sup>९०</sup> ॥ १४४ ॥  
 घोडशास्त्र्य सहस्राणि गणबद्धामरा<sup>११</sup> प्रभोः । ये युक्ता शृतनिष्ठिवा निधिरतात्मरक्षणे ॥ १४५ ॥  
 श्रितिसारे<sup>१२</sup> इति ख्यातः प्रकारोऽस्य गृहाशृतिः । गोपुरं सर्वतोभद्रं प्रोल्लसद्रकृतौरणम् ॥ १४६ ॥  
 नन्द्यावतो निवेशोऽस्य शिविरस्यालच्छीयसः । प्राप्ताद्वै वैजयन्तालयो यः सर्वत्र सुखावहः ॥ १४७ ॥  
 दिक्स्त्रस्तिका सभाभूमिः परार्थमणिकुहिमा । तस्य चक्रमणी<sup>१३</sup> यहि<sup>१४</sup> सुविधिर्मणिनिर्मिता ॥ १४८ ॥  
 गिरिकूटकमित्यासीत् लौर्यं दिवाकलोपार्थो<sup>१५</sup> । वर्णलस्त्रात्मिकान्तर्मुखं<sup>१६</sup> प्रेषण्टुइम्भृद्युषिमोः ॥ १४९ ॥  
 घमान्तोऽस्य<sup>१७</sup> महानामीद् धारागृहसमाह्यः । गृहकूटकमित्युच्चैर्षवायः प्रभोरभूत् ॥ १५० ॥  
 पुष्करावस्त्वंभित्यं च हर्ष्यमस्त्र्य सुधासितम् । कुवेरकान्तमित्यासीद् भाष्टागारं यदक्षयम् ॥ १५१ ॥

के प्रारम्भमें वह चक्रवर्ती, जिनमें नवीन खिले हुए सप्तच्छुद वृक्षोंकी सुगन्ध फैल रही है ऐसे बनोंमें अपनी स्त्रीके साथ विहार करता हुआ क्रीड़ा करता था ॥ १४३ ॥ राजभवनकी मनोहर छतोंपर शरदकृतुकी चाँदनीका उपभोग करता हुआ वह चक्रवर्ती हारकी कान्तिसे जिसके स्तन सुशोभित हो रहे हैं ऐसी प्रिया सुभद्राको प्रसन्न करता था – उसके साथ क्रीड़ा करता था ॥ १४० ॥ जब कभी रानी सुभद्रा पतिके वक्षस्थलपर लेट जाती थी उस समय उसकी चोटीके अन्त भागसे लटकती हुई नील कमलयुक्त भद्रतरणीके फूलोंसे गुम्फित मालाको वह रतिकी लक्ष्यमें समान मानती थी ॥ १४१ ॥ इस प्रकार इस सुभद्रादेवीमें प्रेमकी परवशताको अच्छी तरह प्रकट करता हुआ और रतिसुखके अधीन हुआ वह चक्रवर्ती दश प्रकारके कहे हुए भोगोंके विरकाल तक जिसपर एक ही छत्र है ऐसी पृथिवीका पालन किया ॥ १४४ ॥ चक्रवर्ती भरतके ऐसे सोलह हजार गणबद्ध देव थे जो कि तलवार धारण कर निधि, रत्न और स्वर्य उनकी रक्षा करनेमें सदा तत्पर रहते थे ॥ १४५ ॥ उनके घरकी धेरे हुए श्रितिसार नामका कोट था और देदीग्रामान रत्नोंके लोरणोंसे युक्त सर्वतोभद्र नामका गोपुर था ॥ १४६ ॥ उनकी बड़ी भारी छावनीके ठहरनेका स्थान नन्द्यावर्त नामका था और जो सब ऋतुओंमें सुख देनेवाला है ऐसा वैजयन्ता नामका महल था ॥ १४७ ॥ बहुभूल्य मणियोंसे जड़ी हुई दिक्स्त्रस्तिका नामकी सभाभूमि थी और टहलनेके समय हाथमें लेनेके लिए मणियोंकी बनी हुई सुविधि नामकी लकड़ी थी ॥ १४८ ॥ सब दिशाएँ देखनेके लिए गिरिकूटक नामका राजमहल था और उन्हीं चक्रवर्तीके नृत्य देखनेके लिए वर्धमानक नामकी नृत्यशाला थी ॥ १४९ ॥ उन चक्रवर्तीके गरमीको नष्ट करनेवाला धारागृह नामका बड़ा भारी स्थान था और वर्षाक्रितुमें निवास करनेके लिए बहुत ऊँचा गृहकूटक नामक महल था ॥ १५० ॥ चूनासे सफेद हुआ पुष्करावर्त नामका

१ 'कुञ्जिका भद्रतरणी बृहत्प्रशातिकेशरा । महासहा' इति धन्वन्तरि । २ रचितम् । ३ रतिश्वासमानामिति ।  
 ४ 'कुञ्जिका भद्रतरणी बृहत्प्रशातिकेशरा । महासहा' इति धन्वन्तरि । ५ स्नेहाधीमताम् । ६ रत्यर्थीनः । ७ देवयः ४०, ल०,  
 'पश्युहरस्यस्प स्थिता संजिद्वति स्म सा' प०, ल० । ८ स्नेहाधीमताम् । ९ रत्यर्थीनः । १० एकच्छत्राम् । ११ श्रितिसार इति  
 प० । १२ भाजनसहितम् । १३ स्वस्य तृप्तिजनकम् । १४ सुविधिर्मणिनामा । १५ दिवाकलोकार्थम् । १६ नृत्य-  
 नामा । १७ आलिङ्गभूमिः, आम्बोलनभूमिरित्यर्थः । १८ सुविधिनामा । १९ दिवाकलोकार्थम् । २० नृत्य-  
 नामा । २१ घर्षन्तसंक्षाम् ।

वसुधारकमित्यासीत् कोषागारं महात्म्यम् । जीमूतनामधेयं च मज्जनागारसुर्जितम् ॥१५२॥  
 रक्षमालाऽसिरोचिह्नणुर्बूद्वास्यावत्सिका । देवरम्येति रम्या या मता दृष्ट्यकृती पृथुः ॥१५३॥  
 मिहवाहित्यभूक्तया सिंहेश्वरा भवानकैः । मिहामृतमयोऽस्योच्चृणैर्निम्नाऽन्यनुत्तरम् ॥१५४॥  
 चामराण्युपमामाने<sup>१</sup> अत्यन्तानुपमान्यमाने<sup>२</sup> । विजयार्द्धकुमारेण विनीणनि निर्धाशिने ॥१५५॥  
 भास्त्रतस्यैप्रभं तस्य बभूदातपवारणम् । परार्थरवनिर्माणं जितसूर्यशतप्रमम् ॥१५६॥  
 नात्रा विद्युत्प्रभे चास्य हृचिरे मणिकुण्डले । जित्रा ये<sup>३</sup> वैदुनी<sup>४</sup> दीसि हृचाने सुहरस्त्रिया ॥१५७॥  
 रवांशुजनिलास्तस्य पादुका विषमोचिका<sup>५</sup> । परेणो पदमस्यवादि सुद्धन्ययो विषसुलवणम् ॥१५८॥  
 अभेद्यात्यमभूतस्य तनुत्राणं प्रभास्त्ररम् । द्विषतां शरनाशैर्यदभेयं महाहवे ॥१५९॥  
 रथोऽजिनञ्जयो नास्ता जयलक्ष्मीभरोद्धुः । यत्र शास्त्राणि जैश्राणि दिव्यान्यामननेकदः ॥१६०॥  
 चण्डाकाण्डाशनिप्रख्यज्याघाताऽक्षिप्ताखिलम् । जितवैत्यामरं तस्य वज्रकाण्डमभूत्तुः ॥१६१॥  
 अमोदप्रदात्यस्तन्यास्तद्वद्विषेषत्यामहेऽप्यत्यर्थस्त्राध्यजये चक्री कृतक्षाधी रणाङ्गये ॥१६२॥  
 अचण्डा वज्रतुण्डामया शक्तिस्यारित्विष्टमी । बभूव वज्रनिर्माणास्त्राध्या विजयेऽपि या ॥१६३॥  
 कुन्तः मिहाउको नाम यः मिहवपरांकुरः । स्वर्धते स्म निशाताश्रो मणिदण्डःअग्रमण्डः ॥१६४॥

खास महल था और कुबेरकान्त नामका भाण्डारगृह था जो कभी खाली नहीं होता था ॥१५१॥  
 वसुधारक नामका बड़ा भारी अटूट कोठार था और जीमूत नामका बड़ा भारी स्नानगृह था ॥१५२॥ उस चक्रवर्तीके अवतंसिका नामकी अत्यन्त देवीप्यमान रत्नोंकी माला थी और देवरम्या नामकी बहुत बड़े सुन्दर चौदंती थी ॥१५३॥ भयंकर सिंहोंके द्वारा धारण की हुई सिंहवाहिनी नामकी शश्या थी और गुण तथा नाम दोनोंसे अनुत्तर अर्थात् उत्कृष्ट बहुत ऊंचा सिंहासन था ॥१५४॥ जो विजयार्द्धकुमारके द्वारा निधियोंके स्वामी चक्रवर्तीके लिए समर्पित किये गये थे ऐसे अनुपमान नामके उनके चमर उपमाको उल्लंघन कर अत्यन्त मुशोभित हो रहे थे ॥१५५॥ उस चक्रवर्तीके बहुमूल्य रत्नोंसे बना हुआ और सैकड़ों सूर्यकी प्रभाको जीतनेवाला सूर्यप्रभ नामका अतिशय देवीप्यमान छश्य था ॥१५६॥ उनके देवीप्यमान कान्तिके धारक विद्युत्प्रभ नामके दो ऐसे सुन्दर कुण्डल थे जो कि विजलीकी दीप्तिको पराजित कर सुषोभित हो रहे थे ॥१५७॥ महाराज भरतके रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त हुई विषमोचिका नामकी ऐसी खड़ाओं थीं जो कि दूसरेके पैरका स्पर्श होते ही भयंकर विष छोड़ने लगती थीं ॥१५८॥ उनके अभेद्य नामका कवच था जो कि अत्यन्त देवीप्यमान था और महायुद्धमें शत्रुओंके तीक्ष्ण वाणोंसे भी बेदन नहीं किया जा सकता था ॥१५९॥ विजयलक्ष्मीके भारको धारण करनेवाला अजितंजय नामका रथ था जिसपर शत्रुओंको जीतनेवाले अनेक दिव्य शस्त्र रखे रहते थे ॥१६०॥ असमयमें होनेवाले प्रचण्ड वज्रपातके समान जिसकी प्रत्यंचाके आघातसे समस्त संसारका कैप जाता था और जिसने देव, दानव - सभीको जीत लिया था ऐसा वज्रकाण्ड नामका अनुष उस चक्रवर्तीके पास था ॥१६१॥ जो कभी व्यर्थ नहीं पड़ते ऐसे उसके अमोघ नामके बड़े-बड़े बाण थे । इन बाणोंके द्वारा ही चक्रवर्ती जिसमें विजय पाना असाध्य हो ऐसे युद्धस्थलमें प्रशंसा प्राप्त करता था ॥१६२॥ राजा भरतके शत्रुओंको खण्डित करनेवाली वज्रतुण्डा नामकी दक्षित थी, जो कि वज्रकी बनी हुई थी और इन्द्रको भी जीतनेमें प्रशंसनीय थी ॥१६३॥ जिसकी नोक बहुत तेज थी, जो मणियोंके बने हुए डण्डेके अग्रभागपर सुषोभित

१ पट्टकुटी २ उपमाप्रमाणम् । ३ भान्ति स्म । ४ कुण्डले । ५ विद्युतसंबन्धिनीम् । ६ विषसोचिकासंज्ञा ।  
 ७ महाशरीः । ८ मणिमयदण्डाद्यं मण्डनम् अलंकारो यस्य ।

तत्प्राप्ति<sup>१</sup> पुत्रिका दीप्रा रथानदरस्फुरल्लहुः । लोहवाहिन्यं भूमाम्ना जयश्रीकृपणायिसा ॥१६४॥  
करपोऽस्य<sup>२</sup> मनोवेगो जयश्रीप्रणयावहः । द्विषत्कुलकुलझ्माँ भद्रलमे योऽशर्मायितः ॥१६५॥  
सीनन्दकार्यमस्याभूद्यित्वं स्फुरद्युति । यस्मिन् करतलारुद्दे द्रोलास्तमिवाखिलम् ॥१६६॥  
प्रापूर्णतमुख खेदं विसोभूतसुखाक्षितम् । स्फुरताऽऽजीमुखे येन हिंषो मृत्युसुखाचितम् ॥१६७॥  
चक्ररत्नम् भूमिणोदेवचक्राक्षमग्रक्षमम् । नाम्ना सुदर्शनं दीप्रा यद्गुरुर्ज्ञमरसिभिः ॥१६८॥  
दक्षाश्वस्य देवगारुदो दण्डोऽभूतकिणः पृथुः । स यस्य विनियोगोऽभूत् विलकण्टकशोधने ॥१६९॥  
नाम्ना वद्ममवं दिव्यं चर्मरत्नमभूद् विभोः । तद्भर्त बहुलाधानाभिस्तीर्णे जलविरलवास ॥१७०॥  
मणिशूद्धामणिनाम चिन्तारत्नमनुराधैऽभूद् जालशूद्धामशेषाद् चित्तं येत्युद्दिग्मलः ॥१७१॥  
सा चिन्ताजननीत्यस्य काकिणी भास्वराऽभवत् । या रूप्यात्रिगुहाध्वान्तविनिर्देवकदीपिका ॥१७२॥  
चमूपतिरथोध्यारुदो नृत्यमभवत् प्रभोः । समरेऽरिजयाद्यास्य रोदसी च्यानशो यशः ॥१७३॥  
बुद्धिसागरनामास्य पुरोधाः पुरुषीरभूत् । धर्मर्त्त्वाय यद्ग्रायसा प्रतीकारोऽपि दीपिकं ॥१७४॥  
सुधीर्गृहपतिनाम्ना कामबृहिरभीष्मदः । व्ययोप॑ व्ययविन्तायरं निषुक्तो यो निर्धायिनः<sup>३</sup> ॥१७५॥

हो रहा था और जो सिंहके नाखूनोंके साथ स्पर्धी करता था ऐसा उनका सिंहाटक नामका भाला था ॥१६४॥ जो अत्यन्त देवीप्रयमान थी, जिसकी रत्नोंसे जड़ी हुई मूठ बहुत ही चमक रही थी, और जो विजयलक्ष्मीके दर्पणके समान जान पड़ती थी ऐसी लोहवाहिनी नामकी उनकी छुरी थी ॥१६५॥ मनोवेग नामका एक कण्प (अस्त्रविशेष) था जो कि विजयलक्ष्मीपर प्रेम करनेवाला था और शत्रुओंके वंशरूपी कुलाचलोंको खण्डित करनेके लिए वज्रके समान था ॥१६६॥ भरतके सौनन्दक नामकी श्रेष्ठ तलवार थी जिसकी कान्ति अत्यन्त देवीप्रयमान हो रही थी और जिसे हाथमें लेते ही यह समस्त जगत् ज्ञूलामें बैठे हुएके समान कौप उठता था ॥१६७॥ उनके भूतोंके मुखोंसे चिह्नित भूतमुख नामका खेट (अस्त्रविशेष) था, जो कि युद्धके प्रारम्भमें चमकता हुआ शत्रुओंके लिए मृत्युके मुखके समान जान पड़ता था ॥१६८॥ उन विजयी चक्रवर्तीके सुदर्शन नामका चक्र था, जो कि समस्त दिशाओंपर आक्रमण करनेमें समर्थ था, देवीप्रयमान था और जो शत्रुओंके द्वारा देखा भी नहीं जा सकता था ॥१६९॥ जिसका नियोग गुफाके कटि वर्गरह शोधनेमें था ऐसा घण्डवेग नामका बहुत भारी प्रचण्ड (भयकर) दण्ड उस चक्रवर्तीके था ॥१७०॥ भरतेश्वर महाराजके वज्रमय चर्मरत्न था, वह चर्मरत्न, कि जिसके बलसे उनकी सेना जलके उपद्रवसे पार हुई थी – बची थी ॥१७१॥ उनके चूडामणि नामका वह उत्तम चिन्तामणि रत्न था जिसने कि जगत्के चूडामणि-स्वरूप महाराज भरतका चित अनुरक्त कर लिया था ॥१७२॥ चिन्ताजननी नामकी वह काकिणी थी जो कि अत्यन्त देवीप्रयमान हो रही थी और जो विजयार्थं पर्वतकी गुफाओंका अन्धकार दूर करनेके लिए मुख्य दीपिकाके समान थी ॥१७३॥ उन प्रभुके अयोध्य नामका सेतापति था जो कि मनुष्योंमें रत्न था और युद्धमें शत्रुओंको जीतनेसे जिसका यश आकाश और पृथिवीके बीच व्याप्त हो गया था ॥१७४॥ समस्त धार्मिक कियाएँ जिसके अधीन थीं और दैविक उपद्रव होनेपर उनका प्रतिकार करना भी जिसके आश्रित था ऐसा बुद्धिसागर नामका महाबुद्धिमान् पुरोहित था ॥१७५॥ उनके कामबृहि नामका गृहपति रत्न था, जो कि अत्यन्त बुद्धिमान् था, इच्छानुसार सामग्री देनेवाला था तथा जो चक्रवर्तीके छोटे-बड़े सभी खचोंकी

१ क्षुरिका । 'स्थाच्छस्थी चासिपुरी च क्षुरिका चासिधेनुका ।' इत्यभिषानात् । २ मूष्टिः । 'त्सरः लड्गादि-मूष्टिः स्याद्' इत्यभिषानात् । ३ कण्वोऽस्य ल० । ४ पर्वत । ५ निस्तरणमकरोत् । ६ आय । ७ आक्रिणः ।

रत्नं सप्ततिरथस्य वास्तुविद्यापदातर्थीः । नाशा भद्रमुखोऽनेकप्रासादघटसे पदुः ॥ १५७ ॥  
 शैलोदयो महानस्य यागहस्तीक्ष्मस्तमदः । भद्रो गिरिचरः<sup>१</sup> शुभ्रो नाशा विजयपर्वतः ॥ १५८ ॥  
 पवनस्य जयन् वेगं हयोऽस्य पवनंजयः । विजयार्हगुहोरसङ्गं हेलया यो व्यलङ्घयस् ॥ १५९ ॥  
 प्रायुक्तवर्णं चास्य स्त्रीरत्नं रुद्रनामकम् । एवक्षीर्मधुरं लङ्घं लोकविमिश्रपिंश्च ॥ १६० ॥  
 रत्नान्येतानि दिव्यानि च भूतुष्टकवर्तिनः । देवताकृतरक्षणि यात्यलङ्घयानि विद्विषाम् ॥ १६१ ॥  
 आनन्दिन्द्योऽचिन्तिष्ठोषा भेदोऽस्य द्वावशामवन् । द्विषष्ठीजनमापूर्वं स्वैर्वनिष्ठाः प्रदद्वनुः ॥ १६२ ॥  
 आसन् विजयधोषाख्याः पद्मा द्वावशामपरे । गृहकेकिभिरुद्धीर्वैः सानन्दं श्रुतनिःस्वनाः ॥ १६३ ॥  
 गम्भीरावर्त्तनामानः शक्ता गम्भीरनिःस्वनाः । व्युत्विंशतिरस्यासन् शुभाः पुण्यादिष्ठसंभवाः ॥ १६४ ॥  
 कटका रत्ननिर्माणा विभीर्वाराङ्गदाङ्गयाः । रेणुः प्रकोष्ठमावेष्य तदिद्वलयविभ्रमाः ॥ १६५ ॥  
 पताकाकोटयोऽस्याएवचन्वार्तिष्ठामा मताः । मरुप्रेक्षुलिं तोष्प्रेक्षुद्वंशुक्षुन्मृष्टलक्षणाः ॥ १६६ ॥  
 महाकल्याणकं नाम दिव्याशनमभूद् विभोः । कल्याणाङ्गस्य येनास्य वृसिपुष्टीबलान्विते ॥ १६७ ॥  
 भक्षाश्वामृतगमर्तिया रुद्यास्त्वादाः सुगन्धितः । नान्दे<sup>२</sup> जरयितु<sup>३</sup> शक्ता यान् गरिष्ठसोक्तटान् ॥ १६८ ॥  
 स्वादं<sup>४</sup> चामृतकरुद्यालयं हृद्यास्त्वादं सुसंस्कृतम् । रसायनसं विष्वं पानकं चामृताङ्गयम् ॥ १६९ ॥

चिन्तामें नियुक्त था ॥ १७० ॥ मकान बनानेकी विद्यामें जिसकी बुद्धि प्रवेश पाये हुई है और जो अनेक राजभवनोंके बनानेमें चतुर है ऐसा भद्रमुख नामका उनका शिलाघटरत्न ( इंजीनियर ) था ॥ १७१ ॥ जो पर्वतके समान ऊँचा था, बहुत बड़ा था, पूज्य था, जिससे मद झर रहा था, भद्र जातिका था और जिसका गर्जन उत्तम था ऐसा विजयपर्वत नामका सफेद हाथी था ॥ १७२ ॥ जिसने विजयाधर्पर्वतकी गुफाके मध्यभागको लीलामात्रमें उल्लंघन कर दिया था ऐसा वायुके वेगको जीतनेवाला पवनंजय नामका घोड़ा था ॥ १७३ ॥ और जिसका वर्णन पहले कर चुके हैं, जिसका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो स्वभावसे ही मधुर है और जो किसी अन्य रसायनके समान हृदयको आनन्द देनेवाला है ऐसा सुभद्रा नामका स्त्रीरत्न था ॥ १७४ ॥ इस प्रकार चक्रवर्तीके ये दिव्य रत्न ये जिनकी देव लोग रक्षा किया करते थे, और जिन्हें शत्रु कभी उल्लंघन नहीं कर सकते थे ॥ १७५ ॥ उस चक्रवर्तीके समुद्रके समान गम्भीर आवाजवाली आनन्दिनी नामकी बारह भेरियाँ थीं जो अपनी आवाजको बारह योजन दूर तक फैलाकर बजती थीं ॥ १७६ ॥ इनके सिद्याय बारह नगाड़े और ये जिनकी आवाज धरके मयूर ऊँची गरदन कर बड़े आनन्दके साथ सुना करते थे ॥ १७७ ॥ जिनकी आवाज अतिशय गम्भीर है, जो शुभ है, और पुण्यरूपी समुद्रसे उत्पन्न हुए हैं ऐसे गम्भीरावर्त नामके चौबीस शंख थे ॥ १७८ ॥ उस प्रभुके रत्नोंके बने हुए वीरांगद नामके कड़े थे जो कि हाथकी कलाईको धेरकर सुलोभित हो रहे थे और जिनकी कान्ति विजलीके कड़ोंके समान थी ॥ १७९ ॥ वायुके ऊँकोरेसे उड़ते हुए कपड़ोंसे जिन्होंने आकाशरूपी आंगनको छाड़कर साफ कर दिया है ऐसी उसकी अड़तालीस करोड़ पताकाएँ थीं ॥ १८० ॥ महाराज भरतके महाकल्याण नामका दिव्य भोजन था जिससे कि कल्याणमय शरीरको धारण करनेवाले उनके बलसहित तृप्ति और पुष्टि दोनों ही होती थीं ॥ १८१ ॥ जो अत्यन्त गरिष्ठ रससे उत्कट हैं, जिन्हें कोई अन्य पचा नहीं सकता तथा जो रुचिकर, स्वादिष्ट और सुगन्धित है ऐसे उसके अमृतगर्भं नामके भक्ष्य अर्थात् खाने योग्य मोदक आदि पदार्थ थे ॥ १८२ ॥ जिनका स्वाद हृदयको अच्छा

१ वास्तुविद्यास्थाने स्त्रीकृतबुद्धिः । २ पूज्य । ३ गिरिवरः ल०, प० । ४ चलनेनोच्चलत् । ५ आहारेण ।  
 ६ पुरुषाः । ७ जीर्णोकर्तुम् । ८ अतिगृह । ९ कमुकदाङ्गिमादि । “ओदनाद्यशनं, स्वादं तामूलादि,  
 जलादिकम् । पेयं, स्वादमपूर्वादं, त्यज्यान्येतानि शक्तिकैः ।”

पुण्यकल्पसोरासन् फलान्वेतानि चक्रिणः । यान्धनन्योपमोग्यानि भोगाङ्गान्यतुलानि च ॥१८०॥  
 पुण्याद् विना कुतस्तादग्रूपसंपदनीष्टिरी । पुण्याद् विना कुतस्तादग्राम्यं गात्रवन्धनम् ॥१८१॥  
 पुण्याद् विना कुतस्ताद्द्विषित्राद्विष्टजिता । पुण्याद् विना कुतस्तादग्रिभाष्मादिपरिष्ठदः ॥१८२॥  
 पुण्याद् विना कुतस्तादग्रान्तःपुरमहोदयः । पुण्याद् विना कुतस्तादग्रदग्नाङ्गे भोगसंभवः ॥१८३॥  
 पुण्याद् विना कुतस्तादग्राज्ञीपालिधलक्षिती । पुण्याद् विना कुतस्तादग्रज्ञश्रीजित्वरी दिशाम् ॥१८४॥  
 पुण्याद् विना कुतस्तादक्षप्रतापः प्रणतामरः । पुण्याद् विना कुतस्तादग्रुष्णोगो लक्षितार्णवः ॥१८५॥  
 पुण्याद् विना कुतस्तादक्षमाभवं त्रिष्णगज्जयि । पुण्याद् विना कुतस्तादक्षं नगरज्जयोऽसवः ॥१८६॥  
 पुण्याद् विना कुतस्तादक्षस्तकारं स्तखृतोऽधिकः । पुण्याद् विना कुतस्तादक्षं सरिहेष्यमिष्वेचनम् ॥१८७॥  
 पुण्याद् विना कुतस्तादक्षखचराचलनिर्जयः । पुण्याद् विना कुतस्तादग्रमलाभोऽन्यतुलभः ॥१८८॥  
 पुण्याद् विना कुतस्तादग्रायतिर्मरतेऽस्थिले । पुण्याद् विना कुतस्तादक्षं कार्तिर्दिक्तटलक्षिती<sup>१</sup> ॥१८९॥  
 ततः<sup>२</sup> पुण्योदयोद्भूतां मत्वा अक्षभूतः त्रियम् । चित्तुष्वं भो शुधाः पुण्यं चरण्यं सुखसंपदाम् ॥२००॥

लगनेवाला है और मसाले वगैरहसे जिनका संस्कार किया गया है ऐसे अमृतकल्प नामके उनके स्वाद्य पदार्थ थे तथा रसायनके समान रसीला अमृत नामका दिव्य पानक अर्थात् वीने योग्य पदार्थ था ॥१८९॥ चक्रवर्तीके ये सब भोगोपभोगके साधन उसके पुण्यरूपी कल्पवृक्षके फल थे, उन्हें अन्य कोई नहीं भोग सकता था और वे संसारमें अपनी बराबरी नहीं रखते थे ॥१९०॥

पुण्यके विना चक्रवर्तीके समान अनुपमं रूपसम्पदा कैसे मिल सकती है ? पुण्यके विना वैसा अभेद्य शरीरका बन्धन कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना अतिशय डल्कृष्ट निधि और रत्नोंकी ऋद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है ? पुण्यके विना वैसे हाथी, घोड़े आदिका परिवार कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना वैसे अन्तःपुरका वैभव कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना दस प्रकारके भोगोपभोग कहाँ मिल सकते हैं ? पुण्यके विना द्वीप और समुद्रोंको उल्लंघन करनेवाली वैसी आज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है ? पुण्यके विना दिशाओंको जीतनेवाली वैसी विजयलक्ष्मी कहाँ मिल सकती है ? पुण्यके विना देवताओंको भी नम्र करनेवाला वैसा प्रताप कहाँ प्राप्त हो सकता है ? पुण्यके विना समुद्रको उल्लंघन करनेवाला वैसा उद्योग कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना तीनों लोकोंको जीतनेवाला वैसा प्रभाव कहाँ हो सकता है ? पुण्यके विना हिमवान् देवके द्वारा किया हुआ वैसा अधिक सत्कार कहाँ मिल सकता है ? विना पुण्यके नदियोंकी अधिष्ठात्री देवियोंके द्वारा किया हुआ वैसा अभिवेक कहाँ हो सकता है ? पुण्यके विना विजयार्थं पर्वतको जीतना कैसे हो सकता है ? पुण्यके विना अन्य मनुष्योंको दुर्लभ वैसे रत्नोंका लाभ कहाँ हो सकता है ? पुण्यके विना समस्त भरतक्षेत्रमें वैसा सुन्दर विस्तार कैसे हो सकता है ? और पुण्यके विना दिशाओंके किनारेको उल्लंघन करनेवाली वैसी कीर्ति कैसे हो सकती है ? इसलिए है पण्डित जन, चक्रवर्तीकी विभूतिको पुण्यके उदयसे उत्पन्न हुई मानकर उस पुण्यका संचय करो जो कि समस्त सुख और सम्पदाओंकी दुकानके समान

<sup>१</sup> हिमवद्विग्निः २ हिमवद्विग्निः ३ गद्यासिन्युदेवी ४ धनाममः प्रसादो वा ५ लम्भिती इ० ६ ततः कारणात् ।

## शार्दूलविकीर्णितम्

इत्याविष्टुतसंपदो विजयिनस्तस्याविलक्ष्मा भूता-

स्फीलामप्रतिशासनो प्रथयतः षट्खण्डराज्यश्रियम् ।

कालोऽनक्षयतरोऽप्यगात् क्षण इव प्राक् पुण्यकर्मोदया-

दुद्भूतैः प्रमदावहैः वहृतुर्जमौगैरतिस्वादुमि: ॥२०१॥

नानारकं निधानं देशविलसस्तसंपत्तिगुर्वामिमाः

साम्राज्यश्रियमेकमोगनियतां<sup>१</sup> कृष्णाऽखिलां पालयन् ।

योऽभूतैव किलाकुलः कुलवधूमेकामिवाङ्गस्थिताः

सोऽयं चक्रघरोऽभुतकृ<sup>२</sup> भुवममूर्मेकातपत्रां चिरम् ॥२०२॥

यज्ञाम्ना सरतावनित्वमगमते षट्खण्डभूता<sup>३</sup> मही

येनां<sup>४</sup> सेतुहिमादिरक्षितमिदं क्षेत्रं हृतारिक्षयम् ।

यस्याविनिर्विरक्षयसंपदुचिता लक्ष्मीहरःशायिनी

स श्रीमान् भरतेश्वरो निषिद्धुजामग्रेसरोऽभूत् प्रभुः ॥२०३॥

यः हत्यो जगतां स्वयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचिद्

ध्येयो योगिजनस्य यश न तरो भ्याता स्वयं कस्यचित् ।

यो नन्तृतपि<sup>५</sup> सेतुसुलतिमलं<sup>६</sup> नमतज्यपक्षे<sup>७</sup> स्थितः

स श्रीमान् जयताजगत् प्रयगुरुदेवः पुरुषावनः ॥२०४॥

है ॥१९१-२००॥ इस प्रकार जिसने सम्पदाएँ प्रकट की हैं, जिसने समस्त राजाओंको जीत लिया है, और जो दूसरेके शासनसे रहित अपने छह खण्डकी विस्तृत राज्यलक्ष्मीको निरन्तर फैलाता रहता है ऐसे उस चक्रवर्ती भरतका बड़ा भारी समय पूर्व पुण्यकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए, सब तरहका आनन्द देनेवाले और अत्यन्त स्वादिष्ठ छहों ऋतुओंके भोगोंके द्वारा क्षण-भरके समान व्यतीत हो गया था ॥२०१॥ अनेकों रत्नों, निधियों और देशोंसे मुशोभित हुई सम्पत्तिके द्वारा जो भारी गौरवको प्राप्त हो रही है ऐसी इस समस्त साम्राज्यलक्ष्मीको एक अपने ही उपभोग करनेके योग्य बनाकर उसका पालन करता हुआ जो चक्रवर्ती गोदमें बैठी हुई कुलवधूकी रक्षा करते हुएके समान कभी व्याकुल नहीं हुआ वह भरत एक छत्रवाली इस पृथिवीका चिरकाल तक पालन करता रहा था ॥२०२॥ छह खण्डोंसे विभूषित पृथिवी जिसके नामसे भरतभूमि नामको प्राप्त हुई, जिसने दक्षिण समुद्रसे लेकर हिमवान् पर्वत तकके इस क्षेत्रमें शत्रुओंका क्षय कर उसकी रक्षा की, तथा प्रकट हुई निधि और रत्न आदि सम्पदाओं-से योग्य लक्ष्मी जिसके बक्षःस्थलपर शयन करती थी वह प्रभु - श्रीमान् भरतेश्वर निधियोंके स्वामी अर्थात् चक्रवर्तियोंमें प्रथम और मुख्य चक्रवर्ती हुआ था ॥२०३॥ जो तीनों जगत्के जीवोंके द्वारा स्तुति करनेके योग्य हैं परन्तु जो स्वयं किसीकी स्तुति नहीं करते, बड़े-बड़े योगी लोग जितका ध्यान करते हैं परन्तु जो किसीका ध्यान नहीं करते, जो नमस्कार करनेवालोंको भी उन्नत स्थानपर ले जानेके लिए समर्थ हैं परन्तु स्वयं नमस्कार करने योग्य पक्षमें स्थित हैं अर्थात् किसीको नमस्कार नहीं करते, वे तीनों जगत्के गुरु अत्यन्त पवित्र श्रीमान् भगवान्

१ निधि । २ आत्मनः एकस्यैव भोगनियताम् । ३ पालयति स्म । ४ षट्खण्डालंकारा । ५ दक्षिणसमुद्रात् प्रारम्भ हिमवद्विग्निर्पर्यन्ताम् । ६ नमनशीलान् । ७ समर्थः । ८ नमनयोग्यपक्षे । स्वयं कस्यापि नन्ता नेत्यर्थः ।

यं नवा पुनरानन्ति न परं स्तुत्वा च यं नापरं  
भद्र्याः संस्तुवते ध्रयन्ति न परं यं संश्रिताः श्रेयसे ।  
य सत्कृत्य कृतादरं कृतधियः सत्कुर्वते नापरं  
स श्रीमान् बृष्टमो जिनो 'भवभयानकायतां तीर्थकृत ॥२०५॥

इत्यार्थे भगवज्ञनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्टुलक्षणमहापुराणसंग्रहे  
भरतेश्वराभ्युदयवर्णनं नाम सप्तत्रिशतम् पर्व ॥२५॥

बृषभदेव सदा जयवन्त रहे ॥२०४॥ भव्य लोग जिन्हें नमस्कार कर फिर किसी अन्यको नमस्कार नहीं करते, जिनकी स्तुति कर फिर किसी अन्यकी स्तुति नहीं करते, जिनका आश्रय लेकर कल्याणके लिए फिर किसी अन्यका आश्रय नहीं लेते, और बुद्धिमान् लोग जिनका सबने आदर किया है ऐसे जिनका सत्कार कर फिर किसी अन्यका सत्कार नहीं करते वे श्रीमान् बृषभ जिनेन्द्र तीर्थकर हम सबकी संसारके भयसे रक्षा करें ॥२०५॥

इस प्रकार आर्व नामसे प्रसिद्ध भगवज्ञनसेनाचार्यप्रणीत त्रिष्टुलक्षण महापुराणसंग्रहके  
भाषानुचाक्षरमें भरतेश्वरके वैभवका वर्णन करनेवाला यह  
संतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

## अष्टश्रिंशत्तमै पर्व

जयन्नयस्ति वाऽप्यागंगामिष्ठः सूक्ष्मोऽहंताम् । भूतान्धतमसा दीप्रा यास्त्वर्णोऽसुभवासिष्ठ ॥१॥  
 स जीवान् वृथनो मोहविष्टसुसमिदं जवान् । पटविष्टेषु<sup>१</sup> यद्विष्टा सदा समुदत्तिष्ठपत् ॥२॥  
 तं नवा परमं उयोतिष्ठेषु वीरमन्वतः । द्विजन्मनामधोत्पत्ति वक्ष्ये श्रेणिक भोः शृणु ॥३॥  
 भरतो भारतं वर्ष<sup>२</sup> निर्जित्य सह पार्थिवैः । वष्ट्या वर्षसहस्रैस्तु दिशां निवृते जयात् ॥४॥  
 कृतकृत्यस्त तस्यान्तश्चिन्तेयमुदपचात् । परार्थं संपदासमाकी सोपयोगा कथं भवेत् ॥५॥  
 महामहमहं कृत्वा जिनेन्द्रस्य महोदयम् । प्रीणामि जगद्विष्टं विष्वग्<sup>३</sup> चिश्चाणयन् धनम् ॥६॥  
 नानगारा च सून्यस्मद् प्रतिगृहित निःस्पृहाः । सागारः कलमः<sup>४</sup> पूज्यो धनाधार्थसमृद्धिमिः ॥७॥  
 येऽप्युव्रतधरा धीरा धौरेया<sup>५</sup> गृहमेधिनाम् । लर्यणीया हि तेऽस्मामिर्दिष्टतैर्वंसुवाहनैः ॥८॥  
 हति निश्चित्य राजेन्द्रः सत्कर्तुमुक्तितानिमान् । परीचिक्षियुराहास्त तत्रा सर्वान् महीभुजः ॥९॥  
 सदाचारैनिजैरिहैरनुजीविभिरभिताः । अथास्मदुत्सवे यूथमायावेति<sup>६</sup> पृथक् पृथक् ॥१०॥  
 हरितैरहुर्मुद्योः पुष्टैः फलैश्चाकीर्णमङ्गणम् । संक्षेप्तुर्मुकुरतेषां परीक्षाहृत्वादेवमिष्ठः ॥११॥  
 तेष्ववता विना संगात्<sup>७</sup> प्राविक्षन् लृपमन्दिरम् । तानेकतः समुखसायं तेषानाहृत्यत् प्रसुः ॥१२॥

जो समस्त भाषाओंमें परिणत होनेवाली है, जिसने अज्ञानरूपी गाढ़ अन्धकारको नष्ट कर दिया है और जो सूर्यकी किरणोंके समान देदीप्यमान है वह अरहन्त भगवान्की मुन्द्र वाणी सदा जयवन्त हो ॥१॥ गाढ़ी विद्याके समान जिनकी विद्याने मोहरूपी विषसें सोये हुए इस समस्त संसारको बहुत शीघ्र जगा दिया वे भगवान् वृथभदेव सदा जयवन्त रहें ॥२॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक, मैं उन परमज्योति-स्वरूप भगवान् वृथभदेव तथा भगवान् महावीर स्वामीको नमस्कार कर अब यहाँसे द्विगोकी उत्पत्ति कहता हैं सो सुनो ॥३॥ भरत चक्रवर्ती अनेक राजाओंके साथ भारतवर्षको जीतकर साठ हजार वर्षमें दिग्बिजयसे बापस लौटे ॥४॥ जब वे सब कार्य कर चुके तब उनके चित्तमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि दूसरे-के उपकारमें मेरी इस सम्पदाका उपयोग किस प्रकार हो सकता है ? ॥५॥ मैं श्री जिनेन्द्रदेवका बड़े ऐश्वर्यके साथ भगवान् नामका यज्ञ कर धन वितरण करता हुआ समस्त संसारको सम्नुष्टु करूँ ? ॥६॥ सदा निःस्पृह रहनेवाले मुनि तो हम लोगोंसे धन लेते नहीं हैं परन्तु ऐसा गृहस्थ भी कौन है जो धन-धान्य आदि सम्पत्तिके द्वारा पूजा करनेके योग्य है ॥७॥ जो अणु-व्रतको धारण करनेवाले हैं, धीर वीर हैं और गृहस्थोंमें मुख्य हैं ऐसे पुरुष ही हम लोगोंके द्वारा इच्छित धन तथा सवारी आदिक वाहनोंके द्वारा तर्पण करनेके योग्य हैं ॥८॥ इस प्रकार निश्चय कर सत्कार करनेके योग्य व्यक्तियोंकी परीक्षा करनेकी इच्छासे राजराजेश्वर भरतने उस समय समस्त राजाओंको बुलाया ॥९॥ और सबके पास खबर भेज दी कि आप लोग अपने-अपने सदाचारी इष्ट मित्र तथा नौकर-चाकर आदिके साथ आज हमारे उत्सवमें अलग-अलग आवें ॥१०॥ इधर चक्रवर्तीने उन सबकी परीक्षा करनेके लिए अपने घरके आँगनमें हरे-हरे अंकुर, पुष्प और फल खूब भरवा दिये ॥११॥ उन लोगोंमें जो अवृती थे वे

१ सर्वभाषात्मिका इत्यर्थः । २ गाढ़विद्या । ३ क्षेत्रम् । ४ वितरन् । ५ कश्चन । ६ अणवता- ल० ।  
 ७ धूरीणः । ८ परीक्षितुमिष्ठः । ९ भृत्यैः । १० आगच्छत । ११ विचारात् प्रतिवन्धात् वा ।

ते तु हत्यतस्मिद्यथर्थमीहमानो<sup>१</sup> महन्तयाः । नैपुः<sup>२</sup> प्रवेशनं तावद् यावदाद्र्दकुरा<sup>३</sup> पथि ॥१३॥  
सधाभ्यैर्हरितैः कीर्णमनाकस्य नृपाङ्गणम् । निश्चकमुः<sup>४</sup> कृपालुहवात् केष्ठित् सावधमीरवः ॥१४॥  
कृतानुवन्वनो<sup>५</sup> भूयश्च क्रिणः किल तेऽनितकम् । प्रासुकेन पथादन्येन भेजुः कान्तवा नृपाङ्गणम् ॥१५॥  
प्राक् केन इतुना यूर्यं नायाताः पुत्रागताः । केन अत्तिपुष्टास्ते प्रत्यमापन्त चक्रिणम् ॥१६॥  
प्रवालपश्चपुरपादेः पर्वणि व्यपरोपणम्<sup>६</sup> । न कल्पतेऽथ तजानो<sup>७</sup> जन्तूनां नोऽनिद्रुहाम्<sup>८</sup> ॥१७॥  
सन्त्येवानन्तशो जीवा हरितेष्वङ्गुरानिपु । नियोता हृति सार्वज्ञो<sup>९</sup> देवास्मामिः शुरु वचः ॥१८॥  
तस्माद्यस्माभिराकास्तमप्त्वे<sup>१०</sup> त्वदगृहाङ्गणम् । कृतोपहारमाद्रिः<sup>११</sup> फलपुष्पाङ्गुरादिभिः ॥१९॥  
हृति तदूकनात् सर्वन् सोऽभिनन्द्य उक्तसात् । पूजयामास लक्ष्मीमारु<sup>१२</sup> दानमानादिसत्त्वैः ॥२०॥  
तेषां कृतानि चिह्नानि सूत्रैः पश्चाह्याजिधेः । <sup>१३</sup> उपासैर्वासूत्राहृतेकादशान्तकैः ॥२१॥  
गुणभूमिकृताद् भेदात्<sup>१४</sup> कृतस्थज्ञोपवीतिनाम्<sup>१५</sup> । सत्कारः कियते स्मैषामव्रताश्च वहिः कृताः ॥२२॥  
अथ तें कृतसन्त्यानाः चक्रिणा व्रतधारिणः । भजन्ति स्म परं दार्ढ्र्यं<sup>१६</sup> लोकश्चैनानाज्जयत् ॥२३॥  
इज्यां वार्ता च दत्ति च स्वाध्यायं संयमं तपः । श्रतोपासकसुग्रथात् स तेभ्यः समुपादिशत् ॥२४॥

बिना किसी सोच-विचारके राजमन्दिरमें घुस आये । राजा भरतने उन्हें एक ओर हटाकर बाकी बचे हुए लोगोंको बुलाया ॥१२॥ परन्तु बड़े-बड़े कुलमें उत्पन्न हुए और अपने ब्रतकी सिद्धिके लिए चेष्टा करनेवाले उन लोगोंने जबतक मार्गमें हरे अंकुरे हैं तबतक उसमें प्रवेश करनेकी इच्छा नहीं की ॥१३॥ पापसे डरनेवाले कितने ही लोग दयालु होनेके कारण हरे धान्योंसे भरे हुए राजाके आंगनका उल्लंघन किये बिना ही वापस लौटने लगे ॥१४॥ परन्तु जब चक्रवर्तीने उनसे बहुत ही आग्रह किया तब वे दूसरे प्रासुक मार्गसे राजाके आंगनको लौटाकर उनके पास पहुँचे ॥१५॥ आप लोग पहले किस कारणसे नहीं आये थे, और अब किस कारणसे आये हैं ? ऐसा जब चक्रवर्तीने उनसे पूछा तब उन्होंने नीने लिखे अनुसार उत्तर दिया ॥१६॥ आज पर्वके दिन कौपल, एते तथा पुष्प आदिका विधात नहीं किया जाता और न जो अपना कुछ बिगड़ करते हैं ऐसे उन कौपल आदिमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका भी विनाश किया जाता है ॥१७॥ हे देव, हरे अंकुर आदिमें अनन्त निगोदिया जीव रहते हैं, ऐसे सर्वज्ञ-देवके बचन हमलोगोंने सुने हैं ॥१८॥ इसलिए जिसमें गीले-गीले फल, पुष्प और अंकुर आदिसे शोभा की गयी है ऐसा आपके घरका आंगन आज हम लोगोंने नहीं खँदा है ॥१९॥ इस प्रकार उनके बचनोंसे प्रभावित हुए सम्पत्तिशाली भरतने ब्रतोंमें दृढ़ रहनेवाले उन सबकी प्रशंसा कर उन्हें दान मान आदि सत्कारसे सन्मानित किया ॥२०॥ पज्ज नामकी निधिसे प्राप्त हुए एकसे लेकर गयारह तककी संख्यावाले बहुसूत्र नामके सूत्रसे (व्रतसूत्रसे) उन सबके चिह्न किये ॥२१॥ प्रतिमाझोके द्वारा किये हुए भेदके अनुसार जिन्होंने यज्ञोपवीत धारण किये हैं ऐसे इन सबका भरतने सत्कार किया तथा जो ब्रती नहीं थे उन्हें वैसे ही जाने दिया ॥२२॥ अथानन्तर चक्रवर्तीने जिनका सन्मान किया है ऐसे ब्रत धारण करनेवाले वे लोग अपने-अपने ब्रतोंमें और भी दृढ़ताको प्राप्त हो गये तथा अन्य लोग भी उनकी पूजा आदि करने लगे ॥२३॥ भरतने उन्हें उपासकाध्ययनांगसे इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और

१ चेष्टमाताः । २ नेष्ठमिति स्म । ३ निर्गताः । ४ निर्वन्धा: । ५ मार्गेण । ६ हिसनम् । ७ प्रवालपश्चपुलादि-आतानाम् । ८ अस्माकम् । ९ अहिसकानाम् । १० सर्वज्ञस्येऽस्म । ११ इदानीम् । १२ नितरामाद्रिः । १३ वस्त्रादिदानसद्बचनादिपूजागत्कारिः । १४ स्वीकृतैः । १५ दार्ढ्र्यनिकादिगुणनिलयविहितात् । १६ कृत । १७ जनः ।

तपका उपदेश दिया ॥२४॥ यह इनका कुलधर्म है ऐसा विचार कर राजषि भरतने उस समय अनुक्रमसे अर्हतपूजा आदिका वर्णन किया ॥२५॥ वे कहने लगे कि अर्हन्त भगवानकी पूजा नित्य करनी चाहिए, वह पूजा चार प्रकारकी है सदाचर्चन, चतुर्मुख, कल्पद्रुप और आषाह्निक ॥२६॥ इन चारों पूजाओंमें से प्रतिदिन अपने घरसे गन्ध, पूष्प, अक्षत इत्यादि ले जाकर जिनालयमें श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना सदाचर्चन अर्थात् नित्यमह कहलाता है ॥२७॥ अथवा भक्तिपूर्वक अर्हन्तदेवकी प्रतिमा और मन्दिरका निर्माण कराना तथा दानपत्र लिखकर ग्राम खेत आदिका दान देना भी सदाचर्चन ( नित्यमह ) कहलाता है ॥२८॥ इसके सिवाय अपनी शक्तिके अनुसार नित्य दान देते हुए महामुनियोंकी जो पूजा की जाती है उसे भी नित्य-मह समझना चाहिए ॥२९॥ महामुकुटबद्ध राजाओंके द्वारा जो महायज्ञ किया जाता है उसे चतुर्मुख यज्ञ जानना चाहिए । इसका दूसरा नाम सर्वतोभद्र भी है ॥३०॥ जो चक्रवर्तियोंके द्वारा किमिच्छक ( मैहर्माण ) दान देकर किया जाता है और जिसमें जगत्के समस्त जीवों-की आशाएँ पूर्ण की जाती हैं वह कल्पद्रुप नामका यज्ञ कहलाता है । भावार्थ - जिस यज्ञमें कल्पवृक्षके समान सबकी इच्छाएँ पूर्ण की जावें उसे कल्पद्रुप यज्ञ कहते हैं, यह यज्ञ चक्रवर्ती ही कर सकते हैं ॥३१॥ चौथा आषाह्निक यज्ञ है जिसे सब लोग करते हैं और जो जगत्में अत्यन्त प्रसिद्ध है । इसके सिवाय एक ऐन्द्रध्वज महायज्ञ भी है जिसे इन्द्र किया करता है ॥३२॥ बलि अर्थात् नैवेद्य चढ़ाना, अभिषेक करना, तीनों सन्ध्याओंमें उपासना करना तथा इनके समान और भी जो पूजाके प्रकार हैं वे सब उन्हीं भेदोंमें अन्तर्भूत हैं ॥३३॥ इस प्रकारकी विधिसे जो जिनेन्द्रदेवकी महापूजा की जाती है उसे विधिके जाननेवाले आचार्य इत्या नामकी प्रथम वृत्ति कहते हैं ॥३४॥ विशुद्ध आचरणपूर्वक खेती आदिका करना वार्ता कहलाती है तथा दयादति, पात्रदति, समदति और अन्वयदति ये चार प्रकारकी दत्ति कही गयी हैं ॥३५॥

अनुग्रह करने योग्य प्राणियोंके समूहपर दयापूर्वक मत वचन कायकी शुद्धिके साथ उनके भय दूर करनेको पण्डित लोग दयादत्ति मानते हैं ॥३६॥ महातपस्त्री मुनियोंके लिए

१—तां नित्या सा ल० । २ नित्यमहः । ‘अच्चि पूजा च नित्यमहः’ । ३ भवतः किमिष्टयिति प्रशनपूर्वकं तदभिवाच्छिलस्य दानम् । ४ सर्वजने भवः । ५ प्रथमकल्पे भवास् । षट्कर्मसु प्रथमोक्तामित्यर्थः । ६ अनुष्ठानम् । ७ पजास्थानविषिष्टपूर्वकम् ।

समानायत्तमनाऽप्यरस्मै क्रियाभवत्वतादिभिः । निस्तारकोसमायेह भूहमायतिमर्जनम् ॥४६॥  
समानदृचिरेषा स्याद् पात्रे मध्यमतामिते<sup>१</sup> । समानप्रतिपत्त्येव प्रवृत्ता<sup>२</sup> श्रद्धयाऽन्विता ॥४७॥  
आत्मानव्यप्रतिष्ठार्थं सूनवे यदत्रेष्वतः । समं समविक्षाभ्यां<sup>३</sup> स्वप्यगस्यात्मिनर्जनम् ॥४८॥  
सैषा सकलदृचिः स्यात् स्वाध्यायः श्रुतभावना । तपोऽनशनवृत्त्यादि संयमो ग्रन्थधारणम् ॥४९॥  
विशुद्धा वृत्तिरेषां पद्मर्यादा द्विजमनाम् । योऽतिक्रमेदिमो सोऽज्ञो नार्जुन न गुणदिजः ॥५०॥  
तपः श्रुतं च जातिश्च त्रयं आग्रह्यकारणम् । तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिग्राहण यत्र तः ॥५१॥  
अपापोपहतां वृत्तिः स्यादेषां जातिरूचमा । वृत्तीज्यार्थीति<sup>४</sup> मुख्यत्वाद् वत्तशुद्धया सुसंस्कृता<sup>५</sup> ॥५२॥  
मनुष्यजातिरेषैव जातिनाभौदयोदया । वृत्तिभेदाहिताज्ञेदाचानुर्विष्यमिहाइनुते ॥५३॥  
श्राह्णा यससंस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्रधारणात् । वणिजोऽर्थार्जिनाभ्याध्यात् शूद्रा<sup>६</sup> न्यूनत्यन्वितं श्राह्ण ४५  
तपःश्रुताभ्यामेवातो<sup>७</sup> जातिसंस्कार हृष्यते । असंस्कृतस्तु यस्ताभ्यां जातिमात्रेण स द्विजः ॥५४॥  
द्विजातो हि द्विजन्मेष्टः क्रियामो गर्भतश्च यः । क्रियामन्त्रविहीनस्तु केवलं नामधारकः ॥५५॥  
सदेषां जातिसंस्कारं द्रव्यजिति सोऽधिराद् । स प्रोवाच द्विजमेष्टः क्रियाभेदानशेषतः ॥५६॥

सत्कारपूर्वक पद्मगाह कर जो आहार आदि दिया जाता है उसे पात्रदान कहते हैं ॥३७॥ क्रिया, मन्त्र और व्रत आदिसे जो अपने समान हैं तथा जो संसारसमुद्रसे पार कर देनेवाला कोई अन्य उत्तम गृहस्थ है उसके लिए पृथिवी सुवर्ण आदि देना अथवा मध्यम पात्रके लिए समान वृद्धिसे अद्भुतके साथ जो दान दिया जाता है वह समानदत्ति कहलाता है ॥३८-३९॥ अपने वंशकी प्रतिष्ठाके लिए पुत्रको समस्त कुलपढ़ति तथा घनके साथ अपना कुटुम्ब समरण करनकी संकलदत्ति कहते हैं । शास्त्रोंकी भावना ( चिन्तवन ) करना स्वाध्याय है, उपवास आदि करना तप है और व्रत धारण करना संयम है ॥४०-४१॥ यह ऊपर कही हुई छह प्रकारकी विशुद्ध वृत्ति इन द्विजोंके करने योग्य है । जो इनका उल्लंघन करता है वह मूर्ख नाममात्रसे ही द्विज है, गुणसे द्विज नहीं है ॥४२॥ तप, शास्त्रज्ञान और जाति ये तीन आह्यण होनेके कारण हैं, जो मनुष्य तप और शास्त्रज्ञानसे रहित है वह केवल जातिसे ही आह्यण है ॥४३॥ इन लोगोंकी आजीविका पापरहित है इसलिए इनकी जाति उत्तम कहलाती है तथा दान, पूजा, अध्ययन आदि कार्य मुख्य होनेके कारण व्रतोंकी शुद्धि होनेसे वह उत्तम जाति और भी सुसंस्कृत हो गयी है ॥४४॥ यद्यपि जाति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई मनुष्य जाति एक ही है तथापि आजीविकाके भेदसे होनेवाले भेदके कारण वह चार प्रकारकी हो गयी है ॥४५॥ व्रतोंके संस्कारसे आह्यण, शास्त्र धारण करनेसे क्षत्रिय, न्यायपूर्वक धन कमानेसे वैद्य और नीचे वृत्तिका आश्रय लेनेसे मनुष्य शूद्र कहलाते हैं ॥४६॥ इसलिए द्विज जातिका संस्कार तपश्चरण और शास्त्राभ्याससे ही माना जाता है परन्तु तपश्चरण और शास्त्राभ्याससे जिसका संस्कार नहीं हुआ है वह जातिमात्रसे द्विज कहलाता है ॥४७॥ जो एक बार गर्भसे और दूसरी बार क्रियासे इस प्रकार दो बार उत्पन्न हुआ हो उसे द्विजन्मा अथवा द्विज कहते हैं परन्तु जो क्रिया और मन्त्र दोनोंसे ही रहित है वह केवल नामको धारण करनेवाला द्विज है ॥४८॥ इसलिए इन द्विजोंकी जातिके संस्कारको दृढ़ करते हुए सम्राट् भरतेश्वरने द्विजोंके लिए नीचे लिखे अनुसार क्रियाओंके समस्त भेद कहे ॥४९॥

१ संसारसागरोत्तारक । २ दानम् । ३ मध्यमस्वं गते । ४ प्रवृत्त्या ल० । ५ सदर्मधनाभ्याम् । ६ गुणद्विजः ल०, अ०, प०, स०, इ० । ७ स्वाध्याय । ८ सुसंस्कृता सर्वी । ९ वर्तन । १० नीचवृत्ति । ११ अतः कारणात् ।

तात्र किया। शिष्याऽऽकाताः आवकाध्याय संग्रहे । सदृष्टिमिरनुषेया महोदकीः शुभावहा ॥५०॥  
 गमन्त्वयक्रियाश्रैव तथा दीक्षान्वयक्रियाः । कर्त्र्यन्वयक्रियाश्रेति तास्तिष्ठैव दुर्धर्मताः ॥५१॥  
 आधानादाच्छिपक्षाशज् शेया गमन्त्वयक्रियाः । चत्वारिंशद्व्याप्तौ च स्मृता दीक्षान्वयक्रियाः ॥५२॥  
 कर्त्र्यन्वयक्रियाश्रैव सप्त तज्जीः समुचिताः । तासां यथाक्रमं नामनिर्देशोऽयमनृतते ॥५३॥  
 अङ्गानां<sup>३</sup> लसमादग्राद् दुस्तरादर्णवादपि । शोकैरष्टाभिरुपेष्ये<sup>४</sup> प्राप्तं ज्ञानलक्षणं मया ॥५४॥  
 आधानं प्रतिलिपुप्रीती धृतिमौद्देशः प्रियोऽद्वयः । नामकर्मवहियनिषद्या प्राप्ताम् तथा ॥५५॥  
 व्युष्टिश्च<sup>५</sup> केशवापश्च लिपिसंख्यानसंग्रहः । उपर्नीतिर्वत्तं चर्या व्रतावतरणं सधा ॥५६॥  
 विवाहो वर्णलाभत्र कुलचर्या गृहीशिता । प्रशान्तिश्च गृहत्यागो दीक्षात्मं जिनरूपता ॥५७॥  
 मौनाध्ययनवृत्तत्वं तीर्थकृत्यस्य भावना । गुरुस्थानाभ्युपगमो गणोपग्रहणं तथा ॥५८॥  
 स्वगुरुस्थानसंक्रितिनिःसंगत्वात्मभावना । योगनिर्वाणसंभास्याप्तिः गमनिर्वाणसाधनम् ॥५९॥  
 ३१ इन्द्रोपपादाश्रितेको विधिदानं सुखादयः । इन्द्रजस्याभावतारौ च हिरण्योक्तुष्टजन्मता ॥६०॥  
 मन्दरेन्द्राभिषेकश्च गुरुपूजोपलम्भनम् । शौवराज्यं स्वराज्यं च चक्रलाभो दिशां जयः ॥६१॥  
 चक्राभिषेकसाक्षात्ये निष्क्रान्तियोगसंमहः । आर्हन्त्ये तद्विहारश्च योगत्यागोऽप्तिर्वृत्तिः ॥६२॥  
 व्रयः पञ्चाशदेता हि सता गमन्त्वयक्रियाः । गमन्त्वानादिनिवाणपर्यन्तताः परमागमे ॥६३॥  
 अवतारो वृत्तलाभः स्थानलाभो धृष्टयः । पूजाराध्यपुण्ययज्ञां दृढवर्योपयोगिता ॥६४॥  
 इत्युदिष्टाभिरुपसनात्यादयः<sup>६</sup> क्रियाः । चत्वारिंशत्वात्मभ्युक्तास्ताः स्युदीक्षान्वयक्रियाः ॥६५॥

उन्होंने कहा कि थावकाध्याय संग्रहमें वे क्रियाएँ तीन प्रकारकी कही गयी हैं, सम्यग्दृष्टि पुरुषोंको उन क्रियाओंका पालन अवश्य करना चाहिए क्योंकि वे सभी उत्तम फल देनेवाली और शुभ करनेवाली हैं ॥५०॥ गमन्त्वय क्रिया, दीक्षान्वय क्रिया और कर्त्र्यन्वय क्रिया इस प्रकार विद्वान् लोगोंने तीन प्रकारकी क्रियाएँ मानी हैं ॥५१॥ गमन्त्वय क्रियाएँ, आधान आदि तिरेपन जानना चाहिए और दीक्षान्वय क्रियाएँ अड़तालीस समझना चाहिए ॥५२॥ इनके सिवाय उस विषयके जानकार विद्वानोंने कर्त्र्यन्वय क्रियाएँ सात संग्रह की हैं । अब आगे यथाक्रमसे उन क्रियाओंका नाम निर्देश किया जाता है ॥५३॥ जो समुद्रसे भी दुस्तर है ऐसे बारह अंगोंमें सातवें अंग (उपासकाध्ययनांग) से जो कुछ मुझे ज्ञानका अंश प्राप्त हुआ है उसे मैं नीचे लिखे हुए आठ द्व्याकोंसि प्रकट करता हूँ ॥५४॥ १ आधान, २ प्रीति, ३ सुप्रीति, ४ धृति, ५ मोद, ६ प्रियोद्दूष, ७ नामक्रम, ८ बहिर्यनि, ९ निषद्या, १० प्राप्तान, ११ व्युष्टि, १२ केशवाप, १३ लिपि संख्यानसंग्रह, १४ उपर्नीति, १५ व्रतचर्या, १६ व्रतावतरण, १७ विवाह, १८ वर्णलाभ, १९ कुलचर्या, २० गृहीशिता, २१ प्रशान्ति, २२ गृहत्याग, २३ दीक्षाध्य, २४ जिनरूपता, २५ मौनाध्ययनवृत्तत्व, २६ तीर्थकृत्यभावना, २७ गुरुस्थानाभ्युपगम, २८ गणोपग्रहण, २९ स्वगुरुस्थानसंक्रान्ति, ३० निःसंगत्वात्मभावना, ३१ योगनिर्वाणसंप्राप्ति, ३२ योगनिर्वाणसाधन, ३३ इन्द्रोपपाद, ३४ अभिषेक, ३५ विधिदान, ३६ सुखोदय, ३७ इन्द्रत्याग, ३८ अवतार, ३९ हिरण्योक्तुष्टजन्मता, ४० मन्दरेन्द्राभिषेक, ४१ गुरुपूजोपलम्भन, ४२ शौवराज्य, ४३ स्वराज्य, ४४ चक्रलाभ, ४५ दिविजय, ४६ चक्राभिषेक, ४७ साम्राज्य, ४८ निष्क्रान्ति, ४९ योगसन्मह, ५० आर्हन्त्य, ५१ तद्विहार, ५२ योगत्याग और ५३ अग्निर्वृत्ति । परमागममें ये गमसे लेकर निर्वाणपर्यन्त तिरपन क्रियाएँ मानी गयी हैं ॥५५-६३॥ १ अवतार, २ वृत्तलाभ, ३ स्थानलाभ, ४ गणग्रह, ५ पूजाराध्य, ६ पुण्ययज्ञ, ७ दृढचर्या और ८ उपयोगिता इन्संकीर्तन । २ अनुवादयते । ३ -द्वादशाङ्गानाम् मध्ये । ४ उपासकाध्ययनात् । ५ उद्देशं करिष्ये इत्यर्थः । ६ अभ्युपगमः । ७ गमन्त्वयक्रियासु आदी त्रयोदशक्रियाः मुक्त्वा शेषा उपतीत्यादयः ।

तास्तु कर्त्तव्या ज्ञेया या: प्राप्या: पुण्यकर्त्तुभिः । फलस्वरूपतया वृत्ताः<sup>१</sup> सम्मार्गाराधनस्य वै ॥६६॥  
 सज्जातिः सद्गृहिष्वर्णं पारिव्राज्यं सुरेन्द्रता । साम्राज्यं परमार्हत्वं परनिवाणमित्यभिः ॥६७॥  
 स्थानान्यतानि सह स्युः परमाणि जगत्ये । अर्हद्वागमृतारबादात् प्रतिलभ्याति देहिमाम् ॥६८॥  
 क्रियाकल्पोऽयमामातो शुभेदो महर्षिभिः । संक्षेपतस्तु ललक्ष्म वश्ये संचक्षये<sup>२</sup> विस्तरम् ॥६९॥  
 आधानं नाम गमदी संस्कारो मन्त्रपूर्वकः । पर्वीसृतुमतीं ज्ञातां पुरस्कृत्याहौदित्यथा ॥७०॥  
 तत्राचेनविधीं चक्रत्वये छत्रव्याख्यितम् । जिनाचर्मभितः<sup>३</sup> स्थाप्यं समं पुण्यास्त्रिभिर्भिर्भिः ॥७१॥  
 त्रयोऽप्यथोऽर्हदगणन्तु चेष्टकेवलिनिर्वृत्तौ । ये हुतास्ते प्रणोतव्याः<sup>४</sup> सिद्धाचर्वेष्युपाश्रयाः<sup>५</sup> ॥७२॥  
 तेष्वर्हदिज्याशेषांशिराहुसिमं प्रपूर्विका । विषेया शुचिभिर्जन्म्यैः पुस्तुओष्ठपतिकार्ययाः<sup>६</sup> ॥७३॥  
 तन्मन्त्रास्तु यथाज्ञाय यक्ष्यन्ते इन्द्र्यत्र पर्वणि<sup>७</sup> । सप्तधा पीठिकाजातिमन्त्रादिप्रविमागतः ॥७४॥  
 विनियोगस्तु सत्रांसु क्रियास्वेषां<sup>८</sup> यतो जिनैः । अव्यामोहादतस्तद्द्वैः प्रयोज्यास्त<sup>९</sup> उपासकैः ॥७५॥  
 गर्भाधानक्रियामेना प्रयुज्यादौ यथाविधि । सन्तानार्थं विना शामाद् दम्पतिभ्यां<sup>१०</sup> त्यजेयताम् ॥७६॥

इति गर्भाधानम् ।

इन कही हुई आठ क्रियाओंके साथ उपनीति नामकी चौदहदों क्रियासे तिरपतवीं निवाण ( अग्निवृति ) क्रिया तककी चालीस क्रियाएं मिलाकर कुल अडतालीस दीक्षान्वय क्रियाएं कहलाती हैं ॥ ६४-६५ ॥ कर्त्तव्य क्रियाएं वे हैं जो कि पुण्य करनेवाले लोगोंको प्राप्त हो सकती हैं और जो समीचीन मार्गकी आराधना करनेके फलस्वरूप प्रवृत्त होती हैं ॥ ६६ ॥ १ सज्जाति, २ सद्गृहिष्वर्ण, ३ पारिव्राज्य, ४ सुरेन्द्रता, ५ साम्राज्य, ६ परमार्हत्व और ७ परनिवाण ये सात स्थान तीनों लोकोंमें उत्कृष्ट माने गये हैं और ये सातों ही अर्हन्त भगवान्के वचनरूपी अमृतके आसवादनसे जीवोंको प्राप्त हो सकते हैं ॥ ६७-६८ ॥ महर्षियोंने इन क्रियाओंका समूह अनेक प्रकारका माना – अनेक प्रकारसे क्रियाओंका वर्णन किया है परन्तु मैं यही विस्तार छोड़कर संक्षेपसे ही उनके लक्षण कहता हूँ ॥ ६९ ॥ चतुर्थ स्तानके द्वारा शुद्ध हुई रजस्वला पत्नी-को आगे कर गर्भाधानके पहले अर्हन्तदेवकी पूजाके द्वारा मन्त्रपूर्वक जो संस्कार क्रिया जाता है उसे आधान क्रिया कहते हैं ॥ ७० ॥ इस आधान क्रियाकी पूजामें जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमाके दाहिनी ओर तीन चक्र, बाईं ओर तीन छत्र और सामने तीन पवित्र अग्नि स्थापित करे ॥ ७१ ॥ अर्हन्त भगवान् ( तीर्थीकर ) के निवाणके समय, गणधरदेवोंके निवाणके समय और सामान्य केवलियोंके निवाणके समय जिन अग्नियोंमें होम क्रिया गया था ऐसी तीन प्रकारकी पवित्र अग्नियाँ सिद्ध प्रतिमाको वेदीके समीप ही तैयार करनी चाहिए ॥ ७२ ॥ प्रथम ही अर्हन्त देवकी पूजा कर चुकनेके बाद शेष बचे हुए पवित्र द्रव्यसे पुत्र उत्पन्न होनेकी इच्छा कर मन्त्रपूर्वक उन तीन अग्नियोंमें आहुति करनी चाहिए ॥ ७३ ॥ उन आहुतियोंके मन्त्र आगेके पर्वमें शास्त्रानुसार कहे जावेंगे । वे पीठिका मन्त्र, जातिमन्त्र आदिके भेदसे सात प्रकारके हैं ॥ ७४ ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवते इन्हीं मन्त्रोंका प्रयोग समस्त क्रियाओंमें बतलाया है इसलिए उस विषयके जनकार शाब्दिकोंको व्यामोह ( प्रमाद ) छोड़कर उन मन्त्रोंका प्रयोग करना चाहिए ॥ ७५ ॥ इस प्रकार कही हुई इस गर्भाधानकी क्रियाको पहले विधिपूर्वक करके फिर स्त्री-पुरुष दोनोंको विषयानुरागके बिना केवल सन्तानके लिए समाप्त करना चाहिए ॥ ७६ ॥ इस प्रकार यह गर्भाधान क्रियाकी विधि समाप्त हुई ।

१ प्रवतिताः । २ क्रियालक्षणम् । ३ वर्जयित्वा । ४ तत्र आदानक्रियायाम् । तत्राचर्तविधी ल० ।  
 ५ जिनदिमध्यस्य समतातः । ६ संस्कार्याः । ७ सिद्धप्रतिमाभिततिर्यग्वेविसमीपाश्रिताः । ८ अग्निषु । ९ वाऽन्तर्या ।  
 १० सर्ग । ११ मन्त्राणाम् । १२ मन्त्राः । १३ विधीयताम् ल० । व्यवीयताम् द० । अभिगम्यताम् ।

गभाधानात् परं मासे तृतीये मंधवत्तेते । प्रीतिर्नाम क्रिया प्रीतैर्याऽनुषेया द्विजम्भमिः ॥३५॥  
तत्रापि पूर्ववन्मन्त्रपूर्वा पूजा जिनेशिवाम् । हारि तीरणविः यासः पूर्णकुम्हौ च संमतौ ॥३६॥  
तदादि प्रत्यहे भैरवाच्छ्रद्धो घण्टाभवनान्वितः<sup>१</sup> । अथाविभवमेष्टैः प्रयोज्यो गृहमेष्टिमिः ॥३७॥

इति प्रीतिः ।

आधानात् पञ्चमे मासि क्रिया सुप्रीतिरिष्वते । या सुप्रीतैः प्रयोक्तव्या परमोपासकमतैः ॥३८॥  
तत्राप्युच्चो विधिः पूर्वः सर्वोऽहंद्विभवसशिष्यौ । कार्यो मन्त्रविधानज्ञैः साक्षीकृत्याभिदेवताः ॥३९॥

इति सुप्रीतिः ।

धृतिस्तु सप्तमे मासि कार्या तद्वक्तियाद्दैः । गृहमेष्टिमिरव्यप्रमलोभिर्गर्मवृद्धये ॥४०॥

इति धृतिः ।

नवमे मास्यतांभ्यज्ञे मांदा नाम क्रियाविधिः । तद्वेवाईतैः कार्यो गर्भपुष्टैः द्विजोत्तमैः ॥४१॥  
तत्रेष्टो गात्रिकावन्धो<sup>२</sup> मङ्गलये<sup>३</sup> च प्रसाधनम्<sup>४</sup> । रक्षासूत्रविधानं<sup>५</sup> च गमिष्या द्विजसत्तमैः ॥४२॥

इति मोदः ।

प्रियोद्धवः प्रसूतायां<sup>६</sup> जातकर्मविधिः समृतः । जिनजातकमात्याय प्रवस्यो चो यथाविधि ॥४३॥  
अवान्तरविशेषोऽत्र क्रियामन्त्रादिलक्षणः । भूयान्<sup>७</sup> समस्यसौ क्षेयो मूलोपासकमूलतः ॥४४॥

१ तदादि प्रत्यहे । २ गात्रेषु श्रीजाक्षराणां मन्त्रपूर्वकं त्यासः । ३ शोभनम् । ४ अलड्कारः । ५ रक्षार्थं

इति प्रियोद्धवः ।

गभधानके बाद तीसरे माहमें प्रीति नामकी क्रिया होती है जिसे सन्तुष्ट हुए द्विज लोग करते हैं ॥ ३३ ॥ इस क्रियामें भी पहलेकी क्रियाके समान मन्त्रपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिए, दरवाजेपर तोरण बाँधना चाहिए तथा दो पूर्ण कलश स्थापना करना चाहिए ॥ ३४ ॥ उस दिनसे लेकर गृहस्थोंको प्रतिदिन अपने वैभवके अनुसार घण्टा और तगड़े बजाने चाहिए ॥ ३५ ॥ यह दूसरी प्रीति क्रिया है ।

गभधानमें पांचवें माहमें सुप्रीति क्रिया की जाती है जो कि प्रसन्न हुए उत्तम श्रावकों-के द्वारा की जाती है ॥ ४० ॥ इस क्रियामें भी मन्त्र और क्रियाओंको जाननेवाले श्रावकोंको अग्नि तथा देवताकी साक्षी कर अर्हन्त भगवान्की प्रतिमाके समीप पहले कही हुई समस्त विधि करनी चाहिए ॥ ४१ ॥ यह तीसरी सुप्रीति नामकी क्रिया है ।

जिनका आदर किया गया है और जिनका चित्त व्याकुल नहीं है ऐसे गृहस्थोंको गर्भकी वृद्धिके लिए गर्भसे सातवें महीनेमें पिछली क्रियाओंके समान ही धृति नामकी क्रिया करनी चाहिए ॥ ४२ ॥ यह चौथी धृति नामकी क्रिया है ।

तदनन्तर नीवें महीनेके निकट रहनेपर मोद नामकी क्रिया की जाती है यह क्रिया भी पिछली क्रियाओंके समान आदरयुक्त उत्तम द्विजोंके द्वारा गर्भकी पुष्टिके लिए की जाती है ॥ ४३ ॥ इस क्रियामें उत्तम द्विजोंको गमिष्यीके शरीरपर गात्रिकावन्ध करना चाहिए अर्थात् मन्त्रपूर्वक वीजाक्षर लिखना चाहिए, मंगलमय आभूषणादि पहनाना चाहिए और रक्षाके लिए कंकणसूत्र आदि बाँधनेकी विधि करनी चाहिए ॥ ४४ ॥ यह पांचवीं मोदक्रिया है ।

तदनन्तर प्रसूति होनेपर प्रियोद्धव नामकी क्रिया की जाती है, इसका दूसरा नाम जातकर्म विधि भी है । यह क्रिया जिनेन्द्र भगवान्का स्मरण कर विधिपूर्वक करनी चाहिए ॥ ४५ ॥ इस क्रियामें क्रिया मन्त्र आदि अवान्तर विशेष कार्य बहुत भारी हैं इसलिए इसका पूर्ण जान मूलभूत उपासकाध्ययनाङ्गसे प्राप्त करना चाहिए ॥ ४६ ॥ यह छठवीं प्रियोद्धव क्रिया है ।

१ तदादि प्रत्यहे । २ गात्रेषु श्रीजाक्षराणां मन्त्रपूर्वकं त्यासः । ३ शोभनम् । ४ अलड्कारः । ५ रक्षार्थं कंकणसूत्रवन्धनविधानम् । ६ प्रसूतायां सत्याम् । ७ महान् ।

दादशाहात् परं नामकम् अन्मदिनान्मतम् । अनुकूले सुतस्यात्म्यं पित्रोरपि सुखावहे ॥८७॥  
यथाविमवमध्रेष्ट द्रेचर्विद्विजपूजनम् । शस्तं च नामधेयं तत् स्थाप्यमन्वयवृद्धिकृत् ॥८८॥  
अष्टोत्तरसहस्राद् वा जिननामकदम्बकान् । घटपत्रविधानेन ग्राहमन्यतमं शुभम् ॥८९॥

इति नामकम् ।

बहिर्यनि ततो 'द्वित्रैमसैषिचित्तुरैरुते' । यथानुकूलमिष्टद्विर्कार्यं सूर्यादिमङ्गलैः ॥९०॥  
ततः प्रभृत्यभीष्टं हि शिक्षोः प्रसववेशमनः<sup>३</sup> । बहिःप्रवयनं मात्रा धात्र्युत्सङ्गतस्य वा ॥९१॥  
तथा बन्धुजनादर्थलाभो यः पारितोषिकः<sup>४</sup> । स तस्योत्तरकाले<sup>५</sup> एवं धूर्णं पित्र्यं यदाप्यथति ॥९२॥

इति बहिर्यनिम् ।

ततः परं निष्ठात्म्य क्रिया बालस्य करण्यते । तथोपये तत्पूर्वा<sup>६</sup> आस्तीर्णे<sup>७</sup> कृतमङ्गलसंशिखौ ॥९३॥  
सिद्धार्चनादिकः सर्वो विधिः पूर्ववदत्र<sup>८</sup> च । यतो विष्ण्यासनाहृत्वमस्य स्यादुभरोसरम् ॥९४॥

इति निष्ठा ।

अन्मदिनसे बारह दिनके बाद, जो दिन माता पिता और पुत्रके अनुकूल हो, सुख देनेवाला हो उस दिन नामकर्मकी क्रिया की जाती है ॥८७॥ इस क्रियामें अपने वैभवके अनुसार अहंस्तदेव और ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिए, द्विजोंका भी यथायोग्य सल्कार करता चाहिए तथा जो वंशकी वृद्धि करनेवाला हो ऐसा कोई उत्तम नाम बालकका रखना चाहिए ॥८८॥ अथवा जिनेन्द्रदेवके एक हजार आठ नामोंके समूहसे घटपत्रकी विधिसे कोई एक शुभ नाम ग्रहण कर लेना चाहिए। भावार्थ – भगवान्के एक हजार आठ नामोंके एक हजार आठ कागजके टुकड़ोंपर अष्टगत्थसे सुवर्ण अथवा अनारकी कलमसे लिखकर उनकी गोली बना लेवे और पीले वस्त्र तथा नारियल आदिसे ढके हुए एक घड़में भर देवे, कागजके एक टुकड़ेपर 'नाम' ऐसा शब्द लिखकर उसकी गोली बना लेवे इसी प्रकार एक हजार सात कोरे टुकड़ोंकी गोलियाँ बनाकर इन सबको एक दूसरे घड़में भर देवे, अनन्तर किसी अबोध कन्या या बालकसे दोनों घड़ोंमें से एक-एक गोली निकलकाता जावे। जिस नामकी गोलीके साथ नाम ऐसा लिखी हुई गोली निकले वही नाम बालकका रखना चाहिए। यह घटपत्र विधि कहलाती है ॥८९॥ यह सातवीं नामकर्म क्रिया है।

तदनन्तर दो-तीन तीन-चार माहके बाद किसी शुभ दिन तुरही आदि मांगलिक बाजोंके साथ-साथ अपनी अनुकूलताके अनुसार बहिर्यनि क्रिया करनी चाहिए ॥९०॥ जिस दिन यह क्रिया की जावे उसी दिनसे माता अथवा धायकी गोदमें बैठे हुए बालकका प्रसूति-गृहसे बाहर ले जाना शास्त्रसम्मत है ॥९१॥ उस क्रियाके करते समय बालकको भाई बाल्डव आदिसे पारितोषिक – भेटरूपसे जो कुछ धनकी प्राप्ति हो उसे इकट्ठा कर, जब वह पुत्र पिताके धनका अधिकारी हो तब उसके लिए सौंप देवे ॥९२॥ यह आठवीं बहिर्यनि क्रिया है।

तदनन्तर, जिसके समीप मङ्गलद्रव्य रखे हुए हैं और जो बालकके योग्य हैं ऐसे विछाये हुए आसनपर उस बालककी निष्ठा क्रिया की जाती है अर्थात् उसे उत्तम आसनपर बैठा लेते हैं ॥९३॥ इस क्रियामें सिद्ध भगवान्की पूजा करना आदि सब विधि पहलेके समान ही करनी चाहिए जिससे इस बालककी उत्तरोत्तर विष्य आसनपर बैठनेकी योग्यता होती रहे ॥९४॥ यह नौवीं निष्ठा क्रिया है।

१ द्वौ वा त्रयो वा द्वित्रास्तीः । २ अथवा । ३ प्रसववेशमनः सकाशात् । ४ परितोषे भवः । ५ शश्याम् ।  
६ विस्तीर्णः । ७ निष्ठाक्रियाम् । ८ निष्ठाक्रियाम् ।

गते मात्रपृथक्त्वे<sup>१</sup> च जन्माद्यस्थे<sup>२</sup> यथाक्रमम् । अकाप्रशानमन्नातं पूजाविष्णुरःसरम् ॥१५॥

इति अकाप्रशानम् ।

ततोऽस्य हायने<sup>३</sup> पूर्णे व्युष्टिर्नाम क्रिया मना । वर्षवर्धनपर्यशाद्वाच्या यथाश्रुतम्<sup>४</sup> ॥१६॥

<sup>५</sup>अत्रापि पूर्ववहानं जीर्णा पूजा च पूर्ववत् । इष्टवन्धसमाहानं समाशादिश्च<sup>६</sup> लक्ष्यताम् ॥१७॥

इति शुद्धिः ।

केशवापस्तु केशानी शुभेऽद्विष्यप्रोपणम्<sup>७</sup> । क्षीरेण कर्मणा देवगुरुपूजापुरःसरम् ॥१८॥

गन्त्रोदकादिगान् कृच्छा केशान् शेषाक्षतोचितान् । मौणकृष्णस्थ विधेयं स्यात् सच्चलं<sup>८</sup> स्वाऽन्त्ययोचितम्<sup>९</sup> स्वपनोदकधीताहमनुलिङ्गं सभूषणम्<sup>१०</sup> । प्रणमस्य<sup>११</sup> सुनीन् पश्चाद् योजयेद् वन्धुनाशिषा<sup>१२</sup> ॥१००॥

चैलाङ्गया ग्रसीतैर्थं कृतपुण्याहमङ्गला । क्रियास्यामाहतो लोको यतते परया मुद्दा ॥१०१॥

इति केशवापः ।

ततोऽस्य पञ्चमे वर्षे प्रथमाक्षरदर्शने । ज्ञेयः क्रियाविधिर्नामा लिपिसंख्यानसंग्रहः ॥१०२॥

यथाविभवमन्नापि ज्ञेयः पूजापरिष्ठङ्गः । उपाध्यायपदे चास्य मतोऽधीती<sup>१३</sup> गृहवती ॥१०३॥

इति लिपिसंख्यानसंग्रहः ।

क्रियोपनीतिनामास्य वर्षे गर्भाद्यमे मता । यत्रापनीतकेशस्य मौञ्जी सवतस्यन्धना ॥१०४॥

जब क्रम-क्रमसे सात-आठ माह व्यतीत हो जायें तब अहंत भगवान्की पूजा आदि कर बालकको अप्न खिलाना चाहिए ॥१५॥ यह दसवीं अश्वप्राशन क्रिया है ।

तदनन्तर एक वर्ष पूर्ण होनेपर व्युष्टि नामकी क्रिया की जाती है इस क्रियाका दूसरा नाम शास्त्रानुसार वर्षवर्धन है ॥१६॥ इस क्रियामें भी पहले ही के समान दान देना चाहिए, जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करनो चाहिए, इष्टवन्धुओंको बुलाना चाहिए और सबको भोजन कराना चाहिए ॥१७॥ यह ग्यारहवीं व्युष्टि क्रिया है ।

तदनन्तर, किसी शुभ दिन देव और गुरुकी पूजाके साथ-साथ क्षीरकर्म अर्थात् उस्तरासे बालकके बाल बनवाना केशवाप क्रिया कहलाती है ॥१८॥ प्रथम ही बालोंको गत्थोदकसे गीला कर उत्तर पूजाके बने हुए शेष अक्षत रखे और फिर चोटी सहित अथवा अपनी कुलपद्मिके अनुसार उसका मुण्डन करना चाहिए ॥१९॥ फिर स्नान करानेके लिए लाये हुए जलसे जिसका समस्त शरीर साफ कर दिया गया है, जिसपर लेप लगाया गया है और जिसे उत्तम आभूषण पहनाये गये हैं ऐसे उस बालकसे मुनियोंको नमस्कार करावें, पश्चात् सब भाई, बन्धु उसे आशीर्वादिसे युक्त करें ॥२०॥ इस क्रियामें पुष्पाहमंगल क्रिया जाता है और यह चौल क्रिया नामसे प्रसिद्ध है इस क्रियामें आदरको प्राप्त हुए लोग बड़े हर्षसे प्रवृत्त होते हैं ॥२१॥ यह केशवाप नामकी बारहवीं क्रिया है ।

तदनन्तर पाँचवें वर्षमें बालकको सर्वप्रथम अक्षरोंका दर्शन करानेके लिए लिपिसंख्यान नामकी क्रियाकी जाती है ॥२२॥ इस क्रियामें भी अपने बैभवके अनुसार पूजा आदिकी सामग्री जुटानी चाहिए और अध्ययन करानेमें कुशल ब्रती गृहस्थको ही उस बालकके अध्यापकके पदपर नियुक्त करना चाहिए ॥२३॥ यह तेरहवीं लिपिसंख्यान क्रिया है ।

गर्भसे आठवें वर्षमें बालककी उपनीति ( यज्ञोपवीत धारण ) क्रिया होती है । इस क्रियामें केशोंका मुण्डन, व्रतवन्धन तथा मौञ्जीबन्धनकी क्रियाएँ की रै सप्ताष्टमासे । २ जन्मदिनात् प्रारम्भ । ३ संवत्सरे । 'संवत्सरो वत्सरोऽद्वौ हायनोऽस्त्री शरत् सम' इत्यमिधानात् । ४ शास्त्रानुसारेण । ५ तत्रापि ल० । ६ सहभोजनादिः । ७ अपनयनम् । ८ चूहासहितम् । शिवासत्रितमित्यर्थः । ९ वान्वयोचितम् ल० । चान्वयोचितम् द० । १० अलंकारपुस्तकशूम् । ११ मुनिस्यो नमनं कारयित्वा । १२ बन्धुममूहकृताशीर्वचनेन । १३ अशीतवान् ।

कृतार्हं वै जनस्यास्य मौञ्जीवन्धो जिनालये । गुहसाक्षिविधातव्यो व्रतापर्णुरस्सरम् ॥१०५॥  
किञ्चि सितांशुकः सान्तवासा॒ निवेष्विकियै॑ । अतचिह्नं दधत्स्यं॑ तदोक्तो ब्रह्मचार्यसी॑ ॥१०६॥  
चरणोचितमन्यच्च॑ नामधेयं तदस्य॑ वै । वृत्तिश्च भिक्षाऽप्यत्र राजम्यादुद्वैभवात् ॥१०७॥  
सोऽप्तः पुरे चरेत् पात्रां॑ नियोग इति केवलम् । तदप्य देवसाकृत्य॑ ततोऽज्ञं योग्यमाहरेत्॑ ॥१०८॥  
इन्द्र्यपर्वातिः ।

व्रतचर्यमितो॑ वक्ष्ये क्रियामस्योपविज्ञतः । कल्याणरूपशिरोलिङ्गमन्त्रवालवतोचितम् ॥१०९॥  
कटीलिङ्गं भवेदस्य मौञ्जीवन्धात्रिमिर्गुणैः । रत्नप्रितयशुद्धवर्णं तद्विच्छिन्नं द्विजात्मनाम् ॥११०॥  
तस्येष्टमूललिङ्गं॑ च सुर्वातसितशाटकम्॑ । आहंतानां कुलं पूर्वं विशाळं चेति सूचने ॥१११॥  
उरोलिङ्गमयास्य स्याद् ग्रथितं सत्तमिर्गुणैः । यज्ञोपवीतकं ग्रहपरमस्थानसूचकम् ॥११२॥  
शिरोलिङ्गं च तस्येष्टं पर्वत्याण्यमनाविलम्॑ । मौष्णिङ्गं मौञ्जीवत्त्वः कायरातमस्योपवृहत्य ॥११३॥  
एवं प्रायेण॑ लिङ्गेन विशुद्धं धारयेद् ग्रहम् । स्वूलहिसाविरस्यादि वैष्णवयोपवृहत्यम् ॥११४॥  
दन्तकाष्ठग्रहो नास्य न ताम्बूलं न चाम्बनम् । न हरिदादिभिः स्नानं शुद्धक्षानं दिनं प्रसिः ॥११५॥

जाती है ॥१०४॥ प्रथम ही जिनालयमें जाकर जिसने अर्हन्तदेवकी पूजा की है ऐसे उस वालकको व्रत देकर उसका मौञ्जीवन्धन करना चाहिए अर्थात् उसकी कमरमें भूजकी रसी बौधनी चाहिए ॥१०५॥ जो चोटी रखाये हुए है, जिसकी सफेद धोती और भूजकी रसी बौधनी चाहिए ॥१०५॥ जो वेष और विकारोंसे रहित है, तथा जो व्रतके चिह्नस्वरूप यज्ञोपवीत सफेद दुपट्ठा है, जो वेष और विकारोंसे रहित है, तथा जो व्रतके चिह्नस्वरूप यज्ञोपवीत सूत्रको धारण कर रहा है ऐसा वह वालक उस समय ब्रह्मचारी कहलाता है ॥१०६॥ उस सूत्रको धारण कर रहा है ऐसा वह वालक उस समय ब्रह्मचारी कहलाता है ॥१०६॥ उस समय उसके आचरणके योग्य और भी नाम रखे जा सकते हैं। उस समय बड़े वैभवशाली समय उसके आचरणके योग्य और भी नाम रखे जा सकते हैं। उस समय भी अन्तराजपुत्रको छोड़कर सबको भिक्षावृत्तिसे ही निर्वाह करना चाहिए और राजपुत्रको भी अन्तराजपुत्रमें जाकर माता आदिसे किसी पात्रमें भिक्षा माँगनी चाहिए, क्योंकि उस समय भिक्षा लेनेपुरमें जाकर माता आदिसे किसी पात्रमें भिक्षा माँगनी चाहिए, क्योंकि उस समय भिक्षा लेनेपुरमें जाकर माता आदिसे किसी पात्रमें भिक्षा माँगनी चाहिए, क्योंकि उस समय भिक्षा लेनेपुरमें जाकर माता आदिसे किसी पात्रमें भिक्षा माँगनी चाहिए, क्योंकि उस समय भिक्षा लेनेपुरमें जाकर माता आदिसे किसी पात्रमें भिक्षा माँगनी चाहिए ॥१०७-१०८॥ यह चौदहवीं उपनीति क्रिया है ।

अथानन्तर ब्रह्मचर्य व्रतके योग्य कमर, जाघ, वक्षःस्थल और शिरके चिह्नको धारण करनेवाले इस ब्रह्मचारी वालककी व्रतचर्या नामकी क्रियाका वर्णन करते हैं ॥१०९॥ तीन लरकी भूजकी रसी बौधनेसे कमरका चिह्न होता है, यह मौञ्जीवन्धन रत्न-त्रयकी विशुद्धिका अंग है और द्विज लोगोंका एक चिह्न है ॥११०॥ अस्थन्त धुली हुई सफेद धोती उसकी जाघका चिह्न है, वह घोसी यह सूचित करती है कि अरहन्त भगवान्का कुल पवित्र और विशाल है ॥१११॥ उसके वक्षःस्थलका चिह्न सात लरका गुणा हुआ यज्ञोपवीत है, यह यज्ञोपवीत सात परमस्थानोंका सूचक है ॥११२॥ उसके शिरका चिह्न स्वच्छ और उत्कृष्ट मुण्डन है जो कि उसके मन, वचन, कायके मुण्डनको बढ़ानेवाला है। भावार्थ - शिर मुण्डनसे मन, वचन, काय पवित्र रहते हैं ॥११३॥ प्रायः इस प्रकारके चिह्नोंसे विशुद्ध और ब्रह्मचर्यसे बड़े हुए स्थूल हिसाका त्याग (अहिंसाणु ग्रन्त) आदि व्रत उसे धारण करना चाहिए ॥११४॥ इस ब्रह्मचारीको वृक्षकी दातीन नहीं करनी चाहिए, न पान खाना चाहिए, न अंजन लगाना चाहिए और न हल्वी आदि लगाकर स्नान करना चाहिए, उसे प्रतिदिन केवल

१ अन्तर्वस्त्रेण सहितः । २ वेषविकाररहितः । ३ यज्ञदूजम् । ४ वर्तनायोग्यम् । ५ तदास्य ल० । ६ राजम्यः ।  
७ पात्रे भिक्षां प्रायथेविद्यर्थः । ८ भिक्षाप्लम् । ९ देवस्य चर्त्त समर्पणः । १० शेषान्त्रं भूजजीत । ११ -महा-  
ल० । १२ ब्रह्मचर्यव्रत । १३ घवलवस्त्रम् । १४ उषणीषादिरहितम् । १५ एवं प्रकारेण ।

८ व्यद्वाशत्रनं तस्य नाम्ना अपरिघटनम् । भूमा केवलमेकाकी अर्थात् व्रतशुद्धये ॥ ११६ ॥  
 यात्र द्विद्वासमभासिः स्यात् तावदस्येदशं व्रतम् । ततोऽप्युपर्वं व्रतं तत् स्याद् सन्मूलं गृहमेघिनाम् ॥ ११७ ॥  
 मूर्वमांपामिकं चास्य स्यादध्येयं गुरोमुख्यात् । विनयेन ततोऽन्यच्च शास्त्रमध्यात्मगोचरम् ॥ ११८ ॥  
 शब्दविद्याऽर्थजाज्ञादि॑ चाध्येयं नास्य ॒दुर्यजि॑ । मुसंस्कारप्रथोधाय॑ वैद्यात्मव्यवस्थेऽपि च ॥ ११९ ॥  
 ३ ज्योतिज्ञानमथरुहन्दोज्ञानै॑ ज्ञानं च शाकुनम् । ४ मंग्ल्याज्ञानमितीन् च तेजाध्येयं विशेषतः ॥ १२० ॥  
 इति व्रतचर्या ।

५ ततोऽस्याधीतविद्यास्य ६ व्रतशूद्ध्यव्रतारणम् । विशेषविधयं तत्त्वं हितस्योन्मणिकं व्रते ॥ १२१ ॥  
 ७ मधुमांसपरित्यागः पञ्चोदुम्बरवर्जनम् । हिंसादिविरतिशास्य व्रतं स्यात् शार्वकालिकम् ॥ १२२ ॥  
 ८ व्रतावतरणं चेदं गुह्याक्षिकृताच्छेनम्<sup>१</sup> । वस्त्राद् द्रादशादृष्ट्यमध्यवा षोडशान् परम् ॥ १२३ ॥  
 ९ कृतद्विजार्चनस्यास्य व्रतावतरणोचितम् । वज्ञाभरणमाल्यादिग्रहणं गुर्वनुज्ञया ॥ १२४ ॥  
 १० शब्दोपज्ञाविवर्ग्यश्चेदै॑ धारयेद्वद्वलमप्यदः । ११ रुद्रस्तिपरिक्षार्थै॒ शोभार्थै॒ चास्य तद्व्रह्मः ॥ १२५ ॥  
 १२ भोगव्याप्रतादेवमत्तीर्णो भवेत्तदा । कामव्यापत्तं<sup>२</sup> रुद्रस्य तात्रदावक्षियोन्नरा<sup>३</sup> ॥ १२६ ॥  
 इति व्रतावतरणम् ।

जलसे शुद्ध स्नान करना चाहिए ॥ ११५ ॥ उसे खाट अथवा पलंगपर नहीं सोना चाहिए, दूसरेके शरीरसे अपना शरीर नहीं रगड़ना चाहिए, और द्रतोंको विशुद्ध रखनेके लिए अकेला पृथिवीपर सोना चाहिए ॥ ११६ ॥ जबतक विद्या समाप्त न हो तबतक उसे यह व्रत धारण करना चाहिए और विद्या समाप्त होनेपर वे व्रत धारण करना चाहिए जो कि गृहस्थोंके मूलभूत कहलाते हैं ॥ ११७ ॥ सबसे पहले इस ब्रह्मचारीको गुरुके मुखसे श्रावकाचार पढ़ना चाहिए और फिर विनश्यपूर्वक अध्यात्मशास्त्र पढ़ना चाहिए ॥ ११८ ॥ उत्तम संस्कारोंको जागृत करनेके लिए और विद्वला प्राप्त करनेके लिए इसे व्याकरण आदि शब्दशास्त्र और न्याय आदि अर्थशास्त्रका भी अभ्यास करना चाहिए क्योंकि आचार-विषयक ज्ञान होनेपर इनके अध्ययन करनेमें कोई दोष नहीं है ॥ ११९ ॥ इसके बाद ज्योतिषशास्त्र, छन्दशास्त्र, शकुनशास्त्र और गणितशास्त्र आदिका भी उसे विशेषरूपसे अध्ययन करना चाहिए ॥ १२० ॥ यह पन्द्रहवीं व्रतचर्या क्रिया है ।

तदनन्तर जिसने समस्त विद्याओंका अध्ययन कर लिया है ऐसे उस ब्रह्मचारीकी व्रतावतरण क्रिया होती है । इस क्रियामें वह साधारण व्रतोंका तो पालन करता ही है परन्तु अध्ययनके समय जो विशेष व्रत ले रखे थे उनका परित्याग कर देता है ५ ॥ १२१ ॥ इस क्रियाके बाद उसके मधुत्याग, मांसत्याग, पाँच उदुम्बर फलोंका त्याग और हिंसा आदि पाँच स्थूल पापोंका त्याग, ये सदा काल अर्थात् जीवन पर्यन्त रहनेवाले व्रत रह जाते हैं ॥ १२२ ॥ यह व्रतावतरण क्रिया गुरुकी साक्षीपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्की पूजा कर बारह अथवा सोलह वर्ष बाद करनी चाहिए ॥ १२३ ॥ पहले द्विजोंका सत्कार कर फिर व्रतावतरण करना उचित है और व्रतावतरणके बाद गुरुकी आज्ञासे वस्त्र, आभूषण और माला आदिका ग्रहण करना उचित है ॥ १२४ ॥ इसके बाद यदि वह शस्त्रोपजीवी अर्थात् क्षत्रिय वर्गका है तो वह अपनी आजीविकाकी रक्षाके लिए शस्त्र भी धारण कर सकता है अथवा केवल शोभाके लिए भी शस्त्र ग्रहण क्रिया जा सकता है ॥ १२५ ॥ इस प्रकार इस क्रियामें थद्यपि वह भोगोप-भोगोंके ब्रह्मद्रतका अर्थात् ताम्बूल आदिके त्यागका अवतरण (परित्याग) कर देता है तथापि

१ मञ्चक । २ नीतिशास्त्र । ३ दुर्घटते ल०, द० । ४ शाष्ट्रध । ५ ज्योतिःशास्त्रम् । ६ छन्दशास्त्रम् ।  
 ७ गणितशास्त्रम् । ८ वृत्ति जीवन । ९ साधारण । १० कृताराधनम् । ११ वर्गं भवः । १२ निजजीवन ।  
 १३ चास्य ल० । १४ वश्यमाणा, वैद्याहिकी ।

ततोऽस्य गुर्वेनुजानादिष्टा वैवाहिकी क्रिया । वैवाहिके<sup>१</sup> कुले कर्ण्यामुचितां परिणेष्यतः ॥१२७॥  
 सिद्धार्थनविधि सम्यक् निवेश्य द्विजसत्तमाः । कृताभिव्रयसंएजाः कुर्युस्तस्वाक्षितां<sup>२</sup> क्रियाम् ॥१२८॥  
 गुण्याश्रमं<sup>३</sup> क्वचित् सिद्धप्रतिमाभिमुखं तयोः । दग्धपत्न्योः परया भूत्या कार्यं पाणिग्रहोत्सवः ॥१२९॥  
 वैद्यो<sup>४</sup> प्रणीतमसीनो त्रयं द्वयमधीकम् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य ग्रसञ्च्य विनिवेशनम् ॥१३०॥  
 पाणिग्रहणदाक्षायां नियुक्ते तद्वृत्तम् वैद्यसाहौ<sup>५</sup> चैत्रद ब्रह्मचर्तं देवाभिसाक्षिकम् ॥१३१॥  
 आनन्दा स्वस्याचितां सूभिं तीर्थं भूमार्विहस्य च । स्वगृहं प्रविशेद् भूत्या परया लङ्घवृत्तम् ॥१३२॥  
 विमुक्तकृणं पश्चात् स्वगृहं शयनीयकम् । अधिशङ्ख यथाकालं भोगाङ्गेषुपलालितम् ॥१३३॥  
 सन्तानार्थं सृष्टावेव कामसेवां मिथो मनेत् । वाञ्छिकालव्यपेक्षोऽयं<sup>६</sup> क्रमोऽशक्तेष्वतोऽन्यथा ॥३४४॥  
 इति विवाहक्रिया ।

एवं क्रतविवाहस्य गाहंस्थ्यमनुतिष्ठतः । स्वधर्मान्वित्वृत्यर्थं वर्णलाभमधो<sup>७</sup> शुभे ॥१३५॥  
<sup>८</sup>उद्भायोऽप्यवं तावदस्वतन्त्रो गुरोर्गृहं । ततः स्वातन्त्र्यमिद्यवर्थं वर्णला भोऽस्य वर्णितः ॥१३६॥  
 गुरोरनुहया लङ्घधनधान्यादिसंपदः । पृथक्कुतालयस्यास्यै वृत्तिर्णालिरिष्यते ॥१३७॥  
 तदापि पूर्ववरिसिद्धप्रतिमानर्थमग्रसः<sup>९</sup> । कृत्वाऽस्योपासकान्<sup>१०</sup> सुख्यान् साक्षीकृत्यापेष्व धनम् ॥१३८॥

जब तक उसके आजोकी क्रिया नहीं होती तब तक वह कामपरित्यागरूप ब्रह्मचर्तका पालन करता रहता है ॥१२६॥ यह सोलहवीं ब्रतावतरण क्रिया है ।

तदनन्तर विवाहके योग्य कुलमें उत्पन्न हुई कन्याके साथ जो विवाह करना चाहता है ऐसे उस पुरुषकी गुरुकी आज्ञासे वैवाहिकी क्रिया की जाती है ॥१२७॥ उत्तम द्विजोंको चाहिए कि वे सबसे पहले अच्छी तरह सिद्ध भगवान्की पूजा करें और फिर तीनों अग्नियोंकी पूजा कर उनकी साक्षीपूर्वक उस वैवाहिकी ( विवाह सम्बन्धी ) क्रियाको करें ॥१२८॥ किसी पवित्र स्थानमें बड़ी विभूतिके साथ सिद्ध भगवान्की प्रतिमाके सामने वधू-वरका विवाहोत्सव करना चाहिए ॥१२९॥ बेदीमें जो तीन, दो अथवा एक अग्नि उत्पन्न की थी उसकी प्रदक्षिणाएँ देकर वधू-वरको समीप ही बैठना चाहिए ॥१३०॥ विवाहकी दीक्षामें नियुक्त हुए वधू और वरको देव और अग्निकी साक्षीपूर्वक सात दिन तक ब्रह्मचर्यं व्रत धारण करना चाहिए ॥१३१॥ फिर अपने योग्य किसी देशमें ऋषण कर अथवा तीर्थभूमिमें विहारकर वर और वधू बड़ी विभूतिके साथ अपने घरमें प्रवेश करें ॥१३२॥ तदनन्तर जिनका कक्षण छोड़ दिया है, ऐसे वर और वधू अपने घरमें समयानुसार भोगोपभोगके साधनोंसे सुशोभित शश्यापर शयन कर केवल सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छासे क्रतुकालमें ही परस्पर काम-सेवन करें । काम-सेवनका यह क्रम काल तथा शक्तिकी अपेक्षा रखता है इसलिए शक्तिहीन पुरुषोंके लिए इससे विपरीत क्रम समझना चाहिए अर्थात् उन्हें ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिए ॥१३३—१३४॥ यह सत्रहवीं विवाह-क्रिया है ।

इस प्रकार जिसका विवाह किया जा चुका है और जो गाहंस्थ्यधर्मका पालन कर रहा है ऐसा पुरुष अपने धर्मका उल्लंघन न करे इसलिए उसके अर्थं वर्णलाभ क्रियाको कहते हैं ॥१३५॥ यद्यपि उसका विवाह हो चुका है तथापि वह जबतक पिताके धर रहता है तबतक अस्वतन्त्र ही है इसलिए उसको स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए यह वर्णलाभकी क्रिया कही गयी है ॥१३६॥ यिताकी आज्ञासे जिसे धनधान्य आदि सम्पदाएँ प्राप्त हो चुकी हैं और मकान भी जिसे अलग मिल चुका है ऐसे पुरुषकी स्वतन्त्र आजीविका करने लगनेकी वर्णलाभ कहते हैं ॥१३७॥ इस क्रियाके समय भी पहलेके समान सिद्ध प्रतिमाओंका पूजन

<sup>१</sup> वितुरनुमतात् । <sup>२</sup> विवाहोचिते । <sup>३</sup> साक्षि तां ल० । <sup>४</sup> पवित्रप्रदेश । <sup>५</sup> मंस्कृतम् । <sup>६</sup> सप्तदिवसपर्यन्तम् ।  
<sup>७</sup> सन्तानार्थम् क्रतुकाले कामसेवक्रमः । <sup>८</sup>—मतो ल० । <sup>९</sup> विवाहित । <sup>१०</sup> आदौ । <sup>११</sup> कृत्वान्योप—ल० ।

धनमेतदुपादाय स्थिवाऽस्मिन् स्वयं पृथक् । गृहिधर्मस्वया धार्यः कुरुते दानादिलक्षणः ॥१३६॥  
यथाऽस्मात्पृथक्तेन धनेनास्मात्मितज्जितम् । यशो धर्मश्च तद्वस्त्रं यशोधर्मानुपार्जय ॥१४०॥  
इत्येवमनुशिष्यैनं<sup>१</sup> वर्णलाभमें नियोजयेत् ।<sup>२</sup> सदारः सोऽपि तं धर्मं सधानुषाकुरुमर्हति ॥१४१॥

इति वर्णलाभक्रिया ।

लघुवर्णस्य तस्येति कुलचर्याऽनुकीर्त्येत् । सा विज्ञादत्तिवार्तादिलक्षणा प्राक् प्रपञ्चिता ॥१४२॥  
विशुद्धा त्रितीस्यार्थपटकमनुप्रवर्तनम् । गृहिणी कुलचर्येष्टा कुलधर्मोऽप्यसौ मतः ॥१४३॥

इति कुलचर्याक्रिया ।

कुलचर्यामनुप्राप्तो धर्मे दाहर्यमथोद्दहन् । गृहस्थाचार्यमावेन संश्रयेत् स गृहीशिताम् ॥१४४॥  
ततो वर्णोत्तमत्वेन स्थापयेत् स्वां गृहीशिताम् । शुभभृत्तिक्रियामन्त्रविवाहः सोत्तरक्रियैः ॥१४५॥  
अनन्तप्रस्तुतीरेभिः श्रुतवृत्तिक्रियाविभिः । स्वभुष्टतिं स्वस्त्रेष तदार्हति गृहीशिताम् ॥१४६॥  
वर्णोत्तमो महीदेवः सुश्रुतो द्विजसत्तमः । निस्तारकोऽग्रामपतिः मानाहंशेति मानितः ॥१४७॥

इति गृहीशिता ।

सोऽनुरूपं ततो लक्ष्या सूनुमायमभरक्षमम् । तत्रारोपितगाहेस्थ्यः सन् प्रशान्तिमतः श्रवेत् ॥१४८॥

कर पिता अन्य मुख्य धारकोंको साक्षी कर उनके सामने पुत्रको धन अपेण करे तथा यह कहे कि यह धन लेकर तुम इस अपने घरमें पृथक्खूपसे रहो । तुम्हें दान पूजा आदि समस्त गृहस्थधर्म पालन करते रहना चाहिए । जिस प्रकार हमारे पिताके द्वारा दिये हुए धनसे मैंने यश और धर्मका अर्जन किया है उसी प्रकार तुम भी यश और धर्मका अर्जन करो । इस प्रकार पुत्रको समझाकर पिता उसे वर्णलाभमें नियुक्त करे और सदाचारका पालन करता हुआ वह पुत्र भी पिताके धर्मका पालन करनेके लिए समर्थ होता है ॥१४८-१४९॥ यह अठारहवीं वर्णलाभ क्रिया है ।

जिसे वर्णलाभ प्राप्त हो चुका है ऐसे पुत्रके लिए कुलचर्या क्रिया कही जाती है और पूजा, दत्ति तथा आजीविका करना आदि सब जिसके लक्षण हैं ऐसी कुलचर्या क्रियाका पहले विस्तारके साथ वर्णन कर चुके हैं ॥१४२॥ निर्दोषरूपसे आजीविका करना तथा आर्य पुरुषोंके करने योग्य देवपूजा आदि छह कार्य करना यही गृहस्थोंकी कुलचर्या कहलाती है और यही उनका कुलधर्म माना जाता है ॥१४३॥ यह उन्नीसवीं कुलचर्या क्रिया है ।

तदनन्तर कुलचर्याको प्राप्त हुआ वह पुरुष धर्ममें दृढ़ताको धारण करता हुआ गृहस्थाचार्यरूपसे गृहीशिताको स्वीकार करे अर्थात् गृहस्थोंका स्वामी बने ॥१४४॥ फिर उसे आपको उत्तम वर्ण मानकर आपमें गृहीशिता स्थापित करनी चाहिए । जो दूसरे गृहस्थोंमें न पायो जावे ऐसी शुभ वृत्ति, क्रिया, मन्त्र, विवाह तथा आगे कही जानेवाली क्रियाएँ, शास्त्र-ग्रन्थ और चारित्र आदिकी क्रियाओंसे अपने-आपको उन्नत करता हुआ वह गृहीश अर्थात् गृहस्थोंके स्वामी होनेके योग्य होता है ॥१४५-१४६॥ उस समय वर्णोत्तम, महीदेव, सुश्रूत, द्विजसत्तम, निस्तारक, ग्रामपति और मानाहं इत्यादि कहकर लोगोंको उसका सत्कार करना चाहिए ॥१४७॥ यह बीसवीं गृहीशिता क्रिया है ।

तदनन्तर वह गृहस्थाचार्यं अपना भार सेभालनेमें समर्थं योग्य पुत्रको पाकर उसे अपनी

<sup>१</sup> उपशिष्य । <sup>२</sup> सदाचारः स तद्वर्म ल०, द० । <sup>३</sup> गृहस्थाचार्यरूपेण । <sup>४</sup> ग्रामपतिः प०, ल० ।

विषयेऽवनभिष्ठङ्गो<sup>१</sup> नित्यस्वाध्यायशीलता । नामाक्षिरोपवासेष्व वृत्तिरिदा प्रशान्तता ॥१४९॥  
इति प्रशान्तिः ।

ततः कृतार्थमात्मानं मन्यमामो गृहाश्रमे । यदोदयो गृहस्त्यागो तदाऽस्त्वैष क्रियाविधिः ॥१५०॥  
सिद्धार्थनां पुरस्कृत्य सर्वानाहृत्य संमतान् । सत्साक्षि सूनवे सर्वं विवेद्यातो गृहं स्थानेत् ॥१५१॥  
कुलकमस्त्रय । तात संपालयोऽस्मात्यरोक्षतः । क्रिया कृतं च नो<sup>२</sup> धर्मं स्वयेत्थं विनियोग्यताम् ॥१५२॥  
एकोऽशो धर्मकार्येत्तो द्वितीयः स्वगृहव्यये । तृतीयः संविभागाय भवेत्तत्सहजन्मनाम् ॥१५३॥  
पुश्यश्च संविभागाहारः समं पुत्रैः समाशकैः । त्वं तु भूख्वा कुलज्येषु सम्तर्ति नोऽनुपालय ॥१५४॥  
श्रुताष्टकक्रियामन्त्रविधिशस्त्रमतन्त्रितः । प्रपालय<sup>३</sup> कुलाक्षायं गृहं देवांश्च पूजयन् ॥१५५॥  
इत्येवमनुशिष्य रुद्धं ज्येष्ठं सुनुमनाकुलः । ततो दीक्षासुपादातुं द्विजः रुद्धं गृहसुसज्जेत् ॥१५६॥

प्राणीरुद्धः । गृहस्त्यागः । गृहस्त्रमतन्त्रितः । गृहस्त्रमतन्त्रितः । इति गृहस्त्यागः ।  
त्यक्षागारस्य सदृष्टेः प्रशान्तस्य गृहीशिनः । प्राणीरुद्धापयिकात् कालादेकशास्त्रधारिणः ॥१५७॥  
यत्पुरश्चरणं दीक्षाप्रहणं प्रति धार्यते । दीक्षाद्यं नाम तज्ज्ञेयं क्रियाजातं<sup>४</sup> द्विजन्मनः ॥१५८॥

इति दीक्षाद्यन् ।

त्यक्षाचेलादिसंगस्य जैनी दीक्षासुपंचुषः<sup>५</sup> । धारणं जातरूपस्य यत्तत् स्वाज्जिनरूपता ॥१५९॥

गृहस्थीका भार सौंप दे और आप स्वयं उत्तम शान्तिका आश्रय ले ॥१४८॥ विषयोंमें आसवत नहीं होना, नित्य स्वाध्याय करनेमें तत्पर रहना तथा नाना प्रकारके उपवास आदि करते रहना प्रशान्त वृत्ति कहलाती है ॥१४९॥ यह इकीसबीं प्रशान्ति क्रिया है ।

तदनन्तर गृहस्थाश्रममें अपने-आपको कृतार्थ मानता हुआ जब वह गृहस्त्याग करनेके लिए उद्धत होता है तब उसके यह गृहस्त्याग नामकी क्रियाकी विधि की जाती है ॥१५०॥ इस क्रियामें सबसे पहले सिद्ध भगवान्का पूजन कर समस्त इष्टजनोंको बुलाना चाहिए और फिर उनकी साक्षीपूर्वक पुत्रके लिए सब कुछ सौंपकर गृहस्त्याग कर देना चाहिए ॥१५१॥ गृहस्त्याग करते समय ज्येष्ठ पुत्रको बुलाकर उससे इस प्रकार कहना चाहिए कि पुत्र, हमारे पीछे यह कुलकूम तुम्हारे ढारा पालन करने योग्य है । मैंने जो अपने घनके तीन भाग किये हैं उनका तुम्हें इस प्रकार विनियोग करना चाहिए कि उनमें-से एक भाग तो धर्मकार्यमें खर्च करना चाहिए; दूसरा भाग अपने घर खर्चके लिए रखना चाहिए और तीसरा भाग अपने भाईयोंमें बांट देनेके लिए है । पुत्रोंके समान पुत्रियोंके लिए भी बराबर भाग देना चाहिए । हे पुत्र, तू कुलका बड़ा होकर मेरी सब सत्तानका पालन कर । तू शास्त्र, सदाचार, क्रिया, मन्त्र और विविको जाननेवाला है इसलिए आलस्यरहित होकर देव और गुरुओंकी पूजा करता हुआ अपने कुलधर्मका पालन कर । इस प्रकार ज्येष्ठ पुत्रको उपदेश देकर वह द्विज निराकुल होवे और फिर दीक्षा ग्रहण करनेके लिए अपना घर छोड़ दे ॥१५२-१५६॥ यह बाईसबीं गृहस्त्याग नामकी क्रिया है ।

जिसने घर छोड़ दिया है, जो सम्यग्दृष्टि है, प्रशान्त है, गृहस्थोंका स्वामी है और दीक्षाधारण करनेके समयके कुछ पहले जिसने एक वस्त्र धारण किया है उसके दीक्षाप्रहण करनेके पहले जो कुछ आचरण किये जाते हैं उन आचरणों अथवा क्रियाओंके समूहको द्विजकी दीक्षाद्य क्रिया कहते हैं ॥१५७-१५८॥ यह तेईसबीं दीक्षाद्य क्रिया है ।

जिसने वस्त्र आदि सब परिग्रह छोड़ दिये हैं और जो जिनदीक्षाको प्राप्त करना चाहता है ऐसे पुरुषका दिग्म्बररूप धारण करना जिनरूपता नामकी क्रिया कहलाती है ॥१५९॥

<sup>१</sup> निष्प्रभः । <sup>२</sup> अस्माकम् । <sup>३</sup> कुलपरम्पराम् । <sup>४</sup> दीक्षास्वीकारात् प्राप्तः । <sup>५</sup> क्रियासमूहः । <sup>६</sup> गतस्य ।

अशक्यधारणं चेदं जन्मतूनो कातराभनाम् । जैनं निसर्गतामुख्यं रूपं धीरनिवेद्यते ॥१६-

इति जिन

कृतदीक्षोपवासस्य प्रबूजे: पारणाक्षिधी । मौनाध्ययनवृत्तव्यमिष्टमाश्रुतनिष्ठिते<sup>१</sup> ॥१६१  
“वाच्यमो विनीतात्मा विशुद्धकरणव्यः । सोऽर्धार्थीते<sup>२</sup> श्रुतं कृत्वनमामूलाद् गुहसज्जितं  
श्रुतं हि विधिनानेन भव्यात्मभिरुपासितम् । योग्यताभिहु पुण्याति परत्रापि प्रसीदति ॥

इति मौनाध्यय

ततोऽर्धात्मात्मिलाचारः शास्त्रादिश्रुतविस्तरः । विशुद्धाचरणोऽभ्यस्येत् तीर्थकृत्वस्य भावनाम् ॥१६२,,  
सा तु षोडशधाराऽन्नात्मा भव्यात्मभिरुपासिती । सम्यग्दर्शनशुद्धादिलक्षणा प्राक्प्रपञ्चिता ॥१६३॥

इति तीर्थकृत्वाचना ।

ततोऽस्य विदिताज्ञेयवेदस्य<sup>३</sup> विजितात्मनः । गुरुस्थानाभ्युपगमः समलो गुरुंसुग्रहात् ॥१६४॥

“शानविज्ञानसंपत्तः स्वगुरोरमिसंमतः । विनीतो धर्मशीलश्च यः सोऽर्हते गुरोः पदम् ॥१६५॥

गुरुस्थानाभ्युपगमः ।

ततः सुविहितस्यास्य<sup>४</sup> युक्तस्य गणपोषणः । गणोपग्रहणं नाम विवाहाता महर्षिभिः ॥१६६॥

जिनका आत्मा कातर है ऐसे पुरुषोंको जिनरूप ( दिगम्बररूप ) का धारण करना कठिन है इसलिए जिसमें परिष्ठेहरूका अभ्युत्तमा है जैन धर्मविज्ञेयदेवज्ञा रूप धीरवीर मनुष्योंके द्वारा ही धारण किया जाता है ॥१६०॥ यह चौबीसवीं जिनरूपता क्रिया है ।

जिसने दीक्षा लेकर उपवास किया है और जो पारणकी विधिमें अर्थात् विधिपूर्वक आहार लेनेमें प्रवृत्त होता है ऐसे साधुका शास्त्रकी समाप्ति पर्यन्त जो मौन रहकर अध्ययन करनेमें प्रवृत्ति होती है उसे मौनाध्ययनवृत्तत्व कहते हैं ॥१६१॥ जिसने मौन धारण किया है, जिसका आत्मा विनय युक्त है, और मन, वचन, काय शुद्ध हैं ऐसे साधुको गुरुके समीपमें प्रारम्भसे लेकर समस्त शास्त्रोंका अध्ययन करना चाहिए ॥१६२॥ क्योंकि इस विधिसे भव्यजीवोंके द्वारा उपासना किया हुआ शास्त्र इस लोकमें उनकी योग्यता बढ़ाता है और परलोकमें प्रसन्न रखता है ॥१६३॥ यह पच्चीसवीं मौनाध्ययनवृत्तित्व क्रिया है ।

तदनन्तर जिसने समस्त आचार शास्त्रका अध्ययन किया है तथा अन्य शास्त्रोंके अध्ययनसे जिसने समस्त श्रुतज्ञानका विस्तार प्राप्त किया है और जिसका आचरण विशुद्ध है ऐसा साधु तीर्थकार पदकी भावनाओंका अभ्यास करे ॥१६४॥ सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि रखना आदि जिसके लक्षण हैं, जो महात् ऐश्वर्यको देनेवाली हैं तथा वहले जिनका विस्तारके साथ वर्णन किया जा चुका है ऐसी भावनाएँ सोलह साती गयी हैं ॥१६५॥ यह छब्बीसवीं तीर्थ-कृद्धावना नामकी क्रिया है ।

तदनन्तर जिसने समस्त विद्याएँ जान ली हैं और जिसने अपने अन्तःकरणको वश कर लिया है ऐसे साधुका गुरुके अनुग्रहसे गुरुका स्थान स्वीकार करना शास्त्रसम्मत है ॥१६६॥ जो शानविज्ञान करके सम्पन्न है, अपने गुरुको इष्ट है अर्थात् जिसे गुरु अपना पद प्रदान करना योग्य समझते हैं, जो विनयवान् और धर्मत्मा है वह साधु गुरुका पद प्राप्त करनेके योग्य है ॥१६७॥ यह सत्ताईसवीं गुरुस्थानाभ्युपगम क्रिया है ॥

तदनन्तर जो सदाचारका पालन करता है गण अर्थात् समस्त मुनिसंघके पोषण

१ श्रुतसमाप्तिपर्यन्तम् । २ मौनी । ३ अध्ययनं कुर्यात् । लिङ् । ४ -विश्वत्य ल०, द०, प० । ५ ज्ञान मोक्ष-शास्त्र । विज्ञान शिल्पशास्त्र । ६ सदाचारस्त्र ।

आवकानार्थिकामं वं श्राविका: संयतानपि । सन्मार्गं वर्तयन्नेष गणोपग्रहणमाचरेत् ॥१६९॥  
धुनार्थिभ्यः श्रुतं द्वयाद् दीक्षार्थिभ्यश्च दीक्षणम् । धर्मार्थिभ्योऽपि सद्ब्रह्मं स शक्तते प्रतिपादयेत् ॥१७०॥  
सद्ब्रह्मान् शारथन्<sup>१</sup> सूरिस्मद्वृत्तालिखारयन् । शोधयेत्वा कृतादागोमलान् ये<sup>२</sup> विभूत्याद् गणम् ॥१७१॥  
इति गणोपग्रहणम् ।

गणोपग्रहणमित्याविद्यकुवंशाचार्थसत्तमः । लोऽयं स्वगुरुस्थानसंकाम्नो श्रववान् भवेत् ॥१७२॥  
अर्धानविद्यं लभिद्यैरादतं मुनिसत्तमीः । योग्यं शिष्यमधाहृय लम्है स्वं भास्मपैयेत् ॥१७३॥  
गुरुमुखमुखात् गुरुमुखिगुरुमुखात् गुरुमुखात् गुरुमुखात् गुरुमुखात् गुरुमुखात् गुरुमुखात् गुरुमुखात् ॥१७४॥  
इति स्वगुरुस्थानावासिः ।

तथारोप्य भर्तु कुन्जं काले कस्मिंश्चिद्व्यथः । कुर्वादेकविहारी स निःसंगच्छात्मभावनाम् ॥१७५॥  
निःसंगच्छात्मभावनाम् चिह्नितः । चिकीर्षुरात्मसंस्कारं नान्यं चं स्फर्तुमर्हति ॥१७६॥  
अपि रागं समुक्त्यज्यं शिष्यप्रवचनादिपु । निर्ममत्वैकतानः संश्वर्याशुद्धिं तद्राऽश्रयेत् ॥१७७॥  
इति निःसंगच्छात्मभावना ।

कुर्वैवमात्मसंस्कारं ततः सल्लेखनोदयतः । कृतायमशुद्धिरव्याप्तं योगनिर्वाणमात्मुद्यान् ॥१७८॥

करनेमें जो तत्पर रहता है उसको महायियोनि गणोपग्रहण नामकी कीया मानी है ॥१६८॥  
इस आचार्यको चाहिए कि वह मुनि, आधिका, आवक और श्राविकाओंको समीचीन मार्गमें  
लगाता हुआ अच्छी तरह संघका पोषण करे ॥१६९॥ उसे यह भी चाहिए कि वह शास्त्र  
अध्ययनकी इच्छा करनेवालोंको दीक्षा देवे और धर्मत्वा जीवोंके लिए धर्मका प्रतिपादन  
करे ॥१७०॥ वह आचार्य सदाचार धारण करनेवालोंको प्रेरित करे, दुराचारियोंको दूर  
हटावे और किये हुए स्वकीय अपराधरूपी मलको शोधता हुआ अपने आकृति गणकी रक्षा  
करे ॥१७१॥ यह अद्वाईसवीं गणोपग्रहण कीया है ।

तदनन्तर इस प्रकार संघका पालन करता हुआ वह उत्तम आचार्य अपने गुरुका  
स्थान प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न सहित हो ॥१७२॥ जिसने समस्त विद्याएँ पढ़ ली हैं और  
उन विद्याओंके जानकार उत्तम-उत्तम मुनि जिसका आदर करते हैं ऐसे योग्य शिष्यको बुलाकर  
उसके लिए अपना भार सौंप दे ॥१७३॥ गुरुकी अनुमतिसे वह शिष्य भी गुरुके स्थानपर  
अधिष्ठित होता हुआ उनके समस्त आचरणोंका स्वयं पालन करे और समस्त संघको पालन  
करावे ॥१७४॥ यह उत्तीसवीं स्वगुरु-स्थानावाप्ति क्रिया है ।

इस प्रकार सुयोग्य शिष्यपर समस्त भार सौंपकर जो किसी कालमें दुःखी नहीं होता  
है ऐसा साधु अकेला विहार करता हुआ 'मेरा आत्मा सब प्रकारके परिग्रहसे रहित है' इस  
प्रकारकी भावना करे ॥१७५॥ जिसकी वृत्ति समस्त परिग्रहसे रहित है, जो अकेला ही  
विहार करता है, महातपस्वी है और जो केवल अपने आत्माका ही संस्कार करना चाहता है  
उसे किसी अन्य पदार्थका संस्कार नहीं करना चाहिए अर्थात् अपने आत्माको छोड़कर किसी  
अन्य साधु या गृहस्थके सुधारकी चिन्तामें नहीं पड़ना चाहिए ॥१७६॥ शिष्य पुस्तक आदि  
सब पदार्थोंमें राग छोड़कर और निर्ममत्वभावनामें एकाग्र बुद्धि लगाकर उस समय उसे  
चारित्रकी शुद्धि धारण करनी चाहिए ॥१७७॥ यह तीसवीं निःसंगत्वात्मभावना क्रिया है ।

तदनन्तर इस प्रकार अपने आत्माका संस्कार कर जो सल्लेखना धारण  
करनेके लिए उद्यत हआ है और जिसने सब प्रकारसे आत्माकी शुद्धि कर ली है ऐसा

<sup>१</sup> सारथन् अ०, प०, इ०, स०, ल०, द० । <sup>२</sup> पोषयेद् । <sup>३</sup> तिष्ठेद् वर्तयेत् सकलं गणम् ल० ।

योगो ध्यानं तदर्थो यो यथः संवेगपूर्वकः । तमाहुयोगनिर्वाणसंप्राप्तं परमं तपः ॥१७६॥

कृत्वा परिकरं योगं तनुशोधनपूर्वकम् । शरीरं कर्तयेद्योगं तमं रागादिभिस्तदा ॥१७७॥

तदेतद्योगनिर्वाणं संन्यासे पूर्वभावना<sup>१</sup> । जीविताशार्तं भूतीच्छां च हित्वा भव्यात्मलब्धये ॥१७८॥

रागदेवीं समुत्सज्ज्य अयोऽवासीं च संशयम् । अनात्मीयेषु आत्मीयसंकल्पाद् विरमेत्तदा ॥१८१॥

१८१ वर्तमानः १८२ यज्ञाद्युपर्याप्तिः निर्विविद्यान्वयाद्युपर्याप्तिः कारणम् । तत्त्वयस्त्वेत्यनुहितो मजेदन्त्यत्वभावनाम् ॥१८३॥

भावसंको न से कश्चिच्छैवाहमपि कस्यचित् । इत्यदीनमनाः सम्यगेकत्वमपि भावयेत् ॥१८४॥

यतिमाधार्य लोकाभ्ये नित्यानन्तसुखाल्पदे । भावयेद् योगनिर्वाणं स योगी योगसिद्धये ॥१८५॥

इति निर्वाणसंप्राप्तिः ।

ततो निःदोषमाहारं शरीरं च समुत्सज्जन् । योगीभूतो योगनिर्वाणसाधनायोग्यतो भवेत् ॥१८६॥

उत्तमार्थं कृतास्थानं संन्यस्ततनुहृषीः । अयायन् मनोवदः कायान् वहिभूतान् स्वतः ॥१८७॥

प्रणिधार्थं मनोवृत्तिं पदेषु<sup>२</sup> परमेष्ठिनाम् । जीवितान्ते स्वसाकुर्याद् योगनिर्वाणसाधनम् ॥१८८॥

योगः समाधिनिर्वाणं तत्कृता चित्तनिर्वृत्तिः<sup>३</sup> । तेनेषु साधनं यस्तद् योगनिर्वाणसाधनम् ॥१८९॥

इति योगनिर्वाणसाधनम् ।

पुरुष योगनिर्वाण क्रियाको प्राप्त हो ॥१७८॥ योग नाम ध्यानका है उसके लिए जो संवेग-पूर्वक प्रयत्न किया जाता है उस परम तपको योगनिर्वाण संप्राप्ति कहते हैं ॥१७९॥ प्रथम ही शरीरको शुद्ध कर सल्लेखनाके योग्य आचरण करना चाहिए और फिर रागादि दोषोंके साथ शरीरको कृश करना चाहिए ॥१८०॥ जीवित रहनेकी भाशा और मरनेकी इच्छा छोड़कर 'यह भव्य है' इस प्रकारका सुयश प्राप्त करनेके लिए संन्यास धारण करनेके पहले भावना की जाती है वह योगनिर्वाण कहलाता है ॥१८१॥ उस समय रागदेवी छोड़कर कल्पाणकी प्राप्तिमें प्रयत्न करना चाहिए और जो पदार्थ आत्माके नहीं हैं, उनमें 'यह मेरे हैं' इस संकल्पका त्याग कर देना चाहिए ॥१८२॥ न मैं शरीर हूँ, न मन हूँ, न बाणी हूँ और न इन तीनोंका कारण ही हूँ । इस प्रकार तीनोंके विषयमें उद्विग्न न होकर अन्यत्व भावनाका चिन्तवन करना चाहिए ॥१८३॥ इस संसारमें मैं अकेला हूँ न मेरा कोई है और न मैं भी किसीका हूँ, इस प्रकार उदार चित्त होकर एकत्वभावनाका अच्छी तरह चिन्तवन करना चाहिए ॥१८४॥ जो नित्य और अनन्त सुखका स्थान है ऐसे लोकके अप्रभाग अर्थात् मोक्षस्थानमें बुद्धि लगाकर उस योगीको योग ( ध्यान ) को सिद्धिके लिए योग निर्वाण क्रियाकी भावना करनी चाहिए । भावार्थ-सल्लेखनामें बैठे हुए साधुको संसारके अन्य पदार्थोंका चिन्तवन न कर एक मोक्षका ही चिन्तकन करना चाहिए ॥१८५॥ यह इकतीसवीं योगनिर्वाणसंप्राप्ति क्रिया है ।

तदनन्तर - समस्त आहार और शरीरको छोड़ता हुआ वह योगिराज योगनिर्वाण साधनके लिए उद्यत हो ॥१८६॥ जिसने उत्तम अर्थात् मोक्षपदार्थमें आदर बुद्धि की है, शरीरसे प्रत्यक्ष छोड़ दिया है और जिसकी बुद्धि उत्तम है ऐसा वह साधु अपने मन, वचन, कायको अपने आत्मासे भिन्न अनुभव करता हुआ अपने मनकी प्रवृत्ति पञ्चपरमेष्ठियोंके चरणोंमें लगावे और इस प्रकार जीवनके अन्तमें योगनिर्वाण साधनको अपने अधीन करे - स्वीकार करे ॥१८७-१८८॥ योग नाम समाधिका है उस समाधिके द्वारा चित्तको जो आनन्द होता है उसे निर्वाण कहते हैं, जूँकि यह योगनिर्वाण इष्ट पदार्थोंका साधन है - इसलिए इसे योगनिर्वाण साधन कहते हैं ॥१८९॥ यह बत्तीसवीं योगनिर्वाण साधन क्रिया है ।

१ तद् ध्यानम् अर्थः प्रयोगन्ते यस्य । २ प्रथमभावना । ३ भव्याङ्गकल-ल०, द० । ४ संश्रयेद् अ०, प०, स० । देहमनोवाक्यस्य । ५ संन्यासे । ६ कृतादरः । ७ हित्वभूतात्मकान् स्वतः द० । ८ पृथग्भूतस्वरूपकान् । ९ एकाग्रं कृत्वा । १० पञ्चपदेषु । ११ चित्ताङ्गादः ।

तया योगं समाधाय कृतप्राणविष्य र्जनः । इन्द्रोपपादमानोति गते<sup>१</sup> पुण्ये पुरोगताम् ॥ १९० ॥  
 इन्द्राः स्युच्छिदशाधीकास्तेष्ट्वादस्तपोबलात् । यः स इन्द्रोपपादः स्याम् क्रियाऽहंमार्गसेविनाम् ॥ १९१ ॥  
 नभोऽसौ दिव्यसाक्षायां क्षणादापूर्णयौवनः । परमानन्दसाद्भूतो दीप्तो दिव्येन तेजसा ॥ १९२ ॥  
 अणिमादिमिरष्टमिरुतोऽसाधारणगैर्गैः । महजाम्बवदिव्यसाक्षणिभूषणभूषिनः ॥ १९३ ॥  
 दिव्यानुभावसं<sup>२</sup> भूतप्रभावं परमुद्दहन् । बोधुत्थसे तदाऽत्मीयमैन्द्रं दिव्यावधिनिविषा ॥ १९४ ॥

इति इन्द्रोपपादक्रिया ।

पर्याप्तमात्र एवायं<sup>३</sup> प्राप्तजन्मावधीधनः । पुनरिन्द्राभिषेकेण योज्यतेऽमरम्भसमैः ॥ १९५ ॥  
 दिव्यसंगीतकादिग्रामङ्गलोद्गीतिनिःस्वनैः । चिचित्तेश्वाप्सरोनुसैर्निर्वृत्तेन्द्राभिषेकेण ॥ १९६ ॥  
 ति (कि)रीटमुद्दहन् दीप्तं स्फसाक्षात्यैकलाभ्यनम् । सुरकोटिमिरारुद्ग्रामदीर्जयकास्तिः ॥ १९७ ॥  
 सरवी सद्गुणो दीप्तो भूषितो दिव्यभूषणैः । ऐन्द्रविष्टरमारुद्दो महानेष महीपते ॥ १९८ ॥  
 हति इन्द्राभिषेकः ।

तसोऽथमानसामेतान् सत्कृत्य सुरसत्तमान् । पत्रेषु स्थापयन् स्वेषु विधिदाने प्रवर्तते ॥ १९९ ॥  
<sup>४</sup>स्वविमानदिन्दानेन प्रीणितैर्विद्वृष्टिर्वृत्तैः । सोऽनुभुद्यते चिरं कालं सुकृती सुखमामरम् ॥ २०० ॥  
 सदेलहृषिदानेन्द्रसुखोदयविकल्पितम् । क्रियाहृयं समाप्तात् स्वर्लोकप्रभवोचितम् ॥ २०१ ॥

इति विधिदानसुखोदयी ।

ऊपर लिखे अनुसार योगोंका समाधान कर अर्थात् मन, वचन, कायको स्थिर कर जिसने प्राणोंका परित्याग किया है ऐसा साधु पुण्यके आगे-आगे चलनेपर इन्द्रोपपाद क्रियाको प्राप्त होता है ॥ १९० ॥ देवोंके स्वामी इन्द्र कहलाते हैं, तपश्चरणके बलसे उन इन्द्रोंमें जन्म लेना इन्द्रोपपाद कहलाता है । वह इन्द्रोपपादक्रिया अहृत्प्रणीत मोक्षमार्गका सेवन करनेवाले जीवोंके ही होती है ॥ १९१ ॥ तदनन्तर वह इन्द्र उसी उपपाद शश्यापर क्षण-भरमें पूर्णयौवन हो जाता है और दिव्य तेजसे देवीप्यमान होता हुआ परमानन्दमें निमग्न हो जाता है ॥ १९२ ॥ वह अणिमा मंहिमा आदि आठ असाधारण गुणोंसे सहित होता है और साथ-साथ उत्पन्न हुए वस्त्र, दिव्यमाला, तथा मणिमय आभूषणोंसे सुशोभित होता है । दिव्य माहात्म्यसे उत्पन्न हुए उत्कृष्ट प्रभावको धारण करता हुआ वह इन्द्र दिव्य अवधिज्ञानरूपी ज्योतिके द्वारा जान लेता है कि मैं इन्द्रोपपादमें उत्पन्न हुआ हूँ ॥ १९३—१९४ ॥ यह इन्द्रोपपाद नामकी तीतीसवीं क्रिया है ।

पर्याप्तक होते ही जिसे अपने जन्मका ज्ञान हो गया है ऐसे इन्द्रका फिर उत्तमदेव लोग इन्द्राभिषेक करते हैं ॥ १९५ ॥ दिव्य संगीत, दिव्य बाजे, दिव्य मंगलगीतोंके शब्द और अप्सराओंके विचित्र नृत्योंसे जिसका इन्द्राभिषेक सम्पन्न हुआ है, जो अपने साम्राज्यके मुख्य चिह्नस्वरूप देवीप्यमान मुकुटको धारण कर रहा है, हर्षको प्राप्त हुए करोड़ों देव जिसका जयजयकार कर रहे हैं, जो उत्तम मालाएं और वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा देवीप्यमान वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित है ऐसा वह इन्द्र इन्द्रके पदपर आरूढ़ होकर अत्यन्त पूजाको प्राप्त होता है ॥ १९६—१९८ ॥ यह चौतीसवीं इन्द्राभिषेक क्रिया है ।

तदनन्तर नम्रीभूत हुए इन उत्तम-उत्तम देवोंको अपने-अपने पदपर नियुक्त करता हुआ वह इन्द्र विधिदान क्रियामें प्रवृत्त होता है ॥ १९९ ॥ अपने-अपने विभानोंको कहदि देनेसे सन्तुष्ट हुए देवोंसे घिरा हुआ वह पुण्यात्मा इन्द्र चिरकाल तक देवोंका सुखोंका अनुभव करता है ॥ २०० ॥

१ यते सति । २ अप्रीसरत्वम् । ३ संभूति ल०, द० । ४ इन्द्रः । ५ निजविमानेष्वर्यवितरणेन ।  
 ६ अवरक्षणम् ।

ग्रोक्षास्त्रिवृद्गोपपादाभिषेकहान सुखोदयाः । इन्द्रस्त्वागार्थ्यभूत्वा स्वेष्वदद्ये क्रियान्तरम् ॥२०२॥  
 किंचित्स्त्वाश्रावशिष्टवां स्वस्थामात्युःस्थितौ सुरेन्दै । बुद्ध्वा हत्याकृतारं स्वं सोऽनुशास्यमरानिति २०३  
 भो भोः सुधाशनां शूद्यमस्माभिः पालिताश्रितम् । केचित् पित्रीयिताः<sup>३</sup> केचित् पुश्पप्रीयोपलालिताः ॥२०४॥  
 पुरोधोमन्त्यमात्यानां पदे केचित्जियोजिताः । वयस्यपीडै मदीयस्थाने इष्टाक्ष केचन ॥२०५॥  
 स्वप्राणनिर्विरेवं च<sup>४</sup> केचित् त्राणाय संपताः । केचित्मान्यपदे इष्टाः पालहाः<sup>५</sup> स्वर्तिवासिनम् ॥२०६॥  
 केचित्सुमूचरस्थाने<sup>६</sup> उत्तिष्ठ स्वजनाहृत्यया । मूलामामायमन्ये च केचित्कान्तराः पृथक् ॥२०७॥  
 केचित् परिजनस्थाने केचित्वान्तःपुरे चराः । काश्चित् वल्लभिका वृद्धो महादद्यश काशन ॥२०८॥  
 इत्यसाधारणा प्रीतिमैया युप्मासु वर्णिता । स्वामिमन्त्रिश्च युप्मामिर्मर्यमाधारणी इता ॥२०९॥  
 साम्प्रतं स्वर्गमीमेतु गतो मन्त्रेष्वतामहम् । ग्रस्यासामा हि मे लक्ष्मीरथ भूलोकोचरा ॥२१०॥  
 युप्मल्लाक्षिततः<sup>७</sup> कुर्वत्वं स्वसाक्रान्तं मयोजितम् । यशान्यो मत्समी मादी तस्मै सर्वं समर्पितम् ॥२११॥  
 इत्यनुसुकतां तेषु भावयश्चनुशिष्य<sup>८</sup> तान् । कुर्वेत्विन्द्रपदत्यागं स च्यथां वैति<sup>९</sup> धीरधीः ॥२१२॥  
 इन्द्रत्यागक्रिया सैषा तत्स्वर्गोगतिसञ्जनम् । धीरास्त्वजन्म्यनायासादैदर्य तारतामप्यहो ॥२१३॥

इति इन्द्रत्यागः ।

इस प्रकार स्वर्गलोकमें उत्पन्न होनेके योग्य ये विधिदान और इन्द्र सुखोदय नामकी दो क्रियाएँ  
 मानी गयी हैं ॥२०१॥ ये पैंतीसवीं और छत्तीसवीं विधिदान तथा सुखोदय क्रियाएँ हैं ।

इस प्रकार इन्द्रोपपाद, इन्द्राभिषेक, विधिदान और सुखोदय ये इन्द्र सम्बन्धी चार  
 क्रियाएँ कहीं । अब इन्द्रत्याग नामकी पूर्थक् क्रियाका निरूपण करता है ॥२०२॥ इन्द्र  
 जब अपनी आयुकी हिति थोड़ी रहनेपर अपना स्वर्गसे च्युत होना जान लेता है तब  
 वह देवोंको इस प्रकार उपदेश देता है ॥२०३॥ कि भो देवो, मैंने त्रिरकालसे आपका पालन  
 किया है, कितने ही देवोंको मैंने पिताके समान माना है, कितने ही देवोंको पुत्रके समान बड़े  
 प्रेमसे खिलाया है, कितने ही को पुरोहित, मन्त्री और अमात्यके स्थानपर नियुक्त  
 किया है, कितने ही को मैंने मित्र और पीठमर्दके समान देखा है । कितने ही देवोंको  
 अपने प्राणोंके समान भानकर उन्हें अपनी रक्षाके लिए नियुक्त किया है, कितने ही को  
 देवोंकी रक्षाके लिए सम्मानयोग्य पद पर देखा है, कितने ही को सेनापतिके स्थानपर  
 नियुक्त किया है, कितने ही को अपने परिवारके लोग समझा है, कितने ही को सामान्य  
 प्रजाजन माना है, कितने हीको सेवक माना है, कितने हीको परिजनके स्थानपर और  
 कितने ही को अन्तःपुरमें रहनेवाले प्रतीहारी आदिके स्थानपर नियुक्त किया है । कितनी ही  
 देवियोंको बल्लभिका बनाया है और कितनी ही देवियोंको महादेवी पदपर नियुक्त किया है,  
 इस प्रकार मैंने आप लोगोंपर असाधारण प्रेम दिखलाया है और आप लोगोंने भी हमपर असाधा-  
 रण प्रेम धारण किया है ॥२०४—२०५॥ इस समय स्वर्गके भोगोंमें मेरी इच्छा मन्द हो गयी  
 है और निद्रचय ही पृथिवी लोककी लक्ष्मी आज मेरे निकट आ रही है ॥२०६॥ इसलिए  
 आज तुम सबकी साक्षीपूर्वक मैं स्वर्गका यह समस्त साम्राज्य छोड़ रहा हूँ और मेरे पीछे मेरे  
 समान जो दूसरा इन्द्र होनेवाला है उसके लिए यह समस्त सामग्री समर्पित करता हूँ ॥२०७॥  
 इस प्रकार उन सब देवोंमें अपनी अनुकूलता अर्थात् उदासीनताका अनुभव करता हुआ इन्द्र  
 उम सबके लिए शिष्या दे और धीरवीर बुद्धिका धारक हो, इन्द्र पदका त्याग कर दुःखी न हो  
 ॥२०८॥ इस तरह जो स्वर्गके भोगोंका त्याग करता है वह इन्द्रत्याग क्रिया है । यह भी एक

१ विधिदान । २ स्वराह् ३०, ल० । ३ पिता इवाचरिताः । ४ कामाचार्य । ५ समानं यथा भवति तथा ।  
 ६ लोकपाला इत्यर्थः । ७ सेनापति । ८ ततः कारणात् । ९ उपशिष्य । १० न मच्छति ।

अवतारक्रियाऽस्यत्था ततः मंपरित्वते । कृताहंशूजनस्यान्ते स्वर्गाद्वतरिष्यतः ॥ २१४ ॥

‘सोऽयं नुजन्मसंप्राप्त्या सिद्धि द्वागभिखाषुकः । चेतः सिद्धन्मस्यायां३ समाधत्ते४ सुरधिराद् ॥ २१५ ॥  
शुभैः पोदशमिः स्वर्णैः संसूचितमहोदयः । तदा स्वर्गावितारात्यां कल्याणीमहनुगृ५ क्रियाम् ॥ २१६ ॥

इति इन्द्रावतारः ।

ततोऽवतीणो गमेऽसौ रक्षाभिगृहोपमे । जनयिष्या६ महादेव्या० श्रीदेवीमिथिशोधिते ॥ २१७ ॥  
हिरण्यशृंगे० धन्दे प्राक् वर्णमासान् प्रवर्णति ।० अन्वायाम्यामिषानम्दान् स्वर्णसंपदि भूतलम् ॥ २१८ ॥  
अमृतशस्त्रे० मन्दमाकातिं व्याससौरभे० । भूरेव्या इव निःश्वासे प्रकृत्ये पवनामरैः७ ॥ २१९ ॥  
कुन्दुमित्वनिते० मन्दमुखिते० पथि वासुचाम् । अकालस्तनिराशक्तामातन्वति शिरपिङ्गाम् ॥ २२० ॥  
मन्दास्तजमसुनिमामोदाहतश्वद्यदाम् । मुञ्चत्सु गुरुकाश्वेषु८ निकायेवसृताशिनाम् ॥ २२१ ॥  
देवीपृष्ठचरम्तीषु देवीं भुवनमातरम् । लक्ष्म्या समैॉ समाशत्य श्रीहीर्विद्विकीर्तिषु ॥ २२२ ॥  
कसिमवित् सुकृतावासे९ पुण्ये राजविमित्वे । हिरण्यगमो धत्तेऽसौ हिरण्योक्तुष्ट्रमताम् ॥ २२३ ॥  
हिरण्यसूचितोक्तुष्ट्रजन्मतात् स तथाश्रुतिम्१० । विभागां तां क्रिया धत्ते गर्भस्थोऽपि श्रिवोधभूत् ॥ २२४ ॥

इति हिरण्यजन्मता ।

आइचर्यकी बात है कि धीरकीर पुरुष स्वर्गके वैसे ऐश्वर्यको भी बिना किसी कष्टके छोड़ देते हैं ॥ २१३ ॥ इस प्रकार यह सेतीसबीं इन्द्रावतार क्रिया है । इन्द्रावतार की नृत्यशृंगरूप वै रक्षाभिगृहोपमे अन्तमें अरहन्तदेवका पूजन कर स्वर्गसे अवतार लेना चाहता है उसके आगेकी अवतार नामकी क्रिया होती है ॥ २१४ ॥ मैं मनुष्य-जन्म पाकर बहुत शोध्र मोक्ष प्राप्त क्रिया चाहता हूँ यही विचार कर वह इन्द्र अपना चित्त सिद्ध भगवान् को नमस्कार करनेमें लगाता है ॥ २१५ ॥ शुभ सोलह स्वप्नोंके द्वारा जिसने अपना बड़ा भारी अभ्युदय - माहात्म्य सूचित क्रिया है ऐसा वह इन्द्र उस समय कल्याण करनेवाली स्वर्गावितार नामकी क्रियाको प्राप्त होता है ॥ २१६ ॥ यह अड़तीसबीं इन्द्रावतार क्रिया है ।

तदनन्तर - वे माता महादेवीके श्री आदि देवियोंके द्वारा शुद्ध क्रिये हुए रक्तमय गर्भगारके समान गर्भमें अवतार लेते हैं ॥ २१७ ॥ गर्भमें आनेके छह महीने पहलेसे जब कुबेर घरपर रत्नोंकी वर्षा करने लगता है और वह रत्नोंकी वर्षा ऐसी जान पड़ती है भानो आनन्दसे स्वर्गकी सम्पदा ही भगवान् के साथ-साथ पृथिवीतलपर आ रही हो, जब अमृतके समान सुख देनेवालों वायु मन्द-मन्द ब्रह्मकर सब दिशाओंमें फैल रही हो तथा ऐसी जान पड़ती हो मानो पवनकुमार देवोंके द्वारा निर्माण क्रिया हुआ पृथिवीरूपी देवीका निःश्वास ही हो, जब आकाशमें उठी हुई दुन्दुभि बाजोंकी गम्भीर आवाज मयूरोंकी असमय में होनेवाली मेघगर्जनाकी शंका उत्पन्न कर रही हो, जब गुह्यक नामके देवोंके स्त्रैमूह कभी म्लान न होनेवाली और सुगन्धिके कारण भ्रमरोंको अपनी ओर खींचनेवाली कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाओंको बरसा रहे हों । और जब श्री, लक्ष्मी, बुद्धि, धूति और कीर्ति नामकी देवियाँ लक्ष्मी-के साथ आकर स्वयं जगन्माता महादेवीकी सेवा कर रही हों उस समय पुण्यके निवासभूत किसी पवित्र राजमन्दिरमें वे हिरण्यगर्भ भगवान् हिरण्योक्तुष्ट्र जन्म धारण करते हैं ॥ २१८-२२३ ॥ जो गर्भमें स्थित रहते हुए भी तीन ज्ञानको धारण करनेवाले हैं ऐसे भगवान्, हिरण्य

१ सोऽहं ल० । २ इटिति । ३ नमस्कारे । ४ समाहितं कुरुते । ५ गच्छति । ६ जनयता । ‘जनयत्री प्रसूभता जननी’ इत्यभिधानात् । ७ श्रीहीर्विद्विकीर्तिः । ८ सहायच्छत्याम् । ९ अमृतवदाह्नादकरमारहते । १० व्याप्तमारहते ल० । ११ वायुकुमारैः । १२ देवभेदेषु । १३ स्वयं ल० । १४ पुण्यस्याने । १५ हिरण्योक्तुष्ट्रजन्मतामिष्वानम् ।

‘विश्वेश्वरा जगन्माता महादेवी महासती । पूज्या सुमङ्गला चेति धर्मे रूपिं तिमात्मिका ॥२२५॥  
 कुलाद्विनिलया देव्यः श्रीहीर्धीष्टिकीर्तयः । समं लक्ष्म्या षडेताश्च संमता जिनमातृका ॥२२६॥  
 जन्मानन्तरमायातैः सुरेन्द्रैर्मैस्मूर्द्भिः । योऽभिषेकविधिः क्षीरपद्मोधेः शुचिमिर्जलैः ॥२२७॥  
 मन्दरेन्द्राभिषेकोऽसौ क्रियाऽस्म परमेहिनः । सा पुनः सुप्रतीतात्माद् भूतो नेह प्रतन्यते ॥२२८॥  
 इति मन्दरेन्द्राभिषेकः ।

सतो विष्णोपदेशोऽस्य स्वतन्त्रस्य स्वर्यंभूवः । शिष्यभवद्यतिक्रान्तिर्गुरुपूजोपलभनम्<sup>३</sup> ॥२२९॥  
 तदेन्द्राः पूजयन्त्येन<sup>४</sup> ब्रातारं त्रिजगद्गुरुम् । अशिक्षिसोऽपि देवतां संभवोऽसीति जिस्मिता ॥२३०॥  
 इति गुरुपूजनम् ।

ततः कुमारकालेऽस्य यौवराज्योपलभनम् । पट्टवन्धोऽभिषेकश्च तदास्य स्याम्भाजसः ॥२३१॥  
 इति स्वराज्यम् ।

स्वराज्यमधि राज्येऽभिषिक्तस्यास्य क्षितीर्थरः । शासनः<sup>५</sup> सार्णवामनां श्रितिमप्रतिशासनाम् ॥२३२॥  
 इति स्वराज्यम् ।

चक्रलाभः भवेदस्य निधित्वसमुद्भवे । विजग्रहतिभिः<sup>६</sup> पूजा साभिषेकाऽधिराजिति ॥२३३॥  
 इति चक्रलाभः ।

अर्थात् सुवर्णकी वर्षसि जन्मकी उल्लङ्घता सूचित होनेके कारण हिरण्योत्कृष्ट जन्म इस सार्थक नामको धारण करनेवाली क्रियाको धारण करते हैं ॥२२४॥ यह उन्तालीसवीं हिरण्योत्कृष्ट-जन्मता क्रिया है ।

उस समय वह भगवान्‌की माता विश्वेश्वरी, जगन्माता, महादेवी, महासती, पूज्या और सुमंगला इत्यादि नामोंको धारण करती है ॥२२५॥ कुलाचलोंपर रहनेवाली श्री, ही, बुद्धि, धृति, कीर्ति और लक्ष्मी ये छह देवियाँ जिनमातृका अर्थात् जिनमाताकी सेवा करनेवाली कहलाती हैं ॥२२६॥ जन्मके अनन्तर आपे हुए इन्द्रोंके द्वारा मेरु पर्वतके मस्तक पर क्षीरसागरके पवित्र जलसे भगवान्‌का जो अभिषेक किया जाता है वह उन परमेष्ठोंकी मन्दराभिषेक क्रिया है । वह क्रिया अत्यन्त प्रसिद्ध है इसलिए यहाँ उसका फिरसे विस्तार नहीं किया जाता है ॥२२७-२२८॥ यह चालीसवीं मन्दराभिषेक क्रिया है ।

तदनन्तर स्वतन्त्र और स्वयम्भू रहनेवाले भगवान्‌के विद्याओंको उपदेश होता है । वे शिष्यभावके बिना ही गुरुकी पूजाको प्राप्त होते हैं अर्थात् किसीके शिष्य हुए बिना ही सबके गुरु कहलाने लगते हैं ॥२२९॥ उस समय इन्द्र लोग आकर है देव, आप अशिक्षित होनेपर भी सबको मान्य हैं इस प्रकार आश्चर्यकी प्राप्त होते हुए सबकी रक्षा करनेवाले और तीनों जगत्के गुरु भगवान्‌की पूजा करते हैं ॥२३०॥ वह इकतालीसवीं गुरुपूजन क्रिया है ।

तदनन्तर कुमारकाल आनेपर उन्हें युवराजपदकी प्राप्ति होती है, उस समय महाप्रतापवान् उन भगवान्‌के राजपद्म बांधा जाता है और अभिषेक किया जाता है ॥२३१॥ यह बयालीसवीं यौवराज्य क्रिया है ।

तत्पश्चात् समस्त राजाओंने राजाधिराज (सम्राट्)के पदपर जिनका अभिषेक किया है और जो दूसरेके शासनसे रहित इस समुद्र पर्यन्तकी पृथिवीका शासन करते हैं ऐसे उन भगवान्‌के स्वराज्यकी प्राप्ति होती है ॥२३२॥ यह तैतालीसवीं स्वराज्य क्रिया है ।

इसके बाद निधियों और रत्नोंकी प्राप्ति होनेपर उन्हें चक्रकी प्राप्ति होती है उस समय

१ विश्वेश्वरी ल० । २ शिष्यत्वाभावः । ३ गुरुपूजाप्राप्तिः । ४ स्वस्य स्वयमेव गुरुरिति भावः । ५ पूजयन्त्येत ल०, द० । ६ आत्मीयप्रजापरिवारः ।

दिशांजयः स किञ्चेयो योऽस्य दिविजयोदयमः । चक्ररत्नं पुरस्कृत्य जयतः दार्णवां महीम् ॥ २३४॥

इति दिशांजयः ।

मिददिविजयस्यास्य स्वपुरानुप्रवेशमे । किया चक्राभिषेकाद्वा । साऽधुना संप्रकीर्त्यते ॥ २३५॥  
चक्ररत्नं पुरोधाय प्रविष्टः हृतं निकेतनम् । परार्थ्येतिभवोपेतं स्वर्णिमानापहासि अत् ॥ २३६॥  
तत्र धारणमिवासीमे॑ रथ्ये प्रमदमण्डपे । चार्मर्दीज्यभासोऽयं सनिकरं हवाद्विराट् ॥ २३७॥  
संपूज्य निधिरलानि॑ कृताद्वक्त्रहोस्यवः । दत्तवा किमिष्ठकं दानं मात्यान्॑ संमान्य पार्थिवान् ॥ २३८॥  
ततोऽभिषेकमासांसि पार्थिवैर्महितास्त्वयैः । नान्दीत्येषु गम्भीरं प्रध्वनात्सु सहस्रशः ॥ २३९॥  
यथावदभिषिहस्य तिरीटारोपयं ततः । क्रियते पार्थिवैसुर्व्यैश्वतुभिः प्रथितास्त्वयैः ॥ २४०॥  
महाभिषेकसामग्रथा कृतचक्राभिषेकनः । कृतमङ्गलनेपथ्यैः पार्थिवैः प्रणतोऽभिलः ॥ २४१॥  
तिरीटं स्कुटरामांसु जटिलाकृतदिसुकृतम् । दधानश्चक्ताश्राज्यककुदं॑ कृपयुक्तवाः ॥ २४२॥  
रक्षाशुच्छुरितं॑ विभृत् कर्णभ्यां कुण्डलदूधवल् । यद्वाग्नेदथाः समाक्षीश्वारथं अकद्वयापितम् ॥ २४३॥  
लारालितरत्नस्यूलसुकामलमुरोगुहे । धारयन् हारसाकदभिष भङ्गलतोरणम् ॥ २४४॥

समस्त प्रजा उन्हें राजाद्विराज मानकर उनकी अभिषेकसहित पूजा करती है ॥ २३३॥ यह चक्रलाभ नामकी ओवालीसंबीं किया है ।

सदनन्तरं चक्ररत्नको आगे कर समुद्रसहित समस्त पृथिवीको जीतनेवाले उन भगवान् का जो दिशाओंको जीतनेके लिए उद्योग करना है वह दिशांजय कहलाता है ॥ २३४॥ यह दिशांजय नामकी पैतालीसंबीं किया है ।

जब भगवान् दिविजय पूर्ण कर अपने नगरमें प्रवेश करते लगते हैं तब उनके चक्राभिषेक नामकी क्रिया होती है । अब इस समय उसी क्रियाकां वर्णन किया जाता है ॥ २३५॥ वे भगवान् चक्ररत्नको आगे कर अपने उस राजभवनमें प्रवेश करते हैं जो कि बहुभूल्य वैभवसे सहित होता है और स्वर्गके विमानोंकी हँसी करता है ॥ २३६॥ वहाँपर वे मनोहर आनन्द-मण्डपमें क्षण-भर विराजमान होते हैं । उस समय उनपर चमर ढुलाये जाते हैं जिससे वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो निर्झरनोंसहित सुमेरु पर्वत ही हो ॥ २३७॥ उस समय वे निधियों और रत्नोंकी पूजा कर चक्र प्राप्त होनेका बड़ा भारी उत्सव करते हैं, किमिष्ठक दान देते हैं और माननीय राजाओंका सन्मान करते हैं ॥ २३८॥ तदनन्तर तुरही आदि हजारों मांगलिक बाजोंके गम्भीर शब्द करते रहनेपर वे उत्तम-उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए राजाओंके द्वारा अभिषेकको प्राप्त होते हैं ॥ २३९॥ तदनन्तर – विधिपूर्वक जिनका अभिषेक किया गया है ऐसे उन भगवान् के मस्तकपर प्रसिद्ध प्रसिद्ध कुलमें उत्पन्न हुए मुख्य चार राजाओंके द्वारा मुकुट रखा जाता है ॥ २४०॥ इस प्रकार महाभिषेककी सामग्रीसे जिनका चक्राभिषेक किया गया है, जिन्होंने मांगलिक वेष धारण किया है, जिन्हें चारों ओरसे राजा लोग नमस्कार कर रहे हैं, जो देवीप्यमान रत्नोंकी किरणोंसे समस्त दिशाओंको व्याप्त करतेवाले तथा चक्रवर्तीके साम्राज्यके चिह्नस्वरूप मुकुटको धारण कर रहे हैं, राजाओंमें शेष हैं, जो अपने दोनों कानोंमें रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त तथा सरस्वतीके क्रोडारथके पहियोंकी शोभा देनेवाले दो कुण्डलोंको धारण कर रहे हैं, जो बक्षःस्थलरूपी घरके सामने खड़े किये हुए मांगलिकतोरणके समान लुशोभित होनेवाले और ताराओंकी

१ अणपर्याप्तमेव । २ विहितचक्रपूजनः । ३ संपूज्य । ४ अलंकारः । ५ चिह्नं प्रधानं वा । ६ प्राधाने राजलिङ्गे च दृषाङ्गे कुदोऽस्त्रियामि॒त्यभिषानात् । ७ मिथितम् । ८ क्रीडानिमित्तस्पन्दन ।

विलसद्भूतसूत्रेण प्रविमक्ततनृष्टिः । तटनिर्जीवं पातरम्यमूर्तिरिवाक्रिपः ॥२४५॥

सद्वक्षकटकं प्रोक्षैः शिखरं भुजयो युगम् । द्वाविमश्लाभि निष्ठ्राणः<sup>१</sup> कुलक्षमाघद्वयाग्नितम् ॥२४६॥

कृदिसपूर्वलसंस्कृलसक्लाप्तीपरिच्छदः । महाद्वीप इवोपान्तरलवेदीपरिच्छुतः<sup>२</sup> ॥२४७॥

<sup>३</sup> भृमद्वारक्षुभूमित्वाद्विलक्ष्मिलकुलक्षक्षुतः । <sup>४</sup> किमप्यास्तधसंगीतमिव शेखरसुद्धहन् ॥२४८॥

तत्कालोचितमन्यद्व दधनमङ्गलभूषणम् । स तदा लक्ष्यते साक्षात्कृष्ण्याः पुञ्ज इवोदित्तिः ॥२४९॥

प्रीताश्वाभिष्टुबन्त्येनं तदामी नुपमत्तमाः । विश्वं जयो दिशां जेता दिष्यमूर्तिर्भवानिति ॥२५०॥

पौराः प्रकृतिमुख्याक्ष कुतपादाभिषेषत्ताः । तत्कमार्चनमात्राय कुर्वन्ति स्वदिशीघ्रतम् ॥२५१॥

श्रीदेव्यश्च सरिदेव्योऽदेव्यो विशेषरा अपि । समुपत्य नियोगः स्वैस्तदेनं पर्युपासते ॥२५२॥

इति चक्राभिषेकः ।

चक्राभिषेक हृत्येकः समाख्यातः कियाविधिः । तदनन्तरमस्य स्यात् साक्षात्याख्यं कियान्तरम् ॥२५३॥

अपरं द्युदिनारम्भे धृतयुग्मप्रसाधनः<sup>५</sup> । मध्ये महानृपसमं<sup>६</sup> नृपासनमधिष्ठितः ॥२५४॥

दीप्तैः प्रकीर्णकवातैः स्वर्धुनीर्सीकरोऽथवलैः । वारनारोकरापूतैर्वैज्यमानः समन्ततः ॥२५५॥

सेवागतैः पृथिव्यादिरेवतांशैः<sup>७</sup> परिष्कृतः<sup>८</sup> । इतिप्रशास्तदीप्त्योजोऽनिर्मलत्वोपमा<sup>९</sup> दिभिः ॥२५६॥

पंकितके समान चंचल तथा बड़े-बड़े मोतियोंसे युक्त हार धारण किये हुए हैं, शोभायमान यज्ञो-पवीतसे जिनके शरीरकी उच्चता प्रकट हो रही है और इसी कारण जो तटपर पढ़ते हुए निर्जरनोंसे सुन्दर आकारवाले सुमेह पर्वतके समान जान पढ़ते हैं, जो रत्नोंके कटक अर्थात् कड़ों ( पक्षमें रत्नमय मध्यभागों ) से सहित, कैचे-कैचे शिखरों अर्थात् कन्धों ( पक्षमें चोटियों ) से युक्त, लम्बाईसे मुशोभित और इसलिए ही दो कुलाचलोंके समान आचरण करनेवाली दो भुजाओंको धारण कर रहे हैं, जिनकी कमरपर देवीयमान करधनी सटी हुई है और उससे जो ऐसे जान पढ़ते हैं मानो चारों ओरसे रत्नमयी बेदीके द्वारा विरा हुआ कोई महाद्वीप ही हो, जो मन्दार वृक्षके फूलोंकी सुगन्धिके कारण आकर लगे हुए आमरोंके समूहकी हँकारोंसे कुछ गाते हुएके समान मुशोभित होनेवाले शेखरको धारण कर रहे हैं तथा उस कालके योग्य अन्य-अन्य मांगलिक आभूषण धारण किये हुए हैं ऐसे वे भगवान् उस समय ऐसे जान पढ़ते हैं मानो जिसकी शिखा ऊँची उठ रही है ऐसा साक्षात् लक्ष्मीका पुंज ही हो ॥२४१-२४९॥ उस समय अन्य उत्तम-उत्तम राजा लोग सन्तुष्ट होकर उनकी इस प्रकार स्तुति करते हैं कि आपने समस्त संसारको जीत लिया है, आप दिशाओंको जीतनेवाले हैं और दिव्यमूर्ति हैं ॥२५०॥ नगरनिवासी लोग तथा मन्त्री आदि मुख्य-मुख्य पुरुष उनके चरणोंके अभिषेक करते हैं और उनका चरणोदक लेकर अपने-अपने मस्तकपर धारण करते हैं ॥२५१॥ श्री ही आदि देवियाँ, गंगा सिन्धु आदि देवियाँ तथा विश्वेश्वरा आदि देवियाँ अपने-अपने नियोगोंके अनुसार आकर उस रामय उनकी उपासना करती हैं ॥२५२॥ यह चक्राभिषेक नामकी छियालीसवीं क्रिया है ।

इस प्रकार उनकी यह एक चक्राभिषेक नामकी क्रिया कही । अब इसके बाद साक्षात्य नामकी दूसरी क्रिया कहते हैं ॥२५३॥ दूसरे दिन प्रातःकालके समय जिन्होंने पवित्र आभूषण धारण किये हैं, जो बड़े-बड़े राजाओंकी सभाके बीचमें राजसिंहासनपर विराजमान हैं, जिनपर देवीप्यमान गंगा नदीके जलके छोटोंके समान उज्ज्वल और गणिकाओंके हाथसे हिलाये हुए चमर चारों ओरसे कुलाये जा रहे हैं, जो धृति, शान्ति, दीप्ति, ओज और निर्मलताको उत्पन्न करनेवाले

१ देवेन दलाषि । २ परिवेष्टिः । ३ ईषद् । ४ गङ्गादेव्याश्यः । ५ पवित्रालंकारः । ६ महानृपसमायाः मध्ये । ७ पृथिव्यप्तेजोवायुगगनाभिदेवताविक्रियाशीरैः इत्यर्थः । ८ भूषितः । ९ बलम् । 'ओजो दीप्तो बले' इत्यभिधानात् । १० उत्पादकः ।

तान्<sup>१</sup> प्रजानुभ्रहे निर्यं समाधानेन योजयन् । यं मानदानविधमैः<sup>२</sup> प्रकृतीरनुस्थयन् ॥२५७॥  
पार्थिवान् प्रणतान् यूक्तं न्यायैः पालयत प्रजाः । अस्मादेषु<sup>३</sup> प्रशुक्ताश्चेद् द्रुतिकोषो<sup>४</sup> धूर्वं हि वः ॥२५८॥  
न्यायश्च हितयो दुष्टनिग्रहः शिष्पालनम् । सोऽयं सनातनः क्षाण्मो धर्मो रक्ष्यः प्रजेष्ठरः ॥२५९॥  
दिव्याख्यदेवताश्चामूराराज्याः स्युर्विधानतः । ताभिस्तु सुप्रसादाभिरक्षये<sup>५</sup> माङ्गुको जयः ॥२६०॥  
राजवृत्तिभिर्मां सम्यक् पालयत्ति रत्नित्वैः । प्रजासु वर्तितव्यं भी मवजित्यविवर्तना ॥२६१॥  
पालयत्ता इमं धर्मं स धर्मविजयी भवेत् । इमो जयेद् विजितात्मा हि क्षत्रियो न्यायजीविकः ॥२६२॥  
इहैव<sup>६</sup> स्याद् यशोलाभ्यो भूलाभश्च महोदयः । असुआभ्युदयाचासिः क्रमात् अैलोक्यनिर्जयः ॥२६३॥  
इति भूयोऽनु<sup>७</sup> शिष्येतान् प्रजापालनसंविधी । स्वयं च पालयत्येनान् योगक्षेमानुचिन्तनैः ॥२६४॥  
तदिदं तस्य साम्राज्यं भाम धर्मं क्रियान्तरम् । येतानुपालितेनायमिहासुत्रं च नन्दति ॥२६५॥  
इति साम्राज्यम् ।

एवं प्रजाः प्रजापालानपि पालयत्तिरम् । काले कर्त्तिभिरुत्पत्तिवोदे दीक्षेष्वमो भवेत् ॥२६६॥

पृथिवी आदि देवताओंके अंशोंसे अर्थात् उनके वैकियिक शरीरोंसे हैं, जो उन देवताओंको समाधानपूर्वक निरन्तर प्रजाके उपकार करनेमें लगा रहे हैं और आदर सत्कार, दान तथा विद्वास आदिसे जो मन्त्री आदि प्रमुख कार्यकर्त्ताओंको आनन्दित कर रहे हैं ऐसे वे महाराज नमस्कार करते हुए राजाओंको इस प्रकार शिक्षा देते हैं कि तुम लोग न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करो, यदि अन्यायमें प्रवृत्ति रखोगे तो अवश्य ही तुम्हारी वृत्तिका लोप हो जावेगा ॥२५४-२५५॥ न्याय दो प्रकारका है – एक दुष्टोंका निग्रह करना और दूसरा शिष्ट पुरुषोंका पालन करना । यह क्षत्रियोंका सनातन धर्म है । राजाओंको इसकी रक्षा अच्छी तरह करनी चाहिए ॥२५६॥ ये दिव्य अस्त्रोंके अधिष्ठाता द्वैत भी विधिपूर्वक और धैनिक वैभवका व्याप्ति हैं<sup>८</sup> क्योंकि इनके प्रसन्न होनेपर युद्धमें विजय अवश्य ही होती है ॥२५७॥ इस राजवृत्तिका अच्छी तरह पालन करते हुए आप लोग आलस्य छोड़कर प्रजाके साथ न्याय-मार्मसे बतावि करो ॥२५८॥ जो राजा इस धर्मका पालन करता है वह धर्मविजयी होता है क्योंकि जिसने अपना आत्मा जीत लिया है तथा न्यायपूर्वक जिसकी आजीविका है ऐसा क्षत्रिय ही पृथिवीको जीत सकता है ॥२५९॥ इस प्रकार न्यायपूर्वक बतावि करनेसे इस संसारमें यशका लाभ होता है, महान् वैभवके साथ साथ पृथिवीकी प्राप्ति होती है, और परलोकमें अभ्युदय अर्थात् स्वर्गकी प्राप्ति होती है और अनुक्रमसे वह तीनों लोकोंको जीत लेता है अर्थात् मोक्ष अवस्था प्राप्त कर लेता है ॥२६०॥ इस प्रकार वे महाराज प्रजापालनकी रीतियोंके विषयमें उन राजाओंको बार-बार शिक्षा देते हैं तथा योग और क्षेमका बार-बार चिन्तवन करते हुए उनका स्वयं पालन करते हैं ॥२६१॥ इस प्रकार यह उनकी धर्मसहित साम्राज्य नामकी वह क्रिया है जिसके कि पालन करनेसे यह जीव इस लोक तथा परलोक द्वीनों ही लोकोंमें समृद्धिको प्राप्त होता है ॥२६२॥ यह सेतालीसदीं साम्राज्य क्रिया है ।

इस प्रकार बहुत दिन तक प्रजा और राजाओंका पालन करते हुए उन महाराजके किसी समय भेदविज्ञान उत्पन्न होनेपर दीक्षा ग्रहण करनेके लिए उद्यम होने लगता है ॥२६३॥

१ पृथिव्यादिदेवताशान् । २ स्तेहैः विश्वासैर्वा । ३ प्रवृत्तिरचेत् प०, ल०, द० । ४ निजनिजराज्यलोपो भवति । ५ निष्पेन भवति । ६ एवं सति । ७ शिक्षां कृत्वा । ८ पालयत्येनान् ल०, प०, द० । ९ साम्राज्य-साम्रक्रियान्तरेण ।

सैषा निकान्तिरस्येषा क्रिया राज्याद् विरज्यतः । लौकान्तिकामैरभूयो वोधितस्य यमागतैः ॥२६७॥  
 कुलसञ्चारपौणे उपेष्ठे सूनी॑ पार्थिवसाक्षिकम् । संतानपालने चास्य करोतीत्यनुशासनम् ॥२६८॥  
 नवया न्यायधनेनाहु भवितस्यं प्रजाधृतौ । प्रजा कामदुषा घेनुर्मला न्यायेन योजिता ॥२६९॥  
 राजवृत्तमिदं निदि यन्न्यायेन धनार्जनम् । वर्धनं रक्षणं चास्यै॒ तीर्थे॑ च प्रतिपादनम् ॥२७०॥  
 प्रजानो पालनार्थं च मतं मरणुपालनम्॑ । मतिहिताहितशानमान्त्रिकामुत्रिकार्ययोः ॥२७१॥  
 ततः॑ कुलनिद्रयजयो वृद्धसंयोगसंपदा । धर्मार्थ॑ शास्त्रविज्ञानात् प्रश्नो मंस्कर्महसि ॥२७२॥  
 अन्यथा द्विमसिभूयो॑ युक्तायुक्तानभिजकः । अन्यथाऽन्यैः प्रणेयः॑ स्वान्मिथ्याज्ञानस्त्रोद्धतैः ॥२७३॥  
 कुलानुपालने चार्थं महान्तं यज्ञमाचरेत् । अश्वात्कुलधमो हि दुर्वृत्तैर्वयेन कुलम् ॥२७४॥  
 नथायमास्मरक्षायां सदा यज्ञपरो भवेत् । रक्षितं हि भवेत् सर्वं नृपणामनि रक्षिते ॥२७५॥  
 अपायो हि सप्तनेत्यो॑ नृपस्थारक्षितामनः । आत्मानुजीविवर्गाच्च कुबुलुद्धविमानितान्॑ ॥२७६॥  
 १० तस्माद् रसदत्तीश्वादीनपाचानस्त्रियोजितान्॑ ॥११ परिहृत्य निजैरिष्टैः स्वं प्रयत्नेन पालयेत् ॥२७७॥  
 स्थात् सम्भूतित्वमायस्यामाभिरक्षणे॑ ॥१२ असमअसमृत्तां हि निजैरप्यमिभूयते ॥२७८॥

जो अश्वात्कुलसेविरक्तः१ हो रहे हैं कुलजीवोंके द्वारा लोकान्तिक देव जिन्हें बार-बार प्रबोधित कर रहे हैं ऐसे उन भगवान्‌की यह निष्क्रान्त नामकी क्रिया कही जाती है ॥२६७॥ वे समस्त राजाओंकी साक्षीपूर्वक अपने बड़े पुत्रके लिए राज्य सीप देते हैं और सन्तान-पालन करनेके लिए उसे इस प्रकार शिक्षा देते हैं ॥२६८॥ हे पुत्र, तुझे प्रजाके पालन करनेमें त्यायरूप धनसे भुक्त होना चाहिए अर्थात् तू त्यायको ही धन समझ, क्योंकि त्यायपूर्वक पालन की हुई प्रजा मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली कामधेनु गायके समान मानी गयी है ॥२६९॥ हे पुत्र, तू इसे ही राजवृत्त अर्थात् राजाओंका कर्तव्य समझ कि त्यायपूर्वक धन कमाना, उसकी बृद्धि करना, रक्षा करना तथा तीर्थस्थान अथवा योग्य पात्रोंका देना ॥२७०॥ प्रजाका पालन करनेके लिए सबसे अपनी बुद्धिकी रक्षा करनी चाहिए, इस लोक और परलोक दोनों लोकसम्बन्धी पदार्थकि विषयमें हित तथा अहितका ज्ञान होना ही मति कहलाती है ॥२७१॥ इसलिए वृद्ध मनुष्योंकी संगतिरूपी सम्पदासे इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर तुम धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र-के ज्ञानसे अपनी बुद्धिको सुसंस्कृत बनानेके योग्य हो अर्थात् बुद्धिके अच्छे संस्कार बनाओ ॥२७२॥ यदि राजा इससे विपरीत प्रवृत्ति करेगा तो वह हित तथा अहितका ज्ञानकार न होनेसे बुद्धिभ्रष्ट हो जावेगा और ऐसी दशामें वह मिथ्याज्ञानके अंश मात्रसे डहत हुए अन्य कुमार्गामियोंके बश हो जावेगा ॥२७३॥ राजाओंको अपने कुलकी भयदा पालन करने के लिए बहुत भारी प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि जिसे अपनी कुलमयदाका ज्ञान नहीं है वह अपने दुराचारोंसे कुलको दूषित कर सकता है ॥२७४॥ इसके सिवाय राजाको अपनी रक्षा करनेमें भी सदा यत्न करते रहना चाहिए क्योंकि अपने आपके सुरक्षित रहनेपर ही अन्य सब कुछ सुरक्षित रह सकता है ॥२७५॥ जिसने अपने आपकी रक्षा नहीं की है ऐसे राजाका शत्रुओंसे तथा क्रोधी, लोभी और अपमानित हुए अपने ही सेवकोंसे विनाश हो जाता है ॥२७६॥ इसलिए शत्रुओंके द्वारा किये हुए प्रारम्भमें सरल किन्तु फलकालमें कठिन अपायोंका परिहार कर अपने हृष्ट बगोंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए ॥२७७॥ इसके सिवाय

१ प्रजापतौ निमित्तम् । २ अनस्थ । ३ पात्रे । ४ निजबुद्धिरक्षणम् । ५ ततः कारणात् । ६ नीतिशास्त्र ।  
 ७ भूयो इ०, प०, स० । ८ वस्यः । ९ दायादेशः शशुभ्यो वा । १० तिरस्कृतात् । ११ तस्मात् कारणात् ।  
 १२ रसतामास्थादं कुर्वतामकटुकादीन् रसनकाले अनुभवनकाले स्वादुरसप्रदात् विपाककाले कटुकानित्यर्थः ।  
 १३ आत्मरक्षानिमित्तम् । - त्यादिरक्षणे अ०, प०, द० ।

सप्तम्यवमस्येषं प्रजास्वविषमेक्षिता<sup>१</sup> । आनुर्वस्यमवाग्दण्डपाहन्त्यादिविशेषिलम् ॥ २७५ ॥  
 ततो जितारिषद्वर्गः स्वां वृत्ति पालयत्तिमाम् । स्वराज्ये सुस्थितो राजा ग्रेष्व<sup>२</sup> चेह च नन्दति ॥ २७६ ॥  
 समं समञ्च सखेन कुलमस्यापमपाकनम् । प्रजामुपालनं चेति प्रोक्ता वृत्तिमहीक्षिताम् ॥ २७७ ॥  
<sup>३</sup>ततः क्षात्रमिमं धर्मं यथोक्तमनुपालयत् । स्थितो राज्ये वशो धर्मं विजयं च व्याप्तुहि ॥ २७८ ॥  
 प्रशान्तधीः समुप्यज्ञात्तिरित्यनुविष्य तम्<sup>४</sup> । परिनिष्कान्तिवृत्ताने सुरेन्द्रैरभिपूजितः ॥ २७९ ॥  
 महादानमधो दत्ता साम्राज्यपदमुप्यजन् । स राजराजो राजविर्विष्कामति युहाद् वनम्<sup>५</sup> ॥ २८० ॥  
 धौरेत्यैः पार्थिवैः किंचित् समुत्क्षिता नहीत्तलाव् । स्वधाविरोपितो भूयः सुरेन्द्रैर्मन्त्रिनिर्वैरः ॥ २८१ ॥  
 आरुङ्गः शिक्षिका विष्यां दीहस्तविभिर्मिताम् । विमानवसरिं भानोरिदाऽवातो नहीत्तलम् ॥ २८२ ॥  
 उरस्तरेषु निःशेषनिहस्त्व्योगवीष्यिषु । सुरासुरेषु तत्त्वसु संदिग्धाकंपमं नभः ॥ २८३ ॥  
<sup>६</sup>अनूस्थितेषु संप्रीत्या पार्थिवेषु सत्संभवम् । कुमारमप्रतः कृत्या प्राप्तराज्यं नवोदयम् ॥ २८४ ॥  
 अनुयाविनि तत्त्वागादिव मन्त्रीमवद्युतौ । विष्णीनो सह रक्षानो संबोद्देश्यर्थसंक्षये ॥ २८५ ॥

राजाको अपनी तथा प्रजाको रक्षा करनेमें समंजसवृत्ति अर्थात् पक्षपातरहित होना चाहिए क्योंकि जो राजा असमंजसवृत्ति होता है, वह अपने ही लोगोंके द्वारा अपमानित होने लगता है ॥ २७८ ॥ समस्त प्रजाको समान रूपसे देखना अर्थात् किसीके साथ पक्षपात नहीं करना ही राजाका समंजसत्व गुण कहलाता है । उस समंजसत्व गुणमें क्रूरता या घातकपना नहीं होना चाहिए और न कठोर वचन तथा दण्डकी कठिनता ही होनी चाहिए ॥ २७९ ॥ इस प्रकार जो राजा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छह अन्तरंग शत्रुओंको जीतकर अपनी इस वृत्तिका पालन करता हुआ स्वकीय राज्यमें स्थिर रहता है वह इस लोक तथा परलोक दोनों ही लोकोंमें समृद्धिवान् होता है ॥ २८० ॥ पक्षपातरहित होकर सबको एक समान देखना, कुलकी समर्यादाकी रक्षा करना, बुद्धिकी रक्षा करना, अपनी रक्षा करना और प्रजाका पालन करना यह सब राजाओंकी वृत्ति कहलाती है ॥ २८१ ॥ इसलिए हे पुत्र, ऊपर कहे हुए इस क्षात्रधर्मकी रक्षा करता हुआ तू राज्यमें स्थिर रहकर अपना यश, धर्म और विजय प्राप्त कर ॥ २८२ ॥ जिनकी बुद्धि अत्यन्त शान्त है और जिन्हें ऐदविज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे वे भगवान् ऊपर लिखे अनुसार पुत्रको शिक्षा देकर दीक्षाकल्याणके लिए इन्द्रीके द्वारा पूजित होते हैं ॥ २८३ ॥ अथानन्तर महादान देकर साम्राज्यपदको छोड़ते हुए वे राजाधिराज राजविधरसे वनके लिए निकलते हैं ॥ २८४ ॥ प्रथम ही मुख्य-मुख्य राजा लोग जिसे पृथिवीतलसे उठाकर कल्येपर रखकर कुछ दूर ले जाते हैं और फिर भक्तिसे भरे हुए देव लोग जिसे अपने कन्धोंपर रखते हैं, जो देवीप्यमान रस्तोंसे बनी हुई है और जो पृथिवीतलपर आये हुए सूर्यके विमानके समान जान पड़ती है ऐसी दिव्य पालकीपर वे भगवान् सबार होते हैं ॥ २८५-२८६ ॥ जिस समय समस्त आकाश-मार्गको रोकते हुए और अपनी कान्तिसे आकाशमें सूर्यकी प्रभाका सन्देह फैलाते हुए सुर और असुर आगे चलते हैं, जिसे राज्य प्राप्ता हुआ है और जिसका नवीन उदय प्रकट हुआ है ऐसे कुमारको आगे कर दड़े प्रेम और सम्भवके साथ जब समस्त राजा लोग भगवान्के समीप लड़े होते हैं, जिनका भगवान्के समीप रहना छूट चुका है और भगवान्के छोड़ देनेसे ही मानो जिनकी कान्ति मन्द पड़ गयी है ऐसे निषि और रस्तोंका समूह जब उनके पीछे-पीछे आता है, जिसने वायुके बेगसे उड़ती हुई ध्वनिओंके समूहसे आकाशको व्याप्त

१ समविशित्वम् । २ अनुर्वस्यम् भावः । ३ अवानुकर्त्तव्यर्थः । ४ अवान्तरे । ५ ततः कारणात् । ६ व्याप्तुहि प०, ८० । ६ पुत्रम् । ७ दीक्षाकल्याणम् । ८ अन्तःस्थितेषु ल० १

सैन्ये च कृतसामा है शनैः समनुगच्छति । मरुद्रुतध्वजशातनिरुपवनाध्वनि ॥२६०॥  
 इवनस्य सुरत्येषु त्रृयस्य प्रकरणो गगे । गायत्रीषु कलकाणं किंनरीषु च मङ्गलम् ॥२६१॥  
 भगवान्निष्क्रान्तः पुण्ये<sup>१</sup> कहिंश्चिद्रात्रभैः । दिथतः शिलातले स्वस्मिंश्चेत्सीवातिविस्तृते ॥२६२॥  
 निर्वाणदीक्षयात्मानं योजयन्मनुतोदद्धः । सुराधिष्ठैः कृतानन्दमर्चितः परवेज्यया ॥२६३॥  
 योऽन्न दोको<sup>२</sup> विधिर्मुक्तः केशपूजाविलक्षणः । प्रागेव म तु मिर्णितो निष्क्रान्तौ शुष्मभेशिनः ॥२६४॥  
 इति निष्क्रान्तिः ।

परिनिष्क्रान्तिरेषा स्यात् किया निर्वाणदायिनी । अतः परं मवेदस्य मुमुक्षोर्योगमंमहः ॥२६५॥  
 यद्यायं लक्ष्यत्वाद्वान्तसंगो<sup>३</sup> उत्तिष्ठत्वात्प्रदेवत् । त्रृत्युक्तुश्चात्मापेषु<sup>४</sup> शिलातलमधुचलद् ॥२६६॥  
 तदाऽस्य क्षपकश्रेणीमारुदस्योचिते पदे<sup>५</sup> । शुक्रस्यानामिनिर्दग्धवातिकर्मघनाटवे: ॥२६७॥  
 प्रादुर्भवति निःशेषवहिरन्तर्मलक्ष्यत् । केवलार्यं परं उयोतिर्लोकालोकप्रकाशकम् ॥२६८॥  
 तदेतस्मिहसाभ्यस्य प्रापुषः<sup>६</sup> परमं महः । योगसंमह इत्याण्यामनुदत्ते क्रियान्तरम् ॥२६९॥  
 ज्ञानध्यात्मसमायोगो योगो यस्तत्कुलो महः । महिमातिशयः सोऽयभासातो योगसंमहः ॥२७०॥  
 इति योगसंमहः ।

तसोऽस्य केवलोऽप्यत्ती पूजितस्यामरेष्वैः । वहिविभूतिरुद्गता प्रातिशार्थादिलक्षणा ॥२७१॥

कर लिया है ऐसी सेना अपनी विशेष रचना बनाकर जिस समय धीरे-धीरे उनके पीछे चलने लगती है तथा जिस समय देवोंके तुरही आदि बाजे बजते हैं, अप्सराओंका समूह नृत्य करता है और किशरी देवियाँ मनोहर शब्दोंसे मंगलगीत गाती हैं, उस समय वे भगवान् किसी पवित्र आश्रममें अपने चित्तके समान विस्तृत शिलातलपर विराजमान होकर दीक्षा लेते हैं। इस प्रकार जिनका उदय आश्चर्य करनेवाला है और जो निर्वाणदीक्षके द्वारा अपने आपको युक्त कर रहे हैं ऐसे भगवान्‌की इन्द्र लोग उल्कष्ट सामग्रीके द्वारा आनन्दके साथ पूजा करते हैं ॥२८७-२९३॥ इस क्रियामें केश लोंच करना, भगवान्‌की पूजा करना आदि जो भी कार्य अवशिष्ट रह गया है उस सबका भगवान् वृषभदेवकी दीक्षाके समय वर्णन किया जा चुका है ॥२९४॥ इस प्रकार यह अङ्गतालीसवीं निष्क्रान्ति क्रिया है ।

यह निर्वाणको देनेवाली परिनिष्क्रान्ति नामकी क्रिया है । अब इसके आगे मोक्षकी इच्छा करनेवाले उन भगवान्‌के योगसंमह नामकी क्रिया होती है ॥२९५॥ जब वे भगवान् बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहको छोड़कर निष्परिग्रह अवस्थाको प्राप्त होते हैं और अत्यन्त कठिन तथा सर्वश्रेष्ठ जिनकल्प नामके तपोयोगको धारण करते हैं तब क्षपक श्रेणीपर आरुढ़ हुए और योग्य पद अर्थात् शुणस्थानमें जाकर शुक्लध्यानरूपी अग्निसे धातियाकर्मरूपी सघन वनको जला देनेवाले उन भगवान्‌के समस्त बाह्य और अन्तरंग मलके नष्ट हो जानेसे लोक तथा अलोकको प्रकाशित करनेवाली केवलज्ञान नामकी उल्कष्ट ज्योति प्रकट होती है ॥२९६-२९८॥ इस प्रकार जिनके समस्त कार्य सिद्ध हो चुके हैं और जिन्हें उल्कष्ट तेज प्राप्त हुआ है ऐसे भगवान्‌के यह एक भिन्न क्रिया होती है जो कि 'योगसम्मह' इस नामको धारण करती है ॥२९९॥ ज्ञान और ध्यानके संयोगको योग कहते हैं और उस योगसे जो अतिशय तेज उत्पन्न होता है वह योगसम्मह कहलाता है ॥३००॥ यह योगसम्मह नामकी उत्तरासवीं क्रिया है ।

तदनन्तर केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर इन्द्रोने जिनकी पूजा की है ऐसे उन भगवान्‌के

१ पवित्रे । २ प्रदेशो । ३ विधिर्मुक्त-८०, ल० । ४ नैसंग्रह-८०, ल०, प० । ५ सुदृश्वर-८०, ल०, द० ।  
 ६ शुणस्थाने । ७ गतवतः । प्राप्तुषः द० । प्रायुषः ल० ।

प्रातिहार्याद्यकं दिक्ष्ये गगो व्रादशधोन्दितः । स्तूपहस्याविली सालवलयः केतुमालिका ॥३०२॥  
इत्यादिकामिसां भूतिमभूतामुषचिन्नतः । हयादाहंत्यमिति हयासं क्रियान्तत्मनन्तरम् ॥३०३॥  
इति आहंत्यक्रिया ।

विहारस्तु प्रतीतार्थो धर्मचक्रपुरस्सरः । प्रपञ्चितश्च प्रागेव ततो न पुनरुच्यते ॥३०४॥  
इति विहारक्रिया ।

ततः परार्थसम्पर्ये धर्ममार्गोपदेशने । कृततीर्थविहारस्य योगत्यागः पता क्रिया ॥३०५॥  
विहारस्योपसंहारः संहृतिश्च समावने । बृत्सिश्च योगारोधार्था योगत्यागः स उच्यते ॥३०६॥  
‘यज्ञ दृष्टिकपादादिप्रतीतार्थं क्रियान्तरम् ।’ तदन्तर्भूतमेवादस्ततो न पृथगुच्यते ॥३०७॥  
इति योगत्यागक्रिया ।

ततो निरुद्धनिःयोगविहारस्य जिनेशिनः । प्राप्तशैलेश्वरस्यस्य<sup>१</sup> प्रक्षीणा घातिकर्मणः ॥३०८॥  
क्रियामनिर्वृत्तिनामि प्रतिवाणमाप्युषः<sup>२</sup> । स्वमावजनितामूर्ध्वं वज्यामास्कन्दतो<sup>३</sup> मता ॥३०९॥  
इति अग्निर्वृत्तिः ।

इति निर्वाणपूर्यन्ताः क्रिया गमीनिकाः सदा । भव्यात्मभिरनुज्ञेयास्त्रिप्रवाशस्तमुच्यात् ॥३१०॥  
यथोक्तविधिनैताः स्युरनुष्टेया द्विजन्ममिः । योऽप्यत्रान्तर्गतो<sup>४</sup> भेदस्तं वच्छुत्तरपर्वणि ॥३११॥

प्रातिहार्य आदि बाह्य विभूति प्रकट होती है ॥३०१॥ इस प्रकार आठ प्रातिहार्य, बारह दिव्य  
सभा, स्तूप, मकानोंकी पंक्तियाँ, कोटका धेरा और पताकाओंकी धक्कित इत्यादि अद्भुत विभूति-  
को धारण करनेवाले उन भगवान्के आहंत्य नामकी एक भिन्न क्रिया कही गयी है ॥३०२-  
३०३॥ यह आहंत्य नामकी पचासवीं क्रिया है ।

धर्मचक्रको आगे कर जो भगवान्का विहार होता है वह विहार तामकी क्रिया है । यह  
क्रिया अत्यन्त प्रसिद्ध है और पहले ही इसका विस्तारके साथ निरूपण किया जा चुका है  
इसलिए फिरसे यहाँ नहीं कहते हैं ॥३०४॥ यह इक्यावनवीं विहारक्रिया है ।

तदनन्तर धर्ममार्गके उपदेशके द्वारा परोपकार करनेके लिए जिन्होंने तीर्थ विहार क्रिया  
है ऐसे भगवान्के योगत्याग नामकी उल्कृष्ट क्रिया होती है ॥३०५॥ जिसमें विहार करना समाप्त  
हो जावे, सभाभूमि ( समवसरण ) विषट जावे, और योगनिरोध करनेके लिए अपनी वृत्ति  
करनी पड़े उसे योगत्याग कहते हैं ॥३०६॥ दण्ड, कपाट आदि रूपसे प्रसिद्ध जो केवलिसमुद्घात  
नामकी क्रिया है वह इसी योगत्याग क्रियामें अन्तर्भूत हो जाती है इसलिए अलगसे उसका वर्णन  
नहीं किया है ॥३०७॥ यह बावनवीं योगत्याग नामकी क्रिया है ।

तदनन्तर जिनके समस्त योगोंका निरोध हो चुका है, जो जिनोंके स्वामी हैं, जिन्हें  
शीलके इश्वरपनेकी अवस्था प्राप्त हुई है, जिनके अघातिया कर्म नष्ट हो चुके हैं जो स्वभावसे  
उत्पन्न हुई ऊर्ध्वंगतिको प्राप्त हुए हैं और जो उल्कृष्ट मोक्षस्थानपर पहुँच गये हैं ऐसे भगवान्के  
अग्निर्वृत्ति नामकी क्रिया मानी गयी है ॥३०८-३०९॥ यह तिरेपनवीं अग्निर्वृत्ति नामकी  
क्रिया है ।

इस प्रकार गर्भसे लेकर निर्वाण पर्यन्त जो सब मिलाकर तिरेपन क्रियाएँ हैं भव्य  
पुलोंको सदा उनका पालन करना चाहिए ॥३१०॥ द्विज लोगोंको ऊपर कही हुई  
विधिके अनुसार इन क्रियाओंका पालन करना चाहिए । इन क्रियाओंके जो भी अन्तर्गत भेद

<sup>१</sup> घृतमार्गोप-४० । <sup>२</sup> यज्ञ दण्ड-४०, ल० । <sup>३</sup> योगत्यागानन्तरभूतम् । <sup>४</sup> जीलेशितावस्थस्य । <sup>५</sup> -मायुषः  
अ०, इ०, प०, स०, द० । <sup>६</sup> ऊर्ध्वंगमनम् । <sup>७</sup> गच्छतः । <sup>८</sup> समुच्चयाः ल० । <sup>९</sup> त्रिपञ्चवाशत्क्रियामु ।

## शार्दूलचिकीडिसम्

इत्युच्चेर्वताधिषः स्वसमये संस्थापयन् तान् द्विजान्  
 संप्रोवाच कृती सतां बहुमता गर्भान्वयोर्याः क्रियाः ।  
 गर्भायाः परिनिर्वृतिप्रगमनप्रान्ताञ्चिपञ्चाशतं  
 प्रारंभेऽथ पुनः प्रवक्तुमुचिता दीक्षान्वयाण्याः क्रियाः ॥३१२॥  
 यस्त्रेताः द्विजसत्तमैरभिमता गर्भादिकाः सनक्रियाः  
 श्रुत्वा सम्बगधीर्यमाविलमतिर्मेश्वरं ददर्शे ।  
 सामग्रीमुचितां स्वतश्च प्रस्तः सम्पादयकास्त्रेद्  
 अव्याख्या स समग्राञ्चिजगति चूडामणिर्वं मज्जत् ॥३१३॥

इत्यार्थं भगवज्जितसेनाचार्येष्वलीते त्रिष्टुप्लक्षणमहापुराणसंग्रहे  
 द्विजोत्पत्ति-गर्भान्वयवर्णनं नाम अष्टत्रिशत्तमं पर्व ॥३१४॥



हैं उनका आगे के पर्वमें विरूपण करेंगे ॥३११॥ इस प्रकार पुष्यवान् भरत महाराजने उन द्विजोंको अपने धर्ममें स्थापित करते हुए गर्भसे लेकर निर्बाणिगमन पर्यन्तकी तिरेपन गर्भान्वय क्रियाएँ कहीं और उनके बाद कहने योग्य जो दीक्षान्वय क्रियाएँ थीं उनका कहना प्रारम्भ किया ॥३१२॥ उत्तम-उत्तम द्विजोंको माननीय इन गर्भाधानादि सभीचीन क्रियाओंको सुनकर तथा अच्छी तरह पढ़कर जो जिनेद्वय भगवान्के दर्शनमें अपनी बुद्धि लगाता है और योग्य सामग्री प्राप्त कर दूसरोंसे आचरण करता हुआ सब्यं भी इनका आचरण करता है वह भव्य पुरुष पूर्ण ज्ञानी होकर तीनों लोकोंके चूडामणिपनेको प्राप्त होता है अर्थात् सोक्ष प्राप्त कर तीनों लोकोंके अग्रभागपर विराजमान होता है ॥३१३॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध भगवज्जितसेनाचार्यप्रणीति त्रिष्टुप्लक्षण महापुराणसंग्रहके  
 भाषणानुवादमें द्विजोंकी उत्पत्ति तथा गर्भान्वय क्रियाओंका वर्णन  
 करनेवाला अड्डतीसबौं पर्व समाप्त हुआ



एकोनचत्वारिंशस्तम् पर्व

अथाद्वीद् हिजमेभ्यो<sup>१</sup> मनुदीक्षान्वयक्रियाः । यास्ता<sup>२</sup> निःश्रेयसोदर्कार्दिचत्वारिंशाद्धाट च ॥१॥  
 श्रेयसां भो हिजम्नानो वक्ष्ये नैःश्रेयसी<sup>३</sup> क्रियाः । अवतारादिनिर्गणपर्यन्ता दीक्षितोचिताः ॥२॥  
 ४ व्रताविप्रकरणं दीक्षा हिजाज्ञातं च तद्वत्तम् । महावाणु च दोषाणां<sup>५</sup> कृत्स्नवेशनिवृत्तिः ॥३॥  
 महावतं भवेत् कृत्स्नहिंसागोविवर्जितम् । विरतिः स्थूलहिंसादिदोषेभ्योऽणुवतं भक्तम् ॥४॥  
 तदुन्मुखस्य<sup>६</sup> या इच्छिः पुंसां दीक्षेयसी मता ।<sup>७</sup> तामन्वितां क्रिया या तु सा स्याद् दीक्षान्वया क्रिया ॥५॥  
 नस्थास्तु भेदसङ्कूल्याने प्राग्निर्णीतं वज्रहृकम्<sup>८</sup> । क्रियते तद्विकल्पानामधुना लक्ष्मवर्णनम् ॥६॥  
 तत्रावतारमन्त्ता स्यादाच्या दीक्षान्वयक्रिया । मिथ्यात्वद्विते भव्ये सन्मार्गग्रहणोन्मुखे ॥७॥  
 स तु संस्कृत्य योगीन्द्रं युक्ताचारं वह्यविषयम् । गृहस्थाचार्यमयवा पूर्णांतीति विचक्षणः ॥८॥  
 अत यूयं महाप्रश्ना<sup>९</sup> महां धर्ममनाविलम्<sup>१०</sup> । प्रायो मतानि तीर्थ्यात्मा<sup>११</sup> हेयानि प्रतिभास्ति मे ॥९॥  
 १२ औतान्वयि हि वाक्यानि संमतानि क्रियाक्षिधौ । न विचारसहिष्यनि<sup>१३</sup> दुःखणीतानि ताम्यपि<sup>१४</sup> ॥१०॥

अथानन्तर—सोलहवें मनु महाराज भरत उन द्विजोंके लिए मोक्ष-फल देनेवाली अड़तालीस दीक्षान्वय क्रियाएँ कहने लगे ॥१॥ वे बोले कि हे द्विजो, मैं अवतारसे लेकर निर्वाण पर्यन्तकी मोक्ष देनेवाली दीक्षान्वय क्रियाओंको कहता हूँ सो तुम लोग सुनो ॥२॥ ब्रतोंका धारण करना दीक्षा है और वे द्रष्ट हिंसादि दोषोंके पूर्ण तथा एकदेश त्याग करनेकी अपेक्षा महाब्रत और अणुद्रष्टके भेदसे दो प्रकारके माने गये हैं ॥३॥ सूक्ष्म अथवा स्थूल—सभी प्रकारके हिंसादि पापोंका त्याग करना महाब्रत कहलाता है और स्थूल हिंसादि दोषोंसे निवृत्त होनेको अणुद्रष्ट कहते हैं ॥४॥ उन ब्रतोंके ग्रहण करनेके लिए सन्मुख पुरुषकी जो प्रवृत्ति है उसे दीक्षा कहते हैं और उस दीक्षासे सम्बन्ध रखनेवाली जो क्रियाएँ हैं वे दीक्षान्वय क्रियाएँ कहलाती हैं ॥५॥ उस दीक्षान्वय क्रियाके भेद अड़तालीस हैं जिनका कि निर्णय पहले किया जा चुका है । अब इस समय उन वेदोंके लक्षणोंका वर्णन किया जाता है ॥६॥ उन दीक्षान्वय क्रियाओंमें पहली अवतार नामकी क्रिया है जब मिथ्यात्मसे दूषित हुआ कोई भव्य पुरुष समीचीन मार्गको ग्रहण करनेके सन्मुख होता है तब यह क्रिया की जाती है ॥७॥ प्रथम ही वह चतुर भव्य पुरुष योग्य आचरणवाले महाबुद्धिमन् मुनिराजके समीप जाकर अथवा किसी गृहस्थाचार्यके समीप पहुँचकर उनसे इस प्रकार पूछता है कि ॥८॥ महाबुद्धिमन्, आप मेरे लिए निर्देश धर्म कहिए क्योंकि मुझे अन्य लोगोंके मत प्राप्त दुष्ट मालूम होते हैं ॥९॥ आर्यिक क्रियाओंके करनेमें जो वेदोंके वाक्य माने गये हैं वे भी विचारको सहन नहीं कर सकते अर्थात् विचार करनेपर वे निःसार जान पड़ते हैं, वास्तवमें वे वाक्य दुष्ट पुरुषोंके बनाये हुए

१ भरतः । २ निष्ठेयसं मोक्ष उदर्कम् उत्तरपलं यासु ताः । ३ मोक्षहेतून् । निष्ठेयसीः ल० । ४ वताधि-  
करणे प०, द०, ल० । ५ सकलनिवृत्येकदेशनिवृत्तिः । ६ तन्महाणुक्रताभिमुखस्य । ७ दोक्षाम् । ८ अनुगता ।  
९ धण्णामषट्कं षड्छकम् अहोत्तरचत्वारिषत् इत्यर्थः । १० महाप्राज्ञा ल०, द० । ११ निर्दोषम् । १२ हेयानि  
प्रतिभाति माम् द०, स०, अ० । हतानि प्रतिभाति माम् ल०, द० । १३ वेदसम्बन्धीनि । 'श्रुतिः स्त्री वेद  
आस्नातः' इत्यभिषानात् । १४ दुष्टैः कवितानि । १५ प्रसिद्धान्यपि । तानि वै स० ।

इति पृष्ठवते तस्मै व्याख्ये सौ चिदांशः । सर्वं मुक्तिपथं धर्मं विचारपरिनिष्ठितम् ॥११॥  
 बिद्धि॑ सर्वयोग्यमासीयं वचः श्रेयोऽनुशासनम् । अनासोपज्ञमन्यसु वचो वाङ्मलमेव सत् ॥१२॥  
 विरागः सर्ववित् साच्चैः सूक्ष्मसूक्ष्मतपत्तवाक् । आसुः सन्मार्गैदेवीं मस्तदामासास्ततोऽपरे॒ ॥१३॥  
 रूपतेजोगुणस्थानभ्यानलक्ष्म्यनुबतिभिः॑ । कार्कृद्यता विजयज्ञानदृष्टिवैसुख्यमृतैः ॥१४॥  
 प्रकृष्टो योगुणैर्भिश्चक्रिकल्पाँ विषादिषु । स आप्तः स च सर्वज्ञः स लोकपरमेश्वरः ॥१५॥  
 ततः॑ श्रेयोऽर्थिना श्रेयं मस्तमासप्रणेतृकम् । अष्ट्याहतमनालोकपूर्व॑ सर्वज्ञमानिभिः ॥१६॥  
 “हेत्वाशायुक्तस्त्रैते॑” दीप्तं गम्भीरवासनम् । अलग्नश्चरमसन्दिग्धं वाक्यं स्वायम्भुवं विदुः ॥१७॥  
 “इतश्च॑ तत्प्रमाणं स्यात् श्रुतमन्त्रुक्रियादयः । पदार्थाः सुस्थितास्तत्र॑ यसो नान्यमसोचितः ॥१८॥  
 यथाकम्भमतो द्यूमस्त्वान्यद्यार्थान्॑ प्रपञ्चतः । मैः॑ सनिःकृत्यमाणाः॑ स्युर्दुःस्थिताः परसूक्ष्म्यः॑ ॥१९॥  
 वेदः पुराणं स्मृतयः चारित्रं च क्रियाविधिः । मन्त्रावृद्धिवतालिङ्गमाहारावाय शुद्धयः ॥२०॥  
 एतेऽर्थाः॑ यत्र सत्त्वेन प्रणीताः परमधिणा । स धर्मः स च सन्मार्गः तदामासाः स्युसन्यथा ॥२१॥

है ॥१०॥ इस प्रकार पूछनेवाले उस भव्य पुरुषके लिए महाशानी मुनिराज अथवा गृहस्थाचार्य सत्य, विचारसे परिपूर्ण तथा भोक्षके मार्गस्वरूप धर्मका व्याख्यान करते हैं ॥११॥ वे कहते हैं – हे भव्य, भोक्षका उपदेश देनेवाले आप्तके वचनको ही तू सत्य वचन मान और इसके विपरीत जो वचन आप्तका कहा हुआ नहीं है उसे केवल वाणीका मल ही समझ ॥१२॥ जो वीतराग है, सर्वज्ञ है, सबका कल्याण करनेवाला है, जिसके वचन समीक्षीन, सत्य और पवित्र हैं, तथा जो उत्कृष्ट – मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाला है वह आप्त कहलाता है, इनसे भिन्न सभी आप्ताभास हैं अर्थात् आप्त न ही किसी भी आप्तका समानै खालूम् होता है ॥१३॥ जो रूप, तेज, मुण्डस्थान, ध्यान, लक्षण, क्रद्धि, दान, सुन्दरता, विजय, ज्ञान, दृष्टि, वीर्य और सुखामृत इन गुणोंसे चक्रवर्ती तथा इन्द्रादिकोंसे भी उत्कृष्ट है वही आप्त है, सर्वज्ञ है और समस्त लोकोंका परमेश्वर है ॥१४–१५॥ इसलिए जो आप्तका कहा हुआ है, जिसका कोई स्पष्ट नहीं कर सकता और अपने-आपको सर्वज्ञ माननेवाले पुरुष जिसका स्पर्श भी नहीं कर सके हैं ऐसा जीन मत है । कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके लिए कल्याणकारण है ॥१६॥ जो युक्ति सथा आगमसे युक्त है, अनुपम है, देवीप्यमान है, जिसका शासन गम्भीर है, जो अल्पाक्षरवाला है और जिसके पढ़नेसे किसी प्रकारका सन्देह नहीं होता ऐसा वाक्य ही अरहन्त भगवान्‌का कहा हुआ कहलाता है ॥१७॥ कूँकि अरहन्तदेवके मतमें अन्य मतोंमें नहीं पाये जानेवाले शास्त्र, मन्त्र तथा क्रिया आदि पदार्थोंका अच्छी तरह निरूपण किया गया है इसलिए वह प्रमाणभूत है ॥१८॥ हे वत्स, मैं यथाक्रमसे विस्तारके साथ अपदार्थोंका निरूपण करता हूँ क्योंकि उन पदार्थोंके समीप आनेपर अन्य मतोंके वचन दुष्ट जान पड़ते हैं ॥१९॥ जिसमें वेद, पुराण, स्मृति, चारित्र, क्रियाओंकी विधि, मन्त्र, देवता, लिंग और आहार आदिकी शुद्धि इन पदार्थोंका यथार्थ रीतिसे परमधिष्योंने निरूपण किया है वही धर्म है और वही समीक्षीन मार्ग है । इसके

१ वोगीन्द्रः । २ सर्वयवचनम् । ३ एवंविष्वलक्षणादन्ते । ४ लक्ष्मद्विदत्तिभिः अ०, प०, द०, स०, इ०, ल० ।  
 ५ कान्तता अ०, प०, इ०, स०, द०, ल० । आदरणीयता । ६ इन्द्र । ७ ततः कारणात् । ८ पूर्वस्मिन्न-  
 नालीङ्गमस्पृष्टम् । ९ युक्त्यागमपरमागमाभ्यां कलितः । १० अद्वितीयम् । ११ आप्तवचनतः । १२ मतम् ।  
 १३ मते । १४ विस्तरतः । १५ पदार्थः । १६ निष्वर्णं क्रियमाणाः । समीपं गम्भमाना वा । १७ कुतीर्घ-  
 सूचकाः । १८ पदार्थः ।

थुतं सुविहितं वेदो ब्राह्मणाङ्गमकल्पम् । हिंसोपदेशि यद्वाक्यं न वेदोऽसौ कृतान्तवाक्<sup>१</sup> ॥२२॥  
 पुराणं धर्मशास्त्रं च तत्त्वाद् वधनिषेधि यत् । वधोपदेशि यत्सु ज्ञेय धूतप्रणेतृकम् ॥२३॥  
 सावद्यविश्लिष्टत्तमार्यषट्कमलक्षणम्<sup>२</sup> । “चातुराश्रम्यकृतं तु परोन्मसवृज्जसा” ॥२४॥  
 क्रियागर्भादिका यास्ता निर्वाणान्तः परोदिताः<sup>३</sup> । आधानादिश्मशानान्ता न ताः सम्ब्रह्मिया मताः ॥२५॥  
 भन्त्रास्त एव धर्म्याः स्युर्ये क्रियासु नियोजिताः । दुर्मन्त्रास्ते ऽत्र विजेया ये युक्ताः प्राणिमारणे ॥२६॥  
 विश्वेशरादयो ज्ञेया देवताः शान्तिहेतवः । कूरास्तु देवता हेया यासां स्वाद् वृत्तिरामिष्वैः ॥२७॥  
 निर्वाणसाधनं यत् स्थानं छिङ्गं जिनदेवितम् । “पृणाजिनादिचिह्नं तु कुलिङ्गं तदिदं वैकृतम्” ॥२८॥  
 स्वाक्षिरामिष्वमोजित्वं शुद्धिराहारगोचरा । सर्वं कृषास्तु<sup>४</sup> ते ज्ञेया ये स्युरामिष्वमोजिनः ॥२९॥  
 अहिंसा शुद्धिरेषां स्वाद् ये निःसङ्गा दृथालब्धः । रताः पशुबधे ये तु न ते शुद्धा शुराशयाः ॥३०॥  
 कामशुद्धिर्मता तेषां विकामा ये जितेन्द्रियाः । संतुष्टाश्च स्वदारेषु शेषाः सर्वे विडम्बकाः ॥३१॥  
 इति शुद्धं मतं यस्य विचारपरिनिष्ठितम् । स एवास्तदुक्तीतो<sup>५</sup> धर्मः श्रेयो हितार्थिनाम् ॥३२॥

सिवाय सब धर्मभास तथा मार्गभास हैं ॥२०-२१॥ जिसके बारह अंग हैं, जो निर्दोष हैं और जिसमें श्रेष्ठ आचरणोंका विधान है ऐसा शास्त्र हो वेद कहलाता है, जो हिंसाका उपदेश देनेवाला वाक्य है वह वेद नहीं है उसे तो यमराजका वाक्य हो समझना चाहिए ॥२२॥ पुराण और धर्मशास्त्र भी वही हो सकता है जो हिंसाका निषेध करनेवाला है। इसके विपरीत जो पुराण अथवा धर्मशास्त्र हिंसाका उपदेश देते हैं उन्हें धूतोंका बनाया हुआ समझना चाहिए ॥२३॥ पापारम्भके कार्योंसे विरक्त होना चारित्र कहलाता है। वह चारित्र वार्य पुरुषोंके करने पोथ्य देखपूजा अपि शुद्ध कर्मणम् है । इसके सिवाय अन्य लोगोंने जो ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमोंका चारित्र निरूपण किया है वह वास्तवमें बुरा है ॥२४॥ क्रियाएं जो गर्भाधानसे लेकर निर्वाणपर्यन्त पहले कही जा चुकी हैं वे ही समझनी चाहिए, इनके सिवाय गर्भसे मरणपर्यन्त जो क्रियाएं अन्य लोगोंने कही हैं वे ठीक नहीं मानी जा सकतीं ॥२५॥ जो गर्भाधानादि क्रियाओंमें उपयुक्त होते हैं वे ही मन्त्र धार्मिक मन्त्र कहलाते हैं किन्तु जो प्राणियोंकी हिंसा करनेमें प्रयुक्त होते हैं उन्हें यही दुर्मन्त्र अर्थात् खोटे मन्त्र समझना चाहिए ॥२६॥ शान्तिको करनेवाले तीर्थं-कर आदि ही देवता हैं। इनके सिवाय जिनकी मांससे वृत्ति है वे दुष्ट देवता छोड़ने योग्य हैं ॥२७॥ जो साक्षात् भोक्तका कारण है ऐसा जितेन्द्रियेवका कहा हुआ निर्वन्धेयना ही सच्चा लिङ्ग है। इसके सिवाय मृगचर्म आदिको चिह्न बनाना यह कुलिङ्गियोंका बनाया हुआ कुलिङ्ग है ॥२८॥ मांसरहित भोजन करना आहार-विषयक शुद्धि कहलाती है। जो मांसभोजी हैं उन्हें सर्वाती समझना चाहिए ॥२९॥ अहिंसा शुद्धि उनके होती है जो परिग्रहरहित हैं और दयालु हैं, परन्तु जो पशुओंकी हिंसा करनेमें तत्पर रहते हैं वे दुष्ट अभिप्रायवाले शुद्ध नहीं हैं ॥३०॥ जो कामरहित जितेन्द्रिय मुनि हैं उन्हींके कामशुद्धि मानी जाती है अथवा जो गृहस्थ अपनी स्त्रियोंमें सन्तोष रखते हैं उनके भी कामशुद्धि मानी जाती है परन्तु इनके सिवाय जो अन्य लोग हैं वे केवल विडम्बना करनेवाले हैं ॥३१॥ इस प्रकार विचार करनेपर जिसका मत शुद्ध हो वही आप्त कहला सकता है और उसीके ढारा कहा हुआ धर्म हित चाहनेवाले लोगोंको कल्याणकारी हो सकता है ॥३२॥ वह भव्य उन उत्तम उपदेशकसे इस प्रकारका उपदेश

१ यमस्य वचनम् । २ धर्मशास्त्रम् । ३ इच्यावार्तादित्तस्काच्यायसंवत्पोरुण । ४ ब्रह्मचर्यादित्ततुराश्रमे भव । ५ निश्चयेन । ६ पूरोदिताः द०, ल०, अ०, प०, इ० । ७ कृष्णजित । ८ तदिष्वैः कृतम् प०, ल०, द० । ९ सकलविनाशका इत्यर्थः । १० सत्प्रीक्षः ।

श्रुतेति देशनो तस्माद् भव्योऽसौ देशिकोस्मात् । सन्मार्गं मलिमाधसे तुमर्गारतिसुसूजन् ॥३३॥  
गुरुजनयिता॑ तत्त्वज्ञाने गर्भः सुसंस्कृतः । तदा तत्त्वावलीणोऽसौ भव्यात्मा धर्मजन्मना॒ ॥३४॥  
अवतारकियाऽस्यैषा गमीवानवदिव्यते । यतो॑ जन्मपरिप्राप्तिः उभयत्र॑ न विद्यते ॥३५॥

हत्यवतारकिया ।

ततोऽस्य वृत्तलाभः इवात् तदेव गुरुपादयोः । प्रणतस्य वतवात् “विधानेनोपतेषु वृत्तिः” ॥३६॥

इति वृत्तलाभः ।

ततः कृतोपदासस्य पूजाविधिपुरासरः । स्थानलाभो भवेदस्य तत्त्वायसुचितो विधिः ॥३७॥  
जिनालये शुची रक्षे पश्चमष्टदलं लिखेत् । विधिखेद् वा जिनास्थानमण्डलं समवृत्तकम् ॥३८॥  
पश्चक्षेण पिष्ठृष्टैऽन् सलिलालोऽप्तिरेत् वा । वर्तनं मण्डलस्येष्ट चन्द्रनादिद्रवेण वा ॥३९॥  
तस्मिष्टदले पश्चे जैने वाऽस्थानमण्डले । विधिना लिखिते तज्ज्ञार्विष्वरिवस्वितार्चने ॥४०॥  
जिनार्चामिसुखं सूरिविधिनैनं निवेशयेत् । तदोपासकदीक्षेयमिति मूर्च्छि सुहुः स्पृशन् ॥४१॥  
“पञ्चमुष्टिविधानेन स्पृश्यैनमधिमस्तकम्” । पूर्तोऽसि दीक्षयेत्युक्त्वा सिद्धज्ञेषा च लभ्येत् ॥४२॥  
ततः पञ्चमस्तकारपदान्यस्मा उपादिषेत् ॥४३॥ मन्त्रोऽयमस्तकात् “पापार्चा” “पुनीतादितीरक्षन्” ॥४४॥  
कृत्वा विधिमिमं पश्चात् पारणाय विसर्जयेत् । गुरोरनुग्रहात् सोऽपि संग्रीतः स्वगृहं वजेत् ॥४५॥

इति स्थानलाभः ।

सुनकर मिथ्यामार्गमें प्रेम छोड़ता हुआ समीक्षीन मार्गमें अपनी बुद्धि लगाता है ॥३३॥ उस समय गुरु ही उसका पिता है और तत्त्वज्ञान ही संस्कार किया हुआ गर्भ है । वह भव्य पुरुष धर्मरूप जन्मके द्वारा उस तत्त्वज्ञानरूपी गर्भमें अवतीर्ण होता है ॥३४॥ इसकी यह किया गर्भावानकियाके समान मानी जाती है क्योंकि जन्मकी प्राप्ति दोनों ही कियाओंमें नहीं है ॥३५॥ इस प्रकार यह पहली अवतारकिया है ।

तदनन्तर—उसी समय गुरुके चरणकम्लोंको नमस्कार करते हुए और विधिपूर्वक व्रतोंके समूहको प्राप्त होते हुए उस भव्यके वृत्तलाभ नामकी दूसरी क्रिया होती है ॥३६॥ यह वृत्तलाभ नामकी दूसरी क्रिया है ।

तत्पश्चात् जिसने उपास किया है ऐसे उस भव्यके पूजाको विधिपूर्वक स्थानलाभ नामकी तीसरी क्रिया होती है । इस क्रियामें मह विधि करना उचित है ॥३७॥ जिनालयमें किसी पवित्र स्थानपर आठ पांसुरीका कमल बनावे अथवा गोलाकार समवसरणके मण्डलकी रचना करे ॥३८॥ इस कमल अथवा समवसरणके मण्डलकी रचना पानी मिले हुए महीन चूर्णसे अथवा विसे हुए चन्दन आदिसे करनी चाहिए ॥३९॥ उस विषयके जानकार विद्वानोंके द्वारा लिखे हुए उस अष्टदलकमल अथवा जिनेन्द्र भगवान्के समवसरणमण्डलकी जब सम्पूर्ण पूजा हो चुके तब आचार्य उस भव्य पुरुषको जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाके सन्मुख बैठावे और बार-बार उसके मस्तकको स्पर्श करता हुआ कहे कि यह तेरी श्रावककी दीक्षा है ॥४०-४१॥ पञ्चमुष्टिकी रीतिसे उसके मस्तकका स्पर्श करे तथा ‘तू हस दीक्षासे पवित्र हुआ’ इस प्रकार कहकर उससे पूजाके बचे हुए शोषाक्षत प्रहण करावे ॥४२॥ तत्पश्चात् ‘यह मन्त्र तुझे समस्त पापोंसे पवित्र करे’ इस प्रकार कहता हुआ उसे पञ्च मन्त्रका उपदेश करे ॥४३॥ यह विधि करके आचार्य उसे

१ पिता । २ वर्षमें एक जन्म लेन । ३ यस्मात् कारणात् । ४ गमधिमावतारयोः । ५ इत्यविचरणशास्त्रोक्तव्य-विधिना । ६ उपग्रहस्य । ७ स्थानलाभे । ८ वृत्तविधितेन वा । ९ उद्दरणम् । १० पञ्चमुष्टिमन्त्राविधानेन । ११ मूर्च्छि । १२ प्राप्तयेत् । १३ वस्त्रे उपदेशं कृपयति । १४ दुष्कृतात् अपसर्प्य । १५ पवित्रं कृपयति । १६ बुक्तम् ।

१ विदिष्टस्थानलाभस्य पुनरस्य गणग्रहः । स्वान्मिथ्यादेवताः स्वस्माद् विनिःसारथतो गृहात् ॥४५॥  
इयन्तं कालसञ्चानात् पूजितः स्थैर्कृतादरम् । पूज्यास्तिवदानीमस्माभिरस्मत्समयदेवताः ॥४६॥  
२ ततोऽपमृष्टेभास्त्रमन्यत्र स्वैरमालयताम् । हति<sup>३</sup> प्रकाशमैवैतान् नीत्वाऽन्यत्र कवित्यजेत् ॥४७॥  
गणग्रहः स एष स्थानं प्राप्तं देवताङ्गणम् । विसृज्याच्चयतः शान्ता देवताः<sup>४</sup> समयोचिताः ॥४८॥

इति ग्रहणक्रिया ।

३ पूजाराघ्यालयया ल्याता कियाऽस्य स्थादतः परा । पूजोपवासप्रयस्या शृणक्तोऽङ्गार्थसंग्रहम्<sup>५</sup> ॥४९॥

इति पूजाराघ्यक्रिया ।

४ ततोऽन्धा पुण्यत्रशाल्या किया पुण्यानुशनिती । शृणवतः पूर्वविद्यानामर्थं सत्रहाचारिणः ॥५०॥

इति पुण्ययज्ञक्रिया ।

५ तथाऽस्य इडचर्या स्थाद् क्रिया स्वसमयश्रुतम् । निष्ठात्य<sup>६</sup> शृणवतो ग्रन्थान् वाचानन्यांशं काश्चन ॥५१॥

इति इडचर्याक्रिया ।

६ उपवासस्य तस्यान्या किया स्थाहुपयोगिता ।<sup>७</sup> पर्वोपवासपर्यन्ते प्रसिद्धार्थोगधारणम् ॥५२॥

इति उपयोगिताक्रिया ।

पारणके लिए विदा करे और वह भव्य भी गुरुके अनुग्रहसे सन्तुष्ट होता हुआ अपने घर जावे ॥४४॥ यह तीसरी स्थानलाभ क्रिया है ।

जिसके लिए स्थानलाभकी क्रियाका वर्णन ऊपर किया जा चुका है ऐसा भव्य पुरुष जब मिथ्यादेवताओंको अपने घरसे बाहर निकालता है तब उसके गणग्रह नामकी क्रियाएँ होती है ॥४५॥ उस समय वह उन देवताओंसे कहता है कि 'मैंने अपने अज्ञानसे इतने दिन तक आदरके साथ आपकी पूजा की परन्तु वह अपने ही मतके देवताओंकी पूजा कर्हैंगा इसलिए क्रोध करना व्यर्थ है । आप अपनी इच्छानुसार किसी दूसरी जगह रहिए ।' इस प्रकार प्रकट रूपसे उन देवताओंको ले जाकर किसी अन्य स्थानपर छोड़ दे ॥४६-४७॥ इस प्रकार पहले देवताओंका विसर्जन कर अपने मतके शान्त देवताओंकी पूजा करते हुए उस भव्यके यह गणग्रह नामकी चौथी क्रिया होती है ॥४८॥ यह चौथी गणग्रह क्रिया है ।

तदनन्तर पूजा और उपवासरूप सम्पत्तिके साथ-साथ अंगोंके अर्थसमूहको सुननेवाले उस भव्यके पूजाराध्या नामकी प्रसिद्ध क्रिया होती है । भावार्थ-जिनेन्द्रदेवकी पूजा तथा उपवास आदि करते हुए द्वादशांगका अर्थ सुनना पूजाराध्य क्रिया कहलाती है ॥४९॥ यह पांचवीं पूजाराध्य क्रिया है ।

तदनन्तर साक्षर्मी पुरुषोंके साथ-साथ चौदह पूर्वविद्याओंवा अर्थ सुननेवाले उस भव्यके पुण्यको बढ़ानेवाली पुण्ययज्ञा नामकी भिन्न क्रिया होती है ॥५०॥ यह छठी पुण्ययज्ञा क्रिया है ।

इस प्रकार अपने मतके शास्त्र समाप्त कर अन्य मतके ग्रन्थों अथवा अन्य किन्हीं दूसरे विषयोंकी सुननेवाले उस भव्यके दृढ़चर्या नामकी क्रिया होती है ॥५१॥ यह दृढ़चर्या नामकी सातवीं क्रिया है ।

तदनन्तर जिसके ब्रत दृढ़ हो चुके हैं ऐसे पुरुषके उपयोगिता नामकी क्रिया होती है ।

१ उपदेशित । २ भव्य । ३ ततः कारणात् । ४ ईर्ष्या क्रोधेन वा । ५ प्रकटं यथा भवति तथा । ६ निजभत ।  
७ द्वादशाङ्गसंबन्धिद्वयसंग्रहादिकम् । ८ चतुर्दशविज्ञानां संबन्धितम् । ९ सहायांविसहितस्य । 'एकवह्नि-  
वताचारा मियः सत्रहाचारिणः ।' इत्यभिषानात् । १० संपूर्णमधीत्य । ११ पर्वोपवासराशावित्यर्थः ।

‘कियाकलापेनोक्ते शुद्धिमह्योपविभ्रमः । उपनीतिरस्तु चासयोग्यलिङ्गमहो भवेत् ॥५३॥  
उपनीतिहि वेष्टस्य वृत्तस्य समयस्य च । देवतागुरुसाक्षि स्याद् विधिवद्यतिपालनम् ॥५४॥  
शुद्धिवर्णोपैवीतादिधारणं वेष उच्यते । आर्यषद्वर्कमंजीवित्वं वृत्तस्य प्रचक्ष्यते ॥५५॥  
ज्ञेयोपस्मकर्दीश्वा स्याद् समयः समयोचितम् । दधतो गोप्रजायादि नामान्तरभूतः परम् ॥५६॥  
इत्युपनीतिक्रिया ।

ततोऽथसुपनीतिः यम् व्रतचर्या समाप्तेत् । सूत्रमापावकं सम्ब्रगभ्यस्य ग्रन्थसोऽर्थतः ॥५७॥  
इति व्रतचर्याक्रिया ।

‘व्रतावतावणं तस्य भूयो भूषादिसंप्रहः । भवेदधीतविद्यास्य यथावदगुरुसंविधौ ॥५८॥  
इति व्रतावतावणक्रिया ।

विवाहस्तु भवेदस्य नियुज्जानस्य दीक्षया । सुदूरोचितया सम्यक् रुदां धर्मसहजारिणीम् ॥५९॥  
पुनर्विवाहसंस्कारः पूर्वोऽस्य संमतः । सिद्धार्चनां पुरस्कृत्य पत्न्याः संस्कारमिष्ठतः ॥६०॥  
इति विवाहक्रिया ।

पर्वके दिन उपवासके अन्तमें अर्थात् रात्रिके समय प्रतिमायोग धारण करना उपयोगिता क्रिया कहलाती है ॥५२॥ यह उपयोगिता नामकी आठवीं क्रिया है ।

ऊपर कहे हुए क्रियाओंके समूहसे शुद्धिको धारण करनेवाले उस भव्यके उल्लङ्घ पुरुषोंके योग्य नित्यको धारण करनेलिप उपनीति क्रिया होती है ॥५३॥ देवता और गुरुकी साक्षीपूर्वक विधिके अनुसार अपने वेष, सदाचार और समयकी रक्षा करना उपनीति क्रिया कहलाती है ॥५४॥ सफेद वस्त्र और यजोपवीत आदि धारण करना वेष कहलाता है, आयोंके करने योग्य देवपूजा आदि छह कर्मको करनेको वृत्त कहते हैं और इसके बाद अपने शास्त्रके अनुसार गोत्र जाति आदिके द्विसरे नाम धारण करनेवाले पुरुषके जो जीन श्रावककी दीक्षा है उसे समय कहते हैं ॥५५-५६॥ यह उपनीति नामकी नौवीं क्रिया है ।

तदनन्तर यजोपवीक्षसे युक्त हुआ भव्य पुरुष शब्द और अर्थ दोनोंसे अच्छी तरह उपासकाध्ययनके सूत्रोंका अभ्यास कर व्रतचर्या नामकी क्रियाको धारण करे । भावार्थ-यजोपवीत धारण कर उपासकाध्ययनांग ( श्रावकाचार ) का अच्छी तरहसे अभ्यास करते हुए व्रतादि धारण करना व्रतचर्या नामकी क्रिया है ॥५७॥ यह दसवीं व्रतचर्या क्रिया है ।

जिसने समस्त विद्याएँ पढ़ ली हैं ऐसा श्रावक जब गुरुके सभीप विधिके अनुसार फिरसे आभूषण आदि ग्रहण करता है तब उसके व्रतावतरण नामकी क्रिया होती है ॥५८॥ यह नवावतरण नामकी ग्राहकवीं क्रिया है ।

जब वह भव्य अपनी<sup>१</sup> पत्नीको उत्तम व्रतोंके योग्य श्रावककी दीक्षासे युक्त करता है तब उसके विवाह नामकी क्रिया होती है ॥५९॥ अपनी पत्नीके संस्कार चाहनेवाले उस भव्यके उसी स्त्रीके साथ फिरसे विवाह संस्कार होता है और उस संस्कारमें सिद्ध भगवान्की पूजाको आदि लेकर पहले कही हुई समस्त विधि करनी चाहिए ॥६०॥ यह बारहवीं विवाहक्रिया है ।

१ क्रियासमूहेन । २ प्रवचने साहृदीती । ३ यजोपवीत । ‘उपवीतं यज्ञसूत्रं प्रोदध्युतं दक्षिणे करे’ । ४ व्रतावतरणम् ॥० । ५ धर्मपत्नीम् । ६ गर्भन्वयक्रियासु प्रोक्तः । ७ जिनदर्शनस्वीकारात् प्राग्विवाहितभार्यायाः ।

वर्णलाभस्ततोऽस्य स्यात् संबन्धे<sup>१</sup> संविधिस्तः<sup>२</sup> । समानाजीविभिलेघ्य वर्णैरन्यैरुपासकैः ॥६१॥  
 चतुरः<sup>३</sup> श्रावकउपेषानाहृष्ट कृतसमिक्यान् । तान् ग्रूपादसम्बन्धान्ती मदज्ञिः स्वसमीकृतः<sup>४</sup> ॥६२॥  
 यूयं निस्तारका वेषत्राहृणा लोकपूजिताः । अहं च कृतदीक्षोऽस्मि गृहीतोपासकत्रतः ॥६३॥  
 मया तु चरितो धर्मः पुरुषको गृहसंविनाम् । दत्तान्यपि च दानानि कृतं च गुरुरजनम् ॥६४॥  
 भवोनिसंभवं जन्मस्त्वाहृष्ट गृवैस्त्वाहृष्ट । चिरकालस्त्वाहृष्ट यज्ञोऽस्त्वाहृष्टावितम् ॥६५॥  
 प्रतसिद्ध्यर्थसंबाहुसुपनीलोऽस्मि साम्प्रतम् । कृतविद्येत्वं जातोऽस्मि<sup>५</sup> स्वधीतोपासकश्रुतः<sup>६</sup> ॥६६॥  
 वतावतरणस्यान्ते<sup>७</sup> स्वीकृतामरणोऽस्मयर्हम् । पनी च संस्कृताऽस्मीया कृतपाणिग्रहा पुनः ॥६७॥  
 पुर्वं कृतविद्यस्याद्य वर्णलाभो नमोचितः । सुलभः सोऽपि युपमाकमनुज्ञानात् सधसंपातम् ॥६८॥  
 हस्युक्तास्ते च तं सत्यमेवमस्तु समञ्जसम्<sup>८</sup> । त्वयोऽहं इलाज्यमेवैतत् कोऽन्यस्त्वत्वस्त्वाद्यो द्विजः ॥६९॥  
 युपमाद्यामलामे तु मिथ्यादृष्टिभिरप्यमा । समानाजीविभिः कर्तुं संबन्धोऽस्मिमतां हि नः ॥७०॥  
 हस्युक्त्वैनं समाशास्य वर्णलाभेन युज्ज्ञते । विधिवत् सोऽपि तं लक्ष्या आति तत्समक्षताम् ॥७१॥

इति वर्णलाभक्रिया ।

वर्णलाभोऽयमुदितः कुलवर्याऽप्युनोच्यते । आर्यघटकर्मवृत्तिः स्यात् कुलचर्याऽस्य पुरुषला ॥७२॥

इति कुलचर्या ।

**तदनन्तर** – जिन्हें वर्णलाभ हो चुका है और जो अपने समान ही आजीविका करते हैं ऐसे अन्य श्रावकोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेकी इच्छा करनेवाले उस भव्य पुरुषके वर्णलाभ नामकी क्रिया होती है ॥६१॥ इस क्रियाके करते समय वह भव्य चार बड़े-बड़े श्रावकोंको आदर-सत्कार कर चुलावे और उनसे कहे कि आप लोग मुझे अपने समान बनाकर मेरा अनुग्रह कोजिए ॥६२॥ आप लोग संसारसे पार करनेवाले देव ब्राह्मण हैं, संसारमें पूज्य हैं और मैंने भी दीक्षा लेकर श्रावकके द्रवत प्रहण किये हैं ॥६३॥ मैंने गृहस्थोंके सम्पूर्ण धर्मका आचरण किया है, दान भी दिये हैं और गुरुओंका पूजन भी किया है ॥६४॥ मैंने गुरुके अनुग्रहसे योनिके बिना ही उत्पश्च होनेवाला जन्म धारण किया है, और चिरकालसे पालन किये हुए मिथ्याधर्मको छोड़कर जिसका पहले कभी चिन्तन भी नहीं किया था ऐसा सम्यक् चारित्र धारण किया है ॥६५॥ व्रतोंकी सिद्धिके लिए ही मैंने इस समय यज्ञोपवीत धारण किया है और श्रावकाचारके प्रेरुपैक श्रुतका अच्छी तरह अध्ययन कर विद्वान् भी हो गया है ॥६६॥ व्रतावतरण क्रियाके बाद ही मैंने आभूषण स्वीकार किये हुए हैं, मैंने अपनी पत्नीके भी संस्कार किये हैं और उसके साथ दुवारा विवाहसंस्कार भी किया है ॥६७॥ इस प्रकार व्रत धारण करनेवाले मुझको वर्णलाभकी प्राप्ति होता उचित है और वह भी आप साधमीं पुरुषोंकी आज्ञासे सहज ही प्राप्त हो सकती है ॥६८॥ इस प्रकार कह चुकनेपर वे श्रावक कहें कि ठीक है, ऐसा ही होगा, तुमने जो कुछ कहा है वह सब प्रशंसनीय है, तुम्हारे समान और दूसरा द्विज कीन है ? ॥६९॥ आप-जैसे पुरुषोंके न मिलनेपर हम लोगोंको समान जीविका करनेवाले मिथ्यादृष्टियों-के साथ भी सम्बन्ध करना पड़ता है ॥७०॥ इस प्रकार कहकर वे श्रावक उसे आश्वासन दें और वर्णलाभसे युक्त करावें तथा वह भव्य भी विधिपूर्वक वर्णलाभको पाकर उन सब श्रावकों-की समानताको प्राप्त होता है ॥७१॥ यह तेहवीं वर्णलाभ नामकी क्रिया है ।

यह वर्णलाभ क्रिया कह चुके । अब कुलचर्या क्रिया कही जाती है । आर्य पुरुषोंके करने

१ कर्म्याप्रदानादानादानादिसंबन्धम् । २ संविधातुमिच्छतः । ३ मदृशार्यघटकर्मदिवृत्तिभिः । ४ विचक्षणैः ।  
 ५ चतुःसंख्यान् । ६ मुष्मत्सदृशीकृतः । ७ चिरकालसंस्कारितम् । मिथ्यात्ववृत्तमित्यर्थः । ८ पूर्वहिमन्न-  
 भावितम् । सद्वृत्तमित्यर्थः । ९ संपूर्णत्रियः । १० सुष्टुदधीतः । ११-सकद्रतः ल०, द० । १२ सावधी-  
 कृतक्तिचिद्यतावतावणावसाने । १३ इष्टम् ।

विशुद्धस्तेन दृतेन ततोऽभ्येति गृहीशिताम् । वृत्ताभ्यवस्थांपरवा परानुग्रहणक्षमः ॥७३॥  
 प्रायश्चित्तविधानजः १ श्रुतिस्मृतिपुराणवित् । गृहस्थाचार्यतो प्राप्तः तदा धते गृहीशिताम् ॥७४॥  
 इति गृहीशिताक्रिया ।  
 ततः पूर्ववैदेवस्य भवेदित्य व्रशान्तता । नानाविधोपवासादिमावतः समुपेयुषः ॥७५॥  
 इति व्रशान्तताक्रिया ।  
 गृहत्यागास्तसोऽस्य स्थाद् गृहवासाद् विरञ्जयतः । योग्यं सूर्यं यथान्यायमनुक्रिय्य गृहोऽन्तर्मय ॥७६॥  
 इति गृहत्यागाक्रिया ।  
 त्यक्तामारस्य तस्यातस्तपोवनमुपेयुषः । एकशाटकधारित्वं प्राप्व दीक्षान्वयमिष्यते ॥७७॥  
 इति दीक्षान्वयक्रिया ।  
 ततोऽस्य जिनरूपस्त्रियोऽस्ते त्यक्तामुपेयम् । धूरणं लातरूपस्य दुक्तावाराद् गणेशिनः ॥७८॥  
 इति जिनरूपता ।  
 क्रियाक्षेत्रास्तु निःशेषा ग्रोक्ता गमनान्वये यथा । तर्थैव प्रतिपत्त्याः स्वर्णं भेदोऽस्यत्र कम्बल ॥७९॥  
 यस्त्वेतास्तरवतो ज्ञात्वा भव्यः समनुतिष्ठति । सोऽधिगच्छति निर्बाणमचिरात्सुखसाङ्गवन् ॥८०॥  
 इति दीक्षान्वयक्रिया ।

योग्य देवपूजा आदि छह कार्योंमें पूर्ण प्रवृत्ति रखना कुलचर्या कहलाती है ॥७२॥ यह कुलचर्या नामकी चौदहवीं क्रिया है ।

ऋग्र कहे हुए चारेत्रसे विशुद्ध हुआ श्रावक गृहीशिता क्रियाको प्राप्त होता है । जो सम्यक्चारित्र और अध्ययनरूपी सम्पत्तिसे परपुस्थोंका उपकार करनेमें समर्थ है, जो प्रायश्चित्त-की विधिका जानकार है, श्रुति, स्मृति और पुराणका जाननेवाला है ऐसा भव्य गृहस्थाचार्य पदको प्राप्त होकर गृहीशिता नामकी क्रियाको धारण करता है ॥७३-७४॥ यह गृहीशिता नामकी पन्द्रहवीं क्रिया है ।

तदनन्तर नाना प्रकारके उपवास आदिकी भावनाओंको प्राप्त होनेवाले उस भव्यके पहलेके समान ही प्रशान्तता नामकी क्रिया मानी जाती है ॥७५॥ यह सोलहवीं प्रशान्तसा क्रिया है ।

तत्पश्चात् जब वह घरके निवाससे विरक्त होकर योग्य पुत्रको तीतिके अनुसार शिक्षा देकर घर छोड़ देता है तब उसके गृहत्याग नामकी क्रिया होती है ॥७६॥ यह सत्रहवीं गृहत्याग क्रिया है ।

तदनन्तर जो घर छोड़कर तपोवनमें चला गया है ऐसे भव्य पुरुषका पहलेके समान एक वस्त्र धारण करना यह दीक्षान्वय नामकी क्रिया मानी जाती है ॥७७॥ यह दीक्षान्वय नामकी अठारहवीं क्रिया है ।

इसके बाद जब वह गृहस्थ वस्त्र छोड़कर किसीं योग्य आचरणवाले मुनिराजसे दिग्मद्वर रूप धारण करता है तब उसके जिनरूपता नामकी क्रिया कही जाती है ॥७८॥ यह उन्नीसवीं जिनरूपता क्रिया है ।

इनके सिवाय जो कुछ क्रियाएं बाकी रह गयी हैं वे सब जिस प्रकार गमनान्वय क्रियाओंमें कही गयी हैं उसी प्रकार प्रतिपादन करने योग्य हैं । इनमें उनमें कोई श्रेद नहीं है ॥७९॥ जो भव्य इन क्रियाओंकी यथार्थरूपसे जानकर उनका पालन करता है वह सुखके अधीन होता हुआ बहुत शीघ्र निर्बाणको प्राप्त होता है ॥८०॥ इस प्रकार यह दीक्षान्वय क्रियाओंका बर्णन पूर्ण हुआ ।

अथवा: संप्रदृष्ट्यामि द्विजोऽ कर्त्रन्वयलिप्यः । याः<sup>१</sup> प्रत्यासूक्ष्मिष्ठस्य भवेतुर्भव्यत्रेहिनः ॥८१॥  
 तत्र सज्जातिरित्याद्य किया श्रेयोऽनुवन्निती । या सा<sup>२</sup> चासक्षमवस्य मृजम्मोपगमं भवेत् ॥८२॥  
 स नृजन्मपरिजाती दीक्षाद्योग्ये सदृश्यते । विशुद्धं कमते जाम सैषा सज्जातिरित्यतः ॥८३॥  
 विशुद्धकुलजात्यादिसंपरसज्जातिरुच्यते । 'अदितोदितवंशात् यतोऽभ्येति पुमान् कृती ॥८४॥  
 पितृरुच्यत्युद्दिर्या तत्कुलं परिभाव्यते । मातुरुच्यत्युद्दिस्तु जातिरित्यमिलत्यतः ॥८५॥  
 विशुद्धिरुच्यत्यस्यात्य सज्जातिरुच्यणिता । अथाती<sup>३</sup> सुलभा 'बोधिरयज्ञोपासनैरुण्णैः ॥८६॥  
 'सज्जन्मप्रतिलुभ्योऽयमार्थात् विशेषतः । सत्यां वेहादिसामग्र्यो श्रेयः सूते हि देहिनाम् ॥८७॥  
 शरीरजन्मना सैषा सज्जातिरुच्यणिताः ॥८८॥ यतोऽप्युपासनान्मिष्ठार्मिलित्यतः ॥८९॥  
 संस्कारजन्मना चाम्या सज्जातिरुच्यत्यतः । '॒चामासाद्य द्विकर्मत्वं भव्यात्मा समुपादनुते ॥९०॥  
 विशुद्धाकारसंभूतो मणिः संस्कारत्योगातः । यात्युक्तव्य यथाऽऽवैदेः<sup>४</sup> कियामन्त्रैः सुलंस्कृतः ॥९१॥  
 'सुवर्णात्मातुरथवा शुद्धयेदासाद्य संहित्याम् । यथा तथैव भव्यात्मा शुद्धयेदासाद्यत्वितक्रियः ॥९२॥  
 ज्ञानजः स तु संस्कारः सम्यग्ज्ञानमसुखसम् । यदाय लभते साक्षात् सर्वैविन्मुखतः कृती ॥९३॥

अथानन्तर—हे द्विजो, मैं आगे उन कर्त्रन्वय क्रियाओंको कहता हूँ जो कि अल्पसंसारी भव्य प्राणी ही के हो सकती हैं ॥८१॥ उन कर्त्रन्वय क्रियाओंमें कल्याण करनेवाली सबसे पहली क्रिया सज्जाति है जो कि किसी निकट भव्यकी मनुष्यजन्मकी प्राप्ति होनेपर होती है ॥८२॥ मनुष्यजन्मकी प्राप्ति होनेपर जब वह दीक्षा धारण करने योग्य उत्तम वंशमें विशुद्ध जन्म धारण करता है तब उसके यह सज्जाति नामकी क्रिया होती है ॥८३॥ विशुद्ध कुल और विशुद्ध जातिरूपी सम्पदा सज्जाति कहलाती है । इस सज्जातिसे ही पुण्यवान् मनुष्य उत्तरोत्तर उत्तम उत्तम वंशोंको प्राप्त होता है ॥८४॥ पिताके वंशकी जो शुद्धि है उसे कुल कहते हैं और माताके वंशको शुद्धि जाति कहलाती है ॥८५॥ कुल और जाति इन दोनोंकी विशुद्धि-को सज्जाति कहते हैं, इस सज्जातिके प्राप्त होनेपर बिना प्रयत्नके सहज ही प्राप्त हुए गुणोंसे रत्नत्रयकी प्राप्ति सुलभ हो जाती है ॥८६॥ आर्यस्खण्डकी विशेषतासे सज्जातित्वकी प्राप्ति शरीर आदि योग्य सामग्री मिलनेपर प्राणियोंके अनेक प्रकारके कल्याण उत्पन्न करती है । भावार्थ—यदि आर्यस्खण्डके विशुद्ध वंशोंमें जन्म हो और शरीर आदि योग्य सामग्रीका सुयोग प्राप्त हो तो अनेक कल्याणोंकी प्राप्ति सहज ही हो जाती है ॥८७॥ यह सज्जाति उत्तम शरीर-के जन्मसे ही वर्णन की गयी है क्योंकि पुरुषोंके समस्त इष्ट पदार्थोंकी सिद्धिका मूलकारण यही एक सज्जाति है ॥८८॥ संस्काररूप जन्मसे जो सज्जातिका वर्णन किया जाता है वह दूसरी ही सज्जाति है उसे पाकर भव्य जीव द्विजन्मपनेको प्राप्त होता है ॥८९॥ जिस प्रकार विशुद्ध ज्ञानमें उत्पन्न हुआ रत्न संस्कारके योगसे उत्कर्षको प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रियाओं और मन्त्रोंसे सुसंस्कारको प्राप्त हुआ आत्मा भी अत्यन्त उत्कर्षको प्राप्त हो जाता है ॥९०॥ अथवा जिस प्रकार सुवर्ण पाषाण उत्तम संस्कारको पाकर शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार भव्य जीव उत्तम क्रियाओंको पाकर शुद्ध हो जाता है ॥९१॥ वह संस्कार ज्ञानसे उत्पन्न होता है, सबसे उत्कृष्ट ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, जिस समय वह पुण्यवान् भव्य साक्षात् सर्वत्र देवके मुखसे उस उत्तम ज्ञान-

१ भो विप्रः । २ प्रत्यासूक्ष्मोपक्षस्य । ३ सा चायत्र — ल० । ४ उत्तरोत्तरम्युद्यवद्वप्यस्म् । ५ यत् सज्जाती प्राप्ती सत्पाम् । ६ रत्नत्रयप्राप्तिः । ७ चपातीः । ८ सज्जातिपरिप्राप्तिः । ९ आर्यस्खण्ड । 'आर्यादितः पुण्यभूमिः'इत्यभिधानात् । १० एषा सज्जातिमूलं कारणं यासां त्वा । ११ यतः करणात् । १२ संस्कारजन्मसज्जातिम् । १३ उत्कर्षं पाति । १४ सुवर्णपाषाणः ।

तदैष परमज्ञानगम्भीरं संस्कारजन्ममता । जातो भवेद् द्विजमेति वर्ततेः शीलेश भूषितः ॥ १३॥  
 ब्रतचिर्द्वयं भवेदस्य सूत्रं<sup>१</sup> मन्त्रपुरासस्य । सर्वज्ञानाप्रधानस्य द्रव्यभावविकल्पितम् ॥ १४॥  
 यज्ञोपवीतमस्य स्थाद् द्रव्यतत्त्विगुणात्मकम् । सूत्रमौदासिकं<sup>२</sup> तु स्थाद् भावारूढैषिभिर्गुणैः ॥ १५॥  
 थैव लब्धसंस्कारः परं<sup>३</sup> व्राह्मणिगच्छति । तदैनमभिनन्द्याशीर्वत्तोभिर्गणनायकाः ॥ १६॥  
 लग्नमयन्त्युचितां शेषां जीनीं पुरुषैरथाक्षतैः । स्थिरीकरणमेतत्तदि धर्मप्रोत्साहनं<sup>४</sup> परम् ॥ १७॥  
 अयोनिसंभवं दिव्यज्ञानगम्भीससुमवम् । सोऽधिगम्य परं जन्म तदा सज्जातिभागमवेत् ॥ १८॥  
 शतोऽधिगतसज्जातिः सदगृहित्वमसौ भवेत् । गृहमेधीभवज्ञायैषद्वक्तमीयनुपालयन् ॥ १९॥  
 यदुक्तं यह चर्यावामनुष्टानं विशुद्धिमत् । तदात्पविहितं कृत्वामत्त्वालुः समाप्तेत् ॥ २०॥  
 जिनेन्द्रालग्नधसज्जामा गणेन्द्रैरनुशिष्ठितः । स धर्मे परमं ब्रह्मवर्चसं<sup>५</sup> द्विजसत्तमः ॥ २१॥  
 तमेन धर्मसाहृतं क्षाधते धार्मिका जनाः । परं तेजं<sup>६</sup> इव ब्रह्मवर्चसीणं महीतलम् ॥ २२॥  
 स यज्ञं<sup>७</sup> याऽथन्<sup>८</sup> धीमान्<sup>९</sup> यजमानैरुपासितः<sup>१०</sup> । अभ्यापयत्त्वधीयानो<sup>११</sup> वेदवेदाङ्गविस्तरम् ॥

को प्राप्त करता है उस समय वह उत्कृष्ट ज्ञानरूपी गर्भसे संस्काररूपी जन्म लेकर उत्पन्न होता है और व्रत तथा शीलसे विभूषित होकर द्विज कहलाता है ॥ १२-१३॥ सर्वज्ञ देवकी आज्ञा-को प्रधान माननेवाला वह द्विज जो मन्त्रपूर्वक सूत्र धारण करता है वही उसके व्रतोंका चिह्न है, वह सूत्र द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है ॥ १४॥ तीन लरका जो यज्ञोपवीत है वह उसका द्रव्यसूत्र है और हृदयमें उत्पन्न हुए सम्यगदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्षारित्ररूपी गुणोंसे बना हुआ जो श्रावकका सूत्र है वह उसका भावसूत्र है ॥ १५॥ जिस समय वह भव्य जीव संस्कारोंको पाकर परम ब्रह्मको प्राप्त होता है उस समय आचार्य लोग आशीर्वादरूप वचनोंसे उसकी प्रशंसा कर उसे पुण्य अथवा अक्षतोंसे जिनेन्द्र भगवान्की आशिषिका ग्रहण कराते हैं अर्थात् जिनेन्द्रदेवकी पूजासे बचे हुए पुण्य अथवा अक्षत उसके शिर आदि अंगोंपर रखताएं हैं क्योंकि यह एक प्रकारका स्थिरीकरण है और धर्ममें अत्यन्त उत्साह बढ़ानेवाला है ॥ १६-१७॥ इस प्रकार जब यह भव्य जीव बिना योनिके प्राप्त हुए दिव्यज्ञानरूपी गर्भसे उत्पन्न होनेवाले उत्कृष्ट जन्मको प्राप्त होता है तब वह सज्जातिको धारण करनेवाला समझा जाता है ॥ १८॥ यह सज्जाति भास्मी पहली क्रिया है ।

तदनन्तर जिसे सज्जाति की क्रिया प्राप्त हुई है ऐसा वह भव्य सदगृहित्व क्रियाको प्राप्त होता है इस प्रकार जो सदगृहस्थ होता हुआ आर्य पुरुषोंके कारने योग्य छह कर्मोंका पालन करता है, गृहस्थ अवस्थामें करने योग्य जो-जो विशुद्ध आचरण कहे गये हैं अरहन्त भगवान्के द्वारा कहे हुए उन उन समस्त आचरणोंका जो आलस्य-रहित होकर पालन करता है, जिसने श्री जिनेन्द्रदेवसे उत्तम जन्म प्राप्त की है और गणधरदेवने जिसे शिक्षा दी है ऐसा वह उत्तम द्विज उत्कृष्ट ब्रह्मतेज – आत्मतेजको धारण करता है ॥ १९-२०॥ उस समय धर्मस्वरूप हुए उस भव्यकी अन्य धर्मतिमा लोग यह कहते हुए प्रशंसा करते हैं कि तू पृथिवीतलपर अवतीर्ण हुआ उत्कृष्ट ब्रह्मतेजके समान है ॥ २०॥ पूजा करनेवाले यजमान जिसकी पूजा करते हैं, जो स्वयं पूजन करता है, और दूसरोंसे भी कराता

१ यज्ञमूत्रम् । २ उपासकाचारसंबन्धितः । ३ मनसा विकल्पितः । ४ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैः । उपलक्षित-उपयोगसंस्कारेवै । ५ परमज्ञानम्, परमतो वा । ६ आचार्याः । ७ प्राप्तयन्ति । ८ प्रवर्तनम् । ९ समाप्तरन् द०, अ०, ल०, प०, इ०, स० । १० वृत्ताभ्ययनसंपत्तिम् । 'स्थाद् ब्रह्मवर्चसं वृत्ताभ्ययनर्दिः' इत्यभिवाचात् । ११ ज्ञानसंबन्ध्युत्कृष्टतेज इव । १२ यज्ञनं कुर्वन् । १३ यज्ञं कारयन् । १४ पूजाकारकैः । १५ आराधितः । १६ अभ्ययनं कारयन् । १७ आगम – आगमाङ्ग ।

सृष्टाणपि महीं नैव सृष्टो दोषमहीगतेः । देवत्वमा॒भस्तुर्यादिहैवाभ्यर्थिनैरुणीः ॥१०४॥  
नाणिमा॒महिमैवास्य गरिमैव न लाघवम् । प्रासि॑ः प्राकाम्यमीशित्वं विशित्वं चेति तदगुणाः ॥१०५॥  
गुणैरेमिरूपारूपहिमा॒ देवमाद्वर्मैः । विश्रलोकातिगं धाम महामेष महीयते ॥१०६॥  
धर्मैरात्मरितेः स्वयम्भावक्षान्तिदमाद्विभिः । देवत्वाहृणतां खात्यां स्वस्मिन् संमावयव्यसौ ॥१०७॥  
अथ जातिमदावेशात् कश्चिदेते द्विजयुवः । अूपादेवं किमश्चैव देवभूयं॑ गतो भवान् ॥१०८॥  
त्वमामुख्यायणः॑ किंश्चिन्ते॒ इमाऽमुख्य पुच्छिका॑ । यन्नैवमुखस्य॑ भूत्वा यास्यत्वरूप्य भद्रिधान् ॥१०९॥  
जातिः सैव कुलं तत्त्वं सोऽसि योऽसि प्रगेतनः॑ । तथापि देवतामानमामानं मन्यते भवान् ॥११०॥  
देवतातिथिपित्रप्रिकायैवप्रयतो॑ भवान् । गुरुद्विजात्मित्रेवामां प्रणामात् पराक्षुणः ॥१११॥  
दीक्षां जीनों प्रपञ्चस्य जातः कोऽतिशयस्तत्व । यतोऽसापि मनुष्यस्त्वं पादजारी महीं सृष्टान् ॥११२॥  
इश्वुपारूपसंरम्भमु॑ पालव्यः॑ स केनचिद् । ददात्मुपरमित्यस्मै वचोमिर्युक्तियेशालैः॑ ॥११३॥  
शूद्रस्ता॑ मी॑ द्विजमन्य॑ स्वयं॑ इत्याद्यस्माकं॑ ज्ञानं गम्भी॑ उत्तिनिर्मलः ॥११४॥

है, जो वेद और वेदांगके विस्तारको स्वयं पढ़ता है तथा दूसरोंको भी पढ़ता है, जो यद्यपि पृथिवीका स्पर्श करता है तथापि पृथिवीसम्बन्धी दोष जिसका स्पर्श नहीं कर सकते हैं, जो अपने प्रवासनीय गुणोंसे इसी पर्यायमें देवपर्यायिको प्राप्त होता है, जिसके अणिमा ऋद्धि अर्थात् छोटापन नहीं है किन्तु महिमा अर्थात् बड़पन है, जिसके गरिमा कहिं है परन्तु लघिमा नहीं है, जिसमें प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व आदि देवताओंके गुण विद्यमान हैं, उपर्युक्त गुणोंसे जिसकी महिमा बढ़ रही है, जो देवरूप हो रहा है और लोकको उल्लंघन करनेवाला उल्कष्ट तेज धारण करता है ऐसा यह भव्य पृथिवीपर पूजित होता है ॥१०३-१०५॥ सत्य, शीच, अमा और दम आदि धर्मसम्बन्धी आचरणोंसे वह अपनेमें प्रशंसनीय देवत्वाहृणपनेकी सम्भावना करता है अर्थात् उत्तम आचरणोंसे अपने आपको देवत्वाहृणके समान उत्तम बना देता है ॥१०७॥

यदि अपनेको झूठभूठ ही द्विज माननेवाला कोई पुरुष अपनी जातिके अहंकारके आवेदन-से इस देवत्वाहृणसे कहे कि आप क्या आज ही देवपनेको प्राप्त हो गये हैं ? ॥१०८॥ क्या तू अमुक पुरुषका पुत्र नहीं है ? और क्या तेरी माता अमुक पुरुषकी पुत्री नहीं है ? जिससे कि तू इस तरह नाक ऊँची कर मेरे ऐसे पुरुषोंका सत्कार किये बिना ही जाता है ? ॥१०९॥ यद्यपि तेरी जाति वही है, कुल वही है और तू भी वही है जो कि सबेरेके समय था तथापि सू अपने आपको देवतारूप मानता है ॥११०॥ यद्यपि तू देवता, अतिथि, पितृगण और अग्निके कायोंमें निपुण है तथापि गुरु, द्विज और देवोंको प्रणाम करनेसे बिमुख है ॥१११॥ जैनी दीक्षा धारण करनेसे तुझे कौन-सा अतिशय प्राप्त हो गया है ? क्योंकि तू अब भी मनुष्य ही है और पृथिवीको स्पर्श करता हुआ पैरोंसे ही चलता है ॥११२॥ इस प्रकार क्रोध धारण कर यदि कोई उलाहना दे तो उसके लिए युक्तिसे भरे हुए वचनोंसे इस प्रकार उत्तर दे ॥११३॥ हे अपने आपको द्विज माननेवाले, तू मेरा दिव्य जन्म सुन, श्री जिनेन्द्रदेव ही मेरा पिता है और

१ रत्नत्यादिगुणलाभः । २ प्रकर्षणाभ्यन्तात् सकलाभिलषणीयत्वम् । ३ देवाधीत्यम् । देव साद्भवन् ८०, ८०, ८० । देवसाद्भवेत् ८०, ८०, ८० । ४ देवत्वम् । ५ कुलीनः । ६ प्रसिद्धपितृवत्प्रभ आमुख्यायण उच्चरते । ७ तत्व । ८ कुलीना पुत्री । ९ येन कारणेत । १० उद्गतनामिकः । ११ प्राप्तमवः । १२-१३ प्राकृतो ८०, ८० । १४ स्वीकृतक्रोधं यथा भवति तथा । १५ दूषितः । १६ पटुभिः । १७ अस्माकं देवोत्पत्तिः । १८ पिता ।

१ तत्राहंतीं त्रिधा॒ मित्रां शर्कि॑ बैगुण्यसंभिताम्॑ । स्वसायकृत्य समुज्जता वयं संस्कारजन्मना ॥११५॥  
 अयोनिसंभवास्तेन देवा एव न मानुषाः । वयं वयमिवाभ्येऽपि सन्ति॑ लेद् बूढि॑ तद्विधान्॑ ॥११६॥  
 स्वायम्भुवास्मुखाज्ञातास्ततो देवद्विजा वयम् । वतचिह्नं च नः सूत्रं पवित्रं सूत्रदर्शितम्॑ ॥११७॥  
 पापसूत्रामुगा यूयं न द्विजा॑ सूत्रकाटका॑ । यन्मागंकण्ठकास्तीक्ष्णाः केवलं मलदूषिताः ॥११८॥  
 शरीरजन्म संस्कारजन्म चेति॑ द्विधा मतम् । जन्माङ्गिनां सूतिश्वैर्वं द्विधाज्ञाता जिनागमे ॥११९॥  
 देहान्तरपरिश्रासिः पूर्वदेहपरिक्षयात् । शरीरजन्म विशेषं देहभासी भवताम्तरे ॥१२०॥  
 तथालब्धात्मलाभस्य पुनः संस्कारयोगतः । द्विजन्मसापरिप्राप्तिर्जन्म संस्कारजं स्मृतम् ॥१२१॥  
 शरीरमरणं स्वायुरन्ते देहविसर्जनम् । संस्कारमरणं प्राप्तवत्स्यागः समुज्जामम् ॥१२२॥  
 २ यतोऽयं लक्ष्यसंस्कारो विजहाति॑ प्रगोतनम्॑ । मिथ्यादर्शनपर्यायं ततस्तेन॑ सूतो भवेत् ॥१२३॥  
 तत्र॑ संस्कारजन्मेदमपापोरहतं पात्रं॑ । जलं तो॑ उर्युशापाइतो॑ वैद्विजा॑ वर्षम् ॥१२४॥  
 इत्यात्मनो गुणोक्तर्वं ग्यापयम्यायदर्शमा । गृहमेधी भवेत् प्राप्त्य सदगृहित्वमनुचरम् ॥१२५॥  
 भूयोऽपि संशब्दयामि ब्राह्मणान् सत्कियोऽवितान् । जातिवादावलेपस्य॑<sup>३-७६</sup> निरासार्थमतः परम् ॥१२६॥

ज्ञान ही अत्यन्त निर्मल गर्भ है ॥११४॥ उस गर्भमें उपलब्धि, उपयोग और संस्कार इन तीन गुणोंके आधिस रहनेवाली जो अरहन्तदेवसम्बन्धिनी सम्यदर्शन, सम्याज्ञान और सम्यक् चारित्र ये तीन भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं उन्हें अपने अधीन कर हम संस्काररूपी जन्मसे उत्पन्न हुए हैं ॥११५॥ हम लोग बिना योनिसे उत्पन्न हुए हैं इसलिए देव ही हैं मनुष्य नहीं हैं, हमारे समान जो और भी हैं उन्हें भी तू देवब्राह्मण कह ॥११६॥ हम लोग स्वयम्भूके मुख्यसे उत्पन्न हुए हैं इसलिए देवब्राह्मण हैं और हमारे जीवोंका चिह्न शास्त्रोंमें कहा यह पवित्र सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत है ॥११७॥ आप लोग तो गलमें सूत्र धारण कर समीचीन मार्गमें तीक्ष्ण कण्ठक बनते हुए पापरूप सूत्रके अनुसार चलनेवाले हैं, केवल मलसे दूषित हैं, द्विज नहीं हैं ॥११८॥ जीवोंका जन्म दो प्रकारका है एक तो शरीरजन्म और दूसरा संस्कार-जन्म । इसी प्रकार जैनशास्त्रोंमें जीवोंका मरण भी दो प्रकारका माना गया है ॥११९॥ एहले शरीरका क्षय हो जानेसे दूसरी पर्यायमें जो दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है उसे जीवोंका शरीरजन्म जानना चाहिए ॥१२०॥ इसी प्रकार संस्कारयोगसे जिसे पुनः आत्मलाभ प्राप्त हुआ है ऐसे पुरुष-को जो द्विजपनेकी प्राप्ति होता है वह संस्कारज अर्थात् संस्कारसे उत्पन्न हुआ जन्म कहलाता है ॥१२१॥ अपनी आयुके अन्तमें शरीरका परित्याग करना शरीरमरण है तथा कली पुरुष-का पापोंका परित्याग करना संस्कारमरण है ॥१२२॥ इस प्रकार जिसे सब संस्कार प्राप्त हुए हैं ऐसा जीव मिथ्यादर्शनरूप पहलेके पर्यायिको छोड़ देता है इसलिए वह एक तरहसे मरा हुआ ही कहलाता है ॥१२३॥ उन दोनों जन्मोंमें-से जो पापसे दूषित नहीं है ऐसा संस्कारसे उत्पन्न हुआ यह उल्कुष जन्म गुरुकी आज्ञानुसार मुझे प्राप्त हुआ है इसलिए मैं देवद्विज या देवब्राह्मण कहलाता हूँ ॥१२४॥ इस प्रकार न्यायमार्गसे अपने आत्माके गुणोंका उत्कर्ष प्रकट करता हुआ वह पुरुष सर्वश्रेष्ठ सदगृहित्व अवस्थाको पाकर सदगृहस्य होता है ॥१२५॥ उत्तम क्रियाओंके करने योग्य ज्ञाह्याणोंसे उनके जातिवादका अहंकार दूर करनेके लिए इसके

१ ज्ञानगर्भः । २ सम्यदर्शनज्ञानचारित्राणीति त्रिप्रकारः । ३ उपलब्ध्यप्रयोगसंस्कारात्मतां गताम् । ४ अयोनि-संभवप्रकारान् । अयोनिसंभवसदृशानित्यर्थः । ५ आगमप्रोक्तम् । ६ सूत्रमात्रमेव कण्ठे येषां ते । ७ यस्मात् कारणात् । ८ प्राकृतनम् । ९ मिथ्यादर्शनत्यजनरूपेणोत्यर्थः । १० शरीरजन्मसंस्कारजन्मनोः । ११ अस्माकम् । १२ गुरोरनुज्ञायाः । १३ गर्वस्य । १४ निराकरणाय ।

अ ग्रन्थोऽपस्य मित्रेवं ब्राह्मणाः स पुद्दाहनात् । ब्रह्मा रुद्रं भूमीग शाशृ परमेष्ठी<sup>१</sup> जिनेत्तमः ॥१२७॥  
स ज्ञानदिवरमवस्था जिनेन्द्रो शुणशृहणात् । परं ब्रह्म यद्यायतमामनन्ति मुनीष्वराः ॥१२८॥  
बैगजिनये ब्रह्मा ब्रह्माकृष्णादिलक्षणः । यः कामगर्द्दमो भूलब्रा प्रश्युतो ब्रह्मवर्णसात् ॥१२९॥  
दिव्यभूतं त्रिनेन्द्रस्य ज्ञानगमीदनाविलासैः । समासादितजन्मानो द्विजस्मानस्तो मताः ॥१३०॥  
‘वर्णन्तःप्रतिनो नैते मन्त्रच्चाद्विजस्तमाः । अतमः व्रादिसंस्कास्यमारेपितर्गाँश्चाः ॥१३१॥  
वर्णोत्तमानिमान् विद्यः क्षमितशीघ्रपरायणान् । संतुष्टान् प्राप्तवैशिष्ट्यान्हिष्टाचारभूषणान् ॥१३२॥  
‘हिष्टाचाराः परे नैव ब्राह्मणा द्विजमानिनः । पापारम्मरता शशदाहत्य<sup>२</sup> पशुधातिनः ॥१३३॥  
सर्वमेघमयं धर्ममभ्युपेष्य पशुवृत्ताम्<sup>३</sup> । का नाम गतिरेषां स्वाशृ पापशास्त्रोपजीविनाम् ॥१३४॥  
चौदनालक्षणे<sup>४</sup> धर्मसवर्म प्रतिज्ञानते<sup>५</sup> । ये तेभ्यः कर्मचाण्डालान् पश्यामो नापरान् भुवि ॥१३५॥  
पापिवैर्देष्टन्नाश्च लुण्टाकाः<sup>६</sup> पापपण्डिताः । तेऽमी धर्मजुषो बाह्या ये निवृत्यशृणाः<sup>७</sup> पशुन् ॥१३६॥  
‘पशुहत्यास्यमारम्भान् क्रद्यादेष्टोऽपि<sup>८</sup> निष्कृपाः । यशुचिछुले<sup>९</sup> मुशन्त्येते हन्तैवं धार्मिका हताः ॥१३७॥

आगे फिर भी कुछ कहता हूँ ॥१२६॥ जो ब्रह्माकी सन्तान हैं, उन्हें ब्राह्मण कहते हैं और स्वपम्भू, भगवान्, परमेष्ठी तथा जिनेन्द्रदेव ब्रह्मा कहलाते हैं । भावार्थ – जो जिनेन्द्र भगवान्-का उगदेश सुनकर, ज्ञानकृति-शिष्य-परमपूरुषे, प्रतिष्ठ-हुए हैं, वे ब्राह्मण कहलाते हैं ॥१२७॥ श्रीजिनेन्द्रदेव ही आदि परम ब्रह्मा हैं क्योंकि वे ही गुणोंकी बढ़ानेवाले हैं और उल्लृष्ट ब्रह्मा अर्थात् ज्ञान भी उन्हींके अधीन हैं ऐसा मुनियोंके ईवर मानते हैं ॥१२८॥ जो मृगचर्म धारण करता है, जटा, दाढ़ी आदि चिह्नोंसे युक्त है तथा कामके वश गता होकर जो ब्रह्मतंज अर्थात् ब्रह्मचर्यसे अष्ट हुखा वह कभी ब्रह्मा नहीं हो सकता ॥१२९॥ इसलिए जिन्होंने दिव्य मूर्तिके धारक श्री जिनेन्द्रदेवके निर्मल ज्ञानरूपी गर्भसे जन्म प्राप्त किया है वे ही द्विज कहलाते हैं ॥१३०॥ अत, मल्त्र तथा संस्कारोंसे जिन्हें गौरव प्राप्त हुआ है ऐसे इन उत्तम द्विजोंको वर्णोंके अन्तर्गत नहीं मानता चाहिए अर्थात् ये वर्णोत्तम हैं ॥१३१॥ जो क्षमा और शौच गुणके धारण करनेमें सदा तत्पर हैं, सन्तुष्ट रहते हैं, जिन्हें विशेषता प्राप्त हुई है और निर्देष आचरण हो जिनका आभूषण है ऐसे इन द्विजोंको सब वर्णोंमें उत्तम मानते हैं ॥१३२॥ इनके सिवाय जो मलिन आचारके धारक हैं, अपनेको सूक्ष्मृष्ट द्विज मानते हैं, पापका आरम्भ करनेमें सदा तत्पर रहते हैं और हठपूर्वक पशुओंका धात करते हैं वे ब्राह्मण नहीं हो सकते ॥१३३॥ जो समस्त हिंसामय धर्म स्वीकार कर पशुओंका धात करते हैं ऐसे पापशास्त्रोंसे आजीविका करनेवाले इन ब्राह्मणोंकी न जाने कीन-सी गति होगी ? ॥१३४॥ जो अधर्म स्वरूप वेदमें कहे हुए प्रेरणात्मक धर्मको धर्म मानते हैं मैं उनके सिवाय इस पृथिवीपर और किसीको कर्म चाण्डाल नहीं देखता हूँ अर्थात् वेदमें कहे हुए धर्मको माननेवाले सबसे बढ़कर कर्म चाण्डाल हैं ॥१३५॥ जो निर्दय होकर पशुओंका धात करते हैं वे पापरूप कार्योंमें पण्डित हैं, लुटेरे हैं, और धर्मात्मा लोगोंसे बाह्य हैं; ऐसे पुरुष राजाओंके द्वारा दण्डनीय होते हैं ॥१३६॥ पशुओंकी हिंसा करनेके उद्योगसे जो राक्षसीसे भी अधिक निर्दय हैं यदि ऐसे पुरुष ही उल्लृष्टताको प्राप्त होते हों तब

१ परमपदे स्थितः । २ कामाद् गर्वभाकारमूख इत्यथः । ३ अद्ययनसंपत्तेः । ४ अकलुषात् । ५ वर्णमात्र-  
वतिन इत्यर्थः । ६ दुष्ट । ७ हठात्, साक्षात् वा । ८ हिंसामपम् । ९ हिंसां कुर्वताम् । १० वेदोक्तलक्षणम् ।  
११ प्रतिज्ञां कुर्वते । १२ चौराः । १३ निःकृपा । १४ पशुद्रवनप्रारम्भात् । १५ राक्षसेभ्यः । ‘राक्षसः कोणप-  
क्रयात् क्रयादेष्वा आशरः’ इत्यभिधानात् । १६ उप्रतिम् ।

मलिनावरिना द्वेते कृष्णवर्गे द्विजशुद्धाः । जैनस्तु निर्मलाचाराः शुद्धवर्गे मता शुद्धैः ॥१३८॥  
 ३ श्रुतिसमृति पुरावृत्तं शूलमन्यक्रियाश्रिता । देवतालिङ्कामानकृता शुद्धिर्जन्मनाम् ॥१३९॥  
 ये चिशुद्धतरो वृत्तिं सकृतां समुपाश्रिताः । ते शुद्धवर्गे वोथव्याः शेषाः शुद्धैः अहिः कृता ॥१४०॥  
 तच्छुद्धयशुद्धी वौधन्ये व्याथान्यायप्रशृतिः । न्यायो दयात्रेव चित्वमन्यायः प्राणिमाणम् ॥१४१॥  
 त्रिशुद्धत्रूप्यस्तस्माजैना वर्णोत्तिमा द्विजाः । वर्णन्ति विनिर्मले जगन्मान्या हति स्थितम् ॥१४२॥  
 स्वादारका च धट्कर्मजीविनां गृहमविनाम् । हिंसादोषोऽनुसंगी स्वाजैनानां च द्विजन्मनाम् ॥१४३॥  
 हृत्यग्र शूमहे सभ्य मैल्यसावधसंगतिः । तथारुण्ये नधाप्येषां स्वाच्छुद्धिः शास्त्रदर्शिना ॥१४४॥  
 अपि चैवां चिशुद्धशङ्कं पक्षश्चर्या च साधनम् । इति ग्रन्थमस्येव तदिदार्ती विवृणमहे ॥१४५॥  
 तत्र गक्षी हि जैनानां कृत्त्वा हिंसाविवर्जनम् । मैत्रीप्रमोदकारुप्यमात्यस्थैरुपचृहितम् ॥१४६॥  
 चर्या तु देवतार्थं चा मन्त्रसिद्धव्यथैर्व वा । औषधाहारकृप्यं वा न हिंस्यामीति चेष्टितम् ॥१४७॥  
 तथाकामकृते शुद्धिः मायश्चामारुप्यं सूनी व्यवस्थाप्य गृहोच्चनम् ॥१४८॥

तो दुखके साथ कहना पड़ेगा कि बेचारे धर्मस्तिमा लोग व्यर्थ ही नष्ट हुए ॥१३७॥ ये द्विज लोग मलिन आचारका पालन करते हैं और झूठमूठ ही अपनेको द्विज कहते हैं इसलिए विद्वान् लोग इन्हें कृष्णवर्ग अर्थात् पापियोंके समूहमें गम्भित करते हैं और जैन लोग निर्मल आचारका पालन करते हैं इसलिए इन्हें शुक्लजीवी अर्थात् पुण्यजीवोंके समूहमें शामिल करते हैं ॥१३८॥ द्विज लोगोंकी शुद्धि श्रुति, स्मृति, पुराण, सदाचार, मन्त्र और क्रियाओंके आधित है तथा देवताओंके चिह्न धारण करने और कामका नाश करनेसे भी होती है ॥१३९॥ जो श्रुति स्मृति आदिके द्वारा की हुई अत्यन्त विशुद्ध वृत्तिको धारण करते हैं उन्हें शुद्धवर्ग अर्थात् पुण्यजीवोंके समूहमें समझना चाहिए और जो इनसे शेष बचते हैं उन्हें शुद्धिसे बाहर समझना चाहिए अर्थात् वे महा अशुद्ध हैं ॥१४०॥ उनकी शुद्धि और अशुद्धि, न्याय और अन्यायरूप प्रवृत्तिसे जाननी चाहिए । दयासे कोमल परिणाम होना न्याय है और प्राणियोंका मारना अन्याय है ॥१४१॥ इससे यह बात निश्चित हो चुकी कि विशुद्ध वृत्तिको धारण करनेवाले जैन लोग ही सब वर्णोंमें उत्तम हैं । वे ही द्विज हैं । ये ब्राह्मण आदि वर्णोंके अन्तर्गत न होकर वर्णोत्तम हैं और जगत्पूज्य हैं ॥१४२॥

अब यहाँ यह शंका हो सकती है कि जो असि मात्री आदि छह कर्मोंसे आजीविका करनेवाले जैन द्विज अथवा गृहस्थ हैं उनके भी हिंसाका दोष लग सकता है परन्तु इस विषयमें हम यह कहते हैं कि आपने जो कहा है वह ठीक है, आजीविकाके लिए छह कर्म करनेवाले जैन गृहस्थोंके शोडी-सी हिंसाकी संगति अवश्य होती है परन्तु धास्त्रोंमें उन दोषोंकी शुद्धि भी तो दिखलायी गयी है ॥१४३-१४४॥ उनकी विशुद्धिके अंग तीन हैं पक्ष, चर्या और साधन । अब मैं यहाँ इन्हीं तीनका वर्णन करता हूँ ॥१४५॥ उन तीनोंमें-से मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य-भावसे वृद्धिको प्राप्त हुआ समस्त हिंसाका त्याग करना जैनियोंका पक्ष कहलाता है ॥१४६॥ किसी देवताके लिए, किसी मन्त्रकी सिद्धिके लिए अथवा किसी औषध या भोजन बनवानेके लिए मैं किसी जीवकी हिंसा नहीं करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा करना चर्या कहलाती है ॥१४७॥ इस प्रतिज्ञामें यदि कभी इच्छा न रहते हुए प्रमादसे दोष लग जावे तो प्रायशिच्चत्तसे उसकी शुद्धि

१ पाप । २ पुण्य । ३ आगम । ४ धर्मसंहिता । ५ पुराण । ६ श्रुतिसमृत्यादिकृताम् । ७ जैनद्विजोत्तरयोः शुद्धयशुद्धिः । ८ वर्णमात्रवर्तिनः । ९ शङ्का । १० 'हिंसादोषोऽनुसंगी स्वात्' इत्यत्र । ११ सत्यमित्यद्वयी-कारे । १२ चेष्टिते । व्यापारे इत्यर्थः । १३ प्रमादजनिते दोषे । १४ - बात्यान्वयं द०, ल०, इ०, अ०, य०, स० ।

अर्थात् गुहिणा ग्रोका जीवितान्ते तु साधनम् । वेहाहोहिलयाराद् भ्यानवुद्वास्यतो धनम् ॥ १४५॥  
श्रिवेतेषु न संहसरो तथेनार्हद्विजन्मनाम् । दृश्याश्चमपक्षविक्षितशोषाणा स्याज्ञिराकृतिः ॥ १४६॥  
चतुर्गामाधमाणा च शुद्धिः स्यादाहृते मते । २ चतुर्गामस्यमन्येषामविचलसुन्दरम् ॥ १४७॥  
ब्रह्माचारी गृहस्थश्च यानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । हन्त्याश्रमास्तु जीवानामुक्तरोत्तरशुद्धितः ॥ १४८॥  
ज्ञातव्याः स्युः प्रपञ्चे लाभ्यमेंद्राः पृथग्विष्णुः । अन्दर्गारेत्वमील्या तु वाचैतेषां प्रपश्यना ॥ १४९॥  
सद्गृहित्वमिदं ज्ञेयं गुणैरात्मोपदृष्ट्वाप्यम् । पारिव्राज्यभितो वक्ष्ये सुविशुद्धं क्रियान्तरम् ॥ १५०॥

हृषि सद्गृहित्वम् ।

गाहैस्यमनुपालयैवं गृहवासाद् त्रिरूपः । यस्तीक्ष्णाग्रहणे तद्विपारिव्राज्यं प्रस्थिते ॥ १५१॥  
पारिव्राज्ये परिव्राजो भावो निवाणिदीक्षणम् । तत्र निर्ममता वृत्त्या जातरूपस्य धारणम् ॥ १५२॥  
प्रशस्ततिथिनक्षत्रयोगलभैः प्रहाशके । निर्गन्धाचार्यमाक्षित्य दीक्षा प्राप्ता मुमुक्षुणा ॥ १५३॥  
विशुद्धकुलगोपस्य सद्वृत्तस्य दपुष्यतः । दीक्षाचोग्यस्यमान्नातं सुमुखस्य सुमेधसः ॥ १५४॥  
५ महोपरागप्रहणे परिवेषेन्द्रचापयोः । वक्ष्यत्वोदये मेघपटलस्थगितेऽस्त्वरे ॥ १५५॥

की जाती है तथा अन्तमें अश्वा कुल कुटुम्बजुलुओंके लिये लौकिक घरवासीक्षण्य किया जाता है ॥ १४८॥ यह गृहस्थ लोगोंकी चर्या कही, अब आगे साधन कहते हैं । आपुके अन्त समयमें शरीर आहार और समस्त प्रकारकी चेष्टाओंका परिव्राग कार ध्यानकी गुद्धिसे जो आत्माको शुद्ध करना है उसे साधन कहते हैं ॥ १४९॥ अरहन्तदेवको माननेवाले द्विजोंका पक्ष, चर्या और साधन इन तीनोंमें हिसाके साथ स्पर्श भी नहीं होता, इस प्रकार अपने ऊपर ठहराये हुए दोषोंका निराकरण हो सकता है ॥ १५०॥ चारों आश्रमोंकी शुद्धता भी श्री अर्हन्तदेवके मतमें ही है । अन्य लोगोंने जो चार आश्रम माने हैं वे विचार किये बिना ही सुन्दर हैं अर्थात् जबतक उनका विचार नहीं किया गया है तभीतक सुन्दर हैं ॥ १५१॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, यानप्रस्थ और भिक्षुक ये जैनियोंके चार आश्रम हैं जो कि उत्तरोत्तर अधिक विशुद्ध होनेसे प्राप्त होते हैं ॥ १५२॥ ये चारों ही आश्रम अपने-अपने अन्तर्भौमिक सहित होकर अनेक प्रकारके हो जाते हैं, उनका विस्तारके साथ ज्ञान प्राप्त करना चाहिए परन्तु अन्य बड़े जानेके भयसे यहाँ उनका विस्तार नहीं लिखा है ॥ १५३॥ इस प्रकार गुणोंके द्वारा अपने आत्माकी वृद्धि करना यह सद्गृहित्व किया है । अब इसके आगे अन्यन्त विशुद्ध पारिव्रज्य नामकी तीसरी क्रियाका निरूपण करेंगे ॥ १५४॥ यह दूसरी सद्गृहित्व क्रिया है ।

इस प्रकार गृहस्थधर्मका पालन कर घरके निवाससे विरक्त होते हुए पुरुषका जो दीक्षा ग्रहण करना है उसे पारिव्रज्य कहते हैं ॥ १५५॥ परिव्राट्का जो निवाणिदीक्षारूप भाव है उसे पारिव्रज्य कहते हैं, इस पारिव्रज्य क्रियामें ममत्व भाव छोड़कर दिगम्बररूप धारण करना पड़ता है ॥ १५६॥ मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषको शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र, शुभ योग, शुभ लग्न और शुभ ग्रहोंके अंशमें निर्गन्ध आचार्यके पास जाकर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए ॥ १५७॥ जिसका कुल और गोत्र विशुद्ध है, चरित्र उत्तम है, मुख सुन्दर है और प्रतिभा अच्छी है ऐसा पुरुष ही दीक्षा ग्रहण करनेके योग्य माना गया है ॥ १५८॥ जिस दिन ग्रहोंका उपराग हो, ग्रहण लगा हो, सूर्य-चन्द्रमापर परिवेष ( मण्डल ) हो, इन्द्रधनुष उठा हो, दुष्ट ग्रहोंका उदय हो, आकाश मेघपटलसे ढका हुआ हो, तष्ट मास अथवा अधिक

१ चेष्टा । २ चतुर्गामस्यम् । ३ नानाप्रकाराः । ४ विरक्षित गच्छतः । ५ मुहूर्तः । ६ ग्रहोक्तकैः ल०  
८०, अ०, प०, इ०, स० । ७ चन्द्रादिग्रहणे ।

१ नष्टधिमसदिनयः संक्रान्ती हानिमत्ति गौ । दीक्षाविधि सुमुक्तणो नेच्छन्ति कृतवृद्धयः ॥ १५० ॥  
 २ संप्रदायमनाहत्य यस्त्वक्ष्य दीक्षायेदपि । ३ स्वल्पाभुजिर्विश्वर्वेद्युक्तात्मात्मायतः ॥ १५१ ॥  
 ४ तत्र सूत्रप्रान्यासुव्येगीन्द्राः सप्तविंशतिम् । वैर्निर्णाते भवेत्याक्षात् पारिवाज्यस्य लक्षणम् ॥ १५२ ॥  
 जातिमूर्तिश्च तत्रस्थं<sup>५</sup> लक्षणं सुमुक्तात्मा । प्रभामण्डुकचक्राणि तथाभिष्ववनाथते<sup>६</sup> ॥ १५३ ॥  
 सिंहासनोपथाने च छञ्चामरवीषणः । अशोकवृक्षनिघयो गृहशोभावगाहने ॥ १५४ ॥  
 क्षेत्रज्ञात्मा खमाः कीर्तिर्वन्द्यता वरहनानि च । मात्राहारसुखानीति जात्यादि सप्तविंशतिः ॥ १५५ ॥  
 जात्यादिकानिमान् सप्तविंशति एवेष्टिनाम् । गुणानाम् भवेत्यु<sup>७</sup> तेवक्तुतादरः ॥ १५६ ॥  
 जातिमानप्यनुस्थिकः<sup>८</sup> संभवेदहतां क्रमी<sup>९</sup> । यतो जात्यन्तरं<sup>१०</sup> जात्यां<sup>११</sup> याति जाति<sup>१२</sup> चमुदयीम् ॥  
 जातिरैत्री<sup>१३</sup> भवेत्यु<sup>१४</sup> चक्रिणां विजयाश्रिता । परमा जातिराहेत्ये स्वात्मोथा सिद्धिर्मुखाम् ॥ १५८ ॥

मासका दिन हो, संक्रान्ति हो अथवा क्षयतिथिका दिन हो उस दिन बुद्धिमान् आचार्य मोक्षकी इच्छा करनेवाले भव्योंके लिए दोषाकी विधि नहीं करना चाहते हैं अर्थात् उस दिन किसी शिष्यको नवीन दीक्षा नहीं देते हैं ॥ १५९—१६० ॥ जो मन्दवृद्धि आचार्य इस सम्प्रदायका अनादर कर नवीन शिष्यको दीक्षा दे देता है वह वृद्ध पुरुषोंके उल्लंघन करनेमें तत्पर होने-से अन्य साधुओंके द्वारा बहिष्कार कर देने योग्य है । भावार्थ – जो आचार्य असमयमें ही शिष्योंको दीक्षा दे देता है वह वृद्ध आचार्योंकी मान्यताका उल्लंघन करता है इसलिए साधुओंको चाहिए कि वे ऐसे आचार्यको अपने संघसे बाहर कर दें ॥ १६१ ॥ मुनिराज इस पारिव्रज्य क्रियामें उन सत्ताईस सूत्र पदोंका निरूपण करते हैं जिनका कि तिर्णय होनेपर पारिव्रज्यका साक्षात् लक्षण प्रकट होता है ॥ १६२ ॥ जाति, मूर्ति, उसमें रहनेवाले लक्षण, शरीर-की सुन्दरता, प्रभा, मण्डल, चक्र, अभिषेक, नाथता, सिंहासन, उपथान, छवि, चामर, घोषणा, अशोक वृक्ष, निधि, गृहशोभा, अवगाहन, क्षेत्रज्ञ, आज्ञा, सभा, कीति, चन्दनीयता, बाहन, भाषा, आहार और सुख ये जाति आदि सत्ताईस सूत्रपद कहलाते हैं ॥ १६३—१६५ ॥ ये जाति आदि सत्ताईस सूत्रपद परमेष्ठियोंके गुण कहलाते हैं । उस भव्य पुरुषको अपने जाति आदि गुणोंसे आदर न करते हुए दीक्षा धारण करना चाहिए । भावार्थ – ये जाति आदि गुण जिस प्रकार परमेष्ठियोंमें होते हैं उसी प्रकार दीक्षा लेनेवाले शिष्यमें भी यथासम्भव रूपसे होते हैं परन्तु शिष्यको अपने जाति आदि गुणोंका सन्मान नहीं कर परमेष्ठियोंके ही जाति आदि गुणोंका सन्मान करना चाहिए । क्योंकि ऐसा करनेसे वह शिष्य अहंकार आदि दुर्गुणोंसे बचकर अपने-आपका उत्थान शीघ्र ही कर सकता है ॥ १६६ ॥ स्वयं उसम जातिवाला होने-पर भी अहंकाररहित होकर अरहन्तदेवके चरणोंकी सेवा करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करनेसे वह भव्य दूसरे जन्ममें उत्पन्न होनेपर दिव्या, विजयाश्रिता, परमा और स्वा इन चार जातियोंको प्राप्त होता है ॥ १६७ ॥ इन्द्रके दिव्या जाति होती है, चक्रवर्तियोंके विजयाश्रिता, अरहन्तदेवके परमा और मोक्षको प्राप्त हुए जीवोंके अपने आत्मासे उत्पन्न होनेवाली स्वा-

१ नष्टमासस्याधिकमासस्य दिनयोः । २ असंपूर्णतिथौ । ३ संपूर्णमत्यः । ४ आभ्यायम् ( परम्परा ) ।  
 ५ नीत्या स्वीकुर्यात् । ६ वृद्धालिकमणे तत्परा । ७ पारिव्रज्ये । ८ निश्चितैः । ९ प्रत्यक्षम् । १० मूर्तिस्थितम् ।  
 तत्पर्य ल० । ११ अभिष्ववश्च अभिषेको नाथता च स्वामित्वं च । १२ आत्मीयेषु । १३ जात्यादिपु ।  
 १४ अगविल । १५ चरणी । १६ जन्मान्तरे । १७ उत्पत्ती सत्याम् । १८ दिव्यजातिविजयजातिः परमजातिः  
 स्वामीत्वजातिरिति । १९ इन्द्रस्य इयम् ।

मूर्यादिविष्णु<sup>१</sup> नेतव्या कलानेत्रं चतुष्टयी । पुराणजैसंमोहनं कवित्वे<sup>२</sup> त्रितयी मता ॥१६५॥  
 कर्त्तव्येन्मूर्तिमात्मीयां रथमूर्तीः शरीरिणाम् । तर्पोऽधितिष्ठेद् दिव्यादिमूर्तिरासुमना मुनिः ॥१६६॥  
 स्वलक्षणमनिदेश्वर्य<sup>३</sup> मन्त्रमात्रो जिनेशिनाम् । कलशणान्यमिसंधायै तपस्येत् कृतलक्षणः ॥१६७॥  
 अत्रापयन्<sup>४</sup> इत्राङ्गुष्टान्दयै मुनिरुद्गं तपश्वरेत् । बाणहन्दिव्यादिशीत्यमनिवारंपरम्परम् ॥१६८॥  
 मल्लीमसाङ्गो व्युत्पुष्टस्वकायप्रभवप्रभः । प्रभोः<sup>५</sup> प्रभो मुनिधर्मायन् भवेत् तिप्रं प्रभासद्वरः ॥१६९॥  
 स्वं मणिक्षेत्रं दीपादिनेजोऽपास्य जिनं भजन् । तेजोमयमयं योगी स्वासेजोबलयोऽज्ञवः ॥१७०॥  
 स्थवरेवाऽस्त्रं वस्त्रं दास्त्राणि<sup>६</sup> प्राक्कामनि प्रशामित्तमाक् । जिनमाराध्य योगीन्द्रो धर्मचक्रादियो भवेत् ।  
 त्यन्तस्त्रानादिसंस्कारः संत्रित्य ज्ञातके<sup>७</sup> जिनम् । मूर्तिं मेरोऽवामोरि परं जन्मामिषेषनम् ॥१७१॥  
 स्वं<sup>८</sup> स्वाम्यमैहिकं स्थवर्या परमस्वामिनं जिनम् । सेषित्वा सेवनीयत्वमेवत्येष जगामनैः ॥१७२॥  
 स्वोचितासनमेवानो त्यागार्थकाम्बरो मुनिः । तैंहं विष्टरमध्यास्य तीर्थप्रख्यापको भवेत् ॥१७३॥  
 ९ रदोपधानाद्यनाद्य योऽभूषितपै<sup>१०</sup> धिर्भुवि । शयानः स्थपित्तले वातुमात्राविलिपिरस्तटः ॥१७४॥

जाति होती है ॥१६८॥ इन चारोंकी कल्पना मूर्ति आदिमें कर लेनी चाहिए, अर्थात् जिस प्रकार जातिके दिव्या आदि चार भेद हैं उसी प्रकार मूर्ति आदिके भी समझ लेना चाहिए । परन्तु पुराणोंको जाननेवाले आचार्य मोहरहित होनेसे किसी-किसी जगह तीव्र ही भेदोंकी कल्पना करते हैं । भावार्थ – सिद्धोंमें स्वा मूर्ति नहीं मानते हैं ॥१६९॥ जो मुनि दिव्य आदि मूर्तियोंको प्राप्त करना चाहता है उसे अपना शरीर कृश करना चाहिए तथा अन्य जीवोंके शरीरोंकी रक्षा करते हुए तपश्चरण करना चाहिए ॥१७०॥ इसी प्रकार अनेक लक्षण धारण करनेवाला वह पुरुष अपने लक्षणोंको निर्देश करनेके अधोग्रथ मानता हुआ जिनेन्द्रदेवके लक्षणोंका चिन्तवन कर तपश्चरण करे ॥१७१॥ जिनकी परम्परा अनिवार्य है ऐसे दिव्य आदि सौन्दर्यों-की इच्छा करता हुआ वह मुनि अपने शरीरके सौन्दर्योंको मलिन करता हुआ कठिन तपश्चरण करे ॥१७२॥ जिसका शरीर मलिन हो गया है, जिसने अपने शरीरसे उत्पन्न होनेवाली प्रभाका त्याग कर दिया है और जो अहंतदेवकी प्रभाका ध्यान करता है ऐसा साधु शीघ्र ही देवीप्यमान हो जाता है अर्थात् दिव्यप्रभा आदि प्रभाओंको प्राप्त करता है ॥१७३॥ जो मुनि अपने भणि और तेलके दोषक आदिका तेज छोड़कर तेजोभय जिनेन्द्र भगवान्की आराधना करता है वह प्रभामण्डलसे उज्ज्वल हो उठता है ॥१७४॥ जो पहलेके अस्त्र, वस्त्र और घस्त्र आदि-को छोड़कर अत्यन्त शान्त होता हुआ जिनेन्द्रभगवान्की आराधना करता है वह योगिराज धर्मचक्रका अधिष्ठित होता है ॥१७५॥ जो मुनि स्नान आदिका संस्कार छोड़कर केवली जिनेन्द्रका आश्रय लेता है अर्थात् उनका चिन्तवन करता है वह मेहरवंतके मस्तकपर उल्लृष्ट जन्माभिषेकको प्राप्त होता है ॥१७६॥ जो मुनि अपने इस लोक-सम्बन्धी स्वामीपतेको छोड़कर परमस्वामी श्रीजिनेन्द्रदेवकी सेवा करता है वह जगत्के जीवोंके द्वारा सेवनीय होता है अर्थात् जगत्के सब जीव उसकी सेवा करते हैं ॥१७७॥ जो मुनि अपने योग्य अनेक आसनोंके भेदोंका त्याग कर दिग्म्बर हो जाता है वह सिंहासनपर आरूढ़ होकर तीर्थको प्रसिद्ध करनेवाला अर्थात् तीर्थकर होता है ॥१७८॥ जो मुनि अपने तकिया आदिकी अनादर कर परियह-

१ दिव्यसूतिविजयमूर्तिः परममूर्तिः स्वात्मोत्थमूर्तिरिति एवमुत्तरवापि योजनीयम् । २ सिद्धाद्वौ ।  
 ३ नामसंकीर्तनं कतुस्योग्यमिति । ४ अ्यात्वा । ५ गुणः प्रतीतः । 'गुणः प्रतीते तु कृतलक्षणाहितलक्षणो' इत्यभिषानात् । ६ म्लानि कुर्वन् । ७ जिनस्य । ८ तेलाम्यज्ञन । ९ दिव्यास्त्र । १० –अपस्त्र-१० । करमुक्तः ।  
 ११ सामार्थ्यास्त्र । १२ प्रकृष्टज्ञानातिशयम् । १३ स्वामित्वम् । १४ निजोपवहसिनादि । 'उपधानं तूपवहम्'  
 इत्यभिषानात् । १५ निःपरिप्रहः ।

स महाअभ्युदयं प्राप्त्य जिनो भूत्वा<sup>१</sup> सुलक्षणिक्यः । ऐर्वेश्विरचितं दीप्रमालकन्दस्युपचानकम्<sup>२</sup> ॥१८०॥  
स्वकर्मान्तरप्राप्त्य सकलात्मपरिच्छदः । त्रिभिइच्छैः समुद्भासिरक्षेत्रासते स्वयम् ॥१८१॥  
विविधव्यजन त्वागादनुष्ठितपोविधिः । चामराणां चतुःषष्ठा वीजयते जिनपर्यंथे<sup>३</sup> ॥१८२॥  
उजिकात्मानकसंगीतबोधः कुरुते तपोविधिम् । स्वादृशुदुभुभिनिधेविष्वुद्यमाणजयोदयः ॥१८३॥  
उद्यानादिक्षां त्रायामपास्य स्वां तपो व्यवधात् । यसोऽयमत एकास्य स्वाक्षरोऽस्महातुमः ॥१८४॥  
स्वं स्वापतेयमुचितं त्वक्त्वा निर्ममतामितः<sup>४</sup> । स्वयं निधिमिरभ्येत्य सेव्यते ह्यादि दूरतः ॥१८५॥  
गृहशोभां कुलारक्षां दूरीकृत्य तपस्यतः । श्रीमण्डपादिशोभास्य स्वतोऽभ्येति पुरोगताम्<sup>५</sup> ॥१८६॥  
तपोऽवयाहनादस्य गहनान्यधितिष्ठुतः । त्रिजगजानसास्थानसहं स्याद्वगाहनम् ॥१८७॥  
क्षेत्रवास्तुम्भुन्सर्गात्<sup>६</sup> क्षेत्रज्ञत्वमुपेयुषः । हवार्धानत्रिजगत्क्षेत्रमेहयमस्योपजायते ॥१८८॥  
आज्ञाभिमानमुत्सृज्य मौनभास्त्रितव्यानयम् । प्राप्नोति परमामाजां सुरासुरशिरोऽष्टताम् ॥१८९॥  
भग्नमिष्टभृत्यशमध्वादिष्ममामुत्सृष्टवानयम् । परमापदप्राप्तावध्यास्ते त्रिजगत्समाप्तम् ॥१९०॥

रहित हो जाता है और केवल अपनी भुजापर शिरका किनारा रखकर पृथिवीके ऊंचे-नीचे प्रदेशपर शयन करता है वह महाअभ्युदय ( स्वर्गादिकी विभूति ) को पाकर जिन हो जाता है, उस समय सब लोग उसका आदर-सत्कार करते हैं और वह देवोंके द्वारा बने हुए देवीप्यमान तकियाको प्राप्त होता है ॥१८०-१८०॥ जो मुनि शीतल छत्र आदि अपने समस्त परिग्रहका त्याग कर देता है वह स्वयं देवीप्यमान रत्नोंसे युक्त तीन छाँड़ोंसे सुशोभित होता है ॥१८१॥ अनेक प्रकारके पंखाओंके त्यागसे जिसने तपश्चरणकी विधिका पालन किया है ऐसा मुनि जिनेन्द्रपर्यायमें चौंसठ चमरोंसे वीजित होता है अर्थात् उसपर चौंसठ चमर ढुलाये जाते हैं ॥१८२॥ जो मुनि नगाड़ तथा संगीत आदिकी घोषणाका त्याग कर तपश्चरण करता है उसके विजयका उदय स्वर्गके दुन्दुभियोंके गम्भीर शब्दोंसे घोषित किया जाता है ॥१८३॥ चूंकि पहले उसने अपने उद्यान आदिके द्वारा की हुई छायाका परित्याग कर तपश्चरण किया था इसलिए ही अब उसे ( अरहन्त अवस्थामें ) महाअशोक वृक्षकी प्राप्ति होती है ॥१८४॥ जो अपना योग्य धन छोड़कर निर्ममत्वभावको प्राप्त होता है वह स्वयं आकर दूर दरवाजेपर खड़ी हुई निधियोंसे सेवित होता है अर्थात् समवसरण भूमिमें निधियाँ दरवाजेपर खड़े रहकर उसकी सेवा करती हैं ॥१८५॥ जिसकी रक्षा सब औरसे की गयी थी ऐसी धरकी शोभाको छोड़कर इसने तपश्चरण किया था इसीलिए श्रीमण्डपकी शोभा अपने-आप इसके सामने आती है ॥१८६॥ जो तप करनेके लिए सघन वनमें निवास करता है उसे तीनों जगत्के जीवोंके लिए स्थान दे सकनेवाली अवगाहन शक्ति प्राप्त हो जाती है अर्थात् उसका ऐसा समवसरण रक्षा जाता है जिसमें तीनों लोकोंके समस्त जीव सुखसे स्थान पा सकते हैं ॥१८७॥ जो क्षेत्रमकान आदिका परित्याग कर शुद्ध आत्माको प्राप्त होता है उसे तीनों जगत्के क्षेत्रको अपने अधीन रखनेवाला ऐवर्य प्राप्त होता है ॥१८८॥ जो मुनि आज्ञा देनेका अभिमान छोड़कर मौन धारण करता है उसे सुर और असुरोंके द्वारा शिरपर धारण की हुई उल्कृष्ट आज्ञा प्राप्त होती है अर्थात् उसकी आज्ञा सब जीव मानते हैं ॥१८९॥ जो यह मुनि अपने हृष्ट सेवक तथा भाई आदिकी सभाका परित्याग करता है इसलिए उल्कृष्ट अरहन्त पदकी प्राप्ति होनेपर

१ उपवर्हम् । २ छत्र । ३ चामर । ४ अहृत्यर्थाये सति । ५ स्वदुन्दुभिः । ६ धनम् । ‘द्रव्यं वृत्तं स्वापतेम् रिक्षं द्रव्यं धनं वसु’ इत्यभिधानात् । ७ निर्ममत्वं गतः । ८ अग्रेसरताम् । ९ प्रवेशनात् । १० आत्मस्वरूपत्वम् । ‘क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः’ इत्यभिधानात् ।

स्वगुणोल्कीर्तं त्यक्त्वा त्यक्तकामो महातपः । सुतिनिश्चासमो भूयः कीर्त्येन सुवदेष्वरः ॥ १६१ ॥  
 वन्दिदत्ता अन्यमहेन्तं यतोऽनुष्टुपित्रांस्तपः । ततोऽयं वन्दासै घन्दीरैनन्यगुणसंनिधिः ॥ १६२ ॥  
 तपोऽयमनुपनन्दकः पाद्यारी विवाहनः । कृत्वान् पश्यगमेषु चरणन्थासमदीति ॥ १६३ ॥  
 वाग्मीसी हितवाग्वृत्या यतोऽयं तपासै स्थितः । ततोऽस्य दिव्यविजयं स्पौति अभ्यंविविलो लनाम् ॥  
 "अताश्चाज्ञियताहारपात्पोऽतस्य यत्पः । तदस्य दिव्यविजयं परमासृततुपयः ॥ १६४ ॥  
 त्यक्तकामसुखो भूत्वा तपस्यस्थाचिरं यतः । ततोऽयं सुखसाद्भूत्वा परमात्मदधुं मजेत् ॥ १६५ ॥  
 किमत्र वहुनोक्तेन यद्यनिष्टुप यथाविधम् । यज्ञेन्मुनिरसंकल्पः तत्तमूलेऽस्य तत्पः ॥ १६६ ॥  
 आसोऽकर्यं तदस्य स्यात्सप्तश्चिन्तामणेः फलम् । यतोऽर्हज्ञालिमूल्यादिप्राप्तिः सैषाऽनुबर्णिता ॥ १६७ ॥  
 जैमेश्वरीं परामाज्ञां सूक्ष्मोद्दिष्टो ग्रमाणयन् । तपस्यां यदुपाधते परिद्वाज्यं तदाज्ञसम् ॥ १६८ ॥  
 अन्यत्र यहुवाग्जाले निबद्धं युक्तिवाधितम् । पारिवाज्यं परिव्यज्य आहं<sup>१२</sup> चेदमनुत्तरम्<sup>१३</sup> ॥ २०९ ॥  
 इति पारिवाज्यम् ।

वह तीनों लोकोंकी सभा अर्थात् समवसरण भूमिमें विराजमान होता है ॥ १६० ॥ जो सब प्रकारकी इच्छाओंका परित्याग कर अपने गुणोंकी प्रशंसा करना छोड़ देता है और महातपश्चरण करता हुआ स्तुति तथा निन्दामें सभान भाव रखता है वह तीनों लोकोंके इन्द्रोंके द्वारा प्रशंसित होता है अर्थात् सब लोग उसकी स्तुति करते हैं ॥ १६१ ॥ इस मुनिने वन्दना करने योग्य अर्हन्त-देवकी वन्दना कर तपश्चरण किया था इसीलिए यह वन्दना करने योग्य पूज्य पुरुषोंके द्वारा वन्दना किया जाता है तथा प्रशंसनीय उच्चम् गुणोंका भाण्डार हुआ है ॥ १६२ ॥ जो जूता और सबारीका परित्याग कर पैदल चलता हुआ तपश्चरण करता है वह कमलोंके मध्यमें चरण रखनेके योग्य होता है अर्थात् अर्हन्त अवस्थामें देव लोग उसके चरणोंके नीचे कमलोंकी रचना करते हैं ॥ १६३ ॥ जूँकि यह मूनि वचनगुणितको धारण कर अथवा हित मित वचनरूप भाषासमितिका पालन कर तपश्चरणमें स्थित हुआ था इसलिए ही इसे समस्त सभाको सन्तुष्ट करनेवाली दिव्य ध्वनि प्राप्त हुई है ॥ १६४ ॥ इस मुनिने पहले उपवास धारण कर अथवा नियमित आहार और पारणाएँ कर तप तपा था इसलिए ही इसे दिव्यतृप्ति, विजयतृप्ति, परमतृप्ति और अमृततृप्ति ये चारों ही तृप्तियाँ प्राप्त हुई हैं ॥ १६५ ॥ यह मुनि काम जनित सुखकी छोड़कर चिरकाल तक तपश्चरणमें स्थिर रहा था इसलिए ही यह सुखस्वरूप होकर परमात्मको प्राप्त हुआ है ॥ १६६ ॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? संक्षेपमें इतना ही कह देना ठीक है कि मुनि संकल्परहित होकर जिस प्रकारकी जिस-जिस वस्तुका परित्याग करता है उसका तपश्चरण उसके लिए वही-वही वस्तु उत्पन्न कर देता है ॥ १६७ ॥ जिस तपश्चरणरूपी चिन्तामणिका फल उक्तुष्ट पदकी प्राप्ति आदि मिलता है और जिससे अर्हन्तदेवकी जाति तथा मूर्ति आदिकी प्राप्ति होती है ऐसी इस पारिव्रज्य नामकी क्रियाका वर्णन किया ॥ १६८ ॥ जो आगममें कही हुई जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाको ग्रमाण मानता हुआ तपस्या धारण करता है अर्थात् दीक्षा ग्रहण करता है उसीके वास्तविक पारिव्रज्य होता है ॥ १६९ ॥ अनेक प्रकारके वचनोंके जालमें निबद्ध तथा युक्तिसे बाधित अन्य लोगोंके पारिव्रज्य

१ यस्मात् कारणात् । २ गणधरादिभिः । ३ पाद्याणरहितः । ४ पाद्याणस्य योग्यो भवति । ५ अनशनद्रती ।  
 ६ अकरोत् । ७ यत् कारणात् । ८ दिव्यतृप्तिविजयतृप्तिपरमतृप्त्यमृततृप्तयः । ९ आत्मम् । १० प्ररिष्ठं  
 ताः । ११ पारमार्थिकम् । १२ अर्हसंबन्धिपारिव्रज्यम् । १३ -मनुत्तमम् ल० ।

या सुरेन्द्रप्रपाप्तिः परिव्राज्यकलोदयात्<sup>१</sup> । सैषा सुरेन्द्रता नाम क्रिया प्राग्मुच्चर्णिता ॥२०१॥

इति सुरेन्द्रता ।

मात्राञ्यमाविराज्य स्वाच्छकरत्रपुरस्तरम् । निधिरक्षस मुद्भूते भोगसंपत्परम्परम् ॥२०२॥

अन्तर्बन्धिः २०१ अन्तर्बन्धिः २०२ अन्तर्बन्धिः २०३ अन्तर्बन्धिः

इति साक्षात्यम् ।

आहंन्त्यमहतो भावो कर्म वेति परा क्रिया । अत्र स्वर्गावितारादिमहाकल्पाणसंपदः ॥२०३॥

थाऽर्थं हित्यावतीर्णस्य प्राप्तिः कल्पाणसंपदाम् । तदाहंन्त्यमिति ज्ञेयं श्रैलोक्यक्षीभकाणम् ॥२०४॥

इत्याहंन्त्यम् ।

भवत्रमध्यन्मुक्तस्य आवस्था परमात्मनः । परिनिर्वृत्तिरिष्टा सा परं निर्विणमित्यपि ॥२०५॥

कृत्याकर्ममलापात्रात् संशुद्धिर्धान्तरात्मनः । सिद्धिः स्वात्मोपलक्षिः सा नाभावो न गुणोच्छिद्वात् ॥

इति निर्वृतिः ।

इत्यागमानुसारेण प्रोक्ताः कर्त्रन्त्यक्रियाः । ससैताः परमस्थानसंगतिर्यक्ष योगिनाम् ॥२०६॥

योऽनुतिष्ठत्यनन्दालुः क्रिया खेताविधोद्विताः । सोऽधिगच्छेत् परं धाम यसंप्राप्तो परं शिवम् ॥२०७॥

### पुणिषताप्रावृत्तम्

जिनमतविहितं पुराणधर्मं च इममनुस्मरति क्रियानिकद्दस् ।

अनुचरति च पुण्यधीः स भज्यो भवत्यवन्धनमात्मा निर्झनाति ॥२०८॥

को छोड़कर इसी सर्वोत्कृष्ट पारिव्रज्यको ग्रहण करना चाहिए ॥२००॥ यह तीसरी पारिव्रज्य क्रिया है ।

पारिव्रज्यके फलका उदय होनेसे जो सुरेन्द्र पदकी प्राप्ति होती है वही यह सुरेन्द्रता नामकी क्रिया है इसका वर्णन पहले क्रिया जा चुका है ॥२०१॥ यह चीथो सुरेन्द्रता क्रिया है ।

जिसमें चक्ररत्नके साथ-साथ निधियों और रत्नोंसे उत्पन्न हुए भोगोपभोगरूपी सम्पदाओं-की परम्परा प्राप्त होती है ऐसा चक्रवर्तीका बड़ा भारी राज्य साम्राज्य कहलाता है ॥२०२॥ यह पाँचवीं साक्षात्यक्रिया है ।

अर्हत् परमेष्ठीका भाव अथवा कर्मरूप जो उत्कृष्ट क्रिया है उसे आहंन्त्य क्रिया कहते हैं । इस क्रियामें स्वर्गावितार आदि महाकल्याणरूप सम्पदाओंकी प्राप्ति होती है ॥२०३॥ स्वर्गसे अवतीर्ण हुए अर्हन्त परमेष्ठीको जो पंचकल्याणरूप सम्पदाओंकी प्राप्ति होती है उसे आहंन्त्य क्रिया जानता चाहिए, यह आहंन्त्यक्रिया तीनों लोकोंमें क्षेत्र उत्पन्न करनेवाली है ॥२०४॥ यह छठी आहंन्त्यक्रिया है ।

संपारके बन्धनसे मुक्त हुए परमात्माकी जो अवस्था होती है उसे परिनिर्वृति कहते हैं । इसका दूसरा नाम परनिर्वाण भी है ॥२०५॥ समस्त कर्मरूपी मलके नष्ट हो जानेसे जो अन्तरात्माकी शुद्धि होती है उसे सिद्धि कहते हैं, यह सिद्धि अपने आत्मतत्त्वकी प्राप्तिरूप है अभावरूप नहीं है और न ज्ञान आदि गुणोंके नाशरूप ही है ॥२०६॥ यह सातवीं परिनिर्वृति क्रिया है ।

इस प्रकार आगमके अनुसार ये सात कर्त्रन्त्य क्रियाएँ कही गयी हैं, इन क्रियाओंका पालन करनेसे योगियोंको परम स्थानकी प्राप्ति होती है ॥२०७॥ जो भव्य आलत्य छोड़कर निरूपण को हुई इन तीन प्रकारकी क्रियाओंका अनुष्ठान करता है वह उस परमधाम (मोक्ष) को प्राप्त होता है जिसके प्राप्त होनेपर उसे उत्कृष्ट सुख मिल जाता है ॥२०८॥ पवित्र बुद्धिको धारण करने

<sup>१</sup> कलोदये ४० । <sup>२</sup> तुच्छाभावरूपो न । <sup>३</sup> 'बुद्धिसुखदुखादिनवानामात्मगुणानामत्यन्तोच्छित्तिमोक्ष' इति मतप्रोक्तो मोक्षो न । <sup>४</sup> सुखम् ।

परमजिनवदानुरक्षणी-

र्मजलि पुमान् य इमं क्रियाविधिम् ।  
स बुतनिग्निलकम्बन्धनो ॥२०९॥ श्रीराधारेश्वर - श्रीराधारेश्वर - श्रीराधारेश्वर - श्रीराधारेश्वर  
जननजरामहणान्त छद् भवेत् ॥२१०॥

### शादूलविक्रीडितम्

भव्याऽमा समवाप्य जातिसुविकां जातेस्ततः सदृगृही  
पारिवार्यमनुकरं गुरुमतादासाद्य यातो दिवम् ।  
तवैन्द्रीं श्रियमास्तवान् पुमरते इष्युर्वा गतश्चक्रितो  
प्राप्ताद्दन्त्यपदः समग्रमहिमा प्राप्तोत्थतो निर्वृतिम् ॥२११॥

इत्याखे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्टुलक्षणमहापुराणसंग्रहे  
दीक्षाकर्त्तव्यक्रियावर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥२१२॥



बाला जो भव्य पुरुष उक्त क्रियाओंसहित जितमतमें कहे हुए इस पुराणके धर्मका अथवा प्राचीन धर्मका स्मरण करता है और उसीके अनुसार आचरण करता है वह संसारसम्बन्धी भयके बन्धनोंको शीघ्र ही तोड़ देता है—नष्ट कर देता है ॥२०९॥ जिसकी बुद्धि अत्यन्त उत्कृष्ट जिनेन्द्रभगवान्के चरणकम्लोंमें अनुरागको प्राप्त हो रही है ऐसा जो पुरुष इन क्रियाओंकी विधिका सेवन करता है वह समस्त कर्मबन्धनको नष्ट करता हुआ जन्म, बुद्धापा और मरणका अन्त करनेवाला होता है ॥२१०॥ यह भव्य पुरुष प्रथम ही योग्य जातिको पाकर सदृगृहस्थ होता है फिर गुरुको आजासे उत्कृष्ट पारिव्रज्यको प्राप्त कर स्वर्ग जाता है, वहाँ उसे इन्द्रकी लक्ष्मी प्राप्त होती है, तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर चक्रवर्तीं पदको प्राप्त होता है, फिर अरहन्त पदको प्राप्त होकर उत्कृष्ट महिमाका धारक होता है और इसके बाद निर्वाणको प्राप्त होता है ॥२११॥

इस प्रकार आर्थ नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्टुलक्षण महापुराणसंग्रहके  
भाषानुवादमें दीक्षाकर्त्तव्य और कर्त्तव्य क्रियाओंका वर्णन  
कर्त्तवाला उनतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।



## चत्वारिंशस्तम् पर्व

अथातः संवृष्टयामि क्रियामूलरचूलिकाम्<sup>१</sup> । विशेषनिर्णयो चत्र क्रियाणी<sup>२</sup> तिसूणामपि ॥१॥  
 तत्रादै तापदुर्जेत्ये<sup>३</sup> क्रियाकल्पप्रकल्पये<sup>४</sup> । मन्त्रोद्धारं क्रियामिद्विमंश्रादीना हि योगिनाम् ॥२॥  
 आधानादि क्रियारम्भे पूर्वमेव निवेशयेत् । श्रीणिवृद्धव्राणि चक्राणां अयं श्रीश्च हविर्भुजः<sup>५</sup> ॥३॥  
 ६ मध्येवेदि जिनेन्द्राचर्चिः स्थापयेद्य यथाचिर्चिः । मन्त्रकल्पोऽथमास्त्रातस्त्रं तत्पूजनविधी<sup>७</sup> ॥४॥  
 नमोऽन्तो नीरजश्शब्दश्चतुर्वर्णन्तोऽथ पठ्यताम् । जलेन भूमिवन्धार्थं परा शुद्धिस्तु तस्फलम्<sup>८</sup> ॥५॥  
 ( नीरजसे नमः )

प्रार्थनाम् दमस्त्रहर्जविभवस्त्रात्मे विश्वामुखीर्येत्तम् । विज्ञेपशान्तये दर्पमधनाय नमः पदम् ॥६॥

( दर्पमधनाय नमः )

गन्धप्रदानमन्त्रहर्ज शीलगन्धाय चै नमः ।

( शीलगन्धाय नमः )

पुष्पप्रदानमन्त्रोऽपि विमलाय नमः पदम् ॥७॥

( विमलाय नमः )

अथानन्तर-आगे इन क्रियाओंकी उत्तरचूलिकाका कथन करेंगे जिससे कि इन तीनों क्रियाओंका विशेष निर्णय किया गया है ॥१॥ इस उत्तरचूलिकामें भी सबसे पहले क्रियाकल्प अर्थात् क्रियाओंके समूहकी सिद्धिके लिए मन्त्रोंका उद्धार करेंगा अर्थात् मन्त्रोंकी रचना आदि-का निरूपण करेंगा । सो ठीक ही है क्योंकि मुनियोंके कार्यकी सिद्धि भी मन्त्रोंके ही अधीन होती है ॥२॥ आधानादि क्रियाओंके प्रारम्भमें सबसे पहले तीन छत्र, तीन चक्र और तीन अग्निर्यां स्थापित करना चाहिए ॥३॥ और वेदोंके मध्य भागमें विधिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा विराज-मान करनी चाहिए । उक्त क्रियाओंके प्रारम्भमें उन छत्र, चक्र, अग्नि तथा जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाकी जो पूजा की जाती है वह मन्त्रकल्प कहलाता है ॥४॥ इन क्रियाओंके करते समय जलसे भूमि शुद्ध करनेके लिए जिसके अन्तमें नमः शब्द लगा हुआ है ऐसे नीरजस् शब्दको चतुर्थीकि एकवचनका रूप पढ़ना चाहिए अर्थात् 'नीरजसे नमः' ( कर्मरूप धूलिसे रहित जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार हो ) यह मन्त्र बोलना चाहिए । इस मन्त्रका फल उल्लङ्घ विशुद्धि होना है ॥५॥ तदनन्तर डाभका आसन अहण करना चाहिए और उसके बाद विघ्नोंको शान्त करने के लिए 'दर्पमधनाय नमः' ( अहंकारको नष्ट करनेवाले भगवान्को नमस्कार हो ) इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥६॥ गन्ध समर्पण करनेका मन्त्र है 'शीलगन्धाय नमः' ( शील रूप सुगन्ध धारण करनेवाले जिनेन्द्रदेवको नमस्कार हो ) । तथा पुष्प देनेका मन्त्र है 'विमलाय

१ उपरितनाशं वन् चूलिकायाम् । २ गर्भान्वयादीनाम् । ३ वृत्तये । ४ क्रियाकलापकरणार्थम् । ५ अग्निन् ।  
 ६ वेदिमध्ये । ७ गर्भशिवादिक्रियारम्भे । ८ छत्रव्रथाविपूजन । ९ भूमिसंपोगार्थं भूमिसेचनार्थमित्यर्थः ।  
 १० जलसेचनफलम् ।

कुर्यादिक्षतपूजार्थमक्षताय नमः पदम् ।	( अक्षताय नमः )
१ पूजार्थं श्रुतधूपाय नमः पदमुदाहरेत् ॥८॥	( श्रुतधूपाय नमः )
ज्ञानोद्योताय पूर्वं च दीपदाने नमः पदम् ।	( ज्ञानोद्योताय नमः )
मन्त्रः परमसिद्धाय नमः हृष्यमृतोदृष्ट्वा॑ ॥९॥	( परमसिद्धाय नमः )
मन्त्रैरभिस्तु संस्कृत्य यथावज्जगतीश्वलम् । ततोऽन्वकृ पीठिकामन्त्रः पञ्चीयो द्विजोत्तमैः ॥१०॥	पीठिकामन्त्रः –
सत्यजानपदं पूर्वं चतुर्थ्यन्तं नमः परम् । २ ततोऽहंजातशब्दवश्च तदन्तहत्यरो॑ मतः ॥११॥	
ततः परमजाताय नम इत्यपरं पदम् । ततोऽनुपमजाताय नम इत्युत्तरं पदम् ॥१२॥	
ततश्च स्वप्रधानाय नम इत्युत्तरो ध्यनि॑ । अचलाय नमः शब्दादक्षयाय नमः परम् ॥१३॥	
अव्याक्राधपदं चान्यदनन्तज्ञानशब्दनम् । अनन्तदर्शनानन्तवीर्यशब्दौ ततः पूर्वक् ॥१४॥	
अनन्तसुखशब्दश्च नीरजःशब्द एव च । निर्मलाच्छेष्यशब्दौ च तथाऽभेदाजरश्रुती ॥१५॥	

‘नमः’ ( कर्ममलसे रहित जिनेन्द्रभगवान्के लिए नमस्कार हो ) ॥७॥ अक्षतसे पूजा करनेके लिए ‘अक्षताय नमः’ ( क्षयरहित जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो ) यह मन्त्र बोले और धूपसे पूजा करते समय ‘श्रुतधूपाय नमः’ ( प्रसिद्ध वासनावाले भगवान्को नमस्कार हो ) इस मन्त्रका उच्चारण करे ॥८॥ दीप चढ़ाते समय ‘ज्ञानोद्योताय नमः’ ( ज्ञानरूप उद्योत-प्रकाश ) को धारण करनेवाले जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो ) यह मन्त्र पढ़े और अमृत अर्थात् नीवेद्य चढ़ाते समय ‘परमसिद्धाय नमः’ ( उत्कृष्ट सिद्धभगवान्को नमस्कार हो ) ऐसा मन्त्र बोले ॥९॥ इस प्रकार इन मन्त्रोंसे विधिपूर्वक भूमिका संस्कार कर उसके बाद उन उत्तम द्विजोंको पीठिका मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥१०॥ पीठिका मन्त्र इस प्रकार है – सबसे पहले, जिसके आगे ‘नमः’ शब्द लगा हुआ है और चतुर्थी विभक्ति अन्तमें है ऐसे सत्यजात शब्दका उच्चारण करना चाहिए अर्थात् ‘सत्यजाताय नमः’ ( सत्यरूप जन्मको धारण करनेवाले जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो ) बोलना चाहिए, उसके बाद चतुर्थ्यन्त अहंज्ञात शब्दके आगे ‘नमः’ पद लगाकर ‘अहंज्ञाताय नमः’ ( प्रशंसनीय जन्मको धारण करनेवाले जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो ) यह मन्त्र बोले ॥११॥ तदनन्तर ‘परमजाताय नमः’ ( उत्कृष्ट जन्मग्रहण करनेवाले अहन्तदेवको नमस्कार हो ) बोलना चाहिए और उसके बाद ‘अनुपमजाताय नमः’ ( उपमारहित जन्म धारण करनेवाले जिनेन्द्रको नमस्कार हो ) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥१२॥ इसके बाद ‘स्वप्रधानाय नमः’ ( अपने-आप ही प्रधान अवस्थाको प्राप्त होनेवाले जिनराजको नमस्कार हो ) यह मन्त्र बोले और उसके पश्चात् ‘अचलाय नमः’ ( स्वरूपमें निश्चल रहनेवाले वीतरागको नमस्कार हो ) तथा ‘अक्षयाय नमः’ ( कभी नष्ट न होनेवाले भगवान्को नमस्कार हो ) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥१३॥ इसी प्रकार ‘अव्याक्राधाय नमः’ ( बाधाओंसे रहित परमेश्वरको नमस्कार हो ), ‘अनन्तज्ञानाय नमः’ ( अनन्तज्ञानको धारण करनेवाले जिनराजको नमस्कार हो ), ‘अनन्तदर्शनाय नमः’ ( अनन्तदर्शन-केवल दर्शनको धारण करनेवाले जिनेन्द्रदेवको नमस्कार हो ), ‘अनन्तवीर्याय नमः’ ( अनन्त बलके धारक अहन्तदेवको नमस्कार हो ) ‘अनन्तसुखाय नमः’ ( अनन्तसुखके भाष्डार जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो ), ‘नीरजसे

१ पूजार्थं । २ चहसमर्णे । ३ तस्मात् परम् । ४ चतुर्थ्यन्तः । ५ नमःपद । ६ शब्दः ।

ततोऽमराप्रसेद्योक्ते<sup>१</sup> सागरविवासशब्दने<sup>२</sup> । ततोऽक्षोभ्याविलीनोक्ती परमादिर्बन्धवनि:<sup>३</sup> ॥१६॥  
 पृथक्षृष्टगिमे<sup>४</sup> शब्दस्तैवस्तास्तत्परा<sup>५</sup> मत्ता: । उत्तराप्यनुसंधाय पदान्तेभिः पदैर्वदेत् ॥१७॥  
 आदौ परमकाष्ठेति योगरूपाय वाक्परम् । नमःशब्दसुदीर्घान्ते मन्त्रविन्मन्त्रसुदर्शेत् ॥१८॥  
 लोकाग्रवासिनेशब्दात्परः कामो नमो तमः । एवं परमलिङ्गोऽक्षोऽहंत्सिद्धेत् इति ॥१९॥  
 एवं केवलिसिद्धेभ्यः पश्चाद् भूयोऽन्तकृत्यदात् । सिद्धेभ्य इत्यमुप्मात्र परम्परपश्चादपि<sup>६</sup> ॥२०॥  
 अनादिपदपूर्वात् तस्मादेव<sup>७</sup> पदात्परम् । अनाथमुपमादिभ्यः सिद्धेभ्यत्र नमो नमः ॥२१॥

नमः' ( कर्मरूपो धूलिसे रहित जिनराजको नमस्कार हो ), 'निर्मलाय नमः' ( कर्मरूप मलसे रहित जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो ) 'अच्छेद्याय नमः' ( जिनका कोई छेदन नहीं कर सके ऐसे जिनेन्द्रदेवको नमस्कार हो ), 'अभेद्याय नमः' ( जो किसी तरह भिद नहीं सके ऐसे अरहन्त-को नमस्कार हो ), 'अजराय नमः' ( जो बुद्धापासे रहित है उसे नमस्कार हो ), 'अमराय नमः' ( जो मरणसे रहित है उसे नमस्कार हो ), 'अप्रमेयाय नमः' ( जो प्रमाणसे रहित है—छायस्थ पुरुषके ज्ञानसे अगम्य है, उसे नमस्कार हो ), 'अगर्भवासाय नमः' ( जो जन्म-मरणसे रहित होनेके कारण किसीके गर्भमें निवास नहीं करते ऐसे जिनराजको नमस्कार हो ), 'अक्षोभ्याय नमः' ( जिन्हें कोई थोभ उत्पन्न नहीं कर सकता ऐसे भगवान्को नमस्कार हो ), 'अविलीनाय नमः' ( जो कभी विलीन—नष्ट नहीं होते उन परमात्माको नमस्कार हो ) और 'परमधनाय नमः' ( जो उत्कृष्ट धनरूप है—उन्हें नमस्कार हो ) इन अव्याबाध आदि शब्दोंके आगे चतुर्थविभक्ति तथा नमः शब्द लगाकर ऊपर लिखे अनुसार अव्याबाधाय नमः आदि मन्त्र पदों-का उच्चारण करना चाहिए ॥१४—१७॥ तदनन्तर मन्त्रको जाननेवाला द्विज जिसके आदिमें 'परमकाष्ठ' है और अन्तमें योगरूपाय है ऐसे शब्दका उच्चारण कर उसके आगे 'नमः' पद लगाता हुआ 'परमकाष्ठयोगाय नमः' ( जिनका योग उत्कृष्ट सीमाको प्राप्त हो रहा है ऐसे जिनेन्द्रको नमस्कार हो ) इस मन्त्रका उद्धार करे ॥१८॥ फिर लोकाग्रवासिनेशब्दके आगे 'नमो नमः' लगाना चाहिए इसी प्रकार परम सिद्धेभ्यः और अहंत्सिद्धेभ्यः शब्दोंके आगे भी नमो नमः शब्दका प्रयोग करना चाहिए अर्थात् क्रमसे 'लोकाग्रवासिनेनमो नमः' ( लोकके अप्रभाग-पर निवास करनेवाले सिद्ध परमेष्ठीको बार-बार नमस्कार हो ) 'परमसिद्धेभ्यो नमो नमः' ( परम सिद्धभगवान्को बार-बार नमस्कार हो ) और 'अहंत्सिद्धेभ्यो नमो नमः' ( जिन्होंने अरहन्त अवस्थाके बाद सिद्ध अवस्था प्राप्त की है ऐसे सिद्ध महाराजको बार-बार नमस्कार हो ) इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिए ॥१९॥ इसी प्रकार 'केवलिसिद्धेभ्यो नमो नमः' ( केवली सिद्धोंको नमस्कार हो ) 'अन्तःकृत्सिद्धेभ्यो नमो नमः' ( अन्तकृत् केवली होकर सिद्ध होनेवालोंको नमस्कार हो ), 'परम्परसिद्धेभ्यो नमः' ( परम्परासे हुए सिद्धोंको नमस्कार हो ) 'अनादिपरम्परसिद्धेभ्यो नमः' ( अनादि कालसे हुए परम सिद्धोंको नमस्कार हो, ) और 'अनाध्यनुपमसिद्धेभ्यो नमो नमः' ( अनादिकालसे हुए उपमारहित सिद्धोंको नमस्कार हो ) इन मन्त्र पदोंका उच्चारण कर नीचे लिखे पद पढ़ना चाहिए । इन नीचे लिखे शब्दोंको सम्बोधनरूपसे दो-दो बार बोलना चाहिए । प्रथम ही है सम्यगदृष्टे हैं । सम्यगदृष्टे, है आसन्नभव्य

१ अमराप्रसेयशब्दौ । २ सागरविवासशब्दसहिते । ३ परमधनशब्दः । ४ अव्याबाधपदमित्यादयः । ५ चतुर्थनन्तः । ६ नमःशब्दपराः । ७ परम्परशब्दात् । ८ सिद्धेभ्य इति पदात् ।

इति भवत्रपदान्पुरुषाः पदानीभान्यतः पठेत् । द्विषत्काऽऽस्मिन्द्यु<sup>१</sup> वक्तव्यं सम्यग्दृष्टिपदं भवतः ॥२२॥  
आसन्नभव्यशब्दाद्यथ द्विर्बाण्ड्यस्तद्ग्रेव<sup>२</sup> हि । निर्बाणादिव पूजाहृः स्वाहान्तोऽमीन्द्र इत्यपि ॥२३॥  
काम्यमन्तः-

भवतः स्वकाम्यसिद्ध्यर्थमिदं<sup>३</sup> पदमुदाहरेत् । सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु तत्परम्<sup>४</sup> ॥२४॥  
अपमृत्युविनाशनं भवत्वमतं<sup>५</sup> पदं भवेत्<sup>६</sup> । भवत्वन्तमतो वाच्यं समाधिमरणाक्षरम्<sup>७</sup> ॥२५॥

चूणिः 'सत्यजाताय नमः, अहंजाताय नमः, परमजाताय नमः, अनुपमजाताय नमः, स्वप्रधानाय  
नमः, अचलाय नमः, अक्षयाय नमः, अव्यावाधाय नमः, अनन्तसुखाय नमः, अनन्तदर्शनाय नमः, अनन्त-  
वीर्याय नमः, अनन्तसुखाय नमः, नीरजसे नमः, निर्मलाय नमः, अच्छेद्याय नमः, अमेद्याय नमः, अजराय  
नमः, अमराय नमः, अप्रमेयाय नमः, अगर्भवासाय नमः, अप्नोम्याय नमः, अविलीनाय नमः परमधनाय  
नमः, परमकाष्ठायोगरूपाय नमः, लोकाग्रवासिने नमो नमः, परमसिद्धेभ्यो नमो नमः, अहंसिद्धेभ्यो नमो  
नमः, केवलिसिद्धेभ्यो नमो नमः, अनतङ्कुसिद्धेभ्यो नमो नमः, परम्परसिद्धेभ्यो नमः, अनादिपरम्पर-  
सिद्धेभ्यो नमो नमः, अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमो नमः, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्य आसन्नभव्य  
निर्बाणपूजाहृ निर्बाणपूजाहृ अनीन्द्र स्वाहा, सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु,  
समाधिमरणं भवतु ।

पीठिकामन्त्र एव स्थानं पदेरभिः समुच्चितैः । जातिभन्नमितो धर्मे यथाभुतमनुक्रमात् ॥२६॥

सत्यजन्मपदं तान्तमाद्यं शरणमध्यतः । प्रपद्यामीति वाच्यं स्वादहंजन्मपदं तथा ॥२७॥

हे आसन्नभव्य, हे निर्बाणपूजाहृ, हे निर्बाणपूजाहृ, और फिर अनीन्द्र स्वाहा इस  
प्रकार उच्चारण करना चाहिए ( इन सबका अर्थ यह है कि हे सम्यग्दृष्टि, हे निकटभव्य,  
हे निर्बाण कल्याणकी पूजा करने योग्य, अग्निकुमार देवोंके इन्द्र, तेरे लिए यह हृवि समर्पित  
करता हूँ ) ॥२०—२३॥ ( अब इसके आगे काम्य मन्त्र लिखते हैं ) । तदनन्तर अपनी इष्ट-  
सिद्धिके लिए तोचे लिखे पदका उच्चारण करना चाहिए 'सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अप-  
मृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु' अर्थात् मुझे सेवाके कलस्वरूप छह परम स्थानोंकी  
प्राप्ति हो, अपमृत्युका नाश हो और समाधिमरण प्राप्त हो ॥२४—२५॥ ऊपर कहे हुए सब  
मन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है :

सत्यजाताय नमः, अहंजाताय नमः, परमजाताय नमः, अनुपमजाताय नमः, स्व-  
प्रधानाय नमः, अचलाय नमः, अक्षयाय नमः, अव्यावाधाय नमः, अनन्तदर्शनाय नमः, अनन्त-  
दर्शनाय नमः, अनन्तवीर्याय नमः, अनन्तसुखाय नमः, नीरजसे नमः, निर्मलाय नमः, अच्छेद्याय  
नमः, अमेद्याय नमः, अजराय नमः, अमराय नमः, अप्रमेयाय नमः, अगर्भवासाय नमः, अक्षो-  
भ्याय नमः, अविलीनाय नमः, परमधनाय नमः, परमकाष्ठायोगरूपाय नमः, लोकाग्रवासिने  
नमो नमः, परमसिद्धेभ्यो नमो नमः, अहंसिद्धेभ्यो नमो नमः, केवलिसिद्धेभ्यो नमो नमः, अनतङ्कु-  
सिद्धेभ्यो नमो नमः, परम्परसिद्धेभ्यो नमो नमः, अनादिपरम्परसिद्धेभ्यो नमो नमः, अनाद्यनु-  
पमसिद्धेभ्यो नमो नमः, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्य आसन्नभव्य निर्बाणपूजाहृ निर्बाणपूजाहृ  
अनीन्द्र स्वाहा, सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्यु विनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

इस प्रकार इन सप्तस्त पदोंके द्वारा यह पीठिका मन्त्र कहा, अब इसके आगे शास्त्रोंके  
अनुसार अनुक्रमसे जातिमन्त्र कहते हैं ॥२६॥ तान्त अर्थात् षष्ठीविभक्त्यन्त सत्यजन्म पदके  
आगे शरण और उसके आगे प्रपद्यामि शब्द कहना अर्थात् 'सत्यजन्मः शरणं प्रपद्यामि' ( मैं  
१ संख्यात्मक हृत्वा । २ आमन्त्रणं कृत्वैत्यर्थः । ३ अभीहृत् । ४ तस्माद्युपरि । ५ भवतुषावौडीन्ते यस्य तद् ।  
६ पठेत् द०, ल०, अ०, प०, स०, इ० । ७ समाधिमरणपदम् । ८ आयमानतिकमेष । ९ नास्तिभिति पाठः,  
मकारः अन्ते यस्य तद् ।

अर्द्धनम् त्रुपदं<sup>१</sup> तदूत्त्वन्तमहृत्याक्षरम् । अनादिगमनस्येति तथा अन्यमजन्मनः ॥२४॥

रत्नत्रयस्य शरणे प्रेषया मीर्यतः परम् । वोद्धयन्ते च ततः सम्यरहिते द्विष्वेन योजयेत् ॥२७॥

ज्ञानमूलिकपदे तदृक्षसरसवनिपदे तथा ॥ संक्षेपमध्यमध्ये व्याख्यातार्थे क्वचिद्यत्तिरिक्ते लोक्यत्तिरिक्ते व्याख्यातार्थे

**चूणि:** — सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्यामि, अहंजन्मनः शरणं प्रपद्यामि, अहंस्मातुः शरणं प्रपद्यामि, अहंसुतस्य शरणं प्रपद्यामि, अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्यामि, अनुपमजन्मनः शरणं प्रपद्यामि, रत्नव्रयस्य शरणं प्रपद्यामि, हे सम्यग्वर्षे हे सम्यग्वर्षे, हे ज्ञानमूर्ते, ज्ञानमूर्ते, हे सरस्वति, हे सरस्वति स्वाहा, सेवाकलं षट्परमस्थानं सबृह, अपस्तुयुक्तिंशनं सबृह ।

जातिसत्त्वोऽयमस्तुतोऽ जातिशंहकारकाणम् । मन्त्रे मिस्तारकादि च यथाइनायमितो ज्ञवे ॥३१॥

निस्तारकमन्त्रः

स्याहान्ते गव्यजाताय पदमादावनस्मृतम् । तदुपतमहृजातायपदं स्यात्तदनन्तरम् ॥३२॥

तसः पृष्ठकर्मणे स्वाहा पदम् चासयेद् द्विजः । स्यादप्राप्तयतये स्वाहा पदे तस्मादनश्चत् (स ॥३३॥)

अनादिश्वेति ब्रह्मत् स्वाहापदं ततः । गदूच्च स्नातकायेति श्रावकायेति च द्रव्यम् ॥३४॥

सत्यरूप जन्मको धारण करनेवाले जिनेन्द्रदेवका शरण लेता है ), इस प्रकार कहना चाहिए । इसके बाद 'अहंजन्मनः शरणं प्रपद्यामि' ( मैं अरहन्त पदके योग्य जन्म धारण करनेवाले-का शरण लेता है ) 'अहंमातुः शरणं प्रपद्यामि' ( अहंतदेवकी माताका शरण लेता है, ) 'अहंसुतस्य शरणं प्रपद्यामि' ( अरहन्तदेवके पुत्रका शरण लेता है ), 'अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्यामि' ( अनादि ज्ञानकी धारण करनेवालेका शरण लेता है ), अनुपमजन्मनः शरणं प्रपद्यामि' ( उपमारहित जन्मको धारण करनेवालेका शरण लेता है ) और 'रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्यामि' ( रत्नत्रयका शरण ग्रहण करता है ) ये मन्त्र बोलना चाहिए । तदनन्तर सम्बोधन विभक्त्यन्त सम्यगदृष्टि, ज्ञानमूर्ति और सरस्वती पदका दो-दो बार उच्चारण कर अन्तमें स्वाहा शब्द बोलना चाहिए अर्थात् सम्यगदृष्टि, सम्यगदृष्टि, ज्ञानमूर्ति, ज्ञानमूर्ति, सरस्वति, सरस्वति, स्वाहा ( हे सम्यगदृष्टि हे सम्यगदृष्टि, हे ज्ञानमूर्ति हे ज्ञानमूर्ति, हे सरस्वति, हे सरस्वति, मैं तेरे लिये हृवि समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र कहना चाहिए और फिर काम्य मन्त्र पहलेके समान ही पढ़ना चाहिए ॥२७-३०॥ ऊपर कहे हुए पीठिका मन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है :

‘सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्यामि, अहंजजन्मनः शरणं प्रपद्यामि, अहंमातुः शरणं प्रपद्यामि, अहंत्युतस्य शरणं प्रपद्यामि, अनादिगममस्य शरणं प्रपद्यामि, अनुगमजन्मनः शरणं प्रपद्यामि, रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्यामि, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे, ज्ञानमूर्ते शानमूर्ते, सरस्वति सरस्वति स्वाहा, सेवाकर्ल षट्परमस्थानं भवतु, अपमत्यविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।’

ये मन्त्र जातिसंस्कारका कारण होनेसे जानि मन्त्र कहलाते हैं अब इसके आगे निस्तारक मन्त्र कहते हैं ॥३१॥ सबसे पहले 'सत्यजाताय स्वाहा' ( सत्यरूप जन्मको धारण करनेवालेके लिए मैं हवि समर्पण करता हूँ ) इस मन्त्रका स्मरण किया गया है फिर 'अर्हजजाताय स्वाहा' ( अर्हन्तरूप जन्मको धारण करनेवालेके लिए मैं हवि समर्पित करता हूँ ) पह मन्त्र बोलना चाहिए, और इसके बाद घट्कर्मणे स्वाहा ( देवपूजा आदि छह कर्मे करनेवालेके लिए हवि समर्पित करता हूँ ), इस मन्त्रका द्विजको उच्चारण करना चाहिए। फिर 'ग्रामयतये स्वाहा' ( ग्रामयतिके लिए समर्पण करता हूँ ), यह मन्त्र बोलना चाहिए ॥३२-३३॥ फिर

१ तु शब्दः अत्ते यस्य तत् । २ संयुक्तघन्तम् । ३ सम्परदृष्टिपदम् । ४ द्वि: कुला योजयेदित्यर्थः । ५ पदपर-  
गम्यानेत्यादि । ६ प्रोक्तः । ७ स्वाहात्मम् ।

स्वाहे वद्राह्मणाय गावेति स्वाहे व्यन्तमतः पदम् । सुब्राह्मणाय स्वाहान्तः स्वाहान्ताऽनुपमाय नमः ॥३४॥  
सम्यगदृष्टिपदं चैव तथा निधिपति श्रुतिम् । ब्रूयाद् वैश्रवणोऽनि च हि: स्वाहेति ततः परम् ॥३५॥  
काम्यमन्यमतो ब्रूयात् पूर्ववन्मन्त्रविद् द्विजः । अविमन्त्रभिसो वद्ये यथाऽपोपामकश्रुतिः ॥३६॥

**नूर्णिः** – सत्यजाताय स्वाहा, अहंजाताय स्वाहा, षट्कर्मणे स्वाहा, ग्रामयतये स्वाहा, अनादि-  
ओत्रियाय स्वाहा, स्नातकाय स्वाहा, श्रावकाय स्वाहा, देवब्राह्मणाय स्वाहा, सुब्राह्मणाय स्वाहा, अनुपमाय  
स्वाहा, सम्यगदृष्टे सम्यगदृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण स्वाहा, सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु,  
अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

**अविमन्त्रः**

प्रथमं सत्यजाताय नमः पदसुदीर्घेत् । गुह्यीयाऽहंजाताय नमः शब्दं ततः परम् ॥३८॥

निर्ग्रन्थाय नमो वीतरागाय नम इत्यपि । महाव्रताय पूर्वं च नमः पदमनन्तरम् ॥३९॥

त्रिगुप्ताय नमो महादैत्याय नम इत्यत्रिः । ततो विविधं दोषं च नम इत्यनुपदृचताम् ॥४०॥

विविधद्विष्टिपदं चास्मात्तमः शब्देन योजितम् । ततोऽइत्यवरपूर्वं च पदेन पूर्वधरण्यनिम् ॥४१॥

‘अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा’ ( अनादिकालीन श्रुतके अध्येताको समर्पण करता हूँ ), यह मन्त्र-  
पद बोलना चाहिए । तदनन्तर इसी प्रकार ‘स्नातकाय स्वाहा’ और ‘श्रावकाय स्वाहा’ ये दो  
मन्त्र पढ़ना चाहिए ( केवली अरहन्त और श्रावकके लिए समर्पण करता हूँ ) ॥३४॥ इसके  
बाद ‘देवब्राह्मणाय स्वाहा’ ( देवब्राह्मणके लिए समर्पण करता हूँ ), ‘सुब्राह्मणाय स्वाहा’  
( सुब्राह्मणके लिए समर्पण करता हूँ ), और ‘अनुपमाय स्वाहा’ ( उपमारहित भगवान्के  
लिए हवि समर्पित करता हूँ ), ये शब्द बोलना चाहिए ॥३५॥ तदनन्तर सम्यगदृष्टि, निधि-  
पति और वैश्रवण शब्दको दो-दो बार कहकर अन्तमें स्वाहा शब्दका प्रयोग करना चाहिए  
अर्थात् सम्यगदृष्टे सम्यगदृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा’ ( हे सम्यगदृष्टि  
हे निधियोंके अधिपति, हे कुबेर, मैं तुम्हें हवि समर्पित करता हूँ) यह मन्त्र बोलना चाहिए ॥३६॥  
इसके बाद मन्त्रोंको जानेवाला द्विज पहलेके समान काम्यमन्त्र बोले । अब इसके आगे  
उपासकाध्ययन-शास्त्रके अनुसार अविमन्त्र कहता हूँ ॥३७॥ जातिमन्त्रोंका संग्रह इस  
प्रकार है :

‘सत्यजाताय स्वाहा, अहंजाताय स्वाहा, षट्कर्मणे स्वाहा, ग्रामयतये स्वाहा, अनादि-  
ओत्रियाय स्वाहा, स्नातकाय स्वाहा, श्रावकाय स्वाहा, देवब्राह्मणाय स्वाहा, सुब्राह्मणाय  
स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यगदृष्टे सम्यगदृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा,  
सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

अविमन्त्र-प्रथम ही ‘सत्यजन्मको धारण करनेवालेको नमस्कार हो’ यह पद बोलना चाहिए और उसके बाद ‘अहंजाताय नमः’ ( अरहन्त रूप अन्मको धारण  
करनेवालेके लिए नमस्कार हो ) इस पदका उच्चारण करना चाहिए ॥३८॥ तदनन्तर  
'निर्ग्रन्थाय नमः' ( परियहरहितके लिए नमस्कार हो ), 'वीतरागाय नमः' ( रागद्वेषरहित जिनेत्र  
देवको नमस्कार हो ), 'महाव्रताय नमः' ( महाव्रत धारण करनेवालोंके लिए नमस्कार हो ),  
'त्रिगुप्ताय नमः' ( तीनों गुप्तियोंको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो, ) 'महायोगाय नमः'  
( महायोगको धारण करनेवाले द्वयियोंको नमस्कार हो ) और 'विविधयोगाय नमः' ( अनेक  
प्रकारके योगोंको धारण करनेवालोंके लिए नमस्कार हो ) ये मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥३९-४०॥  
फिर नमः शब्दके साथ चतुर्थी विभवत्यन्त विविधद्वि शब्दका पाठ करना चाहिए अर्थात् 'विवि-

वर्द्धये नमः' ( अनेक ऋषियोंको घारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो ) ऐसा उच्चारण करना चाहिए । इसी प्रकार जिनके आगे नमः शब्द लगा हुआ है ऐसे चतुर्थ्यन्त अंगधर और पूर्वधर शब्दोंका पाठ करना चाहिए अर्थात् 'अङ्गधराय नमः' ( अंगोंके जाननेवालेको नमस्कार हो ) और 'पूर्वधराय नमः' ( पूर्वोंके जाननेवालोंको नमस्कार हो ) ये मन्त्र बोलना चाहिए । तदनन्तर 'गणधराय नमः' ( गणधरको नमस्कार हो ) इस पदका उच्चारण करना चाहिए ॥४१-४२॥ फिर परमषिभ्यः शब्दके आगे नमो नमः का उच्चारण करना चाहिए अर्थात् 'परमषिभ्यो नमो नमः' ( परम ऋषियोंको बार-बार नमस्कार हो ) यह मन्त्र बोलना चाहिए और इसके बाद 'अनुपमजाताय नमो नमः' ( उपमारहित जन्मधारण करनेवालेको बार-बार नमस्कार हो ) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिए ॥४३॥ फिर अन्तमें सम्बोधन विभक्त्यन्त सम्यगदृष्टि पदका दो बार उच्चारण करना चाहिए । और इसी प्रकार मन्त्रोंको जाननेवाले द्विजों-को सम्बोधनात्त भूपति और नगरपति शब्दका भी दो-दो बार उच्चारण करना चाहिए । तदनन्तर आगे कहा जानेवाला मन्त्रका अवशिष्ट अंश भी बोलना चाहिए । कालश्रमण शब्दको सम्बोधन विभक्तिमें दो बार कहकर उसके आगे स्वाहा शब्दका उच्चारण करना चाहिए और फिर यह सब कह चुकनेके बाद पहलिके समान काम्यमन्त्र पढ़ना चाहिए ॥४४-४६॥ इन सब क्रृषिमन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है :

‘सत्यजाताय नमः, अहंज्ञाताय नमः, निर्धन्याय नमः,’ दीतरागाय नमः, महाव्रताय नमः, त्रिगुप्ताय नमः, महायोगाय नमः, विबिधयोगाय नमः, विविधद्वये नमः, अङ्गधराय नमः, पूर्वधराय नमः, गणधराय नमः, परमर्षिभ्यो नमो नमः, अनुपमजाताय नमो नमः, सम्य-  
दृष्टे सम्यग्दृष्टे भूपते भूपते नगरपते नगरपते कालश्रमण कालश्रमण स्वाहा, सेवाफलं षट् परम-  
स्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

तत्त्वोंके जाननेवाले मुनियोंके द्वारा ये ऊपर लिखे हुए मन्त्र मुनिमन्त्र अथवा ऋषिमन्त्र माने गये हैं । अब इनके आगे भगवान् ऋषभदेवको श्रुतिने जिस प्रकार कहा है उसी प्रकार मैं सुरेन्द्र मन्त्रोंको कहता हूँ ॥४७॥

प्रथम ही मैं 'सत्यजाताय स्वाहा' ( सत्यजन्म लेनेवालेको हवि समर्पण करता है )  
यह पद पढ़ना चाहिए, फिर 'अर्हजाताय स्वाहा' ( अरहन्तके योग्य जन्म लेनेवालेको हवि  
 १ बदन्ति स्म । २ श्रुष्टभ्रोक्ता ।

ततद्व दिव्यजाताय स्वाहेष्येष्मुदाहरेत् । ततो दिव्याच्यंजाताय स्वाहेत्येतत्पदं पठेत् ॥४५॥  
 द्रूयाच्च नेमिनाथाय स्वाहेत्येतदनन्तरम् । सौधर्माय पदं चास्माद्स्वाहोक्त्यस्तमनुस्मरेत् ॥४६॥  
 कल्पाधिपतये स्वाहापदं चाच्यमतः परम् । भूयोऽप्यनुचरायादि॑ स्वाहाशब्दसुदीर्घेत् ॥४७॥  
 ततः परम्परेन्द्राय स्वाहेत्युच्चारयेत्यदम् । संपठेदहमिन्द्राय स्वाहेत्येतदनन्तरम् ॥४८॥  
 ततः परमाहंताय स्वाहेत्येत । पदं पठेत् । ततोऽप्यनुपमायेति पदं स्वाहापदानिवितम् ॥४९॥  
 सम्यग्दृष्टिपदं चास्माद् बोच्चान्तं द्विरुदीर्घेत् । तथा कषापर्ति चापि दिव्यमूर्ति च संपठेत् ॥५०॥

द्विर्वाच्यं वज्रनामेति ततः स्वाहेति संहरेत्<sup>१</sup> । पूर्ववत् काम्यमन्त्रोऽपि पात्र्योऽस्यान्ते विभिः पदैः ॥५१॥

**चूणि:-** सत्यजाताय स्वाहा, अहंजाताय स्वाहा, दिव्यजाताय स्वाहा, दिव्याच्यंजाताय स्वाहा, नेमिनाथाय स्वाहा, सौधर्माय स्वाहा, कल्पाधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परम्परेन्द्राय स्वाहा, अहमिन्द्राय स्वाहा, परमाहंताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा, सेवाकलं षट्परमस्थानं भवतु, अपहृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

समर्पण करता हूँ ) यह उत्कृष्ट पद पढ़ना चाहिए ॥४६॥ फिर 'दिव्यजाताय स्वाहा' ( जिसका जन्म दिव्यरूप है उसे हवि समर्पण करता हूँ ) ऐसा उच्चारण करना चाहिए और फिर 'दिव्याच्यंजाताय स्वाहा' ( दिव्य तेजःस्वरूप जन्म धारण करनेवाले के लिए हवि समर्पण करता हूँ ) यह पद पढ़ना चाहिए ॥४७॥ तदनन्तर 'नेमिनाथाय स्वाहा' ( धर्मचक्रकी धुरीके स्वामी जिनेन्द्रदेवको समर्पण करता हूँ ) यह पद बोलना चाहिए और इसके बाद 'सौधर्माय स्वाहा' ( सौधर्मेन्द्र-के लिए समर्पण करता हूँ ) इस मन्त्रका स्मरण करना चाहिए ॥४८॥ फिर 'कल्पाधिपतये स्वाहा' ( स्वर्गके अधिपतिके लिए समर्पण करता हूँ ) यह मन्त्र कहना चाहिए और उसके बाद 'अनुचराय स्वाहा' ( इन्द्रके अनुचरोंके लिए समर्पण करता हूँ ) यह शब्द बोलना चाहिए ॥४९॥ फिर 'परम्परेन्द्राय स्वाहा' ( परम्परासे होनेवाले इन्द्रोंके लिए समर्पण करता हूँ ) इस पदका उच्चारण करे और उसके अनन्तर 'अहमिन्द्राय स्वाहा' ( अहमिन्द्रके लिए समर्पण करता हूँ ) यह मन्त्र अच्छी तरह पढ़े ॥५०॥ फिर 'पराहंताय स्वाहा' ( अरहन्तदेवके परमउत्कृष्ट उपासकको समर्पण करता हूँ ) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए और उसके पश्चात् 'अनुपमाय स्वाहा' ( उपमारहितके लिए समर्पण करता हूँ ) यह पद बोलना चाहिए ॥५१॥ तदनन्तर सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पदका दो बार उच्चारण करना चाहिए तथा सम्बोधनान्त कल्पपति और दिव्यमूर्ति शब्दको भी दो-दो बार पढ़ना चाहिए इसी प्रकार सम्बोधनान्त वज्रनामन् शब्द-को भी दो बार बोलकर स्वाहा शब्दका उच्चारण करना चाहिए और अन्तमें तीन-तीन पदोंके द्वारा पहले के समान काम्य मन्त्र पढ़ना चाहिए अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा ( हे सम्यग्दृष्टि, हे स्वर्गके अधिपति, हे दिव्यमूर्तिको धारण करनेवाले, हे वज्रनाम, मैं तेरे लिए हवि समर्पण करता हूँ ) यह बोलकर काम्य मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥५४-५५॥

ऊपर कहे हुए सुरेन्द्र मन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है,

'सत्यजाताय स्वाहा, अहंजाताय स्वाहा, दिव्यजाताय स्वाहा, दिव्याच्यंजाताय स्वाहा, नेमिनाथाय स्वाहा, सौधर्माय स्वाहा, कल्पाधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परम्परेन्द्राय स्वाहा, अहमिन्द्राय स्वाहा, परमाहंताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा, सेवाकलं षट्परमस्थानं भवतु

<sup>१</sup> सम्यग्दृष्टात् । २ षट्परमस्थानेश्यादिभिः ।

सुरेन्द्रसम्बन्धे एवः स्वात् सुरेन्द्रस्यानुतर्पणम् । मन्त्रं परमराजादि बह्यामीतो यथाश्रुतम् ॥५६॥  
 प्रागात्रं सत्यजाताय स्वाहेत्येतत् पदं पठेत् । ततः स्वादहंजाताय स्वाहेत्येतत्परं पठेत् ॥५७॥  
 ततश्चानुपमेन्द्राय स्वाहेत्येतत्पदं मतम् । विजयार्थादिजाताय पदं स्वाहान्तसम्बन्धतः ॥५८॥  
 ततोऽपि नेभिनाथाय स्वाहेत्येतत्पदं पठेत् । ततः परमराजाय स्वाहेत्येतत्कुक्ताहरेत् ॥५९॥  
 परमाहंताय स्वाहा पठेत्स्मात्परं पठेत् । स्वाहान्तसम्बन्धायोक्तिरतो वाच्या द्विजन्मनिः ॥६०॥  
 सम्यग्द्विष्टपदं चास्माद् बोध्यन्तं द्विलक्षीत्येत् । उप्रतेजः पदं चैव दिशाअत्यपदं तथा ॥६१॥  
 नेम्यादिविजयं चैष कुर्वति स्वाहापदोत्तम् । काम्यमन्त्रं च तं अ॒यात् प्राप्यदूते पैदैस्त्रिमिः ॥६२॥

चूर्णिः-सत्यजाताय स्वाहा, अहंजाताय स्वाहा, अनुपमेन्द्राय स्वाहा, विजयाधर्यजाताय स्वाहा, नेमिनाथाय स्वाहा, परमराजाय स्वाहा, परमाहंताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सन्धगहटे सन्धगहटे उप्रतेजः उप्रतेजः दिशांजय दिशांजय नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा, सेवाकलं षट् प्रस्त्रमस्थामं मवतु, अपमृत्युविज्ञाशमं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

मन्त्रः परमराजादिमतोऽयं पत्नेष्ठिनाम् । परं मन्त्रमितो वक्त्वे यथाऽऽहं पत्ना श्रुतिः ॥५३॥

अपमत्यविनाशनं भवत् समाविभरणं सद्ग

यह सुरेन्द्रको सन्तुष्ट करनेवाला सुरेन्द्र मन्त्र कहा । अब आगे शास्त्रोंके अनुसार परम-  
राजादि मन्त्र कहते हैं ॥५६॥ इन मन्त्रोंमें सर्वप्रथम ‘सत्यजाताय स्वाहा’ ( सत्य जन्म धारण  
करनेवालेको हवि समर्पण करता है ) यह पद पढ़ना चाहिए, फिर ‘अहंजाताय स्वाहा’ ( अरहन्त  
पदके योग्य जन्म लेनेवालेको समर्पण करता है ) यह उत्कृष्ट पद पढ़ना चाहिए ॥५७॥ इसके  
बाद ‘अनुपमेन्द्राय स्वाहा’ ( उपमारहित इन्द्र अर्थात् घटकवतीके लिए समर्पण करता है ) यह  
पद कहना चाहिए । तदनन्तर ‘विजयाच्युजाताय स्वाहा’ ( विजयरूप तथा तेजःपूर्ण जन्मको  
धारण करनेवालेके लिए समर्पण करता है ) इस पदका उच्चारण करना चाहिए ॥५८॥ इसके  
पश्चात् ‘तेमिनाधाय स्वाहा’ ( धर्मरूप रथके प्रवर्तकको समर्पण करता है ) यह पद पढ़ना  
चाहिए और उसके बाद ‘परमजाताय स्वाहा’ ( उत्कृष्ट जन्म लेनेवालेको समर्पण करता है ) यह  
पद बोलना चाहिए ॥५९॥ फिर ‘परभार्हताय स्वाहा’ ( उत्कृष्ट उपासकको समर्पण करता है )  
यह पद पढ़ना चाहिए और इसके बाद द्विजोंको ‘अनुपमाय स्वाहा’ ( उपमारहितके लिए समर्पण  
करता है ) यह मन्त्र बोलना चाहिए ॥६०॥ तदनन्तर सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पदका दो बार  
उच्चारण करना चाहिए तथा इसी प्रकार सम्बोधनान्त उग्रतेजः पद, दिशांजय पद और  
नेमिविजय पदको दो बार बोलकर अन्तमें स्वाहा शब्दका उच्चारण करना चाहिए और अन्तमें  
पहलेके समान तीन-तीन पदोंसे काम्य मन्त्र बोलना चाहिए अर्थात् सम्यग्दृष्टि सम्यग्दृष्टि  
उग्रतेजः उग्रतेजः दिशांजय दिशांजय नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा ( हे सम्यग्दृष्टि, हे प्रथम  
प्रतापके धारक, हे दिशाओंको जीतनेवाले, हे नेमिविजय, मैं तुम्हें हवि समर्पण करता हूँ ) यह  
मन्त्र बोलकर काम्यमन्त्र पढ़ना चाहिए ॥६१-६२॥

परमराजादि मन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है :

‘सत्यजाताय स्वाहा, अहंजाताय स्वाहा, अनुपमेन्द्राय स्वाहा, विजयार्च्यजाताय स्वाहा, नेमिनाथाय स्वाहा, परमजाताय स्वाहा, परमार्हताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्हृष्टे सम्यग्हृष्टे, उग्रतेजः उग्रतेजः, दिशांजय दिशांजय, नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा, सेवाकलं वट-परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

ये मन्त्र परमराजादि मन्त्र भाने गये हैं। अब यहसि आगे जिस प्रकार परम शास्त्रमें  
१ परमराजादिमन्त्रे । २ परमजाताय प०, छ०, अ०, प०, स० ।

तत्रादी सत्यजाताय नमः पदमुदीरयेत् । वाच्यं ततोऽर्हज्ञाताय नम इत्युत्तरं पदम् ॥६४॥  
 ततः परमजाताय नमः पदमुदाहरेत् । परमाहंतशब्दं च चतुर्थ्यन्तं नमः पदम् ॥६५॥  
 ततः परमरूपाय नमः परमतेजसे । नम इत्युभ्यं वाच्यं पदमस्थानमदर्शिभिः ॥६६॥  
 परमादिगुणयेति पदं चास्यव्याप्तियुलम् । परमस्थानशब्ददेव चतुर्थ्यन्तो नमोऽनिवातः ॥६७॥  
 उदाहार्य क्रमं ज्ञात्वा ततः परमयोगिने । नमः परमभाग्याय नम इत्युभ्यं पदम् ॥६८॥  
 परमद्विष्टपदं चास्यदत्तुर्थ्यन्तं नमः पदम् । स्यात्परमप्रसादाय नम इत्युत्तरं पदम् ॥६९॥  
 स्यात्परमविज्ञानाय नम इत्यत उत्तरम् । स्यात्परमविज्ञाय नमः इत्युत्तरं वचः ॥७०॥  
 स्यात्परमविज्ञानाय नमो वाक्यदनन्तरम् । स्यात्परमदर्शनाय नमः पदमतः पदम् ॥७१॥  
 ततः परमवीर्याय पदं चास्मात्तमः परम् । परमादिसुखायेति पदमस्मादनन्तरम् ॥७२॥  
 सर्वज्ञाय नमोवाक्यमहंतं नम इत्यपि । नमो नमः पदं चास्मान्त्यात्परं परमेष्ठिने ॥७३॥  
 परमादिपदाशेष्ट्र इत्यस्मादेव नमो नमः । सम्यग्दृष्टिपदं चान्ते बोध्यन्तं द्विः प्रयुज्यताम् ॥७४॥

कहा है उसी प्रकार परमेष्ठियोंके उल्कृष्ट मन्त्र कहता है ॥६३॥ उन परमेष्ठी मन्त्रोंमें सबसे पहले 'सत्यजाताय नमः' (सत्यरूप जन्म लेनेवालेके लिए नमस्कार हो) यह पद बोलना चाहिए और उसके बाद 'अर्हज्ञाताय नमः' (अरहन्तके योग्य जन्म लेनेवालेके लिए नमस्कार हो) यह पद पढ़ना चाहिए ॥६४॥ तदनन्तर 'परमजाताय नमः' (उल्कृष्ट जन्म लेनेवाले के लिए नमस्कार हो) यह पद कहना चाहिए और इसके बाद चतुर्थों विभक्त्यन्तं परमाहंत शब्दके आगे नमः पद लगाकर 'परमाहंताय नमः' (उल्कृष्ट जिनधर्मके धारकके लिए नमस्कार हो) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥६५॥ तत्पदचात् अध्यात्म शास्त्रको जानेवाले द्विजोंको 'परमरूपाय नमः' (उल्कृष्ट निर्गम्यहृष्टको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो) और 'परमतेजसे नमः' (उत्तम तेजको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो) ये दो मन्त्र बोलना चाहिए ॥६६॥ फिर नमः शब्दके साथ परमगुणाय यह पद, अर्थात् 'परमगुणाय नमः' (उल्कृष्ट गुणवालेके लिए नमस्कार हो) यह मन्त्र बोलना चाहिए और उसके अनन्तर नमः शब्दसे सहित चतुर्थी विभक्त्यन्तं परमस्थान शब्द अर्थात् 'परमस्थानाय नमः' (मोक्षरूप उत्तमस्थानवाले के लिए नमस्कार हो) यह पद पढ़ना चाहिए ॥६७॥ इसके पश्चात् क्रमको जानकर 'परमयोगिने नमः' (परम योगीके लिए नमस्कार हो) और 'परमभाग्याय नमः' (उल्कृष्ट भाग्यशालीकी नमस्कार हो) ये दोनों पद बोलना चाहिए ॥६८॥ तदनन्तर जिसके आगे नमः शब्द लगा हुआ है और चतुर्थी विभक्ति जिसके अन्तमें है ऐसा परमद्विंष्टि पद अर्थात् 'परमद्वये नमः' (उत्तम क्रद्वियोंके धारकके लिए नमस्कार हो) और 'परमप्रसादाय नमः' (उल्कृष्ट प्रसन्नताको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो) ये दो मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥६९॥ फिर 'परमकाङ्क्षिताय नमः' [उल्कृष्ट आत्मानन्दकी इच्छा करनेवालेके लिए नमस्कार हो] और 'परमविज्ञाय नमः' [कर्मरूप शत्रुओंपर उल्कृष्ट विजय पानेवालेके लिए नमस्कार हो] ये दो मन्त्र बोलना चाहिए ॥७०॥ तदनन्तर 'परमविज्ञानाय नमः' [उल्कृष्ट ज्ञानवाले के लिए नमस्कार हो] और उसके बाद 'परमदर्शनाय नमः' [परम दर्शनके धारकके लिए नमस्कार हो] यह पद पढ़ना चाहिए ॥७१॥ इसके पश्चात् 'परमवीर्याय नमः' (अनन्त बलशालीके लिए नमस्कार हो) और फिर 'परमसुखाय नमः' [परम सुखके धारकको नमस्कार हो] ये मन्त्र कहना चाहिए ॥७२॥ इसके अनन्तर 'सर्वज्ञाय नमः' [संसारके समस्त पदार्थोंको जाननेवालेके लिए नमस्कार हो] 'अर्हते नमः' [अरहन्तदेवके लिए नमस्कार हो], और फिर 'परमेष्ठिने नमो नमः' (परमेष्ठीके लिए बार-बार नमस्कार हो) ये मन्त्र बोलना चाहिए ॥७३॥ तदनन्तर 'परमनेत्रे नमो नमः' (उल्कृष्ट नेताके लिए नमस्कार हो) यह मन्त्र

द्विः<sup>१</sup> स्तोः<sup>२</sup> त्रिलीकविजयधर्मसूतिंपरे ततः। धर्मनेमिपदं वाच्यं हि: स्वाहेति ततः परम् ॥७५॥  
काम्यमन्त्रमतो न्यूत्यत्यूर्वेत्रद्विधिष्ठद्विजः। काम्यसिद्धिप्रधाना हि सर्वे मन्त्राः समूला शुधैः ॥७६॥

चूर्णिः—सत्यजाताय नमः, अहंजाताय नमः, परमजाताय नमः, परमाहंताय नमः, परमरूपाय नमः, परमतेजसे नमः, परमगुणाय नमः, परमस्थानाय नमः, परमयोगिने नमः, परमभाग्याय नमः, परमदर्शनाय नमः, परमकाङ्क्षिताय नमः, परमविजयाय नमः, परमविज्ञानाय नमः, परमदर्शनाय नमः, परमवीर्याय नमः, परमसुखाय नमः, सर्वज्ञाय नमः, अहंते नमः, परमेष्ठिने नमो नमः, परमनेत्रे नमो नमः, सम्यगदृष्टे सम्यगदृष्टे त्रिलोकविजय धर्मसूत्रे धर्मसूत्रे धर्मनेत्रे धर्मनेत्रे स्वाहा, सेवाकलं पट्टपरमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

एते तु पीठिकामन्त्राः सप्त शेषा द्विजोत्तमैः। एतैः सिद्धाचरं कुर्याद्वाऽनादिक्रियाविधौ ॥७७॥

क्रियामन्त्रास्त एते स्युराधानादिक्रियाविधौ। सूत्रे गणधरोद्धार्ये यान्ति साधनमन्त्रताम् ॥७८॥

संघास्त्रगित्रये देवपूजने नित्यकर्मणि। भवन्त्याहुतिमन्त्राह्य त एते विधिसाहितः ॥७९॥

सिद्धार्थसिंनिधौ मन्त्रान् जपेदषोत्तरं शतम्। गन्धपुत्र्याभतार्ग्राद्विनिवेदनपुरःसरम् ॥८०॥

सिद्धविद्यस्ततो मन्त्रैरेभिः कर्म समाचरेत्। शुक्लवासाः शुचिर्यज्ञोपतीत्यस्यग्रमात्माः ॥८१॥

कहना चाहिए और उसके बाद सम्बोधतान्ति सम्यगदृष्टि पदका दो बार प्रयोग करना चाहिए ॥७४॥ तथा इसी प्रकार त्रिलोकविजय, धर्मसूति और धर्मनेत्रि शब्दको भी दो-दो बार उच्चारण कर अन्तमें स्वाहा पद बोलना चाहिए अर्थात् सम्यगदृष्टे सम्यगदृष्टे, त्रिलोकविजय विलोकविजय, धर्मसूते धर्मसूते, धर्मनेत्रे धर्मनेत्रे स्वाहा ( हे सम्यगदृष्टि, हे तीनों लोकोंको विजय करनेवाले, हे धर्मसूति और हे धर्मके प्रदर्शक, मैं तेरे लिए हवि समर्पण करता हूँ ) यह मन्त्र बोलना चाहिए ॥७५॥ तत्पश्चात् द्विजोंको पहले के समान विधिपूर्वक काम्यमन्त्र पढ़ना चाहिए क्योंकि विद्यान् लोग सब मन्त्रोंसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होता ही मुख्य फल मानते हैं ॥७६॥

**परमेष्ठी मन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है :**

सत्यजाताय नमः, अहंजाताय नमः, परमजाताय नमः, परमाहंताय नमः, परमरूपाय नमः, परमतेजसे नमः, परमगुणाय नमः, परमस्थानाय नमः, परमयोगिने नमः, परमभाग्याय नमः, परमदृष्टये नमः, परमप्रसादाय नमः, परमकाङ्क्षिताय नमः, परमविजयाय नमः, परमविज्ञानाय नमः, परमदर्शनाय नमः, परमवीर्याय नमः, परमसुखाय नमः, सर्वज्ञाय नमः, अहंते नमः, परमेष्ठिने नमो नमः, परमनेत्रे नमो नमः, सम्यगदृष्टे सम्यगदृष्टे, त्रिलोकविजय विलोकविजय, धर्मसूते धर्मसूते, धर्मनेत्रे धर्मनेत्रे स्वाहा, सेवाकलं पट्टपरमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

ब्राह्मणोंको ये ऊपर लिखे हुए सात पीठिका मन्त्र जानना चाहिए और गर्भाधानादि क्रियाओंकी विधि करनेमें इनसे सिद्धपूजन करना चाहिए ॥७७॥ गर्भाधानादि क्रियाओंकी विधि करनेमें ये मन्त्र क्रियामन्त्र कहलाते हैं और गणधरोंके द्वारा कहे हुए सूत्रमें ये ही साधन मन्त्रपनेको प्राप्त हो जाते हैं ॥७८॥ विधिपूर्वक सिद्ध किये हुए ये ही मन्त्र सन्ध्याओंके समय तीनों अग्नियोंमें देवपूजनरूप नित्य कर्म करते समय आहुति मन्त्र कहलाते हैं ॥७९॥ सिद्ध भगवान्को प्रतिमाके सामने पहले गन्ध, पुष्प, अक्षत और अर्ध आदि समर्पण कर एक सी आठ बार उक्त मन्त्रोंका जप करना चाहिए ॥८०॥ तदनन्तर जिसे विद्यार्थि सिद्ध हो गयी है, जो

१ दो बारी । २ भवेताम् । ३ सत्यजातायेत्यादयः । ४ गर्भाधानादि । ५ समर्पण ।

व्रयोऽग्नयः प्रगेयतः<sup>१</sup> सदुः कर्मारभे द्विजोत्तमैः । रत्नशितयसंकल्पादभीम्ब्रमुकुटोद्भवाः ॥८२॥  
 तीर्थं कृदृगणमुक्ते<sup>२</sup> षकेवत्प्रतमहोत्सवे<sup>३</sup> । पूजाकृत्वं<sup>४</sup> समासाद्य पवित्रत्वमुपागताः ॥८३॥  
 कुण्डवदे प्रगेतव्यासत्रय एते महाप्रयाः । गार्हपत्याहवनीयदक्षिणामिप्रसिद्धयः ॥८४॥  
 अहिमश्चमित्रये पूजा मन्त्रैः कुर्वन् द्विजोत्तमः । आहितामिरिति ल्लेयो नित्येऽथा यस्य सम्पन्नि ॥८५॥  
 "हवित्याके च धूरे च दीपोद्वेदनसंविधौ । वह्नीना<sup>५</sup> विनियोगः स्थाद्भीषो नित्यपूजने ॥८६॥  
 प्रयत्नेनामिरक्षयं स्थादिदगमित्रयं गृहे । नैव दातव्यमन्येभ्यहेऽन्ये ये स्युरमंस्कृताः<sup>६</sup> ॥८७॥  
 न स्वतोऽग्नेः पवित्रत्वं देवतारूपमेव वा । किञ्चवहेहित्यमूर्तीज्यासंबन्धात् पावनोऽवलः ॥८८॥  
 ततः पूजाकृतामेस्य मन्त्रात्मेनि द्विजोत्तमाः । निवाणिक्षेप्यपूजावत्तस्पूजाऽतो<sup>७</sup> न दुष्टति ॥८९॥  
 अवहारनवापेक्षा तस्येषा पूजता द्विजैः । जैनैर्घ्यवहार्योऽयं<sup>८</sup> नयोऽवहार्येऽप्रजमनः<sup>९</sup> ॥९०॥  
 साधारणामित्रमे मन्त्राः सर्ववैव क्रियाविधौ । यथा संभवमुक्तेवै<sup>१०</sup> विशेषविषयाक्ष तात् ॥९१॥

सफेद वस्त्र पहने हुए हैं, पवित्र हैं, यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं और जिसका चित्र आकुलता से रहित है ऐसा द्विज इन मन्त्रों के द्वारा समस्त क्रियाएँ करें ॥८१॥ क्रियाओं के प्रारम्भ में उत्तम द्विजों को रत्नत्रयका संकल्प कर अग्निकुमार देवों के इन्द्रके मुकुटसे उत्पन्न हुई तीन प्रकारकी अग्नियाँ प्राप्त करनी चाहिए ॥८२॥ ये तीनों ही अग्नियाँ तीर्थकर, गणधर और सामान्य केवलीके अन्तिम अर्थात् निवाणिमहोत्सवमें पूजाका अंग होकर अत्यन्त पवित्रताको प्राप्त हुई मानी जाती हैं ॥८३॥ गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणामिन नाम से प्रसिद्ध इन तीनों महाअग्नियों को तीन कुण्डों में स्थापित करना चाहिए ॥८४॥ इन तीनों प्रकारकी अग्नियों में मन्त्रों के द्वारा पूजा करनेवाला पुरुष द्विजोत्तम कहलाता है और जिसके घर इस प्रकारकी पूजा नित्य होती रहती है वह आहितामिन अथवा अग्निहोत्री कहलाता है ॥८५॥ नित्य पूजन करते समय इन तीनों प्रकारकी अग्नियों का विनियोग नैवेद्यके पकानेमें, धूप खेनेमें और दीपक जलानेमें होता है अर्थात् गार्हपत्य अग्निसे नैवेद्य पकाया जाता है, आहवनीय अग्निमें धूप खेद्द जाती है और दक्षिणामिनसे दीपक जलाया जाता है ॥८६॥ घरमें बड़े प्रयत्नके साथ इन तीनों अग्नियों की रक्षा करनी चाहिए और जिनका कोई संस्कार नहीं हुआ है ऐसे अन्य लोगों को कभी नहीं देनी चाहिए ॥८७॥ अग्निमें स्वयं पवित्रता नहीं है और न वह देवतारूप ही है – किन्तु अरहन्तदेवकी दिव्य मूर्तिकी पूजाके सम्बन्धसे वह अग्नि पवित्र हो जाती है ॥८८॥ इसलिए ही द्विजोत्तम लोग इसे पूजाका अंग मानकर इसकी पूजा करते हैं अतएव निवाणिक्षेपकी पूजाके समान अग्निकी पूजा करनेमें कोई दोष नहीं है । भावार्थ – जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवके सम्बन्धसे क्षेत्र भी पूज्य हो जाते हैं उसी प्रकार उनके सम्बन्धसे अग्नि भी पूज्य हो जाती है अतएव जिस प्रकार निवाण आदि क्षेत्रों की पूजा करनेमें दोष नहीं है उसी प्रकार अग्निकी पूजा करनेमें भी कोई दोष नहीं है ॥८९॥ ब्राह्मणों की व्यवहार नयकी अपेक्षा ही अग्निकी पूज्यता इष्ट है इसलिए जैन ब्राह्मणों की भी आज यह व्यवहारनय उपयोगमें लाना चाहिए ॥९०॥ ये ऊपर कहे हुए मन्त्र साधारण मन्त्र हैं, सभी क्रियाओंमें काम आते हैं । अब विशेष क्रियाओंसे सम्बन्ध रखनेवाले विशेष मन्त्रों को यथासम्भव कहता हूँ ॥९१॥

१ संस्कार्यः । २ केवली । ३ परिनिवाणिमहोत्सवे । ४ कारणत्वम् । ५ अस्पतने । ६ गार्हपत्यादीनाम् अग्नित्रयाणम् । यथा संख्येन हृषि पाकादिषु त्रिषु विनियोगः स्थात् । ७ गर्भाणानादिसंस्कार रहिताः । ८ अग्नित्रयः पूजा । ९ कारणात् । १० व्यवहर्तुं योग्यः । ११ विशेष । – जन्मभिः ३०, ५०, ७०, ९०, १०० । १२ लृहृ । वक्ष्ये ।

गर्भधानमन्त्रः—

सज्जातिभागी भव सदगृहिभागी भवेति च । पदद्वयसुदीर्घादीं पदानीभाव्यतः पदेत् ॥१२॥  
आदौ मुनीन्द्रभागीति भवेत्यन्ते पदं वदेत् । सुरेन्द्रभागी परमराज्यभागीति च द्वयम् ॥१३॥  
आर्हन्त्यभागी भवेति पदमस्मादवश्तरम् । ततः परमनिवाणिभागी भव पदं भवेत् ॥१४॥  
आधाने<sup>१</sup> मन्त्र एष स्यात् पूर्वमन्त्रपुरास्तरः<sup>२</sup> । विमियोगाश्च मन्त्राणां यथाम्नायं प्रदर्शितः ॥१५॥

चूर्णिः—सज्जातिभागी भव, सदगृहिभागी भव, मुनीन्द्रभागी भव, सुरेन्द्रभागी भव, परमराज्य-  
भागी भव, आर्हन्त्यभागी भव, परमनिवाणिभागी भव, ( आधानमन्त्रः )  
स्यार्थातिमन्त्रस्त्रैलोक्यनाथो भवपदादिकः । त्रैकाल्यज्ञानी भव त्रिरत्नस्वामी भवेत्ययम् ॥१६॥  
चूर्णिः—त्रैलोक्यनाथो भव, त्रैलोक्यज्ञानी भव, त्रिरत्नस्वामी भव, ( प्रीतिमन्त्रः ) ?  
मन्त्रोऽवतारकल्याणभागी भवपदादिकः । सुप्रीतीं मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणवाक्यरः ॥१७॥  
भागी भव पदोपेतस्ततो निष्कान्तिवाक्यस + कल्याणमध्यमो भागी भवेत्येतेन योजितः ॥१८॥  
ततश्चार्हन्त्यकल्याणभागी भव पदान्तितः । ततः परमनिवाणिकल्याणपदसंगतः ॥१९॥

**गर्भधानके मन्त्र** — प्रथम ही ‘सज्जातिभागी भव’ ( उल्लङ्घ ज्ञातिकुटेत्कालज्ञातिवाक्यम् / ११  
हो ) और ‘सदगृहिभागी भव’ ( उत्तम गृहस्थ अवस्थाको प्राप्त होओ ) इन दो पदोंका उच्चारण  
कर पश्चात् नीचे लिखे पद पढ़ना चाहिए ॥१२॥ पहले ‘मुनीन्द्रभागी भव’ ( महामुनिका  
पद प्राप्त करनेवाला हो ) यह पद बोलना चाहिए और फिर ‘सुरेन्द्रभागी भव’ ( इन्द्र पदका  
भोक्ता हो ) तथा ‘परमराज्यभागी भव’ ( उल्काष्ट राज्यका उपभोग करनेवाला हो ) इन दो  
पदोंका उच्चारण करना चाहिए ॥१३॥ तदनन्तर ‘आर्हन्त्यभागी भव’ ( अरहन्त पदका प्राप्त  
करनेवाला हो ) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए और फिर ‘परमनिवाणिभागी भव’ ( परम निवाणि  
पदको प्राप्त करनेवाला हो ), यह पद कहना चाहिए ॥१४॥ गर्भधानकी क्रियामें पहलेके  
मन्त्रोंके साथ-साथ यह मन्त्र काममें लाना चाहिए इस प्रकार यह आम्नायके अनुसार मन्त्रोंका  
विनियोगका क्रम दिखलाया है ॥१५॥

गर्भधानके समय काम आनेवाले विशेष मन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है :

सज्जातिभागी भव, सदगृहिभागी भव, मुनीन्द्रभागी भव, सुरेन्द्रभागी भव, परमराज्य-  
भागी भव, आर्हन्त्यभागी भव, परमनिवाणिभागी भव ।

अब प्रीतिमन्त्र कहते हैं — ‘त्रैलोक्यनाथो भव’ ( तीनों लोकोंके अधिष्ठित होओ )  
‘त्रैकाल्यज्ञानी भव’ ( तीनों कालका ज्ञाननेवाला हो ) और ‘त्रिरत्नस्वामी भव’ ( रत्नत्रय-  
का स्वामी हो ) ये तीन प्रीतिक्रियाके मन्त्र हैं ॥१६॥

संग्रह — ‘त्रैलोक्यनाथो भव, त्रैकाल्यज्ञानी भव, त्रिरत्नस्वामी भव’ ।

अब सुप्रीति क्रियाके मन्त्र कहते हैं—सुप्रीति क्रियामें ‘अवतारकल्याणभागी भव’ ( गर्भ-  
कल्याणको प्राप्त करनेवाला हो ), ‘मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव,’ ( सुमेह पर्वतपर इन्द्रके  
द्वारा जन्माभिषेकके कल्याणको प्राप्त हो ), ‘निष्कान्तिकल्याणभागी भव’ ( निष्क्रमण कल्याणको  
प्राप्त करनेवाला हो ), ‘आर्हन्त्यकल्याणभागी भव’ ( अरहन्त अवस्था — केवलज्ञानकल्याणको  
प्राप्त करनेवाला हो ), और ‘परमनिवाणिकल्याणभागी भव’ [ उल्काष्ट निवाणि कल्याणको

१ गर्भधान । २ पीठिकामन्त्रादिपुरास्तरः । ३ अवतारादिकल्याणादिपरमनिवाणपदालानां सर्वपदानाम् । मन्त्र  
इति पद विशेषपदं भवति ।

भाषी भवपदान्तहच क्रमाद्राष्ट्रो मन्त्रीषिभिः । भृतिमन्त्रमित्तो वक्ष्ये प्रीत्या शृणुत मो द्विजः ॥१००॥

चूर्णिः—अवतारकल्याणभागी भव, मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव, निष्ठानितकल्याणभागी भव, आहंत्यकल्याणभागी भव, परमनिर्बाणकल्याणभागी भव, ( सुप्रीतिमन्त्रः ) ।

धृतिक्रियामन्त्रः—

आशानमन्त्र एवात्रै सज्जातिदातृभागी भव, सदगृहिदातृभागी भव, सुरेन्द्रदातृभागी भव, सुरेन्द्रदातृभागी भव, आहंत्यपदातृभागी भव, परमनिर्बाणदातृभागी भव, ( धृतिक्रियामन्त्रः ) ।

मोदक्रियामन्त्रः—

मन्त्रो मोदक्रियायां च मतोऽयं सुनिष्पत्तमैः । दूरै सज्जातिकल्याणभागी भव पदं वदेत् ॥१०२॥

ततः सदगृहिकल्याणभागी भव पदं पठेत् । ततो वैवाहकल्याणभागी भव पदं मनस् ॥१०३॥

ततो सुनीन्द्रकल्याणभागी भव पदं स्मृतम् । पुनः सुरेन्द्रकल्याणभागी भव पदात्यरम् ॥१०४॥

सदगृहिषेककल्याणभागीति च भवेति च । तस्माच्च यीवराज्यादिकल्पयाणपदसंयुतम् ॥१०५॥

प्राप्त करनेवाला हो ) ये मन्त्र विद्वानोंको अनुकम्भे बोलना चाहिए । अब आगे धृतिमन्त्र कहते हैं सो हे द्विजो, उन्हें तुम प्रीतिपूर्वक सुनो ॥१०७-१००॥

संग्रह—‘अवतारकल्याणभागी भव, मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव, निष्ठानित-कल्याणभागी भव, आहंत्यकल्याणभागी भव, परमनिर्बाणकल्याणभागी भव’ ।

धृतिक्रियाके मन्त्र—गर्भधान क्रियाके मन्त्रोंमें सब जगह दातृ शब्द लगा देनेसे धृति क्रियाके मन्त्र हो जाते हैं, विद्वानोंको अनुकम्भे उन्हींका प्रयोग करना चाहिए, आशान क्रियाके मन्त्रोंसे इन मन्त्रोंमें और कुछ भेद नहीं है । भावार्थ—‘सज्जातिदातृभागी भव’ ( सज्जाति-उत्तम मन्त्रोंसे इन मन्त्रोंमें और कुछ भेद नहीं है ), ‘सदगृहिदातृभागी भव’ ( सदगृहस्यपदका देनेवाला हो ), ‘मुनीन्द्र-जातिको देनेवाला हो ), ‘सदगृहिदातृभागी भव’ ( सदगृहस्यपदका देनेवाला हो ), ‘मुरेन्द्रदातृभागी भव’ ( महामुनिपदका देनेवाला हो ), ‘मुरेन्द्रदातृभागी भव’ ( मुरेन्द्रपदको देनेवाला हो ), ‘परमराज्यदातृभागी भव’ ( उत्तमराज्य-चक्रवर्तीके पदका देनेवाला हो ), आहंत्यदातृ-भागी भव’ ( अरहन्त पदका देनेवाला हो ) तथा ‘परमनिर्बाणदातृभागी भव’ ( उत्कृष्ट निर्बाण पदका देनेवाला हो ) धृति क्रियामें इन मन्त्रोंका पाठ करना चाहिए ॥१०१॥

संग्रह—‘सज्जातिदातृभागी भव, सदगृहिदातृभागी भव, सुनीन्द्रदातृभागी भव’ ।

दातृभागी भव, परमराज्यदातृभागी भव, आहंत्यदातृभागी भव, परमनिर्बाणदातृभागी भव’ ।

अब मोदक्रियाके मन्त्र कहते हैं— उत्तम मुनियोंने मोदक्रियाके मन्त्र इस प्रकार माने हैं सबसे पहले ‘सज्जातिकल्याणभागी भव’ ( सज्जातिके कल्याणको धारण करनेवाला हो ) यह पद बोलना चाहिए, फिर सदगृहिकल्याणभागी भव उत्तम गृहस्थके कल्याणका धारण करनेवाला हो ) यह पद पढ़ना चाहिए, तदनंतर ‘वैवाहकल्याणभागी भव’ ( विवाहके कल्याण-करनेवाला हो ) इस पदका उच्चारण करना चाहिए, फिर ‘मुनीन्द्रकल्याणभागी भव’ को प्राप्त करनेवाला हो ) इस पदका उच्चारण करना चाहिए, यह मन्त्र बोलना चाहिए, इसके बाद ( महामुनि पदके कल्याणको प्राप्त करनेवाला हो ) यह मन्त्र बोलना चाहिए, इसके बाद ‘सुरेन्द्रकल्याणभागी भव’ ॥१०२॥ [ इन्द्र पदके कल्याणका उपभोग करनेवाला हो ], यह पद ‘सुरेन्द्रकल्याणभागी भव’ [ सुमेह पर्वतपर अभिषेकके कल्याणको प्राप्त कहना चाहिए, फिर ‘मन्दराभिषेककल्याणभागी भव’ [ युवराज पदके कल्याण-हो ] यह मन्त्र पढ़ना चाहिए, अनन्तर ‘यीवराज्यकल्याणभागी भव’ [ युवराज पदके कल्याण-हो ] यह मन्त्र पढ़ना चाहिए, अनन्तर ‘यीवराज्यकल्याणभागी भव’ [ युवराज पदके कल्याण-का उपभोग करनेवाला हो ] यह पद कहना चाहिए, तत्पश्चात् मन्त्रोंके प्रयोग करनेमें निहान लोगोंको ‘महाराज्यकल्याणभागी भव’ [ महाराज पदके कल्याणका उपभोक्ता हो ] यह

मार्गीभवपदं वाच्यं मन्त्रयोगविशारदैः । स्वान्महाराज्यकल्याणभागी भव पदं परम् ॥१०६॥

भूयः परमशज्जपादिकल्याणोपहितं<sup>१</sup> मतम् । मार्गी भवेत्यथाहन्त्यकल्याणेत च योजितम् ॥१०७॥

चूर्णिः—सज्जातिकल्याणभागी भव, सद्गृहिकल्याणभागी भव, वैवाहकल्याणभागी भव, मुनीन्द्र-कल्याणभागी भव, सुरेन्द्रकल्याणभागी भव, मन्दराभिषेककल्याणभागी भव, यौवराज्यकल्याणभागी भव, महाराज्यकल्याणभागी भव, परमराज्यकल्याणभागी भव, आहन्त्यकल्याणभागी भव, (मोदकिया मन्त्रः) ।  
प्रियोऽवमन्त्रः—

प्रियोऽववे च मन्त्रोऽयं सिद्धार्चनपुरःसरम् । दिव्यनेमिविजयाय पदात्परमनेमिवाक् ॥१०८॥

विजयायेत्यथाहन्त्यनेमिविजयाय च । युक्तो मन्त्राङ्गरेत्तिः स्वाहामृतः संमतो ह्वजैः ॥१०९॥

चूर्णिः—दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा, परमनेमिविजयाय स्वाहा, आहन्त्यनेमिविजयाय स्वाहा ।

(प्रियोऽवमन्त्रः) ।

जन्मसंस्कारमन्त्रोऽयमेतेनार्थकमादितः । सिद्धाभिषेकगन्धाभुसंसिक्तं शिरसि स्थितम् ॥११०॥

कुलजातिच्छयोरूपगुणैः शीलप्रजात्यवैः । सात्यविभूतास्मैत्यमूर्तिं<sup>२</sup> त्रूपादित्तिरा ॥१११॥

सम्बद्धिस्त्राम्बयमत्स्वमपि पुत्रकः । संप्रीतिमाप्नुहि त्रीणि<sup>३</sup> प्राप्त्य चक्राण्यनुक्रमात् ॥११२॥

हृत्यक्षमानि स्वप्नोदस्य प्राप्तः सारुप्ययोगतः<sup>४</sup> । तत्राधा यात्मसंकल्पं<sup>५</sup> ततः सूक्तमिदं पठेत् ॥११३॥

मन्त्र बोलना चाहिए, किर 'परमराज्यकल्याणभागी भव' (परमराज्यके कल्याणको प्राप्त हो) यह पद फड़ना चाहिए और उसके बाद 'आहन्त्यकल्याणभागी भव' (अरहन्त पदके कल्याणका उपभोग करनेवाला हो) यह मन्त्र बोलना चाहिए ॥१०३—१०७॥

संग्रह—‘सज्जातिकल्याणभागी भव, सद्गृहिकल्याणभागी भव, वैवाहकल्याणभागी भव, मुनीन्द्रकल्याणभागी भव, सुरेन्द्रकल्याणभागी भव, मन्दराभिषेककल्याणभागी भव, यौवराज्य-कल्याणभागी भव, महाराज्यकल्याणभागी भव, परमराज्यकल्याणभागी भव, आहन्त्यकल्याण-भागी भव’।

अब प्रियोऽव मन्त्र कहते हैं — प्रियोऽव क्रियामें सिद्ध भगवान्की पूजा करनेके बाद नीचे लिखे मन्त्रोंका पाठ करना चाहिए —

‘दिव्यनेमिविजयाय’, ‘परमनेमिविजयाय’, और ‘आहन्त्यनेमिविजयाय’ इन मन्त्राखरोंके साथ द्विजोंको अन्तमें स्वाहा शब्दका प्रयोग करना अभीष्ट है अर्थात् ‘दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा’ (दिव्यनेमिके द्वारा कर्मरूप शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवालेके लिए हवि समर्पण करता है), ‘परमनेमिविजयाय स्वाहा’ (परमनेमिके द्वारा विजय प्राप्त करनेवालेके लिए समर्पण करता है) और ‘आहन्त्यनेमिविजयाय स्वाहा’ (अरहन्त अवस्थारूप नेमिके द्वारा कर्म शत्रुओंको जीतनेवाले जिनेन्द्रदेवके लिए समर्पण करता है) ये तीन मन्त्र बोलना चाहिए ॥१०८—१०९॥

संग्रह—‘दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा, परमनेमिविजयाय स्वाहा, आहन्त्यनेमिविजयाय स्वाहा’।

अब जन्म संस्कारके मन्त्र कहते हैं — प्रथम ही सिद्ध भगवान्के अभिषेकके गन्धोदकसे सिचन किये हुए बालकको यह मन्त्र पढ़कर शिरपर स्पर्श करना चाहिए और कहना चाहिए कि यह तेरी माता कुल, जाति, अवस्था, रूप आदि गुणोंसे सहित है, शीलवती है, सन्तानवती है, भाग्यवती है, अवैधव्यसे युक्त है, सौम्यशान्तमूर्तिसे सहित है और सम्यग्दृष्टि है इसलिए हे पुत्र, इस माताके सम्बन्धसे तू भी अनुक्रमसे दिव्य चक्र, विजयचक्र और परमचक्र तीनों चक्रोंको पाकर सत्प्रीतिको प्राप्त हो ॥११०—११२॥ इस प्रकार आशीर्वाद देकर पिता रे सहितम् । २ कुलजात्यादियथायोग्यगुणैरधिष्ठितः । ३ दिव्यचक्रविजयचक्रपरमचक्राणि । ४ समानस्थपत्व-संबन्धात् । ५ बालके । ६ विषाय । ७ निजसंकल्पम् ।

अङ्गदक्षिणं सवसि हृदयादपि जायसे । आमा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम् ॥ ११४ ॥  
 क्षीराज्ञममृतं पूर्तं नामावाकज्ञं मुक्तिभिः ५ । वार्तिजयो मवेल्यस्य हासयेजामिनालकम् ॥ ११५ ॥  
 श्रीदेव्यो जाते ते जातक्रियां कुर्वन्निवति मुखत् । तत्तनुं चूर्णवासेन शनैरुद्धर्य यत्नतः ॥ ११६ ॥  
 त्वं मन्दरामिषेकाहो भवेति हत्ययेत्ततः । गन्धास्तुमित्तिरं जीव्या० हृत्याकाश्वाक्षतं क्षिपेत् ॥ ११७ ॥  
 नद्याकर्ममलं कृत्स्नमित्यास्येऽस्य॑ सनासिके । धृतमौषधसंसिद्धमाव॒ पेन्मात्र्या॑३ द्विजः ॥ ११८ ॥  
 ततो विशेषरासत्यमागो॑४ भूया हत्तीस्यन्॑५ । मातुस्तनसुपामन्त्र्य वदनेऽस्य समाप्तेन्॑६ ॥ ११९ ॥  
 प्राग्भूषितमथानन्दं प्रीतिदानपुरःसरम् । विद्याय विधिवत्स्य जातकर्म समाप्तेन्॑७ ॥ १२० ॥  
 जरायुपटलं चास्य नामिनालसमायुतश्च । हुचौ भूमौ निखाताच्च विक्षिपेत्मन्त्रमाप्तन् ॥ १२१ ॥  
 सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे सर्वमातः सर्वमातः वसुन्धरे वसुन्धरे स्वाहा ॥ १२२ ॥  
 चूर्णः—सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे सर्वमातः सर्वमातः वसुन्धरे वसुन्धरे स्वाहा ।

मन्त्रेणानेन संमन्त्र्य भूमौ सौदक्षस्तत्तम् । क्षिप्वा गर्भमल॑८ न्यस्तपञ्चरन्ततले क्षिपेत् ॥ १२३ ॥

उसके समस्त अंगोंका स्पर्श करे और फिर प्रायः अपने समान होनेसे उसमें अपना संकल्प कर, अर्थात् यह मैं ही हूँ ऐसा आरोप कर नीचे लिखे हुए सुभाषित पढ़े ॥ ११३ ॥ हे पुत्र, तू मेरे अंग अंगसे उत्पन्न हुआ है और मेरे हृदयसे भी उत्पन्न हुआ है इसलिए तू पुत्र नामको धारण करनेवाला मेरा आत्मा हो है । तू सेकड़ों वर्षों तक जीवित रह ॥ ११४ ॥ तदनन्तर दूध और धीरूपी पवित्र अमृत उसकी नाभिपर डालकर 'वार्तिजयो भव' ( तू वार्तिया कर्मोंको जीतनेवाला हो ) यह मन्त्र पढ़कर युक्तिसे उसकी नाभिका नाल काटना चाहिए ॥ ११५ ॥ तत्पश्चात् 'हे जात, श्रीदेव्यः ते जातक्रियां कुर्वन्तु' अर्थात् हे पुत्र, श्री, ही आदि देवियां तेरी जन्मक्रियाका उत्सव करें यह कहते हुए धोरे-धीरे यत्तपूर्वक सुगन्धित चूर्णसे उस बालकके शरीरपर उबटन करे । फिर 'त्वं मन्दरामिषेकाहो भव' अर्थात् तू मेर पर्वतपर अभिषेक करने योग्य हो यह मन्त्र पढ़कर सुगन्धित जलसे उसे स्नान करावे और फिर 'चिरं जीव्या०' अर्थात् तू चिरकाल तक जीवित रहु इस प्रकार आशीर्वद देकर उसपर अक्षत ढाले ॥ ११६-११७ ॥ इसके अनन्तर द्विज, 'नद्यान् कर्भमलं कृत्स्नम्'-अर्थात् तेरे समस्त कर्भमल नष्ट हो जावे यह मन्त्र पढ़कर उसके मुख और नाकमें, ओषधि मिलाकर तैयार किया हुआ घी मात्राके अनुसार छोड़े ॥ ११८ ॥ तत्पश्चात् 'विशेषवरोत्तन्यभागी भूयाः' अर्थात् तू तीर्थकरकी माताके स्तनका पान करनेवाला हो ऐसा कहता हुआ माताके स्तनको मन्त्रित कर उसे बालकके मुहमें लगा दे ॥ ११९ ॥ तदनन्तर जिस प्रकार पहले वर्णन कर चुके हैं उसी प्रकार प्रीतिपूर्वक दान देते हुए उत्सव कर विविपूर्वक जातकर्म अथवा जन्मकालकी क्रिया समाप्त करनी चाहिए ॥ १२० ॥ उसके जरायुपटलके नाभिकी नालके साथ-साथ किसी पवित्र जमीनको खोदकर मन्त्र पढ़ते हुए गाढ़ देनाचाहिए ॥ १२१ ॥ उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है कि सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पद, सर्वमातापद और वसुन्धरा पदको दो-दो बार कहकर अन्तमें स्वाहा शब्द कहना चाहिए । अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे सर्वमातः सर्वमातः वसुन्धरे वसुन्धरे स्वाहा ( सम्यग्दृष्टि, सर्वकी मातापृथक्षीमें यह समर्पण करता हूँ ) इस मन्त्रसे मन्त्रित कर उस भूमिमें जल और अक्षत डालकर पाँच प्रकारके रत्नोंके नीचे गर्भका वह मल रख देना चाहिए और फिर कभी 'त्वत्पुत्रा इव

१ बहुसंवत्सरगतिन्यवे । २ श्रीराजवह्न्यममृतम् । ३ सिक्त्वा । ४ मुक्तितः ल० । ५ भक्तितः द० ।  
 ६ बालस्य । ७ लज्जने कुर्वन्त् । ८ छिन्नादित्यवे । ९ एव । १० जातकर्म । ११ परिमलचूर्णेन । १२ जीव ।  
 १३ वक्त्रे । १४ वार्तियोर्दृ । १५ विक्षित् । १६ परिमाणेन । १७ जिनजननोस्तन्यनामभागी  
 भव । १८ व्रवन् । १९ संयोगवयेत् । २० संप्राप्यवेत् । २१ जरायुपटलम् ।

त्वं पुत्रोऽहं पुत्र सप्तुत्रा भूयासु विरजीविनः । हनुमदाहन्यं सस्याहं तन्मेषव्यं महीनहे ॥ १२४ ॥  
क्षीरवृक्षोपशास्त्राभिन्नपूर्व्यं च भूतलम् । स्नायुषा तत्रास्य मानाद्दी सुखोदीर्मन्त्रितर्जलः ॥ १२५ ॥  
सम्यग्दृष्टिपूर्व्यं श्रीभविष्यत् द्विरुदीरयेत् । पदमासनभव्येति न इदं विश्वेशवरं भव्यं ॥ १२६ ॥  
तत्र ऊर्जितपुण्येति जिनमातृपूर्वं लथा । स्वाहान्तो मन्त्रं पृथं स्नायुमातः सम्नातयविद्या ॥ १२७ ॥

**चूर्णिः—**सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसनभव्ये आसनभव्ये विश्वेशवरं ऊर्जितपुण्ये ऊर्जितपुण्ये जिनमातः जिनमातः स्वाहा ।

यथा जिनाभिका पुत्रकल्याणाभ्यभिपूर्वति । तथेयमपि मध्यतीत्यास्थयेयं विधि भजन ॥ १२८ ॥  
तृतीयेऽहनि अनन्तज्ञानदर्शी भवेत्यसुम् । आलोकयेत्यसुक्षिप्त्य विद्या ताराद्विनं नभः ॥ १२९ ॥  
पुण्याहृष्येषणापूर्वं कुर्याद् दानं च शक्तिः । यथायोग्यं विद्ययात्यं सर्वस्थाभव्यवौषणाम् ॥ १३० ॥  
जातकमंविधिः सोऽयमाम्नातः पूर्वसूरिभिः । यथायोगमनुष्ठेयः सोऽयम्बेदपि द्विजोत्तमः ॥ १३१ ॥  
नाभकमंविधाने च मन्त्रोऽयमनुकूल्यते । यिद्यात्मनविद्या सत मन्त्राः प्राग्ननुवर्णिताः ॥ १३२ ॥  
लतो दिव्याष्टसहस्रनामभागी भवादिकम् । पद्मवित्यसुखार्थं मन्त्रोऽत्र परिवर्त्यताम् ॥ १३३ ॥

**चूर्णिः—**‘दिव्याष्टसहस्रनामभागी भव, विजयाष्टसहस्रनामभागी भव, परमाष्टसहस्रनामभागी भव’ ।

मतपुत्राः चिरंजीविनो भूयासुः ( हे पृथ्वी तेरे पुत्र-कुलपर्वतोंके समान मेरे पुत्र भी चिरंजीवी हों ) यह कहकर धान्य उत्पन्न होनेके प्रयोग खेतमें जमीनपर वह मल ढाल देना चाहिए ॥ १२२—१२४ ॥ तदनन्तर क्षीर वृक्षकी डालियोंसे पृथिवीको सुखोभित कर उसपर उस पुत्रकी माताको बिठाकर मन्त्रित किये हुए सुहाते गरम जलसे स्नान कराना चाहिए ॥ १२५ ॥ माताको स्नान करानेका मन्त्र यह है – प्रथम ही सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पदको दो बार कहना चाहिए फिर आसनभव्या, विश्वेशवरी, ऊर्जितपुण्या, और जिनमाता इन पदोंको भी सम्बोधनान्त कर दो-दो बार बोलना चाहिए और अन्तमें स्वाहा शब्द पढ़ना चाहिए । भावार्थ – सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसनभव्ये आसनभव्ये विश्वेशवरि विश्वेशवरि ऊर्जितपुण्ये ऊर्जितपुण्ये जिनमातः जिनमातः स्वाहा ( हे सम्यग्दृष्टि, हे निकटभव्य, हे सबकी स्वामिनी, हे अत्यन्त पुण्य संचय करनेवाली, जिनमाता तू कल्याण करनेवाली हो ) यह मन्त्र पुत्रकी माताको स्नान कराते समय बोलना चाहिए ॥ १२६—१२७ ॥ जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवकी माता पुत्रके कल्याणोंको देखती है उसी प्रकार यह मेरी पत्नी भी देखे ऐसी श्रद्धासे यह स्नानकी विधि करनी चाहिए ॥ १२८ ॥ तीसरे दिन रातके समय ‘अनन्तज्ञानदर्शी भव’ ( तू अनन्तज्ञानको देखनेवाला हो ) यह मन्त्र पढ़कर उस पुत्रको गोदीमें उठाकर ताराओंसे सुखोभित आकाश दिखाना चाहिए ॥ १२९ ॥ उसी दिन पुण्याहृत्वाचके साथ-साथ शक्तिके अनुसार दानं करना चाहिए और जितना बन सके उत्तना सब जीवोंके अभ्यकी घोषणा करनी चाहिए ॥ १३० ॥ इस प्रकार पूर्वाचार्योंने यह जन्मोत्सवकी विधि मानी है – कही है । उत्तम द्विजको आज भी’ इसका यथायोग्य रीतिसे अनुष्ठान करना चाहिए ॥ १३१ ॥

अब आगे नाभकमं करते समय जिन मन्त्रोंका प्रयोग होता है उन्हें कहते हैं—इस विधिमें सिद्ध भगवान्को पूजा करनेके लिए जिन सात पीठिका मन्त्रोंका प्रयोग होता है उन्हें पहले ही कह नुकेहैं । उनके आगे ‘दिव्याष्टसहस्रनामभागी भव’ आदि तीनों पदोंका उच्चारण कर मन्त्र परिवर्तित कर लेना चाहिए अथवा ‘दिव्याष्टसहस्रनामभागी भव’ ( एक हजार आठ दिव्य नामोंका पानेवाला हो ), ‘विजयाष्टसहस्रनामभागी भव’ ( विजयरूप एक हजार आठ कुलपर्वता इव । २ अलंकृत्योत्तर्थ । ३ विश्वेशवरोत्परि ल० । ४ एवं बुद्ध्या । ५ पुत्रम् ।

शेषो विधिस्तु निःशेषः प्रागुको नाच्यते पुनः । ब्रह्मिर्यान्निष्क्रान्तिभागी भव ततोऽयमनुगम्यताम् ॥१३७॥  
ब्रह्मिर्यान्निष्क्रा-

तत्रोपनयनिष्क्रान्तिभागी भव पदात्परम् । भवेत् विवाहनिष्क्रान्तिभागी भव पदं ततः ॥१३८॥

क्रमान्त्मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव पदं वरंत् । तसः सुरेन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव पदं स्मृतम् ॥१३९॥

मन्दराभिषेकनिष्क्रान्तिभागीभव पदं ततः । यौवराज्यमहाराज्यपदे भागी भवान्तिते ॥१३०॥

निष्क्रान्तिएतमध्ये स्तोऽपराज्यपदं तथा । अर्थः महाराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव शिखापदम् ॥१३१॥

पदरभिसर्वं मन्त्रस्तद्विदिश्चुज्यताम् । प्रागुको विधिस्त्यस्तु निष्यामन्त्र उत्तरः ॥१३२॥

**चूणि**—उपनयनिष्क्रान्तिभागी भव, विवाहनिष्क्रान्तिभागी भव, मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव, सुरेन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव, मन्दराभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव, यौवराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, महाराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, परमराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, आहन्त्यनिष्क्रान्तिभागी भव, ( ब्रह्मिर्यान्निष्क्रा-

निष्या—

दिव्यसिंहासनपदाद् भागी भव पदं भवेत् । एवं विजयपरमसिंहासनपदद्वयात् ॥१४०॥

नामोंका धारक हो और 'परमाप्सहस्रनामभागी भव' ( अत्यन्त उत्तम एक हजार आठ नामोंका जानेवाला हो ) ये मन्त्र पढ़ना चाहिए ।

**संग्रह**—दिव्याप्सहस्रनामभागी भव, विजयाप्सहस्रनामभागी भव, परमाप्सहस्रनामभागी भव' ॥१३२—१३३॥ बाकीकी समस्त विधि पहले कही जा चुकी है इसलिए दुबारा नहीं कहते हैं । अब आगे ब्रह्मिर्यान्निष्क्रान्तिभागी भव के मन्त्र नीचे लिखे अनुसार जानना चाहिए ॥१३४॥

सबसे पहले 'उपनयनिष्क्रान्तिभागी भव', ( तू यज्ञोपवीतके लिए निकलनेवाला हो ) यह पद बोलना चाहिए और फिर 'विवाहनिष्क्रान्तिभागी भव' ( विवाहके लिए बाहर निकलनेवाला हो ) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥१३५॥ तदनन्तर अनुक्रमसे 'मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव' ( मुनिपदके लिए निकलनेवाला हो ) यह मन्त्र कहना चाहिए और उसके बाद 'सुरेन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव' ( सुरेन्द्र पदकी प्राप्तिके लिए निकलनेवाला हो ) यह पद बोलना चाहिए ॥१३६॥ तत्पश्चात् 'मन्दरेन्द्राभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव' ( सुमेरुपर्वतपर अभिषेकके लिए निकलनेवाला हो ) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिए और फिर 'यौवराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव' ( युवराज पदके लिए निकलनेवाला हो ) यह मन्त्र कहना चाहिए ॥१३७॥ तदनन्तर 'महाराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव' ( महाराज पदकी प्राप्तिके लिए निकलनेवाला हो ) यह पद बोलना चाहिए और उसके बाद 'परमराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव' ( चक्रवर्तीका उत्कृष्ट राज्य पानेके लिए निकलनेवाला हो ) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए और इसके अनन्तर 'आहन्त्यराज्यभागी भव' ( अरहन्त पदकी प्राप्तिके लिए निकलनेवाला हो ) यह मन्त्र कहना चाहिए ॥१३८॥ इस प्रकार मन्त्रोंको जानेवाले द्विजोंको इन उपर्युक्त पदोंके द्वारा मन्त्रोंका जाप करना चाहिए । बाकी समस्त विधि यहले कह चुके हैं अब आगे निष्या मन्त्र कहते हैं ॥१३९॥

**संग्रह**—'उपनयनिष्क्रान्तिभागी भव, विवाहनिष्क्रान्तिभागी भव, मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव, सुरेन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव, मन्दराभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव, यौवराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, महाराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, परमराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, आहन्त्यनिष्क्रान्तिभागी भव ।

**निष्यामन्त्र** :—'दिव्यसिंहासनभागी भव' ( दिव्य सिंहासनका भोक्ता हो — इन्द्रके

**चूर्णः-** दिव्यसिंहासनभागी भव, विजयसिंहासनभागी भव, परमसिंहासनभागी भव ( इति निष्ठामन्त्रः ) ।

**अन्नप्राशनक्रिया—**

‘प्राशनेऽपि तथा मन्त्रं पर्वस्त्रिविरुद्धाहरेत् । तानि स्युदिव्यक्रियाक्षीणामृतपदानि वै ॥ १४१॥  
भागी भव पदेनान्ते युक्तेनानुगतलिं तु । अर्द्धेभिर्द्वयं लक्ष्मीः अशोकहर्षं ग्रीष्मेण शुचैः ॥ १४२॥

**चूर्णः-** दिव्यसूतभागी भव, विजयामृतभागी भव, अक्षीणामृतभागी भव ।

**व्युष्टिः—**

‘युष्टिक्रियाधितं मन्त्रमितो चक्ष्ये यथाश्रुतम् । तदोपनयनं जन्मवर्षवर्धनवाग्युतम् ॥ १४३॥

भागी भव पदं ज्ञेयमादौ शेषपदाहके । वैवाहनिष्ठशब्देन मुनिजन्मपदेन च ॥ १४४॥

सुरेन्द्रजन्मना मन्दराभिषेकपदेन च । यौवराज्यमहाराज्यपदाभ्यामध्यानुक्रमात् ॥ १४५॥

परमाहन्त्यराज्याभ्यां वर्षवर्धनसंयुतम् । भागी भव पदं शोजयं ततो मन्त्रोदयसुज्ञवेत् ॥ १४६॥

**चूर्णः-** उपनयनजन्मवर्षवर्धनभागी भव, वैवाहनिष्ठवर्षवर्धनभागी भव, सुनीन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव, सुरेन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव, मन्दराभिषेकवर्षवर्धनभागी भव, यौवराज्यवर्षवर्धनभागी भव, महाराज्यवर्षवर्धनभागी भव, परमराज्यवर्षवर्धनभागी भव, आहन्त्यराज्यवर्षवर्धनभागी भव, ( व्युष्टिक्रियामन्त्रः ) आसनपर बैठनेवाला हो ) ‘विजयसिंहासनभागी भव’ ( चक्रवर्तीके विजयोल्लसित सिंहासनपर बैठनेवाला हो ) और ‘परमसिंहासनभागी भव’ ( तीर्थकरके उत्कृष्ट सिंहासनपर बैठनेवाला हो ) ये तीन मन्त्र कहना चाहिए ॥ १४०॥

**संग्रह—** ‘दिव्यसिंहासनभागी भव, विजयसिंहासनभागी भव, परमसिंहासनभागी भव’ ।

अब अन्नप्राशन क्रियाके मन्त्र कहते हैं – अन्नप्राशन क्रियाके समय तीन पदोंके द्वारा मन्त्र कहने चाहिए और वे पद दिव्यामृत, विजयामृत और अक्षीणामृत इनके अन्तमें भागी भव ये योग्य पद लगाकर बनाने चाहिए । विद्वानोंको अन्नप्राशन क्रियामें इन पदोंके द्वारा मन्त्रका प्रयोग करना चाहिए । भावार्थ – इस क्रियामें निम्नलिखित मन्त्र पढ़ने चाहिए – ‘दिव्यामृतभागी भव’ ( दिव्य अमृतका भोग करनेवाला हो ), ‘विजयामृतभागी भव’ ( विजयरूप अमृतका उपभोक्ता हो ) और ‘अक्षीणामृतभागी भव’ ( अक्षीण अमृतका भोक्ता हो ) ॥ १४१–१४२॥

**संग्रह –** ‘दिव्यामृतभागी भव, विजयामृतभागी भव, अक्षीणामृतभागी भव’ ।

अब यहसि आगे शास्त्रानुसार व्युष्टि क्रियाके मन्त्र कहते हैं – सबसे पहले ‘उपनयन’ के आगे ‘जन्मवर्षवर्धन’ पद लगाकर ‘भागी भव’ पद लगाना चाहिए और फिर अनुक्रमसे वैवाहनिष्ठ, सुनीन्द्रजन्म, सुरेन्द्रजन्म, मन्दराभिषेक, यौवराज्य, महाराज्य, परमराज्य और आहन्त्यराज्य इन शेष आठ पदोंके साथ ‘वर्षवर्धन’ पद लगाकर ‘भागी भव’ यह पद लगाना चाहिए । ऐसा करनेसे व्युष्टिक्रियाके सब मन्त्र बन जावेंगे । भावार्थ – व्युष्टिक्रियामें निम्नलिखित मन्त्रोंका प्रयोग करना चाहिए – ‘उपनयनजन्मवर्षवर्धनभागी भव’ ( यज्ञोपवीतरूप जन्मके वर्षका बढ़ानेवाला हो ) ‘वैवाहनिष्ठवर्षवर्धनभागी भव’ ( विवाह क्रियाके वर्षका वर्धक हो ), ‘सुनीन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव’ ( मुनि पद धारण करनेवाले वर्षकी वृद्धिसे युक्त हो ), ‘सुरेन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव’ ( इन्द्र जन्मके वर्षका बढ़ानेवाला हो ), ‘मन्दराभिषेकवर्षवर्धनभागी भव’ ( सुमेरु पर्वतपर होनेवाले अभिषेककी वर्ष वृद्धि करनेवाला हो ), यौवराज्यवर्षवर्धनभागी भव’ ( युवराज पदकी वर्ष वृद्धि करनेवाला हो ), ‘महाराज्यवर्षवर्धनभागी भव’ ( महाराज पदकी वर्षवृद्धिका उपभोक्ता हो ) ‘परमराज्यवर्षवर्धनभागी भव’ ( चक्रवर्तीके उत्कृष्ट राज्य इ अन्नप्राशने ।

चौलकर्म –

चौलकमण्डयथो मन्त्रः स्याखोपनयनादिकम् । मुण्डभागी भवान्तं च पदमादावनुस्थृतम् ॥१४५॥  
ततो निर्ग्रन्थमुण्डादिभागी भवपदं परम् । ततो निष्कान्तिमुण्डादिभागी भव पदं परम् ॥१४६॥  
स्वाश्यस्मनिस्तारककेशभागी भवेत्यतः । परमेन्द्रपदादिक्ष केशभागी भवपदिनः ॥१४७॥  
परमाहंस्यराज्यादिकेशभागीति बाघूयम् । भवेत्यमृतपदोपेतं म=श्रोऽस्मिन्स्याच्छिखापदम् ॥१४८॥  
शिखामृतेन मन्त्रेण स्वापयेद्विवद् द्विजः । ततो मन्त्रोऽयमाङ्गालो लिपिसंख्यानसंग्रहे ॥१४९॥

चूर्णिः—उपनयनमुण्डभागी भव, निर्ग्रन्थमुण्डभागी भव, परमनिस्तारककेशभागी भव, परमेन्द्र-  
केशभागी भव, परमराज्यकेशभागी भव, आहंत्यराज्यकेशभागी भव । (‘इति चौलकियामन्त्रः’)  
शब्दपारभागी भव अर्थपारभागी भव । पदं शब्दार्थसंबन्धपारभागी भवेत्यपि ॥१५०॥

चूर्णिः—शब्दपारभागी (भागी) भव, अर्थपारभागी (भागी) भव, शब्दार्थपारभागी (भागी)  
भव, (लिपिसंख्यानमन्त्रः)

उपनीतिकियामन्त्रे स्मरन्तामें द्विजोषमाः । परमनिस्तारकादिलिङ्गभागी भवेत्यतः ॥१५३॥  
की वर्षवृद्धि करनेवाला हो ) और ‘आहंत्यराज्यवर्षवर्धनभागी भव’ ( अरहन्त पदवीरूपी राज्य-  
के वर्षका बढ़ानेवाला हो ) ॥१४३—१४६॥

संग्रह — ‘उपनयनजन्मवर्षवर्धनभागी भव, देवाहनिष्ठवर्षवर्द्धनभागी भव, मुनीन्द्रजन्म-  
वर्षवर्धनभागी भव, सुरेन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव, मन्दरामिषेकवर्षवर्धनभागी भव, योवराज्य-  
वर्षवर्द्धनभागी भव, महाराज्यवर्षवर्धनभागी भव, परमराज्यवर्षवर्धनभागी भव, आहंत्य-  
राज्यवर्षवर्धनभागी भव’ ।

अब चौलकियाके मन्त्र कहते हैं ~ जिसके आदिमें उपनयन शब्द है और अन्तमें ‘मुण्ड-  
भागी भव’ शब्द है ऐसा पहला मन्त्र जानता चाहिए अर्थात् ‘उपनयनमुण्डभागी भव’ ( उपनयन  
क्रियामें मुण्डन करनेवाला हो ) यह चौलकियाका पहला मन्त्र है ॥१४७॥ फिर ‘निर्ग्रन्थ-  
मुण्डभागी भव’ (निर्ग्रन्थ दीक्षा लेते समय मुण्डन करनेवाला हो ) यह दूसरा मन्त्र है और उसके  
बाद ‘निष्कान्तिमुण्डभागी भव’ ( मुनि अवस्थामें केशोंच करनेवाला हो ) यह तीसरा मन्त्र  
है ॥१४८॥ तदनन्तर ‘परमनिस्तारककेशभागी भव’ ( संसारसे पार उत्तरनेवाले आचार्यके  
केशोंको प्राप्त हो ) यह चौथा मन्त्र है और उसके पश्चात् ‘परमेन्द्रकेशभागी भव’ ( इन्द्र पदके  
केशोंको धारण करनेवाला हो ) यह पाँचवाँ मन्त्र बोलना चाहिए ॥१४९॥ इसके बाद  
‘परमराज्यकेशभागी भव’ ( चक्रवर्तीके केशोंको प्राप्त हो ) यह छठा मन्त्र है और ‘आहंत्य-  
राज्यकेशभागी भव’ ( अरहन्त अवस्थाके केशोंको धारण करनेवाला हो ) यह सातवाँ मन्त्र  
बोलना चाहिए । द्विजोंको इन मन्त्रोंसे विधिपूर्वक चोटी रखवाना चाहिए । अब आगे लिपि-  
संख्यानके मन्त्र कहते हैं ॥१५०—१५१॥

संग्रह—‘उपनयनमुण्डभागी भव, निर्ग्रन्थमुण्डभागी भव, निष्कान्तिमुण्डभागी भव,  
परमनिस्तारककेशभागी भव, परमेन्द्रकेशभागी भव, परमराज्यकेशभागी भव, आहंत्यराज्य-  
केशभागी भव’ ।

लिपिसंख्यानके मन्त्र—‘शब्दपारभागी भव’ ( शब्दोंका पारगामी हो ), ‘अर्थपारभागी  
भागी भव’ ( सम्पूर्ण अर्थका जाननेवाला हो ) और ‘शब्दार्थसंबन्धपारभागी भव’ ( शब्द-  
सम्बन्धका पारगामी हो ) ये पद लिपिसंख्यानके समय कहने चाहिए ॥१५२॥

संग्रह—‘शब्दपारभागी भव, अर्थपारभागी भव, शब्दार्थपारभागी भव’ ।

उसम द्विज नीचे लिखे हुए मन्त्रोंको उपनीति क्रियाके मन्त्ररूपसे स्मरण करते हैं —

युक्तं परमविषिक्कनं नार्थाय श्वर्दं नवेन । परमेन्द्रलिङ्गादिभागी भवेषु एस् ॥ १५४॥

एवं परमराज्यादि परमाहन्त्यादे च क्रमान् । युक्तं परमनिर्वाणपदेन च शिखापदम् ॥ १५५॥

**चूणि:**—परमनिम्नारक्तलिङ्गभागी भव, परमविषिक्कभागी भव, परमेन्द्रलिङ्गभागो भव, परमराज्यलिङ्गभागी भव, परमाहन्त्यलिङ्गभागी भव, परमनिर्वाणलिङ्गभागी भव (इत्युपर्वतिक्रियामन्त्रः) सर्वेणानेन शिख्यम् कुर्या संवकारमानितः । निविकारेण वधेण कुर्यादिनं सवाससम् ॥ १५६॥

कोर्पानाश्छुद्धेन चैत्र मन्तव्येन कारयेत् । मौजीवन्त्रमनः कुर्यादिनुब्रह्मिमेलकम् ॥ १५७॥

सूर्यं गणधर्वदर्थं वत्तचिह्नं लियोजेत् । मन्त्रप्रपाभतो यज्ञोपवीती हथादसी द्विजः ॥ १५८॥

जात्येव ब्राह्मणः पूर्वमित्रानी व्रतव्यस्फुतः । द्विजातो द्विजः कृत्येवं रुक्मिस्तिष्ठन्ते<sup>१</sup> गुणः ॥ १५९॥

देयात्यष्टुपदात्यम् गुह्यात्म अथाविभिः । गुणर्थलानुग्रहेन संस्कृयोद ब्रह्मजातकः ॥ १६०॥

ततोऽनिवालविष्यार्द्धश्चिंतांगादस्य निर्दिशेत् । द्विजोपामकाध्ययनं नामापि चरणोचितम् ॥ १६१॥

ततोऽप्यं इत्येष्वस्कारः सिद्धार्चनपुरात्मस् । व्याविधानमाचार्यपूजो कुर्यादितः परम् ॥ १६२॥

नमिनन्दिने प्रविष्टस्य भिक्षार्थं जानिवेक्ष्मतु । योऽथेलाभः स वेषः स्थादुपाध्यायाय सादस्म ॥ १६३॥

भवते पहले 'परमनिम्नारकलिङ्गभागी भव' (इस उल्लेखज्ञात्याक्षर्यके चिह्नोंको धारण करनेवाला हो), फिर 'परमविषिक्कभागी भव' (परमश्रृणियोंके चिह्नको धारण करनेवाला हो) और 'परमेन्द्रलिङ्गभागी भव' (परम इन्द्रपदके चिह्नोंको धारण करनेवाला हो) ये मन्त्र बोलना चाहिए। इसी प्रकार अनुकम्पे परम राज्य, परमाहन्त्य और परम निर्वाण पदको 'लिङ्गभागी भव' पदसे युक्त कर 'परमराज्यलिङ्गभागी भव' (परमराज्यके चिह्नोंको धारण करनेवाला हो), 'परमाहन्त्यलिङ्गभागी भव' (उल्लेख अरहन्तदेवके चिह्नोंको धारण करनेवाला हो) और 'परमनिर्वाणलिङ्गभागी भव' (परमनिर्वाणके चिह्नोंका धारक हो) ये मन्त्र बना लेना चाहिए ॥ १५३-१५५॥

**संग्रह—**'परमनिम्नारकलिङ्गभागी भव, परमविषिक्कभागी भव, परमेन्द्रलिङ्गभागी भव, परमराज्यलिङ्गभागी भव, परमाहन्त्यलिङ्गभागी भव, परमनिर्वाणलिङ्गभागी भव'

इन गन्त्रोंसे प्रथम ही शिष्यका संस्कार कर उसे विकाररहित वस्त्रके द्वारा वस्त्रसहित करना चाहिए अर्थात् साधारण वस्त्र पहनाना चाहिए ॥ १५६॥ इसे वस्त्रके भीतर लैंगोटी देनी चाहिए और उसपर तीन लड़की बनी हुई मूँजकी रस्सी बाँधनी चाहिए ॥ १५७॥ तदनन्तर गणधरदेवके द्वारा कहा हुआ, व्रतोंका चिह्नस्वरूप और मन्त्रोंसे पवित्र किया हुआ सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए । यशोपवीत धारण करनेपर वह बालक द्विज कहलाने लगता है ॥ १५८॥ पहले तो वह केवल जन्मसे ही आह्वान था और अब व्रतोंसे संस्कृत होकर दूसरी बार उत्पन्न हुआ है इसलिए दो बार उत्पन्न होनेरूप गुणोंसे वह द्विज ऐसी रुक्मिको प्राप्त होता है ॥ १५९॥ उस समय उस पुत्रके लिए विधिके अनुसार गुरुकी साक्षीपूर्वक अणुवत देना चाहिए और गुणवत तथा शिक्षाव्रत रूपशीलसे सहित व्रतोंके समूहसे उसका संस्कार करना चाहिए । भावार्थ—उसे पांच अणुवत, तीन गुणवत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार व्रत और शील देकर उसके संस्कार अच्छे बनाना चाहिए ॥ १६०॥ तदनन्तर गुरु उसे उपासकाध्ययन पढ़ाकर और चारित्रके योग्य उसका नाम रखकर अतिवाल विद्या आदिका नियोगरूपसे उपदेश दे ॥ १६१॥ इसके बाद जिसका संस्कार किया जा चुका है ऐसा वह पुत्र सिद्ध भगवान् की पूजा कर फिर विधिके अनुसार अपने आचार्यकी पूजा करे ॥ १६२॥ उस दिन उस पुत्रको

१ वस्त्रस्यास्तः । २ विगुणात्मकम् । ३ ब्रह्मसूत्रम् । ४ प्राप्नोति । ५ समूहैः । ६ वस्त्रभाणान् ।

शेषो विभिस्तु प्राक्प्राप्तः तेमनुर्वं समाचरन् । यावेल्लोऽप्तविद्या॑ भैरू॒ भजेत्॑ सबह्यत्वरिताम् ॥१६४॥  
अधातोऽस्य प्रवक्ष्यामि व्रतचर्यासमनुक्रमात् । स्याद्यग्रीष्मासाध्यायः समाप्तेनानु॒ शैर्हनः॑ ॥१६५॥  
शिरोचिङ्गसूरोलिङ्गं लिङ्गकद्युरुसंश्रितम् । लिङ्गमस्योपतीतस्थ प्रागनिष्ठो॑ चतुर्विधम् ॥१६६॥  
तसु॑ स्याद्यमित्युत्त्वा वा मया कृत्या विभिज्यथा । यथास्वे वत्समानान॑ सद्वद्वीना॑ द्विजस्तनाम् ॥१६७॥  
कुतश्चिन् कारणाद् यस्य कुलं संप्राप्तवृष्टयम् । सोऽपि राजादिसम्भवा॑ शोधयेत् स्वं पदा कुलम् ॥१६८॥  
तदास्योपवयाहेत्वे पुत्रपौष्ट्रादिसम्भवी । त निषिद्धं हि दीक्षाहेत्वे कुले चेत्स्य पृथ्वीतः ॥१६९॥  
अर्दीकाहेत्वे कुले जाता विद्याशिरुपोपजीविनः । एतेषामुपर्णाद्यादिसंस्कारो तानिलंसतः ॥१७०॥  
निषां स्याद्युचितं लिङ्गं स्वयोग्यवत्त्वारिणाम् । एकशात्कधारित्वं सन्त्यासमरणावदि ॥१७१॥  
स्याचिंशमिषभोजित्वं॑ कुलस्त्रीसेवनवत्तम् । अनारम्भवोत्पर्गो॑ लभक्ष्यापंयवर्जनम् ॥१७२॥  
हनि शुद्धतरा॑ शृत्ति घटपूत्रामुपेतिवान् । यो द्विजस्तन्य संरूपो व्रतचर्याविधिः समृतः ॥१७३॥  
द्रष्टाधिकारास्तस्त्रोक्ताः सूक्ष्मोपामिकेन हि । तान्यथाक्रममुद्देशमात्रेणानुप्रचक्षमद्य ॥१७४॥

अपनी जाति या कुटुम्बके लोगोंके वरमें प्रवेश कर भिक्षा माँगना चाहिए और उस भिक्षामें जो कुछ अर्थका लाभ हो उसे आदर सहित उपाध्यायके लिए सौप देना चाहिए ॥१६३॥ वाकीकी सब विधि पहले कही जा चुकी है । उसे पूर्णलूपसे करना चाहिए । इसके सिवाय वह जबतक विद्या पढ़ता रहे तबतक उसे ब्रह्मचर्यवत्त पालन करना चाहिए ॥१६४॥

अथानन्तर जिसमें उपासकाध्ययनका संक्षेपसे संग्रह किया है ऐसी इसकी व्रतचर्याको अनुक्रमसे कहता हूँ ॥१६५॥ जिसका यज्ञोपवीत हो चुका है ऐसे ब्रालकके लिए शिरका चिङ्ग ( मुण्डन ), वक्षःस्थलका चिङ्ग-यज्ञोपवीत, कमरका चिङ्ग - मूँजकी रस्सी और जांघका चिङ्ग - सफेद धोती ये चार प्रकारके चिङ्ग धारण करना चाहिए । इनका निर्णय पहले हो चुका है ॥१६६॥ जो लोग अपनी योग्यताके अनुसार तलबार आदि शस्त्रोंके द्वारा, स्याही अर्थात् लेखनकलाके द्वारा, खेती और व्यापारके द्वारा अपनी आजीविका करते हैं ऐसे सददृष्टि द्विजोंको वह यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए ॥१६७॥ जिसके कुलमें किसी कारणसे दोष लग गया हो ऐसा पुरुष भी जब राजा आदिकी सम्मतिसे अपने कुलको शुद्ध कर लेता है तब यदि उसके पूर्वज दीक्षा धारण करनेके योग्य कुलमें उत्पन्न हुए हों तो उसके पुत्र पौत्र आदि सन्ततिके लिए यज्ञोपवीत धारण करनेकी योग्यताका कहीं निषेध नहीं है । भावार्थ--यदि दीक्षा धारण करने योग्य कुलमें किसी कारणसे दोष लग जावे तो राजा आदिकी सम्मतिसे उसको शुद्धि हो सकती है और उस कुलके पुरुषको यज्ञोपवीत भी दिया जा सकता है । त केवल उसी पुरुषको किन्तु उसके पुत्र पौत्र आदि सन्तानके लिए भी यज्ञोपवीत देनेका कहीं निषेध नहीं है ॥१६८-१६९॥ जो दीक्षाके अयोग्य कुलमें उत्पन्न हुए हैं तथा नाचना गाना आदि विद्या और शिल्पसे अपनी आजीविका करते हैं ऐसे पुरुषोंको यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंकी आशा नहीं है ॥१७०॥ किन्तु ऐसे लोग यदि अपनी योग्यतानुसार व्रत धारण करें तो उनके योग्य यह चिङ्ग हो सकता है कि वे सन्त्यासमरण पर्यन्त एक धोती पहनें ॥१७१॥ यज्ञोपवीत धारण करनेवाले पुरुषोंको मांसरहित भोजन करना चाहिए, अपनी विवाहिता कुलस्त्रीका सेवन करना चाहिए, अनारम्भी हिंसाका ल्याग करना चाहिए और अभक्ष्य तथा अपेय पदार्थका परित्याग करना चाहिए ॥१७२॥ इस प्रकार जो द्विज द्रतोंसे पवित्र हुई अरथन्त शुद्ध वृत्तिको धारण करता है उसके व्रतचर्याकी पूर्ण विधि समझनी चाहिए ॥१७३॥ अब उन द्विजोंके लिए उपासकाध्ययन सूत्रमें जो दश

तथा निरालविद्याऽया कुलाविद्यसन्तरम् । वर्णोत्तमत्वप्रत्येके तथा सह अधिकारिणा ॥ १७५॥  
व्यवहारेशिताऽन्या स्थाद्यव्यत्यमदण्डता । मानाहंता प्रजासंबन्धान्तरं वेस्यनुक्रमात् ॥ १७६॥  
दशाधिकारिवस्तुनि स्थुलासक्तसंप्रदेषे । तामीमानि चथोदेशं संक्षेपेण विवृत्तमहे ॥ १७७॥  
वाल्यात्प्रसृति या विद्याशिक्षोद्योगाद् द्विजन्मनः । प्रोक्षातिवालविद्येति सा किया द्विजसंमता ॥ १७८॥  
तस्मामसम्यां मुर्दात्मा हेयादेयानमिक्षकः । मिद्याश्रुतिं प्रपद्येत् द्विजन्मान्यैः प्रवासितः ॥ १७९॥  
आहय एव ततोऽभ्यस्थेत् द्विजन्मीपासिकों श्रुतिम् । स तथा प्राप्तसंस्कारः स्वपरोचारको मंत्रेत् ॥ १८०॥  
कुलावधिः कुलाचाररक्षण स्थात् द्विजन्मनः । सहिमस्तत्यसी नष्टक्रियोऽन्यकुलतां भजेत् ॥ १८१॥  
वर्णोत्तमन्वं वर्णेषु सर्वेषाधिक्यमस्य वै । तेनायं इष्टाध्यतामेति स्वपरोदारणामः ॥ १८२॥  
वर्णोत्तमत्वं यथास्य न स्यात् स्यात्प्रकृता । अप्रकृतश्च नामानं शोधयेत् परानपि ॥ १८३॥  
ततोऽयं शुद्धिकामः सन् सेवेताम्यं कुलिङ्गिनम् । कुलश वा ततस्तज्जान् दोषान् प्राप्तोस्यसंशयम् ॥ १८४॥  
प्रदानाहं दमस्येवं पात्रावं गुणगौरवात् । गुणाधिकोऽहि लोकेऽस्मिन् पूर्णः स्याहोकपूजितैः ॥ १८५॥  
ततो गुणकृतां स्वस्मिन् पात्रानां द्वयेद्विजः । तदभावे विमान्यत्वाद् हितेऽस्य धनं तुपैः ॥ १८६॥

अधिकार कहे हैं उन्हें यथाक्रमसे नामके अनुसार कहता है ॥ १७४॥ उन दश अधिकारोंमें पहला अतिबाल विद्या, दूसरा कुलावधि, तीसरा वर्णोत्तमत्व, चौथा पात्रत्व, पाँचवीं सूक्ष्माधिकारिता, छठा व्यवहारेशिता, सातवीं अवध्यत्व, आठवीं अदण्डता, नौवीं मानाहंता और दशवीं प्रजासंबन्धान्तर है । उपासेकसंग्रहमें अनुक्रमसे ये दश अधिकारवस्तुएं बतलायी गयी हैं । उन्हीं अधिकार वस्तुओंका उनके नामके अनुसार यहाँ संक्षेपसे कुछ विवरण करता है ॥ १७५-१७७॥ द्विजोंको जो बाल्य अवस्थासे ही लेकर विद्या सिखलानेका उद्योग किया जाता है उसे अतिबालविद्या कहते हैं, यह विद्या द्विजोंको अत्यन्त इष्ट है ॥ १७८॥ इस अतिबाल विद्याके अभावमें द्विज मूर्ख रह जाता है उसे हेय उपादेयका जान नहीं हो पाता और वह अपनेको झूठमूठ द्विज माननेवाले पुरुषोंके द्वारा ठगाया जाकर मिथ्या शास्त्रके अध्ययनमें लग जाता है ॥ १७९॥ इसलिए द्विजोंको उचित है कि वे बाल्य अवस्थामें ही शावकाचारके शास्त्रोंका अभ्यास करें क्योंकि उपासकाचारके शास्त्रोंके द्वारा जिसे अच्छे संस्कार प्राप्त हो जाते हैं वह निज और परको तारनेवाला हो जाता है ॥ १८०॥ अपने कुलके आचारकी रक्षा करना द्विजोंकी कुलावधि क्रिया कहलाती है । कुलके आचारकी रक्षा न होनेपर पुरुषकी समस्त क्रियाएँ नष्ट हो जाती हैं और वह अन्य कुलको प्राप्त हो जाता है ॥ १८१॥ समस्त वर्णोंमें थेष्ठ होना ही इसकी वर्णोत्तम क्रिया है, इस वर्णोत्तम क्रियासे ही यह प्रशंसाको प्राप्त होता है और निज तथा परका उद्धार करनेमें समर्थ होता है ॥ १८२॥ यदि इसके वर्णोत्तम क्रिया नहीं है अथवा इसका वर्ण उत्तम नहीं है तो इसके उल्लङ्घता नहीं हो सकती और जो उल्लङ्घ नहीं है वह न तो अपने-आपको शुद्ध कर सकता है और न दूसरेको ही शुद्ध कर सकता है ॥ १८३॥ जो स्वयं उल्लङ्घ नहीं है ऐसे द्विजको अपनी शुद्धिकी इच्छासे अन्य कुलिंगियों अथवा कुब्रह्मकी सेवा करनी पड़ती है और ऐसो दशामें वह निःसन्देह उन लोगोंमें उत्पन्न हुए दोषोंको प्राप्त होता है । भावार्थ-सदा ऐसे ही कार्य करना चाहिए जिससे वर्णकी उत्तमतामें बाधा न आवे ॥ १८४॥ गुणोंका गौरव होनेसे दान देनेके योग्य पात्रता भी इन्हीं द्विजोंमें होती है क्योंकि जो गुणोंसे अधिक होता है कह संसारमें सब लोगोंके द्वारा पूजित होनेवाले लोगोंके द्वारा भी पूजा जाता है ॥ १८५॥ इसलिए द्विजोंको चाहिए कि वे अपने-आपमें गुणों-१ यो विद्याशिक्षोद्योगी द्विजन्मनः द०, ल०, अ०, स०, द० । २ द्विजमन्यैः द० । ३ भजेत् द०, ल० । ४ कुलिंगकुब्रह्माणम् । ५ कुलिंगकुब्रह्मसेवनात् ।

स्थयः सृष्ट्यधिकारोऽपि द्विजैरुत्तमसृष्टिमिः । असद्गृहितो सृष्टि परिदृश्य विदूरतः ॥१८५॥  
 अन्यथा सृष्टिवादेन तुर्दृष्टेने कुरुत्यः । लोकं सृपांश्च संमोहा नयन्युत्पथगामिताम् ॥१८६॥  
 सृष्टयन्तरमतो तूरमपास्य नयतरवित् । अनादिक्षितिन्द्रियात्मकोहु धर्मसृष्टिः प्रकाशयेत् ॥१८७॥  
 तीर्थंहृजित्यं सृष्टा धर्मसृष्टिः सनातनी । तां संशिताकृपानेवै सृष्टिहेतुन् प्रकाशयेत् ॥१८८॥  
 अन्यथाऽन्यकृतां सृष्टि प्रपञ्चाः स्युर्नृपोत्तमाः । ततो वैश्वर्यमेवां स्यात्तत्रस्याश्च स्युराहताः ॥१८९॥  
 व्यवहारेशितां ग्राहुः प्रायश्चित्तादिकर्मणि । स्वतन्त्रतां द्विजस्यास्य श्रितस्य परमां श्रुतिम् ॥१९०॥  
 तदभावे स्वमन्याश्च न शोधयितुमर्हति । अशुद्धः परतः शुद्धिभर्त्यपनन्वशकुतोऽभवेत् ॥१९१॥  
 स्याद्वध्याधिकारेऽपि स्थिरात्मा द्विजसत्तमः । वाहाणो हि गुणोत्कर्त्ताकान्यतोऽवधमर्हति ॥१९२॥  
 सर्वः प्राणी न हन्तन्यो आहारास्तु विशेषतः । गुणोत्कर्त्तापकर्त्ताभ्यां चवेऽपि दूचात्मतां मता ॥१९३॥  
 तस्माद्वध्यतामेव पोषयेद् धार्मिके जने । धर्मस्य तद्विभागात्यं तत्त्वात्रो यज्ञमिभूयने ॥१९४॥  
 तदभावे च वध्यत्वस्यमूर्च्छति सर्वतः । एवं च सति धर्मस्य नश्येत् प्रामाण्यमर्हताम् ॥१९५॥

के द्वारा की हुई पात्रताको हड़ करें अर्थात् गुणी पात्र बनें वयोंकि पात्रताके अभावमें मान्यता नहीं रहती और मान्यताके न होनेसे राजा लोग भी धन हरण कर लेते हैं ॥१८६॥ जिनकी सृष्टि उत्तम है ऐसे द्विजोंको मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा की हुई सृष्टिको दूरसे ही छोड़कर अपनी सृष्टिके अधिकारोंकी रक्षा करनी चाहिए ॥१८७॥ अन्यथा मिथ्यादृष्टि लोग अपने दूषित सृष्टिवादसे लोगोंको और राजाओंको मोहित कर कुमारगामी बना देंगे ॥१८८॥ इसलिए नय और तस्वीरोंको जाननेवाले द्विजको चाहिए कि मिथ्यादृष्टियोंकी अन्यसृष्टिको दूरसे ही छोड़कर अनादिक्षित्रियोंके द्वारा रची हुई धर्मसृष्टिकी ही प्रभावता करे ॥१८९॥ तथा इस धर्मसृष्टिका आश्रय लेनेवाले राजाओंसे ऐसा कहे कि तीर्थकरोंके द्वारा रची हुई यह सृष्टि अनादिकालसे चली आयी है । भावार्थ – यह धर्मसृष्टि तीर्थकरोंके द्वारा रची हुई है और अनादि कालसे चली आ रही है इसलिए आप भी इसकी रक्षा कीजिए ॥१९०॥ यदि द्विज राजाओंसे ऐसा नहीं कहेंगे तो वे अन्य लोगोंके द्वारा की हुई सृष्टिको मानने लगेंगे जिससे उनका ऐश्वर्य नहीं रह सकेगा तथा अरहन्तके मतको माननेवाले लोग भी उसी धर्मको मानने लगेंगे ॥१९१॥ परमाणुमका आश्रय लेनेवाले द्विजोंको जो प्रायश्चित्त आदि कार्योंमें स्वतन्त्रता है उसे ही व्यवहारेशिता कहते हैं ॥१९२॥ व्यवहारेशिताके अभावमें द्विज न अपने आपको शुद्ध कर सकेगा और न दूसरेको ही शुद्ध कर सकेगा तथा स्वयं अशुद्ध होनेपर यदि दूसरेसे अपनी शुद्धि करना चाहे तो वह कभी कृती नहीं हो सकेगा ॥१९३॥ जिसका अन्तःकरण स्थिर है ऐसा उत्तम द्विज अवध्याधिकारमें भी स्थित रहता है अर्थात् अवध्य है वयोंकि ब्राह्मण गुणोंकी अधिकताके कारण किसी दूसरेके द्वारा वध करने योग्य नहीं होता ॥१९४॥ सब प्राणियोंको नहीं मारना चाहिए और विशेषकर ब्राह्मणोंको नहीं मारना चाहिए । इस प्रकार गुणोंकी अधिकता और हीनतासे हिसासे भी दो भेद माने गये हैं ॥१९५॥ इसलिए यह धार्मिक जनोंमें अपनी अवध्यताको पुष्ट करे । यथार्थमें वह धर्मका ही माहात्म्य है कि जो इस धर्ममें स्थित रहकर किसीसे तिरसकृत नहीं हो पाता ॥१९६॥ यदि वह अपनो अवध्यताको पुष्ट न करेगा तो सब लोगोंसे वध्य हो जावेगा अर्थात् सब लोग उसे मारने लगेंगे और ऐसा होनेपर अर्हन्तदेवके धर्मकी

१ असमीक्षितेन कुटृष्टान्तेन वा । २ तां धर्मसृष्टिं प्रकाशयेदित्यर्थः । ३ आत्मानमाश्रिता । अथवा पूर्व ता संशिता बोधयेत् तद्वक्तव्यर्थम् । ४ ~शकुतो ८० । -शकुती ८० । ५ नृपादेः सकाशात् । ६ द्विरूपतः ( दुष्टनिप्रहरिष्ठप्रतिपालनता ) ।

नवः पर्वते रस्यो धर्मः सनातनः । स हि संरक्षितो स्थानं करोति सञ्चाचरे ॥१९८॥  
 स्थादण्डयन्वमपेव मस्य धर्मं स्थिरान्मनः । धर्मस्थी हि जनोऽन्यस्य दण्डप्रस्थापने प्रभुः ॥१९९॥  
 १ तद्भर्त्यर्थायै यमाशायै लक्ष्मीकृष्णायै अर्मदशिमिहर्षायै अलमस्तुत्यै गुरुपूजायै अस्तिस्कृते लृपः ॥२००॥  
 गच्छार्थं वया देवगुरुद्वयं हितार्थिमिः । ब्रह्मस्वं च तथाभूतं न दण्डार्हस्ततो द्विजः ॥२०१॥  
 युक्त्यानया गुणाधिक्यमाभ्यन्यारोपयन् वर्णा । अदण्डयपक्षे स्थानमानं हयापर्यैष्टदधारिणाम्<sup>१</sup> ॥२०२॥  
 अधिकारं त्यग्यस्मिन् स्याद्वाऽयोऽयं व्येतरः । तत्त्वं विस्त्रितां प्राप्तो नेहामुत्र च नन्दति ॥२०३॥  
 भान्यव्यमस्य संघते भानार्हाद्यं सुभावितम् । गुणाधिकी ति मान्यः स्याद् वन्यः पूज्यश्च सत्तमैः ॥२०४॥  
 अस्याद्यं 'गुणीर्यक्षाद्वाभ्यन्यारोपयतां द्विजः' । यत्त्वं ज्ञानवृत्तादिसंपत्तिः सोऽर्थतां लृपैः<sup>२</sup> ॥२०५॥  
 स्थान एजान्नसंबन्धे<sup>३</sup> स्वोक्तुरेवपरिच्युतिः । याऽस्य सोक्ता प्रजासेवन्यान्तरं नामतो गुणः ॥२०६॥  
 यथा कालायसाविन्दु<sup>४</sup> स्वयं याति विवर्णताम् । न तथाऽस्थान्यसंयन्ते स्वगुणोऽकर्पविष्टवः ॥२०७॥

प्रामाणिकता नष्ट हो जावेगी ॥१९७॥ इसलिए सब प्रकारके प्रयत्नोंसे सनातनधर्मकी रक्षा करनी चाहिए । क्योंकि अच्छी तरह रक्षा किया हुआ धर्म ही चराचर पदार्थोंसे भरे हुए संसारमें उसकी रक्षा कर सकता है ॥१९८॥ इसी प्रकार धर्ममें जिसका अन्तःकरण स्थिर है ऐसे इस द्विजको अपने अदण्डयत्वका भी अधिकार है क्योंकि धर्ममें स्थिर रहनेवाला मनुष्य ही दूसरेके लिए दण्ड देनेमें समर्थ हो सकता है ॥१९९॥ इसलिए धर्मदर्शी लोगोंके द्वारा दिखलायी हुई यमरिमा जनोंकी आमनायका विनाश करता हुआ ही धार्मिक राजा अधर्मी जनोंको दण्ड देता है ॥२००॥ जिस प्रकार अपना हित बाहनेवाले पुरुषोंके द्वारा देवद्वय और गुरुद्वय त्याग करने योग्य है उसो प्रकार ब्राह्मणका धन भी त्याग करने योग्य है । इसलिए ही द्विज दण्ड देनेके योग्य नहीं है ॥२०१॥ इस युक्तिसे अपनेमें अधिक गुणोंका आरोप करता हुआ वह जितेन्द्रिय दण्ड देनेवाले राजा आदिके समक्ष अपने आपको अदण्डय अर्थात् दण्ड न देने योग्य पक्षमें ही स्थापित करता है । भावार्थ—वह अपने आपमें इतने अधिक गुण प्राप्त कर लेता है कि जिससे उसे कोई दण्ड नहीं दे सकते ॥२०२॥ इस अधिकारके अभावमें अन्य पुरुषोंके समान ब्राह्मण भी दण्डित किया जाने लगेगा जिससे वह दरिद्र हो जावेगा और दरिद्र होनेसे न तो इस लोकमें सुखी हो सकेगा और न परलोकमें हो ॥२०३॥ यह ब्राह्मण जो अच्छी तरह सन्मानके योग्य होता है वही इसका मान्यत्व अधिकार है सो ठीक ही है क्योंकि जो गुणोंसे अधिक होता है अर्थात् जिसमें अधिक गुण पाये जाते हैं वही पुरुषोंके द्वारा सन्मान करने योग्य, वन्दना करने योग्य और पूजा करने योग्य होता है ॥२०४॥ इस अधिकारके न होनेसे उत्तम पुरुष इसका सन्मान नहीं करेंगे और उसके स्थान मान लाभ आदिका अभाव होनेके कारण वह अपने पदसे च्युत हो जावेगा । इसलिए द्विजको चाहिए कि वह यह गुण ( मान्यत्व गुण ) बड़े यत्नसे अपने आपमें आरोपित करे क्योंकि ज्ञान चारित्र आदि सम्पदाएँ ही उसका यत्न है इसलिए राजाओंको उसकी पूजा करनी चाहिए ॥२०५—२०६॥ प्रजान्तर अर्थात् अन्य धर्मविलम्बियोंके साथ सम्बन्ध होनेपर भी जो अपनी उन्नतिसे च्युत नहीं होना है वह इसका प्रजासम्बन्धान्तर नामका गुण है ॥२०७॥ जिस प्रकार काले लोहके साथ मिला हुआ सुवर्ण

<sup>१</sup> तत्कारणात् । <sup>२</sup> धर्मसंबन्धिनम् । <sup>३</sup> आगमम् । <sup>४</sup> धर्मचायेमतात् दण्डं करोतीति लालयम् । <sup>५</sup> चारित्रम् अ०, प०, इ०, स० । <sup>६</sup> अमान्यत्वात् । <sup>७</sup> पूर्वस्थितस्य स्थानमानादिलाभम्याभावात् । <sup>८</sup> गुणो द० । <sup>९</sup> द्विजः ल० । <sup>१०</sup> सोज्जनां न तैः द० । <sup>११</sup> संबन्धे यति । <sup>१२</sup> अयोग्युक्तम् ।

किन्तु प्रजान्तरं स्वेन संबद्धं स्वगुणानयम् । प्राप्यत्यचिरादेव लोहधातुं यथा ग्रसः ॥२०६॥  
 अतो महानयं धर्मप्रभावोद्भोतको गुणः । २ येनायै स्वगुणैरन्यानात्मसाकल्तुमहर्ति ॥२०७॥  
 असत्यस्मिन् गुणेऽन्यस्मात् प्राप्नुयात् स्वगुणस्युत्तिम् । सर्वं गुणवत्तारय निष्ठुव्येत् द्विजन्मनः ॥२०८॥  
 अतोऽतिबालविद्यादीलियोगान् दशायोदिक्षान् ३ विद्याहीभास्त्रसाकुर्वन् द्विजः ४ विद्याक्षेमलवै ॥२०९॥  
 गुणेष्वेष विशेषोऽन्यो यो व्राचयो वहुविस्तरः । ५ स उपासकसिद्धान्तादधिगम्यः प्रपञ्चतः ॥२१०॥  
 ६ क्रियामन्त्रानुपङ्केण व्रतचर्याक्रियाकिधौ । ७ वृशाधिकारा व्याख्याताः सद्वृत्तेराहसा द्विजः ॥२११॥  
 क्रियामन्त्रास्त्विवह ज्ञेया ये गूर्वमनुवर्णिताः । ८ सामान्यविषयाः सप्त पीठिकामन्त्रहृष्टयः ॥२१२॥  
 ९ ते हि साधारणाः सर्वक्रियासु विनियोगिनः । १० ततः १० औत्सर्गिकानेतान् मन्त्रान् मन्त्रविद्वा विदुः ॥२१३॥  
 विशेषविषया मन्त्राः क्रियासूक्ष्मासु दर्शिताः । ११ इतः प्रभृति चाभ्युद्यास्ते यथाज्ञायमग्रजैः ॥२१४॥  
 मन्त्रानिमान् यथा १२ योगं यः क्रियासु नियोजयेत् । १३ स लोके संमतिं याति शुक्लाचारो द्विजोत्तमः ॥२१५॥  
 क्रियामन्त्रविहीनासु १४ प्रयोक्तृणां न सिद्धये । १५ यथा सुकृतसंनाहाः १५ सेनाध्यक्षा विनायकाः ॥२१६॥

विवर्णताको प्राप्त हो जाता है उस प्रकार अन्य पुरुषोंके साथ सम्बन्ध होनेपर इस ब्राह्मणके अपने गुणोंके उत्कर्षमें कुछ बाधा नहीं आती है । भावार्थ—लोहेके सम्बन्धसे सुवर्णमें तो खराबी आ जाती है परन्तु उत्तम द्विजमें अन्य लोगोंके सम्बन्धसे खराबी नहीं आती ॥२०८॥ किन्तु जिस प्रकार रसायन अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाले लोहेको शीघ्र ही अपने गुण प्राप्त करा देता है उसी प्रकार यह ब्राह्मण भी अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाले पुरुषोंको शीघ्र ही अपने गुण प्राप्त करा देता है ॥२०९॥ इसलिए कहना चाहिए कि यह प्रजासम्बन्धान्तर गुण, धर्मकी प्रभावनाको बढ़ानेवाला सबसे बड़ा गुण है वयोंकि इसीके द्वारा यह द्विज अपने गुणोंसे अन्य लोगोंको अपने आधीन कर सकता है ॥२१०॥ इस गुणके न रहनेपर ब्राह्मण अन्य लोगोंके सम्बन्धसे अपने गुणोंकी हानि कर सकता है और ऐसा होनेपर इसकी गुणवत्ता ही नष्ट हो जावेगी ॥२११॥ इसलिए जो अतिबालविद्या आदि दश प्रकारके नियोग निरूपण किधै हैं उन्हें यथायोग्य रीतिसे स्वीकार करनेवाला द्विज ही सब लोगोंको मान्य हो सकता है ॥२१२॥ इन गुणोंमें अन्य विशेष गुण बहुत विस्तारके साथ विवेचन करनेके योग्य हैं उन्हें उपासकाध्ययन-शास्त्रसे विस्तारपूर्वक समझ लेना चाहिए ॥२१३॥ इस प्रकार व्रतचर्या क्रियाकी विधिका वर्णन करते समय उस क्रियाके योग्य मन्त्रोंके प्रसंगसे उत्तम आचरणवाले द्विजोंके द्वारा माननीय दश अविकारोंका निरूपण किया ॥२१४॥ इस प्रकरणमें जिनका वर्णन पहले कर चुके हैं उन्हें क्रियामन्त्र जानना चाहिए और जो सात पीठिकामन्त्र इस नामसे प्रसिद्ध हैं उन्हें सामान्यविषयक समझना चाहिए अर्थात् वे मन्त्र सभी क्रियाओंमें काम आते हैं ॥२१५॥ वे साधारण मन्त्र सभी क्रियाओंमें काम आते हैं इसलिए मन्त्रोंके जाननेवाले विद्वान् उन्हें औत्सर्गिक अर्थात् सामान्य मन्त्र कहते हैं ॥२१६॥ इनके सिवाय जो विशेष मन्त्र हैं वे ऊपर कही हुई क्रियाओंमें दिखला दिये गये हैं । अब व्रतचर्यासे आगेके जो मन्त्र हैं वे द्विजोंको अपनी आमनाय ( शास्त्र परम्परा ) के अनुसार समझ लेना चाहिए ॥२१७॥ जो इन मन्त्रोंको क्रियाओंमें यथायोग्य रूपसे काममें लाता है वह योग्य आचरण करनेवाला उत्तम द्विज लोकमें सन्मानको प्राप्त होता है ॥२१८॥ जिस प्रकार अस्त्र-शास्त्र धारण कर तैयार हुए मुख्य-मुख्य योद्धा

१ प्रजान्तरसंबन्धेत् । २ द्विजः । ३ संबन्ध्येत् । ४ नर्येदित्यर्थः । ५ अधिकारान् । ६ क्रियाणां मन्त्राः क्रियामन्त्र-स्तोषामनुपङ्क्तौ योगस्तेन । ७ पूर्वोक्तदृष्टवर्याक्रियाविधाने । ८ साधारणान् । ९ यथामूलित । 'योगस्सम्भृतो-पायङ्ग्यानसंगतियुक्तिषु' इत्यमित्यान्तात् । १० स्वामिरहिताः ।

यत्तो विद्युत्तिष्ठति । २२० वर्षे अस्ति रुद्रपुराणं तदा अस्ति रुद्रपुराणं

ततो चिदिमसुं भव्यगवगम्य भृत्यासः । विद्यातेन प्रयोक्तव्यः क्रियामन्त्रपुरस्कृताः ॥२२०॥

### बसन्ततिळकाघृतम्

इत्यं स धर्मचिजसी भरताधिराजो  
धर्मक्रियासु कृतधीर्नृपलोकसाक्षि ।

ताम् सुव्रतान् द्विजवरान् विनियम्य सम्यक्  
धर्मप्रियः समस्तजट द्विजलोकसर्गम् ॥२२१॥

### मालिनी

इति भरतनरेन्द्रात् प्राप्तसत्कारयोगा  
वृतपरिचयचारुदारभृताः श्रुताङ्गाः ।  
जिनवृपममतानुद्वजया पूज्यमानाः  
जगति वहुमतास्ते ब्राह्मणाः व्यातिरीयुः ॥२२२॥

### शार्दूलविक्रीडितम्

बृतस्वान् थ तान् विधाय समवानिक्षवाकुचूडामणिः  
जैने दर्मनि सुस्थितान् द्विजवरान् समानयन् प्रथयहम् ।  
स्वं मने कृतिनं सुदार्द परिगतार्द स्वां सृष्टिमुच्चैः कृतां  
पद्यन् कः सुकृती कृतार्थपद्वी नाम्यानमरोपयेत् ॥२२३॥

इत्याप्येभगवज्ञिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्टुप्लक्षणमहापुराणसंग्रहे  
द्विजोत्पत्तो-क्रियामन्त्रानुवर्णनं नाम चत्वारिंशतम् पर्व ॥४०॥



सेनापतिके बिना कुछ भी नहीं कर सकते उसी प्रकार मन्त्रोंसे रहित क्रियाएँ भी प्रयोग करने-वाले पुरुषोंकी कुछ भी सिद्धि नहीं कर सकतीं ॥२१९॥ इसलिए शास्त्रोंका अध्यास करनेवाले द्विजोंको यह सब विधि अच्छी तरह जानकर मन्त्रोच्चारणके साथ-साथ सब क्रियाएँ विधि-पूर्वक करती चाहए ॥२२०॥ इस प्रकार जिसने धर्मके द्वारा विजय प्राप्त की है, जो धार्मिक क्रियाओंमें निपुण है और जिसे धर्म प्रिय है ऐसे भरतक्षेत्रके अधिपति महाराज भरतने राजा लोगोंकी साक्षीपूर्वक अच्छे-अच्छे व्रत धारण करनेवाले उन उत्तम द्विजोंको अच्छी शिक्षा देकर ब्राह्मणवर्णकी सृष्टि की अर्थात् ब्राह्मणवर्णकी स्थापना की ॥२२१॥ इस प्रकार महाराज भरतसे जिन्हें सत्कारका योग प्राप्त हुआ है, व्रतोंके परिचयसे जिनका चारित्र सुन्दर और उदार हो गया है, जो शास्त्रोंके अर्थोंको जाननेवाले हैं और श्री वृषभ जिनेन्द्रके मतानुसार धारण की हुई दोक्षासे जो पूजित हो रहे हैं ऐसे वे ब्राह्मण संसारमें बहुत ही प्रसिद्धिको प्राप्त हुए और खूब ही उनका आदर-सन्मान किया गया ॥२२२॥ तदनन्तर इक्षवाकुचूडामणि महाराज भरत जैनमार्गमें थच्छी तरह स्थित रहनेवाले उन ब्राह्मणोंको सदाचारमें स्थिर कर प्रतिदिन उनका सन्मान करते हुए अपने आपको धन्य मानने लगे सो ठीक ही है क्योंकि आनन्दसे युक्त तथा उत्कृष्टताको प्राप्त हुई अपनी सृष्टिको देखता हुआ ऐसा कौन पुण्यवान् पुरुष है जो अपने आपको कृतकृत्य न माने ॥२२३॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध भगवज्ञिनसेनाचार्य प्रणीत त्रिष्टुप्लक्षण महापुराणसंग्रहके भाषानुवादमें द्विजोंकी उत्पत्तिमें क्रियामन्त्रोंका वर्णन करनेवाला यह चालीसवीं पर्व समाप्त हुआ ।

१ संपूर्णशास्त्रः । २ संपूर्णबुद्धिः । ३ व्रताभ्यासः । ४ श्रुतार्थः ३०, ५० । ५ मतानुगमनेन । ६ चारित्रपदं गतान् । ७ पूज्यः । ८ संतोषेण सह । ९ समविदामित्यर्थः ।

## एकचत्वारिंशतम् पर्व

अथ चक्रधरः काले व्यतिकान्तं कियत्यपि । स्वप्नान्यशामयत्<sup>१</sup> कौशिदेकदाऽद्भुतदर्शनान् ॥१॥  
तस्त्वप्रदर्शनात् किञ्चिदुत्त्रस्त इव वेतसा । प्रबुद्धः सहसा तेषां फलानीसि व्यतक्यन् ॥२॥  
असम्झुला इमे स्वप्नाः प्रायेण प्रतिभान्ति माम् । मन्थे दूरफलांश्चैतान् पुराकर्णे<sup>२</sup> कलप्रदान् ॥३॥  
कुतश्चिद् भगवत्प्रवृत्त्यादिमन्त्रे । प्रजानां कथमेवैवंचिद्योपप्लवसंभवः ॥४॥  
ततः<sup>३</sup> कृतयुगास्थास्य<sup>४</sup> व्यतिक्रान्ती कदाचन । फलमेते प्रदास्यन्ति नूममनःप्रकर्षतः<sup>५</sup> ॥५॥  
‘युगान्तविष्टलबोदकस्त पूर्तेऽनिष्टशंसिनः । स्वप्नाः प्रजाप्रजापालसाधारणफलोदयाः ॥६॥  
यद्गृहम्ब्राक्षिप्लबोत्थविक्रियाजनितं फलम् । जगतसाधारणं तद्वत् सदसक्षासमदीक्षितम्<sup>६</sup> ॥७॥  
इतीदमनुमानं नः स्थूलार्थानुप्रचिन्तनम् । सूक्ष्मसत्त्वप्रसीसिस्तु प्रत्यक्षज्ञानगोचरा<sup>७</sup> ॥८॥  
केवलाकादिते नान्यः संशयध्वान्तमेदकृत । को हि नाम तमो<sup>८</sup> नैशं हन्यादन्यत्र भास्करात् ॥९॥  
तत्रादृशे स्थिते देवे को मामास्मन्मतिभ्रमः । सत्यादृष्टे<sup>९</sup> करामर्शादि कः पद्येमुखसांघ्रवम् ॥१०॥  
‘तदत्र भगवद्वप्नमङ्गलादर्शदर्शनान् । युक्ता नस्तरवनिर्णाति<sup>१०</sup> स्वप्नानां शान्तिकर्म च ॥११॥  
अपि चास्मद्गुप्तज्ञे<sup>११</sup> यद् द्विजलोकस्य सर्जनम् । गत्वा तदपि विज्ञाप्य भगवत्प्रादसंनिधीं ॥१२॥

अथानन्तर-कितना ही काल बीत जानेपर एक दिन चक्रवर्ती भरतने अद्भुत फल दिखानेवाले कुछ स्वप्न देखे ॥१॥ उन स्वप्नोंके देखनेसे जिन्हें चित्तमें कुछ खेद-सा उत्पन्न हुआ है ऐसे वे भरत अचानक जाग पड़े और उन स्वप्नोंके फलका इस प्रकार विचार करने लगे ॥२॥ कि ये स्वप्न मुझे प्रायः बुरे फल देनेवाले जान पड़ते हैं तथा साथमें यह भी जान पड़ता है कि ये स्वप्न कुछ दूर आगेके पंचम कालमें फल देनेवाले होंगे ॥३॥ क्योंकि इस समय भगवान् वृषभदेवके प्रकाशमान रहते हुए प्रजाको इस प्रकारका उपद्रव होना कैसे सम्भव हो सकता है ? ॥४॥ इसलिए कदाचित् इस कृतयुग ( चतुर्थकाल ) के व्यतीत हो जानेपर जब पापकी अधिकता होने लगेगी तब ये स्वप्न अपना फल देंगे ॥५॥ युगके अन्तमें विष्टलव फैलाना ही जिनका फल है ऐसे ये स्वप्न अनिष्टको सूचित करनेवाले हैं और राजा दोनोंको समान फल देनेवाले हैं ॥६॥ जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्यके बिम्बसे उत्पन्न होनेवाली विक्रियासे प्रकट हुआ फल जगत्के जीवोंको समानरूपसे उठाने पड़ते हैं उसी प्रकार मेरे द्वारा देखे हुए स्वप्नोंके फल भी समस्त जीवोंको सामान्यरूपसे उठाने पड़ेंगे ॥७॥ इस प्रकार हमारा यह अनुमान केवल स्थूल पदार्थका चिन्तवन करनेवाला है, सूक्ष्म तत्त्वकी प्रतीति प्रत्यक्ष ज्ञानसे ही हो सकती है ॥८॥ केवलज्ञानरूपी सूर्यको छोड़कर और कोई पदार्थ संशयरूपी अन्धकार को भेदन करनेवाला नहीं है सो ठीक ही है क्योंकि सूर्यको छोड़कर ऐसा कौन है जो रात्रिका अन्धकार नष्ट कर सके ॥९॥ तत्त्वोंका वास्तविक स्वरूप दिखलानेवाले भगवान् वृषभदेवके रहते हुए मुझे बुद्धिका भ्रम क्यों होना चाहिए, भला दर्पणके रहते हुए ऐसा कौन पुरुष है जो हाथके स्पर्शसे मुखकी मुन्द्रता देखे ? ॥१०-११॥ इसलिए इस विषयमें भगवान्के मुखरूपी मंगल

१ ददर्श । २ मम प्रकाशमन्ते । ३ पश्चाद्भाविकाले । पञ्चमकाले इत्यर्थः । ४ प्रकाशमाने सति । ५ तस्मात् कारणात् । ६ चतुर्थकालस्य । ७ पाप । ८ युगस्य चतुर्थकालस्यान्ते विष्टलव एव उदके उत्तरफलं येषां ते । ९ मयोक्षितम् । १० केवलज्ञानविषया । ११ निशासंबन्धि । १२-कर्णे विद्यमाने सति । १३ तत् कारणात् । १४ स्वरूपनिर्णयः । १५ मया प्रथमोपक्रान्तम् ।

व्रष्टया गुरबो नित्यं प्रष्टव्याश्च हिताहितम् । महेजथया च व्रष्टव्याः<sup>१</sup> शिष्टानाभिष्ठमोदशम् ॥ १३॥  
 इत्यात्मगतमालोच्य दारयोस्तंशात् परार्थःयतः । प्रातस्तरां समुत्थाय कृतप्रभातिकक्रियः ॥ १४॥  
 यतः<sup>२</sup> श्वणमिव स्थित्या महास्थाने नृपैर्वृत्तः । वन्दनाभक्षे गन्तुमुद्वतोऽभृद् विशांपतिः ॥ १५॥  
 वृत्तः परिमितैरेव माँलिबद्धैरनुरित्यते<sup>३</sup> । प्रतस्थे वन्दनाहेतोर्विभूत्या पर्यान्तितः ॥ १६॥  
 यतः<sup>४</sup> श्वेषोयै पूजासी गच्छा सैन्यैः परिष्कृतः । सग्राद् प्राप तमुदेशैः पूजास्ते सम जगदगुरुः ॥ १७॥  
 दूराङ्गेव जिनास्थानभूमि पदयन्त्रिधाश्वरः । प्रणनाम चलन्मौलिधटिताङ्गलिकुद्धमलः ॥ १८॥  
 स तां प्रदक्षिणीकृत्य श्रहिभग्नि मद्दोऽवनिम् । प्रविवेश विशासीशः क्रान्त्वा कृशः पृथग्विधाः<sup>५</sup> ॥ १९॥  
 मानस्तम्भमहाविद्युत्तमस्त्वाथपादपान् । प्रश्नमणी व्यसीयाय स्तूपाश्वाचिन्मपूजितान् ॥ २०॥  
 चनुष्टयी चनधेणी ध्वजान् हस्याविलीमपि । तत्र तत्रेकमाणोऽस्यां तां सा कक्षामलद्वयत् ॥ २१॥  
 प्रतिकक्षं सुरस्त्रीणां गोत्तर्नृत्येश हारिभिः । रज्यमानमनोवृत्तिस्तग्रास्यासीत् परा धृतिः ॥ २२॥  
 यतः प्राविश्वदुलुङ्गोपुरद्वारवर्त्तना । गणैरस्युषितां भूमि श्रीमण्डपवरिष्कृताम् ॥ २३॥  
 त्रिमेखलस्य पीठस्य प्रथमां मेखलामलः । सोऽधिष्ठृतं परीयायै धर्मचक्राणि पूजयन् ॥ २४॥

दर्पणको देखकर ही मुझे स्वप्नोके यथार्थ रहस्यका निर्णय करना उचित है और वहीं खोटे स्वप्नोंका शान्तिकर्य करना भी उचित है ॥ १२ ॥ इसके सिवाय मैंने जो ब्राह्मण लोगोंकी नवीन सृष्टि की है उसे भी भगवान्के चरणोंके समीप जाकर निवेदन करना चाहिए ॥ १३ ॥ फिर अच्छे पुरुषोंका यह कर्तव्य भी है कि वे प्रतिदिन गुहाओंके दर्शन करें, उनसे अपना हित-अहित पूछा करें और बड़े वैभवसे उनकी पूजा किया करें ॥ १४ ॥ इस प्रकार मनमें विचारकर महाराज भरतने बड़े सबेरे बहुमूल्य शश्यासे उठकर प्रातःकालकी समस्त क्रियाएँ कीं और फिर थोड़ी देर तक सभामें बैठकर अनेक राजाओंके साथ भगवान्‌की वन्दना की तथा भक्तिके अर्थ जानेके लिए उद्यम किया ॥ १५ ॥ जो साथ ही साथ उठकर खड़े हुए कुछ परिमित मुकुटबद्ध राजा-ओंसे घिरे हुए हैं और उल्लृष्ट विभूतिसे सहित हैं ऐसे महाराज भरतने वन्दनाके लिए प्रस्थान किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर सेना सहित सग्राद् भरत शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये जहाँ जगदगुरु भगवान् विराजमान थे ॥ १७ ॥ दूरसे ही भगवान्‌के समवसरणकी भूमिको देखते हुए निधियोंके स्वामी भरतने नम्रीभूत मस्तकपर कमलकी बीड़ीके समान जोड़े हुए दोनों हाथ रखकर नमस्कार किया ॥ १८ ॥ उन महाराजने पहले उस समवसरण भूमिके बाहरी भागकी प्रदक्षिणा दी और फिर अनेक प्रकारकी कक्षाओंका उल्लंघन कर भीतर प्रवेश किया ॥ १९ ॥ मानस्तम्भ, महाचैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष और पुजाकी सामग्रीसे पूजित स्तूपोंको देखते हुए उन सबका उल्लंघन करते गये ॥ २० ॥ अपने-अपने निश्चित स्थानोंपर चारों प्रकारकी वनकी पंकितयों, ध्वजाओं और हम्याविलीको देखते हुए उन्होंने उन कक्षाओंका उल्लंघन किया ॥ २१ ॥ ममवसरणकी प्रत्येक कक्षामें हीनेवाले देवाग्निमाओंके मनोहर गीत और नृत्योंसे जिनके चित्तकी वृत्ति अनुरक्त हो रही है ऐसे महाराज भरतको बहुत ही सातोष हो रहा था ॥ २२ ॥ तदनन्तर बहुत ऊँचे गोपुर दरवाजोंके मार्गसे उन्होंने जहाँ गणधरदेव विराजमान थे और जो श्रीमण्डपसे मुशोभित हो रही थी ऐसी सभाभूमियें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ वहाँपर तीन कटनीवाले पीठकी प्रथम कटनीपर चढ़कर धर्मचक्रकी पूजा करते हुए प्रदक्षिणा दी ॥ २४ ॥ तदनन्तर चक्रवर्ती दूसरी कटनीपर महाध्वजाओंकी पूजा कर तीनों जगत्की लक्ष्मीको तिरस्कृत करनेवाली गन्ध-

१ यज्ञतीयः । २ धणपर्यन्तम् । ३ सहोत्रित्यतः । ४ अतिशयेन क्षिप्रम् । ५ प्रदेशम् । ६ सभाभूमिम् ।  
 ७ नानाप्रकारः । ८ -सार्थिवान् ल०, म० । ९ प्रदक्षिणां चक्रे ।

एकचत्वारिंशतम् प॒

३१६

मेश्वलाया॒ द्वितीयस्यो॑ दृश्यस्यन् महाभजाम् । प्रापद् गन्धकुटी॑ चक्री॒ न्य॑ कुरुत्विजगच्छयम् ॥२४॥  
देवदानवगन्धव॑सिद्धिविद्वापर्वदितम् । भगवन्तमथालोक्य प्राणम्॑ भक्तिनिर्भरः ॥२५॥  
सुन्त्वा सुन्तिभिरीशानमस्यर्थं च वशविधि । निषमादै॑ यथास्थानं धर्मामूर्तिप्रसितः ॥२६॥  
भगव्या प्रगगतस्वस्य भगवत्पादपद्मे । विशुद्धिपरिणामाऽमृतविज्ञानमुद्वर्ता ॥२७॥  
पीत्वाऽथो॑ धर्मपी॒यूषं परां तृष्णिमशापिवान् । स्वरमनोगतमित्युच्चैर्भगवन्तं व्यजिज्जपत् ॥२८॥  
मया॑ सुष्ठा॒ दिव्यमानः शावकाचारसुख्वतः । वैद्यतीतोपासकाध्यायसूत्रमागोनुगामिनः ॥२९॥  
एकाख्येकादशान्तान्ति॑ दत्तान्येभ्यो॑ मया॒ विमो । अतचिह्नानि॑ सूत्राणि॑ गुणभूमिविभागतः ॥३०॥  
विश्वस्य॑ धर्मसंग्रह्य॑ त्वयि॑ साक्षात्येनरि । स्थिते॑ मया॒ तिवालिश्यादि॑ दमाचरितं विमो ॥३१॥  
दोषः॑ कोऽन्नं गुणः॑ कोऽन्नं किमंतन्॑ साम्प्रते॑ च वा । दोलाथमानमिति॑ मे॒ मनः॑ स्थारय॑ निश्चिताः॑ ॥३२॥  
अपि॑ चाय॑ मया॒ स्वप्ना॑ निशान्ते॑ शोडशेषिताः । याथोऽनिष्टफलाश्चैतं॑ मया॒ देवामिलक्षिताः ॥३३॥  
अथादृष्टमुपन्यस्य॑ तानिमान्॑ परमेश्वरः । यथास्वं॑ तत्पलान्यस्मल्पतीतिविषय॑ नय ॥३४॥  
सिंहो॑ सृगेन्द्रपोतश्च॑ तुरगः॑ करिभारमृतः॑ । छागा॑ बृक्षलतागुहमञ्जुकपशोपमोगिनः॑ ॥३५॥  
शारकामृगा॑ द्विष्टकन्धमारुदः॑ कौशिकाः॑ खगैः॑ । विहितोपद्मवा॑ ध्वाङ्कृतैः॑ प्रसथाश्च॑ प्रमोदिनः ॥३६॥

कुटीके पास जा पहुँचे ॥२५॥ वहाँपर भक्तिसे भरे हुए भरतने देव, दानव, गन्धवं, सिद्ध और विद्याधर आदिके द्वारा पूज्य भगवान् वृषभदेवको देखकर उन्हें नमस्कार किया ॥२६॥ महाराज भरत उन भगवान्की अनेक स्तोत्रोंके द्वारा स्तुति कर और विधिपूर्वक पूजा कर धर्मरूप अमृतके पीनेकी इच्छा करते हुए योग्य स्थानपर जा बैठे ॥२७॥ भवितपूर्वक भगवान्के चरणकमलोंको प्रणाम करते हुए भरतके परिणाम इतने अधिक विशुद्ध हो गये थे कि उनके उसी समय अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया ॥२८॥ तदनन्तर धर्मरूपी अमृतका पान कर वे बहुत ही सन्तुष्ट हुए और उच्च स्वरसे अपने हृदयका अभिप्राय भगवान्‌से इस प्रकार निवेदन करने लगे ॥२९॥ कि हे भगवन्, मैंने आपके द्वारा कहे हुए उपासकाध्याय सूत्रके मार्गपर चलनेवाले तथा शावकाचारमें निषुण ब्राह्मण निर्माण किये हैं अर्थात् ब्राह्मण बर्णकी स्थापना की है ॥३०॥ हे विभो, मैंने इन्हें ग्यारह प्रतिमाओंके विभागसे व्रतोंके चिह्न खबरूप एकसे लेकर ग्यारह तक यज्ञोपवीत दिये हैं ॥३१॥ हे प्रभो, समस्त धर्मरूपी सृष्टिको साक्षात् उत्पन्न करनेवाले आपके विद्यमान रहते हुए भी मैंने अपनी बड़ी मूर्खतासे यह काम किया है ॥३२॥ हे देव, इन ब्राह्मणोंकी रचनामें दोष वधा है ? गुण क्या है ? और इनकी यह रचना योग्य हुई अथवा नहीं ? इस प्रकार झूलाके समान झूलते हुए मेरे चित्तको किसी निश्चयमें स्थिर कीजिए अर्थात् गुण, दोष, योग्य अथवा अयोग्यका निश्चय कर मेरा मन स्थिर कीजिए ॥३३॥ इसके सिवाय हे देव, आज मैंने रात्रिके अन्तिमभागमें सोलह स्वप्न देखे हैं और मुझे ऐसा जान पड़ता है कि ये स्वप्न प्राप्तः अनिष्ट फल देनेवाले हैं ॥३४॥ हे परमेश्वर, वे स्वप्न मैंने जिस प्रकार देखे हैं उसी प्रकार उपस्थित करता हूँ । उनका जैसा कुछ फल हो उसे मेरी प्रतीतिका विषय करा दीजिए ॥३५॥ (१) सिंह, (२) सिंहका बच्चा, (३) हाथीके भारको धारण करनेवाला घोड़ा (४) बृक्ष, लता और जाङ्गियोंके सूखे पत्ते खानेवाले बकरे, (५) हाथीके स्कन्धपर बैठे हुए

१ पूजयन् । २ अधंकृत । ३ नमस्करीति त्वम् । ४ निविष्टवान् । ५ पातुमिच्छामितः सन् । ६ कारणम् ।  
७ प्रतीताः । ८ -दशाज्ञानि ल०, म० । ९ सृष्टेः । १० मूर्खदेव । 'अजे॑ मूर्खयथाजातमूर्खवैथेयवालिषाः' इत्यमरः । ११ युक्तम् । १२ निश्चये । १३ विज्ञापयामि । १४ ज्ञानम् । १५ करिणो भारे विभति ।  
१६ भक्षणः । १७ उलूकाः । १८ काकैः । 'काके तु करटारिष्टवलियुष्टकुत्रिजाः । व्याङ्ग्यात्मधोषपरभूद्वलि-  
भूग्रवायसा अपि ॥' इत्यभिधानात् । १९ भूताः ।

शुक्रमध्यं तदार्थं च पर्वन्तप्रसुरोदकम् । पौशुभूसरितो<sup>१</sup> रवराशिः स्वार्थं<sup>२</sup> भुग्नहितः<sup>३</sup> ॥३॥  
 ताहणकशाली त्रृष्णमः शोतोऽग्नुः परिवेष्युक् । मिथ्रोऽङ्गीकृतसाङ्गत्यौ युज्ञवी सङ्गलचित्प्रयौ ॥३५॥  
 रविराशाव॒वूरुषवत्सोऽङ्गैस्त्रिरोहितः । संशुष्कस्तरुच्छायो जीर्णपर्णसमुच्चयः ॥३०॥  
 दोडशीतेऽथ यामिन्यां दृष्टाः स्वरूपा विदो वर । फलविश्वनिष्ठितिं<sup>४</sup> से तदूगतां त्वमपाकुरु ॥४१॥  
 इति तरफलविश्वनिष्ठिपुणोऽप्यवधितिवा । सभाजनप्रश्नोधार्थं पश्चच्छ निविराद् जिनम् ॥४२॥  
 “तथेशनावसितविश्वं व्याख्ये सम जगद्गुरुः । वस्त्रामूलसंखेकैः प्रीणयजित्यिलं सदुः ॥४३॥  
 भगवहित्यवाग्यर्थंशुश्रूषावहितं<sup>५</sup> तदा । अ्यानोपगमिवा भूत्तददधित्रयतं तु चा ॥४४॥  
 साधु दरस कृतं साधु धार्मिकद्विजपूजनम् । किन्तु दोषानुष्ठोऽन्नं<sup>६</sup> कोऽप्यस्ति स निशम्यताम् ॥४५॥  
 आयुष्मन् भवता सृष्टा य एते गुहमेधिः । से तावदुचिताचारा यावद्कृतं युग्मस्तितः ॥४६॥  
 ततः ‘कलियुगेऽप्यर्णे<sup>७</sup>’ जातिनादावलेपतः<sup>८</sup> । भ्रष्टाचाराः प्रपश्यन्ते<sup>९</sup> सम्मानंप्रत्यनीकताम्<sup>१०</sup> ॥४७॥  
 तेऽमी जातिमदाविष्टा वर्यं लोकाधिका इति । <sup>११</sup>पुरा दुरागमैर्लोकैः मोहयन्ति<sup>१२</sup> धनाशया ॥४८॥  
 सरस्कारलाभसंशुद्धगवर्णं गिर्धामदोदृताः । जनान् प्रतारविष्यन्ति<sup>१३</sup> स्वयमुत्पाद्य तुःश्रुतीः<sup>१४</sup> ॥४९॥

वानर, (६) कौआ आदि पश्चियोंके द्वारा उपद्रव किये हुए उलूक, (७) आनन्द करते हुए भूत, (८) जिसका मध्यभाग सूखा हुआ है और किनारोंपर खूब पानी भरा हुआ है ऐसा तालाब, (९) धूलिसे बूसरित रत्नोंको राशि, (१०) जिसकी पूजा की जा रही है ऐसा नैवेद्यको खानेवाला कुत्ता, (११) जवान बैल, (१२) मण्डलसे युक्त चन्द्रमा, (१३) जो परस्परमें मिल रहे हैं और जिनकी शोभा नष्ट हो रही है ऐसे दो बैल, (१४) जो दिशारूपी स्त्रीरत्नोंके-से बने हुए आभूषणके समान हैं तथा जो मेघोंसे आच्छादित हो रहा है ऐसा सूर्य, (१५) छायारहित सूखा वृक्ष और (१६) पुराने पत्तोंका समूह। हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, आज मैंने रात्रिके समय ये सोलह स्वप्न देखे हैं। हे नाथ, इनके फलके विषयमें जो मुझे सन्देह है, उसे दूर कर दीजिए ॥३६-४१॥ यद्यपि निधियोंके अधिपति महाराज भरत अपने अवधिज्ञानके द्वारा उन स्वप्नोंका फल जाननेमें निपुण थे तथापि सभाके लोगोंको समझानेके लिए उन्होंने भगवान्से इस प्रकार पूछा था ॥४२॥ भरतका प्रश्न समाप्त होनेपर जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव अपने वचनरूपी अमृतके सिंचनसे समस्त सभाको सन्तुष्ट करते हुए इस प्रकार व्याख्यान करने लगे ॥४३॥ उस समय भगवान्की दिव्य ध्वनिके अर्थको सुननेकी इच्छासे सावधान हुई वह सभा ऐसी जान पड़ती थी मानो ध्यानमें मग्न हो रही हो अथवा चित्रकी बनी हुई हो ॥४४॥ वे कहने लगे कि हे वत्स, तूने जो धर्मात्मा द्विजोंकी पूजा की है सो बहुत अच्छा किया है परन्तु इसमें कुछ दोष है उसे तू सुन ॥४५॥ हे आयुष्मन्, तूने जो गृहस्थोंकी रचना की है सो जबतक कृतयुग अर्थात् चतुर्थ-कालकी स्थिति रहेगी तबतक तो ये उचित आचारका पालन करते रहेंगे परन्तु जब कलियुग निकट आ जायगा तब ये जातिवादके अभिमानसे सदाचारसे भ्रष्ट होकर समीचीन मोक्ष-मार्गके विरोधी बन जायेंगे ॥४६॥ पंचम कालमें ये लोग, हम सब लोगोंमें बड़े हैं, इस प्रकार जातिके मदसे युक्त होकर केवल धनकी आशासे खोटे-खोटे शास्त्रोंके द्वारा लोगोंको भोग्यित करते रहेंगे ॥४७॥ सत्कारके लाभसे जिनका गर्व बढ़ रहा है और जो मिथ्या मदसे उद्धृत हो रहे हैं ऐसे ये ब्राह्मण लोग स्वयं मिथ्या शास्त्रोंको बना-बनाकर लोगोंको ढाग करेंगे ॥४८॥ जिनकी चेतना पापसे दूषित हो रही है ऐसे ये मिथ्यादृष्टि लोग इतने समय

१ ईष्टपाण्डुरितः । २ चक्रमुक् । ३ पूजितः । ४ संदेहम् । ५ तस्य प्रश्नावसाने । ६ अवधानपरम् । ७ योगः ।  
८ चतुर्थकाले । ९ पञ्चमकाले । १० समीपे सति । ११ गर्वतः । १२ यास्यन्ति । १३ प्रतिकूलताम् । १४ पञ्चम-  
काले । १५ 'पुराणावतोर्लहिति भविष्यत्यर्थं लड् । १६ वञ्चयिष्यन्ति । १७ दुश्शास्त्राणि ।

त इमे कालपद्येन्ते विक्रियो ग्राप्य दुर्दशः । धर्मद्वयो<sup>१</sup> भविष्यन्ति पापोपहतचेतनाः ॥५०॥  
सत्त्वोपद्यात्तनिरता मधुमांसाशावप्रियाः । प्रदृतिक्षणं<sup>२</sup> धर्म द्योषयित्यन्यधार्मिकाः ॥५१॥  
अहिंसालक्षण्यं धर्म द्योषयित्या दुराशयाः । चोदनालक्षण्यं धर्म योषयित्यन्यमी बात् ॥५२॥  
पापसूत्रव्याप्तिः प्राणिमारणतथ्यराः । <sup>३</sup>वास्त्व्ययुगे प्रवरत्स्थेन्ति सन्मार्गं प्रियन्तिनः<sup>४</sup> ॥५३॥  
द्विजातिशयजंते<sup>५</sup> तस्माक्षाय यद्यपि दोषकृत् । स्थादोषशीजमायत्याः<sup>६</sup> कुपात्प्रवर्तनात् ॥५४॥  
कृति कालान्तरे दोषशीजमर्थतद्भस्ता । नाडुला परिहत्यं धर्मसृष्टयन्तिक्रमात् ॥५५॥  
यथाक्षमुपयुक्तं सत् कवचित्कस्यापि दोषकृत् । तथाऽप्यपरिहार्यं तद् बुद्धैर्बहुगुणास्थया ॥५६॥  
तत्त्वेन्द्रियमन्तर्वेगे गुणवस्तया । पुंसामाशायवेष्यवात् पश्चाद् यद्यपि दोषकृत् ॥५७॥  
शदसंबं गतं हन्त यद्य ते स्वमदर्शनम् । तदज्येष्यद्युग्मे धर्मस्थितिदासस्य सूक्ष्मनम् ॥५८॥  
ते च स्वमा द्विभागश्चाताः स्वव्याप्त्यस्वव्याप्त्यगोचराः । समैस्तु धातुभिः स्वस्था विषमैरित्यो मताः ॥५९॥  
तथाः स्युः स्वस्य संदृष्टाः मिथ्यास्त्रमा विषयर्थात् । जगत्प्रतीतमेतत्त्वं विष्ठि स्वमदिमर्शनम् ॥६०॥  
स्वमानं द्वैतमस्यमद्योषवैक्षमसुद्भवम् । दोषप्रकोपाः मिथ्यातथ्याः स्युद्देवमम्बाः ॥६१॥

तक विकारभावको अनुसृत होकर व्यक्तिके द्वेषी तुला लागेंगे ॥५०॥ जो प्राणियोंकी हिंसा करनेमें तत्पर हैं तथा मधु और मांसका भोजन जिन्हें प्रिय हैं ऐसे ये अधर्मी आह्मण हिंसारूप धर्मकी द्योषणा करेंगे ॥५१॥ लेद है कि दुष्ट आशयवाले ये आह्मण अंहिंसारूप धर्मको दूषित कर बेदमें कहे हुए हिंसारूप धर्मको पुष्ट करेंगे ॥५२॥ पापका समर्थन करनेवाले, शास्त्रको जाननेवाले अथवा पापके विह्नस्वरूप यज्ञोपवीतको धारण करनेवाले और प्राणियोंके मारनेमें सदाचाले अथवा पापके विह्नस्वरूप यज्ञोपवीतको धारण करनेवाली नहीं है तथापि जावेंगे ॥५३॥ इसलिए यह आह्मणोंकी रचना यद्यपि आज दोष उत्पन्न करनेवाली नहीं है तथापि आगामी कालमें खोटे पाखण्ड मतोंकी प्रवृत्ति करनेसे दोषका बीजरूप है ॥५४॥ इस प्रकार आगामी लोग उसे छोड़ नहीं सकते उसी प्रकार यद्यपि ये पुल्षोंके अभिश्रायोंकी विषमतासे आगामी कालमें दोष उत्पन्न करनेवाले हो जावेंगे तथापि इस समय इन्हें गुणवान् ही मानना चाहिए ॥५५-५६॥ इस प्रकार यह तेरी आह्मण रचनाका उत्तर तो हो चुका, अब तूने जो स्वप्न देखे हैं, लेद है, कि वे भी आगामी युग ( पंचम काल ) में धर्मकी स्थितिके हासको भूचित करनेवाले हैं ॥५७॥ वे स्वप्न दो प्रकारके माने गये हैं एक अपनी स्वस्थ अवस्थामें दिखनेवाले और दूसरे अस्वस्थ अवस्थामें दिखनेवाले । जो धातुओंकी समानता रहते हुए दिखते हैं वे स्वस्थ अवस्थाके कहलाते हैं और जो धातुओंकी विषमता-न्यूनाधिकता रहते हुए दिखते हैं वे अस्वस्थ अवस्थाके कहलाते हैं ॥५८॥ स्वस्थ अवस्थामें दिखनेवाले स्वप्न सत्य होते हैं वे अस्वस्थ अवस्थाके कहलाते हैं ॥५९॥ स्वस्थ अवस्थामें दिखनेवाले स्वप्न असत्य होते हैं इस प्रकार स्वप्नोंके फलका और अस्वस्थ अवस्थामें दिखनेवाले स्वप्न असत्य हुआ करते हैं इस प्रकार स्वप्नोंके विचार करनेमें यह जगत्प्रसिद्ध बात है ऐसा तू समझ ॥६०॥ स्वप्नोंके और भी दो भेद हैं एक दोषसे उत्पन्न होनेवाले और दूसरे दैवसे उत्पन्न होनेवाले । उनमें दोषोंके प्रकोप-

<sup>१</sup> धर्मधातिनः । <sup>२</sup> चोदनालक्षणम् । <sup>३</sup> भावि । <sup>४</sup> प्रतिकृदि । <sup>५</sup> भूतिः । <sup>६</sup> उत्तरकाले । 'उत्तरः काल आयतिः' इत्यमिधानात् । <sup>७</sup> भविष्यद्युगे । <sup>८</sup> विचारणम् ।

कल्याणाद्वयमेकाभ्याद् देवताचिह्नितश्च यत् । न मिथ्या लद्धिमे स्वप्नाः कलमेषो निवोध मे ॥६२॥  
 रुषाः स्वमे भृगार्धीशा ये श्रयोचिंशतिप्रमाः । निस्सप्तकां विहस्येमां क्षमा अनुभृतमाश्रिताः ॥६३॥  
 तत्कलं सन्मति मुख्यवा शैषतीर्थकरोदये । दुर्नियानामनुश्भूतिख्यायनं लक्ष्यतां स्फुटम् ॥६४॥  
 पुनरेकाकिनः सिंहपीतस्थान्वक्तुं सूर्योक्तपात् । भवेयुः सन्मतेस्तीर्थे सानुषङ्गाः । कुलिङ्गिनः ॥६५॥  
 करीन्द्रमारनिर्भुमद्युष्माश्वस्य वीक्षणात् । कृत्सनान् तपोगुणान्वोद्धु भास्तुं दुष्ट्यमसाधवः ॥६६॥  
 मूलोत्तरगुणेष्वात्तसङ्गतः केचनालसाः । भक्षयन्ते मूलतः केचित्तेषु यास्यन्ति सन्दत्ताम् ॥६७॥  
 ७नियानादुजयूथस्य शुष्कपत्रोपयोगिनः । यान्त्यसद्वृत्ततो त्यक्तसदाचाराः पुरा नराः ॥६८॥  
 करीन्द्रकन्धरारुद्धराखासुरविलोकनात् । आदिक्षत्रान्वयोचित्तां क्षमा “पास्यत्यकुलीककाः ॥६९॥  
 काँहरुकसंज्ञदर्शनाद्वमेकाभ्यया । मुक्तवा जैनान्मुमीनन्यमतस्थानन्वियुजैनाः ॥७०॥  
 प्रमूर्यतो प्रभूतानां भूलालामीक्षणात् प्रजाः । भजेयुनाभक्तमहित्येन्तरान् देवतास्थानो ॥७१॥  
 शुष्कमध्यतदागस्य पर्यन्तेऽस्त्रुतितीक्षणात् । प्रच्युत्यार्थनिवासाद् स्वाद्वर्मः प्रस्वन्तवासिषु ॥७२॥  
 पांसु भूसरक्षीष्वनियानाद्विसत्तमाः । नैव प्राकुर्भविष्यन्ति मुनयः पञ्चमे युगे ॥७३॥  
 शुनोऽर्चितस्य सत्कारैश्च हमाजनदर्शनात् । गुणव्यापाशसक्तारम् १५४ यस्यव्रतिनो द्विजाः ॥७४॥

से उत्पन्न होनेवाले झूठ होते हैं और देवसे उत्पन्न होनेवाले सच्चे होते हैं ॥६१॥ हे कल्याणरूप,  
कौंकि तु अवश्य ही देवताओंसे अधिष्ठित है इसलिए तेरे ये स्वप्न मिथ्या नहीं हैं । तु इनका  
फल मुझसे समझ ॥६२॥ तूने जो स्वप्नमें इस पृथ्वीपर अकेले विहार कर पर्वतके शिखरपर  
चढ़े हुए तेईस सिंह देखे हैं उसका स्पष्ट फल यही समझ कि श्रीमहावीर स्वामीको छोड़कर ज्ञेय  
तेईस तीर्थकरोंके समयमें दुष्ट नियोकी उत्पात नहीं होगा । इस स्वप्नका फल यही बतलाता  
है ॥६३-६४॥ तदनन्तर दूसरे स्वप्नमें अकेले सिंहके बच्चेके पीछे चलते हुए हरिणोंका समूह  
देखनेसे यह प्रकट होता है कि श्री महावीर स्वामीके तीर्थमें परिग्रहको धारण करनेवाले बहुत-से  
कुलिंगी हो जायेंगे ॥६५॥ बड़े हाथीके उठाने योग्य बोझसे जिसकी पीठ झुक गयी है ऐसे  
बोड़ेके देखनेसे यह मालूम होता है कि पंचम कालके साथू तपदचरणके समस्त मुण्डोंको धारण  
करनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥६६॥ कोई मूलगुण और उत्तरगुणोंके पालन करनेकी प्रतिज्ञा  
लेकर उनके पालन करनेमें आलसी हो जायेंगे, कोई उन्हें मूलसे ही भंग कर देंगे । और कोई  
उनमें मन्दता या उदासीनताको प्राप्त हो जायेंगे ॥६७॥ सूखे पत्ते खानेवाले वकरोंका समूह  
देखनेसे यह मालूम होता है कि आगामी कालमें मनुष्य सदाचारको छोड़कर दुराचारी हो  
जायेंगे ॥६८॥ गजेन्द्रके कन्धेपर चढ़े हुए वानरोंके देखनेसे जान पड़ता है कि आगे चलकर  
प्राचीन क्षत्रिय वंश नष्ट हो जायेंगे और नीच कुलवाले पृथ्वीका पालन करेंगे ॥६९॥ कौबोंके  
द्वारा उलूकको त्रास दिया जाना देखनेसे प्रकट होता है कि मनुष्य धर्मकी इच्छासे जैनमुनियोंको  
छोड़कर अन्य मतके साधुओंके समीप जायेंगे ॥७०॥ नाचते हुए बहुत-से भूतोंके देखनेसे मालूम  
होता है कि प्रजाके लोग नायकर्म आदि कारणोंसे व्यन्तरोंको देव समझकर उनकी उपासना  
करने लगेंगे ॥७१॥ जिसका मध्यभाग सूखा हुआ है ऐसे तालाबके चारों ओर पानी भरा  
हुआ देखनेसे प्रकट होता है कि धर्म आर्यखण्डसे हटकर प्रत्यन्तवासी-म्लेच्छ खण्डोंमें ही रह  
जायेगा ॥७२॥ धूलिसे मलिन हुए रत्नोंकी राशिके देखनेसे यह जान पड़ता है कि पंचम-  
कालमें कृदिंधारी उत्तम मूनि नहीं होंगे ॥७३॥ आदर-सत्कारसे जिसकी पूजा की

५ यस्मात् कारणत् । २ जानीहि । ३ मम सकाशात् । ४ -मस्थिताः ट० । ५ अनुगच्छत् । ६ सपरिग्रहाः ।  
७ दर्शनात् । ८ पालयिष्यद्विन्ति । ९ भरीणाम् । १० देवब्रह्माः । ११ स्लेच्छदेशोऽपुं प्रत्यन्तो स्लेच्छदेशः स्यात् ।

तहणस्य बृष्टयोर्मैदसो<sup>१</sup> विहृतीक्षणात् । तारुण्य एव आमण्ये स्थास्यन्ति न द्रव्यगत्तरे ॥७५॥  
 परिवेषोपरक्षस्य<sup>२</sup> स्वेतमानोनिश्चामनात् । नोष्पस्यते<sup>३</sup> तपोभृत्सु समनःपर्ययोऽवधिः ॥७६॥  
 अन्योन्यं सह संभूय बृष्टयोर्ममेक्षणात् । वर्त्मन्ति सुनयः साहचर्याञ्जिकविहारिणः ॥७७॥  
 बनावरणस्त्रुद्यस्य दर्शनाद्गुमालिनः । केवलाकौदयः प्राणो<sup>४</sup> न मवेत् पञ्चमे युगे ॥७८॥  
 उंसां स्त्रीणां च आरित्रिष्युतिः शुष्कद्वृक्षेष्वामेक्षणात् । महीषधिसोऽलेदो जीर्णपणविलोकनात् ॥७९॥  
 स्वप्रानेवंफलानेतात् विद्धि दूरविपाकिनः<sup>५</sup> । नाथ दोषस्तसः कोऽपि फलमेवां युगान्तरे ॥८०॥  
 हृति हृष्टफलान्यस्माद् बुध्वा वस्त्रं यथा तथा । धर्मे मतिं इहं धत्स्व विश्वविष्णोपदान्तर्य ॥८१॥  
 हृत्याकर्त्य गुरोवाक्यं स वर्णीश्रमपालकः । सन्देहकर्दमापायात् स प्रसाक्षमधान्मनः ॥८२॥  
 भूतो भूयः प्रणाम्येतों समाप्तुच्छय युनः पुनः<sup>६</sup> तुलस्याद्युते तुलसीलालस्य तुलसीलालस्य ॥८३॥  
 ततः प्रविश्य साकेतपुरमाकर्त्तोरणम् । केतुमालाकुलं पीरैः सानन्दमभिनन्दिनः ॥८४॥  
 शान्तिक्रियाभत्तश्चके तुःस्वप्रानिष्ठशास्तर्य । जिनामिषेकस्त्वपात्रदानार्थैः पुण्यचेष्टिसैः ॥८५॥  
 गोदौहैः<sup>७</sup> प्लाविता धात्री पूजिताश्च महर्षयः । महादानानि दक्षानि प्रीणितः प्रणयी जनः<sup>८</sup> ॥८६॥  
 निर्मापितासहस्रो घण्टा जिनविष्णैरलंकृताः । परार्थ्यरत्ननिर्माणाः संबद्धा हेमरज्जुभिः ॥८७॥

गयी है ऐसे कुत्तेको नैवेद्य खाते हुए देखनेसे मालूम होता है कि ब्रतरहित ब्राह्मण गुणी पात्रोंके समान सत्कार पायेंगे ॥७४॥ ऊँचे स्वरसे शब्द करते हुए तरुण बैलका विहार देखनेसे सूचित होता है कि लोग तरुण अवस्थामें ही मुनिपदमें ठहर सकेंगे, अन्य अवस्थामें नहीं ॥७५॥ परिमण्डलसे घिरे हुए चन्द्रमाके देखनेसे यह जान पड़ता है कि पंचमकालके मुनियोंमें अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान नहीं होगा ॥७६॥ परस्पर मिलकर जौते हुए दो बैलोंके देखनेसे यह सूचित होता है कि पंचमकालमें मुनिजन साध-साथ रहेंगे, अंकेले विहार करनेवाले नहीं होंगे ॥७७॥ मेधोंके आवरणसे रुके हुए सूर्यके देखनेसे यह मालूम होता है कि पंचमकालमें प्रायः केवल-ज्ञानरूपी सूर्यका उदय नहीं होगा ॥७८॥ सूखा वृक्ष देखनेसे सूचित होता है कि स्त्री-पुरुषोंका चारित्र भ्रष्ट हो जायेगा और जीर्ण पत्नोंके देखनेसे मालूम होता है कि महाओषधियोंका रस तष्ट हो जायेगा ॥७९॥ ऐसा फल देनेवाले इन स्वप्नोंको तु दूरविपाकी अर्थात् बहुत समय बाद फल देनेवाले समझ इसलिए इनसे इस समय कोई दोष नहीं होगा, इनका फल पंचम-कालमें होंगा ॥८०॥ है वत्स, इस प्रकार मुझसे इन स्वप्नोंका यथार्थ फल जानकर तू समस्त विद्योंकी शान्तिके लिए धर्ममें अपनी बुद्धि कर ॥८१॥ वर्णश्रिमको रक्षा करनेवाले भरतने गुरुदेवके उपर्युक्त वचन सुनकर सन्देहरूपी कीचड़के नाश होनेसे अपना चित्त निर्मल किया ॥८२॥ वे भगवान्को बार-बार प्रणाग कर तथा बार-बार उनसे पूछकर गुरुदेवके अनुप्रहसे प्रसन्न होते हुए बड़ी कठिनाईसे वहाँसे लौटे ॥८३॥ तदनन्तर तगरके लोग आनन्दके साथ जिनका अभिनन्दन कर रहे हैं ऐसे उन महाराज भरतने जिसमें जगह-जगह तोरण बांधे गये हैं और जो पताकाओंकी पंक्तियोंसे भरा हुआ है ऐसे अयोध्या नगरमें प्रवेश कर खोटे स्वप्नोंसे होनेवाले अनिष्टकी शान्तिके लिए जिनेन्द्रदेवका अभिषेक करना, उत्तम पात्रको दान देना आदि पुण्य क्रियाओंसे शान्ति कर्म किया ॥८४-८५॥ उन्होंने गाथके द्वधसे पूथिकीका सिचन किया, महर्षियोंकी पूजा की, बड़े-बड़े दान दिये और ग्रेमीजनोंको सन्तुष्ट किया ॥८६॥ तदनन्तर उन्होंने बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुए, सुवर्णकी रसिसयोंसे बंधे हुए और जिनेन्द्रदेवकी प्रति-

लभ्विताश्च पुरद्वारि<sup>१</sup> लाश्च सुविंशतिप्रमाणः । राजवेशम महाद्वारगोपुरेष्वाप्यनुक्रमात् ॥८८॥  
 पदा किल विनिर्वाति प्रचिकात्यप्यर्थं प्रभुः । तदा मौख्यमलभामिरस्य स्वादहृतां स्मृतिः ॥८९॥  
 स्मृत्वा तसीऽहंदृचर्चानां भक्त्या कृत्वा मिनन्दनाम् । पूजयत्यभित्तिकामन् प्रविशांश्च स पुण्यधीः ॥९०॥  
 रेतुः सूत्रेषु संप्रोक्ता घण्टास्तः परमेष्ठिनाम् । सद्धर्घवटिताहीका अन्धानामिव देशलाः ॥९१॥  
 लोकचूडामणेहतस्य मौलिलग्ना विरेतिरे । पादचक्राया जिनस्येव घण्टास्ता लोकसंभवाः ॥९२॥  
 रत्नतोरणविम्बासे स्थापितास्ता निधीशिना । दृष्टवाहं द्वन्द्वाहेतोलोकोऽप्यासीसदादरः ॥९३॥  
 पौर्जन्मैरतः स्वेषु<sup>२</sup> वेशमतोरथदामसु । यथाविमवमावदा घण्टास्ता सपरिच्छदा<sup>३</sup> ॥९४॥  
 अदिराजकृतां सृष्टि ग्रजास्तां चहुमेनिरे । प्रथगारं चतोऽद्यापि लक्ष्या चन्दनमालिकाः ॥९५॥  
 वन्दनार्थं कृता माला यतस्ता भरतेशिना । तसी वन्दनमालाल्यां प्राप्य रूढिं गताः किंतौ ॥९६॥  
 धर्मशीले भक्तिपाले यान्ति तच्छीलतां<sup>४</sup> प्रजाः । अताच्छील्यमतच्छीले<sup>५</sup> यथा राजा तथा प्रजाः ॥९७॥  
 तदा कालानुमावेन प्रायो धर्मप्रिया नराः । साधीयः साधुवृत्तेऽस्मिन् स्वामिम्बासम् हिते रक्ताः ॥९८॥  
 सुकालश्च सुराजा च लम्बं सक्षिदितं द्रव्यम् । तसी धर्मप्रिया जाताः प्रजास्तदनुरोधतः ॥९९॥

मायोंसे सजे हुए बहुत से घण्टे बनवाये तथा ऐसे-ऐसे चौबोस घण्टे बाहरके दरवाजेपर, राजभवन-के महाद्वारपर और गोपुर दरवाजोंपर अनुक्रमसे टैंगवा दिये ॥८७-८८॥ जब वे चक्रवर्ती उन दरवाजोंसे बाहर निकलते अथवा भीतर प्रवेश करते तब मुकुटके-भग्नभागपर लगे हुए घण्टाओंसे उन्हें चौबोस तोर्थकरोंका स्मरण हो आता था । तदनन्तर स्मरण कर उन अरहन्तदेवकी प्रतिमाओंको वे नमस्कार करते थे इस प्रकार पुण्यरूप बुद्धिको धारण करनेवाले महाराज भरत निकलते और प्रवेश करते समय अरहन्तदेवकी पूजा करते थे ॥८९-९०॥ सूत्र अर्थात् रस्सियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले वे परमेष्ठियोंके घण्टा ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो उत्तम-उत्तम अर्थोंसे भरी हुई और सूत्र अर्थात् आगम वाक्योंसे सम्बन्ध रखनेवाली शन्योंकी सुन्दर टीकाएँ ही हों ॥९१॥ महाराज भरत स्वयं तीनों लोकोंके चूडामणि थे उनके मस्तक-पर लगे हुए वे लोकप्रिय घण्टा ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनेन्द्रदेवके चरणोंकी छाया ही हो ॥९२॥ निधियोंके स्वामी भरतने अरहन्तदेवकी वन्दनाके लिए जो घण्टा रत्नोंके तोरणों-की रचनामें स्थापित किये थे उन्हें देखकर अन्य लोग भी उनका आदर करने लगे थे अर्थात् अपने-अपने दरवाजेके तोरणोंकी रचनामें घण्टा लगवाने लगे थे । उसी समयसे नगरवासी लोगोंने भी अपने-अपने धरकी तोरणमालाओंमें अपने-अपने वैभवके अनुसार जिनप्रतिमा आदि सामग्रीसे युक्त घण्टा बांधे थे ॥९३-९४॥ उस समय प्रथम राजा भरतकी बनायी हुई इस सृष्टिको प्रजाके लोगोंने बहुत माना था, यही कारण है कि आज भी प्रत्येक घरपर वन्दन मालाएँ दिखाई देती हैं ॥९५॥ चौंकि भरतेश्वरने वे मालाएँ अरहन्तदेवकी वन्दनाके लिए बनवायी थी इसलिए ही वे वन्दनमाला नाम पाकर पृथिवीमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुई हैं ॥९६॥ यदि राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा भी धर्मत्मा होती है और राजा धर्मत्मा नहीं होता है तो प्रजा भी धर्मत्मा नहीं होती है, यह नियम है कि जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है ॥९७॥ उस समय कालके प्रभावसे प्रायः सभी लोग धर्मप्रिय थे सो ठीक ही है क्योंकि सदाचारी भरतके राजा रहते हुए सब लोग अपना हित करनेमें लगे हुए थे ॥९८॥ उस समय अच्छा राजा और अच्छी प्रजा दोनों ही एक साथ मिल गये थे इसलिए राजाके अनुरोधसे प्रजा

१ बहिद्वारि ल०, म०, द० । २ रत्नादिसम्पर्यः । ३ तोरणमालाम् । ४ जिनविम्बादिपरिकरसहितः ।  
 ५ धर्मशीलताम् । ६ अधर्मत्वम् । ७ अधर्मशीले सति ।

एवं धर्मप्रियः सम्भाद् धर्मस्थानभिनन्दति । मखेति निखिलो लोकस्तदा धर्मे इति स्वधात् ॥१००॥

स चर्मविजयी सम्भाद् सदृशः शुचिर्लिङ्गिः । १ प्रहृतिष्वनुरक्षोऽसु व्यधाद् धर्मकिपादरम् ॥१०१॥

मरतोऽभिरतो<sup>२</sup> धर्मे वर्णं तदनुजीविनः । इति तदृशसम्भवीयुमैलिकदा भवीकितः ॥१०२॥

सोऽयं<sup>३</sup> साधितकामार्थक्री चक्रानुभावतः । चक्रित्वा अत्यन्ते लभित्वा देते च मैलिकदा भवतः ॥१०३॥

दानं पूजां च शीलं च दिने पर्वण्युपोवितम्<sup>४</sup> । धर्मशतुर्धिः सोऽयमामातो<sup>५</sup> शृहमेधित्वा ॥१०४॥

ददौ दानमसौ सदृश्यो मुनिष्यो विहितादरम् । समेतो वचमिः मुण्डैः गुणैः सहभिरमितः ॥१०५॥

सोऽयाद् विशुद्धमाहारं यथायोगं च भेषणम् । प्राणिष्योऽभयदानं च दानस्थैतादसी गतिः ॥१०६॥

जिवेषु मक्षिमातन्त्रस्तर्तुजायां श्रतिं दधी । पूजानां पूजनाल्लोके पूज्यत्वमिति भावयम् ॥१०७॥

चैत्यचैत्यालयादीनां निर्माणपुरस्सरम् । स चक्र परमामित्यो कल्पवृक्षपुष्पग्रथाम् ॥१०८॥

शीलानुपालने यतो मनस्यस्य विभोरभूत् । शीलं हि रक्षितं यज्ञावात्मानमनुरक्षति ॥१०९॥

व्रतानुपालनं शीलवृत्तान्युक्तान्यगारिणाम् । स्थूलहिंसाविरत्यादिलक्षणानि च लक्षणैः ॥११०॥

<sup>६</sup> समावनानि तान्येष यथायोगं प्रणाल्यन् । प्रजानां पालकः सोऽभूद् धौरेयो शृहमेधित्वा ॥१११॥

पर्वोपवासमाहपाठै<sup>७</sup> जिनागारे समाहितः । कुर्वन् सामायिकं सोऽधान्मुक्तिवृत्तं च तत्क्षणम्<sup>८</sup> ॥११२॥

धर्मप्रिय हो गयी थी ॥१०९॥ यह सम्भाद् स्वयं धर्मप्रिय है और धर्मतिमा लोगोंका सन्मान करता है यही मानकर उस समय लोग धर्ममें श्रीति करने लगे थे ॥१००॥ वह चक्रवर्ती धर्मविजयी था, सदाचारी था, पवित्र था और बलिष्ठ था इसलिए ही वह अपनेपर प्रेम रखनेवाली प्रजामें धार्मिक क्रियाओंका आदर करता था अर्थात् प्रजाको धार्मिक क्रियाएं करनेका उपदेश देता था ॥१०१॥ ‘भरत धर्ममें तत्पर है और हम लोग उसके सेवक हैं’ यही समझकर मुकुटबद्ध राजा उनके आचरणका अनुसरण करते थे । भावार्थ—अपने राजाको धर्मतिमा जानकर आश्रित राजा भी धर्मतिमा बन गये थे ॥१०२॥ चक्रके प्रभावसे अर्थ और काम दोनों ही जिनके स्वाधीन हो रहे हैं ऐसे चक्रवर्ती भरत अर्थ और कामकी सफलता होनेपर केवल धर्ममें ही एकाग्रताको प्राप्त हो रहे थे ॥१०३॥ दान देना, पूजा करना, शील पालन करना और पर्वके दिन उपवास करना यह गृहस्थोंका चार प्रकारका धर्म माना गया है ॥१०४॥ नव प्रकारके पुण्य और सात गुणोंसे सहित भरत उत्तम मुनियोंके लिए बड़े आदरके साथ दान देते थे ॥१०५॥ वे विशुद्ध आहार, योग्यतानुसार औषधि और समस्त प्राणियोंके लिए अभय दान देते थे सो ठीक ही है क्योंकि दानकी यही तीन गति हैं ॥१०६॥ संसारमें पूज्य पुरुषोंकी पूजा करनेसे पूज्यपना स्वयं प्राप्त हो जाता है ऐसा विचार करते हुए महाराज भरत जिनेन्द्रदेवमें अपनी भक्ति बढ़ाते हुए उनकी पूजा करनेमें बहुत ही संतोष धारण करते थे ॥१०७॥ उन्होंने अनेक जिनबिम्ब और जिनमन्दिरोंकी रचना कराकर कल्पवृक्ष नामका बहुत बड़ा यज्ञ ( पूजन ) किया था ॥१०८॥ उनके मनमें शीलकी रक्षा करनेका प्रयत्न सदा विद्यमान रहता था सो ठीक ही है क्योंकि प्रयत्नपूर्वक रक्षा किया हुआ शील आत्माकी रक्षा करता है ॥१०९॥ व्रतोंका पालन करना शील कहलाता है और स्थूलहिंसाका त्याग करना ( अहिंसाणु व्रत ) आदि जो गृहस्थोंके व्रत हैं वे लक्षणोंके साथ पहले कहे जा चुके हैं ॥११०॥ उन व्रतोंको भावनाओं सहित यथायोग्य रीतिसे पालन करते हुए प्रजापालक महाराज भरत गृहस्थोंमें मुख्य गिने जाते थे ॥१११॥ वे पर्वके दिन उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर चित्तको स्थिर कर सामायिक करते

१ प्रजापरिवारेणु । २ भरतो निरतो ल०, म० । इष्टतोऽभिरतो अ०, स० । ३ अनुगच्छन्ति स्म । ४ तृपाः ।

५ स्वाधीन—ल०, म०, स०, अ०, प० । ६ धर्मे अनन्यवृत्तिम् । ‘एकतान अनन्यवृत्तिः’ इत्यभिषानात् ।

७ उपवासः । ८ कथितः । ९ मैत्रीप्रमोदादिभावनासहितानि । १० प्रतिज्ञा कृत्वा । —भाष्याय ल०, प० ।

११ सामायिककर्त्तव्यन्तम् ।

जिनानुस्मरणे सस्थ समाधानमुपेयुषः । शैथिलयाद् ग्रात्रवन्वस्य<sup>१</sup> स्वस्तान्यभरणान्यहो ॥११३॥  
तथापि बहुचिन्तस्य धर्मचिन्ताऽभवद् ददा । धर्मेहि चिन्तिते सर्वं चिन्तयं स्यादनुचिन्तितम् ॥११४॥  
लस्यालिलाः कियारम्भा धर्मचिन्तापुरस्तराः । जाता जातमहोदकं पुण्यपाकोत्थसंपदः ॥११५॥  
प्रातरुद्दन्तमुद्गृतनीशान्धतमस<sup>२</sup> रविम् । भगवत्कैवल्याकस्य प्रतिबिम्बमसंस्त सः ॥११६॥  
प्रभातमस्तोद्युतप्रबुद्धकमलाकरात् । हृदि सोऽधाजिनालापकलापानिव शीतलान् ॥११७॥  
थार्मिकस्यास्य<sup>३</sup> कामार्थैचिन्ताऽभूदानुषक्तिकी<sup>४</sup> । तात्पर्यं त्वभवद्यमें कृत्यश्रेयोऽनुबन्धिति ॥११८॥  
प्रातरुद्धाय धर्मस्थै<sup>५</sup> कृतधर्मानुचिन्तनः । ततोऽर्थकामसंपत्ति सहायमात्यैर्न्यरूपयत्<sup>६</sup> ॥११९॥  
तत्पादुत्थितमाश्रोऽसौ संशृज्य गुरुवैष्टतम् । कृतमङ्गलनेष्वयो<sup>७</sup> धर्मसिन्दमधिहितः ॥१२०॥  
प्रजानां सदन्नद्युत्तचिन्तनैः क्षणमासितः । तत आयुक्तकान्<sup>८</sup> स्वेषु नियोगेष्वन्वशाद् घिसुः ॥१२१॥  
नृपासनमध्यास्य यात्रांतमाध्यगः<sup>९</sup> । नृपात् लंगलकान् इत्यसेष्ववस्तकाङ्गक्षणः ॥१२२॥  
कांशिदालोकनैः कांशित्समानदानायैस्तर्पयामाय पार्थिवान् ॥१२३॥

हुए जिनमन्दिरमें ही रहते थे और उस समय ठीक मुनियोंका आचरण धारण करते थे ॥११२॥ जिनेन्द्रदेवका स्मरण करनेमेंवे समाधानको प्राप्त हो रहे थे – उनका चित्त स्थिर हो रहा था और आश्चर्य है कि शरीरके बन्धन शिथिल होनेसे उनके आभूषण भी निकल पड़े थे ॥११३॥ यद्यपि उन्हें बहुत पदार्थोंकी चिन्ता करनी पड़ती थी तथापि उनके धर्मकी चिन्ता अत्यन्त हड़ थी सो ठीक ही है क्योंकि धर्मकी चिन्ता करनेपर चिन्ता करने योग्य समस्त पदार्थोंका चिन्तवन अपने आप हो जाता है ॥११४॥ बड़े भारी फल देनेवाले पुण्यकर्मके उदयमें जिन्हें अनेक भूत्याकृति प्राप्त हुई है ऐसे भरतकी समस्त क्रियाओंका प्रारम्भ धर्मके चिन्तवनपूर्वक ही होता था अर्थात् महाराज भरत समस्त कार्योंके प्रारम्भमें धर्मका चिन्तवन करते थे ॥११५॥ वे प्रातःकाल आँख खोलकर जब रामस्ता दिलाऊओंको सबेरेकी लालिमारो लाल लाल देखते थे तब ऐसा आनंद से मार्गो ये दिशाएँ जिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंकी लालिमासे ही लाल-लाल हो गयी है ॥११६॥ जिसने रात्रिका गाढ़ अन्धकार नष्ट कर दिया है ऐसे सूर्यको प्रातःकालके समय उदय होता हुआ देखकर वे ऐसा समझकर उठते थे मातो यह भगवान्‌के केवलज्ञानका प्रतिबिम्ब ही हो ॥११७॥ प्रातःकालकी चायुके चलनेसे खिले हुए कमलोंके समूहको वे अपने हृदयमें जिनेन्द्र भगवान्‌की दिव्यधर्मनिके समूहके समान शीतल समझते थे ॥११८॥ वे बहुत ही धर्मतमा थे, उनके काम और अर्थकी चिन्ता गौण रहती थी तथा उनका मुख्य तात्पर्य सब प्रकारका कल्याण करनेवाले धर्ममें ही रहता था ॥११९॥ वे सबैरे उठकर पहुले धर्मतमा पुरुषोंके साथ धर्मका चिन्तवन करते थे और फिर मन्त्रियोंके साथ अर्थ तथा कामरूप सम्पदाओंका विचार करते हुए ॥१२०॥ वे शश्यसे उठते ही देव और गुरुओंकी गूजा करते थे और फिर मांगलिक वेष धारण कर धर्मसिनपर आरूढ़ होते थे ॥१२१॥ वहाँ प्रजाके सदाचार और असदाचारका विचार करते हुए वे क्षण-भर ठहरते थे तदनन्तर अधिकारियोंको अपने-अपने कामपर नियुक्त करते थे अर्थात् अपना-अपना कार्य करनेकी आज्ञा देते थे ॥१२२॥ इसके बाद सभाभवनके बीचमें जाकर राजसिंहासनपर विराजमान होते तथा सेवाके लिए अवसर चाहनेवाले राजाओं-का सन्मान करते थे ॥१२३॥ वे कितने ही राजाओंको दर्शनसे, कितनों ही को मुसकानसे,

१ गलितानि । २ निशासंबन्धिति । ३ विकसित । ४ अमूल्या । ५ धर्मस्थैः सह । ६ विचारमकरोत् ।  
७ मङ्गलालंकारः । ८ आसनमण्डलविशेषम् । ९ तत्परान् । १० सभादर्शन-अ०, स० । सभादर्शन- ५०, ल०,  
म० । महदूदशीर्णं येषां ते महादर्शनस्तेषां वष्ट्याः । सम्प्रजनमध्यवर्तीं सम्भित्यर्थः ।

सत्रोपायनसंपर्या समायातान् महत्तमान् । वचोहरांश्च संमान्य कृतकार्यान् प्रसर्जयत् ॥ १२५ ॥  
 कलाविदश्च नृथादिदर्शनैः समुपस्थितान् । परितीषिकदानेन महता समर्पयत् ॥ १२६ ॥  
 तदो विसर्जितास्थानः प्रोत्थाय नृपविष्ट्रान् । स्वेच्छाविहारमकरोद् विनोदैः सुकुमारकैः ॥ १२७ ॥  
 ततो अध्यदिनेऽभ्यर्थे कृतमज्जनसंविधिः । तमुस्थिति स निर्वर्त्य निरविक्षयै प्रसाधनम् ॥ १२८ ॥  
 चामरोक्षेपताम्बूलदानस्त्र्याहनादिभिः । परिवेशवेत्यैनं परिवाराश्वानाः स्वतः ॥ १२९ ॥  
 ततो सुकुमोत्तरास्थाने स्थितः कलिपयैर्नृपैः । समं विदर्घमण्डलया विश्वागोष्ठीरमावयत् ॥ १३० ॥  
 तत्र वारशिलासिन्यो तृपत्त्वाभिकाश तम् । परिवक्षुरुपारुपताहण्यमदकक्षाः ॥ १३१ ॥  
 तासामालापसंहारपरिहासकथादिभिः । सुखाभिकामसौ भेजे शोगाङ्गेश सुहृत्तकम् ॥ १३२ ॥  
 ततस्तुर्यावशेषेऽङ्गि पर्यटन्मणिकृहिमे । वीक्षणे स्म परो शोभामभितो राजवेशमनः ॥ १३३ ॥  
 सन्दर्भसचिवैः कंचित् समालम्बयांसपीठके । परिकामचित्तशेषैः रेजे सुरकुमारकल् ॥ १३४ ॥  
 रजन्यामपि यस्त्वत्यमुचितं चक्रवर्तिनः । तदावरन् सुखेनैषं प्रियामामत्यवाहयत् ॥ १३५ ॥  
 कदाचिदुचितां वैलो नियोग इति केवलम् । मन्त्रयामास मन्त्राणैः कृतकार्योऽपि चक्रमृत् ॥ १३६ ॥  
 सन्त्रावायगता चिन्ता नास्यासीद् विजितशितेः । तन्त्रै विन्तैष भावस्य स्वतन्त्रहर्षं भारते ॥ १३७ ॥

कितनों ही को वार्तालापसे, कितनों ही को सम्मानसे और कितनों ही को दूने आदिसे सन्तुष्ट करते थे ॥ १२४ ॥ वे बहुपर भेट ले-लेकर आये हुए बड़े-बड़े पुरुषों तथा दूतोंको सम्मानित कर और उनका कार्य पूरा कर उन्हें बिदा करते थे ॥ १२५ ॥ भूत्य आदि दिखानेके लिए आये हुए कलाओंके जाननेवाले पुस्तकोंको बड़े-बड़े परितोषिक देकर सन्तुष्ट करते थे ॥ १२६ ॥ तदनन्तर सभा विसर्जन करते और राजसिंहासनसे उठकर कोभल क्रीड़ाओंके साथ-साथ अपनी इच्छानुसार विहार करते थे ॥ १२७ ॥ तत्पहचान दोपहरका समय निकट आनेपर स्नान आदि करके भोजन करते और फिर अलंकार धारण करते थे ॥ १२८ ॥ उस समय परिवारकी स्त्रियाँ स्वर्ण आकर चमर ढोलना, पान देना और पैर दाबना आदिके द्वारा उनकी सेवा करती थीं ॥ १२९ ॥ तदनन्तर भोजनके बाद बैठने योग्य भवनमें कुछ राजाओंके साथ बैठकर चतुर लोगोंकी घण्डलीके साथ-साथ विद्याकी चर्चा करते थे ॥ १३० ॥ वही जबानीके मदसे जिन्हें उद्घटता प्राप्त हो रही है ऐसी वेश्याएँ और प्रियराजियाँ आकर उन्हें चारों ओरसे धेर लेती थीं ॥ १३१ ॥ उनके आभाषण, प्रस्परकी बातचीत और हास्यपूर्ण कथा आदि भोगोंके साधनोंसे वे वही कुछ देर तक सुखसे बैठते थे ॥ १३२ ॥ इसके बाद जब दिनका चौथाई भाग शेष रह जाता था तब मणियोंसे जड़ी हुई जमीनपर टहलते हुए वे चारों ओर राजमहलकी उत्तम शोभा देखते थे ॥ १३३ ॥ कभी वे क्रीड़ासचिव अर्थात् क्रीडामें सहायता देनेवाले लोगोंके कल्पोंपर हाथ रखकर इधर-उधर घूमते हुए देवकुमारोंके समान सुशोभित होते थे ॥ १३४ ॥ रातमें भी चक्रवर्तीके योग्य जो कार्य थे उन्हें करते हुए वे सुखसे राशि व्यतीत करते थे ॥ १३५ ॥ यद्यपि वे चक्रवर्ती कृतकृत्य हो चुके थे अर्थात् विजय आदिका समस्त कार्य पूर्ण कर चुके थे तथापि केवल नियोग समझकर कभी-कभी उचित समयपर मन्त्रियोंके साथ सलाह करते थे ॥ १३६ ॥ जिन्होंने

१ महत्तरान् । २ दूतान् । ३ परितीपे भवः । ४ मृदुभिः । ५ मध्याह्न । ६ अनुलेपनम् । ७ वस्त्र-माल्याभरणादि । 'वाकल्पवेशो तेष्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्' । ८ पादमर्दन । ९ परिचयी चक्रिरे । १० भोजनान्ते स्थान्तु योग्यास्थाने । ११ विद्वत्समूहेन । १२ मिथोभाषण । 'संलग्नो भाषणं मिथः' इत्यभिधानात् । १३ सुखस्थलम् । १४ क्रीडासहाय । 'क्रीडा लीला च नर्म च' इत्यभिधानात् । १५ अंसो भुजघिर एव पीठस्तस्मिन् । १६ इतस्ततः । १७ रात्रि नयति स्म । १८ उचितकालपर्यन्तम् । १९ स्वराष्ट्रचिन्ताम् । अथवा प्रश्नचिन्ताम् । 'तन्त्रः प्रथाने सिद्धान्ते सूत्रवाये परिष्ठेषे' इत्यभिधानात् ।

तेन<sup>१</sup> पाद्गुण्ड्यमस्यस्तमपरिक्षानहानये । शासतोऽस्याविपक्षां इमां कृतं<sup>२</sup> मन्त्र्यादिचर्चया<sup>३</sup> ॥१३०॥  
 राजविद्याश्वतस्त्रोऽभ्युः कदाचित्स्व कृतक्षणः<sup>४</sup> । अ्याचलयो<sup>५</sup> राजपुत्रेभ्यः त्वातये स विचक्षणः ॥१३१॥  
 कदाचित्तिथिरवा नामकरोऽग्नि निरोक्षणम् । भाण्डागारपदे तानि तस्य तन्त्रं पद्मःपि च ॥१३२॥  
 कदाचिद्ग्रन्थशास्त्रेषु याः स्युविंप्रसिपस्य<sup>६</sup> । निराचकार<sup>७</sup> ताः कृद्वलाः ख्यापयन्<sup>८</sup> विश्विन्मत्सम्<sup>९</sup> ॥१३३॥  
 आसोपज्ञेषु तर्वेषु काश्चित् संजातसंशयान् । ततोऽपाहृत्य संशोतेस्तत्तत्वं<sup>१०</sup> निरणीक्षयत्<sup>११</sup> ॥१३४॥  
 तथाऽस्याद्यवेशास्त्रार्थे<sup>१२</sup> कामनीतौ च पुष्कलम् । प्रावीण्यं प्रथमामास यथात्र न परः कृती<sup>१३</sup> ॥१३५॥  
 १३ हस्तितन्त्रेऽद्वतन्त्रे च इट्का स्वातन्त्र्यमीशितः । सूलतन्त्रस्य<sup>१४</sup> कर्ताऽद्यमित्यास्था<sup>१५</sup> तद्विदामभूत् ॥  
 १४ आयुर्वेदे स दीर्घायुरायुर्वेदो तु मूर्तिमान् । इति लोको निरारेक<sup>१६</sup> इलाघते सम निधीशिनम् ॥१३६॥  
 सोऽर्थाती<sup>१७</sup> पदविद्यायां स कृता<sup>१८</sup> वारलंकृती<sup>१९</sup> । स छन्दसांगतिष्ठलन्द<sup>२०</sup> इत्यासीत् संस्कृतः शताम् ॥१३७॥  
 ११ तदुपज्ञ निमित्तानि शास्त्रान्<sup>२१</sup> तदुपक्रमम्<sup>२२</sup> । तस्मग्ने<sup>२३</sup> ज्योतिषाः<sup>२४</sup> ज्ञानं तन्मतं तेन<sup>२५</sup> तत्त्वम्<sup>२६</sup> ॥१३८॥

समस्त पृथिवी जीत ली है और जो इस भरतक्षेत्रमें स्वतन्त्र हैं ऐसे उन भरतको अपने तथा परराष्ट्रकी कुछ भी चिन्ता थी, यदि चिन्ता नहीं थी, तो केवल तन्त्र अर्थात् स्वराष्ट्रकी ही चिन्ता थी ॥१३७॥ उन्होंने अपना अज्ञान नष्ट करनेके लिए ही छह गुणोंका अभ्यास किया था क्योंकि जब वे शत्रुरहित पृथिवीका पालन करते थे तब उन्हें सन्धि विश्रह आदिकी चर्चासे क्या प्रयोजन था ॥१३८॥ अतिशय विद्यान् महाराज भरत केवल प्रसिद्धिके लिए ही कभी-कभी बड़े उत्साहके साथ राजपुत्रोंके लिए आन्वीक्षिकी, व्रघी, वार्ता और दण्डनीति इन चार राजविद्याओंका व्याख्यान करते थे ॥१३९॥ वे कभी-कभी निधियों और रत्नोंका भी निरोक्षण करते थे । क्योंकि निधियों और रत्नोंमें से कुछ तो उनके भाण्डारमें थे और कुछ उनकी सेनामें थे ॥१४०॥ कभी-कभी वे सर्वज्ञदेवका मत प्रकट करते हुए धर्मशास्त्रमें जो कुछ विवाद थे उन सबका निराकरण करते थे ॥१४१॥ भगवान् अरहन्तदेवके कहे हुए तत्त्वोंमें जिन किन्हींको सन्देह उत्पन्न होता था उन्हें वे उस सन्देहसे हटाकर तत्त्वोंका यथार्थ निर्णय कराते थे ॥१४२॥ इसी प्रकार वे अर्थशास्त्रके अर्थमें और कामशास्त्रमें अपना पूर्ण चातुर्थ इस तरह प्रकट करते थे कि फिर इस संसारमें उनके समान दूसरा चतुर नहीं रह जाता था ॥१४३॥ हस्तितन्त्र और अश्वतन्त्रमें महाराज भरतकी स्वतन्त्रता देखकर उन शास्त्रोंके जाननेवाले लोगोंको यही विश्वास हो जाता था कि इन सबके मूल शास्त्रोंके कर्ता यही हैं ॥१४४॥ आयुर्वेद के विषयमें तो सब लोग निधियोंके स्वामी भरतकी बिना किसी शंकाके यही प्रशंसा करते थे कि यह दीर्घायु क्या मूर्तिमान् आयुर्वेद ही है अर्थात् आयुर्वेदने ही क्या भरतका शरीर धारण किया है ॥१४५॥ इसी प्रकार सज्जन लोग यह भी मानते थे कि वे व्याकरण-विद्यामें कुशल हैं, शब्दालंकारमें निपुण हैं, और छन्दशास्त्रके प्रतिविम्ब हैं ॥१४६॥ निमित्तशास्त्र सबसे पहले उन्हींके बनाये हुए हैं, शकुनशास्त्र उन्हींके कहे हुए हैं और ज्योतिष शास्त्रका ज्ञान उन्हीं-

१ चक्रिणा । २ पर्यात्मम् । अलमित्यर्थः । ३ सन्धिविश्वभाकादिविचारण । ४ आन्वीक्षिकी श्री वार्ता दण्ड-नीतिश्चतस्रो राजविद्या । ५ कृतोत्साह । ६ चबति सम । ७ सैन्यस्थाने परियहे बभूवुरित्यर्थः । ८ विसंबादाः ।  
 ९ निराकृतवान् । १० प्रकटीकुर्वन् । ११ सर्वज्ञमतम् । १२ संशयमत् । १३ निर्णयमकारयत् । १४ नीति-शास्त्रार्थे । १५ कुशलः । १६ गजशास्त्रे । १७ मूलशास्त्रस्य । १८ इति दुष्टिः । १९ वैष्णवशास्त्रे । २० निः-पञ्चम । २१ व्याकरणशास्त्रमधीतवान् । २२ कुशलः । २३ शब्दालंकारे । २४ प्रतिनिधिः । २५ तदुपज्ञनिमि-त्तानि ८०, म० । तेन प्रथमोक्तम् । २६ शकुनशास्त्रम् । २७ तेन प्रथमपुस्कान्तम् । २८ तस्य भरतस्य सृष्टिः । २९ ज्योतिषशास्त्रम् । ३० तेन कारणेन । ३१ निमित्तादित्रयम् ।

स निमित्तं<sup>१</sup> निमित्तानां<sup>२</sup> तन्त्रे मन्त्रे सशाकुने । वैष्णवाने<sup>३</sup> परं देवमित्यभूसंमतोऽधिकम्<sup>४</sup> ॥१४८॥  
तत्संभूतौ<sup>५</sup> सुद्भूतमभूतं पुरुषलक्षणम् । उदाहरणमन्यथा लक्षितं चेन्न तत्त्वे ॥१४९॥  
अन्येष्वपि कलाशालसंग्रहेषु कृतागमाः<sup>६</sup> । तमेवादर्शी<sup>७</sup> मालोक्य संशयाद्याद् अवरसिषुः<sup>८</sup> ॥१५०॥  
येवास्थ सहजा प्रश्ना पूर्वजन्मानुषज्ञिणाः<sup>९</sup> । तेनैवा विश्वविद्यासु जाता परिणतिः परा ॥१५१॥  
हृत्यं-सर्वेषु शास्त्रेषु कलासु सकलासु च । लोके स संमतिं प्राप्य तद्विद्यानां मतोऽभवत् ॥१५२॥  
किमत्र बहुनोक्तेन प्रश्नापारमित्यो ममुः । हृत्यस्य लोकहृत्यस्य स भेजे सूक्ष्मधारताम् ॥१५३॥  
राजविद्वान्ततत्त्वज्ञो<sup>१०</sup> धर्मशास्त्रार्थतत्त्वविद् । परिणयात्म कलाज्ञाने सोऽभूत्यूर्ध्वं सुमेधसाम् ॥१५४॥  
इत्याक्षिराजं<sup>११</sup> तत्सम्ब्राह्मो राजविद्वार्थकम्<sup>१२</sup> । <sup>१३</sup> तत्सार्वभूमित्यस्य दिशासूचकालितं यशः ॥१५५॥

स्त्री-उद्धिः । १४८-१५५ । १५६-१५७ । १५८-१५९ । १६०-१६१ ।

इति<sup>१४</sup> सकलकलामामेकमोक्तः<sup>१५</sup> स चक्री  
कृतमतिभिरज्यै<sup>१६</sup>, संगतं संविधितत् ।  
तुधसत्त्वसि<sup>१७</sup> सद्रस्यान् वीधवन् विश्वविद्या  
व्यवृणुत्<sup>१८</sup> वृधत्यक्तिस्तुच्छलकीर्तिकेतुः<sup>१९</sup> ॥१५६॥

की सृष्टि है इसलिए उक्त तीनों शास्त्र उन्हींके मत हैं ऐसा समझना चाहिए ॥१४७॥ वे निमित्त शास्त्रोंके निमित्त हैं, और तन्त्र, मन्त्र, शकुन तथा ज्योतिष शास्त्रमें उत्तम अधिष्ठाता देव हैं इस प्रकार सब लोगोंमें अधिक मान्यताको प्राप्त हुए थे ॥१४८॥ महाराज भरतके उत्पन्न होनेपर पुरुषके सब लक्षण उत्पन्न हुए थे इसलिए दूसरी जगह उनके शरीरके उदाहरण ही देखे जाते थे ॥१४९॥ शास्त्रोंके जाननेवाले पुरुष ऊपर कहे हुए शास्त्रोंके सिवाय अन्य कला-शास्त्रोंके संग्रहमें भी भरतको ही दर्पणके समान देखकर संशयके अंशोंसे विरत होते थे अर्थात् अपने-अपने संशय दूर करते थे ॥१५०॥ चूंकि उनकी स्वाभाविक बुद्धि पूर्वजन्मसे सम्पर्क रखनेवाली थी इसलिए ही उनकी समरत विद्याओंमें उत्तम प्रगति हुई थी ॥१५१॥ इस प्रकार समस्त शास्त्र और समस्त कलाओंमें प्रतिष्ठा पाकर वे भरत उन विद्याओंके जाननेवालोंमें मान्य हुए थे ॥१५२॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है? इतना कहना ही पर्याप्त है कि बुद्धिके पारणामी कुलकर भरत समस्त लोकाचारके सूक्ष्मधार हो रहे थे ॥१५३॥ वे राज-शास्त्रके तत्त्वोंको जानते थे, धर्मशास्त्रके जानकार थे, और कलाओंके ज्ञानमें प्रसिद्ध थे। इस प्रकार उत्तम विद्वानोंके मरसकपर सुदृशीभित हो रहे थे अर्थात् सबमें श्रेष्ठ थे ॥१५४॥ अहो, इनका प्रथम राज्य कैसा आश्चर्य करनेवाला है, यह सम्भाद् है, राजविद्योंमें मुख्य हैं, इनका सार्वभूम पद-भी आश्चर्यजनक है इस प्रकार उनका यश समस्त दिशाओंमें उछल रहा था ॥१५५॥ इस प्रकार जो समस्त कलाओंका एकमात्र स्थान है, जो बुद्धिमान् पुरुषोंके साथ अविनाशी मित्रता करना चाहता है और 'यह विद्वानोंमें चक्रवर्ती है अथवा विद्वान् चक्रवर्ती है' इस प्रकार जिसकी कीर्तिरूपी पताका फहरा रही है ऐसा वह चक्रवर्ती भरत विद्वानोंकी सभामें समस्त विद्याओंका उपदेश देता हुआ समस्त विद्याओंका व्याख्यान करता था ॥१५६॥

१ कारणम् । २ निमित्तशास्त्राणाम् । ३ ज्योतिःशास्त्रे । ४ स मतोऽधिकम् इ० । ५ गतोऽधिकम् ल०, म० ।  
६ संपूर्णशास्त्रम् । ७ मुकुरम् । ८ विरमन्ति स्म । ९ कारणेन । १० अनुसंवन्धनी । ११ नृपविद्यास्वरूपज्ञः ।  
१२ आदिराजद्य प्रथा । १२ राजविद्वार्थकस्य प्रथा । १३ सर्वभूमीशस्य प्रकाश । १४ मुख्यः । १५ गृहः ।  
१६ अविनाशी । १७ सदसि योग्यान् । १८ विवरणमकरोत् । १९ विद्वज्जन ।

जिनविहितमनून् संस्मरन् धर्ममार्गं  
स्वयमधिष्ठातलक्ष्मी बोधन् मार्गमन्यान् ।  
कृतमस्त्रियिलां इमां पालयज्ञिः सपक्षां  
चिरमस्त भोगैभूरिसरैः स सब्राट् ॥१५७॥

## शार्दूलविक्रीडितम्

लक्ष्मीवाग्विज्ञासमागमसुखस्वैकाधिपत्यं दधन्  
कूरोत्तारितदुर्णियः प्रशमिनीं सेजस्वितामुद्भवन् ।  
न्यायोपाजितविज्ञासमघटनः शास्त्रे च शास्त्रे कृती  
प्राप्तिः प्राप्तिः प्राप्तिः प्राप्तिः प्राप्तिः प्राप्तिः प्राप्तिः प्राप्तिः ॥१५८॥

इत्यापें भगवज्ञनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्टुलक्षणमहापुराणसंग्रहे  
भरतराजस्तनदर्शनतत्कलोपवर्णनं नाम एकचत्वारिंशत्तमै पर्व ॥४२॥

जिसने समस्त तत्त्वोंको जान लिया है और जिसकी बुद्धि परिपक्व है ऐसा सब्राट् भरत, जिनेन्द्रदेवके कहे हुए न्यूनतारहित धर्ममार्गका स्मरण करता हुआ तथा वही मार्ग अन्य लोगोंको समझाता हुआ और शत्रुरहित सम्पूर्ण पृथिवीका पालन करता हुआ सारपूर्ण भोगोंके द्वारा चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा था ॥१५७॥ जो लक्ष्मी और सरस्वतीके समानस्ते उत्पन्न हुए सुखके एक स्वामित्वको धारण कर रहा है, जिसने सप्तस्त दुष्ट नय दूर हटा दिये हैं, जो शान्तियुक्त तेजस्वीपनेको धारण कर रहा है, जिसने न्यायपूर्वक कमाये हुए धनसे कामका संयोग प्राप्त किया है, जो शस्त्र और शास्त्र दोनोंमें ही निपुण है, राजषि है और जिसका अभ्युदय अतिशय उत्कृष्ट है ऐसा वह भरत जिनेन्द्रदेवकी सेवा करनेवालोंमें अग्रेसर अर्थात् सबसे श्रेष्ठ था ॥१५८॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध भगवज्ञनसेनाचार्यप्रणीत त्रिष्टुलक्षण महापुराणसंग्रहके  
भाष्यानुवादमें भरतराजके स्वप्न तथा उनके फलका वर्णन  
करनेवाला इकतालीसवाँ एवं समाप्त हुआ ।

## द्विषत्वारिंशत्तम् पर्व

१ सव्येसभयान्वेषु निविष्टोऽहरिविश्वे । क्षात्रं<sup>२</sup> कुलमुपादिकारसंहितान्<sup>३</sup> पार्थिवान् प्रति ॥१॥  
 श्रूयत्वा भो महामानः सर्वे<sup>४</sup> क्षत्रियवृहत्वाः । अतश्चाणे नियुक्ताः स्थै<sup>५</sup> दूयमादेन वेदसा ॥२॥  
 तत्त्वापि च नियुक्तानां शृतं चः पञ्चधोदितम् । तत्त्विशत्य यथाज्ञायं प्रवर्तत्वं प्रजाहिते ॥३॥  
 तत्त्वेदं कुलमरथालमप्रजानामनुपालनम् । समअसस्वं चेत्येवमुचिष्टं पञ्चमेदमाक् ॥४॥  
 कुलानुपालनं तत्र कुलाज्ञायानुरक्षणम् । कुलोचितसमाचारपरिक्षणलक्षणम् ॥५॥  
 क्षत्रियाणां कुलाज्ञायः कीदृशश्चेक्षिशत्यतम्<sup>६</sup> । आदेन वेदसा सृष्टः सगोऽयं श्रवणपूर्वकः<sup>७</sup> ॥६॥  
 स चैप मारत्वं<sup>८</sup> वर्षमवसीर्णो दिक्षोऽप्रतः । तुरा<sup>९</sup> भवे समाराध्य रक्षत्रियमूर्जितम् ॥७॥  
 हिरण्यी भावनास्तत्र तीर्थकुरुत्वोपपादिनीः । भावयित्वा गुमोदकी शुलोकाग्रमधिष्ठितः<sup>१०</sup> ॥८॥  
 तेनाहिमन् भारते वर्ये धर्मतीर्थप्रवर्तने । ततः<sup>११</sup> कुलावतारेण क्षात्रसर्गः प्रवर्तितः ॥९॥  
 तत्कथं कर्मभूमित्वादद्यते द्वितीया प्रजा । कर्तव्या<sup>१२</sup> रक्षणीयैका प्रजाज्ञाय रक्षणोदयता ॥१०॥  
 रक्षणाभ्युदयता येऽत्र क्षत्रियाः स्युस्तदन्वयाः । सोऽन्वयोऽनादिसंसरया वीजमृश्वदिप्यते ॥११॥

अथानन्तर—किसी एक दिन सभाके बीचमें सिंहासनपर बैठे हुए भरत इकट्ठे हुए राजाओंके प्रति क्षात्रधर्मका उपदेश देने लगे ॥१॥ वे कहने लगे कि हे समस्त क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ महात्माओ, आप लोगोंको आदित्रह्या भगवान् वृषभदेवने दुःखी प्रजाकी रक्षा करनेमें नियुक्त किया है ॥२॥ दुःखी प्रजाकी रक्षा करनेमें नियुक्त हुए आप लोगोंका धर्म पाँच प्रकारका कहा है उसे सुनकर तुम लोम शास्त्रके अनुसार प्रजाका हित करनेमें प्रवृत्त होओ ॥३॥ वह तुम्हारा धर्म कुलका पालन करना, बुद्धिका पालन करना, अपनी रक्षा करना, प्रजाकी रक्षा करना और समंजसपना इस प्रकार पाँच भेदवाला कहा गया है ॥४॥ उनमें-से अपने कुलाज्ञायकी रक्षा करना और कुलके योग्य आचरणकी रक्षा करना कुल-पालन कहलाता है ॥५॥ अब क्षत्रियोंका कुलाज्ञाय कैसा है ? सो सुनिए । आदित्रह्या भगवान् वृषभदेवने श्रवणपूर्वक ही इस सृष्टिकी रचना की है अर्थात् सबसे पहले क्षत्रियवर्णकी रचना की है ॥६॥ जिन्होंने पहले भवमें अतिशय श्रेष्ठ रत्नत्रयकी आराधना कर तथा तीर्थकर पद प्राप्त करानेवाली और शुभ फल देनेवाली सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर हवर्गलोकके सबसे ऊपर अर्थात् सदर्थसिद्धिमें निवास किया था वे ही भगवान् सदर्थसिद्धिसे आकर इस भारतवर्षमें अवतीर्ण हुए हैं ॥७—८॥ जिसमें धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करनी है ऐसे इस भारतवर्षमें सदर्थसिद्धिसे अवतार लेकर उन्होंने क्षत्रियोंकी सृष्टि प्रवृत्त की है ॥९॥ वह क्षत्रियोंकी सृष्टि किस प्रकार प्रवृत्त हुई थी ? इसका समाधान यह है कि आज कर्मभूमि होनेसे प्रजा दो प्रकारकी पायी जाती है । उनमें एक प्रजा तो वह है जिसकी रक्षा करनी जाहिए और दूसरी वह है जो रक्षा करनेमें तत्पर है ॥१०॥ जो प्रजाकी रक्षा करनेमें तत्पर है उसीकी वंशपरम्पराको क्षत्रिय कहते हैं यद्यपि यह वंश अनादिकालकी सन्तातिसे बीज वृक्षके समान अनादि कालका है तथापि

१ समाप्त्ये । २ निविष्टो ल०, म० । ३ क्षत्रियसंश्विति । ४ मिलितान् । ५ सर्व-प०, ल०, म० । ६ भव प० । ७ श्रुत्वा । ८ श्रूयताम् । ९ क्षत्रियवद् । १० क्षेत्रम् । ११ पूर्वसिमन् । १२ आश्रितः । १३ कुलावतारेण १०, स०, अ० । १४ रक्षितुं योग्या ।

विशेषतस्तु उत्सर्वः क्षेत्रकालस्यपेक्षयोऽ॑ । तेषां समुचिताचारः प्रजायै न्यायवृत्तिता ॥१२॥  
 स तु न्यायोऽनन्तिकाम्या धर्मस्यार्थसमर्जनम् । रक्षणं वर्धनं चास्य पात्रे च विनियोजनम् ॥१३॥  
 सैषां चतुर्हती सृतिन्ययिः सज्जिस्त्रीस्ति॒ ॑ । जैवधर्मस्त्रिवृत्तिश्च न्यायो लोकोत्तरो मतः ॥१४॥  
 दिव्यसूचेऽदुत्पद्य जिनादुत्पादयज्ञिनाम् । रक्षणं तु तथोमिनृपास्तस्माद्योगिजाः ॥१५॥  
 ततो महान्वयोत्पदा लूपा लोकोत्तमा मताः । परिस्थिताः स्वयं धर्मे स्थापयन्तः पराभिः ॥१६॥  
 तैस्तु सर्वप्रयत्ने कार्यं स्वान्वयरक्षणम् । तत्पालनं कथं कार्यमिति चेतदनृश्चासै॒ ॥१७॥  
 इत्यं महान्वयत्वेन महिन्नि क्षत्रियाः स्थिताः । धर्मस्थया न शेषादि॑ ग्राह्यं तैः परलिङ्गिनाम् ॥१८॥  
 तच्छेषादिग्रहे दोषः कश्चेन्मादात्म्यविद्युतिः । अपाया बहवश्चास्मिकात्तस्तप्तिवर्जनम् ॥१९॥  
 माहात्म्यप्रस्तुतिस्तादस्तु छावाऽन्यस्य॑ शिरोनन्तिम् । ततः॑ शेषात्युपादाने स्याक्षिकृष्टस्वमात्मनः ॥२०॥  
 प्रद्विषन् परपाषण्डी विषपुण्याणि निक्षिपेत् । यद्यस्य मूर्खिन भन्वेत्वं स्वादपायो महीपतेः ॥२१॥  
 वशीकरणपुण्याणि निक्षिपेत्यदि॑ भोहने॒ । ततोऽयं मूढवस्त्रुतिस्तप्तिवर्जनाम् ॥२२॥  
 तच्छेषाशीर्वचः॑ शान्तिवचनादन्यलिङ्गिनाम्॒ । पार्थिवैः परिहर्तव्यं भवेन्यक॑ कुलताऽन्यथा॒ ॥२३॥

विशेषता इतनी है कि क्षेत्र और कालकी अपेक्षासे उसकी सृष्टि होती है । तथा प्रजाके लिए न्यायपूर्वक वृत्ति रखना ही उनका योग्य आचरण है ॥११-१२॥ धर्मका उल्लंघन न कर धनका कमाना, रक्षा करना, बढ़ाना और योग्य पात्रमें दान देना ही उन क्षत्रियोंका न्याय कहलाता है ॥१३॥ इस बार प्रकारको प्रवृत्तिको सज्जन पुरुषोंने क्षत्रियोंका न्याय कहा है तथा जैनधर्मके अनुसार प्रवृत्ति करना संसारमें सबसे उत्तम न्याय माना गया है ॥१४॥ दिव्य-मूर्तिको धारण करनेवाले श्री जिनेन्द्रदेवसे उत्पन्न होकर तीर्थकरोंको उत्पन्न करनेवाला जो रत्नत्रय है॑ क्षत्रियोंका योनि॒ है॑ अर्थात् क्षत्रिय पदको प्राप्ति रत्नत्रयके प्रतापसे ही होती है । यही कारण है कि क्षत्रिय लोग अयोनिज अर्थात् बिना योनिके उत्पन्न हुए कहलाते हैं ॥१५॥ इसलिए बड़े-बड़े वंशोंमें उत्पन्न हुए राजा लोग लोकोत्तम पुरुष माने गये हैं । ये लोग स्वयं धर्ममार्गमें स्थित रहते हैं तथा अन्य लोगोंको भी स्थित रखते हैं ॥१६॥ उन क्षत्रियोंको सर्वप्रकारके प्रयत्नोंसे अपने वंशकी रक्षा करनी चाहिए । वह वंशकी रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए यदि तुम लोग यह जानना चाहते हो तो मैं आगे कहता हूँ ॥१७॥ बड़े-बड़े वंशोंमें उत्पन्न होनेसे क्षत्रिय लोग स्वयं बढ़प्पत्वमें स्थिर हैं इसलिए उन्हें अन्यमतियोंके धर्ममें श्रद्धा रखकर उनके शेषाक्षत आदि ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥१८॥ उनके शेषाक्षत आदिके ग्रहण करनेमें क्या दोष है ? कदाचित् कोई यह कहे तो उसका उत्तर यह है कि उससे अपने महत्त्वका नाश होता है और अनेक विघ्न या अनिष्ट आते हैं इसलिए उनका परित्याग हो कर देना चाहिए ॥१९॥ अन्य मतावलम्बियोंको शिरोनन्ति करनेसे अपने महत्त्वका नाश हो जाता है इसलिए उनके शेषाक्षत आदि लेनेसे अपनी निहृष्टता हो सकती है ॥२०॥ सम्भव है द्वेष करनेवाला कोई पाषण्डी राजा के शिरपर विषपुण्य रख दे तो इस प्रकार भी उसका नाश हो सकता है ॥२१॥ यह भी हो सकता है कि कोई वशीकरण करनेके लिए इसके शिरपर वशीकरण पुण्य रख दे तो फिर यह राजा पागलके समान आचरण करता हुआ दूसरोंकी वश्यताको प्राप्त हो जावेगा ॥२२॥ इसलिए राजाओंको अन्यमतियोंके शेषाक्षत, आशीर्वद और शान्तिवचन

१ भरतक्षेषाक्षतपिण्यपुत्रसपिणीकाल । २-दृशाहृतः व०, ल०, म० । ३ क्षत्रियाणामुत्पत्तिस्थानम् । ४ तस्मात् कारणात् । ५ अनुकृते ।-दृशाहृते व०, ल०, म० । ६ शेषाक्षतस्मानोदकादिकम् । ८ अन्यलिङ्गिनः । ९ शेषादिदातुः सकाशात् । १० भोहने निमित्ते । ११ तत् कारणात् । १२ शान्तिमन्त्रपुण्याहवाचनादि । १३ नीचकूलता । १४ तच्छेषादिस्त्रीकारप्रकारेण ।

१ जैनास्तु पार्थिवास्तेषामहत्प्रादोपसेविनाम् । तत्त्वेषातुमतिष्यक्षिया यतः पापक्षयो भवेत् ॥२४॥  
 रत्नत्रियमूर्तिरथादादिक्षक्रियवंशजाः । जिनाः सनामयोऽमीषामैत्यस्तत्त्वेषधारणम् ॥२५॥  
 यथो हि कुलपुत्राणां मालयं गुरुशिरोदृशम् । माम्यमेवं जिनेन्द्राद्ब्रिसरशस्त्रिमालवादिमूषितम्<sup>१</sup> ॥२६॥  
 कथं मुनिजनादेषां<sup>२</sup> शोषापादानमित्यपि । नाशशूर्यं तत्सजातीयास्ते<sup>३</sup> राजपरमर्चयः ॥२७॥  
 अश्वियाश्च शूर्यस्पाः क्षत्रिया एव दीक्षिताः । यतो रत्नत्रियमत्तजाम्नना तेऽपि<sup>४</sup> तद्गुणाः<sup>५</sup> ॥२८॥  
 ततः स्थितमिदं<sup>६</sup> जैनाभ्यतादन्यमतस्थिताः । क्षत्रियाणां न शोषादिप्रदानेऽधिकृता हृति ॥२९॥  
 कुलानुपालने यत्तमतः कुर्वन्तु पार्थिवाः । अम्यथाऽन्तैः प्रत्यावैरन्<sup>७</sup> पुराणामासदेशान्तः ॥३०॥  
 कुलानुपालनं प्रोक्तं वश्ये मत्यनुपालनम् । मतिहिंताहितज्ञानमात्रिकामुक्तिकार्ययोः ॥३१॥  
 तत्याक्षयं कथं स्थापेदविद्यापरिक्षर्जनात् । मिथ्याज्ञानमविद्या स्थापदतत्त्वे तत्त्वभावना ॥३२॥  
 आसोपजं मनेसरवभासा दाषाशूति<sup>८</sup> क्षयात् । तस्मात्तमतमम्यस्यस्यमन्नामलमपासितुम् ॥३३॥

आदिका परित्याग कर देना चाहिए अन्यथा उनके कुलमें हीनता हो सकती है ॥२३॥ राजा लोग जैन हैं इसलिए अरहन्तदेवके चरणोंकी सेवा करनेवाले उन राजाओंको अरहन्तदेवके शेषाक्षत आदि ग्रहण करनेकी अनुमति देना न्यायपुक्त हो है क्योंकि उससे उनके पापका क्षय होता है ॥२४॥ रत्नत्रियकी मूर्तिरूप होनेसे आदि क्षत्रिय श्री वृषभदेवके वंशमें उत्पन्न हुए जिनेन्द्रदेव इन राजाओंके एक ही गोत्रके भाई-बन्धु हैं इसलिए भी इन्हें उनके शेषाक्षत आदि धारण करना चाहिए । भावार्थ-रत्नत्रियकी मूर्ति होनेसे जिस प्रकार अन्य तीर्थकर भगवान् वृषभदेवके वंशज कहलाते हैं उसी प्रकार ये राजा लोग भी रत्नत्रियकी मूर्ति होनेसे भगवान् वृषभदेवके वंशज कहलाते हैं । एक वंशमें उत्पन्न होनेसे ये सब परस्परमें एक गोत्रवाले भाई-बन्धु ठहरते हैं इसलिए राजाओंको अपने एकगोत्री जिनेन्द्रदेवके शेषाक्षत आदिका ग्रहण करना चित्त ही है ॥२५॥ किस प्रकार कुलपुत्रोंको गुरुदेवके शिरपर धारण की हुई माला मात्य होती है उसी प्रकार जिनेन्द्रदेवके चरणोंके स्पर्शसे सुशोभित हुई माला आदि भी राजाओंको मात्य होनी चाहिए ॥२६॥ कदाचित् कोई यह कहे कि राजाओंको मुनियोंसे शेषाक्षत आदि किस प्रकार ग्रहण करना चाहिए तो उनको यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि राजषि और परम्पर्य दोनों ही सजातीय हैं ॥२७॥ जो क्षत्रिय नहीं हैं वे भी दीक्षा लेकर यदि सम्यक्चारित्र धारण कर लेते हैं तो क्षत्रिय ही हो जाते हैं इसलिए रत्नत्रियके अधीन जन्म होनेसे मुनिराज भी राजाओंके समान क्षत्रिय माने जाते हैं ॥२८॥ उपर्युक्त उल्लेखसे यह बात निश्चित हो चुकी कि जैन मतसे भिन्न मतवाले लोग क्षत्रियोंको शेषाक्षत आदि देनेके अधिकारी नहीं हैं ॥२९॥ इसलिए राजा लोगोंको अपने कुलकी रक्षा करनेमें सदा यत्न करते रहना चाहिए अन्यथा अन्य मतावलम्बी लोग भूठे पुराणोंका उपदेश देकर उन्हें ठग लेंगे ॥३०॥ इस प्रकार क्षत्रियोंका कुलानुपालन ( कुलके आमनायकी रक्षा करना ) नामका पहला धर्म कह चुके अब दूसरा मत्यनुपालन ( बुद्धिकी रक्षा करना ) नामका धर्म कहते हैं । इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी पदार्थोंके हित-अहितका ज्ञान होना बुद्धि कहलाती है ॥३१॥ उस बुद्धिका पालन किस प्रकार हो सकता है ? यदि यह जानना चाहो तो उसका उत्तर यह है कि अविद्याका नाश करनेसे ही उसका पालन होता है । मिथ्या ज्ञानको अविद्या कहते हैं और अतस्वोंमें तत्त्वबुद्धि होना मिथ्या ज्ञान कहलाता है ॥३२॥ जो अरहन्तदेवका कहा हुआ हो वही तत्त्व-

१ ततः ल०, म० । २ क्षत्रियाणाम् । ३ भूषणम् । ४ क्षत्रियाणाम् । ५ तत्समानजातिभवाः । ६ मुनयः ।  
 ७ जिनगुणः । ८ प्रतिष्ठितम् । ९ वृत्तवैरन् । १० आवरण ।

राजविद्यापरिज्ञानात्मदेविकेऽथं ददा मतिः । धर्मशास्त्रपरिज्ञानाम्मतिलोकित्याश्रिता ॥३७॥  
 क्षत्रियास्तीर्थमुत्पाद्य येऽभूवन् परमर्थं । ते महादेवशब्दाभिधेया माहात्म्ययोगतः ॥३८॥  
 आदिक्षत्रियसूत्रस्थापात्यधिकारात् परमात्मात् प्रसुलेष्व भगवान्मनाम् ॥३९॥  
 तदेवश्च महादेव्यो महामिजनैर्योगतः । महज्ञिः परिणीतस्वात् प्रसुलेष्व भगवान्मनाम् ॥३१॥  
 हत्येष्वमासित्येते<sup>१</sup> एक्षे जैवेरन्यमताश्रयी । यदि करिष्वत् प्रतिष्ठानिमध्यात्मोपहताश्रयः ॥३८॥  
 वयमेव महादेवा जगच्छिष्टात्मका वयम् । नास्मदासात् परोऽस्यासो मतं लास्मन्मतापरम् ॥३९॥  
 इत्यत्र वृभूते वैतसात्<sup>२</sup> संसारवारिधेः । यः समुक्तरणोपायः स मार्गे जिनदेशितः ॥४०॥  
 आसोऽहंस्वीतदोषव्यादासमन्यास्ततोऽपरे । तेषु चागान्ममाग्यातिशयानामविभावनात् ॥४१॥  
 वागाद्यतिशयोपेतः सार्थः सर्वार्थदग्निजनः । स्वादासः परमेष्ठी<sup>३</sup> च परमात्मा सनातनः ॥४२॥  
 स वागतिशयो लंयो येनावं विभुत्तमात् । वचसैकेन दिष्ट्येन प्रीणयत्यखिलां सभाम् ॥४३॥  
 तथाऽस्त्वातिशयोऽप्यस्य दोषावरणसंक्षयात् । अनन्तज्ञानदग्नीर्यसुखातिशयसंनिधिः ॥४४॥  
 प्रातिहार्यमन्यी भूतिरुद्भूतिष्व सभावनेः । गणाश्च द्वादशोत्येष स्वाज्ञाग्यातिशयोऽहंतः ॥४५॥

हो सकता है और अरहन्त भी वही हो सकता है जो ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय कर्मका क्षय कर चुका हो । इसलिए अपने मनका मल दूर करनेके लिए अरहन्तदेवके मतका अभ्यास करना चाहिए ॥३३॥ राजविद्याका परिज्ञान होनेसे इस लोक सम्बन्धी पदार्थोंमें बुद्धि हड़ हो जाती है और धर्मशास्त्रका परिज्ञान होनेसे इस लोक तथा परलोक दोनों लोक सम्बन्धी पदार्थोंमें दृढ़ हो जाती है ॥३४॥ जो क्षत्रिय तीर्थं उत्पन्न कर परमर्थि हो गये हैं वे अपने माहात्म्यके योगसे महादेव कहलाते हैं ॥३५॥ बड़े-बड़े वंशोंमें उत्पन्न हुए जो राजा लोग आदिक्षत्रिय-भगवान् वृषभदेवके चारित्रमें स्थिर रहते हैं वे भी माहात्म्यके योगसे महादेव इस प्रसिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥३६॥ ऐसे पुरुषोंकी स्त्रियाँ भी बड़े पुरुषोंके साथ सम्बन्ध होनेसे, बड़े पुरुषोंके द्वारा विवाहित होनेसे और महापुरुषोंको उत्पन्न करनेसे महादेवियाँ कहलाती हैं ॥३७॥ इस प्रकार जैनियोंके द्वारा अपना पक्ष स्थिर कर लेनेपर मिथ्यादर्शनसे जिसका हृदय नष्ट हो रहा है ऐसा कोई अन्यमतावलम्बी पुरुष यदि कहे कि हम ही महादेव हैं, संसारसे तारनेवाले भी हम ही हैं, हमारे देवके सिवाय अन्य कोई देव नहीं है और हमारे धर्मके सिवाय अन्य कोई धर्म नहीं है ॥३८-३९॥ परन्तु इस विषयमें हम यही कहते हैं कि उसका यह कहना सारपूर्ण नहीं है क्योंकि संसारसमुद्रसे तिरनेका जो उपाय है वह जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ मार्ग ही है ॥४०॥ रागद्वेष आदि दोषोंसे रहित होनेके कारण एक अर्हन्तदेव ही आप्त है उनके सिवाय जो अन्य देव हैं वे सब आप्तमन्य हैं अर्थात् ज्ञूठमूठ ही अपनेको आप्त मानते हैं क्योंकि उनमें वाणी, आत्मा और भाग्यके अतिशयका कुछ भी निश्चय नहीं है ॥४१॥ जिनेन्द्र भगवान् वाणी आदिके अतिशयसे सहित हैं, सबका हित करनेवाले हैं, समस्त पदार्थोंकी साक्षात् देखनेवाले हैं, परमेष्ठी, हैं, परमात्मा हैं और सनातन हैं इसलिए वे ही आप्त हो सकते हैं ॥४२॥ भगवान् वरहन्तदेव अपनी जिस एक दिव्य वाणीके द्वारा समस्त सभाको सन्तुष्ट करते हैं वही उनकी वाणीका अतिशय जानना चाहिए ॥४३॥ इसी प्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मके अत्यन्त क्षयं हो जानेसे जो उनके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त बलकी समोपता प्रकट होती है वही उनके आत्माका अतिशय है ॥४४॥ तथा आठ प्रातिहार्यरूप विभूति प्राप्त होना, समवसरणभूमिकी रक्षना होना  
 १ प्रवचनम् । २ नुगमास्तेऽपि ३०, ४०, ८०, १०, ८०, ८०, ८० । ३ महाकुल । ४ विवाहितत्वात् ।  
 ५ प्रतिशाते । ६ अस्माकमाप्तात् । ७ अन्याद्यम् । ८ अनिश्चयात् । ९ परमपदस्थः ।

चागाद्यतिशयैरेभिरुपित्ताऽन्यगोचरैः । भगवान्निहितार्थोर्धर्द् परमेष्ठी जगद्गुरुः ॥४३॥  
 न च साहस्रिधः कश्चित् सुमानस्ति मतान्तरे । ततोऽन्ययोग्यव्यावृत्या सिद्धमाप्नुव्याप्तिः ॥४४॥  
 इत्यासानुसत्तं आचरित्येष्व धर्ममनुस्मरन् । मतान्तरादनात्मीयात् स्वान्वयं वित्तिवर्तयेत् ॥४५॥  
 बृत्तादनात्मनीनाश्रीः<sup>१</sup> स्यादेवमनुरक्षिता । तद्वक्षणाद्य संरक्षेत् क्षत्रियः क्षितिमक्षताम् ॥४६॥  
 उत्तस्यैषार्थस्त्वक्ष्य भूयोऽप्याविदिष्यकीर्तया । निदर्शनानि ग्रीष्मया वक्ष्यामस्तान्यनुक्रमात् ॥४७॥  
 व्यक्तये पुरुषार्थस्य स्थानं पूरुषनिदर्शनम् । तथा निगलदृष्टान्तः स संसारिनिदर्शनः ॥४८॥  
 शेयः पुरुषदृष्टान्तो नाम सुकृतसात्मनोः । यज्ञिदर्शनभावेन मुक्त्यमुक्त्योः समर्थनम् ॥४९॥  
 संसारीनिद्रियविज्ञानदर्शन्योर्यसुखाचारताः ।<sup>२</sup> तन्वावासौ च निर्वैष्टु<sup>३</sup> मतते सुखलिप्यया ॥५०॥  
 मुक्तस्तु न तथा किन्तु गुणैर्हरतीनिद्रियैः । परं सौरये स्वसादभूतमनुभुत्ये निरन्तरम् ॥५१॥  
<sup>४</sup> तत्रैनिद्रियकविज्ञानः स्वस्पदानन्तरया स्वयम् । परं शास्त्रोपयोगाय अयति ज्ञानविलक्षणम् ॥५२॥  
 तथैनिद्रियविकर्त्त्वार्थं सहायापेक्षयेप्रिस्तम् । कार्यं चरयितुं बाध्येत् स्वयं तत्साधनाक्षमः ॥५३॥  
 तत्रैनिद्रियसुखी कामभोगैरत्यन्तमुम्मनाः<sup>५</sup> । बाध्येत् सुखं पराधीनमिन्द्रियार्थानुत्पत्तः<sup>६</sup> ॥५४॥

और बारह सभाएँ होता यह सब अरहन्तदेवके भाग्यका अतिशय है ॥४५॥ जो किन्हीं दूसरोंमें  
 न पाये जानेवाले इन वाणी आदिके अतिशयोंसे सहित हैं तथा कृतकृत्य हैं ऐसे भगवान् अरहन्त  
 परमेष्ठी ही जगत्के गुरु हैं ॥४६॥ अन्य किसी भी मतमें ऐसा-अरहन्तदेवके समान कोई पुरुष  
 नहीं है इसलिए अन्य योगकी व्यावृत्ति होनेसे अरहन्तदेवमें ही आप्तपना सिद्ध होता है ॥४७॥  
 इस प्रकार आत्मके द्वारा कहे हुए इस क्षात्रधर्मका स्मरण करते हुए क्षत्रियोंको अनाप्त पुरुषोंके  
 द्वारा कहे हुए अन्य मतोंसे अपने वंशको पृथक् करना चाहिए ॥४८॥ इस प्रकार जिनमें  
 आत्माका हित नहीं है ऐसे आचरणसे अपनी बुद्धिकी रक्षा की जा सकती है और बुद्धिकी रक्षा-  
 से ही क्षत्रिय अखण्ड पृथिवीकी रक्षा कर सकता है ॥४९॥ ऊपर जो पदार्थका स्वरूप कहा है  
 उसीको फिर भी प्रकट करनेकी इच्छासे यहाँपर क्रमानुसार तीन उदाहरण कहते हैं ॥५०॥  
 अपना पुरुषार्थ प्रकट करनेके लिए पहला पुरुषका दृष्टान्त है, दूसरा निगल अर्थात् बेडीका दृष्टान्त  
 है और तीसरा संसारी जीवोंका दृष्टान्त है ॥५१॥ जिस उदाहरणसे मुक्त और कर्मबन्ध सहित  
 जीवोंके मोक्ष और बन्ध दोनों अवस्थाओंका समर्थन किया जावे उसे पुरुषका दृष्टान्त अथवा  
 उदाहरण जानना चाहिए ॥५२॥ यह संसारी जीव गुख प्राप्त करनेकी इच्छासे इन्द्रियोंसे  
 उत्पन्न हुए ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख और सुन्दरताको शरीररूपों वरमें ही अनुभव करनेका प्रयत्न  
 करता है ॥५३॥ परन्तु मुखत जीव ऐसा नहीं करता वह तो ऊपर कहे हुए अतीनिद्रिय गुणोंसे अपने  
 स्वाधीन हुए परम सुखका निरन्तर अनुभव करता रहता है ॥५४॥ इनमेंसे ऐनिद्रियिक  
 ज्ञानवाला संसारी जीव स्वयं अल्पज्ञानी होनेसे शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए ज्ञानका  
 चिन्तवन करनेवाले अन्य पुरुषोंका आश्रय लेता है ॥५५॥ इसी प्रकार जिसके इन्द्रियोंसे देखने-  
 की शक्ति है ऐसा पुरुष अपने समीपवर्ती कुछ पदार्थोंको ही देख सकता है इसलिए वह दूरवर्ती  
 पदार्थोंको देखनेके लिए सदा उत्कण्ठित होता रहता है ॥५६॥ जिसके इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुआ  
 वीर्य है वह किसी इष्ट कार्यको स्वयं करनेमें असमर्थ होकर उसे दूसरेकी सहायताकी अपेक्षासे  
 करना चाहता है ॥५७॥ तथा जिसके इन्द्रियजनित सुख है ऐसा पुरुष काम भोगादिकोंसे  
 १ अन्येषु वागाद्यतिशययोगाभावात् । २ जिने । ३ आप्ताभावप्रोक्तात् । ४ अनात्महितादप्यार्थ । ५ देहा-  
 लयो । ६ अनुभवितुम् । ७ इन्द्रियानिन्द्रियज्ञानिनोर्मध्ये । ८-चित्तकम् प० । चित्तकम् ल०, म० । ९ इन्द्रिय-  
 जनितदर्शनशक्तिमान् । १० वस्तुनि डिघाप्रदिभवते आसङ्गभागदर्शनः । ११ दूरयतिनाम् । १२ समुत्कृष्टः ।  
 १३ विषयवाङ्डया ।

तथेन्द्रियिकसौन्दर्यः स्नानमाल्यानुलेपनैः । विभूषणैश्च सौन्दर्यं संस्कर्तुमिलत्यति ॥५३॥  
 दोक्षानुमलस्थाने देहमैन्द्रियिकं चहन् । उमानिवच्छाणैभैज्यतद्रक्षास्त्राकुलैँ भवेत् ॥५४॥  
 दोपास्पदयैश्च जात्यादीन् देहात्मस्तैऽग्निहासया । प्रेक्षाकारीतपः कर्तुं प्रयस्यति यदा कदा ॥५५॥  
 स्वीकुर्विनिद्रियावासं सुखमायुश्च तद्गतम् । आवासान्तरमन्विष्टेत् प्रेक्षमाणैः प्रणश्वरम् ॥५६॥  
 यस्त्रीनिद्रियविज्ञानदृष्ट्यार्थं सुखसंततिः । शरीरावाससौन्दर्यैः स्वात्मभूतैरधिष्ठितः ॥५७॥  
 तस्योक्तदोषसंस्पर्शैः० मवेन्द्रियं कदाचन । ११ तद्वानासस्ततो॒ शेषः स्याद्वानासस्वलद्गुणः ॥५८॥  
 रक्तीकरणमस्तैष॑ वाक्यार्थस्याभुवोच्यते । यतोऽनाविष्टकृतं तस्मं तद्वतो॑ नावभुव्यते ॥५९॥  
 तद्याऽर्थानिद्रियज्ञानः शास्त्रार्थं॑ न परं अवेत् । शास्त्रा स्वयं विकालशः केवलामललोचनः ॥६०॥  
 तथाऽर्थानिद्रियदृष्ट्यार्थी स्यादपूर्वार्थेदर्थाने । तेनादृष्टं न चै किञ्चिद्युग्मपद्विवृद्धिवना ॥६१॥  
 शायिकानन्तर्यार्थं नान्यसाचि॑ स्मीक्षते । कृतकृत्यः स्वयं प्राप्तलोकाप्रशिखरात्मयः ॥६२॥

अत्यन्त उत्कृष्टित होता हुआ इन्द्रियोंके विषयोंकी तुष्णासे पराधीन सुखकी इच्छा करता है ॥५८॥ इसी प्रकार इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाली सुन्दरतासे युक्त पुरुष स्नान, माला, विलेपन और आभूषण आदिसे अपनी सुन्दरताका संस्कार करना चाहता है । भावार्थ-आभूषण आदि धारण कर अपने शरीरकी सुन्दरता बढ़ावा चाहता है ॥५९॥ दोष, वातु और मलके स्थान स्वरूप इस इन्द्रियज्ञित शरीरको धारण करता हुआ पुरुष भोजन और औषधि आदिके द्वारा उसकी रक्षा करनेमें सदा व्याकुल रहता है ॥६०॥ जन्म मरण आदि अनेक दोषोंको देखता हुआ और शरीरसे दुःखी हुआ कोई विचारवान् पुरुष जब उसे छोड़नेकी इच्छासे तप करनेका प्रयास करता है तब वह इन्द्रियोंके निवास स्वरूप शरीरको, उससे सम्बन्ध रखनेवाले सुख और आयुको भी स्वीकार करता है और अन्तमें उसे भी नष्ट होता हुआ देखकार दूसरे ऐन्द्रियिक निवासकी इच्छा करता है । भावार्थ-तपदचरण करनेका इच्छुक पुरुष पद्मासी शरीरको हेय समझकर छोड़ना चाहता है परन्तु साधन समझकर उसे स्वीकार करता है और जबतक इष्ट-मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो जाती तबतक प्रथम शरीरके जर्जर हो जानेपर द्वितीय शरीरकी इच्छा करता रहता है ॥६१-६२॥ परन्तु जिसके अतीनिद्रिय ज्ञान, अतीनिद्रिय दर्शन, अतीनिद्रिय बल और अतीनिद्रिय सुखकी सन्तान है और जो अपने आत्मस्वरूप शरीर, आवास तथा सुन्दरता आदिसे सहित है उसके ऊपर कहे हुए दोषोंका स्पर्श कभी नहीं होता है, इसलिए जिसके अतीनिद्रिय ज्ञान, वीर्य और सुखकी सन्तान है उसे ही आप्ते जानना चाहिए और जिसके उक्त गुण नहीं हैं उसे अनाप्त समझना चाहिए ॥६३-६४॥ अब आगे इसी वाक्यार्थका स्पष्टीकरण करते हैं क्योंकि जबतक किसी पदार्थका स्पष्टीकरण नहीं हो जाता है तबतक उसका ठीक-ठोक ज्ञान नहीं होता है ॥६५॥ जिसके अतीनिद्रिय ज्ञान है ऐसा पुरुष किसी दूसरे शास्त्रके अर्थका आश्रय नहीं लेता, किन्तु केवलज्ञानरूपी निर्मल नेत्रोंको धारण करनेवाला और तीनों कालोंके सब पदार्थोंको जाननेवाला वह स्वयं सबको उपदेश देता है ॥६६॥ इसी प्रकार जिसके अतीनिद्रिय दर्शन हैं ऐसा जीव कभी अपूर्व पदार्थके देखनेकी इच्छा नहीं करता क्योंकि जो एक साथ समस्त पदार्थोंको देखता है उसका न देखा हुआ कोई पदार्थ भी तो नहीं है ॥६७॥ जिसके क्षायिक अनन्तर्यार्थ है वह पुरुष भी किसी अन्य जीवकी सहायता नहीं चाहता किन्तु १ आहार । २ देहरक्षणम् । ३ उत्पत्त्यादीन् । ४ शरीरपीडितः । ५ तस्थामैच्छया । ६ समीक्षयकारी ।  
 ७ प्रथमं करोति । ८ इन्द्रियमुखहेतुशास्त्रादिकाम् । ९ विचारयन् । १० स्पर्शनम् । ११ अतीनिद्रियविज्ञानादिमान् । १२ ततः कारणात् । १३ अतीनिद्रियेत्यादिलोकद्वयार्थस्य । १४ निश्चयेन । १५ शास्त्रनिमित्तम् ।  
 १६ अन्यसहायत्वम् ।

अतीन्द्रियसुखोऽन्यात्मा स्थानोर्गते हत्युको न वै । मोग्यदस्तु गता चिन्ता जायते नास्य जायवाः ॥६६॥

प्राप्तातीन्द्रियसौन्दर्यों नेच्छेस्तानादिसक्षियाम् । स्नातको निष्ठशुद्धात्मा वहिरन्मर्मलक्ष्यात् ॥६०॥

अतीन्द्रियात्मद्वच नाहारादीनपेक्षते । क्षुद्रव्याधिविषशस्त्रादिवाप्राप्तीतत्तुः य वै ॥६१॥

भवेष्य न तपःकामो वीतजातिजरामृतिः । नावासान्तरमनिवृत्तेदात्मवामे च सुस्थितः ॥६२॥

स्व व्युमधिलैर्दैर्घ्यसुखो द्युमोऽपि द्युमैः । परम्परात् यत् ज्योतिः परमेष्ठानि गीयते ॥६३॥

कामरूपिव्यवस्थास्य लक्षणं वेष्ट साम्प्रतम् । सरागः कामरूपी स्वादकृतार्थेऽच मोऽन्तमा ॥६४॥

प्रकृतिस्थेन रूपेण प्राप्तुं यो नालमीप्यितम् । य वैकृतेन रूपेण कामरूपी कथं सुखी ॥६५॥

इति पुरुषनिदर्शनम् ।

निगलस्थो यथानेष्ट गन्तुं देशमलंतराम् । कर्मवन्वनवद्वोऽपि नेष्ट धाम तथेयुयाम् ॥६६॥

यथेह वन्धनान्मुक्तः परं स्वातन्त्र्यसृष्टिः । कर्मवन्वनमुक्तोऽपि तथोपार्थं त् स्वतन्त्रताम् ॥६७॥

निगलस्थो विषाशाइच स एवैकः पुमान्यथा । कर्मवद्वो विमुक्तश्च स एतात्मा मतस्तथा ॥६८॥

इति नियन्तनिदर्शनम् ।

मुक्तेतरामनोर्थक्त्वै द्वयमेलसिद्धिर्दर्शितम् । तद्वदीकरणायेष्ट सत्यसारिनिदर्शनम् ॥६९॥

वह स्वयं कृतकृत्य होकर लोकके अप्र शिखरपर सिद्धालयमें जा पहुँचता है ॥६६॥ इसी-प्रकार अतीन्द्रिय सुखको धारण करनेवाला पुरुष भी भोगोंसे उत्कण्ठित नहीं होता, क्योंकि उसे भोग करने योग्य वस्तुओंकी चिन्ता ही कभी नहीं होती है ॥६७॥ जिसे अतीन्द्रिय सौन्दर्यं प्राप्त हुआ है वह भी कभी स्नात आदि क्रियाओंको इच्छा नहीं करता, क्योंकि वहिरंग और अन्तरंग मलका क्षय हो जानेसे वह स्वयं स्नातक कहलाता है और उसका आत्मा निरन्तर शुद्ध रहता है ॥६८॥ इसी प्रकार जिसके अतीन्द्रिय आत्मा ही शरीर है वह आहार आदिकी अपेक्षा नहीं करता क्योंकि उसका आत्मारूप शरीर क्षुधा, व्याधि, विष और शस्त्र आदिकी वाधासे रहित होता है ॥६९॥ जिसके जन्म, जरा और मरण नष्ट हो चुके हैं वह कभी तपकी इच्छा नहीं करता तथा जो आत्मारूपी घरमें सुखसे स्थित रहता है वह कभी दूसरे आवासकी इच्छा नहीं करता ॥७०॥ इस प्रकार जो समस्त दोषोंसे रहित है, समस्त गुणोंसे सहित है, परमात्मा है और उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप है वहो परमेष्ठी कहलाता है ॥७१॥ कदाचित् आप यह कहें कि कामरूपित्व अर्थात् इच्छानुसार अनेक अवतार धारण करना आप्तका लक्षण है तो आपका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि जो कामरूपी होता है वह अवश्य ही रागसहित तथा अकृतकृत्य होता है ॥७२॥ जो स्वाभाविक रूपसे अपना इष्ट प्राप्त करनेके लिए समर्थ नहीं है वह कामरूपी विकृत रूपसे कैसे सुखी हो सकता है ? ॥७३॥ यह पुरुषका उदाहरण कहा, अब निगलका उदाहरण कहते हैं ।

जिस प्रकार निगल अर्थात् बेडीमें बैधा हुआ जीव अपने इष्ट स्थानपर जानेके लिए समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार कर्मरूप बन्धनसे बैधा हुआ जीव भी अपने इष्ट स्थानपर नहीं पहुँच सकता ॥७४॥ जिस प्रकार इस लोकमें बन्धनसे छूटा हुआ पुरुष परम स्वतन्त्रताको प्राप्त होता है उसी प्रकार कर्मबन्धनसे छूटा हुआ पुरुष भी स्वतन्त्रताको प्राप्त होता है ॥७५॥ और जिस प्रकार बेडीसे बैधा हुआ तथा बेडीसे छूटा हुआ पुरुष एक ही माना जाता है उसी प्रकार कर्मोंसे बैधा हुआ तथा कर्मोंसे छूटा हुआ पुरुष भी एक ही माना जाता है ॥७६॥ यह निगलका उदाहरण है, इस प्रकार मुक्त और संसारी आत्माओंको प्रकट करनेके लिए ये दो

१ युक्तम् । २ स्वभावस्थेन । ३ अशक्तः । ४ विकारजेन । ५ शृङ्खलावन्धनस्यः । ६ स्वामस् । ७ गच्छेत् ।

८ गच्छेत् । ९ उदाहरणम् १०, ल०, म० । १० पुरुषार्थवृद्धिकरणाप ।

यत्यसंसारिणमात्मानसुरीकृत्यान्यतन्त्रताम्<sup>१</sup> । तस्योपदेशे मुक्तस्य स्वातन्त्र्योपनिदर्शनम् ॥८०॥  
 मतः संसारिद्वान्तः सोऽयमासीयदर्शने<sup>२</sup> । मुक्तात्यनां भवेत्वं<sup>३</sup> स्वातन्त्र्यं प्रकटीकृतम् ॥८१॥  
 तथा संसृतौ देही न स्वतन्त्रः कर्त्तव्यतः । कर्मबन्धवशीभावाज्ञात्यन्याश्रितद्वयन्ते<sup>४</sup> ॥८२॥  
 ततः परप्रधानत्वमस्यैतत्वं प्रतिपादितम् । स्यात्तदत्वं च पुंसोऽस्य वेदनात्महनादिभिः<sup>५</sup> ॥८३॥  
 वेदनात्याकुलाभावद्वलत्वमिति लक्ष्यताम्<sup>६</sup> । क्षयवत्वं<sup>७</sup> च देवादिभवे<sup>८</sup> लक्ष्यद्विभाग्यात् ॥८४॥  
 बाध्यत्वं ताङ्नानिष्टवच्चनप्राप्तिरस्य वै । अन्तवस्त्रास्य<sup>९</sup> विज्ञानमक्षणोधः<sup>१०</sup> परिक्षणो<sup>११</sup> ॥८५॥  
 अन्तवर्द्धनं चास्य स्यादेन्द्रियिकदर्शनम् । र्षीयं च तद्विधं तस्य शरीरवलमस्यकम् ॥८६॥  
 स्यादस्य<sup>१२</sup> सुखमप्येवस्यायमिन्द्रियगोचरम् ।<sup>१३</sup> रजस्वलत्वमप्यस्य स्यात्कर्माणि कलङ्कनम् ॥८७॥  
 भवेत् कर्ममलादेशादत पूर्व मलीमसः । देवत्वं चास्य गात्राणां हिधाभावेन स्पृष्टनम् ॥८८॥  
 सुदगरात्यभिघातेन भेद्यत्वं स्याद् विदारणम् । जरावत्वं वयोहानिः प्राणत्वारो मृतिर्मता ॥८९॥  
 १४ अप्येवत्वं<sup>१५</sup> ॥१६ परिनिष्ठादेहृत्वलक्षणा च गतेन्द्रस्तोऽर्भकत्वेन जनन्युदरहुःस्थितिः ॥९०॥

उदाहरण कहे, अब उक्त कथनको दृढ़ करनेके लिए संसारी जीवोंका उदाहरण कहना चाहिए ॥७९॥ संसारी जीवोंको लेकर जो उनकी परतन्त्रताका कथन करना है उनकी उसी परतन्त्रताके उपदेशमें मुक्त जीवोंको स्वतन्त्रताका उदाहरण हो जाता है । भावार्थ—संसारी जीवोंकी परतन्त्रताका वर्णन करनेसे भुक्त जीवोंकी स्वतन्त्रताका वर्णन अपने आप हो जाता है क्योंकि संसारी जीवोंकी परतन्त्रताका अभाव होना ही मुक्त जीवोंकी स्वतन्त्रता है ॥८०॥ अरहन्त देवके मतमें संसारीका उदाहरण वही माना गया है कि जिसमें मुक्त जीवोंकी स्वतन्त्रता प्रकट हो सके ॥८१॥ आगे इसी उदाहरणको स्पष्ट करते हैं—संसारमें यह जीव किसी प्रकार स्वतन्त्र नहीं है क्योंकि कर्मबन्धनके वश होनेसे यह जीव अन्यके आश्रित होकर जीवित रहता है ॥८२॥ यह संसारी जीवकी परतन्त्रता बतलायी, इसी प्रकार सुख-दुःख आदिकी वेदनाओंके सहनेसे इस पुरुषमें चंचलता भी होती है ॥८३॥ सुख-दुःख आदिकी वेदनाओंसे जो व्याकुलता उत्पन्न होती है उसे चंचलता समझना चाहिए और देव आदिकी पर्यायमें प्राप्त ही ऋद्धियोंका जो क्षय होता है उससे इस जीवके क्षयपना ( नश्वरता ) जानना चाहिए ॥८४॥ इस जीवको यो ताङ्ना तथा अनिष्ट वज्रोंकी प्राप्ति होती है वही इसकी वाध्यता है और इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान क्षय होनेवाला है इसलिए वह अन्तसहित है और इसका वीर्य भी वैसा ही है अर्थात् अन्तसहित है क्योंकि इसके शरीरका बल अत्यन्त अल्प है ॥८५॥ इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाला इसका सुख भी प्रायः ऐसा ही है तथा कर्मोंके अंशोंसे जो कलंकित हो रहा है वही इसका मैलापन है ॥८६॥ कर्मरूपी मलके सम्बन्धसे मलिन भी है और शरीरके दो-दो टुकड़े होनेसे इसमें छेदत्व अर्थात् छिन्न-भिन्न होनेकी शक्ति भी है ॥८७॥ मुदगर आदिके प्रहारसे इसका शरीर बिदीर्ण हो जाता है इसलिए इसमें भेदत्व भी है, जो इसकी अवस्था कम होती जाती है वही इसका बुद्धापा है, और जो प्राणोंका परित्याग होता है वह इसकी मृत्यु है ॥८८॥ यह जो परिमित

१ पराधीनत्वमिति यत् । २ परतन्त्रस्य । ३ सर्वज्ञमते । ४ एव च सति । ५ यत् कारणात् । ६ संसारिणः ।  
 ७ वेदनाभवनादिभिः । ८ लक्षणम् ॥० । ९ क्षयोऽस्यास्तीति क्षयवान् तस्य भावः क्षयवत्वम् । १० देवाधिभवे  
 ११ देवाधिभिः । १२ अन्तोऽस्यास्तीति अन्तवत् । १३ इन्द्रियज्ञानम् । १४ स्वयं परिक्षयित्वादिति हेतुगमित-  
 विशेषणमेतत् । एवमुत्तरोत्तराःपि पोज्यम् । १५ एवंविषम् । अन्तवदित्यर्थः । १६ प्रमातु  
 योगत्वम् । १७ परिमित ।

अथवा कर्मनोकर्मगमेऽस्य परिवर्तनम् । गर्भवासी विलीनत्वे स्थाद् देहान्तरसंक्रमः ॥९१॥  
 क्षुभितत्वं च संक्षीभः क्रोधाद्याविष्टचेतसः । भवेद् विविधयोगोऽस्य नानायोनिपु संक्रमः ॥९२॥  
 संसारावास एषोऽस्य चतुर्गतिविवर्तनम् । प्रतिजन्मान्यथाभावो ज्ञानादीनामनिहता ॥९३॥  
 सुखासुखं बलाहारौ देहावासी च देहिनाम् । विवर्तन्ते तथा ज्ञानं दक्षन्ती<sup>१</sup> च रजोनुषाम्<sup>२</sup> ॥९४॥  
 एवंप्रायास्तु ये भावाः संसारिणु विनश्वराः । मुक्तात्मनां न सम्भवेते भावास्तेषां ह्यनश्वराः ॥९५॥  
 मुक्तात्मनां भवेद् भावः<sup>३</sup> स्वप्रधानतन्मणिमम् । प्रतिलक्ष्याम्यलाभत्वात् एव अप्यानपैक्षणम् ॥९६॥  
 वेदनाभिभावाभावाद्वलत्वं गमीरता । स्यादक्षयत्वमक्षयं शायिकातिशयोदयः ॥९७॥  
 अन्याभावाभत्वमस्थेष्ट जीवाजीवैर्वाध्यता । भवेदनन्तज्ञानत्वं विद्वार्थक्रिमत्रोधनम् ॥९८॥  
 अनन्तदर्शनत्वं च विश्वतत्वां<sup>४</sup> कर्मक्षणम् । योऽन्त्येष्टतिष्ठातोऽस्य सा मतानन्तर्वीर्यता ॥९९॥  
 भोगेष्वर्थेष्टवन्नारसुक्षमनन्तसुखता मता । नीक्षस्थं भवेदस्य अप्यायः पुण्यपापयोः ॥१००॥  
 निर्मलत्वं तु तस्येष्ट बहिरन्तर्मलस्युतिः । स्वसाधविमलोऽनादिसिद्धी नास्तीह कश्चन ॥१०१॥  
 योऽस्य जीववनाकारपरिणामो<sup>५</sup> मलक्षयात् । तदुत्तेष्टत्वमास्तात्मभेदत्वं च तत्कृतम् ॥१०२॥  
 अक्षरत्वं च मुक्तस्य क्षरणाभावतो मतम् । अप्रमेयस्वभावमोत्थैर्गुणैरुद्दैरमेवता ॥१०३॥

शरीरमें रुका रहता है वह इसका प्रमेयपता है और जो बालक होकर माताके पेटमें दुःखसे रहता है वह इसका गर्भवास है ॥१०॥ अथवा कर्म नोकर्मरूपी गर्भमें जो इसका परिवर्तन होता रहता है इसका गर्भवास है और एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जो संक्रमण करता है वह विलीनता है ॥११॥ क्रोध आदिसे आक्रान्त चित्तमें जो धोभ उत्पन्न होता है वह इसका क्षुभितपता है, और नाना योनियोंमें परिभ्रमण करता इसका विविध योग कहलाता है ॥१२॥ चारों गतियोंमें परिवर्तन करते रहना इस जीवका संसारावास कहलाता है और प्रत्येक जन्ममें ज्ञानादि गुणोंका अन्य-अन्य रूप होते रहना असिद्धता कहलाती है ॥१३॥ कर्मरूपी रजसे युक्त रहनेवाले इन संसारी जीवोंके जिस प्रकार सुख-दुःख, बल, आहार, शरीर और घर बदलते रहते हैं उसी प्रकार उनके ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य भी बदलते रहते हैं ॥१४॥ इस प्रकार संसारी जीवोंके जो विनश्वरभाव हैं वे मुक्त जीवोंके नहीं हैं, उनके सब भाव अविनश्वर हैं ॥१५॥ मुक्त जीवोंके उन भावोंमें आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होनेसे परद्रव्यकी अपेक्षासे रहित जो सर्वश्रेष्ठ स्वतन्त्रपता है वही पहला भाव है ॥१६॥ सुख दुःख आदिकी वेदनासे होनेवाले परभावका अभाव होनेसे जो अचंचलता होती है वही उनकी गमीरता है और कर्मोंके क्षयसे जो अतिक्षयोंकी प्राप्ति होती है वही उनका अविनाशी अक्षयपता है ॥१७॥ किसी भी जीव अथवा अजीवसे इन्हें बाधा नहीं पहुँचती यही इनका अव्याबाधपता है और संसारके समस्त पदार्थोंको एक साथ जानते हैं यही इनका अनन्तज्ञानीपत है ॥१८॥ समस्त तस्वीरोंको एक साथ देखना ही इनका अनन्तदर्शनपत है और अन्य पदार्थोंके द्वारा प्रतिष्ठातका न होना अनन्तवीर्यपता है ॥१९॥ भोग करने योग्य पदार्थोंमें उत्कण्ठा न होना अनन्तसुखपता माना जाता है और पुण्यतथा पापका अभाव हो जाना नीरजसपन कहलाता है ॥२०॥ बहिरंग और अन्तरंग मलका नाश होता ही इसका निर्मलपता कहलाता है क्योंकि इस संसारमें ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो स्वभावसे ही निर्मल हो और अनादि कालसे सिद्ध हो ॥२१॥ कर्मरूपी मलके नाश होनेसे जो जीवके प्रदेशोंका घनाकार परिणमन होता है वही इसका अच्छेद्यपता है और उसी कर्मरूपी मलके नाश होनेसे इसके अभेद्यपता माना जाता है ॥२२॥ मुक्त जीवका

<sup>१</sup> दृक् च शक्तिरेच दृक्शक्ती । <sup>२</sup> कर्मफलभाजाम् । <sup>३</sup> एवमादयः । <sup>४</sup> स्वभावः । <sup>५</sup> चेतनाज्ञेतनैः । <sup>६</sup> शुगपत् । <sup>७</sup> परिणमनम् ।

वहिरन्तर्मलापायादगमेवसतिर्भवता । कर्मनोकर्मविश्लेषात् स्यादगौरवलाभवम् ॥ १०४ ॥  
 तादवस्त्र्यं गुणेरुद्धैः॒ रक्षोभ्यवस्तो भवेत् । अविलीनत्वमात्म्यीयैर्गुणैरप्यष्टपूर्कता॑ ॥ १०५ ॥  
 प्राप्नेहाकारमूर्तिं च वदस्याहेयमक्षरम् । साऽभीष्ठा परमा काषा योगरूपत्वमात्मनः ॥ १०६ ॥  
 लोकाभ्यासकृत्वोऽप्यतिरिक्ते वाशुदृष्टिस्थितिः ॥ १०७ ॥ उत्तमेवद्वयात्मकत्वे द्विष्टैः॒ यथमिदसा ॥ १०७ ॥  
 यः समग्रैर्गुणैरेविज्ञानादिमिरलकृतः । कि तस्य कृतकृत्यस्य परद्वयोपसर्पणैः ॥ १०८ ॥  
 पृथ संसारिद्वान्तो व्यतिरेकेण॑ साधयेत् । परमात्मानमात्मानं प्रभुप्रतिशासनम् ॥ १०९ ॥  
 श्रिभिर्निर्दशनैरमिराविकृतमहोदयः । स आसस्तन्मते धीरादेया मतिरात्मनः ॥ ११० ॥  
 १११ ॥ एवं हि क्षत्रियश्चेष्टो भवेत् राष्ट्रपरम्परः । मताम्लरेषु द्वौःस्थित्यं भावयज्ञपत्तिभिः ॥ १११ ॥  
 दिगन्तरेभ्यो व्यावस्थं प्रषुद्धां मतिमात्मनः । सन्मागे॑ स्यापयचेव॑ कुर्यात्मत्यनुपालनम् ॥ ११२ ॥  
 आत्रिकामुत्रिकापायात् परिक्षणमात्मनः । आत्मानुपालनं नाम लक्ष्मिनां विवृण्महे ॥ ११३ ॥  
 आत्रिकापायसंरक्षा॒ सप्रतीतैव धीमत्ताम् । विषकामाद्यपायानां परिक्षणलक्षणा ॥ ११४ ॥

कभी क्षरण अर्थात् विनाश नहीं होता इसलिए इसमें अक्षरता अर्थात् अविनाशीपन है और आत्मासे उत्पन्न हुए श्रेष्ठ युगोंसे इसका प्रमाण नहीं किया जा सकता इसलिए इसमें अप्रयेपना है ॥१०३॥ वहिरंग और अन्तरंग मलका नाश हो जानेसे इसका सम्बिलास नहीं माना जाता है और कर्म तथा नोकर्मका नाश हो जानेसे इसमें गुरुता और लघुता भी नहीं होती है ॥१०४॥ यह आत्मासे उत्पन्न हुए प्रशासनीय गुणोंसे अपने स्वरूपमें अवस्थित रहता है इसलिए इसमें अक्षोभ्यपना है और आत्माके गुणोंसे कभी रहित नहीं होता इसलिए अविलीनपना है ॥१०५॥ जो कभी न छूटने योग्य और कभी न नष्ट होने योग्य पहलेके शरीरके आकार इसकी मूर्ति रहती है वही इसकी परम हृद है और वही इसकी योगरूपता है ॥१०६॥ तीनों लोकोंके शिखरपर जो इसकी सदा रहनेवाली स्थिति है वही इसका लोकाग्रवास गुण है और जो समस्त पुरुषाधींकी पूर्णता है वही इसकी परमसिद्धता है ॥१०७॥ इस प्रकार जो इन ज्ञान आदि समस्त गुणोंसे अलंकृत है उस कृतकृत्य हुए मुक्त जीवको अन्य द्रव्योंकी प्राप्तिसे क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ नहीं ॥१०८॥ यह संसारी जीवका दृष्टान्त व्यतिरेक रूपसे आत्माको, जिसपर किसीका शासन नहीं है और जो प्रभुरूप है ऐसा परमात्मा सिद्ध करता है । भावार्थ- इस संसारी जीवके उदाहरणसे यह सिद्ध होता है कि यह आत्मा ही परमात्मा हो जाता है ॥१०९॥ इस प्रकार इन तीन उदाहरणोंसे जिसका महोदय प्रकट हो रहा है वही आप्त है, उसी आप्तके मलमें धीर-वीर पुरुषोंको अपनी दुदि लगानी चाहिए ॥११०॥ इस तरह जिसने सब परम्परा देख ली है, और जो अन्य मतोंमें युक्तियोंसे दुष्टताका चिन्तवन करता है वही सब क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ कहलाता है ॥१११॥ क्षत्रियको चाहिए कि वह अपनी जागृत बुद्धिको अन्य दिशाओं अर्थात् मतोंसे हटाकर समीचीन मार्गमें लगाता हुआ उसकी रक्षा करे ॥११२॥ इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी अपायोंसे आत्माकी रक्षा करना आत्माका पालन करना कहलाता है । अब आगे इसी आत्माके पालनका वर्णन करते हैं ॥११३॥ विष शस्त्र आदि अपायोंसे अपनी रक्षा करना ही जिसका लक्षण है ऐसी इस लोकसम्बन्धी अपायोंसे

१ अगुहलघुत्वम् । २ स्वरूपावस्थानम् । ३ न केवलं देहादिभिः । ज्ञानादिगुणेरपि । ४ अत्यक्तता । -र॒प्य-  
वृत्तता । 'अपवृत्तता' इति पाठे अपवर्तनत्वं गुणगुणीभावराहित्यम् । ५ निष्पत्तिः । परिसमाप्तिरित्यर्थः ।  
६ अ्यतिरेकिद्वाषान्तेन । ७ एवं कृते सति । ८-नेव इ०, ल०, म० ।

१ तत् आसुक्रिकापाय रक्षा विधिसन्दृश्टे । तदधरणं च धर्मेण धर्मो द्वापर्यतिक्रिया ॥ ११५ ॥  
 धर्मो रक्षत्यपायेभ्यो धर्मोऽभीष्टफलग्रहः । धर्मः अवस्करोऽसुत्र धर्मणेह । भिनन्दद्युः ॥ ११६ ॥  
 तस्माद्दर्मेकतानः सन् कुर्यादिष्यत्प्रतिक्रियाम् । एवं हि रक्षितोऽपायाद् भवेदास्मा भवान्तरे ॥ ११७ ॥  
 अहम् द्वापायमिदं गच्छ त्याज्यमेव मनस्विनाम् । वश्र पुथोः ससोदयोः१ वैरायन्ते२ निरन्तरम् ॥ ११८ ॥  
 अपि द्वाप्र भवतः खेदवहुले का सुखासिकाँ३ । ममसो निर्वृतिं सौष्ठुद्यमुशान्तीह विष्वक्रमाः ॥ ११९ ॥  
 राज्ये न सुखलेशोऽपि दुरन्ते तु रितावर्ह । सर्वतः ब्रह्मानस्य प्रस्तुताश्रासुखे४ महान् ॥ १२० ॥  
 ततो राज्यमिदं हेयमप्यमिव भेषजम् । उपादेयं सु विद्विश्वतः पर्यमिवाशनम् ॥ १२१ ॥  
 हृति प्रागेव निर्णियं राज्ये भोगं स्वजेन् सुर्धाः । तथा स्वक्तुमशक्तोऽन्ते त्यजेद् राज्यपरिच्छदम् ॥ १२२ ॥  
 कालज्ञानिभिरादिष्टे निर्णिति स्वयमेव वा । जीवितान्ते तनुत्यागमति दध्यादितः सुर्धाः ॥ १२३ ॥  
 स्वागो हि परमो धर्मस्त्याग एत्र परं तपः । त्यागादिह यशोलाभः परमाभ्युदयो महान् ॥ १२४ ॥  
 मत्वेति तनुमाहारं राज्यं च सपरिच्छदम् । त्यजेदायतने५ पुण्ये६ पूजाविधिपुरस्तरम् ॥ १२५ ॥

होनेवाली रक्षा तो विद्वान् पुरुषोंको विदित ही है ॥ ११४ ॥ इसलिए अब परलोक सम्बन्धी अपायोंसे होनेवाली रक्षाकी विधि कहते हैं । परलोक सम्बन्धी अपायोंसे रक्षा धर्मके द्वारा ही हो सकती है क्योंकि धर्म ही समस्त आपत्तियोंका प्रतिकार है—उनसे बचनेका उपाय है ॥ ११५ ॥ धर्म ही अपायोंसे रक्षा करता है, धर्म ही मनवाहा फल देनेवाला है, धर्म ही परलोकमें कल्याण करनेवाला है और धर्मसे ही इस लोकमें आनन्द प्राप्त होता है ॥ ११६ ॥ इसलिए धर्ममें एकचित्त होकर भविष्यत् कालमें आनेवाली विपत्तियोंका प्रतिकार करना चाहिए क्योंकि ऐसा करनेसे ही आत्माकी दूसरे भवमें विपत्तिसे रक्षा हो सकती है ॥ ११७ ॥ जिस राज्यके लिए पुत्र तथा सगे भाई आदि भी निरन्तर शत्रुता किया करते हैं और जिसमें बहुत अपाय हैं ऐसा यह राज्य बुद्धिमान् पुरुषोंको अवश्य ही छोड़ देना चाहिए ॥ ११८ ॥ एक बात यह भी है कि जिसमें मानसिक खेदकी बहुलता है ऐसे इस राज्यमें सुखपूर्वक कैसे रहा जा सकता है क्योंकि इस संसारमें पण्डितजन मनकी निराकुलताकी ही सुख कहते हैं ॥ ११९ ॥ जिसका अन्त अच्छा नहीं है और जिसमें निरन्तर पाप उत्पन्न होते रहते हैं ऐसे इस राज्यमें सुखका लेश भी नहीं है बल्कि सब औरसे शक्ति रहनेवाले पुरुषको इस राज्यमें बड़ा भारी दुःख बना रहता है ॥ १२० ॥ इसलिए विद्वान् पुरुषोंको अपर्य औपर्यधिके समान इस राज्यका त्याग कर देना चाहिए और पर्य भोजनके समान तप ग्रहण करना चाहिए ॥ १२१ ॥ इस तरह बुद्धिमान् पुरुषको चाहिए कि वह राज्यके विषयमें पहुलेसे ही विरक्त होकर भोगेपभोगका त्याग कर दे, यदि वह इस प्रकार त्याग करनेके लिए समर्थ न हो तो कमसे कम अन्त समय उसे राज्यके आडम्बरका अवश्य ही त्याग कर देना चाहिए ॥ १२२ ॥ इसलिए यदि कालको जानेवाला निमित्तज्ञानी अपने जीवनका अन्त समय बतला दे अथवा अपने आप ही उसका निर्णय हो जावे तो बुद्धिमान् अत्रियको चाहिए कि वह उस समयसे शरीर परित्यागकी बुद्धि धारण करे अर्थात् सल्लेखना धारण करनेमें बुद्धि लगावे ॥ १२३ ॥ क्योंकि त्याग ही परम धर्म है, त्याग ही परम तप है, त्यागसे ही इस लोकमें कौतिकी प्राप्ति होती है और त्यागसे ही परलोकमें महान् ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ १२४ ॥ ऐसा मानकर अत्रियको किसी पवित्र स्थानमें रहकर पूजा आदिकी विधि करके शरीर आहार और खमर छन्न आदि उपकरणोंसे सहित राज्यका परित्याग कर देना

१ अत अ०, स०, म०, ल० । २ एकोदरे जाता । ३ वैरं कुर्वन्ति । ४ सुखास्थता । ५ पुनः किमिति चेत् ।  
 ६ वैराघ्यपरो भूत्वा । ७ आवासै । ८ पवित्रे ।

गुरुसाक्षि तथा ल्पन्देहाहारस्य दस्य वै । परीषहजयायत्ता सिद्धिरिद्या महात्मनः ॥१२६॥  
 ततो ध्यायेदनुप्रेश्वाः कृती जेतुं परीषहान् । विनाऽनुप्रेक्षणैऽिच्छत्समाधानं हि दुर्लभम् ॥१२७॥  
 १ प्राग्मावित्सेवाहं भावयामि न भावितम् । भावयामीति भावेन भावयेत्स्वभावनाम् ॥१२८॥  
 समुत्सजेदनामीमं शरीरादिपरिग्रहम् । आर्मार्थं तु स्वसानकुर्याद् रत्नवृथमनुलरम् ॥१२९॥  
 मनोऽन्याक्षेपरक्षार्थं<sup>२</sup> अन्यक्षिति स धीरधीः । प्राणान् विसर्जयेदन्ते संस्मरन् परमेष्ठिनाम् ॥१३०॥  
 तथा विसर्जितप्राणः प्रणिवानपरायणः<sup>३</sup> । विधिलिङ्गद्वय कर्मणि शुमां गतिमधाइनुते<sup>४</sup> ॥१३१॥  
 तस्मिन्नेव भवे शक्तः कृत्वा कर्मपरिक्षयम् । सिद्धिमाप्नोत्यशक्तम् तु विद्वाप्रमाणानुयात् ॥१३२॥  
 ततश्च्युतः परिप्राप्तमानुप्यः परमं तपः । कृत्वान्ते निर्वृतिं याति निर्वृतायित्वन्धनः ॥१३३॥  
 क्षत्रियो यस्त्वनामज्ञः कुर्याज्ञात्मानुपालनस् । विषयस्त्रादिभिस्तस्य दुर्मृतिभूत्वमादिर्गी ॥१३४॥  
 दुर्मृतश्च दुर्मृतेऽस्मिन् मत्वावते दुर्मृते । पतित्वाऽनुब्रह्म दुखानां दुर्गतीं माजनं भवेत् ॥१३५॥  
 ततो भतिमत्ताऽस्मीयविमिपातानुरक्षणे । विद्वयोऽस्मिन् महायत्नो लोकद्वयहितावहे ॥१३६॥  
 कृतात्मरक्षणश्चैव प्रजानामनुपालने । राजा यत्नं प्रकृत्यात् राजा मौलो ह्ययं गुणः ॥१३७॥

चाहिए ॥१२५॥ इस प्रकार जिसने गुरुकी साक्षीपूर्वक शरीर और आहारका त्याग कर दिया है ऐसे महात्मा पुरुषको इष्टसिद्धि परीपहोंके विजय करनेके अधीन होती है अर्थात् जो परीषह सहन करता है उसीके इष्टकी सिद्धि होती है ॥१२६॥ इसलिए निपुण पुरुषको परीषह जीतनेके लिए अनुप्रेक्षाओंकी चिन्तवन करना चाहिए क्योंकि अनुप्रेक्षाओंके चिन्तवन किये बिना चित्तका समाधान कठिन है ॥१२७॥ जिसका पहले कभी चिन्तवन नहीं किया था ऐसे सम्यक्त्व आदिका चिन्तवन करता हूँ और जिसका पहले चिन्तवन किया था ऐसे मिथ्यात्व आदिका चिन्तवन नहीं करता इस प्रकारके भावोंसे तत्त्वोंकी भावनाओंका चिन्तवन करना चाहिए ॥१२८॥ जो आत्माके नहीं है ऐसे शरीर आदि परिग्रहका त्याग कर देना चाहिए और जो आत्माके हैं ऐसे सर्वोल्कुष्ट रत्नवृथका ग्रहण करना चाहिए ॥१२९॥ धीर वीर बुद्धिको धारण करनेवाले पुरुषको मनकी चंचलता नष्ट करनेके लिए इस प्रकार ध्यान करते हुए और पंचपरमेष्ठियोंका स्मरण करते हुए आयुके अन्तमें प्राणत्याग करना चाहिए ॥१३०॥ जो पुरुष ध्यानमें तत्पर रहकर ऊपर लिखे अनुसार प्राणत्याग करता है वह कर्मोंको शिथिल कर शुभ गतिको प्राप्त होता है ॥१३१॥ जो समर्थ है वह उसी भवमें कर्मोंका क्षय कर मोक्षको प्राप्त होता है और जो असमर्थ है वह स्वर्गके अग्रभाग अर्थात् सर्वर्थसिद्धिको प्राप्त होता है ॥१३२॥ वह वहासे च्युत हो मनुष्यपर्याय प्राप्त कर और परम तपदचरण कर आयुके अन्तमें समस्त कर्मवन्धनको नष्ट करता हुआ निर्वाणको प्राप्त होता है ॥१३३॥ आत्माका स्वरूप न जाननेवाला जो क्षत्रिय अपने आत्माको रक्षा नहीं करता है उसकी विष, शस्त्र आदिसे अवश्य ही अपमृत्यु होती है ॥१३४॥ और अपमृत्युसे मरा हुआ प्राणी दुखदायी तथा कठिनाईसे पार होने योग्य इस संसाररूप आवर्तमें पड़कर ऐरलोकमें दुर्गतियोंके दुखका पात्र होता है ॥१३५॥ इसलिए बुद्धिमान् क्षत्रियको दोनों लोकोंमें हित करनेवाले, आत्माके इस विघ्नबाधाओंसे रक्षा करनेमें महाप्रयत्न करना चाहिए ॥१३६॥ इस प्रकार जिसने आत्माकी रक्षाकी है ऐसे राजाको प्रजाका पालन करनेमें प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि यह राजाओंका मौलिक गुण है ॥१३७॥

<sup>१</sup> स्वप्रवृत्तादिकम् । <sup>२</sup> मिथ्यात्वादिकम् । <sup>३</sup> मानसबाधाया नाशार्थम् । <sup>४</sup> एकाग्रतां गतः । <sup>५</sup>—मुपाश्नुते अ , प०, स०, इ०, ल०, म० । <sup>६</sup> प्रजापालनयत्नः ।

कथं च पालनीयाहस्तः प्रजाइचेत्तप्रपञ्चः १। पुष्टे गोपालदृष्टान्तं मूरीकृत्य विवृण्महे ॥१३८॥  
 गोपालको यथा व्रक्षाद् गाः संरक्षण्यतन्दितः २। क्षमापालश्च प्रयत्नेन तथा रक्षेन्जिजाः प्रजाः ॥१३९॥  
 तथथा यदि गौः कश्चिदपराधीं स्वगोकुले । तमङ्गच्छेदनाथुग्रदण्डैस्तीव्रमध्योजयन् ॥१४०॥  
 पालयेदनुरूपेण दण्डेनैव नियन्त्रयन् । यथा गोपहत्या भूपः प्रजाः स्वाः प्रतिपालयेत् ॥१४१॥  
 तीक्ष्णदण्डो हि नृपतिस्तीव्रमुद्देजयेत्प्रजाः । ततो विरक्षमृकृति जाग्नरेनममः प्रजाः ॥१४२॥  
 यथा गोपालको भाँडं पशुवर्गं स्वगोकुले । पोषयक्षेत्रं पुष्टः स्थापूर्णोपयोगं प्राज्ञयगोधनः ३ ॥१४३॥  
 तथैष तृपतिमौलं ४ तन्त्रसार्वाद्यमेकतः ५ । पोषयस्यपुष्टिमाप्नोति स्वे परस्मैश्च मण्डले ॥१४४॥  
 पुष्टे ग्रांडेन तन्त्रणं यो हि पार्थिवकृत्याः । स जयेत् पृथिवीमेनां सागरान्तामयकलः ॥१४५॥  
 प्रभग्नवरणं किञ्चिद् गोव्रन्धं ६ चेत् प्रमादतः । गोपालस्तस्य संधारं कुर्याद् वस्थाद्युपकर्मः ॥१४६॥  
 बहुआय च लृणाद्यस्मै इत्था दाढ़ये नियोजयेत् । उपद्रवान्तरेऽप्येवमाशु कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥१४७॥  
 यथा तथा नरेन्द्रोऽपि स्वबले विग्रहं भट्टम् । प्रसिकुर्याद् ७ ८ मिवरवर्याज्ञियोज्ञौषधसंपदा ॥१४८॥  
 दर्ढीकृतस्य चास्योद्दृ ९ जीवनाद्वै १० प्रचिन्तयेत् । स्वयं भृत्यवर्गोऽह्य शशदान्तोति ममधुम् ११ ॥१४९॥

उस प्रजाका किस प्रकार पालन करना चाहिए यदि आप यह जानना चाहते हैं तो हम ग्वालिये-का सुदृढ़ उदाहरण लेकर विस्तारके साथ उसका वर्णन करते हैं ॥१३८॥ जिस प्रकार ग्वालिया आलस्यरहित होकर बड़े प्रयत्नसे अपनी गायोंकी रक्षा करता है उसी प्रकार राजाको बड़े प्रयत्नसे अपनी प्रजाकी रक्षा करनी चाहिए ॥१३९॥ आगे इसीका खुलासा करते हैं—यदि अपनी गायोंके समूहमें कोई गाय अपराध करती है तो वह ग्वालिया उसे अंगछेदन आदि कठोर दण्ड नहीं देता हुआ अनुरूप दण्डसे नियन्त्रण कर जिस प्रकार उसकी रक्षा करता है उसी प्रकार राजाको भी अपनी प्रजाकी रक्षा करनी चाहिए ॥१४०—१४१॥ यह निश्चय है कि कठोर दण्ड देनेवाला राजा अपनी प्रजाको अधिक उद्विग्न कर देता है इसलिए प्रजा ऐसे राजाको छोड़ देती है तथा मन्त्री आदि प्रकृतिजन भी ऐसे राजासे विरक्त हो जाते हैं ॥१४२॥ जिस प्रकार ग्वालिया अपनी गायोंके समूहमें मुख्य पशुओंके समूहकी रक्षा करता हुआ पुष्ट अर्थात् सम्पत्तिशाली होता है क्योंकि गायोंकी रक्षा करके ही वह मनुष्य विशाल गोधनका स्वामी हो सकता है, उसी प्रकार राजा भी अपने मुख्य वर्गकी मुख्य रूपसे रक्षा करता हुआ अपने और दूसरेके राज्यमें पुष्टिको प्राप्त होता है ॥१४३—१४४॥ जो श्रेष्ठ राजा अपने-अपने मुख्य बलसे पुष्ट होता है वह इस समुद्रान्त पृथिवीको बिना किसी घल्के जीत लेता है ॥१४५॥ यदि कदाचित् प्रमादसे किसी गायका पैर टूट जाय तो ग्वालिया उसे बांधना आदि उपादानसे उस पैरको जोड़ता है, गायको बांधकर रखता है—बैंधी हुई गायके लिए धास देता है और उसके पैर-को भजबूत करनेमें प्रयत्न करता है तथा इसी प्रकार उन पशुओंपर अन्य उपद्रवोंके आनेपर भी वह शीघ्र ही उनका प्रतिकार करता है ॥१४६—१४७॥ जिस प्रकार अपने आश्रित गायों-की रक्षा करनेके लिए ग्वालिया प्रयत्न करता है उसी प्रकार राजाको भी चाहिए कि वह अपनी सेनामें धायल हुए योद्धाको उत्तम वैद्यसे औषधिरूप सम्पदा दिलाकर उसकी विपत्तिका प्रतिकार करे अर्थात् उसकी रक्षा करे ॥१४८॥ और वह बीर जब अच्छा हो जावे तो राजाको उसकी उत्तम आजीविका कर देनेका विचार करना चाहिए क्योंकि ऐसा करनेसे भूत्यवर्ग सदा

१ प्रपञ्चनम् ८०, म० । प्रपञ्चते अ०, स० । २ समूद्रम् । ३ स्वीकृत्य । ४ अनाकृत्यः । ५ दोषी ।  
 ६ संयोजनमकुर्वन् । ७ नियमयन् । ८ उद्वेगं कुर्यात् । ९ त्यक्तानुरागप्रजापरिवारवन्तम् । १० गाः पोषयतीति  
 गोपोषस्तम् । ११ बहुगोपयः । १२ बलम् । १३ एकस्मिन् स्थाने । १४ गोपनम् । १५ प्रतिकारं कुर्यात् ।  
 १६ बैद्यमेष्टात् । १७ अधिकम् । १८ जीवितादिकम् । १९ आनन्दम् ।

यथैव खलु गोपालो यंत्यस्थित्यचलने गवाम् । तदस्मिं स्थापयन् प्राप्वत् कुर्याद्योन्यां प्रतिक्रियाम् ॥१५०॥  
 तथा नृपोऽपि मंग्रामे भूत्यमुख्ये ष्वसौ<sup>१</sup> सति । उत्येदे पुश्चमेवास्य आतरं वा नियोजयेत् ॥१५१॥  
 मनि चैव कृतज्ञोऽयं नृप इत्यनुरक्तलाम् । उपैति भूत्यवगोऽस्मिन् भवेष्य भूत्योधनः<sup>२</sup> ॥१५२॥  
 यथा यद्यवपि गोपालः कृमिद्वये गवाङ्गणे । तद्योग्यमौषवं दन्वा करोऽयस्य प्रतिक्रियाम् ॥१५३॥  
 तत्त्वैव पृथिवीपालो दुर्विद्यं स्वानुजीविनम्<sup>३</sup> । विमनस्कं विदितैवं सौचित्यं<sup>४</sup> संनियोजयेत् ॥१५४॥  
 विरक्तो अनुजीवीं स्यादलब्धोचितजीवनः<sup>५</sup> । प्रभोक्रिमान् नाचैवं तस्माद्वैनं विरक्तयेन्द्रौ<sup>६</sup> ॥१५५॥  
 ७ तदीर्गत्यं ब्रह्मस्थानफुमिसंभवसज्जिभम् । विदित्वा तत्पतीकासमाश्य कुर्याद्विशां पतिः ॥१५६॥  
 वहुनापि त द्रुतेन सौचित्यभनुजीविनाम् । उचितात् स्वामिसन्मानाद् यथैवां जात्यते धृतिः ॥१५७॥  
 गोपालको यथा यूथे स्वे महोक्षं<sup>७</sup> सरक्षमम् । शारवास्य नस्पकर्मादि विदध्याद् गायपुष्टये ॥१५८॥  
 तथा नृपोऽपि सैन्ये स्वे योद्धारं भटसत्तमम् । ज्ञात्वैवं जीवनं प्राप्त्यं दस्ता संमानयेत् कृती ॥१५९॥  
 कृतापदानं<sup>८</sup> तथोपयैः सल्कारैः प्रीणयन् प्रभुः । न सुष्यतेऽनुरक्तः स्वैरनुजीविमिसन्वद्वाहम् ॥१६०॥  
 यथा च गोपी गोयूधं कण्ठकोपलवर्जिसे । शीतातपादिशाधाभिरुज्जिते चारयन्<sup>९</sup> वने ॥१६१॥

आनन्दको प्राप्त होते रहते हैं—सन्तुष्टु बड़े रहते हैं अरहवै<sup>१</sup> ।<sup>२</sup> जिसंप्रकार ग्वालियां स्थित्यस्थानसे  
 गायोंकी हड्डीके विचलित हो जानेपर उस हड्डीको वहीं पैठालता हुआ उसका योग्य प्रतिकार  
 करता है उसी प्रकार राजाको भी युद्धमें किसी मुख्य भूत्युके मर जानेपर उसके पदपर  
 उसके पुत्र अथवा भाइको नियुक्त करना चाहिए ॥१५०—१५१॥ ऐसा करनेसे भूत्य लोग  
 ‘यह राजा बड़ा कृतज्ञ है’ ऐसा मानकर उसपर अनुराग करते लगेंगे और अवसर पड़नेपर  
 निरन्तर युद्ध करनेवाले बन जायेंगे ॥१५२॥ कदाचित् गायोंके समूहको कोई कीड़ा काट लेसा  
 है तो जिस प्रकार ग्वालिया योग्य ओषधि देकर उसका प्रतिकार करता है उसी प्रकार राजाको  
 भी चाहिए कि वह अपने सेवकको दरिद्र अथवा लेदालिश जानकर उसके चित्तको सन्तुष्ट करे  
 ॥१५३—१५४॥ क्योंकि जिस सेवकको उचित आजीविका प्राप्त नहीं है वह अपने स्वामीके  
 इस प्रकारके अपमानसे विरक्त हो जायेगा इसलिये राजाको चाहिए कि वह कभी अपने  
 सेवकको विरक्त न करे ॥१५५॥ सेवककी दरिद्रताको धावके स्थानमें कीड़े उत्पन्न होनेके  
 समान जानकर राजाको शीघ्र ही उसका प्रतिकार करना चाहिए ॥१५६॥ सेवकोंको अपने  
 स्थामीसे उचित सन्मान पाकर जैसा सन्तोष होता है वैसा सन्तोष बहुत धन देनेपर भी नहीं  
 होता है ॥१५७॥ जिस प्रकार ग्वाला अपने पशुओंके मुण्डमें किसी बड़े बैलको अधिक भार धारण  
 करनेमें समर्थ जानकर उसके शरीरकी पुष्टिके लिए नस्य कर्म आदि करता है अर्थात् उसकी  
 नाकमें तेल ढालता है और उसे खली आदि खिलाता है उसी प्रकार चतुर राजाको भी चाहिए  
 कि वह अपनी सेनामें किसी योद्धाको अत्यन्त उत्तम जानकर उसे अच्छी आजीविका देकर  
 सन्मानित करे ॥१५८—१५९॥ जो राजा अपना पराक्रम प्रकट करनेवाले वीर पुरुषको उसके  
 योग्य सल्कारोंसे सन्तुष्ट रखता है उसके भूत्य उसपर सदा अनुरक्त रहते हैं और कभी भी उसका  
 साथ नहीं छोड़ते हैं ॥१६०॥ जिस प्रकार ग्वाला अपने पशुओंके समूहको काटे और पत्थरोंसे  
 रहित तथा शीत और गरमी आदिकी बाधासे शून्य बनमें चराता हुआ बड़े प्रयत्नसे उसका

१ विषतप्राणे २ नृपे ३ योद्धा ४ युद्धकारीत्यर्थः ५ दरिद्रम् ६ ज्ञामनवित्यत्वे ७ विरक्तो-  
 इत्यानुजीवी ८ जीवित ९ अवमाननात् १० कर्कशं न कुर्यात् ११ हरहितवित्यर्थः १२ विमनस्कलम् १३  
 महान्तमनुद्वाहम् १४ कृतपराक्रमम् १५ भक्षणं कारयन् ।

पोष्यन्यतिग्रेन तथा भूपोष्यविग्रहे । देशे कल्पद्रुग्णः<sup>१</sup> लोकं हृष्टप्रियद्रुमिभृत् ॥१६३॥  
राज्यादिपरिवर्त्तेषु जनोऽयं पीड्यन्त्यथार्थो । चौरुद्गमस्कैत्यैरपि प्रभ्यतनायकः ॥१६४॥  
५ प्रस्त्र च तथा भूतान् वृत्तिच्छेदेन योजयेत् । काटकोद्गरणेन च प्रजानो अमधारणम् ॥१६५॥  
यथैव गोपः संजाते वल्मी मात्रासहामुकम् (नुगम्) । दिनमेकमवस्थाय तनोऽन्येयुद्यादैर्धीः ॥१६६॥  
विधाय चरणे तत्त्वं शर्ववन्धनसंक्षिप्तम् । मामिनालं पुनर्गमीनालं नापाम्य अवतः ॥१६७॥  
जन्मनुभ्यमवशङ्काना ग्रहीकारं विधाय च । श्रीरोपयोगदानार्थ्येन्द्रियेन प्रतिवापम् ॥१६८॥  
भूपोष्यद्विमुखाय वृत्तये<sup>२</sup> स्वसुपासितुम्<sup>३</sup> । यथाऽनुरूपैः यं मानिः स्वाकृत्यादनुर्जातिनम् ॥१६९॥  
स्वीकृतस्य च तस्मोद्गर्वन्नादिप्रचिन्तया । चोगक्षेमं प्रयुक्तीति कृतक्लेशस्य वादरम् ॥१७०॥  
यथैव चलु गोपालः पश्चात् केषु<sup>४</sup> समुद्यतः । श्रीराष्ट्रलोकनार्थैस्तान् परीक्षण गुणवत्तमात्<sup>५</sup> ॥१७१॥  
क्रीणाति शकुलादीनामवधारणतत्परः । कुलपुण्ड्रपोष्येवं क्रीणीयात् सुपराशिनाम् ॥१७२॥  
क्रीतोऽति वृत्तिम् समेन तान् चथावसरं प्रभुः । कृत्येषु<sup>६</sup> विनियुक्तीति सूत्र्यः अत्यं फलं हि सन् ॥१७३॥  
६ यदूष प्रतिभूः कश्चित् चोक्रये प्रतिगृह्णाते । बलवान् प्रतिभूस्तद्व्याहो<sup>७</sup> भृण्योपमंग्रहे ॥१७४॥  
७ याम्भमात्रावशिष्टायां रात्राकुत्थाय यत्वतः । ८ चारथित्वोचिते देशो गाः प्रभूतत्त्वोदके ॥१७५॥

पोषण करता है उसी प्रकार राजाको भी अपने सेवक लोगोंको किसी उपद्रवहीन स्थानमें रखकर उनकी रक्षा करनी चाहिए ॥१६१-१६२॥ यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो राज्य आदिका परिवर्तन होनेपर चोर, डाकू तथा समीपवर्ती अन्य राजा लोग उसके इन सेवकोंको पीड़ा देने लगेंगे ॥१६३॥ राजाको चाहिए कि वह ऐसे चोर डाकू आदिकी आजीविका जबरन नष्ट कर दे क्योंकि काँटोंको दूर कर देनेसे ही प्रजाका कल्याण हो सकता है ॥१६४॥ जिस प्रकार खाला हालके उत्पन्न हुए बच्चेको एक दिन तक माताके साथ रखता है, दूसरे दिन दयावृद्धिसे युक्त हो उसके पैरमें धीरेसे रससी बौधकर खूंटीसे बाधिता है, उसकी जरायु तथा नाभिके नालको बड़े यत्नसे दूर करता है, कीड़े उत्पन्न होनेकी शंका होनेपर उसका ग्रहीकार करता है, और दूध पिलाना आदि उपायोंसे उसे प्रतिदिन बढ़ाता है ॥१६५-१६६॥ उसी प्रकार राजाको भी चाहिए कि वह आजीविकाके अर्थं अपनी सेवा करनेके लिए आये हुए, सेवकको उसके योग्य आदर सम्मानसे स्वीकृत करे और जिन्हें स्वीकृत कर लिया है तथा जो अपने लिए क्लेश सहन करते हैं ऐसे उन सेवकोंकी प्रशस्त आजीविका आदिका विचार कर उनके साथ योग और क्षेमका प्रधोग करना चाहिए अर्थात् जो वस्तु उनके पास नहीं है वह उन्हें देनी चाहिए और जो वस्तु उनके पास है उसकी रक्षा करनी चाहिए ॥१६८-१६९॥ जिस प्रकार शकुन आदि के निश्चय करनेमें तत्पर रहनेवाला खाला जब पशुओंको खरीदनेके लिए तिथार होता है तब वह दूध देखना आदि उपायोंसे परीक्षा कर उनमें से अत्यन्त गुणी पशुओंको खरीदता है उसी प्रकार राजाको भी परीक्षा किये हुए उच्चकुलीन पुत्रोंको खरीदना चाहिए ॥१७०-१७१॥ और आजीविकाके मूल्यसे खरीदे हुए उन सेवकोंको समयानुसार योग्य कार्यमें लगा देना चाहिए क्योंकि वह कार्यरूपी फल सेवकोंके द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है ॥१७२॥ जिस प्रकार पशुओंके खरीदनेमें किसीको जामिनदार बनाया जाता है उसी प्रकार सेवकोंका संघर्ष करनेमें भी किसी बलवान् पुरुषको जामिनदार बनाना चाहिए ॥१७३॥ जिस प्रकार खाला रात्रिके

१ मूलबलम् । २ -रक्षयेत् ल०, म० । ३ परिवर्तेऽस्य ल०, म० । राज्यादि मुक्त्वा राज्यान्तरप्राप्तिषु ।  
४ अरक्षणप्रकारण । ५ चाटीकारं युद्धकारिभिर्वी । ६ स्लेष्ठनायकः । ७ हठात्करिण । ८ वस्त्रस्य ।  
९ जरायुमा । १० जीवनाय । ११ सेवां कर्तुम् । १२ क्रपणाय । १३ अतिशयेन गुणवतः । १४ कार्यषु ।  
१५ यथैव ल०, म० । १६ घरकः । १७ प्रहर । १८ भक्षयित्वा ।

प्रातस्तरामधानीय वस्त्रीतावशिष्टकम् । पयो दोग्यि यथा गोपो नवनीतादिलिङ्सया ॥ १५॥  
 तथा भूयोऽप्यतस्त्रालुभंकप्रासेषु<sup>१</sup> कारयेत् । कृष्णं कर्मान्तिकंवैजप्रदानाच्यैरुपक्रमैः ॥ १६॥  
 देशोऽपि कारयेत् कृष्णे कृष्णं सम्यक्कृषीवलैः । धान्यानां संब्रहार्थं च न्यायमंशं ततो हरेत् ॥ १७॥  
 सम्येवं पुष्टसन्त्रः स्वाद् माण्डागारदिसंपदा । पुष्टो देशाहघ सस्यैवं स्वाद् धान्यैराशितमभवैः<sup>२</sup> ॥ १८॥  
 स्वदेशो वाक्षरम्लेच्छान् प्रजावाधाविधायिनः । कुलशुद्दिप्रदानाच्यैः स्वसाक्षुर्यादुपक्रमैः ॥ १९॥  
 विकियां च भजन्त्येते प्रभुणा कृतस्त्रियाः । प्रभोरक्षरसंमाना विकियन्ते हि तंऽप्यवहम् ॥ २०॥  
 ये केचिच्छाक्षरम्लेच्छाः स्वदेशो प्रचरिष्यावः । तेऽपि कर्षकस्मामान्ये<sup>३</sup> कर्तव्याः करदा तुपैः ॥ २१॥  
 तान्प्राहुरक्षरम्लेच्छाः येऽमी वेदोपजीविनः । अवमक्षिरम्पवैलोकन्यामोहकारिणः ॥ २२॥  
 यतोऽक्षरकृतं गर्वमविद्याप्लतस्तके<sup>४</sup> । वहन्त्यतोऽक्षरम्लेच्छाः पापसूत्रोपजीविनः ॥ २३॥  
 रक्षेच्छाचारो हि हिंसायो रसिमासाशनेऽपि च । वलात्परद्वहरणं निव्रूतंत्वमिति स्मृतम् ॥ २४॥  
 सोऽस्त्यमीर्षो च<sup>५</sup> यद्वेदशास्त्रार्थंसधमद्विजाः । तारशो<sup>६</sup> वहुमन्यमते जातिवादावलेपतः<sup>७</sup> ॥ २५॥  
 "प्रजासामान्यते वैष्णो मता वा स्थानिकृष्टता । ततो<sup>८</sup> च मान्यताऽस्त्येषां द्विजा मान्याः स्वुरार्हताः ॥ २६॥

प्रहरमात्र दोष रहनेपर उठकर जहाँ बहुत-सा वास और पानी होता है ऐसे किसी योग्य स्थानमें  
 गायोंको बड़े प्रयत्नसे चराता है तथा बड़े सबेरे ही वापिस लाकर बछड़ेके पीनेसे बाकी बचे  
 हुए द्वधको मक्खन आदि प्राप्त करनेकी इच्छासे दुह लेता है उसी प्रकार राजा को भी आलस्य-  
 रहित होकर अपने आधीन ग्रामोंमें बीज देना आदि साधतों-द्वारा किसानोंसे खेती कराना  
 चाहिए ॥ १७४—१७६॥ राजाको चाहिए कि वह अपने समस्त देशमें किसानों-द्वारा भली  
 भाँति खेती करावे और धान्यका संग्रह करनेके लिए उनसे न्यायपूर्ण उचित अंश लेवे ॥ १७७॥  
 ऐसा होनेसे उसके भांडार आदिमें बहुत सो सम्पत्ति इकट्ठी हो जावेगी और उससे उसका बल  
 बढ़ जावेगा तथा सन्तुष्ट करनेवाले उन धान्योंसे उसका देश भी पुष्ट अथवा समृद्धिशाली हो  
 जावेगा ॥ १७८॥ अपने आश्रित स्थानोंमें प्रजाको दुःख देनेवाले जो अक्षरम्लेच्छ अर्थात् वेदसे  
 आजीविका करनेवाले हों उन्हें कुलशुद्दि प्रदान करना आदि उपायोंसे अपने आधीन करना  
 चाहिए ॥ १७९॥ अपने राजासे सत्कार पाकर वे अक्षरम्लेच्छ फिर उपद्रव नहीं करेंगे । यदि  
 राजाओंसे उन्हें सन्मान प्राप्त नहीं होगा तो वे प्रतिदिन कुछ-न-कुछ उपद्रव करते ही रहेंगे  
 ॥ १८०॥ और जो कितने ही अक्षरम्लेच्छ अपने ही देशमें संचार करते हों उनसे भी राजाओं-  
 को सामान्य किसानोंकी तरह कर अवश्य लेना चाहिए ॥ १८१॥ जो वेद पढ़कर अपनो आजी-  
 विका करते हैं और अर्थम् करनेवाले अक्षरोंके पाठसे लोगोंकी ठगा करते हैं उन्हें अक्षरम्लेच्छ  
 कहते हैं ॥ १८२॥ चौंकि वे अज्ञानके बलसे अक्षरों-द्वारा उत्पन्न हुए अहंकारको धारण करते  
 हैं इसलिए पापसूत्रोंसे आजीविका करनेवाले वे अक्षरम्लेच्छ कहलाते हैं ॥ १८३॥ हिंसा  
 और मांस खानेमें प्रेम करना, बलपूर्वक दूसरेका धन हरण करना और धूर्तता करना ( स्वेच्छा-  
 चार करना ) यही म्लेच्छोंका आचार माना गया है ॥ १८४॥ चौंकि यह सब आधरण इनमें  
 हैं और जातिके अभिमानसे ये नीच द्विज हिंसा आदिको प्रलृपित करनेवाले वेद शास्त्रके अर्थको  
 बहुत कुछ मानते हैं इसलिए इन्हें सामान्य प्रजाके समान ही मानना चाहिए अथवा उससे  
 भी कुछ निकृष्ट मानना चाहिए । इन सब कारणोंसे इनकी कुछ भी मान्यता नहीं रह जाती

१ आरम्भप्रामेलित्यर्थः । २ कृषीबलभृतयैः । ३ कृषीबलेभ्यः । ४ स्वीकृपतिः । ५ तुप्लिकरैः । ६ प्रदेशो ज०,  
 स०, ल०, प० । ७ कृषीबलसामान्यं यथा भवति तथा । ८ वज्ञानबलात् । ९ कुतितस्तते । १० यत् कारणात् ।  
 ११ हिंसतादिप्रकारम् । १२ गर्वतः । १३ प्रजासामान्यत्वमेव । १४ प्रजाम्यः ।

वयं निस्तारका देवत्राणा लोकसंमतः । धान्यमारामतो राजे न दग्ध हसि खेन्मलम् ॥ १८७ ॥  
 वैशिष्ट्यं किञ्चकुर्तं द्वेषवर्णेभ्यो मन्त्रतामिह । न जातिमात्राद् वैशिष्ट्यं जातिभेदाप्रतीतिः ॥ १८८ ॥  
 गुणतोऽपि न वैशिष्ट्यमस्ति वो नामधारकः । वित्तो ब्राह्मणा जैना चे त एव गुणधिकः ॥ १८९ ॥  
 निर्वता निर्नमस्कारा निर्धृणाः पशुवातिनः । म्लेच्छाचारपरा वृयं न स्थाने धार्मिका द्विजः ॥ १९० ॥  
 तस्मादन्ते कुरु म्लेच्छा वृयं तेऽमी महोसुजाम् । प्रजासामान्यधान्यांशदानाद्यैरविशेषिताः ॥ १९१ ॥  
 किमत्र बहुनोक्ते जैनाम्मुक्त्वा द्विजोत्तमान् । नान्ये साम्या नरेन्द्राणां प्रजासामान्यजीविकाः ॥ १९२ ॥  
 अन्यस्त गोधने गोपो द्याव्याचोराद्युपक्रमात् । यथा रक्षत्वं तन्द्राम्लभूषोऽप्येवं जैनाः प्रजाः ॥ १९३ ॥  
 यथा च गोकुलं<sup>३</sup> गोमित्यायाते संविद्वक्षया । सोपचारमुपेत्यैनं तोषवेद् धनसम्पदात्<sup>४</sup> ॥ १९४ ॥  
 भूषोऽप्येवं बछी कक्षित् स्वराद्यु चाद्यमित्रवेद्<sup>५</sup> । तदा शृद्धैः समालोच्य संदध्यात्<sup>६</sup> पण्डन्धरः<sup>७</sup> ॥ १९५ ॥  
 जनक्षयाय संग्रामो बहुपायो दुरुत्तरः । तस्मादुपप्रदानाद्यैः<sup>८</sup> संधेयोऽर्तिर्विलापिकः ॥ १९६ ॥  
 हति गोपालदहाम्तमूरीकृत्य नरेश्वरः । प्रजानां पालने वर्ण<sup>९</sup> विद्युत्याज्ञयवर्त्मना ॥ १९७ ॥

है, जो द्विज अरहन्त भगवान्‌के भक्त हैं वही मान्य गिने जाते हैं ॥ १८५-१८६ ॥ “हम ही लोगोंको संसार-सागरसे तारनेवाले हैं, हम ही देव ज्ञात्युण हैं और हम ही लोकसम्मत हैं अथवा सभी लोग हम ही को मानते हैं इसलिए हम राजाको धान्यका उचित अंश नहीं देते” इस प्रकार यदि वे द्विज कहें तो उनसे पूछना चाहिए कि आप लोगोंमें अन्य वर्णवालोंसे विशेषतम् क्यों है ? कदाचित् यह कहो कि हम जातिकी अपेक्षा विशिष्ट हैं तो आपका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि जातिकी अपेक्षा विशिष्टता अनुभवमें नहीं आती है, कदाचित् यह कहो कि गुणकी अपेक्षा विशिष्टता है सो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि आपलोग केवल नामके धारण करनेवाले हो, जो व्रतोंको धारण करनेवाले जैन ब्राह्मण हैं वे ही गुणोंसे अधिक हैं। आप लोग द्रष्टरहित, नमस्कार करनेके अयोग्य, दयाहीन, पशुओंका धात करनेवाले और म्लेच्छों-के आचरण करनेमें तत्पर हो इसलिए आप लोग धर्मत्वा द्विज नहीं हो सकते । इन सब कारणों-से राजाओंको चाहिए कि वे इन द्विजोंको म्लेच्छोंके समान समझें और उनसे सामान्य प्रजाकी तरह ही धान्यका योग्य अंश ग्रहण करें । अथवा इसु विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? जैनघर्मेंको धारण करनेवाले उत्तम द्विजोंको छोड़कर प्रजाके समान आजीविका करनेवाले अन्य द्विज राजाओंके पूज्य नहीं हैं ॥ १८७-१८८ ॥

जिस प्रकार ग्वाला आलस्यरहित होकर अपने गोधनकी व्याघ्र चोर आदि उपद्रवोंसे रक्षा करता है उसी प्रकार राजाको भी अपनी प्रजाकी रक्षा करनी चाहिए ॥ १९३ ॥ जिस प्रकार ग्वाला उन पशुओंके देखनेकी इच्छासे राजाके आनेपर भेट लेकर उसके समीप जाता है और धन सम्पदाके द्वारा उसे संतुष्ट करता है उसी प्रकार यदि कोई बलवान् राजा अपने राज्यके सन्मुख आवे तो बृद्ध लोगोंके साथ विचार कर उसे कुछ देकर उसके साथ सन्धि कर लेना चाहिए । चौंकि युद्ध बहुत-से लोगोंके विनाशका कारण है, उसमें बहुत-सी हानियाँ होती हैं और उसका भविष्य भी बुरा होता है अतः कुछ देकर बलवान् शत्रुके साथ सन्धि कर लेना ही ठीक है ॥ १९४-१९६ ॥ इस प्रकार राजाको ग्वालाका दृष्टान्त स्वीकार कर तीतिमार्गसे

१ न भवत्य । २—शुपद्वात् ल०, म०, प० । ३ गोमती । गोमान् गोमीश्यभिधानात् । गोमत्या—म०, ल०, प० । ४ क्षीरघृतादिविक्षयाज्जातधनसमृद्ध्या । ५ अभिगच्छेत् । ६ सम्भानं कुर्यात् । ७ निष्क्रदानादित्यर्थः । ८ उचितवस्तुवाहनप्रदानाद्यैः । ९ सन्धि कर्तुं योग्यः । १० कुर्यात् ।

प्रजानुपालनं ग्रीकं पार्थिवस्य जिलाभ्यनः । समज्ञसस्त्वमधुना वक्ष्यामस्तदगुणांतरम् ॥१६४॥  
राजा चिरं समाधाय यकुर्याद् दुष्टनिग्रहम् । शिष्टानुपालनं चेत् तत्सामअस्यमुच्यते ॥१६५॥  
द्विष्ठस्तमथवा पुत्रं नियुक्तिभावाचित्तम् । अपक्षयतितो मुष्टमिष्टं चेत्तद्वज्रागसम् ॥२०६॥  
मध्यस्थमूल्येवं यः समदशों समज्ञतः । समज्ञसत्त्वं तत्त्वाद्यः<sup>३</sup> प्रजास्वविषयेक्षिता ॥२०७॥  
गुणेन्द्रियं शिष्टानां पालनं न्यायज्ञविज्ञानम् । उपायां निप्रयुक्तं चेत् तत्परं कुर्यात् कृतागसाम् ॥२०८॥  
दुष्ट हिसादिवाप्युपु निरतः पापकात्तिः । शिष्टास्तु क्षाम्तिशौचादिगुणीर्धमंपरा नराः ॥२०९॥

## वसन्ततिलकावृत्तम्

इत्थं मनुः लकलचक्रभृद्गादिराजः

तान् क्षत्रियान् नियमयन् पथि सुप्रणीते<sup>४</sup> ।  
उच्चावच्चेगुरुमसैहर्वित्तेवर्वोभिः

शास्ति स्म वृत्तमसिलं शृण्वीक्ष्वराणाम् ॥२०४॥

## शादूलचिकीडितम्

हत्युक्तं भैरवं शिष्टानुकृतिं सर्वायमुक्तांश्वराः

आत्रं धर्ममनुप्रवद्य सुदिताः सत्रां शृण्वन्वैयहः<sup>५</sup> ।  
योगक्षेमपथेषु तं पुं सहिताऽ सर्वे च वर्णाश्रमाः

स्वे स्वे वर्त्मनि सुस्थिता इतिमधुर्घमोन्त्स्वैः प्रत्यहम् ॥२०५॥

प्रजाका पालन करनेमें प्रयत्न करना चाहिए ॥१६७॥ इस प्रकार इन्द्रियोंको जीतनेवाले राजाका प्रजापालन नामका गुण कहा । अब समंजसत्त्व नामका अन्य गुण कहते हैं ॥१६८॥

राजा अपने चित्तका समाधान कर जो दुष्ट पुरुषोंका नियह और शिष्ट पुरुषोंका पालन करता है वही उसका समंजसत्त्व गुण कहलाता है ॥१६९॥ जो राजा नियह करने योग्य शत्रु अथवा पुत्र दोनोंका नियह करता है, जिसे किसीका पक्षपात नहीं है, जो दुष्ट और मित्र, सभी-को नियपराध बनानेकी इच्छा करता है और इस प्रकार मध्यस्थ रहकर जो सबपर सामान दृष्टि रखता है वह समंजस कहलाता है तथा प्रजाओंको विप्रम दृष्टिसे नहीं देखता अर्थात् सबपर समान दृष्टि रखना ही राजाका समंजसत्त्व गुण है ॥२००-२०१॥ इस समंजसत्त्व गुणसे ही राजाको न्यायपूर्वक आजीविका करनेवाले शिष्ट पुरुषोंका पालन और अपराध करनेवाले दुष्ट पुरुषोंका नियह करना चाहिए ॥२०२॥ जो पुरुष हिसादिवाप्युपु दोनोंमें तत्पर रहकर पाप करते हैं वे दुष्ट कहलाते हैं और जो क्षमा, संतोष आदि गुणोंके द्वारा धर्म धारण करनेमें तत्पर रहते हैं वे शिष्ट कहलाते हैं ॥२०३॥ इस प्रकार लोलहवें मनु तथा समस्त चक्रवर्तियोंमें प्रथम राजा महाराज भरतने उन क्षत्रियोंको भगवत्प्रणीत मार्गमें नियुक्त करते हुए, अपने पिता श्री वृषभदेवको दृष्ट ऊंचे नीचे योग्य बचनोंसे राजाओंके समस्त आचारका उपदेश दिया ॥२०४॥

इस प्रकार भरतेश्वरने जिसका अच्छी तरह प्रतिपादन किया है ऐसे सबका हित करनेवाले, क्षत्रियोंके उत्कृष्ट धर्मको स्वीकार कर सब राजा लोग प्रसन्न हो अपने अपने आचरणोंका पालन करने लगे और उन राजाओंके योग ( नवीन वस्तुकी प्राप्ति ) तथा क्षेम ( प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा ) में प्रवृत्त रहनेपर अपना हित चाहनेवाले सब वर्णधरियोंके लोग अपने-अपने

<sup>१</sup> पक्षपातरहितः । <sup>२</sup> अपराधरहितम् । <sup>३</sup> समंजसत्त्वसद्भावः अ०, य०, स०, ल०, म० । <sup>४</sup> मुष्टि ग्रीकते । <sup>५</sup> सर्वेभ्यो हितम् । <sup>६</sup> अनुग्रहम् । 'ऋगतो लुडि । ह्वादित्वात् शपः इलूपि विभवि, स्वेजुसिति उत्तरशहकारस्य अकारादेशे, पूर्वेनकारस्य इत्वे, पुनर्यदिवेऽपि च कृते, 'एषह' इति सिद्धिः । <sup>७</sup> उवौद्धरेषु । <sup>८</sup> हितेन सहितः ।

जातिक्षणियवच्चमर्जितनरं रक्षयाविष्टुतं  
तीर्थक्षणियवृत्तमध्यनुजग्नी यच्क्रिणामग्रणीः ।  
तत्सर्वं मगधाधिपात्र भगवान् वाचस्पतिगीतमो  
‘व्याचलयावल्लिलार्थसर्वविषयां जीवीं श्रुति रुद्रापयन् ॥२०६॥  
बन्दारोभर्ताधिपस्य जगतां भर्तुः क्रमी वेधसः  
तस्यानुस्मरतो गुणान् प्रणमतस्तं देवमार्यं जिनम् ।  
तस्यैषोपचिति<sup>३</sup> सुरासुरगुरोर्भक्त्या सुहुस्तन्यतः  
कालोऽनल्पतरः सुम्भाद् व्यतिगतो<sup>४</sup> नित्योत्तरैः संभृतः<sup>५</sup> ॥२०७॥

### मन्दाकान्ता

जीवामित्यां वितन्वक्षियतमनुदिनं प्रीणयस्तथिसाथं  
शाश्वद्विष्टमर्हेत्यरवनिष्ठतलसन्मालिभिः सेष्यमानः ।  
क्षमा कृत्स्नामापयोधेरपि<sup>६</sup> च हिमवतः पालयक्षिस्त्वपत्तां  
स्मैः स्वेष्ठाविनोदैनिरविश्वद्विष्ट भोगसारं दशाङ्कम् ॥२०८॥  
अतिरिक्तं इत्यावै अनुवैऽग्निसेष्यादिविष्टात् अविकाष्टलहृणमहापुराणसंग्रहे  
भरतराजवणीश्वरतिप्रतिपादनं नाम द्वितीयारिंशतम् पर्व ॥४२॥\*

■

मार्गमें स्थिर रहकर प्रतिदिन घमोत्सव करते हुए सन्तोष धारण करने लगे ॥२०५॥ चक्रवर्तियोंमें अग्रेसर महाराज भरतने जो अत्यन्त उत्कृष्ट जातिक्षणियोंका चरित्र तथा रत्नत्रयसे प्रकट हुआ तीर्थक्षणियोंका चरित्र कहा था वह सब, समस्त पदार्थोंके स्वरूपको विषय करनेवाले जैन शास्त्रोंको प्रकट करते हुए वाचस्पति ( श्रुतकेवलो ) भगवान् गौतम गणधरने मगध देशके अधिपति श्रेणिके लिए निरूपण किया ॥२०६॥ तीनों लोकोंके स्वामी भगवान् वृषभदेवके चरणोंकी बन्दना करनेवाले, उन्हीं परज्ञहुके गुणोंका स्मरण करनेवाले, उन्हीं प्रथम जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करनेवाले और सुर तथा अमुरोंके गुरु उन्हीं भगवान् वृषभदेवकी अवितपूर्वक बार-बार पूजा करनेवाले भरतेश्वरका निरन्तर होनेवाले उत्सवोंसे भरा हुआ भारी समय सुखसे व्यतीत हो गया ॥२०७॥ जो नियमित रूपसे प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान्-की पूजा करता है, जो प्रतिदिन याचकोंके समूहको सन्तुष्ट करता है, पृथिवीपर झुके हुए मुकुटों-से सुखोभित होनेवाले राजा लोग जिसकी निरन्तर सेवा करते हैं और जो हिमवान् पर्वतसे लेकर समुद्रपर्यन्तकी शत्रुरहित समस्त पृथिवीका पालन करता है ऐसा वह सम्भाद् भरत अपनी इच्छानुसार क्रीडाओंके द्वारा दश प्रकारके उत्तम भोगोंका उपभोग करता था ॥२०८॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध भगवत्तिजनसेनाचार्यप्रणीत त्रिष्टुलधण महापुराणसंग्रहके  
हिन्दी भाषानुवादमें भरतराजकी वर्णश्रिमती रीतिका प्रतिपादन  
करनेवाला व्यालीसर्वां पर्व समाप्त हुआ ॥४२॥

■

\* १ उत्तम २ प्रकटीकृतेन ३ पूजाम् ४ व्यतिकान्तः ५ सम्पोषितः ६ समुद्रादारस्य हिमवत्पर्यन्तम् ।

७ अन्वभूत ८ दिव्यपुरुरत्ननिधिसेनाभाजनशयनासनवाहनाटधादीनि दशाह्नानि यस्य स तम् ।

\* १० म० २० ३० ४० पूर्वकेय निम्नांकितः पाठोऽविको दृश्यते । ५० ज० ६० ७० ८० सूर्तकेष्वेष पाठो न दृश्यते ।

## अनुष्टुप्

वृषभाय नमोऽशेषस्थितिप्रभवहेतवे । श्रिकालगोचरानन्तप्रमेयाकान्तमूर्तये ॥१॥  
नमः सकलकल्याणपथनिर्माणहेतवे । आदिदेवाय संसारसागरोत्तरसेतवे ॥२॥

## पृथ्वीच्छुन्दः

जयन्ति जिसमृत्यवो विपुलवीर्यभाजो जिना जगत्प्रभवहेतवो विषदमन्दकन्दच्छिदः ॥  
सुरासुरशिरःस्फुरितरागरक्षावर्णीविलम्बिकिरणोत्करालग्नितचारुपादद्वयाः ॥३॥  
कृतिमहाक्षवेभवतः श्रीजिनसेनाचार्यस्येति ।

अस्त्रीऽस्त्रिणः ॥ २१३४४५ ॥ श्री शुद्धिकालद्वयः २१३४४६ ॥

## वसन्ततिलका

धर्मोऽश्रुक्षिपदमन्त्र कवित्यमन्त्र तीर्थेजिनश्चरितमन्त्र महापुराणे ।  
यदा कवीन्द्रजिनसेनमुखारविन्दनिर्यंद्वचासि न हरन्ति मनासि केषाम् ॥४॥

इत्यापै भगवजिनसेनाचार्यप्रणीते महापुराणे  
आद्ये खण्डे समाप्तिमगमत् ।



जो समस्त मयदाकी उत्पत्तिके कारण हैं और जिनकी केवलज्ञानरूपी मूर्ति श्रिकाल-विषयक अनन्त पदार्थोंसे व्याप्त है उन वृषभदेवके लिए नमस्कार हो ॥१॥ जो सब कल्याणोंके मार्मकी रचनामें कारण हैं और जो संसाररूपी समुद्रसे पार करनेके लिए पुलके समान हैं ऐसे प्रथम तीर्थकर भगवान् वृषभदेवको नमस्कार हो ॥२॥ जिन्होंने मृत्युको जीत लिया है, जो अनन्त बलको धारण करनेवाले हैं, जो जगत्के आनन्दके कारण हैं, जो विपलियोंकी बहुत भारी जड़को काटनेवाले हैं, और सुर तथा अमुरोंके मस्तकपर चमकते हुए पश्चराग-मणियोंकी पंचितसे निकलती हुई किरणोंके समूहसे जिनके दोनों सुन्दर चरणकमल कुछ-कुछ लाल हो रहे हैं ऐसे जिनेन्द्रदेव सदा जगवन्त हों ॥३॥

( इस प्रकार भगवान् जिनसेनाचार्यकी कृति समाप्त हुई )

इस महापुराणमें धर्मका निरूपण है, मोक्ष पद अथवा मोक्षमार्गका कथन है, उत्तम कविता है और तीर्थकर भगवान्का चरित है अथवा इस प्रकार समझना चाहिए कि कवियोंमें श्रेष्ठ श्री जिनसेनके मुखकमलसे निकले हुए बचन किसके मनको हरण नहीं करते हैं ? ॥४॥

( इस प्रकार आर्व नामसे प्रसिद्ध भगवजिनसेनाचार्यप्रणीत महापुराणका प्रथम खण्ड समाप्त हुआ )



## आदिपुराणम्

[ उत्तरस्थितम् ]

### श्रिचत्वारिंशत्सं पर्व

धियं तनोतु स श्रीमान् वृषभो वृषभधजः । यस्यैकस्य गते मुक्तेमार्गश्चित्रं<sup>१</sup> महानभूत् ॥१॥  
विक्रमं कर्मचक्रस्य<sup>२</sup> बद्धाकाभ्यर्थितकमः ।<sup>३</sup> आकल्य धर्मवक्षेण चक्रे त्रैलोक्यचक्रिताम् ॥२॥  
योऽस्मिन्शतुर्थकालादौ<sup>४</sup> दिनादौ वा<sup>५</sup> दिवाकरः । जगदुद्योतयामास प्रोद्गच्छहाग्मस्तिमिः ॥३॥  
नष्टमष्टादशाभ्योधिकोटीपु कालयोः<sup>६</sup> । निर्वाणमार्गं निर्दिष्ट्व<sup>७</sup> येन सिद्धाश्च वर्दिताः ॥४॥  
तीर्थकृत्सु<sup>८</sup> स्वतः<sup>९</sup> प्राप्यो<sup>१०</sup> नामादानपराभवः<sup>११</sup> । यस्मिन्स्मै<sup>१२</sup> वृषभज्ञासौ स्वसूनुभिव चक्षिषु ॥५॥  
येन<sup>१३</sup> प्रकाशिते<sup>१४</sup> मुक्तेमार्गेऽस्मिन्परेषु तत्<sup>१५</sup> ।<sup>१६</sup> प्रकाशितप्रकाशोऽकैयर्थ्यं तीर्थकृतस्वभूत् ॥६॥

अथानन्तर, जिनकी ध्वजामें वृषभका चिह्न है और सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि जिन एकके जानेसे ही बहुत बड़ा मोक्षका मार्ग बन गया ऐसे अन्तरंग बहिरंग लक्षणीको धारण करनेवाले श्री वृषभदेव सबका कल्याण करें ॥१॥ जिनके चरणकमलकी हृदय स्वयं पूजा करता है और जिन्होंने धर्मचक्रके द्वारा कर्मसमूहके पराक्रमपर आक्रमण कर तीनों लोकोंका चक्रवर्तीपना प्राप्त किया है ॥२॥ दिनके प्रारम्भमें सूर्यकी तरह इस \* चतुर्थकालके प्रारम्भमें उदय होकर जिन्होंने फैलती हुई अपनी बाणीरुपी किरणोंसे समस्त जगत्को प्रकाशित किया है अर्थात् दिव्य ध्वनिके-द्वारा समस्त तर्खोंका उपदेश दिया है ॥३॥ उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी कालके अठारह कोड़ी सागर तक जो मोक्षका मार्ग नष्ट हो रहा था उसका निर्देश कर जिन्होंने सिद्धोंकी संख्या बढ़ायी है ॥४॥ जिस प्रकार चक्रवर्तियोंमें अपने पुत्र भरत चक्रवर्तीको उसके पहले किसी अन्य चक्रवर्तीका नाम लेनेसे उत्पन्न हुआ पराभव नहीं छू सका था उसी प्रकार तीर्थकरोंमें अपने पहले किसी अन्य तीर्थकरका नाम लेनेसे उत्पन्न हुआ पराभव जिन्हें छू भी नहीं सका था । भावार्थ—जिस प्रकार भरत इस युगके समस्त चक्रवर्तियोंमें पहले चक्रवर्ती थे उसी प्रकार जो इस युगके समस्त तीर्थकरोंमें पहले तीर्थकर थे ॥५॥ जिनके द्वारा इस मोक्षमार्गकी प्रकाशित किये जानेपर अन्य तीर्थकरोंमें प्रकाशित हुए मोक्षमार्गको प्रकाशित करनेके कारण उपदेशकी व्यर्थता हुई थी । भावार्थ—इस समय जो मोक्षका मार्ग चल रहा है उसका उपदेश सबसे पहले भगवान् वृषभदेवने ही दिया था उनके पीछे होनेवाले अन्य तीर्थकरोंने भी उसी मार्गका उपदेश दिया है इसलिए उनका उपदेश पुनरुक्त होनेके कारण व्यर्थ-सा जान पड़ता

१ गमनात् । २ मुक्तिमार्ग—१०, ८०, ८० । ३ कर्मशजसैन्यस्य । ४ जित्वा । ५ चतुर्थकालस्यादौ । ६ इव ।  
७ उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः । ८ उपदेशं कृत्वा । ९ अजितादिषु । १० आत्मनः पुरुजिनात् । ११ पूर्वस्मिन् काले ।  
१२ सामादानपराभवः इति पाठस्य ८० पुस्तके संकेतः । नामादानपराभवः इति पाठस्य 'द०' पुस्तके संकेतः ।  
अदानपराभवः—आहारादिदानाभाव इति पराभवः । नामादानपराभव इति पाठे कीतिदानघोरभाव इति पराभवः । १३ चतुर्थकालस्यादौ । १४ वृषभेण । १५ चतुर्थकालादौ । १६ मोक्षमार्गप्रकाशनम् ।  
१७ प्रकाशितस्य प्रकाशने प्रोक्तभ्यर्थत्वम् ।

\* भगवान् वृषभदेव तृतीय कालके अन्तमें उत्पन्न हुए और तृतीय कालमें ही मोक्ष पदारे हैं इसलिए आचार्य गुणभद्रने चतुर्थकालके आदिये होना किस दृष्टिसे लिखा है मह विचारणाय है ।

तुर्गभारे<sup>१</sup> वहसेकशिवर धर्मरथं पृथुम् । वतशीलगुणात्पूर्णं चित्रं वर्तयति सम यः ॥७॥  
 तमेकमश्वरे<sup>२</sup> द्यन्वा व्यक्तसेकमित्राक्षरम्<sup>३</sup> । वक्ष्ये समीक्ष्य लक्ष्यतां तपुराणस्य<sup>४</sup> चक्षिकाम्<sup>५</sup> ॥८॥  
 स्त्रोके<sup>६</sup> प्रयुक्ताः सर्वे नोर्संभुवेभर्त्ये त्रै<sup>७</sup> अहादिव<sup>८</sup> लक्ष्यदान्<sup>९</sup> मवाशा तानुपशुंज्ञमहे ॥९॥  
 रागादीन् दूरतस्यकस्वा शङ्कारादिरसोचिभिः । पुराणकारकाः शुद्धशोधाः शुजा मुमुक्षवः ॥१०॥  
 निर्मितोऽस्य पुराणस्य सर्वसारो महात्ममिः<sup>१०</sup> । तच्छेष्य यत्मानानां प्रायादस्येव<sup>११</sup> नः श्रमः ॥११॥  
 पुराणे प्रौढशब्दार्थे सम्प्रकल्पालिनि । असांसि पश्चात्यानीव कर्णे कुर्वन्तु मे त्रुयाः ॥१२॥  
 अर्थे<sup>१२</sup> गुरुभिरंत्रास्य<sup>१३</sup> पूर्वं निष्पादितं परैः<sup>१४</sup> । परं<sup>१५</sup> निरपादामानं<sup>१६</sup> यद्यन्देशातिसुन्दरम् ॥१६॥  
 दक्षीरिवास्य पूर्वार्त्तिमेवामादिः<sup>१७</sup> रसावहम् । यथा तथास्तु<sup>१८</sup> निष्पत्तिरिति प्रारम्भते भया ॥१७॥  
 अनन्तिव्याप्ते<sup>१९</sup> मयि प्रौढिं शर्मोऽयमिति गृष्णताम् । चाटुके<sup>२०</sup> स्वादु भव्यन्ति न भोक्तारस्तु भोजमम् ॥१८॥

है ॥६॥ और आदिचर्य है कि जिन्होंने अकेले ही बहुत काल तक इस अवसर्पिणी युगके भारको ( पक्षमें जुवारीके बोझको ) धारण करते हुए अत, शील आदि गुणोंसे भरे हुए बड़े भारी धर्म-रथको चलाया था ॥७॥ ऐसे उन अद्वितीय अविनाशी भगवान् वृषभदेवको एक प्रसिद्ध ओम् अक्षरके समान ध्यान कर तथा पूर्वशास्त्रोंका विचार कर इस महापुराणकी चूलिका कहता है ॥८॥ हमारे गुरु जिनसेनाचार्यने हमारे स्नेहसे अपने द्वारा कहे हुए पुराणमें सब रस कहे हैं इसलिए उनकी भक्तिसे छोड़े गये रसोंका ही हम आगे इस ग्रन्थमें उपयोग करेंगे ॥९॥ राग आदिको दूरसे ही छोड़कर शुंगार आदि रसोंका निरूपण कर पुराणोंकी रचना करनेवाले शुद्ध ज्ञानी, पत्रिय और मोक्षकी इच्छा करनेवाले होते हैं ॥१०॥ इस पुराणका समस्त सार तो महात्मा जिनसेनाचार्यने पूर्ण ही कर दिया है अब उसके बाकी बचे हुए अंशमें प्रयत्न करनेवाले हम लोगोंका परिश्रम ऐसा समझना चाहिए जैसा कि किसी मकानके किसी बचे हुए भागको पूर्ण करनेके लिए थोड़ा-सा परिश्रम करना पड़ा हो ॥११॥ यह पुराणरूपी वृक्ष शब्द और अर्थसे प्रौढ़ है तथा उत्तम-उत्तम पत्ते और फलोंसे सुशोभित हो रहा है इसमें मेरे बचन नवीन पत्तोंके समान हैं इसलिए विद्वान् लोग उन्हें अवश्य ही अपने कणोंपर धारण करते हैं। भावार्थ-जिस प्रकार वृक्षके नये पत्तोंको लोग अपने कानोंपर धारण करते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग हमारे इन बचनोंको भी अपने कानोंमें धारण करें अर्थात् स्नेहसे अवण करें ॥१२॥ इस पुराणका पूर्व भाग गुरु अर्थात् जिनसेनाचार्य अथवा दीर्घ वर्णोंसे बना हुआ है और उत्तर भाग पर अर्थात् गुरुसे भिन्न शिष्य (गुणभद्र) अथवा लघु वर्णोंके द्वारा बनाया जाता है इसलिए क्या वह छन्दके समान सुन्दर नहीं होगा ? अर्थात् अवश्य होगा । भावार्थ-जिस प्रकार गुरु और लघु वर्णोंसे बना हुआ छन्द अत्यन्त सुन्दर होता है उसी प्रकार गुरु और शिष्यके द्वारा बना हुआ यह पुराण भी अत्यन्त सुन्दर होगा ॥१३॥ 'जिस प्रकार इच्छा पूर्वार्थ भाग ही रसीला होता है उसी प्रकार इस पुराणका भी पूर्वार्थ भाग ही रसीला हो' यह विचार कर मैं इसके उत्तरभागकी रचना प्रारम्भ करता हूँ ॥१४॥ मुझमें प्रौढता ( योग्यता ) की खोज न कर इसे केवल धर्म समझकर ही ग्रहण करना चाहिए क्योंकि भोजन करनेवाले प्रिय बचन ए चतुर्थकालधुरम् । दण्डभेदं च । २ अविनश्वरम् । ३ ओढ़कारमिव । ४ पूर्वोक्तशास्त्राणि । ५ पुराणाश्व-पुराणस्य । ६ अर्थम् । ७ आत्मना प्रणीते पुराणे । ८ अस्माकम् । ९ मयि प्रेषणः । १० उत्तरपुराणे । ११ तज्जिनसेनाचार्येणावशेषितान् (प्रणीतानेव) । १२ रसान् । १३ महात्मकः वा० । १४ निर्मितप्रापादावशेषे यत्मानाचार्यमिव । १५ जिनसेनाचार्यः । छन्दः पक्षे गुरुद्वारैः । १६ पुराणस्य । १७ व्रस्मदादिभिः । पक्षे लघुवशरैः अर्थात्वरैः । १८ अपरादूष । १९ उक्तात्यृक्तादिछन्दोभेदवत् । २० निश्चितम् । २१ निष्ठा । २२ अविमृग्य । २३ प्रियवचने ।

अथवाऽग्रं<sup>१</sup> भवेदस्य विश्वं नेति निश्चयः । धर्माग्नं ननु केनापि नादशी विश्वं क्षणित् ॥ १६ ॥  
 गुरुणामेव भाहात्म्यं यद्यपि स्वातु मद्वचः । तरुणो हि प्रभावेण<sup>२</sup> यत्कलं स्वातु जापते ॥ १७ ॥  
 विद्याभिस्तुद्योद्यायां लोकं मुख्यः इत्येततः । ते<sup>३</sup> तत्र संस्करित्यन्ते तत्र येऽत्र परिश्रमः ॥ १८ ॥  
 हदं शुश्रूषबो<sup>४</sup> भास्याः कवितोऽधीं जिमेष्वरैः । तस्याभिधायकाः शब्दास्तत्र<sup>५</sup> निन्दाऽन्तर्वर्तते ॥ १९ ॥  
 दोषान् गुणान् गुणी गुह्यन् गुणान् दोषांस्तु दोषवान् । सदसज्जानयोग्यित्रभवत् भाहात्म्यमीदशान् ॥ २० ॥  
 गुणिनां गुणमादय गुणी भवतु सज्जमः । असदोषसमादानाद् दोषवान् हुर्जनोऽनुशम् ॥ २१ ॥  
 सज्जने हुर्जनः कोपं कामं कर्तुमिहार्हति ।<sup>६</sup> तद्वैरिणामनाथानां गुणाभामाश्रयो<sup>७</sup> यतः<sup>८</sup> ॥ २२ ॥  
 यथा<sup>९</sup> स्वानुगमहेत्यि सदा स्तोतुं कवीश्वराः । तथा निन्दितुमस्वानुशृतं कुकवयोऽपि मात् ॥ २३ ॥  
 कविरेषं कवेष्वेति कामं काल्यपरिश्रमम् । वस्त्वा स्तनंधयोत्पत्तिदेवनाभित्र नाक्षिः ॥ २४ ॥  
 गुहानेहास्ति चेषोषं स्वं धनं न विविष्यते । खलासि प्रार्थितो भूयस्वं गुणात् ममाग्रहीः ॥ २५ ॥

कहनेपर ही स्वादिष्ट भोजनकी इच्छा नहीं करते । भावार्थ – जिस प्रकार भोजन करनेवाले पुरुष प्रिय बचनोंकी अपेक्षा न कर स्वादिष्ट भोजनका हो विचार करते हैं उसी प्रकार धर्मात्मा लोग मेरी योग्यताकी अपेक्षा न कर केवल धर्मका ही विचार करें – धर्म समझकर ही इसे ग्रहण करें ॥ १५ ॥ अथवा इस पुराणका अग्रभाग भी नीरस नहीं होगा यह निश्चय है क्योंकि धर्मका अग्रभाग कहीं किसी पुरुषने नीरस नहीं देखा है ॥ १६ ॥ यदि मेरे बचन स्वादिष्ट हों तो इसमें गुरुओंका ही भाहात्म्य समझना चाहिए क्योंकि जो फल मीठे होते हैं वह वृक्षोंका ही प्रभाव समझना चाहिए ॥ १७ ॥ चूंकि बचन हृदयसे निकलते हैं और मेरे हृदयमें गुरु विद्यमान है इसलिए वे मेरे बचनोंमें अवश्य ही संस्कार करेंगे अर्थात् उन्हें सुधार लेंगे असः मुझे इस ग्रन्थके बनानेमें कुछ भी परिश्रम नहीं होगा ॥ १८ ॥ इस पुराणको सुननेकी इच्छा करनेवाले भव्य जीव हैं, इसका अर्थ जिनेन्द्रदेवने कहा है और उसके कहनेवाले शब्द है इसलिए इसमें निन्दा ( दोष ) नहीं है ॥ १९ ॥ गुणी लोग दोषोंको भी गुणरूपसे ग्रहण करते हैं और दोषी लोग गुणोंको भी दोषरूपसे ग्रहण करते हैं, इस संसारमें सम्यज्ञान और मिथ्याज्ञानका यह ऐसा ही विचित्र भाहात्म्य है ॥ २० ॥ सज्जन पुरुष गुणी लोगोंके गुण ग्रहण कर गुणी हों यह ठीक है परन्तु दुष्ट पुरुष अविद्यमान दोषोंको ग्रहण कर दोषी हो जाते हैं यह आश्चर्यकी बात है ॥ २१ ॥ इस संसारमें दुर्जन पुरुष सज्जनोंपर इच्छानुसार क्रोध करनेके योग्य हैं क्योंकि वे उन दुष्टोंके शत्रु स्वरूप, अनाध गुणोंके आश्रयभूत हैं । भावार्थ – चूंकि सज्जनोंने दुर्जनोंके शत्रुभूत, अनाध गुणोंको आश्रय दिया है इसलिए वे सज्जनोंपर यदि क्रोध करें हैं तो उचित ही है ॥ २२ ॥ जिस प्रकार कवीश्वर लोग अपने अनुकूल चलनेवालेकी सदा स्तुति करनेके योग्य होते हैं उसी प्रकार कवि भी अपने अनुकूल नहीं चलनेवाले मेरी निन्दा करनेके योग्य हैं । भावार्थ – उसम् कवियोंके मार्गपर चलनेके कारण जहाँ वे मेरी प्रशंसा करेंगे वहाँ कुकवियोंके मार्गपर न चलनेके कारण वे मेरी निन्दा भी करेंगे ॥ २३ ॥ कवि ही कविके काल्य करनेके परिश्रमको अच्छी तरह जान सकता है, जिस प्रकार बन्ध्या स्त्री पुत्र उत्पाद करनेकी वेदनाको नहीं जानती उसी प्रकार अकवि कविके परिश्रमको नहीं जान सकता ॥ २४ ॥ रे दुष्ट, यदि मेरे इस ग्रन्थमें दोष हों तो उन्हें तू ग्रहण कर, क्योंकि वह तेरा ही धन है उसके लिए तुझे रुकावट नहीं है, परन्तु

१ उत्तरार्द्धम् । २ यदपि प०, ल०, म० । ३ प्रभावोऽसी अ०, प०, इ०, स०, ल०, म० । ४ गुरुः ।  
 ५ श्रोतुमिच्छतः । ६ तत् कारणात् । ७ दुर्जनद्वेषिणाम् । ८ सज्जनः । आशरः । ९ यतः कारणात् ।  
 १० निजानुवर्तिनम् ।

गुणागुणानभिज्ञेन कृता निन्दाऽथवा स्तुतिः । जात्यन्धस्येन उष्टस्य रूपे हासाय केवलम् ॥२६॥  
 अथवा सोऽनभिज्ञेऽपि निन्दयु स्तीतु वा कृतिम् । विद्यधरपरिहासानामन्यथा कास्तु विश्वमः ॥२७॥  
 गणयन्ति महान्तः किं कुशोपद्रवमहयवत् । दार्ढं तृणास्त्रिना तूलं पत्युस्तापोऽपि नास्त्रसाम् ॥२८॥  
 काष्ठजोऽपि इहत्याग्निः काष्ठं तं ततु वर्ण्येत् । अश्वीपविद्यमेलाप्यात् सदृशम्भवोत्तने ॥२९॥  
 स्तुतिनिन्दे कृतिं ध्रुत्वा करोतु गुणदोषयोः । स्ते॒ तस्य कृत्वा कीर्तिमकर्तुरपि सरकृतेः ॥३०॥  
 सखवेरर्जुनस्येव शशः शब्दास्तु योजिताः । कर्णं दुस्तं स्तूलं प्राप्य तुवन्ति हृदयं भृशम् ॥३१॥  
 प्रवृत्तेयं कृतिः कृत्वा गुरुन् पूर्वकवीश्वरान् । भावितोष्टस्ताइचास्याऽविद्युः कुदृश्यनुभास्म् ॥३२॥  
 मतिमें केवलं सूले कृतिं राजीव तस्तुताम् । घियस्त्रो वर्तयिष्यन्ति धार्मीकल्पाः कवीश्विनाम् ॥३३॥  
 हहं खुधा ग्रहीष्यन्ति मा गृहीयुः पृथग्जनाः । किमतील्यानि रथानि कीणन्त्यकृतपुण्यकाः ॥३४॥  
 हृदि धर्ममहारक्षमागमाभीषिसंमवद् । कौस्तुमादधिकं मत्वा दधातु पुरुषोत्तमः ॥३५॥

मैं तुझसे यह फिर भी प्रार्थना करता हूँ कि तू मेरे गुणोंका ग्रहण मत कर । भावार्थ – दुर्जनोंके द्वारा दोष ग्रहण किये जानेपर रचना निर्दोष हो जावेगी और निर्दोष होनेसे सबको रुचिकर होगी परन्तु गुण ग्रहण किये जानेपर वह निर्गुण हो जानेसे किसीको रुचिकर नहीं होगी अतः यहाँ आचार्यने दुर्जन पुरुषसे कहा है कि तू मेरी इस रचनाके दोष ग्रहण कर क्योंकि वह तेरा धन है परन्तु गुणोंपर हाथ नहीं लगाना ॥ २५ ॥ जिस प्रकार जन्मके अन्ये किसी धृष्ट पुरुषके दोषोंके विषयमें अजानकार पुरुषके द्वारा को हुई स्तुति या निन्दा केवल उसकी हँसीके लिए होती है उसी प्रकार गुण और होती है ॥ २६ ॥ अथवा वह अजानकार मनुष्य भी मेरी रचनाकी निन्दा या स्तुति करे क्योंकि ऐसा न करनेसे चतुर पुरुषोंको हास्यका स्थान कहाँ प्राप्त होगा । भावार्थ – जो मनुष्य उस ही करते हैं ॥ २७ ॥ महापुरुष क्या तुच्छ मनुष्योंके समान छोटे-छोटे उपद्रवोंको गिना करते हैं ? अर्थात् नहीं । तृणकी आगसे रुई जल सकती है परन्तु उससे समुद्रके जलको सन्ताप नहीं हो सकता ॥ २८ ॥ काठसे उत्पन्न हुई अग्नि काठको जला देती है परन्तु काठ उसे बढ़ाता ही है, ये दोनों उदाहरण अच्छे और बुरे भावोंको प्रकट करनेके विषयमें दीपकके समान आचरण करते हैं ॥ २९ ॥ दुष्ट पुरुष मेरी रचनाको सुनकर गुणोंको स्तुति और दोषोंकी निन्दा करें क्योंकि यद्यपि वे उत्तम रचना करना नहीं जानते तथापि मेरी रचनाकी स्तुति अथवा निन्दा ही उनकी कीर्तिको करनेवाली होगी ॥ ३० ॥ उत्तम कविके वचन ठीक अर्जुनके बाणोंके समान होते हैं क्योंकि जिस प्रकार अर्जुनके बाण काममें लानेपर खोटे संस्कारवाले कर्ण ( कर्ण नामका राजा ) को पाकर उसके हृदयको दुःख पहुँचाते थे उसी प्रकार उत्तम कविके वचन काममें लानेपर खोटे संस्कारवाले कर्ण ( श्रवण इन्द्रिय ) को पाकर हृदयको अत्यन्त दुःख पहुँचाते हैं ॥ ३१ ॥ पहलेके कवीश्वरोंको गुरु मानकर ही यह रचना की गयी है इसलिए जो कवि आज विद्यमान हैं अथवा आगे होंगे वे सब इसे शुद्ध करनेकी कृपा करें ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार रानी किसी उत्तम कन्याको केवल उत्पन्न करती है उसका पालन-पोषण धाय करती है उसी प्रकार मेरी बुद्धि इस रचनाको केवल उत्पन्न कर रही है उसका पालन-पोषण धायके समान कवीश्वरोंकी बुद्धि ही करेगी ॥ ३३ ॥ मेरे इस काव्यको पश्चिमतजन ही ग्रहण करें अन्य मूर्ख लोग भले ही यहाँ न करें क्योंकि जिन्होंने पुण्य नहीं किया है ऐसे दरिद्र पुरुष क्या अमूल्य रत्नोंको खरीद सकते हैं ? अर्थात् नहीं ॥ ३४ ॥ पुरुषोत्तम ( नारायण अथवा उत्तम मनुष्य ) आगमरूपी १ रुद्रः २ अग्निकारात्माम् । ३ स्तुतिनिवेद ४ कृतेः ५ जाददर्श ६ कुरु इति द्वनिः ।

ओवपात्राजलि कृष्णा पीत्वा धर्मसायमम् । अजरामरणो प्राप्नुयुपशुल्घमिदं<sup>१</sup> कुधाः ॥३५॥  
 नूनं पुण्यं पुराणावधेष्ठ्यमध्यासितं मया । तत्पुभाषितरकानि संचितानीति निश्चितिः ॥३६॥  
 सुपूरपारगस्मीत्मिति नान्न मयं मम । पुरोगा गुरवः सम्भित्प्रहाः सर्वेष दुर्लभाः ॥३७॥  
 पुराणस्थास्य संसिद्धिमिना स्वैरैव सूचिता । निर्बद्ध्याभ्यन्न नो वेति ततो नास्यहमाकुलः ॥३८॥  
 पुराणं मार्गमासाय जिनसेनानुग्गा भ्रुवम् । मवावधे पारमेष्ठान्ति पुराणस्थ किमुप्यते ॥३९॥  
 अपौ मनसि जिह्वामे शब्दः “सालंकुतिैस्तथोऽ” । अतः पुराणसंसिद्धेन्निति कालविलम्बनम् ॥४०॥  
 आकरेत्विष रक्षानामूहानां नाशये क्षयः । विवित्रालंकृतीः कर्तुं दौर्गंगं किं करेः कृतीः॒ ॥४१॥  
 विचित्रपदविन्यासा रसिका सर्वसुश्वरा<sup>३</sup> । कुतिः सालंकुतिर्न स्वात् कस्येण कामसिद्धये ॥४२॥  
 संचितस्यैनसो हम्मी<sup>४</sup> नियम्मी<sup>५</sup> वाग्मिष्यतः । आमन्त्रिणी<sup>६</sup> च पुण्यानां ध्यातव्येण कुतिः शुभा ॥४३॥

समुद्रसे उत्पन्न हुए इस धर्मरूपी महारत्नको कौस्तुभ मणिसे भी अधिक मानकर अपने हृदयमें धारण करें ॥३५॥ पण्डितजन कामरूपी पात्रकी अंजलि बना इस धर्मरूपी रसायनको पीकर अजर अमरपता प्राप्त करनेके लिए उद्यम करें ॥३६॥ मुझे यह निश्चय है कि मैंने अवश्य ही इस पुराणरूपी समुद्रके पवित्र मध्यभागमें अधिष्ठान किया है और उससे सुभाषितरूपी रत्नोंका संध्य किया है ॥३७॥ यह पुराणरूपी समुद्र अत्यन्त गम्भीर है, इसका किनारा बहुत दूर है इस विषयका मुझे कुछ भी भय नहीं है क्योंकि सब जगह दुर्लभ और सबमें श्रेष्ठ गुह जिनसेनाचार्य मेरे आगे हैं ॥३८॥ इस पुराणकी सिद्धि अपने महापुराण इस नामसे ही सूचित है इसलिए मैं इसे कह सकूंगा अथवा इसमें निर्वाह पा सकूंगा या नहीं इसकी मुझे कुछ भी आकुलता नहीं है ॥३९॥ जिनसेनाचार्यके अनुगामी शिष्य प्रशास्त मार्गका आलम्बन कर अवश्य ही संसाररूपी समुद्रसे पार होनेकी इच्छा करते हैं फिर इस पुराणके पार होनेकी बात तो कहना ही क्या है? भावार्थ-जिनसेनाचार्यके द्वारा बतलाये हुए मार्गका अनुसरण करनेसे जब संसाररूपी समुद्रका पार भी प्रौप्त किया जा सकता है तब पुराणका पार (अन्त) प्राप्त करना क्या कठिन है? ॥४०॥ अर्थ मनमें है, शब्द जिह्वाके अग्रभागपर है और उन दोनोंके अलंकार प्रसिद्ध हैं ही अतः इस पुराणकी सिद्धि (प्रूति) होनेमें समयका विलम्ब नहीं है अर्थात् इसकी रचना शीघ्र ही पूर्ण होगी ॥४१॥ जिस प्रकार खानिमें रत्नोंकी कमी नहीं है उसी प्रकार जिसके मनमें तर्क अथवा पदार्थोंकी कमी नहीं है फिर भला जिसमें अनेक प्रकारके अलंकार हैं ऐसे काव्यके बनानेवाले कविको दरिद्रता किस बातकी है? ॥४२॥ मेरी यह रचना अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीके समान है क्योंकि जिस प्रकार सुन्दर स्त्री विचित्र पदन्यासा अर्थात् अनेक प्रकारसे वरण रखनेवाली होती है उसी प्रकार यह रचना भी विचित्र पदन्यासा अर्थात् अनेक प्रकारके सुवृत्त तिङ्गत रूप पद रखनेवाली है, जिस प्रकार सुन्दर स्त्री रसिका अर्थात् रसोली होती है उसी प्रकार यह रचना भी रसिका अर्थात् अनेक रसोंसे भरी हुई है, और जिस प्रकार सुन्दर स्त्री सालंकारा अर्थात् कटक कुण्डल आदि आभूषणोंसे सहित होती है उसी प्रकार यह रचना भी सालंकारा अर्थात् उपमा रूपक आदि अलंकारोंसे सहित है। इस प्रकार मेरी यह रचना सुन्दरी स्त्रीके समान भला किसके मनोरथकी सिद्धिके लिए न होगी? भावार्थ-इसके पढ़नेसे सबके मनोरथ पूर्ण होंगे ॥४३॥ यह शुभ रचना पहलेके संचित पापोंकी नष्ट

<sup>१</sup> उपयुक्तजीव्यम् । <sup>२</sup> प्रसिद्धा । <sup>३</sup> अलङ्कारश्च जिह्वाये बनते । <sup>४</sup> भावार्थयोः । <sup>५</sup> -लङ्कृतेः कर्तुर्दोर्गंगर्यं अ०, ए०, ल०, म० । -लङ्कृतेः कर्तुं दौर्गंगं इ०, स० । <sup>६</sup> कृतेः अ०, ए०, ल०, म०, इ०, स० । <sup>७</sup> -मुन्तरी ल०, म० । <sup>८</sup> विनाशनी । <sup>९</sup> प्रतिगंधी । <sup>१०</sup> आमन्त्रणा ग० ।

सर्वताना॑ हिते॒ प्रीतिः प्राकृताना॑ प्रिय॑ प्रियम् । एतदिति॑ प्रियं चातः सर्वान् सन्तोषयत्यलम् ॥४७॥  
इति॑ निविज्ञमेवाश्रि॒ स्थितमेवायुगान्तरम् । इत्यादिर्भावितोत्ताहः प्रस्तुवे॑ प्रस्तुताः कथाम् ॥४८॥

अथातः श्रेणिकः पीत्वा पुरोऽ सुचरितासृतम् । आसिष्वाहयिषुऽ शेषं १० हस्तलभ्यमिष्वेष्वुकः ॥४९॥  
समुद्धिर्वै लभ्यमध्ये भ्रातृलिः प्रणतो मनाक् । पुनर्विज्ञप्यामास गौतमं गणनायकम् ॥४८॥  
त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं सन्ध्यकपुराणं परमं पुरोः । निष्वत्तीज्ञै चथास्याम्बे तथाहं चातिनिष्वृतः ॥४९॥  
किल तस्मिन् जयो नाम तीर्थेऽभृतं पार्थिवाप्रणीः । १३ वस्याद्यापि जितार्कस्य प्रतापः प्रथते वित्तां ॥५०॥  
यस्य दिविज्ञये मेघकुमारविजये स्वयम् । वीरपदं समुद्दस्य वक्षन्त भरतेऽक्षरः ॥५१॥  
पुरस्तीर्थकृतां पूर्वश्चक्रिणां भरतेऽक्षरः । दानतीर्थकृतां श्रेयोन् किलासौ१४ च स्वयंवरे ॥५२॥  
अर्ककीर्ति॑ पुरोः पीत्रे॑ संयरे कृतसंगरः॑ । जित्वा निगलयामास॑ किलैकाकी सहेलया ॥५३॥  
सेवान्तो वृषभः कुम्भो रथान्तो ददसंज्ञः । धनुरम्भः रथो देवशर्मा भावान्तदेवभाक् ॥५४॥  
मन्दनः सोमदत्ताहः सूरदत्तो गुणेऽगुणः । वायुशर्मा यशोबाहुदेवाभिर्देवाभिर्देवाक् ॥५५॥  
अग्निगुलोऽथ भित्राभिर्देवभृतं समहीधरः । महेन्द्रो वसुदेवश्च ततः पश्चाद्वसुन्धरः ॥५६॥

करनेवाली है, आनेवाले पापोंको रोकनेवाली है और पुण्योंको बुलानेवाली है इसलिए इसका सदा ध्यान करते रहना चाहिए ॥४४॥ उत्तम मनुष्योंकी हितमें प्रीति होती है और साधारण को अच्छी जो इष्ट है वही प्रिय होता है, यह पुराण हितरूप भी है और प्रिय भी है अतः सभी-युगान्तर तक स्थिर रहेगा इस प्रकार जिसे उत्साह प्रकट हुआ है ऐसा मैं अब प्रकृत कथाका प्रारम्भ करता हूँ ॥४५॥ ( इस प्रकार पीठिका समाप्त हुई । )

अथानन्तर-राजा श्रेणिक भगवान् वृषभदेवके उत्तम चरितरूपी अमृतको पीकर हाथमें लगे हुए की तरह उसके शेष भागको भी आस्वादन करनेकी इच्छा करता हुआ अत्यन्त उत्कृष्टित हो उठा ॥४७॥ उसने सभाके बीचमें लड़े होकर हाथ जोड़े, कुछ शिर झुकाकर नमस्कार किया और किर गौतम गण्डधरसे इस प्रकार प्रार्थना की कि हे भगवान्, मैंने आपके प्रसादसे श्री वृषभदेवका यह उत्कृष्ट पुराण अच्छी तरह श्रवण किया है । जिस प्रकार भगवान् वृषभदेव इस पुराणके अन्तमें निविणिको प्राप्त होकर मुखी हुए हैं उसी प्रकार मैं भी इसे सुनकर अत्यन्त सुखी हुआ हूँ । ऐसा सुना जाता है कि भगवान् वृषभदेवके तीर्थमें सब राजाओंमें श्रेष्ठ जयकुमार नामका वह राजा हुआ था, जिसने अर्ककीर्तिको भी जीता था और जिसका प्रताप आज भी पृथिवीपरं प्रसिद्ध है । दिविज्ञयके समय मेघकुमारको जीत लेनेपर जिसके लिए स्वयं महाराज भरतने वीरपदृ निकालकर बौधा था, जिस प्रकार तीर्थकरोंमें वृषभदेव, चक्रवर्तियोंमें सम्राट् भरत और दान तीर्थकी प्रवृत्ति करनेवालोंमें राजा श्रेयोस सर्वप्रथम हुए हैं उसी प्रकार जो स्वयंवरकी विधि चलानेमें सर्वप्रथम हुआ है, जिसने मुहूर्में प्रसिद्धा कर श्री वृषभदेवके पोते अर्ककीर्तिको अकेले ही लीलामात्रमें जीतकर बौध लिया था तथा वृषभसेन १, कुम्भ २, दृढरथ ३, शतघनु ४, देवशर्मा ५, देवभाव ६, नन्दन ७, सोमदत्त ८, गुणोंसे श्रेष्ठ सूरदत्त ९, वायुशर्मा १०, यशोबाहु ११, देवाग्नि १२, अग्निदेव १३, अग्निगुप्त १४, भित्राग्नि १५, हलभृत १६, १ उत्तमपुरुषाणाम् । २ परिक्षमनसुखावधे । ३ साधारणामाम् । ४ आपातरमणीयम् । अनुभवनकाले सुन्दर-प्रित्यर्थः । ५ इष्टम् । ६ पुराणम् । ७ शारस्मे । ८ वृषभस्य । ९ वास्त्वाद्यपितुमिष्वृहः । १० हस्ताक्षम-अ०, प०, ल०, म० । ११ ईष्टत् । १२ अतिसुखी । १३ जयत्व । १४ जयकुमारः । १५ नप्त्वारम् । १६ हल-

प्रतिक्षः । १७ बवन्ध ।

अचलो मेहसंहस्र ततो मेरुधनाद्यः । मेरुभूतिर्यजौयशप्रान्तसर्वमिधानकौ ॥५७॥  
 सर्वदुष्टः क्षियप्रामत्तसर्वो देवान्तसंसर्वाद्यक् । लक्षीर्थिर्यजौ दुसो विजयादिस्ततः परः ॥५८॥  
 विजयमित्रो विजयिलोऽपरा जितमर्जकः । वसुमित्रः सविश्वादिसेनः सेनान्तसाधुवाक् ॥५९॥  
 देवान्तसत्यः सत्यान्तदेवो गुसान्तसत्यवाक् । सत्यमित्रः सतो ज्येष्ठः संमित्रो निर्मलो गुणैः ॥६०॥  
 विनीतः संवरो गुणो मुन्यादिसुनिदत्तवाक् । मुनियज्ञो मुनिदेवप्रान्तो वज्ञानगुसवाक् ॥६१॥  
 मित्रयज्ञः स्वयम्भूत्वा देवदत्तगौः<sup>१</sup> भगौ । भगादिफल्गुः फलगमस्तगुणो मित्रादिफल्गुकः ॥६२॥  
 प्रजापतिः सर्वसन्धो वरुणो धनपालकः । मघवान् राश्वस्तसेजो महावीरो महारथः ॥६३॥  
 विशालाक्षो महावालः शुचिसालस्ततः परः । वश्वस्त वज्रसारश्व चन्द्रचूलसमाद्यः ॥६४॥  
 जयो महारसः कच्छमहाकछावसुच्छकौ । नमिविनमिरम्यौ च चकातिवलसंशकौ ॥६५॥  
 वलान्तस्त्रो नन्दी च महामारी परस्ततः । मित्रान्तनन्दी देवान्तकानोऽनुपमलक्षणः ॥६६॥  
 चतुर्मिरधिकाशीतिरिति लक्ष्मद्वर्णाधिषाः । पूर्वे सप्तदिसंयुक्ताः सर्वे वेदसुखादिनः<sup>२</sup> ॥६७॥  
 स एवासीद् गुहस्यागादेतेष्वप्युदितोदितः<sup>३</sup> । पूर्वसप्तते संख्यानसंप्राप्तगणनो गणी<sup>४</sup> ॥६८॥  
 पुराणं तत्त्वं मे वृहि महस्त्रास्ति कौतुकम् । सव्यचातकबृहस्य प्रघणो<sup>५</sup> भगवानिति ॥६९॥  
 ततः श्वस्य समारक्ष्य<sup>६</sup> गणाधीशाद्नुभम् । अलञ्जकार स्वस्थानमित्रितश्चा हि धीधनाः ॥७०॥  
 यत्प्रदुमिष्टमस्मामिः पूर्वे शिष्टं त्वयैव तत् । वेतो जिह्वा स्वमस्माकमित्यस्तावीत<sup>७</sup> समाच्च तम् ॥७१॥

प्रसिद्ध महीधर १७, महेन्द्र १८, वसुदेव १९, उसके अनन्तर वसुन्धर २०, अचल २१, मेरु २२, तदनन्तर मेरुधन २३, मेरुभूति २४, सर्वयश २५, सर्वदेव २६, सर्वगुप्त २७, सर्वप्रिय २८, सर्वदेव २९, सर्वविजय ३०, विजयगुप्त ३१, फिर विजयमित्र ३२, विजयिल ३३, अपराजित ३४, वसुमित्र ३५, प्रसिद्ध विश्वसेन ३६, साधुसेन ३७, सत्यदेव ३८, देवसत्य ३९, सत्यगुप्त ४०, सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ सत्यमित्र ४१, गुणोंसे पुक्त निर्मल ४२, विनीत ४३, संवर ४४, मुनिगुप्त ४५, मुनिदत्त ४६, मुनियज्ञ ४७, मुनिदेव ४८, गुप्तयज्ञ ४९, मित्रयज्ञ ५०, स्वयंभू ५१, भगदेव ५२, भगदत्त ५३, भगफल्गु ५४, गुप्तफल्गु ५५, मित्रफल्गु ५६, प्रजापति ५७, सर्वसंघ ५८, वरुण ५९, धनपालक ६०, मघवान् ६१, तेजोराशि ६२, महावीर ६३, महारथ ६४, विशालाक्ष ६५, महावाल ६६, शुचिशाल ६७, फिर वज्र ६८, वज्रसार ६९, चन्द्रचूल ७०, जय ७१, महारस ७२, अतिशय श्रेष्ठ कच्छ ७३, महाकच्छ ७४, नमि ७५, विनमि ७६, बल ७७, अतिबल ७८, भद्रबल ७९, नन्दी ८०, फिर महाभागी ८१, नन्दिमित्र ८२, कामदेव ८३ और अनुपम ८४। इस प्रकार भगवान् वृषभदेवके ये ८४ गणधर थे, ये सभी सातों कुद्धियोंसे सहित थे और सर्वज्ञ देवके अनुरूप थे। इन चौरासी गणधरोंमें जो घरका त्याग कर अत्यन्त प्रभावशाली, गुणवान् और इकहत्तरवीं संख्याको प्राप्त करनेवाला अर्थात् इकहत्तरवीं गणधर हुआ था, उन्हीं जयकुमारका पुराण मुझे कहिए क्योंकि उसमें बहुत भारी कौतुक है। आप भव्यजीवरूपी चातक पक्षियोंके समूहके लिए उत्तम मेघके समान हैं ॥ ४८-६९ ॥

तदनन्तर गणधरदेवसे अपना अनुग्रह जानकर राजा श्रेणिक अपने स्थानको अलंकृत करने लगा अर्थात् अपने स्थानपर जा बैठा सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष संकेतको जाननेवाले होते हैं ॥ ७० ॥ 'हे शिष्ट' जिसे हम लोग पूछना चाहते थे वही तूने पूछा है इसलिए

<sup>१</sup> सर्वयशः सर्वयज्ञः । <sup>२</sup> देवदत्तभगदत्तौ । <sup>३</sup> सर्वज्ञमुदृशः । <sup>४</sup> पर्यम्भूदयवान् । प्रतिश्वात इत्यर्थः । <sup>५</sup> एतेषु कतुरशीतिगणधरदेवेष्वेकसप्तसिंहयो प्राप्तगणनाः । <sup>६</sup> गुणी ल०, म० । <sup>७</sup> जयस्य । <sup>८</sup> प्रकृष्टमेघ इति विश्वापयामास । <sup>९</sup> जात्येत्यर्थः । <sup>१०</sup> स्तुतिमकारोत् ।

गणी तेनेति संपूर्णः प्रवृत्तस्तदनुग्रहे । नार्थिनो विमुखान् सन्तः कुर्वन्ते तद्वितद्वतम् ॥७२॥  
शृणु श्रेणिकं संप्रवन्नहत्याक्रादसरे कृतः । नाराध्यमिति<sup>१</sup> काम्बासै<sup>२</sup> सन्तोऽवसरवेदिनः ॥७३॥  
कथामुखम्

इह जम्बूभूमिति द्वीपे दक्षिणे मरते महान् । वर्णश्रिमसमाकीर्णो देशोऽस्ति कुलगाङ्गलः ॥७४॥  
धर्मार्थिकामभोक्षणामेको लोकेऽयमाकरः । भाति स्वर्गं इव स्वर्गे विमानं<sup>३</sup> वाऽमरेवितुः ॥७५॥  
हास्तिनारुण्यं पुरं तत्र विचित्रं सर्वं संपदा । संसर्वं<sup>४</sup> सूषयहादौ<sup>५</sup> लक्ष्याः<sup>६</sup> कुलगृहायितम् ॥७६॥  
पतिः पतिर्वा ताराणामस्य सोमप्रभोऽभवत् । कुर्वन्<sup>७</sup> कुबलयाहादं सल्कैः स्वैर्बुद्धाश्रयः<sup>८</sup> ॥७७॥  
तस्य लक्ष्मीमनाक्षिण्य<sup>९</sup> वक्षःस्थलनिवासिनी । लक्ष्मीस्तिं ह्रितीयेति प्रेष्यो<sup>१०</sup> लक्ष्मीवती सर्वी<sup>११</sup> ॥७८॥  
तयोर्जयोऽभवत् सूनुः प्रश्नायिकमयोरिषि । तन्वसाऽभ्यन्तः<sup>१२</sup> कीर्ति लक्ष्मीमिव गुणजिंताम् ॥७९॥  
सुरादप्तुर्मास्यान्वे जक्षिरे विजयादयः । गुणैर्मनून् स्वतिकामताः संख्या<sup>१३</sup> सद्गोऽपि ते ॥८०॥  
प्रदुद्दनिजचैतोभिस्तैः पश्चात्तमिर्भूताम् । काम्बैः कलाविशेषैर्वा<sup>१४</sup> राजसाजो रराज सः ॥८१॥

तू ही हमारा मन है और तू ही मेरी जीम है' इस प्रकार समस्त समाने उसकी प्रशंसा की थी ॥ ७१ ॥ राजा श्रेणिके द्वारा इस प्रकार पूछे गये गौतम गणधर उसका अनुग्रह करनेके लिए उत्पर हुए सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुष याचकोंको विमुख नहीं करते, निश्चयसे यही उनका ब्रत है ॥ ७२ ॥ गौतम स्वामी कहने लगे कि हे श्रेणिक ! सुन, तूने यह प्रश्न अच्छे अवसरपर किया है अथवा यह ठीक है कि अवसरको जाननेवाले सत्पुरुष अन्तमें किसको वश नहीं कर लेते ॥ ७३ ॥

इस जम्बू द्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रमें वर्ण और आथर्मोंसे भरा हुआ कुरुगांगल नामका बड़ा भारी देश है ॥ ७४ ॥ संसारमें यह देश धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषाधरोंकी एक खान है । तथा यह देश स्वर्गके समान है अथवा स्वर्गमें भी इन्द्रके विमानके समान है ॥ ७५ ॥ उस देशमें हस्तिनापुर नामका एक नगर है जो कि सब प्रकारकी सम्पदाओंसे बड़ा ही विचित्र है तथा जो समुद्रमें लक्ष्मीकी उत्पत्तिको झूठा सिद्ध करता हुआ उसके कुलमूहके समान जान पड़ता है ॥ ७६ ॥ उस नगरका राजा सोमप्रभ था जो कि ठीक चन्द्रमाके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार चन्द्रमा अपने उत्तम कर अर्थात् विरणोंसे कुबलय अर्थात् कुमुदोंको आनन्दित-विकसित करता हुआ बुध अर्थात् बुध प्रहके आश्रित रहता है उसी प्रकार वह राजा भी अपने उत्तम कर अर्थात् टैक्ससे कुबलय अर्थात् महीमण्डलको आनन्दित करता हुआ बुध अर्थात् विद्वानोंके आश्रयमें रहता था ॥ ७७ ॥ उस राजाकी लक्ष्मीवती नामकी अत्यन्त सुन्दरी पतिव्रता स्त्री थी जो कि ऐसी जान पड़ती थी मानो उसकी लक्ष्मीका तिरस्कार न कर वक्षःस्थलपर निवास करनेवाली दूसरी ही लक्ष्मी हो ॥ ७८ ॥ जिस प्रकार बुद्धि और पराक्रम-से जय अर्थात् विजय उत्पन्न होती है उसी प्रकार उन लक्ष्मीमती और सोमप्रभके जय अर्थात् जयकुमार नामका पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि जन्मसे ही गुणों-द्वारा उपार्जन की हुई लक्ष्मी और कीर्तिको विस्तृत कर रहा था ॥ ७९ ॥ राजा सोमप्रभके विजयको आदि लेकर और भी चौदह पुत्र उत्पन्न हुए थे जो कि संख्यामें समान होनेपर भी गुणोंके द्वारा कुलकरोंको उल्लंघन कर रहे थे ॥ ८० ॥ जिस प्रकार अतिशय सुन्दर विशेष कलाओंसे चन्द्रमा सुरोभित होता है उसी

१ स्वाधीनात् कुर्वन्ति । २ काम्बैते अ०, स० । काम्बान्ते ल०, म० । ३ इव । ४ उत्पत्तिम् । ५ अनृतं कुर्वत ।  
६ अयं लक्ष्मीशब्दः सम्भवं कुलगृहायितमित्युभश्चापि योजनीयः । ७ कुबलयानन्दं कैवल्यानन्दं च । ८ विद्वज्ज-  
नाश्रयः । सोमसुताश्रमश्च । ९ तिरस्कारमहृत्वा । १० दर्शनीया । ११ पतिव्रता । १२ जननकालात् प्रारम्भ ।  
— अभ्यतः ल०, म० । १३ मनुभिः समाना अयि । १४ वा राजा राजा इत्यपि पाठः । चन्द्र इव ।

राजा राजप्रभो<sup>१</sup> लक्ष्मीमती देवी प्रियानुजः । श्रेयान् व्यायान् जयः पुत्रस्तद्राज्यं पूज्यते न कैः ॥८२॥  
 २ सुत्रविद्यादोपः<sup>२</sup> सोमकल्पाक्षिप्तश्चित्तम् । भोग्यः संभृतपुण्यानां स्वस्य चाभृत्तददभुतम् ॥८३॥  
 ३ अथान्वदा जगत्काममोगबन्धन् विशुप्रभः<sup>३</sup> । अनित्याशुचिदुःखान्वान्मत्वा चायास्त्वयीक्षणः ॥८४॥  
 ४ विजय राज्यं संयोज्य शुद्धेण शौर्योजिते जये । अजयीदायं वौ विद्याज्यसमुत्सुकः ॥८५॥  
 ५ अन्येत्य वृषभाभ्याशौ दीक्षित्वा मोक्षमन्वयमूर्त । श्रेयसां<sup>६</sup> सह<sup>७</sup> नापत्यभुजेन यथा पुरा<sup>८</sup> ॥८६॥  
 ६ पितुः पदमधिष्ठाय<sup>९</sup> जयोऽतापि<sup>१०</sup> महीं महान् । महतोऽनुभवन् भोगान् संविमउयानुजैः समये<sup>११</sup> ॥८७॥  
 ७ एकद्वाऽयं विहारार्थं बाह्योद्यानसुपागतः । तत्रासीनं समालोक्य शीलगुप्तं<sup>१२</sup> महामुनिम् ॥८८॥  
 ८ त्रिःपरीत्य नमस्कृत्य नुखा भक्तिमरामितः । श्रुत्वा धर्मं वृमापुरुष्य प्रीत्या प्रत्यविशाल पुरीम् ॥८९॥  
 ९ हस्मिन् वने वसानागमिष्टुम् सह भूमुजा । श्रुत्वा धर्मं सुधां मत्वा एषी प्रीत्या इथारलम् ॥९०॥  
 १० कदाचित् प्रावृद्धासम्भे प्रचण्डाशनितादितः । मुख्वाऽसौ शान्तिमादाय नागो नामामरोऽमवत् ॥९१॥

प्रकार अपने तेजको बढ़ानेवाले, अतिथाय सुन्दर और विशेष कलाओंको धारण करनेवाले उन पन्द्रह पुत्रोंसे राजाधिराज सोमप्रभ सुशोभित हो रहे थे ॥८१॥ जिस राज्यका राजा सोमप्रभ था, लक्ष्मीमती रानी थी, प्रिय छोटा भाई श्रेयांस था और बड़ा राजपुत्र जयकुमार था भला वह राज्य किसके द्वारा पूज्य नहीं होता ? ॥८२॥ जिसपर पुत्रलघी शास्त्राओंका विस्तार है ऐसा वह राजा सोमप्रभरूपी कल्पवृक्ष, पुण्य संचय करनेवाले अन्य पुरुषोंको तथा स्वयं अपने-आपको भोग्य था यह आश्चर्यकी बात है । भावार्थ-पुत्रों-द्वारा वह स्वयं सुखी था तथा अन्य सब लोग भी उनसे सुख पाते थे ॥८३॥

अथानन्तर किसी समय, पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले राजा सोमप्रभ संसार, शरीर, भोग और भाव्योंको क्रमशः अनित्य, अपवित्र, दुःखस्वरूप और अपनेसे भिन्न मानकर् विरक्त हुए तथा कभी नष्ट न होनेवाले अनन्त वीर्य आदि गुणोंसे श्रेष्ठ मोक्षरूपी राज्यके पानेमें उत्सुक हो, शूरवीर तथा धुरन्धर जयकुमारको राज्य सौंपकर भगवान् वृषभदेवके समीप गये और वहाँ अपने छोटे भाई श्रेयांसके साथ दीक्षा लेकर मोक्षमुखका अनुभव करने लगे । जिस प्रकार वे पहिले यहाँ अपने छोटे भाईके साथ राज्यसुखका उपभोग करते थे उसी प्रकार मोक्षमें भी अपने छोटे भाईके साथ वहाँका सुख उपभोग करने लगे । भावार्थ-दोनों भाई मोक्षको प्राप्त हुए ॥८४-८६॥ इधर श्रेष्ठ जयकुमार पिताके पदपर आसीन होकर पृथिवीका पालन करने लगा । और अपने बड़े भारी भोगोपभोगोंको बाटकर छोटे भाव्योंके साथ-साथ उनका अनुभव करने लगा ॥८७॥ एक दिन वह जयकुमार क्रीड़ा करनेके लिए नगरके बाहर किसी उद्यानमें गया । उसने वहाँ विराजमान शीलगुप्त नामके महामुनिके दर्शन कर उनकी तीन प्रदक्षिणारौ दी, बड़ी भारी भक्तिके साथ-साथ नमस्कार किया, स्तुति की, प्रीतिपूर्वक धर्म सुना और फिर उनसे आज्ञा लेकर नगरको वापिस लौटा ॥८८-८९॥ उसी वनमें सीपोंका एक जोड़ा रहता था उसने भी राजाके साथ-साथ धर्म श्रवणकर उसे अमृत मान बड़े प्रेमसे दयारूपी रसका पान किया था ॥९०॥ किसी समय वर्षाक्रितुके प्रारम्भमें प्रचण्ड वज्रके पड़नेसे उस जोड़ेमें-का वह सर्व शान्तिधारण कर भरा जिससे नागकुमार जातिका देव हुआ ॥९१॥

१ सोमप्रभः । २ शास्त्रालित्यः । ३ सोमप्रभः । ४ यथात्मस्वरूपदर्शी । ५ धुरन्धरे । ६ अक्षय । ७ महत्त्व ।  
 ८ प्रकृष्टराज्योत्कण्ठित इत्यर्थः । ९ समीपम् । १० निजानुजेन । ११ नृपतित्वम् । १२ राज्यकाले यथा ।  
 १३ आश्रित्य । १४ पालयति स्म । १५ सह ल०, म० । १६ -गुप्तमहा-ल०, म० ।

अन्येष रिभमारुः पुनस्तद्वन्मापत्तम् । नारी<sup>१</sup> श्रुतवर्ती<sup>२</sup> धर्मं राजाऽश्रैव सहारमना ॥४२॥  
 वीहय काकोदरेणामाँ जातकोषो विजातिमा । लीलानीलोत्पलेनाहम्<sup>३</sup> श्रुतवर्ती तौ धिगित्यसौ ॥४३॥  
 पलायमानौ पाषाणौः काञ्छिलोचैः पदातयः । अधन्<sup>४</sup> सर्वे न को वाऽन्न तु श्रित्याय कुपथति<sup>५</sup> ॥४४॥  
 पापः स तद्वणैस्त्वा वेदनाकुलधीस्तदा । नाम्नाऽजायत गङ्गायां कालीति जलदेवता ॥४५॥  
 संजातानुशया साऽपि धृत्वा धर्मं द्विदि स्थिरम् । भूत्वा प्रिया रूपनागर्स्य राजा<sup>६</sup> स्वसूतिमवबीत् ॥४६॥  
 नागाभरी<sup>७</sup>पि तां पश्यन् कोपादेष्ममन्यत । वर्पते<sup>८</sup> खलेनैषा चराकी<sup>९</sup> हा इता शृभा ॥४७॥  
 विधवेति विदेवाधीनैषां मासिमं धर्षन्<sup>१०</sup> । <sup>११</sup>न तत्प्राणान् हरे पावद् भुजङ्गा केन वाऽस्मयहम् ॥४८॥  
 इत्यतोऽसौ<sup>१२</sup> दिवकुस्तं जये तदगृहमासदत् । न सहस्रे नमु स्त्रीणा तिर्यञ्चोऽपि पराभवम् ॥४९॥  
<sup>१३</sup> बासगेहे जयो रात्री श्रीमत्याः<sup>१४</sup> कौतुकं प्रिये । शृण्वेकं दृष्टिमित्याल्पत तस्माज्ञीविचेहितम् ॥५०॥  
<sup>१५</sup> आभिजात्यं वयो रुपं विद्यां शृतं चशः श्रियम् । विभुत्वं विक्रमं कान्तिमैहिकं पारलौकिकम् ॥५१॥  
 प्रीतिमप्रीतिमादेयमनादेयं रुपां रुपाम् । हानि लक्ष्मि गुणान् दोषान् विषयादित न योचितः ॥५०२॥  
 धर्मः कामहच<sup>१६</sup> सञ्चेषो वित्तेनायं तु सत्पयः । क्रीणम्यथै<sup>१७</sup> दिव्यस्ताम्यां चिकृतां दृष्टगृभुताम्<sup>१८</sup> ॥५०३॥

किसी दूसरे दिन वही राजा जयकुमार हाथीपर सवार होकर फिर उसी वनमें गया और वही अपने साथ-साथ मुनिराजसे धर्मं श्रवण करनेवाली सर्पिणीको काकोदर नामके किसी विजातीय सर्पके साथ देखकर बहुत ही कुपित हुआ तथा उन दोनों सर्पं सर्पिणीको धिक्कार देकर क्रीड़ाके नील कमलसे उन दोनोंका ताढ़न किया ॥५२-५३॥ वे दोनों वहांसे भागे किन्तु पैदल चलनेवाले सेनाके सभी लोग भागते हुए उन दोनोंको लकड़ी तथा ढेलोंसे मारने लगे सो उचित ही है क्योंकि इस संसारमें दुराचारी पुरुषोंपर कीन क्रोध नहीं करता है ? ॥५४॥ उन धावोंके द्वारा दुःखसे व्याकुल हुआ वह पापी सर्पं उसी समय मरकर गंगा नदीमें काली नामका जलदेवता हुआ ॥५५॥ जिसे भारी पश्चात्ताप हो रहा है ऐसी वह सर्पिणी हृदयमें निश्चल धर्मको धारण कर मरी और मरकर अपने पहलेके पति नागकुमारदेवकी स्त्री हुई । वही जाकर उसने उसे राजाके द्वारा अपने मरणकी सूचना दी ॥५६॥ वह नागकुमार देव भी उसे देखकर क्रोधसे ऐसा मानने लगा कि इस दुष्ट राजाने अहंकारसे इस बेघारी सर्पिणीको व्यर्थ ही मार दिया ॥५७॥ उस मूर्खने इसे विधवा जाना, यह न जाना कि इसका मेरा जैसा पति है इसलिए मैं जबतक उसका प्राण हरण न करूँ तबतक सर्प ( नागकुमार ) कैसे कहला सकता हूँ ? ऐसा सोचता हुआ वह नागकुमार जयकुमारको काटनेकी इच्छासे शीघ्र ही उसके घर आया सोठीक ही है क्योंकि तिर्यञ्च भी स्त्रियोंका पराभव सहन नहीं कर सकते हैं ॥५८-५९॥ जयकुमार रात्रिके समय शयनागारमें अपनी रानी श्रीमतीसे कह रहा था कि हे प्रिये, आज मैंने एक कौतुक देखा है उसे सुन, ऐसा कहकर उसने उस सर्पिणीकी सब कुचेष्टाएं कहीं ॥६०॥ इसी प्रकरणमें वह कहने लगा कि देखो, स्त्रियां कुलीनता, अवस्था, रूप, विद्या, चारित्र, यश, लक्ष्मी, प्रभुता, पराक्रम, कान्ति, इहलोक-परलोक, प्रीति, अप्रीति, ग्रहण करने योग्य, ग्रहण न करने योग्य, दया, लज्जा, हानि, वृद्धि, गुण और दोषको कुछ भी नहीं गिनती हैं ॥६०१-६०२॥ धनके द्वारा धर्म और कामका संचय करना चाहिए यह तो

१ आगच्छत् । २ सर्पिणीम् । ३ आकर्णितवर्तीम् । ४ अन्यजातिसर्पेण सह कामकोहां कुर्वतीम् । ५ ताहयति स्म । ६ अन्तित स्म । ७ कौर्व करोति । ८ निजभर्तृवरतागामरस्य । ९ नृपेण जातनिजमरणम् । १० जयेन । ११ अगतिका । १२ पतिम् । १३ तत्प्राणान् हरे ल०, म०, अ० । १४ दंशितुमिच्छुः । १५ शशाग्ने । 'ऊष्मिति शयतस्थानं वासानारं विशारदः' इति हृलायुषः । १६ निजप्रियायाः । १७ कुलजत्वम् । १८ संचेतुं योग्यः । १९ धर्मकामाभ्याम् । २० समृद्धाभिलाषिताम् ।

वृथिकस्य विषं पश्चात् पश्चगस्य विषं पुरः । योषिता दूषितेऽच्छाना<sup>१</sup> विश्वतो विषमं विषम् ॥१०४॥  
 सत्याभासैर्नतैः स्त्रीणां वज्रिता वे न वीधनाः । दुःश्रुतीनामिवैलाभ्यो मुकास्ते मुक्तिवल्लभाः ॥१०५॥  
 तासां किमुच्यते कोपः प्रसादोऽपि भयंकरः । हन्त्यधीकान्<sup>२</sup> प्रविश्यान्तरगाथसरितो यथा ॥१०६॥  
 जालकैरिन्द्रजालेन<sup>३</sup> वर्णया ग्रास्या<sup>४</sup> हि मायथा । ताभिः<sup>५</sup> सेन्द्रो<sup>६</sup> गुरुर्वन्द्यस्तन्मायामात्रः<sup>७</sup> खियः ॥  
 ताः अथन्ते गुणावैव नाशभीत्या यदि भिताः । तिष्ठन्ति न चिरं प्रान्ते नश्यन्त्यपि च ते स्थिताः ॥१०८॥  
 दीवाः किं तन्मयास्तासु दीवाणां किं समुद्रवधः । सार्वा दीवेभ्य इत्यत्र न कस्यापि विनिश्चयः ॥१०९॥  
 गिरुणान् गुणिनो ममतुं गुणिनः खलु निर्गुणान् ।<sup>८</sup> नाशकात् परमार्थाऽपि मम्यास्ते ताँ<sup>९</sup> हि हेतुया ॥  
 मोक्षी गुणमयो वित्यो<sup>१०</sup> दोषमद्यः खियश्चलाः । तासां नेष्ठन्ति विर्वायमत एवाससूक्ष्मा ॥१११॥  
 लक्ष्मीः सरस्वती कीर्तिमुक्तिस्वभिति विश्रुताः । मुर्लभास्तासु वहीषु कल्पवल्लय इव प्रिये ॥११२॥  
 हत्येत्पाह तपश्चुरुद्वा तं<sup>११३</sup> जिषासुरहितदा । पापिना चिन्तितं पापं मया पापापकापतः<sup>१४</sup> ॥११३॥

समीचीन मार्ग है परन्तु स्त्रियों धर्म और कामसे धन खरीदती हैं अतः उनकी इस बड़ी हुई लोलुपताको विकार हो ॥१०३॥ विष विच्छूके पीछे (पैंचपर) और सांपके आगे (मुंहमें) रहता है परन्तु जिनकी इच्छाएँ दुष्ट हैं ऐसी स्त्रियोंके सभी ओर विषम विष भरा रहता है ॥१०४॥ खोटी श्रुतियोंके समान इन स्त्रियोंके सत्याभास ( ऊपरसे सत्य दिखानेवाले परन्तु वासवमें झूठे ) नमस्कारोंसे जो बुद्धिमान् नहीं थे जाते हैं—इनसे बचे रहते हैं वे ही मुक्तिरूपी स्त्रीके बलभ होते हैं । भावार्थ—जिस प्रकार कुशास्त्रोंसे न ठगाये जाकर उनसे सदा बचे रहनेवाले पुरुष मुक्त होते हैं उसी प्रकार इन स्त्रियोंके हावभाव आदिसे ठगाये जाकर उनसे बचे रहनेवाले—दूर रहनेवाले पुरुष ही मुक्त होते हैं ॥१०५॥ जिन स्त्रियोंकी प्रसन्नता ही भयंकर है उनके क्रोधका क्या कहना है । जिस प्रकार गहरी नदियोंकी निर्मलता मूर्ख लोगोंको भीतर प्रविष्ट कर मार देती है उसी प्रकार स्त्रियोंकी प्रसन्नता भी मूर्ख पुरुषोंको अपने अबीन कर नष्ट कर देती है ॥१०६॥ इन्द्रजाल करनेवाले अपने इन्द्रजाल अथवा मायासे मूर्ख ग्रामीण पुरुषोंको ही ठगा करते हैं परन्तु स्त्रियों इन्द्र सहित बृहस्पतिंको भी ठग लेती हैं इसलिए स्त्रियों मायाचारकी माताएँ कही जाती हैं ॥१०७॥ प्रथम तो गुण स्त्रियोंका आश्रय लेते ही नहीं हैं यदि कदाचित् आश्रयके अभावमें अपना नाश होनेके भयसे आश्रय लेते भी हैं तो अधिक समय तक नहीं ठहरते और कदाचित् कुछ समयके लिए ठहर भी जाते हैं तो अन्तमें अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं ॥१०८॥ दोषोंका तो पूछना ही क्या है ? वे तो स्त्रीस्वरूप ही हैं अथवा दोषोंकी उत्पत्ति स्त्रियोंमें है अथवा दोषोंसे स्त्रियोंकी उत्पत्ति होती है इस बातका निश्चय इस संसारमें किसीको भी नहीं हुआ है ॥१०९॥ निर्गुणोंको गुणी और गुणियोंको निर्गुण माननेके लिए परमात्मा भी समर्थ नहीं है परन्तु स्त्रियों ऐसा अनायास हो मान लेती हैं ॥११०॥ मोक्ष गुण स्वरूप और नित्य है परन्तु स्त्रियों दोषस्वरूप और चंचल हैं मानो इसीलिए अरहन्तदेवके शास्त्रोंमें उनका मोक्ष होना नहीं माना गया है ॥१११॥ हे प्रिये, जिस प्रकार लक्षाओंमें कल्पलता दुर्लभ है उसी प्रकार स्त्रियोंमें लक्ष्मी, सरस्वती, कीर्ति, मुक्ति और तू ये प्रसिद्ध स्त्रियों अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥११२॥ यह सब जयकुमारने अपनी स्त्रीसे कहा, उसे सुनकर जयकुमारको

१ दुष्टकाङ्छानाम् । २ दुष्टस्त्राणाम् । ३ प्रवेशं कारणित्वा । ४ वज्रकः । ५ इन्द्रजालसंजातया माययेति संवादः । ६ परीक्षाशास्त्रवहिर्मूर्ताः । ७ स्त्रीभिः । ८ इन्द्रजालादिदेवताशूतैन्द्रसहितः । ९ सदिन्द्रमन्त्री शृहस्पतिः । १० तत् कारणात् । ११ नाभवत् । १२ स्त्रियः । १३ दोषवल्लय—१०, म० । १४ हन्तुमिच्छः । १५ पापिष्ठाधाः निहृवात् । 'अपलापस्तु निहृवः' इत्यधिकानात् ।

अर्याणामपि वारसूयो विचारी कार्यवेदिभिः । वज्यातिः किं पुनर्नार्थीः कामिनां का विचारणा ॥११४॥  
भवेऽस्मिष्ठेव भव्योऽयं भविष्यति सवान्तकः । तत्रास्य भव्यमन्येभ्यो भव्यमेतद्यैषिणाम् ॥११५॥  
अहं कृतः कृतो चर्मः संरक्षितम् स्तोऽप्यभुलः । उग्रेह सुकिपर्यन्तो नान्यत् सरसंगमादितम् ॥११६॥  
इत्यनुधाय निःकोपः कृतवेदी जयं हवयम् । रक्षेनर्थ्यैः संपूज्य स्वप्रपञ्चं लिङ्गम् च ॥११७॥  
मां स्वकार्ये स्मरेत्युक्त्वा स्वावासे प्रथसी गतः । २ हस्ताऽस्युर्जितपुण्यामां भव्यमध्युद्यावहः ॥११८॥  
स चक्रिणा सदाकल्य दिक्षकं भ्यक्षदिक्षमः । क्रमाज्ञियम्यै अयामै संयमीव शामे भितः ॥११९॥  
उवलक्ष्यतापः सौम्योऽपि निर्गुणोऽपि गुणाकरः । सुसर्वाङ्गोऽद्यनक्षमः सुखेन हवपुरे स्थितः ॥१२०॥  
अथ देशोऽस्ति विस्तीर्णः काशिस्तत्रैषै विश्रुतः । पिण्डीभूता भव्याकाललुण्टाकादिवै भोगभूः ॥१२१॥  
तदापि ललु विचान्ते कल्पवल्लीपरिष्कृताः । हुमाः कल्पवृत्तमाभासाभिन्नास्तत्र इच्छित् इच्छित् ॥१२२॥  
सत्रैषामीष्मावर्ज्यै वृत्तैः वायुभूयते । सेै तज्जेतेति निःशङ्कं शङ्के स्वरापिवर्गयोः ॥१२३॥

मारनेकी इच्छा करनेवाला वह नागकुमार अपने मनमें कहने लगा कि देखो उस स्त्रीके पाप छिपानेसे ही मुझ पापीने इस पापका चिन्तवन किया है ॥११३॥ कार्यके जाननेवाले पुरुषोंको सज्जनोंके वचनोंपर भी एक बार पुनः विचार करना चाहिए फिर त्याग करने योग्य स्त्रियोंके वचनोंकी तो बात ही क्या है ? उनपर तो अवश्य ही विचार करना चाहिए परन्तु कामी जनोंको यह विचार कहाँ हो सकता है ? ॥११४॥ यह भव्य जीव इसी भवमें संसारका नाश करनेवाला होगा, इसलिए इसे अन्य लोगोंसे कुछ भय होनेवाला नहीं है बल्कि जो इसे भय देना चाहते हैं उन्हें ही यह भय है ॥११५॥ मैं कहाँ ? और यह धर्म कहाँ ? यह धर्म भी मुझे इसीके संसर्गसे प्राप्त हुआ है इसलिए इस संसारमें मुझे मोक्ष प्राप्त होने तक सज्जनोंके समागम-के सिवाय अन्य कुछ कल्याण करनेवाला नहीं है ॥११६॥ ऐसा विचारकर वह नागकुमार क्रीघरहित हुआ, उपकारको जानकर उसने अमूल्य रत्नोंसे स्वयं जयकुमारकी पूजा की, उसे मारने आदिके जो विचार हुए थे वे सब उससे कहे और अपने कार्यमें मुझे स्मरण करना इस प्रकार कहकर वह अपने स्थानको लौट गया सो ठीक ही है क्योंकि जिसका पुण्य तेज है उसका मारनेवाला भी कल्याण करनेवाला हो जाता है ॥११७-११८॥ व्यक्त पराक्रमको धारण करनेवाला वह जयकुमार चक्रवर्ती भरत महाराजके साथ-साथ सब दिशाओंपर आक्रमण कर और अनुक्रमसे इधर-उधरका फिरना बन्द कर संयमीके समान शान्तभावका आश्रय करने लगा ॥११६॥ जो सौम्य होनेपर भी प्रज्वलित प्रतायका धारक था, निर्गुण ( गुणरहित, पक्षमें सबमें मुख्य ) होकर भी गुणाकर ( गुणोंकी लानि ) था और सुसर्वांग ( जिसके सब अंग सुन्दर हैं ऐसा ) होकर भी अनंगाभ ( शरीररहित, पक्षमें कामदेवके समान कान्तिवाला ) था ऐसा वह जयकुमार सुखसे अपने नगरमें निवास करता था ॥१२०॥

अथानन्तर—इसी भरतक्षेत्रमें एक प्रसिद्ध और बहुत बड़ा काशी नामका देश है जो कि ऐसा विदित होता है मानो कालरूपी लुटेरेके भयसे भोगभूमि ही आकर एक जगह एकत्रित हो गयी ही ॥१२१॥ वहाँपर कहीं-कहीं उस समय भी कल्पलताओंसे घिरे हुए कल्पवृक्षोंके समान अनेक प्रकारके वृक्ष विद्यमान थे ॥१२२॥ चूँकि अपनी अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर उनका उपभोग उसी देशमें किया जाता था इसलिए मैं ऐसा समझता हूँ कि वह काशी देश १ कृतज्ञः २ धातकः ३ निरुद्धयः ४ विविष्यव्यापारमिति शेषः ५ स्पृक्त्वा विविष्यव्यापारमित्यर्थः ६ विविष्य-गमनम् ७ अप्रशान्तरहितोऽपि ८ “गुणोऽप्रधाने रूपादी मोर्ख्यं शूके वृकोदरे । शूमे सत्त्वादिसन्ध्यादिविद्यादिहरितादिवै” इत्यभिधानात् ९ भरतक्षेत्रे १० दुःकालज्ञोरात् सज्जातात् ११ स्वीकृत्य १२ यस्मात् कारणात् १३ देशः १४ देशः १५ तस्मात् कारणात्

वाराणसी पुरी तत्र जिथा तामामरी पुरीम् । <sup>१</sup> अमानैस्तद्विमातानि इव सौधेरित्वं साऽहसोत् ॥ १२४॥  
 प्राक् समुचितदुक्त्यां न <sup>२</sup> तत्रोपसुमहृति । प्रभादादपि लज्जोऽपि स्यात् किं पापो मनस्यपि ॥ १२५॥  
 एवं भवत्रयश्चेष्वः सूचनी चर्मवर्त्मनि । विनेयान् जिनविद्येष <sup>३</sup> साऽप्यस्थानं प्यवीकृतर्त् ॥ १२६॥  
 नाम्नैष कम्पितारातिस्तस्याः पतिरक्षणमः । विनीतैः इष्व विद्यामाः स्वान्मिष्टार्थसंपदः <sup>४</sup> ॥ १२७॥  
 पुरोषाजितपुम्यस्य अद्वने रक्षणे श्रियः । न नीतिः <sup>५</sup> फिङ्ग कामे च धर्मे चास्योपयोगिनी ॥ १२८॥  
 न हस्ती केवलं दाता न हस्ता पाति केवलम् । सर्वास्त्वात्मास स <sup>६</sup> धर्मविजयी प्रजाः ॥ १२९॥  
 पात्मात्म्ये पदे पूज्यो भरतेन यथा पुरुः । गृहाश्रमे तथा सौऽपि सा तद्य कुलबृहता ॥ १३०॥  
 तस्यासीत्सुप्रभादेवी शीतोशोर्डी प्रभा तथा । सुमुखे कुमुदाबोधं विद्यधर्म स कलात्म्यः ॥ १३१॥  
 न लक्ष्मीरपि तत्त्वीत्यै सती सा सुप्रजा <sup>७</sup> वधा । सरफला इष्व सदृश्यः पुनर्वत्यः श्रियः श्रियाः ॥ १३२॥

निःसन्देह् स्वर्ग और मोक्षको जीतनेवाला था ॥ १२३ ॥ उस काशीदेशमें एक वाराणसी ( बनारस ) नामकी नगरी थी जो कि अपने अपरिमित राजभवनोंसे अमरपुरीको जीतकर उसके विमानोंकी हँसी करती हुई-सी जग्न पड़ती थी ॥ १२४ ॥ जिसने पूर्वजन्ममें पापकर्मोंका संचय किया है ऐसा जीव उस वाराणसी नगरीमें उत्पन्न होने योग्य नहीं था । तथा उसमें उत्पन्न हुआ जीव प्रमादसे भी क्या कंभी मनमें भी पापी हो सकता था ? अर्थात् नहीं ॥ १२५ ॥

इस तरह भूत, भविष्यत् और वर्तमानसम्बन्धी तीनों भवोंके कल्याणको सूचित करने-वाली वह नगरी जिनवाणीके समान दूसरी जगह रहनेवाले शिष्य लोगोंको भी धर्ममार्गमें प्रवृत्त करती थी ॥ १२६ ॥ जिस प्रकार विनयी मनुष्य विद्याका स्वामी होता है उसी प्रकार अपने नामसे ही शत्रुओंको कम्पित कर देनेवाला राजा अकम्पन उस नगरीका स्वामी था । जिस प्रकार विद्या अपने अभिलिषित पदार्थोंको देनेवाली होती है उसी प्रकार वह नगरी भी अभिलिषित पदार्थोंको देनेवाली थी ॥ १२७ ॥ पूर्व जन्ममें पुम्य उपार्जन करनेवाले उस राजा-की नीति केवल लक्ष्मीके बढ़ाने और उसकी रक्षा करनेमें ही काम नहीं आती थी किन्तु धर्म और कामके विषयमें भी उसका उपयोग होता था ॥ १२८ ॥ वह राजा केवल प्रजासे कर बसूल ही नहीं करता था किन्तु उसे कुछ देता भी था और केवल दण्ड ही नहीं देता था किन्तु रक्षा भी करता था । इस प्रकार धर्म-द्वारा विजय प्राप्त करनेवाला वह राजा समस्त प्रजाका पालन करता था ॥ १२९ ॥ राजा अकम्पनके कुलका बड़पन यही था कि भरतमहाराज परमात्म-पदमें जिस प्रकार भगवान् वृषभदेवको पूज्य मानते थे उसी प्रकार गृहस्थाश्रममें उसे पूज्य मानते थे ॥ १३० ॥ उसके सुप्रभा नामकी देवी थी जो कि चन्द्रमाकी प्रभाके समान थी । जिस प्रकार चन्द्रमा अनेक कलाओंका आश्रय हो अपनी प्रभासे कुमुदाबोध अर्थात् कुमुदिनियों-का विकास करता हुआ प्रसन्न ( निर्मल ) रहता है उसी प्रकार वह राजा भी अनेक कलाओं-विद्याओंका आश्रय हो अपनी सुप्रभा देवीसे कुमुदाबोध अर्थात् पृथिवीके समस्त जीवोंके आनन्द-का विकास करता हुआ प्रसन्न रहता था ॥ १३१ ॥ उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेवाली वह पतिव्रता सुप्रभादेवी जिस प्रकार राजाको आनन्दित करती थी उस प्रकार लक्ष्मी भी उसे आनन्दित नहीं कर सकी थी सो ठीक ही है क्योंकि जिस प्रकार अच्छे फल देनेवाली उत्तम लताएँ श्रिय

<sup>१</sup> प्रमाणातीतैः । <sup>२</sup> पुरी । <sup>३</sup> हस्ति स्म । <sup>४</sup> नगर्याम् । <sup>५</sup> द्विष्यभिवेष । <sup>६</sup> नगरी । <sup>७</sup> देशान्तरस्थान् ।  
<sup>८</sup> वर्तमानि स्म । <sup>९</sup> विनेयपरः । <sup>१०</sup> निजाभीष्टविषयसम्बद्य यस्यां सा तस्याः । <sup>११</sup> नयनं करणम् । <sup>१२</sup> वर्त-  
 करणात् । <sup>१३</sup> अकम्पनः । <sup>१४</sup> शोभनाः प्रजा अपत्यानि यस्याः सा सुप्रजा । सत्पुत्रवक्तीत्यर्थः ।

तस्यां तत्त्वायवंशाग्रगण्यस्येवाशब्दो रथे । प्राच्योऽदीप्त्याहुदिकचक्राः सहजमन्वन् सुताः ॥ १३३॥  
 हेमाङ्गदसुकेतुश्रीसुकान्ताशाहूदैः स तैः । वेष्टितः संम्बद्धोपिष्ठ शङ्कः सामानिकैरिति ॥ १३४॥  
 हिमवत्पश्योर्गङ्गासिन्धू इव तत्त्वस्योः ॥ ३ । सुलोचनाऽसौ बालेष लक्ष्मीः सास्त्रां सुलक्षणे ॥ १३५॥  
 सुलोचनाऽसौ बालेष लक्ष्मीः सर्वमनोरमा । कलागुणैरभासिष्ठ चन्द्रिकेष प्रवर्द्धिता ॥ १३६॥  
 सुभूष्याण्याऽमलाः शुक्लनिशेषावर्द्धयत् कलाः । धान्त्री शशाङ्करेखापास्तस्याः सातिभनोहरः ॥ १३७॥  
 अभूत् रागी स्वयं रागस्तैर्कमाङ्गं समाप्तिः । रागाय कस्य वा न स्पाद् स्वेच्छितस्थानसंशयः ॥ १३८॥  
 नखेन्दुचन्द्रिका तस्याः शशत्रुक्षयलयं किल । विश्वमाहूदये विश्रमनुष्टुप्योऽकमाङ्गयोः ॥ १३९॥  
 रेतुरंगुलयस्तस्याः कमयोर्नेत्रोक्षिष्ठा । इष्टस्त इति अद्वेषाः॑ स्मरणेष निवेशिताः ॥ १४०॥  
 नताशीषी जयः॒ संज्ञाहाद॑ मंसीस्ते॒॑ तत्त्वस्योः । या श्रीः कमाङ्गयोस्तस्याः सा किमस्ति सरोरुहं ॥ १४१॥

होती हैं उसी प्रकार उत्तम पुत्र उत्पन्न करनेवाली स्त्रियां भी प्रिय होती हैं ॥ १३२ ॥ जिस प्रकार पूर्व दिशासे अपनी कान्तिके द्वारा समस्त दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली सूर्यकी किरणें उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार उस सुप्रभादेवीसे नाथवंशके अग्रगण्य राजा अकम्पनके अपनी दीप्ति अथवा तेजके द्वारा दिशाओंको वश करनेवाले हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १३३ ॥ हेमांगद, सुकेतुश्री और सुकान्त आदि उन पुत्रोंसे घिरा हुआ वह राजा ऐसा सुशोभित होता था जैसा कि सामानिक देवोंसे घिरा हुआ इन्द्र सुशोभित होता है ॥ १३४ ॥ जिस प्रकार हिमवान् पर्वत और पूर्व नामकी सरसोंसे गंगा और सिन्धु ये दो नदियाँ निकलती हैं उसी प्रकार राजा अकम्पन और रानी सुप्रभाके सुलोचना तथा लक्ष्मीमती ये उत्तम लक्षणोंवाली कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं ॥ १३५ ॥ वह बालिका सुलोचना लक्ष्मीके समान सबके मनको आनन्दित करनेवाली थी और अपने कलारूपी गुणोंके द्वारा चाँदनीके समान वृद्धिको प्राप्त होती हुई सुशोभित हो रही थी ॥ १३६ ॥ जिस प्रकार शुक्ल पक्षकी रात्रि चन्द्रमाकी रेखाओंकी अस्थन्त मनोहर कलाओंको बढ़ाती है उसी प्रकार सुमित्रा नामकी धाय उस सुलोचनाकी अतिशय मनोहर कलाओंको बढ़ाती थी—उसके शरीरका लालन-पालन करती थी ॥ १३७ ॥ राग अर्थात् लालिमा उस सुलोचनाके चरण-कमलोंका आश्रय पाकर स्वयं रागी अर्थात् राग करनेवाला अथवा लाल गुणसे युक्त हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि अपने योग्य स्थानका आश्रय किसके रागके लिए नहीं होता ? ॥ १३८ ॥ आश्चर्य है कि उसके नखरूपी चन्द्रमाकी चाँदनी दोनों चरण-कमलोंके अनुकूल रहकर भी समस्त कुवलय अर्थात् कुमुदिनियोंको अथवा पृथ्वीमण्डलके आनन्दको निरन्तर विकसित करती रहती थी । भावार्थ—चाँदनी कभी कमलोंके अनुकूल नहीं रहती, वह उन्हें निमीलित कर देती है परन्तु सुलोचनाके नखरूपी चन्द्रमाकी चाँदनी उसके चरणकमलोंके अनुकूल रहकर भी कुवलय—नीलकमल ( पक्षमें महीमण्डल ) को विकसित करती थी यह आश्चर्यकी बात थी ॥ १३९ ॥ उसके दोनों पैरोंकी बँगुलियाँ नखोंकी किरणोंसे ऐसी अच्छी जान पड़ती थीं मानो भेरे बेग इतने ही हैं यही समझकर कामदेवने ही स्थापन की हों । भावार्थ—\*अभिलाषा, चिन्ता आदि कामके दश बेग हैं और दोनों पैरोंकी बँगुलियाँ भी दश हैं इसलिए वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो कामदेवने अपने बेगोंकी संख्या बतलानेके लिए ही उन्हें स्थापित किया हो ॥ १४० ॥ जिसे सब लोग नमस्कार करते हैं ऐसा जयकुमार भी जिन्हें १ तेजसा । २ अकम्पनसुप्रभयोः । ३ अरुणगुणः । ४ सुलोचनाचरण । ५ मोदति स्म । ६ अनुकूलवृत्त्या ।  
 ७ मम सदृशावस्थाः । ८ जयकुमारः । ९ नमस्करोति स्म । १० कलाङ्गे ।

\* “अभिलाषशिवत्तास्मृतिसुणकथनोद्वेगसंप्रलापाद्य ।

उन्मादोऽय व्याधिर्जन्मता मृतिरिति वशान् कामदशः ॥”—साहित्यदर्शने ।

न स्थूले न कुशो नर्जुन वक्ते न च सहकर्ते । विकटे<sup>१</sup> न च तेजवस्थे शोभाऽन्यैसैनयोरस्ते<sup>२</sup> ॥ १४२ ॥  
 काष्ठीस्थानं<sup>३</sup> तदालोच्येवोरु स्थूले सुतप्तसे । कायरार्भगुहारस्तमयहयाकुली कुले ॥ १४३ ॥  
 ऐदिकेव मनोजस्य विरो वा<sup>४</sup> स्मरद्वितिनः । यानुवादिनङ्गशीलस्य शुगुमेऽस्याः कटीलटम् ॥ १४४ ॥  
 कुला कुशं शूरं भव्यं वदं भज्यमयादिव । रजुभिस्तमभिधीत्रा<sup>५</sup> विभिन्नादिमादभी ॥ १४५ ॥  
 नाभिकूपप्रदृष्टास्या<sup>६</sup> रसमार्गं समुद्गता । इवामा शाद्वलमालेव<sup>७</sup> रोमराजिर्वर्यराजत ॥ १४६ ॥  
 भिन्नौ युक्तौ सूक्तस्तथाही<sup>८</sup> वरणौ सन्तापहारिणौ । हतनौ विस्तृधर्माणौ स्याद्वादस्थितिमूहतुः ॥ १४७ ॥  
 सहवक्षोविवासिन्या समाप्तिरथ जयः शिथा । स्वीकुतो अदि चेताभ्यो<sup>९</sup> वरणैर्त तदभुजी कथम् ॥ १४८ ॥  
 चीरकक्षमीपरिष्वक्तजयदधिणवाहुता । सवामेन<sup>१०</sup> परिष्वक्त स्वरक्षण्ठस्तद्युक्तोऽप्या ॥ १४९ ॥  
 मिःकृपी<sup>११</sup> पेशाली<sup>१२</sup> इश्वर्णी तत्कपोली विलेससुः । कान्तो ललभद्रन्तामौ जयवक्षत्राभ्यादपणा<sup>१३</sup> ॥ १५० ॥  
 वठविरथप्रवालादिनोपमेवमपीत्यते<sup>१४</sup> । अधरस्यातिकृत्यात् वरकिरत्यादिभिः ॥ १५१ ॥

बड़े स्नेहसे नमस्कार करेगा ऐसे उसके दोनों चरणकम्लोंमें जो शोभा थी वह क्या कमलोंमें हो सकती है ? अथवि नहीं ॥१४१॥ उसकी दोनों जंघाएँ न स्थूल थीं, न कुश थीं, न सीधी निराली ही थीं ॥१४२॥ उसके करबनी पहननेके स्थान—नितम्बस्थलको देखकर ही मानो स्थूल, परस्परमें मिले हुए और कामदेवके गर्भगृहसम्बन्धी दरबाजेसे खम्भोंकी लकड़ीके समान दोनों ऊरु बनाये गये थे ॥१४३॥ उसका नितम्ब प्रदेश ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानो कामदेवकी वेदी ही हो अथवा कामदेवरूपी हाथीका शिर ही हो अथवा कामदेवरूपी पर्वतका शिखर ही हो ॥१४४॥ उसका मध्यभाग ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो विधाताने उसे पहले तो अत्यन्त कुश बनाया हो और फिर टूट जानेके भयसे श्रिवलीरूपी तीन रस्सियोंसे मजबूत बांध दिया हो ॥१४५॥ नाभिरूपी कुण्डेसे निकली हुई उसकी रोमराजि ऐसी अच्छी सुशोभित हो रही थी मानो जलमार्गसे निकली हुई हरी-हरी छोटी घासकी पद्धति ही हो ॥१४६॥ उसके स्तन भिन्न-भिन्न होकर भी ( स्थूल होनेके कारण ) एक दूसरेसे मिले हुए थे, कोमल होकर भी ( उन्नत होनेके कारण ) कठोर थे, और उष्ण होकर भी ( आळादजनक होनेके कारण ) संतापको दूर करनेवाले थे, इस प्रकार विशुद्ध धर्मोंको धारण करनेवाले उसके दोनों स्तन स्याद्वादकी स्थितिको धारण कर रहे थे ॥१४७॥ चूंकि उसकी दोनों भुजाओंने वक्षस्थलपर निवास करनेवाली लक्ष्मीके साथ आलिङ्गन कर जयकुमारको स्वीकृत किया है इसलिए उनका वर्णन भला कैसे किया जा सकता है ? ॥१४८॥ उसका कण्ठ वीर लक्ष्मीसे सुशोभित जय-कुमारके दायें और बायें दोनों हाथोंसे आलिङ्गनको प्राप्त हुआ था वतः उसकी उपमा क्या हो सकती है । भावार्थ—उसकी उपमा किसके साथ दी जा सकती है ? अथवि किसीके साथ नहीं—वह अनुपम था ॥१४९॥ हाथीके बच्चेके दाँतकी आभाको धारण करनेवाले उसके निष्कृप, कोमल और चिकने दोनों कपोल ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो जयकुमारका मुखकमल देखनेके लिए सुन्दर दर्पण ही हों ॥१५०॥ बटकी कोंपल, विम्बी फल और मूँगा आदि प्रदार्थ, दर्पण, बाकार और रस आदिमें बोठोंसे बढ़त हूर हैं अथवि उसके ओठोंके समान न तो

१ सखीर्ण । २ विशाले । ३ विलक्षणीव । ४ कटिटटम् । ५ आलीक्य । ६ इव । ७ ब्रह्मणा ।  
८ सुलोचनायाः । ९ अलभार्ग । १० हरितपद्मकिंतः । 'काहृष्ठः पादहरिसे' हस्यभिष्यानात् । आदेष्ट—  
१०, ८०, ६०, ॥ ११ कठिनौ । १२ सुलोचनाभजाभ्याम् । १३ वामभुजसहितेन । १४ आलिङ्गितः ।  
१५ जगसस्तापहेतुत्थात् । १६ कोमली । १७ रेजतुः । १८ अयकुमारमुल । १९ अपिवाम्बात् केवल-  
मुपमानं न ।

१ चित्तः सितः समाः हितरधा दक्षता कामता प्रभानितता :। अस्तः करोति लद्वक्त्रं तामेव कथमन्यथा ॥ १५३ ॥  
 कुरुः कृता समुत्कृगा स्वाद्मानास्यसौरभम् । मध्येवकर्त्रं किमज्यास्ते न सती यदि नासिका ॥ १५४ ॥  
 कण्ठित्वामिनी नेत्रे<sup>१</sup> शुद्धे<sup>२</sup> नरशोपमे । सोमवंश्यस्य कः क्षेपः पश्चोत्पलजये तथोः ॥ १५५ ॥  
 तत्कणविव कर्णेनु कृतपुण्यौ प्रियाजयौ<sup>३</sup> । तत्प्रेमलापगीक्षानां<sup>४</sup> पात्रे<sup>५</sup> ग्रामेव ती यतः ॥ १५६ ॥  
 तद्भूरारासतः<sup>६</sup> कामस्तकटाक्षशरावलिः<sup>७</sup> । स्वरूपेणाजित्ते<sup>८</sup> मस्या जयं मन्ये व्यजेष्ट सः ॥ १५७ ॥  
 तस्यालालाटिको<sup>९</sup> नैकः कामी वीराग्रणीः स्वयम् । जयोऽपि नोषति कस्माल्ललाटस्य त्रित्रित्यः ॥ १५८ ॥  
 मुद्रवस्तवदः हितरधा: कृष्णाहतस्याः क्षुद्रिष्ठताः । कामिनां केवलं कालवालव्यालाः<sup>१०</sup> शिरोलहाः ॥ १५९ ॥  
 माति तस्याः पुरोमागो भूषितो नवनादिभिः । शुरुवै<sup>११</sup> इव पादचात्यो<sup>१२</sup> वाभाति स्वयमेव सः ॥ १५९ ॥  
 ये सस्यास्तनुनिर्माणं वेघसां साधनीकृतः ॥<sup>१३</sup> । अणवस्तुणवच्छेषास्त एव परमाणवः ॥<sup>१४</sup> ०१६० ॥

इनका वर्ण है, न आकार है और न रस ही है इसलिए ही उसके ओठोंको इनमें-से किसीकी भी उपमा नहीं दी सकती थी ॥ १५१ ॥ अवश्य ही उसके दौत एक दूसरे से मिले हुए थे—छिद्रहित थे, सफेद थे, समान थे, चिकने थे, सुन्दर थे, और चमकीले थे, यदि ऐसा न होता तो सुलोचनाका मुख उन्हें भीतर ही बयों करता ? ॥ १५२ ॥ मुखकी सुगन्धिका स्वाद लेती हुई उसकी नाक यदि इतनी अच्छी नहीं होती तो वह इतनी ऊँची बयों बनाई जाती ? तथा मुखके बीचमें कैसे ठहर सकती ? ॥ १५३ ॥ अर्जुनके बाणके समान कर्णके ( राजा कर्ण अथवा कानके ) समीप तक जानेवाले उसके दोनों नेत्र अत्यन्त विशाल थे, उन्होंने लाल कमल और नीलकमल दोनोंको जीत लिया था फिर भला सोमवंश अर्धान् च-द्रमापर कौन-सा बाह्यप वाकी रह गया था अथवा सोमवंश अर्धान् जयकुमारपर कौन-सा क्षेप अर्थान् कटाक्ष करना वाकी रह गया था ? ॥ १५४ ॥ उसके कान ही सब कानोंमें अधिक पुण्यवान् थे व्योकि वे पहले से ही अपने प्रिय—जयकुमारकी आज्ञासे उनके प्रेमसम्भाषण और गीतोंके पात्र हो गये थे ॥ १५५ ॥ मैं तो ऐसा मानता हूँ कि कामदेवने जयकुमारको अपने रूपसे अजेय मानकर मुलोचनाकी भीहरूपी धनुष और उसीके कटाक्षरूपी बाणोंके समूहसे ही उसे जीता था ॥ १५६ ॥ उस मुलोचनाका सेवक अकेला कामदेव ही नहीं था किन्तु वीरशिरोमणि जयकुमार भी स्वयं उसका सेवक था, फिर भला शोभाको धारण करनेवाले उसके ललाटकी उन्नति—उच्चता अथवा उत्तमता बयों न होती ? ॥ १५७ ॥ कोमल, बारीक, चिकने, काले और कुछ-कुछ टेढ़े उसके शिरके बाल कामी पुहषोंको केवल काले सौंपोंके बच्चोंके समान जान पढ़ते थे ॥ १५८ ॥ उस मुलोचनाका आगेका भाग नेत्र आदिसे विभूषित होकर सुशोभित हो रहा था और पिछला भाग किसी सुन्दर वस्तुके समान अपने-आप ही सुशोभित हो रहा था ॥ १५९ ॥ विधाताने उसका शरीर बनानेमें जिन अणुओंको साधन बनाया था यथार्थमें वे ही अणु परमाणु अर्थान्

१ निशिल्दा इत्यर्थ । २ उत्तरगुणा न सन्ति चेत् । ३ किञ्चिभित्त निर्गिता इत्येवं पृच्छति । ४ यदि सती प्रशस्ता नासिका न स्यात् तद्हि मध्येवकर्त्रं मुनमध्ये कि वस्तु अध्यास्ते । नासिकां मुक्त्वा न किमपि अधिक्षितुं योग्यमित्यर्थः । ५ इवनी कर्णराजस्य विनाशी वर्तमाने । ६ शुद्धे कि न भक्तः, भवत् एव । ७ दैवस्य ल०, म०, अ० । जयकुमारस्य । ८ तिरस्कारः । ९ नेत्रयोः । १० जयकुमार-प्रसिद्धया । ११—लापनोतानां व०, म०, ल० । १२ भाजनम् । १३ तस्या भ्रुवाशेष शरासनं पस्य । १४—टापाशुग्रावलिः ल० । बाणसमूहः । १५ आत्मीयस्वरूपेण । १६ भावदर्शी सेवकः । 'लालाटिकः प्रभोभविद्यी कार्यान्तरमद्वयः ।' इत्यभिधानात् । न सेवकी भवति चेत् । १७ कृष्णबालभुजङ्गः । १८ मनोज्ञपदार्थ इव । १९ पृष्ठभान । २० उपशमनकारणीकृताः । २१ रथयोः इत्यर्थः । २२ उत्कृष्टाणवः ।

अलिशृङ्गः क्षयासकः स्पष्टलक्ष्माहिनीचरः । १००ः शेषोऽप्यसंपूर्णो<sup>१</sup> न लहूक्ष्मोपमो विजुः ॥ ३६५॥  
न पश्चात् पुरा लक्ष्मीबीजी<sup>२</sup> पद्मे क्षणे क्षणे । वक्ष्यत्थां गृहूती शोभा सा<sup>३</sup> स्याद्वादं तदानने ॥ ३६६॥  
तन्द्रे तीव्रकरोत्सका<sup>४</sup> पद्मे शीतकराहता । लक्ष्मीः साऽन्यैव लहूक्ष्मे<sup>५</sup> जयलक्ष्मीकरग्रहात् ॥ ३६७॥  
रात्राविन्दुदिवास्मोजं क्षर्याऽनुवर्लानिवारिजम् । पूर्णंतेव विकास्येव लहूक्ष्मं भान्यहर्दिवम्<sup>६</sup> ॥ ३६८॥  
लक्ष्मीहृत्स्वेष्ठिसुस्तेम्<sup>७</sup> वीक्षितस्थापि निश्चिता । किं पद्मे तारशं येन<sup>८</sup> सहूक्ष्ममुपमीयते<sup>९</sup> ॥ ३६९॥  
कुमार्या त्रिजगजोता जितः पुष्पशरासनः<sup>१०</sup> । स वीरः कः परो लोके यो न जर्योऽप्रतोऽभया<sup>११</sup> ॥ ३६१॥  
कुमार्यैव जितः कामो वीरः पश्चात्कामो जितः । स्त्रीमृष्टिः कियती नाम विजयेऽस्याः सहस्रिष्या ॥ ३६७॥

उत्कृष्ट अणु थे और उनसे बाकी बचे हुए अणु तृणके समान तुच्छ थे ॥ ३६०॥ चन्द्रमा उसके मुखकी उपमाके योग्य नहीं था क्योंकि यदि पूर्ण चन्द्रमाकी उपमा देते हैं तो वह बहुत बृद्ध अर्थात् बड़ा है, उसका क्षय निकट है, कलंक उसका स्पष्ट दिखलाई देता है और राहु उसे दधा देता है । यदि अपूर्ण चन्द्रमाकी उपमा देते हैं तो वह स्वयं अपूर्ण है—अधूरा है । भावार्थ—उसका मुख तरुण, अविनश्वर, निष्कलंक और पूर्ण था इसलिए पूर्ण अथवा अपूर्ण कोई भी चन्द्रमा उसके मुखकी उपमाके योग्य नहीं था ॥ ३६१॥ यदि कमलकी उपमा दी जावे सो भी ठीक नहीं है क्योंकि कमलमें विकसित होनेके पहले लक्ष्मी नहीं थी और न पीछे रहती है वह तो क्षण-क्षणमें विकसित होती रहती है परन्तु उसके मुखपर-की लक्ष्मी एक विलक्षण शोभाको ग्रहण करती हुई स्याद्वादका स्वरूप प्रकट करती थी । भावार्थ—उसके मुखकी शोभा सदा एक-सी रहकर भी क्षण-क्षणमें विलक्षण शोभा धारण करती थी इसलिए कमलकी शोभासे कहीं अच्छी थी और इस प्रकार स्याद्वादका स्वरूप प्रकट करती थी क्योंकि जिस प्रकार स्याद्वाद द्रव्यार्थिक नयसे एकरूप रहकर भी पर्यायार्थिक नयसे नवीन-नवीन रूपको प्रकट करता है उसी प्रकार उसके मुखकी लक्ष्मी भी सामान्यतया एकरूप रहकर भी प्रतिक्षण विलक्षण शोभा धारण करती हुई अनेकरूप प्रकट करती थी ॥ ३६२॥ चन्द्रमाको शोभा सूर्यसे नष्ट हो जाती है और कमलकी शोभा चन्द्रमासे नष्ट हो जाती है परन्तु उसके मुखकी शोभा जयकुमारकी लक्ष्मीका हस्त ग्रहण करनेसे विलक्षण ही हो रही थी ॥ ३६३॥ चन्द्रमा रातमें सुशोभित होता है और कमल दिनमें प्रकुलित रहता है, चन्द्रमाका क्षय हो जाता है और कमल मुरझा जाता है परन्तु उसका मुख पूर्ण ही था, विकसित ही था और रात-दिन सुशोभित ही रहता था ॥ ३६४॥ सुलोचनाके मुखको जो देखता था उसकी शोभा बढ़ जाती थी और सुलोचनाका मुख जिसे देखता था उसकी शोभा भी निश्चित रूपसे बढ़ जाती थी । कमलमें क्या ऐसा गुण है जिससे कि उसे सुलोचनाके मुखकी उपमा दी जा सके ? ॥ ३६५॥ उसने कुमारी अवस्थामें ही तोनों जगत्को जीतनेवाला कामदेव जीत लिया था फिर भला संसारमें ऐसा दूसरा कीन वीर था जो आगे पुरावस्थामें उसके द्वारा न जीता जाये ? ॥ ३६६॥ इसने कुमारी अवस्थामें कामदेवको जीत लिया था और तरुण अवस्थामें जयकुमारकी जीता था फिर भला इसके जीतनेके लिए

१ राहुगोचरः । ( विप्रः ) । २ कलाशेऽपोऽपि । कलाहीन इत्यर्थः । बालन्द्रोऽपि । ३ विकासशोला ।  
४ लक्ष्मीः । ५ हसा । ६ जयस्य लक्ष्मीः । ७ —त्यहर्निशम् अ०, १०, स०, ई०, ल०, म० । ८ धर्मस्व ।  
९ वक्त्रेण । १० येन थर्मेण सतः । ११ तादृशं थर्मं पश्चे किमस्ति ? नास्तीत्यर्थः । वीक्षितस्थापि अपिशब्दात्  
तदधर्मो न दृष्टोऽस्मि । नवापि अनुस्य तद्य एवरितश्वर्मस्य लक्ष्मीः शोभा तेन सह तद्वक्त्रेण सह इक्षितुः  
वीक्षितस्थापि जनप्य निश्चिता स्यत् । १२ पुण्यशरासनो जितः इत्यनेन कमला पात्रं मेत्यति इत्यर्थः ।  
१३ योद्वने ।

मृगाहस्य कलङ्कोऽयं मन्येऽहं कन्दयाऽनया । स्वकान्त्या निजितस्याभूद् रोगराजैश्च चिन्तयते ॥ १६८॥  
 सर्वं कुषलयेनेन्द्रुः सह लक्ष्या सरोहहम् । तद्वक्त्रेण जितं व्यक्तं किमन्वलोहं जीयते ॥ १६९॥  
 जलाक्षं जलवासेन स्थलावजं सूर्यरक्षिमभिः । प्राप्तुं तद्वक्त्रजां शोभां मन्येऽस्यापि तपस्यनि॑ ॥ १७०॥  
 शर्वैवलिन्दुरेखेव सा॒ कलामिरवर्द्धते । वृद्धास्तस्याः प्रवृद्धाया विवुमिः स्पर्धिनो॑ गुणाः ॥ १७१॥  
 हति संपूर्णसर्वाङ्गशोभां शुद्धान्ववायजामौ । स्मरो॑ जयमयाद्वैता॒ न॑ तदाऽप्यकरोत् करे॑ ॥ १७२॥  
 कारणन्ती जिनेन्द्रार्चित्रा॑ मणिमयीर्वहुः । तासां॒॑ हिरण्मयान्वेव विश्वोपकरणान्वपि ॥ १७३॥  
 तथातिष्ठाभिषेकान्ते महापूजाः प्रकुर्वती । मुहुः स्तुतिभिरव्याप्तिः॑ स्तुती भक्तिर्हस्तः॑ ॥ १७४॥  
 ददती पात्रदानानि भास्यती॑ महासुनीन् । शृण्वती धर्ममार्कण्डं भावयस्ती मुहुमुद्दुः ॥ १७५॥  
 आसागमपदाधीर्व प्राप्तसम्यवस्थशुद्धिका । अथ फाल्गुननदीश्वरेऽसी भवत्या जिनेविनाम् ॥ १७६॥  
 विचायाद्विकीं पूजामध्यवर्धार्चा यथाविधि । कुतोपवासा तन्वङ्गी शेषा॑ दामुसुपागता ॥ १७७॥  
 नुपं सिंहासनासीनं सोऽप्युथाय हृताजङ्गिः । तद्वशेषाभादाय॑ निवाय शिरसि स्वयम् ॥ १७८॥

लक्ष्मीके साथ-साथ कितनी-सी स्त्रियोंकी सृष्टि बाकी रही थी ? भावार्थ—इसने लक्ष्मी आदि उत्तम-उत्तम स्त्रियोंको जीत लिया था ॥ १६७॥ चन्द्रमाके बीच जो यह कलंक दिखता है उसे मैं ऐसा मानता हूँ कि इस कल्याने अपनी कान्तिसे चन्द्रमाको जीत लिया है इसीलिए मानो उसे चिन्ताके कारण अवरोग हो गया हो ॥ १६८॥ उस सुलोचनाके मुखने चन्द्रमाके साथ कुबल्य अर्थात् कुमुदको जीत लिया था और लक्ष्मीके साथ-साथ कमलको भी जीत लिया था फिर भला इस संसारमें और रह ही चयों जातां हैं जो उसके मुखके द्वारा जीता न जा सके ॥ १६९॥ मैं तो ऐसा मानता हूँ कि उसके मुखकी शोभा प्राप्त करनेके लिए जलकमल जलमें रहकर और स्थलकमल सूर्यकी किरणोंके द्वारा आजतक तपस्या कर रहा है ॥ १७०॥ वह सुलोचना द्वितीयाके चन्द्रमाकी रेखाके समान कलाओंके द्वारा धीरे-धीरे बढ़ती थी और ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती थी त्यों-त्यों चन्द्रमाकी कान्तिके साथ स्पर्धा करनेवाले उसके गुण भी बढ़ते जाते थे ॥ १७१॥ इस प्रकार जो समस्त अंगोंकी शोभासे परिपूर्ण है और शुद्ध वंशमें जिसकी उत्पत्ति हुई है ऐसी उस सुलोचनाको कामदेव जयकुमारके भयसे युवावस्थामें भी अपने हाथमें नहीं कर सका था ॥ १७२॥

उस सुलोचनाने श्री जिनेन्द्रदेवकी अनेक प्रकारकी रत्नमयी बहुत-सी प्रतिमाएँ बनवायी थीं और उनके सब उपकरण भी सुवर्णं हीके बनवाये थे । प्रतिस्था तथा तत्सम्बन्धी अभिषेक हो जानेके बाद वह उन प्रतिमाओंकी महापूजा करती थी, अर्थपूर्ण स्तुतियोंके द्वारा श्री अर्हन्त-देवकी भक्तिपूर्वक स्तुति करती थी, पात्र दान देती थी, महामुनियोंका सन्मान करती थी, धर्मको सुनती थी तथा धर्मको सुनकर आप्त आगम और पदार्थोंका बार-बार चिन्तवन करती हुई सम्यगदर्शनकी शुद्धताको प्राप्त करती थी । अथानन्तर-फाल्गुन महीनेकी अष्टाङ्गिकामें उसने भक्तिपूर्वक श्री जिनेन्द्रदेवकी अष्टाङ्गिकी पूजा की, विविपूर्वक प्रतिमाओंकी पूजा की, उपवास किया और वह कुशांगी पूजाके शेषाकाल देनेके लिए सिंहासनपर बैठे हुए राजा अकम्पनके १ अथवाधिः । २ मनोदुःखेन । ३ तपवरति । ४ अवशेषः । ५ विवुभास्पद्विनो ल०, म०, अ०, प०, इ०, स० । ६ शुद्धवंशजातात् । ७ जयकुमारभयादिव । ८ सुलोचनाम् । ९ योवनकालेऽपि । १० करप्रहृण नाकरोत् । तस्याः कामदिकारो नामुदित्यर्थः । ११ प्रतिमाः । १२ प्रतिमानाम् । १३ सदर्थयुक्ताधिः । १४ अर्हवृदेवान् । १५ पूजायस्ती । १६ शेषाम् ल०, म० । १७ —नादाय ल०, म० ।

उपवासपरिश्रान्ता पुत्रिके सर्वं प्रयाहि ते । शरण<sup>१</sup> पारणाकाल इति कन्या व्यसज्जयत् ॥ १७५ ॥  
 लां विलोक्य महीपालो बालामापूण्यावनाम् । निर्विकारो सचिन्तः सन् तस्याः परिणयोस्सदे ॥ १८० ॥  
 शुभे श्रुतार्थसिद्धार्थसर्वथिसुमलिश्रुतीन् । कोष्ठादिमलिश्रुतान्वा दिने व्याहृय मन्त्रिणः ॥ १८१ ॥  
 तृणते सर्वंभूपालाः कन्याः नः कुलजीवितम् । वृत कस्मै प्रदास्यामो विमृश्येमां सुलोचनाम् ॥ १८२ ॥  
 इत्यप्राक्षीतदा प्राह श्रुतार्थः श्रुतसागरः । अत्र सद्गुरुसंबन्धो जामाताऽत्र महान्वयः ॥ १८३ ॥  
 सर्वंस्वस्य व्ययोऽत्राय जन्मसाज्यफलं च नः । ततः संवित्यमेवैतत् कार्यं नयविशारदैः ॥ १८४ ॥  
 बन्धवः स्युरुपाः सर्वे संबन्धश्चक्षतिना । इक्ष्वाकुवंशावत्यज्ञो भवद्विश्व जायते ॥ १८५ ॥  
 कुलरूपकयोविद्यावृत्त श्रीपौहवादिकम् । चद्रैषु समन्वेष्य<sup>२</sup> सर्वं तस्य<sup>३</sup> पिण्डितम् ॥ १८६ ॥  
 ततो नास्यत्र नश्चर्थ्य<sup>४</sup> द्विगन्तव्यात्पर्कीर्तये । जिताक्मूर्तये देवा कन्ये<sup>५</sup> वैश्यकीर्तये ॥ १८७ ॥  
 सिद्धार्थोऽन्नाह तस्यवंभस्ति<sup>६</sup> कि च पुराविदः<sup>७</sup> । कन्तीयसोऽपि<sup>८</sup> संबन्धं मेष्टन्ति ज्यायसा सह<sup>९</sup> ॥  
 ततः प्रलीतभूपालशुश्रा वरगुणान्विताः । प्रभञ्जनो रथवरो वलिर्वज्रायुधाद्यः ॥ १८८ ॥

पास गयी । राजा ने भी उठकर और हाथ जोड़कर उसके दिये हुए शेषाक्षत लेकर स्वयं अपने मस्तकपर रखे तथा यह कहकर कन्याको विदा किया कि हे पुत्रि, तू उपवाससे खिन्न हो रही है, अब घर जा, यह तेरे पारणाका समय है ॥ १७३-१७५ ॥ राजा पूर्ण योवनको प्राप्त हुई उस विकारशूल्य कन्याको देखकर उसके विवाहोत्सवकी चिन्ता करने लगा ॥ १८० ॥ उसने किसी शुभ दिनको कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पदानुसारी और सम्भन्धश्रूत इन चारों बुद्धि ऋद्धियों-के समान श्रुतार्थ, सिद्धार्थ, सर्वथि और सुमति नामके मन्त्रियोंको बुलाया ॥ १८१ ॥ और पूछा कि हमारे कुलके प्राणस्वरूप इस कन्याके लिए सभी राजा लोग प्रार्थना करते हैं इसलिए तुम लोग विचार कर कहो कि यह कन्या किसको दी जाय ? ॥ १८२ ॥ इस प्रकार पूछनेपर शास्त्रोंका समुद्र श्रुतार्थ नामका मन्त्री बोला कि इस विवाहमें सज्जन दन्धुओंका समागम होना चाहिए, जमाई बड़े कुलका होना चाहिए, इस विवाहमें बहुत-सा घन खर्च होगा और हम लोगोंको अपने जन्म तथा राज्यका फल मिलेगा इसलिए नीतिनिपुण पुरुषोंको इस कार्यका अच्छी तरह विचार करना चाहिए ॥ १८३-१८४ ॥ यदि यह सम्बन्ध चक्रवर्तीके साथ किया जाय तो सब राजा अपने बन्धु हो सकते हैं और आपका वंश भी इक्ष्वाकु वंशकी तरह पूज्य हो सकता है ॥ १८५ ॥ कुल, रूप, वय, विद्या, चारित्र, शोभा और पौरुष आदि जो जो गुण वरोंमें खोजना चाहिए वे उसमें इकट्ठे हो गये हैं । इसलिए इसमें कुछ चर्चाकी आवश्यकता नहीं है जिसकी कीर्ति सब दिशाओंमें कैल रही है और जिसने अपने तेजसे सूर्यके प्रतिविम्बको भी जीत लिया है ऐसे चक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीर्तिके लिए यह कन्या दी जाय ॥ १८६-१८७ ॥ इसी समय सिद्धार्थ मन्त्री कहने लगा कि आपका यह सब कहना ठोक है परस्तु पूर्व व्यवहारको जाननेवाले छोटे लोगोंका बड़ोंके साथ सम्बन्ध होना भी अच्छा नहीं समझते हैं ॥ १८८ ॥ इसलिए वरके गुणोंसे सहित प्रभेजन, रथवर, बलि, वज्रायुध, मेष्टेश्वर (जयकुमार) और भीमभुज आदि अनेक प्रसिद्ध राजपुत्र हैं जो एकसे एक बढ़कर बैभवशाली हैं तथा अतुर

१ गश्छ । २ तव । ३ यृहप् । 'शरणं गृहरक्षितोऽइत्यभिधानात् । ४ विवाह । ५ नामधेयान् । ६ कोष्ठबुद्धि-  
 बीजबुद्धिपदानुसारिसम्भन्धश्रूतेश्रुतेश्रुतिव । ७ वृष्ट्यते ल०, म०, प०, स०, इ० । प्रार्थयन्ते । ८ विद्यार्थ ।  
 ९ पूच्छति सम । १० घनस्य । ११ अथ वा जन्मनः फलं रोज्यस्य फलम् । १२ पूर्वम् । १३ अर्ककीर्ती ।  
 १४ विकार्यम् । १५ इति प्राहेति संबन्धः । १६ -मस्तु ल०, म०, प० । १७ पूर्ववेदिनः । १८ अत्यस्य ।  
 १९ महता सह । ज्यायसां ल०, प० ।

मेषस्वरो भीमभुजस्तथा<sup>१८</sup>येऽप्युदितोदिता<sup>१९</sup> । कृतिनो वहवः समिति तेषु<sup>२०</sup> यद्याशयोल्लब्धः ॥ १९० ॥  
 शिष्टान् पृष्ठा च दैवज्ञानिरीक्ष्य शकुनानि च । स हितः<sup>२१</sup> समवंचन्धस्तस्मै कन्धेति दीयताम् ॥ १९१ ॥  
 श्रुत्वा सर्वार्थविलक्ष्य सर्वार्थः प्रख्युचाच<sup>२२</sup> तद् । <sup>२३</sup>भूमिगोचरसंबन्धः स नः प्रागपि विद्यते ॥ १९२ ॥  
 अपूर्वकाभः इलाद्यश्च विद्याधरसमाश्रयः । विद्यार्थं तत्र कस्मैचिद्देयमिति निश्चितम् ॥ १९३ ॥  
 सुमतिस्तं निशाच्यार्थं<sup>२४</sup> युक्तानामाह युक्तवित । न युक्तं बन्धुमप्येतत्<sup>२५</sup> सर्ववैरानुवाच्यकृत् ॥ १९४ ॥  
 किं भूमिगोचरेवस्या वरो नास्तीति चेतसि । चक्रिणोऽपि भवेत्किंचिद् वैरस्यं प्रस्तुतश्चुतेः<sup>२६</sup> ॥ १९५ ॥  
 इष्टः सम्यगुपायोऽयं मवाऽश्वैकोऽविरोधकः । श्रुतो<sup>२७</sup> एव्युत्तरेणु स्वयंवरस्त्रिविवरः ॥ १९६ ॥  
 संप्रथ्यकम्पनोऽकम्प<sup>२८</sup> तदस्त्वायुगावधि<sup>२९</sup> । <sup>३०</sup>पुरुष्युत्रवस्त्वाहि<sup>३१</sup> ल्यातिरस्यापि जायताम् ॥ १९७ ॥  
 दीयतां कृतपुण्याय कस्मैचित् कन्धका स्वयम् । वेष्टसा<sup>३२</sup> विप्रिय<sup>३३</sup> नोऽमा भाभूद्भूष्यसु<sup>३४</sup> केनचित् ॥  
 इत्येवसुक्तं तत्सर्वैः समतं लहभूमुजा । नहि मत्सरिणः सन्तो न्यायमार्गानुसारिणः ॥ १९८ ॥  
 तान्<sup>३५</sup> संपूर्ण्य विसञ्चयभूद्<sup>३६</sup> भूम्य<sup>३७</sup> सर्वार्थतत्त्वः । स्वयमेव युहं गत्वा सर्वं तत्संविदानकम्<sup>३८</sup> ॥ १९९ ॥

हैं उनमें जिसके लिए अपना चित्त प्रसन्न हो उसके लिए शिष्ट जन तथा ज्योतिषियोंसे पूछकर और उत्तम शकुन देखकर कन्धा देनी चाहिए क्योंकि बराबरीदालोके साथ सम्बन्ध करना ही कल्याणकारी हो सकता है ॥ १९६-१९१ ॥ यह सब सुनकर समस्त विषयोंको जाननेवाला सर्वार्थ नामका मन्त्री बोला कि भूमिगोचरियोंके साथ तो हम लोगोंका सम्बन्ध पहलेसे ही विद्यमान है, हाँ, विद्याधरोंके साथ सम्बन्ध करना हम लोगोंके लिए अपूर्व लाभ है तथा प्रशंसनीय भी है इसलिए विचारकर विद्याधरोंमें ही किसीको यह कन्धा देनी चाहिए ऐसा मेरा निश्चित मत है ॥ १९२-१९३ ॥ तदनन्तर वहाँपर एकत्रित हुए सब लोगोंका अभिप्राय जानकर योग्य बातको जाननेवाला सुमति नामका मन्त्री बोला कि यह सब कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ये सभी बातें शत्रुता उत्पन्न करनेवाली हैं ॥ १९४ ॥ विद्याधरको कन्धा दी है यह सुननेसे चक्रवर्तीके चित्तमें भी ‘वया भूमिगोचरियोंमें इसके योग्य कोई वर नहीं है’ यह सोचकर कुछ बुरा लगेगा ॥ १९५ ॥ इस विषयमें किसीसे विरोध नहीं करनेवाला एक अच्छा उपाय मैंने सोचा है और वह यह है कि प्राचीन पुराणोंमें स्वयंवरकी उत्तम विधि सुनी जाती है। यदि इस समय सर्वप्रथम् अकम्पन महाराजके द्वारा उस विधिका प्रारम्भ किया जाय तो भगवान् वृषभदेव और उनके पुत्र सम्भाट् भरतके समान संसारमें इनकी प्रसिद्धि भी युगके अन्त तक हो जाय ॥ १९६-१९७ ॥ इसलिए यह कन्धा स्वयंवरमें जिसे स्वीकार करे ऐसे किसी पुण्यशाली राजकुमारको देनी चाहिए। ऐसा करनेसे हम लोगोंका आदिबह्या भगवान् वृषभदेव अथवा पुगव्यवस्थापक सम्भाट् भरतसे कुछ विरोध नहीं होगा, और न राजाओंका भी परस्परमें किसीके साथ कुछ वैर होगा ॥ १९८ ॥ इस प्रकार सुमति नामके मन्त्रीके द्वारा कही सब बातें राजाके साथ-साथ सबने स्वीकृत कीं सो ठीक ही है क्योंकि नीतिमार्गपर चलनेवाले पुरुष मात्सर्व नहीं करते ॥ १९९ ॥ तदनन्तर राजाने सन्धान कर मन्त्रियोंको विदा किया और स्वयं

१ उपर्युपर्यम्युदयवन्तः । २ पुंसि । ३ चित्तोत्सवोऽस्ति । ४ ज्योतिष्कान् । ५ अस्माभिः सह संबन्धः संबन्धवान् वा । ६ तम् थ०, प०, स०, द०, ल०, म० । ७ भूचर । ८ अभिप्रायम् । ९ मिलितानाम् । श्रुतार्थदीनाम् । १० सर्व वैरा — प०, ल० । ११ दिवाहवातशिवणात् । १२ पूर्वस्मिन् श्रृतः । १३ अकम्पनेन प्रक्रमोपकान्तम् । १४ स्वयंवरनिमणिम् । १५ पुरुजित्यभरतराजवत् । १६ सङ्कुटिः ट० । स्वयंवरस्य सङ्कुटा इति प्रसिद्धिः । सृष्टिरिति पाठे स्वयंवरस्य सृष्टिप्रसिद्धिः । १७ ऋक्षणा । 'ऋटा प्रजापतिर्वेषा विश्वसृद्विधिः' इत्यभिघानात् । १८ विरुद्धम् । अग्नियमित्यर्थः । १९ तृपेषु । २० मन्त्रिणः । २१ अकम्पनः । २२ स्वयंवरकार्यः । २३ प्रस्तुतं कृत्य ।

निवेद्य सुप्रभावादच हृषी हेमाङ्गदस्यै च । चृद्गौः कुलक्रमावातैरालोच्य च सवाभिजिः ॥२०१॥  
अश्रैकेषोऽनि॒सृष्टार्थोऽन् मितार्थमिपरान् प्रति । परेषोऽप्राश्रुतान्तःस्थपत्रान् शासनहारिणः ॥२०२॥  
स दानमानैः संपूज्य निवेद्यैतत्प्रयीजनम् । समानेतुं महीपालाद् सर्वदिक्षे॑ समादिशत् ॥२०३॥  
जाया तदाशु तदनुविचित्राङ्गदसंज्ञकः ॥१० । सीधर्मकल्पादायाच्य वेषोऽवधिविलोचनः ॥२०४॥  
अकम्पनमहाराजमालोक्य वयमागताः । सुलोचनायाः पुण्यायाः ॥११ । स्वयंवरमवेक्षितुम् ॥२०५॥  
इस्युक्त्वोपपुरे ॥१२ । योग्ये रम्ये राजाभिसंमतः ॥१३ । ब्रह्मस्थानोक्तर भागे प्रधीरे ॥१४ । ब्रह्मास्तुनि ॥१५॥  
प्राशुर्वं सर्वतोमद्वं मङ्गलद्रव्यसंभृतम् । विचाहमण्डपोपेतं प्रासादं बहुभूमिकम् ॥१६॥  
॥१७ ॥ चित्रप्रतीलीप्राकारपरिकर्मगृहावृतम् ॥१८ । मास्परं मणिभमस्याः ॥१९ । विधाय विधिवत् सुधाः ॥२०८॥  
तं परीत्य विशुद्धोह सुविमलमहीतलम् । अतुरज्ञं चतुर्वृतिरालगोपुरसंयुतम् ॥२०९॥  
रक्तोरणसंकीर्णकेनुमालाविलासितम् । हट्टक्षटामनिर्मासि भर्मकुम्माभिक्षांभितम् ॥२१०॥  
स्थूलनीलोत्पलावद्वक्षुरस्त्रिविस्तीणिवितानांति॑ विराजितम् ॥२११॥

कार्य करनेमें जुट गया । उसने सबसे पहले घर जाकर ऊपर लिखे हुए समाचार सुप्रभावेवी और हेमांगद नामके ज्येष्ठ पुत्रको कह सुनाये तथा कुलपरम्परासे आये हुए वृद्ध पुरुषों और सगोत्री बन्धुओंके साथ पूर्वापि विचार किया ॥२००-२०१॥ कितने ही राजाओंके पास निसृष्टार्थ अर्थात् स्वयं विचार कर कार्य करनेवाले दूत भेजे, कितनों ही के पास मितार्थ अर्थात् कहे हुए परिमित समाचार सुनानेवाले दूत भेजे और कितनों ही के पास उपहारके भीतर रखे हुए पत्रको ले जानेवाले दूत भेजे । इस प्रकार दान और सन्मानके द्वारा पूजित कर तथा स्वयं-वरका प्रयोजन बतलाकर राजाने भूपालोंको बुलानेके लिए सभी दिशाओंमें अपने दूत भेजे ॥२०२-२०३॥ यह सब समाचार जानकर अवधिज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाला विचित्रांगद नामका देव जो कि पूर्वभवमें राजा अकम्पनका भाई था सीधर्म स्वर्गसे आया और अकम्पन महाराजके दर्शन कर कहने लगा कि मैं पुण्यवती सुलोचनाका स्वयंवर देखनेके लिए आया हूँ ॥२०४-२०५॥ ऐसा कहकर उसने राजाकी आज्ञानुसार नगरके समीप ब्रह्मस्थानसे उत्तरविशाकी ओर अत्यन्त शास्त्र, उत्कृष्ट, योग्य और रमणीय स्थानमें एक सर्वतोभद्र नामका राजभवन बनाया जिसका मुख पूर्व दिशाकी ओर था, जो मंगलद्रव्योंसे भरा हुआ था, विचाहमण्डपसे सहित तथा कई खण्डका था ॥२०६-२०७॥ वह राजभवन अनेक प्रकार-की गलियों, कोटों तथा शृंगार करनेके धरोंसे विरा हुआ था, देवीप्यमान था और मणियों तथा सुवर्णसे बना हुआ था । इस प्रकार उस बुद्धिमान् देवने विधिपूर्वक राजभवनकी रचना कर उसके चारों ओर स्वयंवरका महाभवन बनाया था जो कि विशुद्ध था, बड़ा था, जिसका पृथ्वीभाग अलग-अलग विभागोंमें विभक्त था, जो चौकोर था, जिसमें चार दरवाजे थे, जो कोट तथा गोपुरद्वारोंसे सुशोभित था, रत्नोंके तोरणोंसे मिली हुई पताकाओंकी पंक्तियोंसे शोभायमान हो रहा था, देवीप्यमान शिखरोंके अग्रभागपर चमकते हुए सुवर्णोंके कलशोंसे अलंकृत

१ सुप्रज्ञायावच अ०, प० । २ निजज्येष्ठपुत्रस्य । ३ केषांविश्वप्राणाम् । ४ स्वयंवर विचारितकायनि ।  
५ परिमितकार्यार्थीन् । ६ उपायन । ७ वचोहरात् । -पवशासन-ल० । ८ स्वयंवरकार्यम् । ९ स्वयंवर-  
दिशाम् । १० अकम्पनस्य मिश्रम् । ११ पवित्रायाः । १२ पुरसमीपे । १३ पदविन्यासात्रिविचित्रमध्यभागस्पोत्तरे ।  
१४ अतिगम्भीरे । १५ वरवास्तुदेशे । 'वेषम भूर्वस्तुरस्त्रियाम्' इत्यभिधानात् । १६ -भूमिषम् ल०, म० ।  
१७ गोपुरस्था वा । १८ शृङ्गारगृह । १९ 'भर्म रुद्रं हाटकं शातकुम्मम्' इत्यभिधानपाठाददन्तः ।  
२० सर्वतोभद्रं परिवेश । २१ द्वारं शाल-ल०, म०, अ०, प०, स०, इ० । २२ कनककलश । २३ वस्त्रविशेष ।

मोगोपमोगयोऽपीरुपवंवस्तुसमाचितम् । वथास्थानगताशेवरकाक्षननिर्मितम् ॥२१२॥  
 मुदा निष्पादयामास स्वयंवरमहागृहम् । न साधयन्ति केऽभीष्टं पुंसो शुभविषयकतः ॥२१३॥  
 तं निरीक्ष्य किंतर्मस्तु लक्ष्मीलीलागृहाचितम् । नासीत् एवाहे<sup>१</sup> संसोषात् सन्मित्रात् किं जावते ॥  
 अथ प्रादुरभूत कालः “सुरमिमंशमन्मथः । सुदं यदं च संचित्वन् कामिषु भ्रमरेषु च ॥२१४॥  
 चर्वौ भवं गजोदृष्टवन्दवसारभूत । एलालवज्जसंसर्गपूलो<sup>२</sup> मलयानिलः ॥२१५॥  
 मलयानिलमालेषु<sup>३</sup> संबन्धिनमुपागतम् । लताकुमाः सुशास्तार्ना<sup>४</sup> प्रसारणमिवाद्युः ॥२१६॥  
 यमसंबन्धिदिवत्यागं रविभौत इवाकरोत् । मदेन कोकिलाः काले कृजन्ति स्म निरकुशम् ॥२१७॥  
 ५० “पुष्पमार्तवमासा न<sup>५</sup>” शाखा न सूक्ष्यते तान् । अकीन् वासं निषिद्धन्तव्यम्यकाश्वलपूलवैः ॥२१८॥  
 वसन्तश्रीविषयोगो<sup>६</sup> वा सशोकोऽशोकभूद्यः । सपुष्पपूलवो नामं सार्थं तत्परमाद् व्यधात् ॥२१९॥  
 मूलस्कन्धाग्रमध्येषु चूलादैरिव मत्सरात् । सुरभीष्णि प्रसूनानि सुरमित्य<sup>७</sup> तदा दधे ॥२२०॥

था, जिसका धरातल बड़े-बड़े नीलमणियोंसे जड़ा हुआ होनेके कारण जगमगा रहा था, जो नेत्र जातिके वस्त्रोंसे बने हुए बड़े-बड़े चन्दोवोंसे मुशोभित था, भोग उपभोगके घोग्य समस्त सुवर्णसे बना हुआ था । इस प्रकारका स्वयंवरका यह महाभवन उस देवने बड़ी प्रसश्तासे बनाया था सो ठीक ही है क्योंकि पुष्पोदयसे पुरुषोंके अभीष्ट अर्थको कौन-कौन सिद्ध नहीं करते हैं अर्थात् सभी करते हैं ॥२०८-२१३॥ लक्ष्मीके लीलागृहके समान उस स्वयंवर भवनको देखकर राजा अकम्पन सन्तोषसे अपने शारीरमें नहीं समा रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम मित्रोंसे क्या नहीं होता है ? अर्थात् सभी कुछ होता है ॥२१४॥

अथानन्तर-कामको उन्मत्त करनेवाले तथा कामी लोगों और भ्रमरोंसे क्रमशः आनन्द और मदको बढ़ानेवाले वसन्तऋतुका प्रारम्भ हुआ ॥२१५॥ हाथियोंके द्वारा जिसे हुए चन्दन-वृक्षोंके निष्पन्दरूपी सारको धारण करनेवाला तथा इलायची और लवंगके संसर्गसे कुछ-कुछ जो शाखाएँ फैल रही थीं उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो समीप आये हुए वपने सम्बन्धी मलयानिलका आलिङ्गन करनेके लिए ही भुजारूप शाखाएँ फैला रहे हों ॥२१६॥ उस समय लताओं और वृक्षोंकी सूर्यने मानो डरकर ही यम सम्बन्धी-दक्षिण दिशाका त्याग कर दिया था अर्थात् उत्तरायण हो गया था और कोयलें मदसे निरकुश होकर मधुर शब्द कर रही थीं ॥२१८॥ ‘ये हमारी शाखाएँ आतेव अर्थात् वसन्त ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले अथवा रजस्वला अवस्थामें प्रकट होनेवाले पुष्पको प्राप्त हो रही हैं-धारण कर रही हैं इसलिए इन्हें मत छुओ’ यही कहते हुए मानो चम्पाके वृक्ष अपने हिलते हुए पल्लवोंके द्वारा भ्रमरोंको बहापर निवास करनेका निषेध कर रहे थे ॥२१६॥ जो वसन्त ऋतुरूपी लक्ष्मीके विषयमें सशोक था अर्थात् शोक धारण कर रहा था ऐसा अशोकका वृक्ष उस वसन्त ऋतुके सम्बन्धसे फूल और पल्लवोंसे सहित हो अपना अशोक नाम सार्थक कर रहा था ॥२२०॥ उस समय चमेलीने आम आदि वृक्षोंके साथ इव्यर्था

१ संभूतम् । २ प्रदेशपतिकम्य । ३ शुभकर्मदिवात् । ४ हर्षण निजशरीरे न ममावित्यर्थः । नामात् ल०,  
 ५०, थ०, स०, प०, इ० । ५ वसन्तः । ‘वसन्ते पुष्पसमयः सुरभीष्णिः उष्मकः ।’ इत्यभिधानात् ।  
 ६ पदवैकल्यवान् । ७ आलिङ्गनाय । ८ करप्रसारणमित्र । ९ चक्रिरे । १० ऋतुं पुष्पोत्तिनिमित्तभूतकाल-  
 विषयं रजोत्पत्तिनिमित्तं कालविशेषं च । ११ अस्माकम् । १२ विषयोगे ल० । १३ सल्लकीतहः । “मन्त्रिनी  
 मन्त्रमध्या तु सुवहा सुरभी रसा । महेश्वरा कुन्दुरुकी सल्लकी ह्लाविनीति च” इत्यभिधानात् ।

आकृष्टदिग्गजालीनि<sup>१</sup> बुकुलानि बने बने । हामी<sup>२</sup> गुणादिकाम्यासंसुखितानि<sup>३</sup> कुलोदूगतैः<sup>४</sup> ॥२२॥  
 क्रोडनासक्कान्ताभिर्बाध्यभानाः सरीतिभिः । आन्दोलाः स्तम्भसंभूतैः समाक्षोशस्थिव<sup>५</sup> स्वनैः ॥२३॥  
 सुन्दरेष्वपि कुन्देषु मधुपा मन्दरूपयः । माघवीमधुपामेन सुवा मधुरमारुपन्<sup>६</sup> ॥२४॥  
 भवेदन्यन्त्र कामस्य रूपयितादिं साधनम् । कालैकसाधनः<sup>७</sup> सोऽस्मिन्ना<sup>८</sup> वनस्पति<sup>९</sup> जुम्मते<sup>१०</sup> ॥२५॥  
 वशिष्याधराधीशान् गत्वा<sup>११</sup> सत्कालसाधनात् । दूताः स्वयंवरालाङ् सर्वास्तान् समवोधयन् ॥२६॥  
 ततो नानानकध्वानप्रोत्कर्णीकृतदिग्दिवाः । निजाम्नानमाम्भोजपरिम्लानिविधायिनः ॥२७॥  
 १२ विद्यहृभूतिमाकम्य विमार्वगतमानकैः<sup>१३</sup> । सथो विद्याधराधीशा शोत्रमानदिग्नाननाः ॥२८॥  
 सुलोचनाभिधाकृष्टि<sup>१४</sup> विद्याकृष्टाः समापतन्<sup>१५</sup> । कामिनां न पराकृष्टि<sup>१६</sup> विद्यामुक्त्वेष्मित्वरूप्यः ॥२९॥

होनेके कारण ही मानो जड़, स्कन्ध, मध्यभाग और ऊपर-सभी जगह सुगन्धित फूल धारण किये थे ॥२२॥। जिन्होने दिग्गजोंके भ्रमरोंको भी अपनी ओर खीच लिया है और जो उच्च-कुलमें उत्पन्न हुए वड़े पुरुषोंके समान हैं ऐसे मौलश्रीके वृक्ष प्रत्येक बनमें अपनी हानि होनेपर भी गुणोंकी अधिकता ही धारण कर रहे थे । भावार्थ—जिस प्रकार कुलीन भनुष्य हानि होनेपर भी अपना गुण नहीं छोड़ते हैं उसी प्रकार मौलश्रीके वृक्ष भी भ्रमरों-द्वारा रसका पान किया जाना रूप हानिके होनेपर भी अपना सुगन्धिरूप गुण नहीं छोड़ रहे थे ॥२२॥। जो गीत गा रही हैं तथा खेलनेमें लगी हुई हैं ऐसी सुन्दर स्त्रियाँ जो झूला झूल रही थीं और उनके झूलनेसे जो उनके खम्भोंसे चूँ चूँ शब्द हो रहा था उनसे वे झूले ऐसे जान पड़ते थे मानो उन स्त्रियोंके द्वारा पीड़ित होकर ही चिल्ला रहे हों ॥२३॥। जिन्हें कुन्दके सुन्दर फूलोंपर अच्छी तृप्ति नहीं हुई है ऐसे भ्रमर माघवी ( मधुकामिनी ) लताका रस पीकर आनन्दसे मधुर शब्द कर रहे थे ॥२४॥। वसन्तको छोड़कर अन्य ऋतुओंमें अच्छा रूप होना आदि भी कामदेवके साधन हो सकते हैं परन्तु इस वसन्तऋतुमें एक समय ही जिसका साधन है ऐसा यह काम वनस्पतियों तक फैल जाता है । भावार्थ—अन्य ऋतुओंमें सौन्दर्य आदिसे भी कामकी उद्भूति हो सकती है परन्तु वसन्तऋतुमें कामकी उद्भूतिका कारण समय ही है । उस समय सौन्दर्य आदिका अभाव होनेपर भी केवल समयकी उत्तेजनासे कामकी उद्भूति देखी जाती है और उसका क्षेत्र केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं रहता किन्तु वनस्पतियों तकमें फैल जाता है ॥२५॥। उस वसन्तऋतुकी सहायतासे उन दूतोंने भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंके पास जाकर उन सबको स्वयंवरके समाचार बतलाये ॥२६॥।

तदनन्तर अनेक नगाड़ोंके शब्दोंसे दिग्गजोंके कान खड़े करनेवाले, अपनी स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोंको म्लान करनेवाले, सब दिशाओंके मुखको प्रकाशित करनेवाले और सुलोचना इस नामरूपी आकृष्णी विद्यासे आकृषित हुए अनेक विद्याधरोंके अधिपति अपने अनेक विमानों-से आकाशके विस्तारको कम करते हुए बहुत शीघ्र आ पहुँचे सोठीक ही है क्योंकि कामी लोगों-को अपनी अभीष्ट स्त्रियोंको छोड़कर और कोई उत्तम आकृष्णी विद्या नहीं है ॥२७-२९॥।

१ आकृष्टा दिग्गजगण्डवत्येलयो यैस्तानि । २ पुष्यामोदत्यागे सति । ३ गन्धगुणादिकानि । उपकारादिगुणादिकानि । ४ सदुशीकृतानि । ५ विशुद्धवंशोदभूतैः । ६ आकोशं चक्रिरे । ७ व्यवन्नित सम । ८ अन्यस्मिन् काले । ९ स्त्रीपुंसा रूपधनभूषणादि । १० काल एक एव साधनं पस्य सः । ११ वसन्तकाले । १२ वनस्पतिपर्यन्तम् । १३ वद्वर्षते । १४ वसन्तकाल । १५ आकाशविस्तृतिम् । १६ अपरिच्छन्नप्रमाणकैः । अपरिमितरित्यर्थः । —तत्तमानकैः ल०, म० । १७ सुलोचनानामैव आकर्षणविद्या तया आकृष्टा आकृषिता । १८ आगच्छमित सम । १९ आकर्षणविद्या ।

अभिगम्यै नृपः<sup>१</sup> क्षिप्रं स्वयमाविष्टतोरसवः । चेतः सूलोचनं<sup>२</sup> कैतान् प्रीतान् प्रावेशभस्तुरम् ॥२३०॥  
 स्वगेहाविषु सर्वप्रीत्या समुद्घोत्सवश्वजः ।<sup>३</sup> आकम्पनिभिराविष्टतादरैः परिवारितः ॥२३१॥  
 सांशुकर्ममिवोचन्तर्मर्ककीर्ति सहानुजम् । अकम्पनसुपीडभ्येत्य<sup>४</sup> मरतं वाऽनवशुरम् ॥२३२॥  
 स्वादरेणैव<sup>५</sup> संसिद्धि भाविनी तस्य सूचयन् । नाथवंशामणीभिंघस्वर चानेतुमभ्यवात् ॥२३३॥  
 ततो महीभूतः सब्रे त्रिसमुद्रान्तरस्थिताः । एता इव पर्यारातिं प्रापुः<sup>६</sup> इफीतीकृतधिदः ॥२३४॥  
 स्वयमध्यपथे गच्छ केषांचित् सर्वं संपदा । केषांचिद् गमयित्वाऽन्वान् माम्यान् हेमाङ्गदिकान् ॥२३५॥  
 ये ये यथा यथा प्राप्ताः पुरीस्तां स्तांस्तथा तथा । आहृत्यन्तीं पताकामिष्ठोच्छुलाभिरकीविशस्<sup>७</sup> ॥२३६॥  
 तदा तं राजगेहस्थं नरविष्टाभराधिष्ठैः । बृत्तं सुलोचनाऽकार्पोत् पितरं जितचक्रिणम् ॥२३७॥  
 वाराणसी जिताश्रेष्ठा<sup>८</sup> स्वनाश्रसां<sup>९</sup> निराकरेत् । कन्यारत्नान् परं<sup>१०</sup> नाभ्यदिव्यवाहुः प्रभृत्यतः २३८  
 तान् स्वयंवरशालायामर्ककीर्तिपुरस्तरान् । निवेद्य प्रीणयामास कृताभ्यागतसक्षियः ॥२३९॥

अनेक उत्सवोंको प्रकट करनेवाले राजा अकम्पनने स्वर्य ही बहुत शीघ्र उन राजाओंकी अगवानी की और प्रसन्न हुए उन राजाओंको सुलोचनाके चित्रके समान वाराणसी नगरीमें प्रवेश कराया ॥२३०॥ जिसने बड़े प्रेमसे अपने वर आदिभिं उत्सवकी ध्वजाएं बैधायी हैं और आदरको प्रकट करनेवाले हेमांगद आदि पुत्र जिसके साथ हैं ऐसे राजा अकम्पनने किरणों सहित उदय होते हुए सूर्यके समान अपने छोटे भाइयों सहित आये हुए अर्ककीलिकी अगवानी कर उसे महाराज भरतके समान नगरमें प्रवेश कराया ॥२३१-२३२॥ इसी प्रकार अपने आदरसे ही मानो उसकी आगे होनेवाली सिद्धिको सूचित करता हुआ नाथवंशका अग्रणी राजा अकम्पन जयकुमारको लेनेके लिए उसके सामने गया ॥२३३॥ तदनन्तर जिस प्रकार पूर समुद्रकी ओर जाता है उसी प्रकार तीनों ( पूर्व, पश्चिम, दक्षिण ) समुद्रोंके बीचके रहनेवाले सब राजा लोग अपनी अपनी शोभा बढ़ाते हुए वाराणसी आ पहुँचे ॥२३४॥ राजा अकम्पन कितने ही राजाओंके सामने तो अपनी सब विभूतिके साथ स्वयं आधी दूर तक गया था और कितनों ही के सामने उसने मान्य हेमांगद आदिको भेजा था ॥२३५॥ जो राजा जिस-जिस प्रकारसे आ रहे थे उन्हें उसी-उसी प्रकारसे उसने, अपनी कहराती हुई पताकाओंसे जो मानो बुला ही रही हों ऐसी बनारस नगरीमें प्रवेश कराया था ॥२३६॥ उस समय सुलोचनाने राजमहलमें विराजभान तथा भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंसे घिरे हुए अपने पिताको चक्रवर्तीको भी जीतनेवाला बना दिया था । भावार्थ-महलमें इकट्ठे हुए अनेक राजाओंसे राजा अकम्पन चक्रवर्तीके समान जान पड़ता था ॥२३७॥ उस समय अयोध्याको भी जीतनेवाली वाराणसी नगरी अपने नामसे ही उसका तिरस्कार कर रही थी । क्योंकि उस स्वयंवरके समयसे ही लेकर इस संसारमें कन्यारत्नके सिवाय और कोई उत्तम रत्न नहीं है, यह बात प्रसिद्ध हुई है । भावार्थ-कदाचित् कोई कहे कि चक्रवर्तीकी राजधानी होनेसे चौदहरत्न अयोध्यामें ही रहते हैं इसलिए वही उत्कृष्ट नगरी हो सकती है न कि वाराणसी भी; तो इसका उत्तर यह है कि संसारमें सर्वोत्कृष्ट रत्न कन्यारत्न है जो कि उस समय वाराणसीमें ही रह रहा था अतः उत्कृष्ट रत्नका निवास होनेसे वाराणसीने अयोध्याका तिरस्कार कर दिया था ॥२३८॥ अतिथियोंका सत्कार

१ अभिमुखं गत्वा । २ अकम्पनः । ३ सुलोचनाचित्तमिति । ४ अकम्पनस्यापत्येः । ५ अभिमुखं गत्वा ।  
 ६ भरतसिव । ७ अकम्पनस्यादरेण । ८ वृष्णीकृत । ९ प्रावेशयत् । १० अयोध्याभिष्ठानात् । ११ अयोध्योक्तिम् ।  
 अयदा मोदुमदाक्षया अयोध्या एतलक्षणं तदा तस्या अयोध्यादा नास्तीति भावः । १२ उत्कृष्टम् ।

पुरोपार्जितसद्मनि सर्वमेतत्सतः<sup>१</sup> पुरा<sup>२</sup> । धर्म एव समभ्यच्च इति संचित्य विद्वरः<sup>३</sup> ॥ २४० ॥  
 कृत्वा जिनेन्द्रवरीं पूजा दीनानाथवनीषकान्<sup>४</sup> । अनर्थिनः<sup>५</sup> समध्यांशु<sup>६</sup> सर्वत्यागोत्सवोदयतः ॥ २४१ ॥  
 तां लक्ष्मीमक्षयां मत्वा सफलां व्याप्तसद्ब्यव्याम । स तदाभ्युत्त सत्तेरेकमोन्यः<sup>७</sup> शिलिरित्वस्थनः ॥ २४२ ॥  
 एवं विहितसत्पूजः<sup>८</sup> प्रकृतार्थ<sup>९</sup> प्रचक्रमे । प्रारम्भाः सिद्धिभाषान्ति पूज्यपूजापुरस्तराः<sup>१०</sup> ॥ २४३ ॥  
 आस्फालिता तदा भेरी विवाहोत्सवशंसिनी । व्याप्तोदै<sup>११</sup> प्रमोदः प्राक् वेतः पञ्चात् कण्ठे पु तद्व्यनिः ॥  
 पुष्पोपहारिभूमागानुथत्केतुनमस्तला । निर्जितार्थिमहात्मूर्ख्यानाप्नातदिगम्भरा ॥ २४४ ॥  
 विशोधितमहावीथिदेशा प्रोद्वद्वसीरणा । उनर्वसुधाक्षोदधवर्णीकृत्यसीथिका<sup>१२</sup> ॥ २४५ ॥  
 रजिताअनसन्नेशा मालाभारिशिरोरुहा । संस्कृतभ्रुतीयेता सविशेषललाटिका<sup>१३</sup> ॥ २४६ ॥  
<sup>१४</sup> मणिकुण्डलमारेण ग्रलस्वश्ववणोऽजप्तला । सचिवकरविष्यस्तपत्रचित्रकणोलिका<sup>१५</sup> ॥ २४७ ॥  
 ताम्बूलरससंसराद् द्विगुणारुणिताधरा । मुक्तभस्त्रभासारमालिकम्भुरुक्षिटिका<sup>१६</sup> ॥ २४८ ॥  
 सचन्दनसस्कारहारवक्षःकुचाङ्गिला<sup>१७</sup> । <sup>१८</sup> महामणिमयूखालिभास्वद्भुजेलतात्ता ॥ २४९ ॥

करनेवाले राजा अकम्पनने उन अर्कोकीति आदि राजाओंको स्वर्यवरकालामें ठहराकर प्रसन्न किया था ॥ २३९ ॥ यह सब पहले उपार्जन किये हुए सभीचीन धर्मसे ही होता है इसलिए सबसे पहले वर्षमें ही पूजा करनेके योग्य है ऐसा विचार करे विद्वानोंमें श्रेष्ठ राजा अकम्पन श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर तथा दीन, अनाथ और याचकोंको अयाचक बनाकर सबका त्याग करनेरूप उत्सवके लिए शीघ्र ही तैयार हो गया । वह अच्छे कामोंमें खर्च की हुई लक्ष्मीको ज्यारहित और सफल मानने लगा तथा जिस प्रकार उसकी पृथिवी उसके उपभोग करनेके योग्य थी उसी प्रकार उस समय वह समस्त पृथिवीके उपभोग करने योग्य हो गया था । भावार्थ—पृथिवीके सब लोग उसके राज्यका उपभोग करने लगे थे ॥ २४०—२४२ ॥ इस प्रकार उसने जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर अपना प्रकृत कार्य प्रारम्भ किया सो ठीक ही है क्योंकि पूज्य पुरुषोंकी पूजापूर्वक किये हुए कार्य अवश्य ही सफलताको प्राप्त होते हैं ॥ २४३ ॥ उसी समय विवाहके उत्सवको सूचित करनेवाली भेरी बज उठी सो पहले सबके चित्तमें आनन्द छा गया और पीछे भेरीकी आवाज कानोंमें व्याप्त हुई ॥ २४४ ॥ उस समय वहाँ पृथिवीपर जहाँ-तहाँ फूलोंके उपहार पड़े हुए थे, आकाशमें पताकाएँ नृत्य कर रही थीं, समुद्रकी गर्जनाको जीतनेवाले बड़े-बड़े नगाड़ोंसे दिशाएँ शब्दायमान हो रही थीं, वहाँकी बड़ी-बड़ी गलियाँ शुद्ध की गयी थीं, उनमें तोरण बाँधे गये थे और बड़े-बड़े महल नये चूनाके चूणसे पुनः सफेद किये गये थे ॥ २४५—२४६ ॥ वहाँकी स्त्रियोंके उत्तम नेत्र कज्जलसे रंगे हुए थे, शिरके केश मालाओंको धारण कर रहे थे, भीहरुपी लताएँ संस्कार की हुई थीं, उनके ललाटपर सुन्दर तिलक लगा हुआ था, उज्ज्वल कर्ण मणियोंके बने हुए कुण्डलोंके भारसे कुछ-कुछ नीचेकी ओर झुक रहे थे, कपोलोंपर हाथसे बनायी हुई पञ्चरचनाके चित्र बने हुए थे, पानके रसके सम्बन्धसे उनके ओठोंकी लाली दूनी हो गयी थी, उनके कण्ठ मोतियोंके आभूषणोंकी कान्तिके भारसे बहुत ही सुशोभित हो रहे थे, उनका वक्षःस्थल चन्दनका लेप, बड़ा हार और स्तनोंसे शोभायमान हो रहा था, उनकी भुजा-रुपी लताएँ बड़े-बड़े मणियोंकी किरणोंसे देदीप्यमान हो रही थीं, उनका विशाल नितम्बस्थल

<sup>१</sup> सतः कारणात् । <sup>२</sup> पूर्वम् । <sup>३</sup> विद्वां वरः । <sup>४</sup> याचकान् । <sup>५</sup> अनिच्छन् । <sup>६</sup> प्रकाश्य । <sup>७</sup> सर्वजनस्य । <sup>८</sup> चूत-जिनपूजः । <sup>९</sup> प्रकृतकार्यम् । <sup>१०</sup> पूज्यानां पूजा पुरस्तरा येषु ते । <sup>११</sup> प्रसरति स्म । <sup>१२</sup> नूतनसुधालेपवर्णी-हस्म्यां । <sup>१३</sup> तिलकसहितभालस्थला । <sup>१४</sup> रत्नकण्ठेष्टन । <sup>१५</sup> प्रशस्तचित्रिकाजनचित्रितमकरिकापत्रादि-चनावद्गण्डमण्डला । <sup>१६</sup> मनोङ्गीवा । <sup>१७</sup> प्रशस्तश्रीशण्डकदीमकलितवक्षसास्फुरणहाराम्बितकुचाम्यां । <sup>१८</sup> मयूखाभा 'त०' पुस्तकं विहाय सर्वम् ।

रशना उद्गुचिभा जिसुविशालकरीतटी । मणिन् पुरनिवैषमर्तिवताऽग्रकमाद्विका ॥ २५१ ॥  
 जितापरयुरीदोभा सौन्दर्यवृत्ति सा पुरी लहा । प्रसाधनमर्ये काथम् चित्तचित्तद्यवैभवम् ॥ २५२ ॥  
 उत्सवो राजगेहस्य नगरेणैव वर्णितः । अगाधो यदि पर्यन्तो मध्यमध्ये किसुच्यते ॥ २५३ ॥  
 न चित्रे तत्रै मचिर्ताै सोत्सवोऽन्तर्बहिद्वत् तन् । तद्वरस्वभूधथा यस्मात् कुड्याएषि विचेतनम् ॥ २५४ ॥  
 भोक्तुशून्यं न भोगाङ्गं न भोक्ता भोगवजितः । तत्र सज्जिहतोऽमङ्गो लक्ष्मीश्चाविष्कृतोदया ॥ २५५ ॥  
 पश्य पुण्यस्य माहात्म्यमिहार्पीति॑ लदुस्वदम्॒ । विलोक्य कृतधर्माणः॑ पुरस्थान् वहु मेनिरे ॥ २५६ ॥  
 १२ उद्सुन्दवन् फलं मत्वा धर्मस्य मुनयोऽपि लक् । धर्माधर्मफलाल्लोकात् स्वभावः स हि तात्पाम् ॥ २५७ ॥  
 कन्यागृहाचदा कन्यामन्या आ क्षमलालयाम्॒॑ । पुरोभूष्य॒॑ पुरम्भयस्तामीषहरुजाससाध्वसाम्॒॑ ॥  
 विवाहविधिवेदित्यः कृततत्कालसक्रियाम् । समानीय सदैवज्ञो॒॑ महात्म्यवाम्बिताम् ॥ २५८ ॥  
 सर्वमङ्गलसंपूर्णे मुक्तालम्ब॒॑ षभूषिते । चनुःकाशनसुस्तम्भे भूरिरत्नसुकुरत्विषि ॥ २५९ ॥  
 प्रमोदात् सुप्रभादेशाद्॒॑ विवाहोत्सवमण्डपे । कलधौतमये पट्टे॒॑ निवेद्य प्राकृत्युर्खी सुखम् ॥ २६० ॥

करधनीरूपी रज्जुसे सुशोभित हो रहा था, और उनके चरणकमल मणिमयी तृपुरोंकी ज्ञनकारसे कमलोंका तिरस्कार कर रहे थे ॥२४७-२५१॥ इस प्रकार अपनी सुन्दरतासे स्वर्गानुरोदी की ज्ञनकारसे शोभाको जीतनेवाली वह नगरी उस समय अज्ञित्य बैभवशाली अलंकारमय शरीरको धारण कर रही थी ॥२५२॥ राजमहलका उत्सव तो नगर ही कह रहा था क्योंकि समुद्रके किनारेका भाग ही उसका अस्थान है नह उसके बीचका इस पूछल है ? भावार्थ—जब नगरमें ही भारी उत्सव हो रहा था तब राजमहलके उत्सवका क्या पूछना था ? ॥२५३॥ वहके सचेतन प्राणी अन्तरंग और बहिरंग सब जगह उत्सव मना रहे थे इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि वहाँकी दीवालें आदि अचेतन पदार्थ भी तो अपने अलंकारों-द्वारा सचेतन प्राणियोंके समान हो उत्सव मना रहे थे । भावार्थ—दीवालें आदि अचेतन पदार्थ भी अलंकारोंसे सुशोभित किये गये थे जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो उल्लाससे अलंकार धारण कर स्वयं ही उत्सव मना रहे हों ॥२५४॥ वहौपर भोगोपभोगका कोई भी पदार्थ भोक्तासे रहित नहीं था और न कोई भोक्ता भी भोगोपभोगके पदार्थसे रहित था, वहौपर कामदेव सदा समीप ही रहता था और लक्ष्मी उदयरूप रहती थी ॥२५५॥ इस जन्ममें ही पुण्यका माहात्म्य देखो ऐसा सोचते हुए कितने ही धर्मात्मा लोग वहाँका उत्सव देखकर उस नगरके रहनेवाले लोगोंको बड़े आदरकी दृष्टिसे देख रहे थे ॥२५६॥ मुनि लोग भी उसे धर्मका फल मानकर प्रसन्न हुए थे सो ठीक है क्योंकि धर्मका फल देखकर प्रसन्न होना धर्मात्मा लोगोंका स्वभाव है और अधर्मका फल देखकर प्रसन्न होना अधर्मात्मा लोगोंका स्वभाव है ॥२५७॥ उसी समय विवाहकी विधिको जाननेवाली सौभाग्यवती स्त्रियों, जिसने तात्कालिक सत्क्रियाएँ की हैं, जो लज्जासे कुछ भयभीत हो रही हैं, जिसके आगे बड़े-बड़े नगाढ़ोंके शब्द हो रहे हैं, ज्योतिष शास्त्रको जाननेवाले अनेक विद्वान् जिसके साथ हैं और जो दूसरी लक्ष्मीके समान जान पड़ती है ऐसी उस कन्याको उसके सामने आकर उसके घरसे सब प्रकारके मंगल द्रव्योंसे भरे हुए, मोतियोंके आभूषणोंसे सुशोभित, सुवर्णके बने हुए चार उत्तम खम्भोंसे घुक्त और अनेक रत्नोंकी कान्तिसे जगमगाते हुए

१ अलंकारस्वरूपम् । २ विभृति सम् । ३-मठ्ठो ल० । ४ पुर्यामि । ५ चेतनवान् । ६ उत्सववत् । ७ यस्मात् कारणात् । ८ लक्चन्दनादि । ९ नगरे । १० अस्मिन् जस्मन्यषि । कि पुनरुत्तरजन्मनीत्यषि शब्दार्थः । ११ तत्पुरोत्सवम् । १२ कृतपृष्ठाः । १३ उत्सवं प्राप्ताः । उदास्तवत् ल० । १४ लक्ष्मोम् । १५ पुरस्कृतय । १६ कुटूम्बिवन्यः । 'स्वातु कुटूम्बिनी पुरन्धी' इत्यभिधानात् । पुरे पोष्यवहुजनसमूहं घृतं इति पुरन्धी । पुत्रादि-योष्यवर्गशालिख्याः स्त्रिया नाम । १७ लज्जया स्वीकृत । १८ ज्योतिष्कसहिताः । १९ माला । २० सुप्रभासहा-देवीनिरूपणात् । २१ फलके ।

कलशीमुखविन्यस्तविलसपलबाहरैः । अभिविष्य विशुद्धाम्बुपरौः स्वर्णमयैः शर्मैः ॥२५२॥  
 कृतमङ्गलनेपथ्यां नीरवा नित्यमनोहरम् । पूजाविष्वाऽहंतो भक्त्या सर्वकल्याणकारिणः ॥२५३॥  
 सिंशशेषां<sup>३</sup> समादाय क्षिप्त्वा शिरसि साशिषम् । स्थिताः प्रतीक्ष्य<sup>४</sup> सलूङ्गं तत्रात्मव्याहितादरम् ॥२५४॥  
 हतो महंशसम्वेशान्<sup>५</sup> नरसेवनायकाः । शास्ते ग्रसाधितान्<sup>६</sup> कृत्वा ग्रसाधनविदस्तदा ॥२५५॥  
 निजोचितासनारुद्धाः प्रसूदं श्रीसमुज्जवलाः । चक्रवामरसंपर्या कान्त्या चामरसज्जिभाः ॥२५६॥  
 कुमार्या निजितः कामः प्राक् स्वमेव<sup>७</sup> चिकृत्य<sup>८</sup> किम् । समांस्त<sup>९</sup> पुनर्जेतुभिति<sup>१०</sup> शङ्काविधायिनः ॥११॥  
 कंचिदेकं<sup>११</sup> शूणीतेऽसाविति<sup>१२</sup> शाखाऽप्यहयवः । जेतु सर्वेऽपि तां तस्युः<sup>१३</sup> आशा हि महती नृषाम् ॥  
 १४ केरलीकठिनोऽङ्गकुचकोटिविलकृत् । श्रमापानीतसामर्थ्यात् परिक्षीणपरिक्षमन् ॥२५९॥  
 माशन्मलयमात्रकटकण्ठविनोदनात्<sup>१५</sup> । कृतचन्द्रनिष्ठनदसाम्ब्र<sup>१६</sup> सौगम्यवत्पुरम् ॥२६०॥  
 कावेरीवारिजास्वादप्रहृष्टापद्मजनिमंर- । श्रीदोष्कलजलस्थूलकण्मुक्तिभूषणम् ॥२६१॥  
 दक्षिणानिलभाष्टु<sup>१७</sup> कोरक्षानलवीपनम् । कोकिलाकिळालायैर्वाचालमनुकूलयन् ॥२६२॥

विवाहोत्सव मण्डपमें बड़े हृषके साथ महारानी सुप्रभाकी आशासे आर्मी और पूर्व दिशाकी ओर  
 मुख कर सुखपूर्वक सोनेके पाटपर बिठा दिया । तदनन्तर मुखपर रखे हुए शोभायमान पल्लवोंको  
 धारण करनेवाले सथा विशुद्ध जलसे भरे हुए सुवर्णमय शुभ कलशोंसे उसका अभिषेक किया ।  
 फिर मांगलिक वस्त्रामृष्णोंको धारण करनेवाली कन्याको नित्यमनोहर नामक चैत्यालयमें ले  
 जाकर वहाँ लग्जले लग्जका कलश<sup>१८</sup> करनेवाले श्री अर्जन्तदेवकी पूजा करायी । उसके बाद  
 सिद्ध शेषाकाल लेकर आशीर्वादपूर्वक उसके शिरपर रखे और इतना सब कर चुकनेके बाद वे  
 स्त्रियाँ उसका आदर-सत्कार करती हुई शुभ लग्जकी प्रतीक्षामें उसे घेरकर वहीं ठहर  
 गयीं ॥२५८-२६४॥ इधर महाराज अकम्पनके सन्देशसे, सजावटको जाननेवाले वे सब  
 भूमिगोचरी और विद्याधरोंके अधिष्ठित अपने-आपको सजाकर अपने-अपने योग्य आसनों-  
 पर जा बैठे । वे प्रकृष्ट शोभासे उज्ज्वल थे, हृलते हुए चमरोंकी सम्पत्ति और कान्तिसे देवोंके  
 समान जान पड़ते थे और ऐसी शंका उत्पन्न कर रहे थे मानो इस कुमारीने पहले ही कामदेवको  
 जीत लिया था इसलिए वह कामदेव ही अपने बहुत-से रूप धारण कर उसे जीतनेके लिए पुनः  
 आया हो ॥२६५-२६७॥ यह सुलोचना किसी एकको ही स्वीकार करेगी, ऐसा जानकर  
 भी वे सब राजा लोग अहंकार करते हुए उसे जीतनेके लिए वहाँ बैठे थे सो ठीक ही है क्योंकि  
 मनुष्योंकी आशा बहुत ही बड़ी होती है ॥२६८॥ जो स्त्रियोंके मद्यके कुरलों तथा नूपुरोंकी  
 सूनकारसे मुशोभित बायें पेरोंके द्वारा वृक्षोंको भी कामी बना रहा है, जो बायें हाथमें फूलोंका  
 धनुष धारण कर दूसरे हाथसे आमकी मंजरीको खूब फिरा रहा है, जिसका पराक्रम प्रसिद्ध  
 है और जिसने बसन्त ऋद्धुरुपी सेवकके द्वारा फूलरुपी समस्त शस्त्र बुला लिये हैं, ऐसा कामदेव,  
 केरल देशकी स्त्रियोंके कठिन और ऊँचे करोड़ों कुचोंको उल्लंघन करनेसे उत्पन्न हुई थकावटके  
 कारण जिसकी घूमनेकी शक्ति क्षीण हो गयी है अर्थात् जो धीरे-धीरे खल रहा है, मलय पर्वतके

१ शुभैः अ०, प०, स०, म०, ल०, इ० । २ नित्यमनोहरनाम चैत्यालयम् । ३ -शोर्ण ल० । ४ प्रतीक्षा  
 इत्या । ५ चैत्यालये । ६ कृतादर्द यथा भक्ति तथा । ७ अकम्पनवाचिकात् । ८ अलङ्कृतान् । ९ प्रसिद्ध ।  
 १० आत्मानम् । ११ राजकुमारस्त्रेण वैकुञ्जाणं कृत्वा । १२ सङ्गतवान् । १३ सुलोचनां जेतुम् । १४ प्रेषकाणां  
 शङ्कां कुबण्डाः । १५ अनिदिष्टं कंचिदेकं पुष्पम् । १६ स्वीकरोति । १७ अहंकारवन्तः । 'अहंकारवानहंयुः'  
 इत्यभिधानात् । १८ निजोचितासनारुद्धाः सन्तस्तस्युरिति सम्बन्धः । १९ केरलस्त्री । २० श्रमापानीतसामर्थ्य ।  
 २१ लङ्घनाञ्जातश्मेणाप्सारितसामर्थ्येन परिक्षीणगमनम् । २२ मलयाचलोत्पलकरिकपेलकण्ठ्यापनयनात् ।  
 २३ द्वब्रप्रस्तुवण । २४ विरहतीद्विनिसमुत्पादनम् ।

योषिता मधूगण्डौ पैन् पुरारावरभिसैः । कुवं॒ वामाक्षिनि॒ इच्छालमह॑ श्रिपानपि॑ कामुकान् ॥२७१॥  
 कौसुमं॑ धुमुरादाय॑ वासेना॒ रुद्धिक्रिमः । चृत्सून॑ करेणोऽसैः परेण॑ परिवर्तयन्॑ ॥२७२॥  
 ३ वसमत्तुं चरनीतनि॑ शेषकुसुमायुधः । जित्वा तदाखिलान् देशानप्यायात् कुसुमायुधः ॥२७३॥  
 तदा पुरात् समागम्य कृती जितपुरन्दरः । समाक्षिर्भूतसाम्राज्यो राज्यचिह्नपुरस्सरः ॥२७४॥  
 रवलद्वीप्यासूसर्वादाः सुप्रभासहितः पक्षिः॑ । स्वरथात्॑ स्वर्यंवरशारे श्वोचित॒॑ हवजनैर्बृतः ॥२७५॥  
 चिर्ण॒॑ महेन्द्रदत्तालयो देवदत्त॒॑ रथं पृथुम् । सज्जीकृतं समारोप्य कन्यामायातु कम्बुकी ॥२७६॥  
 समस्तबद्धसन्दोहं सन्यक् सक्षात्॑ सामुजः । हेमाङ्गदो जितानङ्गः प्रीत्याऽयात् परितो रथम् ॥२७७॥  
 तूर्यवान् अहलिप्रेत्ता॒॑ दिक्ष्याकर्णपृथिका । संचक्षण्डत्रिनिश्चिद्रुष्टायाच्छादितभास्करा ॥२७८॥  
 लक्ष्मीः पुरीमिवायोध्या॑ चक्रिदिग्विजयागमे । शाल॒॑ प्रचिदय राजम्बलोचनार्था॑ सुलोचना ॥२७९॥  
 सर्वतोभद्रमारुण्य कम्बुकीप्रेरिता नृपान् । ५ न्यविज्ञात्तोचनैऽलैनैऽलैत्पलदलैरिति ॥२८०॥  
 चातका॑ वाऽनन्दृष्ट्या॑ ते तदृष्ट्या॑ तुष्टिभागमन् । आङ्गादः कस्य चान् स्थादीपित्तार्थसमागमे ॥२८१॥

मदोन्मत्त हाथियोंके गण्डस्थलोंकी खाज खुजलानेसे दूटे हुए चन्दन वृक्षोंके निष्ठ्यन्दकी बती सुगन्धिसे जो व्याप्त हो रहा है, कावेरी नदीके कमलोंके आस्वादसे हर्षित हुए पक्षियोंकी अल्हुड़ प्रेतिजूसे उछलती दृढ़े खंडकी दृढ़े अङ्ग दूरे ही जिसके मोतियोंके आभूषण हैं, जो विरहरुपी तीव्र अग्निको प्रज्वलित करनेवाला है और कोयल तथा अमरोंके मनोहर शब्दोंसे जो वाचालित हो रहा है ऐसे दक्षिणके वायुको अनुकूल करता हुआ सब देशोंको जीतकर उस समय वहाँ आ पहुँचा था ॥२७२—२७५॥ उसी समय, जिसने अपनी शोभासे इन्द्रको भी जीत लिया है, जिसका साम्राज्य प्रकट है, वहजा आदि राज्यके चिह्न जिसके आगे-आगे चल रहे हैं, अपनी शोभासे जिसने समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली हैं, सुप्रभा रानी जिसके साथ है, और जो अपने कुटुम्बीजनोंसे विरा हुआ अर्थात् परिवारके लोग जिसके साथ-साथ चल रहे हैं ऐसा पुण्यवान् राजा अकम्पन नगरसे आकार स्वर्यवर मण्डपमें अपने योग्य स्थानपर आ विराजमान हुआ ॥२७६—२७७॥ उसी समय महेन्द्रदत्त नामका कञ्चुकी चित्रांगददेवके द्वारा दिये हुए, आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले बहुत बड़े अलंकृत रथपर कन्याको बैठाकर लाया ॥२७८॥ कामको जीतनेवाला हेमांगद अपने छोटे भाइयोंसहित, समस्त सेनाके समूहको अच्छी तरह सजाकर बड़े प्रेमसे कन्याके रथके चारों ओर बल रहा था ॥२७९॥ जिसके आगे-आगे बजनेवाले नगाढ़ीके शब्दोंके आघातसे दिशाल्पी कन्याओंके कर्णपूर हिल रहे थे, जिसपर अच्छी तरह लगे हुए छत्रकी छिद्ररहित छायासे सूर्य भी ढैंक गया था, और जो राजाओंके नेत्रोंसे पूजी जा रही थी अर्थात् समस्त राजा लोग जिसे अपने नेत्रोंसे देख रहे थे ऐसी सुलोचनाने, चक्रवर्ती-के दिग्विजयसे लौटनेपर जिस प्रकार लक्ष्मी अयोध्यामें प्रवेश करती है उसी प्रकार स्वर्यवर-शालामें प्रवेश किया और वहाँ वह सर्वतोभद्र नामक महलपर चढ़कर कञ्चुकीके द्वारा प्रेरित हो नीलकमलके दलके समान अपने चंचल नेत्रोंके द्वारा राजाओंको सीचने लगी ॥२८०—२८२॥ जिस प्रकार चातक पक्षी मेषोंके बरसनेसे सन्तुष्ट होते हैं उसी प्रकार सब राजा लोग सुलोचनाके देखनेसे ही सन्तुष्ट हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि अपने अभीष्ट पदार्थके समागम

१ अत्यर्थम् । २ कुमुमनिमित्तम् । ३ वासहस्तेन । ४ माकांदप्रसूनम् । ५ दक्षिणकरेण । ६ परिभ्रमयन् ।  
 ७ वसमत्त एवानुचरी भृत्यस्तेन समानीत । ८ आजगाम । ९ अवस्थनः । १० सुखेन स्थितवतः । ११ निजो-  
 चितस्थाने । १२ आश्चर्ययुक्तम् । १३ विचित्राङ्गददेवेन वितीर्यम् । १४ सशब्दं कृत्वा । १५ चलत् ।  
 १६ स्वर्यवरशालाम् । १७ सिंचनति त्वम् । अयोजयदित्यर्थः । १८ इव । १९ नृपाः ।

स्वसौभाग्यवशात् सर्वान् साऽप्यालोबयामुषस्त्राम् । इलाघ्यं तदोषितां पुंसा शौर्यं च । निजितद्विषाम् ॥  
ततः कम्बुकिनिर्देशाद् वाला लीलाविलोकिते ॥ ५ अवकृष्ट हृदयं तेषां तत्त्वाद्याद् सुप्रवान्तरतः ॥ २४५ ॥  
अस्य च अ गता स्याद्दक्ष सा तत्रैवेत कीलिता ॥ ६ तत्त्वस्यामवरुद्धायोग्यिका चा तदनीक्षकाः ॥ २४६ ॥  
किञ्चिणीकृतज्ञानकारारावरम्यं रथं ततः । अदृढं रुद्धं हृष्टं । स्वर्णकर्णचामरशोभिभिः ॥ २४७ ॥  
उत्पत्तिपतलकेतुवाहुं नीरुपरुपिण्याम् ॥ ७ साक्षादपक्षवाहाने ॥ कुर्वन्तमिव सन्ततम् ॥ २४८ ॥  
पुनरध्यास्य ॥ हृजन्मषिधेष्वै हृदयप्रिया । मुख्याभूषाप्रमामध्ये शारदीव तदिहलता ॥ २४९ ॥  
वीज्यमाना विधुस्पर्दिहंसासामलचामरैः ॥ ८ जनानो इष्टिदोषान् चा धूमविद्युतो सुहुः ॥ २५० ॥  
अथधूतः ॥ पुरानङ्गः सम्प्रति स्वीकृतोऽनथा । प्रयोजनवशात् प्राज्ञः प्राप्तोऽपि ॥ परिगृह्णते ॥ २५१ ॥  
अस्याद्यह इवानङ्गः सथः सर्वाङ्गसङ्गतः । विकारमकरोद् स्वैरं भूयो भूनेश्वरक्षतम् ॥ २५२ ॥  
साहोऽस्येतयाऽर्थ्येवमेकीमात्रं प्रजामि किम् । हृत्यनङ्गोऽप्यनङ्गत्वं रुद्धं मन्ये ॥ साध्याद्युप्यत ॥ २५३ ॥  
लक्ष्मीः सा सर्वमोऽप्याऽभूद् रतिर्थंक्रेन ॥ भुज्यते । जितानङ्गानिमानेषा न्यक्षुत्य ॥ २५४ ॥

होनेपर किसे आनन्द नहीं होता है ? ॥ २४५ ॥ वह सुलोचना भी अपने सीभाग्यके वशसे आये हुए समस्त राजाओंको देखकर अत्यन्त संतुष्ट हुई थी सो ठीक ही है क्योंकि जिस प्रकार शत्रुओंको जीतनेवाले पुरुषोंका शूरवीरपना प्रशंसनीय होता है उसी प्रकार स्त्रियोंका सीभाग्य भी प्रशंसनीय होता है ॥ २४६ ॥ तदनन्तर वह सुलोचना लीलापूर्वक अवलोकनके द्वारा उन राजाओंका हृदय अपनी ओर आकर्षित कर कंचुकीके कहनेसे उस महलसे नीचे उतरी ॥ २४७ ॥ जिसकी दृष्टि उसके शरीरपर जहाँ पड़ गयी थी वह मानो वहीं कीलित सी हो गयी थी तथा उसके नीचे उत्तर आनेपर वे राजा लोग उसे न देखकर बहुत ही लेदखिल हुए थे ॥ २४८ ॥ तदनन्तर, जो कामदेवकी विद्याके समान सबके हृदयको प्रिय है, जो मीतियोंके आभूषणोंकी कान्तिके बीचमें शरदऋतुकी बिजलीकी लताके समान जान पड़ती है और जिसपर मानो भनुष्योंकी दृष्टिके दोषोंको दूरसे ही दूर करते हुए, तथा चन्द्रमाके साथ स्पर्धा करनेवाले और हंसोंके पंखोंके समान निर्मल चमर बार-बार हुराये जा रहे हैं ऐसी वह सुलोचना, जो छोटी-छोटी धृष्टियोंके रुणझुण शब्दोंसे रमणीय है, कानोंके समीप लगे हुए सोनेके चमरोंसे शोभायमान बड़े-ऊंचे घोड़े जिसमें जुते हुए हैं, नीचे-ऊपरको उड़ती हुई ध्वजाएं ही जिसकी भुजाएं हैं और जो उन उड़ती हुई ध्वजाओंसे ऐसा जान पड़ता है मानो कुरुप मनुष्यका साक्षात् निरन्तर निराकरण ही कर रहा हो और सुरुप (सुन्दर) मनुष्योंको साक्षात् बुला रहा ही हो ऐसे रथपर सवार हुई ॥ २४७-२५० ॥ सुलोचनाने कामदेवका पहले तो तिरस्कार किया था परन्तु अब उसे स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष हृटाये हुएको भी अपने प्रयोजनके बश फिर स्वीकार कर लेते हैं ॥ २५१ ॥ पिशाचके समान शीघ्र ही इसके सब अंगोंमें प्रविष्ट हुआ कामदेव अपनी इच्छानुसार बार-बार भीह नेत्र और मुखमें उत्पन्न होनेवाले विकारोंको प्रकट कर रहा था ॥ २५२ ॥ यदि मैं शरीरसहित होता तो क्या इस तरह इस सुलोचनांके साथ एकीभावको प्राप्त हो सकता ? अथवा इसके शरीरमें प्रवेश कर पाता ? ऐसा विचार करता हुआ कामदेव मानो अपने शरीररहितपनेको ही अच्छा समझता था ॥ २५३ ॥ वह

१ अवलोकनः । २ अवतरति स्म । ३ यस्मिन्नव्यवे । ४ ते तस्या-ऽ । ५ तत् कारणात् । ६ अवतरणं कुर्वन्त्यां सत्याम् । ७ तां कन्यकामीदमाणाः न वभूवुरित्यर्थः । ८ धूतम् । ९ प्रसिद्धेः । १० रूपहीनानां रूपवतां च । ११ क्रमेण निराकरणं चाह्वानं च । १२ एवंविर्थं रथमष्यास्येति सम्बन्धः । १३ कामविद्या । १४ मरालपक्ष । १५ निराकृतः । १६ प्रसिद्धिपतः । १७ शिष्टमिति । १८ अनङ्गेन विकलाङ्गेनेति इति । १९ निराकृत्य । २० विजयं जयकृमारं च ।

१ लक्ष्मीवान् स्थाच वा वारिधेभुवः ॥ २ अस्याः कस्यहो यस्य तस्य लक्ष्मीः करे स्थिता ॥ २५५॥  
 ३ लावण्यमम्बुधौ पुंसुैः स्त्रीवस्त्र्यमेव संभृतम् ॥ ४ यत्राप्ताः सरितः 'सर्वास्तमेता सर्वपार्थिवाः ॥ २५६॥  
 ५ समस्तमेत्रसंपीतमाप्यस्या वर्धतेतराम् । लावण्यमम्बुधिस्यकः श्रिया वहतुैः तत्कथम् ॥ २५७॥  
 ६ रत्नाकरत्वकुर्वन्विमम्बुधिः अयते वृथा । कन्यारत्नमिदं 'यत्र तत्त्वोरेतद्' विराजते ॥ २५८॥

प्रसिद्ध लक्ष्मी सबके द्वारा उपभोग करने योग्य है और रति शरीररहित कामदेवके द्वारा भोगी जाती है परन्तु यह सुलोचना कामदेवको जीतनेवाले इन सभी राजाओंका तिरस्कार कर जय अर्थात् विजय अथवा जयकुमारको प्राप्त होगी । भावार्थ – संसारमें दो ही प्रसिद्ध स्त्रियाँ हैं एक लक्ष्मी और दूसरी रति । इनमें-से लक्ष्मी तो सर्वपुरुषोंके द्वारा उपभोग योग्य होनेके कारण पुंश्चलीके समान निन्द्य है और रति शरीररहित पिशाच ( पक्षमें कामदेव ) के द्वारा उपभोग योग्य होनेसे दूषित है परन्तु यह सुलोचना अपनी शोभासे कामदेवको जीतनेवाले इन सभी राजाओंका तिरस्कार कर जय-जीत ( पक्षमें जयकुमार ) को प्राप्त होगी अर्थात् यह सुलोचना लक्ष्मी और रतिसे भी श्रेष्ठ है ॥ २५४ ॥ समुद्रपर्यन्त इस पृथिवीका करग्रह अर्थात् टैक्स बसूल करनेसे कोई पुरुष लक्ष्मीवान् हो अथवा नहीं भी हो परन्तु जिसके इस सुलोचनाका करग्रह अर्थात् पाणिग्रहण होगा लक्ष्मी उसके हाथमें ही स्थित समझनी चाहिए ॥ २५५ ॥ पुरुषोंमें लावण्य ( खारापन ) समुद्रमें है और स्त्रियोंमें लावण्य ( सौन्दर्य ) इसी सुलोचनामें भरा हुआ है यही कारण है कि सब नदियाँ समुद्रके पास पहुँची हैं और सब राजा लोग इसके समीप आ पहुँचे हैं । भावार्थ-लावण्य शब्दके दो अर्थ हैं – एक खारापन और दूसरा सौन्दर्य । यहाँ कविने दोनोंमें शार्विदक अभेद मानकर निरूपण किया है । श्लोकका भाव यह है – लावण्य पुरुषोंमें भी होता है और स्त्रियोंमें भी परन्तु उसके स्थान दोनोंमें नियत है । पुरुषका लावण्य समुद्रमें नियत है और स्त्रियोंका लावण्य सुलोचनामें । पुरुषके लावण्यके प्रति स्त्रियोंका आकर्षण रहता है और स्त्रियोंके लावण्यके प्रति पुरुषका आकर्षण रहता है । यही कारण है कि नदीरुपी स्त्रियाँ आकर्षित होकर समुद्रके पास पहुँची हैं और सब राजा लोग ( पुरुष ) सुलोचनाके प्रति आकर्षित होकर उसके समीप आ पहुँचे हैं ॥ २५६ ॥ इसका लावण्य सबके नेत्रोंके द्वारा पिया जानेपर भी बढ़ता ही जाता है परन्तु समुद्रको तो लक्ष्मीने छोड़ दिया है इसलिए वह उसे कैसे धारण कर सकता है ? भावार्थ – ऊपरके श्लोकमें लावण्यके दो स्थान बतलाये थे – एक समुद्र और दूसरा सुलोचना । परन्तु यहाँ लावण्य शब्दका केवल सौन्दर्य अर्थ हृदयमें रखकर कवि समुद्रमें उसका अभाव बतला रहे हैं । यहाँ कवि लावण्य उस पदार्थको कह रहे हैं जिसकी निरन्तर वृद्धि ही होती रहे और जिसे देखकर दर्शक उसे कभी छोड़ना नहीं चाहते थे और निरन्तर उसकी वृद्धि होती रहती थी । समुद्रमें लावण्यका होना कविको इष्ट नहीं है क्योंकि उसे लक्ष्मीने छोड़ दिया है यदि उसमें वास्तवमें लावण्य होता तो उसे लक्ष्मी क्यों छोड़ती ? ( लक्ष्मी-द्वारा समुद्रका छोड़ा जाना कविसम्प्रदायमें प्रसिद्ध है । ) ॥ २५७ ॥ समुद्र अपने रत्नाकरपनेका खोटा अहंकार व्यर्थ ही धारण करता है क्योंकि जिनके यह कन्यारुपी रत्न हैं उन्हीं राजा अकम्पन और रानी सुप्रभाके यह रत्नाकरपना सुशोभित होता है ॥ २५८ ॥

१ लक्ष्मीः । २ सुलोचनायाः । ३ पुरुषेषु । ४ परिपूर्णम् । ५ यत् कारणात् । ६ तं समुद्रम् । एताम् सुलोचनाम् । ७ लावण्यम् । ८ ययोः । ९ अकम्पनसुप्रभयोः । १० रत्नाकरत्वम् ।

इसि सुलालम्बौभास्यमाये रूपादिसंभृता । अनैः स्वर्यवरागारमागमद् गोमिनीवै सा ॥३९९॥  
 १ परिभूतिहिंधा सात्रै भाविनीै केति वा तदा । श्रीतिशोकान्तरे केचिद् रसं राजकमन्त्रभूत ॥३००॥  
 हिथरवा महेन्द्रदत्तोऽपिै रथमालाधरो धुरिै । रथं प्रचोदयामास प्रलिपिशाधराधिषान् ॥३०१॥  
 दक्षिणोत्तरयोः श्रेण्योर्नमेष्व विनमेः सुतौ । पतिः सुमतिरेषोऽयमितः सुविनमिः श्रियः ॥३०२॥  
 अन्येऽमी च खगाधीशा विद्याविकमशालिनः । पतिै शृणीवै रथं षेषुै स्वेच्छामेकत्र पूरय ॥३०३॥  
 इति कञ्जुकिनिर्दिष्टं नामादाय पृथक् पृथक् । कणेकृत्यात्ययात्ै सर्वान्ै लविष्ठित्रा हि देहिनाम् ॥३०४॥  
 पश्चात् सर्वाङ्गिरीक्षयैषा कञ्जुसु विद्यरीषतेै । तथैवेति खगास्तस्थुः किं वाशानावलम्बते ॥३०५॥  
 एष्वाज्ञैै ग्लुमुखाभ्यानि लद्धयाद् अक्षकसम्पूरः । रवेतिवोदये राजां संस्तेै स्थितिरीढ़ी ॥३०६॥  
 २ उच्चाद्वाऽतुमुवैै विमनमिभूमिैै चरं रथः । कञ्जुकी कथयामास नामसिस्ताष्ट्रपास्तदा ॥३०७॥  
 मिराकृत्याकर्कीत्यादीन् सातजेषा जयमागमन् । हित्या शेषान् धुमोश्चूतं मध्यं मधुकरी यथा ॥३०८॥  
 गृहीतप्रग्रहस्तत्रैै कञ्जुकीचित्तचित्तदा । वचो व्यापारयामास जयव्याप्त्यर्थं प्रति ॥३०९॥

इस प्रकार लोग जिसकी सेतुति कर रहे हैं ऐसे अपने सौभाग्य, भाग्य और रूप आदिसे भरी हुई वह सुलोचना लक्ष्मीके समान स्वर्यवर भवनमें आ पहुँची ॥२६६॥ इस संसारमें पराभूति दो प्रकारकी है—एक पराभूति अर्थात् उल्कष्ट सम्पद और दूसरी पराभूति अर्थात् पराभवतिरस्कार, सो इन दोनोंमें न जाने कीन सी पराभूति अथवा परा-भूति होनेवाली है ऐसा विचार करता हुआ राजाओंका समूह उस समय प्रेम और शोकके बीच किसी अव्यक्त रसका अनुभव कर रहा था ॥३००॥

रत्नोंकी मालाको थारण करनेवाला महेन्द्रदत्त नामका कंचुकी भी धुरापर बैठकर विद्याधर राजाओंकी ओर रथ चलाने लगा ॥३०१॥ और सुलोचनासे कहने लगा कि ये विजयाधींकी दक्षिण तथा उत्तर श्रेणीके राजा नमि और विनमिके पुत्र हैं । यह लक्ष्मीका स्वामी सुनमि हैं और यह इस ओर सुविनमि हैं ॥३०२॥ विद्या और पराक्रमसे शोभायमान ये और भी अनेक विद्याधरोंके अविष्टि विराजमान हैं इनमें-से तृ किसी एकको वर अर्थात् पतिरूपसे स्वीकार कर और एक हीमें अपनी इच्छा पूर्ण कर ॥३०३॥ इस प्रकार कंचुकीने अलग-अलग नाम लेकर कुछ कहा था उसे कानमें ढालकर—सुनकर वह सबको छोड़ती हुई आगे चली सो ठीक ही है क्योंकि प्राणियोंकी रुचि अनेक प्रकारकी होती है ॥३०४॥ यह कन्या सबको देखकर बादमें किसीको वरना चाहती है यह विचारकर विद्याधर लोग ज्योंके त्यों बैठे रहें सो ठीक ही है क्योंकि आशा किसका आश्रय नहीं लेती है ? ॥३०५॥ जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे कमल विकसित हो जाते हैं और अस्त होनेसे मुरझा जाते हैं उसी प्रकार राजाओंके मुखरूपी कमल सुलोचनाके रथ सामने आनेसे पहले तो प्रफुल्लित हुए किन्तु रथके चले जानेपर बादमें मुरझा गये थे सो ठीक ही है क्योंकि संसारकी स्थिति ही ऐसी है ॥३०६॥ तदनन्तर वह रथ विद्याधरोंकी ऊँची भूमिसे नीचे भूमिगोचरियोंकी ओर उतरा, उस समय वह कंचुकी नाम ले लेकर राजाओंका निरूपण करता जाता था ॥३०७॥ जिस प्रकार बसन्तकृतुमें कोयल सब वृक्षोंको छोड़कर आमके पास पहुँचती है उसी प्रकार वह अजेय सुलोचना अर्ककीर्ति आदि राजाओंको छोड़कर जयकुमारके पास जा पहुँची ॥३०८॥ उसी समय चित्तकी

१ पुण्य । २ लक्ष्मी । ३ अवज्ञा सम्पच्च । पराभूति-स०, म०, अ०, प०, स०, द० । ४ अवज्ञासम्पदोः ।  
 ५ भविष्यत् । ६ कञ्जुकी । ७ रथमूले । ८ निजवाङ्माम् । ९ अतिकृत्यवती । १० वरितुमिच्छति ।  
 ११ म्लानात्यभवन् । १२ उग्रतप्रदेशात् । १३ अगमत् । १४ मूषराणामनिमुक्तम् । १५ धूताल्परञ्जुः ।

प्रदीपः स्वकुलस्यायं प्रभुः सोमप्रभात्यमः । श्रीमानुष्माहभेदैर्वा<sup>१</sup> जयोऽयमनुजैर्षतः ॥३१०॥  
 न रूपमस्य ज्यावार्थं लदेतदतिैर्मन्मथम्<sup>२</sup> । स<sup>३</sup> दर्पणोऽर्पणीयः किं करकुणदर्शने ॥३११॥  
 जित्वा मेघकुमाराख्यानुत्तरे भरते सुरान् । सिंहनादः कृतोऽनेन जिततन्मेघनिस्त्वनः<sup>४</sup> ॥३१२॥  
 तीरपट्टै॒ प्रबध्यास्य स्वभुजाभ्यां समुद्रसम् । न्यधायि निधिनाथेन हृष्टा मेघस्त्रामिधा ॥३१३॥  
 अरमस्युग्मयैर्सुर्कः समंतश्चमिगामिकैः<sup>५</sup> । प्रज्ञोत्साहविशेषैश्च ततोऽयमुदितोदितः ॥३१४॥  
 चित्रं जगस्त्रयस्यास्य गुणाः संरज्यै॒ संप्रतम्<sup>६</sup> । ज्यावृताः<sup>७</sup> सर्वभावेन<sup>८</sup> तत्र भावानुरज्ञने<sup>९</sup> ॥३१५॥  
 अयमेकोऽस्ति द्रोषोऽस्य चेत्तुल/ सम्भिर्योदितः । श्रीऽकास्तिर्वैरलक्ष्मीश्च वाग्वैर्वां चातिवल्लभाः ॥३१६॥  
 जितमेघकुमारोऽयमेकः प्राक् ज्यावैर्दधुना । च्युतस्वर्यै॒ हृवालक्ष्यै॒ यत्साहायीकृतः स्मरः ॥३१७॥  
 श्वलिनोर्युष्मयोर्मध्ये वर्तमानो जिरीषतोः<sup>१०</sup> । द्वैधीमात्रै॑ समाप्तः पाङ्गुण्यनिषुणः स्मरः ॥३१८॥  
 कीर्तिः कुबलयाङ्कादी पश्चाङ्कादी प्रभाऽस्य हि । सूर्याच्छ्रद्धमसौ तस्मादनेन हतशक्तिकौ ॥३१९॥

बातको जाननेवाला कंचुकी घोडोंकी रास पकड़कर जयकुमारका वर्णन करनेके लिए अपने वचनोंको व्यापृत करने लगा अर्थात् जयकुमारके गुणोंका वर्णन करने लगा ॥३०६॥ उसने कहा कि यह श्रीमान् स्वामी जयकुमार है, यह अपने कुलका दीपक है, महाराज सोमप्रभका पुत्र है और उत्साहके भेदोंके समान अपने छोटे भाइयोंसे आवृत है—घिरा हुआ है ॥३१०॥ कामदेवको तिरस्तृत करनेवाला इसका यह रूप तो वर्णन करने योग्य ही नहीं है क्योंकि हाथका कंकण देखनेके लिए क्या दर्पण दिया जाता है ? ॥३११॥ इसने उत्तर भरतक्षेत्रमें मेघकुमार नामके देवोंको जीतकर उन देवोंके कृत्रिम बादलोंकी गर्जनाको जीतनेवाला सिंहनाद किया था ॥३१२॥ उस समय निधियोंके स्वामी महाराज भरतने हृषित होकर अपनी भुजाओं-द्वारा धारण किया जानेवाला वीरपट्ट इसे बाँधा था और मेघस्वर इसका नाम रखा था ॥३१३॥ यह आत्माके समीक्षीन गुणोंसे युक्त है तथा आदरणीय उत्तम पुरुषोंके साथ सदा संगति रखता है इसलिए बृद्धि और विशेष उत्साहोंके द्वारा यह श्रेष्ठोंमें भी श्रेष्ठ गिना जाता है ॥३१४॥ यह भी आदर्शकी बात है कि इसके गुण तीनों लोकोंको प्रसन्न कर अब तेरे अन्तःकरणको अनुरक्त करनेके लिए पूर्ण रूपसे लौटे हैं । भावार्थ—इसने अपने गुणोंसे तीनों लोकोंके जीवोंको प्रसन्न किया है और अब तुझे भी प्रसन्न करना चाहता है ॥३१५॥ यदि इसमें दोष है तो यही एक, कि इसके निम्नलिखित चार स्त्रियाँ हैं, श्री, कीर्ति, वीरलक्ष्मी और सरस्वती । ये चारों ही स्त्रियाँ इसे अत्यन्त प्रिय हैं ॥३१६॥ जिसने पहुले अकेले ही मेघकुमारको जीत लिया था ऐसा यह जयकुमार इस समय तुझे जीतनेके लिए धैर्यरहित-सा हो रहा है अर्थात् ऐसा जान पड़ता है मानो इसका धैर्य छूट रहा हो यही कारण है अब इसने कामदेवको अपना सहायक बनाया है ॥३१७॥ एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करनेवाले तुम दोनों बलवानोंके बीचमें पड़ा हुआ यह सन्धि विग्रह आदि छहों गुणोंमें निषुण कामदेव द्वैधीभावको प्राप्त हो रहा है अर्थात् कभी उसका आश्रय लेता है और कभी तेरा ॥३१८॥ इसकी कीर्ति तो कुबलय अर्थात् रात्रिमें खिलनेवाले कमलोंको ( पक्षमें महीमण्डलको ) आनन्दित करती है और प्रभा पश्च अर्थात् दिनमें खिलनेवाले कमलोंको ( पक्षमें पश्चा-लक्ष्मीको ) विकसित

१ शक्तिविशेषैः । २ दृष्ट्यमानम् । ३ अतिक्षान्तमन्मथम् । ४ प्रचिदः । ५ निजितमेघकुमारथनव्यनिः ।  
 ६ इयुष्मास्य ल० । ७ अभिगमार्हः । आदरणीयैरित्यर्थः । ८ ततः कारणात् । ९ आत्मग्ननुरक्तं विष्णाय ।  
 १० अवृत्ता । ११ ज्यावारमकुर्वन् । १२ सकलस्वरूपेण । १३ चित्तानुरञ्जने । ‘भावः ससा स्वभावाभिप्राप्त्येषात्मजन्मम्’ इत्यभिषानात् । १४ दर्शनीयः । १५ यत् कारणात् । १६ परस्परं जेतुमिच्छतोः ।  
 १७ उभयवलम्बनत्वम् ।

कीर्तिवहिंदवा लक्ष्मीरतिवृद्धा सरस्वती । जीर्णेतरयि शान्तेव<sup>१</sup> लक्ष्यने भूतविद्विषः ॥३२०॥  
 तत्तद्वयि व्रथोरुपशीलादिगुणमात्यलम् । प्रीतिर्लतेव रक्तपुष्पा प्रबृद्धास्य फलिष्यति ॥३२१॥  
 युवाभ्यां निर्जितः कामः संग्रस्य अन्तरीक्षः । स<sup>२</sup> वामपञ्चायाभूदरिविषभूमितोऽप्यरिः ॥३२२॥  
 निष्ठुरं जूभतेऽमुमिक्ते मया रिपि स्परः । अत्वेव त्वां क्षिये भूयो मटेषु भट्टमन्नरः ॥३२३॥  
 विष्ण्यातविजयः श्रीमान् यानमात्रेण<sup>३</sup> निर्जितः । त्वया<sup>४</sup> यमत एषात्र जयो न्यायागतस्तत्र ॥३२४॥  
 प्रावृंकुष्ठं गले रक्तमालया रक्तरिजितम् । जयरक्तमास्तवैष्यास्तु तत्त्वमनं<sup>५</sup> करे कुरु ॥३२५॥  
 इति तस्य चतुः शुभ्वा स्मरथाद्गुण्यवेदिनः । शमैर्विगलितश्रीढौललीलाश्लोकनः ॥३२६॥  
 तदा जःमात्रत्वेहश्चाकुर्वी<sup>६</sup> शुल्कराकृतिः । शुद्धभासा<sup>७</sup> गुणास्तस्य आवणाः<sup>८</sup> पुण्यसायकः ॥३२७॥

तदा जन्मान्तरखल्लुपा तु रसायन ॥३१६॥ समस्त  
करती है इसलिए इसने सूर्य और चन्द्रमा दोनोंको शवितरहित कर दिया ॥३१६॥ समस्त  
इन्द्रजलोंको नष्ट करनेवाले इस जयकुमारकी कीर्ति तो सदा बाहर रहती है, लक्ष्मी अत्यन्त वृद्ध  
है, सरस्वती जीर्ण है और वीर लक्ष्मी शान्त-सो दिखती है इसलिए दृष्टिरूपी गुणोंसे युक्त और  
खूब बढ़ी हुई इसकी प्रीतिरूपी लता वय, रूप, शील आदि गुणोंसे सहित तुङ्गमें ही अच्छी तरह  
फलीभूत होगी । भावार्थ—३१६ वें श्लोकमें बतलाया था कि इसके चार प्रिय स्त्रियाँ हैं कीर्ति,  
लक्ष्मी, सरस्वती और वीरलक्ष्मी परन्तु उनसे तुङ्गे सप्तलीजन्य दुःखका अनुभव नहीं करना  
पड़ेगा । क्योंकि कीर्ति नामकी स्त्री तो सदा बाहर ही घूमती रहती है--अन्तःपुरमें उसका प्रवेश  
नहीं हो पाता ( पक्षमें उसकी कीर्ति समस्त संसारमें फेली हुई है ), लक्ष्मी अत्यन्त वृद्ध है—  
नहीं हो पाता ( पक्षमें उसकी कीर्ति समस्त संसारमें फेली हुई है ), सरस्वती भी जीर्ण अर्थात् वृद्धावस्थाके कारण शिथिल  
शरीर हो रही है ( पक्षमें परिपक्व है ) इसलिए इन तीनोंपर उसका खास प्रेम नहीं रहता ।  
अब रह जाती है वीरलक्ष्मी, यद्यपि वह तरुण है और सदा उसके पास रहती है परन्तु अत्यन्त  
शान्त है—शुंगार आदिकी ओर उसका आकर्षण नहीं है ( पक्षमें क्षमायुक्त शूरवीरता है )  
इसलिए इन चारोंसे राजाकी प्रीति हटकर तुङ्गपर ही आँख होगी क्योंकि तू वय, रूप, शील  
आदि गुणोंसे सहित है ॥३२०—३२१॥ तुम दोनोंने पहले जिस कामदेवको जीतकर दूर हटाया  
था उसे अब अपने अन्तःकरणमें बैठा लिया है, अर्थवा खास विश्वासपात्र बना लिया है परन्तु  
अब वही कामदेव तुम दोनोंका पराजय करनेके लिए तैयार हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि  
अब वही कामदेव तुम दोनोंका शत्रु है तथापि तुङ्गे स्त्री मानकर इसी एकपर बढ़ी निष्ठुरताके  
यह कामदेव तुम दोनोंका शत्रु है तथापि तुङ्गे स्त्री मानकर इसी एकपर बढ़ी निष्ठुरताके  
साथ अपना प्रभाव ढाल रहा है सो ठीक ही है क्योंकि योद्धाओंकी ईर्ष्या योद्धाओंपर ही होती है ।  
भावार्थ—वह तुङ्गे स्त्री समझ कायर मानकर अधिक दुःखी नहीं करता है परन्तु जयकुमारपर  
अपना पूरा प्रभाव ढाल रहा है ॥३२३॥ जिसका विजय सर्वत्र प्रसिद्ध है ऐसे श्रीमान् जय-  
कुमारको तूने यान अर्थात् आगमन ( पक्षमें युद्धके लिए किये हुए प्रस्थान ) मात्रके द्वारा जीत  
लिया है इसलिए इस जगह न्यायसे तेरी ही विजय हुई है ॥३२४॥ तू अपने दृष्टिरूपी बाणोंके  
द्वारा जीते हुए इस जयकुमारको रत्नोंकी मालासे गलेमें बांधकर अपने हाथमें कर, विजय-  
द्वारा जीते हुए इस जयकुमारको लज्जा छूटती जा रही है, जिसकी लीला-  
कंचुकीके बच्चन मुनकर धीरे-धीरे जिसकी लज्जा छूटती जा रही है, जिसकी लीला-

१ वीरलक्ष्मीः । २ जयकुमारस्य । ३ वा युवयोः कामवजमाया — ल० । ४ विश्वासतः । ५ जव । ६ गग्नः  
मात्रेण । ७ इन्द्रहेतुकमदुकूलये कृत्या, बद्धवेत्यर्थः । ८ तत् कारणात् । ९ लज्जा । १० चक्रुषा कृष्णमाणा ।  
कुरुद्वद भासमानाः । १२ श्रवणशानविषयाः । श्रवणहिता वा ।

इत्येति॑ स्वप्ननावेशा॒ ममुक्षिप्रयाप्तोपिता॑ । रथभालो॒ समादाय कल्पा॑ कम्बुकिनः॒ करात् ॥३२८॥  
अवधाद् चन्द्रुरां॒ तस्य कण्डेऽलिप्रेभविभैरा॑ । सा॒ व्राचकात्॒ ममस्यास्य वक्षोलक्ष्मीरिवाप्ता॑ ॥३२९॥  
सहस्रा॑ लर्वतूर्याणामुदहिष्टन्महाविभिः॑ । आवश्यजिव दिक्षन्याः॑ कन्यासामात्प्रमुक्त्वम् ॥३३०॥  
वक्षवारिजवासिन्या॑ नरविद्याधरेतिनाम् । श्रिया॑ जयमुखाभ्योजमाप्तिं वा॑ तदाध्यभाग् ॥३३१॥  
गताशाँवास्यो॑ म्लानमुख्याक्षुण्यपलभियः॑ । अभ्युपरनृपाः॑ कट्टमासन् शुभक्षसरस्माः॑ ॥३३२॥

## मालिनीच्छन्दः

अस्मिमतफलसिद्ध्या॑ वर्णमानप्रमोदो॑ निजदुहि॑ तृसमेतं प्राक् पुरोधाय॑ पूज्यम् ।  
जयममरहरुं वा॑ कष्टवल्लीसनाथ॑ नगरमविशदुहैनधर्षशाधिनाथः॑ ॥३३३॥

## शार्दूलविक्रीडितम्

आद्योऽय॑ महिते॑ स्वयंवरविधी॑ चम्मीग्यसौमायभाग्

१० यस्माद्वा॑ जग्गरेन्द्रवक्षवत्त्रवत्तज्ञीवारयोविद्युतः॑ ।

मालामूनगुणा॑ ११ यतोऽस्य॑ १२ १३ शरणे॑ मन्दारमालायते॑

१४ तत्क्षणावधिर्वा॑ भ्रमस्य॑ १५ विषुलं विष्ण॑ १६ यशो॑ व्यश्नुने॑ ॥३३४॥

## वसन्ततिलका

भास्वव्यप्राप्तसरणप्रतिकुद्धपमः॑ १७ प्राप्तोऽयः॑ प्रतिक्षिधाय॑ २० परप्रभावम्॑ २१ ।

२२ बन्धुप्रजाकुमुदाक्षुण्यिदिव्यकालिलिति॑ इति॑ भासुदालित्तेविजयी॑ जयोऽप्यस्तु ॥३३५॥

हुई जयकुमारकी सुन्दर आकृति, कुन्दके फूलके समान सुने हुए उसके गुण और कामदेव द्वन्द्व सबने उठाकर जिसे रथसे नीचे उतारा है ऐसी कन्या सुलोचनाने कंचुकीके हाथसे रत्नमाला लेकर तथा अतिशय प्रेममें निमग्न होकर, वह मनोहरमाला उस जयकुमारके गलेमें ढाल दी । उस समय वह माला जयकुमारके वक्षःस्थलपर अधिरूढ हो दूसरी लक्ष्मीके समान सुशोभित हो रही थी ॥३२६-३२९॥ उस समय अकस्मात् सब बाजोंकी बड़ी भारी आवाज ऐसी उठी थी मानो दिशारूपी कन्याओंके लिए सुलोचनाका असाधारण उत्सव ही सुना रही हो ॥३३०॥ उस समय जयकुमारका मुखरूपी कमल बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था और ऐसा जान पड़ता था मानो भूमिगोचरी तथा विद्याधर राजाओंके मुखरूपी कमलोंपर निवास करनेवाली लक्ष्मी उसी एकके मुखपर आ गयी हो ॥३३१॥ जिनका आशारूपी जल नष्ट हो गया है और जिनके मुखरूपी कमल तथा नेत्ररूपी उत्पलोंकी शोभा म्लाने हो गयी है ऐसे भूमिगोचरी और विद्याधर राजा यूखे सरोवरके समान बड़े ही दुःखी हो रहे थे ॥३३२॥ अभीष्ट फलकी सिद्धि होनेसे जिसका आनन्द बढ़ रहा है ऐसा उत्कृष्ट नाथवंशका अधिपति राजा अकम्पन, कल्पलतासे सहित कल्पवृक्षके समान पुत्रीसे युक्त पूज्य जयकुमारको आगे कर अपने उत्कृष्ट नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥३३३॥ चूँकि भाग्य और सौभाग्यको प्राप्त होनेवाला यह जयकुमार स्वयंवरकी सम्माननीय विधिमें सबसे पहला था, भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओं-के मुखकमलोंकी शोभारूपी वीरांगनाओंसे धिरा हुआ था और अम्लानगुणोंवाली माला उसकी शारणमें आकर कल्पवृक्षोंकी मालाके समान आचरण करने लगी थी, अतएव उसका बहुत बड़ा निर्मल यश कल्पान्तकाल तक समस्त संसारमें व्याप्त रहेगा ॥३३४॥ जिसकी देवीप्यमान प्रभाके प्रसारसे कमील स्त्रिय उठते थे, दूसरों ( शत्रुओं अथवा नक्षत्र आदिकों ) के प्रभावका तिरस्कार कर जिसका उदय हुआ था और जो भाईबन्धु तथा प्रजारूपी कुमुदोंको

१ समुद्रस्य । २ मुखकमलनिवासिन्या॑ । ३ गतास्यवारणः॑ ८० । विर्गसमुखरसाः॑ । ४ पुत्री॑ । ५ अग्ने॑ कृत्वा॑ ।  
६ इव । ७ सहितम् । ८ आद्योऽय॑ १०, १०, २०, ३० । ९ यत्॑ कारणात्॑ । भाग्य पुण्य । १० यस्मात्॑  
कारणात्॑ । ११ यस्मात्॑ कारणात्॑ । १२ जयस्य । १३ परित्राणे॑, गुहे॑ । १४ तस्मात्॑ कारणात्॑ । १५ कल्प-  
पर्वत्यन्तम् । १६ निर्मलम् । १७ जगत् । १८ व्याख्योति॑ । १९ प्रबुद्धलक्ष्मी॑ । विकसितकमलः॑ । २० निराहत्य॑ ।  
२१ शत्रुसमर्थ्यम् । नक्षत्रादिसमृद्धयर्थं च । २२ बन्धववक्ष प्रजाहच वन्धुप्रजा॑, बन्धुप्रजा॑ एव कुमुदानि तेषां  
अन्धुइचन्द्रः ।

## त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्वं

३३६

### मालिनी

प्रियवुहितसेना<sup>१</sup> नाथवंशाम्बरेन्द्रोरमुमु<sup>२</sup> पनयति सम स्पष्टसौभाग्यलक्ष्मीः ।  
उवलिसमहसमन्यां वीरलक्ष्मीं च कीर्ति कथयति नयतीति<sup>३</sup> प्रातिभाजानमुड्डैः ॥ ३३६ ॥

### शादूलविक्रीडितम्

प्रत्युष्यमयं सुरूपमहिमा सौभाग्यलक्ष्मीरित्यजातोऽस्मिन् जनकः स योऽस्य जनिका<sup>४</sup> सैवास्य या सुप्रजा<sup>५</sup> ॥  
पूज्योऽयं जगदेकमङ्गलं मणिशूद्धामणिः श्रीभूतामिस्युक्तिर्जयमाग्यं प्रति जनैर्जातोत्सवैर्जिपता ॥ ३३७ ॥

### मालिनी

कुबलयपरित्रौष्ठं संदधानः समन्तात् संततविष्णवीसि<sup>६</sup> सुप्रतिष्ठैः प्रसन्नः ।  
परिणतिनिजहीर्यणार्कमाक्षमय दिशु प्रथितपृथुलकीर्त्या वर्द्धमानो जयः स्तावैः ॥ ३३८ ॥  
इति समुपगता श्रीः सर्वकर्त्याणभाजं जिनपतिमतभावक्षात्पुष्यमाजं जयं तम् ।  
तदुरुक्तसुपाष्ठं हे शुधा<sup>७</sup> अद्धानाः परमजिनपदाञ्जद्वन्द्वमद्वन्द्वश्वस्या ॥ ३३९ ॥  
इत्यार्थं भगवज्जनसेनाचार्यप्रणीते त्रिष्टुलदाण्डमहापुराणसंग्रहे  
स्वयंवरमालारोपणकल्याणकं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्वं ॥ ३३१ ॥

■

प्रकुलिलत करनेके लिए बन्धुके समान था और जिसकी कान्ति अचिन्त्य थी ऐसा सूर्य और चन्द्रमाको जीतनेवाला वह जयकुमार अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥ ३३५ ॥ जिसकी सौभाग्य-रूपी लक्ष्मी स्पष्ट प्रकट हो रही है ऐसे उस जयकुमारने नाथवंशरूपी आकाशके चन्द्रमा स्वरूप राजा अकम्पनकी प्रिय पुत्री सुलोचनाको विवाहा था सो ठीक ही है क्योंकि प्रतिभाशाली मनुष्योंका उत्कृष्ट ज्ञान यही कहता है कि देवीप्यमान प्रतापके धारक पुरुषको ही अनोखी वीरलक्ष्मी और कीर्ति प्राप्त होती है ॥ ३३६ ॥ उस समय जिन्हें आनन्द प्राप्त हो रहा है ऐसे लोगों-के द्वारा, जयकुमारके प्रति उसकी विजयको सूचित करनेवाली निम्नप्रकार बातचीत हो रही थी कि इस संसारमें यही पुण्य है, यही उत्तम रूपकी महिमा है, यही सौभाग्यकी लक्ष्मी है, जिसके यह उत्पन्न हुआ है वही पिता है, जिसने इसे उत्पन्न किया है वही उत्तम सन्तानवती माता है, यही लक्ष्मीवान् पुरुषोंमें चूडामणि स्वरूप है और संसारका कल्याण करनेवाले रत्नके समान यही एक पूज्य है ॥ ३३७ ॥ जो चारों ओरसे कुबलय अर्थात् पृथ्वीमण्डल ( पक्षमें रात्रि विकासी कमलों ) को प्रसन्न अथवा प्रकुलिलत करता रहता है, जिसकी कान्ति सदा फैली रहती है, जिसकी प्रतिष्ठा उत्तम है और जो सदा प्रसन्न रहता है ऐसा यह ( चन्द्रमाका सादृश्य धारण करनेवाला ) जयकुमार अपने परिपक्व प्रतापसे सूर्यपर भी आक्रमण कर दिशाओंमें फैली हुई बड़ी भारी कीर्तिसे सदा बढ़ता रहे ॥ ३३८ ॥

इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्के मतकी उपासना करनेसे बहुत भारी पुण्यका उपार्जन करनेवाले और सब प्रकारके कल्याणोंको प्राप्त होनेवाले जयकुमारको लक्ष्मी प्राप्त हुई थी इसलिए हे श्रद्धावन्त विद्वान् पुरुषो, तुम लोग भी निराकुल होकर परम दयाल् सर्वोक्तुष्ट जिनेन्द्र-देवके दोनों चरणकमलोंकी उपासना करो ॥ ३३९ ॥

इस प्रकार आर्व नामसे प्रसिद्ध भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत त्रिष्टुलक्षण महापुराण संग्रहके  
हिन्दी भाषानुवादमें सुलोचनाके स्वयंवरका वर्णन करनेवाला  
यह तीतालीसवाँ पर्व पूर्ण हुआ ।

■

१ पुश्चीम । २ अथमुप-त०, ३०, अ०, प०, स०५ ३ जयकुमारम् । ४ प्रतिभैर्व प्रातिभां तच्च तद्भानं च ।  
प्रतिपुरुषसमुद्भूतप्रतिभाजानमित्यर्थः । ५ लोके । ६-माता । ७ सुप्रकृतयो । ८ पञ्चलदर्पणः । ९ सुर्वर्ष्य-  
वान् । १० भूषात् ।

## अतुरुचात्वारिंशासमी पर्चे

अथ दुर्मर्षणो नाम दुष्टस्तस्यासहित्युकः । सर्वानुरीपयन्<sup>१</sup> पापी सोऽक्षेष्ठोर्ख्यनुजीवकः ॥१॥  
 अकम्पनः खलः क्षुद्रो शृथैङ्गर्वमदोदृतः । सृषा युष्मान् समाहूय लकाघमानः स्वसंपदम् ॥२॥  
 एवमेव समालोच्य मालामासञ्जयज्ञये । पराभूति<sup>२</sup> विधित्सुर्वः स्थायिनीमायुगान्तरम् ॥३॥  
 हति ब्रवाणः संप्राप्य सशीढं शक्तिः सुतम् । इह यद्यक्षणदरक्षानां स्वामिनौ त्वं पिता च ते ॥४॥  
 रत्नं रत्नेषु कन्यैव तत्राप्येषैव<sup>३</sup> कन्यका । तत्त्वां स्वगृहमानीष दौष्टव<sup>४</sup> पश्यास्य दुर्मर्त्तेः ॥५॥  
 जयो नामात्र कल्पस्मै दत्तवान् सृष्टुतोवितः । तेनागतोऽस्मि दौष्टस्य तत्रेतत् सोऽहमक्षमः ॥६॥  
 प्राकृतोऽपि न सोऽप्यः प्राकृतैरपि<sup>५</sup> किं पुनः । एवादौः स्त्रीसमुद्भूतो मानभङ्गो मनहितिभिः ॥७॥  
 ८ तदादिश<sup>६</sup> दिशास्पस्त्वै पदं वैकस्वतास्पदम्<sup>७</sup> । दिशास्पवेशमात्रेण<sup>८</sup> समालो तेऽपि कन्यकाम् ॥८॥  
 हृषसाध्वी<sup>९</sup> कुञ्जं भर्तुः स्ववाचैवासुञ्जत् खलः । सदसत्कार्यनिरुच्छी<sup>१०</sup> शक्तिः सदसतोः<sup>११</sup> समा ॥९॥  
 सदृचःपत्न<sup>१२</sup> प्रौढकोषधृमध्वजारुणः<sup>१३</sup> । अमद्विलोचनाङ्काः<sup>१४</sup> कुद्धाप्रिसुरसंसिमः ॥१०॥

अथानन्तर—दुर्मर्षण नामका एक दुष्ट पुरुष राजकुमार अर्ककीर्तिका सेवक था । वह जयकुमारके उस वैभवको नहीं सहन कर सका इसलिए उस पापीने सब राजाओंको इस प्रकार उत्तेजित किया । वह कहने लगा कि अकम्पन दुष्ट है, नीच है, झूठभूठके ऐश्वर्यके मदसे उद्धत हो रहा है, अपनी सम्पदाओंको प्रशंसा करते हुए उसने व्यर्थ ही आप लोगोंको बुलाया है । वह तुम लोगोंका दूसरे युग तक स्थिर रहनेवाला अपमान करना चाहता है इसलिए उसने पहले-से सोच-विचारकर जयकुमारके गलेमें माला डलवायी है, इस प्रकार कहता हुआ वह दुर्मर्षण लज्जित हुए चक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीर्तिके पास आया और कहने लगा कि इन छहों छण्डोंमें उत्पन्न हुए रत्नोंके दो ही स्वामी हैं एक तू और दूसरा तेरा पिता ॥१-४॥ रत्नोंमें कन्या ही रत्न है और कन्याओंमें भी यह मुलोचना ही उत्तम रत्न है इसलिए ही अकम्पनने तुझे अपने घर बुलाकर तेरा तिरस्कार किया है, जरा इस दुष्टकी दुष्टताको तो देखो ॥ ५ ॥ भला, जय-कुमार है कौन ? जिसके लिए मृत्युसे प्रेरित हुए अकम्पनने अपनी पुत्री दी है । मैं यह दुराचार सहन करनेके लिए असमर्थ हूँ इसलिए ही आपके पास आया हूँ ॥ ६ ॥ जब कि नीच लोग भी छोटे-छोटे मानभंगको नहीं सहन कर पाते हैं तब भला आप-जैसे तेजस्वी पुरुष स्त्रीसे उत्पन्न हुआ मानभंग कैसे सहन कर सकेंगे ? ॥ ७ ॥ इसलिए मुझे आशा दीजिए मैं आपकी आशा-मात्रसे ही इस अकम्पनको यमराजका स्थान दे सकता हूँ और माला सहित वह कन्या आपके लिए दे सकता हूँ ॥ ८ ॥ इस प्रकार उस दुष्टने अपने वचनोंसे ही अपने स्वामीको दुष्ट क्रोध उत्पन्न करा दिया सो ठीक ही है क्योंकि अच्छा और बुरा कार्य करनेके लिए सज्जन तथा दुर्जनोंकी एक-सी शक्ति रहती है ॥ ९ ॥ उस दुर्मर्षणके वचनरूपी वायुसे अहीं हुई क्रोधरूपी अग्निसे

१ तमसहमानः । २ कोपाग्निं प्रज्वलयन् । ३ परिभूतिम् । ४ कन्यारत्नेष्वपि । ५ तां त्वां तं, ब० । ६ दुष्ट-त्वम् । ७ तेन कारणेन । ८ प्रकृते भवः पराभवोऽपि । अथवा तुच्छकार्यमपि । ९ नीचैरपि । तद्वाच्यव्रभवैरित्यर्थः । १० तत् कारणात् । ११ आदेशं देहि । १२ ददामि । १३ यमपुरम् । 'कालो दण्डधरः आददेवो वैकस्वतोऽन्तकः' इत्यभिधानात् । १४ निरूपणमात्रेण । १५ अशुभाम् । १६ निष्पत्तौ । १७ सञ्जनहुर्जनयोः । १८ प्रबृद्ध । 'प्रवृद्धप्रोक्षेषितमित्यभिधानात् । १९ अग्निः । २० कुपिताग्निकुमारसदृशः । कुञ्जा — ल०, म० ।

उज्जगारे<sup>१</sup> ज्वेलत्थूलविस्फुलिङ्गोपमा गिरः । अर्ककीर्तिर्द्विषोऽशोषान् दिवश्चुरिव<sup>२</sup> वाचया ॥११॥  
मामधिक्षिप्य<sup>३</sup> कन्येयं येन दत्ता दुरात्मना । तेन प्रागेव मूढेन दत्तः स्त्रहमै जलाश्रिलः ॥१२॥  
अतिकाम्ते<sup>४</sup> रथे<sup>५</sup> तस्मिन् प्रोत्थितः क्लीघपावकः । तदैव किञ्चु को दाहा दृष्ट्यजानश्च हं स्थितः ॥१३॥  
नाश्चानिसन्धितो<sup>६</sup> भूदो भूयते स्वमक्ष्मनम् । वृद्धे मयि न वेत्तीति कम्पते सधरा धरा<sup>७</sup> ॥१४॥  
८ मरवद्गवारिवाराति<sup>८</sup> रस्ता तावदगोचरः । संहरन्त्यखिलान् दशत्रू बलवेलैव<sup>९</sup> हेलया ॥१५॥  
९ प्रसुद्युप्कनायेन्दुदुर्बश्चिपुलाद्वा । मर्कोशप्रस्फुरद्विभस्मिताऽस्मिन्स<sup>१०</sup> रोक्ष्यति<sup>११</sup> ॥१६॥  
वीरपद्मस्तदा संदीर्घुवा<sup>१२</sup> मरुभैर्यान्मया । क्षमध्य<sup>१३</sup> सहै मालां सर्वसौभाग्यलोपिनीम् ॥१७॥  
१४ मयशः कुसुमामूलानमालेवास्त्वायुगावधि । जयलक्ष्मया सहायतो<sup>१५</sup> हरेय<sup>१६</sup> जयवक्षसः ॥१८॥  
जलदान् पेलवान्<sup>१७</sup> जिन्धा महामात्रविकायिनः<sup>१८</sup> । अष्ट पश्यामि इस्त्व जयस्य जयमाहवे ॥१९॥  
इति<sup>१९</sup> निर्मित्यमर्थादः कार्याकार्यैविमूढवीः । अनिवार्यैः विनिर्जित्य कालान्तजलधिष्ठवनिम् ॥२०॥  
अनलस्यानिलो वाऽस्व<sup>२१</sup> साहाय्यमगमंस्तदा । केऽपि पापक्रियारम्भे सुलभाः सामत्राचिकाः<sup>२२</sup> ॥२१॥

जो लाल-लाल हो रहा है, जिसके नेत्ररूपी अंगारे धूम रहे हैं, और क्रोधसे जो अग्निकुमार देवोंके समान जान पड़ता है ऐसा वह अर्ककीर्ति अपने बचनोंसे ही समस्त शत्रुओंको जलानेकी इच्छा करता हुआ ही मानो जलते हुए बड़े-बड़े फुलिगोंके समान बचन उगलने लगा ॥१०-११॥ वह बोला जिस दुष्टने मेरा अपमान कर यह कन्या दी है उस मूर्खने अपने लिए पहले ही जल-जलि दे रखी है ॥१२॥ उस समय कन्याका रथ आगे निकलते ही मेरी क्रोधरूपी अग्नि भड़क उठी थी परन्तु जलने योग्य कौन है ? यह नहीं जानता हुआ मैं चुप बैठा रहा था ॥१३॥ केवल नामसे ठगाया हुआ वह मूर्ख अपने आपको अकम्पन मानता है परन्तु वह यह नहीं जानता कि मेरे कुपित होनेपर पर्वतों सहित पृथिवी भी कैपने लगती है ॥१४॥ मेरी तलवाररूपी जलकी धाराका विषय तो दूर ही रहे मेरी सेनारूपी लहर ही समस्त शत्रुओंको अनायास ही नष्ट कर देती है ॥१५॥ बहुत बड़े और सूखे हुए नाथवंश तथा चन्द्रवंशरूपी दुष्ट बाँसोंकी बड़ी भारी अटवी मेरे क्रोधरूपी प्रज्वलित अग्निसे भस्म हो जायगी और फिर इस संसारमें कभी नहीं उग सकेगी ॥१६॥ उस समय पृथिवीके अधिपति चक्रवर्ती महाराजने जयकुमारको जो वीरपद्म बौधा था उसे तो मैंने उनके डरसे सह लिया था परन्तु आज अपने सब सौभाग्यको नष्ट करनेवाली इस चरमालाको कैसे सह सकता हूँ ? ॥१७॥ मेरे यशरूपी फूलोंकी अम्लान माला ही इस युगके अन्त तक विद्यमान रहे । इस मालाको तो मैं जयलक्ष्मीके साथ-साथ जयकुमारके वक्षस्थलसे आज ही हरण किये लेता हूँ ॥१८॥ केवल वायुमात्रसे बिलीन हो जानेवाले कोमल मेघोंको जीतकर अहंकारके प्राप्त हुए जयकुमारकी जीत आज मैं पुढ़में देखूँगा ॥१९॥ इस प्रकार जिसने मर्यादा तोड़ दी है, कार्य अकार्यके करनेमें जिसकी बुद्धि विचाररहित हो रही है और जो किसीसे निवारण नहीं किया जा सकता ऐसे अर्ककीर्तिने उस समय अपने शब्दोंसे प्रलयकालके समुद्रकी गर्जनाको भी जीत लिया था और जिस प्रकार अग्नि-को भड़कानेके लिए वामु सहायक होता है उसी प्रकार उसका क्रोध भड़कानेके लिए किसने

१ उवाच । २ दग्धुमिच्छुः । ३ तिरस्कृत्य । ४ मामुलदृश्य गते । ५ कन्यारूपस्यन्दने । ६ अकम्पन इति नामा । ७ वक्षितः । ८ कृदे ल० । ९ पर्वतसहिता भूमिः । 'महीधे शिखरिक्षमामृदहार्यधरपर्वताः' इत्यभिषा-नात् । १० अस्मदायुधधाराजल । ११ वारिधाराति प०, ल० । १२ सेनावेला । १३ प्रवृद्धनिसारदुष्ट-नाथवंशसोमवंशविद्यालविधिन इत्यर्थः । १४ अस्मिन् लोके । १५ त अनिष्टते । १६ अक्रिणः । १७ सहामि । १८ अस्मलकीर्तिः । १९ मालाम् । २० स्वीकुर्याम् । २१ मृदून् । २२ विनाशितः । २३ इति उज्जगारेति सम्बन्धः । २४ सहायता । २५ समवायं सहायतो प्राप्ताः ।

तदा सर्वोपधाशुद्धो<sup>१</sup> मन्त्री जनपदादिभिः । अनवद्यमतिर्नाम लक्षितो मन्त्रिलक्षणैः ॥२२॥  
 धर्मयमयं यशस्सारं सर्वाद्यवमनिष्टुरम् । सुविचार्य वचो न्यात्यं पथं प्रोक्तुं प्रचक्रमे ॥२३॥  
 मही व्योम शशी सूर्यः सरिदीशोऽनिलोऽनलः । तदं स्वतिता थनाः कालो जगत्क्षेमविधायिनः<sup>२</sup> ॥२४॥  
 विषयासे विषयेति<sup>३</sup> भवतामनुवदत्यनाम् । वर्तते सद्विरेषो<sup>४</sup> हि व्यक्तं युष्मासु<sup>५</sup> तिष्ठते ॥२५॥  
 गुणाः क्रमादयः<sup>६</sup> सज्जं व्यस्तास्तेषु क्रमादिषु<sup>७</sup> । समस्तास्ते जगद्वृद्धयै<sup>८</sup> उक्तिणि त्वयि च स्थिताः ॥२६॥  
 व्यवस्थात्<sup>९</sup> स्वस्थितेः काले क्रचित्सेऽपिक्षमादयः । न स कालोऽस्ति यः कर्ता प्रच्युतेर्युवयोः<sup>१०</sup> स्थितेः ॥२७॥  
 सृष्टिः पितामहेनेव<sup>११</sup> सृष्टैनो<sup>१२</sup> तत्समर्पिताम्<sup>१३</sup> । पाति सन्नाद्<sup>१४</sup> पिता तेऽय<sup>१५</sup> तत्स्वासावमनुपलकाः ॥२८॥  
 देवमानुषवाधाभ्यः क्षतिः कर्त्यापि या क्षितौ । ममैवेदमिति समृद्धा समाधेयाः त्वयैव सा<sup>१६</sup> ॥२९॥  
 क्षतात् आयत इत्यासीत् क्षत्रोऽयं भरतेश्वरः । सुतस्तस्यौरसो<sup>१७</sup> ज्येष्ठः क्षत्रियस्वर्व<sup>१८</sup> तदादिभिः ॥३०॥  
 ततो न्यायाः प्रवर्तते भूतना ये पुरातनाः । तेऽपि त्वरपालिता एव मवन्त्यत्र युरातनाः ॥३१॥

ही राजा लोग उसके सहायक हो गये थे सो छोटे ही है क्योंकि पापकियाओंके प्रारम्भमें सहायता देनेवाले सुलभ होते हैं ॥२०—२१॥ उस समय जो सब उपधाओंसे शुद्ध हैं तथा जनपद आदि मन्त्रियोंके लक्षणोंसे सहित हैं ऐसा निर्दोषबुद्धिका धारक अनवद्यमति नामका मन्त्री अच्छी तरह विचारकर धर्मयुक्त, अर्थपूर्ण, यशके सारभूत, उत्तम, कठोरतारहित, न्यायरूप और हितकारी वचन कहने लगा ॥२२—२३॥ उसने कहा कि पृथिवी, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, समुद्र, चामु, अग्नि, तू, तेरा पिता, मेघ और काल ये सब पदार्थं संसारमें कल्याण करनेवाले हैं ॥२४॥ आप लोगोंमें उलट-पुलट होनेसे यह संसारकी सृष्टि उलट-पुलट हो जाती है और आपके अनुकूल रहनेसे अच्छी तरह विद्यमान रहता है इससे स्पष्ट है कि यह सृष्टि आप लोगोंपर ही अवलम्बित है ॥२५॥ क्षमा आदि गुण अलग-अलग तो पृथिवी आदिमें भी रहते हैं परन्तु इकट्ठे होकर संसारका कल्याण करनेके लिए चक्रवर्तीमें और तुलमें ही रहते हैं ॥२६॥ पृथिवी आदि पदार्थं किसी समय अपनी मयदिसे च्युत भी हो जाते हैं परन्तु ऐसा कोई समय नहीं है जो तुम दोनोंको अपनी मयदिसे च्युत कर सके ॥२७॥ तुम्हारे पितामह भगवान् वृषभदेवने इस कर्मभूमिरूपी सृष्टिकी रक्षा की थी, उनके द्वारा सीपी हुई इस पृथिवीका पालन इस समय तुम्हारे पिता भरत महाराज कर रहे हैं और उनके बाद इसका पालन करनेवाले तुम ही हो ॥२८॥ इस पृथिवीमें यदि किसीकी भी दैव या मनुष्यकृत उपद्रवोंसे कुछ हानि होती हो तो 'यह मेरी' ही है ऐसा समझकर आपको ही उसका समाधान करना चाहिए ॥२९॥ जो क्षत अथवा संकटसे रक्षा करे उसे क्षत्र कहते हैं, भरतेश्वर सबकी रक्षा करते हैं इसलिए वे क्षत्र हैं और तुम उनके सबसे बड़े औरस पुत्र हो इसलिए तुम सबसे पहले क्षत्रिय हो ॥३०॥ इस संसारमें नवीन न्याय तुमसे ही प्रवृत्त होते हैं और जो पुरातन अथवा प्राचीन हैं वे तुम्हारे द्वारा पालित होकर ही पुरातन कहलाते हैं । भावार्थ-आपसे नवीन न्याय मर्गकी प्रवृत्ति

१ धर्मधैकामभयेषु व्याजेन परचित्तपरोक्षणमुपया तथा शुद्धः । 'उपधा धर्मद्यैर्त्वरीक्षणम्' इत्यभिवानात् ।  
 २ जनपदभवनृपुरजनादिभिः । ३ लोकस्य क्षेमकारिणः । ४ विषयासमेति । ५ जगत्सृष्टिः । ६ युष्मासु  
 महोप्रभृतिषु प्रकाथते । ७ क्षात्यवाणाहनसंहानसंतापहरणप्रकाशनादिगुणः । ८ विकलाः । एकेकस्मिन्नेकेकश  
 एवेत्यर्थः । ९ पृथिव्याकाशादिषु । १० जगद्वृद्धी प०, ल०, म० । ११ प्रच्युता भवन्ति । १२ भरतार्क-  
 कोत्योः । १३ पितृपित्रा आदिवृह्णणा । 'पितामहः पितृपिता' इत्यभिवानात् । १४ सृष्टा तां व०, स० ।  
 सृष्टयैतां इ०, प०, ल० । १५ आदिवृह्णणा विस्तीर्णम् । १६ चक्री । १७ सृष्टेः । १८ निवर्तनीया ।  
 १९ क्षतिः । २० उरसि भवः । साक्षात्सुतः न इत्तपुत्रः । २१ क्षत्राज्ञातः ।

सनातनोऽस्ति मार्गोऽयं श्रुतिस्मृतिषु मापितः । विवाहविधिभेदेषु वरिष्ठो<sup>१</sup> हि स्वयंवरः ॥३२॥  
यदि स्यात् सर्वसंग्राह्यो कन्यका पुण्यभाजनम् । अविरोधो<sup>२</sup> व्यधाययत्र ईकायसो विधिर्बुधैः ॥३३॥  
मध्यं महाकुलीनेषु<sup>३</sup> कंचिदेकमर्माप्सितम् । सलक्ष्मीकमलद्वीकं गुणितं गुणदुर्गतम् ॥३४॥  
विश्वं रूपिणं चापि वृणीतेऽसी विधेवशात् । न तथा समस्तरः कायैः शेषैऽव्यायोऽयमाद्याः ॥३५॥  
लङ्घ्यते यदि केनापि न्यायो रक्ष्यस्वयंवरं सः । नेत्रं तत्रोचितं चापि पाता स्यात्पारिपान्थिकः ॥३६॥  
मवल्कुलाचलस्योभी नाथसोमाद्यवौ पुरा । संरेत्निष्ठधर्मालौ वा सत्पश्चौ<sup>४</sup> पुरुषा कृता ॥३७॥  
सकलकृतिव्यज्येषु<sup>५</sup> गृज्योऽयं राजराजवत् । अकम्पनमहाराजो राजेव<sup>६</sup> ज्योतिषो गणैः ॥३८॥  
निर्विशेषं पुरोरेते मन्यते भरतेश्वरः । एत्यातिलक्ष्मनं प्रादुरुभये<sup>७</sup> ग्राञ्छुभावहम् ॥३९॥  
पश्य सादृशं प्रवायत्र सोमवंशोऽपि कथ्यते । धर्मतीर्थं भवद्वांशाद् दानतीर्थं<sup>८</sup> ततो यहः ॥४०॥  
पुरस्यरणमात्रेण श्लाघ्यं उक्तं क्रियां विभोः<sup>९</sup> । प्रायो दुस्ताधनसिद्धौ क्षापते जयमेव सः ॥४१॥  
<sup>१०</sup> एतस्य दिग्जये सज्जैर्दृग्येषु<sup>११</sup> वैष्णवैर्व्याप्तिः । अनेन<sup>१२</sup> चः कृतः प्रेषः<sup>१३</sup> धर्मतीर्थो ननु स त्वया ॥४२॥  
ज्ञात्वा<sup>१४</sup> समोऽव्यायोऽयोऽसी अस्तु विरुद्धिर्व्याप्तिः । इष्टसारः स्वसाध्येऽयं साधितार्थः किमुच्यते ॥४३॥

चलती है और पुराने न्यायमार्गकी रक्षा होती है ॥ ३१ ॥ विवाहविधिके सब भेदोंमें यह स्वयं-  
वर ही श्रेष्ठ है । श्रुतियों और स्मृतियोंमें कहा गया यह स्वयंवर ही सनातन ( प्राचीन ) मार्ग  
है ॥ ३२ ॥ यदि पुण्यके पात्र स्वरूप किसी एक कन्याकी वाचना सब मनुष्य करने लग जायें तो  
उस समय परस्परका विरोध दूर करनेके लिए विद्वानोंने केवल भास्यके अधीन हीनेवाली इस  
स्वयंवर विधिका विधान किया है ॥ ३३ ॥ बड़े-बड़े कुलोंमें उत्पन्न हुए पुरुषोंके मध्यमें वह  
कन्या भास्यवदा अपनी इच्छानुसार किसी एकको स्वीकार करती है चाहे वह लक्ष्मीसहित हो  
या लक्ष्मीरहित, गुणवान् हो या निर्गुण, सुरूप हो या कुरूप । अन्य स्त्रियोंकी इसमें ईर्ष्या नहीं  
करनी चाहिए क्योंकि यह ऐसा ही न्याय है ॥ ३४-३५ ॥ यदि किसीके द्वारा इस न्यायका  
उल्लंघन किया जाय तो तुम्हें ही इसकी रक्षा करनी चाहिए इसलिए यह सब तुम्हारे लिए  
उचित नहीं है । क्या कभी रक्षक भी चोर या शत्रु होता है ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार निष्पत्र और  
नील कुलाचल मेरूपर्वतके उत्तम पक्ष हैं, उसी प्रकार भगवान् आदिनाथने पहले नाथवंश और  
चन्द्रवंश दोनों ही आपके कुलरूपी पर्वतके उत्तम पक्ष अर्थात् सहायक बनाये थे ॥ ३७ ॥ जिस  
प्रकार चन्द्रमा समस्त ज्योतिषी देवोंके समूहके द्वारा पूज्य है उसी प्रकार समस्त क्षत्रियोंमें  
बड़े महाराज अकम्पन भी भरत चक्रवर्तीके समान सबके द्वारा पूज्य हैं ॥ ३८ ॥ महाराज भरत  
इन अकम्पनको भगवान् दृष्टभद्रेवके समान ही मानते हैं इसलिए तुम्हें भी इनके प्रति नम्रताका  
व्यवहार करना चाहिए क्योंकि पूज्य पुरुषोंका उल्लंघन करना दोनों लोकोंमें अकल्याण करने-  
वाला कहा गया है ॥ ३९ ॥ और देखो यह सोमवंश भी नाथवंशके समान ही कहा जाता है ।  
क्योंकि जिस प्रकार तुम्हारे वंशसे धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति हुई है उसी प्रकार सोमवंशसे दानतीर्थकी  
प्रवृत्ति हुई है ॥ ४० ॥ चक्रवर्तीका चक्ररत्न आगे-आगे चलने भावसे प्रशंसनीय अवश्य है  
परन्तु कठिनाईसे सिद्ध होने योग्य कायोंमें वे प्रायः जयकुमारकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ ४१ ॥

दिग्विजयके समय इसका पुरुषार्थं संसारमें सबने देखा था । उस समय इसने जो पराक्रम  
दिखाया था वह भी तुम्हें याद रखना चाहिए ॥ ४२ ॥ जिस योद्धामें शूरवीरपनेकी सम्भावना हो  
१ अतिषयेन वरः । २ कृतः । ३ - देक्षं समोप्सितम् ल०, म०, अ०, ४०, इ०, स० । ४ गुणदग्धम् ।  
५ रक्षकः । ६ सत्सहायी । सत्पश्चती च । ७ चक्रवर्त् । ८ चन्द्र इव । ९ समानम् । १० इहामृत च ।  
११ सोमवंशात् । १२ यतः कारणात् । १३ चक्रिणः । १४ चक्री । १५ जमस्य । १६ यः ल० । १७ बलानि-  
योगः । १८ भाविशीर्य इत्यर्थः ।

विना चक्राद् विना रत्नैर्मोग्येयं भ्रीस्त्वया उदा । जयाते<sup>१</sup> मानुषी<sup>२</sup> सिद्धिदैवी<sup>३</sup> पुण्योदयाश्चाथा ॥४४॥  
तृणकहोऽपि<sup>४</sup> संवादास्तव नीतिरित्यं कथम् । नाथेन्दुवंशावुच्छेदी उक्षया: साक्षादभुजायिती ॥४५॥  
वन्धुभृत्यक्षयादभूयस्तुभ्यं चक्र्यपि कुण्ठयति । अधर्मश्चायुगस्यायी वया स्वात् संप्रबर्तितम्<sup>५</sup> ॥४६॥  
परदारामिलाषस्य प्राथम्यं<sup>६</sup> मा वृथा कृथा<sup>७</sup> । अवश्यमाहताप्येषा न कन्या ते भविष्यति ॥४७॥  
सप्रतापं यज्ञः स्वास्तु जयस्य स्वाद्रहयंथा । तब रात्रिसिवाकीतिः स्थायिन्यत्र मलीमसा ॥४८॥  
सर्वमेलन्ममैवेति मा मस्था साधनं युधः<sup>८</sup> । बहवोऽप्यत्र भूपालाः सन्ति तत्पक्षणासिनः ॥४९॥  
पुरुषार्थत्रयं पुमिर्दुष्प्राप्यं तत्त्वयाऽर्जितम् । न्यायमार्गं समुलुक्ष्य वृथा लक्षित विनाशयेः ॥५०॥  
अकम्पनस्य सेनेशो जयः प्रागिव चक्रिणः । वीरलक्ष्यास्तुलारोहं सुधा एवं किं विधास्यसि ॥५१॥  
ननु न्यायेन वन्धोस्ते<sup>९</sup> बन्धुपुत्री समर्पिता । उत्सवे का पराभूतिरक्षमा<sup>१०</sup> परासवः ॥५२॥  
कन्यारजानि संख्यकं बन्धुन्यन्यानि भूमुजोम् । इह तानि सरजानि संवाधेण नैवामि ते ॥५३॥  
इति नीतिलतावृद्धिविधात्यपि वचः पवः । १२ व्याधात् तद्वेतसः क्षोभं तस्तैलस्य वा भूशम् ॥५४॥

राजाओंको जानकर उसका भी समान करना चाहिए फिर भला जिसका पराक्रम देखा जा चुका है और जिसने अत्यन्त असाध्य कार्यको भी सिद्ध कर दिया है उसकी तो बात ही क्या है ? ॥४३॥ आगे चलकर जिस समय बिना चक्र और बिना रत्नोंके यह लक्ष्मी तुम्हारे उपभोग करने योग्य होगी उस समय तुम्हारी देवी सिद्धि जिस प्रकार पुण्य कर्मके उदयसे होगी उसी प्रकार तुम्हारी मानुषी अर्थात् मनुष्योंसे होनेवाली सिद्धि जयकुमारसे ही होगी ॥ ४४ ॥ जब कि तृणके समान तुच्छ पुरुषकी भी रक्षा करनी चाहिए यह आपकी नीति है तब राज्य लक्ष्मीके साक्षात् भुजाओंके समान आचरण करनेवाले नाथ वंश और सोम वंश उच्छेद करने योग्य कैसे हो सकते हैं ? ॥४५॥ इन भाव्योंके समान सेवकोंका नाश करनेसे चक्रवर्ती भी तुमपर अधिक क्रोध करेंगे और पुगके अन्त तक टिकनेवाला यह अधर्म भी तुम्हारे-द्वारा चलाया हुआ समझा जायगा ॥४६॥ तुम्हें व्यर्थ ही परस्तीकी अभिलाषाका प्रारम्भ नहीं करना चाहिए क्योंकि यह निश्चय है, यह कन्या जबरदस्ती हरी जाकर भी तुम्हारी नहीं होगी ॥ ४७ ॥ जयकुमारका प्रताप सहित यश दिनके समान सदा विद्यमान रहेगा और तुम्हारी मलिन अकीर्ति रात्रिके समान सदा विद्यमान रहेगी ॥ ४८ ॥ ये सब राजा लोग युद्धमें मेरी सहायता करेंगे ऐसा मत समझिए क्योंकि इनमें भी बहुत-से राजा लोग उनके पक्षपाती हैं ॥ ४९ ॥ जो धर्म अर्थ और कामरूप तीन पुरुषार्थ पुरुषोंको अत्यन्त दुर्लभ हैं वे तुझे प्राप्त हो गये हैं इसलिए अब न्यायमार्गका उल्लंघन कर उन्हें व्यर्थ ही क्यों नष्ट कर रहे हो ॥ ५० ॥ यह जयकुमार जिस प्रकार पहले चक्रवर्तीका सेनापति बना था उसी प्रकार अब अकम्पनका सेनापति बना है तुम व्यर्थ ही वीरलक्ष्मीको तुलापर आरूढ़ क्यों कर रहे हो । भावार्थ – वीरलक्ष्मीको संशयमें क्यों डाल रहे हो ॥ ५१ ॥ निश्चयसे तेरे एक भाईकी पुत्री तेरे दूसरे भाईके लिए न्यायपूर्वक समर्पण की गयी है, ऐसे उत्सवमें तुम्हारा क्या तिरस्कार हुआ ? ही, तुम्हारी असहनशीलता ही तिरस्कार हो सकती है ? भावार्थ – हितकारी होनेसे जिस प्रकार जयकुमार तुम्हारा भाई है उसी प्रकार अकम्पन भी तुम्हारा भाई है । एक भाईकी पुत्री दूसरे भाईके लिए न्यायपूर्वक दी गयी है इसमें तुम्हारा क्या अपमान हुआ ? ही, यदि तुम इस बातको सहन नहीं कर सकते हो तो यह तुम्हारा अपमान हो सकता है ॥ ५२ ॥ सुलोचनाके सिवाय राजाओंके और भी तो बहुत-से कन्यारत्न हैं, रत्नलंकार सहित उन सभी कन्याओंको मैं आज तुम्हारे लिए यहाँ ला देता हूँ ॥ ५३ ॥ इस प्रकार

१ तब । २ पुरुषकृता । ३ रक्षणीयः । ४ संप्रबर्तिः स०, ल०, अ०, प०, इ० । ५ प्रथमत्वम् । ६ मा कार्यः । ७ युद्धस्य । ८ तब । ९ असहमानता । १० प्रापयामि । ११ व्याधात् ल० ।

सर्वमेलत् समाकृप्य दुष्टि कर्मानुसारिणीम् । स्वष्टयश्चिव दुर्बुद्धिरिति प्राप्याह मारतीम् ॥५५॥  
अस्ति स्वयंवरः पर्यथाः परिणीतो<sup>१</sup> चिरन्तमः । पितामहकृतो मात्मो वयोज्येष्टस्यकम्पनः ॥५६॥  
किञ्चु सोऽयं जयस्नेहात्तस्योल्कर्यं चिकीपुंकः । स्वसुतायाश्च सीमाभ्यप्रतीतिप्रविधिसुकः ॥५७॥  
सर्वभूपालसंदोहसमाविभागितीश्यात्<sup>२</sup> । स्वयं चक्रीयितुं<sup>३</sup> चैव र्यधत्त कपटं शाढः<sup>४</sup> ॥५८॥  
प्राक्समथिंतमन्त्रेण<sup>५</sup> प्रदायास्मै स्वचेतसा । कृतसंकेतया माला सुतयाऽरोपिता शृणा ॥५९॥  
युगादौ कुलवृद्धेन<sup>६</sup> मायेयं संप्रब्रतिता । मयाय यशोपेक्षेत<sup>७</sup> करुणते दैव वायंते ॥६०॥  
न चक्रिणोऽपि कोपाय स्यादन्यायनिषेषमम् । प्रवर्तयत्यसौ दण्डं भव्यत्यन्यायवर्तिनि ॥६१॥  
जयोऽप्येव<sup>८</sup> समुत्सैऽस्तपद्ग्रेन<sup>९</sup> च मालया । प्रतिस्वं लब्धसम्भो<sup>१०</sup> मां करोया<sup>११</sup> रमभक्तपुरा ॥६२॥  
<sup>१२</sup> समूलतूलमुच्छिष्य सर्वद्विषममुं युधि । अमुरागं जनिष्यामि राजन्यानां मयि स्थिरम् ॥६३॥  
द्विधा भवतु वा मा वा वलं ते न किमागुणः<sup>१३</sup> । मालां प्रथानविद्यन्ति जयवधी विभिष्य मे ॥६४॥  
नाहं सुलोचनार्थस्मि मस्तरी<sup>१४</sup> मच्छरैरयम्<sup>१५</sup> । <sup>१६</sup> परासुरद्वैष स्यात् किं मे विधवया त्वया ॥६५॥

अनवद्यमति भन्त्रीका वचनरूपी जल यद्यपि नीतिरूपी लताको बढानेवाला या तथापि उसने  
तरे हुए तेलसे लालाह अकंकीतिके लिज्जको और भी अधिक धोभित कर दिया था ॥५४॥  
यह सब सुनकर 'बुद्धि कर्मोंके अनुसार ही होती है,' इस बातको स्पष्ट करता हुआ वह दुर्बुद्धि  
इस प्रकार बचन कहने लगा ॥५५॥ मैं मानता हूँ कि विवाहकी विधियोंमें स्वयंवर ही पुरातन  
मार्ग है और यह भी स्वीकार करता हूँ कि हमारे पितामह भगवान् वृषभदेवके द्वारा स्थापित  
होने तथा वयमें ज्येष्ठ होनेके कारण अकम्पन महाराज मेरे मात्य हैं परन्तु वह जयकुमारपर  
स्नेह होनेसे उसीका उत्कर्ष करना चाहता है और सबपर अपनी पुत्रीके सीमायकी प्रतीति  
करना चाहता है । समरत राजाओंके समूहके द्वारा प्रकट हुए बड़पनसे अपने आपको चक्रवर्ती  
बनानेके लिए ही उस मूर्खने यह कपट किया है ॥ ५६-५८॥ 'यह कन्या जयकुमारको ही देनी  
है' ऐसी सलाह अकम्पन पहले ही कर चुका था और उसी सलाहके अनुसार अपने हृदयसे  
जयकुमारके लिए कन्या दे भी चुका था परन्तु यह सब छिपानेके लिए जिसे पहले ही संकेत  
किया गया है ऐसी पुत्रीके द्वारा उसने यह माला झूठमूठ ही डलवायी है ॥५९॥ युगके आदिमें  
उच्चकुलीन अकम्पनके द्वारा की हुई इस मायाकी यदि आज मैं उपेक्षा कर द्दूँ तो फिर कल्प-  
कालके अन्त तक भी इसका निवारण नहीं हो सकेगा ॥ ६०॥ अन्यायका निराकरण करना  
चक्रवर्तीके भी क्रोधके लिए नहीं हो सकता क्योंकि जब मैं अन्यायमें प्रवृत्ति कर बैठता हूँ तब  
वे मुझे भी तो दण्ड देते हैं । भावार्थ—चक्रवर्ती अन्यायको पसन्द नहीं करते हैं, और मैं भी  
अन्यायका ही निराकरण कर रहा हूँ इसलिए वे मेरे इस कार्यपर क्रोध नहीं करेंगे ॥६१॥  
यह जयकुमार भी पहले वीरपटू बौधनेसे और अब मालाके पड़ जानेसे बहुत ही अभिमानी हो  
रहा है । यह छिद्र पाकर पहलेसे ही मेरे लिए कुछ-न-कुछ आरम्भ करता ही रहता है ॥६२॥  
यह सबका शत्रु है इसलिए पुग्यमें इसे आमूलचूल नष्ट कर सब राजाओंका स्थिर प्रेम अपनेमें  
ही उत्पन्न करूँगा ॥६३॥ सेना फूटकर दो भागोंमें विभक्त हो जाय अथवा न भी हो, उससे  
मुझे क्या ? मेरे बाण ही जयकुमारका वक्षःस्थल भेदन कर वरमालाको ले आवेंगे ॥६४॥ मैं  
सुलोचनाको भी नहीं चाहता क्योंकि सबसे ईर्ष्या करनेवाला यह जयकुमार मेरे बाणोंसे अभी  
१ विवाहे । २ अम्बुदयं प्राप्यमाश्रित्य । ३ चक्रोत्तराचरितुम् ॥ ४ मयावी । ५ दृष्टा । ६ अकम्पन ।  
७ -पेषेत ल० । ८ -प्येत ल० । ९ गवितः । १० वीरपटैन । ११ प्राप्तादसरः । १२ व्यापारम् । १३  
कारणसहितम् । १४ शराः । १५ मरसरवान् । १६ मम बाणः । १७ गतप्राणः । 'परासुप्राप्तपंचतथपरेतप्रेत-  
संस्थितः ।' इत्यमिथानात् ।

दुराचारनिषेधेन त्रयं धर्मादि वर्धते । कारणे सति कार्यस्य किं हानिर्दृश्यते प्रवचित् ॥६३॥  
 त्रयो मे विक्रमस्यास्ता॑ शरस्याप्यन्न न व्ययः । वधे प्रस्तुत धर्मः स्याद् तुष्ट्याहः॒ कुलो भवेत् ॥६४॥  
 कोर्तिर्विद्यात्तकीर्तेऽनार्ककीर्तेविनश्छृप्ति॑ । अकीर्तिर्विद्यायार्थी स्यादुत्थायस्यानिषेधनात् ॥६५॥  
 तस्य॑ मेऽवशासः कीर्तेभवद्भिर्युदाहृतम्॑ । भवेत्स्यत्यसंवादि॑ शीतकोऽस्मयन् यथाहम् ॥६६॥  
 यृथमाप्वं ततस्तूण्णीमुर्णकोऽहमिदं प्रति । धर्म्यमर्थं चशस्यं च मा निषेधि॑ हितैषिभिः ॥६७॥  
 पूर्वं मन्त्रिग्रामुलुकृष्ण कुर्खीर्वा तु प्रेहादितः॑ । सेनापतिं समाहृय प्रत्यासाप्तपराभवः ॥६८॥  
 कथयित्वा महीशासां सर्वेषां रणनिश्चयम् । भेरीमास्फालथामास जगत्प्रयभयप्रदाम् ॥६९॥  
 अनुभेरीत्वं साशः सत्याषाम्य॑ महीभुजाम् । नददभटभुजास्फोटचदुलारात्॑ निभुरः ॥७०॥  
 करिकण्डफुटोद्घोषघणटाटङ्गारमैरवः । जितकण्डीरवारावहयहेषाविभीषणः ॥७१॥  
 षलद्वरिक्षुरोद्घवक्षोरध्वाननिर्भरः । पदातिपद्मति॑ प्रोद्धभूरिभूर्स्वभीवहः॑ ॥७२॥  
 ७३ स्फन्दस्यन्दनचक्रोथपृथुचीर्कारभीकरः । धनुः सजीक्षियासक्तगुणास्फालनकर्कशः ॥७३॥  
 प्रतिष्वनितदिग्भस्त्वर्वनकभयानकः । षलकोलाहलः कालभित्राहातुं समुद्धतः ॥७४॥

ही मर जावेगा तब उस विधवासे मुझे क्या प्रयोजन रह जावेगा ॥६५॥ दुराचारका निषेध करनेसे धर्म आदि तीनों बढ़ते हैं, क्योंकि कारणके रहते हुए क्या कहीं कार्यकी हानि देखी जाती है ? ॥६६॥ इस काममें मेरे पराक्रमका नाश होना तो दूर रहा मेरा एक बाण भी खर्च नहीं होगा बल्कि दुष्के मारनेमें धर्म ही होगा, पाप कहासे होगा ? ॥६७॥ ऐसा करनेसे प्रसिद्ध कीर्तिवाले मुझ अर्ककीर्तिकी कीर्ति भी नष्ट नहीं होगी परन्तु हाँ, यदि इस अन्यायका निषेध नहीं करता हूँ तो किसीसे निवारण न करने योग्य मेरी अपकीर्ति अवश्य होगी ॥६८॥ तुमने जो मेरी अपकीर्ति और उसकी कीर्ति होनेका उदाहरण किया है सो यदि मैं इस विषयमें मन्दो-द्वारोगी हो जाऊँ तो यह आपका निरूपण सत्य हो सकता है ॥६९॥ इसलिए तुम लोग चुप बैठो, मैं इस कार्यमें उछल हूँ – क्रोधसे उत्तेजित हूँ । हित चाहनेवालोंको धर्म, अर्थ तथा यश बढ़ाने वाले कार्योंका कभी निषेध नहीं करना चाहिए ॥७०॥ इस प्रकार जिसका पराभव निकट है और जो खोटे हठसे युक्त है ऐसे दुर्विद्धि अर्ककीर्तिने मन्त्रीका उल्लंघन कर सेनापतिको बुलाया और सब राजाओंसे युद्धका निश्चय कहकर तीनों लोकोंको भय उत्पन्न करनेवाली मेरी बजवायी ॥७१-७२॥ जो राजाओंके प्रत्येक डेरेमें भेरीके शब्दोंके साथ ही साथ बहुत शीघ्र नाचते हुए योद्धाओंकी भुजाओंकी ताढ़नासे उत्पन्न होनेवाले चंचल शब्दोंसे कठोर है, जो हाथियोंके गलोंमें रूपष्ट रूपसे जोर जोरका शब्द करनेवाले घण्टाओंकी टकारसे भयंकर है, जो सिंहोंकी गर्जनाको जीतनेवाले घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे भीषण है, जो चलते हुए घोड़ोंके खुरोंके संघटनसे उठनेवाले कठोर शब्दोंसे भरा हुआ है, जो पैदल सेनाके पैरोंकी चोटसे उत्पन्न हुए पृथिवीके बहुत भारी शब्दों-से भयंकर है, जो चलते हुए रथोंके पहियोंसे उत्पन्न होनेवाले बहुत भारी चीलकार शब्दों-से भय पैदा करनेवाला है, जो धनुष तैयार करनेके लिए लगायी हुई डोरीके आस्फालनसे कठोर है, जिसने दिशारूपी दीवालोंको प्रतिष्वनिसे युक्त कर दिया है और जो सब प्रकारके नगाड़ोंसे भयानक हो रहा है ऐसा बहुत भारी सेनाका कोलाहल उठा सो ऐसा जान पड़ता

१ आस्तां तावदित्यव्याहारः । २ पापः । ३ विनाशमेष्यति । ४ जयस्य । ५ यदुदाहरणम् । ६ सत्येन अविष्वरी-तप्रतिष्वस्तिकम् । सत्येन एकवार्षीयेत वा । ७ मन्दः । ८ पटुः । ९ दक्षे तु चतुरपेशलपटवः सुत्यान ओष्णद्वच्च दृष्ट्यभिवानात् । १० न निषिद्धते स्म । ११ स्वीकृतः । १२ शिविरं प्रति शिविरं प्रति । १३ नवस्थिता । १४ छवनिः । १५ पादहतिः । १६ भूमिष्वनिना भयंकरः । १७ चलत् ।

शिक्षिताः कलिनः दूराः शूराहृष्टाः सकेतवः । गजाः समन्तात् सक्षाह्याः<sup>१</sup> प्राक्चेलुरचलोपसाः ॥७८॥  
सुरभ्रमास्तरहास्याः सख्यामाध्ये नयमैकाः<sup>२</sup> । अनुदम्भि नदन्तोऽयान्<sup>३</sup> विक्रामन्तः<sup>४</sup> समस्ततः ॥७९॥  
सचक्रं<sup>५</sup> धेहि संयोज्य सधुर्<sup>६</sup> प्राज वाजिमः । इति<sup>७</sup> संभ्रमिणोऽपातन्<sup>८</sup> रथासुदनु सध्वजाः ॥८०॥  
चण्डाः कोदण्डकुम्भामिग्राम्य चक्रादिभीकराः । यान्ति स्मानुरथं कुदा रुदिककाः पद्मतयः ॥८१॥  
उद्धर्म्भस्तुतदीकृत्य, ताहो<sup>९</sup> चालं रथं रथः । पदावयव्युत्पाद्यान्तं संभ्रमाचिर्युद्धे<sup>१०</sup> ॥८२॥  
आरुडानेकपानेकभूषालपरिवारितः । मेरीनिदुरनिर्वौषभीचिताशीषदिग्दिपः ॥८३॥  
चक्रच्छजं समुद्याम्य सम्यगाविष्कृतोक्षिः । गजं विजयघोषालयमाह्यादिवरोक्तम् ॥८४॥  
अर्ककीर्तिर्वहिभास्त्रदस्यु<sup>११</sup> धृतभद्राकृतः । ज्योतिःकुलाचलैर्किर्द्वचालाभ्यचलाधिपम्<sup>१२</sup> ॥८५॥  
किंवदन्ती<sup>१३</sup> विद्विवैतो भूपो भूत्वा कुलाकुलः<sup>१४</sup> । स्वालोदित<sup>१५</sup> च कर्तव्य<sup>१६</sup> विधिना क्रियनेऽन्यथा ॥८६॥  
इति स्वसचिवैः साध्यामालोच्य च यथादिमिः । प्रत्यक्कीर्त्ययो<sup>१७</sup> दिक्षदै<sup>१८</sup> दूतं संप्राप्य सखवतम् ॥८७॥  
कुमार तव कि युक्तमेवं सीमालिलङ्कनम् । प्रसीद प्रलयो<sup>१९</sup> दूरं सम्भा कार्यं शृष्टवागमम् ॥८८॥

था मानो कालको बुलानेके लिए ही उठा हो ॥ ७३-७७ ॥ उस समय जो शिक्षित हैं, बलवान् हैं, शूरवीर हैं, जिनपर योद्धा बैठे हुए हैं, पताकाएं फहरा रही हैं, जो सब तरहसे तैयार हैं और पर्वतोंके समान ऊँचे हैं ऐसे हाथी सब औरसे आगे-आगे चल रहे थे ॥ ७८ ॥ जो संग्रामल्पी समुद्रकी लहरोंके समान हैं, कबच पहने हुए हैं, हीस रहे हैं और कूद रहे हैं ऐसे घोड़े उन हाथियोंके पीछे-पीछे चारों ओर जा रहे थे ॥ ७९ ॥ पहिये जलदी लगाओ, धुराको ठीक कर जलदी लगाओ, इस प्रकार कुछ जलदी करनेवाले, तथा जिनमें शीघ्रगामी चोड़े जुते हुए हैं और ध्वजाएं फहरा रही हैं ऐसे रथ उन घोड़ोंके पीछे-पीछे जा रहे थे ॥ ८० ॥ उन रथोंके पीछे धनुष, भाला, तलवार, प्रास और चक्र आदि शस्त्रोंसे भयंकर, फैलकर सब दिशाओंको रोकनेवाले, क्रोधी और बलवान् पैदल सेनाके लोग जा रहे थे ॥ ८१ ॥ उस समय हाथी हाथीको, धोड़ा धोड़ाको, रथ रथको और पैदल पैदलको धक्का देकर युद्धके लिए जलदी-जलदी जा रहे थे ॥ ८२ ॥ तदन्तर - हाथियोंपर चढ़े हुए अनेक राजाओंसे घिरा हुआ, नगाड़ोंके कठोर शब्दोंसे समस्त दिग्गजोंको भयभीत करनेवाला, चक्रके चिह्नवाली ध्वजाको ऊँचा उठाकर अपनी ऊँचाईको अच्छी तरह प्रकट करनेवाला और चमकीली तलवार हाथमें लिये हुए योद्धाओंसे आवृत अर्ककीति, मेरु पर्वतके समान उत्तम विजयघोष नामक हाथीपर सबार हो अचलाधिप ( अचला अधिप ) अर्थात् पृथ्वीके अधिपति राजा अकम्पनकी ओर इस प्रकार चला मानो ज्योतिर्मण्डल और कुलाचलोंके साथ-साथ सूर्य ही अचलाधिप ( अचल अधिप ) अर्थात् सुमेरुकी ओर चला हो ॥ ८३-८५ ॥ महाराज अकम्पन यह बात जानकर बहुत ही अ्याकुल हुए और सोचने लगे कि अच्छी तरह विचारकर किया हुआ कार्य भी दैवके हारा उलटा कर दिया जाता है । इस प्रकार उन्होंने अपने मन्त्री तथा जयकुमार आदिके साथ विचारकर अर्ककीतिके प्रति शीघ्र ही एक शीघ्रगामी दूत भेजा ॥ ८६-८७ ॥ दूतने जाकर कहा कि हे कुमार, क्या तुम्हें इस प्रकार सीमाका उल्लंघन करना उचित है ? प्रलयकाल अभी दूर है इसलिए प्रसन्न हूजिए । १ संतद्वा: कृताः । २ सनुवसहिताः । ३ इलिनी पदचात् । ४ इवनन्तः । ५ अगच्छन् । ६ लक्ष्मनं कुर्वन्तः । ७ चक्रेण सह किञ्चिद् धेहि धारय । ८ धुरा सह किञ्चिद् धेहि । ९ प्रेरय । १० आशुप्रवान्वने प्रयुक्ताः । त्वरावन्तः । ११ अगच्छन् । १२ अपदः । 'वाहोऽस्वस्तुरणो वाजी हयो धर्यतुरंगम्' इति वर्णशयः । १३ संग्रामनिमित्तम् । १४ उद्घृतात्मि । १५ अकम्पन महराज प्रति । मेरु च । १६ जनवार्ताम् । १७ अधिकाकुलः । १८ सुख्वालोचितम् । १९ कार्यम् । २० अर्ककीति प्रति । २१ प्राहिणोत् । २२ प्रलयः षष्ठकालान्ते भवतीत्यागमम् । मृपा मा कुरु ।

इनि सामाविभिः १ स्वोक्तैरशान्तमवगम्य तम् । प्रत्येत्य तत्था सर्वं साखवाजीं गमन्तपम् ॥४५॥  
 २ काशिराजसन्दाकर्ण्य विषादविलिताशयः । महामोहाहितो वाऽसीद् युधकार्ये को न सुदृष्टिः ॥४६॥  
 ३ अत्र चिन्त्यं न वः किंचिन्न्यायस्तेनैव लक्षितः । ४ तिष्ठते हृष्टं संरक्ष्य सुनियुक्ताः सुलोचनाम् ॥४७॥  
 ५ इदानोभेव दुर्दृशं शङ्कलालिङ्गनोऽसुकम् । शाखास्त्रुगमिवानेष्ये वज्रा दाराततायिनम् ॥४८॥  
 ६ इत्यदीर्घं जयो मेघकुमारविजयार्जितम् । मेघघोषमिधां भेरी ७ प्रष्ठेनास्फोटवद् रुषा ॥४९॥  
 ८ द्रोणादिप्रक्षयारम्भवनाधनवनप्यनिम् । तदृवनिष्ठ्यापि निर्जित्य निर्भिष्य हृदयं द्विषाम् ॥५०॥  
 ९ तत्र वारुणीनाद् शूर्णितार्णवप्रक्षिमे १० वले । ११ अतिवेलोक्यवोऽत्रासीदुल्पवो विजये १२ वथा ॥५१॥  
 १२ तदोद्भिष्यकऽशतप्रक्षरन्मदपायिनः । रथमदेनैव मातङ्गाः प्रोक्तुङ्गाः प्रोन्मदिष्याः ॥५२॥  
 १३ सुस्वनन्तः खनन्तः खं वाजिनो वायुरंहसः १४ । कृतोऽसाहो १५ रणोऽसाहाद् रेतुस्तजस्तिता हि सा ॥५३॥

और आगमको छूठा भत कीजिए । भावार्थ—लक्षकर असमयमें ही प्रलय काल न ला दीजिए । दूतने इस प्रकार बहुत-से साम, दान आदिके बचन कहे परन्तु तो भी उसे अशान्त जानकर वह लौट आया और शीघ्र ही ज्योंके त्यों सब समाचार अकम्पनसे कह दिये ॥ ८८-८९ ॥ उन समाचारोंको सुनकर काशीराज अकम्पनका चित्त विषादसे विचलित हो उठा और वे स्वयं महामोहसे मूर्छित हो गये सो ठीक ही है क्योंकि बुरे कामोंमें कौन मूर्छित नहों होता ॥९०॥ जयकुमारने अकम्पनको चिन्तित देखकर कहा कि इस विषयमें हम लोगोंको कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए क्योंकि न्यायका उल्लंघन उसीने किया है, आप सावधान होकर सुलोचनाकी रक्षा करते हुए यहीं रहिए । दुराचारी, स्त्रियोंपर उपद्रव करनेवाले और इसलिए ही साँकिलोंसे आलिंगन करनेकी इच्छा करनेवाले उस अर्ककीतिको बन्दरके समान बाविकर में अभी लाता हूँ ॥९१-९२॥ इस प्रकार कहकर जयकुमारने क्रोधमें आकर, युद्धमें आगे जानेवाले पुरुषके द्वारा मेघकुमारोंको जीतनेसे प्राप्त हुई मेघघोषा नामकी भेरी बजवायी ॥९३॥ प्रलयकालके प्रारम्भमें प्रकट होनेवाले द्रोण आदि मेघोंकी धोर गर्जनाको जोतकर तथा शत्रुओंका हृदय विदारण कर वह भेरीकी आवाज सब और फैल गयी ॥ ९४ ॥ जिस प्रकार शत्रुके विजय करनेपर उत्सव होता है उसी प्रकार उस भेरीका शब्द सुनकर लहराते हुए समुद्रके समान चंबल जयकुमारकी सेनामें माला डालनेके उत्सवसे भी कहीं अधिक उत्सव होने लगा ॥९५॥ उस समय फटे हुए गण्डस्थलके समीपसे झरते हुए मदका पान करनेवाले और अपने उसी मदसे ही मानो उन्मत्त हुए ऊँचे-ऊँचे हाथी युद्धके उत्साहसे सुशोभित हो रहे थे । तथा इसी प्रकार अच्छी तरह हीसते हुए, पेरोंसे आकाशकी खोदते हुए और वायुके समान वेगवाले उत्साही घोड़े भी युद्धके उत्साहसे सुशोभित हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि उनका तेजस्वीपना

१ सोकर्तः २० । वचनसहितः । २ शीघ्रं शापितवाम् । ३ अकम्पनः । ४ महासूच्छिर्गृहीत इत । ५ अत्र कार्ये । ६ अर्ककीतिनैव । ७ निवसते । ८ राजभवने । ९ सावधानाः भूत्वा । १० दाराततायनम् २० । दारेषु कृतागमनम् । स्त्रीनिमित्तमागतमर्ककीतिप्रित्यर्थः । दारातहायिनमिति पाठे दारार्थं वधोद्यतम् । 'आत-ताधी वधोद्यतः' इत्यभिष्यानात् । ११ अग्रगामिना पुरुषेण । १२ आस्फालनं कारयति स्म । प्रष्ठेनास्फालयद् ल०, अ०, प०, इ०, स० । १३ द्रोणादि द्रोणकालपुष्करादि । प्रक्षयारम्भं प्रलयकालप्रारम्भं । द्रोणादयश्च ते प्रक्षयारम्भवनाधनास्तेषां षडनिम् । १४ अप्यनीति स्म । १५ समाने । 'प्रतिमानं प्रसिद्धिम्बं प्रतिमा प्रतिमानना प्रतिच्छाया । प्रतिरुद्दिरच्च पुंसि प्रतिमित्यरूपमानं स्यात् ।' १६ अधिकोत्सवः । 'अतिवेलभृशात्यर्थातिमानं पाइनिर्भरम्' इत्यभिष्यानात् । अतिमालोत्सवो ल०, अ०, प०, इ० । १७ दिविव्यये । १८ पवनवेगः । १९ कृतोद्योगाः ।

रथाः प्रागित्रै पर्यासाः पूर्णसर्वायुधायुधः ३। महावाहसमायुक्ताः प्रत्यक्षतंकुवाहवः ॥१५॥  
 शोषितोऽप्यभद्रायन्ते पाद्यान् संयुगं प्रति ४। ततः ५ प्रतिक्षलात्मकं भूयासो द्वा पदात्यः ॥१६॥  
 षष्ठीमानो अनिस्तर्येण रणरहे मविष्यतः । वीरलक्ष्मीप्रवृक्षस्य प्रोद्ययौ गुणयजिव ६ ॥१००॥  
 षष्ठीमानो अनिस्तर्येण रणरहे मविष्यतः । वीरलक्ष्मीप्रवृक्षस्य प्रोद्ययौ गुणयजिव ७ ॥१०१॥  
 सामर्ज विजयाद्वायन्ते निजयाद्वायन्ते निजयाद्वायन्ते । अहुशो दृष्टसंग्रामं ८ गजधरजथिराजितम् ॥१०२॥  
 अधिष्ठाय ९ जयः सर्वसाधनेन सहायुजः । निर्जगाम युगश्रान्तकाललीला चिलकृयन् ॥१०३॥  
 कुर्वन्ती शान्तिरूपां स्वं लिष्ट मात्रेति १० साइरम् । ग्रदेश्य चैत्यधामाप्रवृत्ते सुतां नित्यमनोहरम् ॥१०४॥  
 समग्रदलसंपर्श्या चचालं चलयजिलाम् ११। अकम्पः कम्पितारातिः १२ साकम्पनिरकम्पनः ॥१०५॥  
 सुकेनुः सूर्यमित्रालयः श्रीधरो जप्तवर्षणा । देवकीहिंजयं जगमुरिति भूपाः ससाधनाः ॥१०६॥  
 इसे मुकुटबद्देषु पञ्च विलयात्कीर्तयः । परे च शूरा नाथेन्दुवंशगृहाः १३ समाययुः ॥१०७॥  
 संदर्भात्मका चरित्रात्मित्रवामः प्रसिद्धिकल्पः । विजायलोकुतः सार्वमर्द्देविद्याधरैरगात् ॥१०८॥

बही था ॥९६-९७॥ जो सब प्रकारके शस्त्रोंसे पूर्ण हैं, जिनमें बड़े-बड़े धोड़े जुते हुए हैं, और जिनकी छवजारुपी भुजाएं नृत्य कर रही हैं ऐसे युद्धके रथ पहलेके समान ही सब ओर फैल रहे थे ॥९८॥ जयकुमारकी सेनामें युद्धमें चतुर होनेके कारण स्त्रियाँ भी योद्धाओंके समान आचरण करती थीं इसलिए अन्य राजाओंकी अपेक्षा उसकी पैदल सेनाकी संख्या अधिक थी ॥९९॥ उस समय जो बाजोंका शब्द बढ़ रहा था वह ऐसा जान पड़ता था मानो रणके मैदान-में जो वीरलक्ष्मीका उत्तम नृत्य होनेवाला है उसे कई गुना करता हुआ ही बढ़ रहा हो ॥१००॥

तदनन्तर—जो बनमें उत्पन्न हुआ है, वय, शिक्षा और अच्छे-अच्छे लक्षणोंसे जिसका शरीर देखने योग्य है, जिसका स्वभाव अच्छा है, शरीर अच्छा है, जो कामवान् है, जिसके मद ज्ञान रहा है, जिसने अनेक बार युद्ध देखे हैं, जो हाथीके चिह्नबाली धजाओंसे सुशोभित है और दूसरे विजयार्थ पर्वतके समान जान पड़ता है ऐसे विजयार्थ नामके हाथीपर सवार होकर वह जयकुमार सब सेना और सब छोटे भाइयोंके साथ-साथ युगके अन्त कालकी लीलाको उल्लंघन करता हुआ निकला ॥१०१—१०३॥ इधर शत्रुओंको कम्पित करनेवाले और स्वयं अकम्प ( निश्चल ) रहनेवाले महाराज अकम्पनने भी ‘तू अपनी माताके साथ आदरपूर्वक शान्ति-पूजा करती हुई बैठ’ इस प्रकार कहकर पुत्री सुलोचनाको नित्यमनोहर नामके उत्तम चेत्यालय-में पहुँचाया और स्वयं अपने पुत्रोंको साथ लेकर समस्त सेनारूपी सम्पत्तिके हारा पृथिवीको कैपाते हुए निकले ॥१०४—१०५॥ सुकेतु, सूर्यमित्र, श्रीधर, जयवर्मा और देवकीति ये सब राजा अपनी-अपनी सेनाओंके साथ जयकुमारसे जा मिले ॥ १०६ ॥ भुकुटबद्ध राजाओंमें जिनकी कीति अत्यन्त प्रसिद्ध है ऐसे ऊपर कहे हुए सुकेतु आदि पाँच राजा तथा नाथवंश और सोमवंशके आश्रित रहनेवाले अन्य शूरवीर लोग, सभी जयकुमारसे आ मिले ॥१०७॥ जिसने अपनो तीक्ष्ण तलवारकी प्रभासे आकाशतलको व्याप्त कर लिया है और जो विद्याके बलसे

१ दिभिंजये यथा । २ समन्तात् प्राप्ताः । पर्यस्ताः ल० । ३ रणस्य । पूर्णसर्वायुधं इति समस्तपदपक्षे  
पूर्णसर्वायुधानि च भट्टाश्च येषु ते । ४ भट्टा इवाच्चरिताः । ५ युद्धं प्रति । ६ तपः कारणात् । ७ प्रतिबंले  
विसोष्यमाने सतीत्यर्थः । ८ जयकुमारद्वये । ९ इव । १० अतिशायं कुर्वन्निव । ११ दशनीयमूर्तिम् ।  
१२ सुघमणिं सुखमणिं अ०, प०, स०, इ० । सुधमणिं सुखमणिं ल० । १३ शोभनस्वभावम् । १४ आरोह-  
कस्य बशाक्तिगमनवन्तम् । १५ गजस्त्रवज्ज । १६ आरुहा । १७ जनन्या सह । १८ श्रेष्ठम् । १९ भूमिम् ।  
२० अहम्पत्तस्यापस्थानि आक्षयनयस्ते सहितः । २१ नाथवैशासोमवंशश्रिताः ।

बलं विभज्य भूमांगे विशाले सकलं समे । मकरव्यूहं<sup>१</sup> विदीधियलघस्मरः<sup>२</sup> ॥१०८॥  
 उच्चैरजितनद्योत्तिर्विनिर्विजिवोपर्भाषणः<sup>३</sup> । जितमेघश्वरो गर्जत् रेजे मेघस्वरस्तदा ॥११०॥  
 चक्रव्यूहं<sup>४</sup> विभक्ताः मभूप्रिसाथश्वरस्तदा । अर्कज्ञातिरिक्षभूतिर्विश्विकाहैताकिंद्रतः ॥१११॥  
 कुद्राः खं खेचराधीशाः सुनमिप्रसुखाः पृथक् । गरुडव्यूहमापाय तरसुधकिसुताजया ॥११२॥  
 अष्टचन्द्राः<sup>५</sup> खगाः खयाताक्रिणः परितः सुतम् । शरीररक्षकरेत्तेजुविद्यामदाद्रिताः ॥११३॥  
 अकालप्रलयः इम्भृत्स्तिर्विजितम् । निर्जित्य तर्णं त्याणि दृष्टवनुः सेनयोः समम् ॥११४॥  
 धानुषकैमर्गिणैमर्गिणः समरस्य पुरस्तरैः । प्रदर्तस्यितुमारेभे द्योद्योषैः सवलिगतम् ॥११५॥  
 यग्रामनाऽकारभूत्यदात धनुर्यंताः । रणकुं विशमित सम गत्त्वायूपुरस्परम् ॥११६॥  
 आदध्य रुदानके<sup>६</sup> एवं रणस्त्रे धनुर्धरैः । पुष्पालिलिरिव व्यस्तो<sup>७</sup> मुक्तः<sup>८</sup> शितशसेकरः ॥११७॥  
 सीक्षणा ममाण्यभिजनन्तः पूर्वं कलहकारिणः । पश्चात्प्रवेशिनः<sup>९</sup> शक्वत् खलवदा<sup>१०</sup> धनुर्दृशः ॥११८॥

उद्धत हो रहा है ऐसा मेघप्रभ नामका विद्याधर भी अपने आधे विद्याधरोंके साथ निकला ॥१०८॥ जो शत्रुओंकी सेनाको नष्ट करनेवाला है, बड़े-बड़े बाजोंके समूहसे निकलतो हुई आवाजके समान भयंकर है और जिसने अपनी आवाजसे मेघोंकी गर्जनाको भी जीत लिया है ऐसा जयकुमार उस समय विशाल और सम ( ऊँची-दीची रहित ) पृथ्वीपर अपनी समस्त सेनाका विभाग कर तथा मकरव्यूहको रचना कर गर्जता हुआ बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था ॥१०६--११०॥ उधर चक्रव्यूहकी रचना कर अपनी बहुत भारी सेनाके बीच खड़ा हुआ अर्ककीति भी पत्तिवेषसे युक्त सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥१११॥ क्रोधित हुए सुनमि आदि विद्याधरोंके अविष्टि भी गरुडव्यूहकी रचना कर चक्रवर्तीके पुत्र-अर्ककीतिको आज्ञासे आकाशमें अलग ही खड़े थे ॥११२॥ विद्याके मदसे उद्धत हुए आठ चन्द्र नामके प्रसिद्ध विद्याधर शरीररक्षकके रूपमें चारों ओरसे अर्ककीतिको सेवा कर रहे थे ॥११३॥ उन दोनों सेनाओंमें असामयिक प्रलयकालके प्रारम्भमें बढ़ती हुई मेघोंकी गर्जनाको जीतकर शीघ्र-शीघ्र एक साथ बहुत-से बाजे बज रहे थे ॥११४॥ युद्धके आगे-आगे जानेवाले और भयंकर गर्जना करनेवाले धनुर्धारी योद्धाओंने बाणों-द्वारा अपना मार्ग बनाना प्रारम्भ किया था । भवार्थ-धनुष चलानेवाले योद्धा बाण चलाकर भीड़को तितर-बितर कर अपना मार्ग बना रहे थे ॥११५॥ जो संग्रामरूपी नाटकके प्रारम्भमें सूत्रधारके समान जान पड़ते थे उन्होंने धनुष-को धारण करनेवाले बीर पुरुष गर्जते हुए बाजोंको आगे कर युद्धरूपी रंगभूमिमें प्रवेश कर रहे थे ॥११६॥ धनुष धारण करनेवाले पुरुषोंने रणरूपी रंगभूमिमें सबसे पहले अपना स्थान जमाकर जो तीक्ष्ण बाणोंका समूह छोड़ा था वह ऐसा जान पड़ता था मानो उन्होंने पुष्पांजलि ही बिखेरी ही ॥११७॥ वे धनुषपर चढ़ाये हुए बाण सदा दुष्टोंके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार दुष्ट तीक्ष्ण अर्थात् क्रूर स्वभाववाले होते हैं उसी प्रकार वे बाण भी तीक्ष्ण अर्थात् पैते थे, जिस प्रकार दुष्ट मर्मभेदन करते हैं उसी प्रकार बाण भी मर्मभेदन करते थे, जिस प्रकार दुष्ट कलह करनेवाले होते हैं उसी प्रकार बाण भी कलह करनेवाले थे और जिस प्रकार दुष्ट पहले मधुर बचन कहकर फिर भीतर घुस जाते हैं उसी प्रकार वे बाण भी मनोहर शब्द

१ कृत्वा । २ मकरसमूहरचनाकिशेषम् । ३ विनाशक इत्यर्थः । ४ निर्घोषभीषणं यथा भवति तथा । ५ विभ-कृत्यात्म-प०, ल० । ६ प्राप्त । ७ अष्टचन्द्राह्याः । ८ बाणः । ९ क्रियाविशेषणम् । उल्लब्धनसहित यथा । १० आलीष्टप्रत्यालीष्टादि । ११ क्षिप्तः । १२ निशात् । १३ शरीरं प्रवेशिनः । १४ बाणः ।

उभयोः १ पादवं योर्कैव्या । बाणधी॑ कुतदलगनाः । अन्विनः खेचराकारा॒ रेजुराज॑ जितश्रमाः ॥ ११६॥  
अजुत्त्वात् दूरदृष्टिरक्षात् सदा॑ कार्यप्रसाधनात् । शास्त्रमार्गानुसारिवात् शराः॑ सुसचिद॑ समाः ॥ १२०॥  
क्रष्णास्त्रप्रियनः॑ पत्रवाहिनी॑ दूरणातिनः । लक्ष्येषुहृष्य तीक्ष्णास्याः खगाः॑ पंतुः खगोपमाः॑ ॥ १२१॥  
धर्मण॑ गुणयुक्ते॑ प्रेरिता हृष्यं गतः । शूरान्॑ शुद्धिरिवाक्षीद॑ गति॑ पत्रिपरम्परा॑ ॥ १२२॥  
पुंसों संस्पर्शमात्रेण हृदगता रक्षवाहिनी॑ । क्षिप्रं न्यर्मालयज्ञे वेश्येव विशिखाबली॑ ॥ १२३॥  
यक्षत्वेषां खेचराकातिष्ठ॑ गुरुधृतमस्ततो॑ । परोऽन्विष्य कारादहया॑ जारयेव वशीहृतः ॥ १२४॥

करते हुए पीछेसे भीतर धूम जाते थे ॥ ११८॥ जो दोनों बगलोंमें तरकस बाँधकर उछल-कृद कर रहे हैं तथा जिन्होंने परिश्रमको जीत लिया है ऐसे धनुषधारी लोग उस युद्धमें पक्षियोंके समान सुशोभित्त्वात् हृष्ये ॥ ११९॥ और लूट-अच्छे पक्षियोंके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार अच्छे मन्त्री ऋजु अर्थात् सरल ( मायाचाररहित ) होते हैं उसी प्रकार बाण भी सरल अर्थात् सीधे थे, जिस प्रकार अच्छे मन्त्री दूरदर्शी होते हैं अर्थात् दूरतककी बातको सोचते हैं उसी प्रकार बाण भी दूरदर्शी थे अर्थात् दूर तक जाकर लक्ष्यमेदन करते थे, जिस प्रकार अच्छे मन्त्री शीघ्र ही कार्य सिद्ध करनेवाले होते हैं उसी प्रकार बाण भी शीघ्र करनेवाले थे अर्थात् जलदीसे शत्रुको मारनेवाले थे और जिस प्रकार अच्छे मन्त्री शास्त्रमार्ग अर्थात् नीतिशास्त्रके अनुसार चलते हैं उसी प्रकार बाण भी शास्त्रमार्ग अर्थात् धनुषशास्त्रके अनुसार चलते थे ॥ १२०॥ मांस और खूनको पीनेवाले, पंख धारण करनेवाले, दूर तक जाकर पड़नेवाले और पैने मुखबाले वे बाण पक्षियोंके समान उड़कर अपने निशानोंपर जाकर पड़ते थे । भावार्थ—वे बाण पक्षियोंके समान मालूम होते थे, क्योंकि जिस प्रकार पक्षी मांस और खून पीते हैं उसी प्रकार बाण भी शत्रुओंका मांस और खून पीते थे, जिस प्रकार पक्षियोंके पंख लगे होते हैं उसी प्रकार बाण भी दूर जाकर पड़ते थे और जिस प्रकार पक्षियोंका मुख तीक्ष्ण होता है उसी प्रकार बाणोंका मुख ( अग्रभाग ) भी तीक्ष्ण था । इस प्रकार पक्षियोंकी समानता धारण करनेवाले बाण उड़-उड़कर अपने निशानोंपर पड़ रहे थे ॥ १२१॥ जिस प्रकार गुणयुक्त धर्मके द्वारा प्रेरणा की हुई और हृदयमें प्राप्त हुई विशुद्धि पुरुषोंको मोक्ष प्राप्त करा देती है उसी प्रकार गुणयुक्त ( डोरी सहित ) धर्म ( धनुष ) के द्वारा प्रेरणा की हुई और हृदयमें चुभी हुई बाणोंकी पंक्ति शूरवीर पुरुषोंको परलोक पहुँचा रही थी ॥ १२२॥ जिस प्रकार हृदयमें प्राप्त हुई और झुरकतवाहिनी अर्थात् संधिरकी बहानेवाली बाणोंकी पंक्ति स्पर्शमात्रसे शीघ्र ही पुरुषोंके नेत्र बन्द कर देती थी — उन्हें मार डालती थी ॥ १२३॥ जिस प्रकार बहुत वर्षा होने और अन्धकारका समूह छा जानेपर

१ निजशरीरपादवंयोः । २ इषुधी द्वौ । ३ पक्षे सदृशाः । ४ युद्धे । ५ चापशास्त्रीषतक्रमेण । प्रयोक्तृमार्ग-शरणत्वात् । ६ बाणाः । ७ मन्त्रिभिः । ८ क्रष्णासूक्ष्मायिनः २० । आममांसरक्तभोजिनः । ९ पत्रैवहन्ति गच्छन्तीति पत्रवाहिनः । १० बाणाः । 'शरार्कविहगाः खगाः' । ११ पक्षिसदृशाः । १२ धनुषा । १३ ज्यास-हितेन । अतिशययृक्तेन च । १४ विशुद्धिपरिणाम इव । १५ आनयति स्म । १६ शरसन्तति । १७ रक्तं प्रापयन्ती । आमन्यनुरक्तं प्रापयन्ती च । १८ इतीओ पुनः 'आरा' नगरात् समायात्प्रिप्णपुस्तकात् टिप्ण-समुदारः क्रियते । १९ उपरिस्थितस्त्रेचरहन्त्रिवर्षे । २० दाक्षाय्यतपसमूहे । 'आतापिचिल्लो दाक्षाय्यमृदधी' इत्यभिधानात् । \*भावे बतः ।

प्रगुणे<sup>१</sup> मुष्टि<sup>२</sup> संवाद्या दूरं दृष्टवनुवतिनः<sup>३</sup> । गच्छेष्व साधयन्ति रम सद्भूत्या इव सायकाः ॥१२५॥  
प्रभोज्याभिसुखं तीक्ष्णान् बाणान् परशरान्प्रति । तत्रैव<sup>४</sup> पातयन्ति रम शानुकाः साँ हि धीर्घियाम्<sup>५</sup> ॥  
जाताशापद्धताः<sup>६</sup> केचिदन्थेष्यशरखण्डने । व्यापृताः शाखिताः पूर्वं रणे किञ्चिकरोपमाः<sup>७</sup> ॥१२७॥  
हस्त्यधरथपस्यैषमुत्तिष्ठासप्तलक्ष्यवत्<sup>८</sup> । शाराः पेतुः रवे<sup>९</sup> रूपातसेवास्ताऽ॑ दृढमुष्टिभिः ॥१२८॥  
पूर्वं विहितसन्धानाः<sup>१०</sup> स्थित्या किञ्चित्त्वराजन्ते<sup>११</sup> । शानमध्यास्य<sup>१२</sup> मध्यस्था<sup>१३</sup> द्वैधीभावमुष्टागता ॥  
विग्रहं<sup>१४</sup> हस्तशक्तिवादशत्या शानुसंशयाः । शाणा<sup>१५</sup> गुणितवाढगुण्या इव सिद्धिं प्रपेदिरे ॥१२९॥

व्यभिचारिणी स्त्री अपना पति छोड़ किसी परपुरुषको खोजकर बश कर लेती है उसी प्रकार विद्याधरोंके सूनको बहुत बष्टा होने और गृद्धि, पक्षीरूपी अन्धकारका समूह फैल जानेपर बाणों-की पंक्ति अपने स्वामीको छोड़ खोज-खोजकर शत्रुओंको बश कर रही थी ॥१२४॥ अथवा वे बाण अच्छे नौकरोंके समान दूर-दूरतक जाकर इष्ट कायोंको सिद्ध करते थे क्योंकि जिस प्रकार अच्छे नौकर प्रगुण अर्थात् श्रेष्ठ दोरीसे सहित थे, अच्छे नौकर जिस प्रकार मुट्ठियोंसे दिये हुए अन्धपर निर्वाह करते हैं उसी प्रकार वे बाण भी मुट्ठियों-द्वारा चलाये जाते थे और अच्छे नौकर जिस प्रकार मालिककी दृष्टिके अनुसार चलते हैं उसी प्रकार वे बाण भी मालिककी दृष्टिके अनुसार चल रहे थे ॥१२५॥ धनुपको धारण करनेवाले योद्धा जहाँ-जहाँ शत्रुओंके बाण थे वहीं-वहीं देखकर अपने पेने बाण फेंक रहे थे सोऽठीक् ही है वदीकि शत्रुओंको देखते ही बुद्धि होती है ॥१२६॥ जो बाण एक दूसरेके बाणोंको तोड़नेके लिए चलाये गये थे, धारण किये गये थे अथवा उस व्यापारमें लगाये गये थे वे युद्धमें नौकरोंके समान सबसे पहले प्रशंसाको प्राप्त हुए थे ॥१२७॥ मजबूत मुट्ठियोंवाले योद्धाओंके द्वारा छोड़े हुए बाण अस्पष्ट लक्ष्यके समान दिखाई नहीं पड़ते थे और हाथी, धोड़े, रथ तथा पियादोंके समूहको भेदन कर अपने पड़नेसे स्थानपर ही जाकर पड़ते थे ॥१२८॥ जिस प्रकार सन्धि विग्रह आदि छह गुणोंको धारण करनेवाले राजा सिद्धिको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार वे बाण भी सन्धि आदि छह गुणोंको धारण कर सिद्धिको प्राप्त हो रहे थे क्योंकि जिस प्रकार राजा पहले सन्धि करते हैं उसी प्रकार वे बाण भी पहले दोरीके साथ सन्धि अर्थात् मेल करते थे, जिस प्रकार राजा लोग अपनी परिस्थिति देखकर कुछ समय तक ठहरे रहते हैं उसी प्रकार वे बाण भी धनुषपर कुछ देर तक ठहरे रहते थे, जिस प्रकार राजा लोग युद्धके लिए अपने स्थानसे चल पड़ते थे, जिस प्रकार राजा लोग मध्यस्थ बनकर द्वैधीभावको प्राप्त होते हैं अर्थात् भेदनीति-द्वारा शत्रुके संगठनको छिन्नभिन्न कर डालते हैं उसी प्रकार वे बाण भी मध्यस्थ ( शत्रुके शरीरके मध्यमें स्थित ) हो द्वैधीभावको प्राप्त होते थे अर्थात् शत्रुके टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे और अन्तमें राजा लोग जिस प्रकार युद्ध करनेकी

१ अवकाः । २ मुष्टिना संवाद्यात्ते गम्यन्ते मुष्टिसंवाद्याः । आज्ञावशवतिनश्च । ३ नयनैरमुवर्तमानाः आलोकन-मात्रेण प्रभोरभिप्रार्थ जात्वा कर्त्यकरादत्थ । ४ यत्र शत्रुशराः स्थितास्तत्रैव । ५ सैव परशरखण्डनरूपा । ६ बुद्धीना मध्ये । धीर्घियाम् ल० । ७ बाणाः । ८ किञ्चुरसमानाः । ९ अस्पृह्यलक्ष्यवत् । १० स्वयोम्यपतन-स्थानं गत्वेवेत्यर्थः । ११ खिप्ताः । १२ कृतसंयोजनाः कृतसन्ध्यवश्च । १३ चापे क्षेत्रे च । १४ गमनमध्यास्य । १५ मध्यस्थाः सन्तः । १६ द्विधाखण्डनस्त्वम्, पक्षे उभयश्चाश्रयत्वम् । १७ वक्तिक्षमभावे । अथवा शरीरे । १८ अभ्यस्तः ।

धारा वीररसस्येव रेजे रक्षस्य कस्यचित् । परन्तु सततं धैर्यदात्रवन्त्यादिताशुगम् ॥१३१॥  
 'सायकोद्भिष्ममालोक्य कान्तस्य हृदयं प्रिया । परासुरामीच्छतेऽस्य बद्न्तीदात्मनः स्थितिम् ॥१३२॥  
 छिङ्गदण्डैः फलैः कश्चिद् 'सर्वाक्षीणैर्मटागणैः । कीलितासुरिकामप्रस्तर्यैव युयुधे चिरम् ॥१३३॥  
 विलोक्य विलयज्वालिं ज्वालालोक्यशिखोपमैः । शिलीमुखैर्बलं 'छिं स्व' विषक्षधनुर्घरैः ॥१३४॥  
 गृहीत्वा वज्रकाण्डालयं सज्जीकृत्य शरासनम् । स्वयं योद्युर्समारब्धं सक्रोधः सानुजो यथः ॥१३५॥  
 'कर्णभिष्यणैर्कृतास्तस्य गुणयुक्ताः सुशोजिताः । 'पञ्चलं युसमुत्थानाः कालक्षेपाचिधायिनः' ॥१३६॥  
 मानैः प्रगुणसम्भाराः प्रविश्य हृदयं ह्रिषाम् । कृच्छ्रायं<sup>१०</sup> साधयन्ति सम 'निःसृष्टार्थसमाः शराः ॥१३७॥  
 पश्चवन्तः प्रतापोग्राः<sup>११</sup> समग्रा विप्रहे तुताः । अज्ञातपातिनइचक्तुः कृयुद्धं शिलीमुखाः ॥१३८॥

सामर्थ्यसे रहित शत्रुको वश कर लेते हैं उसी प्रकार वे बाण भी शत्रुको वश कर लेते थे<sup>१२</sup> ॥१३९-१४०॥ निकाले हुए बाणके पीछे बहुत शीघ्र धीरतासे निरन्तर पड़ती हुई किसी पुरुषके स्थिरकी धारा वीररसकी धाराके समान सुशोभित हो रही थी ॥१३१॥ कोई स्त्री अपने पतिका हृदय बाणसे बिदीर्ण हुआ देखकर प्राणरहित हो गयी थी मानो वह कह रही थी कि मेरा निवास इसीके हृदयमें है ॥१३२॥ जिनके दण्ड टूट गये हैं और जो सब शरीरमें चुस गये हैं ऐसे बाणोंकी नोकोंसे जिसके प्राण मानो कीलित कर दिये गये हैं ऐसा कोई योद्धा पहलेकी तरह ही निश्चल हो बहुत देर तक लड़ता रहा था ॥१३३॥ शत्रुओंके घनुषधारी योद्धाओंने प्रलयकालकी जलती हुई अग्निकी चंचल शिखाओंके समान तेजस्वी बाणोंके द्वारा मेरी सेनाको छिपभिन्न कर दिया है यह देख जयकुमारने अपने छोटे भाइयों सहित क्रोधित हो वज्रकाण्ड नामका घनुष लिया और उसे सजाकर स्वयं युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥१३४-१३५॥ उस समय जयकुमारके बाण + निःसृष्टार्थ ( उत्तम ) दूतके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार उत्तम दूत स्वामीके कानके पास रहते हैं अर्थात् कानसे लगकर बातचीत करते हैं उसी प्रकार बाण भी जयकुमारके कानके पास रहते हैं अर्थात् कान तक खीचकर छोड़े जाते थे, जिस प्रकार उत्तम दूत गुण अर्थात् रहस्य रक्षा आदिसे युक्त होते हैं उसी प्रकार बाण भी गुण अर्थात् ढोरीसे युक्त थे, जिस प्रकार उत्तम दूतकी योजना अच्छी तरह की जाती है उसी प्रकार बाणोंकी योजना भी अच्छी तरह की गयी थी, जिस प्रकार उत्तम दूत पश्च लेकर जल्दी उठ खड़े होते हैं उसी प्रकार बाण भी अपने पंखोंसे जल्दी-जल्दी उठ रहे थे-जा रहे थे, जिस प्रकार उत्तम दूत व्यर्थ समय नहीं खोते हैं उसी प्रकार बाण भी व्यर्थ समय नहीं खोते थे, जिस प्रकार उत्तम दूत मार्गमें सीधे जाते हैं उसी प्रकार बाण भी मार्गमें सीधे जा रहे थे और जिस प्रकार उत्तम दूत शत्रुओंके हृदयमें प्रवेश कर कठिनसे कठिन कार्यको सिद्ध कर लेते हैं उसी प्रकार बाण भी शत्रुओंके हृदयमें घुसकर कठिनसे कठिन कार्य सिद्ध कर लेते थे ॥१३६-१३७॥ अथवा ऐसा

१ सायिकोद्धिश-ल० । २ सर्वज्ञव्यापिभिः । ३ प्रलयायिन । ४ छष्मित्यपि पाठः । ५ आदितं खण्डितं वा ।  
 ५ आत्मोयम् । ६ आकर्णमाङ्गुष्ठाः । कर्णसमीपे कृताश्च । ७ पक्षैः सन्देशपत्रैः । ८ आशुविषायिन दृश्यमः ।  
 ९ हृदयम् अभिप्रायं च । १० असाध्यार्थम् । ११ असङ्गत् सम्पादितप्रयोजनदूतसमाः । १२ प्रकृष्टसन्तापभी-  
 कराः । भयङ्गराः । क्षराजाओंके छह गुण ये हैं—“सन्धिविश्वयानानि संस्थाप्यासनमेव च । हीर्षीभावश्च  
 विश्वयः वहगुणा नीतिवेदिनाम् ।”<sup>१३</sup> जो दोनोंका अभिप्राय लेकर स्वयं उत्तर-प्रत्युत्तर करता हुआ कार्य सिद्ध  
 करता है । उसे निःसृष्टार्थ दूत कहते हैं । यह दूत उत्तम दूत कहलाता है ।

प्रस्फुरन्ति: कलोपेतैः सुप्रमाणैः सुक्लिपतैः । विरोधोद्भाविना विश्वतोचरविजयावहैः ॥१३९॥  
 वादिनेव जयनोच्चैः कीर्ति क्षिप्रं जिच्छुणा । प्रतिपक्षः प्रतिक्षिप्तैः शस्त्रैः शास्त्रैजिंशीषुणा ॥१४०॥  
 खगाः<sup>१</sup> खगाम्प्रति प्रास्ताः<sup>२</sup> प्रोद्भिद्य शृणनं भताः । निवर्त्तन्ते न यावस्ते<sup>३</sup> स भियेषापतन्मृताः ॥१४१॥  
 सृतीक्षणा वीक्षणामीलाः<sup>४</sup> प्रज्वलन्तः समस्ततः । मूढ़स्वशानिवयेनुः खाद् विमुखाः खर्गैः शराः ॥१४२॥  
 शरमहातस अश्वान् गुभ्रपश्चान्धकारितान् । अद्यमदगरापात्<sup>५</sup> नभोगा नमस्तो व्यधृः ॥१४३॥  
 चण्डैरैकाण्डमुख्युहचैः काण्डैरपादतादिमैः<sup>६</sup> । युगेऽस्मिन् किं किमस्तांशुमासिमिर्ज्ञुमैः<sup>७</sup> मवेन् ॥१४४॥  
 दृपाताय नो<sup>८</sup> किंतु दृपाताय खेचरैः । खगाः कणिन्तमाकृत्य मुक्ता<sup>९</sup> हन्त्युदिपादिकान् ॥१४५॥  
 अधोमुखाः खर्गमुक्ता रक्षपानात् पक्षाशनात्<sup>१०</sup> । पृष्ठकाः सांहसो<sup>११</sup> वेशुनरकं<sup>१२</sup> वाऽवनेरधः<sup>१३</sup> ॥१४६॥

जान पड़ता था मानो वे बाण कपट युद्ध कर रहे हों क्योंकि जिस प्रकार कपट युद्ध करनेवाले पत्रवंत् अर्थात् सवारो सहित और प्रतापसे उग होते हैं उसी प्रकार वे बाण भी पत्रवंत् अर्थात् पंखों सहित और अधिक सन्तापसे उग थे, जिस प्रकार कपटयुद्ध करनेवाले युद्धमें शीघ्र जाते हैं और सबसे आगे रहते हैं उसी प्रकार वे बाण भी युद्धमें शीघ्र जा रहे थे और सबसे आगे थे तथा कपट युद्ध करनेवाले जिस प्रकार बिना जाने सहसा आ पड़ते हैं उसी प्रकार वे बाण भी बिना जाने सहसा आ पड़ते थे ॥१३८॥ जिस प्रकार विजयके द्वारा उत्तम कीर्तिको शीघ्र प्राप्त करनेवाला और जीतनेकी इच्छा रखनेवाला दादी प्रकाशमान, अज्ञाननाशादि फलोंसे युक्त, उत्तम प्रमाणोंसे सहित, अच्छी तरह रक्षना किये हुए, संसारमें प्रसिद्ध और विजय प्राप्त करनेवाले शास्त्रोंसे विरोधी—प्रतिवादीको हराता है उसी प्रकार विजयके द्वारा शीघ्र ही उत्तम कीर्ति सम्पादन करनेवाले, जीतनेकी इच्छा रखनेवाले तथा विरोध प्रकट करनेवाले जयकुमारने देवीप्यमान, नुकीले, प्रमाणसे बने हुए, अच्छी तरह चलाये हुए, संसारमें प्रसिद्ध और विजय प्राप्त करनेवाले शास्त्रोंसे शत्रुओंकी सेना पीछे हटा दी थी ॥१३९-१४०॥ जयकुमारने विद्याधरोंके प्रति जो बाण चलाये थे वे आकाशको भेदन कर आगे चले गये थे और वहाँसे वे जबतक लौटे भी नहीं थे तबतक वे विद्याधर मानो भयसे ही डरकर गिर पड़े थे ॥१४१॥ जो अत्यन्त तीक्ष्ण हैं, देखनेमें भयंकर हैं, और चारों ओरसे जल रहे हैं ऐसे विद्याधरोंके द्वारा आकाशसे छोड़े हुए बाण योद्धाओंके मस्तकोंपर बजूके समान पड़ रहे थे ॥१४२॥ जो बाणोंके समूहसे छक गये हैं, गीधके पंखोंसे अन्धकारमय हो रहे हैं और जिन्हें मुद्गरोंके आधात तक दिखाई नहीं पड़ते हैं ऐसे योद्धाओंको विद्याधर लोग आकाशसे धायल कर रहे थे ॥१४३॥ इस युगमें उन तीक्ष्ण बाणोंने सबसे पहले अकालमृत्यु उत्पन्न की थी सो ठीक ही है क्योंकि जिन्होंने सूर्यका प्रताप भी कम दिया है ऐसे लोगोंसे क्या-क्या अशुभ काम नहीं होते हैं ? ॥१४४॥ दूर जानेके लिए नहीं किन्तु मजबूतीके साथ पड़नेके लिए विद्याधरोंने जो बाण कान तक खीचकर छोड़े थे उन्होंने बहुत-से हाथी आदिको मार डाला था ॥१४५॥ जिस प्रकार रक्त पीने और मांस खानेसे पापी जीव नीचा मुख कर नरकमें जाते हैं उसी प्रकार विद्याधरों

१ निराहृतः । २ बाणाः । ३ विद्याधरान् । ४ मुक्ताः । ५ विद्याधराः । ६ दर्शने भयावहाः । ७ मुद्गराधातान् ल०,  
 म० । ८ गग्नमाश्रित्य । ९ अकाल । १० बाणः । ११ उत्पादित । १२ 'अस्त्राशुगाशिभिः' इति पाठे अस्त्राश्मे-  
 वाशुगाशिनः पवनाशमाः तैः सर्वस्त्रियर्थः । 'आश्रुगो वायुविशिष्टौ' इत्यभिधानात् । १३ न । १४ भन्ति स्म ।  
 १५ मांसाशनात् । १६ सपापाः । १७ र्वा इव । ईयुः गच्छन्ति स्म । १८ भूमेरधः स्थितम् ।

भूमिष्ठेनिष्ठुरं शिसाद्विष्टानुकृप्य वष्टयः १। ययुवूरं दिवं दूतीदेशीया<sup>२</sup> दिव्यथोशिताम् ॥ १४७॥  
 चक्रिणक्षकमेकं तज्ज ततः<sup>३</sup> कर्त्तव्यचिक्षितः । ४ चक्रेकालचक्रक्षमैर्बहवस्तव्य जनिन्द्रे<sup>५</sup> ॥ १४८॥  
 समवेगी<sup>६</sup> सम<sup>७</sup> सुकैः शरैः<sup>८</sup> खचरभूचरैः । व्योग्यन्यन्योन्यमुखालग्नैः स्थितं कृतिपयक्षणे<sup>९</sup> ॥ १४९॥  
 खभूचरस्तरेक्षणे खे परस्पररोधिभिः । १० अन्योन्यादीक्षणात्तेषामभूद् रणनिषेष्वनम् ॥ १५०॥  
 स्वास्त्रैः<sup>११</sup> शस्त्रेनभोगानां शरैश्वावाधितं नुक्षाम् । स्वसैन्यं वीक्ष्य खीक्षिष्टवीक्षणोग्रामुक्षणिः<sup>१२</sup> ॥ १५१॥  
 सद्यः संहारसंकुद्धसमवर्तिसमो<sup>१३</sup> जयः । प्रारब्धं योद्धुं वज्रेण वज्रकाण्डेन वज्रिवत् ॥ १५२॥  
 निर्जिताशनिनिषेष्वज्ञयज्याधोषभीलुकाः<sup>१४</sup> । चापसायकचैतासि प्राक्षिपन्<sup>१५</sup> सह शत्रवः ॥ १५३॥  
 चापमाकर्णम् कृप्य ज्यातिष्ठेनिष्ठान्यकः । खलुग्यशाल्लो<sup>१६</sup> खलुग्येत्यै दिव्यसिति<sup>१७</sup> क्षणम् ॥ १५४॥  
 न मध्ये न शरीरेषु दक्षास्तथोजिताः शराः । दक्षाहते केवलं भूमौ सद्याणाः पतिताः परे ॥ १५५॥  
 निमीलयन्तश्चक्षुष्य उवलयन्तः शिलीमुखाः<sup>१८</sup> सुखानि ककुभां वत्रुः<sup>१९</sup> खादुक्कालीचिभीषणाः<sup>२०</sup> ॥ १५६॥

के द्वारा छोड़े हुए बाण शत्रुओंका रक्त पीने और मांस खानेसे पापी हो नीचा मुख कर पृथिवी-के नीचे जा रहे थे—जमीनमें गड़ रहे थे ॥ १४६॥ इसी प्रकार भूमिगोचरियों-द्वारा निर्दयताके साथ छोड़े हुए बाण शत्रुओंको भेद कर आकाशमें बहुत दूर तक हस प्रकार जा रहे थे मानो देवांगनाओंकी दासियाँ ही हों ॥ १४७॥ चक्रवर्तीका चक्र तो एक ही होता है उससे किसीकी हानि नहीं होती परन्तु उस युद्धमें अकाल चक्रके समान बहुत-से चक्रोंसे अनेक जीव मारे गये थे ॥ १४८॥ विद्याधर और भूमिगोचरियोंके द्वारा एक साथ छोड़े हुए समान वेगवाले बाण आकाशमें एक दूसरेके मुखसे मुख लगाकर कुछ देर तक ठहर गये थे ॥ १४९॥ परस्पर एक दूसरेको रोकनेवाले विद्याधर और भूमिगोचरियोंके बाणोंसे आकाश ढक गया था और इसीलिए एक दूसरेके न दिख सकनेके कारण उनका युद्ध बन्द हो गया था ॥ १५०॥ अपने और शत्रुओंके शस्त्रों तथा विद्याधरोंके बाणोंसे अपनी सेनाको बहुत कुछ धायल हुआ देखकर नेत्रहपी भयंकर अग्निको आकाशकी ओर फेंकनेवाला और संहार करनेके लिए कुपित हुए यमराजकी समानता धारण करनेवाला जयकुमार इन्द्रकी तरह वज्रकाण्ड नामके घनुषसे युद्ध करनेके लिए तैयार हुआ ॥ १५१-१५२॥ वज्रकी गर्जनाको जीतनेवाले जयकुमारके घनुषकी ढोरीके शब्द मात्रसे डरे हुए कितने ही शत्रुओंने घनुष, बाण और हृदय—सब फेंक दिये । भावार्थ—भयसे उनके घनुष-बाण गिर गये थे और हृदय विक्षिप्त हो गये थे ॥ १५३॥ कान तक घनुष खीचकर जिसने ढोरीपर बाण रखा है और जो बड़ी शीघ्रतासे बाणोंको रखता तथा छोड़ता है ऐसा जयकुमार क्षण-भरके लिए ऐसा जान पड़ता था मानो प्रहार ही नहीं कर रहा हो अर्थात् बाण चला ही नहीं रहा हो ॥ १५४॥ जयकुमारके द्वारा चलाये हुए बाण न बीचमें दिखते थे, और न शरीरमें ही दिखाई देते थे, केवल धावसहित जमीनपर पड़े हुए शत्रु ही दिखाई देते थे ॥ १५५॥ जो देखनेवालोंके नेत्र बन्द कर रहे हैं, सबको जला रहे हैं और उल्काओंके समूहके समान भयंकर हैं ऐसे जयकुमारके बाणोंने दिशाओंके भूख ढक लिये थे

१ भूमौ स्थितेः । २ शत्रू । ३ उद्भिष्ट । ४ बाणाः । ५ दूतीसदृशाः । ६—मेकान्तं न ल० । ७ चक्रात् ।  
 ८ समन्तात् कुतान्तसमूहसमानैः । ९ हताः । १० उभयक्षणि समानज्वैः । ११ मुगपत् । १२ खेचर—ल०,  
 अ०, प०, स०, इ० । १३—अणात् ल०, अ०, प०, स०, इ० । १४ परस्परावलोकनाभावात् । १५ आत्मी-  
 यानात्मीयैः । स्वास्त्रैः अ० । १६ अग्निः । १७ संहारार्थं कुपितममसदृशाः । १८ उपकान्तकाम् । १९ भीरवः ।  
 २० त्यक्षतवन्तः । २१ दृष्टः । २२ शाराज्ञमुक्षज्ञिव । २३ वेष्यमिति स्म । २४ गगनान्निर्गच्छन्त इत्यर्थः ।  
 २५ उल्कासमूहभीकराः ।

तिर्यगोऽकणपाषाणेर् दृष्ट्वा ज्यजिराद् ३ वहिः । पतितान् ४ खचरान् तुः सतन् त् स्वर्गतान् ५ जप्ताः ॥१५७॥  
 शरसंरुण ६ चिद्राघ्नमुकुटभ्योऽगलन् ७ सुरः । मणयो गुणगृह्णैर्वा जयस्थोपायनीकृताः ॥१५८॥  
 ८ पतन्मृतस्यगान्कीतप्रियाभिः स्वाश्रुवारिणा । ९ वारिदानमिवाचर्यैः कृपामासादितो जयः ॥१५९॥  
 अन्तकः समवर्तीनि १० तद्रावेव न चेत्तथा । कथं चकिसुलस्त्वैव त्वं प्रेताधिष्ठौ ११ भवेत् ॥१६०॥  
 वधे विधाय न्यायेन अयनान्यायवर्तिनाम् । १२ यमस्तीक्ष्णोऽप्यभूत्मैरन्त्रैः दिव्यानलोपमः १३ ॥१६१॥  
 १४ ताव्रहेषितनिष्ठौष्ठैर्मीप्यवन्तो द्रिष्टो हयाः । वलमाश्वासयन्तः स्वं स्वीषकुइचाकिसूनवः १५ ॥१६२॥  
 प्राभान्प्रस्फुरतस्तीक्ष्णान्तर्मीक्षणं वादवाहिनः १६ । आवर्तयन्तः संप्राप्तन् यमस्येवाग्रगा भट्टाः ॥१६३॥  
 जयोऽपि स्वश्रमाहात् जर्या जयकुम्भमन् । कुदुः प्रासान् समुद्धन्य योद्धमितीयमादिकान् ॥१६४॥  
 अभूत् प्रहतगम्भीरभम्भा १७ दिष्टवनिभीषणः । वलाण्ड्रदचलहयूलकुलोऽ इव वाजिभिः ॥१६५॥

॥१५६॥ तिरछे जानेवाले गोलकण रूप पत्थरोंके द्वारा युद्धके आँगनसे बाहर गिराये हुए विद्याधरोंको न देखकर मूर्ख लोग कहने लगे थे कि देखो विद्याधर शरीर सहित ही रखा चले गये हैं ॥१५७॥ वाणोंकी चोटसे छिन्न-भिन्न हुए विद्याधरोंके मुकुटोंसे जो मणि गिर रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो गुणोंसे बड़ा होनेवाले देवोंने जयकुमारको भेट ही किये हों ॥१५८॥ गिर-गिरकर मरे हुए विद्याधरोंके साथ आयो हुई स्त्रियाँ अपने अश्रुहपी जलसे जो उन्हें जलाऊजलि-सी दे रही थीं उसे देखकर जयकुमारको दया आ गयी थी ॥१५९॥ यमराज समवर्ती है अर्थात् सबको रामान दृष्टिसे देखता है यह केवल कहावत ही है यदि ऐसा न होता तो वह केवल चक्रकर्त्ता के पुत्र अर्ककीर्तिकी सेनामें ही क्यों प्रेतोंका राजा होता ? अर्थात् उसीकी सेनाको क्यों मारता ? ॥१६०॥ जयकुमारके द्वारा अन्यायमें प्रवृत्ति करनेवाले लोगोंको वध कराकर वह तीक्ष्ण यमराज भी उस युद्धमें दिव्य अग्निके समान धर्मस्वरूप हो गया था । भावार्य-पूर्वकालमें साक्षी आदिके न मिलनेपर अपराधीकी परीक्षा करनेके लिए उसे अग्निमें प्रविष्ट कराया जाता था, अथवा जलते हुए अंगार उसके हाथपर रखाये जाते थे । अपराधी मनुष्य उस अग्निमें जल जाते थे परन्तु अपराधरहित मनुष्य सीता आदिके समान नहीं जलते थे । उसी आगको दिव्य अग्नि कहते हैं सो जिस प्रकार दिव्य अग्नि दुष्ट होनेपर भी अपराधीको ही जलाती है अपराधरहितको नहीं जलाती उसी प्रकार यमराजने दुष्ट होकर भी अन्यायी मनुष्योंका ही वध कराया न कि न्यायी मनुष्योंका भी, इसलिए वह यमराज दुष्ट होनेपर भी मानो उस समय दिव्य अग्निके समान धर्मस्वरूप हो गया था ॥१६१॥ इतनेमें ही हिन्दिनाहटके शब्दोंसे शत्रुओंको डराते हुए और अपनी सेनाको धीरज बैधाते हुए चक्रवर्तीके पुत्र-अर्ककीर्तिके घोड़े सामने आये ॥१६२॥ यमराजके अग्रगामी योद्धाओंके समान, देदीप्यमान और पैते भालोंको बार-बार घुमाते हुए घुड़सवार भी सामने आये ॥१६३॥ विजय करनेवाले जयकुमारने भी क्रोधित हो, जयतुरंगम नामके घोड़ेपर सवार होकर अपनी घुड़सवार सेनाको भाला लेकर युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥१६४॥ घोड़ोंके द्वारा जिसमें चंचल और बड़ी-बड़ी लहरें-सी उठ रही हैं ऐसा वह सेनारूपी समुद्र बजते हुए गम्भीर नगाड़े आदिके शब्दों

१ शस्त्रविद्योषः । २ रणाङ्गणात् । ३ पतितान् ल०, स०, अ०, म० । ४ स्वर्गमतान् । ५ भुग्न । ६ गलन्ति स्म । ७ गतप्राणविद्याधरानुगत । ८ जलाऊजलिम् । ९ विधाय । १० वालवृद्धादिपु हननक्रियायां समानेन वर्तमानः । ११ यमः । १२ अन्तकः । १३ जप्ते । १४ शपथाग्निसमः । १५ अद्वनिनाद । १६ चक्रिसूतोः संवन्धिनः । १७ अङ्गवारोहाः । १८ भग्नेत्यनुकरणम् ।

असिसंघटनिष्ठूतविस्फुलिङ्गे रणेनलः । भावणे शरसंबोते व्यदा<sup>१८</sup> पिष्टे धरावते ॥१६४॥  
 वाजिनः प्राक्कशासानादधावन्तमित्याचकम्<sup>१९</sup> । त्रियन्ते न सहन्ते हि परिभूति सतेजामः ॥१६५॥  
 हिताः पदिष्ठमपादाभ्यां बद्धामर्थाः परस्परम् । पति केचिदिवावन्तो युध्यन्ते सम चिरं हयाः ॥१६६॥  
 समुद्रात्मां भूकृतलसहलोलासिपत्रकैः । नभस्तहरमाद भूयस्तदा पहलवितो यथा ॥१६७॥  
 पतितान्पतिनिवृतात् सुवूरं स्वामिनां अवचित् । छन्यासनाऽविरोस्युच्चैरन्वेष्टु वा भ्रमन्तयाः ॥१६८॥  
 पश्चून् विश्वकान्मत्वाऽह्यान् कृपया कोऽपि नावधीत्<sup>२०</sup> । ते<sup>२१</sup> स्वदृश्लक्षुरेव कुदाः प्रावनन्<sup>२२</sup> परपस्म् ॥  
 वैशमात्रावशिष्टाङ्गे<sup>२३</sup> माण्डलाग्रैदिवरं कृत्वा । लोहदण्डेत्वास्तपौर्ध्वीरा युयुधिरे धुरि ॥१६९॥  
 शिरःप्रहरणेनान्यो<sup>२४</sup> अपश्यत्तान्वयं प्रकुर्वता । सर्वेरेगसिरायिद्वा<sup>२५</sup> दृष्ट्वा<sup>२६</sup> पश्चादयुद्धं<sup>२७</sup> यः ॥१७०॥  
 हयान् प्रतिष्ठशीकृत्य<sup>२८</sup> धनुस्तत्कपिशीर्षैकम्<sup>२९</sup> । अबुध्यत उमः सुषु तदा द्विगुणयद्वाणम् ॥१७१॥  
 जयोऽयात् सानुजस्तावदाविष्ठूत्य यमाकृतिः<sup>३०</sup> । कण्ठीरघमिवाहृष्ट हयमस्युद्यतः<sup>३१</sup> कृत्वा ॥१७२॥  
 वाहयन्ते<sup>३२</sup> तमालोक्य करुपास्तज्वालिभीषणम्<sup>३३</sup> । विवेश<sup>३४</sup> विद्विद्विष्ठाली वेलेव सत्रवलास्तुधिम्<sup>३५</sup> ॥

से भयंकर हो रहा था ॥१६३॥ उस युद्धमें पृथिवीपर जो भयंकर बाणोंका समूह पड़ा हुआ था उसमें तलबारोंकी परस्परकी चोटसे निकले हुए कुलिगोंसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी ॥१६४॥ घोड़े कोड़ोंकी चोटके पहले ही बाणोंके सामने दौड़ रहे थे सो थीक ही है क्योंकि तेजस्वी पुरुष मर जाते हैं परन्तु पराभव सहन नहीं करते ॥१६५॥ परस्पर एक दूसरेपर क्रोधित हो पिछले पैरोंसे खड़े हुए कितने ही घोड़े चिरकाल तक इस प्रकार युद्ध कर रहे थे मानो अपने स्वामीकी रक्षा ही कर रहे हों ॥१६६॥ उस समय ऊपर उठायी हुई और दधिरसें रंगी हुई तलबाररुपी चंचल पत्तोंसे आकाशरुपी वृक्ष ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो उसार फिरसे नवोन पत्ते निकल आये हों ॥१६७॥ कहींपर खाली पीठ लिये घोड़े इस प्रकार दौड़ रहे थे मानो तलबारकी चोटसे बहुत दूर पड़े हुए अपने स्वामियोंके शिर ही खोज रहे हों ॥१६८॥ घोड़ोंको बिना सींगके पशु मानकर दयासे कोई नहीं मारता था परन्तु वे क्रोधित होकर दाँत और खुरोंसे एक दूसरको मारते थे ॥१६९॥ उस युद्धमें कितने ही योद्धा क्रोधित होकर अखण्ड लोहेके ढण्डेके समान जिनमें बासिमान्त्र ही शेष रह गया है ऐसी तलबारोंसे चिरकाल तक युद्ध करते रहे थे ॥१७०॥ अन्य कोई योद्धा, अन्धा करनेवाली शिरकी चोटसे यद्यपि कुछ देख नहीं सक रहा था तथापि गलेकी पीछेकी भूसोंसे चिरको जुड़ा हुआ देखकर वह फिर भी युद्ध कर रहा था ॥१७१॥ उस समय कितने ही योद्धा घोड़ोंकी सहायता ले कपिशीर्षक नामक धनुषोंसे युद्धको द्विगुणित करते हुए अच्छी तरह लड़ रहे थे ॥१७२॥ इतनेमें ही तलबार हाथमें लिये हुए जयकुमार अपने छोटे भाइयोंके साथ-साथ यमराज सरीखा आकार प्रकट कर और सिंहके समान घोड़ेपर सवार होकर क्रोधसे आगे बढ़ा ॥१७३॥ कल्यान्त कालकी अग्निके समान भयंकर जयकुमारको घोड़ेपर सवार हुआ देखकर शत्रुके घोड़ोंकी पंक्ति लहरके समान अपने सेनारुपी समृद्धमें जा घुसी ॥१७४॥ जिनपर पताकाएँ नृत्य कर रही हैं और वेगशाली घोड़े

१ उवलति सम् । २ भूमावृपचिते । ३ आयुधस्याप्रिमुखम् । ४ बढकृष्णः । ५ रक्षत्ते । ६ युद्धते - ल० ।  
७ तास्त्वस-ल० । ८ स्वामिरहितपृष्ठाः । ९ न हन्ति सम् । १० ते च दत्त-ल० । ११ घन्ति सम् । १२ वेग-  
मात्रावशिष्टस्वरूपैः । १३ कौक्षेयकैः 'कौक्षेयकौ मण्डलाश्रः करवालः कुपाणवत्' इत्यभिधानात् । १४ मस्तक-  
वातेन । १५ किञ्चिवपि नालोकयन् । १६ गलस्य पश्चिमसिरात्तितः । १७ गलपहित्तमभागं करस्यर्थेनालोकय ।  
१८ युपुष्टे । १९ सहायीकृत्य । 'प्रतिक्षेपः सहाये स्याद् वाताहिरपरागयोः' इत्यभिधानात् । २० चापविशेषः ।  
घन्तिन् इत्यर्थः । २१ यमाङ्गुष्ठिम् ल० । २२ उद्यतासिः सन् । २३ अवत्पमारोहयत्तम् । २४ प्रलयान्तिवद्भर्य-  
करम् । २५ शब्दवाजिसमहः । २६ स्वसंभ्यसागरम् ।

चिरात् पर्यायै मासायै प्रनृत्यकेतवो रथः । जविमिव्याजिभिर्यूढा प्राधावन् विद्विषः<sup>३</sup> प्रति ॥ १६७॥  
 निइशेषहैं तिपूर्णेषु रथेषु रथनायकाः । तुलां<sup>४</sup> जग्मुरस्त्रा विभजैरैः कुञ्जरारिभिः ॥ १६८॥  
 अक्षंधृ संपिट्ठावा सुभ्मांसकद्मेष । रथकल्प्याद्वरन्ति स्म तश्चाद्धौ मन्दपोतवत् ॥ १६९॥  
 कुन्ता सिप्रासच्काश्रिसंकीर्णे अणितकमाः<sup>५</sup> । अक्षामन् कुञ्जकुञ्जेण रणे रथसुरहमाः ॥ १७०॥  
 तदा संनद्यसंयुक्तसविष्वभृत्<sup>६</sup> रथम् । संक्रम्य<sup>७</sup> वृषभं<sup>८</sup> वाऽक्षः समारुद्धराद्यमः ॥ १७१॥  
 पुरोञ्जलस्त्वसुभ्सर्पच्छरतीक्षणांशुसंततिः । शशुसन्तमसं भिष्मद् वालार्कमज्यज्जयः ॥ १७२॥  
 ९ मण्डलाग्रसमुत्सृष्टदुष्टासः शस्त्रकर्मवित् । जयो भिष्ममन्दिर्यो<sup>१०</sup> शशुशल्यं समुद्दरन् ॥ १७३॥  
 ध्वजस्योपरि धूमो वा तेजाहृष्टो<sup>११</sup> तु<sup>१२</sup> सायकः । पपात तापमायाय सूचयज्ञुभ्यं ह्रिष्वाम् ॥ १८४॥  
 ध्वजदण्डान् समारुद्धर्य<sup>१३</sup> विद्विषोऽन्वीतपौरुषान् । कुर्वन् सर्वान् स<sup>१४</sup> निवैशान् सोमवंशाध्वजायते ॥ १८५॥  
 विद्विषोऽन्वीतवः केचित् क्षणं तस्थुसृता इव । प्राणैर्न प्राणिनः<sup>१५</sup> किञ्चु मालद्राणा हि मानिनः ॥ १८६॥  
 प्रज्ञवलन्तं<sup>१६</sup> जयम्भं ते जयं तं सोमुमक्षमाः । सह सर्वेऽपि<sup>१७</sup> संपेतुर<sup>१८</sup> व्यग्निं शालभा यथा<sup>१९</sup> ॥ १८७॥

जिनमें जुते हैं ऐसे अन्वीतविद्विषोऽन्वीतवः कालमें अल्लन्तः नाम-इरल्यू इरल्यू विद्विषोऽन्वीतवः के प्रति दौड़ने लगे ॥ १७७॥ रथोंके स्वामी, सम्पूर्ण शस्त्रोंसे भरे हुए रथोंपर सवार हो एिजरोंमें बन्द हुए खिरोंकी तुलना धारण करते हुए गरज रहे थे ॥ १७८॥ उस युद्धमें पहियोंके संघटनसे पिसे हुए मुखदोंके खून और मासकी कीचड़में रथोंके समूह ऐसे चल रहे थे मानो किसी समुद्रमें छोटी-छोटी नावें ही चल रही हों ॥ १७९॥ बरछा, तलबार, भाले और चक्र आदिसे भरे हुए युद्धक्षेत्रमें घायल पेरोंबाले रथके घोड़े बड़े कष्टमें चल रहे थे ॥ १८०॥ उसी समय तैपार हुए तथा जुड़े हुए सब प्रकारके शस्त्रोंसे व्याप्त रथपर आरुढ़ होनेसे जिसका पराक्रम वृषभ राशिपर आरुढ़ हुए सूर्यके समान बढ़ रहा है, जिसके आगे चलते हुए बाणरूपी तीक्ष्ण किरणोंका समूह प्रकाशमान हो रहा है और जो शत्रुरूपी अन्धकारका भेदन कर रहा है ऐसे उस जयकुमारने उदय होता हुआ बाल-सूर्य भी जीत लिया था ॥ १८१-१८२॥ अथवा वह जयकुमार किसी अच्छे वैद्य या डाक्टरका अनुकरण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार वैद्य शस्त्रकी तोकसे बिगड़ा हुआ खून निकाल देता है उसी प्रकार वह जयकुमार भी तलबारकी तोकसे दुष्ट-शत्रुओंका खून निकाल रहा था, जिस प्रकार वैद्य शस्त्र चलानेकी क्रियाको जानता है उसी प्रकार वह जयकुमार भी शस्त्र चलानेकी क्रिया जानता था और वैद्य जिस प्रकार शल्यको निकाल देता है उसी प्रकार जयकुमार भी शत्रुरूपी शल्यको निकाल रहा था ॥ १८३॥ उसके द्वारा चलाये हुए बाण शत्रुओंको सन्ताप उत्पन्न कर अशुभकी सूचना देते हुए धूमकेतुके समान उनको ध्वजाओंपर पड़ रहे थे ॥ १८४॥ उस समय शत्रुओंकी ध्वजाओंके दण्डोंको खण्ड-खण्ड कर सब शत्रुओंको पौरुषहीन तथा वंशरहित करता हुआ जयकुमार सोमवंशकी ध्वजाके समान आचरण कर रहा था ॥ १८५॥ जिनकी पत्ताकाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी हैं ऐसे कितने ही शत्रु अण-भरके लिए मरे हुएके समान खड़े थे सो ठीक ही है क्योंकि प्राणोंसे ही प्राणी नहीं गिने जाते किन्तु अभिमानी मनुष्य अभिमानको ही प्राण समझते हैं ॥ १८६॥ अच्छी तरह जलते हुए

१ अवसरम् । 'पर्यायोऽवसरे ऋम्' इत्यभिधानात् । २ प्राण्य । ३ विद्विषं प्रति ल० । ४ आयुष । ५ साम्यम् ।  
 ६ गर्जन्ति स्म । ७ पञ्जरैः ल० । ८ रणे । ९ मन्दनोरिव । १० क्षतपादाः । ११ सञ्जोकृतं । १२ संप्राण्य ।  
 १३ वृषभराशिमिव । १४ करवालेन समुत्सृष्टदुष्टासः । १५ अनुगतवान् । श्रृंगतो लङ्घि रूपम् । मन्वीयः  
 ल० । १६ समुत्सृष्टः । १७ इव । १८ अनुगत । १९ यजः । २० न जीवन्ति । २१ जयतीति जयन् तम् ।  
 २२ अभिमुखपागतः । २३ अग्निमभि पतञ्जाः । २४ शलभा इव ल० ।

संनद्धस्यन्द्रिना इवण्डास्तदा हेमाकुमारादयः । कोदण्डास्फालनध्वाननिहृद्दहरितः<sup>१</sup> कुधा ॥ १८६॥  
 वश्चुर्वक्षिवृष्टिं वा वाग्वृष्टिं प्रति द्विषः । वावस्ते<sup>२</sup> लक्ष्यस्ते<sup>३</sup> नेवुस्तावदाखिष्ठृतीयसाः ॥ १८७॥  
 निहृष्यानन्तसेवादिशरजालं रणाणवे । स्यन्दगाइचोद्यामासुः पोताभ्वा वातरहसः<sup>४</sup> ॥ १८८॥  
 वक्षाहृथास्त्रसंबहसमुत्पन्नाशुभृष्टिम्<sup>५</sup> । पेतुवहार्द्वे चरे तेजस्तेजस्ती सहसे कथम् ॥ १८९॥  
 अस्योऽन्यं खण्डयन्ति स्म तेषां शशक्षणि तद्वगे । नैकप्रदयपराम्बापुदिव्वर्मस्त्रेषु कौशलम् ॥ १९०॥  
 न मृता व्रणिता वैव न जयो न पराजयः । युद्धमानेष्वहो तेषु नाहवोऽप्याहवायसे ॥ १९१॥  
 युद्धवाऽप्येष्व चिरं शोकुर्व जेतुं ते परस्परम् । जयः सेनाद्वये तस्मिन्<sup>६</sup> जयाश्चेन दुर्लभः ॥ १९२॥  
 अन्तर्हासो जयः सर्वं तत्तद्वाऽलोक्य लीलया । शरैः संचाराद्यामास सैन्यं पुत्रस्य चक्रिणः ॥ १९३॥  
 निष्पन्नीभूतमालोक्य चक्रिसूनुः स्वसाधनम् । रक्षोत्थलदूरुच्छायामुच्छिष्य<sup>७</sup> न्यनस्तिष्या ॥ १९४॥  
 जयः परस्य<sup>८</sup> नो भेद्य जयो जयमहं रणे । विभवस्य<sup>९</sup> सुवने युद्धमक्तव्यं रथापये चशः ॥ १९५॥  
 विद्वाद्यामय नाथेभुजसरहृशेषवर्द्धम् । जयलक्ष्मीर्वदीकृत्य विभेयान्मेऽधुना सुखम्<sup>१०</sup> ॥ १९६॥

और सबको जीतते हुए उस जयकुमारको सहन करनेके लिए असमर्थ होकर वे सब शत्रु उसपर द्वास प्रकार दूट पड़े मानो अग्निपर पतंगे ही पड़ रहे हों ॥ १८७॥ इतनेमें ही जिनके रथ तेयार हैं, जो बड़े क्रोधी हैं, जिन्होने क्रोधसे धनुष खीचकर उनके शब्दोंसे सब दिशाएँ भर दी हैं और शत्रु जबतक अपने लक्ष्य तक पहुँचने भी न पाये थे कि तबतक ही जिन्होने अपना सब उद्यम प्रकट कर दिखाया है ऐसे हेमांगद आदि राजकुमार शत्रुओंपर अग्नि वषकि समान बाणोंकी बर्षा करने लगे ॥ १८८-१८९॥ वे अनन्तसेन आदिके बाणोंका समूह रोककर बायुके समान वेगवाले रथोंको रणरूपी समुद्रमें जहाजोंके समान दौड़ाने लगे ॥ १९०॥ वे रथोंके धोड़े दोनों सेनाओं सम्बन्धी शस्त्रोंके संघटनसे उत्पन्न हुई अग्निपर पड़ रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि तेजस्ती मनुष्य दूसरेका तेज कैसे सह सकता है ? ॥ १९१॥ उस युद्धमें दोनों सेनाओंके शस्त्र एक दूसरेको खण्ड-खण्ड कर देते थे, एक भी शस्त्र शत्रुओं तक नहीं पहुँचने पाता था सो ठीक ही है क्योंकि उनकी अस्त्रोंके चलानेकी कुशलता आइचर्य करनेवाली थी ॥ १९२॥ आइचर्य है कि उन योद्धाओंके युद्ध करते हुए न सो कोई मरा था, न किसीको घाव लगा था न किसीकी जीत हुई थी और न किसीकी हार ही हुई थी, और तो क्या उनका वह युद्ध भी युद्ध-सा नहीं मालूम होता था ॥ १९३॥ इस प्रकार बहुत समय तक युद्ध करके भी वे एक दूसरेको जीत नहीं सके थे सो ठीक ही है क्योंकि उन दोनों सेनाओंमें जयकुमारके सिवाय और किसीको विजय प्राप्त होना दुर्लभ था ॥ १९४॥ उस समय यह सब देखकर मन ही मन हँसते हुए जयकुमारने चक्रवर्तीके पुत्र—अर्ककीतिकी सब सेनाको लीलापूर्वक ही बाणोंसे ढक दी ॥ १९५॥ अपनी सेनाको चेष्टारहित देखकर चक्रवर्तीका पुत्र—अर्ककीति अपने नेत्रोंकी कान्तिसे लाल कमलके दलकी कान्तिको जीतता हुआ अर्थात् क्रोधसे लाल-लाल आँखें करता हुआ कहने लगा कि आज शत्रुकी जीत नहीं हो सकती, मेरी ही जीत होगी, मैं युद्धमें जयकुमारको मारकर संसारमें कल्पान्त काल तक टिकनेवाला शुद्ध यश स्थापित करूँगा तथा आज ही बढ़ते हुए नाथ-

१ दिशः । 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाह्व ताः' । इत्यभिशान्त् । २ रथिनः । ३ रणाङ्गेभिमुखे समागत्य मुख्यताम् । ४ न गच्छन्ति स्म । ५ वायुविगिनः । ६ अग्निम् । ७ जग्मुः । ८ अववाः । ९ अन्यत् । १० एकं शस्त्रमपि । ११ जयकुमारात् । १२ अभिशश्येत्यर्थः । १३ न । मैं नो जयः इति दुर्घटनिः । १४ जयकुमारम् । १५ विनाशय । अविमाश्येति दुर्घटनिः । १६ जयस्य लक्ष्मीः इति दुर्घटनिः । १७ सुखमिति दुर्घटनिः । 'आ०' प्रती असुखमिति दुर्घटनिः ।

श्रुतन् स कल्पनादुष्टमिति<sup>१</sup> स्वानिष्टसूचनम् । द्विषं प्रस्तोदयामास कुधेवाजग्रामात्मनः<sup>२</sup> ॥१९६॥  
 ३ प्रतिवातसमुद्रतपदचादगतपतलाकिका: । ४ मन्दं मन्दं कवणद्वप्ता: कुणितस्ववलोक्त्राः ॥२००॥  
 ५ मंशुवंदान निष्यन्दकदीनाननश्रियः । ६ निर्वाणालातमिमासिनि-शोषाश्चभराक्षमाः ॥२०१॥  
 ७ आवोरणैः कृतोल्साहैः कृष्णकृष्णेण चोदिताः । ८ आक्रम्मित्र कुर्वन्तः कुणितैः कण्ठगर्जितैः ॥२०२॥  
 ९ भीतभीता<sup>१०</sup> युधोऽन्त्यैव चिह्नैरक्षुभसूचिभिः । ११ गजा गताजवाइचेलुरचला हृष जङ्गमाः ॥२०३॥  
 १२ मन्दमन्दं प्रकृत्यैव<sup>१३</sup> मन्दा युद्धस्याम्भृगाः<sup>१४</sup> । जग्मुनिहरुक<sup>१५</sup> मद्रास्तदग्रायुभसूचनम्<sup>१६</sup> ॥२०४॥  
 १७ विजिर्गायोविंगुणस्थ वृथा प्रणिधयो<sup>१७</sup> यथा । तथाऽकंकीर्तयन्तुणां<sup>१८</sup> ते<sup>१९</sup> गजेषु नियोजिताः ॥२०५॥  
 १८ लक्ष्यनेत्रबोद्धीर्या<sup>२०</sup> पारिभद्रोदगमच्छविम् । प्रकटभूकृदीदन्वसंधानितशारासनः ॥२०६॥  
 १९ रिषु<sup>२१</sup> कुपितमोगीन्द्रस्फुटाटोपसर्थकरः । कुर्वन्त्विलोक<sup>२२</sup> नातपतीत्रनाशाचगोचरम् ॥२०७॥  
 २० गिरीभृतित्वराकारमारुद्धा हरिविक्रमः । गजेन्द्र<sup>२३</sup> विजयाद्विलयं<sup>२४</sup> गर्वन्मेघस्वरस्तदा ॥२०८॥

वंश और सोमवंशका छेदन करूँगा, विजयलक्ष्मी मृद्दे अभी वश कर सुखी करेगी, इस प्रकार अभिप्रायसे दुष्ट तेथा अपना ही अनिष्ट सूचित करनेवाला वचन कहते हुए अर्ककीर्तिने क्रोधसे अपने पराजयके समान अपना हाथी आगे बढ़ाया ॥१९६—१९९॥ प्रतिकूल वायु चलनेसे जिनकी ध्वजाएँ पीछेकी ओर उड़ रही हुई जिनके धैर्य-धौर बजे रहे हुए, जिन्होंने अपनी सेनाके उत्सवको कुणित कर दिया है, गण्डस्थलके मदका निष्यन्द सूख जानेसे जिनके मुखकी शोभा मलिन हो गयी है, जिनकी शोभा बुझे हुए अलातचक्रके समान है, जो समूर्ण शस्त्रोंका भार धारण करनेमें असमर्थ है, उत्साह दिलाते हुए महावत जिन्हें बड़ी कठिनाईसे ले जा रहे हैं, जो कुणित हुई कण्ठकी गर्जनासे मानो रुदन ही कर रहे हैं, जो युद्धसे तथा अशुभको सूचित करनेवाले अन्य अनेक चिह्नोंसे अत्यन्त भयभीत हो रहे हैं और जिनका वेग नष्ट हो गया है ऐसे हाथी चलते फिरते पर्वतोंके समान चल रहे थे ॥२००—२०३॥ मन्द जातिके हाथी स्वभावसे ही मन्द-मन्द चल रहे थे, मृग जातिके हाथी युद्धके भयसे धीरे-धीरे जा रहे थे और भद्र जातिके हाथी बिना ही कारण धीरे-धीरे चल रहे थे परन्तु युद्धमें उनका धीरे-धीरे चलना अशुभको सूचित करनेवाला था ॥२०४॥ जिस प्रकार विजयकी इच्छा करनेवाले किन्तु पुण्यहीन मनुष्यके मुप्त सेवक व्यर्थ हो जाते हैं--अपना काम करनेमें सफल नहीं हो पाते हैं उसी प्रकार अर्ककीर्तिके लिए उन हाथियोंसे कही हुई महावत लोगोंकी प्रार्थनाएँ व्यर्थ हो रही थीं ॥२०५॥ उधर जो अपने दीनों नेत्रोंकी कान्तिसे कल्पवृक्षके फूलकी कान्तिको जीत रहा है, जिसने अपनी भौंहोंकी रचनाके समान ही प्रकटरूपसे बाण चढ़े धनुषका आकार बनाया है, क्रोधित हुए महा सर्पके समान जिसका शरीर कुछ ऊपर उठा हुआ है और इसीलिए जो भयंकर है, जो अपने शवुको अपनी दुष्टि तथा तपे हुए बाणोंका निशाना बना रहा है, एवं सिहके समान जिसका पराक्रम है ऐसा मेघस्वर जयकुमार उस समय गर्जता हुआ मेरुके शिखरके समान आकारवाले विजयाधीं नामके उत्तम हाथीपर सवार होकर, अनुकूल वायु चलनेसे

१ अभिप्रायदुष्टम् । २ निजानिष्ट । ३ अग्रजयम् । ४ प्रतिकूलवायुः । ५ मन्दमन्द-अ०, ८०, १०, १०, १० ।  
 ६ मदक्षवण । नष्टोल्मुकसदृशः । ८ हस्तिपक्षः । ९ कृतोद्योगः । १० रोदनम् । ११ अधिकभीताः । १२ सङ्ग्रामास् ।  
 १३ स्वभावेनैव जडः । १४ मृगरात्रृशः । मृगजातयश्च । १५ भद्रजातयः । १६ मन्दगमनम् । १७ वाञ्छाः चराच । 'प्रणिधिः प्रार्थने चरे' इत्यभिधानात् । १८ गजारोहकाणाम् ।—कीर्तये  
 नृणां ल० । १९ मनोरथाः । २० मन्दारकुसुमवृक्षविम् । 'पारिभद्रो निष्वत्तरमन्दारः पारिजातकः' इत्यभिधा-  
 नात् । २१ न्टोपो भयंकरः ल०, ८० । २२ निजालोकनाध्येव अतप्तहोक्षणवाणास्तेषां किषयम् । २३ जयकुमारः ।

अनुकूलानिलोकिष्टतापुरम्यर्थद्वयजोशुकैः । क्रान्तद्विपारितिकास्तविलयातारुण्योषर्णः<sup>१</sup> ॥ २०५ ॥  
प्रस्फुरद्व्यंस्त्रातर्द्विसिद्धिपितिद्व्यमुखैः । द्वृष्टदुन्दुभिसद्वयानवृहद्वृहितभीषणैः ॥ २०६ ॥  
घटामशुशनिधौधनिभिक्षुभुवनत्रयैः । सथः समुच्चरहपैरपि सिंहान् जिर्गायुभिः ॥ २०७ ॥  
प्रापशुद्वोरुक्तः साद्वै गर्जविजयसूचिभिः । अयवेलानिलोद्वत्सिन्धुबेलां विडम्बयन् ॥ २०८ ॥  
महाहास्तिक्षिष्टारस्यूलनीलवलाहकः ॥ समन्तात् संपत्तिश्छङ्कुर्सम्भूसहस्रानकः ॥ २०९ ॥  
प्रोत्यातामिलताविष्टुस्तुरसितमासुरः ॥ नानामकमहाध्वानगम्भीरघमगर्जितः ॥ २१० ॥  
<sup>१</sup> तवलोहितपूरम्बुनिरुद्धभरणीतलः । नितान्तनिष्ठुरापातमुक्तगराशनिसंततिः<sup>२</sup> ॥ २११ ॥  
चलनियतपदाकालिवलाका<sup>३</sup> च्छादिताम्बरः । सङ्ग्रामः प्रावृद्धो लक्ष्मीमरीषामपुष्टदा<sup>४</sup> ॥ २१२ ॥  
सुचिरं नवसंदोहसंसूक्ष्मसमराङ्गे । सेनयोः सर्वशास्त्राणो व्याययो<sup>५</sup> बहुशोऽमवत् ॥ २१३ ॥  
निरुद्धमूर्खैः गृधैर्धैर्मर्यमुष्यदृष्टजांशुकैः । सेनाद्वयविनिर्मुकैः शक्षीधीत्रो च सा सता<sup>६</sup> ॥ २१४ ॥  
जयलक्ष्मी नवोडायाः<sup>७</sup> लपत्नीभिर्च्छता नवाम् । तदाकंकीर्तिसुहित्य जयेनाचोशत<sup>८</sup> त्रिपः ॥ २१५ ॥  
अष्टुचन्द्राः पुरोभूयः<sup>९</sup> भूयः<sup>१०</sup> प्रापदृष्टवान्यः<sup>११</sup> । क्षपक<sup>१२</sup> वांशहसा<sup>१३</sup> भेदा न्यद्वैस्त<sup>१४</sup> निनक्षुक्षषः<sup>१५</sup> ॥

जिनकी ध्वजाओंके बस्त्र उड़कर आगेकी ओर जा रहे हैं, आक्रमण करते हुए सिंहके समान प्रसिद्ध पराक्रमवाले योद्धा जिनपर बीठे हैं, देवीप्यमान शस्त्रोंके समूहकी दीप्तिसे जिन्होंने समस्त दिशाओंके मुख प्रकाशित कर दिये हैं, बजते हुए नगाढ़ोंके बड़े-बड़े शब्दोंसे बढ़ती हुई गर्जनाओं-से जो भयंकर हैं, घण्टाओंके मध्य शब्दोंसे जिन्होंने तीनों लोक भर दिये हैं, तत्काल उठते हुए अहंकारसे जो सिंहोंको भी जीतना चाहते हैं और जो विजयकी सूचना करनेवाले हैं ऐसे हाथियों-के साथ, प्रलय कालकी वायुसे उठी हुई समुद्रकी लहरोंको विडम्बित करता हुआ युद्धकी उत्कण्ठा से आ पहुँचा ॥ २०६—२१२ ॥ जिसमें बड़े-बड़े हाथियोंके समूहका विस्तार ही बड़े-बड़े काले बादल हैं, चारों ओरसे पड़ते हुए बाणोंके समूह ही मयूर है, ऊपर उठायी हुई तलवारलपी बिजलियोंकी चमकसे जो प्रकाशमान हो रहा है, अनेक नगाढ़ोंके बड़े-बड़े शब्द ही जिसमें मेघों-की गम्भीर गर्जनाएँ हैं, नवीन रुधिरके प्रवाहरूपी जलसे जिसमें पृथ्वीतल भर गया है, बड़ी निर्दयताके साथ पड़ते हुए मुद्गर ही जिसमें बज्रोंका समूह है और फहराती हुई सफेद पताकाओंके समूहरूप बगलाओंसे जिसमें समस्त आकाश आच्छादित हो रहा है ऐसा वह युद्ध उस समय वषकृतुकी सम्पूर्ण शोभाको पुष्ट कर रहा था ॥ २१३—२१६ ॥ बहुत देर तक सब योद्धाओंके समूहसे घिरे हुए युद्धके मैदानमें दोनों सेनाओंके सब शस्त्रोंका अनेक बार व्यत्यय (अदला-बदली) हुआ था ॥ २१७ ॥ उस समय ऊपरका आकाश गीधोंके समूहसे भर गया था, मध्य भाग फहराती हुई ध्वजाओंके बस्त्रोंसे भर गया था और पृथिवी दोनों सेनाओंके द्वारा छोड़े हुए शस्त्रोंसे भर गयी थी ॥ २१८ ॥ उसी समय जयलक्ष्मीको नवीन विवाहिता सुलोचनाकी नपी सौत दनानेकी इच्छा करते हुए जयकुमारने अकंकीर्तिको उद्देश्य कर अपना हाथी आगे बढ़ाया ॥ २१९ ॥ जिस प्रकार कर्मोंके भेद क्षपकध्रेणीवाले मुनिको रोकते हैं उसी प्रकार अष्टुचन्द्र नामके विद्याधर जिनकी कि शक्ति पहले देखनेमें आयी थी फिरसे सामने आकर

<sup>१</sup> आक्रमस्तसिंहपराक्रमप्रिदाकारणाशोरणः । २ लाहित । ३ व्याप्त । ४ प्रलयकाल । ५ विलद्ययन् ल०, म०, अ०, प०, इ०, स० । ६ गजसमूह । ७ कालमेष । ८ शश्यायुधसमूहमयूरकः । ९ स्फुरण । १० नूतन-रक्त । ११ द्रुष्ण । १२ विषकण्ठिका । १३ पुष्णाति स्म । १४ व्यत्यय इति संबन्धिनः इतरेण हरणम् । (‘ता०’ प्रसी व्यत्ययः इतरसंबन्धिनः इतरेण हरणम्) । १५ व्याप्ता । तदा ल० । १६ नूतनविवाहितायाः सुलोचनायाः । १७ प्रेरितः । १८ अन्ने भूत्वा । १९ पुनः पुनः । २० पूर्व वृष्टपराक्रमाः । २१ क्षपकध्रेष्या-रूपम् । २२ इव । २३ कर्मणाम् । २४ जयम् । २५ नाशितुमिष्ठत्रः ।

जयोऽपि सुचिरात्मप्रतिपक्षो व्यदीप्यलम् । लक्ष्मेव रन्धनं चहिः<sup>१</sup> उत्साहामिनसखोऽिङ्गतः ॥२२१॥  
 तदोभयवलहयातगाजादिशिखरस्थिताः । चोदमारेभिरे राजराजसिंहः<sup>२</sup> परस्परम् ॥२२२॥  
 अन्योन्यरदन्तोदभिन्ना तत्र कौचिद् व्यसू<sup>३</sup> गजौ । चिरं "परस्पराधारावामाता यमलाद्रिवत्" ॥२२३॥  
 समन्ततः शैरेच्छका रेजुराजी गजाधिपाः । क्षुववेणुगणाकीर्णसंवरद् गिरिसिंधाः ॥२२४॥  
 दानिनो माविनस्तुंगाः<sup>५</sup> कामचन्तोऽनन्तकोपमाः । महाभृतः सबैसच्चेभ्यो न युद्धयन्ताँ कथं गजाः ॥२२५॥  
 "सुग्रेर्मु<sup>६</sup> गैरिवापाल<sup>७</sup> मात्रभग्नैर्मयाद् द्विषेः । सवैन्यमेव संशुष्यते<sup>८</sup> विक् स्थौर्यं भीतव्येतसाम् ॥२२६॥  
 निःशक्तीन्<sup>९</sup> शक्तिभिः<sup>१०</sup> शक्ताः<sup>११</sup> इच्छादिवकुरवान्तकान् ।  
 "शक्तियुक्तानशक्तांश्च निःशक्तीन्<sup>१२</sup> विगिधानुनाम्<sup>१३</sup>" ॥२२७॥

शक्तनिमित्तसर्वाङ्गा निमीलिलविलोचनाः । सम्यक्<sup>१४</sup> संहृतसंरम्माः संभावितपराक्षमाः ॥२२८॥

युद्धयैव<sup>१५</sup> वद्यवल्यकास्त्वयक्तसर्वपरिष्ठदाः ।<sup>१६</sup> समस्याद्युरसञ्ज्ञरा<sup>१७</sup> निधाय वृद्धेऽहंतः ॥२२९॥

जयकुमारको रोकने लगे ॥२२०॥ जिस प्रकार बहुत-से इन्धनको पाकर बायुसे उद्दीपित हुई अग्नि देवीप्यमान हो उठती है उसी प्रकार उत्साहरूपी बायुसे बढ़ा हुआ वह जयकुमार भी बहुत देरमें शत्रुको पाकर अत्यन्त देवीप्यमान हो रहा था ॥२२१॥ उस समय दोनों सेनाओं-में प्रसिद्ध हाथीरूपी पर्वतोंके शिखरपर बैठे हुए अनेक राजारूपी सिंहोंने भी परस्पर युद्ध करना आरम्भ कर दिया था ॥२२२॥ उस युद्धमें एक दूसरेके दीतोंके प्रहारसे विदीर्ण होकर मरे हुए कोई दो हाथी मिले हुए दो पर्वतोंके समान एक दूसरेके आधारपर ही चिरकाल तक बड़े रहे थे ॥२२३॥ चारों ओरसे बाणोंसे ढके हुए बड़े-बड़े हाथी उस युद्धमें छोटे-छोटे बाँसों-से व्याप्त और चलते हुए पर्वतोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२२४॥ जो दानी हैं—जिनसे मद झर रहा है, मानी हैं, ऊचे हैं, यमराजके समान हैं और सब जीवोंसे बड़े हैं ऐसे भद्र जातिके हाथी भला क्यों न युद्ध करते ? ॥२२५॥ जिस प्रकार हरिण भयभीत होकर भागते हैं उसी प्रकार मृगजातिके हाथी भी प्रारम्भमें ही पराजित होकर भयसे भागने लगे थे और उससे उन्होंने अपनी ही सेनाका चूर्ण कर दिया था इससे कहना पड़ता है कि भीरु हृदयवाले मनुष्यों-के स्थूलपनको धिक्कार हो ॥२२६॥ शक्तिशाली ( सामर्थ्यवान् ) योद्धा अपने शक्ति नामक शस्त्रसे, जिनके पास शक्ति नामक शस्त्र नहीं है ऐसे शक्तिशाली ( सामर्थ्यवान् ) योद्धाओंको शक्तिरहित-सामर्थ्यहीन कर रहे थे और जिनके पास शक्ति नामक शस्त्र था किन्तु स्वर्य अशक्त-सामर्थ्यरहित थे उन्हें भी शक्तिरहित-शक्ति नामक शस्त्रसे रहित कर रहे थे—उनका शस्त्र छुड़ा रहे थे इसलिए आचार्य कहते हैं कि ऊनता अर्थात् आवश्यक सामग्रीकी कमीको धिक्कार हो ॥२२७॥ जिनके समस्त अंग शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न हो गये हैं, नेत्र बन्द हो गये हैं, जिन्होंने युद्धकी इच्छाका अच्छी तरह संकोच कर लिया है, जो अपना पराक्रम दिखा चुके हैं, जिन्होंने बुद्धिसे ही पल्यकासन बांध लिया है और सब परिव्रह छोड़ दिये हैं ऐसे कितने ही

१ रन्धनम् इन्धनम् । लब्धेवेष्टन्धनं ल०, म०, अ०, प०, स०, इ०, द०, । २ उत्साहवायुना समृद्धः । ३ राजराजमुख्याः । सिंहाः इति ष्वनिः । ४ विगतप्राणी । ५ अन्योन्यावैलम्बनो । ६ यमकगिरिवत् । ७ संचलदग्धिरिवत् । ८ अरोहकानुकूला इत्यर्थः । ९ युद्धयन्ते ल० । १० मृगजातिभिः । भक्त्यावेषणीयैवा । ११ हरिणरिव । १२ प्रथमदिशामामेव । १३ संचूर्णमभवत् । १४ शक्त्यायुधरहितम् । १५ शक्त्यायुधः । १६ समर्थः । १७ समर्थन् । १८ शक्त्यायुधयुक्तान् । १९ शक्त्यायुधरहितान् । २० सामग्रीविकलताम् । २१ सम्यगुत्सृष्टसमारम्भाः । २२ मनसैव कृतपर्युद्धकातनाः । २३ सम्यक्त्यवत्वन्तः । २४ प्राणान् ।

कस्यचिन् कोधसंहारः समुत्तिश परमेष्ठिनि । १३१ निषायामायुषोऽवासीदभ्यासात् किं च जायने ॥२३०॥  
हहि नाराचनिभिक्षा वक्ष्यात् खबदस्कैलवाः । १३२ शिवाङ्गाम्ब्रतम्ब्रान्ताः पर्यन्तम्ब्रस्तपकराः ॥२३१॥  
गृद्ध्रयभानिलीच्छस्मृष्टाः संप्राप्तसंशकाः । समाधाय हि ते शुद्धां अद्वा शूरगतिं गताः ॥२३२॥  
छिन्नैश्चक्रेण शूराणां शिरोऽस्मोजैवेकासिभिः । १३३ रणाक्षणोऽस्मिंसौ वामास् त्रृष्णैः जयजयश्चियः ॥२३३॥  
स्वामिसंभानवानादिमहोपैः कृतिनिर्भराः । प्राप्त्याध्यमर्णताः प्राणैः संबो संपाद्य सेवकाः ॥२३४॥  
स्वप्राप्त्याम्ब्रम्भुत्तप्त्यस्त्रभस्त्रिभिः ॥२३५ स्वभूतः ॥२३६ । लड्डपूजान् विद्यायान्ये धन्या ॥२३७ नैर्वर्ण्यभागभन् ॥  
जयमुक्ता भृतं पेतुरविमुक्ताजयाः शराः । अष्टचन्द्रान् प्रति प्रोक्षैः प्रदीप्योल्कोपमाः ॥२३८॥  
१३८ जयप्रहितशस्त्राली नैनिषिद्धा च विजया । उवलन्ती परिशब्दान्तान् परिवेषाङ्गुलिर्बंधौ ॥२३९॥  
विद्विद्याधराधीशमां दिराजाम्भजस्तदा । १३९ द्विषो निःशेषवाशेषानित्याह सुनमिं रुपा ॥२३१॥  
सोऽपि स्वैः लग्नैः साद्वं निर्द्वारातिक्रिक्षमः । वद्विषुष्टिमिवाकाशो ववर्द्य शरसंततिम् ॥२३१॥

शूरबीरोने हृदयमें अहंत भगवान्को स्थापन कर प्राण छोड़े थे ॥२२८-२२९॥ किसी योद्धाके आयुकी समाप्तिके समय क्रोध शान्त हो गया था और परमेष्ठियोंका स्मरण होने लगा था सो ठीक है क्योंकि अभ्याससे क्या-क्या सिद्ध नहीं होता ? ॥२३०॥ जिनके हृदय बाणोंसे छिन्नभिन्न हो गये हैं, मुँहसे सधिरका प्रवाह बह रहा है, सियारोने जिनकी अंतिमियोंकी ताँतोंके अन्तभाग तकको खीच लिया है और जिनके हृष्यपैर फट गये हैं ऐसे कितने ही योद्धा गोधोंके पंखोंकी हवासे मूर्ढारहित होकर कुछ-कुछ सचेत ही गये थे और शुद्ध अद्वा धारण कर शूरगति-स्वर्ग गतिको प्राप्त हुए थे ॥२३१-२३२॥ चक्र नामक शस्त्रसे कटे हुए शूरबीरोंके प्रफुल्लित मुखरूपी कमलोंसे भरी हुई वह युद्धकी भूमि ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो जयकुमारकी विजयलक्ष्मीके नृत्योंसे ही सुशोभित हो रही हो ॥२३३॥ स्वामीके द्वारा पाये हुए आदर सत्कार आदि बड़े-बड़े उपकारोंसे दबे हुए कितने ही सेवक लोग अपने प्राणों-द्वारा स्वामीकी सेवा कर ऊँकण अवस्थाको प्राप्त हुए थे और कितने ही धन्य सेवक, अपने-अपने प्राण देकर सन्तुष्ट हुए वान्नु राजाओंसे अपने स्वामियोंकी पूजा-प्रतिष्ठा कराकर कर्जरहित हुए थे । भावार्थ-कितने ही सेवक लड़ते-लड़ते मर गये थे और कितने ही शत्रुओंको भारकर कृतार्थ हुए थे ॥२३४-२३५॥ जिन्होंने विजय प्राप्त करना छोड़ा नहीं है और जो अपनी बड़ी भारी कान्तिसे उल्काके समान जान पड़ते हैं ऐसे जयकुमारके छोड़े हुए बाण अष्टचन्द्र विद्याधरोंके पास बहुत शीघ्र एक साथ पड़ रहे थे ॥२३६॥ जयकुमारके द्वारा छोड़ी हुई शस्त्रोंकी पक्षियोंको उन विद्याधरोंने अपने विद्या बलसे रोक दिया था । इसलिए वे उनके चारों ओर जलती हुई झड़ी थीं और ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो चन्द्रमाओंके चारों ओर गोल परिधि ही लग रही हो ॥२३७॥ उसी समय आदि सम्भ्राट-भरतके पुत्र थर्कंकीतिने बड़े क्रोधसे सब विद्याधरोंके अधिष्ठिति सुनमिसे कहा कि तुम समस्त शत्रुओंको नष्ट करो ॥२३८॥ और शत्रुओंके पराक्रमको नष्ट करनेवाला सुनमिकुमार भी अग्नि वषकि समान आकाशमें बाणोंके समूहकी बर्षा करने लगा ॥२३९॥ जो अत्यन्त

१ परिसमाप्तौ सत्याम् । २ रणे । ३ साड्यते ल० । ४ जमदुकाङ्गुरीतत्समूहाया । अन्तगतशस्त्राप्रा-  
या । ५ सत्वाप्रा-ट० । ६ विक्षिप्तपादपाणयः । ७ स्पृहाम् । ८ स्वर्गम् । इष्टियजयवत्ता गतिमित्यर्थः । ९ रण-  
रङ्गोऽन्विते-ल० । १० तर्तनाय । ११ जयकुमारस्य जयलक्ष्म्याः । १२ महोपकारातिशयाः । १३ ऋणप्राप्ति-  
ताम् । १४ शत्रुभूमालैः । १५ निजनृपतीन् । १६ ऋणवृद्धवनम् । ऋणाश्रिष्टकान्तस्त्वम् । १७ जयकुमारेणोस्तृष्णाः ।  
१८ अर्यक्तजयाः । १९ प्रदीप्योल्कोपमाः ल० । २० युगपत् । २१ जयकुमारिणाविद । २२ शत्रुभिः ।  
२३ अष्टचन्द्रान् परितः, मृगाङ्गान् परितः । २४ थर्कंकीतिः । २५ शत्रू । २६ विनाशय । २७ सुनमिः ।

भीकरा: किङ्ग्राकारा लक्ष्मी रुद्रिहसुखा: । कांस्कान्<sup>३</sup> शृणाम नेतीष सुतीक्ष्णाः ४ शरवोऽपतन् ॥२४०॥  
 ५ मेवप्रभो जयादेशादिभेन्द्र<sup>५</sup> वा सृगाधिषः । आक्रम्य विक्रमी शस्त्रं<sup>६</sup> रौस्सीत्त<sup>७</sup> विहायसि ॥२४१॥  
 ८ लमोऽस्मिन्नग्रजमेघादिविद्या: सुनमियोजिताः । तुर्ढीकृष्टं<sup>८</sup> सैविलिप्तं (?) सहसा भास्करादिभिः<sup>९</sup> २४२॥  
 १० जयपुण्योदशात्सच्चो विजिर्ये<sup>१०</sup> खचसधिपम् । संप्रामेऽनुगुणे देवे<sup>११</sup> क्षोदिमा चंहिमेति<sup>११</sup> न ॥२४३॥  
 १२ प्रवृत्तप्रापृडारमभ्यमभुताम्भोधरावलिम् । १३ शिलहस्यानेकपानीकै<sup>१३</sup> कौमारै<sup>१४</sup> जयमारुण्यं<sup>१५</sup> ॥२४४॥  
 १५ जयोऽप्यमिसुर्वीकृत्य विजयाद्वै गजाधिपम् । धीरोद्वत्ते<sup>१६</sup> रुषा प्राप्तं<sup>१७</sup> धीरोदात्तोऽवर्वीदिदम् ॥२४५॥  
 १८ न्यायमार्गाः प्रवत्यन्ते सम्यक् सर्वेऽपि चक्रिणा । १९ सेषामेमिर्दुराचर्विः<sup>१९</sup> कृतसर्वं पारिपन्थिकः<sup>२०</sup> ॥२४६॥  
 २१ बुद्धिमास्त्वं तवाहार्यबुद्धित्वमपि<sup>२१</sup> दूषणम् । कुमार नीयसे<sup>२२</sup> पारैहतृतोय<sup>२३</sup> तद्विगर्हितम्<sup>२४</sup> ॥२४७॥  
 २३ अन्तःक्षोपोऽप्यर्थं<sup>२५</sup> पापैर्महातुष्ठापितो शृथा । सर्वतस्त्रक्षयो भक्तुः<sup>२६</sup> सहसा येन<sup>२७</sup> तारशः ॥२४८॥

भयंकर हैं, किंकरोंके समान काम करनेवाले हैं, वेगके कारण शब्द कर रहे हैं और जिन्होंने सब दिशाएँ रोक ली है ऐसे वे तीक्ष्ण बाण हम किस किसको नष्ट नहीं करें? अर्थात् सभीको नष्ट करें यही सोचकर मानो सब सेनापर पढ़ रहे थे ॥२४०॥ जिस प्रकार सिंह हाथीपर आक्रमण करता है उसी प्रकार खूब पराक्रमी मेघप्रभ नामके विद्याधरने जयकुमारकी आज्ञासे उस सुनमिपर आक्रमण कर उसे शस्त्रोंके द्वारा आकाशमें ही रोक लिया ॥२४१॥ मेघप्रभने सुनमिके द्वारा चलाये हुए तमोबाण, अग्निबाण, गजबाण और मेघबाण आदि विद्यामयी बाणोंको सूर्यबाण, जलबाण, सिंहबाण और पवनबाण आदि अनेक विद्यामयी बाणोंसे तुच्छ समझकर बहुत शीघ्र नष्ट कर दिया ॥२४२॥ इस प्रकार मेघप्रभने उस युद्धमें जयकुमारके पुण्योदयसे विद्याधरोंके अधिपति सुनमिको शीघ्र ही जीत लिया सो ठीक ही है क्योंकि देवके अनुकूल रहनेपर छोटापन और बड़प्पनका व्यवहार नहीं होता है । भावार्थ—भाग्यके अनुकूल होनेपर छोटा भी जीत जाता है और बड़ा भी हार जाता है ॥२४३॥ बढ़ी हुई वर्षाक्षहतुके प्रारम्भमें इकट्ठी हुई मेघमालाके समान हाथियोंकी सेनाको उल्लंघन कर अकंकीतिके पक्षके लोगोंने जयकुमारको रोक लिया ॥२४४॥ इधर धीर और उदात्त जयकुमारने भी अपना विजयार्थ नामका श्रेष्ठ हाथी क्रोधसे प्राप्त हुए धीर तथा उद्धत अकंकीतिके सामने चलाकर उससे इस प्रकार कहना शुरू किया ॥२४५॥ वह कहने लगा कि चक्रवर्तीके द्वारा सभी न्यायमार्ग अच्छी तरह चलाये जाते हैं परन्तु इन दुराचारी लोगोंने तुम्हे उन न्यायमार्गोंका शत्रु बना दिया है ॥२४६॥ हे कुमार, यद्यपि तू बुद्धिमान् है परन्तु आहार्य बुद्धिवाला होना अर्थात् दूसरेके कहे अनुसार कार्य करना यह तेरा दोष भी है । इसके सिवाय तू पाप या पापी पुरुषोंके अनुकूल हो रहा है सो यह भी तेरा तीसरा दूषण है ॥२४७॥ इन पापी लोगोंने तेरे अन्तःकरणमें यह बड़ा भारी क्रोध व्यर्थ ही उत्पन्न कर दिया है जिससे भरत महाराजकी सब सेनाका ऐसा एक साथ क्षय हो रहा है ॥२४८॥

१ किङ्ग्रास्त्रभावाः । २ अवनन्तः । ३ कान् शत्रून् शृणाम काम् शत्रून् न शृणाम न हन्म इति इव । शुक्लम्  
 हिंसायाम् । लोट् । ४ बाणाः । ५ विद्याधरः । ६ गजाधिपम् । अनेन समवलत्वं सूचितम् । ७ रसीष । ८ सुन-  
 मिम् । ९ असाराः कृत्वा । १० चिच्छेद त०, ब०, पुस्तके विहाय सर्वत्र । ११ सूर्यजलसिंहवायादिभिः ।  
 १२ अजयत् । १३ देवे सहाये सति । १४ शुद्धवम् । १५ महत्वम् । १६ अतिशय । १७ गच्छलभम् ।  
 १८ अकंकीतिसम्बन्धिः । १९ जयकुमारं रहोष । २० अकंकीतिम् । २१ जयकुमारः । २२ मार्णिणाम् ।  
 २३ प्रतीयमानैः । २४ विरोधी मूल्या । २५ प्रेरकोपनीयनुदित्वम् । २६ पापोपेतैः । २७ मोहनीयं कामं वा ।  
 २८ सद्भिः निवितम् । २९ पापिष्ठैः । ३० कोपेन ।

आहवोऽपरिहार्योऽयं<sup>१</sup> समाध भवता सह । अकीसिंहावयोरस्मिन्नाकल्पस्थायिनी भ्रष्टम् ॥२४६॥  
 चक्री सुतेषु राज्यस्य योग्यं लामेव मन्यते । स्यासस्यापि मनःपीडा न वेत्यन्यायघतनात् ॥२४७॥  
<sup>२</sup> द्रोग्युभ्यायस्य भूमत्युत्तव चैसांस्ततः क्षणात् । तुष्टान् सखेचरान् सर्वान् वधाव भवतोऽप्येषे ॥२४८॥  
 नाममाल्य ऐषिण त्वं काशान्ते<sup>३</sup> ग्राञ्छितो भया । अन्यायो हि पराभूतिर्वत्यागो<sup>४</sup> महीयसः<sup>५</sup> ॥२४९॥  
 कुमार, समरे हानिस्तवैव महती मया । हन्त्यारमामभनुन्मत्तः<sup>६</sup> कः स तीक्ष्णासिना स्वयम् ॥२५०॥  
 अभव्य इव सद्गमपक्ष्येत्युद्दीरितम्<sup>७</sup> । <sup>८</sup>आशात्यितुमारेभे गजेन स<sup>९</sup> गजाधिपम् ॥२५१॥  
 तदा जयोऽथतिकुद्दो गजयुद्धविशारदः । नवभिर्विजयाद्वै दत्तव्यतैरपात्यत्<sup>१०</sup> ॥२५२॥  
 नवापि कुपितेभेद्यनवदन्त्वाहतिक्षताः । अटचन्द्राकंकीर्तीतो प्रपेतुर्वृत्यमितिनः ॥२५३॥  
 चक्रिसूनोः पुनः सेनापरितोऽयाद्<sup>११</sup> सुयुस्याद्<sup>१२</sup> । <sup>१३</sup>तदा तदायुवा<sup>१४</sup> रक्षदहः<sup>१५</sup> क्षयमपश्यत् ॥२५४॥  
 सोऽुमर्कः खलहोऽजो<sup>१६</sup> विद्यस्याशक्तुविष्विव । जयन् जयोदग<sup>१७</sup> मष्टावां संहताशेषदीचितिः ॥२५५॥  
<sup>१८</sup>शर्विकोऽन्नारकीविमुक्तैः खचरान् प्रति । जयीयैः<sup>१९</sup> स्वाङ्गसंलग्नैः<sup>२०</sup> करत्यात्तजराज्जितैः ॥२५६॥  
 गतप्रतापः<sup>२१</sup> कुचलामा सर्वजेन्नाप्रियस्तदा । पपात कातरीभूद करालमित्यभूधरः ॥२५७॥

मेरा आपके साथ जो युद्ध चल रहा है वह आज ही बन्द कर देने योग्य है क्योंकि इससे हम दोनोंकी कल्पान्तकाल तक टिकनेवाली अपकीर्ति अवश्य होगी ॥२५८॥ चक्रवर्ती सब पुत्रोंमें राज्यके योग्य आपको ही मानता है, क्या आपके इस अन्यायमें प्रवृत्ति करनेसे उसके मनको पीड़ा नहीं होगी ? ॥२५९॥ भरत महाराजके न्यायमार्गका द्रोह करनेवाले तुम्हारे इन सभी दुष्ट पुरुषोंको विद्याधरोंके साथ-साथ बौधकर आज क्षणभरमें ही तुम्हें सौंप देता है ॥२५१॥ मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप हाथीपर चढ़े हुए यहीं क्षण भर ठहरिए क्योंकि महापुरुषोंका अन्याय करना ही तिरस्कार करना है, अन्यायका त्याग करना तिरस्कार नहीं है ॥२५२॥ हे कुमार, मेरे साथ युद्ध करनेमें तुम्हारी ही सबसे बड़ी हानि है क्योंकि ऐसा कौन सावधान है जो पैनी तलवारसे अपनी आत्माका स्वयं बात करे ॥२५३॥ जिस प्रकार अभव्य जीव समीक्षीत धर्मको नहीं सुनता उसी प्रकार जयकुमारके कहे हुए वचन अकंकीर्तिने नहीं सुने और अपने हाथीसे जयकुमारके उत्तम हाथीपर प्रहार करवाना शुरू कर दिया ॥२५४॥ उस समय हाथियोंके साथ युद्ध करनेमें अत्यन्त निपुण जयकुमार भी अधिक क्रोधित हो उठा, उसने अपने विजयार्थी हाथीके द्वारा दौतोंके नी प्रहारोंसे अकंकीर्ति तथा अष्टचन्द्र विद्याधरोंके नौ हाथियोंको घायल करवा दिया ॥२५५॥ अकंकीर्ति तथा अष्टचन्द्र विद्याधरोंके नीके नी ही हाथी क्रोधित हुए विजयार्थी हाथीके दौतोंके नी प्रहारोंसे घायल होकर जमीनपर गिर पड़े ॥२५६॥ जिस समय जयकुमारने युद्धकी इच्छासे अकंकीर्तिकी सेनाको चारों ओरसे धेरा उसी समय मानो उसकी आयुकी रक्षा करता हुआ ही दिन अस्त हो गया ॥२५७॥ जो अपनी कान्तिसे जासौनके फूलकी कान्तिको जीत रहा है, जिसने अपनी सब किरणें संकोच ली हैं, जो लाल-लाल किरणोंसे ऐसा जान पड़ता है मानो जयकुमारने विद्याधरोंके प्रति जो बाण छोड़े थे वे सब ही विद्याधरोंके निकलते हुए रुचिरसे अनुरंजित होकर उसके शरीरमें जा लगे हों, जिसका सब प्रताप नष्ट हो गया है, जो क्रूर है और सबके नंत्रोंको अप्रिय है ऐसा वह दुष्ट

१ आहवः परि-ल० । २ युद्धे सति । ३ हस्तुमिष्ट्यून् । ४ तिष्ठान् ल०, इ०, प०, अ०, स० । ५ क्षणपर्यन्तम् । ६ अन्यायपत्यागः । ७ महात्मनः । ८ तुष्टिमान् । ९ एवमुक्तवचनं श्रुत्वा । १० मारणितुम् । ११ अकंकीर्तिः । १२-रघातयत् ल०, अ०, प०, स०, इ० । १३ अगमत् । १४ योद्युमिष्ट्यूपा । १५ यदा इ०, अ०, प० । १६ इव । १७ रक्षतीति रक्षत् । १८ दिवसः । १९ जयकुमारस्य । २० कुसुम । २१ किरणः । २२ जयकुमारसम्बन्धिभिः । २३ लक्ष्मत् । २४ दुःखकारिस्यभावः ।

अर्ककीर्ति॑ इत्यकार्ति॑ वा मत्वा रोचेण॑ भास्करः । अस्ते॒ जयजयस्यायात् कुर्वन् कालविलभवनम् ॥२६१॥  
 ४ स्फुटालोकोऽपि॑ सद्वृत्तोऽप्यगादस्तमहर्षति॑ । आश्रित्य वाहणी॑ रक्षः को न प्राचुर्यधोगतिम् ॥२६२॥  
 ५ उदय॑ वधितच्छायो॑ व्याप्ते॑ विश्वं प्रतापवान् । ६ एनेनै॒ इप्यनश्यते॑ कास्त्रष्टुतीविकरः परः ॥२६३॥  
 ७ हन॑ स्वच्छति॑ विच्छाय॑ तापहार्षणि॑ वा भृशम् । द्रष्टु॒ सरांश्यमिच्छन्ति॑ कञ्जाक्षीणि॑ शुचा॑ व्याप्तुः२६४  
 ८ जयनिर्दिशनिस्त्रिशनियातपतितान् त्वगान् । ९ प्राविशसिजसीजानि॑ वीक्षितुं विक्षमाः लगाः२६५  
 १० य प्रतापः प्रभा साऽप्य सा हि सर्वैकपूज्यता । पातः२६६ प्रत्यहमर्कस्याप्यतम्यः२६७ कक्षीयो विधिः२६८॥  
 ११ कीर्त्योपमानतां यातो यातोऽर्कश्वेतदद्यताम् । उपमेयस्य का॒ वाते॑ त्यवादीश्विकुलां गणः ॥२६९॥

सूर्य मानो जयकुमारके तेजको न सह सकनेके कारण ही कातर हो अपने करों-किरणोंसे (हाथों-से) अस्ताचलको पकड़कर नीचे गिर पड़ा ॥२५८-२६०॥ वह सूर्य अर्ककीर्तिको अपनी कीर्ति मानकर क्रोधसे जयकुमारके जीतमें विलम्ब करता हुआ अस्त हो गया ॥२६१॥ जिसका आलोक प्रकाश ( ज्ञान ) स्पष्ट है और जो सद्वृत्त-गोल ( सदाचारी ) है ऐसे सूर्यको भी अस्त होना पड़ा सो ठीक ही है क्योंकि वाहणी अर्थात् पश्चिम दिशा अथवा मद्यका सेवन करनेवाला ऐसा कीन है जो नीचेको न जाता हो—अस्त न होता हो—नरक न जाता हो । भावार्थ—जिस प्रकार मद्य पीनेवाला ज्ञानी और सदाचारी होकर भी नीच गतिको जाता है उसी प्रकार सूर्य भी प्रकाशमान और गोल होकर भी पश्चिम दिशामें जाकर अस्त हो जाता है ॥२६२॥ उदय कालसे लेकर निरन्तर जिसकी कान्ति बढ़ती रहती है और जो संसारमें व्याप्त होकर तपता रहता है ऐसा तीव्रकर अर्थात् तीव्र किरणोवाला सूर्य भी जब एक ही दिनमें नष्ट हो गया तब फिर भला तीव्रकर अर्थात् अधिक टंक्स लगानेवाला और सन्ताप देनेवाला अन्य कीन है जो संसारमें ठहर सके ॥२६३॥ सन्तापको दूर करनेवाले स्वच्छ सरोबर अतिशय कान्तिरहित सूर्यको देखना नहीं चाहते थे इसलिए ही मानो उन्होंने शोकसे अपने कमलरूपी नेत्र बन्द कर लिये थे ॥२६४॥ सब पक्षी अपने-अपने घोंसलोंमें इस प्रकार चले गये थे मानो वे जयकुमारकी तीक्ष्ण तलवारकी चोटसे गिरे हुए विद्याधरोंको देखनेके लिए समर्थ नहीं हो सके हों ॥२६५॥ सूर्यका असाधारण प्रसाप है, असाधारण कान्ति है और असाधारण रूपसे ही सब उसकी पूजा करते हैं फिर भी प्रतिदिन उसका पतन हो जाता है इससे जान पड़ता है कि निष्ठुर देव तर्कका विषय नहीं है । भावार्थ—ऐसा क्यों करता है इस प्रकारका प्रश्न देवके विषयमें नहीं हो सकता है ॥२६६॥ उस समय विद्वानोंका समृह यह कह रहा था कि जब अर्ककीर्तिके साथ उपमानताको प्राप्त हुआ सूर्य भी अदृश्य हो गया तब उपमेयकी क्या बात है ? भावार्थ—अर्ककीर्तिके लिए सूर्यकी उपमा दी जाती है परन्तु जब सूर्य ही अस्त हो गया तब अर्ककीर्तिकी तो बात ही

१ निजनामधेयमिव । २ धीड़या । ३ जयकुमारस्य । ४ अयक्तोद्योतोऽपि । अयक्तदर्शनोऽपीति श्वनिः । 'आलोको दर्शनोद्योती' इत्यभिधानात् । ५ सद्वर्तुलमण्डलेऽपीति । सच्चारित्रोऽपीति श्वनिः । ६ रविः । ७ पश्चिमाशाम् । मध्यमिति श्वनिः । ८ अर्णवः अनुरक्षसहव । ९ उदगमे अम्बुदये च । १० कान्तिः पक्षे उत्कोषः । "छाया स्पादातपाभावे प्रतिक्रिम्बार्कयोवितोः । पातनोत्कोषोः कास्त्रष्टुतोभावंविक्षिष्टं स्मृता" इत्यभिधानात् । ११ दिवसेत च । इमः सूर्यः प्रभुश्च । 'इमः सूर्यं प्रभो' इत्यभिधानात् । १२ अदृश्योऽभूत् । १३ सूर्यम् । १४ विगतकान्तिम् । १५ अनिष्टूनि । १६ दशति स्म । १७ जयकुमारस्य मिशितात्त्रवासेन पतितान् । १८ प्रविष्टः । १९ आत्मोयकुलायान् । 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्' इत्यभिधानात् । २० पक्षणः । २१ पतनम् । २२ क्रूरः । २३ नियतिः कर्म च ।

दुर्बिनीक्षणः करस्तीक्षणौ संतप्तलिजमण्डलः । अलं कुवलयध्वंसी दुर्सुतो<sup>१</sup> दुर्भितिसुतः ॥२६८॥

जिस्तहायो निरालम्भोऽत्यसोदौ परतेजसाम्<sup>२</sup> । सिंहराशिइचलः क्रूरः सहस्रोच्छव्यं मूढंगः<sup>३</sup> ॥२६९॥

पापोरोगी<sup>४</sup> परप्रेयो रत्निंशममार्गंगः । रक्तरुक्तं सकलद्वेषी<sup>५६७</sup> वर्धिताशोऽक्रमाग्रगः<sup>६२</sup> ॥२७०॥

७ सता बुधेन मित्रेण<sup>७</sup> गुरुणा<sup>८</sup> अत्यहतमाश्रयत् । बहुदोषी<sup>९</sup> भिषग्वर्द्धुदिव्यकित्स्य हृवानुगः<sup>१०</sup> ॥२७१॥

तदा चलद्वयामात्थाः भित्वा बद्धरुपो त्रुपी । इत्यधर्म्यं निशायुद्भनुवद्य<sup>११</sup> न्यघेधयन् ॥२७२॥

ताम्याः<sup>१२</sup> तत्रैष सा रात्रिमेत्सिष्टा रणादगणे । मटतीष्मणासहभ्येदनारावर्भाषणे ॥२७३॥

क्या है ? ॥ २६७ ॥ जो बड़ी कठिनतासे देखा जाता है, अपनी किरणोंसे तीक्षण-ऊरण है, जिसने अपना मण्डल भी सन्तप्त कर लिया है, जो कुवलय अर्थात् कुमुदोंका ध्वंस करनेवाला है, वडे कष्टसे जिसका उदय होता है अथवा जिसका पुत्र - शनि दुष्ट है, दुर्बुद्ध लोग ही जिसकी स्तुति करते हैं, जो सहायरहित है, आधाररहित है, जो चन्द्र आदि ज्योतिषियोंका तेज सह नहीं सकता, सिंह राशिपर है, चंचल है, क्रूर है, सहसा उछलकर मस्तकपर चलता है, पाप रोगी है, दूसरेके सहारेये चलता है, विषममार्ग - आकाशमें चलता है, रक्तरुक्त-लाल किरणोंवाला है, सकल - कलासहित-चन्द्रमाके साथ द्वेष करनेवाला है, दिशाओंको बढ़ानेवाला है और पैररहित-अरुण नामका सारथि जिसके आगे चलता है, ऐसा सूर्य, बुधग्रह और गुरु ( वृहस्पति ग्रह ) नामके सज्जन मित्रोंके साथ होनेपर भी अच्छे-अच्छे बैद्य भी जिसका इलाज नहीं कर सकते ऐसे बहुदोषी-अनेक दोषवाले ( पक्षमें रात्रिवाले ) रोगीके समान बस्त हो गया सो दोक ही है क्योंकि दुष्ट होनेके कारण जिसकी ओर कोई देख भी नहीं सकता है, जो अधिक टैक्स बसूल करनेके कारण तीक्षण है, जो अपने परिवारके लोगोंको भी सन्ताप देनेवाला है । कुवलय अर्थात् पृथिवीमण्डलका खूब नाश करनेवाला है, जिसका पुत्र खराब है, मूर्ख ही जिसकी स्तुति करते हैं, जो सहायक मित्रोंसे रहित है, दुर्ग आदि आधारोंसे रहित है, अन्य प्रतापी राजाओंके प्रतापको सहन नहीं करता है, सिंह राशिमें जिसका जन्म हुआ है, चञ्चल है, निर्दय है, जरा-जरा सी बातोंमें उछलकर शिरपर सवार होता है - असहनशील है, बुरे रोगोंसे घिरा हुआ है, दूसरेके कहे अनुसार चलता है, विषम मार्ग-अन्याय मार्गमें चलता है, रक्तरुक्त-जिसे खूनकी बीमारी है, जो सबके साथ द्वेष करता है, जिसकी तृष्णा बड़ी हुई है और बिना क्रमके प्रत्येक कार्यमें आगे आगे आता है, ऐसे अनेक दोषवाले राजाका लालाज रोगीकी तरह बुद्धिमान् मित्र और सज्जन गुरुके साथ होनेपर भी नाश होता ही है ॥२६८-२७१॥ उस समय दोनों सेनाओं-के मन्त्रियोंने क्रोधित हुए उन दोनों राजाओंके पास जाकर रात्रिमें युद्ध करना अवश्य है ऐसा नियम कर उन्हें युद्ध करनेसे रोका ॥ २७२ ॥ उन दोनोंने योद्धाओंके तीक्र घावोंकी असह्य बेदनाजनित चिल्लाहटसे भयंकर उसी रणके मैदानमें रात्रि व्यतीत करना अच्छा समझा

१ -स्तीक्षणः अ०, प०, स०, इ०, ल० । २ कष्टोत्पत्तिः अशोभनपुक्रश्व । ३ अत्यसोदा ट० । ४ प्रदोपानां शत्रूणां च तेजसाम् । ५ सिंहराशिस्थितः । ६ ऊर्ध्वगो भूत्वा । ७ शिरसा गच्छन् । ८ कुष्ठरोगी । ९ रक्त-किरणः । रक्तरोगी च रक्तानां घातको च । १० चञ्चलद्वेषी सकलजनद्वेषी च । ११ बद्धितद्विक् बद्धिता-मिलाषश्व । १२ अनुर्वग्रगामी । 'सूरसुतोऽरुणोऽनूरुः' इत्यभिधानात् । अक्रमाग्रगामी च । १३ उत्कृष्टेन विद्यमानेनेति च । १४ सोमसुतेन । विदुषा च । १५ वृहस्पतिना, उपदेशकेन सहितीशीत्यर्थः । १६ प्रचुर-राशिः । वातदोषवांश्व । १७ अधिष्ठीहित । १८ निर्बन्धं कुत्वा । १९ अर्ककीतिजयकुमाराभ्याम् ।

प्रतीची येनैजायेऽहमगिल हस्तरम् । हसि सन्ध्यारुद्धलेनाहस्तर्म् कोपमिदागतम् ॥२७४॥  
 लभेऽसंपर्कमक्षेण कर्तुं लोकनगोचरं । हयं वेलेति वा सन्ध्याऽप्यम्बगावाचविघ्नां ॥२७५॥  
 १० अगादहः पुरस्कृत्य मामकों रात्रिगमिना । लेनैपद्मचाल्क्षेऽतीष शोकात् सन्ध्या व्यरुद्धीयत् ॥२७६॥  
 तमः सर्वं तदा व्यापत् क्यचित्किंन गुहादिषु । शत्रुशेषं न कुर्वन्ति तत एव विचक्षणाः ॥२७७॥  
 अवकाशं प्रकाशस्य यथास्मानमधात् युरा । तथैव तमसः पदचाद् विहृमहरवं विहायसः ॥२७८॥  
 ११ तमोकलान् प्रदीपादिप्रकाशः प्रदिर्द्विपिरे । जिनेनेव विनेनेनै कर्णी कर्णं कुलिङ्गिनः ॥२७९॥  
 तमोविष्णोहित् विहृत् प्रदोषविष्णुमुद्दतः । विधिनेषु सुधाकुरमो दीर्घेणो विचुरुद्धयौ ॥२८०॥  
 चन्द्रमाः करनाळीभिरपिवद् बहुलं तमः । शुद्धकासं क्षयं हातुं पूर्मशानमिषावरन् ॥२८१॥  
 निःशेषं जाशाकदम्बुं ध्वास्तं हरिणलान्द्वच्छनः । १२ अशुद्धमण्डलो हन्त्याविधितापः कथं रियन् ॥२८२॥  
 विचुं तत्करसं स्पर्शाद् वृशमासन् विकासिभिः । सरस्यो हात्यवस्थयो वा मुदा कुमुदलोचनैः ॥२८३॥

॥२७३॥ सन्ध्याके बहानेसे दिन लाल लाल हो गया, मानो जिससे मैं पैदा हुआ हूँ उस सूर्यको  
 यह पदिचम दिशा निगल रही है यही समझकर उसे क्रोध आ गया हो ॥ २७४ ॥ मैं  
 सबके देखते हुए सूर्यके साथ सम्बन्ध करनेके लिए लज्जित होती हूँ यही समझकर मानो सन्ध्या-  
 की बेला भी शरीर धारण कर सूर्यके पीछे पीछे चली गयी ॥ २७५ ॥ सूर्य जब दिनके पास गया  
 था तब मुझे आगे कर गया था परन्तु अब रात्रिके पास जाते समय उसने मुझे पीछे छोड़ दिया  
 है इस शोकसे ही मानो सन्ध्या बहुं विलीन हो गयी थी ॥ २७६ ॥ दिनके समय जो अन्धकार  
 किन्हीं गुफा आदि स्थानोंमें छिप गया था उस समय वह सबका सब आकर फैल गया था सो  
 ठीक ही है क्योंकि चतुर लोग इसलिए ही शत्रुको बाकी नहीं छोड़ते हैं – उसे समूल नष्ट कर  
 देते हैं ॥ २७७ ॥ आकाशने जिस प्रकार पहले प्रकाशके लिए अपनेमें स्थान दिया था उसी  
 प्रकार पीछेसे अन्धकारके लिए भी स्थान दे दिया इसलिए आचार्य कहते हैं कि आकाशके इस  
 बड़पनको धिक्कार हो । भावार्थ – बड़ा होनेपर भी यदि योग्य-अयोग्यका ज्ञान न हुआ तो  
 उसका बड़पन किस कामका है ? ॥ २७८ ॥ जिस प्रकार कलिकालमें जिनेन्द्रदेवके न होनेसे  
 अज्ञानके कारण अनेक कुलिङ्गियोंका प्रभाव फैलने लगता है उसी प्रकार उस समय सूर्यके न  
 होनेसे अन्धकारके कारण अनेक दीपक आदिका प्रकाश फैलने लगा था ॥ २७९ ॥

इतनेमें चन्द्रमाका उदय हुआ जो ऐसा जान पड़ता था मानो अन्धकाररो मोहित हुए  
 समस्त संसारको जगानेके लिए विवाताने अमृतसे भरा हुआ चाँदीका कलश ही उठाया हो  
 ॥२८०॥ उस समय चन्द्रमा अपनी किरणरूपी नालियोंके द्वारा गाढ़ अन्धकारको पी रहा था  
 और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो जिसमें खाँसी बढ़ी हुई है ऐसे क्षय रोगका नाश करनेके  
 लिए धूम्रपान ही कर रहा हो ॥ २८१ ॥ चन्द्रमा समूर्ण अन्धकारको नष्ट करनेके लिए समर्थ  
 नहीं हो सका था सो ठीक ही है क्योंकि जिसका मण्डल अशुद्ध है और जो प्रतापरहित है वह  
 शत्रुओंको कैसे नष्ट कर सकता है ? ॥ २८२ ॥ तालाबोंमें चन्द्रमाके किरणोंके स्पर्शसे कुमुद  
 खूब फूल रहे थे और उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो जिले हुए कुमुदरूपी नेत्रोंके द्वारा चन्द्रमा

१ अहस्तरेण । २ प्रादुर्भूवामि । ३ गिलति स्म । ४ दिवसः । ५ प्रतीच्याम् । ६ ह्लीकती भवानि । ७ दृष्टि-  
 विषये प्रदेशो इत्यर्थः । ८ स्वीकृतशरीराः । ९ आगच्छति स्म । १० दिवसम् । ११ पुष्टे कुलाह-  
 मिति । १२ विलयं गता । १३ सर्वत्र विश्वं जगत् । १४ आकाशस्य । १५ लिमितप्रावल्यात् । पक्षे आकाश-  
 सामध्यात् । १६ प्रकाशन्ते स्म । १७ रविणा । १८ मूढोकुतम् । १९ जगद् । २० राजतः । २१ किरण-  
 नालीभिः । २२ कुत्सितमतिम् कृदप्रकाशं वा । २३ क्षयव्याधिम् । २४ कर्लकयुतमण्डलश्च ।  
 २५ मुदं नयन्ति वा ।

उत्थितः १ पिलकोऽस्माकं विधुर्गण्डस्यै द्वोपरि । का २ जीविकेति ३ निविष्णा: प्रायः ४ प्रोषितयोषितः २८४ ॥  
लक्ष्यचन्द्रबलस्योऽस्मैः स्मरह्य परिसोषिणः । अद्भुतास इवाशोर्यं साक्रद्यन्द्रात्पोऽतत् ॥ २८५ ॥  
रुद्धी रागाङ्गुरश्चित्ते प्रस्तामो भानुमानुभिः । तदा अन्दिकथा ५ प्राच्यधुष्टेवावर्द्धताङ्गिनाम् ॥ २८६ ॥  
६ लग्निहतानां तथा तापो नामूद् भास्कररश्मिभिः । यथोऽनुभिस्तु ७ वाराणीविचित्रा द्रव्यशक्त्यः ॥ २८७ ॥  
खण्डनादेव ८ कान्तामां९ ज्वलितो मदनानलः । ९ जाउबलीत्यज्ञमें१० तेनै११ त्यस्यजन्मधु१२ काश्चन ॥ २८८ ॥  
धृथाभिमानविष्णवंसी नापरं मधुना विना । कलहान्तरिताः काहिचरसर्वीभिरतिपायिताः १३ ॥ २८९ ॥  
प्रेम नः १४ कृश्चिमं नैतत् किमनेनेति१५ काश्चन । दूरादेवात्यजन् स्मित्याः श्राविका वाऽसदादिकम् १६ ॥ २९० ॥  
मधु द्विगुणितस्वादु१७ पीतं कान्तकरापितम्१८ । कान्ताभिः १९ कामदुर्वासमातङ्गमद्युक्तं२० नम् ॥ २९१ ॥  
इत्याविर्भावितानङ्गरसास्ताः प्रियसङ्गमात् । ग्रीति वाग्गोचरातीतां स्वीचक्रवैकल्पीक्षणाः २१ ॥ २९२ ॥

को हर्षसे प्रसन्न ही कर रहे हों । विशेष—इस श्लोकमें सरसी शब्दके स्वीलिंग होने तथा कर शब्दके छिल्लट हो जानेसे यह अर्थ ध्वनित होता है कि जिस प्रकार स्त्रियाँ अपने पतियोंके हाथका स्पर्श पाकर प्रसन्न हुए नेत्रोंसे उन्हें हर्षपूर्वक आनन्दित करती हैं उसी प्रकार सरसीयाँ भी चन्द्रमाके कर अथवा किरणोंका स्पर्श पाकर प्रफुल्लित हुए कुमुदरूपी नेत्रोंसे उसे हर्षपूर्वक आनन्दित कर रही थीं ॥ २८३ ॥ प्रायः विरहिणी स्त्रियाँ यह सोच-सोचकर विरक्त हो रही थीं कि यह चन्द्रमा हमारे गालपर फोड़के समान उठा है अथात् फोड़के समान दुःख देनेवाला है इसीलिए अब जीवित रहनेसे क्या लाभ है ? ॥ २८४ ॥ जिसे चन्द्रमाका बल प्राप्त हुआ है और इसीलिए जीवोंसे रहितम् २८५ हो रहा है । ऐसे कामपैलके अद्भुतासके समान चन्द्रमाका गाढ़ प्रकाश सब और फैल गया था ॥ २८५ ॥ मनुष्योंके हृदयमें उत्पन्न हुआ जो रागका अंकुरा सूर्यकी किरणोंसे मुख्या गया था वह भारी अथवा पूर्व दिशासे आनेवाली वषकि समान फैली हुई चाँदनीसे उस समय खूब बढ़ने लगा था ॥ २८६ ॥ खण्डिता स्त्रियोंको सूर्यकी किरणोंसे दैसा संताप नहीं हुआ था जैसा कि चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे हो रहा था सो ठीक ही है क्योंकि पदार्थोंकी शक्तियाँ विचित्र प्रकारकी होती हैं ॥ २८७ ॥ प्रिय पतिके विरहसे ही जो कामरूपी अग्नि जल रही थी वह इस मद्यसे ही जल रही है ऐसा समझकर कितनी ही विरहिणी स्त्रियोंने मद्य पीना छोड़ दिया था ॥ २८८ ॥ मद्यके सिवाय व्यथाके अभिमानको नष्ट करनेवाला और कोई पदार्थ नहीं है वही सोचकर कितनी ही कलहान्तरिता स्त्रियोंको उनकी सखियोंने खूब मद्य पिलाया था ॥ २८९ ॥ हमारा यह प्रेम बनावटी नहीं है इसलिए इस मद्यके पीनेसे क्या होगा ? यही समझकर कितनी ही प्रेमिकाओंने श्राविकाओंके समान मद्य आदिको दूर से ही छोड़ दिया था ॥ २९० ॥ कितनी ही स्त्रियाँ कामदेवरूपी दुनिवार हाथीके भद्रको बढानेवाले स्वादिष्ट मद्यको पतिके हाथसे दिया जानेके कारण दूना पी गयी थीं ॥ २९१ ॥ इस प्रकार जिनके कामका रस प्रकट हुआ है और जिनकी दृष्टि कुछ-कुछ तिरछी हो रही है ऐसी स्त्रियाँ

१ पिलको ल०, अ०, इ०, स०, ए० । पिलकः स्फोटकः । 'विस्फोटः पिलकस्त्रिषु' इत्यमिधानात् ।  
२ गलगण्डस्य । 'गलगण्डो गण्डमाला' इत्यमिधानात् । ३ जीवितम् । ४ उद्वेगपरा । दुःखे तत्परा इत्यर्थः ।  
५ विमुक्तभर्तृकाः हित्यः । ६ व्याप्तोति स्म । ७ प्रथमधुष्टा । ८ विरहिणीतां योषिताम् । ९ चन्द्रस्य ।  
१० वियोगात् । ११ प्रियतमानां पुंसाम् । १२ भूर्षा ज्वलति । १३ दावायिः । १४ मध्येन । १५ मद्यम् ।  
१६ मद्यपानं कारिताः । १७ अस्माकम् । १८ मध्येन । १९ मद्यादिकम् । २० त्रिगुणितं स्वादु इत्यपि पाठः ।  
२१ प्रियतमकरेण दत्तम् । २२ कामदुःखः—ट० । पूर्णपितुमशक्त्यः । २३ दामलोकनाः ।

तत्र काच्छद् प्रियं वाक्ष्य कथाशेषं हिष्पच्छरः । स्वयं कामशैरक्षताही खित्रमभूद् व्यसुः ॥ २९३ ॥  
 शतैरनुपलक्ष्याङ्कं वीक्ष्य काममजानती । परा परासुता<sup>५</sup> प्रापक्षात्काऽऽस्मविद्वित्तवैः ॥ २९४ ॥  
 मया निवारितोऽप्यायां वीरलक्ष्मीप्रियः प्रिय । तत्कठोरवैरेवं जातोऽसीति सृता<sup>६</sup> परा ॥ २९५ ॥  
 मो निवार्य सहायान्ती कीर्ति स्वीकर्तुमागमः<sup>७</sup> । निर्भृते विषयस्तो<sup>८</sup> जानकापि वहिष्पच्छरम् ॥ २९६ ॥  
 हित्रता तत्रैष सा कीर्तिः कि<sup>९</sup> विद्वन्ति<sup>१०</sup> नरोऽस्मरम् । हतिसासृ<sup>११</sup> यमुकत्वाऽन्या<sup>१२</sup> प्रायासीत्<sup>१३</sup> प्रियपद्मसिम् ।  
 न कि निवारितोऽप्यायां<sup>१४</sup> स्वयं साक्षं विचेतना<sup>१५</sup> । सक्षिधी मे किमेवं त्वा नवन्ति गणिकाचमाः<sup>१६</sup> ॥ २९७ ॥  
 १७ अस्तु कि<sup>१७</sup> यातमश्चापि तत्र<sup>१८</sup> त्वां न हराणि<sup>१९</sup> किम् । विलप्यैव कलालापा काचित्<sup>२०</sup> कान्तानुगाऽस्मवत् ॥ २९८ ॥  
 शरनिर्भित्तसर्वाङ्कः कीलितासुरितापरः । कान्तागमं प्रतीक्ष्यास्त लोचनस्थितजीवितः ॥ २९९ ॥  
 कोपदृष्टिमुक्तीयं काम्तमालोक्य कामिनी । वीरलक्ष्म्या कृतासृया शणकोपाऽसुमस्यजत् ॥ ३०० ॥  
 हृदि निर्मित्तनारात्मो मत्ता कान्तां हृदि दिथलाम् । हा सृतेष्व वराकीति<sup>२१</sup> प्राणान् कदिच्चू व्यसर्जन्त्वा ॥ ३०१ ॥

पतिके समागम होनेसे वचनातीत आनन्दका अनुभव कर रही थीं ॥ २९२ ॥ उन स्त्रियोंमें-से  
 कोई स्त्री अपने पतिको शशुओंके बाणोंसे मरा हुआ देखकर आश्चर्य है कि कामके बाणोंसे  
 शरीर छत न होनेपर भी स्वयं मर गयी थी ॥ २९३ ॥ अन्य कोई अजान स्त्री घावोंसे जिसके  
 अंग उपांग ठीक-ठीक नहीं दिखाई देते ऐसे अपने प्रिय पतिको देखकर और उन्हें अपने-द्वारा ही  
 किये हुए घाव समझकर प्राणरहित हो गयी थीं ॥ २९४ ॥ हे प्रिय, तुम्हें वीर लक्ष्मी बहुत  
 ही प्यारी थी इसीलिए मेरे रोकनेपर भी तुम उसके पास आये थे अब उसी वीरलक्ष्मीके कठोर  
 घावोंसे तुम्हारी यह दशा हो रही है यह कहती हुई कोई अन्य स्त्री मृग गयी थी ॥ २९५ ॥  
 हे प्रिय, मैं उसी समय आपके साथ आ रही थी परन्तु आप मुझे रोककर कीर्तिको स्वीकार  
 करनेके लिए यहाँ आये थे, यद्यपि आप यह जानते थे कि कीर्ति सदा बाहर चूमनेवाली (स्वैरिणी-  
 व्यभिचारिणी) है तथापि यह शुद्ध है ऐसा आपको अम हो गया, अब देखिए, वह कीर्ति वहीं  
 रह गयी, हाय, क्या मनुष्य हृदय अथवा विरहको जानते हैं ? इस प्रकार ईर्ष्यकि साथ कहकर  
 अन्य कोई स्त्री अपने पतिके मार्गपर जा पहुँची थी अर्थात् पतिको मरा हुआ देखकर स्वयं  
 भी मर गयी थी ॥ २९६-२९७ ॥ हे प्रिय, रोकी जाकर भी मैं मूर्खा आपके साथ क्यों नहीं  
 आयी ? क्या मेरे समीप रहते थे नीच वेश्याएँ (स्वर्गकी अप्सराएँ) इस प्रकार तुम्हें ले जातीं ?  
 खैर, अब भी क्या गया ? क्या मैं वहीं उनसे तुम्हें न छोन लूँगी ! इस प्रकार विलाप कर मधुर  
 स्वरवाली कोई स्त्री अपने पतिकी अनुगामिनी हुई थी अर्थात् वह भी मर गयी थी ॥ २९८-  
 २९९ ॥ जिसका सब शरीर बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गया है, और इसलिए ही जिसके प्राण  
 कीलित-से हो गये हैं तथा नेत्रोंमें ही जिसका जीवन अटका हुआ है ऐसा कोई योद्धा अपनी स्त्री-  
 के आनेकी प्रतीक्षा कर रहा था ॥ ३०० ॥ जिसने क्रोधसे अपने ओठ डसकर छोड़ दिये हैं ऐसे  
 अपने पतिको देखकर क्षण-भर क्रोध करती और वीरलक्ष्मीके साथ ईर्ष्या करती हुई किसी अन्य  
 स्त्रीने अपने प्राण छोड़ दिये थे ॥ ३०१ ॥ जिसके हृदयमें बाण छुस गया है ऐसे किसी योद्धाने

१ वार्तयेवावशिष्टं प्रियं शुत्येत्यर्थः । २ वैरिणां बाणैर्पलक्षितम् । ३ विगतप्राणः । ४ द्रव्यः । ५ पञ्चत्वम् ।  
 ६ प्राप ल०, अ०, स०, इ०, प० । ७ आत्मना नखदन्तकृतवैः । ८ आगमः । ९ वीरलक्ष्म्या निष्पृरम् ।  
 १० मधार । ११ आगच्छः । १२ वैपरीतं नीतः । विज्ञवत् ईत्यर्थः । १३ विद्वन्ति ल० । १४ नरः मनुष्याः  
 अन्तरे विरहम् । नरोत्तरमिति पाठे उत्तमपुरुषम् । १५ अमूर्यात्पहितं यथा भवति तथा । १६ आगात् ।  
 १७ प्रियतमस्य मार्गम् । मृतिमिश्यर्थः । १८ आगच्छम् । १९ वरावयहम् । २० अमूर्यदेवस्थित्यः । २१ मवतु  
 या । २२ गमनम् । २३ स्वर्गे । २४ अपि तु हराष्येत् । २५ प्रियतमस्यानुगामिन्यभूत् । कान्तास्मरणेन  
 स्मरवशोऽभूदित्यर्थः । २६ सद्यः प्राणान् व्यसर्जयत् ल० ।

शास्त्रान्मिष्ठसर्वाक्षमन्तको नेत्रमागतः । कान्ता चिन्तापरं कन्तु दद्वताद्वत्तापरम् ॥३०३॥  
 कण्ठे<sup>१</sup> चालिङ्गितः प्रेमशीकाभ्यां प्रियया परः । ध्याया लां एव नदेहोऽगात् निर्णाणं व्यचाणन्तया ॥३०४॥  
 शः<sup>२</sup> स्वर्गे कि किमत्रैषं संगमो नी<sup>३</sup>, न संशयः । तत्र<sup>४</sup> त्वं कन्तु कान्तोऽस्य "रमेऽर्थं याह मदनम् ॥३०५॥  
 अत्र वाऽमुर्व वासोऽस्तु कि तथा चिन्तयाक्षयोः । वियोगः क्वापि नास्तीति कान्ता कास्तमनर्वयन् ॥३०६॥  
 "सदतो वीरलक्ष्मीं अ चौपासे चैही<sup>५</sup> विशयुषां । हनुमं भूतिव जाप्तोऽस्य विजान्त्वाऽवद्वदुपा ॥३०७॥  
 जयस्य विजयः प्राणैस्तवैतद् विभित्तितम् ।<sup>६</sup> मदतावद्य यास्यावो दिवसिं यज्ञर्यान् पर ॥३०८॥  
 शाराः पौप्यास्तव त्वं च<sup>७</sup> संखुकोऽवतिकीतगः<sup>८</sup> । तत्र<sup>९</sup> विजानसारोऽस्मि पुरुषेभ्यो भयं त्वं ॥३०९॥  
 आपसाः<sup>१०</sup> सामवद्याः काम एवमध्यस्माकमन्तकः । इति कामे समुद्दिश्य खण्डिताः<sup>११</sup> स्वर्गते<sup>१२</sup> जगुः<sup>१३</sup> ॥३१०॥  
 सा रात्रिरिति संहापे<sup>१४</sup> प्रेमप्राणैरनीयत । तावत् संध्याऽगता रागाद् राक्षसीवेशितुं रणम् ॥३११॥

अपनी स्त्रीको अपने हृदयमें स्थित भानकर तथा हाय, यह बेचारी इस बाणमें व्यर्थ ही भरी जा रही है ऐसा समझकर शीघ्र ही अपने प्राण छोड़ दिये थे ॥३०२॥ जिसका सब शरीर शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न हो गया है ऐसे किसी अन्य योद्धाको यमराज लेनेके लिए आ गया था परन्तु स्त्रीकी चिन्तामें लगे हुए उसे कामदेवने यमराजके हाथसे छुड़ा लिया था ॥३०३॥ प्रेम और शोकके कारण अपनी स्त्रीके द्वारा गलेसे आँलिगन किया हुआ कोई घावसहित योद्धा उसी प्रिया-का ध्यान कर तथा शरीर छोड़कर उसीके साथ मर गया ॥३०४॥ किसी योद्धाने ब्रत धारण कर लिये थे इसलिए उसकी स्त्री उससे कह रही थी कि कल स्वर्गमें न जाने क्या-क्या होगा ? इसमें कुछ भी संशय नहीं है कि हम दोनोंका समागम यहाँ हो सकता है, चैकिं तुम्हें स्वर्गमें बहुत-सी स्त्रियाँ मिल जायेंगी इसलिए मैं आज यहाँ ही क्रीड़ा करूँगी ॥३०५॥ हम दोनोंका निवास चाहे यहाँ हो, चाहे परलोकमें हो, उसकी चिन्ता ही नहीं करनी चाहिए । क्योंकि हम लोगोंका वियोग तो कहीं भी नहीं हो सकता है इस प्रकार कहती हुई कोई स्त्री अपने पतिको सन्तुष्ट कर रही थी ॥३०६॥ कोई स्त्री कोधपूर्वक अपने पतिसे कह रही थी कि तुम तो ब्रत धारण कर वीर लक्ष्मी और कोटिको प्राप्त होओ – उनके पास जाओ, दीर्घ आयु होनेके कारण यह कामदेव मुझे ही मारे ॥३०७॥ कोई स्त्री अपने पतिसे कह रही थी कि यह निश्चित है कि जयकुमारकी जीत तेरे ही प्राणोंसे होगी और ब्रतोंके धारण करनेवाले हम दोनों ही आज स्वर्ग जायेंगे ॥३०८॥ खण्डिता स्त्रियाँ कामदेवको उद्देश्य कर अपने मनमें कह रही थीं कि अरे काम, संयोगी पुरुषोंपर पड़ते समय तेरे बाण फूलोंके हो जाते हैं और तू भी बहुत उण्डा हो जाता है, उन पुरुषोंके पास तेरे बलको सब परल हो जाती है, बास्तवमें तू पुरुषोंसे डरता है परन्तु हम स्त्रियोंपर पड़ते समय तेरे बाण लोहेके ही रहते हैं, और तू भी यमराज बन जाता है । भावार्थ – तू पुरुषोंको उतना दुःखी नहीं करता जितना कि हम स्त्रियोंको करता है ॥३०६-३१०॥ प्रेमरुपी प्राणोंको धारण करनेवाले स्त्री-पुरुषोंने इस प्रकारकी बातचीतके द्वारा ज्यों ही वह रात्रि पूर्ण की त्यों ही रागसे संग्राम देखनेके लिए आयी हुई राक्षसीके समान सन्ध्या ( सबेरेकी लाली ) आ गयी ॥३११॥

१ कण्ठेनालिङ्गितः इ०, अ०, स०, प० । २ मरणम् । ३ अनन्तरागामिदिते । ४ स्यादिति त जाने इति संबन्धः । ५ आवयोः । ६ स्वर्गे । ७ क्रीडामि । ८ स्वर्गे । ९ सनियमः । १० मष्ठ । ११ सनियमाकावाम् । १२ संगतेषु स्त्रीपुरुषेषु । १३ अतिशयेन सुखहेतुः । १४ संयुक्तस्त्रीपुरुषेषु । १५ अयम् संबन्धितः । १६ पुरुष-विमुक्ताः । १७ स्वामिश्रायम् । १८ अणन्ति स्म । १९ मिथो भावणः । २० प्रेम इव प्राणा येषां तः ।

प्राभातानकोटीनां निःस्वनः सेनयोः समस्ये । आकासति स्म दिक्चक्रमक्रमणोचर्हस्तदा ॥३१२॥  
 प्रनीच्याऽपि सुखश्चन्द्रो मयैवोदेति भास्करः । इति स्नेहादिष्व प्राची प्रागभादुद्याद्वेः ॥३१३॥  
 सरमां कमलाक्षिभ्वः प्रदुद्धानां तदा सुदा । निश्चया स्वार्थमाद्य निद्रेव अमरवली ॥३१४॥  
 गतायां स्वेन वद्धोचं पश्यन्थां स्वोदये रथः । लक्ष्मी निजकरणोच्चिद्विष्टे सा हि मित्रता ॥३१५॥  
 रथः<sup>१</sup> करः प्रमाणित्य संवयां सद्यो व्यरुद्यते<sup>२</sup> । बद्धिव रविर्मोगान् पर्यन्ते विरसान् स्फुटम् ॥३१६॥  
<sup>१</sup> पर्यन्तवर्तीर् परेन्तां स्वां संध्यामिति वेष्टन्त्याः । इति रात्रिपुणिः सिंहास्ते<sup>२</sup> प्राद्यक्षमते<sup>३</sup> न क्षणम् ॥३१७॥  
<sup>१</sup> शशिवार्दीरशयायां निशां नीत्वा नियमिनः<sup>४</sup> । ज्ञात्वा वर्तपिताशेषदीनामाध्यवसीपकाः ॥३१८॥  
 अज्ञित्वा विविना स्तून्वा जिनेन्द्राक्षिजगस्तान् । <sup>५</sup> अनिष्टुष्टायकाः सत्रे परिच्छिय रणेन्दुखाः ॥३१९॥  
 अरिज्ञारुद्यमास्त्वा रथं इवेताश्योजितम् । गृहीत्वा वज्रकाण्डे च दत्तं वज्रक्रिणा इवम्<sup>६</sup> ॥३२०॥  
 बन्दिमागथवृन्देन<sup>७</sup> अन्यमानाङ्गमालिकः । गजवजे<sup>८</sup> समुद्यात्य जयलक्ष्मीसमुखुसुकः ॥३२१॥  
 जयो ज्यास्फालनं कुर्वन् कृतान्तविकृताकृतिः । द्विपानां<sup>९</sup> भीषणस्तस्यां दिशामव्याहारन् मदम् ॥३२२॥  
<sup>१</sup> उपोदयायशकीर्तिः अकर्कालिंश्चयुतद्विष्टविः । <sup>२</sup> कारागारमिषायामय स्यन्दनं भन्दवाजिनम् ॥३२३॥

उसी समय दोनों सेनाओंमें साथ-साथ उठनेवाले प्रातःकालीन करोडों वाजोंके शब्दोंने एक साथ सब दिशाएँ भर दीं ॥३१२॥ यद्यपि घन्दमा पश्चिम दिशाके साथ है तथापि सूर्य तो मेरे ही साथ उदय होगा इसी प्रेमसे मानो पूर्व दिशा सूर्योदयसे पहले ही सुबोभित होने लगी थी ॥३१३॥ उस समय भ्रमरोंकी पक्षित तालाबोंके फूले हुए ( पक्षमें जागे हुए ) कमलहृषी नेत्रोंसे अपना इष्ट पदार्थ लेकर निद्राके समान वडी प्रसन्नताके साथ निकल रही थी ॥३१४॥ कमलिनी मेरे अस्त होते ही संकुचित हो गयी थी, इसलिए सूर्यने अपना उदय होते ही अपने ही किरणहृषी हाथोंमें उसपर बहुत अच्छी शोभा की थी सो ठीक ही है क्योंकि मित्रता यही कहलाती है ॥३१५॥ रक्त अर्थात् लाल ( पक्षमें प्रेम करनेवाला ) सूर्य, कर अर्थात् किरणों ( पक्षमें हाथों ) से सम्ध्याका आलिंगन कर शीघ्र ही विरक्त अर्थात् लालिमारहित ( पक्षमें राग-हीन ) हो गया था सो मानो वह यही कह रहा था कि ये भीम अन्त समयमें नीरस होते हैं ॥३१६॥ इस सूर्यने पहलेके समान ही अपनी सन्ध्याहृषी स्त्रीका आलिंगन किया है इस ईर्ष्यसे ही मानो पूर्व दिशाने सूर्यको प्रेमपूर्ण अथवा लाल वर्ण होनेपर भी अपने पास क्षण-भर भी नहीं छहने दिया था ॥३१७॥ व्रत-नियम पालन करनेवाले सेनापतियोंने बीरशय्यापर शयन कर रात्रि व्यतीत की । सबेरे स्नान कर सत्र दीन, अनाथ तथा यात्रकोंको सन्तुष्ट किया, श्रिजगदृन्द्य जिनेन्द्र देवकी विधिपूर्वक पूजा कर स्तुति की और फिर वे अपनी-अपनी सेनाका विभाग कर युद्धके लिए उत्सुक हो खड़े हो गये ॥३१८-३१९॥ बन्दीजन और मानाथ लोगोंका समूह जिसके नामके अक्षरोंकी स्तुति करते हैं जो विजयलक्ष्मीके लिए उत्सुक हो रहा है, जिसका आकार यमराजके समान विकृत है, जो दिग्गजोंके भी मदको हरण करनेवाला है और भयंकर है ऐसा जयकुमार सफेद धोड़ोंसे जुते हुए अरिजय नामके रथपर सवार होकर और वज्रकाण्ड नामका वह धनुष जो कि पहले चक्रवर्तीने दिया था, लेकर हाथीकी ध्वजाको उड़ाता तथा धनुषकी ढोरीका आस्फालन करता हुआ खड़ा हो गया ॥३२०-३२२॥ जिसकी अपकीर्तिका उदय

१ सुगप्त । २ सरोवराणाम् । ३ वृद्धो वृद्धिः क्षये क्षयदृश । ४ अरुणः अनुरक्षश्च । ५ विरक्तोऽभूत् । ६ अव-  
 सामेनिसाराणि इति बद्धित्वेति संबन्धः । ७ आलिलिङ्ग । ८ अनुरक्षतम् । ९ निवसनाय । १० पूर्वादिक् ।  
 ११ न सहते रुम । १२ शयनं कृत्वा । १३ नियमवन्तः । १४ तिष्ठन्ति स्म । १५ रथवज्रकाण्डवापद्यम् ।  
 पुरा ल० । १६ स्तूपमान । १७ गजाङ्कितवज्रम् । १८ भयंकरः । १९ उदयप्रातापकीर्तिः । २० बन्धनालयम् ।

अष्टवन्दान् सली कुर्वन् न चन्द्रोपमा युधः<sup>१</sup> । स्त्रोत्पातकेतुं संकाशचक्रकेतूपलक्षितः ॥३२४॥  
 २ प्रयात्यात्महावात्तिविहतस्वज्ञैः शैरैः । विद्यन्मैत्र्यन्दिनाकै वा सुमनःश्वत्तेतुभिः ॥३२५॥  
 जयं शश्रुकुरालौकं उवलत्तेजोमयं स्मरात्<sup>२</sup> । कलभो वाऽगमद् वारिं<sup>३</sup> प्रेरितः खलकर्मणा ॥३२६॥  
 जयोऽपि शरसल्लानघनो<sup>४</sup> कृत्यवनाघनः । सहकैर्कीर्तिमकेण कुर्वन् विनिहतप्रभम् ॥३२७॥  
 ५ प्रतीयायास्तरे क्लिन्दन् रिपुप्रहितसायकान् । शराश्वास्य पुरो आवन् अस्तनस्येवौदयेऽश्वः ॥३२८॥  
 अस्त्रैस्तर्ती<sup>५</sup> रुद्रमस्त्राणि चैजयन्तर्ती<sup>६</sup> च दुर्जयः । जयोऽक्कीर्तैरौदृश्ये विहस्य विनिर्नीयत्रा<sup>७</sup> ॥३२९॥  
 अष्टवन्दास्तदाम्बेत्य<sup>८</sup> विद्यावलविज्ञमणान् । अयोध्येभ्यन् जयस्येषूनम्भोदा वा रवेः करान् ॥३३०॥  
 भुजबलवादयोऽपि भेद्युद्योद्दुः हेमाकर्दं कुवा । सानुजं सिंहसहालं सिंहसह इवापरः ॥३३१॥  
 ९ सानुजोऽनन्तसेनोऽपि प्राप मेघस्वरानुजान् । आङ्गरेयो यथा यूथः कलिङ्गजं मतक्षजान् ॥३३२॥  
 अयोऽयम्यांश्च भूपाला भूपालान् कोपिनस्तदा । आनिषेतुः<sup>१०</sup> कुलाक्रीत्वा संचरसः<sup>११</sup> कुलाचलानावेदैः ॥  
 नास्येषामीहसी वाक्तिर्विवेचयमिति विद्यता । जयो युद्धाय सज्जद्वस्तदा<sup>१२</sup> मित्रभुजङ्गमः ॥३३३॥

हो रहा है, कान्ति नष्ट हो गयी है, युद्धके नष्ट चन्द्रोंके समान अष्टवन्द्र विद्याधरोंको जिसने अपना मित्र बनाया है, जो अपना अनिष्ट सूचित करनेवाले धूमकेतुके समान चक्रके चिह्नवाली द्वजासे सहित है, और उलटी चलनेवाली तेज वायुसे जिनका वेग नष्ट हो गया है ऐसे देवताओंका धात करनेवाले बाणोंसे जो दोपहरके सूर्यपर प्रहार करता हुआ-सा जान पड़ता है, ऐसा अकंकीर्ति वीरे चलनेवाले घोड़ोंसे जुते हुए जेलखानेके समान अपने रथपर बैठकर, शत्रु जिसे देख भी नहीं सकते और जो जलते हुए तेजके समान है ऐसे जयकुमारपर वहे अभिमानसे इस प्रकार आया जिस प्रकार कि हाथी पकड़नेवालोंके क्रूर व्यापारसे प्रेरित होता हुआ हाथीका बच्चा अपने बैधनेके स्थानपर आता है ॥३२३-३२६॥ बाणोंके समूहसे मेघोंको सघन करनेवाला जयकुमार भी सूर्यके साथ-साथ अकंकीर्तिको प्रभारहित करता तथा शशुके द्वारा छोड़े हुए बाणोंको छेदन करता हुआ सामने आया और जिस प्रकार उदयकालमें सूर्यकी किरणें उसके सामने जाती हैं उसी प्रकार उसके द्वारा छोड़े हुए बाण ठीक उसके सामने जाने लगे ॥३२७-३२८॥ बड़ी कठिनाईसे जीते जाने योग्य जयकुमारने अकंकीर्तिको हटानेकी इच्छासे उसका उद्दतपना नष्ट कर, उसका छत्र शस्त्र तथा द्वजा सब छेद डाली ॥३२९॥ जिस प्रकार मेघ सूर्यकी किरणोंको रोक लेते हैं उसी प्रकार उस समय अष्टवन्द्रोंने आकर अपनी विद्या और बलके विस्तारसे जयकुमारके बाण रोक लिये थे ॥३३०॥ जिस प्रकार एक सिंहोंका समूह दूसरे सिंहोंके समूहपर आ पड़ता है उसी प्रकार भुजबली आदि भी बड़े क्रोधसे छोड़े भाइयोंके साथ खड़े हुए हेमांगदसे लड़नेके लिए उसके समूल आये ॥३३१॥ जिस प्रकार अंगरदेशमें उत्पन्न हुए हाथियोंका समूह कलिंग देशमें उत्पन्न हुए हाथियोंपर पड़ता है उसी प्रकार अनन्तसेन भी अपने छोटे भाइयोंसहित जयकुमारके छोटे भाइयोंके सामने जा पहुँचा ॥३३२॥ उस समय और भी राजा लोग क्रोधित होते हुए अन्य राजाओंपर इस प्रकार जा दूटे मानो कुलाचल कुलाचलोंपर दूट पड़ रहे हों ॥३३३॥ इन मेरे पश्चवालोंकी न तो ऐसो शक्ति है

१ युद्धस्य । २ निजविनाशहेतुकजयसमान । ३ प्रतिकूलमायात । ४ मध्याह्नरविषष्टलाभिमुखं मुक्ता शरा यथा स्वशरोरे पतन्ति तद्दिव्यर्थः । ५ गवति । ६ मजपतनहेतुगत्तम् । ७ निविदोहृत । ८ अभिमुखं जगाम । ९ शश्रुविसज्जित । १० रवेः । ११ चिष्ठेद । १२ द्वजाम् । १३ निराकरणेऽछ्या नेतुमिच्छ्या वा । १४ सम्मुख्यमागत्य । १५ अभिमुखमाजग्मुः । १६ निजानुजसहितः । १७ अङ्गरदेशे भवः । बाह्यकेषो ल० । १८ कलिङ्गदेशे भवः । १९ प्राप्त्युक्तिस्म । अभिषेतुः ल०, इ०, स०, प० । २० सञ्चबलत्तः कुलाद्यः । ल० । २१ पूर्व मुत्तेर्थमध्यवण्डवात्नामराजः ।

विदित्वा विष्टराकरपाञ्चवं संप्राप्य सादरः । नागपाशं शरं चार्द्धचन्द्रं दस्वा यथावसी ॥३३५॥  
 ते<sup>१</sup> सहस्रहस्तांशुस्फुरदंशुप्रभास्वरम् । कौरवः<sup>२</sup> शरमादाय वज्रकाण्डं प्रयोजयन्<sup>३</sup> ॥३३६॥  
 हत पृष्ठ सुतो<sup>४</sup> भत्तुभुवोऽनेमेति सम्भ्रमम् । नरविद्याधराधीका महान्तसुद्रपादयन्<sup>५</sup> ॥३३७॥  
 रथालब तथा दुष्टानश्चन्द्रान् सलारथीन् । से<sup>६</sup> शरो भस्मवामास शस्त्राणि च यथाऽशनिः ॥३३८॥  
 छिपत्रुतकरो दत्तीहान्तको वा हतायैधः । अवनमानः कृमारोऽव्याद भिक्षुपूर्वे विधेः ॥३३९॥  
 हति दत्तप्रहृ<sup>७</sup> वीरं गजं वा पादपाणीः<sup>८</sup> । <sup>९</sup> अपायु चैरुकायजीविष्णुस्तम<sup>१०</sup> जीग्रहत्<sup>११</sup> ॥३४०॥  
 तच्छार्य यथारामूर्तेः प्राक् प्राप्तपरिभूतिभिः । यस्यहचात्साहस्रं धार्यत्<sup>१२</sup> स ह्रीतीयः पराभवः ॥३४१॥  
 सोऽन्वयः स पिता तादृक् पदे सा संभवसंहतिः । तस्याप्यार्द्धादवस्थेयमुमार्गं कं न पीडयेत् ॥३४२॥  
 वीरपद्म बद्धोऽन्यं अक्रिणानेन तरसुतः । वृणपद्मपदं नीकः पश्य कार्यविषयेयम् ॥३४३॥  
<sup>१३</sup> पतलपतलसङ्काशमकंकीतिमनायुधम् । इतरथे रथापवित्वोऽचैरालकानेकपं रथयम् ॥३४४॥  
 विपक्षलगभूपालान् नागपाशेन यातिक्षेत्<sup>१४</sup> । निष्पद्मं निर्जितारात्मिर्मसंसीत्<sup>१५</sup> सिंहविकमान् ॥३४५॥

और न यह विद्या ही है ऐसा समझकर जयकुमार स्वयं युद्धके लिए तैयार हुआ, उसी समय उसका मित्र सर्पका जीव जो कि देव हुआ था आसन कम्पित होनेसे सब समाचार जानकर बड़े आदरके साथ जयकुमारके पास आया और नागपाश तथा अर्द्धचन्द्र नामका बाण देकर चला गया ॥३३४-३३५॥ जो हजार सूर्यकी चमकती हुई किरणोंके समान देवीप्यमान हो रहा था ऐसा वह बाण लेकर जयकुमारने अपने वज्रकाण्ड नामके धनुषपर चढ़ाया ॥३३६॥ इस बाणसे चक्रवर्तीका पुत्र अवश्य ही मारा जायेगा यह जानकर भूमिगोवरी और विद्याधरोंके अधिष्ठित राजाओंमे बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न किया ॥३३७॥ उस बाणने नौ रथ, सारथिसहित आठों अर्द्धचन्द्र और सब बाण वज्रकी तरह भस्म कर दिये ॥३३८॥ जिसका मान भंग हो गया है ऐसा अर्ककीति, जिसके दौत और सूँड कट गयो है ऐसे हाथीके समान अथवा जिसका शस्त्र नष्ट हो गया है ऐसे यमराजकी तरह चेष्टारहित खड़ा था इसलिए कहना पड़ता है कि देवकी इस दुःख देनेवाली चेष्टाको विकार हो ॥३३९॥ जिस प्रकार शस्त्ररहित किन्तु उपायको जाननेवाले पुरुष पेरोंकी पाशसे दौतोंको दबोचकर बीर हाथको पकड़ लेते हैं उसी प्रकार जयकुमारने अर्ककीतिको पकड़ लिया ॥३४०॥ तिरस्कार होनेके पहले-पहले जो लड़ना है वह शूरबीरता है और तिरस्कार प्राप्त कर धृष्टावश जो पीछेसे लड़ता है वह दूसरा तिरस्कार है ॥३४१॥ यद्यपि उस अर्ककीतिका लोकोत्तर बंश था, चक्रवर्ती पिता थे, युवराज पद था और भारी सेनाका समूह उसके पास था तो भी उसकी यह दशा हुई इससे कहना पड़ता है कि दुराचार किसे पीड़ित नहीं करता है ? ॥३४२॥ चक्रवर्तीने जयकुमारको बीरपट्ट बाँधा था परन्तु इसने उनके पुत्रको घावोंकी पट्टियोंका स्थान बना दिया, जरा कार्यकी इस उलट-पुलटको तो देखो ॥३४३॥ सब शत्रुओंको जीतनेवाले जयकुमारने अग्निपर पड़ते हुए पतंगके समान तथा हथियाररहित अर्ककीतिको अपने रथमें डालकर और स्वयं एक ऊंचे हाथीपर आरूढ़ होकर सिंहके समान पराक्रमी शत्रुभूत विद्याधर राजाओंको बरुणके

१ अर्द्धचन्द्रशरम् । २ सहस्ररवि । ३ जयकुमारः । ४ वज्रकाण्डकोदण्डे । ५ प्रबर्तयन् । ६ अक्रिणः । ७ जयेन ।  
 ८ सम्भ्रान्तिम् । ९ उत्पादितवान् । १० अर्द्धचन्द्रबाणः । ११ हतप्रहणम् । दस्तप्रहृ ल० । १२ गजबन्धन-  
 कुशलः । १३ अपगतशस्त्रः । १४ अर्ककीतिम् । १५ ग्राहयति स्म । १६ धृष्टवात् । १७ पतलसूर्यसदृशम् ।  
 १८ पाशपाणिवत् भवन्तीत्यर्थः । 'प्रचेताः बरुणः पाणी पदसां पतिरप्यतिः' इत्यभिधानात् । १९ नियमितवान् ।

इति सूलोचने युद्धे समिक्षे शमिते<sup>१</sup> लक्षा । पपात<sup>२</sup> पञ्चभूजभ्यो युद्धः सुवनसां दिवः<sup>३</sup> ॥३४३॥  
जयध्रेतुं जयस्वामितनूजविजयाभिता । नोखेकायेति<sup>४</sup> नास्यैते<sup>५</sup> ग्रैषैव<sup>६</sup> प्रायुताभ्यर्थः ॥३४४॥  
‘जयनास्थान<sup>७</sup> सह्यामज्यायातेति लज्जया । दूरीकृतेव तत्कीर्तिं विद्यन्तमगमतदा ॥३४५॥  
अकम्पनमहो शास्य यैषेण<sup>८</sup> वा बनद्विष्टः । यौष्टः संयमिते<sup>९</sup> साख्यमकंकिति समर्थं सः ॥३४६॥  
विजयाद्वंभ्रह्मामन्धसिन्धुरक्षदस्त्वतः । निर्भास्तोद्यथ<sup>१०</sup> क्षमाभृम्भूर्धस्थवर्प्त<sup>११</sup> मण्डलः ॥३४७॥  
रणभूमि समालोक्य समर्थाद्वयुविश्वयः । युतानां प्रेतसंस्कार<sup>१२</sup> जीवतां जीविकाक्रियाम्<sup>१३</sup> ॥३४८॥  
कारविद्वा पुरो सर्वसम्भद्राविष्टकृतोद्यथाम् । प्राविशत् प्रकटैश्वर्यः सह मेघप्रमादिमिः ॥३४९॥  
अकम्पनोऽप्यनुग्राम्य<sup>१४</sup> वृत्तैरस्तसमाङ्गुलः । राजकण्ठीरवै<sup>१५</sup> वामा<sup>१६</sup> राजपुत्रात्मैः<sup>१७</sup> पुरम् ॥३५०॥  
सरक्षान् धूतभूपालान् कुमारं च नियोगिभिः । आश्वास्याश्वासकुशलैर्यथा स्थानमवापयत् ॥३५१॥  
विविन्दय विहविज्ञानां विनाशोऽहंप्रसादतः । इति विनिष्टुमाजम्भुः सबै नित्यमनोहरम्<sup>१८</sup> ॥३५२॥  
दूरादेवादरुद्धारमवाहेभ्यः<sup>१९</sup> शाश्वतेहसः । दरीत्यार्थाभिरागत्य<sup>२०</sup> हुदुः हुतिभिजिनान् ॥३५३॥

समान नागपाशसे इस प्रकार बाधा जिससे वे हिल-डुल न सकें ॥३४४-३४५॥ इस प्रकार जब सुलोचना-सम्बधी प्रचण्ड युद्ध शान्त हो गया तब स्वर्गके पौत्र प्रकारके कल्पवृक्षों-से फूलोंकी वर्षा हुई ॥३४६॥ अपने दुर्जेय स्वामी ( भरत ) के पुत्र अर्ककीर्तिके जीतनेसे उत्पन्न हुई विजयलक्ष्मी जयकुमारके अहंकारके लिए नहीं हुई थी बल्कि इसके विपरीत लज्जाने ही उसे आ देरा था ॥३४७॥ ‘यह अयोग्य समयमें किये हुए संग्रामके जीतनेसे आयी है’ इस लज्जा-के कारण जयकुमारके हारा दूर की हुई के समान उसकी वह कींत उसी समय दिशाओंके अन्त तक चली गयी थी ॥३४८॥ जिस प्रकार समर्थ पुरुष जंगली हाथियोंके समान झुण्डके मालिक बड़े हाथीको पकड़कर राजाके लिए सौंपते हैं उसी प्रकार जयकुमारने बैंधे हुए अनेक राजाओं-के साथ अर्ककीर्तिको महाराज अकम्पनके लिए सौंप दिया, तदनन्तर उदयाचलके शिखरपर स्थित सूर्यमण्डलको तिरस्कृत करता हुआ विजयार्थ नामके बड़े भारी मदोन्मत्त हाथीके स्वतंष्पर सबार होकर युद्धका मैदान देखनेके लिए निकला, चारों ओरसे युद्धका मैदान देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ, उसने मरे हुए लोगोंका दाहसंस्कार कराया और जीवित पुरुषोंके अच्छे होनेका उपाय कराया, इस प्रकार जिसका ऐश्वर्य प्रकट हो रहा है ऐसे जयकुमारने मेघप्रभ आदिके साथ-साथ सबको आनन्द मिलनेसे जिसकी शोभा खूब प्रकट की गयी है ऐसी काशीनगरी-में प्रवेश किया ॥३४९-३५२॥ महाराज अकम्पनने भी सैकड़ों राजपुत्रों तथा सिंहके समान तेजस्वी राजाओंके साथ-साथ नगरमें पहुँचकर रक्षा करनेवाले जिनके साथ हैं ऐसे बैंधे हुए अनेक राजाओं तथा अर्ककीर्तिको समझानेमें कुशल नियुक्त किये हुए पुरुषों-हारा समस्त-दुसाकर उन्हें उनके योग्य स्थानपर पहुँचाया ॥३५३-३५४॥ अरहन्तदेवके प्रसादसे ही सब विघ्नोंका नाश होता है ऐसा विचारकर सब लोग बन्दना करनेके लिए नित्यमनोहर नामके चेत्यालयमें आये ॥३५५॥ उन सभीने दूरसे ही अपनी-अपनी सबारियोंसे उत्तरकर शान्तित्वं हो मन्दिरमें प्रवेश किया और प्रदक्षिणाएं देकर अर्थसे भरी हुई स्तुतियोंसे जिनेन्द्रदेवकी स्तुति की ॥३५६॥

१ सुलोचनासम्बन्धिति । २ उपशास्ते । ३ ‘मन्दारः पारिजातकः । सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुस्ति वा हरिकल्पम्’ इति पञ्चमुरभूजेभ्यः । ४ स्वगति । ५ गर्वम् । ६ तस्येनम् ४० । एनम् जयकुमारम् । ७ पुमः किमिति चेत् । ८ जयकुमारेण । ९ अनुचितस्थानहृतयुद्धविजयात् समुपागता । १० गजयूषाधिपम् । ११ बैः । १२ उदयाचल । १३ रवि । १४ शव । १५ जीवस्तीति जीवस्तस्तेषाम् । १६ जीवनोपायमित्यर्थः । १७ अभिलक्षितैः । १८ इव । १९ सह । २० सहस्रैः । २१ नित्यमनोहराल्पे चेत्यालयम् । २२ निजकाहनेभ्यः । २३ स्तुति चकुः ।

जगोऽपि जगदीशानमित्यासौविजयोदयः । ३ अस्तावीदस्तकमर्णिं भक्तिनिर्भवेत्सा ॥३५७॥

विचोगिनी

शमितालिलविद्वन्संस्तवस्तवयि तुच्छोऽप्युपवात्यतुरुषाम् ।

तुच्छिशुक्तिपुटेऽम्बु संधूरं ननु सुकापलारं प्रपद्यते ॥३५८॥

अट्टवस्ति न विष्वकोटयो

निकटे खलकमयोर्निवासिनाम् ।

पटबोऽपि फलं दद्याग्निभि-

भैयमहत्यैमुषिमध्यवर्तिनाम् ॥३५९॥

हृदये त्वयि सञ्चिधापिते<sup>४</sup>

रिषबः केऽपि मत्यै विभिस्तद्यै ।

अमृताशाशु सस्तु समस्त

विषमोदार्पितविष्वलवः कुतः ॥३६०॥

उपवान्ति समस्तसंपदो

विषदो विष्वुतिमात्तुवन्त्यलम् ।

वृषभं <sup>५</sup>वृषमार्गदेशिनं

इषकेतुद्विषमात्तुषां सताम् ॥३६१॥

वसन्ततिलकम्

इथर्य भवत्तमति भक्तिपथं मिनीषोः<sup>६</sup>

प्रागेव वृषकक्षयः<sup>७</sup> प्रलयं वज्ञन्ति ।

पश्चादनभरमया चित्तमध्यवक्षयं

<sup>८</sup> सम्यस्यतेऽस्य विलसद्गुणभद्रमङ्गम्<sup>९</sup> ॥३६२॥

जिसे विजयका ऐश्वर्यं प्राप्त हुआ है ऐसा जयकुमार भी भक्तिसे भरे हुए हृदयसे समस्त कर्मों-को नष्ट करनेवाले जगत्पति-जिनेन्द्रदेवकी इस प्रकार स्तुति करने लगा ॥३५७॥ हे समस्त विघ्नोंको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्रदेव, आपके विषयमें किया हुआ स्तवन थोड़ा होकर भी बड़े महत्वको प्राप्त हो जाता है सो ठीक ही है क्योंकि पवित्र सीपके सम्पुटमें पढ़ी हुई पानी-की एक बूँद भी मोतीपनेको प्राप्त हो जाती है—मोतीका रूप धारण कर लेती है ॥३५८॥ हे देव, फल देनेमें चतुर करोड़ों विघ्न भी आपके चरणोंके समीप निवास करनेवाले पुरुषोंको कुछ फल नहीं दे सकते सो ठीक ही है क्योंकि क्या समुद्रके बीचमें रहनेवाले लोगोंको दावानलसे कभी भय होता है ? ॥३५९॥ हे प्रभो, आपको हृदयमें धारण करनेपर फिर ऐसे कीन शत्रु रह जाते हैं जो भय देनेकी इच्छा कर सकें, निरन्तर अमृतभक्षणं करनेवाले पुरुषोंमें किसी विषसे उत्पन्न हुआ उपद्रव केसे हो सकता है ? ॥३६०॥ धर्मके मार्गका उपदेश देनेवाले और कामदेवके शत्रु श्रीवृषभदेवकी शरण लेनेवाले सज्जन पुरुषोंको सब सम्पदाणि अपनेआप मिल जाती हैं और उनकी सब आपत्तियाँ अच्छी तरह नष्ट हो जाती हैं ॥३६१॥ हे शोभायमात गुणोंसे कल्याण करनेवाले जिनेन्द्र, इस प्रकार जो आपको अतिशय भक्तिके मार्गमें ले जाना चाहता है उसके कर्मबन्धके सब दोष पहले ही से प्रलयको प्राप्त हो जाते हैं और फिर पीछेसे कभी नष्ट नहीं होनेवाला मोक्षरूपी कल्याण बिना मगि ही अवश्य प्राप्त हो

१ प्राप्त । २ स्तोति स्म । ३ अस्ति किम् । ४ सञ्चिधानोक्ते । ५ परिभवम् । ६ विधातुपिच्छवः । ७ अमृत-मदनस्तीति अमृताशिनस्तेषु । ८ धर्ममार्गोपदेशकम् । ९ प्राप्नुवताम् । १० नेतुमिष्ठोः । ११ इन्द्रदोषाः । १२ सम्यक्षं भविष्यति । १३ कल्याणम् ।

मालिनी

परिगतपरितापान्स्वेदधारी विलक्षणौ  
 विगलितविभुभावो विहरीभूतचेता ।  
 अधित विधिविधानं चिन्मयैङ्गचक्रिमृतु-  
 विरहस्तिवरदत्ति चारकमीविदोगे ॥१६३॥

असन्ततिलकम्

येषामेयं<sup>१</sup> जितसुरः समरे यहोय-  
स्तानप्यहं कृतरतिः समुपाप्यामि ।  
२धुयोऽयमेव यदि काऽन्नं विलम्बते ति  
अव्यवह महां<sup>३</sup> समियाय अय<sup>४</sup> अयश्रीः ॥३६४॥

सालिनी

स १११२ बहुतरमरा १३ जन्मोचित्ताद् १४ शशुषोभूद् १५  
 १५ भूतमिति समवित्वा वृष्टिभिः साधकानाम् ।  
 उपरातहरिभूमिः १६ प्राप्य भूस्त्रितार्थं  
 दिनकर हव १७ कम्पयासंप्रथोधापिलाषी ॥३६॥

आर्द्धचिक्रीष्टम्

सौभाग्येन यदा स्ववक्षसि धृता माला तदैवापरं  
 वीरो<sup>३०</sup> वीधमवार्यदीर्घविमवो विश्रश्य<sup>१</sup> विश्वद्विषः ।  
 वीरश्चिहित<sup>३१</sup> वधौ स शिरमाइक्षान् यथा: दीखरं  
 कृष्णमीमान् विदधाति स इससल्लः<sup>३२</sup> किंशा न पुण्योदय<sup>३३</sup> ॥३५॥

जाता है ॥ ३६२ ॥ प्राप्त हुए सन्तापसे जिसे पतीना आ रहा है, जो लज्जित हो रहा है, 'मैं सबका स्वामी हूँ' ऐसा अभिप्राय जिसका नष्ट हो गया है, जिसका चित्त विहृल हो रहा है, और जो भाग्यकी गतिका बिचार कर रहा है ऐसे अर्कांकोर्तिने बीरलक्ष्मीका विद्योग होनेपर उसके विरहसे विषुर वृत्ति धारण की थी ॥ ३६३ ॥ देवोंको जीतनेवाला यह जयकुमार युद्धमें जिनकी सहायता करता है मैं उनकी भी बड़े प्रेमसे उपासना करती हूँ, फिर यदि यह ही सबमें मुख्य हो तो इसमें विलम्ब क्यों करना चाहिए ऐसा मानकर ही मानो विजयलक्ष्मी जयकुमारके पास बहुत शोध आ गयी थी ॥ ३६४ ॥ इस प्रकार बाणोंकी वर्षसि ऊपर उठी हुई शत्रुरूपी धूलिको शोध ही नष्ट कर पराक्रमके द्वारा सिंहका स्थान प्राप्त करनेवाला और अब कन्याके संयोगका अभिलाषी जयकुमार उस सूर्यकी तरह बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था जो कि सिंह राशिपर रहकर कन्या राशिपर आना चाहता है ॥ ३६५ ॥ जिसकी पराक्रमरूपी सम्पत्तिका कभी कोई निवारण नहीं कर सकता ऐसे धूरबीर जयकुमारने जिस समय सौभाग्यके वशसे अपने वक्षःस्थलपर माला धारण को यी उसी समय सब शत्रुओंको नष्ट कर बीरलक्ष्मीका बना हुआ तथा कभी नहीं मुरझानेवाला यशरूपी दूसरा सेहरा भी उसने अपने मस्तकपर धारण किया था, सो ठीक ही है क्योंकि जो लक्ष्मीमान् है, साहसका मित्र है और जिसके पुण्य

१ दिस्मयान्वितः । २ विभुत्तरहितः । ३ भरति स्म । ४ कर्मभेदम् । ५ विरहविकलषस्य वर्तनम् ।  
६ जयकुमारः । ७ धूरंधरः । ८ कालक्षेपः । ९ शीघ्रम् । १० जयकुमारम् । ११ जमः । १२ अत्यधिकम् ।  
१३ विराजति स्म । १४ उप्रतान् । १५ रेणुन् । १६ शीघ्रम् । १७ प्राप्तशक्रपदः । प्राप्तर्तिहराविस्थानश्च ।  
१८ संतापम्, प्रसादम् । १९ सुलोचनासङ्गाभिलाषी । कथाराणिगतसंप्रयोगाभिलाषी च । २० शुभम् ।  
२१ पात्रियस्त्रा । २२ कृतम् । २३ साहस एव सखा । २४ पृष्ठोदये ल०, अ०, प०, भ०, इ० ।

शिखरिणी

१ जर्णोऽयासोऽयश्चै प्रभवति गुणेभ्यो गुणवत्तः  
सदाचारात्मोऽपि सब विहितवृत्तिः श्रुतमहि ।  
प्रणोतं सर्वज्ञं विदितसकलास्ते खलु जिना-  
स्तसस्तान् विद्वान् संशयतु जयमिष्ठन् जय हव ॥३६३॥

इत्यापें श्रिपृष्ठिलक्षणमहापुराणसंपदे भगवद्गुणभद्राचार्यग्रन्थीते  
जयविजयवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशतम् पर्व ॥४४॥



उदय है वह क्या नहीं कर सकता है ? ॥ ३६६ ॥ इस संसारमें विजय पुण्यसे होती है, वह पुण्य गुणोंसे होता है, गुणोंका समूह सदाचारसे होता है, उस सदाचारका निरूपण शास्त्रोंमें है, शास्त्र सर्वंश देवके कहे हुए हैं और सर्वंश सब पदार्थोंको जाननेवाले जिनेन्द्रदेव हैं इसलिए विजयको इच्छा करनेवाले विद्वान् पुरुष जयकुमारके समान उन्हीं जिनेन्द्रदेवोंका आश्रय करें – उन्हींकी सेवा करें ॥ ३६७ ॥

इस प्रकार ऋषि नामसे प्रसिद्ध गुणभद्राचार्य विरचित शिष्टहिलक्षण महापुराणसंग्रहके  
हिन्दी भाषानुवादमें जयकुमारकी विजयका वर्णन करनेवाला  
चौकालीसकी पर्व समाप्त हुआ ।



पञ्चवत्यारिंशत्तम् पदे

अथ देवस्वरो गत्वा 'प्रथमानपराक्रमः । मधितारामिहुर्गर्बेः पृथुं सत्त्वावासप्रहितः ॥ १ ॥  
 सवयं च लंचिताषानि हन्तुं स्तुष्टा जिनेशिनः । अदस्पतमहाराजः यमाचक्र्य सुलोचनाम् ॥ २ ॥  
 कृताहारपरिक्ष्याग्नित्रोगामायुश्चस्तदौ ॥ ३ ॥  
 सुप्रभातृतप्रीष्टि कार्याभ्यर्गेण शुद्धिशाम ॥ ३ ॥  
 सर्वशास्त्रिकर्त्तु रथाति<sup>५</sup> रथायरत्नैः स्थिरचेतना । धर्मस्मैकाद्यनिष्ठन्द्रौ जिनेन्हापिसुखौ सुदा ॥ ४ ॥  
 समभ्यष्ट्यं समाश्वास्य प्रशस्य वहुशो गुणान् । भवन्माहाकृतः पुत्रि शांसं सर्वममङ्गलम् ॥ ५ ॥  
 प्रसिद्धस्तानि पापानि<sup>६</sup> नियामसुसंहर्त ॥ इत्युक्तिपत्रकरणगुरुत्वा पुत्रस्कृत्य सुतां सुनैः ॥ ६ ॥  
 हहु सुप्रभया दामा राजगोहं प्रविश्य सः । याहि पुत्रि निजागारं विमद्यैति सुलोचनाम् ॥ ७ ॥  
 अन्यथा चिनितं कार्यं देवेन कृतमन्यथा । इति कर्त्तव्यताम् ॥ ८ ॥  
 औरपक्षिक्यादि<sup>७</sup> धीभैवपिल्लेष्य सविद्योत्तमैः । विद्याधरभराधीशान् विषाशीकृत्य<sup>८</sup> कृत्यविन् ॥ ९ ॥  
 विद्याग्राहतास्तु ततोऽप्यैः ॥ १३ ॥ सामसार्त्तदरितैः ॥ १४ ॥ सम्यग्विहितसत्कारः स्नानवस्त्रासनादिभिः ॥ १० ॥  
 क्रमार्चंशो द्युप्माभिर्विहितैः विधितौ च नः । तस्मिद्यमयोऽप्येति<sup>१५</sup> यतोऽभूष्म<sup>१६</sup> ततः कृत्यम् ॥ ११ ॥

अथानन्तर—प्रसिद्ध पराक्रमका धारक और शत्रुओंके मिथ्या अभिमानको नष्ट करनेवाला जयकुमार अपने विशाल निवासस्थानमें जाकर छहर गया ॥१॥ इधर महाराज अकम्पन-ने स्वयं संचित किये हुए पाप नष्ट करनेके लिए श्री जिनेन्द्रदेवकी रक्षाति की और फिर जिसने युद्ध समाप्त होनेतक आहारके त्याग करनेका नियम के रखा है, माता सुप्रभा जिसके समीप बैठी हुई है, जो कायोत्सर्गसे खड़ी हुई है, स्थिरचित्तसे सब प्रकारकी शान्ति करनेवाला धर्म-ध्यान कर रही है, एकाग्र मनसे निश्चल है और आनन्दसे जिनेन्द्रदेवके सन्मुख खड़ी है ऐसी सुलोचनाको देखकर उसका सत्कार किया, आश्वासन देकर उसके गुणोंकी अनेक बार प्रशंसा की तथा इस प्रकार शब्द कहे—‘हे पुत्रि, तुम्हारे माहात्म्यसे सब अमंगल शान्त हो गये हैं, सब प्रकारके पाप नष्ट हो गये हैं, अब तू अपने निषयोंका संकोच कर ।’ ऐसा कहकर उन्होंने हाथ जोड़कर खड़ी हुई सुलोचनाको आगे किया और राजनुव्रोत्ता रानी सुप्रभाके साथ-साथ राज-भवनमें प्रवेश किया । फिर ‘हे पुत्रि ! तू अपने महलमें जा ।’ ऐसा कहकर सुलोचनाको विदा किया ॥२-७॥ पुनः यह कार्य अन्य प्रकार सोचा गया था और दैवते अन्य प्रकार कर दिया अब क्या करना चाहिए इस विषयमें मूढ़ताको प्राप्त हुए अतिशय वृद्धिमान् महाराज अकम्पनने औत्पत्तिकी आदि ज्ञानके भेदोंके समान सुश्रुत आदि उत्तम मन्त्रियोंके साथ विचार कर विद्याधर राजाओंको छोड़ दिया । फिर कार्यको जाननेवाले उन्हीं अकम्पनने बड़ी शान्तिसे उनके पोग्य कहे हुए वचनोंसे उन सबको आश्वासन देकर स्नान, बस्त्र, आसन आदिसे रावका अच्छी तरह सत्कार किया ॥८-१०॥ तथा अर्ककीतिसे कहा कि ‘हे कुमार ! हमारे नाथवंश और सोम-

१ प्रकाशमात्रम् । २ स्वावापगते स्थितः । ३ युद्धावसानपर्यन्तम् । ४ निजजननीयिहिनश्चाजिनपूजादिपरिकथम् ।  
५ उपानम् । ६ एकायत्येन निश्चलाम् । ७ नियमम् । ८ त्यज । ९ गच्छ । १० मुखुतप्रभूतिप्रभिः ।  
११ जन्मद्रवतनियमौषधतपोभिरुत्प्रस्त्रज्ञानेभेदैः । १२ नामगाशब्दमन्तं गोपयित्वा । १३ साम्नां सारैः । १४ वचनैः  
१५ हे अर्ककोते । १६ नाथवंशमोमवंशौ । १७ कृती । १८ जयस्य अरमाकं च । १९ यस्मात् पुरुषात् ।  
२० संजातम् ।

पुत्रात्मुपदार्तीनामपराधशतान्ययि । अमर्ते हि महारमानस्तत्रि नेवां विभूषणम् ॥ १२ ॥  
 भवेहैवादृपि सामिन्यपराधविधायिनाम् । आक्षतमशः पापं चानुयन्वामिवन्धनम् ॥ १३ ॥  
 अपराधः कुतोऽस्मामिरेकोऽथमविवेकिभिः । वर्णं चौं बन्धुभूयास्तंकुमारं ज्ञन्तुमहंमि ॥ १४ ॥  
 एषा कीर्तिरथं चेतत् प्रसादान्ते प्रशास्यति । शास्यानुग्रहयोः शक्तस्वं विशुद्धिं विशेष्यते ॥ १५ ॥  
 अकेणाल्पेकलाराधि हन्त्यते जगतस्तमः । अहमाकं स भवानकंस्तस्मादन्तस्माद्य ॥ १६ ॥  
 प्रानिकृहते तत्त्वास्मासु स्तन्यहर्वै स्तनंधर्मै । अस्मउज्जामार्त्तरा एषपरिषाकविशेषतः ॥ १७ ॥  
 विद्वविद्वभराहार्दी यदि क्षिप्तति वासिदः । कदाऽप्यशनिमेकं स्मिस्तस्तस्वैवाशुभोदयः ॥ १८ ॥  
 हयेतेव दुरारोहाऽजयेनेहामि पानितः । ते प्रेष्यः किमशास्ति नैमनस्यस्य कारणम् ॥ १९ ॥  
 मूलोचनेति का वार्ता यर्वस्वं नस्तर्वं तत् । निषिद्धैवेवया पूर्वं क्रियते किं स्वयंवरः ॥ २० ॥  
 लक्ष्मीमतीं गृहाणेमामेकभालापराभिधास्त् । निर्मलां वा यशोमालां किं ते पापाणमालया ॥ २१ ॥

वंश दोनों ही आपके द्वारा बनाये गये हैं और आपके द्वारा ही बढ़ रहे हैं । विषका वृक्ष भी जिसमें  
 उत्पन्न होता है उसमें फिर नाथको प्राप्त नहीं होता ॥ ११ ॥ महात्मा लोग पुत्र, बन्धु तथा  
 पियादे लोगोंके संकड़ों अपराध क्षमा कर देते हैं क्योंकि उनको शोभा इसीमें है ॥ १२ ॥ औरों-  
 की बात जाने दीजिए जो देवके भी अधीन होकर स्वामीका अपराध करते हैं उनका अपयश  
 कल्पान्त काल तक बना रहता है और उनका यह पाप भी अनेक दोषोंका बढ़ानेवाला होता है  
 ॥ १३ ॥ हम मूलोंने आपका यह एक अपराध किया है । नैक हम लोग आपके भाइयों और  
 भूत्योंमें से है इसलिए हे कुमार, यह अपराध क्षमा कर देने योग्य है ॥ १४ ॥ यह हमारी अपकीर्ति  
 और पाप आपके प्रसादसे शान्त हो सकता है क्योंकि आप याप देने तथा उपकार करने-दोनोंमें  
 समर्थ हैं इसलिए हम लोगोंकी शुद्धता अवश्य कर दीजिए ॥ १५ ॥ प्रकाशको रोकनेवाला  
 संसारका अन्धकार सूर्यके द्वारा नष्ट किया जाता है परन्तु हमारे लिए तो आप ही मूर्य हैं इसलिए  
 हमारे अन्तःकरणके अन्धकारको आप ही नष्ट कर सकते हैं ॥ १६ ॥ पूर्वजन्मके पाप कर्मोंके  
 विशेष उदयसे हम लोगोंके लिए जो आपका यह विरोध उपस्थित हुआ है वह मानो पुत्रके लिए  
 माताके दूधका विरोध उपस्थित हुआ है । भावार्थ-जिस प्रकार माताके दूधके बिना पुत्र नहीं  
 जीवित रह सकता है उसी प्रकार आपकी अनुकूलताके बिना हम लोग जीवित नहीं रह सकते हैं  
 ॥ १७ ॥ समस्त पृथिवीको आनन्दित करनेवाला बादल यदि कदाचित् किसी एक पर वज्र पटक  
 देता है तो इसमें बादलका दोष नहीं है किन्तु जिसपर पड़ा है उसीके अशुभ कर्मका उदय  
 होता है ॥ १८ ॥ चढ़ना कठिन होनेसे जिस प्रकार घोड़ा किसीको गिरा देता है उसी प्रकार  
 जयकुमारने आपको गिरा दिया है परन्तु वह तो आपका सेवक है इसमें दुरा माननेका  
 कारण ही क्या है ? ॥ १९ ॥ सुलोचना, यह कितनी-सी बात है ? हमारा जो सर्वस्व है वह  
 आपका ही है । यदि आप पहले ही रोक देते तो स्वयंवर ही क्यों किया जाता ? ॥ २० ॥  
 जिसका दूसरा नाम अक्षमाला है ऐसी मेरी दूसरी पुत्री लक्ष्मीमतीको आप ग्रहण कीजिए ।  
 यह लक्ष्मीमती यशकी मालाके समान निर्मल है, पापाण (खलों) की मालासे आपको क्या प्रयो-

१ अलब्धलाभः लब्धपरिक्षणं रक्षितविवर्द्धनं चेत्पुनर्बन्धः ते एव निवन्धनं कारणं यस्य । २ युष्माकम् ।  
 ३ तत् कारणात् । तं द० । ४ स्तनकोरस्य । ५ शिशी । यथा स्तनकोरस्य प्रातिकूल्यं शिशोर्जीवनाय न स्थान्  
 तथा तव प्रानिकूल्यमयि अहमाकम् । ६ अशुभकर्म । ७ एकस्मिन् पुंसि । ८ जयः । ९ तव किकरः ।  
 १० स्वयंवरे शिशुपापाणमालया । सुलोचनयान्तिपत्रतनमालया ।

आहारस्य<sup>१</sup> यथा तेऽयं विकारोऽयं विना रुद्रा । जोहिकास्ति किमस्माकं प्रसादितु विभी भवान् ॥२२॥  
 यहुयं मिश्रमयदि रक्ष्यवार्णेऽस्तु द्वाविव । तत्त्वेऽवशिष्टः पुण्येन भवत्येषणकारिणः ॥२३॥  
 त्वं अद्विनेव केनापि पापिना विद्वर्ज्जिह्वः<sup>२</sup> । उष्णीकृतोऽसि प्रस्वस्मान् शीतीमव हि वारि<sup>३</sup> चा<sup>४</sup> ॥२४॥  
 न<sup>५</sup> चेदिमान् सुतान् दारान् प्रतिग्राहय पालय । मम साकाशकी यामि पुरुणां पादपापी ॥२५॥  
 शृति प्रसाद्य संतोष्य समारोद्य गजाधिपम् । अर्ककीर्ति पुरोधाय<sup>६</sup> वृत्तं भूचरखेयरः ॥२६॥  
 शान्तिपूजां विधाया ई दिनानि विविधादिकाम् । महाभिषेकपर्वन्तां सर्वपापोपशान्तये ॥२७॥  
 जयमानीय संवार्य<sup>७</sup> संधानविधिवित्तदा । नितरो ग्रीतिसुत्याय कृत्वैभावमक्षरम् ॥२८॥  
<sup>८</sup> अक्षिमाला महाभूत्या दृष्टा सर्वार्थसंपदा । संदूज्य गमयित्वैमम्<sup>९</sup> नुगम्य<sup>१०</sup> यथोचितम् ॥२९॥  
 सर्वेतराश्च संमान्य नरविद्याधराधिपान् । सथो विसर्जयामास सद्गुणजवाजिभिः ॥३०॥  
 ते स्वदुर्गयलज्जास्तवैराः<sup>११</sup> स्व<sup>१२</sup> स्वमग्नुः<sup>१३</sup> पुरम् । सा धीदेवा<sup>१४</sup> परापरस्य<sup>१५</sup> प्रतिकर्त्ता हि याऽचिरात् ॥३१॥

जन है ? ॥२१॥ आज यह आपका विकार आहारके विकारके समान है, यथा आपके विना हम लोगोंको जीवित रह सकती है ? इसलिए हे प्रभो, हम लोगोंपर प्रसन्न हुजिए । भावार्थ – जिस प्रकार भोजनके बिना कोई जीवित नहीं रह सकता उसी प्रकार आपकी प्रसन्नताके बिना हम लोग जीवित नहीं रह सकते इसलिए हम लोगोंपर अवश्य ही प्रसन्न हुजिए ॥२२॥ हम लोग तो इधर-उधर भेजने योग्य सेवक हैं और आप जिसका निवारण न हो सके ऐसे समुद्रके समान हैं । हे नाथ, आपके मर्यादा छोड़नेपर भो जो हम लोग जीवित बच सके हैं सो आपके पुण्यसे ही बच सके हैं ॥२३॥ आप पानीके समान सबको जीवित करनेवाले हैं जिस प्रकार अग्नि पानीको गरम कर देती है उसी प्रकार किसीने हम लोगोंके प्रति आपको भी गरम अर्थात् क्रोधित कर दिया है इसलिए अब आप पानीके समान ही शीतल हो जाइए ॥२४॥ यदि आप शान्त नहीं होना चाहते हैं तो इन पुत्रों और स्त्रियोंको स्वीकार कोजिए, इनकी रक्षा कोजिए, मैं हम आप दोनोंके आश्रय श्रीदृष्टभद्रेवके चरणरूपी वृक्षोंके समीप जाता हूँ ॥२५॥ इस प्रकार भूमिगोचरी और विद्याधरोंसे घिरे हुए अर्ककीर्तिको प्रसन्न कर, सन्तुष्ट कर और उत्तम हाथी-पर सवार कराकर सबसे आगे किया तथा सब पापोंकी शान्तिके लिए आठ दिन तक बड़ी विभूतिके साथ महाभिषेक होने पर्यन्त शान्तिपूजा की । मेलमिलापकी विधिको जाननेवाले अकम्पनने जयनुमारको भी वही बुलाया और उसी समय सन्धि कराकर दोनोंमें अत्यन्त प्रेम उत्पन्न करा दिया तथा कभी न नष्ट होनेवाली एकता करा दी । तदनन्तर अर्ककीर्तिको बड़े वैभव और सब प्रकारकी धनरूप सम्पदाओंके साथ-साथ अक्षमाला नामकी कन्या दी, अच्छा आदर-सत्कार किया और उनकी योग्यताके अनुसार घोड़ी दूर तक साथ आकर उन्हें विदा किया । इसी प्रकार अच्छे-अच्छे रत्न, हाथी और घोड़े देकर अन्य भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंका सन्मान कर उन्हें भी शीघ्र ही विदा किया ॥२६-३०॥ अपने अन्यायके कारण उत्पन्न हुई लज्जासे जिनका बैर दूर हो गया है ऐसे वे सब लोग अपने-अपने नगरको चले गये, सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धि वही है जो भाग्यवश हुए अपराधका शीघ्र ही प्रतिकार कर लेती

१ आहारी यथा विनाशयति । २ विश्वेषां जीवनं यस्मात् स विद्वजीवितः । विश्वजीवनः अ०, ४०, ८०,  
 इ०, ल० । ३ जलम् । ४ इव । ५ एवं न चेत् । ६ प्रतियहं कुरु । ७ अये कुरु । ८ अन्योन्यसंबन्धं कुरु ।  
 ९ अविनश्वरम् । १० अक्षमालाम् अ०, ८०, इ०, ल० । ११ अर्ककीर्तिम् । १२ किञ्चिदनन्तरं गत्वा ।  
 १३ निरस्त । १४ स्वां स्वामग्नुः पुरीम् द०, अ०, ८० । १५ जगुः । १६ वाजगतापरापरस्य । १७ प्रति-  
 विधानं करिष्यति ।

सदा १८०३हितो देवः समागत्य सुसंगदा । सुलोचनाविवाहोहकस्यार्ण समपादयत् ॥३३॥  
 मेघप्रसन्नुके चादिसरस्त्रहायान् सहानुजः १ । जयोऽप्यगमयत् सवर्णि सन्तप्यर्थीर्दुष्टिः ॥३४॥  
 २ नाथवंशाप्रणीश्वाम् । जासाग्राहकोच्य सवर्णम् । सुधीः रागुहसाराणि॒ षष्ठ्या रमान्त्युपायनम् ॥३५॥  
 विदितप्रसन्नुताथोऽयि यथा॑ सर्व॑ नः प्रसीदति । तथा कुर्विति चकेत॑ सुमुखालयभजीगमत् ॥३६॥  
 आशु गत्वा निषेद्यासौ॒ दृष्ट्यैसौ चरण॑ तनुष् । क्षिप्त्वा प्रणम्य दत्वा च प्रामृतं निश्चुताज्ञिः॑  
 देवस्यानुचरो देव इण्ड्याकृपनो भयान् । देवं विज्ञाप्यत्यर्थं प्रसादं कुरु तद्गृणु ॥३७॥  
 सुलोचनेति नः १ कन्यामारसद्विद्वितिर्थिय॑ । स्वयंवरविधानेन संप्रादायि॑ जयाय सा ॥३८॥  
 २ तद्वागस्य कुमारोऽपि प्राप्ति॑ सर्वमत्॑ साय लत्॑ । किंद्याधरभारीश॑ सुप्रसूचैः सह स्त्रियतः ॥३९॥  
 पश्चात् कोऽपि ग्रहः ग्रूरः स्त्रिया भद्रः॑ शुमश्चहम् । खली बैलाग्याऽस्मर्भ्यं त्रया॑ कोपयति सम तम् ॥४०॥  
 विज्ञातसंव देवेन सर्व॑ तत्प्रविधातकम् । २ चारचम्भुश्च वेष्येतर्किं पुनः॑ सावधिर्मदान् ॥४१॥  
 ३ कुमारो हि कुमारोऽस्मै नापराधोऽस्ति कश्चन । ४ तत्र हस्य सदोषः॑ स्मो॑ वयमेव प्रमादिनः ॥४२॥  
 है ॥३१॥ उसी समय पहले कहे हुए देवने आकर बड़े वैभवके साथ सुलोचनाके विवाहका उत्सव  
 सम्पन्न किया ॥३२॥ सबके प्यारे जयकुमारने भी अपने छोटे भाइयोंके साथ साथ मेघप्रभ सुकेतु  
 आदि अच्छे-अच्छे सब सहायकोंको धन-द्वारा सन्तुष्ट कर विदा किया ॥३३॥

तदनन्तर नाथवंशके शिरोमणि अतिशय दुद्धिमान् अकम्पनने अपने जमाई जयकुमारके  
 साथ सलाहु की और अपने धरके अच्छे-अच्छे रत्न भेटमें देनेके लिए बाँधकर सुमुख नामक दूत-  
 को यह कहकर चक्रवर्तीकि पास भेजा कि तू वर्तमानका सब समाचार जानता ही है, चक्रवर्ती  
 जिस प्रकार हम लोगोंपर प्रसन्न हों वही काम कर ॥३४-३५॥ उस दूतने शीघ्र ही जाकर  
 पहले अपने आनेकी खजर भेजी किर चक्रवर्तीकि दर्शन कर पृथिवीपर अपना शरीर ढाल प्रणाम  
 किया और फिर हाथ जोड़कर साथमें लायी हुई भेट दंकर कहा कि हे देव, अकम्पन नामका राजा  
 आपका अनुचर है वह प्रणाम कर भयसे आपसे इस प्रकार प्रार्थना करता है सो प्रसन्नता कीजिए  
 और उसे सुन लोजिए ॥३६-३७॥ उसने कहा है कि सुलोचना नामकी मेरी एक उत्तम  
 कन्या थी वह मैंने स्वयंवर-विधिसे आपने ही जिसकी लक्ष्मी अथवा शोभा बढ़ायी है ऐसे  
 जयकुमारके लिए दो थी ॥३८॥ कुमार अर्ककीर्तिने भी उस स्वयंवरमें पधारकर पहले सब बात  
 स्वीकार कर ली थी और वे प्रसन्न हुए विद्याधर राजाओंके साथ-साथ वही विराजमान थे  
 ॥३९॥ तदनन्तर जिस प्रकार कोई दुष्ट शुभ ग्रहके साथ ठहरकर उसे भी दुष्ट कर देता है उसी  
 प्रकार किसी दुष्टने जबरदस्ती हम लोगोंपर व्यर्थ ही उन्हें कोधित कर दिया ॥४०॥ इसके बाद  
 वहाँ जो कुछ भी हुआ था वह सब समाचार आपको विदित ही है क्योंकि गुप्तचर रूप नेत्रोंको  
 धारण करनेवाला साधारण राजा भी जब यह सब जान लेता है तब किर भला आप तो  
 अवधिज्ञानी हैं, आपका क्या कहना है ? ॥४१॥ कुमार तो अभी कुमार ( लड़का ) ही हैं  
 इसमें उनका कुछ भी दोष नहीं है, प्रमाद करनेवाले केवल हम लोग ही उसमें सदोष हैं

१ स्वयंवरनिमणि प्रोक्तविचिन्नाङ्गुष्ठम् । २ सहानुजान् प०, इ०, म०, ल० । ३ बहवः प्रियाणि मित्राणि  
 यस्य सः । ४ अकम्पनः । ५ पुश्या॑ प्रियेण सह । ६ निजगृहे स्थितेषुत्कृष्टानि । ७ प्रामृतम् । ८ चक्री । ९ सुमुखा-  
 हृष्टदूतम् । १० गमयति सम । ११ दूतः । १२ भूम्याम् । १३ स्थिराङ्गज्ञिः । १४ कन्यामूल्हृष्टवान् ।  
 १५ स्वयंवरविधानम् । १६ चन्द्रादिशुभग्रहान्वितं यथा भवति तथा स्थित्वा कोपयति ते तथेति संबन्धः ।  
 १७ तद्वृत्तान्तम् । १८ चारा गृहगृहा एव चक्र्यस्य । १९ अवधिज्ञानसहितः । २० बालकः । २५ संविधाने ।  
 २६ सापराधाः । २७ भवामः ।

तस्मै कन्यां गृहाणेति नास्माभिः सा समर्पिता । आराधकस्य दोषोऽसी यत् प्रकुप्यन्ति देवताः ॥४३॥  
 अर्यैवै विहिताः सम्यक् वर्षिता यन्वदीऽपि नः । स्त्रिधाइनैः कथं संतवां विद्यामि विमिश्रहम् ॥४४॥  
 इत्येवं हैव मा मैस्थाः स्याद् सदौपो यदि त्वया । कुमारोऽपि नियुक्ते स्यायोऽयं त्वदुपकमः ॥४५॥  
 सदादिशैः विधेयोऽश्लैः को दण्डस्त्रिविधेऽपि नः । किंचिधः किं परिक्लेशः किं वार्यहरणं प्रभाः ॥४६॥  
 तवादेशविधानेन नितर्णं कृतितो वयम् । इहासुत्रं च तदेव यशार्थगनुशास्त्रैः नः ॥४७॥  
 इति प्रश्नयाणां वार्णी निराय हृदयप्रियाम् । सुमुखो राजराजस्य अ्यरंसीत् करसंजया ॥४८॥  
 खतो च चासि चेतासि हरन्त्यपि हि रक्षसाम् । किं पुनः सामसाराणि॑ लादशो॒ समतादशाम्॑ ॥४९॥  
 इईहीति॒॑ प्रसङ्गोऽस्या एकुलवदनाम्बुजः । उपस्तिहासनै॑ चक्री॒ विद्युषार्थं निवेद्य तम् ॥५०॥  
 अकम्पर्णः किमित्येवमुदीर्यं प्रहितो॒॑ सवान् । पुरुषो॒॑ निर्विशेषास्ते सर्वञ्चेष्टाश्च समप्रति ॥५१॥  
 गृहाश्रमे तै॑ एवाच्यास्त्वैरेवाहं च बन्धुमान् । निवेदारः प्रदूरस्य ममायम्यायवरमैति ॥५२॥  
 पुरुषो मोक्षमार्गस्य गुरुर्वा दानसन्ततेः । श्रेयोदव चक्रिणां शूस्त्रेष्येहास्यहमपर्णीः ॥५३॥  
 तथा स्वयं चरस्यमे नाभूत्वद् यथकम्पनाः । कः प्रवत्सयिताऽन्योऽस्य मार्गस्यैष॑ सनातनः ॥५४॥

॥ ४२ ॥ 'तुम इस कन्याको ग्रहण करो' ऐसा कहकर तो मैंने जयकुमारके लिए दी नहीं थी, तथापि देवता जो कुपित हो जाते हैं उसमें देवताका नहीं किन्तु आराधना करनेवाले ही का दोष समझा जाता है ॥ ४३ ॥ ये सब वंश मेरे ही बनाये हुए हैं, मेरे ही बढ़ाये हुए हैं, मेरे ही भाई हैं और मुझसे ही सदा स्नेह रखते हैं इसलिए इनका निश्चय कैसे कर्हे ऐसा आप मत मानिए क्योंकि यदि आपका पुत्र भी दीवी हो तो उसे भी आप दण्ड देते हैं, इस न्यायका प्रारम्भ आपसे ही हुआ है। इसलिए हे प्रभो, आज्ञा दीजिए कि इस अपराधके लिए हम लोगोंको तीनों प्रकारके दण्डोंमें-से कीम-सा दण्ड लिलें जोश्म है ? क्या ऊँची-लम्बी लकड़ी लें एक लोगोंसे अथवा क्या धन हरण कर लेना ? ॥ ४४-४५ ॥ हे देव, आपकी आज्ञा पालन करनेसे ही हम लोग इस लोक तथा परलोकमें अत्यन्त धन्व हो सकेंगे इसलिए आप अपराधके अनुसार हमें अवश्य दण्ड दीजिए ॥ ४६ ॥ इस प्रकार नम्रतासे भरे हुए और हृदयको प्रिय लगनेवाले वचन कहकर वह सुमुख दूत राजगणेश्वर - चक्रवर्तीके हाथके इशारेसे चुप हो गया ॥ ४७ ॥ जब कि सज्जन पुरुषोंके वचन राक्षसोंके भी चित्तको मोहित कर लेते हैं तब सबको समान दृष्टि-से देखनेवाले भरत-जैसे महापुरुषोंके शान्तिपूर्ण चित्तकी तो बात ही क्या है ? ॥ ४८ ॥ जिनका मुखरूपी कमल प्रकुलित हो रहा है ऐसे चक्रवर्तीने 'यहाँ आओ' इस प्रकार प्रसन्नता-भरे वचनोंसे उस दूतको अपने सिहासनके निकट बैठाकर उससे इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया कि 'महाराज अकम्पनने इस प्रकार कहकर आपको क्यों भेजा है ? वे तो हमारे पिताके तुल्य हैं और इस समय हम सभीमें ज्येष्ठ हैं ॥ ५०-५१ ॥ गृहस्थाश्रममें तो मेरे वे ही पूज्य हैं, उन्हींसे मैं भाई-बन्धुवाला हूँ, औरकी क्या बात ? अन्यायमार्गमें प्रवृत्ति करनेपर वे मुझे भी रोकनेवाले हैं ॥ ५२ ॥ इस युगमें मोक्षमार्ग चलानेके लिए जिस प्रकार भगवान् वृषभदेव गुरु हैं, दानकी परम्परा चलानेके लिए राजा श्रेयांस गुरु हैं और चक्रवर्तियोंकी वृत्ति चलानेमें मूल्य हूँ, उसी प्रकार स्वर्यंवरकी विधि चलानेके लिए वे ही गुरु हैं। यदि ये अकम्पन महाराज नहीं होते तो इस स्वर्यंवर मार्गका चलानेवाला दूसरा कौन था ? यह मार्ग अनादि कालका है

१ जयाय । २ भरतेनैव । ३ स्नेहिता । ४ तद्या प्रथमोपक्लान्तः । ५ तत् कारणात् । ६ दोषे । ७ तिमामय ।  
८ तुष्णीं हिष्टतः । ९ राक्षसानाम् । १० वचांसि साम्नां साराणि चेत् । ११ सताम् । १२ समत्वनेषाणाम् ।  
१३ अशागच्छेति । १४ सिहासनसमीपे । १५ हृतमुख्यम् । १६ प्रेषितः । १७ पुरुजिनेष्वः । गुरुमयो अ०, प०,  
म०, ल०, इ०, स० । १८ अकम्पना एव । १९ स्वयंबरमार्गः ।

मार्गांश्चिवत्तनान्<sup>१</sup> येऽत्रे मोगभूमितिरोहितान् । कुर्वन्ति नृतनान् सम्भः सद्मिः पूज्यास्त एव हि ॥५५॥  
 न चक्रेण न रत्नैरुच शैर्यनै निधिमित्तया । बलेन न षड्हृण नापि पुरीर्मचा च न ॥५६॥  
 तदेवत् सार्वसौमन्त्रं जर्यनैकेन केवलम् । सर्वत्र शीर्यकार्येषु तेनैव विजयो भम ॥५७॥  
 म्लेच्छराजान् विनिर्जित्य नाभिर्दौले यशोमयम् । मशाम स्थापितं तेन<sup>२</sup> किमश्रावयेन केनचित् ॥५८॥  
 अर्ककीर्तिरक्तिं मे कीर्तनीयामस्तिषेषु । आशाशाङ्कमिहाकाशीन्मध्यीमाषमलीमसाम् ॥५९॥  
 असुना<sup>३</sup> अन्यायवस्थैर्व प्रावत्तीति<sup>४</sup> न केवलम् । हह रवयं च दाङ्ड्यान्<sup>५</sup> प्रथमः परिकल्पितः ॥६०॥  
 अभूदयशसो रूपं मत्यदीपादिवाऽनन्तम् । नाकेकीर्तिरसी स्पृष्टमयशःकीर्तिरव हि ॥६१॥  
 जय एव भद्रादेशादीरुषोऽन्यायवर्तिनः ।<sup>६</sup> सर्वाकुर्यातिस्तेन स साधु दमितो शुष्ठि ॥६२॥  
 सदोषो यदि निर्गाहो उद्युपुष्ट्रोऽपि भूभुजा । इति भार्गमहं तस्मिन्दद्य वर्तयितुं स्थितः ॥६३॥  
 अभिमाला<sup>७</sup> किंल प्रसा<sup>८</sup> तस्मै कन्याऽबलेषिने<sup>९</sup> । भवद्भिरशिखार्येतद्<sup>१०</sup> विस्तपकमनुष्टितम् ॥६४॥  
 पुरस्त्वयेह तामता<sup>११</sup> नीतः सोऽपि प्रतीक्षयताम्<sup>१२</sup> । सकलाहृकति किं मूर्तिः परिहतुं भवेत्तिष्ठोः ॥६५॥  
 उदेक्षितः सदोषोऽपि स्वपुत्रशक्तवर्तिना । इतीदमयशः रथायि<sup>१३</sup> रथयायि तदुकर्मनैः ॥६६॥  
 इति सम्प्लूत्य विष्वेशः सौमुख्यं सुमुख्यं नयन् । हित्या उद्युक्तं सुजं<sup>१४</sup> तोके<sup>१५</sup> मकरोऽन्यायमौरसम् ॥६७॥

॥५३-५४॥ इस युगमें भोगभूमिमें छिपे हुए प्राचीन मार्गोंको जो नवीन कर देते हैं वे सत्युरुष ही सज्जनों-द्वारा पूज्य माने जाते हैं ॥ ५५ ॥ मेरा यह प्रसिद्ध चक्रवर्तीपिना न तो चक्ररत्नसे मिला है, न शेष अन्य रत्नोंसे मिला है, न निधियोंसे मिला है, न छह अंगोंवाली सेनासे मिला है, न पुत्रोंसे मिला है और न मुक्षसे ही मिला है, किन्तु केवल एक जयकुमारसे मिला है क्योंकि शूरवीरताके सभी कार्योंमें मेरी जीत उसीसे हुई है ॥ ५६-५७ ॥ म्लेच्छ राजाओंको जीतकर नाभि पर्वतपर मेरा कीर्तिमय नाम उसीने स्थापित किया था, इस विषयमें और किसीने क्या किया है ? ॥ ५८ ॥ इस अर्ककीर्तिने तो अकीर्तियोंमें गिनने योग्य तथा स्थाही और उद्धवके समान काली मेरी अकीर्ति जबतक चन्द्रभा है तबतकके लिए संसार-भरमें फैला दी ॥ ५९ ॥ इसने अन्यायका मार्ग चलाया है केवल इतना ही नहीं है । किन्तु संसारसे दण्ड देने योग्य लोगोंमें अपने आपको मुख्य बना लिया है ॥ ६० ॥ जिस प्रकार दीपकसे काजल उत्पन्न होता है उसी प्रकार यह अकीर्तिरूप मुक्षसे उत्पन्न हुआ है, यह अर्ककीर्ति नहीं है किन्तु साक्षात् अयशस्कीर्ति है ॥ ६१ ॥ मेरी आज्ञासे जयकुमार ही अन्यायमें प्रवृत्ति करनेवाले इस प्रकारके लोगोंको दण्ड देता है इसलिए इसने युद्धमें जो उसे दण्ड दिया है वह अच्छा हो किया है ॥ ६२ ॥ औरको क्या बात ? यदि बड़ा पुत्र भी अपराधी हो तो राजाको उसे भी दण्ड देना चाहिए पह नीतिका मार्ग अर्ककीर्तिपर चलानेके लिए आज मैं तैयार बैठा हूँ ॥ ६३ ॥ आप लोगोंने विचार किये चिना ही उस अभिमानीके लिए अक्षमाला नामकी कल्या दे दी यह बुरा किया है ॥ ६४ ॥ अथवा उस प्रसिद्ध अक्षमाला कल्याकी भैंट देकर आपने उस अर्ककीर्तिको भी पूज्यता प्राप्त करा दी है सो ठीक ही है क्योंकि यह कलंकसहित है यह समझकर क्या चन्द्रमाकी मूर्ति छोड़ी जाती है ? ॥ ६५ ॥ परन्तु चक्रवर्तीनि अपराध करनेपर भी अपने पुत्रकी उपेक्षा कर दी - उसे दण्ड नहीं दिया इस मेरे अपयशको महाराज अकम्पनने स्थायी बना दिया है ॥ ६६ ॥ इस

१ पुरातनात् पुंसः । २ युगादौ । ३ जयेन । ४ अर्ककीर्तिना । ५ प्रवत्तितम् । ६ दण्डतुं योग्यानाम् । ७ सम-  
 दण्डं कुर्यात् । ८ अर्ककीर्ती । ९ अक्षमाला व०, म०, इ०, स०, ल० । १० दत्ता । ११ गविताय ।  
 १२ कष्टम् । १३ लक्ष्मीमालाम् । १४ पूज्यताम् । १५ अकारि । १६ पुत्रम् । १७ न्यायमेव पूजमकरोत् ।

मार्गाद्विवर्तनान्<sup>१</sup> येऽत्रे मोगभूमितिरोहितान्। कुर्वन्ति नृतनान् सन्तः सत्त्वः पूज्यास्त एव हि ॥५७॥  
 न चक्रेण न रत्नैऽत्र शैष्मै निधिमिति रत्ना । बलेन न षट्ठैरेत नापि पुरीर्मधा च न ॥५८॥  
 तदेवत् सार्वमौमत्वं जयेनैकेन केषलम् । सर्वत्र शीर्यकार्येषु तेषैव विजयो मम ॥५९॥  
 म्लेच्छराजान् विनिर्भित्ति लङ्घित्वै लग्नोऽप्यत् । लग्नात् लङ्घित्वै लङ्घैः किंश्चल्पयेत् केनचित् ॥६०॥  
 अर्ककीर्तिरकीर्तिं मे कार्त्तीर्यामस्तीर्तिषु । आशशाङ्कमिहाकाशीन्मध्यामाषमलीमसाम् ॥६१॥  
 असुनाऽन्यायवस्थैव यावत्तीर्तिै च केषलम् । हह इवयं च दाङ्डयाना॑ प्रथमः परिकल्पितः ॥६०॥  
 अभूदयशसो रूपं सम्बद्धीपादिवाऽन्यतम् । नार्ककीर्तिरकीर्तिं स्पृश्यतः कीर्तिरेव हि ॥६१॥  
 अय एव मदादेशादीरणोऽन्यायवर्तिनः । यमाकुर्यात्तिरस्तेम स साक्षु इमितो युधि ॥६२॥  
 सदोषो यदि निग्रीष्टो उद्यग्युत्रोऽपि भूभुजा । इति भार्गमहं तस्मिन्द्वय वर्तयितुं स्थितः ॥६३॥  
 अक्षिमाला॑ किल प्रसा॑ तस्मै कन्याऽबलैपिने॑ । भत्रद्विभिर्विचार्येतद् त्रिरूपकमतुष्टितम् ॥६४॥  
 पुरस्कृत्येह तामिता॑ नीतः सोऽपि प्रतीक्ष्यताम् । सकलकृक्ति किं भूतिः परिहतुं भवेत्त्रिधीः ॥६५॥  
 उदेक्षितः सदोषोऽपि स्वयुग्रशक्वर्तिना । इतीद्यस्यशः स्थायि॑ स्यधायि॑ सद्वकर्मणैः ॥६६॥  
 इति सन्तोष्य विष्वेशः सौमुख्यं सुमुख्यं नवन् । हित्वा उद्येष्ट मुज्जं॑ तोक॑ मकरोऽन्यायमौरसम् ॥६७॥

॥५३-५४॥ इस युगमें भोगभूमिये छिपे हुए प्राचीन मार्गोंको जो तवीन कर देते हैं वे सत्पुरुष ही सज्जनों-द्वारा पूज्य माने जाते हैं ॥ ५५ ॥ मेरा यह प्रसिद्ध चक्रवर्तीपिना न तो चक्ररत्नसे मिला है, न शेष अन्य रत्नोंसे मिला है, न निधियोंसे मिला है, न छह अंगोंवाली सेनासे मिला है, न पुत्रोंसे मिला है और न मूळसे ही मिला है, किन्तु केवल एक जयकुमारसे मिला है क्योंकि शूरवीरताके सभी कार्योंमें मेरी जीत उसीसे हुई है ॥ ५६-५७ ॥ म्लेच्छ राजाओंको जीतकर नाभि पर्वतपर मेरा कीर्तिमय नाम उसीने स्थापित किया था, इस विषयमें और किसीने क्या किया है ? ॥ ५८ ॥ इस अर्ककीर्तिने तो अकीर्तियोंमें गिनने योग्य तथा स्थाही और उड़दके समान काली मेरी अकीर्ति जबतक चन्द्रमा है तबतकके लिए संसार-भरमें फैला दी ॥ ५९ ॥ इसने अन्यायका मार्ग चलाया है केवल इतना ही नहीं है । किन्तु संसारसे दण्ड देने योग्य लोगोंमें अपने आपको मुख्य बना लिया है ॥६०॥ जिस प्रकार दीपकसे काजल उत्पन्न होता है उसी प्रकार यह अकीर्तिरूप मुझसे उत्पन्न हुआ है, यह अर्ककीर्ति नहीं है किन्तु साक्षात् अयशस्कीर्ति है ॥ ६१ ॥ मेरी आज्ञासे जयकुमार ही अन्यायमें प्रवृत्ति करनेवाले इस प्रकारके लोगोंको दण्ड देता है इसलिए इसने युद्धमें जो उसे दण्ड दिया है वह अच्छा हो किया है ॥६२॥ औरको क्या बात ? यदि बड़ा पुत्र भी अपराधी हो तो राजाको उसे भी दण्ड देना चाहिए पह नीतिका मार्ग अर्ककीर्तिपर चलानेके लिए आज मैं तैयार बैठा हूँ ॥ ६३ ॥ आप लोगोंने विचार किये चिना ही उस अभिमानीके लिए अक्षमाला नामकी कन्या दे दी यह बुरा किया है ॥ ६४ ॥ अथवा उस प्रसिद्ध अक्षमाला कन्याकी भैंट देकर आपने उस अर्ककीर्तिको भी पूज्यता प्राप्त करा दी है सो ठीक ही है क्योंकि यह कलंकसहित है यह समझकर क्या चन्द्रमाकी भूति छोड़ी जाती है ? ॥ ६५ ॥ परन्तु चक्रवर्तीने अपराध करनेपर भी अपने पुत्रकी उपेक्षा कर दी – उसे दण्ड नहीं दिया इस मेरे अपयशको महाराज अकम्पनने स्थायी बना दिया है ॥ ६६ ॥ इस

१ पुरातनात् पुंसः । २ युगादौ । ३ जयेन । ४ अर्ककीर्तिना । ५ प्रवत्तितम् । ६ दण्डतुं योग्यानाम् । ७ सम-  
 दण्डं कुर्यात् । ८ अर्ककीर्तोः । ९ अक्षमाला व०, म०, इ०, स०, ल० । १० दत्ता । ११ गविताय ।  
 १२ कष्टर । १३ लक्ष्मीमालाम् । १४ पूज्यताम् । १५ अकारि । १६ पुत्रम् । १७ न्यायमेव पृथमकरोत् ।

सुमुखस्तद्या॑ मारभिव वौदुं २ दाक्षमः । स जयोऽकम्पनो देव देवरथ नमसि इमौ ॥६८॥  
 लब्धप्रसाद् हस्युक्त्वा क्षिप्त्वाऽङ्गानि प्रणम्य तस्मै । विकलद्वाम्भोज सुमुखाय कृताअलिः ॥६९॥  
 हस्त एवोऽमुखी ती॒ त्वै॒ व्यतीच्छन्ती॑ मदागमिम्॑ । आस्थातां चातको शृण्डि प्रावृप्ते वाऽदिवासुर्चः ॥७०॥  
 हस्त विज्ञाप्य अक्षेषात्॑ कृतानुज्ञः । कृतस्वरः । मंग्राम्याकम्पनं नवा सज्जं विहितादरम् ॥७१॥  
 गोमिः॑ प्रकाशय रक्षय प्रसादं चक्रतिंतः । रवेत्रा वाम॑ रामभस्तद्वक्षाद्वत् ज्वक्षामयतः ॥७२॥  
 माधुवादैः सदानैश्च संमानैस्ती च संहदा । १० आनिष्यतुरनिर्वाति॑ कृतज्ञा द्वि॒ महीभूतः ॥७३॥  
 हस्ततकोदयाशासि॒ विभासि॒ तशुभोदयः । ११ अनुष्टिवान् जयः श्रीमान् सुखं श्वासुरै॑ कुलम् ॥७४॥  
 सुलोचनामुखाम्भोजषट्पदायितलोचनः । अनद्वाजेण्याणैकतृणीरायित्विग्रहः ॥७५॥  
 तथा प्रधृते यह॑ प्रामे सायकैरक्षतः भ्रतः १२ । १३ पैलवैः कुमुमैरभिर्विचित्रा त्रिष्ठिवृत्तयः ॥७६॥  
 अस्मिलां सस्मितां कुर्वद्वहसन्ती॑ सहासिकाम्॑ ॥१४ । समयां निर्भयां वालामाकुलां तामनाकुलाम् ॥७७॥

प्रकार सबके स्वामी महाराज भरतने सुमुख नामके दूतको सन्तुष्ट कर उसका मुख प्रसन्न किया और अद्वितीय पुत्रको ओऽप्तर खायनी द्वीपाधनस्तः अर्द्धस्तः पुत्र बनाया । भावार्थ—त्यायके सामने वडे पुत्रका भी पक्ष नहीं किया ॥६७॥ उसी समय चक्रवर्तीकी दयाका भार वहन करनेके लिए मानो असमर्थ हुआ सुमुख कहने लगा कि 'हे देव, जिन्हें आपका प्रसाद प्राप्त हो चुका है ऐसे जयकुमार और अकम्पन दोनों ही आपके चरणोंको नमस्कार करते हैं, ऐसा कहकर उस दूतने अपने समस्त अंग पृथ्वीपर ढालकर चक्रवर्तीको प्रणाम किया और जिसका मुखरुपी कमल विकसित हो रहा है तथा जिसने हाथ जोड़ रखे हैं ऐसा वह दूसरे खड़ा होकर फिर कहने लगा कि "जिस प्रकार दो चातक वर्षा ऋतुके पहले बादलसे वर्षा होनेकी इच्छा करते हैं उसी प्रकार जयकुमार और अकम्पन आपके समीपसे मेरे आनेकी इच्छा करते हुए इसी ओर उन्मुख होकर बैठे होंगे" ऐसा निवेदन कर जिसने चक्रवर्तीसे आज्ञा प्राप्त की है ऐसे उस दूतने बड़ी शीघ्रतासे जाकर आदरके साथ महाराज अकम्पन और जयकुमारको नमस्कार किया तथा वचनोंके द्वारा अनुराग करनेवाले चक्रवर्तीकी प्रसन्नता प्रकट कर उन दोनोंके मुखकमल इस प्रकार प्रफुल्लित कर दिये जिस प्रकार कि दिनका प्रातःम समय (प्रातःकाल) किरणोंके द्वारा लाल सूर्यकी प्रसन्नता प्रकट कर कमलोंको प्रफुल्लित कर देता है ॥६८-७२॥ उस समय उन दोनों राजाओंने धन्यवाद, दान और सम्मानके द्वारा उस दूतको अत्यन्त प्रसन्न किया था सो ठीक ही है क्योंकि राजा लोग किये हुए उपकार माननेवाले होते हैं ॥७३॥ इस प्रकार विचारातीत वैभवकी प्राप्तिसे जिसके शुभ कर्मका उदय प्रकट हो रहा है ऐसा वह श्रीमान् जयकुमार सुखसे श्वशुरके घर रहने लगा ॥७४॥ जिसके नेत्र सुलोचनाके मुखरुपी कमलपर अमरके समान आचरण करते थे और जिसका जरीर कामदेवके बड़े-बड़े बाण रखनेके लिए तरकसके समान हो रहा था ऐसा वह जयकुमार युद्ध होनेपर बाणोंसे उस प्रकार घायल नहीं हुआ था जिस प्रकार कि अत्यन्त कोपल कामदेवके इन फूलोंके बाणोंसे घायल हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि देवलीला बड़ी विचित्र होती है ॥७५-७६॥ वह जयकुमार मुसक-राहटसे रहित सुलोचनाको मुसकराहटसे युक्त करता था, न हँसनेपर जोरसे हँसाता था, भययुक्त होनेपर निर्भय करता था, आकुल होनेपर निराकुल करता था, वार्तालाप न करनेपर

१ चक्रिकृपा । २ अकम्पनजयकुमारी । ३ त्वत्तः । ४ वाङ्छन्ती । ५ मदागमनम् । ६ प्रथमेषात् ।  
 ७ चक्रवर्तिनः । ८ वामिः किरणैश्च । ९ दिवसारम्भः । १० मीतवन्ती । ११ स्थितवान् । १२ मातुलमंब-  
 न्धनि गृहे । १३ पीडिनः । १४ भूतुभिः । १५ हाससहिताम् ।

अनालगमीभावात्य लोकमानो विलोकिनीम् । असपूर्णती समामृद्धय ज्यवाद् बीहाविलोपनम् ॥७३॥  
 कृतो भवान्तरावद्य स्नेहवलशालिनो । सुलोचनाया॒ कौस्थ्यः काम॑ कामेन कामुकः ॥७४॥  
 सुलोचनामनीवृत्ती रागामृतकरोदधुरा॑ । क्रमाक्षयाल वेदेव कामनाममहामुखे ॥७५॥  
 सुकुले वा मुखे चक्रे विकासोऽस्याः क्रमापदम् ॥१ आक्रान्तशूष्टकारागिप्रहानक्षस्मूचनः ॥७६॥  
 २ सखीमुखानि संबीक्ष्य जडपित्वा॑ दिशामस्ता॑ । स्वैर हसितुमारथ्य गृहीतमदनश्रहा ॥७७॥  
 ३ किञ्चित्तिथासितस्तेऽकाशेष्योण्डीन्द्रियः । अथ सदृशिरेष्व कृच्छानङ्गप्रतिष्ठशम् ॥७८॥  
 ४ सम्भवसा सलजा सा॑ विद्याध विदिधैर्मनाक् । आतालोकनवेलायामति॑ सन्दित्यमेव तम् ॥७९॥  
 ५ न सुजङ्गेन संदृष्टा नापि संसेचितामवा॑ । न श्रमेण समाक्रामता तथापि॑ स्विद्यति स्म सा ॥८०॥  
 ६ स्वरूपित स्म॑ कलालापाशक्त्ये हृदयं भूशम् । चलान्यालोकितान्यासक्षवदो वारमनश्चै॑ सा ॥८१॥  
 ७ प्रश्नाक्षितेव लज्जाऽगात् सुदृश्याः स्वैरुचारिभिः । वागिष्वनैर्व्यर्थपिष्ट विचित्रशिल्पोऽनलः ॥८२॥  
 ८ लाश्वरपा भवं तावत्ताश्वकुम्भविचारणा॑ । तावदेव शतिर्विजूम्भने न स्मरज्जरः ॥८३॥

उससे बातलिए करता था, अपनी ओर देखनेपर उसे देखता था, और स्पर्श न करनेपर उसका स्पर्श करता था। इस प्रकार यह सब करते हुए जयकुमारने सुलोचनाकी लज्जा दूर की थी ॥७७-७८॥ पूर्व पर्यायमें बैथे हुए स्नेहरूपी बलसे शोभमान कामदेवने इच्छानुसार जयकुमारको सुलोचनाका सेवक बना लिया था ॥७९॥ रागरूपी चन्द्रमाके सम्बन्धसे बढ़ी हुई, कामदेव नामक महासागरको बेलाके समान सुलोचनाके मनकी वृत्ति क्रम-क्रमसे चंचल हो रही थी ॥८०॥ सब शरीरमें घुसे हुए कामदेवरूपी पिशाचके द्वारा विना कुछ बोले ही जिसकी सूचना हो रही है ऐसे विकासने सुलोचनाके मुखरूपी मुकुलपर धीरे-धीरे अपना स्थान जमा लिया था ॥८१॥ कामरूपी पिशाचको ग्रहण करनेवाली सुलोचना सखियोंके मुख देखकर दिशाओंसे बातचीत कर अथवा॑ निरर्थक बचन बोलकर इच्छानुसार हैसने लगी ॥८२॥ उस समय भय और लज्जा सहित सुलोचना कामदेवको जीतनेवाले जयकुमारको न देखने योग्य समयमें मानो ठगनेकी इच्छासे ही कामदेवको अपना सहायक बनाकर सफेद काले इन दोनों रंगोंसे मिले हुए चंचल कटाक्षोंसे भरी हुई दृष्टिरूपी अनेक तोपर नामके हथियारोंसे धीरे-धीरे मार रही थी ॥८३॥ जब जयकुमार उसकी ओर नहीं देखता था उस समय भी वह सफेद, काले और चंचल कटाक्षोंसे भरी दृष्टिसे उसे देखती रहती थी और उससे ऐसा मालूम होता था मानो वह उसे ठगना हो चाहती है ॥८४॥ उस समय उसे न तो सर्वते काटा था, न उसने मर्द ही पिया था, और न परिश्रमसे ही वह आक्रान्त थी तथापि वह पसीनेसे तर हो रही थी ॥८५॥ उसके मधुर भाषण स्वलित हो रहे थे, हृदय अत्यन्त कौप रहा था, दृष्टि चंचल हो रही थी और वह ऐसी जान पड़ती थी मानो अपने दधामें ही न हो ॥८६॥ सुन्दर दौतोंवाली सुलोचनाकी लज्जा इस प्रकार नष्ट हो गयी थी मानो उसके पसीनारूपी जलसे धुल हो गयी हो और कामदेवरूपी विचित्र अग्नि वचनरूपी ईर्धनसे ही मानो खूब प्रज्वलित हो रही थी ॥८७॥ जबतक कामदेवरूपी ज्वर नहीं बढ़ता है तबतक ही लज्जा रहती है, तबतक ही भय रहता है, तबतक ही करने योग्य कार्यका विचार रहता है और तबतक ही धैर्य रहता है ॥८८॥

१ सामर्थ्य॑ २ अत्यर्थम् । ३ इच्छुः । ४ अनुरागचन्द्रेणोत्कटा । ५ स्थानम् । ६ प्राप्तकामश्रद्धमसरेण विना सूचकः । ७ सहचरो । ८ निरर्थकादिदोषदुष्मुक्त्वा । ९ उपक्रान्तवती । १० ईवेतकृष्णासंबहु । ११ सहायम् । १२ वक्तव्येष्वया । १३ स्वेदवती वभूव । १४ मनोजनश्चनानि । १५ स्वस्य पश्यथोमेव अथवा आन्मनः वदो अप्योने न वा नासीदिति । १६ विसज्जानलः अ०, ष०, ई०, स०, ल० ।

विषयाङ्गस्य सर्वेषामिन्द्रियाणां परस्परम् । परमात्मापतुः प्रीतिं दम्पती तौ पृथक् पृथक् ॥८९॥  
 अत्यासंगत्<sup>१</sup> क्रमग्राहिकरणैस्तावतपिंतो । <sup>२</sup>अनिन्द्रियामशेषैककरणाकारिणै विधिम् ॥९०॥  
 अन्तोन्यविषयं सौख्यं स्वकावाऽशेषान्यगोचरम् । स्तोकेन<sup>३</sup> सुखमपागतं प्रापतुः <sup>४</sup>परमात्मनः ॥९१॥  
 संप्राप्तभावपर्यन्तो<sup>५</sup> विद्वतुन्मै<sup>६</sup> स्वयं<sup>७</sup> च तौ । सुख्यैकं शै<sup>८</sup> सहैवोद्यरक्षकियोद्वेकमंभृतम्<sup>९</sup> ॥९२॥  
 रत्नावसाने<sup>१०</sup> निःशक्त्योगश्चौन्मुक्यात् प्रपद्यतो<sup>११</sup> । तयोरन्योन्यमाभातो<sup>१२</sup> नेत्रयोरिषि पुत्रिके ॥९३॥  
 अत्यापि या तथा प्रीतिस्तत्प्राप्तेन<sup>१३</sup> च या ततः<sup>१४</sup> । <sup>१५</sup>तयोरन्योन्यमधारीदुप्राप्तेष्यता ॥९४॥  
 सुखमात्मभृतिवेन<sup>१६</sup> यत्सुखं परमात्मना । <sup>१७</sup>तसोऽप्यधिकमासीद्वाहै<sup>१८</sup> संशिमारोऽपि<sup>१९</sup> लक्षणोः ॥९५॥  
 हृष्यन्योन्यस्तुद्भूतश्रीतिस्फीतामृताम्भसि । कामामभैर्धै निमग्नी तौ स्वैरं चिक्रीद्वतुश्चिरम् ॥९६॥  
 तदा स्वमन्त्रिप्रै<sup>२०</sup> हितगृदपक्रार्थोदितः । जयो जिगमिषुस्तूणै<sup>२१</sup> स्वस्थानीयं<sup>२२</sup> वियो वशः ॥९७॥

वे दोनों दम्पती परस्पर पृथक्-पृथक् सब इन्द्रियोंके विषयोंका सेवन कर परम आत्मद्वारा प्राप्त हो रहे थे ॥८९॥ अत्यन्त आसन्नितिके कारण, क्रम-क्रमसे एक-एक विषयको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंसे वे सन्तुष्ट नहीं होते थे इसलिए सब इन्द्रियोंको एक इन्द्रियरूप न करनेवाले विधाताकी वे निन्दा करते रहते थे । भावार्थ – उन दोनोंकी विषयासन्निति इतसी बढ़ी हुई थी कि वे एक साथ ही सब इन्द्रियोंके विषय ग्रहण करना चाहते थे परन्तु इन्द्रियाँ अपने प्राकृतिक नियमके अनुसार एक समयमें एक ही विषयको ग्रहण कर पाती थीं अतः वे असन्तुष्ट होकर सब इन्द्रियोंको एक इन्द्रियरूप जूँ बनानेवाले नामकर्मरूपी ब्रह्माकी सदा निन्दा करते रहते थे ॥९०॥

उन दोनोंने सब साधारण लोगोंको मिलनेवाला परस्परका सुख छोड़कर आत्माका वह उल्कुष सुख प्राप्त किया था जो कि अन्य छोटे-छोटे लोगोंको दुष्प्राप्त्य था ॥९१॥ जिनके भावोंका अन्त आ चुका है ऐसे वे दोनों ही एक साथ उत्पन्न हुई अपनी क्रियाओंके उद्देश्यसे उत्पन्न होनेवाले एक सुखको छोड़कर और कुछ नहीं जानते थे ॥९२॥ सम्भोग क्रीड़ाके अन्तमें अशक्त हुए तथा गाढ़ उल्कण्ठाके कारण परस्पर एक दूसरेको देखते हुए उनके नेत्रोंकी पुतलियाँ एक दूसरेके नेत्रोंकी पुतलियोंके समान ही सुशोभित हो रही थीं । ( यहाँ अनन्यव्यालकार होनेसे उपमेय ही उपमान हो गया है ) ॥९३॥ सुलोचनाने जयकुमारसे जो सुख प्राप्त किया था और जयकुमारने सुलोचनासे जो सुख पाया था उन दोनोंका उपमानोपमेय भाव परस्पर – उन्हीं दोनोंमें था ॥९४॥ परमात्माने स्वावलम्बी होकर जिस सुखका अनुभव किया था उन दोनोंका वह सुख परस्परमें विभक्त होनेपर भी उससे कहीं अधिक था । भावार्थ – यद्यपि उन दोनोंका सुख एक दूसरेके संयोगसे उत्पन्न होनेके कारण परस्परमें विभक्त था, तथापि परिमाणकी अपेक्षा परमात्माके पूर्ण सुखसे भी कहीं अधिक था । ( यहाँ ऐसा अतिशयोक्ति अलंकारसे कहा गया है वास्तवमें तो वह परमात्माके सुखका अनन्तवाँ भाग भी नहीं था ) ॥९५॥ इस प्रकार परस्परमें उत्पन्न होनेवाले प्रेमामृतरूपी जलसे भरे हुए कामरूप समूद्रमें डूबकर वे दोनों चिरकाल तक इच्छानुसार क्रीड़ा करते रहे ॥९६॥ उसी समय एक दिन जो अपने मन्त्रीके द्वारा

१ अत्यासन्नितिः । २ क्रमवृत्त्या पदार्थग्राहीन्द्रियैः । ३ निन्दां चक्रतुः । ४ सकलेन्द्रियविषयाणामेकमेवेन्द्रिय-मकुर्वन्तम् । ५ सामान्यपुरुषेण । ६ उत्तमम् । ७ स्वस्थ । परमात्मनः परमपूरुषस्येति ध्वनिः । ८ लीला । ९ बुद्धिवाले । १० आत्मनो । ११ सुखम् । १२ सहैव प्रादुर्भवश्चिजचुम्बनादिसमुत्कटसंभृतम् । १३ सुरत-क्रीडावसाने । १४ परस्परमालोकमानयोः सतोः । १५ व्यराजताम् । १६ जयकुमारात् । १७ सुलोचनायाः । १८ प्रीत्योः । १९ स्वोदरपूरकत्वेन । ‘उभावात्मम्भरिः स्वोदरपूरके’ इत्यभिधानात् । २० परमात्मसुखात् । २१ वा अवधारण । २२ विमजने । २३ सुखम् । २४ प्रेरित । २५ शोषणम् । २६ स्वां पुरीम् । स्वं स्था-ल० ।

भवद्विभागितेऽत्रयं मो मदीया<sup>१</sup> दिव्यक्षब्दे<sup>२</sup> । इति माम<sup>३</sup> समभेत्य<sup>४</sup> प्रस्थानार्थमद्वुभव<sup>५</sup> ॥१६४॥  
तद्वुद्ध्वा नाथवंशोऽस<sup>६</sup> किंचिदार्थीन् सर्वस्वमः । जये<sup>७</sup> जिगमिष्यौ स्वस्माक्ष स्थानं कस्याकुलं मनः ॥  
विचार्यं कार्यपर्यायं<sup>८</sup> तथामित्रव्याह तं नुयः । स्वेहानुक्रितिभौ नैति<sup>९</sup> दीपिकां वा पियं सुधीं<sup>१०</sup> ॥१००॥  
प्राद्युम्<sup>११</sup> प्राप्तेव सर्वस्वं तरमै दत्तसुलोचनः । सभापि लंकिकाचारं परिपालयितुं प्रभुः ॥१०१॥  
दत्तवा कोशादि सर्वस्वं स्वीकृत्य<sup>१२</sup> भ्रातिमात्रमनः । अनुगम्य स्वयं दूरं शुभेऽहनि वध्वरम् ॥१०२॥  
कथं कथमपि त्यक्तव्यं म<sup>१३</sup> सजानिर्जनाप्रणी<sup>१४</sup> ।<sup>१५</sup> स्यावस्तु तनः शोकी<sup>१६</sup> तुग्यिष्योगो हि दुःसहः ॥१०३॥  
विजयाद्यु<sup>१७</sup> समाप्तं जयोऽप्यै सुलोचनः । आरुदसामज्ञैः सर्वैः स्वानुजैर्विजयादिभिः ॥१०४॥  
हेमाङ्गदकुमारेण सानुजेन च मोत्सवः । प्रवत्तेयन् कथाः पथ्याः<sup>१८</sup> परिहासं मनोहराः ॥१०५॥  
त्रृतः शशीव नक्षत्रैरनुग्रहं<sup>१९</sup> यथो शमैः । इलां संचालयन् प्राप्ताः<sup>२०</sup> श्रीमान् स जयमाधनः ॥१०६॥  
स्कन्धावारं<sup>२१</sup> यथास्यानं पारेग्रां<sup>२२</sup> अवर्णविशत् । वीक्ष्य कक्षसुदत्तेन प्रशासता<sup>२३</sup> शास्त्रविसदा ॥१०७॥  
हृष्टपश्चकुटीकोटिनिकटाटोषनिर्गमः । कमासे<sup>२४</sup> शिविरावासः स्वर्गवास इवापरः ॥१०८॥

मेजे हुए पत्रके गुढ़ अर्थसे प्रेरित हो रहा है, बुद्धिमान् हैं, और शीघ्रसे शीघ्र अपने स्थानपर पहुँ-  
चनेकी इच्छा कर रहा है ऐसे जयकुमारने मामा (इवसुर) के पास जाकर अपने जानेकी सूचना  
दी कि हे माम, आपने जिसका ऐश्वर्य बढ़ाया है ऐसे मुझे मेरी प्रजा देखना चाहती है ।  
॥९७-९८॥ यह जानकर नाथवंशका स्वामी अकम्पन कुछ घबड़ाया सो ठीक ही है क्योंकि  
अपनेसे जय (जयकुमार अथवा विजय) के जानेकी इच्छा करनेपर किसका मन ब्याकुल नहीं  
होता है ? ॥९९॥ तदनन्तर कार्योक्ता पूर्वापर विचार कर राजा अकम्पनने जयकुमारसे  
'तथास्तु' कहा सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् मनुष्य दीपिकाके समान स्नेह (तेल अथवा प्रेम)  
का अनुवर्तन करनेवाली बुद्धिको नहीं प्राप्त होते हैं । भावार्थ-बुद्धिमान् मनुष्य स्नेहके पीछे  
बुद्धिको नहीं छोड़ते हैं ॥१००॥ यद्यपि महाराज अकम्पन, सुलोचनाको देकर पहले ही जयकुमार-  
को सब कुछ दे चुके थे तथापि लौकिक व्यवहार पालन करनेके लिए अपने प्रेमके अनुसार खजाना  
आदि सब कुछ देकर उन्होंने किसी शुभ दिनमें वधू-वरको बिदा किया । सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ  
महाराज अकम्पन अपनी पत्नीसहित कुछ दूर तक तो स्वयं उन दोनोंके साथ-साथ गये फिर जिस  
किसी तरह छोड़कर शोक करते हुए वहाँसे वापस लौट आये सो ठीक ही है क्योंकि सन्तानका  
वियोग बड़े दुःखसे सहा जाता है ॥१०१-१०३॥ जयकुमार भी सुलोचना सहित विजयार्थ  
नामके हाथीपर सवार होकर अन्य-अन्य हाथियोंपर बैठे हुए विजय आदि अपने सब छोटे भाइयों  
तथा लघु सहोदरोंसे युक्त हेमांगदकुमारके साथ बड़े उत्सवसे मार्गमें कहने योग्य हँसी बिनोद-  
की मनोहर कथाएँ कहता हुआ और पृथिवीको हिलाता हुआ नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी तरह  
गंगाके किनारे धीरे-धीरे इस प्रकार चला जिस प्रकार कि पहले दिव्यजयके समय सेनाके  
साथ-साथ चला था ॥१०४-१०६॥ शास्त्रोंके जानेवाले और सबपर शासन करनेवाले  
जयकुमारने उस समय गंगाके किनारे यथायोग्य स्थानपर घासबाली जमीन देखकर सेनाके  
डेरे कराये ॥१०७॥ देवीप्रमान क्षणोंके करोड़ों तम्बुओंके समीप ही जिसमें बाने-जानेका मार्ग

१ अस्मदीयः बन्धुमित्रादयः । २ द्रष्टुमिच्छतः । ३ इवसुरम् । ४ संप्राप्य । ५ गमनप्रयोजनम् । ६ शापयति  
स्म । ७ अकम्पनः । ८ विजये इति ध्वनिः । ९ कार्यकम्भ । १० न गच्छति किम् । ११ शोभना धीर्घस्य  
सः । १२ ददाति स्म । १३ स्वद्य प्रीतिमेकामेव स्वीकृत्य । १४ स्वीसहितः । १५ अकम्पनः । १६ व्याघ-  
टितवान् । १७ पुत्रविष्णोगः । १८ विजयाद्विग्रजम् । १९ पथि हिताः । २० गङ्गामनु । २१ पूर्वदिव्यजये  
यथा । २२ शिविरम् । २३ गंगातीरे । २४ जयकुमारः । २५ शुभमद्वस्त्रकुटीमसूहामश्विस्तुतनिर्गमः ।  
२६ रत्नां ।

तत् (तं) प्राप्य मिन्दुरु रुद्धा स राजद्वारि राजकम् । विस्मयोचनैः प्रविश्यान्तरवर्तीर्थे निपात तम् ॥  
 राजा सुलोचनो चावरोप्य स्वसुजालस्त्विनाम् । निविद्य रुदीचिते स्थाने मृदुशश्यात्क्षेम् ॥११०॥  
 सम्भालोचितवृक्षज्ञः प्रियां संतर्पयन् प्रियैः । स्नानभोजनवास्वास्यगीतनृत्यशिनोदनैः ॥१११॥  
 नीत्वा रात्रि सुखं तत्र प्रत्याग्य प्रत्ययं स्थितैः । तो निवेद्य समाश्वासय हेमाङ्गदपुरस्तरान् ॥११२॥  
 निर्थोज्य स्वानुजान् सर्वान् यस्यकक्टकरभणे । आप्तैः कलिपयैरेव प्रत्ययोध्यमियाय सः ॥११३॥  
 अर्ककील्यादिभिः प्रष्ठैः प्रत्ययात्य प्रत्यक्षितः । सस्नेहं सादरं भूयः कुमारणालफन् पुरीम् ॥११४॥  
 सानुरागमान् सद्यं रागाद् प्राविशद्वा विशां पतिः । न एजयन्ति के षाठन्ये पुरुषं राजपूजितम् ॥११५॥  
 इन्द्रो वेभाद् अहिद्वाराजिनस्योत्तोर्थं भूपतेः । समागेहं समालाश मणिकुटिमनूत्क्षेम् ॥११६॥  
 मध्ये तस्य स्फुरद्रव्यं खचितस्तम्भस्तम्भुते । विचित्रवेत्रविम्बस्तसद्विनानविराजिते ॥११७॥  
 मणिमुक्ताकल्प्रो तलम्बलमृशभूषणे । पराध्यरत्नमाजालजटिले मणिमण्डपे ॥११८॥  
 विवं उप्रोतिर्गमेत्प्राप्तिर्गमेत् त्रिसिंहस्त रुदाङ्गीर्णिहि वृत्तैर्ज्ञानप्रमाणे । यमरुद्रमभिः ॥११९॥

बनाया गया है ऐसा वह सेनाका आवास (पड़ाव) इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानो स्वर्गका दूसरा आवास ही हो ॥१०८॥ जयकुमारने अपने डेरेके पास जाकर उसके बड़े दरवाजेके समीप ही अपना हाथी रोका, वहीं सब राजाओंको विदा किया फिर ऊंचे तम्बूके भीतर प्रवेश कर हाथीको बैठाया-स्वयं उतरे, अपनी भुजाओंका सहारा लेनेवाली सुलोचनाको भी उतारा और अपने योग्य स्थानमें कोमल शश्यातलपर सुखसे विराजमान हुए। फिर उस समयके योग्य समाचारोंको जानेवाले जयकुमारने स्नान, भोजन, वार्तालाप, बाजे, गीत, नृत्य आदि मनोहर विनोदोंसे सुलोचनाको सन्तुष्ट किया, रात्रि वहीं सुखसे बितायी, वहाँ ठहरनेका कारण बतलाया, उसे समझा-बुझाकर बहीपर रखा, हेमांगद आदि सुलोचनाके भाइयोंको भी वहें रखा, अपने गब छोटे भाइयोंको अच्छी तरह सेनाकी रक्षा करनेमें नियुक्त किया और फिर कुछ आप्त पुरुषोंके साथ अयोध्याकी ओर यमन किया ॥१०६-११३॥ अयोध्या पहुँचनेपर अकंकीति आदि अच्छे-अच्छे पुरुषोंने सामने आकर जिसका स्वागत किया है, तथा जो बड़े स्नेह और आदरके साथ अकंकीतिसे वार्तालाप कर रहा है ऐसे राजा जयकुमारने अनुराग करनेवालोंसे साथ-साथ बड़े प्रेमसे अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया सो छीक ही है क्योंकि अन्य ऐसे पुरुष कीन हैं जो राजमान्य पुरुषकी पूजा न करें ॥११४-११५॥ जिस प्रकार इन्द्र समवसरणके बाह्य दरवाजेपर पहुँचकर हाथीसे उतरता है उसी प्रकार जयकुमार भी राजभवनके बाह्य दरवाजेपर पहुँचकर हाथीसे उतरा और सभागृहमें पहुँचा। उस सभागृहकी जमीन मणियोंसे जड़ी हुई थी, उसके मध्यमें एक रत्नमण्डप था जो कि देदीप्यमान रत्नोंसे जड़े हुए खम्भोंसे भरा हुआ था, अनेक प्रकारके रेशमी वस्त्रोंके तने हुए चन्द्रेवोंसे सुशोभित था, मणियों और भोतियोंसे मुथे हुए लम्बे-लम्बे फल्गुस रूप आभूषणसे युक्त था, और बहुमूल्य रत्नोंको कान्तिके जालसे ब्याप्त था। जिस प्रकार उदयाचलपर सूर्य सुशोभित होता है उसी प्रकार उस रत्नमण्डपमें ऊंचे सिंहासनपर बैठे हुए महाराज भरत सुशोभित हो रहे थे। जिस प्रकार ज्योतिषी देवोंके समूहसे चन्द्रमा सुशोभित होता है उसी प्रकार महाराज भरत भी अनेक राजाओंसे सुशोभित हो रहे थे, उनपर अपनी कीर्तिके समान निर्मल चमर ढुलाये जा रहे थे, इन्द्रके

१ राजसमूहम् । २ उपविश्य । ३ तं गजम् । ४ प्रतिबोध । ५ कारणम् । ६ अपोद्यां प्रति । ७ मुहूर्यै ।  
८ पूजितः । ९ चक्रवर्तीव । १० समवसरणमिव भूपतेः सभागृहमिति संबन्धः । ११ सभागृहस्य । १२ पट-  
चक्रकृत । १३ खुचित । १४ दाम । १५ रत्नमण्डपे ल० । १६ चामरैः ।

अथ वेदितं वेदव्याख्यानं तदन्तर्गतं शब्दं विवेचयेद्यत्वा विवेचयेद्यत्वा विवेचयेद्यत्वा

वेदितं वेदव्याख्यानं तदन्तर्गतं शब्दं विवेचयेद्यत्वा । रोचिषेव कृसाकारं पूज्यं पुण्यैऽस्तु विवेद्यत्वा ॥ १२० ॥  
 तुहसिंहासनामर्त्तं भास्वन्तं वोदयाद्रिगम् । राजराजं समालोक्य वहुशो भक्तिनिर्भरः ॥ १२१ ॥  
 स वा प्रणम्य तीर्थेण सपृष्टवाऽष्टाङ्गरात्मलम् । करं प्रसार्य संभाव्य राजैवास्वामासनम् ॥ १२२ ॥  
 निजहस्तेन निदिन्दिने रुद्धालंकृत्य तुष्टवान् । अवसासिष्टे सदामध्ये ल तदान्यन्ये तेजसा ॥ १२३ ॥  
 प्रसन्नवृत्तेन्दूद्यदा ह्वादिवचनं शुभमिः । वधुः किमिति नानीता लां द्रष्टुं वयसुसुकाः ॥ १२४ ॥  
 वयं किमिति नाहुसास्तद्विवाहोऽस्वं नवं । अकम्पनैरिदं युक्तं सनामिभ्यो वहिष्कृताः ॥ १२५ ॥  
 नन्द्रहं रवस्तित्वस्याने मां पुरस्कृत्य कम्यका । स्वाडसौ परिणेत्य्या त्वं तद्विस्तृतवानसि ॥ १२६ ॥  
 इत्यकृत्रिमसामोक्त्या तर्पितश्चक्रविना । तदा विभावयन् भक्ति रक्षवक्त्रं मणिकुटिमे ॥ १२७ ॥  
 नश्वाडपृथ्यव्यासार्द्दीव प्रतिगृह्य प्रभोदीवाम् । जयः प्राभुलिलधाय राजराजं व्यजित्पत् ॥ १२८ ॥  
 काशीवेदेशिना देव देवस्याद्वाचिधायिनाम् । विवाहविधिभेदेषु प्राप्यस्ति स्वयंवरः ॥ १२९ ॥  
 इति सर्वेः समालोक्य भवित्वैः शास्त्रवेदिभिः । कल्याणं उत्समारब्धं दैवेन कृतमन्यथा ॥ १३० ॥  
 शान्तं तत्त्वत्प्रसादेन मन्त्रमूले च्छेदकारणम् । रणं शरणमयात इत्येव भवतः क्रमा ॥ १३१ ॥  
 सुरवेचरभूपालाद्वयदाभ्योऽहालिनः । ऋक्णोऽकामतदिक्वक्ष किंकरास्तत्र कोऽस्त्वयहम् ॥ १३२ ॥

धनुषके समान अनेक प्रकारके आभरणोंकी कान्तिसे वेष्ठित थे अतएव ऐसे जान पड़ते थे मानो कान्तिसे ही उनका शरीर बनाया गया हो, और चारों प्रकारके ( शुभायु, शुभनाम, शुभगोत्र और सातावेदनीय ) पुण्योंसे पूज्य थे । इस प्रकार राजराजेश्वर महाराज भरतको देखकर भवितसे भरे हुए जयकुमारने तीर्थकरकी तरह आठों अंगोंसे जमीनको छूकर अनेक बार प्रणाम किया । महाराज भरतने भी हाथ फैलाकर उसका समान किया तथा अपने हाथसे बतलाये हुए अपने निकटवर्ती आसनपर बैठाकर प्रसन्न दृष्टिसे अलंकृत किया । इस प्रकार सन्तुष्ट हुआ जयकुमार सभाके बीच एक बिलक्षण तेजसे बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था ॥ ११६-१२३ ॥ तदनन्तर महाराज भरत अपने प्रसन्न मुखरूपी चन्द्रमासे निकलते हुए और सबको आनन्दित करनेवाले बचनरूपी किरणोंसे सबको प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहने लगे कि क्यों जयकुमार, तुम बहुको क्यों नहीं लाये ? हम तो उसे देखनेके लिए बड़े उत्सुक थे, इस नवीन विवाहके उत्सवमें तुमने हमें लोगोंको क्यों नहीं बुलाया ? महाराज अकम्पनने अपने भाई-बन्धुओंसे हमको अलग कर दिया क्या यह ठीक किया ? अरे, मैं तो तुम्हारे पिताके मुस्त्य था तुम्हें मुझे आगे कर सुलोचनाके साथ विवाह करना चाहिए था, परन्तु तुम यह सब भूल गये इस प्रकार चक्रवर्तीके द्वारा स्वाभाविक शान्त बचनोंसे सन्तुष्ट किया हुआ जयकुमार उस समय अपनी भवितको प्रकट करता हुआ नमस्कार कर अपराधीके समान अपना मुहूर्मणियोंसे जड़ी हुई जमीनमें देखने लगा । फिर महाराज भरतसे दया प्राप्त कर हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और राजाधिराज चक्रवर्तीसे इस प्रकार निवेदन करने लगा ॥ १२४-१२८ ॥ हे देव, आपके आशाकारो काशीनरेशने विवाहविधिके सब भेदोंमें एक स्वयंवरकी विधि भी पहलेसे चली आ रही है इस प्रकार शास्त्रोंको जाननेवाले सब मन्त्रियोंके साथ सलाह कर यह उत्सव प्रारम्भ किया था परन्तु दैवने उसे उल्टा कर दिया ॥ १२६-१३० ॥ मेरा मूल-सहित नाश करनेवाला वह युद्ध शान्त हो गया इसलिए हो यह सेवक आपके चरणोंमें आया है ॥ १३१ ॥ हे चक्रके द्वारा समस्त दिशाओंपर आकर्षण करनेवाले महाराज, अनेक देव, विवाधर और राजा आपके चरणकमलोंके भ्रमर होकर सेवक बन रहे हैं फिर भला मैं उन

१ शुभायुर्नामगोवसदेशलक्षणः । २ चक्रिणः । ३ दिष्ट्या ट० । ४ श्रीत्वा । ५ राजते स्म । ६ नूतनेन । ७ अनांहानिताः । ८ वन्धुभ्यः । ९ अहो । १० प्रसादवान् । प्रमादीव ल० ।

सबमें कौन हूँ ? — मेरी गिनती ही क्या है ? ॥१३२॥ हे देव, जो दूसरे साधारण पुरुषोंको न प्राप्त हो सके ऐसा मेरा सम्मान करते हुए आपने मुझे कही बना लिया है मो क्या सैकड़ों भवोंमें भी कभी इस कहणसे छूट सकता हूँ ? ॥१३३॥ हे स्वामिन्, ये नाथवंश और चन्द्र वंशहीनी अंकुर भगवान् आदिनाथके द्वारा उत्पन्न किये गये थे और आपके द्वारा वर्धित तथा पालित होकर जबतक पृथिवी है तबतकके लिए स्थिर कर दिये गये हैं ॥१३४॥ आदर-सत्कारको जाननेवाले महाराज भरत इस प्रकार बिनधसे भरी हुई जयकुमारकी वाणी सुनकर बहुत ही सन्तुष्ट हुए, उन्होंने वस्त्र, आभूषण तथा सबारी आदिके द्वारा जयकुमारका सत्कार किया तथा सुलोचनाके लिए भी उसके योग्य वस्त्र, आभूषण आदि देकर उसे विदा किया । जयकुमारने भी प्रियाके समान पृथिवीका आलिंगन कर महाराज भरतको प्रणाम किया और फिर वहसे चल दिया । इसलिए कहना पड़ता है कि पुण्य सम्पादन करनेवाले पुरुषोंकी सम्पदाएँ सम्पदाओंको बढ़ाती हैं । इस प्रकार नगरनिवासी लोग और याचकोंके समूह जिसके साहसकी प्रशंसा कर रहे हैं ऐसा वह जयकुमार हाथीपर सबार होकर नगरसे बाहर निकला और अपनी हृदयवल्लभाको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हुआ अपने मनके बेगसे प्रेरित हो शीघ्र ही गंगाके किनारे आ गया ॥१३५—१३६॥ वहाँपर सूखे वृक्षकी डालोंके अग्रभागपर सूर्यकी ओर मुँह कर रीते हुए कौएको देखकर वह कुमार प्रियाके भयको आशंका करता हुआ वैसा शूरवीर होनेपर भी प्रेमके दश मूँचित हो गया । आचार्य कहते हैं कि ऐसे रागसे उत्पन्न हुए सुखको भी धिक्कार है । चेष्टासे हृदयकी बातको समझनेवाले और शकुनको जाननेवाले पुरोहितने उसी समय अनेक उपायोंसे सचेत कर आइवासन दिया और कहा कि सुलोचना तो अच्छी तरह है । इस शकुनसे यही सूचित होता है कि हम लोगोंको जलसे कुछ भय होगा इस प्रकार कहकर पुरोहितने जयकुमारको शान्त किया ॥१३६—१४१॥ उस पुरोहितके बच्चोंको प्राणोंका सहारा मानकर वह जयकुमार शीघ्र ही आगे चला और भूलसे उसने अघाटमें ही हाथी चला दिया सो ठीक ही है, क्योंकि विचारहीन कामी पुरुषोंको हेय उपादेयका ज्ञान कहाँ होता है ?

१ अकम्पनेन । २ जट्ठेन सदान् कृतः । ३ कस्मिन् भवान्तरे । ४ वा अदधारणे । अनुष्यम् आनुग्रहम् ।  
५ जन्मनी । ६ चक्रिणम् । ७ जनयति । ८ याचक । ९ प्राप्तुमिष्टुः । १० रथे । ११ छन्तसम् । १२ वाप-  
सम् । 'काके तु करारिष्टबलिपुष्टसकृतप्रजा । इवाह्न्यत्प्रभोषपरम्भूवलिभुग्यायसा अपि ।' हत्यभिधानात् ।  
१३ सामवचनं नीतः । १४ शाकुनिकस्थ । १५ अजलोत्तारप्रदेशो । 'तीर्थं प्रवचने पात्रे लब्धाननाये विद्वां परे ।  
पुण्यारण्ये जलोत्तारे महानध्या महामुनी ।' १६ उपादेय । १७ प्रोद्गतकुम्भस्थस्याषोभागप्रदेशकम् । 'अघः  
कुम्भस्य वाहीत्यं प्रतिमानमधोश्य यत् ।' हत्यभिधानम् ।

तर्तुं<sup>४</sup> मकाकारं मैथ्येदद्विभिर्भाषिष्ठम् । देवी कालीति पूर्वोक्ता<sup>५</sup> सरथ्वा<sup>६</sup> सङ्गमे<sup>७</sup> अग्रहीत् ॥१४४॥  
 नकाहृत्या स्ववेशस्थः शुद्धोऽपि सहतो बली । हृष्ट्वा गर्व निमज्जन्तं प्रव्यागत्यै तद्द स्थिताः ॥१४५॥  
 यसंभ्रमं नहोपेतु<sup>८</sup> हर्द देमान्नदादयः । सुलोचनाऽपि ताम्बौद्ध्य कृत्यपञ्चनमस्तुतिः ॥१४६॥  
 मन्त्रमूर्तीन् प्रमाणात्य हृष्ट्वे भक्तिं<sup>९</sup> इहतः । उपै<sup>१०</sup> सर्गापसर्गान्तं त्यक्ताहारशरीरिका ॥१४७॥  
 प्राविशद् बहुमिः साधै गङ्गा गङ्गेव देवता । <sup>११</sup> गङ्गाप्राप्तितानगङ्गाकृद्विद्वत् ॥१४८॥  
 मित्रुभ्यासनकम्पेन कृतज्ञात्तद्विद्य सम्बरम् । <sup>१२</sup> तदानयस्तु तद्वान् संसर्वे खलकालिकाम् ॥१४९॥  
 स्वश्रमागत्य केनात्र रक्षन्ति कृतपुण्यकान् । गङ्गात्तदेविकृत्याज्ञै<sup>१३</sup> भवने सर्वव्येषदा ॥१५०॥  
 मणिर्देव समासधात्य एज्जित्त्वा सुलोचनाम् । तवै<sup>१४</sup> दत्तनमस्काराज्ञै<sup>१५</sup> गङ्गाधिदेवता ॥१५१॥  
 त्वयसारदितै<sup>१६</sup> सर्वमत्तुदामरेशिनः । तयेत्युक्तै<sup>१७</sup> जयोऽप्येतत्<sup>१८</sup> किमित्याह सुलोचनाम् ॥१५२॥  
 उपविन्द्याद्विर्द्वित्वा तित्त्वात्त्विन्द्यपुर्यामभृद् विभुः । विन्द्यकेतुः प्रिया तस्य विन्द्यज्ञुश्रीस्तयोः सुता ॥१५३॥

वह हाथी पानीमें चलने लगा, उस समय उसकी लौहका अग्रभाग ऊँचा उठा हुआ था, दौत चमक रहे थे, गण्डस्थल पानीके ऊपर था और आकार मगरके समान जान पड़ता था, इस प्रकार तेरता हुआ हाथी एक गड़ेके बीच जा पहुँचा । उसी समय दूसरे सर्वके साथ समागम करते समय जिस समिष्टीको पहले जयकुमारके सेवकोंने मारा था और जो मरकर काली देवी हुई थी उसने मगरका रूप धरकर जहाँ सरबू गंगा नदीसे मिलतो है उस हाथीको पकड़ लिया सो ठीक ही है क्योंकि अपने देशमें रहनेवाला धुद्र भी बड़ो-बड़ोंसे बलबान् हो जाता है । हाथीको हृष्टता हुआ देखकर कितने ही लोग झीलकर किनारेवर लकड़े-हुए बड़े-पड़े-तुँहेभावद आदि घयड़ाकर उसी गढ़में एक साथ घुसने लगे । सुलोचनाने भी उन सबको गढ़में घुसते देख पंच नमस्कार मन्त्रका स्मरण किया, उसने मन्त्रकी मूलिकव्यप अर्हन्त भगवान्को बड़ी भक्षितमें अपने हृदयमें वारण किया और उपसर्मांकी समाप्ति तक आहार तथा शरीरका त्याग कर दिया ॥१४२-१४७॥ सुलोचना भी अनेक सखियोंके साथ गंगामें घुस रही थी और उस समय ऐसी जान पड़ती थी मानो गंगादेवी ही अनेक सखियोंके साथ गंगा नदीमें प्रवेश कर रही हो । इतनेमें ही गंगाप्रपात कुण्डके गंगाकूटपर रहनेवाली गंगादेवीने आसन कम्पायमान होनेसे सब समाचार जान लिया और किये हुए उपकारको माननेवाली वह देवी बहुत शीघ्र आकर दुष्ट कालिका देवीको ढाँटकर उन सबको किनारेपर ले आयी ॥१४८-१४९॥ सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें ऐसे कौन हैं जो पुण्य करनेवालोंको स्वयं आकर रक्षा न करें । तदनन्तर उस देवीने गंगा नदीको किनारेपर बहुत शीघ्र अपनी विक्रिया-द्वारा सब सम्पदाओंसे सुशोभित एक भवन बनाया, उसमें मणिमय मिहासनपर युलोचनाको बैठाकर उसकी पूजा की और कहा कि तुम्हारे दिये हुए नमस्कार मन्त्रसे ही मैं गंगाकी अधिष्ठात्री देवी हुई हूँ, और सौधमेन्द्रकी नियोगिनी भी हूँ, यह सब तेरे ही प्रसादसे हुआ है ! गंगादेवीके इतना कह चुकनेपर जयकुमारने भी सुलोचनासे पूछा कि यह क्या बात है ? ॥१५०-१५२॥ सुलोचना कहने लगी कि विन्द्याचल पर्वतके समीप विन्द्यपुरी नामकी नगरीमें विन्द्यकेतु नामका एक सिद्ध

१ तर्तुतित्तरन् तम् । २ हृदस्य मध्ये । ३ पूर्वस्मिन् भवे जयेत तात् बने धर्म श्रुतवृत्त्या नाम्या सह स्थित-विजातीयसहचरी । ४ सरयूनद्याः । ५ गङ्गाप्रदेशस्थाने । ६ कुम्भोर्याकारेण । 'नक्षत्रु कुम्भोरः' इत्यभिधानात् । ७ अभिगुड्मसागत्य । ८ हृदे प्रविष्टक्षतः । ९ उपसर्गविसाधार्यन्तम् । १० गङ्गापतनकुण्डस्थान । ११ ताना-ल०, इ०, अ०, स०, प० । १२ निमवि । १३ त्वया विलोण्यनवनमस्कारपदात् । १४ अभूजम् । १५ विका-सिनो ( नियोगिनीति यावत् ) । १६ गङ्गादेव्या । १७ जयकुमारोऽप्येतत् किमिति पृष्ठवान् । १८ विन्द्याचलसमीपे ।

विन्द्यश्रीस्तां विना तस्याः शिक्षिणुं मकलान् गुणान् । स्या सह मयि स्नेहान्महीशस्यै समर्पयत् ॥१५५॥  
 १५६ ददन्त्विषयोऽप्ये विद्वन्निर्भृत्यां दिवसः ददा एव सया दत्तनमस्कारपदान्यतम् ॥१५६॥  
 आत्रयन्ती मृताऽयेष्यं भूत्यायां तं स्नेहिनी मयि । इत्यग्रयीदसौँ सोऽपि ज्ञात्वा संतुष्टेनसा ॥१५७॥  
 तत्कालो चित्सामोक्त्या गद्यादेवीं विसर्ज्य ताम् । सबलाकं प्रकुर्वन्तं हवं चलक्तुमात्र्या ॥१५८॥  
 स्वात्रायं संप्रविश्योच्चैः मप्रियः सहवन्धुभिः । सस्नेहं राजराजोक्तमुक्त्वा तत्प्रहितं स्वयम् ॥१५९॥  
 पृथक् पृथक् प्रदायातिमुदमासाद्यै वह्निमाम् । नीवा तत्रेत तां रात्रि प्रातरुद्याय भानुवत् ॥१६०॥  
 विधातुमनुरक्तानां भुक्ति<sup>१३</sup> मुखोतिताखिला<sup>१४</sup> । अनुग्रहं प्रयान् प्रेषणा कामिक्याः कुरुवृत्तमः<sup>१५</sup> ॥१६१॥  
 कमनीयैरतिप्रीतिमालापैरतनोत्तराम् । जाह्नवी<sup>१६</sup> दक्षिणावर्तनाभिः कूलनितिश्चिका ॥१६१॥  
 १६२ चदुलोज्जवलपाठीनलोचना रमणीमुखी<sup>१७</sup> । तरङ्गवाहुभिर्गाइमालिङ्गनम्भुसुका ॥१६२॥  
 स्वभावसुभग्ना इष्टहृदया स्वच्छतागुणात् । तटङ्गयनोत्कुरुत्तमोमालभारिणी ॥१६३॥  
 १६४ अतिवृक्षरसां<sup>१८</sup> वेगं संधर्तुमसहा द्रुतम् । पश्य कान्ते प्रियं याति स्वानुरूपं पर्यन्तिश्चिम् ॥१६४॥  
 रतः कामाद् विना नेत्राना न नीचेपूतमस्पृहा । संगमे<sup>१९</sup> उन्मयी जाता प्रेम नामेष्वां मतम् ॥  
 साक्षयमेत्या<sup>२०</sup> निष्प्रमेति लालायमम्भुष्वः\* ॥१६५॥

राजा रहता था । उसकी स्त्रीका नाम प्रियंगुथी था । उन दोनोंके विन्द्यश्री नामकी पुत्री थी । उसके पिताने मुझपर प्रेम होनेसे मेरे साथ सब गुण सीखनेके लिए उसे महाराज अकम्पनको सौंप दिया ॥१५३-१५४॥ वह विन्द्यश्री किसी एक दिन उपवनमें क्रीड़ा कर रही थी, वहींपर उसे किसी सौंपने काट लिया जिससे मेरे द्वारा दिये हुए पंच नमस्कार मन्त्रका चिन्तवन करती हुई मरकर यह देवी हुई है और मुझपर स्नेहके कारण यहाँ आयो है यह जानकर जयकुमारने सन्तुष्टचित्त हो शान्तिमय वचन कहकर गंगादेवीको विदा किया । तदनन्तर अपनी प्रिया मुलोचना और इष्ट-बन्धुओंके साथ-साथ, फहराती हुई पताकाओंके द्वारा अपने-आपको बगुलाओंसे सहित करते हुएके समान जान पड़नेवाले अपने ऊँचे डेरेमें प्रवेश किया । बड़े स्नेहसे महाराज भरतके कहे वचन सबको सुनाये, उनको दी हुई भेंट सबको अलग-अलग दी । मुलोचनाको अत्यन्त प्रसन्न किया, वह रात्रि वहीं बितायी और सबेरा होते ही उठकर अपनेमें अनुराग रखनेवाले लोगोंके भोजनके लिए सूर्यके समान समस्त दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ वह कुरुविशिष्योंका प्यारा जयकुमार मुलोचनाके प्रेमसे गंगा नदीके किनारे-किनारे चलने लगा ॥१५५-१६०॥ वह जाते समय मनोहर वचनोंसे सुलोचनाको बहुत ही सन्तुष्ट करता जाता था । वह कहता था कि हे प्रिये, देखो यह गंगा नदी अपने अनुरूप समुद्ररूपी पति-के पास बड़ी शीघ्रतासे जा रही है, यह अपनी नाभिरूपी भौंर दिखला रही है, दोनों किनारे ही इसके नितम्ब हैं, चंचल और उज्ज्वल मछलियाँ ही नेत्र हैं, यह पति अर्थात् समुद्रकी प्राप्तिके लिए उन्मुख है, तरंगरूपी भुजाओंके द्वारा गाढ़ आलिघनके लिए उत्कण्ठित-सी जान पड़ती है, स्वभावसे मुन्दर है, अपने स्वच्छतारूपी गुणोंसे सबका हृदय हरनेवाली है, दोनों किनारोंपर वनके फूले हुए पुष्पोंकी माला धारण कर रही है, इसका रस अयंवा पानी सब औरसे बढ़ रहा है और अपना वेग नहीं संभाल सक रही है ॥१६१-१६४॥ सो ठीक ही है क्योंकि कामदेवके विना

१ अकम्पनस्य । २ विन्द्यश्रीः । ३ आगच्छति सम । ४ सुलोचना । ५ विस्कण्ठिकासहितम् । 'बलाका विस्कण्ठिका' इत्यभिधानात् । ६ चक्रिणा प्रोक्तम् । ७ भणित्वा । ८ चक्रिप्रेषितम् । ९ दर्शा । १० प्राप्यम् । ११ स्फन्दावारे । १२ कर्तुम् । १३ असिमद्यादिव्यापारविभवजम् । १४ प्रकाशितसकललोकः । १५ वयः । १६ गंगा । 'गंगाविष्णुपदी जह्नुतनया सुरनिम्नगा' इत्यभिधानात् । १७ चंचल । १८ समुद्रेण सह रसिकोडोन्मुखी । निवपतिसमुद्राभिमुखी वा । १९ अभिवृद्ध-लः । २० जलस्यासमग्राद् वेगम् । रायोद्रेकं च । २१ समुद्रस्त्रहण । २२ गंगया । \*षट्पाषाढोऽय इलोकस्त्रिवन्त्यः ।

उत्तमिभूसृतो<sup>१</sup> पशुधर्मणां वर्षिता सती<sup>२</sup> । आधिरेषु पतिस्तस्यादेशभूतं पशुनामित्वा<sup>३</sup> ॥१६५॥  
ब्रह्मला धार्मिकैर्मित्या सतीनामुषमानवान् । गता कवीद्वयः सत्वैः सत्यते देवतंति च ॥१६६॥  
पुणिनश्चेन के नान्थाः संस्तुवन्ति गुणप्रियाः । <sup>४</sup>इति गङ्गागतैः अवैरन्वैद्वातिमनोहरैः ॥१६७॥  
ततः कतिष्यैरेव प्रयाणैः कुरुजाङ्गलम् । प्राप्य तद्वर्णनान्याजान्मोदयन् काशिपात्मजाम् ॥१६८॥  
आप्नोजानपदानीतफलगुणादिभित्र सः । विक्षयशीलनीरेजसरोजातित्रिराजितैः ॥१६९॥  
प्रलयेत्येव<sup>५</sup> प्रपश्यन्तीं सरोनेत्रैवध्यवरम् । सद्ग्रजवनामोग्रां वापीकृपोरुलामिकाम् ॥१७०॥  
परीतजातरूपोष्टचप्राकारकटिसूत्रिकाम् । अलंकृतमहावीथिविलसद्वाहुखलरीम् ॥१७१॥  
सीधोत्तङ्कुर्वा भास्वद्गोपुरानमहोभिनीम् । कुडुमागुरुकर्षकदेमादित्याकृतविद्रहाम् ॥१७२॥  
नानाप्रसवसन्त्वधमालाघमित्तुवासिणीम् । तोरणावद्वरत्वादिमालाकृतविद्रहाम् ॥१७३॥  
आहृयन्तीमिदोपर्वाधः पतकेच्चप्रहस्तकैः । द्वारासंबुत्तिविश्रमनेत्रौ<sup>६</sup> वासान्तरुसुकाम् ॥१७४॥  
पुरोहितैः<sup>७</sup> पुरम्बीमिमन्त्रमिवैश्वविश्रुतैः । दत्तशेषः पुरः स्थित्वा साशीवादैः समुन्सुकैः ॥१७५॥

रतिकी इच्छा नहीं होती है, उत्तम पुरुषोंकी इच्छाएँ नीच पदार्थोंपर नहीं होती हैं, यह नदी समुद्रमें जाकर समुद्ररूप ही हो गयी है सो ठोक ही है क्योंकि प्रेम ऐसा ही होता है, इसके समागमसे ही समुद्रका लावण्य ( सौन्दर्य अथवा खारापन ) सदा सफल होता है ॥१६५॥ इस गंगा नदीकी उत्पत्ति पर्वतोंके पति – हिमवान् पर्वतसे है, पृथिवीपर यह बढ़ी है और समुद्र हो इसका पति है इसलिए ही यह संसारमें पापोंका नाश करनेवाली हुई है ॥१६६॥ यह सफेद है, धर्मतमा लोंगोंके द्वारा मान्य है, सतियोंको इसकी उपमा दी जाती है और सब कवीद्वय यदि गुणीजनोंकी स्तुति न करें तो फिर कीन किसकी स्तुति करेगा ? इस प्रकार सुननेके धोग्य गंगा सम्बन्धो तथा अन्य अत्यन्त मनोहर कथाओं-द्वारा मार्ग तय किया ॥ १६७-१६८ ॥ तदनन्तर कुछ ही पड़ावों-द्वारा कुरुजाङ्गल देश पहुँचकर उसके बर्णनके बहानेसे सुलोचनाको आनन्दित करते हुए जयकुमारने अपनी उस हस्तिनागपुरी नामकी राजधानीमें प्रवेश किया जो कि देशके प्रधान-प्रधान पुष्पों-द्वारा लाये हुए फल-पुष्प आदिकी भेंट तथा खिले हुए नील कमल और सफेद कमलोंसे अत्यन्त सुशोभित सरोवररूपी नेत्रोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो आगे आकर बधू वरको देख ही रही हो । उत्तम धूलीसाल ही जिसका विस्तृत जघन प्रदेश था, बाबड़ी और कुर्वे ही जिसकी बिशाल नामि थी, चारों ओर खड़ा हुआ सुवर्णका ऊँचा परकोटा ही जिसको करधनी थी, सजी हुई बड़ी-बड़ी गलियाँ ही जिसकी सुशोभित बाहुलताएँ थीं, राजभवन ही जिसके ऊँचे कुच थे, देवीप्यमान गोपुररूपी मुखसे जो सुशोभित हो रही थी, केशर, अगुह और कपूरके बिलेपनसे जिसका शरीर गोला हो रहा था, जो अनेक प्रकारके कूलोंसे गुंथी हुई मालारूपी केशपाशको धारण कर रही थी, तोरणोंमें बाँधी गयी रत्न आदिकी मालाओंसे जिसका शरीर सुशोभित हो रहा था, जो ऊपर नीचे उड़ती हुई पताकाओंके अग्रभागरूपी हाथों-से बुलाती हुई-सी जान पड़ती थी, खुले हुए दरवाजे ही जिसके विश्वासपूर्ण नेत्र थे, जो घर-घर होनेवाले उत्सवोंसे उत्कण्ठित-सी जान पड़ती थी और इस प्रकार जो दूसरी सुलोचनाके समान सुशोभित हो रही थी । महाराजके दर्शन करनेके लिए उत्कण्ठित हो आशीवादि देने-

१ हिमवद्विग्रहः । २ प्रशस्ता । ३ गुणवर्णनान् । ४ अनन्थाः । कान्त्वा अ०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९० । ५ इति गङ्गागतैरित्यनेन सह कमनोद्यैरतिप्रतिमालापैरिति संबन्धः । ६ सुलोचनाम् । ७ संत्राप्तजनपदजनानीत । ८ अभिमुखमागत्य । ९ प्रशस्तधूलिकुट्रिमध्यविस्ताराम् । १० क्वाटपिधानरहितद्वारनयनामित्यर्थः । ११ गृह-मध्ये सोत्सवान् । १२ कुटुम्बिनीमिः ।

तूर्यमङ्गलनिवेदिः पुस्त्रद इवापरः । सुलोचनामिवान्यो स्वां प्रविश्य नगरीं जयः ॥१७७॥  
 राजगेहं महानन्दविधायि विविधद्विभिः । १ आवश्यत कान्तया सादै नगरीं हृदयं सुदा ॥१७८॥  
 तिथ्यादिपञ्चभिः॒ शुद्धैः शुद्धे लग्ने महोत्सवम् । सर्वसंतोषणं कृत्वा जिनपूजापूर्णसरम् ॥१७९॥  
 विधमङ्गलमंपूर्णा स्वांचितामनसुक्षिपताम् । हेमाङ्गदादिसानिष्ठे राजा जातमहोदयः॑ ॥१८०॥  
 सुलोचनामहादेवीं पट्टवन्धुं॑ लग्नाप्राप्तयाम् । स्त्रीषु संचितपूर्णासु पशुरेतावती रतिः ॥१८१॥  
 हेमाङ्गदं॑ सखोदूर्यमुपचर्यं ससंब्रमम् । पुरोभूत्यं स्वयं सर्वैर्भविष्यते॑ प्राप्तैर्णकोचितैः ॥१८२॥  
 नृत्यगीतसुखालापैर्दरिणारीहणादिभिः । बनयापीसरकीडाकन्दुकादिविनोदनैः ॥१८३॥  
 ३ अहानि स्थापयित्वैवं सुखेत कतिचिक्षुसी । तदीपिसत्तराजात्मा॒ हत्रगणिकामूर्षणादिकम् ॥१८४॥  
 प्रदाय परिवारं च तोषयित्वा यथोचित्तम् । चतुर्विधेन॑ कोशेन॒॑ सपुरी॒॑ तमजीगमते॑ ॥१८५॥  
 सुख्यप्रमाणैः संप्राप्य दृष्टा भूये॒॑ सपुरीम्॒॑ । प्रणम्याहृदयस्थात् स वधूवरत्रात्यया ॥१८६॥  
 सुखं काले गलत्येवमकम्पनमहोपतिः । तदा संचिन्तामास विरक्तः कामभोगयोः ॥१८७॥  
 अहो मथा प्रमनेन विषयाम्भेन नेक्षिता । कष्टं शरीरसंसारभौगनिस्वारता चिरम् ॥१८८॥

वाले पुरोहित, सौभाग्यवतो स्त्रियों, भन्त्रो और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सेठ लोग सामने खड़े होकर जिसे शोषाक्षत दे रहे हैं ऐसे उस जयकुमारने तुरही आदि मांगलिक बाजोंके शब्दोंके साथ-साथ दूसरे इन्द्रके समान अपनी उस हस्तिनामपुरीमें प्रवेश कर अनेक प्रकारकी विभूतियोंसे बहुत भारी आनन्द देनेवाले तथा उस नगरीके हृदयके समान अपने राजभवनमें प्रिया सुलोचनाके साथ-साथ बड़े आनन्दसे निवास किया ॥१८९-१९८॥

तदनन्तर बड़े भारी अभ्युदयको धारण करनेवाले महाराज जयकुमारने शुद्ध तिथि, शुद्ध नक्षत्र आदि पाँचों बातोंसे निर्दोष लगनमें बड़ा भारी उत्सव कराकर सबको सन्तुष्ट किया और फिर जिनपूजापूर्वक सब मंगल-सम्पदाओंके साथ-साथ हेमांगद आदि भाइयोंके सामने ही अपने योग्य आसनपर बैठी हुई सुलोचनाको बड़े हर्षसे पट्टबन्ध बाँधा अर्थात् पट्टरानी बनाया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यसंचय करनेवाली स्त्रियोंमें पतिका ऐसा ही प्रेम होता है ॥१९९-२०१॥ उसके बाद कुशल जयकुमारने स्वयं आगे होकर पाहुनोंके योग्य सब प्रकारके भोगोप-भोगोंसे, नृत्य, गीत और सुख देनेवाले बचनोंसे, हाथी आदिकी सवारीसे, बन, बापिका, तालाब आदिकी क्रोडाओंसे और गेंद आदिके खेलोंसे प्रसन्नतापूर्वक हेमांगद और उनके भाइयोंकी सेवा की, कुछ दिन तक उन्हें बड़े सुखसे रखा और फिर उनको अच्छे लगनेवाले हाथी, घोड़े, अस्त्र, गणिका तथा आभूषण आदि देकर उनके परिवारके लोगोंको यथायोग्य सन्तुष्ट किया और फिर रत्न, सोना, चाँदी तथा रूपये-ऐसे आदि चारों प्रकारका खजाना साथ देकर उन्हें उनके नगर बनारसको विदा किया ॥२०२-२०५॥ सुखपूर्वक कितने ही पहाड़ खलकर वे हेमांगद आदि बनारस पहुँचे और माता सुप्रभाके साथ राजा अकम्पनके दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया और जयकुमार तथा सुलोचनाकी बातचीतसे माता-पिताको आनन्दित करते हुए रहने लगे ॥२०६॥

इस प्रकार सुपूर्वक बहुत-सा समय व्यतीत होनेपर एक दिन महाराज अकम्पन काम-भोगोंसे विरक्त होकर इस प्रकार सोचने लगे ॥२०७॥ कि मुझ प्रमादीने विषयोंसे अन्धा

१ निवसति सम । २ नगरीजनन्तिते इत्यर्थः । ३ तिथियहनसत्रयोगकरणः । तिथिनकाशहोरापारमहर्त्तर्वा ।  
 ४ महोत्सवे ल० । ५ चकार । ६ ससानुजम् । ७ अप्ये भूत्वा । पुरुषकृत्य वा । ८ अतिथि । ९ दिनानि ।  
 १० रत्नसुवर्णरजत्तथ्यवहारयोग्यनाणकम् इति चतुर्विधेन । ११ बाराणसीम् । १२ हेमांगदम् । १३ गमयति  
 सम । १४ अकम्पनम् । १५ सुप्रभादेवीसहितम् ।

<sup>१</sup> आदावश्युपादानमशुद्धयवयवारमकम् । विश्वाशुचिकरं पापं दुःखदुश्चेष्टितालयम् ॥१८९॥  
निरन्तरध्वबोक्तोथनवद्वारशरीरकम्<sup>२</sup> । <sup>३</sup> कुमिषुञ्जितामस्मचिष्ठानिष्ठं विनश्वरम् ॥१९०॥  
<sup>४</sup> तदध्युष्टं जहो जन्तुसत्सः पञ्चनिद्र्याग्निभिः । विश्वेन्धनैः<sup>५</sup> कुलिङ्गीष भूयोऽयात्<sup>६</sup> कुरिसितो गतिम् ॥  
साऽऽशाश्वनिः<sup>७</sup> किलात्रैषं यत्र<sup>८</sup> विश्वमण्पमम् । तां<sup>९</sup> पुष्पं<sup>१०</sup> किलादाहं धनैः संक्षयातिवन्धनैः<sup>११</sup> ॥  
<sup>१२</sup> यदादाय भवेजजमी यस्मुकरवा मुञ्जिभाग्यम् । तथाथारम्यमिति<sup>१३</sup> ज्ञात्वा कथं युण्णाति<sup>१४</sup> धीधनः ॥  
हा हलोऽभि चिरं जन्तो मोहेनाधायिः<sup>१५</sup> ते यतः । वास्ति कायाशुचिज्ञानं तस्याग्नः<sup>१६</sup> कवातिदुर्लभः ॥  
दुःखी सुखी सुखी दुःखी दुःख्येव केवलम् ॥<sup>१७</sup> धर्मधर्म्योऽधनो<sup>१८</sup> धन्यो निर्धनो निर्धनः सदा ॥  
एवंविद्धिस्त्रिमिर्जन्तुरप्सितानीपितैश्चित्रम् ॥<sup>१९</sup> चनुर्भू मङ्गमप्राप्य वस्त्रमीति भवायन्वे ॥१९६॥  
<sup>२०</sup> यां<sup>२१</sup> वद्ययमसौ वहि<sup>२२</sup> परं वहि स चापराम् । साऽपि वद्यपरं कष्टमनिष्टपरम्परा<sup>२३</sup> ॥१९७॥

होकर इतने दिन तक शरीर, संसार और भोगोंकी असारता नहीं देखी यह बड़े खेदकी बात है ॥१८८॥ प्रथम तो यह शरीर अपवित्र उपादानों (माता-पिता के रज वीर्य) से बना है, फिर इसके सब अवयव अपवित्र हैं, यह सबको अपवित्र करनेवाला है, पापरूप है और दुःख देनेवाली खोटी-खोटी चेष्टाओंका घर है ॥१८९॥ इसके नीं द्वारोंसे सदा मल-मूत्र बहा करता है और अन्तमें यह विनश्वर शरीर कीड़ोंका समूह, चिताकी राख तथा विष्ठा बनकर नष्ट हो जानेवाला है ॥१९०॥ ऐसे शरीरमें रहकर यह मूर्ख प्राणी, जिनमें संसारके सब पदार्थ ईंधन रूप हैं ऐसों पाँचों इन्द्रियोंकी अभियोंसे तपाया जाकर कुलिंगी जोवके समान किसे नीच गतियोंमें गहूँचता है ॥१९१॥ जिसमें यह सारा संसार एक परमाणुके समान है ऐसा वह प्रसिद्ध आशारूपी गदा, इसी शरीरमें है, हसी आशारूपी गदेको मैं आज थोड़े-से धनसे पूरा करना चाहता हूँ ॥१९२॥ जिस शरीरको लेकर यह जीव जन्म धारण करता है – संसारी दून जाता है और जिसे छोड़कर यह जीव भ्रुत हो जाता है इस प्रकार शरीरकी वास्तविकता जानकर भी बुद्धिमान् लोग न जाने क्यों उसका भरण-पोषण करते हैं ॥१९३॥ हे जीव, खेद है कि तू मोहकमंके द्वारा चिरकालसे ठगा गया है, क्योंकि तुझे आजतक भी अपने शरीरकी अपवित्रताका ज्ञान नहीं हो रहा है, जब यह बात है तब अत्यन्त दुर्लभ उसका स्थान भला कहाँ मिल सकता है ॥१९४॥ इस संसारमें जो दुःखी हैं वे सुखी हो जाते हैं, जो सुखी हैं वे दुःखी हो जाते हैं और कितने ही दुःखी ही बने रहते हैं इसी प्रकार बनी निर्धन हो जाते हैं, निर्धन धनी हो जाते हैं और कितने ही निर्धन सदा निर्धन ही बने रहते हैं। इस तरह यह जीव जो सुखी है वह सुखी ही रहे और जो धनी है वह धनी ही बना रहे यह चौथा भंग नहीं पाकर केवल ऊपर कहे हुए तीन तरहके भंगोंसे ही संसाररूपी समुद्रमें चिरकाल तक अमंण करता रहता है ॥१९५-१९६॥ यह पुरुष जिस स्त्रीको चाहता है वह स्त्री किसी दूसरे पुरुषको चाहती है, जिसको वह चाहती है वह भी किसी अन्य स्त्रीको चाहता है इस प्रकार यह इष्ट अनिष्टकी

१ अशुचिष्ठुकशोणितमुहयकारणम् । २ पूतिगच्छित्वम् । ३ कुमीनां पुञ्जः चितायां भस्म विष्ठा पुरीयो निष्ठा-यापम्ते यस्मिन् तत् । ४ तद्विन् शरीरे । ५ स्थित्वा । ६ सकलविषयेन्धनैः । ७ गच्छेत् । ८ अभिनिष्ठे-शाकारः । ९ जन्तव्येव । १० आशाखनी । ११ सकलवस्तु । १२ आशाखनिम् । १३ पूर्यितुमिच्छुः ।  
१४ गणनाविषेषैः । १५ शरीरम् । १६ तच्छ्रीरस्य यथास्वरूपम् । १७ पुर्णि नयति । १८ वैराग्योत्परज्ञ-कालेऽपि । १९ शरीरत्यागः । २० कुशास्ति । २१ धनवान् । २२ धनरहितः । २३ सुखी सुखीति धनी धनोति चतुर्थभेदम् । २४ लियम् । २५ वहि इष्टति । अयम् पुमान् । २६ अत्यपुरुषम् । २७ अनिष्टवाध्या-संततिः । 'वहि योगेष्ठयोः' इत्यमिष्ठानात् ।

यश्चिहुं सदक्षिणं स्याद् य इन्हैं तदिक्षयते । हहेष्टाजिष्ठोरिष्ठा नियमेन न हि स्थितिः ॥ १६४ ॥  
 “संसारै संसारै वैष्णवोऽसा स स्याद् सोऽपि तपुनः । तत्स्य स्यात्तस्मैवाच्च चक्रके वक्रम्यक्रमः ॥ १६५ ॥  
 अन्तमस्व विधास्य विद्महियस्तो जिनोऽग्रितम् । मन्त्रतं जन्मन्त्रारभान्तरं भीतोऽहमस्त्रकाम् ॥ १६६ ॥  
 भोगोऽथ भोगिनो भोगोऽभोगिनोऽभोगिनामकृत् । तादस्मात्त्रोऽपि नास्मात्त्रं भीतो भोगो भोगेष्विति भूतम् ॥  
 भुज्यते यः स भोगः स्याद् भुजिर्वा भोगे इष्यते । सद्गूर्यं नरकेऽप्यस्ति तस्माद् भोगेषु का रतिः ॥ २०२ ॥  
 भोगास्तुष्णामिनसंवद्ध्यै दीपनीयौषधोपमा । पुभिः प्रदृढतुष्णारनेऽप्यस्त्वयं चिन्त्यमिहापरम् ॥ २०३ ॥  
 इष्यतो न सुधीः संस्तो वान्तहृष्णाविषो भुशम् । हेमानादं समाहृत्य पूज्यपूजापुरस्सरम् ॥ २०४ ॥  
 अभिषिष्य चलो मत्वा चक्ष्वा पहेन चाऽचलम् । लक्ष्मीं समर्प्य गत्वा चक्ष्विरभ्यासं वृषभेशितुः ॥ २०५ ॥  
 प्रवृत्य चहुभिः शब्दैऽदृष्ट्यैः शब्दास्तुप्रश्नैः । उत्तरश्लेष्यैः सक्षात्तुः तिन्त्यसुदृष्टपादयत् ॥ २०६ ॥  
 अथ जन्मान्तरापात्महार्थेनात्मिर्मर्तः । सुलोचनामनात्मन् नेन्दुविष्वात् सुतां सुधाम् ॥ २०७ ॥  
 “उन्मीलक्ष्मीरेजराजिभिर्लोकनैः ॥ पितॄन् । पूर्यत् श्रेष्ठपात्राभ्यो तद्गोर्गीतरसायनम् ॥ २०८ ॥

परम्परा बहुत ही दुःख देनेवाली है ॥१६७॥ जो इष्ट है वह अनिष्ट हो जाता है और जो अनिष्ट है वह इष्ट हो जाता है, इस प्रकार संसारमें इष्ट-अनिष्टकी स्थिति किसी एक स्थानपर नियमित नहीं रहती ? ॥१६८॥ आजका पुरुष अगले जन्ममें स्त्री हो जाता है, स्त्री नपुंसक हो जाती है, नपुंसक स्त्री हो जाता है, वही स्त्री फिर पुरुष हो जाता है, वह पुरुष भी नपुंसक हो जाता है, वह नपुंसक फिर पुरुष हो जाता है अथवा नपुंसक नपुंसक ही बना रहता है, इस प्रकार इस चक्रमें बड़ा टेढ़ा संक्रमण करना पड़ता है ॥१६९॥ इसलिए श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए बचनोंका चिन्तवन कर मैं अवश्य ही इस संसारका अन्त कर्णग वयोंकि निरन्तर संसाररूपी बनके भीतर परिग्रहण करनेमें मैं अब यमराजसे डर गया हूँ ॥२००॥ भोग करनेवाले मनुष्योंके पे भोग ठीक सर्वके फणाके समान हैं और भोगनेवाले जीवको भोगी नाम देनेवाले हैं । तथा इतना सब होनेपर भी उन भोगोंमें से एक भोग भी हमारा नहीं है यह निश्चय है ॥२०१॥ जिसका भोग किया जाता है उसे भोग कहते हैं अथवा उपभोग किया जाना भोग कहलाता है वे दोनों प्रकारके भोग नरकमें भी हैं इसलिए उन भोगोंमें क्या प्रेम करना है ? ॥२०२॥ जिस प्रकार औषधसे पेटकी अग्नि प्रदीप्त हो जाती है उसी प्रकार इन भोगोंसे भी तृष्णारूपी अग्नि प्रदीप्त हो उठती है अतः इन भोगोंसे बढ़ी हुई तृष्णारूपी अग्निको शान्तिके लिए कोई दूसरा ही उपाय सोचना चाहिए ॥२०३॥ इस प्रकार तृष्णारूपी विषको उगल देनेवाले बुद्धिमान् राजा अकम्पनने बहुत शीघ्र हेमांगदको बुलाकर पूज्य-परमेष्ठियोंकी पूजापूर्वक उसका राज्याभिषेक किया, लक्ष्मीको चंचल समझ पटुबन्धसे बर्धिकर उसे अचल बनाया और हेमांगदको सीषकर श्रीभगवान् वृषभदेवके समीप जाकर अनेक राजाओं और रानी सुप्रभाके साथ दीक्षा धारण की तथा अनुक्रमसे श्रेणियाँ चढ़कर केवलज्ञान उत्पन्न किया ॥२०४-२०६॥

अथानन्तर अन्य जन्मसे आये हुए बहुत भारी स्नेहसे भरा हुआ जयकुमार खुले हुए नीलकमलोंके समान मुश्किल होनेवाले अपने नेत्रोंसे मुखोचनाके मुखरूपी आनन्ददायी

१ इहं मवति । २ स पुमान् । ३ सा स्त्री स्यात् । ४ तत् नपुंसकम् । ५ एषा स्त्री स्यात् । ६ तत् नपुंसकम् ।  
७ तदेव पुनपुंसकमेव स्यात् । ८ चक्रवर्दावर्तमानसंसारे । ९ संसारस्य । १० सर्वस्य । ११ भोगीति नामकृत् ।  
भोगीति नामकरः । सर्वनामकृदित्यर्थः । १२ भोगीति नामकृत्याश्रीऽपि । १३ पश्चार्थः । १४ पदार्थानुभवन-  
क्रिया । १५ दीपनहेतुः । १६ भोगीः । १७ उपशानितकारणम् । १८ परमेष्ठोपजापूर्वकम् । १९ निश्चलं  
यथा भवति तथा । पट्टेन बद्धवा वा निबन्धनं कृत्वेव समर्पयेति संबन्धः । २० धर्मियैः । २१ सुप्रभादेशी-  
सहितः । २२ आनन्दहेतुचन्द्र । २३ निमृताम् । २४ कान्तिम् । २५ विकसश्चोलोहन्तविद्वाजमानैः ।  
२६ तेष्वैः । — सूचनैः तेऽ विहाय सर्वत्र । २७ सूलोचनावचनरूपगीतम् ।

१ दरन् करिकरा करा लिङ्गन संगतः २ तद्गावकूपिकान्तःस्थं रसे 'स्पर्शवेदिनम् ॥२०६॥  
 तद्विम्बायरसमावितामृतास्वादनोऽसुकः । तद्वक्त्रावारिजामोदान्मोदमानोऽनिशं भृशम् ॥२०७॥  
 ३ अत्रैव म पुनर्वैति भग्न वामासमागमः ४ स सुलोचनया स्वानि चक्षुरादीन्यतर्पयत् ॥२०८॥  
 ५ प्रमाणकालभावेभ्यो यद्गतेः समता तथोः । ततः संभोगश्चंगारावारापारान्तर्गी हि तां ॥२०९॥

## मालिनी

१ अतिपरिष्ठस्या लोपितालेपनादिः २ स सकलकरणान् गोचरीभूय ३ तस्याः ।  
 हितपरविषयाणां ४ लाभपि ५ तस्मैवमेती  
 समरतिकृतसारायन्वभूतां सुखानि ॥२१३॥  
 मनसि मनसिजस्यावापि ६ सौख्यं त ताम्यां  
 पृथग्नुगतभावैः ७ भगताम्यां नितान्तम् ।  
 ८ करणसुखसुखेस्तन्मनः प्रीतिमाप्त  
 भवति ९ परमुखं च ववापि सौख्यं सुतृप्त्यै ॥२१४॥  
 शिशिरसुरभिमन्दोच्छ्वासमैः रवैः समारै-  
 १० सुदुमयुववोभिः स्वादनीयप्रदेशैः ।  
 छलिततनुलक्ष्याम्यां मादेशकराम्याः  
 मखिलमनयतां तां सौख्यमात्मेन्द्रियाणि ॥२१५॥

चन्द्रमासे झीरते हुए अमृतको पीता था, सुलोचनाके बचन और गीतरूपी रसायनको अपने कानरूपी पात्रोंसे भरता था, हाथीकी सूँडके समान आकारवाले हाथोंके आलिंगनसे युक्त हो सर्वानि इन्द्रियसे जानने योग्य उसके शरीररूपी कुईयाके भीतर रहनेवाले रसको ग्रहण करता था, दिम्बो फलके समान सुशोभित उसके ओठोंमें रहनेवाले अमृतका आस्वाद लेनेमें सदा उत्सुक रहता था, उसके मुखरूपी कमलको मुगन्धिसे रात-दिन अत्यन्त हृषित होता रहता था और 'स्वो समागम मुझे इसी भवमें है अन्यभवमें नहीं है, ऐसा मानकर ही मानो सुलोचनाके द्वारा अपनी धक्षु आदि इन्द्रियोंको सन्तुष्ट करता रहता था ॥२०७—२११॥ चूंकि प्रमाण, काल और भावसे इन दोनोंके प्रेममें समानता थी इसलिए हो वे दोनों सम्भोग शृंगाररूपी समृद्धके अन्त तक पहुँच गये ॥२१२॥ खूब बढ़े हुए प्रेमसे जिसने विलेपन आदि छोड़ दिया है ऐसा वह जयकुमार सुलोचनाकी सब इन्द्रियोंका विषय रहता था और सुलोचना भी जयकुमारके हित करनेवाले विषयोंमें तत्पर रहती थी इस प्रकार ये दोनों ही समान प्रीति करना ही जिनका सारभाग है ऐसे सुखोंका उपभोग करते थे ॥२१३॥ पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए परिणामोंसे खूब मिले हुए उन दोनोंने अपने मनमें कामदेवका सुख नहीं पाया था किन्तु इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए उन-उन सुखोंसे उनके मन प्रीतिको अवश्य प्राप्त हुए थे सो ठीक ही है क्योंकि दूसरेके द्वारा उत्पन्न हुआ सुख वया कहीं उत्तम तृप्तिके लिए हो सकता है ? ॥२१४॥ अपने श्वासो-च्छ्वासके उत्पन्न हुए शोतल सुगन्धित और मन्द पवनसे, कोमल और मधुर बचनोंसे, स्वाद है स्वीकुर्वन् । २ आलिङ्गने हृदयङ्गमः 'संगतं हृदयङ्गमम्' इत्यभिधानात् । ३ सुलोचनाशरीररसकूपमध्यस्थित । ४ सप्तशतकम् । ५ इह चन्मन्येव । ६ उत्तरभवं नास्तीति वा । ७ हथोसंगः । प्रतीपदशिनो वामा वनिता महिला तथा' इत्यभिधानात् । ८ विजयः । ९ योनिपृथ्यादिप्रमाणात् समरतिप्रभृतिकालात् अन्योन्यानुरागादिभावाच्च । १० अतीव प्रवृद्ध । ११ लुप्तश्रीखण्डकुमचर्चामाल्याभरणादिः । १२ समस्तेन्द्रियाणाम् । १३ विषयीभूत्वा । १४ हितलक्ष्मदनादिविषयाणाम् । १५ सुलोचनापि । १६ जयस्य । १७ न प्राप्यते स्म । १८ पदार्थः । १९ इन्द्रियोपायजनितसुखैः । २० परम् अन्यवरतु मुख द्वारमुपायो यस्य तत् । परमुखं कवापि भवति न कुत्रा-पीत्यर्थः । २१ आस्तादितुं योग्याघरादिप्रदेशैः ।

हुतसरसिज्यारिष्टवेदीयमानैः  
सततरतनिमित्तजालैमार्गंप्रवृत्तैः ।  
मृदुशिशिरतरैः संप्राप्तवृत्तौ समीरैः  
सुरतैविरतिजातस्वेदविच्छेदसौख्यम् ॥२१६॥

थसन्ततिलका

तो तस्य त्रृत्तिरनुवर्त्यति इम स्थाया—  
इवैने तदेव रसितृसिनिमित्तमासीत् ।  
‘प्रेमापदश्च’ निजं भावमचिन्त्यमन्त्य—  
सातोदयश्च भवभूतिकलै तदेव ॥२१७॥

कामोऽगमत् सुरतवृत्तिषु तस्य निष्ठा—  
भावं सुधीरिति रतिश्च सुलोचनाशः ।  
को गर्वमुद्वहति चेत् त्रृत्ताभिमानी  
स्वेष्टार्थसिद्धिनिषेपु गुणाधिकेषु ॥२१८॥

एवं सुखानि तनुजाम्यनुभूय तो च  
‘नैवेष्टुश्चिवररतेऽप्यमिलाषकं इम्’ ।

त्रिकष्टमिष्टविष्योत्थस्य त्रुत्याय

तद्वीतिवित्तविषयाय बुधा यत्थम् ॥२१९॥

इत्यार्थे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिष्टिलक्षणश्रीमहापुराणसंग्रहे जयसुलोचना-  
सुखानुभवव्यावर्णनं नाम पञ्चत्वारिंशतम् पर्व ॥४४॥

लेने योग्य अधर आदि प्रदेशोंसे और कोमलताकी एक खान स्वरूप मुन्दर शरीररूपी लतासे वे दोनों अपनी इन्द्रियोंको समस्त सुख पहुँचाते थे ॥२१५॥ जिसने कमलका सार भाग हरण कर लिया है, जो प्रिय दासके समान आचरण करता है, निरन्तर सम्भोगका साधन रहता है, मरोलेके मार्गसे आता है और अत्यन्त कोमल ( मन्द ) तथा शीतल है ऐसे पवनसे वे दोनों ही सम्भोगके बाद उत्पन्न हुए पसीना सूखनेका सुख प्राप्त करते थे ॥२१६॥ जयकुमारकी प्रवृत्ति सुलोचनाके अनुकूल रहती थी और सुलोचनाकी प्रवृत्ति जयकुमारके अनुकूल रहती थी । उन दोनोंका परस्पर एक दूसरेके अनुकूल रहना ही उनके रतिजन्य सन्तोषका कारण था जो चित्तवनमें न आ सके ऐसा प्रेम इन्हीं दम्पतियोंमें पूर्णताको प्राप्त हुआ था, इन्हींके सातावेदनीय-का अन्तिम उदय था और यही सब इनके जन्म लेनेका फल था ॥२१७॥ बुद्धिमान् कामदेव, सम्भोग चेष्टाओंके समय जयकुमारका शिष्य बन गया था और रति सुलोचनाकी शिष्या बन गयी थी सो ठीक ही है क्योंकि भनुष्य यदि व्यथका अभिमानी न हो तो ऐसा कौन हो जो अपने इष्ट पदार्थकी सिद्धिके विषयभूत अधिक गुणवाले पुरुषोंके साथ अभिमान करे ? ॥२१८॥

इस प्रकार शरीरसे उत्पन्न हुए सुखोंका अनुभव कर चिरकाल तक रमण करनेपर भी वे दोनों इच्छाओंकी अद्वितीय अवधिको प्राप्त नहीं थे — उनकी इच्छाएँ पूर्ण नहीं हुई थीं । इसलिए कहना पड़ता है कि इष्ट विषयोंसे उत्पन्न हुए सुखको भी धिक्कार है । हे पण्डितों, तुम उसी सुखके लिए प्रयत्न करो जो कि संसारके सब विषयोंसे अतीत है ॥२१९॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत त्रिष्टिलक्षण महापुराण-संग्रहके हिन्दी भाषानुवादमें जयकुमार और सुलोचनाके सुखभोगका वर्णन करनेवाला पैतालीसर्वो पर्व समाप्त हुआ ।

१ इष्टवयस्यायमानैः । २ गवाशपथ । ३ सुरतावसानजात । ४ अन्योन्यानुवर्त्तनमेव । ५ प्राप्त । ६ जयसुलोचनयोः । ७ निजयोद्दर्शपत्योभवितो यत्र तत् । ८ अष्टश्चिमसुखोदयश्च । ९ जन्मप्राप्तिफलम् । १० नैव प्राप्तुः । ११ अन्तम् । १२ कारणात् । १३ प्रयत्नं कुरुत्वम् ।

## षट्कारिदात्म पर्व

१०७५४६४८-१०७५४६५३ शुक्रवारी २०१८ वर्ष

जयः प्रासादमध्यास्यै दन्तावलगसो मुदा । यदृच्छाऽन्यदालोक्य गच्छन्तौ स्वगदम्पत्तौ<sup>१</sup> ॥१॥  
हा मे प्रभावतीत्येतद् आलशक्तिविहूलः ।<sup>२</sup> रतिमेवाहितः<sup>३</sup> सद्यः सहायीकृत्य मूर्च्छेषा ॥२॥  
तथा<sup>४</sup> पारावलद्वन्द्वं तत्रैवालोक्य कामिनी । हा मे रतिवरेत्युक्त्वा साइपि मूर्च्छामुपागता ॥३॥  
दक्षचेद्वै जनकिप्रकृतशीतक्रिया क्रमात् । सद्यः कुमुदिमीकायं प्रभीधं शीतदीपितेः ॥४॥  
हिमचन्दनमंगिथवारिभिर्मन्दमादतैः । सोऽप्यमूर्च्छो द्विषः पश्यन् मन्दमन्दतनुरूपः<sup>५</sup> ॥५॥  
यूर्यं सर्वेऽपि<sup>६</sup> सायन्तनाम्योजानुकूलाननाः । किमेतदिति तत्सर्वं जानानोऽपि स वामरः<sup>७</sup> ॥६॥  
अनेकानुनयोपथैर्गोवस्त्रलम्<sup>८</sup> दुर्यिताम् । सुलोचनां समाश्वास्य स्मरन् जन्मास्तरप्रियाम् ॥७॥  
आकाशर्वजृति कृत्वा तामेवालपश्चन्<sup>९</sup> स्थितः । चञ्चनाशुश्रवः<sup>१०</sup> सर्वे प्रायः कान्तासु कामिनः ॥८॥  
तथोर्जन्मान्तरात्मीयवृत्तान्तस्त्रियनन्तरम् । स्वर्गादनुगतो बोधस्तृतीयो<sup>११</sup> अथवितमीयिवान्<sup>१२</sup> ॥९॥  
तत्रिलोक्य सप्तरत्रोऽस्या<sup>१३</sup> श्रीमती शिवंकरा । पराइव मन्त्ररोपेकादित्यस्योम्यं तदानुवन्<sup>१४</sup> ॥१०॥

अथानन्तर किसी अन्य समय जयकुमार अपने महलकी छतपर आरूढ़ हो शोभाके लिए  
बनवाये हुए कुत्रिम हाथीपर आनन्दसे बैठा था कि इतनेमें ही अपनी इच्छानुसार जाते हुए  
विद्याधर दमती दिखे, उन्हें देखकर 'हा मेरी 'प्रभावती' इस प्रकार कहता हुआ वह बहुत ही  
बेचैन हुआ और मूर्च्छाकी सहायता पाकर शीघ्र ही प्रेमको प्राप्त हुआ । भावार्थ-पूर्वभवका  
स्मरण होनेसे मूर्च्छित हो गया ॥१-२॥ इसी प्रकार सुलोचना भी उसी स्थानपर कबूतरोंका  
युगल देखकर 'हा मेरे रतिवर' ऐसा कहकर मूर्च्छाको प्राप्त हो गयी ॥३॥ जिस प्रकार चन्दमासे  
कुमुदिनी शीघ्र ही प्रबोधको प्राप्त हो जाती है-खिल उठती है उसी प्रकार चतुर दासी जनोंके  
द्वारा किये हुए शीतलोपचारके क्रमसे वह सुलोचना शीघ्र ही प्रबोधको प्राप्त हुई थी-मूर्च्छा-  
रहित हो गयी थी ॥४॥ कपूर और चन्दन मिले हुए जलसे तथा मन्द-मन्द वायुसे कुछ लजिजत  
हुआ और दिशाओंकी ओर देखता हुआ वह जयकुमार भी मूर्च्छारहित हुआ ॥५॥ यद्यपि वह  
चतुर जयकुमार सब कुछ समझता था तथापि पूछने लगा कि तुम लोगोंके मूँह सन्ध्याकालके  
कमलोंका अनुकरण क्यों कर रहे हैं ? अर्थात् कान्तिरहित क्यों हो रहे हैं ? ॥६॥ पतिके मूँहसे  
दूसरी स्त्रीका नाम निकल जानेके कारण दुखी हुई सुलोचनाका जयकुमारने अनेक प्रकारके  
अनुनय-विनय आदि उपायोंसे समझाया तथा दूसरे जन्मकी प्रिया प्रभावती समझकर अपने मूँह-  
का आकार छिपा वह उसीके साथ बातचीत करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि सभी कामी पुरुष  
स्त्रियोंके ठगनेमें अत्यन्त चतुर होते हैं ॥७-८॥ उन दोनोंके जन्मान्तर सम्बन्धी अपना समाचार  
स्मरण होनेके बाद ही स्वर्ग पर्यायसे सम्बन्ध रखनेवाला अवधिज्ञान भी प्रकट हो गया ॥९॥ यह  
सब देखकर श्रीमती शिवंकरा तथा और भी जो सुलोचनाकी सीतें थीं वे उस समय ईव्यकि

<sup>१</sup> शोभायै विघ्यस्तकुत्रिमगज । दन्तावलम्बो ल० । <sup>२</sup> विद्याधरदम्पत्ती । <sup>३</sup> श्रीतिम् । <sup>४</sup> प्राप्तः । स्वीकृतो  
। । ५ करोत । ६ सौधाये । ७ चतुर । ८ कपूर । ९ ईपल्लज्जानान् । १० अस्तमयकाल । ११ निषुणः ।  
१२ प्रभावतीति नामान्तरग्रहण, सुलोचनाया अग्रे प्रभावतीति अन्यस्त्रीनामग्रहण । १३ जन्मान्तरप्रियास्मरण-  
जातरोमाङ्गवप्रभूत्याकारप्रावरणम् । १४ सम्भापयन् । 'संभाषणमाभाषणमालापः कुरुकुम्भिका' इति  
वैजयन्ती । १५ प्रसीताः ।-चउचवः ल० । १६ अवधिज्ञानम् । १७ गतवान् । १८ सुलोचनायाः । १९ ऊँचूः ।

स्त्रीषु मायेति या वार्ता सत्यां लामण कुर्वती । पतिमूर्च्छा॑ स्वमूर्च्छायाः॑ प्रत्ययीकृत्य मायया ॥११॥  
पश्य कृत्रिममूर्च्छात्तमावनाष्ट्यक्तसंवृत्तिः ।२ सन्ततान्तःस्थितप्रौढप्रेमप्रेस्तिचेतना ॥१२॥  
कन्यावत्विलोपास्योन्नस्वलनदृष्टिता । पर्ति॒ रसिवरेत्युक्त्वा॑ यामूर्च्छा॑ कुलदृष्टिणी ॥१३॥  
इत्रं शीलवतीन्येतो॑ निस्त्वन्॒ दर्शयत्ययम् । प्रायो॒ रक्तहय॒ दोषोऽपि॒ गुणवत्॒ प्रतिमासते ॥१४॥  
प्रभावतीति॒ संमुद्धा॑ किलवः॑ कोपिनीमिमाम् ।३ प्रसिद्यादयिषुः॑ शोकं॒ तत्प्रीया॑ चिदधाति॒ नः ॥१५॥  
४ एतान्॑ सर्वास्तद्वालापान्॑ जयोऽवधिविलोचन । विदित्वा॑ सस्मितं पश्यन्॑ प्रियायाः॑ स्मरमाननम् ॥१६॥  
कान्ते॑ जन्मभान्तराद्याप्तं विद्वं॑ वृक्षान्तमावयोः । स्यावायें॑ समा॑ तुष्टिकौतुकापहतो॑ कुरु ॥१७॥  
इति॑ प्राचोदयत्॑ साऽपि॑ प्रिया॑ तद्भाववेदिनी । कथो॑ कथयितुं॑ कुरुत्वा॑ प्राक्तेष्ट॑ कलभाषिणी ॥१८॥  
इह॑ जन्मदृष्टि॑ द्वीपे॑ विदेहे॑ प्राचि॑४ पुष्कला॑वती॑ विद्यमध्यमध्या॑ लगसे॑ पुष्टिसंकली॑५ ॥१९॥  
तत्राभवत्॑ प्रजापालः॑ प्रजा॑ राजा॑ प्रपालयन् । फलं॑ धर्मधिकामानो॑ स्वीकृत्य॑ कृत्तिनो॑ वरः ॥२०॥  
कुबेरमित्रस्तस्यासीद्॑ राजथेष्ठी॑६ प्रतिष्ठितः । द्वात्रिंशत्तद्वयाद्या॑ मार्यास्तस्य॑ ममः॑ प्रियाः॑ ॥२१॥  
गुहे॑ तस्य॑ समुद्धुङ्गे॑ नानामवनवेष्टिसे । वसन्॑ रतिवरो॑ नामा॑ धीमान्॑ पारावतोन्नमः ॥२२॥

उद्वेकसे परस्परमें इस प्रकार कहने लगी ॥१०॥ देखो, यह सुलोचना मायाचारसे पतिकी मूर्च्छाको अपनी मूर्च्छाका कारण बनाकर 'स्त्रियोंमें माया रहती है' इस कहावतको कैसा सत्य सिद्ध कर रही है । और इस प्रकार जिसने कृत्रिम मूर्च्छकि द्वारा प्रकट हुई भावनाओंका साफ-साफ संबरण कर लिया है, जिसकी बेतना सदासे हृदयमें बैठे हुए प्रोढ़ प्रेमसे प्रेरित हो रही है जो कन्यावत्वके भंग करनेसे प्राप्त हुए गोत्रस्वलन ( भूलसे दूसरे पतिका नाम लेने ) से हृषित है तथा कुलको दूषण लगानेवाली है ऐसी यह सुलोचना अपने पहलेके पतिको 'हे रतिवर' इस प्रकार कहकर बनावटी मूर्च्छाको प्राप्त हुई है ॥११-१३॥ यह जयकुमार इसे 'यह बड़ी शीलवती है, इस प्रकार कहता हुआ वर्णन करता है सो ठीक ही है क्योंकि रागी पुरुषको प्रायः दोष भी गुणके समान जान पड़ते हैं ॥१४॥ 'हे प्रभावति' ऐसा कहकर मूर्च्छित हो, क्रोध करनेवाली इस सुलोचनाको प्रसन्न करनेकी इच्छा करता हुआ यह धूर्त कुमार उसके प्रेमसे ही हम लोगोंको शोक उत्पन्न कर रहा है ॥१५॥ अवधिज्ञातरूपी नेत्रको धारण करनेवाला जयकुमार उन लोगोंकी इन सब बातोंको जानकर मन्द हँसीके साथ-साथ सुलोचनाके मुसकुराते हुए मुखको देखता हुआ कहने लगा कि 'हे प्रिये ! तू हम दोनोंके पूर्वभवका सब वृत्तान्त कहकर इस सभाको सन्तुष्ट तथा कौतुकके वशीभूत कर !' यह सुनकर पतिके अभिप्रायको जाननेवाली और मधुर भाषण करनेवाली सुलोचनाने भी पूर्वभवको सब कथा कहनी प्रारम्भ की ॥१६-१८॥

इस जन्मद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है जो कि पुष्कलावती देशके मध्यमें स्थित है । उस नगरीका राजा प्रजापाल था जो कि समस्त प्रजाका पालन करता हुआ धर्म, अर्थ तथा कामका फल स्वीकार कर सब पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ था ॥१९-२०॥ उस हुआ धर्म, अर्थ तथा कामका फल स्वीकार कर सब पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ था ॥१९-२०॥ उस राजाका कुबेरमित्र नामक एक प्रसिद्ध राजसेठ था और उसकी हृदयको प्रिय लगनेवाली राजाका आदि बस्तीस स्त्रियाँ थीं ॥२१॥ अनेक भवनोंसे घिरे हुए उस सेठके अत्यन्त कैचे घनवती आदि बस्तीस स्त्रियाँ थीं ॥२१॥ अनेक भवनोंसे घिरे हुए उस सेठके अत्यन्त कैचे महलमें एक रतिवर नामका कबूतर रहता था जो कि अतिशय बुद्धिमान् और सब कबूतरोंमें

१ कारणीकृत्य 'प्रत्ययोऽधीनशपदज्ञानहेतुषु' इत्यमित्रानात् । २ रतिवरेत्युक्तपुरुषे प्रवृद्धलेहेन प्रेरित-  
३ कारणीकृत्य 'प्रत्ययोऽधीनशपदज्ञानहेतुषु' इत्यमित्रानात् । ४ रतिवरेत्युक्तपुरुषे प्रवृद्धलेहेन प्रेरित-  
५ ममसा । ६ अगच्छत् । ७ त्येतां अ०, स०, इ०, प० । ८ निस्तनन् ट० । ९ धूर्तः । १० प्रभावतीनामग्रहणात् कुपिताम् । ११ प्रसादयितुपिच्छुः । १२ एन० ।  
१३ अवादीत् । १४ उपकान्तवती । १५ पूर्वविदेहे । १६ धीमानित्यर्थः ।

कदाचिद् राजगेहागनेन वैइयेशिना हव्यम् । स्नेहेन सस्मितालापैः स्वहस्तन ममुत्ततः ॥ २३॥  
 कदाचित् कामिनीकान्तकशब्दजप्रितशर्करा-समिश्रितान् सुशालीश्वतपुलानभिनक्षयन् ॥ २४॥  
 कदाचिच्छेष्टिनोहिष्टे हेतुद्वान्तपूर्वकम् । अहिंसालक्षणं धर्मं आवश्यन् प्राणिमेहितम् ॥ २५॥  
 कदाचिद् भवनायात्प्रतिपादसोजजम् । रेणुजालं निराकुर्वन् पक्षाभ्यां प्राण्युपगतः ॥ २६॥  
 सैकदाचिद् भूतिः का स्वात् पापापापात्मनामिलि । कुतूहलेन पृष्ठः सन् जनैस्तुपडेन निर्दिशन् ॥ २७॥  
 अधोभागमयोर्ध्वं च मौनीवागमपारम् । क्षयोपशममाहात्म्यात्तिर्थचोऽपि विवेकिनः ॥ २८॥  
 क्रीडजानाप्रकारेण कान्तायद्विलोक्यहर्षः । सर्वशेषेन जिर्व एकत्रसुखान्तरालिङ्गलहर्षः ॥ २९॥  
 असी रतिवरः कान्तस्वमहं सा तत्र प्रिया । रतिवेणा भवावते जन्मुः किं किं न जायते ॥ ३०॥  
 मुतः कुबेरमित्रस्य धनवत्याहव पुण्यवान् । आतः कुबेरकान्तारुद्यः कुबेरो वा परः सुधीः ॥ ३१॥  
 हितीय इव सत्यासीन् प्राणः सोऽनुचरापर्णीः ॥ ३२॥ प्रियसेनाहयो वाल्यादारभ्य कुतसंगतिः ॥ ३२॥  
 आजन्मनः कुभारस्य कामधेनु रनुस्तमा ॥ ३३॥ मनोऽभिलिपितं दुरुषे समस्तसुखाध्यम् ॥ ३३॥  
 क्षेत्रं निष्पादयत्येकं गन्धशालिमनारतम् । इक्षुनमृतदेशीया नन्यतैः स्थूलांस्ततुत्त्वचः ॥ ३४॥  
 स्वयं मनोहरं वीणा दलवर्णीति ॥ निरन्तरम् । सहनानसमये सर्वरोगस्वेदमलापहम् ॥ ३५॥

श्रेष्ठ था ॥ २२॥ कभी तो राजभवनसे आये हुए सेठ कुबेरमित्र बड़े स्नेहसे हँस-हँसकर वार्तालाप करते हुए उसे अपने हाथपर उठा लेते थे, कभी वह स्त्रियोंके सुन्दर करकमलोंद्वारा दिये हुए और शक्तर मिले हुए उत्तम धानके चावलोंको खाता था, कभी सेठके द्वारा हेतु तथा दृष्टान्तपूर्वक कहे हुए प्राणिहितकारी अहिंसा धर्मका चिन्तवन करता था, कभी भवनमें आये हुए मुनिराजके चरणकमलोंकी धूलिको उनके सभीप जाकर अपने पंखोंसे दूर करता था, जब कभी कोई कुतूहलवश उससे पूछता था कि पापी तथा पुण्यात्मा लोगोंकी क्या गति होती है ? तब वह शास्त्रोंके जाननेवाले किसी मौनी महाशयके समान हशारेसे चौंचके द्वारा नीचेका भाग दिखाता हुआ पापी लोगोंकी गति कहता था और उसी चौंचके द्वारा ऊपरका भाग दिखलाता हुआ पुण्यात्मा लोगोंकी गति कहता था सो ठीक ही है क्योंकि क्षयोपशमके माहात्म्यसे तिर्यंच भी विवेकी हो जाते हैं ॥ २३-२८॥ इस प्रकार वह कबूतर अपनी रतिवेणा नामकी कबूतरीके साथ नाना प्रकारकी क्रीड़ा करता हुआ वहाँ सुखसे समय बिताता था ॥ २९॥ सुलोचना कह रही है कि वह रतिवर ही आप मेरे पति हैं और वह रतिवेणा ही मैं आपकी प्रिया हूँ । देखो इस संसाररूपी आवर्तमें भ्रमण करता हुआ यह जीव क्या-क्या नहीं होता है ? ॥ ३०॥ उस कुबेरदत्त सेठके धनवती स्त्रीसे एक कुबेरकान्त नामका पुत्र हुआ था जो कि अतिशय पुण्यवान्, बृद्धिमान् तथा दूसरे कुबेरके समान जान पड़ता था ॥ ३१॥ उस कुबेरकान्तका एक प्रियसेन नामका श्रेष्ठ मित्र था जो कि बाल्य अवस्थासे ही उसके साथ रहता था और उसके दूसरे प्राणोंके समान था ॥ ३२॥ एक अत्यन्त उत्तम कामधेनु कुमार कुबेरकान्तके जन्मसे ही लेकर उसकी इच्छाके अनुकूल सुखके सब साधनोंको पूरा करती थी । वह कामधेनु प्रतिदिन एक लेत तो सुगन्धित धान्यका उत्पन्न करती थी और एक खेत अमृतके समान मोठे, पतले छिलकेवाले बड़े-बड़े ईखोंका उत्पन्न करती थी ॥ ३३-३४॥ इसके सिवाय वही कामधेनु कुमारके सामने निरन्तर मनोहर वीणा बजाती थी, और उसी कामधेनुके प्रतापसे उसके स्नानके

१ हिष्ट-ल० । २ धूलिसमूहम् । ३ अपसारयन् । ४ अभिमुखागतः सन् । ५ पारावतः । ६ अष्टामिकाणां घामिकाणाम् । ७ रतिवेणसंज्ञया निजभावेया पारावत्या । ८ गमयति सम् । ९ थसद इव । १० मित्र । ११ जननकालादारभ्य । १२ न विद्यते उत्तमा यस्याः सकाशात् इत्यनुत्तमा, अनुपमेत्यर्थः । १३ सुधासदुशान् । १४ परं द्वितीयं क्षेत्रम् । १५ भृत्यं व्यतिरिति ।

सुगन्धिसलिलं गङ्गां<sup>१</sup> गम्भीरमधुरं<sup>२</sup> ध्वनन् । अभ्योधरो नभीमारगावासज्जादवसुच्छति ॥३६॥  
 कल्पद्रुमद्रुक्षं वस्त्रभूषणानि प्रयच्छति । अहमार्न ददात्यस्यद् द्रुयं कल्पमहीरहः<sup>३</sup> ॥३७॥  
 गृहमन्यद्वच भोगाङ्गमपोषं देवमिर्मितम् ।<sup>४</sup> शदवविविशतस्य पूर्णं प्राश्रमिकं वयः ॥३८॥  
 तद्वीक्ष्य पितरावेषं<sup>५</sup> किंकामभिलाषुकः<sup>६</sup> । किं वह्नीरिति चित्तेन<sup>७</sup> संदिहानौ समाकुलौ ॥३९॥  
 प्रियसेन<sup>८</sup> समाहूय लग्नप्रदनात्मनोगतम्<sup>९</sup> ।<sup>१०</sup> अवादीश्वरता मैत्री सेव या त्वेकचित्ता ॥४०॥  
 ततः समुद्रदत्ताल्यो धनवत्या<sup>११</sup> सहाभवत् । इवसा<sup>१२</sup> कुबेरमित्रस्य<sup>१३</sup> तज्जामैत्रयोः<sup>१४</sup> सुता ॥४१॥  
 प्रियदसाहूया तद्याहचेतिका<sup>१५</sup> रतिकारिणी । कर्यकास्तां विधायादि द्वात्रिशतसुन्दराकृतीः ॥४२॥  
 श्रेष्ठी कदाचिन्दुयाने यक्षपूजाक्षिधौ सुधीः । सुपरीक्ष्य निमित्तेन<sup>१६</sup> प्रियदसां गुणान्विताम् ॥४३॥  
 अवधायास्य पुत्रस्य<sup>१७</sup> पञ्चतारावलाभिते । दिने महाविभूतैर्णो<sup>१८</sup> कल्याणविधिनाऽप्रहीत ॥४४॥  
 तद्विमित्तपरीक्षायामवलोकितुमावते । सुते गुणवत्ती राज्ञो<sup>१९</sup> यशस्वस्यमिधा परा ॥४५॥  
 माज्जम् भक्ष्यसपूर्णमदत्तवति<sup>२०</sup> माकुल<sup>(१)</sup> स्वाभ्या<sup>२१</sup> लज्जामरानद्रवदने जोतिनिर्विदे<sup>२२</sup> ॥४६॥

समय समीपवर्ती आकाशसे आकर मधुर तथा गम्भीर गर्जना करते हुए मेव सब प्रकारके रोग, पसोना और मलको हरण करनेवाला गंगा नदीका सुगन्धित जल वरसाने थे ॥ ३५-३६ ॥ उस कुमारके लिए एक कल्पद्रुक्ष वस्त्र देता था, एक आभूषण देता था, एक अस देता था और एक पेय पदार्थ देता था ॥ ३७ ॥ इस प्रकार इनके सिवाय देवोंके दिये हुए और भी सब प्रकारके भोगोंका निरन्तर उपभोग करते हुए उस कुमारकी पहली अवस्था पूर्ण हुई थी ॥ ३८ ॥ पहली अवस्थाको पूर्ण हुआ देखकर माता-पिताको चिन्ता हुई कि यह एक कन्या चाहता है अथवा बहुत । उसी चिन्तासे वे कुछ सन्देह कर रहे थे और कुछ व्याकुल भी हो रहे थे । उन्होंने कुबेरकान्तके मित्र प्रियसेनको बुलाकर उसके मनकी बात पूछी और उसको कहनेपर उन्होंने निश्चय कर लिया कि इसके 'एक पत्नीद्रवत है' – यह एक ही कन्या चाहता है, सो ठीक ही है क्योंकि दोनोंका एक चित्त ही जाना ही मित्रता कहलाती है ॥ ३९-४० ॥

तदनन्तर – उसी नगरमें समुद्रदत्त नामका एक सेठ था, जो कि कुबेरमित्रकी स्त्री धनवतीका भाई था और उसे कुबेरमित्रकी बहन कुबेरमित्रा ब्याही गयी थी । इन दोनोंके प्रियदत्ता नामकी एक पुत्री हुई थी और रतिकारिणी उसकी दासी थी । समुद्रदत्त सेठके प्रियदसा आदि बत्तीस कन्याएँ थीं । किसी एक दिन उस बुद्धिमान् सेठने एक बागमें यक्षकी पूजा करते समय सुन्दर आकारवाली उन बत्तीसीं कन्याओंकी निमित्तवश परीक्षा की और उन सबमें प्रियदत्ताको ही गुणयुक्त समझा । किर सूर्य, चन्द्र, गुरु, शुक्र और मंगल इन पाँचों ताराओंके बलसे सहित किसी दूभ दिनमें बड़े वैभवके साथ कल्याण करनेवाली विधिसे उस प्रियदत्ताको अपने पुत्रके लिए स्वीकार किया ॥ ४१-४४ ॥ राजा प्रजापालकी गुणवती यशस्वती नामकी

१ गद्यानंवन्यि । २ गम्भीर मधुर द०, अ०, प०, स०, द०, ल० । ३ कल्पवृक्षस्य । ४ अनुभवतः । ५ जननीजनकी । ६ एतामित्यविपि पाठः । स्त्रियम् । ७ सन्देहं कुर्वन्ती । ८ कुबेरकान्तस्य मित्रम् । ९ कुबेरकान्तस्यानिग्रायम् । १० एकपत्नीद्रवत्प्राणमित्यवधारितवन्ती । ११ कुबेरमित्रस्य भार्यया धनवत्या सहोत्पञ्च इत्यर्थः । १२ भगिनी । १३ कुबेरमित्राहया । १४ समुद्रदत्तकुबेरमित्रयोः । १५ सखी । १६ द्वाविशभाजनेपु विविधभृष्टपायसवृत्तं पूर्णित्वा एकस्मिन् भाजने अनर्घ्यं रत्नं निक्षिप्य यक्षासे संसाध्य द्वात्रिशतकानामेकं कस्ये एकैकं भाजनं दत्तं यस्या हस्ते अनर्घ्यं रत्नं समाप्तं सा मम पुत्रस्य प्रियेति सुपरीक्ष्य । १७ तिथ्यादि-पञ्चवनश्चवरलाभिते । १८ प्रियदसाम् । १९ प्रजापालनृपस्य । २० भक्ष – ल०, ब०, द०, प०, अ०, स० । २१ अददति मति । २२ मातुले अ०, प०, म०, द०, ल०, ट० । निज मामे श्रेष्ठिनि । २३ आत्मस्पाम् । २४ उत्पन्नवैराग्ये ।

अमितानन्दमन्यार्थिकाभ्यामै संयमं परम् । आददाते हम यात्रेव काले तस्मिन् महीपर्वा ॥४७॥  
 लोकपालाय दत्त्वाऽन्मलक्ष्मीं संयममागते । शीलगृष्णगुरोः पाश्वै शिष्टकृतवास्तरे ॥४८॥  
 देव्यः कनकमालाद्याः परे चोपाययुस्तपः । दुर्गमं च वज्रत्यह्याः प्रभुर्यदि पुरस्तरः ॥४९॥  
 लोकपालोऽपि ग्रंग्रासराज्यश्रीर्विच्छ्रुतोद्ययः । कुबेरमित्रसुदृधैव भरित्री प्रत्यपालथत् ॥५०॥  
 मन्त्री च फलानुमत्यालयो बालोऽसत्यवचः प्रियः । सवयस्कोऽसूपस्थाप्तः प्रकृत्या चपलः चलः ॥५१॥  
 तत्त्वमोपै नृपेणामा यदा तदा सुवागतः । शङ्कमानो वचो वक्तुं अंगदयपार्य विचिन्त्य सः ॥५२॥  
 हर्षीकृत्य शयनान्यकां व्यामहासैस्त्वया निश्चि । देवतावसिरोभय राजन् पितृसमं गुरुम् ॥५३॥  
 विनयाद् विच्छ्रुतं राजधेनितं तत्त्वं संमित्यां । विधाय सवं या स्याः कार्यकाले स हृत्यताम् ॥५४॥  
 इति चक्रतत्त्वमित्याख्यत् ॥४४४पि सर्वं तथा करोत् । अर्थार्थिभिरकर्तव्यं न लोके नाम किञ्चन ॥५५॥  
 श्रुत्वा तदूचनं राजा ॥४४५सभीराहृत्य मातुलम् ॥४४६नानुसार्यमनादूतैस्तियनालोक्यै ॥४४७सोऽवर्धात् ॥५६॥  
 पहचाद् विषविपाकिभ्यः ॥४४८प्रागनालोकितोक्तव्यः । श्रेष्ठी तदूचनात् सधाः सोद्देवं ॥४४९स्वगृहं यथो ॥५७॥

दो कन्याएँ भी वह नैमित्तिक परीक्षा देखनेके लिए आयी थीं, जब मामा कुबेरमित्रने भोजनसे भरे हुए पात्र उन्हें नहीं दिये तब अपने आप ही लज्जाके भारसे उनके मुख नीचे हो गये और उसी समय उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया ॥ ४५-४६ ॥ उन्होंने उसी समय अमितमति और अनन्तमति-आर्थिकाके समीप उत्तम संयम धारण कर लिया । इस प्रकार कितना ही समय व्यतीत होनेपर राजा प्रजापालने भी अपनी सब लक्ष्मी लोकपाल नामक पुत्रके लिए देकर शिवकर नामके बनमें शीलगृष्ण नामक मुनिराजके समीप संयम धारण कर लिया । इसी प्रकार कनकमाला आदि रानियोंने भी कठिन तपश्चरण धारण किया था सो ठीक ही है क्योंकि यदि राजा आगे चलता है तो अल्प शक्तिके धारक लोग भी उसी कठिन रास्तेसे चलने लगते हैं ॥ ४७-४९ ॥ इधर जिसे राजयलक्ष्मी प्राप्त हुई है और जिसका वैभव सब जगह प्रसिद्ध हो रहा है ऐसा राजा लोकपाल भी कुबेरमित्रकी सम्मतिके अनुसार ही पृथिवीका पालन करने लगा ॥ ५० ॥ उस राजाका फलानुमति नामका एक मन्त्री था, जो अज्ञानी था, असत्य बोलनेवाला था, राजाकी समान उमरका था, मूर्ख था और स्वभावसे चंचल तथा दुर्जन था ॥ ५१ ॥ वह मन्त्री कुबेरदत्त सेठके सामने राजाके साथ मुँहपर आये हुए यदा-तदा वचन कहनेमें कुछ डरता था इसलिए वह सेठको राजाके पाससे हटाना चाहता था । उसने राजाके शयनगृहके मुख्य पहरेदारको समझा-बुझाकर और कुछ धन देकर अपने वश कर लिया, उसे समझाया कि तू रातके समय देवताके समान तिरोहित होकर राजासे कहना कि हे राजन्, राजसेठ कुबेरमित्र पिताके समान बड़े हैं, सदा अपने पास रखनेमें उनकी विनय नहीं हो पाती इसलिए उन्हें हमेशा अपने पास नहीं रखिए, कार्यके समय ही उन्हें बुलाया जाय इस प्रकार फलानुमतिने शयनगृहके अध्यक्षसे कहा और उसने भी सब काम उसीके कहे अनुसार कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि धन चाहनेवाले लोगोंके द्वारा नहीं करने योग्य कार्य इस संसारमें कुछ भी नहीं है ॥ ५२-५५ ॥ शयनगृहके अधिकारीकी बात सुनकर राजाको भी कुछ भय हुआ और उसने बिना विचारे ही मामा (कुबेरमित्र) को बुलाकर कह दिया कि आप बिना बुलाये न आवें ॥ ५६ ॥ जो बात पहले बिना विचार किये ही कही जाती है उसका फल पीछे विषके

१ समीपे । २ पुरो ल० । ३ प्राप्तवन्तः । ४ समानवयस्कः । ५ नृपश्चान्यः इत्यपि पाठः । द्वितीयो नृपः ।  
 मन्त्रीत्यर्थः । ६ असमर्थः । ७ कुबेरमित्रसंनिधी । ८ यदिक्चित् । ९ स्वदर्शनं कुत्वा । १० प्रियवचनमुवर्ण-  
 रत्नादिदानैः । ११ पूज्यम् । १२ मा स्म लिष्ठ । १३ आदूयताम् । १४ शयनाध्यक्षः । १५ सभयः ।  
 १६ जनादूयमानैः भवाद्भूः । १७ अविचार्य । १८ विषवद् विपाकवत्यः । १९ उद्देगसहितम् ।

राजा कदाचिद्ब्राजीद् घटया ललिताख्यवा । विहाराप॑ वनं सब्र वाष्पामालोऽय विस्मयात् ॥५८॥  
तद्युक्तंचिपासचशालाप्रस्थपरिस्फुरन् । २ पराष्ट्रेवायसानांतपश्चरागमणिप्रमाण् ॥५९॥  
मणि मरवा प्रविश्यान्तनेषु॑ केत्र॒ य॑ लभ्यते॑ । आन्त्या प्रवत्तमानानो कृतः कलेशाद् विना फलम् ॥६०॥  
चिरं निरीह्य निविष्णा॑ः सर्वे॑ ते पुरमागमन् । बुद्धिनीमेसरी यस्य॑ न निर्बन्धः॑ फलस्यसी॑ ॥६१॥  
कदाचिद् भूपतिः श्रेष्ठिसुतवा॑ रक्षित्या । बसुमत्या विभावर्यामात्ममांभाग्यसूचिना ॥६२॥  
क्रमेण॑ कुकुक्कुमाद्रेण ललाटे॑ स्फुटभृक्तिः॑ । कान्ताः कि कि न कुर्वन्ति स्वमागपतिते नरे ॥६३॥  
पद्मनश्चात् परं मत्वा तत्कमाहकं महीपतिः । ग्रातराह्यानमध्यास्य मन्त्र्यादीनित्यमूद्यत् ॥६४॥  
ललाटे॑ यदि॑ केनपि राजा पादेन ताहितः । कर्तव्यं तस्य कि वाच्य॑ ततो॑ मन्त्र्यश्चर्दिदम् ॥६५॥  
पद्मात् ललाटो॑ नाम्येन सूक्ष्यः स यदि॑ ताहितः । पादेन केनचिद् वाच्यः स प्राणाभ्यमिति स्फुटम् ॥६६॥  
तदाकण्यविधूयैन॒॑ हिमतेनाहूय मातुलम् । नृपोऽग्राक्षीत् से॑ चाहेतत् प्रस्तुतं प्रस्तुतार्थवित् ॥६७॥  
तस्य पूजा विधातव्या सर्वालंकारसंपदा । इति तद्वचनात्तद्वा॑ मणिवात्मा॑ न्यवेद्यत् ॥६८॥

समान होता है। राजाके वचन सुनकर सेठ भी दुःख सहित शीघ्र ही अपने घर चला गया ॥५७॥ किसी एक दिन राहा ललितघट ललाटे॑ कुकुमसे लेड्कलद्विहार करते॑ के लिए वनमें गया, उस वनमें एक बाबड़ी थी, उसके तटपर एक सुखा वृक्ष था, उसकी एक शाखा बाबड़ीके निकटसे निकली थी, उस शाखाके अग्रभागपर एक कौवेने कहीसे देदीप्यमाने बहुमूल्य पश्चराग मणि लाकर रख दी। बाबड़ीमें उस मणिको कान्ति पड़ रही थी, राजा तथा उसके सब साधियों-ने उस कान्तिको मणि समझा और यह देखकर सबको आशर्चय हुआ – उस मणिको लेनेके लिए सब बाबड़ीके भोतर घुसे परन्तु उनमें-से वह मणि किसीको भी नहीं मिली सो ठीक ही है क्योंकि आन्तिसे प्रवृत्ति करनेवाले पुरुषोंको कलेशके सिवाय और व्या फल मिल सकता है ॥५८-६०॥ उन सब लोगोंने बाबड़ीमें वह मणि बहुत देर तक देखी परन्तु जब नहीं मिली तब उदास हो अपने नगरको लौट आये सो ठीक ही है क्योंकि जिस प्रयत्नमें बुद्धि अग्रेसर नहीं होती वह प्रयत्न कभी सफल नहीं होता ॥६१॥ किसी समय प्रेमसे भरी हुई बसुमती नामकी सेठकी पुत्रीने रात्रिके समय अपने सीभाग्यको सूचित करनेवाले तथा कुकुमसे गोले अपने पैरसे राजाके ललाट-में स्पष्ट चिह्न बना दिया सो ठीक ही है क्योंकि पुरुषके अपने अधीन होनेपर स्त्रियाँ क्या-क्या नहीं करती हैं? ॥६२-६३॥ राजाने उस पैरके चिह्नको पट्टबन्धसे भी अधिक माना और सबेरा होते ही सभामें बैठकर मन्त्री आदिसे इस प्रकार पूछा कि यदि कोई पैरसे राजाके ललाट-पर ताढ़न करे तो उसका क्या करना चाहिए? यह सुनकर फलगुमति मन्त्रीने कहा कि राजा-का जो ललाट पट्टके सिवाय किसी अन्य वस्तुके द्वारा छुआ भी नहीं जा सकता उसे यदि किसीने पैरसे ताढ़न किया है तो उसे प्राण निकलने तक मारना चाहिए ॥६४-६६॥ यह सुनकर राजाने उस मन्त्रीका तिरस्कार किया तथा मन्द-मन्द हँसीके साथ मामा कुबेरमित्रको बुलाकर उनसे सब हाल पूछा। प्रकृत बातको जाननेवाला कुबेरमित्र कहने लगा कि जिसने आपके शिरपर पैरसे प्रहार किया है उसकी सब प्रकारके आभूषणरूपी सम्पदासे पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार उसके वचनोंसे सन्तुष्ट होकर राजाने बनविहारके समय बाबड़ीमें दिखनेवाले मणिकी

१. अगमत् । प्राप्त्राजीत् ल० । २ पराष्ट्रमिति पश्चरागस्य विशेषणम् । ३ ललितघटाख्यजनेषु । ४ लव्यः ।  
५ मणिः । ६ पुरुषस्य । तस्य ट० । ७ अविच्छिन्नप्रवृत्तिः । ८ न फलप्रदो भवति । ९ निजभार्या ।  
१० पादेन । ११ ताहित इत्यर्थः । १२ भवद्विर्वक्तव्यम् । १३ परित्यज्य । १४ कुबेरमित्रः ।

如上所述，本发明的有益效果在于：本发明的装置结构简单，操作方便，能有效降低生产成本。

मणिन् जलभृष्टेऽस्ति तप्तवत्तरुद्धितः । प्रभाव्युप्यामिति प्राहु तदिच्छुम्प<sup>१</sup> वृशिकः ॥५६॥

तदा कुर्वेति निरस्य प्रक्षामक्षात्मासनः । द्वौ च वै सहितयो जगता प्रक्षामक्षात्मासने ॥४५॥

पद्य भूतैरहं प्रद्यो वक्तिवौद्दस्मीयि सर्वदा । क्षेत्रिन् प्राप्तवृत्त्वादेव विश्वासां विकल्पान् ॥३६॥

तद्वाचाप्यमात्राम् ॥ ततः प्रतिकृष्णिः । अस्मिन्नामेष्टे विश्वासः ॥७५॥

क्रान्तिकारी विद्युति के विवरणों में एक ऐसा विवरण है-

अस्माकम् कान्तिर्वा दृष्टवलता । निवृद्धनि । श्रष्टा ता सत्यमय त्वं धर्मपत्नोत्यभिदुवन् ॥७३॥

४४ विनाश्य राजन वरथमगुरात्मपः । साध समुद्रदत्तायरादाय सुरभूधरे ॥५४॥

तातुमा विश्वलक्षणं भूता लाकान्तका सुरा । कि न साध्यं यथाकालपरिस्थित्या<sup>३</sup> मनीषिभिः ॥५  
अद्वितीये दिव्यामूर्तिरूपान् अस्ति ॥

अन्यथाः प्रियदर्शाद्या वृत्त्या दानं सुनीश्चिने । भवत्या विपुलमत्यालय चारणाथं पर्याचितम् ॥६८॥

सप्राप्य नवधा पुण्यं तपसः संनिधिर्मम । किमहतीत्यवर्षाद् व्यक्तवित्त्वा सुनिषुद्गामम् ॥७३॥

पुत्रलाभार्थी तद्विसं विद्विषाऽवधिलोचनः । ब्राह्मतरकरे धीमान् स्पष्टमष्टगुलिपस्त्रकम् ॥५८॥

कनिदृमहागुणि वामहस्तेऽसौ समदर्शयत् । पुत्रान्कालान्तरे पञ्च सात्त्वं कामात्मजामपि ॥१४५॥

ते<sup>१</sup> कदाचित्प्राप्तालचक्रेशस्य सुरे लम्भु । असितावन्तमध्याख्यं<sup>२</sup> प्रणवे गणभप्यशे ॥८॥

ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ਸਾਡੇ ਬੋਲੇ ਹੋਏ ਕਿ ਜੇ ਕਿ ਕਿ ਕਿ ਕਿ

बात निवेदन का ॥६७-६८॥ वश्योमे श्रेष्ठ कुबेरमित्रने विचारकर कहा कि वह मणि पानीके भीतर नहीं थी किनारेपर खड़े हुए वृक्षपर थी, बावड़ीमें केवल उसकी कान्ति पड़ रही थी ॥६९॥ यह सुनकर उस समय राजा लोकपाल कुबेरमित्रकी बुद्धिमत्ता, अपनी मूर्खता और मन्त्रीकी दुष्टता जानकर पश्चात्ताप करता हुआ इस प्रकार कहने लगा - "देखो इन धृतोंने मुझ मूर्खोंको खूब ही छागा ।" इस प्रकार कहकर वह बुद्धिमत् राजा सेठका आदर-सत्कार कर उसे सदा अपने पास रखने लगा ॥७०-७१॥ उस दिनसे राजाने तन्त्र अर्थात् अपने राष्ट्रकी रक्षा करना और अवाय अर्थात् परराष्ट्रसे अपने सम्बन्धका विचार करना इन दोनोंका बड़ा भारी भार सेठको सौंप दिया और आप निर्द्वन्द्व होकर धर्म तथा काम पुरुपार्थका अनुभव करने लगा ॥७२॥ किसी समय सेठकी स्त्रीने सेठके शिरमें पका बाल देखकर सेठसे कहा । सेठने यह कहते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा की कि तू आज सचमुच धर्मपत्नी हुई है । उस सेठने बड़ी प्रसन्नताके साथ राजाको छोड़कर समुद्रदस्त आदि अन्य सेठोंके साथ-साथ देवगिरि नामक पर्वतपर वरवर्षगुरुके समीप तप शारण किया और दोनों ही तपकर ब्रह्मलोकके अन्तमें लौकान्तिक देव हुए सो ठीक ही है क्योंकि समयके अनुकूल होनेवाली परिस्थितिसे बुद्धिमानोंको क्या-क्या सिद्ध नहीं होता ? ॥७३-७५॥

किसी दूसरे दिन प्रियदत्ता ( समुद्रदत्तकी पुत्री और कुबेरकान्तकी स्त्री ) ने विपुलमति नामके चारण ऋद्धिधारी महामुनिको नवधा भवितपूर्वक दान देकर पुण्य सम्पादन किया और फिर विनय प्रकट कर उन्हीं मुनिराजसे पूछा कि मेरे तपका समय समीप है या नहीं ! ॥७६-७७॥ अवशिष्टान ही है नेत्र जिनके ऐसे बुद्धिमान् मुनिराजने यह जानकर कि इसका चित्त सन्तानको चाह रहा है अपने दाहिने हाथकी पाँच औंगुली और बायें हाथकी छोटी औंगुली दिखायी और उससे सूचित किया कि पाँच पुत्र और एक पुत्री होगी । सथा कालान्तरमें उस प्रियदत्ताने भी पाँच पुत्र और एक पुत्री दिखलायी अर्थात् उत्पन्न की ॥७८-७९॥ किसी समय गुणरूप आभूषणोंको धारण करनेवाली, जगत्पाल चक्रवर्तीकी पुत्री, अमितमति और अनन्तमति नाम-

१ विचार्य । २ -सत्त्वान् अ०, प०, स०, इ०, ल० । ३ स्वराष्ट्रपरराष्ट्रमहाघुरम् । ४ आत्मानं राजा भीच-  
यित्वेष्यते । ५ वरथर्मंगुरोः समीपे । ६ सुरनामिन् कर्त्तिमित्रद् गिरो । ७ कुबेरदत्त-समुददत्तो । ८ -परि-  
चित्त्या इ० । कालानुरूपेण जानेन । ९ कुबेरकान्तप्रिया । १० एकां पुत्रीम् । ११ प्रसिद्धे । १२ गणिन्यौ  
अ०, प०, स०, इ० । गुणिन्यौ ल० ।

प्रजापालतमूजाभ्यां यशस्वत्या सपोभृता । गुणवरया च संप्राप्ते पुरं तत्परमद्विकम् ॥८१॥  
 राजाै दान्तः पुरः श्रेष्ठैै चानयोनिकटे चिरम् । श्रुत्वा सद्वर्मसद्भावं द्वानाथुयोगभावयां ॥८२॥  
 कदाचिच्छेऽपिनो गेहं जड्वाचारण्योर्धुयम् । प्राविशाद् भक्षितो स्वापयतां तां दृष्टीं सुदा ॥८३॥  
 तदृष्टिमात्रविज्ञातप्रान्भवं तत्पदास्तुजम् । कपोतमिथुने पक्षैः परिस्पृश्यामिनम्यै तत् ॥८४॥  
 गलितान्योन्यसंप्राप्ति वस्त्रालोक्य तस्मुर्वै । जातसंसारनिवेंगौ निर्गम्यापगतौ गृहात् ॥८५॥  
 प्रियदस्तेनितद्वचगत्यान्यदाै तु ताम् । रतियेणामपुच्छते माम् प्राप्नुमसर्वाति किम् ॥८६॥  
 सा तुष्णेनालिखद्वाम् रतिवेगेति व्रीक्ष्य तस्मैै । ममैषा गूर्वमायेति कथोतः प्रीतिर्मायिवान् ॥८७॥  
 तथा रतिवरः पृष्ठः स्वनामैै प्रियदस्या । सुकान्तोऽस्यहमित्येषोऽप्यक्षराण्यलिङ्गद् सुविः ॥८८॥  
 तस्मिरीक्ष्य मर्मैवाच्यं पतिरित्यमिलापुका । रतियेणाऽप्यगासेन संगमंैै विघ्ननुग्रहान् ॥८९॥  
 तत्समावर्तिनामेतत् श्रुत्वा प्रीतिरभूदलम् । तुनः शुश्रूषवश्वासन् कथाशेषैै सकौतुकाः ॥९०॥  
 अन्यस्त्राकर्णितं दद्यमाचान्यां यद्वि चेत्याया । ज्ञायते तद्व वक्तव्यमित्युक्तव्यति कौस्वैै ॥९१॥  
 निजवाग्मुसाम्भोगिः सिद्धिर्भीति तो समां शुभाम् । सुखोचनाऽपवीत् सम्यन्तायतं श्रूयतामिति ॥९२॥

की गणिनी ( आर्यिकाओंकी स्वामिनी ), तप धारण करनेवाली, प्रजापालकी पुत्री यशस्वती और गुणवत्तीके साथ-साथ उत्कृष्ट विभूतिसे सुशोभित उस पुण्डरीकिणी नगरीमें पधारी ॥८०—८१॥ सब अन्तःपुरके साथ-साथ राजा लोकपाल और सेठ कुबेरकान्त भी उन आर्यिकाओंके समीप गये और चिरकाल तक समीचीनधर्मका अस्तित्व सुनकर दान देना आदि उद्योग-को प्राप्त हुए ॥८२॥ किसी एक दिन सेठ कुबेरकान्तके घर दो जंघाचारण मुनि पधारे । दोनों ही दम्पत्तियोंने बड़ी भक्ति और आनन्दके साथ उनका पढ़गाहन किया ॥८३॥ उन मुनियोंके दर्शन मात्रसे ही जिसने अपने पूर्वभवके सब समाचार जान लिये हैं ऐसे कबूलर कबूतरी ( रति-वर-रतिषेणा ) के जोड़ेने अपने पंखोंसे मुनिराजके चरणकमलोंका स्पर्श कर उन्हें नमस्कार किया और परस्परकी प्रीति छोड़ दी । यह देखकर उन मुनियोंको भी संसारसे वैराग्य हो गया और दोनों ही निराहार सेठके घरसे निकलकर बाहर चले गये ॥८४—८५॥ इशारोंको समझनेवाली प्रियदत्ताने यह सब जानकर किसी समय रतिषेणा कबूतरीसे पूछा कि पूर्वजन्म-में तुम्हारा क्या नाम था ? ॥८६॥ उसने भी चोंचसे 'रतिवेगा' यह नाम लिख दिया । उसे देखकर यह पूर्वजन्मकी मेरी स्त्री है यह जानकर कबूतर बहुत प्रसन्न हुआ ॥८७॥ इसी प्रकार प्रियदत्ताने रतिवर कबूतरसे भी उसके पूर्वजन्मका नाम पूछा तब उसने भी मैं पूर्व जन्ममें सुकान्त नामका था ऐसे अक्षर जमीनपर लिख दिये ॥८८॥ उन्हें देखकर और यह मेरा ही पति है यह जानकर उसीके साथ रहनेकी अभिलाषा करती हुई रतिषेणा भी दंबके अनुग्रहसे उसीके साथ समागमको प्राप्त हुई—दोनों साथ-साथ रहने लगे ॥८९॥ यह सब सुनकर सभामें दैठे हुए सभी लोगोंको बहुत भारी प्रसन्नता हुई और कथाका शेष भाग सुननेकी इच्छा करते हुए सभी लोग बड़ी उत्कण्ठासे बैठे रहे ॥९०॥ 'इसके सिवाय हम दोनोंने और भी जो कुछ देखा या सुना है उसे यदि जानती हो तो कहो' इस प्रकार जयकुमारके कहनेपर अपने बचनामूलरूपी जलसे उस शुभ सभाको सीधती हुई सुलोचना कहने लगी—'हाँ, अच्छी तरह

१ पुष्टरोकिणीपुरम् । २ लोकगालः । ३ मुवेरकान्तः । ४ अमितानन्तमत्योः । ५ जड्याचारणद्वयाषलोकन-  
मात्र । ६ नत्वा । ७ विग्लितपरस्परात्यन्तस्तेहदित्यर्थः । ८ कपोतमिथुनम् । ९ गलितमोहमिति शास्त्रा ।  
गम्यात्य—८०, ८०, ४०, ५० । १० लिखितनामाक्षरम् । ११ निजशूर्वज्ञनाम् । १२ सुकान्तालपोऽह—८० ।  
१३ विधेरानुकूल्यात् । १४ जयकुमारसभावतिनाम् । सप्तम्यादीनाम् । १५ जातनिर्वेदात् भिक्षामगृहीत्वा  
निर्गत्य गतचारणादिशेषकथाम् । १६ जयकुमारे ।

तदा मुनेर्गुहाद् भिक्षां त्वक्त्वा गमनकारणम् । अजात्वा भूपतेः<sup>३</sup> प्रदनादा हामितमतिः<sup>४</sup> शुतम्<sup>५</sup> ॥९३॥  
 विषयेऽस्मिन्<sup>६</sup> खगश्चाभृत्यस्यासनं<sup>७</sup> वनं भट्टत । अस्मि धान्यकमालाल्यं तदभ्यग्नेः<sup>८</sup> पुरं परम् ॥९४॥  
 शोभानगरमस्येतः<sup>९</sup> प्रजापालमहीपतिः । देवधीर्णस्तस्य देव्यासीत् सुखदा श्रीसिंहपरा ॥९५॥  
 शक्तिष्ठेणोऽस्य<sup>१०</sup> नामन्तस्तस्यामूलं प्रतिदायिनी । अटवीश्रीस्तयोः<sup>११</sup> सत्त्वदेवः सूनुरिम्<sup>१२</sup> समम् ॥९६॥  
 सर्वेऽयासस्त्रभृत्यत्वाद् अहमस्मा<sup>१३</sup> दसमाश्रयात् । श्रुत्वा धर्मं नुषेणामा समापन्मत्यामासयोः ॥९७॥  
 त्यागं पर्वेष्वासं च शक्तिष्ठेणोऽपि भक्तिमान् । मुनिवेलात्यये<sup>१४</sup> शुक्लिम्<sup>१५</sup> ग्रहीत् लगृहित्वलम् ॥९८॥  
 १६ तत्पत्नी<sup>१६</sup> शुक्लपक्षादिदिवेऽष्टम्यामयापरे । पत्ने<sup>१७</sup> वज्रसमास्त्वागमाहारस्य समग्रीत् ॥९९॥  
 अनुप्रबृद्धकल्पवाणनामधेयमुपांषितम्<sup>१८</sup> । सत्यदेवदेव साधूना<sup>१९</sup> स्तवनं प्रत्यपद्यते<sup>२०</sup> ॥१००॥  
 इत्यभृत्यव्याप्ति अटवीश्रीनवतभूषणाः । स मृणालवती नेतुं कदाचिददर्शीश्रियम् ॥१०१॥  
 पित्रोऽपि<sup>२१</sup> पुरी<sup>२२</sup> प्रवृत्तः सन् शक्तिष्ठेणः सम्भवकः । वने धान्यकमालाल्ये प्राप्य सर्वसरोवरम् ॥१०२॥  
 निविष्ट्यानिर्द चान्यत् प्रकृतं तत्र कथ्यते । पहिमृणालवत्याल्यनगर्या धरणीपतिः<sup>२३</sup> ॥१०३॥

जानती हैं, सुनिए ॥९५-९६॥ उस समय वे मुनि आहार छोड़कर सेठके घरसे चले गये थे । जब राजाको उनके इस तरह चले जानेका कारण मालूम नहीं हुआ तब इसने अमितमति गणिती ( आपिका ) से पूछा । अमितगतिने भी जैसा सुता था वैसा वह कहने लगी ॥९३॥

इसी पुष्कलावती देशमें विजयाधीं पर्वतके निकट एक 'धान्यकमाल' नामका बड़ा भारी वन है और इसके ऊपरी भूमि पर्वतके पास द्वीपशेषान्तर्गत अलगीला प्रकाशक्षेत्र नगर है । उस नगरका स्वामी राजा प्रजापाल था और उसकी स्त्रीका नाम था देवथी । वह देवधी दूसरी लक्ष्मीके समान सुख देनेवाली थी ॥९४-९५॥ राजा प्रजापालके एक शक्तिष्ठेण नामका सामन्त था, उसकी प्रीति उत्पन्न करनेवाली अटवीश्री नामकी स्त्री थी । उन दोनोंके सत्यदेव नामका पुत्र था । किसी समय निकटभृत्य होनेके कारण इन सभीने मेरे चरणोंके आश्रयसे धर्मका उपदेश सुना । राजा भी इनके साथ था । उपदेश सुनकर सभीने मद्य-मांसका त्याग किया और पर्वतके दिन उपवास करनेका नियम लिया । भक्ति करनेवाले शक्तिष्ठेणने भी गृहस्थके व्रत धारण किये और साथमें यह नियम लिया कि मैं मुनियोंके भोजन करनेका समय टालकर भोजन करूँगा ॥९६-९८॥ शक्तिष्ठेणकी स्त्री अटवीश्रीने पौत्र वर्षतक शुक्ल पक्षका प्रथम दिन और कृष्णपक्षकी अष्टमीको आहार त्याग करनेका नियम किया, अनुप्रबृद्ध कल्याण नामका उपवास व्रत ग्रहण किया तथा सत्यदेवने भी साधुओंके स्तवन करनेका नियम लिया ॥९९-१००॥ इस प्रकार ये सब सम्यग्दर्शनके बिना ही व्रतलघु आभूषणको धारण करनेवाले हो गये । किसी एक दिन सेनापति शक्तिष्ठेण अपनी सेनाके साथ अटवीश्रीको लेनेके लिए उसके माता-पिताकी नगरी मृणालवतीको गया था । वहांसे लौटते समय वह धान्यकमाल नामके बनमें सर्वसरोवरके समीप ठहरा । उसी समय एक दूसरी घटना हुई जो इस प्रकार कही जाती है ।

१ लोकपालस्य । २ वक्ति । ३ अमितमत्यार्थिका । ४ स्वयं चारणपूनिनिकटे आकर्णितम् । ५ पुष्कलावत्याम् ।  
 ६ विजयार्द्धगिरिसमीपम् । ७ समीपे । ८ नगरस्य । ९ नायकः । १० सत्यदेवनामा स्त्रीकृतपुत्रः संजातः ।  
 ११ इसे सर्वे देवधीदेव्यादयः समं धर्मं श्रुत्वेति संबन्धः । १२ अमितगतिनामास्मत्याल्यसमाधयात् । १३ मुनि-  
 चर्यकाले अतिक्रान्ते सति । १४ आहारं स्वीकरोमीति व्रतम् । १५ शक्तिष्ठेणभार्या । १६ शुक्लपक्षप्रति-  
 पद्धिने । अपरे पक्षे अष्टम्यां दिने च । १७ पञ्चवत्पर्णि । १८ उपवासद्वतं समग्रहीत् । १९ परमेष्ठिनां स्तोत्रम् ।  
 २० गृहीत्वान् । २१ जननोजनक्योः । २२ मृणालवतीनामनगरीम् । २३ भूपतिः ।

युक्तनस्तद्वै देवेशास्तनूजो रसिवमणः । मध्यदेवोऽमवत्तस्य विमुण्यः कनकशिखाम् ॥१०४॥  
 नश्रवै दुहिता॑ जाता श्रीदत्तस्यातिवल्लभा । त्रिमलादिशिखाख्याता रतिवेगाख्यया सती ॥१०५॥  
 गुरुकान्तोऽश्रीकृदेवेष्टिनदत्तासुसीऽजनि । मध्यदेवस्य दुष्टुत्या॑ दुर्मुखाख्योऽत्यजायत ॥१०६॥  
 म एव द्रव्यमावउर्ये रतिवेगां जिभश्चकः॑ । वाणिजयाथै गतै॒ स्तस्माकायात॑ इति सा॑ तदा ॥१०७॥  
 मापादिगृह्यते प्राजायि॑ दुरुपाप्नोय दुरुप्तिके । ऐशान्तरादूरमात्य तद्वार्ताश्रवणाद् भृशम् ॥१०८॥  
 दुरुप्ते कुपिते भीत्वा तदानीं तद्वृत्तरम्॑ । अजित्या॑ शक्तिपेणस्य शरणं समुपागतम् ॥१०९॥  
 तद्वदुरुप्तोऽपि॑ निर्वन्धादनुगत्य॑ वधृत्वरम् । शक्तिपेणभवाद् वाहौरो निवृत्ते॑ ततः॑ ॥११०॥  
 तत्रैकस्मै॑ विषयस्तारणदृम्भाय समापुषे॒॑ । शक्तिपेणो ददावर्णं पाठेयं॒॑ परजन्मनः ॥१११॥  
 तत्रैवागत्य साथेषां॒॑ निविष्टो वहुभिः सह । विभुमेस्कदत्ताख्यः श्रेष्ठा आथेद्य धारिणी ॥११२॥  
 मन्त्रिणस्तस्य॒॑ भूलाथैः शकुनिः सकुहस्पतिः । धनवन्तरिष्वच चरवारः सर्वे शास्त्रविशारदाः ॥११३॥  
 एविः परिवृतः श्रेष्ठा हीनाङ्कै॒॑ कंचिदागतम् । समीक्षयैनं कुतो हेतोजाती॒यमिति॒॑ तावृ जगौ ॥११४॥

मृणालवत्ती नगरीका राजा घरणीपति था । उसी नगरीमें सुकेतु नामका एक सेठ रहता था जो कि रतिवर्भीका पुत्र था । सुकेतुकी स्त्रीका नाम कनकश्री था और उन दोनोंके एक भवदेव नामका पुण्यहीन पुत्र था ॥१०१-१०४॥ उसी नगरमें एक श्रीदल सेठ थे । उनकी स्त्रीका नाम था विमलश्री और उनके दोनोंके अत्यन्त प्यारी रतिवेगा नामकी सती पुत्री थी ॥१०५॥ उसी नगरके अशोकदेव सेठ और जिनदत्ता नामकी उनकी स्त्रीसे पैदा हुआ सुकान्त नामका एक पुत्र था । जिसका वर्णन ऊपर कर आये हैं ऐसा भवदेव बड़ा दुराचारी था और उस दुराचारीपनके कारण ही उसका दूसरा नाम दुर्मुख भी हो गया था ॥१०६॥ वह भवदेव घन उपाजन कर रतिवेगाके साथ विवाह करना चाहता था इसलिए व्यापारके निमित्त वह बाहर गया था, परन्तु जब वह विवाहके अवसर तक नहीं आया तब माता-पिताने वह कन्या अत्यन्त तेजस्वी सुकान्तके लिए दे दी । जब दुर्मुख (भवदेव) देशान्तरसे लौटकर आया और रतिवेगाके विवाहकी बात सुनी तब वह बहुत ही कुपित हुआ । उसके डरसे बधू और वर दोनों ही भाग-कर शक्तिषेणकी शरणमें पहुँचे ॥१०७-१०९॥ दुर्मुखने भी हठसे बधू और वरका पीछा किया परन्तु शक्तिषेणके डरसे अपना वैर अपने ही मनमें रखकर वहाँसे लौट गया ॥११०॥ शक्तिषेणने वहाँ पधारे हुए दो चारण मूर्नियोंके लिए अपने आगामी जन्मके कलेबाके समान आहार दान दिया था ॥१११॥ उसी सरोवरके समीप घनी और सब संघके स्वामी मेरुकदत्त नामका सेठ बहुत लोगोंके साथ आकर ठहरा हुआ था । उसकी स्त्रीका नाम धारिणी था । उस सेठके चार मन्त्री थे—१ भूतार्थ, २ शकुनि, ३ बृहस्पति और ४ धन्वन्तरि । ये चारों ही मन्त्री अपने-अपने शास्त्रोंमें पण्डित थे ॥११२-११३॥ एक दिन सेठ इन सबसे घिरा हुआ

१ मृणालदत्ताम् । २ वणिगमुखस्य । ३ कनकश्चिदः । ४ श्रीदत्तविमलश्चिदयोः । ५ पुत्री । ६ अशौकदेवस्य  
प्रियतमाया जिनदत्तायाः सुतः । ७ दुर्मुख इति नामान्तरमपि । ८ दुर्मुखः स्वमातुलं श्रीदत्तं रतिवेगां याचित-  
दान् । मातुलो भणितवान् स्वं व्यवसायहीनो न ददामीति । दुर्मुखोऽबोचत्—यावदहूं डीपान्तरेषु द्रव्यमादज्ञाग-  
च्छामि तावद् रतिवेगा करुथापि न दातव्या इति द्रादशवर्षाणि कालावधि दत्तवा । ८ धनमर्जयित्वा । ९ गृहीतु-  
मिष्ठुः । १० कृतद्वादशवर्षादि सकाशात् । ११ नागतः । १२ रतिवेगा । १३ दीयते स्म । १४ सुकान्तरति-  
वेगाद्वयम् । १५ गत्वा । १६ समुपाशयत् । १७ अविक्षेपेन । १८ पृष्ठतो गत्वा । १९ व्यापुटितवान् ।  
२० सर्पसरोवरस्थितशक्तिषेणशिखिरात् । २१ सर्पसरोवरे । २२ गगनवारण । २३ आमताय । समीयुषे र०,  
इ०, अ०, स०, प०, स० । २४ संबलम् । २५ वणिकसंघाधिषः । २६ मेहकदत्तस्य । २७ विकलावयवम् ।  
२८ इति पृष्ठदान् तं व्येष्टिनम् ।

शकुनिः शकुनाद् दुष्टाद् प्रहार्यापाद् बृहस्पतिः । घनवास्तरिश्रदीपेभ्यो जन्मनीति समादिशाद् ॥११५॥  
 भूतार्थस्वस्तु तत्सर्वं कर्म हिंसायुपार्जितम् । प्रधानकारणं सेने<sup>१</sup> हीनाहृ<sup>२</sup> इति सूक्ष्मान्<sup>३</sup> ॥११६॥  
 शक्षिषेण<sup>४</sup> महीपालप्रतिपात्तुजः पिता<sup>५</sup> । सत्यदेवस्य द्वाऽस्मिन्स्तैर्निवृत्यम्य<sup>६</sup> दृच्छया ॥११७॥  
 तदा कृत्वा महद्दुष्टं सभ्यैराक्षण्यतामिदम् । अयुतं परोऽतिपाकेन माजनात्तण्डुलानपि ॥११८॥  
 मक्ष्यमाणान् कपोतायैः पश्येण्टस्मृतीमयं स्थितः । क्षोधान्मातुः<sup>७</sup> कनीयस्या<sup>८</sup> मरसनादागतोऽसहः<sup>९</sup> ॥  
 अधस्ताद् वक्त्रविवरं द्वाणस्येति तदृप्ययम् । क्षमते नेति सर्वेषां<sup>१०</sup> तदकर्मण्यतो<sup>११</sup> ब्रुवन् ॥१२०॥  
 गन्तुं सहाय्यना<sup>१२</sup> लह्यानमिलाषाद्<sup>१३</sup> विषाणवान् । परस्मिन्नपि भूयास<sup>१४</sup> भवे ते स्नेहगोचरः<sup>१५</sup> ॥  
 मृति कृत्वा निदानं स<sup>१६</sup> द्रव्यसंकल्पान्तिरुद्धृतः । प्रपेते<sup>१७</sup> दोक्ष्याकृष्ण<sup>१८</sup> लक्ष्मान्तेष्ठान्तिरुद्धृतः ॥१२३॥  
 कदाचिद्दृश्युक्तपक्षस्य किनादी भार्यथा सह । कृतोपदातया शक्षिषेणो मन्त्रिपुरस्तरम्<sup>१९</sup> ॥१२४॥  
 मृतिभ्यो इत्तदानेन पञ्चाश्चर्यमवाप्तवान् । द्वा<sup>२०</sup> तरङ्गेष्ठिधारिष्ठाः<sup>२१</sup> वावयोरन्यजन्मनि ॥१२४॥  
 २२ एतावपत्ते<sup>२२</sup> भूयासतो<sup>२३</sup> निदानं कुरुतामिति । मन्त्रिणस्तस्य<sup>२४</sup> चत्वारोऽप्यस्तसर्वपरिहाः ॥१२५॥

वेठा था कि इतनेमें वहाँ एक हीन अंगवाला पुरुष आया । उसे देखकर सेठने सब मन्त्रियोंसे कहा कि वह ऐसा किस कारणसे हुआ है ? ॥११४॥ इसके उत्तरमें शकुनि मन्त्रीने कहा कि जन्मके समय वे शकुन होनेसे वह ऐसा हुआ है ? बृहस्पतिने कहा कि जन्मके समय दुष्ट ग्रहोंके पड़नेमें यह हीनांग हुआ है और धन्वन्तरिने कहा कि जन्मके समय बात पित्त कफ इन तीन दोषोंके कारण यह विकलांग हो गया है । यह सुनकर भूतार्थ नामक मन्त्रीने कहा कि आप यह गद्द रहने दोजिए, इस जीवने पूर्वभवमें हिंसा आदिके द्वारा जो कर्म उपार्जन किये थे वे ही हसके हीनांग होनेमें प्रधान कारण हैं ॥११५-११६॥ इतनेमें ही शक्तिपेण सेनापतिने जिसे अपना पुत्र स्वीकार किया है ऐसे उस सत्यदेवका पिता अपनी इच्छानुसार उसे खोजता हुआ आ गहूंचा । उस हीनांग पुत्रको देखकर उसे बहुत ही दुख हुआ और वह कहने लगा कि हे सभासदो, मुनो, एक दिन धरमें चावल पक रहे थे सो पात्रीके उफानके कारण कुछ चावल बरतनसे नीचे गिर गये और उन नीचे गिरे हुए चावलोंको कबूतर आदि पक्षी चुम्हने लगे परन्तु यह सब देखता हुआ चुपचाप खड़ा रहा--इसने उन्हें भगाया नहीं । तब इसकी माँकी छोटी बहनने क्रोधसे इसे डौटा, उस डौटको न सह सकनेके कारण ही यह यहाँ चला आया है । यह इतना अमहनशील है कि 'तेरी नाकके नीचे मुँहका छेइ है' इस बातको भी नहीं सह सकता है । इस तरह सब सभासदोंसे उसके पिताने उसकी अकर्मण्यताका वर्णन किया । जैकि सत्यदेव अपने पिताके साथ बापस नहीं जाना चाहता था इसलिए उसने दुःखी होकर निदान किया कि 'अगले भवमें भी मैं तेरे स्नेहका पात्र होऊँ' इस प्रकार निदान कर वह द्रव्यर्लिंगी मृति हो गया और सत्यदेव-के प्रेमसे मोहित होकर मरा जिससे लोकपाल हुआ ॥११७-१२८॥ किसी एक समय शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके दिन शक्तिपेणने उपवास करनेवाली अपनी स्त्री अटबोथीके साथ-साथ भक्ति-पूर्वक मृतियोंको आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये, उसे देखकर सेठ मेरुकदत्त और उनकी स्त्री धारिणीने निदान किया कि 'ये दोनों अगले जन्ममें हमारी ही सन्तान हों' । सेठ मेरु-

१ कर्मकरणेन । २ विकलाहृ जात इति । ३ सुष्टु प्रोक्षवान् । ४ शक्तिपेणनामसामन्तेनायं मम पूत्र इति  
 स्त्रीहृतमनुस्य । ५ सत्यकनामजनकः । ६ सर्वसरोवरे । ७ गवेषयशितार्थः । ८ सभाजनः । ९ सत्यदेवजनन्याः ।  
 १० भगिन्याः । ११ अगह्मानः । १२ सभाजनानाम् । १३ तत् सत्यदेवस्य कर्मण्यस्मताम् । १४ सत्यकेन  
 स्वेन । १५ सत्यदेवस्य । १६ अनभिमलान् । १७ भवेयम् । १८ स्नेहगोवरम् इ०, अ०, स० । १९ सत्यकः ।  
 २० लोकपालनाय देवत्वम् । २१ पुरस्तरः ल० । २२ दात्रांजाताहचर्यम् । २३ मेरुकादत्तद्वायश्चिद्विषयी ।  
 २४ शक्तिपेणाविक्रियी । २५ एत्रो । २६ अकुरुताम् । २७ मेरुददस्तस्य ।

तपो विद्याय कालान्ते समाप्तं लोकपालताम् । वधूवरं<sup>३</sup> च हातानुमोदपुण्यमदान्तवत् ॥१२६॥  
 "तद्राक्षर्ण्य महीशस्य"<sup>४</sup> देवी<sup>५</sup> वसुमती तदा । स्वजन्मान्तरे<sup>६</sup> संबोधपूर्वकानन्दरवीथिता ॥१२७॥  
 अहं पूर्वोक्तं<sup>७</sup> देवध्रीस्तत्प्रसादादिमा<sup>८</sup> श्रियम् । प्राप्ता<sup>९</sup> तदातनो राजा<sup>१०</sup> वद्य क्राद्य प्रत्यत्तेन ॥१२८॥  
 हृति तस्याः परिप्रदेन स प्रजापालभूयतिः । <sup>११</sup>लोकपालोऽथमित्युक्ते ग्रियदत्ता स्वपूर्वजम् ॥१२९॥  
 जन्मावत्सुदृश्य वन्दिन्दा साऽउर्ध्वाश्रीरियं व्यहम् । शक्तिषेणो मम प्रेयानसी क्याद्य यत्तर्तमे ॥१३०॥  
 हृति<sup>१२</sup> पूर्णाऽनश्चक्षितषेणस्ते<sup>१३</sup> इय<sup>१४</sup> मनोरमः<sup>१५</sup> । <sup>१६</sup> कुबेरदयितः सत्यदेवोऽभुत्तनुजस्तव ॥१३१॥  
 देवभूर्ण<sup>१७</sup> गताः श्रेदिङ्गचिवास्त्रव्यते<sup>१८</sup> भूर्षम् । <sup>१९</sup>आरथ्य जन्मनः स्नेहात् परिचयां प्रकुर्वते ॥१३२॥  
 कुबेरदयितस्यापि षिता प्राप्त्यः<sup>२०</sup> स सत्यकः । पाता<sup>२१</sup> गत्यस्तरस्थाइव पुण्यात् निष्ठान्ति देहिनः ॥१३३॥  
 भवदेवेन<sup>२२</sup> रिद्यधं द्विजावेती<sup>२३</sup> वधूवरम् । सार्थेणो<sup>२४</sup> आरिणी चेह<sup>२५</sup> पशुमन<sup>२६</sup> गिराविर्मा<sup>२७</sup> ॥१३४॥

दत्तके चारों मन्त्रियोंने सब परिग्रहका परित्याग कर तप धारण किया और आयुके अन्तर्में लोकपालकी पर्याय प्राप्त की । इसी प्रकार सुकान्त और रतिवेगा नामके वधू-वरते भी दानकी अनुमोदना करनेसे प्राप्त हुआ बहुत भारी पुण्य प्राप्त किया ॥ १२३-१२६ ॥ यह सब मुनकर राजा लोकपालकी रानी वसुमतीको अपने पूर्वजन्मकी सब बातें याद आ गयी जिससे वह मूर्च्छित हो गयी । लोकपालकी स्त्री अटवीश्री तो मैं ही हूँ, कहिए भेरा पति शक्तिषेण आज कहाँ है ? इस प्रकार वधू वसुमती-का प्रश्न समाप्त होनेपर अमितमति आर्यिकाने कहा कि यह लोकपाल ही पूर्वजन्मका प्रजापाल राजा है । इतना कहते ही प्रियदत्ताको भी अपने पूर्वभवकी याद आ गयी । उसने आर्यिकाको बन्दना कर कहा कि शक्तिषेणकी स्त्री अटवीश्री तो मैं ही हूँ, कहिए भेरा पति शक्तिषेण आज कहाँ है ? इस प्रकार पूछा जानेपर अमितमति आर्यिकाने कहा कि यह तेरा पति कुबेरकान्त ही उस जन्मका शक्तिषेण है और यह कुबेरदयित ही उस जन्मका सत्यदेव है जो कि तुम्हारा पुत्र हुआ है । सेठ मेरुकदत्तके जो भूतार्थ आदि चार मन्त्री ये वे देवपर्यायिकों प्राप्त हो स्नेहके कारण जन्मसे ही लेकर तुम्हारे पतिकी भारी सेवा कर रहे हैं – कामधेनु और कल्पवृक्ष बनकर सेवा कर रहे हैं ॥ १२९-१३२ ॥ कुबेरदयितका पूर्व जन्मका पिता सत्यक भी देव होकर उसकी रक्षा करता है मोटीक ही है वयोंकि पुण्यके प्रभावसे दूसरी मतिमें रहनेवाले जीव भी स्नेह करने लग जाते हैं ॥ १३३ ॥ भवदेवने पूर्वोक्त वधू-वर ( रतिवेगा और सुकान्त ) को जला दिया था इसलिए वे दोनों ही मरकर ये कबूतर-कबूतरी हुए हैं । सेठ मेरुकदत्त और उनकी

१ लोकपालसुरत्वम् । २ सुकान्तरतिवेगेति निष्ठुनम् । ३ प्राप्तम् । ४ पुण्यम् । प्राप्तमित्यादिवचनम् । ५ प्रजापालपूर्वलोकपालस्य । ६ भार्या कुबेरमित्यस्य, पीती वसुमती । ७ निजभवात्तरपरिक्षानजात । ८ शोभानगर-पतिप्रजापालमतीपतेभर्ती देवश्चोः । ९ हे अमितमत्यार्यिके, भवत्प्रसादात् । १० प्राप्तवत्यहम् । ११ शोभानगर-प्रतिपालप्रजापाल इत्यर्थः । १२ तद भर्ती लोकपालः । १३ आर्यिका । १४ तव प्रियदत्तायाः । १५ पुरोकर्ता । १६ कुबेरकान्तः । १७ शक्तिषेणस्य स्त्रीकुतपुत्रः । कुबेरदयित इति तद पुत्रोऽभूदिति सम्बन्धः । १८ देवत्वम् । १९ तव भर्तुः कुबेरकान्तस्य । २० जननकालादारम्य कामधेनुरुक्तमेति श्लोकोक्तसेवा कुर्वते । २१ पूर्वभव-मन्त्रिथिता सत्यकः । २२ रक्षकोभूत् । २३ रतिवर्मकनकश्रियोः सूनुना भवदेवेन । क्रोधात् शक्तिषेण-कालान्तरेण निर्देशं वधूवरे सुकान्तरतिवेगेति द्वयम् । २४ कपीतपश्चिणावभूतामिति संबन्धः । २५ मेरुकदत्तः । २६ अम्बा पुर्णम् । पुण्डरीकिण्पाम् । २७ तव भर्तुः कुबेरकान्तस्य । २८ कुबेरमित्रधनवत्यो ।

इत्युक्त्वा सेदमयाहै चगाचलसमीपगे । २ वसन्ती चारणावद्वौ मुनी मलयकाङ्गने ॥ १४५॥  
 ३ पूर्वं बननिवेशं ती भिक्षार्थं समुपागतौ । तब पुश्टमुखतिसुपविश्य गतौ ततः ॥ १४६॥  
 अन्धेयुर्युसुधारादितेन्द्रभूतौ कपोतकौ । हस्त्वा सकहणी भिक्षामनादाय वर्णं गतौ ॥ १४७॥  
 गुर्विगुरुत्वं शुवयोरुपयातौ तथोरिदम् । उपवेशात् समाकर्ण्य सर्वसुकर्तं यथाभृतम् ॥ १४८॥  
 इति ते॑ अमितमत्युक्तकथावगमतन्पतः ॥१० । स्वरूपं संसूनेः यम्यक् मुहुर्मुहुरभावयन् ॥ १४९॥  
 गृहं प्रयानि कालेऽमी प्रियवत्ता प्रसंगतः । यशस्कृतीयुणवत्त्वौ युवाभ्यां केन हेतुना ॥ १४०॥  
 हयं दीक्षा गृहीतिलि प्रश्नकोत्पत्तकौतुका । ते॑ च तत्कारणं स्पष्टं यथाशृनमवोचताम् ॥ १४१॥  
 ततो धनवर्णी॑ दीक्षां गणित्या॒॑ सज्जिती॑ वयौ । माता॒॑ कुबेरसेना च तदोरायिकाद्वयोः ॥ १४२॥  
 तावन्येषुः कर्णती॑ च ग्रामान्तरमुपाधिलै॑ । तश्चुलाशुपयोगाय॒॑ समवर्तिप्रवोदिती॑ ॥ १४३॥  
 ५२ मवदेव चरणानुवद्वैरेण पापिना । एषमात्रोर्थकोपेन॒॑ मारिती॑ पुरुदंशसा॑ ॥ १४४॥  
 तदाप्यविजयाहैस्य दक्षिणश्रेणिमाश्रिते । गान्धारविषयोशीरवत्याख्यतगरेऽधिष्ठिषः ॥ १४५॥

म्मी धारिणी यहाँ तेरे पति कुबेरकान्तके माता-पिता हुए हैं ॥ १३४ ॥ इतना कहकर अमित-  
 मति यह भी कहने लगी कि विजयार्थं पर्वतके समीप मलयकांचन नामके पर्वतपर दो मुनिराज  
 रहते थे, जब शूर्वजन्ममें शक्तिषेण सर्वसरोवरके समीप डेरा ढालकर बनमें ठहरा हुआ था तब  
 वे भिक्षाके लिए तेरे यहाँ आये थे और तेरे अंगुलियोंके इशारेसे पाँच पुश्ट तथा एक पुत्री होगी  
 ऐसा कहकर चले गये थे । तदनन्तर रत्नवृष्टि आदि पंचाशत्योंके कारणस्वरूप वे मुनिराज इस  
 जन्ममें भी किसी समय तेरे घर आये थे परन्तु कबूतर-कबूतरीको देखकर दयायुक्त हो बिना  
 भिक्षा लिये ही बनको लौट गये थे । वे ही तेरे पिता और तेरे पतिके गुरु हुए हैं । उन्हींके  
 उपर्युक्तसे मैंने यह सब मुनकर अनुक्रमसे कहा है ॥ १३५-१३६ ॥ इस प्रकार जो पुरुष  
 अमितमति आयिकाके द्वारा कही हुई कथाके मुननेमें तल्लीन हो रहे थे वे संसारके सच्चे  
 स्वरूपका बार-बार चिन्तवन करने लगे ॥ १३६ ॥ इस प्रकार कुछ समय ब्यतीत होनेपर किसी  
 दिन प्रियदत्ताने प्रसंग पाकर यशस्वती और गुणवतीसे पूछा कि आप लोगोंने यह दीक्षा किस  
 कारण प्रहण की है ? मुझे यह जाननेका कौतुक हो रहा है । तब उन दोनोंने स्पष्ट रूपसे अपनी  
 दीक्षाका कारण बतला दिया ॥ १४०-१४१ ॥ तदनन्तर कुबेरमित्रकी स्त्री धनवतीने सधकी  
 स्वामिनी अमितमतिके पास दीक्षा धारण कर ली और उन दोनों आयिकाओंकी माता कुबेर-  
 सेनाने भी अपनी पुत्रीके समीप दीक्षा धारण की ॥ १४२ ॥

किसी एक दिन यमराजके द्वारा प्रेरित हुए ही क्या मानो वे दोनों कबूतर-कबूतरी  
 चावल चुगनेके लिए किसी दूसरे गाँव गये । वहाँ एक बिलाब था जो कि भवदेवका जीव था ।  
 उस पापीको पूर्वं जन्मसे बैधे हुए बैरके कारण कबूतर-कबूतरीको देखते ही पापकी भावना  
 जागृत हो उठी और उसने उन दोनोंको मार डाला ॥ १४३-१४४ ॥ उसी पुष्कलावती  
 देशके विजयार्थं पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक गान्धार नामका देश है और उसमें उक्षीरक्ती

१ अमितमत्यायिका । २ विजयार्द्धपर्वत । ३ निवसन्ती । ४ शक्तिपेणाटकीश्वीभवे । ५ सर्वसरोवरनिवेशे ।  
 ६ कुबेरमित्रसमुद्रदत्तयोः । ७ कुबेरकान्तप्रियदत्तयोः गुरुत्वमुपयातौ यी द्वी तथोरेव चारणयोः । ८ यथाक्रमम्  
 कै० । ९ लोकपालादाय । १० परिज्ञाने रताः । ११ यशस्वतीगुणवत्यौ । १२ मम मानुषकुबेरदत्ताद् विविष-  
 भद्रयपूर्वभोजनालाभाज्जातलज्जया तपो गृहीतम् । १३ कुबेरमित्रस्य भायर्णी । १४ अमितमत्यायिकादाय ।  
 १५ जगत्पालचक्रवतिपुरुषोरमितमत्यनन्तरमत्योर्जननी । १६ जन्मव्यापम् । १७ भक्षणाय । १८ अन्तकप्रेरितो ।  
 १९ पूर्वस्मिन् भवदेवेन । २० पापेन ल० । २१ अम्बूग्रामस्य कदलीवनस्वमाजरिण ।

आदित्यगतिरशासीन्महादेवी शशिप्रभा । तयोर्हिरण्यवर्मणः सुतो रतिवरोऽभवत् ॥१४५॥  
तस्मिन्नेत्रोत्थेष्यां गौरीविषयविश्रुते । पुरे भोगपुरे वायुरथो विद्याधराधिपः ॥१४६॥  
तस्य स्वयंप्रभदेव्यां रतिवेणा प्रभावती । वभूते जैनधर्मसौर्यभ्युज्ञरसि देहिनः ॥१४७॥  
माता पिताऽपि या यथ सुकान्तरतिवेगायोः । जन्मन्यस्मिन् किलाभूतां चित्रं वाकेवं मंसुतिः ॥१४८॥  
हा भं प्रभावतीत्याह जयथन्ते संसुलोचनः । रूपादिवर्णं तस्याः कि युनः कियते पृथक् ॥१४९॥  
बौवनेन समाकान्तां कन्द्रां दृष्टा प्रभावतीम् । कस्मै देवेयमित्याह खगेशो मन्त्रिणस्तदः (ततः) ॥१५०॥  
शशिप्रभा<sup>१</sup> सद्या देव्या<sup>२</sup> भ्रातादित्यगतिस्तथा<sup>३</sup> । परे च खचराधीशाः प्रीत्याऽयाचन्त कल्यकाम् ॥१५१॥  
ततः सद्यंवरो युक्तो विरोधस्तक्ष केनचित् । हृत्यभाषन्त निवित्य<sup>४</sup> तद्भूषोऽयभ्युपागमन् ॥१५२॥  
ततः सत्रेऽपि तद्वातकिणीनादामन् वराः । कमर्थेतेषु सा कस्या नायहीद् रत्नमालया ॥१५३॥  
मातापितृभ्यां तद् दृष्टा संपृष्ठा प्रियकारिणी<sup>५</sup> । यो अयेद् गतियुद्धे मां मालां संयोजयस्यहम् ॥१५४॥  
कण्ठे तस्मैति वक्षस्येषा प्रागित्याह सखी तथोः<sup>६</sup> । श्रुत्या तत्र दिने सर्वानुचितोषत्या व्यसजंयत् ॥१५५॥

नामकी एक नगरी है। उसके राजा थे आदित्यगति और उनकी रानीका नाम था शशिप्रभा। रतिवर कबूतर मरकर उन दोनोंके हिरण्यवर्मा नामका पुत्र हुआ ॥१४५-१४६॥ उसी विजयार्थ पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक गौरी नामका देश है उसके भोगपुर नामके प्रसिद्ध नगरमें विद्याधरोंका स्वामी राजा वायुरथ राज्य करता था। उसकी स्वयंप्रभा तुम्हकी गुनी थी। रतिवेणा कबूतरी मरकर उन्हीं दोनोंको प्रभावती नामकी पुत्री हुई सो ठीक ही है क्योंकि जैनधर्मका एक अंश भी प्राणियोंका उढ़ार कर देता है ॥१४७-१४८॥ मुकान्त और रतिवेणा-के जो पहले माता-पिता थे वे ही इस जन्ममें भी माता-पिता हुए हैं सो ठीक ही है क्योंकि यह संसार बड़ा ही विचित्र है। भावार्थ - मुकान्तके पूर्वभवके माता-पिता अशोक और जिनदत्ता इस भवमें आदित्यगति और शशिप्रभा हुए हैं तथा रतिवेणाके पूर्वभवके माता-पिता विमलश्री और श्रीदत्ता इस भवमें वायुरथ तथा स्वयंप्रभा हुए हैं ॥१४९॥ जब जयकुमारने सुलोचनाके साथ बैठकर 'हा' मेरी प्रभावती<sup>७</sup> ऐसा कहा तब फिर उसके रूप आदिका बर्णन अलगसे बया किया जाय ? ॥१५०॥ प्रभावती कन्याको बौवनसे सम्पन्न देखकर विद्याधरोंके अधिष्ठित वायुरथने अपने मन्त्रियोंसे कहा कि यह कन्या किसे देनी चाहिए ? ॥१५१॥

मन्त्रियोंने परस्परमें निश्चय कर कहा कि 'शशिप्रभा आपकी बहन है, और आदित्यगति आपकी पट्टराज्ञीका भाई है। ये दोनों तथा इनके सिवाय और भी अनेक विद्याधर राजा बड़े प्रेमसे कन्याकी याचना कर रहे हैं इसलिए स्वयंवर करना ठीक होगा क्योंकि ऐसा करनेसे किसीके साथ विरोध नहीं होगा।' मन्त्रियोंकी यह बात राजाने भी स्वीकार की ॥१५२-१५३॥ तदनन्तर स्वयंवरकी बात सुनकर सभी राजकुमार आये परन्तु कन्या प्रभावतीने इन सबमें-से किसीको भी रत्नमालाके द्वारा स्वीकार नहीं किया - किसीके भी गलेमें रत्नमाला नहीं 'डाली' यह देखकर माता-पिताने उसकी सखी प्रियकारिणीसे इनका कारण पूछा, सखीने उन दोनोंसे कहा कि यह पहले कहती थी कि 'जो मुझे गतियुद्धमें जीतेगा मैं उसीके गलेमें माला डालूँगी' यह सुनकर राजाने उस दिन यथायोग्य कहकर सबको बिदा किया ॥१५५-१५६॥

१ रतिवरनामकपोतः । २ रतिवेणा नाम कपोती । ३ श्रीदत्तविमलश्री । अशोकदेवजिनदत्ते द्वे च अभूतां वायुरथस्वयंप्रभादेव्यो चादित्यगतिरशशिप्रभे च पितरावभूतामिति । ४ सुलोचनया सहितः । ५ तब शशिप्रभेति भगिनी । ६ वायुरथस्य तव भाष्याः । ७ स्वयंप्रभादेव्या भ्राता आदित्यगतिश्च सोऽपि स्वपुत्राय याचित्वान् इत्यर्थः । ८ एवं सति । ९ तथास्तिवत्यनुमतिमकरोत् । १० कन्यायाः सखी । ११ वायुरथस्वयंप्रभयोः ।

अन्येषुः खचराधीशो घोषयित्वा<sup>१</sup> स्वयंवरम् । सिद्धकूटात्मचैत्यालयस्य माला पुरःस्थिताम् ॥१५७॥  
 अपातयन्महामेहे<sup>२</sup> त्रिः<sup>३</sup> परीत्य महीतलम् । असृष्टां खेषराः केजितां ग्रहीतुमनीदवराः ॥१५८॥  
 अपो गताः समादाय प्रभावत्या विनिजिताः । समो ननु न सृष्टुइव मानमक्षेन मानिनाम् ॥१५९॥  
 ततो हिरण्यवर्मिणाद् गतियुद्धिशारदः । मालामासञ्चयामास<sup>४</sup> तत्कष्ठे तेज निर्जेता ॥१६०॥  
 तथोर्जन्मात्तरस्त्वेहसमृद्धसुखसंपदा । काले गच्छति कस्मिन्द्व ( चित्र ) क्षेत्रद्वयदर्शनात् ॥१६१॥  
 शात्रारभवसंशन्या सुविरक्ता प्रभावती । स्थिताशोकाकुलैर्कैव<sup>५</sup> चिन्तयन्ती किमप्यसी ॥१६२॥  
 हिरण्यवर्मणा शातजन्मना लिखितं हफुटम् । पट्टकं प्रियकारिण्या<sup>६</sup> हस्ते<sup>७</sup> समवलोक्य तम् ॥१६३॥  
 एव लक्ष्मिदमित्यात्मयत् प्राह सापि प्रियेण ते । लिखितं चेटकस्तस्य<sup>८</sup> सुकान्तो मे समर्पयत् ॥१६४॥  
 इति तदृचनं श्रुत्वा स्वयमप्यात्मगृहकम् । प्राकृतं पट्टके तस्या लिखिताऽसी<sup>९</sup> करे ददी ॥१६५॥  
 तदिलोक्य कुमारोऽभूत प्रभावतीं प्रसक्तीः । सापि तस्मिन् तयोः प्रीतिः प्राकृत्या<sup>१०</sup> द्विगुणाऽभवत्<sup>११</sup>  
 संभूय बान्धवाः सर्वे वद्याणाभिष्ववं तयोः । अकुर्चक्षिव कल्पाणं द्वितीयं ते चिकीर्षवाः ॥१६६॥  
 दशम्या<sup>१२</sup> सिद्धकूटाये स्नानपूजायिधौ<sup>१३</sup> सुवित्<sup>१४</sup> । हिरण्यवर्मणा वीक्ष्य परमावधिचारणः ॥१६७॥

दूसरे दिन राजाने स्वयंवरकी घोषणा कराकर कहा कि ‘एक माला सिद्धकूट नामक चैत्यालयके द्वारसे नीचे छोड़ी जायगी’ जो कोई विद्याधर माला छोड़नेके बाद महामेह पर्वतकी तीन प्रदक्षिणाएँ देकर प्रभावतीके पहले उसे जमीनपर पढ़नेके पहले ही ले लेगा वही इसका पति होगा’ यह सुनकर बहुत से विद्याधरोंने प्रयत्न किया परन्तु पूर्वोक्त प्रकारसे माला न ले सके इसलिए प्रभावतीसे हारकर लज्जित होते हुए चले गये सो ठीक द्वी है वयोंकि मरण भी अभिसानी लोगोंके मानभंगको बराबरी नहीं कर सकती है ॥१५७-१५८॥ तदनन्तर गतियुद्ध करनेमें चतुर हिरण्यवर्मा आया और उससे हारकर प्रभावतीने वह माला उसके गलेमें डाल दी ॥१६०॥ पूर्व जन्मके स्नेहसे वही हुई सुखरूप सम्पत्तिसे जब उन दोनोंका कितना ही समय व्यतीत हो गया तब किसी एक दिन कबूतर-कबूतरीका जोड़ा देखनेसे प्रभावतीको पूर्वभवका सम्बन्ध याद आ गया, वह चिरकत होकर शोकसे व्याकुल होती हुई अकेली बैठकर कुछ सोचने लगी ॥१६१-१६२॥ इधर हिरण्यवर्माको भी जाति स्मरण हुआ था, उसने एक पटियेपर अपने पूर्वजन्मका सब हाल साफ-साफ लिखकर प्रभावतीकी सखी प्रियकारिणीको दिया था, प्रभावतीने प्रियकारिणीके हाथमें वह पटिया देखकर कहा कि यह चित्रपट तुझे कहाँ मिला है ? सखीने कहा कि ‘यह चित्रपट तेरे पतिने लिखा है और उनके नौकर सुकान्तने मुझे दिया है, इस प्रकार सखीके बचन सुनकर प्रभावतीने भी एक पटियेपर अपने पूर्वजन्मका सब वृत्तान्त लिखकर सखीके हाथमें दिया ॥१६३-१६४॥ वह चित्रपट देखकर हिरण्यवर्मा प्रभावतीपर बहुत अनुराग करने लगा और प्रभावती भी हिरण्यवर्मापर बहुत अनुराग करने लगी, उन दोनोंका प्रेम पूर्व पर्यायके प्रेमसे कहीं दूना हो गया था ॥१६५॥ कुटुम्बके सब लोगोंने मिलकर उन दोनोंका मंगलाभिषेक किया मानो वे उनका दूसरा कल्याण ही करना चाहते हों ॥१६६॥ किसी समय दशमीके दिन वे दोनों सिद्धकूटके चैत्यालयमें अभिषेक पूजन आदि कर रहे थे उसी समय हिरण्य-

१ स्वयंवरमिति घोषयित्वा-तदिने व्यसनेयदिति गावन्धः । २ भूमो पातयति सम । ३ मेरोस्त्रिः ल० ।  
 ४ संयोजयति सम । ५ असहायैव । ६ प्रभावत्या-सख्याः । ७ हस्ते स्थितम् । ८ हिरण्यवर्मणः । ९ प्राकृत्यम्,  
 पुरातनमित्यर्थः । १० प्रभावतो । ११ पुरातनी । १२ आ समन्ताद् द्विगुण । १३ विद्याहृदिनाद् दशमदिने ।  
 १४ अभिषेकपूजाविधी । १५ प्रत्यक्षज्ञानम् । प्रत्यक्षज्ञानी ता० टि० । एवचित् अ०, प०, स०, इ०, ल० ।

प्रभावस्या च दृष्टोऽस्मी स्वं पूर्वमवहृतम् । अभावत मुनेक्षेत्रमनुग्रहिण्या तयोः ॥१५९॥  
 नृतीयजन्मनीतोऽप्त्र संभूती विभिज्ञां कुले । रतिवेगा सुकान्तश्च प्राक् मृणालवतीपुरे ॥१६०॥  
 भर्तु मात्याभिसंबधं<sup>३</sup> संप्राप्तभिभियाद् गतौ<sup>४</sup> । कृत्काऽनुभोदनं शक्तिरेणदाने सपुण्यकी ॥१६१॥  
 पारावतभवे चाप्य धर्मं जाती युवामिति । विधाय पितरौ<sup>५</sup> दैश्यजन्मनोर्याविहापि तौ ॥१६२॥  
 नृतीयजन्मनो<sup>६</sup> युग्मद्युर्वोऽहं<sup>७</sup> च संगताः । रतिवेणगुरोः पाश्वं गृहीतप्रोषधादिवरम् ॥१६३॥  
 जिवेन्द्रभवने भक्त्या नानोपकरणैः सदा । विधाय दूजां समजायामहीहै खगाधिपाः ॥१६४॥  
 पिता<sup>८</sup>हं भवदेवस्य रतिवर्साभिघस्तदा । यूत्वा<sup>९</sup>श्रीघर्षमैनामाऽहः संथर्म प्राप्य शुद्धीः ॥१६५॥  
 चारणवं तृतीयं च ज्ञानं प्राप्यमिहेत्यदः । श्रुत्वा मुनिवचः प्रीतिमापयेतान्तरो च तौ<sup>१०</sup> ॥१६६॥  
 एवं सुखेन यात्येषां<sup>११</sup> काले वायुरथः पृथुम् । विशाराहै<sup>१२</sup> समालोषय स्तनयित्वै<sup>१३</sup> प्रतिश्वरणम् ॥१६७॥  
 १४ विश्वं विनश्वरं पश्वन् शश्वच्छाइवतिकीं मतिम् । जनः करोति सर्वत्र दुहतरं किमिदं तमः<sup>१५</sup> ॥१६८॥  
 हुति याथारूपमासाद दत्वा राज्यं विरज्य<sup>१६</sup> सः । मनोरथाय नैस्संयं<sup>१७</sup> प्रपित्यसुरभवसदा ॥१६९॥  
 आदिवैतिसम्येश्वरं श्रीत्वा स्वेऽपि विश्वाः<sup>१८</sup> रूपेभवत्तीकुता देवा भवतेयं रतिप्रभा ॥१७०॥

वर्मनि परमावधि ज्ञानको धारण करनेवाले चारणमुनि देखे, प्रभावतीने उनसे अपने पूर्वभवका वृत्तान्त पूछा, मुनिराज भी अनुग्रह बुद्धिसे उन दोनोंके पूर्वभवका वृत्तान्त इस प्रकार कहने लगे ॥१६८-१६९॥ कि तुम दोनों इस जन्मसे तीसरे जन्ममें मृणालवती नगरीके वैश्य कुलमें रतिष्ठेगा तथा सुकान्त हुए थे ॥१७०॥ स्त्री पुरुषका सम्बन्ध पाकर तुम दोनों शत्रुके भयसे भागकर शक्तिष्ठेणकी धारण गये थे । वहाँ शक्तिष्ठेणने मुनिराजके लिए जो आहार दान दिया था उसकी अनुमोदना कर तुम दोनोंने पुण्यबन्ध किया था, उसके बाद कबूतर-कबूतरीके भवमें धर्म लाभ कर यहाँ विद्याधर-विद्याधरी हुए हो । तुम दोनोंके वैश्य जन्मके जो माता-पिता थे वे ही इस जन्मके भी तुम्हारे माता-पिता हुए हैं । तीसरे जन्मके तुम्हारे माता-पिता तथा मैंने मिलकर एक साथ रतिष्ठेण गुरुके समीप प्रोष्ठ नृत लिया था, और उसका चिरकाल तक पालन करते हुए श्रीजिनेन्द्रदेवके भन्दिरमें भक्तिपूर्वक अनेक उपकरणोंसे सदा पूजा की थी उसीके फलस्वरूप हमलोग यहाँ विद्याधर हुए हैं । मैं पूर्वभवमें रतिवर्म नामका भवदेवका पिता था, अब श्रीधर्म नामका विद्याधर हुआ हूँ, मैंने शुद्ध हृदयसे संयम धारण कर चारणश्रुद्धि और तीसरा अवधि ज्ञान प्राप्त किया है । इस प्रकार मुनिराजके बचन सुनकर हिरण्यदर्मा और प्रभावती दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए ॥१७१-१७६॥

इस तरह इन सबका समय सुखसे व्यतीत हो रहा था कि किसी एक समय प्रभावतीके पिता बायुरथ विद्याधरने प्रत्येक धर्म नष्ट होनेवाला मेघ देखकर ऐसा विचार किया कि यह समस्त संसार इसी प्रकार नष्ट हो जानेवाला है, फिर भी लोग इसे स्थिर रहनेवाला समझते हैं, यह अज्ञानरूपी धोर अन्धकार सब जगह क्यों छाया हुआ है? इस प्रकार यथार्थ स्वरूपका विचार कर विरक्त हो मनोरथ नामक पुत्रके लिए राज्य दे दिया और स्वयं निर्गत्य अवस्था बारण करनेकी इच्छा करने लगे ॥१७७-१७९॥ उसी समय बायुरथके सभी भाई-बन्धुओंने बड़े

१ स्वपूर्व-अ०, प०, इ०, स०, ल०। २ दस्पतिसंवन्धम्। ३ भवदेवभयात्। ४ पलायितौ। ५ प्राप्य।  
 ६ श्रीदत्तविमलश्रियो। अशोकदेवजिनदत्ते च। ७ युवयोः पितरः। श्रीदत्तविमलश्री-अशोकदेवजिनदत्ताः।  
 ८ भवदेवस्य पिता रतिवर्मी। ९ जाताः स्म। १० शोधमंहगाधिष्ठिः। ११ हिरण्यवर्मप्रभावत्यौ।  
 १२ वायुरथादीनाम्। १३ चिन्हवरशीलम्। १४ मेघम्। ‘अभं मेघो वारिवाहः स्तनयित्तुर्बलाहकः’ इत्य-  
 भिधानात्। १५ पुत्रमित्रकलञ्जलक्ष्मदनादिकम्। १६ अजानम्। १७ विरक्तो भूत्वा। १८ प्राप्तुमिच्छुः।  
 १९ वायुरथस्य बन्धुजनाः।

मनोरथस्य तुत्राय कन्या चित्ररथाय सा । हत्याहुः<sup>१</sup> सोऽप्यनुजाये<sup>२</sup> कृत्वा चन्द्रुचिसर्जनम् ॥ १८१॥  
 ३ हिरण्यवर्मणः सर्वेषां राजाभिषेषनम् । चित्राय बहुभिः साधै संग्राम्य सुनिष्क्रवन् ॥ १८२॥  
 संयमं प्रतिपक्षः सन् सहवायुरक्षः<sup>४</sup> स्वयम् । तपो द्वादशधा प्रोक्तं यथाविधि समाचरत् ॥ १८३॥  
 इन्द्रुकृत्वा रतिवेगाऽहं रतिवेणा<sup>५</sup> प्रभावती । चाहमवेति<sup>६</sup> सम्यानां निजगादै<sup>७</sup> सुलोचना ॥ १८४॥  
 तदाकार्यं जयोऽप्याह पतिस्तामामहं<sup>८</sup> क्रमात् । जाये स्म<sup>९</sup> तत्र तत्रेति विद्वचिसमयकृद्वाचः ॥ १८५॥  
 पुनः प्रियो जयः प्राह प्रकृतं किञ्चिद्विषयतः । अवशिष्टं लदप्युच्छैस्वया कान्ते निगदताम् ॥ १८६॥  
 हनि पत्न्युः परिप्रहताहशनज्योत्सनया सभाम् । मूर्तिः कुमुद्धर्णी वेन्द्रोविंकासमुपर्नीयताम् ॥ १८७॥  
 साऽवर्वीनिति तदूहतं स्वप्युपरिप्रियाकृतम् । सुखं राज्यसमुद्भूतं यथेष्टसपि निर्विशद्<sup>१०</sup> ॥ १८८॥  
 परेद्युः कान्तया साहौ<sup>११</sup> स्वेच्छया विहरत् वनम् । सरो धान्यकमालाख्यं वीक्ष्यादित्यरातेः<sup>१२</sup> सुतः ॥ १८९॥  
 १३ स्वप्राप्य भवसंबन्धं प्रत्यक्षमिव लक्षयन् । काललिङ्घवलाल्लव्यनिवेदो विदुषो वरः ॥ १९०॥  
 भद्रुते<sup>१४</sup> संगमः सर्वोऽप्यक्षिनामभिवान्वितः । किं नाम सुखमत्रैदमलपसंकृत्यसंभवम् ॥ १९१॥  
 आयुर्वायुचक्लं आयो हेत्य एवाभ्यालयः । साप्राज्यं भुज्यते<sup>१५</sup> लोलीवर्णलिं<sup>१६</sup> शीर्षेहुदीषलम्<sup>१७</sup> ॥ १९२॥  
 अदूरपार<sup>१८</sup> कायोऽयमसारी तुरिताश्रयः ।<sup>१९</sup> तादात्यप्रात्मनोऽनेन<sup>२०</sup> चिरोनमचुचिप्रियम्<sup>२१</sup> ॥ १९३॥

प्रेमसे आदित्यगतिके समीप जाकर प्रार्थना की 'कि यह प्रभावतीकी पुत्री रतिप्रभा कन्या आप मेरे मनोरथके पुत्र चित्ररथके लिए दे दीजिए।' आदित्यगतिने भी स्वीकार कर समागत बन्धुओंको बिदा किया ॥ १८०-१८१॥ महाराज आदित्यगति सब विद्याधरोंके राज्यपर हिरण्यवर्माका अभिषेक कर अनेक लोगोंके साथ किन्हीं मुनिराजके समीप पहुँचे, और वायुरथके साथ-साथ स्वयं भी संयम धारण कर विद्विपुर्वक शास्त्रोंमें कहे हुए, वारह प्रकारके तपश्चरण करने लगे ॥ १८२-१८३॥ यह सब कहकर सुलोचनाने सब सभासदोंसे कहा कि वह रतिवेगा भी मैं ही हूँ, रतिवेणा ( कबूतरी ) भी मैं ही हूँ और प्रभावती भी मैं ही हूँ ॥ १८४॥ यह मुनकर जयकुमारने भी सबको आश्चर्य करनेवाले वचन कहे कि उन तीनों भवोंमें अनुक्रमसे मैं ही उन रतिवेगा आदिका पति हुआ हूँ ॥ १८५॥ जयकुमार फिर अपनी प्रिया सुलोचनासे कहने लगा कि हे प्रिये, कुछ बात बाकी और रह गयो है उसे भी तू अच्छी तरह कह दे ॥ १८६॥ जिस प्रकार चन्द्रमाकी मूर्ति कुमुदिनीको विकसित कर देती है उसी प्रकार वह सुलोचना भी अपने पतिके पूर्वोक्त प्रश्नसे दातोंकी कान्तिके द्वारा सभाको विकसित-हर्षित करती हुई अपने पुण्यके फलसे होनेवाले समाचारोंको इस प्रकार कहने लगी कि वह हिरण्यवर्मा राज्यसे उत्पन्न हुए सुखका इच्छानुसार उपभोग करने लगा । किसी एक दिन अपनी बल्लभाके साथ विहार करता हुआ वह आदित्यगतिका पुत्र हिरण्यवर्मा धान्यकमाल नामके वनमें जा पहुँचा । वहाँ सर्पसारोवर देखकर उसे अपने पूर्वभवके सब सम्बन्ध प्रत्यक्षकी तरह दिखने लगे, काललिङ्घके निमित्तसे जिसे वीराम्य उत्पन्न हुआ है और जो विद्वानोंमें श्रेष्ठ है ऐसा वह हिरण्यवर्मा सोचने लगा कि प्राणियोंकी इच्छाका विषयभूत यह सभी समागम अणभंगुर है, इस समागममें थोड़े-से संकल्पसे उत्पन्न हुआ यह सुख क्या वस्तु है? यह आयुके समान चंचल है । अनेक दोगों-का घर स्वरूप यह शरीर छोड़ने योग्य ही है । अनेक दोषोंको देनेवाले राज्यको चंचल

१ वायुरथस्य विद्योगादाहुः । २ तथास्तिवत्यनुमति कृत्वा । ३ अर्प इलोकः ४० 'म० पुस्तकप्रोत्तं दृश्यते ।  
 ४ वायुरथेन सहितः । ५ आदित्यगतिः । ६ रतिवेणोति कपोती । ७ सुलोचना । ८ सभाजनाताम् । ९ अभान-  
 पतः । १० रतिवेगादीनाम् । ११ जातोऽस्मि । १२ अनुभवन् । १३ प्रभावत्या सह । १४ हिरण्यवर्मा ।  
 १५ पूर्वभव । १६ श्वयशीलः । १७ आसक्तेः । १८ सूर्जः । १९ बहुरोपश्रवम् । २० आसन्नावसानाः ।  
 २१ तत्त्वरूपत्वम् । २२ कायेन । २३ आत्मानम् ।

देहवास्यौ भयं नास्यं चानमस्मान्महद् भयम् । देहिनः किं मार्गस्यै विषयस्मीत्रै निवृत्तेः ॥ १४४ ॥  
 नीरुपोऽयं स्वरूपेण रूपी देहरूपता । निर्वाणसिरती हेयो देह एव यथा तथा ॥ १४५ ॥  
 वन्धः सर्वोऽपि संबन्धोऽभोगी रोगो रिपुर्वपुः । दीर्घमायासमत्यायुस्तृणामेविन्धनं भवम् ॥ १४६ ॥  
 आदौ जन्म जरा रोगा भवेदन्तेऽप्यन्तकः द्वालः । इति चक्रक्षमं आनितः जन्मार्मस्येभवार्णवम् ॥ १४७ ॥  
 भोगिनो भोगवद् भोगा न भोगा नाम भोग्यकाः । पूर्वं भावयतो भोगान् भूयोऽसूदन् भवावहाः ॥ १४८ ॥  
 निवेद्यमाणा विषया विषया विषयसक्षिभाः । देवीप्यन्ते ॥ १४९ ॥ दुशुक्षाभिर्दीपनीयरिवौपथे ॥ १४९ ॥  
 न तुहिरेभिरिष्येषै एव दोषो न योगकाः । तृष्णचै विषवहलयाः संमुद्रेश्वावलस्यनम् ॥ २०० ॥  
 वनितातनुसंभूतकामाग्निः ॥ स्नेहसेच्चनैः । कामिनं भस्मसाद्भावमनीत्वा न निवृत्तेः ॥ २०१ ॥  
 जन्मोर्मर्मेषु भोगार्थे सर्वत्रै ॥ १५० ॥ विरतिर्भूता । स्थैर्यं तस्माः ॥ प्रयत्नोऽस्य विषयाशेषोऽपि मर्माविषयः ॥ २०२ ॥  
 ग्रावितोऽप्यसकृद्गुर्वं भोगास्तानेव याचने । धत्तेऽवताहितोऽप्यन्हि भावास्या पूर्व बालकः ॥ २०३ ॥

और मूर्ख लोग ही भोगते हैं, इस शरीरका अन्त निकट है, यह असार है, और पापका आश्रय है, इसी शरीरके साथ इस आत्मका तादात्म्य हो रहा है, इसलिए अपवित्र पदार्थोंसे प्रेम करनेवाले इस प्राणीको धिक्कार हो, इस प्राणीको शरीरमें निवास करनेसे तो भय मालूम नहीं होता परन्तु उसमें निकलनेमें बड़ा भय मालूम होता है, निश्चयमें इस संसारमें मोक्षमार्गसे विपरीत प्रवृत्ति ही होती है ॥ १४७-१४८ ॥ यह जीव सब स्वरूपकी अपेक्षा रूपरहित है परन्तु शरीरके प्रकार शरीरको अवश्य ही छोड़ना चाहिए ॥ १४९ ॥ सब प्रकार सम्बन्ध ही वन्ध है, भोग ही रोग है, शरीर ही शत्रु है, लम्बी आयु ही तो दुःख देती है और धन ही तृष्णारूपी अग्निका इधन है ॥ १५० ॥ इस जीवको पहले तो जन्म धारण करना पड़ता है, मध्यमें बुढ़ापा तथा अनेक रोग हैं और अन्तमें दुष्ट मरण है, इस प्रकार संसाररूप समुद्रके मध्यमें इस जीवको चक्रकी तरह भ्रमण करना पड़ता है ॥ १५१ ॥ भोग करनेवाले लोगोंको ये भोग सर्पके फणोंके समान हैं इसलिए भोग करने योग्य नहीं हैं इस प्रकार भोगोंका बार-बार विचार करनेवाले समान हैं, जिस प्रकार उत्तेजक ओषधियोंसे पेटकी आग भभक उठती है उसी प्रकार भोगकी इच्छाओंसे ये विषय भभक उठते हैं ॥ १५२ ॥ इन विषयोंसे तृप्ति नहीं होती केवल इतना ही दोष नहीं है किन्तु तृष्णाको पुष्ट करनेवाले भी हैं और संसाररूपी विषयकी बैलको सहारा देनेवाले भी हैं ॥ २०० ॥ स्त्रियोंके शरीरसे उत्पन्न हुई यह कामरूपी अग्नि स्नेहरूपी तेलसे प्रज्वलित होकर कामी पुरुषोंको भस्म किये बिना नहीं लौटती है ॥ २०१ ॥ भोग करनेके बाद इन समस्त भोगोंमें जीवोंको वैराग्य अवश्य होता है, बुद्धिमान् लोगोंको जो तपश्चरण आदि क्रिया करनी पड़ती है वे सब इस वैराग्यको स्थिर रखनेका उपाय ही है ॥ २०२ ॥ यद्यपि यह जीव भोगोंसे प्राप्त है तथा प्राप्ति ये जीव उन्हीं भोगोंको चाहते हैं सो ठीक ही है क्योंकि माता अनेक बार दुःखको प्राप्त है तथापि ये जीव उन्हीं भोगोंको चाहते हैं सो ठीक ही है ॥ २०३ ॥ बालकको जिस पैरसे ताड़ती हैं बालक उसी-उसी प्रकार माताके चरणको पकड़ते हैं ॥ २०३ ॥

१ शरीरे निवासनम् । २ निर्गमनम् । ३ देहवासात् । ४ व्यस्थः । ५ देहिनः । ६ येन केन प्रकारेण । ७ पूर्व-  
 मिवादिसंबन्धः । ८ भत्रार्णवे ल०, अ०, प० । ९ सर्पस्य । १० शरीरवत् । फणद् वा । ‘भोगः सुखे  
 हित्यादिभूतावहेश्च कणकाद्ययोः’ दृत्यभिधातात् । ११ भोगा नाम न भोग्यकाः ल० । १२ भूतं दहनिति ।  
 १३ भीक्तुमिच्छाभिः । १४ दीपनहेतुभिः । १५ भोगैः । १६ तृष्णायाः । १७ स्नेहः प्रीतिः तैलं च । स्नेह-  
 सेवनैः अ०, स० । स्नेहदीपनैः प०, ल० । १८ सर्वेषु । १९ अप्रीतिः । २० विरतेः । २१ अनुष्टुपानयेषः ।

अध्रुवर्णं गुणं मन्ये भोगायुः<sup>१</sup> कायमपदाम् । भुवेद्वेदु कृतो मुक्तिर्विना मुक्तेः कृतः सुखम् ॥२०४॥  
 विस्मभजननैः पूर्वे पश्चात् प्राणार्थहारिभिः ।<sup>२</sup> परिपन्थिकसद्वार्तिविषयैः कथ्य तापदः<sup>३</sup> ॥२०५॥  
 तद्दुःखस्यैव माहात्म्यं स्यात् सुखं विषयेष्व यत् ।<sup>४</sup> अकारबलिका स्वादुःप्राप्तवं तनुत्तमुभः<sup>५</sup> ॥२०६॥  
 संकल्पसुखसंतोषाद्<sup>६</sup> विमुखस्वारमजान् सुखात् । गुह्यगितिनायमंतुष्टशाश्वासुगम्भो जनः ॥२०७॥  
 यदास्ति निर्जरा नासौ युक्तैः बन्धच्युतविना ।<sup>७</sup> तच्छुतिश्च हतेर्यन्धहेतोस्तत्तद्वन्नी यते<sup>८</sup> ॥२०८॥  
 केन मोक्षः कथं जाग्ये<sup>९</sup> कृतः भौत्यं कथं वा मनः ।<sup>१०</sup> परिग्रहाग्रहग्रहगृहीतस्य मवार्णवे ॥२०९॥  
 किं<sup>११</sup> भव्यः किमभव्योऽयमितिसंशोरते<sup>१२</sup> तुधाः । ज्ञात्वाऽप्यनिष्यतां<sup>१३</sup> लङ्घमीकटाक्षशसार्थायिने ॥२१०॥  
 अर्यं कायद्वमः<sup>१४</sup> काम्ताप्रततीतिवेष्टिः । जरित्वा<sup>१५</sup> जन्मकान्तारे<sup>१६</sup> कावाग्निग्राममादस्यति ॥२११॥  
 यदि धर्मकणादिभ्यै<sup>१७</sup> निदानविषद्विषयात्<sup>१८</sup> । सुखं धर्मामृताम्भोपिमज्जनेन किमुच्यने ॥२१२॥

भोग, आयु, काल और सम्पदाओंमें जो अस्थिरता है उसे मैं एक प्रकारका गुण ही मानता हूँ क्योंकि यदि ये सब स्थिर हो गये तो मुक्ति कैसे प्राप्त होगी ? और मुक्तिके बिना सुख कैसे प्राप्त हो सकेगा ? ॥ २०४ ॥ एहले हो विश्वास उत्पन्न करनेवाले और पीछे प्राण तथा अनका अपहरण करनेवाले शत्रु तुल्य इन विषयोंसे किसे भला आपदाएँ प्राप्त नहीं होती हैं ? ॥ २०५ ॥ इन विषयोंसे जो सुख होता है वह दुःखका ही माहात्म्य है क्योंकि जो करेला मीठा लगता है वह भूतका ही प्रभाव है ॥ २०६ ॥ यह जीव कल्पित सुखोंसे सन्तुष्ट होकर आत्मासे उत्पन्न होनेवाले वास्तविक सुखसे विमुख हो रहा है इसलिए यह जीव गुमचियोंके तापनेसे सन्तुष्ट होनेवाले बानरके समान हैं । भावार्थ – जिस प्रकार गुमचियोंके तापनेसे बन्धकी ठण्ड नहीं दूर होती है उसी प्रकार इन कल्पित विषयजन्य सुखोंसे प्राणियोंकी दुःख-रूप परिणति दूर नहीं होती है ? ॥२०७॥ इस जीवके निर्जरा तो सदा होती रहती है परन्तु बन्धका अभाव हुए बिना वह मोक्षका कारण नहीं हो पाती है, बन्धका अभाव बन्धके कारणोंका नाश होनेसे हो सकता है इसलिए मैं बन्धके कारणोंका नाश करनेमें ही प्रयत्नशील हूँ ॥२०८॥<sup>१९</sup> इस संसाररूपी समुद्रमें जिन्हें परिग्रहके ग्रहण करने रूप पिशाच लग रहा है उन्हें भला मोक्ष किस प्रकार मिल सकता है ? उनका जीवन किस प्रकार रह सकता है ? उन्हें सुख कहाँसे मिल सकता है और उन्हें बुद्धि हो कहाँ उत्पन्न हो सकती है ? ॥ २०९ ॥ लक्ष्मीके कटाक्षरूपी वाणीसे सुलाये हुए ( नष्ट हुए ) पुरुषमें अनित्यताको जानकर भी विद्वान् लोग 'यह भव्य है ? अथवा अभव्य है ?' इस प्रकार व्यर्थ संशय करने लगते हैं ॥ २१० ॥ स्त्रीरूपी लताओंके समूहमें धिरा हुआ यह शरीररूपी वृक्ष संसाररूपी अटबीमें जीर्ण होकर कालरूपी अग्निका प्राप्त हो जायगा ॥२११॥ जब कि निदानरूपी विषसे दूषित कर्मके एक औद्योग्यसे भूक्षे ऐसा सुख मिला है तब धर्मरूपी अमृतके समुद्रमें अवगाहन करनेसे जो सुख प्राप्त होगा उसका तो

१ काल – ल० । २ विश्वासजनकः । ३ शश्रुतदृशः । ४ न विपत्तयः । ५ कटुकास्वादः शाकविशेषः ।  
 कारबलिकां स्वादु प०, द०, स०, अ०, ल० । ६ बुमुतायाः । ७ विमुखश्वारमजान् ल०, प०, इ०, अ० ।  
 ८ तत् कारणात् । ९ यत्म करोमि । १० जीवनम् । ११ परिग्रहस्वीकारनक्रम्बीकृतस्य । १२ विशिष्टेन्द्र-  
 परिणामेन कि भविष्यति । १३ संशयं कुर्वन्ति । १४ अपाद्यदर्शनवाणतनुकृतशारीरे तुसि । १५ भायर्लिता ।  
 १६ जीर्णभूत्वा । १७ समदावाग्निः । १८ धर्मलेशात् । १९ कर्मेतज्जननि कुञ्चेरपित्रेण स्वेत कृतदामपृष्ठस्य-  
 कांशः कपोतस्य दत्तः विद्याधरविमानं दिलोक्य कपोतः श्रेष्ठित्वपुष्ट्याशात् मम विद्याधरत्वं भवत्विति  
 कृतनिरानविषद्विपत्तत्वात् ।

१९ भिष्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, क्षयाय और योग ये बन्धनके कारण हैं ।

१ अशोधदेवरागात्मा संसारस्तद्विपर्ययः । मोक्षदेव वीक्षितो विद्धिः कः क्षेपो मोक्षसाधने ॥२१३॥  
 २ यदि देशादिसाकल्ये न तपस्तथुनः कुरुः । सवर्णवर्णवर्णयते वेगात् करायत्युत्तमयत् ॥२१४॥  
 ३ आत्मस्वर्णवर्णं परमात्मानिमात्मात्मात्मात्मात्मात्मा । हिस्त्रा दुरात्महामात्मामात्मात्मा । चरन् कुरु ॥२१५॥  
 ४ हृति संचिन्तयन् गत्वा युरैः परमतस्ववित् । सुवर्णवर्णं राज्यं साभिषेकं वितीर्ण त्वः ॥२१६॥  
 ५ अवतीर्णं महीं प्राप्य श्रीपुरं श्रीनिकेतनम् ॥६ । दीक्षां जैतेश्वरीं प्राप श्रीपालगृहस्तिर्णी ॥२१७॥  
 ६ परिग्रहात्मान्युक्तो दीक्षित्वा स तपोऽगुभिः । हिरण्यवर्मी घर्माशुनिर्मलो द्यद्युत्तराम् ॥२१८॥  
 ७ प्रभावती च तन्मात्रा ॥७ ॥ गुणवत्यास्ततोऽगमन् । कृतश्वन्द्रमसं मुक्त्या चन्द्रिकायाः स्थितिः पृथक् ॥  
 ८ सद्वृत्तस्तपात् दीक्षो दिगम्बरविभूषणः ॥८ । निस्मंगो चोमगाम्येकपिहारी त्रित्र॒ चन्द्रिनः ॥२१९॥  
 ९ नित्योदयोऽसुशार्धीशो विश्वदेवात् ॥९ । स कदाचिन् यमागच्छन्सोदयन् एष्टर्णिकीभू ॥२२०॥

कहना ही क्या है ? ॥२१२॥ यह संसार अज्ञान, द्वैप और शार रूप है तभा मोक्ष इससे विपरीत है अर्थात् सम्यज्ञान और समता स्वरूप है । यदि विद्वान् लोग ऐसा देखते रहें तो फिर मोक्ष होनेमें देर ही क्या लगे ? ॥२१३॥ जिस प्रकार वेगसे जाते हुए पुरुषके हाथमें वीच समुद्रमें छूटा हुआ रल फिर तहीं मिल सकता है उसी प्रकार देश-काल आदिकी सामग्री मिलनेपर भी यदि तप नहीं किया तो वह तप फिर कैसे मिल सकता है ? ॥२१४॥ इसलिए हे आत्मन्, तू आत्माका हित करनेवाले मोक्षमार्गमें दुरात्मता छोड़कर अपने आत्माके हारा अपने ही आत्मामें परमात्मा रूप अपने आत्माको ही स्वीकार कर ॥२१५॥ इस प्रकार चिन्तयन करते हुए परमं तत्त्वके जानेवाले राजा हिरण्यवर्मनि अपने नगरमें जाकर अपने पुत्र सुवर्णवर्माके लिए अभिषेकपूर्वक राज्य सीधा और फिर विजयार्द्धं पर्वतसे पृथ्वीपर उत्तरकर लक्ष्मीके गृहस्थरूप श्रीपुर नामके नगरमें श्रीपाल गृहके समीप जैतेश्वरी दीक्षा धारण कर ली ॥२१६-२१७॥ परिग्रहरूयो पिशाचसे युक्त हो दीक्षा धारण कर सूर्यके समान निर्मल हुआ वह राजा हिरण्यवर्मा तपश्चरणरूपी किरणोंसे बहुत ही देवीप्रभान रहा था ॥२१८॥ प्रभावतीने भी हिरण्यवर्माकी माता-शशिप्रभाके साथ गुणवती आर्यिकाके समीप तप धारण किया था सो ठीक ही है क्योंकि अन्नमाको छोड़कर चाँदीकी पृथक् स्थिति भला कहाँ हो सकती है ? ॥२१९॥ वे हिरण्यवर्मा मुनिराज ठीक सूर्यके समान जान पढ़ते थे क्योंकि जिस प्रकार सूर्य सद्वृत्त अर्थात् गोल है उसी प्रकार वे मुनिराज भी सद्वृत्त अर्थात् निर्देश चारित्रको धारण करनेवाले थे । जिस प्रकार सूर्य तप अर्थात् गरमीसे देवीप्रभान रहता है उसी प्रकार मुनिराज भी तप अर्थात् अनशनादि तपश्चरणसे देवीप्रभान रहते थे, जिस प्रकार सूर्य दिगम्बर अर्थात् दिशा और आकाशका आभूषण है उसी प्रकार मुनिराज भी दिगम्बर अर्थात् दिशारूप वस्त्र-को धारण करनेवाले निर्गन्धं मुनिराजकी आभूषण थे, जिस प्रकार सूर्य निःसंग अर्थात् सहायतां-रहित अकेला होता है उसी प्रकार मुनिराज भी निःसंग अर्थात् परिग्रहरहित थे, जिस प्रकार सूर्य आकाशमें गमन करता है 'उसी प्रकार चारणऋद्धि होनेसे मुनिराज भी आकाशमें गमन करते थे, जिस प्रकार सूर्य अकेला ही घूमता है उसी प्रकार मुनिराज भी अकेले ही घूमते थे - एकविहारी थे, जिस प्रकार सूर्यको सब बन्दना करते हैं उसी प्रकार मुनिराजको भी सब बन्दना

१ अज्ञान । २ बुधः । ३ कालयापना । ४ सुदेशकुलजात्यादिसामग्र्ये । ५ गच्छतः । ६ आत्मन् स्वं ल० ।  
 ७ आत्महिते । ८ मार्गे । ९ वरं ल०, य० । रति कुरु अ०, स० । १० वान्यकमालवेतात् निजनगरं प्राप्य ।  
 ११ विजयार्द्धचिलात् भुवं प्राप्य । १२ श्रीगृहम् । १३ आदित्यः । १४ हिरण्यवर्मणो जनन्या शशिप्रभाया सह । १५ गुणवत्यादिकायाः समीपे । १६ रविपक्षे दिशवत् अस्त्ररं च विभूषयत्तिः । १७ गणनवारिणः ।  
 १८ सर्वकालोत्कृष्णोषः । १९ जगच्छक्तुः । २० रविरिव ।

सप्रभा चन्द्रलेखेव सह तत्र प्रभावती । गुणवत्ता समागैस्ते लंगतिः प्रयाघदच्छन्ना ॥२२२॥  
 ३ गुणवत्याधिकां दद्वता नवोक्ता प्रियदत्तता । ४ कुतीऽन्यौ॒ गणिनी॑ याम्ब्रते॑ स्वगैतेसि॑ प्रभावती॑ ॥२२३॥  
 तच्छुद्वा नेत्रभूता॑ नौ॒ सैवेति॑० शुचमापता । कुतः प्रानिस्तयेष्युक्ता साऽब्रवीन् प्रियदत्तता ॥२२४॥  
 न स्मरित्यमि किं पारावतद्वन्द्वं सवदृग्मे । ५ तत्राहं रतिषेणति तच्छुत्वा विस्मिताऽवदत् ॥२२५॥  
 कवासौ रतिवरीऽद्येति सोऽपि विद्याधराधिपः । हिरण्यवर्मा॒॑ कर्मार्थिं॑ तिश्चेति॒॑३४ सावर्द्धन् ॥२२६॥  
 प्रियदत्ताऽपि ते॒॑ गन्धा अन्दिष्टै॒॑४ महामुनिम् । प्रभावती परिपश्नान् पश्युदत्ताह वृत्तकम् ॥२२७॥  
 विजयार्द्धगिरेष्य गान्धारनगरादिह॑५ । विहर्तु रतिषेणोऽमा गान्धार्या प्रियवाङ्गम ॥२२८॥

गान्धारी सर्पेदष्टाऽहमिति तत्र भृषा हितता । मन्त्रौषधीः प्रयोज्यास्याः अर्षो॑६ विद्याधरत्वं सः ॥२२९॥

करते थे, जिस प्रकार सूर्यका नित्य उदय होता है उसी प्रकार मुनिराजके भी जान अद्विका नित्य उदय होता रहता था, जिस प्रकार सूर्य बुध अर्थात् बुधग्रहका स्वामी होता है उसी प्रकार मुनिराज भी बुध—अर्थात् विद्वानोंके स्वामी थे, जिस प्रकार सूर्य विश्वदृश्वा अर्थात् सब पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला है उसी प्रकार मुनिराज भी विश्वदृश्वा अर्थात् सब पदार्थोंको जाननेवाले थे, जिस प्रकार सूर्य विरोचन अर्थात् अत्यन्त देवीप्यमान रहता है अथवा विरोचन नामको धारण करनेवाला है उसी प्रकार मुनिराज भी विरोचन अर्थात् अत्यन्त देवीप्यमान थे अबवा हृचिरहित उदासीन थे और जिस प्रकार सूर्य पुण्डरीकिणी अर्थात् कमलिनीको प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार मुनिराज भी पुण्डरीकिणी अर्थात् विदेह श्वेतकी एक विशेष नगरीको आनन्दित करते थे इस प्रकार सूर्यकी समानता रखनेवाले मुनिराज हिरण्यवर्मा किसी समय पुण्डरीकिणी नगरीमें पधारे ॥२२०—२२१॥ प्रभामहित चन्द्रमाको कलाके समान आयिका-प्रभावती भी वहाँ आयी और गुणवती-गणिनीके साथ मिलकर रहने लगी सो ठीक ही है क्योंकि समायम अगती इच्छामुक्तार होता है ॥२२२॥ गुणवती गणिनीको देखकर प्रियदत्ताने नमस्कार कर पूछा कि संघाधिकारिणी अमितमति कहा है ? तब उसने कहा कि 'वह तो स्वर्ग चली गयी है' यह सुनकर प्रभावती कुछ शोक करने लगी और कहने लगी कि 'हम दोनोंकी आखें बहीं थीं,' तब प्रियदत्ताने पूछा कि उनके साथ तुम्हारा प्रेम कैसे हुआ ? उत्तरमें प्रभावती कहने लगी कि आपको क्या स्मरण नहीं है आपके घरमें जो कवृतर-कवृतरीका जोड़ा रहता था उनमेंसे मैं रतिषेणा नामकी कवृतरी हूँ, यह सुनकर प्रियदत्ता आश्चर्यसे चकित होकर कहने लगी कि 'वह रतिष्वर कवृतर आज कहाँ है तब प्रभावतीने कहा कि वह भी विद्याधरोंका राजा हिरण्यवर्मा हुआ है और कर्मणी शत्रुओंको नाश करनेवाला वह आज उसी पुण्डरीकिणी नगरीमें विराजमान है। प्रियदत्ताने भी जाकर महामुनि-हिरण्यवर्माकी बन्दना की और फिर प्रभावतीके पूछनेपर अपने पतिका वृत्तान्त इस प्रकार कहने लगी ॥२२३—२२७॥

एक रतिषेण नामका विद्याधर अपनी स्त्री गान्धारीके साथ-साथ इसी विजयार्थ पर्वतके गान्धार नगरसे विहार करनेके लिए यहाँ आया था ॥२२८॥ मुझे सर्पने काट खाया है इस प्रकार हूठ-झूठ बहाना कर गान्धारी यहाँ पड़ रही, सेठ कुबेरकान्त और विद्याधरने बहुत-सी ओषधियोंका प्रयोग किया परन्तु गान्धारीने मायाचारीसे कह दिया कि 'अभी मुझे

१ पुण्डरीकिण्याम् । २ समागतवती संगतवती वा । ३ गुणवत्यादिका ट० । ४ गुणवती शशिप्रभावत्याधिका । ५ चवास्ते । ६ पश्यस्वती । ७ अनन्तमतिसहिताऽमितमत्याधिका । ८ गुणवतीं जगाद । ९ नार्क प्राप्तेति । १० नेत्रसदृशी । ११ प्रियदत्ता । १२ कर्मार्थाति ल०, प० । १३ अस्मिन् पुरे तिष्ठतीति । १४ प्रभावती । १५ हिरण्यवर्ममुनिम् । १६ पुनरागत्य । १७ पुण्डरीकिण्याम् । १८ कुबेरकान्तः ।

मायया नास्मि शान्तंति तद्वाच्यान् खेदमानती<sup>१</sup> । आह तु स्वपती याते वने शक्तिमद्वयम्<sup>२</sup> ॥२३०॥  
 गान्धारीं ब्रह्मकामावे<sup>३</sup> सुपेत्य स्मृतिकिशम् । दर्शयन्तीं निराक्ष्याह चण्डिवयों ददवतः ॥२३१॥  
 अहं<sup>४</sup> बर्षवरो वेत्सि न किं मामिल्युपाथवित् । व्याघ्राद् विरक्षचित्तां तां तदेव हि विवः फलम् ॥२३२॥  
 तद्रात्रीमागतं पत्यी स्वे स्वास्थ्यमहमागता । एवौपयप्रबोधयुक्त्वाऽगात् सप्तातः पुरम् ॥२३३॥  
 दृष्टितःतकुबेराण्यो मिथान्तश्च कुबेरवान् । पृथुः कुबेरदत्तश्च कुबेरश्चान्तदेववाक् ॥२३४॥  
 कुबेरादिप्रियश्चान्यः पञ्चेन संचितश्रुताः । कलाकौशलमाप्नाः संपज्जनवर्याश्रुताः ॥२३५॥  
 एतैः स्वसुनुभिः साध्यमासुद्ध शिविको वनम् । शृत्वा कुबेरश्चार्भं मां लिहतुं समागतम् ॥२३६॥  
 एषा कदाचिद् गान्धारी पृथक्<sup>६</sup> पृष्ठवती पुमान् । श्वरद्वेष्टी<sup>७</sup> भेति तस्मत्यसुत<sup>८</sup> नेत्यन्ववादिशम् ॥२३७॥  
 तस्मत्यमेव<sup>९</sup> मस्तीन्यां प्रस्पसौ न पुमानिति । तद्राक्षर्यं चिरज्यासौ<sup>१०</sup> सर्वतः संयमं द्विता ॥२३८॥  
 पुनरस्त्रागता<sup>११</sup> इष्टा दीक्षेयं केन हेतुना । तवेति सा मया एषा प्रमणम्य ग्रियाक्षिभिः ॥२३९॥  
 अहेष्येव ते तपोहेतुरिति प्रत्ययश्चादसौ । निगृहं लद्वदः अर्षी श्रुत्वाऽगत्या पुरः स्थितः ॥२४०॥  
 मामर्जवीत<sup>१२</sup> सग्राह्यां मे<sup>१३</sup> क्वाशीति परिषुष्टवान् । सोऽपि मखारणेनैव गृहीत्वेहागमत्पः<sup>१४</sup> ॥२४१॥  
 इति तद्वचनात्तद्वेष्टी नृपत्राभ्येत्य तं सुनिम् । वन्दित्वाधर्ममाषु च्छय काल्लक्ष्या महीपतिः<sup>१५</sup> ॥२४२॥

शान्ति नहीं हुई है, यह सुनकर उसके पति रतिषेणको बहुत दुःख हुआ । वह अधिक शक्तिवाली औषधि लानेके लिए वनमें चला गया, इधर उसके चले जानेपर गान्धारीने कुलटापन धारण कर कामको चेष्टाएँ दिखायीं, यह देखकर उपाधको जानेवाले और अपने ब्रतमें दृढ़ रहनेवाले सेठ कुबेरकान्तने कहा कि अरे, मैं तो नपूर्णक हूँ – क्या तुझे मालूम नहीं ? ऐसा कहकर सेठने उसे अपनेसे विरक्तचित्त कर दिया सो छीक ही है क्योंकि बुद्धिका कल यही है ॥२३९–२३२॥ इतनेमें ही उसका पति बापस आ गया, तब गान्धारीने कह दिया कि मैं पहले दी हुई औषधिके प्रयोगसे ही स्वस्थ हो गयी है ऐसा कहकर वह पतिके साथ नगरमें चली गयी ॥२३३॥ कुबेरदृष्टि, कुबेरग्रिह, कुबेरदत्त, कुबेरदेव और कुबेरप्रिय ये पाँच मेरे पुत्र थे । ये पाँचों ही समस्त शास्त्रोंको जानेवाले, कला-कौशलमें निपुण तथा नव योवनसे सुशोभित थे । किसी एक दिन जब कि कुबेरश्री कन्या मेरे गर्भमें थी तब मैं अपने पूर्वोक्त पुत्रोंके साथ पालकीमें बैठकर वनमें विहार करनेके लिए गयी थी उसी समय गान्धारीने मुझे देखकर और अलग ले जाकर मुझसे पूछा कि ‘आपके सेठ पुरुष नहीं हैं’ क्या यह बात सच है अथवा ज्ञूठ ? तब मैंने उत्तर दिया कि बिलकुल सच है क्योंकि वे मेरे सिवाय अन्य स्त्रियोंके प्रति पुरुष नहीं हैं यह सुनकर उसने विरक्त हो अपने पतिके साथ-साथ संयम धारण कर लिया ॥२३४–२३८॥ किसी एक दिन वह गान्धारी आयिका यहाँ फिर आयी तब मैंने दर्शन और प्रणाम कर प्रिय वचनोंद्वारा पूछा कि ‘आपने यह दीक्षा किस कारणसे ली है ?’ उसने उत्तर दिया था कि ‘मेरे तपादवरणका कारण तेरा सेठ ही है, सेठ भी गुप्तरूपसे यह बात सुनकर सामने आकर खड़े हो गये और पूछने लगे कि जिसने मुझे जीत लिया है ऐसा मेरा गित्र आज कहाँ है ? तब गान्धारी आयिकाने कहा कि ‘वे भी मेरे ही कारण तप धारण कर यहाँ पश्चारे हैं ॥२३९–२४१॥ यह सुनकर सेठ और राजा दोनों ही उन मुनिराजके सभीप गपे और दीनोंने

१—मायते ल० । ती दी खेदमानती अ०, स० । २ विजयाद्ववनम् । ३ विषापहरणसामर्थ्यवन्महीण्यम् ।  
 ४ गान्धारी ल० । ५ कुलटात्वम् । ६ दर्शयन्ती ल० । ७ वर्षधरः ल० । ८ पष्ठः । ९ कुबेर-  
 देवः । १० कुबेरश्रियः संबन्धित गर्भम् । ११ एकान्ते । १२ पुमान् न भवतीति । १३ अस्त्वं वा । १४ मत् ।  
 १५ गान्धारी । १६ पुण्डरीकिष्याम् । १७ जितवती । १८ मम मित्र रतिषेण । १९ कुत्र तिष्ठतीति ।  
 २० गतस्तपः ल०, अ०, प०, स० । २१ लोकपालः ।

गुणपालाय तद्वाज्यं दृश्य संयममादधे<sup>१</sup> । निकटे रतिषेणस्य विद्याप्रसुनीशितुः ॥२४३॥  
 पञ्चमं<sup>२</sup> स्वपदे सूतुं नियोज्यान्यैः<sup>३</sup> सहात्मजैः । यथौ श्रेष्ठौ<sup>४</sup> च तत्त्वैः दीक्षां मोक्षामिलायुकः ॥२४४॥  
 तथोक्त्वा कान्तवृत्तान्तं<sup>५</sup> सा<sup>६</sup> समुत्पन्नसंत्रिदा<sup>७</sup> । विरभ्य गृहसंवासात् कुबेरादिग्रियं सतीम्<sup>८</sup> ॥२४५॥  
 ८<sup>९</sup> गुणपालाय तद्वा स्वां सुतां गुणवत्ती<sup>१०</sup> शिता । प्रभावशुपदेशेन प्रियदत्ताऽप्यदीक्षत<sup>११</sup> ॥२४६॥  
 सुनि हिरण्यवर्मणं कदाचित् प्रेतभूतके<sup>१२</sup> । दिनानि सप्त संगोष्ठी<sup>१३</sup> प्रतिमायोगधारिणम् ॥२४७॥  
 बन्दित्वा नागराः<sup>१४</sup> सर्वं तत्पूर्वमवसंकथा । कुर्वणा पुरमागद्धन् विद्युच्चोरोऽप्युदीरितात्<sup>१५</sup> ॥२४८॥  
 चेटक्याः प्रियदत्तायास्तमुनेः प्राक्तनं सवम् । विदित्वा तद्गतकोधात्तदोप्यक्षविमङ्गकः<sup>१६</sup> ॥२४९॥  
 मुनिष्ठयक्प्रदेशस्थां<sup>१७</sup> प्रतिमायोगमात्प्रिताम्<sup>१८</sup> । प्रभावतीं च संयोज्य चितिकायां<sup>१९</sup> दुराशयः ॥२५०॥  
 एकस्यामेव निक्षिद्याधाक्षी<sup>२०</sup> दृवजिष्ठक्षया<sup>२१</sup> । सोद्वा तदुपसर्गं ती विशुद्धपरिणामतः ॥२५१॥  
 सर्वं समुदपदेतां<sup>२२</sup> क्षमया किं म जायते ।<sup>२३</sup> सुवर्णवर्मा तज्ज्ञात्वा विद्युच्चोरस्य निग्रहम् ॥२५२॥  
 करिष्यामीति कोपेन पापिनः संगतं व्यवाहै<sup>२४</sup> । विदित्वाऽप्यधिकोषेन तती<sup>२५</sup> स्वर्गंनिवासिनौ ॥२५३॥  
 प्राप्य संयमरूपेण सुतां धर्मकथादिभिः । तत्र श्रद्धाप्य<sup>२६</sup> तं कोपाक्षायस्य कृपयाऽहिती<sup>२७</sup> ॥२५४॥

ही बन्दना कर धर्मका स्वरूप पूछा । काललब्धिका निमित्त पाकर राजा लोकपालने अपने पुत्र गुणपालके लिए राज्य दिया और उन्हीं विद्याधर मनि रतिषेणके निकट संप्रभ धारण कर लिया ॥२४२—२४३॥ मोक्षके अभिलाषी सेठने भी अपने पाँचवें पुत्र — कुबेरप्रियको अपने पदपर नियुक्त कर अन्य सब पुत्रोंके साथ-साथ वहीं दीक्षा धारण की ॥२४४॥ इस प्रकार प्रियदत्ता अपने पतिका वृत्तान्त कहकर उत्पन्न हुए आत्मतानके द्वारा गृहवाससे विरक्त हो गयी थी, उस सतीने अपनी कुबेरथी पुत्री राजा गुणपलको दी और स्वर्य गुणवत्ती आर्थिकाके समीप जाकर प्रभावतीके उपदेशसे दीक्षा धारण कर ली ॥२४५—२४६॥ किसी समय मुनिराज हिरण्यवर्मने सात दिनका नियम लेकर इमशानभूमिमें प्रतिमा घोग धारण किया, नगरके सब लोग उनकी बन्दना करनेके लिए गये थे । बन्दना कर उनके पूर्वभवकी कथाएँ कहते हुए जब सब लोग नगरको बाह्यस लौट आये तब एक विद्युच्चोरने भी प्रियदत्ताकी चेटीसे उन मुनिराजका वृत्तान्त सुना, सुनकर उसे उनके प्रति कुछ क्रोध उत्पन्न हुआ और उसी क्रोध-के कारण उसे विभंगावधि भी प्रकट हो गया, उस विभंगावधिसे उसने मुनिराजके पूर्वभवके सब समाचार जान लिये । यद्यपि मुनिराज प्रतिमायोग धारण कर अलग ही विराजमान थे और प्रभावती भी अलग विद्यमान थी तो भी उस दुष्टने पापसंचय करनेकी इच्छासे उन देवोंको मिलाकर और एक ही चितापर रखकर जला दिया वे दोनों विशुद्ध परिणामोंसे उपसर्ग सहन कर स्वर्गमें उत्पन्न हुए सो ठीक ही है क्योंकि क्षमासे क्या-क्या नहीं होता ? जब सुवर्णवर्मा-को इस बातका पता चला तब उसने प्रतिज्ञा की कि मैं विद्युच्चोरका निग्रह अवश्य ही करूँगा — उसे अवश्य ही मारूँगा । यह प्रतिज्ञा स्वर्गमें रहनेवाले हिरण्यवर्मा और प्रभावतीके जीव देव-देवियोंने अवधिज्ञानसे जान ली, शीघ्र ही संयमीका रूप बनाकर पुत्रके पास पहुँचे, दया १—माददी अ०, ल०, प०, स०, इ० । २ मुर्तीशिनः ल० । ३ चरमपुत्रं कुबेरप्रियम् । ४ कुबेरद्यितादिभिः । ५ कुबेरकान्तः । ६ प्रियस्य वृत्तकम् । ७ प्रियदत्ता । ८ समुत्पन्नज्ञानेन । ९ सती ल० । १० लोकपालस्य शुताय । ११ गुणवर्णायिकाम् । १२ दीक्षामप्रहीत् । १३ चैत्यभूतले ल० । चितायोग्यमहीतले । परेतभूमा-वित्यर्थः । १४ प्रतिज्ञा कृत्वा । १५ नगरजनाः । १६ वचनात् । उदीरिताम् ल०, अ०, प०, स०, इ० । १७ विभङ्गतः ल०, अ०, स०, इ० । १८ नित्यमण्डितचैत्यालयस्य पुरः प्रतिमायोगस्थितामित्यर्थः । प्रदेशस्य ल० । १९ —मास्थितम् ल० । २० शब्दशब्दायाम् । २१ दहति स्व । २२ पापं गृहीतुमिच्छया । २३ कनकप्रभ-देवकनकप्रभदेवो समुत्पन्नौ । २४ हिरण्यवर्मणः सुतः । २५ प्रतिज्ञामकरोत् । २६ हिरण्यवर्मप्रभावतीचरदेव-देवधौ । २७ विश्वासं नीत्वा । २८ दयां स्वीकृतौ ।

दिव्यसूर्य समादाय निगद्य निजशुलकम् । प्रदायाभरणं तस्मै परादृश्यं स्वपदं चालौ ॥२५५॥  
 कहाचिद् वत्सविषये सुसीमा नगरे सुनेः । शिवघोषस्य कैवल्यं सुदपाद्यस्तथासिनः ॥२५६॥  
 शक्तिये<sup>१</sup> शाची मेनका च नत्वा जिमेश्वरम् । समाधित्य सुराधीकां स्थिते प्रह्लादैः सुरेणितुः ॥२५७॥  
 अत्रैष सप्तमेऽङ्गि<sup>२</sup> प्राक्<sup>३</sup> समात्मावक्षते । नामा पुष्पवती साम्यां प्रथमा पुष्पपालिता ॥२५८॥  
 'कुसुमावचयासन्ते वने सर्पाग्निहेतुना'<sup>४</sup> । मृते देव्यावजायेतामित्याहासी स्म तीर्थकृत् ॥२५९॥  
 प्रभावतीचरी हेती शुचा देवश्च तत्पतिः । स्वपूर्वमवसर्वमध्यं तत्रामातां सभावनेः<sup>५</sup> ॥२६०॥  
 निजाद्यजग्मसीक्षानुभूदेशाज्ञितेच्छया । आखोक्यस्तौ तत्सर्पसरोवणसमीपसौ ॥२६१॥  
 सह साधेन<sup>६</sup> भीमाग्न्यं साधुं एष्वा समागतम् । विनयेनाभिवन्ध्येन धर्मं तौ समपृच्छताम् ॥२६२॥  
 सुमित्रहृष्टवं श्रुत्वा नाहं धर्मोपदेशने । सर्वागमाधीचिकार्थेऽसमर्थो नवसंयतः ॥२६३॥  
 प्रसूपयिष्यते किंचिद्<sup>७</sup> स बुद्धदनुरोधतः । मया तथापि ओतर्यं यथाशक्त्यवधानवद्<sup>८</sup> ॥२६४॥  
 हति सम्यक्त्वसत्पात्रदानादि श्रावकाध्यम् । <sup>९</sup>यमाक्षितिसंबन्धं धर्मं गतिचतुर्थम् ॥२६५॥  
 सद्गतुकल्पयन्तं भुक्तिभुक्तिनिवन्धम्<sup>१०</sup> । जीवादिद्वयसर्वं च यथादत् प्रत्यपादयत् ॥२६६॥

धारण करनेवाले उन देव-देवियोंने धर्मकथाओं आदिके द्वारा तत्त्वश्रद्धान कराकर उसका क्रोध दूर किया और अन्तमें अपना दिव्यरूप प्रकट कर अपना सब हाल कहा तथा उसे बहुमूल्य आभूषण देकर दोनों ही अपने स्थानपर चले गये ॥२५७-२५८॥ किसी एक दिन वत्स देशमें सुसीमानगरीके समीप धातिया कर्म नष्ट करनेवाले शिवघोष मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥२५९॥ उस उत्सवमें शाची और मेनका नामकी देवांगनाएं भी इन्द्रके साथ आयीं और श्रीजिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर इन्द्रके पास ही बैठ गयीं । इन्द्रने भगवान्से पूछा कि ये दोनों किस कारणसे देवियाँ हुईं हैं ? तब तीर्थं कर देव कहने लगे कि दोनों ही पूर्वमवमें मालिनकी लड़कियाँ थीं, पहलीका नाम पुष्पपालिता था और दूसरीका पुष्पवती । इन दोनोंने आजसे सातवें दिन पहले श्रावकन्नत लिये थे । एक दिन ये वनमें फूल तोड़नेमें लगी हुई थीं कि सर्पलूपी अग्निके कारण मर गयीं और मरकर देवियाँ हुईं हैं ॥२५७-२५९॥ हिरण्यवर्मा और प्रभावतीके जीव जो देव-देवी हुए थे उन्होंने भी उस समय समवसरणमें अपने पूर्वमवके सम्बन्ध सुने और फिर दोनों ही सभाभूमिसे निकलकर इच्छानुसार पूर्वमव सम्बन्धी सुखानुभवनके स्थानोंको देखते हुए सर्पसरोवरके समीपवाले वनमें पहुँचे ॥२६०-२६१॥ उस वनमें अपने संघके साथ-साथ एक भीम नामके मुनि भी आये हुए थे, दोनोंने उन्हें देखकर विनयपूर्वक नमस्कार किया और धर्मका स्वरूप पूछा ॥२६२॥ उनके बचन सुनकर मुनि कहने लगे कि अभी नवदीक्षित हैं, धर्मका उपदेश देता तो समस्त शास्त्रोंका धर्म जातनेवाले मुनियोंका कार्य है इसलिए यद्यपि मैं धर्मोपदेश देनेमें समर्थ नहीं हूँ तथापि तुम्हारे अनुरोधसे शक्तिके अनुसार कुछ कहता हूँ तुम लोगोंको सावधान होकर सुनना चाहिए ॥२६३-२६४॥ यह कहकर उन्होंने सम्यगदर्शन तथा सत्पात्रदान आदि श्रावक सम्बन्धी और यम आदि मुनि सम्बन्धी धर्मका निरूपण किया । चारों गतियाँ, उनके कारण और फल, स्वर्ग सोक्षके निदान एवं जीवादि द्रव्य और तत्त्व इन

१ दिव्यं ऋं स०, १०, १० । २ समुत्पन्नम् । ३ इन्द्रस्य बलभै । ४ इमे पूर्वजन्मनिके इति इन्द्रस्य प्रणन-वशात् तीर्थकृदात् । ५ आ सप्तदिनात् पूर्वमित्यर्थः । ६ पूर्वजन्मनि । ७ सम्यक्स्वीकृत । ८ साम्या ल० । ९ पुष्पकरणकनामिनि वने पुष्पवाटीकुसुमावचयाधीमासक्ते इत्यर्थः । १० अहिविषाग्निकारणेन । ११ सम-सवरणात् । १२ वणिक्षिणिरेण । १३ धर्मः । १४ क्रियाविशेषणम् । १५ संयम । १६ मुक्तिकारणम् ।

त वश्रुत्वा उनरायाभ्यां भवता केन हेतुना । प्रवज्येत्यनुयुक्तोऽसौ बत्तुं प्रक्रान्तवान् सुनिः ॥ २६७॥  
 विदेह पुष्कलावस्था नगरी पुण्डरीकिणी । तत्राहं भीमनामाऽसौ स्वपापाद् दुर्गते<sup>१</sup> कुले ॥ २६८॥  
 अन्येयुर्यतिमासाव तिचित्कालादिलिघ्निः । श्रुत्वा धर्मं ततो लेखे गृहीमूलगुणाष्टकम् ॥ २६९॥  
 तज्जात्वा मतिपता पुत्र किमेभिर्मुक्तर्युष्ठा । दारिष्यकर्दैमालिप्तदेहानां<sup>२</sup> मिष्टफलैरिह ॥ २७०॥  
 भवताम्यतानि दास्यामस्तस्मै स्वर्णकिकाङ्क्षिणैः । येहिंकं कलमिष्टायो भवेष्यनेह जीविका ॥ २७१॥  
 इतं दत्तवतः स्थानं तस्य मे दशंशत्यसौ । सामवादीद्<sup>३</sup> गृहीत्वैनमावजस्तहमन्तरे ॥ २७२॥  
 वज्रकेतोमहावीर्यां देवतागृहकुक्कुटम् । गाहवस्त्रिकरणसंक्षेप्यमाणधान्योपयोगिनम्<sup>४</sup> ॥ २७३॥  
 युम्बो हत्वतो दृष्टिः<sup>५</sup> जिमेदेवाधिनैः धनम्<sup>६</sup> । क्षेत्रादिपङ्कुवानस्य धनदक्ष्य दुर्मतेः ॥ २७४॥  
 रमनोन्यादनं हारमनन्वयमणिनिमितम् । श्रंष्टिः प्रायं चौर्येण गणिकावै समर्पणात् ॥ २७५॥  
 रतिपिङ्गलसंज्ञस्य शूले सलवरार्पणम् । निशि मानुः कर्नीयस्याः कामनिलुससंविदः<sup>७</sup> ॥ २७६॥  
 युष्मा गेहं गतस्थानच्छेदनं पुरस्त्रिणः<sup>८</sup> । शेत्रलोभाक्षिजे ज्येष्ठे मृते दण्डहते<sup>९</sup> सति ॥ २७७॥  
 लोलस्थानवर्यमंजस्य<sup>१०</sup> "विलाप"<sup>११</sup> देशनिर्गमे । एते सामरदसेन प्रभूते निर्जिते धने ॥ २७८॥

सबका भी यथार्थं प्रतिपादन किया ॥ २६५—२६६॥ यह सुनकर उन देव-देवियोंने फिर पूछा कि आपने किस कारणसे दीक्षा धारण की है इस प्रकार पूछे जानेपर मुनिराज कहने लगे ॥ २६७॥

विदेहक्षेत्रके पुष्कलावती देशमें एक पुण्डरीकिणी नगरी है वहाँपर मैं अपने पापोंके कारण एक अत्यन्त दरिद्र कुलमें उत्पन्न हुआ था । मेरा नाम भीम है ॥ २६८॥ किसी अन्य दिन घोड़ी-सी काललिघ्नि आदिके त्रिमित्तसे मैं एक मुनिराजके पास पहुँचा और उनसे धर्मश्वरण कर मैंने गृहस्थोंके आठ मूल गुण धारण किये ॥ २६९॥ जब हमारे पिताको इस बातका पता चला तब वे कहने लगे कि "दरिद्रतारूपी कीचड़से जिनका समस्त शरीर लिप्त हो रहा है ऐसे हम लोगोंको इन व्यर्थके कठिन ब्रतोंसे क्या प्रयोजन है । इनका फल इस लोकमें तो मिलता नहीं है, इसलिए आओ, ये ब्रत स्वर्गलोककी इच्छा करनेवाले उसी मुनिके लिए दे आवें । हम तो इस लोकसम्बन्धी फल चाहते हैं जिससे कि जीविका चल सके ॥ २७०—२७१॥ ब्रत देनेवाले गुरुका स्थान मुझे दिखा" ऐसा मेरे पिताने मुझसे कहा तब मैं उन्हें साथ लेकर चला । रास्तेमें मैंने देखा कि बज्जकेतु नामके एक पुरुषको दण्ड दिया जा रहा है । पितासे मैंने उसका कारण पूछा, तब कहने लगे कि यह सूर्यकी किरणोंमें अपना अनाज सुखा रहा था और किसी मन्दिरका मुर्गा उसे खा रहा था । इसने उसे इतना मारा कि बेचारा मर गया । इसलिए ही लोग इसे दण्ड दे रहे हैं । आगे चलकर देखा कि जिनदेवके ढारा रखी हुई धरोहरको लोभसे छिपानेवाले दुर्बुद्धि धनदेवकी जीभ उखाड़ी जा रही है । कुछ आगे चलकर देखा कि एक सेठके घरसे बहुमूल्य मणियोंका हार चुराकर वेश्याको देनेके अपराधमें रतिपिङ्गलको कोतवाल शूलीपर चढ़ा रहा है, किसी जगह देखा कि कामवासनासे जिसका सब ज्ञान नष्ट हो गया है ऐसा एक कोतवाल रातमें अपनी माताकी छोटी बहनकी पुत्रीके घर गया था इसलिए राज्यकर्मचारी उसका अंग काट रहे हैं । दूसरी जगह देखा कि सार्थक नाम धारण करनेवाले एक लोल नामके किसानने खेतके लोभसे अपने बड़े लड़कोंको ढण्डोंसे मार-मारकर मार डाला है, इसलिए उसे देशनिकालेकी सजा

१ देवदेवीस्याम् । २ पष्टः । ३ ग्रामभृते सम् । ४ अभूवम् । ५ दरिद्रे कुले । ६ अस्माकम् । ७ पितॄरम् ।  
 ८ अदन्तम् । भक्षयन्त्मित्यर्थः । ९ जिनदेवास्येन दक्षम् । १० बज्जवयतः । ११ निरस्तशानस्य । १२ तल-  
 वरस्य । १३ लोलेन हते । १४ लोल इति नामः । १५ परिदेवनम् ।

दातुं समुद्रदत्स्य निश्चकतेरसये क्रुधा । परिवद्विंतदुर्गन्थधृमान्तर्वर्तिनश्चरम् ॥ २८६ ॥  
 निरोधमभयोऽन्तीपणायामानन्ददेशनात् । अद्वकस्य नृपोरञ्जवानिः करखण्डनम् ॥ २८० ॥  
 आनन्दराजगुग्रस्य तद्भुक्त्याऽवस्कराशनम् । मद्यविक्रयणे वालं कंचिद्वामरणेच्छया ॥ २८१ ॥  
 हत्या भूमौ विनिष्ठिसुष्टव्यास्तल्पं विधानकम् । प्रकाशितवर्ती स्वात्मजे शुण्डायाइच्च निग्रहम् ॥ २८२ ॥  
 पापान्वेतानि कर्मणि पश्यन् हिंसादिदेशतः । अत्रामुत्र च पापस्य परिपाळं दुरुत्तरम् ॥ २८३ ॥  
 अवश्यायानभिप्रेतश्वस्यारोऽस्वाद् भयान् । अप्यमोषमृषायोषाइलेषहिंसादिवृष्टिः ॥ २८४ ॥  
 तात्रैव किञ्च्चमुत्रापि ततदिवव्रध्नेचिताः । अहमाकमणि दीपार्थं प्राक्तनान् पापकर्मणः ॥ २८५ ॥  
 द्वं लस्मान् समुच्चेदं पुर्णं सच्चेदित्तं पुरु । इति तं मोचयित्वाऽप्यहीयं दीक्षां सुमुक्षया ॥ २८६ ॥  
 सथो गुह्यसादेन सर्वशास्त्राभिरासगः । विशुद्धमतिरन्येषु समीपे सर्ववेदिनः ॥ २८७ ॥  
 मद्वद्वार्त्तजन्मानि समर्थार्थं यथाभूतम् । कथयित्याभ्यहं तानि कर्तुं चाऽकौतुकं महत् ॥ २८८ ॥  
 इहेव पुष्कलावत्यां त्रिपये पुण्डरीकिणीम् । परिपालयति प्रीया वसुपालमहीभुजि ॥ २८९ ॥  
 विशुद्धेषाद्वयं चोरमवप्यभ्यं करस्तिवतम् । धनं स्वाकृत्य शेषं च सवता दीक्षतामिति ॥ २९० ॥

वी जा रही है और वह विलाप कर रहा है। आगे जानेपर देखा कि सागरदत्तने जुआमें समुद्र-  
 दत्तका बहुत-सा धन जीत लिया था परन्तु समुद्रदत्त देनेमें असमर्थ था इसलिए उसने कोधसे उसे  
 बहुत देर तक दुर्गन्धित धुअंके बीच धूपमें बैठाल रखा है, किसी जगह देखा कि आनन्द महा-  
 राजकीअभय घोषणा कराये जानेपर भी उनके पुत्र अंगकने राजाका भेड़ा मारकर खा लिया है  
 इसलिए उसके हाथ काटकर उसे बिछा खिलाया जा रहा है और अन्य स्थानपर देखा कि मद्य  
 पीनेवाली स्त्रीने मद्य सरीदनेके लिए आभूषण लेनेकी इच्छासे किसी बालकको मारकर जमीनमें  
 गड़ दिया था, वह यह समाचार अपने पुत्रसे कह रही थी कि किसी राज कर्मजागीने उसे सुन  
 लिया इसलिए उसे दण्ड दिया जा रहा है। हिंसा आदि दोषोंसे उत्पन्न हुए इन पाप कायीको  
 देखकर मैंने निश्चय किया कि पापका फल इस लोक तथा परलोक दोनों ही अगह बुरा होता  
 है। मैंने संसारके भयसे ब्रत छोड़ना उचित नहीं समझा। मैं सोचने लगा कि हिंसा, झूठ, चोरी,  
 परस्त्रीसेवन आदिसे दूषित हुए पुरुषोंको इसी जन्ममें अनेक प्रकारके वध-बन्धनका दुःख भोगना  
 पड़ता हो सो बात नहीं किन्तु परलोकमें भी वही दुःख भोगने पड़ते हैं, हमारी यह दरिद्रता भी  
 तो पहलेके पापकर्मोंसे मिली है, इसलिए सदाचारी पुरुषोंको इस पुण्यका अधिकसे अधिक संचय  
 करना चाहिए यह सोचकर मैंने अपने पिताको छोड़कर मोक्षकी इच्छासे दीक्षा धारण कर  
 ली है ॥ २८२-२८६ ॥ गुह्यके प्रसादसे मैं शीघ्र ही सब शास्त्ररूपी समुद्रका पारगामी हो गया  
 और मेरी बुद्धि भी विशुद्ध हो गयी। किसी अन्य दिन मैंने सर्वज्ञ देवके समीप दोषोंसे भरे हुए  
 अपने पूर्वजन्म सुने थे सो उसीके अनुसार आप लोगोंका बड़ा भारी कौतुक करनेके लिए उन्हें  
 कहता हूँ ॥ २८७-२८८ ॥

इसी पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीको राजा वसुपाल वडे प्रेमसे पालन करते  
 थे ॥ २८९ ॥ किसी एक दिन कौतवालने विशुद्धेष नामका चोर पकड़ा, उसके हाथमें जो धन  
 था उसे लेकर कहा कि बाकीका धन और दो, धन न देनेपर रक्षकोंने उसे दण्ड दिया तब उसने

१ घोषणायां सत्याम् । २ आनन्दराजन्पत्य निवेशनात् । ३ एलक( एडक )पातकस्य । ४ तद्भुक्त्वा  
 इत्यपि पाठः । ५ गूढभक्षणम् । ६ मद्यवद्वारनिपिलम् । ७ बालघातिन्याः सुते । ८ मद्यपायिन्याः ।  
 ९ अनिष्टो ग्रहत्यापो यम्य अननुपत्तद्रश्वाग इत्यर्थः । १० हिंसाचौर्यादृतभापाश्वद्वृपरिप्रहः । रोषपोषमृषा-  
 योषा हिंसादिश्लेषादित्तः । ११ दारिद्रयम् । १२ मोक्षुमिच्छया । १३ सर्वज्ञस्य । १४ शृणोमि स्म ।  
 १५ युक्त्योः । १६ रक्षति सति । १७ बलाकारेण गृहीत्वा ।

आरश्चिणो<sup>१</sup> निगुहीयुर्दनं विमतये<sup>२</sup> धनम् । हत्यबीत् स<sup>३</sup> सोऽन्याह गुहीतं न मर्येति तत्<sup>४</sup> ॥२९१॥  
 विभन्नेरेव तद्गंहे रुद्रोपायेन केनचित् । दण्डकारणिकैः<sup>५</sup> ग्रोक्तं सूरस्ना पाशीश्चयोन्मितम् ॥२९२॥  
 शक्तो<sup>६</sup> भशणं मस्तैस्त्रशान्मुद्यभिताइनम् । सर्वेष्वहरणं चैतत्रयं जीवितवान्मुख्या ॥२९३॥  
 'स वर्वमनुभूयायात् प्राणान्ते वासको गतिम् । विद्युच्चोरस्वया हस्यलाभिस्थग्रस्कको नुपात् ॥२९४॥  
 लब्ध्याद्योऽप्यहं हन्मि<sup>७</sup> वैन हिंसादिवर्जनम् । प्रतिज्ञातं मथा साधोरित्याज्ञा नाकरोदसौ ॥२९५॥  
 गुहीतोन्मोचैः<sup>८</sup> इस्त्रेषु चोरारक्षकयोर्नृपः । शुद्धलावन्त्रनं रुद्रवा कारयामास निर्दृणम्<sup>९</sup> ॥२९६॥  
 विभिन्ने<sup>१०</sup> हस्तुता केवं शक्तो नेत्रेनुभुक्तवान् । प्रसुद्यधरकं चोरः सोऽप्येवं प्रत्यपादयत् ॥२९७॥  
 गत्युपरमसुर्यैष राज्ञः पितरि स्थानि । गुणपाले महाश्रेष्ठी कुबेरप्रियसंज्ञया ॥२९८॥  
 अत्रैव नाटकाचार्यतन्जा नाटयमालिका ।<sup>११</sup> आस्थायिकायां मावेन स्थायिनानुस्तुदुद्रसम् ॥२९९॥  
 तद्वालोक्य महोपालो बहुविस्मयमागमन् । गणिकोत्पलमालाल्यत् किमत्राइचर्यमात्रैवर ॥३००॥  
 श्रेष्ठिनोऽस्य<sup>१२</sup> मिथोऽप्येषुः प्रतिमायोगधारिणः । सोपवासस्य पूज्यस्य गस्ता जालयितुं मनः ॥३०१॥  
 नायक<sup>१३</sup> नदिहाइचर्यमित्याख्यद भूभुजापि सा । गुणप्रिये वृष्णावेति<sup>१४</sup> ग्रोक्ता शीलामिरक्षणम् ॥३०२॥  
 अभीष्टं मम देहाति तद्वत् ब्रह्मग्रहीत् । अस्यदा नद्युह<sup>१५</sup> सर्वरक्षितावयः समाप्तम् ॥३०३॥

कहा कि मैंने बाकीका धन विमतिके लिए दे दिया है । जब विमतिसे पूछा गया तब उसने कह दिया कि मैंने नहीं लिया है, इसके बाद कोतवालने वह धन किसी उपायसे विमतिके घर ही देख लिया, उसे दण्ड देना निश्चित हुआ, दण्ड देनेवालोंने कहा कि या तो मिट्टीकी तीन थाली मरकर विष्ठा खाओ, या मल्लोंके तीस मुक्कोंकी चोट सहो या अपना सब धन दो । जीवित रहनेकी इच्छासे उसने पूर्वोक्त तीनों दण्ड सहे और अन्तमें मरकर नरक गतिको प्राप्त हुआ । राजाने एक चाण्डालको आज्ञा दी कि तू विद्युच्चोरको मार डाल, परन्तु आजा पाकर भी उसने कहा कि मैं इसे नहीं मार सकता क्योंकि मैंने एक मुनिसे हिंसादि छोड़नेकी प्रतिज्ञा ले रखी है ऐसा कहकर उसने जब राजाकी आज्ञा नहीं मानी तब राजाने कहा कि इसने कुछ घूस खा ली है इसलिए उसने क्रोधित होकर चोर और चाण्डाल दोनोंको निर्देशतापूर्वक सौंकलसे बैधवा दिया ॥ २९०-२९६ ॥ चोरने सञ्चुष्ट होकर चाण्डालसे पूछा कि तूने किस कारणसे मुझे नहीं मारा तब चाण्डाल इस प्रकार कहने लगा कि ॥ २९७ ॥ पहले इस नगरकी रक्षा इसी राजाके पिता गुणपाल करते थे और उनके पास कुबेरप्रिय नामका एक बड़ा सेठ रहता था ॥ २९८ ॥ इसी नगरीमें नाटयमालिका नामकी नाटकाचार्यकी एक पुत्री थी । एक दिन उसने राजसभामें रति आदि स्थायी भावों-द्वारा श्रुत्यादि रस प्रकट करते हुए नृत्य किया ॥२९९॥ वह नृत्य देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ तब उत्पलमाला नामकी वेश्या बोली कि हे देव, इसमें क्या आश्चर्य है ? एक दिन अत्यन्त शान्त और पूज्य कुबेरप्रिय सेठने उपवासके दिन प्रतिमा योग धारण किया था, उस दिन मैं उनका भन विचलित करनेके लिए गयी थी परन्तु उसमें समर्थ नहीं हो सकी । इस संसारमें वही बड़े आश्चर्यकी बात है । यह सुनकर राजाने कहा कि 'हे गुणप्रिये ! तुम्हे गुण बहुत प्यारे लगते हैं इसलिए जो इच्छा हो सो मौग ।' तब उसने कहा कि मुझे शीलद्रवतकी रक्षा करना इष्ट है यही बर दीजिए । राजाने वह बर उसे १ तलवराः । २ निष्ठाह कुर्याः । ३ विमतिनामधेयाय । ४ चोरः । ५ विस्तिरपि । ६ ग्रामाज्ञः  
 'पुरोहितादिष्मर्मकारिभिरित्यर्थः । ७ गूढस्य । 'उच्चारावस्करी वामले शक्तु । पुरोष उक्तोच गूढवर्चस्कमस्त्री विष्ठाविष्ठौ लित्याम् ।' हत्यभिधानात् । ८ विमतिः । ९ न वर्षं करोमि । १० 'लक्ष्म उक्तोच जामिषः' हत्यभिधानात् । ११ तलवरः । १२ निष्ठुपं यथा भवति तथा । १३ प्रत्युष्या अ०, स०, इ०, प० । १४ आस्थाने । १५ श्रेष्ठिनः शमितोऽप्येषुः ल०, अ०, प०, इ०, स० । १६ न समर्थोऽभूवमहम् । १७ दाक्षिण्य । १८ उत्पलमालागृहम् ।

रात्री तलवरो दद्वा तं शाहाऽहेति लेनै तत् । २ प्रतिपादनबोलायामेवायामन्त्रणः सुतः ॥३०४॥  
नुपतेमैथुनो जास्ता पृथुधीस्तं निरीक्ष्य सा । मन्त्रज्ञायां विनिश्चित्य गणिका सर्वसंक्षिप्तम् ॥३०५॥  
त्वया मदीयाभरणं सत्यवत्यै समर्पितम् । एवद्भगिन्मै तदानेयमित्याह नुपमैथुनम् ॥३०६॥  
सोऽपि प्राक् ३ प्रतिपाद्यैतद् ब्रतग्रहणसंश्रुतेः । प्रातिकूलयमगादीष्यविवान् द्वितीयदिने पुनः ॥३०७॥  
साक्षिणं दरिकहर्ष्यैनं मन्त्रज्ञास्त्वयै महीपतेः । सच्चिधौ चाचितो चित्तमसाकुपलमालया ॥३०८॥  
न गुहीतं सर्येत्यस्मिन्मिथ्याकादिनि भूभुजा । पूषा सत्यवती तस्य पुरस्तान्त्यक्षिपद्धनम् ॥३०९॥  
मैथुनाय नुपः क्रुञ्जा खलोऽर्य हस्यतामिलि । आशापत्त्वद्वितीन् स्त्रान् युक्तं तन्मायवकिंनः ॥३१०॥  
४ पठमुनीन्द्रसद्मंशास्त्रसंश्रवणाद् द्रुतम् । अन्येषुः प्राक्मं जन्म विदित्वा शमसागते ॥३११॥  
यामहस्तिनि मांसस्य पिण्डवानमनिरुद्धिति । तद्वीक्ष्योपायविच्छेष्टा विदुद्वयानेकपेश्वर्गितम् ॥३१२॥  
सर्विरुद्धविमिथशस्त्रमेत्यस्त्रविरुद्धैः । दिश्के शाश्वेऽन्द्रामेऽपि द्विदस्तमुपाहरत् ॥३१३॥  
तदा तुद्वा महीनाथो वृणीव्वेष्टं सबेति तम् । प्राह पश्चाद् ग्रहीत्यामीत्यन्युपेत्य स्थितः स तु ॥३१४॥  
सचिवस्यै सुतं दृष्टा नीथमानं शुचा नुपात् । वस्मादाय तद्रघातात् तुरुंतं सं व्यमोचयत् ॥३१५॥

दिया और उस दिनसे उसने शील बत ग्रहण कर लिया । किसी दूसरे दिन सर्वरक्षित नामका कोतवाल रातके समय उसके घर गया, उसे देखकर उत्पलमालाने उससे कहा कि आज मै बाहिर की हूँ – रजस्वला हूँ । इधर इन दोनोंकी यह बात चल रही थी कि इतनेमें ही मन्त्रीका पुत्र और पृथुधी नामका राजा का साला आया, उसे देखकर उत्पलमालाने सर्वरक्षितको एक सन्दूकमें छिपा दिया और राजा के सालेसे कहा कि आपने जो मेरे आभूषण अपनी बहन सत्यवती-के लिए दिये थे वे लाइए । उसने पहले तो कह दिया कि ही अभी लाता हूँ परन्तु बादमें जब उसने सुना कि उसने शील बत ले लिया है तब वह ईर्ष्या करता हुआ प्रतिकूल हो गया । दूसरे दिन वह वेश्या सन्दूकमें बैठे हुए कोतवालको गवाह बनाकर राजा के पास गयी और कही जाकर पृथुधीसे अपना धन माँगने लगी ॥३००–३०८॥ पृथुधीने राजा के सामने भी झूठ कह दिया कि मैंने इसका धन नहीं लिया है । जब राजा ने सत्यवतीसे पूछा तो उसने सब धन लाकर राजा के सामने रख दिया ॥३०९॥ यह देखकर राजा अपने सालेपर बहुत क्रोधित हुआ, उसने अपने नौकरोंको आजा दी कि यह दुष्ट शीघ्र ही मार डाला जाय । सो ठीक ही है क्योंकि न्याय-मार्गमें चलनेवालेको यह उचित ही है ॥३१०॥ किसी एक दिन पाठ करते हुए मुनिराजसे वर्षास्त्र सुनकर राजा के मुख्य हाथीको अपने पूर्व भवका स्मरण हो आया, वह अत्यन्त शान्त हो गया और उसने मांसका पिण्ड लेना भी छोड़ दिया, यह देख उपायोंके जाननेवाले सेठने हाथीको सब चेष्टाएँ समझकर धी, गुड और दूध मिला हुआ शालि चावलोंका भात उसे खानेके लिए दिया और हाथीने भी वह शुद्ध भोजन खा लिया ॥३११–३१३॥ उस समय सन्तुष्ट होकर राजा ने कहा कि जो तुम्हें इष्ट हो सो माँगो । सेठने कहा – अच्छा यह बर अभी अपने पास रखिए, पीछे कभी ले लैंगा, ऐसा कहकर वह सेठ सुखसे रहने लगा ॥३१४॥ इसी समय मन्त्रीका पुत्र मारनेके लिए ले जाया जा रहा था उसे देखकर सेठको बहुत शोक हुआ और उसने राजा से अपना पहलेका रखा हुआ बर माँगकर उस दुराचारी मन्त्रीके पुत्रको

१ तत्त्वरेण सह । २ अद्य याहीत्येतत्प्रतिपादन । ३ आनयामीत्यनुमत्य । ४ प्रसङ्गप्रातक्यान्तरमिह आतत्यम् ।  
५ नीतम् । ६ भूद्वक्ते स्म । ७ तम् ८०, ८०, ८०, ८०, ८०, ८० । ८ मन्त्रणः पुत्रम् । पृथुमतिम् ।

श्रेष्ठिनैव लिकारोऽयं<sup>१</sup> समाकारीस्यमर्त्त सः । पापिनामुपकारोऽपि<sup>२</sup> सुभुजङ्गपथापते ॥३१६॥  
 अन्योद्युम्भिनो राज्ञः स्वेच्छया विहरन् वने । स्वेच्छा मुद्रिकामापत्<sup>३</sup> कामरूपविधायिनीम् ॥३१७॥  
 कराण्डगुली विनिश्चिप्य तो वसोः<sup>४</sup> स्वकनीयसः<sup>५</sup> । संकल्प्य श्रेष्ठिनो<sup>६</sup> रूपं सत्यवत्या निकेतनम् ॥३१८॥  
 प्रवेश्य ( श्रविश्य ) पापधी राजमर्मार्थं स्ययमादिप्रसः<sup>७</sup> । चमुं गुहीत्येष्टीमवरूपं वीक्ष्य महीपतिः ॥३१९॥  
 श्रेष्ठी किमर्थमायातोऽकाल<sup>८</sup> इष्यवदत्तदा । अनाम्भजोऽयमायातः पापी सत्यवतीं प्रति ॥३२०॥  
 मदनानलसंवत् इति मैथुनिकोऽपवीत् । तद्वाच्यादपराक्ष्यैव तम्बवाह प्रहन्यताम् ॥३२१॥  
 अन्तिमोऽपि श्रेष्ठी च लक्षित्वेत्तु इति लिपिः । अद्यगुहे प्रतिमायोगधारको भावयन् स्थितः ॥३२२॥  
 पृथुधीस्तमवण्ड्य<sup>९</sup> गुहीच्चा घोषयन् जने । अपराधमन्त्रं<sup>१०</sup> च नीत्वा प्रेतमहीतलम् ॥३२३॥  
 आरथककरं हम्नुभैयामास पापमाक् । सोऽपि राजनिदेशोऽयमित्यहङ्कहिनो<sup>११</sup> रहम् ॥३२४॥  
 नस्य वक्षःस्थलं तत्र प्रहारो मणिहारताम् । प्राप शीलवतो भक्तस्याहृष्टपरमदेवते ॥३२५॥  
 शुण्डनादपराक्ष्यास्य<sup>१२</sup> महोत्पातः पुरेऽजनि । कथः स येन सर्वेषां कि नादुष्टवधाद् भवेत् ॥३२६॥  
 नरंशां नागराश्चेतदालोक्य भविष्यताः । तम्बव शरणं गम्तु इमशानाभिमुखं अयुः ॥३२७॥  
 अदैपरमगंगनिर्णये विस्मयव्वाकवासितः । शीलप्रभावं व्याकर्णं विग्रहयैमपूजयन् ॥३२८॥

द्युष्टवा दिया ॥३१५॥ परन्तु मन्त्रीके पुत्रने समझा कि मेरा यह तिरस्कार सेठने ही कराया है, सो ठीक ही है क्योंकि पापी पुरुषोंका उपकार करना भी सापिको दूध पिलानेके ममान है ॥३१६॥ किसी अन्य दिन वह राजाका साला अपनी इच्छासे बनमें घूम रहा था, उसे वहाँ एक विद्याधरसे इच्छानुसार रूप बना देनेवाली अङ्गूष्ठी मिली ॥३१७॥ उसने वह अङ्गूष्ठी अपने छोटे भाई बमुके हाथकी अङ्गूष्ठीमें पहना दी एवं उसका सेठका रूप बनाकर उसे सत्यवतीके घर भेज दिया । और पाप वृद्धिको धारण करनेवाले वसुको देखकर राजाने कहा कि 'यह सेठ असमयमें यहाँ क्यों आया है?' उसी समय पृथुधीने कहा कि 'अपने आपको नहीं जाननेवाला यह पापी कामरूपी अग्निसे सन्तप्त होकर सत्यवतीके पास आया है' इस प्रकार उसके कहनेसे राजाने परीक्षा किये विना ही उसी पृथुधीको आशा दी कि तुम सेठको मार दो । सेठ उस दिन अपने घरपर ही प्रतिमायोग धारण कर बस्तुस्वरूपका चिन्तयन कर रहा था ॥३१८-३२२॥ पृथुधीने उसे वहाँ कसकर बाँध लिया और जो अपराध उसने किया नहीं था लोगोंमें उसकी घोषणा करता हुआ उसे इमशानकी ओर ले गया ॥३२३॥ वहाँ जाकर उस पापीने मारनेके लिए चाण्डालके हाथमें सीप दिया । चाण्डालने भी यह राजाकी आज्ञा है ऐसा समझकर उसपर तलबारका मजबूत प्रहार किया ॥३२४॥ परन्तु क्या ही आश्चर्य था कि श्री अरहंस परमदेवके भक्त और शीलवत पालन करनेवाले उस सेठके वक्षःस्थलपर वह तलबारका प्रहार मणियोंका हार बन गया ॥३२५॥ बिना परीक्षा किये उस सेठको दण्ड देनेसे नगरमें ऐसा बड़ा भारी उपद्रव हुआ कि जिससे सबका क्षय हो सकता था सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुषोंके वधसे क्या नहीं होता है? ॥३२६॥ राजा और नगरके सब लोग यह उपद्रव देखकर भयमें घबड़ाये और उसी सेठकी शरणमें जानेके लिए इमशानकी ओर दौड़े ॥३२७॥ जब सब उसकी शरणमें पहुँचे तब कहीं वह उपद्रव दूर हुआ, स्वर्गमें रहनेवाले देवोंने बड़े आश्चर्य-

१ तिरस्कारः वक्ष्यना च । २ क्रियते स्म । ३ -मुपकारोऽयं अ०, स० । ४ -माप काम-इ०, अ०, स० ।  
 ५ वसुनामधंपस्य । ६ निजानुजस्य । ७ कुबेरप्रियस्य । ८ समीपमागत्य स्थितः । ९ अवेलायाम् । १० बला-  
 कारेण बद्धता । ११ अविद्यमानम् असत्यं वा । १२ हिनस्ति स्म । १३ श्रेष्ठिनः ।

अपरीक्षितकार्याणामस्माकं शन्तुमर्हसि । इति तेषु भयग्रैस्तमानतेषु नृपादिषु ॥३२६॥  
भस्मवज्जितदुष्कर्मपरिपाकाद्भूदिदम् । विशादसत्र कर्तव्यो न भवद्भिरिति भूत्वम् ॥३२७॥  
वैमनस्यं निरस्यैषां श्रेष्ठो प्रष्टः क्षमावशाम् । सर्वैः पुरस्कृतः पृथ्यो विभूत्या प्राविशत् पुरम् ॥३२८॥  
एवं प्रयाति कालेऽस्य वारिषेणां सुतां नुपः । वसुपालाय पुत्राय स्वस्यादत्तं विभूतिस्तरं ॥३२९॥  
अधान्येषुः सभामध्ये गृहवान् श्रेष्ठिनं नुपः । विहृतं किं न वाऽप्योन्यं धर्मदोनि॑ चतुष्यम् ॥३३०॥  
परस्परामुक्तास्ते॑ सम्यग्दृष्टिषु लाभुपु॑ । न मिथ्यादृक्षिवर्ति॑ प्राहु श्रेष्ठो॑ धर्मादित्वचित् ॥३३१॥  
इति तद्वचनाद् राजा तुष्टोऽभीष्टं त्वयोन्यताम् । दास्यामी॒याह सौऽप्यार्थ्यज्ञातिसृख्यक्षयातिनि॑ ॥३३२॥  
न मया तद्वयं साध्यमिति॑ ग्रह्याह भूपतिः । मां मुक्तं साध्यामीति॑ तम्भीच्छद्विग्निवरः ॥३३३॥  
तदाकर्ण्य गृहत्यागमहं च सह॑ तेऽभुना । करोमि किञ्चु मे युग्मा वालका इति चिन्तयन् ॥३३४॥  
११ सद्योभिष्ठाप्तद्विद्वृत्तान् मक्षिकादानतत्परान् । क्षुधार्पादाहतान् वीक्ष्य सहस्रा गृहकोक्तिलान् ॥३३५॥  
सर्वैऽपि जीवनोपायं जन्मतो जानतेराम् । स्वेषां विनोपदेशोन् १२ तत्कि मे वलचिन्तया ॥३३६॥  
इत्यसौ॑ वसुपालाय दख्वा राज्यं यथातिथि । विधाय यौवराज्यं च श्रीपालस्य सप्तदक्षम् ॥३४०॥

से शीलव्रतके प्रभावका वर्णन कर उस सेठकी पूजा की ॥३२८॥ जिनके मन भयसे उद्धिर्न हो रहे हैं ऐसे राजा आदिने सेठसे कहा कि हम लोगोंने परीक्षा किये बिना ही कार्य किया है अतः आप हम सबको क्षमा कर दीजिए, ऐसा कहनेपर क्षमा धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ सेठने कहा कि यह सब हमारे पूर्वोपाजित अशुभ कर्मके उदयसे ही हुआ है । निश्चयसे इस विषयमें आपको कुछ भी विगाद नहीं करना चाहिए ऐसा कहकर उसने सबका वैमनस्य दूर कर दिया । तदत्त्वात् तद्व लोगोंके लगारा अप्तोऽनिष्टेऽहुप्तः पृथ्योऽनुभुवेरप्रियने वडी विभूतिके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥३२९—३३१॥ इस प्रकार समय व्यतीत होनेपर वैभवशाली राजाने वारिषेणा नामकी इसी सेठकी पुत्री अपने पुत्र वसुपालके लिए ग्रहण की ॥३३२॥ किसी अन्य दिन राजाने सभाके बीच सेठसे पूछा कि ये धर्म आदि चारों पुरुषार्थ परस्पर एक दूसरेके विरुद्ध हैं अथवा नहीं ? ॥३३३॥ तब धर्म आदिके तत्त्वको जाननेवाले सेठने कहा कि सम्यग्दृष्टि॑ सज्जनोंके लिए तो ये चारों ही पुरुषार्थ परस्पर अनुकूल हैं परन्तु मिथ्यादृष्टियोंके लिए अनुकूल नहीं है ॥३३४॥ सेठके इन वचनोंसे राजा बहुत ही सन्तुष्ट हुआ, उसने सेठसे कहा कि 'जो तुम्हें इष्ट ही माँग लो मैं देंगा' तब सेठने कहा कि मैं जन्म-मरणका क्षय चाहता हूँ ॥३३५॥ इसके उत्तरमें राजाने कहा कि ये दोनों तो मेरे साध्य नहीं हैं तब वैश्यवर सेठने कहा कि अच्छा मुझे छोटे दीजिए मैं स्वयं उन दोनोंको सिद्ध कर दूँगा ॥३३६॥ पह सुनकर राजाने कहा कि तेरे साथ मैं भी घर छोड़ता परन्तु मेरे पुत्र अभी वालक हैं - छोटे-छोटे हैं इस प्रकार राजा विचार कर ही रहा था कि ॥३३७॥ अचानक उसकी दृष्टि छिपकलीके उन बच्चोंपर पड़ी जो उसी समय विदीर्ण हुए अपडेसे निकले थे, भूस्की पीड़ासे छटपटा रहे थे और इसलिए ही मक्षियां पकड़नेमें तत्पर थे, उन्हें देखकर राजा सोचने लगा कि अपनी-अपनी आजीविकाके उपाय तो सभी जीव बिना किसीके उपदेशके अपने-आप अच्छी तरह जानते हैं इसलिए मुझे अपने छोटे-छोटे पुत्रोंकी चिन्ता करनेसे क्या लाभ है ? यही विचार कर गुणपाल महाराजाने वसुपालके लिए विधिपूर्वक राज्य दिया और श्रीपालको पट्ट सहित युवराज बनाया । तदनन्तर

१ वस्त-प०, ल० । २ मुहूर्यः । ३ पुरीम् ल० । ४ विभूतिमान् प०, ल०, इ० । ५ धर्मार्थकाममोक्षः ।  
६ ते धर्मदियः । ७ सज्जनेषु । ८ मिथ्यादृष्टिषु । ९ धर्मार्थकाममोक्षस्वरूपदेवी । १० जन्ममरणविनाशी  
ममेष्टाविति । ११ त्वया सह । १२ तत्क्षणे स्फुटितकोशजातान् । १३ तत् कारणात् ।

युगपालभारतीः सकुबेरप्रियोऽप्रहीत् । बहुभिर्भूमुजैः सार्वं सपो यतिवरं श्रितः ॥३४१॥  
 श्रेष्ठयदिसाफलालोकान्मयाऽच्यव्राहि लक्ष्मात्म् । तस्मात्वं न हतोऽसीति<sup>३</sup> ततस्तुष्टाव<sup>४</sup> सोऽपि तम्<sup>५</sup> ॥  
 इत्युक्त्वा<sup>६</sup> सोऽव्रवीदेवं<sup>७</sup> प्राक् मूणालवर्तीपुरे । भूत्वा त्वं<sup>८</sup> भवदेवाख्यो रत्नेगासुकामयोः ॥३४२॥  
 वद्वैरो<sup>९</sup> नहन्ताऽभूः पराचत्तम्बंश्यतु<sup>१०</sup> । मार्जारः सन्मृति<sup>११</sup> गत्वा पुनः<sup>१२</sup> खद्यजन्मनि ॥३४३॥  
 विशुच्चोस्वमासाय सौपसगी यृति व्यधाः । तत्पापाभरके दुःखमनुभूयागतस्ततः ॥३४४॥  
 अग्रेन्यासिलवेशुक्ते<sup>१३</sup> व्यक्तवाग् विसरः स्फुरम् । व्यधात् सुधीः स्वदृशान्तं भीमसाधुः सुधाशिनोः ।  
 त्रिः प्राक् त्वम्भारिताद्वावामिति<sup>१४</sup> शुद्धिश्रयामिती<sup>१५</sup> । जातसद्गम्सद्भावावमितवन्यमुनिं<sup>१६</sup> गती ॥३४५॥  
 इति त्याहत्य<sup>१७</sup> हेमाङ्गदानुजेद<sup>१८</sup> च साऽप्रवीत ।<sup>१९</sup> भीमसाधुः पुरे पुण्डरीकिण्डां घातिवातनात् ॥३४६॥  
 एवं शिवंकरोथाने पञ्चमकानपूर्वातः । तस्मित्रांस्तं<sup>२०</sup> तस्मागत्य चतुर्वोद्योषितः ॥३४७॥  
 चन्द्रिया धर्ममाकर्ण्य पापादस्मन्मृतिर्मृतः । त्रिलोकेण वदास्माकं पतिः कोऽन्यौ भविष्यति ॥३४८॥  
 इत्यृच्छाप्रसादो<sup>२१</sup> चाह पुरोऽस्मिन्नेषु<sup>२२</sup> भोजकः<sup>२३</sup> । सुखेवाह्यस्वस्य वसुषेणा वसुन्धरा ॥३४९॥

सेठ कुबेरप्रिय तथा अन्य अनेक राजाओंके साथ-साथ मुनिराजके समीप जाकर तप धारण किया ॥३३८-३४१॥ वह चाढ़ाल कहने लगा कि सेठके अहिंसा व्रतका फल देखकर मैंने भी अहिंसा व्रत ले लिया या यही कारण है कि मैंने तुम्हें नहीं मारा है यह सुनकर उस विश्वच्छर चोरने भी उसकी बहुत प्रशंसा की ॥३४२॥

इतना कहकर वे भीम मुनि सामने बैठे हुए देव-देवियोंसे फिर कहने लगे कि सर्वज्ञ-देवने मुझसे सप्तष्ट अक्षरोंमें कहा है कि 'तू पहले मृणालवती नगरीमें भवदेव नामका वेश्य हुआ था वहाँ तूने रत्नेगा और सुकान्तसे वैर बांधकर उन्हें मारा था, मरकर वे दोनों कवृतर-कवृतरी हुए सो वहाँ भी तूने बिलाव होकर उन दोनोंको मारा था, वे मरकर विद्याधर-विद्याधरी हुए थे सो उन्हें भी तूने विश्वच्छोर होकर उपसर्ग-द्वारा मारा था, उस पापसे तू न रक गया था' और वहाँके दुःख भोगकर वहाँसे निकलकर यह भीम हुआ है । इस प्रकार उन वुद्धिमात् भीम मुनिने सामने बैठे हुए देव-देवियोंके लिए अपना सब वृत्तान्त कहा ॥३४३-३४५॥ जिन्हें आपने पहले तीन बार मारा है वे दोनों हम ही हैं ऐसा कहकर जिनके मन, बच्चन, काय-तीनों शुद्ध हो गये हैं और जिन्हें सद्धर्मकी सद्भावना उत्पन्न हुई है ऐसे वे दोनों देव-देवी उन भीममुनिकी बन्दना कर अपने स्थानपर चले गये ॥३४७॥

यह वाहकर हेमांगदकी छोटी बहन सुलोचना फिर कहने लगी कि एक समय पुण्डरी-किणी नगरीके शिवंकर नामके सुन्दर उद्यानमें घातिया कर्म नष्ट करनेसे जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे भीममुनिराज विराजमान थे, सभी लोग उनकी पूजा कर रहे थे, उसी समय वहाँपर चार देवियोंने आकर उनकी बन्दना की, धर्मका स्वरूप सुना और पूछा कि हे तीन लोकके स्वामी, हम लोगोंके पापसे हमारा पति मर गया है । कहिए ~ अब दूसरा पति कौन

१ तस्मात् कारणात् । २ एवं तलवरीऽवाहेतु । ३ तलवरबचनात्तत्तरम् । ४ स्त्रीति स्म । ५ विश्वच्छोरः ।  
 ६ अहिंसाप्रतम् । तस्मात् त्वं न हतोऽसीति इलोकस्य सोऽप्येवं प्रत्यपादमदित्यनेत सह संवन्धः । ७ उक्त-  
 प्रकारेण प्रतिपाद्य । ८ मुनिः पुनरप्यात्मनः सर्वज्ञेन प्रतिपादितिजवृक्षकं सुरदम्पत्योराह । ९ वैद्यमाण-  
 प्रकारेण । १० पूर्वजन्मनि । ११ भीममुने, भवान् । १२ कपोतभवेऽपि मार्जारः सन्-  
 तशीमिहन्ताऽभूरिति संबन्धः । १३ कृत्वा ल०, अ०, प०, स०, ह० । १४ तददम्पत्योविद्याघाभये ।  
 खेचरजन्मनि प०, ह० । १५ सर्वज्ञप्रोवतम् । १६ हिरण्यवर्मप्रभावतीचरौ । १७ मनोवाक्कायशुद्धियुक्तौ ।  
 १८ भीममुनिम् । १९ उक्त्वा । २० सुलोचना । २१ भीमः साधुः प०, ह०, ल० । २२ आस्ते स्म ।  
 २३ भीमकेवली । २४ पुण्डरीकिण्डाम् । २५ पालकः ।

धारिणी पृथिवी चेति चतुर्वो योधितः प्रियाः । श्रीमती वीतशोकारव्या विमला सबसन्तिका ॥३५२॥  
 चतुर्लक्ष्मेटिकास्तासामन्यंयुहता बनान्तरे । सद्वा विवराभ्याहो धर्म दानादिनाऽऽददुः ॥३५३॥  
 तत्फलेनान्युते कल्पे प्रतीन्द्रस्य प्रियाः क्रमात् । रतिषेणा सुसीमारव्या मुख्यान्या च सुखावती ॥३५४॥  
 सुभगेति च देव्यस्ता यूर्यं ताइचेटिकाः पुनः । चित्रपेणा क्रमाचित्रवेगा धनवती सरी ॥३५५॥  
 धनश्रीरित्यजायन्त बनवेवेषु कन्यकाः । सुरदेवेऽप्यभूत्मृत्या पिङ्गलः पुररक्षकः ॥३५६॥  
 स तत्र निजदोषेण प्राप्तिगलवन्धनम् । मातुस्तासुरदेवस्य प्राप्ता या राजसूनुताम् ॥३५७॥  
 श्रीपालाल्यकुमारस्य ग्रहणे बन्धमोक्षणे । सर्वेषां पिङ्गलार्घ्योऽपि मुक्तः संभ्यस्य संप्रति ॥३५८॥  
 भूत्वा बुधविमानेऽसौ<sup>१</sup> इहागत्य भविष्यति ।<sup>२</sup> स्वामी युष्माकमित्येतत्तत्त्वेतो हरणं तदा ॥३५९॥  
 पत्नाथं कृतं तेन<sup>३</sup> तथांगत्य<sup>४</sup> मुनेवेचः । पृष्ठानु<sup>५</sup> कम्ब<sup>६</sup> काल्यैनमात्मनो<sup>७</sup> भाविनं पतिम् ॥३६०॥  
 पूर्वोक्तपिङ्गलाल्यस्य सूतुनामाऽतिपिङ्गलः । सोऽपि संन्यस्य युष्माकं<sup>८</sup> रतिदायी भविष्यति ॥३६१॥  
 इति तत्प्रोक्तमाकर्ण्य गस्त्रा<sup>९</sup> तत्पूजनाविधी<sup>१०</sup> ।<sup>११</sup> स्वसो निरोक्षणात्<sup>१२</sup> कामसंस्मोहप्रहृतं महत् ॥३६२॥  
 रतिकूलाभिधानस्य<sup>१३</sup> संविधानं<sup>१४</sup> मुनेः ध्रुतम् । तत्पितुर्मणिनागादिदत्तस्य प्रकृतं तथा ॥३६३॥

होगा ? तब सर्वज्ञ -- भीम मुनिराज कहने लगे कि इसी नगरमें सुरदेव नामका एक राजा था उसकी बसुषेणा, बसुन्धरा, धारिणी और पृथिवी ये चार रानियाँ थीं तथा श्रीमती, वीतशोका, विमला और बसन्तिका ये चार उन रानियोंकी दासियाँ थीं । किसी एक दिन उन सबने बनमें जाकर किन्तु मुनिराजके समीप दान आदिके द्वारा धर्म करना स्वीकार किया था । उस धर्मके फलसे वे अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्रकी देवियाँ हुई हैं । क्रमसे उनके नाम इस प्रकार हैं — रतिषेणा, सुसीमा, सुखावती और सुभगा । वह देवियाँ तुम्हीं सब हो, तथा तुम्हारी दासियाँ चित्रपेणा, चित्रवेगा, धनवती और धनश्री नामकी अन्तर देवोंकी कन्याएँ हुई हैं । राजा सुरदेव मरकर पिगल नामका कोतवाल हुआ है और वह अपने ही दोषसे कारणारको प्राप्त हुआ था, सुरदेव की माता राजाकी पुत्री हुई है और श्रीपालकुमारके साथ उसका विवाह हुआ है । विवाहोत्सव-के समय सब कैदी छोड़े गये थे उनमें पिगल भी छूट गया था, अब संन्यास लेकर अच्युत स्वर्गमें उत्पन्न होगा और वही तुम सबका पति होगा ! इधर मुनिराज ऐसे भनोहर बचन कह रहे थे कि उधर पिगल संन्यास धारण कर अच्युत स्वर्गमें उत्पन्न हुआ और वहाँसे आकर उसने मुनिराजके बचन सत्य कर दिखाये । इतनेमें ही चारों अन्तर कन्याएँ आकर सर्वज्ञदेवसे अपने होनहार पतिको पूछने लगीं ॥३५८—३६०॥ मुनिराज कहने लगे कि पूर्वोक्त पिगल नामक कोतवालके एक अतिपिङ्गल नामका पुत्र है वहो संन्यास धारण कर तुम्हारा पति होगा ॥३६१॥ भीम केवलीके ये बचन सुनकर चारों ही देवियाँ जाकर अतिपिगलकी पूजा करने लगीं, उसे देखनेसे उन देवियोंको कामका अधिक विकार हुआ था ॥३६२॥ उन देवियोंने रतिकूल नामके मुनिका चरित्र सुना, उनके पिता मणिनागदत्तका चरित्र सुना, सुकेतुका १ स्वीकुर्वन्ति स्म । २ अन्तरदेवेषु । ३ तलवरः । ४ विवाहसमये । ५ च्युतविमानेऽसौ इ०, प०, ल० । बुधविमानेशः, इत्यपि पाठः । बुधविमानाद्विषतः । ६ स्वामी युष्माकमित्यसौ चाहेत्यनेन सह संबन्धः । ७ पिङ्गलचरदेवेन । ८ केवल्युक्तप्रकारेण (क्रमेण) । ९ सर्वज्ञस्य । १० अनन्तरम् । ११ अनन्तरकन्याः । १२ भीमकेवलिनम् । १३ पुरुषः । १४ अतिपिङ्गलस्य समीपं प्राप्य । १५ अतिपिङ्गलस्य फरिचर्याविद्वी । १६ चित्रसेनादिअन्तरकन्यकानाम् । तासाम् ल०, प०, द० । १७ कामसंस्मोहेन प्रकर्षेण कृतम् । १८ रतिकूलाभिधानस्य पुरुषस्य । १९ अपारम् । २० भीमकेवलिनः सकाशात् । २१ आकणितम् । २२ रतिकूलस्य जनकस्य । २३ चैषितम् ।

<sup>१</sup> सुकेतोऽचालिष्टे तस्मिन्स्तथ्यभूते<sup>२</sup> मुनीश्वरम् । ता: सर्वाः परितोषेण गताः समभिवन्धय तम् ॥३६४॥  
आत्रामपि<sup>३</sup> तदा वन्दनाय सत्र गताविदम् । शुचा हृष्ट्वा रात्रौ श्रीलिपरीतहृदयौ दिवम् ॥३६५॥

## शारूलविकारितम्

हृत्यात्मीयभवाकलीमनुगतैर्मान्त्यैर्मनोरभूतैः

स्पष्टैरस्त्वलितैः<sup>४</sup> कलैरविरलैरम्याकुलैर्जलिपतैः<sup>५</sup> ।

आत्मोपात्तशुभा शुभोदयवशोदभूतोऽवनीचस्थिति<sup>६</sup>

संसर्वशतांशुभूषितसभासभ्यान् सावभ्यधात् ॥३६६॥

अत्रां तां हृदयप्रियोक्तिमतुष्टकान्तो<sup>७</sup> रतान्ते यथा

संसच्च<sup>८</sup> व्यक्तसत्त्वं शारदि वा लक्ष्मीः सृष्टसंघथा ।

कान्तानां<sup>९</sup> वदनेन्दुकान्तिरगलस्त्रामिदनेशोद्गते<sup>१०</sup>

इस्थाने कृतमरसरोऽसुखकरस्या<sup>११</sup> ज्यस्ततोऽसौ<sup>१२</sup> तुष्टैः ॥३६७॥

१ सुकेतोऽचालिष्टे २ मुनीश्वरम् ३ प्राप्ति ४ उत्तरांशुभूतैर्जलिपतैः ५ उत्तरांशुभूतैर्जलिपतैः ६ उत्तरांशुभूतैर्जलिपतैः ७ उत्तरांशुभूतैर्जलिपतैः ८ उत्तरांशुभूतैर्जलिपतैः ९ उत्तरांशुभूतैर्जलिपतैः १० उत्तरांशुभूतैर्जलिपतैः ११ उत्तरांशुभूतैर्जलिपतैः १२ उत्तरांशुभूतैर्जलिपतैः

संजातो रतिषेणया रतिवरो गेहे कपोतो विशाम्<sup>१३</sup> ।

चरित्र सुना और सबके सत्य सिद्ध होनेपर बड़े सत्तोषके साथ मुनिराजकी वन्दना कर अपने-अपने स्थानोंकी ओर प्रस्थान किया ॥३६३-३६४॥ उस समय हम दोनों भी मुनिराजकी वन्दना करनेके लिए बहीं गये और यह सब देख-सुनकर प्रसन्नचित होते हुए स्वर्ग चले गये थे ॥३६५॥

इस प्रकार अपने द्वारा उपार्जन किये हुए शुभ-अशुभ कर्मके उदयवश जिसे ऊँची-नीची अवस्था प्राप्त हुई और जिसने अपने दौतोंकी फैलती हुई किरणोंसे समस्त सभाको सुशोभित कर दिया है ऐसी सुलोचनाने सब सभासदोंको क्रमबद्ध मान्य, मनोहर, स्पष्ट, अस्त्वलित, मधुर, अविरल और आकुलतारहित बचतों-द्वारा अपने पूर्वभवकी परम्परा कह सुनायी ॥३६६॥

हृदयको प्रिय लगनेवाले सुलोचनाके बचन सुनकर जयकुमार उस प्रकार सन्तुष्ट हुए जिस प्रकार कि सम्मोगके बादमें सन्तुष्ट होते । वह सभा उस तरह विकसित हो उठी जिस तरह कि शारदकहतुमें सरोवरकी शोभा विवसित हो उठती है । और सुलोचनाके बचनहृषी सूर्यके उदय होनेसे अन्य स्त्रियोंके मुखरूपी चम्द्रमाओंकी कान्ति नष्ट हो गयी थी सो ठीक ही है क्योंकि अयोग्य स्थानपर की हुई ईर्ष्या दुःखी करनेवाली होती है इसलिए विद्वानोंको ऐसी ईर्ष्या अवश्य ही छोड़ देनी चाहिए ॥३६७॥ सुलोचनाने जयकुमारसे कहा कि मैं पहले रतिषेणा थी और आप मेरे ही साथ मेरे पति सुकान्त वैद्य हुए, फिर मैं सेठके घर रतिषेणा कबूतरी हुई और आप मेरे ही साथ हिरण्यवर्मी विद्याधर हुए उसके बाद मैं स्वर्गमें महादेवी हुई और आप मेरे ही साथ अतिशय

१ मृणालवतीपुरपते: सुकेतोरपि चेष्टितं मुनेः सकाणाच्चयुतमिति संवन्धः । एतत् कथात्रयं ग्रन्थान्तरे इष्टव्यम् ।  
२ सत्यीभूते ल०, १०, २०, ३० । ३ प्रभावतीचरीहिरण्यवर्मवरमुरदम्पतो । ४ सुन्दरैः । ५ सम्पूर्णैः ।  
६ हिवतिः ल० । ७ सुलोचना । ८ उवाच । ९ जवः । १० सभा च । ११ जयस्य श्रीमतीविवशङ्कुरादियोविताम् ।  
१२ सुलोचनावचनादित्योदये सति । १३ दुखकरः । १४ मत्सरः । १५ वैश्वानाम् ।

‘वायुस्त्रभस्याऽभक्त्यगपतिैर्वर्मा हिरण्यादिवाक्  
देवः कल्पगतो मयौ भव महादेव्याऽजनीडयो भवान्’ ॥३६८॥

मालिनी

सकलमविकलं तत्प्रपञ्चं रमण्या  
सुखकमलसाकृतं शोकपात्रे निधाय ।  
तदुदितमपरं च श्रीतुकामो जयोऽभु-  
वा रसिकदधितोत्तैः कामुकास्तुष्टुष्टिः ॥३६९॥

इत्यापेण भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे जयसुलोचना-  
भवान्तरवर्णनं नाम षट्कृत्वारिशतम् पर्व ॥३६९॥

अवधीरहर्षिः श्रीसुलोचना द्वारा लिखित शब्दान्वयन सही नहीं लिखा गया है।

पूज्य देव हुए ॥३६९॥ इस प्रकार जयकुमार श्रियाके मुखरूपी कमलके रससे भोगे हुए मनोहर, पूर्ण और विस्तारयुक्त वचनोंको अपने कर्णरूपी पात्रमें रखकर उसके द्वारा कहे हुए अन्य वृत्तान्तको सुननेकी इच्छा करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि कामी पुरुष स्त्रियोंके रसीले वचनोंसे कभी तृप्त नहीं होते हैं ॥३६९॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध भगवद्गुणभद्राचार्य विरचित त्रिष्ठिलक्षण  
महापुराण लंगहके हिन्दी भाषानुवादमें जयकुमार और सुलोचनाके  
भवान्तर वर्णन करनेवाला छिपालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

## सप्तत्वारिंशतम् पर्च

कान्ते तत्रान्यदप्यस्ति प्रस्तुतं स्मर्यते त्वया । श्रीपालचक्रिसंबन्धमित्यप्राक्षीत् स तो मुनः ॥१॥  
 बादं स्मरामि सौभाग्यभागिनस्तस्य बृत्तकम् । तवैषादेशिते<sup>१</sup> वेति सा प्रवक्तुं प्रचक्षमे ॥२॥  
 जम्बूद्वीपे विदेहेऽस्मिन् पूर्वस्मिन्पुण्डरीकिणी । नगरी नगरीवासी वालवस्यालिविश्रुता ॥३॥  
 पा ॥४॥ अत्र वसुपालस्य कुबेरश्रीदिनेऽस्यदा । वनपाले समागम्य केवलावगमोऽभवत् ॥५॥  
 गुणपालमुनीशो<sup>५</sup>स्मर्त्यते<sup>६</sup> सुरगिराचिति । निवेदितवति क्रान्त्वा पुरः सप्तवशान्तरम् ॥६॥  
 प्रणम्य वनपालाय दद्वाऽसाँ<sup>७</sup> पारितोषिकम् । पौरा: सपर्यगा<sup>८</sup> सर्वैऽप्याययुरिति<sup>९</sup> घोषणाम् ॥७॥  
 विधाय प्राक् स्वर्यं प्राप्य भगवन्तमवस्तुत । श्रीपालवसुपालौ च ततोऽनु समुद्दी गतौ ॥८॥  
 प्रमदाख्यं वने प्राप्य<sup>१०</sup> सद्गुमैरस्यमस्तरे । प्रागजगपालवक्त्रो वस्मिन्स्यग्रोध<sup>११</sup> पादपे ॥९॥  
 देवताप्रतिमालक्ष्ये स्थित्वा जग्नाह संयमम् । तस्याधस्तात्<sup>१२</sup> समीक्षेक्ष्य<sup>१३</sup> प्रवृत्तां नृत्यमादरात् ॥१०॥  
 तथौ<sup>१४</sup> कुमारः श्रीपालः पुरुषो नर्तवस्ययम् । अस्तु<sup>१५</sup> स्त्रीविष्वधार्यत्र ऋषी वेष्टुंरूपधारिणी ॥११॥  
 स्यादेव ऋषी प्रनृत्यास्ती नृत्यं धुक्षमिदं मवेद् । इत्याह तद्वचः ध्रुत्वा नटी मूर्च्छामुपागता ॥१२॥

यह सुनकर जयकुमारने सुलोचनासे फिर पूछा कि हे श्रिये, इस कही हुई कथामें श्रीपाल चक्रवर्तीसे सम्बन्ध रखनेवाली एक कथा और भी है, वह तुझे याद है या नहीं ? सुलोचनाने कहा हीं, सौभाग्यशाली श्रीपाल चक्रवर्तीकी कथा तो मुझे ऐसी याद है मानो मैंने आज ही देखी हो, यह कहकर वह उसकी कथा कहने लगी ॥१-२॥ इस जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है जो कि इन्द्रकी नगरी-अमरावतीके समान अत्यन्त प्रसिद्ध है ॥३॥ सूर्य और चन्द्रमा अथवा नय और पराक्रमके समान श्रीपाल और वसुपाल नामके दो भाई समस्त पृथिवीको जीतकर साथ ही साथ उसका पालन करते थे ॥४॥ किसी एक दिन मालीने आकर वसुपालकी माता कुबेरश्रीसे कहा कि सुरगिरि नामक पर्वतपर आपके स्वामी गुणपाल मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, यह सुनकर उसने सामने सात पेंड चलकर नमस्कार किया, मालीको पारितोषिक दिया और नगरमें घोषणा करायी कि सब लोग पूजाकी सामग्री साथ लेकर भगवान्के दर्शन करनेके लिए चलें, उसने स्वर्यं सबसे पहले जाकर भगवान्की बन्दना की । मालीके पीछे ही श्रीपाल और वसुपाल भी बड़ी प्रसन्नतासे चले ॥५-६॥ मार्गमें वे एक उत्तम वनमें पहुँचे जो कि अच्छे-अच्छे वृक्षोंसे सुन्दर था और जिसमें देवताकी प्रतिमासे युक्त किसी वट वृक्षके नीचे खड़े होकर महाराज जगत्पाल चक्रवर्तीने संयम धारण किया था । उसी वृक्षके नीचे एक दर्शनीय नृत्य हो रहा था, उसे दोनों भाई बड़े आदरसे देखने लगे ॥७-१०॥ देखते-देखते कुमार श्रीपालने कहा कि यह स्त्रीका वेष धारण कर पुरुष नाच रहा है और पुरुषका रूप धारण कर स्त्री नाच रही है । यदि यह स्त्री स्त्रीके ही वेषमें नृत्य करती तो बहुत ही अच्छा नृत्य होता । श्रीपालकी यह बात सुनकर नटी मूर्च्छित

<sup>१</sup> तवैष-अ०, स० । यथैवान्न०, प०, द० । <sup>२</sup> प्रत्यक्षं दृष्टमित्र । <sup>३</sup> चितौ ट० । <sup>४</sup> संयोजितौ । <sup>५</sup> अवारक्षताम् । <sup>६</sup> मुनीशस्य । <sup>७</sup> सुरगिरिनामिन् पर्वते । <sup>८</sup> कुबेरश्रीः । <sup>९</sup> पूजया । <sup>१०</sup> आगच्छेयुः । <sup>११</sup> शुभवृक्षैः । <sup>१२</sup> वट । 'न्यग्रोधो वहुपाद वटः' इत्यभिधानात् । <sup>१३</sup> वदस्य । <sup>१४</sup> आलोच्य । <sup>१५</sup> दर्शनीयम् । <sup>१६</sup> वेतु ।

उपायैः प्रतिबोध्यनां तदा प्रश्नयपूर्वकम् । इति विज्ञापयामास काचिनं सावित्रिकिणम् ॥१३॥  
 सुरम्यविषये श्रीपुराधिपः श्रीधराहृष्टः । तदेवो श्रीमती तत्प्राः सुता जयवतीस्तथाम् ॥१४॥  
 तज्जातौ<sup>१</sup> चक्रिणी देवी माविनीश्यादिशन्दिदृ<sup>२</sup> । अभिजानं च तस्यतत् नटनटयोविवेत्ति<sup>३</sup> यः ॥१५॥  
 भेदं य चक्रवर्तीनि सत्परीक्षितुमागताः । पुष्पाद् दृष्टस्वमस्माभिनिधिवल्पो यदच्छ्रुत्या ॥१६॥  
 अहं प्रियरतिनिमामा<sup>४</sup> सुनेयं नर्तकी सम । शेषा भद्रनवेगाख्या पुरुषाकारधारिणी ॥१७॥  
 नटी<sup>५</sup>यं वास्त्रो नाम च्यातः रूपेषधारकः । तरङ्गुत्वा तृपतिस्तुष्टा तां संतर्थं यथोचितम् ॥१८॥  
 गुरुं वन्दितुमामीयं गच्छन् सुरगिरिं ततः<sup>६</sup> । अर्च केतचिदानन्दमास्त्वामन्त्रेत्या ॥१९॥  
 अधावयद्यौ<sup>७</sup> किंचिदन्तरं धरणीकले । गच्छा गमनमाह्या व्यक्तीकृत्यगच्छतिः<sup>८</sup> ॥२०॥  
 त्यग्रोपवाङ्पादः स्थगतिमात्राभिना भृशम् । वेदेन नर्जितो भीत्वाऽऽशनिवेशोऽमुचत् खणः ॥२१॥  
 कुमारं पर्णलघ्वालयविशया स्वयितुक्षया । रबावर्तेगिरेसूर्यिं स्थितं तं सन्ति सावितः ॥२२॥  
 वहशीऽत्यस्य लक्ष्मा दृष्ट्यगहीत्वा निवृत्तवान् । देवः सरसि कस्मिंश्चित् स्वानादिविजिता श्रमम् ॥२३॥  
 मार्गेजं सिद्धमसुदृश्य तमेकस्मान् सुधागृहान् । आगत्य राजपुत्रोऽयमिति आत्मा यथोचितम् ॥२४॥  
 एषा षष्ठीराजकम्यास्ताः स्ववृत्तान्तं स्थवेद्यन् । दत्तगोत्रकुलनामादि निर्दिष्य स्वचरेशिना ॥२५॥  
 वलादशतिवेगेन वयमस्मिन्निवेशिताः । इति तत्प्रोक्तमाकर्ष्य कुमारस्यानुकम्भिनः ॥२६॥

हो गयी ॥११-१२॥ उसी समय अनेक उपायोंसे नटीको सचेत कर कोई स्त्री उस होनहार चक्रवर्ती श्रीपालसे विनष्टपूर्वक इस प्रकार कहने लगी ॥१३॥ कि सुरम्य देशके श्रीपुर तमरके राजाका नाम श्रीधर है उसकी रानीका नाम श्रीमती है और उसके जयवती नामकी पुत्री है ॥१४॥ उसके जन्मके समय ही निमित्तज्ञानिधियैं वाहा था कि ‘यह चक्रवर्तीकी पट्टरानी होगी’ और उस चक्रवर्तीकी पहचान यही है कि जो नट और नटीके भेदको जानता हो वही चक्रवर्ती है, हम लोग उसीकी परीक्षा करनेके लिए आये हैं, पुण्योदयसे हम लोगोंने निधिके समान इच्छानुसार आपके दर्शन किये हैं ॥१५-१६॥ मेरा नाम प्रियरति है, यह पुरुषका आकार धारण कर नृत्य करनेवाली भद्रनवेगा नामकी भेरी पुत्री है और स्त्रीका वेष धारण करनेवाला यह वासव नामका नट है । यह सुनकर राजा ने सन्तुष्ट होकर उस स्त्रीको घोग्यतानुसार सन्तोषित किया और स्वयं अपने पिताकी बन्दना करनेके लिए सुरगिरि नामक पर्वतकी ओर चला, मार्गमें कोई पुरुष घोड़ा लाया उसपर आसक्तचित्त हो श्रीपालने सदारी की ओर दीड़ाया । कुछ हूर तक तो वह घोड़ा पृथिवीपर दीड़ाया परन्तु फिर अपना विद्याधरका आकार प्रकट कर उसे आकशमें ले उड़ा । उस बट बृक्षके नीचे स्थित प्रतिमाके समीप रहनेवाले देवने उस विद्याधरको ललकारा, देवकी ललकारसे हरे हुए अशनिवेग नामके विद्याधरने अपनी भेजो हुई पर्णलघु विद्यासे उस कुमार श्रीपालको रत्नावर्त नामके पर्वतके शिखरपर छोड़ दिया । देवने देखा कि उस पर्वतपर रहकर ही उसे बहुत लाभ होनेवाला है इसलिए वह कुमारको साथ लिये बिना ही लौट गया । कुमार भी किसी तालाबमें स्नान आदि कर मार्गमें उत्पन्न हुए परिश्रमको दूर कर बैठे ही थे कि इतनेमें एक सफेद महलसे छह राजकन्याएँ निकलकर आयीं और कुमारको ‘यह राजाका पुत्र है’ ऐसा समझकर यथायोग्य रीतिसे दर्शन कर अपना समाचार निवेदन करने लगीं । उन्होंने अपने गोत्र-कुल और नाम आदि बतलाकर कहा कि ‘अशनिवेग नामके विद्याधरने हम लोगोंको यहीं जबरदस्ती लाकर पटक दिया है’ कम्याओंकी यह बात

१ जयवत्या जनतसमये । २ विद्वांसः ३ परिचायकं चिह्नम् । ४ विशेषेण जानाति ।  
 ५ नामना ल०, व०, प०, स०, इ० । ६ धनात् ( प्रसथवनात् ) । ७ गमयति स्म । ८ मामावृः ।  
 ९ विद्याधराकारः ।

निजागमनवृत्तान्तकथनावसरे परा । विद्युद्देवगामिधा विद्याधरी तत्र समाप्ता ॥२७॥  
 पापिनाऽशनिवेशेन हन्तुमेन<sup>१</sup> प्रथोजिता । समीक्ष्य महाकान्ताऽभूचित्राद्वित्तधृतयः ॥२८॥  
 मूरुः स्तनितवेगस्य राजो राजपुरेशितुः<sup>२</sup> । खण्डशोऽशनिवेगाल्प्यो<sup>३</sup> ज्योतिर्बैगाल्प्यमातृकः ॥२९॥  
 त्वमत्र तेन सौहार्दादानांतः य ममाप्रजः । विद्युद्देवाह्याऽहं च प्रेषिता ते त्वं मैथुनः ॥३०॥  
 रक्षादर्तंगिरि वाज्ञि स्थितस्तनेति सादरम् । भवत्समीपं श्रासैवमिति रक्षविचेष्टिम् ॥३१॥  
 दर्शयन्ती समीपस्थं यावत् सौधगृहान्तरम् । इत्युक्त्वाऽन्निलाघं च शाव्वा तस्य महाप्रमनः ॥३२॥  
 तत्रैव विद्यया सौधगृहं निर्माण्य निस्त्रपा । स्थिता तद्वाजकन्यामिः सह का कामिनां त्रपा ॥३३॥  
 पृथ्यानङ्गपताकाऽस्यांस्तं मर्खीष्यमबोचत्<sup>४</sup> । त्वयिषुर्गुणपालस्य सज्जिताने जिनेशितुः<sup>५</sup> ॥३४॥  
 ज्योतिर्बैगागुरुं प्रीत्या कुबेरश्रीः समादिशम् । निजजामातर<sup>६</sup> कापि श्रीपालस्वामिनं मम ॥३५॥  
 स्वयं स्तनितवेगोऽसौ सुतमन्वेषयेद्विति । प्रतिषष्ठः स<sup>७</sup> तत्रोक्तं भवत्सं मैथुनस्तथ ॥३६॥  
 आनीतवानिहेत्येतद्वयुप्त्यात्मनो द्विषम् । पर्ति मस्त्रोभरक्षेणेराशरूप्यानलवेगकम् ॥३७॥  
 स्वयं तदा समालोचय मिष्यार्य खचराधिष्पम्<sup>८</sup> । उद्दीयन्वेषणोपार्य त्वस्नेहाहित्येतसः ॥३८॥  
 आनीयतां प्रयत्नेन कुमार इति व्राघचाः । आशां प्रियसकाशां ते प्राहृपुस्त<sup>९</sup> दिहागते ॥३९॥

मुमकर कुमारको उनपर दया आयी और वह भी अपने आनेका वृत्तान्त कहनेके लिए उद्यत हुआ । वह जिस समय अपने आनेका समाचार कह रहा था उसी समय विद्युद्देवगा नामकी एक दूसरी विद्याधरी वही आयी । पापी अशनिवेगने कुमारको मारनेके लिए इसे भेजा था परन्तु वह कुण्डल-देखकर कागारे पीड़ित हो गयी जो ठीक ही है क्योंकि चित्तकी वृत्ति विचित्र होती है ॥१७-२८॥ वह कहने लगी कि अशनिवेग नामका विद्याधर राजपुरके स्वामी राजा स्तनितवेगका पुत्र है, उसकी माताका नाम ज्योतिर्बैगा है ॥२९॥ वह अशनिवेग मित्रताके कारण आपको यहाँ लाया है, वह मेरा बड़ा भाई है, मेरा नाम विद्युद्देवगा है और उसीने मुझे आपके पास भेजा है, अब वह आपका साला होता है ॥३०॥ उसने मुझसे कहा था कि तु तत्त्वावर्त पर्वतपर जा, वे वहाँ विराजमान हैं इसलिए ही मैं आदर सहित आपके पास आयी हूँ ऐसा कहकर उसने रागपूर्ण चेष्टाएं दिखलायीं और कहा कि यह समीप ही बूनेका बना हुआ पक्का मकान है परन्तु इतना कहनेपर भी जब उसने उन महात्माकी इच्छा नहीं देखी तब वहींपर विद्याके द्वारा मकान बना लिया और निर्लञ्ज होकर उन्हीं राजकन्याओंके साथ बैठ गयी सो ठीक ही है क्योंकि कामी पुरुषोंको लज्जा कहासे हो सकती है ? ॥३१-३३॥ इतनेमें विद्युद्देवगा-की सखी अनंगपताका आकर कुमारसे इस प्रकार कहने लगी कि 'आपकी माता कुबेरश्री आपके पिता श्रीगुणपाल जिनेन्द्रके समीप गयी हुई थी वहाँ उसने बड़े प्रेमसे ज्योतिर्बैगाके पितासे कहा कि मेरा पुत्र श्रीपाल कहीं गया है उसे ले आओ । ज्योतिर्बैगाके पिताने अपने जामाता स्तनितवेगसे कहा कि मेरे स्वामी श्रीपाल कहीं गये हैं उन्हें ले आओ । स्तनितवेगने स्वयं अपने पुत्र अशनिवेगको भेजा, पिताके कहनेसे ही अशनिवेग आपको यहाँ लाया है, वह आपका साला है । उत्तरश्रेणीका राजा अनलवेग इनका शत्रु है उसकी आशंका कर तुम्हारे स्नेहसे जिनका चित्त भर रहा है ऐसे सब भाई-बन्धुओंने स्वयं विचारकर आपके खोजनेका उपाय बतलाया और कहा कि कुमारको बड़े प्रयत्नसे यहाँ लाया जाय । वे सब विद्याधरोंके अधिपति अनलवेग-को रोकनेके लिए गये हैं और हम दोनोंको आपके पास भेजा है । यहाँ आनेपर यह विद्युद्देवगा

<sup>१</sup> श्रीपालम् । <sup>२</sup> पुरेशिनः अ०, प०, स०, ल० । <sup>३</sup> ज्योतिर्बैगाल्प्या माता यस्यासौ । <sup>४</sup> विद्युद्देवायाः । <sup>५</sup> श्रीपालम् । <sup>६</sup> जिनेशिनः ल०, प०, । <sup>७</sup> अशनिवेगस्य मातुज्योतिर्बैगायाः पितरम् कुबेरश्रीः समादिशदिति संबन्धः । <sup>८</sup> स्तनितवेगजामातरम् । <sup>९</sup> ज्योतिर्बैगापिता । <sup>१०</sup> अशनिवेगम् । <sup>११</sup> तत्कारणात् ।

विद्युद्गेगाऽबलोवय वामनुरक्ताऽभवत्यया । व त्याजेति तदाकर्ष्य<sup>१</sup> स विचिन्नयोऽस्ति ततः ॥४०॥  
मध्येष्वनयनेऽग्राहि<sup>२</sup> एतं गुहमिरपितम् । मुक्त्वा गुह्यजनानीतां स्वीकरोमि न चापराम्<sup>३</sup> ॥४१॥  
दृष्ट्वोदत्तस्तत्त्वात् शङ्खारसम्बोधते । नानादिष्ठै रञ्जित्वं प्रवृत्ता नाशकंस्तदा<sup>४</sup> ॥४२॥  
विद्युद्गेगा ततोऽगच्छत रुद्रमानुपितृसंनिधी । विष्णव्य द्वारमारोप र सौवामं प्राणवलभम् ॥४३॥  
तावानेतु<sup>५</sup> कुमारोऽपि सुसवान् रक्तकम्बलम् । प्रापुर्व्य तं समालोक्य भेदण्डै<sup>६</sup> विशितोच्चयम्<sup>७</sup> ॥४४॥  
मध्वा नीत्वा द्विजः<sup>८</sup> सिद्धकूटाप्रे खावितु<sup>९</sup> स्थितः । चक्रन्तं वीक्ष्य<sup>१०</sup> सोऽस्याक्षीत्यत्य<sup>११</sup> तेषां<sup>१२</sup> जातिजोगुणः ४५  
तेषोऽवतीर्थे श्रीपालः स्वनिधा सरसि भैरविमान् । सुदुर्घाण्याप्य सुगन्धीमे स्वभावद्विजिनात्यम् ॥४६॥  
परीत्य स्तोतुमारेभे विद्युत्सौ<sup>१३</sup> द्वासतत्रौ<sup>१४</sup> स्वयम् । तज्जीरीक्ष्य प्रसङ्गस्पष्टम्भव्यत्य जिनपुंगवान् ॥४७॥  
अमित्रन्त्य यथाकामं विधिवत्तत्र सुस्थितः । तमभ्येत्य रुद्रः कश्चित् समुद्भूतं नमःपथे ॥४८॥  
गच्छन्मनोरमे राष्ट्रे शिवंकरपुरेश्विनः । नृपस्यानिश्वेगस्य कान्तकां कान्तवतीत्यभूत् ॥४९॥  
तयोः सुता भोगवतीमाकाशहस्रटिकालये । सुदुशय्यातले सुतां का कुमारीयमित्यस्मै<sup>१५</sup> ॥५०॥  
भगृच्छत्<sup>१६</sup> सोऽववीदेषा भुजंगी विषमेति च । तदुक्ते<sup>१७</sup> स कुषा कुष्वा कम्यापितृसमीपगम्भै<sup>१८</sup> ॥५१॥

आपको देखकर आपमें अत्यन्त अनुरक्त हो गयी है अतः आपको यह छोड़नी नहीं चाहिए । कुमारने ये सब बातें सुनकर और अच्छी तरह विचारकर उचित उत्तर दिया कि मैंने यज्ञोपवीत संस्कारके समय गुरुजनोंके द्वारा दिया हुआ एक व्रत ग्रहण किया था और वह यह है कि मैं माता-पिता आदि गुरुजनोंके द्वारा दी हुई कन्याको छोड़कर और किसी कन्याको स्वीकार नहीं करूँगा । जब कुमारने यह उत्तर दिया तब वे सब कन्याएं अनेक प्रकारकी श्रुंगाररसकी चेष्टाओंसे कुमारको अनुरक्त करनेके लिए तैयार हुई परन्तु जब उसे अनुरक्त नहीं कर सकीं तब विद्युद्गेगा प्राणपति श्रीपालको मकानकी छतपर छोड़कर और बाहरसे दरखाजा बन्द कर माता-पिताको बुलानेके लिए उनके पास गयी । इधर कुमार श्रीपाल भी लाल कम्बल ओढ़कर सो गये, इतनेमें एक भेरण्ड पक्षीकी दृष्टि उनपर पड़ी, वह उन्हें मांसका पिण्ड समझकर उठा ले गया और सिद्धकूट-चैत्यालयके अग्रभागपर रखकर खानेके लिए तैयार हुआ परन्तु कुमारको हिलता-हुलता देखकर उसने उन्हें छोड़ दिया सो टोक ही है क्योंकि यह उन पक्षियोंका जन्मजात गुण है ॥४४-४५॥ तदनन्तर श्रीपालने सिद्धकूटके शिखरसे नीचे उत्तरकरं सरोवरमें स्नान किया और अच्छे-अच्छे सुगन्धित फूल लेकर भक्तिपूर्वक श्री जिनालयकी प्रदक्षिणा दी और स्नुति करना प्रारम्भ किया, उसी समय चैत्यालयका द्वार अपने-आप खुल गया, यह देखकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और विधिपूर्वक इच्छानुसार श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा-बन्दना कर मुखसे बहीपर बैठ गया । इतनेमें ही एक विद्याधर सामने आया और कुमारको उठाकर आकाशमार्गमें ले चला, चलते-चलते वे मनोरम देशके शिवंकरपुर नगरमें पहुँचे, वहाँके राजाका नाम अनिलवेग था, और उसकी स्त्रीका नाम था कान्तकती, उन दोनोंके भोगवती नामकी पुष्टी थी, वह भोगवती आकाशमें बने हुए स्फटिकके महलमें कोमल शश्यापर सो रही थी उस देखकर उस विद्याधरने श्रीपालकुमारसे पूछा कि यह कुमारी कौन है? कुमारने उत्तर दिया कि

१ संविचि-८०, प०, अ० । २ स्वीकृतः । ३ कन्याजननीजनकानुमतेन इत्ताम् । ४ तंरदत्ताम् । ५ शक्ताः न बभूवुः । ६ रत्नाकर्त्तरिः । ७ निजभातापितरौ । ८ प्रच्छाद्य । ९ पक्षिविशेषः । १० मांसपिण्डम् । ११ भेरण्डः । १२ मुमोच । १३ सज्जीवस्य त्यागः । १४ पक्षिणाम् । १५ सिद्धकूटापात् । १६ उद्धाटितम् । १७ द्वारम् । १८ विद्याधरः । १९ श्रीपालः । २० श्रीपालवचनात् । २१ भोगवतीजनकस्य समीपस्य हृत्वा तेन अनिलवेगेन सह विद्याधरी बदति । किमिति? अस्मत्कन्यकां भोगवतीमेव खलः श्रीपालः विषमभुजंगीति अङ्गवीदिति ।

तमस्मल्लन्यकामेष भुजंगीति खलोऽवबीत् । १३ इत्यवोचतः<sup>२३</sup> क्रुद्ध्वा दुर्धी निक्षिप्यतामयम्<sup>२४</sup> ॥५२॥  
 दुर्द्धेरोहतपोभारधारियोग्ये घने धने । इत्यभ्यधातृपस्तस्य वचनानुगमादसौ<sup>२५</sup> ॥५३॥  
 विजयाद्वैतरशेषिमनोहरयुरान्तिके । समशाने शीतवैतालविद्यया तं<sup>२६</sup> शुमाकृतिम् ॥५४॥  
 कृत्वा अत्यक्षिपत् पापी जर्तीरूपवारिण्यम् । २७ तथासपृश्यकुले जाता काऽपि जामातरं स्वयम् ॥५५॥  
 स्वं ग्राममृगरूपेण<sup>२८</sup> स्वसुताचरणद्वये । समश्वालुठितं कृत्वा तो प्रसाद्य<sup>२९</sup> भृशं ततः ॥५६॥  
 २८ तं पुरातनरूपेण समवस्थापयत् लला । २९ तद्विलोक्य कुमारोऽसौ लगाः रवामिमसाकृतिम् ॥५७॥  
 ३० निविवर्तयितु रक्षा इत्याशङ्कश्चिद्विचिन्तयन् । ३१ यमाग्रयाचिसंकाशकाशाप्रसंवहासिमि<sup>३०</sup> ॥५८॥  
 शिरोरुद्धैर्जराम्भोधितरक्षाभत्तुख्या<sup>३१</sup> । समेतमात्मनो रूपं दृष्टु दुष्टिभावितम्<sup>३२</sup> ॥५९॥  
 लज्जाशोकाभिभूतः सन् मरुशु गच्छेत्सततः परम्<sup>३३</sup> । तत्र<sup>३४</sup> भोगवती<sup>३५</sup> भातुर्हरिक्तोः सुसिद्धया ॥६०॥  
 विद्यया शब्दरूपेण सद्यः प्राप्तितया करे । कुमारस्य<sup>३६</sup> समुद्भव्य<sup>३७</sup> निवन्तिभवित्वारयन् ॥६१॥  
 उद्दत्येदं विशङ्कस्वं विवेष्युक्तं प्रपीतवान्<sup>३८</sup> । ३८ तं दृष्टा हरिकेतुस्वां सर्वव्याधिधिनाशिनी ॥६२॥  
 विद्याश्रितेति संश्रीतः प्रयुज्य वचनं गतः । ततः स्वरूपमापयत्<sup>३९</sup> कुमारो वटभूरुहः<sup>४०</sup> ॥६३॥  
 गच्छन् स्थितमधोभागे दृष्टा कंचित्प्रभावत् । प्रदेशः कोऽयमित्येतदपृच्छत<sup>४१</sup> सोऽवबीदिदम् ॥६४॥

यह विषम सर्पिणी है । श्रीपालके देसी कहनेपर ‘वह विद्याधर दुर्द्ध’ होकर उन्हें उस कन्याके पिताके पास ले गया और कहने लगा कि यह दुष्ट हम लोगोंकी कन्याको सर्पिणी कह रहा है । यह सुनकर कन्याके पिताने भी क्रुद्ध होकर कहा कि ‘इस दुष्टको कठिन तपका भार धारण करनेके योग्य किसी सघन बनमें छुड़वा दो ।’ राजाके अनुसार, उस पापी विद्याधरने शीतवैताली विद्याके द्वारा सुन्दर आकारवाले श्रीपालकुमारको दृढ़का रूप धारण करनेवाला बनाकर विजयाधं पर्वतको उत्तर थेणिके मनोहर नगरके सभीपवाले शमशानमें पटक दिया । वहाँ असपृश्य कुलमें उत्पन्न हुई किसी स्त्रीने अपने जमाईको कुत्ता बनाकर अपनी पुत्रीके दोनों चरणोंपर खूब लोटाया और इस तरह अपनी पुत्रीको अत्यन्त प्रसन्न कर फिर उस दुष्ट चाण्डालिनीने उसका पुराना रूप कर दिया । यह देखकर कुमार कुछ भयभीत हो चिन्ता करने लगा कि ये विद्याधर लोग इच्छानुसार रूप बनानेमें समर्थ हैं । उस समय वह मानी यमराजके सामने जानेवालेके समान ही था – अत्यन्त दृढ़ था, उसके बाल काशके फूले हुए फूलोंकी हैसी कर रहे थे, और शरीरमें बुद्धापारूपी समुद्रकी तरंगोंके समान सिकुड़नें उठ रही थीं । इस प्रकार दुष्ट विद्याधरके हारा किया हुआ अपना रूप देखकर वह लज्जा और शोकसे दब रहा था । इसी अवस्थामें वह शीघ्र ही आगे चला । वहाँ भोगवतीके भाई हरिकेतुको विद्या सिद्ध हुई थी उससे उसने प्रार्थना की तब विद्याने मुरदेका रूप धारण कर श्रीपालकुमारके हाथपर कुछ उगल दिया और कहा कि तू विना किसी विचारके निशंक हो इसे उठाकर पी जा, कुमार भी उसे शीघ्र ही पी गया । यह देखकर हरिकेतुने कुमारसे कहा कि तुझे सर्वव्याधिविदाशिनी विद्या प्राप्त हुई है, यह कहकर और विद्या देकर हरिकेतु प्रसन्न होता हुआ वहाँ चला गया । इधर कुमार भी अपने असली रूपको प्राप्त ही गया । कुमार आगे बढ़ा तो उसने एक बट वृक्षके

१ इत्युवाच ततः क्रुष्वा दुष्टो अ०, प०, इ०, स०, ल० । २ तद्वचनाकर्णनानन्तरम् । ३ अनिलवेगः प्रकृष्ट ।  
 ४ श्रीपालः । ५ खगः । ६ श्रीपालम् । ७ समशाने । ८ सारमेयरूपेण । ९ प्रसन्नतां नीत्वा । १० जामातरम् ।  
 ११ मायास्वरूपम् । १२ विमर्शितुम् । १३ कृतान्तस्य पुरोगामिसदृशः । १४ हारिमि<sup>१४</sup> ल० । १५ जराम्भो-  
 धेस्तरङ्गाभ इत्यपि पाठः । १६ दुष्टविद्याधरेण दमुत्पादितम् । १७ तस्मादन्यप्रदेशम् । १८ समशाने ।  
 १९ पूर्वोक्तभोगवतीकम्बाग्रजस्य । २० श्रीपालकुमारस्य । २१ वचनं कृत्वा । २२ विवति स्म । २३ श्रीपालम् ।  
 २४ निजरूपं प्राप्तः । २५ न्ययोघकुशस्य । वटभूरुहम् ल० । २६ वक्ष्यमाणामित्येवम्-ल०, प०, अ०, स०, इ० ।

खगादेः पूर्वदिग्माणे नीलाङ्गेऽपि पश्चिमं । सुसीमाल्योऽस्ति देशोऽन्नं महानगरमध्यदः ॥६५॥  
 तद्भूतवनमंतरवे सम्यक् विसेऽवधारय । <sup>१</sup>अस्मिन्देशाः शिलाः सप्त परस्परधाराः कृताः ॥६६॥  
 येनाऽसौ चक्रवर्तिल्लं<sup>२</sup> प्राप्तेऽथादेश ईश्वरः । इसि तद्वचनाख्ये<sup>३</sup> वास्तवा कृतवास्तदा ॥६७॥  
 दृष्ट्वा तासाहसं बहुं सोऽगमजगरेशिनः । कुमारोऽपि विनिर्गत्व ततो<sup>४</sup> निर्विषणचेतसा ॥६८॥  
 कांचिज्जराकर्ती<sup>५</sup> कुस्यवार्तां कस्यचित्तरोः । <sup>६</sup>अस्मिन्देशामधोभागे विषयं पुष्कलावतीम् ॥६९॥  
 वद् प्रयाति कः पद्मा इत्यप्राक्षीत् प्रियं वहम्<sup>७</sup> । विना गानमभारेण प्रयातुं मैथ शक्यते ॥७०॥  
<sup>८</sup>स<sup>९</sup> गद्युतिशतोस्मेधविजयाद्विनिरेपि । <sup>१०</sup>परस्मिन्दिव्यसाधाह<sup>११</sup> तदाकर्ष्य नृपात्मजः ॥७१॥  
 वृहि तत्प्रापणोपायमिति तो अत्यभावत । इह जम्बूमति द्वीपे विषयो वत्सकावती ॥७२॥  
 तत्त्वेवरगिरी राजपुरे खेचरचक्रिणः । देवी धरणिकम्पस्य सुप्रभा<sup>१२</sup> वा प्रभाकरी ॥७३॥  
 तत्त्वोऽहं सनूजास्मि विल्यातात्मा सुखावती । <sup>१३</sup>त्रिप्रकारोऽहविद्याम् पारगाऽन्येचुरागता ॥७४॥  
 विषये वत्सकावत्यां विजयार्धभर्हीधरं<sup>१४</sup> । अकम्पनसुता पिप्पलाल्पा प्राणसमां सखीम् ॥७५॥  
 ममाभिवीक्षितुं तत्र<sup>१५</sup> चिन्मालोदय कम्बलम् । कथयायं कुतस्यस्ते तम्भीति प्रश्नतो मम ॥७६॥

नीचे बैठे हुए किसी विद्याधरको देखकर उससे पूछा कि यह कौन-सा देश है ? तब वह विद्याधर कहने लगा कि ॥४६-६४॥ विजयार्धं पर्वतकी पूर्वदिशा और नीलगिरिकी पश्चिमकी ओर यह सुसीमा नामका देश है, इसमें यह महानगर नामका नगर है और यह भूतारण्य वन है, यह तू अपने मनमें अच्छी तरह निश्चय कर ले, इधर इस वनमें मेरे सात शिलाएँ पढ़ी हैं जो कोई इन्हें परस्पर मिलाकर एकपर एक रख देगा वह चक्रवर्ती पदको प्राप्त होगा ऐसी सर्वज्ञ देवकी आज्ञा है' विद्याधरके यह बचन सुनकर थीपालकुमारने उन शिलाओंको उसी समय एकके ऊपर एक करके रख दिया ॥६५-६७॥ कुमारका यह साहस देखकर वह विद्याधर नगरके राजाको खबर देनेके लिए चला गया और इधर कुमार भी कुछ उदासचित हो बहासे निकलकर आगे चला । आगे किसी वृक्षके नीचे निन्द्य शरीरको धारण करनेवाली एक बुद्धियाको देखकर मधुर बचन बोलनेवाले कुमारने उससे पूछा कि पुष्कलावती देशको कौन-सा मार्ग जाता है, बताओ, तब बुद्धियाने कहा कि वहाँ आकाश मार्गके बिना नहीं जाया जा सकता क्योंकि वह देश पञ्चीस योजन ऊँचे विजयार्धं पर्वतसे भी उस ओर है, यह सुनकर राजपुत्र थीपालने उससे फिर कहा कि वहाँ जानेका कुछ भी तो मार्ग बतलाओ । तब वह कहने लगी - इस जम्बू द्वीपमें एक वत्सकावती नामका देश है, उसके विजयार्धं पर्वतपर एक राजपुर नामका नगर है । उसमें विद्याधरोंका चक्रवर्ती राजा धरणीकम्प रहता है, उसकी कान्तिको फैलानेवाली सुप्रभा, नामकी रानी है, मैं उन्हीं दोनोंकी प्रसिद्ध पुत्री हूँ, सुखावती मेरा नाम है और मैं जाति विद्या, कुल विद्या तथा सिद्ध की हुई विद्या इन तीनों प्रकारकी बड़ी-बड़ी विद्याओंकी पारगामिनी हूँ । किसी एक दिन मैं वत्सकावती देशके विजयार्धं पर्वतपर अपने प्राणोंके समान प्यारी सखी, राजा अकम्पनकी पुत्री पिप्पलाको देखनेके लिए गयी थी । वहाँ मैंने एक विचित्र कम्बल देखकर उससे पूछा कि हे सखि, कह, यह कम्बल तुझे कहासे प्राप्त हुआ है ? उसने कहा कि 'यह कम्बल मेरी ही आज्ञासे प्राप्त हुआ है' । कम्बल प्राप्तिके समयसे ही कम्बलवालेका ध्यान करती हुई वह अत्यन्त विहृल हो रही है ऐसा सुनकर उसकी सखी मदनवती उसे देखनेके लिए उसी

१ बने । २ एकैकस्याः उपर्युपरिस्थिताः । ३ विहिता । ४ प्राप्त्यति । ५ शीतलाः । ६ नगरेकिसुः ल०, प०,  
 अ०, स०, इ० । ७ बनात् । ८ निन्दा । ९ अष्टः- ल० । १० प्रियं वदः ल० । ११ पुष्कलावतीविषयः ।  
 १२ एक्षत्रिविशतियोजन । १३ अपरभागे । १४ जरती । १५ चन्द्रिकेव । १६ नातिकुलसाधितविद्यानाम् ।  
 १७ महीतज्जे ल०, प० । १८ पिप्पलायाम् ।

जगाद् स॑ऽपि सामेष<sup>१</sup> प्रायादेशवशादिति । कम्बलावाप्तितस्तद्वन्तं<sup>२</sup> समाध्यात् विहलाम् ॥३७॥  
 एसां<sup>३</sup> तस्याः<sup>४</sup> सखीं भ्रष्टा समन्वेषु समागतो । काञ्चनाख्यपुराणास्मा मदनादिवती तदा ॥३८॥  
 दण्डवा तत्कम्बलस्थान्ते निवदां रक्षुदिकास् । तत्र<sup>५</sup> श्रीपालनामाक्षरणि चादेशसंस्मृतेः<sup>६</sup> ॥३९॥  
 अकामयायकोदभिजहद्याऽभूदहै<sup>७</sup> ततः । कथं वैश्याधरं लोकसिं श्रीपालनामभूत् ॥४०॥  
 समागतः स इत्येतत्त्विद्येते पुण्डरीकिणीम् । उपगत्य जिनागारे चन्द्रावा समुपस्थिता ॥४१॥  
 नवत्यवासक्यां<sup>८</sup> सखीं तब मातुः प्रजलयनाम् । विद्रिवा विस्तरेण स्वामानेवासीति निइचयात् ॥४२॥  
 अग्राद्वक्ती भवद्वातां विद्युद्गेगामुखोद्गताम् । अवगत्य सख्या साहूः योजयित्यामि ते प्रियम् ॥४३॥  
 न<sup>९</sup> विषादो विधातत्य इत्याइवास्य भवत्यित्याम् । विनिगंत्य तस्मैऽभ्येत्य सिद्धकूटजिनालयम् ॥४४॥  
 अभिवन्द्यागता<sup>१०</sup> इस्त्वेहि<sup>११</sup> भयाऽमा पुण्डरीकिणीम् । मातरं भातरं चान्याऽस्त्वद्वधृत्य समाक्षितुम् ॥४५॥  
 यदीच्छाहित तत्त्वेत्याह सा तच्छुद्ध्याः<sup>१२</sup> युनः कुतः । त्वंसेव जरती जसेत्यअर्थात् स<sup>१३</sup> सुखावतीम् ॥४६॥  
 कुमारवचनाकर्णनेन<sup>१४</sup> चाहूङ्क्यमागतम् । भवतइत्य न किं वेद्यात्यपहस्य तयोदितम् ॥४७॥  
 जरामिभूतभालोदय स्वशरीरप्तिहृदया । कुलसंविधिर्वै त्वं इत्युद्गेगामुखोद्गताम् ॥४८॥  
 तच्छुद्ध्या साऽग्रवीदेवं पिप्पलेत्याख्ययोदिता । मदनादिवती या च मैथुनी विद्युती तथोः ॥४९॥  
 वलवान् धूमवेगात्यस्ताहव्यरिवरोऽपि च । तद्भयारवां<sup>१५</sup> तिरोधाय पुरु<sup>१६</sup> प्रापयितुं प्रय ॥५०॥  
 मायारूपद्रव्यं<sup>१७</sup> विद्याप्रभावात् यक्तीकृतम् । कुमारं यत्करस्यामृतास्वाइफलमक्षणात् ॥५१॥

समय कांचनपुर नगरसे आयी । उसने वह कम्बल देखा, कम्बलके छोरमें बैंधी हुई रत्नोंकी अँगूठी और उसपर खुदे हुए श्रीपालके नामाक्षर देखकर मुझे अपने गुरुकी आज्ञाका स्मरण हो आया, उसी समय मेरा हृदय कामदेवके बाणोंसे भिन्न हो गया, मैं सोचने लगी कि श्रीपाल नामको धारण करनेवाला यह भूमिगोचरी विद्याधरोंके इस लोकमें कैसे आया ? इसी बातका निश्चय करनेके लिए मैं पुण्डरीकिणी पुरी पहुँची, वहाँ जिनालयमें भगवानकी बन्दना कर बैठी ही थी कि इतनेमें वहाँ आणकी माता आ पहुँची, उनके कहनेसे मैंने विस्तारपूर्वक आपके प्रवासकी कथा मालूम की और निश्चय किया कि मैं आपको अवश्य ही ढूँढ़कर लाऊंगी । उसी निश्चयके अनुसार मैं आ रही थी, रास्तेमें विद्युद्गेगाके मुखसे आपका सब समाचार जानकर मैंने उससे कहा कि 'तू अभी विवाह मत कर, मैं तेरे इष्टपतिको तुझसे अवश्य मिला दूँगी' इस प्रकार आपकी भावी प्रियाको विश्वास दिलाकर वहाँसे निकली और सिद्धकूट चैत्यालयमें पहुँची । वहाँको बन्दना कर आयी हूँ, यदि माता भाई तथा अन्य बन्धुओंको देखनेकी तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ पुण्डरीकिणी पुरीको चलो, यह सब सुनकर मैंने सुखावतीसे फिर कहा कि अच्छा, यह बतला तू इतनी बूढ़ी क्यों हो गयी है ? कुमारके बचन सुनकर उस बुढ़ियाने हँसते-हँसते कहा कि क्या आप अपने शरीरमें आये हुए बुढ़ापेको नहीं जानते—आप भी तो बूढ़े हो रहे हैं । कुमारने अपने शरीरको बूढ़ा देखकर उससे पूछा कि 'तूने मेरा शरीर इस प्रकार बूढ़ा क्यों कर दिया है ?' कुमारकी यह बात सुनकर वह इस तरह कहने लगी कि जिनका कथन पहले कर आयी हूँ ऐसी पिप्पला और मदनवती नामकी दो कन्याएँ हैं, उन्हें दो प्रसिद्ध

२ कम्बलः । २ कम्बलप्राप्तिमादि कृत्येत्यर्थः । कम्बलप्राप्तिस्त--अ०, स०, ल० । ३ कम्बलवन्तं पुरुषम् ।  
 ४ पिप्पलाम् । ५ पिप्पलायाः । ६ मुद्रिकायाम् । ७ संस्मृतौ इ०, अ०, स०, प० । ८ कामवाण । ९ सुखावती ।  
 १० भवदेशान्तरगमनकथाम् । ११ विवाहो ल० । लिदोषो अ०, स० । १२ अत्रागताहम् । १३ आगच्छ ।  
 १४ सुखावतीबचनमाकर्ण्य । १५ श्रीपालः । १६ कुमारवाचमाकर्ण्य इ०, अ०, स० । कुमारवचनमाकर्ण्य ल० ।  
 १७ धूमवेगहरिवरभप्रात् । १८ पुण्डरीकिणीम् । १९ मम जरतीरूपम् भवतइत्य वाहूङ्क्यमिति द्वयम् ।

विगतकुच्छुभः शीघ्रे मामालय पुरं प्रवि । ब्रजेति सोऽपि तच्छुखा स्त्रियो रूपममामकम् ॥५२॥  
न हृषकमि कर्णं चाहमारोहामि गुरोः गुरोः । १ सनिधावाद्वार्षीदग्धतमित्यवर्तीदिदम् ॥५३॥  
सा तदाकर्ण्यं संचित्य किं जातमिति विद्यया । गुहीत्वा गुहाकामसुहृहन्ती “तमित्यर्ती” ॥५४॥  
विश्ववा मिद्युक्टाग्रणं तत्र विद्यान्तये स्थिता । तस्मिन्नेव दिने भोगवती शशिनमामनः ॥५५॥  
प्रविश्व भवनं काम्या कलाभिद्वाभिवर्तिसम् । निर्बन्धेमानमालोक्य स्वप्नेऽमांगदथशान्तये ॥५६॥  
तस्मिन्दृढपूजार्थं कान्ता कान्तवती सती । रत्नवेगा सुवेगाऽमितमती रत्निकान्तया ॥५७॥  
सहिता चित्तवेगाल्या पिप्पला मदनावती । विशुद्धेगा तथैवान्यास्तामिः सा परिवारिता ॥५८॥  
समागम्य महाभक्त्या परीत्य जिनमन्दिरम् । यथाविधि प्रणग्नेशं संपूज्य स्तोत्रमुच्यता ॥५९॥  
ताइचं तासां तदा व्याकुलीभावमपि चेतसः । तस्मिन् शिवकुमारस्य वक्ताकान्तमानम् ॥६०॥  
‘आदिष्ठननिधानेन विशेष्य प्रकृतिं गतम् । सुखावही “तदुदेशाद्यनीय कुमारकम् ॥६१॥  
स्थानेऽस्यस्तिमन्यधारेनैः तथाव्यमुनिः सुवेगाः । स्वरूपं कामरूपिण्या “प्रेषमाणं वदच्छुभ्या ।  
हड्डा॑ हरिवरस्तस्माद्वीक्षा क्षोपात् स पापमाक् । निक्षिक्षेप॑ महाकालगुहायाः “त्रिहितायकम् ॥६२॥

विद्याधर चाहते हैं, एकका नाम धूमवेग है और दूसरेका नाम हरिवर । ये दोनों ही अत्यन्त बलवान् हैं, उन दोनोंके भयसे ही मैंने आपको छिपाकर नगरमें पहुँचानेके लिए विद्याके प्रभाव-से मायामय दो रूप बनाये हैं । हे कुमार, निरेहृष्यमें रहे हुए इस इन्द्रजले-सागातः स्तूपिद्वि-फलको खाकर आप अपनी भूख तथा थकावटको दूर कीजिए और मुश्वपर सवार होकर शीघ्र ही नगरकी ओर चलिए । यह सुनकर कुमारने कहा कि मेरे सवार होनेके लिए स्त्रीका रूप अयोग्य है, मैं तो उसका स्पर्श भी नहीं करता हूँ, सवार कैसे होऊँ ? क्योंकि मैंने पहले गुरुके समीप ऐसा ही व्रत लिया है यह सुनकर उसने सोचा और कहा कि अब भी क्या हुआ ? वह विद्याके द्वारा उसी समय पुरुषका आकार धारण कर कुमारको बड़ी शीघ्रतासे ले चली । चलते-चलते वह सिद्धकूट चैत्यालयमें पहुँची और बन्दना कर विश्राम करनेके लिए वहीं बैठ गयी । उसी दिन भोगवतीने स्वप्नमें देखा कि कान्ति और कलाओंसे बदा हुआ चन्द्रमा हमारे भवनमें प्रवेश कर लौट गया है । इस स्वप्नको देखकर वह अमंगलकी शान्तिके लिए सिद्धकूट चैत्यालयमें पूजा करनेके लिए आयी थी । वह सुन्दरी कान्तवती, सती रत्नवेगा, सुवेगा, अमितमती, रत्निकान्ता, चित्तवेगा, पिप्पला, मदनावती, विशुद्धेगा सभा और भी अनेक राजकन्याओंसे घिरी हुई थी । उन सभी कन्याओंने आकर बड़ी भवितसे जिन-मन्दिरकी प्रदक्षिणा दी, विधिपूर्वक नमस्कार किया, पूजा की और फिर सबकी सब स्तुति करनेके लिए उद्यत हुई । स्तुति करते समय भी उनका चित्त व्याकुल हो रहा था । उसी चैत्यालयमें एक शिवकुमार नामका राज-पुत्र भी खड़ा था, उसका मैंह टेढ़ा था परन्तु श्रीपालकुमारके समीप आते ही वह ठीक हो गया, यह देखकर सुखावतीने उसे उसके स्थानसे हटाकर दूसरी जगह रख दिया । उस चैत्यालयमें श्रीपालकुमार अपनी कामरूपिणी मुद्रासे इच्छानुसार जलमें अपना खास रूप देख रहा था । उसे ऐसा करते पापी हरिवर विद्याधरने देख लिया और पूर्वे जन्ममें पुण्य करनेवाले कुमारको

१. सम संक्षिप्तस्त्रीरूपं सुख्त्वा अप्यस्त्रीरूपम् । २. पूर्वस्तिम् । ३. गुरोः समीपे । ४. स्त्रीकरोगि ।  
५. श्रीपालम् । ६. गममशीला । ७. पुरा कुमारेण भुजड्गीत्युक्ता भोगवती । ८. सहागता: कन्यका: ।  
९. आदेशपुरुषसामीप्येन । १०. पूर्वस्वरूपम् । ११. तत्रप्रदेशात् । १२. स्थापयामास । १३. जले ।  
१४. मुद्रिक्षया । १५. प्रेष्यमाणं इ० । १६. मदनावतीमेशुनः । १७. निक्षिप्तवान् । १८. कृतपुण्य  
श्रीपालम् ।

तस्य स्तवं भाकालस्तं गृहीतुमुपागतः<sup>१</sup> । तस्य गुण्यप्रभावेन सोऽप्यकिंचित्करो गतः ॥१०४॥  
 गथ शश्यात्तले मुख्या अर्च्चा गृहुनि विस्तृते । परेषु निर्गते<sup>२</sup> तस्याः<sup>३</sup> संप्रयुक्तैः परीक्षितुम् ॥१०५॥  
 आदिपुरुषं सृष्ट्यैर्जन्माऽभ्येष्य निवेदितम् । गृहीत्वा स्थविराकारं कोपपावकर्दिष्यितः ॥१०६॥  
 तं चीक्ष्य धूमवेगात्म्युः<sup>४</sup> वज्राशन्द्रपुराद् वहिः । इमशानमध्ये पाषाणनिशानविद्विधायुधैः<sup>५</sup> ॥१०७॥  
 न्यगृहात्तानि<sup>६</sup> चास्यास्वन् परन्ति कुसुमानि वा । परोऽपि खेचरहतव नरेषोऽस्तिवलाहृष्यः ॥१०८॥  
 स्वरूप्यां चित्रसेनायां सूर्ये दुष्टतरे सति । तं निरुत्यादुहतरिमन्<sup>७</sup> धूमशेगो निधाय तम् ॥१०९॥  
 कुमारं चारामस्त्रं महीषधजशक्तिः<sup>८</sup> । निराकृतउवलद्विशक्तिस्तस्मान् स निर्गतः ॥११०॥  
 हतानुचरभार्याक्रि काचिभिरपराधकः । हनो नृपेण सद्भूतैश्यस्य<sup>९</sup> शुद्धिप्रकाशिना ॥१११॥  
 ताकुमारस्य मंस्यर्णाच्छिशक्तिं सा दुताशानम् । विद्विष्या प्राविशद् दृष्ट्य कुमारस्वां लक्ष्मीनुकः ॥११२॥  
 अभ्यमपि वज्रेण स्त्रीणो मायाविनिर्मितम्<sup>१०</sup> । कवचं दिविजेशाः<sup>११</sup> च नीरल्यमिति निर्भयः ॥११३॥  
 हितस्तव्य स्मरन्नेवं सुता तप्तगरेविनः । राज्ञो विमलसेनस्य वत्यन्तकमलाहृष्या ॥११४॥  
 कामप्रहृष्टित् तस्यास्तद्युपहर्जिहर्षया<sup>१२</sup> । जने समुदिते<sup>१३</sup> सद्यः कुमारस्तमगाहरते<sup>१४</sup> ॥११५॥

क्रोधसे उस स्थानसे ले जाकर महाकाल नामकी गुफामें गिरा दिया । उस गुफामें एक महाकाल नामका व्यन्तर रहता था वह उसे पकड़नेके लिए आया परन्तु कुमारके पृथक्के प्रभावसे अकिञ्चित्कर हो चला गया—उसको कुछ नहीं बिगाड़ सका । वह कुमार उस दिन उसी गुफामें पवित्र, कोमल और बड़ी शश्यापर सोकर दूसरे दिन वहाँसे बाहर निकला, यद्यपि उसने अपना धूक्रेका रूप बना लिया था तथापि धूमवेगके द्वारा परीक्षाके लिए नियुक्त किये हुए पुरुषोंने उसे एहतान लिया, स्वामीके पास जाकर उन्होंने सब खबर दी और पकड़कर श्रीपालकुमारको सामने उपस्थित किया । क्रोधरूपी अग्निसे प्रज्वलित हुए धूमवेग विद्याधरने कुमारको देखकर आज्ञा दी कि इसे नगरके बाहर इमशानके बीच पत्थरपर शिसकर तेज किये हुए अनेक शस्त्रोंसे मार डालो । सेवक लोग मारने लगे परन्तु वे सब शस्त्र उसपर फूल होकर पड़ते थे । इसीसे सम्बन्ध रखनेवाली एक कथा और लिखी जाती है जो इय प्रकार है—

उसी नगरमें एक अतिवल नामका दूसरा विद्याधर राजा रहता था ॥६८-१०६॥ उसकी चित्रसेना नामकी रानीसे कोई दुष्ट नीकर फैस गया था, इसलिए राजा उसे मारकर जला रहा था । धूमवेग विद्याधर श्रीपालकुमारको उसी अग्निकुण्डमें रखकर चला गया परन्तु कुमारकी महीषधिकी शक्तिसे वह अग्नि निस्तेज हो गयी इसलिए वह उससे बाहर निकल आया । उस मारकर जलाये हुए सेवककी स्त्रीको जब इस बातका पता चला कि कुमारके स्पर्शसे अग्नि शक्तिरहित हो गयी है तब वह स्वयं उस अग्निमें घुस पड़ी और उससे निकलकर यह कहती हुई अपनी शुद्धि प्रकट करने लगी कि ‘मेरा पति निरपराध था राजा ने उसे व्यर्थ ही मार डाला है’ कुमारको यह सब चरित्र देखकर बड़ा कौतुक हुआ, वह सोचने लगा कि ‘स्त्रियोंकी मायासे बने हुए इस कबचको इन्द्र भी अपने वज्रसे नहीं भेद सकता है, यह छिद्ररहित है’ इस प्रकार सोचता हुआ वह निर्भय होकर बहीं बैठा था । इधर उस नगरके स्वामी राजा विमलसेनकी पुत्री कमलावती कामरूप पिशाचसे आक्रान्त हो रही थी, उसके उस पिशाचको दूर करनेकी इच्छा-से बहुत आदमी इकट्ठे हुए थे, श्रीपालकुमार भी वहाँ गया था और उसने उस पिशाचको दूर

<sup>१</sup> मुखितुमित्यर्थः । <sup>२</sup> गुहायाः सकाशात् । <sup>३</sup> संप्रयुक्तैः ल० । <sup>४</sup> सुप्रयुक्तैः ल०, अ०, प० । <sup>५</sup> पिप्पलायाः मैयुमः । <sup>६</sup> निरित । <sup>७</sup> निप्रहृष्टिकार । <sup>८</sup> पाषाणायुधानि । <sup>९</sup> हत्वा । <sup>१०</sup> चित्रामनी । <sup>११</sup> पुरा स्मशाने हरिकेदोचित्रया मिर्गितं पीत्रा जातमहीषधिविक्तिः । <sup>१२</sup> स्वभर्तुः । <sup>१३</sup> कपटमित्यर्थः । <sup>१४</sup> इन्द्रेण । <sup>१५</sup> कामप्रहृष्टमप्यसारितवानित्यर्थः ।

सत्योऽभूत् प्राचनादेश इति तस्मै सहीपतिः । तुष्टा तां कन्यकां दिस्तुमतस्यौ निष्ठां विद्वद्य सः ॥ ११६ ॥  
अस्याणं ब्रह्मदग्नेष्व नेयोऽयं भवता द्रुतम् । यस्मेवेत्यात्मजं स्वस्य वरयेन समादिशत् ॥ ११७ ॥  
नीत्वा सोऽपि कुमारं तं विमलादिपुरो बहिः । वसे नृणोपसंतप्तं स्यायथित्वा गतोऽस्तुते ॥ ११८ ॥  
तदा सुखावती कुडजा सुखा कुसुममालया । परिस्तृदय तुष्टा नीत्वा कन्यकां तं चकार सा ॥ ११९ ॥  
धूमवेगो हरिवरहृचैतां वीक्ष्याभिलाषिणी । अभूता बहुमालस्यौ तस्याः स्त्रीकरणं प्रति ॥ १२० ॥  
देवमन्ती तदाऽलोक्य सुखयोर्विवहो द्रुथा । पतिर्वत्ससावस्या यसेषाऽभिलक्षिति ॥ १२१ ॥  
हसि बन्धुजनैर्दर्शिमाणी वैराद् विरेमतुः । स्त्रीहेतोः कस्य वा न हकात् प्रतिदातः परस्परम् ॥ १२२ ॥  
कन्याकुरुत्येवै गत्वाऽतः कान्यया स सुकान्तया । रतिकान्तात्यया कान्तवस्या च सहितः पुनः ॥ १२३ ॥  
स्थितं प्राचकरहृषेणैः काचित्तं वीक्ष्य लज्जिता । रति समागमत् कात्रिनैकभावां हि योषितः ॥ १२४ ॥  
प्रसुपतवत्तं संत्वं प्रत्यृष्टे च सुखावती । यस्मेनोद्दृश्य गच्छन्ती तेनोन्मादितवक्षुषा ॥ १२५ ॥  
यिहाय मामिहैकाकिनं त्वं दद्य प्रस्थितेति सा । एषा न विवापि यासाऽहं व्यक्तमीपगता सदा ॥ १२६ ॥  
१३ आदिष्ठननितारस्तलासो नैवाग्रं ते भयम् । इन्द्रन्तहितमापाद्यैः स्वरूपेण समागमः ॥ १२७ ॥

कर दिया था । निमित्तज्ञानियोने जो पहले आदेश दिया था वह आज सत्य सिद्ध हुआ । यह देख राजाने सन्तुष्ट होकर वह पुत्री कुमारको देनी चाही परन्तु जब कुमारकी इच्छा त देखो तब उसने अपने पुत्र वरसेनको आज्ञा दी कि इन्हें शीघ्र ही बड़े यत्नके साथ इनके बन्धु वर्गके समीप भेज आओ ॥ १०९-११७ ॥ वह वरसेन भी कुमारको लेकर चला और विमलपुर नामक नगरके बाहर प्याससे पीड़ित कुपारको बैठाकर पानी लेनेके लिए गया ॥ ११८ ॥ उसी समय कूदडीका रूप बनाकर सुखावती वहाँ आ गयी, उसने अपने कुलोंकी मालाके स्पर्शसे कुमारको प्यास दूर कर दी और उसे कन्या बना दिया ॥ ११९ ॥ उस कन्याको देखकर धूमवेग और हरिवर दोनों ही उसकी इच्छा करने लगे । उसे स्त्रीकार करनेके लिए दोनों ईर्ष्यालू हो उठे और दोनों ही परस्पर द्वेष करने लगे । यह देखकर उनके भाई-बन्धुओंने रोका और कहा कि 'तुम दोनोंका लड़ना व्यर्थ है इसका पति वही हो जिसे यह चाहे' इस प्रकार बन्धुजनोंके द्वारा रोके जानेपर वे दोनों वैरसे विरत हुए । देखो ! स्त्रीके कारण परस्पर किस किसका प्रेम भंग नहीं हो जाता है ? ॥ १२०-१२२ ॥ उस कन्याने उन दोनोंमें-से किसीको नहीं चाहा इसलिए सुखावती उसे कन्याके आकारमें ही वहाँ ले गयी जहाँ कान्ता, सुकान्ता, रतिकान्ता और कान्तवती थीं ॥ १२३ ॥ पहलेके समान असली रूपमें बैठे हुए कुमारको देखकर कोई कन्या लज्जित हो गयी और कोई प्रीति करने लगी सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंके भाव अनेक प्रकारके होते हैं ॥ १२४ ॥ श्रीपाल रातको वहीं सोया, सोते-सोते ही सबेरेके समय सुखावती बड़े प्रथत्नसे उठा ले चली, कुमारने अस्ति खुलनेपर उससे पूछा कि तू मुझे यहाँ अकेला छोड़कर कहाँ चली गयी थी ? तब सुखावतीने कहाँ कि मैं कहीं नहीं गयी थी, मैं सदा आपके पास ही रही हूँ, यहाँ आपको स्त्रीरत्न प्राप्त होगा ऐसा निमित्तज्ञानीने बतलाया है, यहाँ आपको कोई भय नहीं है । आज तक मैं अपने रूपको छिपाये रहती थी परन्तु आज असली रूपमें आपसे मिल

१ दातुमिच्छुः । २ श्रीपालस्य । ३ कन्यकायामनभिलाषम् । ४ विमलसेनः । ५ जलाय । जलमानेतुमित्यर्थः ।  
६ गमयित्वा । अपसार्येत्यर्थः । ७ श्रीपालम् । ८ कुतकन्यकाम् । ९ प्रीतिषातः ल०, अ०, ष०, स० ।  
१० कन्यकाकारेणीव । ११ पूर्वस्वरूपेण ( निजकुमारस्वरूपेण ) । १२ अनेकपरिणामाः । १३ आदिष्ठो ल०,  
ष०, इ० । १४ इन्द्रन्तहितरूपाद्य-ल० । अन्तहितमान्त्रिदितं यथा भवति तथा । १५ समागमस्तिथ्यपि पाठः ।  
समागतास्मि ।

इभ्याह तद्वचः श्रुत्वा प्रसुर्यैर्थे खगाचले । पुरं दक्षिणभागर्थं गजादिं तरसमीपगम् ॥ १२५॥  
 कंचिद् गजपतिं स्तम्भमुन्मूल्यारुद्दृपंकम् । द्वारिंशदुक्तकीडामिः श्रीदित्या वशमानयत् ॥ १२६॥  
 ततः समुदितेऽचण्डीधिसौर्ये निर्जिताद् गजात् । कुमारागमनं पौरा त्रुष्ण्वा संतुष्टचेतसः ॥ १२७॥  
 'प्रतिकेतनमुद्यवन्नचलतेनुपताकका: । 'प्रश्युद्गममकुवैर्त्ते' तस्युष्योदयचोदिताः ॥ १२८॥  
 ततो नभस्यऽसौ गण्डन् कंचिद्वयपुरे हयम् । स्थितं प्रदक्षिणीकृत्य एवं पद्यसात्त्विस्मयः ॥ १२९॥  
 तत्रापि विदितादेशैर्नार्गैः प्राप्तपूजनः । पुनस्ततोऽपि निकलम्य समागम्यजिज्ञेच्छया ॥ १३०॥  
 '० चतुर्जनपद्माभ्यन्तरस्थसीममहाचले' । जने महति संभूयैः स्थिते केनापि हेतुना ॥ १३१॥  
 कस्यचित् कोशातः ११५ कस्मिंदिवद्यपि यत्नतः । सत्यशक्ते समुत्तातुं तं ११६ समुद्रीर्थं ११७ हेलया ॥  
 कुमारः ११७ प्राहरद् वैशस्तम्भं ११८ संभूतं वैशकम् । तदालोक्य जनः सर्वैः प्रमोदादारते ११९ व्यथान् ॥ १३२॥  
 नन्न कश्चित् समागम्य मूळः समुपविष्टवान् । प्रप्रणम्य कुमारं तं जयशब्दपुरस्तम्भ ॥ १३३॥  
 '० कुण्डश्च कश्चिद्द्वृक्ष्या प्रसारितकराङ्गुलिः । अञ्जलि सुकुलीकृत्य सर्वापि समुपस्थितः ॥ १३४॥  
 यो वज्रमणिपात्रं समुषुकस्तथा सुदा । तेषां पाके व्यालोकिष्टं कुमारं विनयेन सः ॥ १३५॥

रही हूँ" ॥ १२५—१२७॥ उसके यह बचन सुनकर श्रीपाल बहुत ही हर्षित हुआ और वहसि आगे चलकर विजयार्थं पर्वतके दक्षिण भागमें स्थित गजपुर नगरके समीप जा पहुँचा ॥ १२८॥ वहाँ कोई एक गजराज खम्भा उखाड़कर मदोन्मत्त हो रहा था । उसे कुमारने शास्त्रोक्त बत्तीस क्रीडाओंसे क्रीड़ा कराकर बश किया ॥ १२९॥ तदनन्तर सूर्योदय होते-होते नगरके सब लोगोंने गजराजको जीत लेनेसे कुमारका आना जान लिया, सबने सन्तुष्टचित्त होकर घर-घर चंचल पताकाएं फहरायीं और कुमारके पुण्योदयसे प्रेरित होकर सब लोगोंने उसकी अगवानी की ॥ १३०—१३१॥ कुमार वहाँसे भी आकाशमें चला, चलता-चलता हयपुर नगरमें पहुँचा वहाँ एक धोड़ा कुमारकी प्रदक्षिणा देकर समीप ही में खड़ा हो गया, कुमारने यह सब स्वयं देखा परन्तु उसे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ ॥ १३२॥ जब नगरनिवासियोंको इस बातका पता चला तब सबने कुमारका सल्कार किया, कुमार वहाँसे भी निकलकर अपनी इच्छानुसार आगे चला ॥ १३३॥ चलता-चलता चार देशोंके बीचमें स्थित सुसीमा नामक पर्वतपर पहुँचा । वहाँ किसी कारण बहुत-से लोग इकट्ठे हो रहे थे, वे प्रथल कर स्थानसे सलवार निकाल रहे थे परन्तु उनमेंसे कोई भी उक्त कार्यके लिए समर्थ नहीं हो सका परन्तु कुमारने उसे लीलामात्रमें निकाल दिया जिसमें बहुत-से बांस उलझे हुए खड़े थे, ऐसे बांसके बिडेपर उसे चलाया यह देखकर सब लोगोंने बड़े हृष्टसे कुमारका आदर-सल्कार किया ॥ १३४—१३६॥ इतनेमें ही वहाँ एक गूँगा मनुष्य आया और जय-जय शब्दका उच्चारण करता हुआ कुमारको प्रणाम कर दैठ गया ॥ १३७॥ वहाँपर एक टेढ़ी अंगुलीका मनुष्य आया, कुमारको देखते ही उसकी अंगुली ठीक हो गयी, उसने हाथकी अंगुली फैलाकर हाथ जोड़े और नमस्कार कर पास् ही खड़ा हो गया ॥ १३८॥ वहाँपर एक मनुष्य हीराओंकी भस्म बना रहा था, वह बनती नहीं थी परन्तु कुमारके सन्निधानसे वह बन गयी इसलिए उसने भी बड़ी दिनयसे कुमारके दर्शन किये

१ संतुष्य । २ गजपुरम् । ३ उदयं गते शति । ४ सूर्यैः ५ प्रतिशृहम् । ६ समुद्भागमनम् । ७ चक्रिरे ।  
 ८ श्रीपालगुण्य । ९ स्वर्य पश्यत्वविस्मयः ल०, इ०, अ०, स० । १० चतुर्देशमध्यस्थितसीमाव्यपमहागिरी ।  
 ११ महागिरी ट० । १२ मिलित्या । १३ खड्गपिधानतः । १४ खड्गम् । १५ उत्सातं कुला । १६ प्रहरति  
 स्म । १७ वेणुगुल्मम् । १८ परिवेषितवेणुकम् । १९ —दायरं ल०, प० । २० कुरुजप्त अ०, स० । कुणित्य  
 ल० । चिनालः ।

ग्रामुक्करवालेशः पुरेऽभूद् विजयाद्युये । सोऽस्य<sup>१</sup> सेनापतिभावी भविष्यत्क्रतिंवः ॥१४०॥  
तस्युरं वर्त्तीत्तिमत्यासमजापते<sup>२</sup> । खड्गेष्वाटनसादेशस्तस्य श्रीपालचक्रिणः ॥१४१॥  
मूकः श्रेयः पुरे जातस्तस्य भावी पुरोहितः । शिवसेनमहीपालः श्रीमात्सत्यगरेष्वरः ॥१४२॥  
बीतशोकाह्वया तस्य तनुजा बनजेशणा । मूकमाध्यमादेशः कुमारस्य तदापते<sup>३</sup> ॥१४३॥  
कुण्डः शिल्पपुरोल्पकः स्थपतिस्तस्य भाव्यसाँ । नामा नरपतिस्तस्यपुरेशो जरपते: सुता ॥१४४॥  
रत्यादिविमलासादूर्त्यस्य समागमः । अङ्गलिप्रसादादेशात् स्मरस्यपदम् चिरम् ॥१४५॥  
४। शास्त्रमणिपाकस्य<sup>४</sup> धूमवेगाद्युपर्ती<sup>५</sup> वज्रेत् । तस्य धान्यपुरे<sup>६</sup> जातिर्विशालस्तस्युराचिषः ॥१४६॥  
सुता विमलसेनास्य श्रीपालस्य तदापत्य<sup>७</sup> । आदेशस्तस्य तद्वाग्मणिपाको महोजसः ॥१४७॥  
इत्यादिशब्दरं ज्ञात्वा सर्वे स्वं स्वं पुरं यथुः । तदा कुमारमूद्यासमोमागे सुखावती ॥१४८॥  
धूमवेगो विलोक्यैतं विद्विषो<sup>८</sup> भीषणारथः । अभिरुद्य विषतो रुद्धा वे खेटकयुतासिभूत् ॥१४९॥  
तदा<sup>९</sup> पूर्वोदिताचार्यां देवता याऽस्य<sup>१०</sup> पानिका<sup>११</sup> । सा विद्यावस्थेण समुपेत्य सुखावतीम् ॥१५०॥

॥१३९॥ श्रीपालने जो तलवार म्यानसे निकाली थी उसका स्वामी विजयपुर नगरका रहने-वाला था और होनहार इसी श्रीपाल चक्रवर्तीका भावी सेनापति था ॥१४०॥ उसी विजयपुर नगरके राजा वरकीर्तीष्टकी रानी कीर्तिमतोकी एक पुत्री थी, उसके विवाहके विषयमें निमित्तज्ञानियोंने बतलाया था कि इसका वर श्रीपाल चक्रवर्ती होगा और उसकी पहचान म्यानमें-से तलवार निकाल लेनी होगी ॥१४१॥ वह गौण श्रेयस्पुरमें उत्पन्न हुआ था और इसका भावी पुरोहित था, उसी श्रेयस्पुर नगरका स्वामी राजा शिवसेन था, उसके कमलके समान नेत्रवाली बीतशोका नामकी पुत्री थी उसके वरको विषयमें निमित्तज्ञानियोंने आदेश दिया था कि जिसके समागमसे यह गौण दोलने लगेगा, वही इसका वर होगा ॥१४२-१४३॥ जिसकी औंगुली देढ़ी थी वह शिल्पपुरमें उत्पन्न हुआ था और इसका होनहार स्थपति रत्न था । उसी शिल्पपुर के राजाका नाम नरपति था उसके रत्नविमला नामकी पुत्री थी, निमित्तज्ञानियोंने बताया था कि जिसके देखनेसे इसकी देढ़ी औंगुली फेलने लगेगी उसीके साथ कामक्रीड़ा करनेवाली इस कन्याका चिरकाल तक समागम रहेगा ॥१४४-१४५॥ जो हीराओंका भस्म बना रहा इस कन्याका चिरकाल तक समागम रहेगा ॥१४६-१४७॥ इस प्रकार निमित्तज्ञानियोंके आदेशानुसार उस पुरुषको पहचान कर वे सब अपने-अपने नगरको छले गये और उसी समय सुखावती श्री कुमारको लेकर आकाशमार्गसे चलने लगी ॥१४८॥ चलते-चलते इसे धूमवेग शत्रु मिला, वह कुमारको देखकर भयकर शब्द करने लगा, और डौट दिखाकर रास्ता रोक आकाशमें खेढ़ा हो गया, उस समय खेटक और तलवार दोनों शस्त्र उसके पास थे ॥१४९॥ उसी समय पहले कही

१ श्रीपालस्य । २ वरकीर्तिनुपते: प्रियाशः कोतिमत्याः सुतायाः आपने परिणयने । ३ 'पन अवहारे स्तुतो  
च' पुत्रीव्यवहारे त० दि० । -त्यात्मजापते: इ० । जायते अ०, स०, ल० । ४ बीतशोकायाः परिणयने ।  
५ कृष्णः ल० । ६ कामविशिष्टधर्मशृदया अथवा कामविदिषगमनशृदया । ७ वज्रमणिपाकस्य ल०, द० ।  
वज्रमणिपाकी वज्ररत्नपाकवान् । अस्य श्रीपालस्य । ८ मन्त्रमुद्घः । ९ वज्रमणिपाकिनः । १० उत्पत्तिः ।  
११ विमलसेनायाः प्राप्त्यै । १२ आदेशजामातरम् । -देशमर्ते ल०, प० । -देशाभ्यर्ते अ०; स० ।  
१३ शत्रोघ्नेयंहरमनिः । तदिष्ठो भीषणारथम् इ०, अ०, स० । १४ पूर्वोक्तप्रमदवनस्थवटतरोत्तरस्थितप्रति-  
भायम् । १५ श्रीपालस्य । १६ रक्षिका ।

सुख्या कुमारमध्येत्य विभीषिं विद्याधराधमम् । नियुध्य विजयस्वेति निजगाद निराकुलम् ॥१५१॥  
 साऽपि मुक्त्वा कुमारं तं धूमवेगं रणाङ्गे । चिरं युध्या स्वविद्यामित्यरैत्वी उच्चार्यशालिनी ॥१५२॥  
 कुमारोऽपि समीपस्थशिलायां धरणे धरे । शनैः समापत्तस्य देवश्री जननी पुरा ॥१५३॥  
 यक्षीभूता तदागत्य यंस्युद्धान्ती करेण तम् । अपास्यात्य अमं महस्तु कुमारं प्रविश दृढम् ॥१५४॥  
 जगावैनमिति शुभ्या सोऽपि विश्वस्य तद्वचः । प्रविश्य सं शिलास्तमस्योपरिस्थितवाणिशि ॥१५५॥  
 कुर्वन् पञ्चनमस्कारपदानी परिवर्तनम् । प्रभासे तदुद्गमागे जिनेन्द्रप्रतिविम्बकम् ॥१५६॥  
 विलोक्य कृतपुष्पादिसंगूजननमस्तिक्यः । सह क्षपथमभ्योर्ज चक्ररत्नं सफुर्मकम् ॥१५७॥  
 आतपत्रं सहस्रोह फणं च फणिनां पतिस् । दण्डरत्नं समण्डकं मकं चूडामहामणिम् ॥१५८॥  
 चर्मरत्नं स्फुरवृक्षाद्यश्चिकं काकिणीमणिम् । हृक्षांचके स पुण्यात्मा तत्र यक्षयुपदेशतः ॥१५९॥  
 तदा सुदितचित्तः सन् छग्नसुशस्य दण्डस्त्रू । प्रयोत्मानरत्नोपानस्को चक्षीसमवितैः ॥१६०॥  
 सर्वरत्नमस्यैकिर्त्यभूताभेदैर्विभूषितः । निर्जगाम गुहातोऽसौ तर्वेत्य सुखावती ॥१६१॥  
 धूमवेगं विनिर्जित्य प्रलिपद्वा॑ हिमधुतिम्<sup>१३</sup> । तदृष्ट्यै कुमारमापात्ता सकलाऽसिलतान्विता<sup>१४</sup> ॥१६२॥  
 एताऽ॒ सह गत्वातः संप्राप्तसुरभूधरम्<sup>१५</sup> । गुणपालजिनाधीश समामण्डलमासवान् ॥१६३॥  
 तत्र तं सुचिरं स्तुत्वा मनोचाकाशशुद्धभाक् । मातरं भातरं शोचितोपचारे विलोक्य ती ॥१६४॥

हुई प्रतिमापर जो इसकी रक्षा करनेवाली देवी रहती थी वह विद्याधरका रूप धारण कर आयी और सुखावतीको छोड़कर कुमारको ले गयी तथा सुखावतीसे कह गयी कि तू निर्भय हो निराकुलतापूर्वक इस नीच विद्याधरसे लड़ना और इसे जीतना ॥१५०-१५१॥ शूरवीरतासे शोभायमान रहनेवाली सुखावती भी कुमारको छोड़कर धूमवेगसे लड़ने लगी और रणके मैदानमें बहुत समय तक युद्ध कर उसने उसे अपनी विद्याओंद्वारा रोक लिया ॥१५२॥ कुमार भी समीपवती पर्वतकी एक शिलापर धीरे-धीरे जा पड़ा । वहाँ उसकी पूर्वभवकी माता देवश्री जो कि यदी हुई थी आयी । उसने हाथसे स्पर्श कर श्रीपालका सब परिश्रम दूर कर दिया और कहा कि तू शोष्य ही इस तालाबमें घुस जा । कुमार भी उसके वचनोंका विश्वास कर तालाबमें घुस गया और वहाँ रात-भर पत्थरके खम्मेपर बैठा रहा ॥१५३-१५५॥ सबेरे पैच नमस्कार मन्त्रका पाठ करता हुआ उठा, तालाबके उत्तरकी ओर श्रीजिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा देखकर पुष्प आदि सामग्रीसे पूजन और नमस्कार किया । तदनन्तर उसी यक्षीके उपदेशसे उस पुण्यात्माने सहस्र पत्रबाले कमलको चक्ररत्नरूप होते देखा, कछुवेको छत्र होते देखा, दड़ी-दड़ी हजार फणाओंको धारण करनेवाले नागराजको दण्डरत्न होते देखा, मेढ़कको चूड़ा-मणि, मगरको चर्मरत्न और देदीप्यमान लाल रंगके बिच्छूको काकिणी मणि रूप होते देखा ॥१५६-१५९॥ उस समय उसने प्रसन्नचित्त होकर छत्र धारण किया, दण्ड उठाया, चमकीले रत्नोंके जूते पहने और फिर वह यक्षीके द्वारा दिये हुए मणिमय दिव्य आभूषणोंसे सुशोभित होकर गुहासे बाहर निकला । उसी समय जिस प्रकार चन्द्रमाकी वृद्धिके लिए शुक्लपक्षकी प्रतिपदा आती है उसी प्रकार धूमवेगको जीतकर तलवार लिये हुए चतुर सुखावती कुमारकी वृद्धिके लिए उसके पास आ पहुँची । श्रीपाल यहाँसे उसके साथ-साथ चला और चलता-चलता सुरगिरि पर्वतपर गुणपाल जिनेन्द्रके समवसरणमें जा पहुँचा ॥१६०-१६३॥ वहाँ मन,

१ श्रोष । २ संप्राप्तः । ३ श्रीपालस्य । ४ कुमारं ल० । ५ लृढम् । ६ मृहसुहरनुचिन्तनम् । ७ तदृष्ट्योत्तर-दिवभागे । ८ चूडामणि तथा ल०, प०, अ०, स०, इ० । ९ लृदे । वक्त्रप्येव क्षपाणि । सहस्रपत्राभ्योजादीनि ईशांचके इति संबन्धः । १० मणिमयपादवाणः । ११ गुहायाः सकाशात् । १२ प्रतिपद्मदिव्यीरिति । १३ चन्द्रम् । १४ चन्द्रकलान्विता । १५ सुखावत्या । १६ सुरगिरिनामणिरित् ।

१ तद्राशीवादिसंकुष्ठः संविष्टो मातृसंनिधौ । २ सुखावतीप्रसादेण दुष्मदस्तिकमासवान् ॥ १६५ ॥  
 क्षेमेणेति तथोरप्य प्राशंसता॒॑ नृपानुजै॑ । सती स सहजो भावो यत्तुवस्युपकारिणः ॥ १६६ ॥  
 ३ वसुपलमहीपालप्रसाद् भगवतोदितैः । हितस्वा विद्याधरत्रेण्या बहुलम्बान्॒॑ समापिदान्॑ ॥ १६७ ॥  
 ४ ततः॒॑ सप्तदिनैरेव सुखेन प्राविशत् पुरम् । संविष्टोर्जितपुण्यानां सवेदापत्त्वं संपदे ॥ १६८ ॥  
 ५ वसुपालकुमारस्य वारिषेणादिभिः समम् । कन्याभिरभवत् कहवाणविधिविधिविधिकः ॥ १६९ ॥  
 ६ स श्रीपालकुमारस्य॒॑ जयावत्यादिभिः कुर्वते । तदा चतुरशीसीष॒॑ कन्यकाभिरलङ्घतः ॥ १७० ॥  
 ७ सूर्यादिवद्वस्त्रै वा तौ स्वप्रभाव्यासदिक्तदौ । पालयत्तौ धराचक्रं चिरं विविशतः स्म शम्॒॑ ॥ १७१ ॥  
 ८ जयावत्यासमुत्तर्यो गुणपालो गुणोउज्जवलः । श्रीपालस्यायुधागारे चक्रं च समजायत ॥ १७२ ॥  
 ९ स सर्वादिवक्षवस्त्रुंपालभीगावनुभवन् चूशम् । शक्तलीलो॒॑ व्यदभिष्ट लक्ष्या॒॑ लक्षितविग्रहः ॥ १७३ ॥  
 १० अभूउज्जयावतीभ्रातुस्तनूजा जयवर्मणः । जयसेनाहृजा कान्तेस्ता॒॑ सेनेत्र॒॑ विजित्वरी॒॑ ॥ १७४ ॥  
 ११ मनोवेगोऽशनिवरः शिवायोऽशनिवेगवाक् । हरिकेतुः परे चौर्बैः इमाभुजः रथनायकाः ॥ १७५ ॥  
 १२ जयसेनास्यभुज्याभिस्तेषाँ॒॑ तुमिः॒॑ लहाभवत् । विवाहो गुणपालस्य स तामिः प्राप्तसंमदः ॥ १७६ ॥

वचन, काथकी शुद्धि धारण करनेवाले श्रीपालने बहुत देर तक गुणपाल जिनेन्द्रकी स्तुति की, माता और भाईको देखकर उनका योग्य विनय किया और फिर उन दोनोंके आशीर्वादसे सन्तुष्ट होकर वह माताके पास बैठ गया । उसने माता और भाईके सामने यह कहकर सुखावतीकी प्रशंसा की कि मैं इसके प्रभावसे ही कुशलतापूर्वक आपलोगोंके समीप आ सका हूँ सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुषोंका जन्मसे ही ऐसा स्वभाव होता है कि जिससे वे उपकार करनेवालोंकी स्तुति किया जाता है ॥ १६५-१६६ ॥ यहां जयावती वसुपालके उत्तरमें भगवान्ने जैसा कुछ कहा था उसीके अनुसार उस श्रीपालने विद्याधरोंकी श्रेणीमें रहकर अनेक लाभ प्राप्त किये थे ॥ १६७ ॥ तदनन्तर वह सात दिनमें ही सुखसे अपने नगरमें प्रविष्ट हो गया सो ठीक ही है क्योंकि प्रदल पुण्यका संचय करनेवाले पुरुषोंको आपत्तियाँ भी सम्पत्तिके लिए हो जाती हैं ॥ १६८ ॥

नगरमें जाकर वसुपाल कुमारका वारिषेणा आदि कन्याओंके साथ विवाहोत्सव हुआ, वह विवाहोत्सव अनेक प्रकारकी विभूतियोंसे युक्त था ॥ १६९ ॥ उसी समय चतुर श्रीपाल कुमार भी जयावती आदि चौरासी इष्ट कन्याओंसे अलंकृत—सुशोभित हुए ॥ १७० ॥ अपनी कान्तिसे दिग्दिगन्तको व्याप्त करनेवाले सूर्य और चन्द्रमाके समान पृथिवीका पालन करते हुए दोनों भाई चिरकाल तक सुखका उपभोग करते रहे ॥ १७१ ॥ कुछ दिन बाद श्रीपालकी जयावती रानीके गुणोंसे उज्ज्वल गुणपाल नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और इधर आयुधशालामें चक्ररत्न प्रकट हुआ ॥ १७२ ॥ जिसका शरीर लक्ष्मीसे सुशोभित हो रहा है ऐसा वह श्रीपाल चक्रवर्तीके कहे हुए सब भोगोंका अत्यन्त अनुभव करता हुआ इन्द्रकी लीलाको भी उल्लंघन कर रहा था ॥ १७३ ॥ जयावतीके भाई जयवर्मके जयसेना नामकी पुत्री थी जो अपनी कान्तिसे सेनाके समान सबको जीतनेवाली थी ॥ १७४ ॥ इसके सिवाय मनोवेग, अशनिवर, शिंव, अशनिवेग, हरिकेतु तथा और भी अनेक अच्छे-अच्छे विद्याधर राजा थे, जयसेनाको आदि लेकर

१ कुबेरज्ञोवसुपालयोराशीर्वचन । २ सुखावत्याः सामर्थ्येन । ३ स्तौति स्म । ४ श्रीपालः । ५ कन्यादिप्राप्तिः ।  
 ६ प्राप्तः सन् । ७ सप्तदिनानन्तरमेव । ८ आत्मीयपुण्डरीकिणीपुरम् । ९ बटवृक्षाधो नृत्यसंबन्धिनी ।  
 १० प्रियतरणीयिः, पट्टाहीभिरित्यर्थः । ११ सुखसन्वभूताम् । १२ तिरस्करोति स्म । १३ लक्ष्मीलक्षित प०, ल० । १४ कान्त्या ६०, प०, अ०, स०, ल० । १५ चमूरित ।  
 १६ जयशीला । १७ जयसेनादिपश्चानामिः । १८ मनोवेगादीनाम् । १९ पुत्रीयिः ।

कदाचित् काललब्ध्या दिवोनितोऽभ्यर्णनिर्वृतिः । शिलोक्यस्य भीभागमकस्माद्बधकारितम् ॥ १५३॥  
 चन्द्रग्रहणमालोक्य चिरेत् स्वापि चेत्रियम् । अवस्था संसूतीं पापप्रस्तस्थान्यस्य का गतिः ॥ १५४॥  
 इति निर्विश्व संजातजातिस्मृतिहृदासधीः<sup>१</sup> । स्वपूर्वभवसंबन्धं प्रत्यक्षमिव संस्मर ॥ १५५॥  
 पुष्करादेऽपरे भागे विदेहे पश्चाद्ये । विषये विश्रुते कान्तु पुरार्दीशीऽवनीश्वरः ॥ १५६॥  
 रथान्तकनकस्तस्य चल्लभा कनकप्रभा । तयोर्भूत्वा<sup>२</sup> प्रभापास्तभास्त्रकः कनकप्रभः ॥ १५७॥  
 तस्मिष्वन्येषु रुद्याने दृष्टा सर्वेण मन्त्रिया । विद्युत्प्रभाद्या तस्या विद्योगेन विष्णवान् ॥ १५८॥  
 साधै समाधिष्वस्त्वं सर्वीपे संयमं परम् । संश्रापवानतिस्तिवृत्तैः पितृमानुसन्नाभिनिः ॥ १५९॥  
 तत्र सम्यक्त्वशुद्ध्यादिषोदका प्रत्ययान्<sup>३</sup> भूत्वान् । भाष्यमित्वा भवस्याभैः जयन्तारथविमानजः ॥ १६०॥  
 प्रार्थते<sup>४</sup> ततोऽहमागत्य जातोऽन्नैवमिति लक्ष्मैः । <sup>५</sup> समुद्रदत्तेनादित्यगति<sup>६</sup> विविरथाद्यः ॥ १६१॥  
 श्रेष्ठी कुबेरकान्तश्च लौकान्तिकपर्दं गताः । शेषितर्त्तैः<sup>७</sup> समागत्य गुणपालः प्रभुद्वान् ॥ १६२॥  
 मोहराशं समुच्छिय तस्वोइच तपस्ततः । घालिकर्माणि निर्मूलय सयोगिपदमागमत् ॥ १६३॥  
 यवाःपालः सुखावस्त्रास्तनूजस्तेन संयमम् । गृहीत्वा सह तत्त्वैव गणभृत्यथमोऽभवत् ॥ १६४॥

उन सब राजाओंकी पुत्रियोंके साथ गुणपालका विवाह हुआ । इस प्रकार वह गुणपाल उन कन्याओंके मिलनेसे बहुत ही हर्षित हुआ ॥ १७५-१७६॥

अथानन्तर—किसी समय जिसका मोक्ष जाना अत्यन्त निकट रह गया है ऐसा गुणपाल काललब्ध आदिसे प्रेरित होकर आकाशकी ओर देख रहा था कि इतनेमें उसको दृष्टि अक्समात् अन्धकारसे भरे हुए चन्द्रग्रहणकी ओर पड़ी, उसे देखकर वह सोचने लगा कि इस संसारको धिक्कार हो, जब इस चन्द्रमाकी भी यह देशा है । वह संसारके अन्य पापप्रसित जीवोंकी कथा देशा होती होगी ? इस प्रकार वेराग्य आते ही उस उत्कृष्ट बुद्धिवाले गुणपालको जाति स्मरण उत्पन्न हो गया जिससे उसे अपने पूर्वभवके सम्बन्धका प्रत्यक्षकी तरह स्मरण होने लगा ॥ १७७-१७८॥ उसे स्मरण हुआ कि पुष्करार्ध द्वीपके परिच्छम विदेहमें पश्चक नामका एक प्रसिद्ध देश है, उसके कान्तपुर नगरका स्वामी राजा कनकरथ था । उसकी रानीका नाम कनकप्रभा था, उन दोनोंके मैं अपनी प्रभासे सूर्यको तिरस्कृत करनेवाला कनकप्रभ नामका पुत्र हुआ था । किसी दिन एक बगीचेमें विद्युत्प्रभा नामकी मेरी स्त्रीको सौंपने काट खाया, उसके वियोगसे मैं विरक्त हुआ और अपने ऊपर अत्यन्त स्नेह रखनेवाले पिता माता तथा भाइयोंके साथ-साथ मैंने समाधिगुप्त मुनिराजके समीप उत्कृष्ट संयम धारण किया था ॥ १८०-१८१॥ वहाँ मैं दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका अच्छी तरह चिन्तन कर आयुके अन्तमें जयन्त नामके विमानमें अहमिन्द्र उत्पन्न हुआ ॥ १८२॥ और अन्तमें वहाँसे चयकर यहाँ श्रीपालका पुत्र गुणपाल हुआ हूँ । वह इस प्रकार विचार ही रहा था कि इतनेमें ही क्षमुद्रदत्त, आदित्यगति, विविरथ और द्विसेठ कुबेरकान्त जो कि तपश्चरण कर लौकान्तिक देव हुए थे उन्होंने आकर समझाया । इस प्रकार प्रबोधको प्राप्त हुए गुणपाल मोहजालकी नष्ट कर तपश्चरण करने लगे और धातिया कर्मोंको नष्ट कर सयोगिपद-तेरहवें गुण स्थानको प्राप्त हुए ॥ १८५-१८६॥ सुखावतीका पुत्र यशपाल भी उन्हों गुणपाल जिनेन्द्रके पास दीक्षा धारण कर

१ चन्द्रस्य । २ रुद्धारधीः अ०, स०, ल० । ३ कान्त्या निराकृत । ४ कारणानि । ५ आयुषस्थान्ते । ६ अह-मिन्द्रः । ७ स्वग्यिरुम्ते । ८ स्वर्गात् । ९ पूर्वभवसंबन्धं प्रत्यक्षमिव संस्मरज्जिति संबन्धः । १० प्रियकान्तायाः जनकेन सह । ११ हिरण्यवर्षणो जनकः । १२ प्रभावत्याः पिता । १३ उक्तलौकान्तिकामरः ।

\*प्रियदर्शाका पिता, † हिरण्यवर्षका पिता, ‡ प्रभावतीका पिता, § कुबेरमित्रका पिता ।

राजराजस्तदा भूरिचिभूत्याऽभ्येत्य ते<sup>१</sup> सुदा । श्रीपालः पूजयित्वा तु श्रुत्वा धर्मद्वयात्मकम् ॥१८६॥  
 ततः स्वमावसंबन्धमप्राक्षील् प्रश्नयाश्रयः । भगवांशेष्युवाचेति कुरुराजे<sup>२</sup> सुलोचना ॥१८०॥  
 निवेदितवती पृष्ठा भृष्टवाक् सौहव्यामिता । विदेहे पुण्डरीकिष्यां यशःपालो महीपतिः ॥१८१॥  
 तत्र सर्वसमृद्धार्थो वणिक् तस्य मनःप्रिया । धनञ्जयानुजालाऽसौ<sup>३</sup> धनश्रीधर्मवनकिञ्चित् ॥१८२॥  
 तयोस्तुक् सर्वदयितः श्रेष्ठो<sup>४</sup> तद्गिरी सती । संशया सर्वदयिता श्रेष्ठिनश्चित्वलभे ॥१८३॥  
 सुता सागरसेनस्य जयसेना समाद्या । धनञ्जयवणीशस्य<sup>५</sup> जयदत्ताभिधाऽपरा<sup>६</sup> ॥१८४॥  
 देवश्रीरनुजा श्रेष्ठिपितृस्तस्यां तनुक्षी<sup>७</sup> । जाती सागरसेनस्य सागरो दलवाक्यरः ॥१८५॥  
 ततः समुद्रदत्तश्च सह सागरदत्तस्य । सुती<sup>८</sup> सागरसेनानुजायां जातमहोदयी ॥१८६॥  
 जाती<sup>९</sup> सागरसेनायां दत्तो<sup>१०</sup> वैश्रवणादिवाक् । दत्तो<sup>११</sup> वैश्रवणादिश्च दायादः<sup>१२</sup> श्रेष्ठिनः<sup>१३</sup> स<sup>१४</sup> तु ॥  
 भार्या<sup>१५</sup> सागरदत्तस्य दत्तो<sup>१६</sup> वैश्रवणादिका । सती समुद्रदत्तस्य<sup>१७</sup> सा सर्वदयिता<sup>१८</sup> प्रिया ॥१८८॥  
 सा वैश्रवणदत्तस्या दत्तान्ता<sup>१९</sup> सागराद्या । तेषां<sup>२०</sup> सुखसुखेनैवं काढे गच्छति संततम् ॥१९९॥  
 यशःपालमहीपालमावर्जितमहाधनः<sup>२१</sup> । वणिग्धनश्रीयोऽस्मिन् । सद्रुत्वंदर्शनोऽकृतैः<sup>२२</sup> ॥२००॥

उन्हींका पहला गणधर हुआ ॥१८८॥ उसी समय राजाविराज श्रीपालने बड़ी विभूतिके साथ आकर गुणपाल तीर्थ करकी पूजा की और गृहस्थ तथा भूतिसम्बन्धी-दोनों प्रकारका धर्म सुना । तदनन्तर बड़ी विमयके साथ अपने पूर्णभवका सम्बन्ध पूछा, तब भगवान् इस प्रकार कहने लगे – यह सब बार्ते मधुर वचन बोलनेवाली सुन्दरी सुलोचना महाराज जयकुमारके पूछनेपर उनसे कह रही थी । उसने कहा कि –

विदेह क्षेत्रकी पुण्डरीकिणी नगरीमें यशपाल नामका राजा रहता था ॥१९०-१९१॥ उसी नगरमें सर्वसमृद्ध नामका एक वैश्य रहता था । उसकी स्त्रीका नाम धनश्री था जो कि धनको बढ़ानेवाली थी और धनजयकी छोटी बहिन थी । उन दोनोंका पुत्र सर्वदयित सेठ था, उसकी बहिनका नाम सर्वदयिता था जो कि बड़ी ही सती थी । सर्वदयितकी दो स्त्रियां थीं, एक तो सागरसेनकी पुत्री जयसेना और दूसरी धनजय सेठकी पुत्री जयदत्ता ॥१९२-१९४॥ सेठ सर्वदयितके पिताकी एक छोटी बहिन थी जिसका नाम देवश्री था और वह सेठ सागरसेनको ब्याही थी । उसके सागरदत्त और समुद्रदत्त नामके दो पुत्र थे तथा सागरदत्ता नामकी एक पुत्री थी । सागरसेनकी छोटी बहिन सागरसेनाके दो सन्तानें हुई थीं – एक वैश्रवणदत्ता नामकी पुत्री और दूसरा वैश्रवणदत्त नामका पुत्र । वैश्रवणदत्त सेठ सर्वदयितका हिस्सेदार था ॥१९५-१९७॥ वैश्रवणदत्ता सेठ सागरदत्तकी स्त्री हुई थी, सेठ समुद्रदत्तकी स्त्रीका नाम सर्वदयिता था और सागरदत्ता सेठ वैश्रवणदत्तको ब्याही गयी थी । इस प्रकार उन सबका समय निरन्तर बड़े प्रेमसे व्यतीत हो रहा था ॥१९८-१९९॥ जिसने बहुत धन उपार्जित किया है ऐसे सेठ धनजयने किसी दिन अच्छे-अच्छे रत्न भेट देकर राजा यशपालके दर्शन किये

१ गुणपालकेवलिनम् । २ जयकुमारम् । ३ भगिनी । ४ पुत्रः । ५ राजश्रेष्ठी । ६ धनंजयनामवैश्यस्य ।  
 ७ द्वितीया । ८ सर्वदयितश्रेष्ठिनकसर्वसमृद्धस्य । ९ पुत्री । १० देवश्रीयोभर्तुभगिन्याम् । ११ सर्वसमृद्धस्य  
 भार्यायाम् । १२ दत्ता अ०, प०, इ०, स०, ल० । १३ दत्तो ल०, प०, इ०, अ०, स० । १४ जातिः ।  
 १५ सर्वदयितश्रेष्ठिनः । १६ वैश्रवणदत्तः । १७ सागरसेनस्य उपेष्ठपुत्रस्य । १८ वैश्रवणदत्ता । भार्याऽभूदिति  
 सम्बन्धः । १९ सागरसेनस्य कनिष्ठपुत्रस्य । २० सर्वदयितश्रेष्ठिनो भगिनीप्रिया । भार्या जातेति संबन्धः ।  
 २१ समुद्रदत्तस्यानुजा सागरदत्ताद्युया । वैश्रवणदत्तस्येषा बभूतेति संबन्धः । २२ समुद्रादीनाम् । २३ अकृच्छृण,  
 अत्यन्तसुखेनेत्यर्थः । २४ आनोत । २५ उगायनीकृतैः ।

त्यलोकिष्टे<sup>१</sup> स भूयोऽपि नर्स्मै संमानपूर्वकम् । प्रीत्या धनं हिरण्यादि प्रभूतमदितोचितम्<sup>२</sup> ॥२०३॥  
 विलोक्यै तं वणिकुञ्चाः सर्वेऽपि धनमाजिलुम्<sup>३</sup> । ग्रामे पुरोपकष्ठस्थे संभव विनिवेशिरे ॥२०४॥  
 तज्जिवेशादृशाऽन्तेष्टुः स<sup>४</sup> समुद्रादिदत्तकः । रात्रौ स्वगृहमागत्य भास्रमिंपक्षपूर्वकम् ॥२०५॥  
 केनाप्यविदितो रात्रावेव सार्थमुपागतः । काले गर्भं विदित्वाऽस्याः पापो<sup>५</sup> तुश्चरितोऽभवत्<sup>६</sup> ॥२०६॥  
 हृति सागरदसागत्यस्तया<sup>७</sup> सर्वसमागमम्<sup>८</sup> । ओषिलोऽप्यपरीक्ष्यासौ स्वगेहो<sup>९</sup> तामपाकरोत्<sup>१०</sup> ॥२०७॥  
 ततः श्रेष्ठिगृहं<sup>११</sup> याता तेनापि त्वं कुराचरा<sup>१२</sup> । नास्मद्गेहं समागच्छेष्यज्ञानात् सा निवारिता ॥२०८॥  
 मर्मीपविनिन्येकस्मिन् केतने<sup>१३</sup> विहितस्थितिः । नवमातावर्धा पुश्यमलबधानरूपपुण्यकम् ॥२०९॥  
 तद्विदित्वा कुलस्थैर्षे<sup>१४</sup> समुख्याः पराभवः । पश्च<sup>१५</sup> क्वचन नीत्वैवं<sup>१६</sup> निश्चिपेष्यनुर्जाविकः<sup>१७</sup> ॥२०१॥  
 प्रव्ययः<sup>१८</sup> श्रेष्ठिका ग्रोन्हः श्रेष्ठिमिश्रस्य तुष्टिमान् । स्मशाने साधित्यु विद्यामागतस्य ख्यातिनः<sup>१९</sup> ॥२०२॥  
 आलं सर्वव्यामालं विकिष्टो तुस्तिलोक्यः । गग्नोऽसौ जयधामालयो जयभामास्य चलभा ॥२०३॥  
 तौ<sup>२०</sup> भोगपुरुषास्तथौ<sup>२१</sup> जितशत्रुसमाहृतम्<sup>२२</sup> । कृत्वा ग्रार्घ्यता<sup>२३</sup> पुश्यमिव मर्मीरम्यं मुदा ॥२०४॥

राजाने भी उसका सम्मान किया और बड़े प्रेमसे उसके लिए यथायोग्य बहुत-सा सुवर्ण आदि शब्द वापिस दिया ॥२००-२०१॥ यह देखकर सब चेश्यपुत्र धन कमानेके लिए बाहर निकले और सब मिलकर नगरके समोप ही एक गाँवमें जाकर ठहर गये ॥२०२॥ दुसरे दिन समुद्रदत्त रात्रिमें उन डेरोंसे अपने घर आया और अपनी स्त्रीसे संभोग कर किसीके जाने बिना ही रात्रिमें ही अपने झुण्डमें जा मिला । इधर समयानुसार उसका गर्भ बढ़ने लगा । जब इस बात-का पता समुद्रदत्तके बड़े भाई सागरदत्तको चला तब उसने समझा कि यह अवश्य ही इसका पापरूप दुराचरण है । समुद्रदत्तकी स्त्री सर्वदयिताने पतिके साथ समागम होनेका सब समाचार यद्यपि बतलाया तथापि उसने परीक्षा किये बिना ही उसे घरसे निकाल दिया ॥२०३-२०५॥ तब सर्वदयिता अपने भाई सेठ सर्वदयितके घर गयी परस्तु उसने भी अज्ञानतासे यही कहकर उसे भीतर जानेसे रोक दिया कि 'तू दुराचारिणी है, मेरे घरमें मत आ' ॥२०६॥ तबनन्तर वह पालके ही एक दूसरे घरमें रहने लगी, नी महीनेकी अवधि पूर्ण होनेपर उसने एक अतिशय पुण्यवान् पुत्र प्राप्त किया ॥२०७॥ जब सेठ सर्वदयितको यह खबर लमी तो उसने समझा यह पुत्र क्या, हमारे कुलका कलंक उत्पन्न हुआ है, इसलिए उसने एक नौकरको यह कहकर भेजा कि 'इसे ले जाकर किसी दूसरी जगह रख आ' । वह सेवक तुष्टिमान् था और सेठका विश्वासपात्र भी था, वह बालकको ले गया और सेठके एक विद्याधर मिश्रको जो कि विद्या सिद्ध करनेके लिए इमशानमें आया था, सौप आया सो ठीक ही है क्योंकि पापका उदय बड़ा विचित्र होता है । सेठके उस मिश्रका नाम जयधाम था और उसकी स्त्रीका नाम जयभामा था । वे दोनों भोगपुरुके रहनेवाले थे उन्होंने उस पुत्रका नाम जितशत्रु रखा और उसे औरस पुत्रके समान मानकर वे बड़ी प्रसन्नतासे उसका पालन-पोषण करने लगे ॥२०८-

१ ददर्श । २ धर्मजयाय । ३ ददी । ४ धर्मजयं राजा पूजितोऽयं दृष्ट्वा । ५—मजितुम् ल० । ६ तच्छिरित् ।  
 ७ देवस्त्रीसागरसेनयोः पुत्रः समुद्रदत्तः । ८ विविरम् । ९ सर्वदत्तायाः । १० अशोभनश्चक्ष्यहारः । ११ दुर्वृतः  
 कश्चिज्जारोऽभवदिति । १२ सर्वदयितया । १३ निजपुरुषागमनम् । १४ मम भर्ता शिविरादगत्य सथा सह  
 सम्पके कृतवानिति निवेदितोऽपि । १५ सर्वदयिताय् । १६ विलक्षितवान् । १७ निजप्रसर्वदयितयेष्टिगृहम् ।  
 १८ सुष्टुमाचरसि स्म । १९ नास्मद्गृहं ल०, अ०, प०, स०, इ० । २० गृहे । २१ शिशुः । २२ यत्र कुत्रापि ।  
 २३ स्थापय । २४ भृत्यः । २५ विश्वास्य । २६ विद्याघरस्य । २७ जयधामजयभासेति ही । २८ भोगपुरुनिवा-  
 सिनौ । २९ शिशोजितशत्रुरित्याख्यां कृत्वा । ३० वर्धयतः स्म ।

तदा पुत्रवियोगेन सा सर्वदयिताऽचिरात् । श्रीवेदनिन्दनान्मृत्वा संप्राप्तजन्म पौलवम् ॥२१२॥

ततः समुद्रदत्तोऽपि साथैनामा॑ समागतः । श्रुत्वा स्वमार्यवृत्तान्तं निन्दित्वा आतरं निजम् ॥२१३॥

३ श्रेष्ठिनेऽनपराधावा गृहवेशनिवारणात् । ३ अकृप्यचित्तां कृत्यं कः सहेतुविचारितम् ॥२१४॥

ज्येष्ठे न्यायगतं योग्यं मयि स्थितकृति स्वयम् । श्रेष्ठिवस्यमध्यास्त इति श्रेष्ठिनैँ कौपवान् ॥२१५॥

३ वैश्रवणदत्तोऽपि स सागरदत्तकः । सादृं समुद्रदत्तेन मातस्यच्छेष्ठिनैँ स्थितोः ॥२१६॥

दुस्सहं तपसि श्रेष्ठो मरसरोऽपि कृचित् लृणम् । अन्येषु जितशत्रुं तं दृष्टा श्रेष्ठा कुलो मवान् ॥२१७॥

३ समुद्रदत्तसाहृष्टं दधरसंसदेमागतः । इति प्रथम् सोऽप्यात्मागमनक्रमवीत् ॥२१८॥

जान्यो मञ्जागिनेयोऽयमिति तदस्तस्मिन्नाम् । मुविका वीक्ष्य निश्चित्य निःपरीक्षकता॑० निजाम् ॥

३ मैथुनस्य॑ च संस्मृत्य तस्मै॒ सर्वश्रियं सुताम् । धनं श्रेष्ठिपदं चालौ॑ दध्वा निर्विण्णमागतः ॥२१९॥

जयधामा॑४ जयभामा जयसेना॑५ तथाऽपरा । ब्रह्मदत्तस्मिधाना च परा सागरदत्तिका॑६ ॥२२१॥

सा वैश्रवणदत्ता॑७ च परे खोलप्राधकाः । संजातास्तैः सह श्रेष्ठी संयमं प्रत्यपद्धत ॥२२२॥

मुनिं रत्नवरं प्राप्य चिरं विहितसंयमाः । एते सर्वेऽपि कालान्ते स्वर्गलोकं समागमन् ॥२२३॥

२११॥ सर्वदयिताने पुत्रके वियोगसे बहुत दिन तक स्त्रीवेदकी निन्दा की और मरकर पुरुष-का जन्म पाया ॥२१२॥ तदनन्तर समुद्रदत्त भी अपने झुण्डके साथ बापस आ गया और अपनी स्त्रीका वृत्तान्त सुनकर अपने भाईकी निन्दा करने लगा । सेठने अपराधके बिना ही उसकी स्त्रीको घरमें प्रवेश करनेसे रोका था इसलिए वह सेठपर अत्यन्त क्रोध करता रहता था सो ठीक ही है क्योंकि जो कार्य बिना विचारे किया जाता है उसे भला कौन सहन कर सकता है ? ॥२१३-२१४॥ कुछ दिन बाद वैश्रवण सेठ सागरदत्तसे यह कहकर क्रोध करने लगा कि ‘जब मैं बढ़ा हूँ, और योग्य हूँ तो न्यायसे मुझे सेठ पद मिलना चाहिए, मेरे रहते हुए यह सेठ क्यों बन बैठा है’ । इसी प्रकार सागरदत्त और समुद्रदत्त भी सेठके साथ ईर्ष्या करने लगे ॥२१५-२१६॥ आचर्ष्य कहते हैं कि कठिन सपश्चरणके विषयमें की हुई मनुष्योंकी ईर्ष्या भी कहीं-कहीं अच्छी होती है परन्तु अन्य सब जगह अच्छी नहीं होती । किसी एक दिन सेठ सर्वदयितने जितशत्रुसे पूछा कि तू समुद्रदत्तकी समानता क्यों धारण कर रहा है – तेरा रूप उसके समान क्यों है ? और तू सभामें किसलिए आया है ? तब जितशत्रुने भी अनुक्रमसे अपने आनेका सब समाचार कह दिया ॥२१७-२१८॥ उसी समय सेठकी दृष्टि उसके हाथमें पहिनी हुई औंगूठीपर पड़ी, उसे देखकर उसने निश्चय कर लिया कि ‘यह मेरा भानजा ही है, दूसरा कोई नहीं है । उसे अपनी और अपने बहनोंकी अपरीक्षकता ( बिना विचारे कार्य करने ) की याद आ गयी और उसे सर्वश्री नामकी पुत्री, बहुत-सा धन और सेठका पद देकर स्वयं विरक्तचित्त हो गया ॥२१९-२२०॥ उसी समय जितशत्रुको पीलनेवाला जयधाम विद्याधर, उसकी स्त्री जयभामा, जयसेना और जयदत्ता नामकी अपनी स्त्रियाँ, वैश्रवण-दत्तकी स्त्री सागरदत्ता और वैश्रवणदत्तकी बहन वैश्रवणदत्ता तथा और भी अनेक लोगोंको आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ । उन सबके साथ-साथ सेठने रत्नवर मुनिके समीप जाकर संयम धारण

१ वणिकस्मूहेन सह । २ सर्वदयिताय । ३ चुकोप । ४ सर्वदयिते । ५ स दै-ल०, अ०, स०, इ० । ६ सागर-दत्तसहितः । ७ श्रेष्ठिनः ल०, प०, इ०, स०, अ० । ८ समुद्रदत्तस्य समानरूपताम् । ९ सभाम् । १० विष्वर-शून्यताम् । ११ सागरदत्तस्य विचारशून्यताम् । १२ निजभागिनेयजितशत्रुवे । १३ सर्वदयितशेषी । १४ जितशत्रुवर्धनविद्याधरदम्पती । १५ सर्वदयितस्य भार्या । १६ वैश्रवणदत्तस्य भार्या । १७ सागरदत्तस्य भार्या ।

प्राप्ते स्वर्गादिहसाम्य जयधामा तदातनः । वसुपालोऽन्नं संजातो जयभामाऽप्यजायत ॥२२४॥  
 जयदत्यात्तसांन्दर्या जयसेनाऽजनिह सा । पिष्पलौ<sup>१</sup> जयदत्ता तु वत्यस्तमदवाऽभवत् ॥२२५॥  
 विद्युद्देगाऽभवद् वैश्ववणदत्ता कलालिला<sup>२</sup> । जाता सागरदत्तापि स्वर्गादित्य सुखावती ॥२२६॥  
 तदा सागरदत्ताम्यः हवगंलोकान् समागतः । पुत्रो हरिवरो जातः स<sup>३</sup> पुरुरवसः ग्रियः ॥२२७॥  
 समुद्रदत्तो उवलनवेगस्याजनि विश्रुतः । तन्जो धूमवेगालयो विद्याविहितपौरुषः ॥२२८॥  
 स वैश्ववणदत्तोऽपि भूतोऽन्नाशनिवेगकः । श्रेष्ठो स सर्वदयितः श्रीपालस्वभिहाभवः ॥२२९॥  
 त्वं जामातुर्निराकृत्या<sup>४</sup> सनामिभ्यो वियोजितः । तदा<sup>५</sup> त्वद्देविष्योऽस्मिन्द तव द्वेषिण एष ते ॥२३०॥  
 तदा प्रियास्तवात्राऽपि संजाता नितरां ग्रियाः । अहि<sup>६</sup> सयाऽर्थकैस्यासीद् बन्धुमिस्तथा<sup>७</sup> संगमः ॥२३१॥  
 नत्तपःफलतीं जातं चक्रित्वं सकलक्षितेः । सर्वसंगपरिस्यागान्मङ्गल्यु मोक्षं गमिष्यसि ॥२३२॥  
 अधोर्द्विस्तर्त्तर्थेशवचनाकर्णनेन ते । सर्वे एरस्परद्वेषाद् विरमनित रूप विसमयात् ॥२३३॥  
 जन्मरोगजरामूल्यूक्तिहस्तु<sup>८</sup> सन्ततानुगान् । सर्वनिधानं घियं<sup>९</sup> धूम्योऽशासीद्वर्ममृतं ततः ॥२३४॥  
 घिगिदं चक्रित्वात्राज्यं कुक्षालस्येव जीवितम् ।<sup>१०</sup> भुक्तिश्वर्कै<sup>११</sup> परिश्राम्य सूक्ष्मपश्चकलाप्तिः<sup>१२</sup> ॥२३५॥

कर लिया । वे सभी लोग चिरकाल तक संयमका साधन कर आयुके अन्तमें स्वर्ग गये ॥२२१-२२३॥ वहाँको आयु पूरी होनेपर स्वर्गसे आकर प्रदलेका जयभामा विद्याभार छहीं दाढ़ा वसुपाल हुआ है, जयभामा वसुपालकी सुन्दरी रानी जयावती हुई है, जयसेना पिष्पली हुई है, जयदत्ता मदनावती हुई है, वैश्ववणदत्ता सब कलाओंमें निपुण विद्युद्देगा हुई है, सागरदत्ता स्वर्गसे आकर सुखावती हुई है, उस समयका सागरदत्त स्वर्गसे आकर पुरुरवाका प्यारा पुत्र हरिवर हुआ है, समुद्रदत्त उवलनवेगका प्रसिद्ध पुत्र हुआ है जो कि अपनी विद्याओंसे ही अपना पीरुष प्रकट कर रहा है, वैश्ववणदत्त अशनिवेग हुआ है और सर्वदयित सेठ यहाँ श्रीपाल हुआ है जो कि तू ही है ॥२२४-२२६॥ तूने पूर्वभवमें अपने जैमार्द ( भानेज जितशत्रु ) को उसकी मातासे अलग कर दिया था इसलिए तुझे भी इस भवमें अपने भाई-बन्धुओंसे अलग होना पड़ा है, पूर्व-भवमें जो वैश्ववणदत्त, सागरदत्त तथा समुद्रदत्त तेरे द्वेषी थे वे इस भवमें भी तुझसे द्वेष करनेवाले धूमवेग, अशनिवेग और हरिवर हुए हैं । उस भवमें जो तुम्हारी स्त्रियाँ थीं वे इस भवमें भी तुम्हारी अत्यन्त प्यारी स्त्रियाँ हुई हैं । तुमने अपनी बहनके बालककी हिसां नहीं की थी इसलिए ही तेरा इस भवमें अपने भाई-बन्धुओंके साथ फिरसे समागम हुआ है । तूने उस भवमें जो तपश्चरण किया था उसीके फलसे सम्पूर्ण पृथिवीका चक्रवर्ती हुआ है और अन्तमें सब परिग्रहोंका त्याग कर देनेसे तू शीघ्र ही मोक्ष पा जायेगा ॥२३०-२३२॥ इस प्रकार तीर्थंकर भगवान् गुणपालके कहे हुए वचनोंको सुनकर सब लोगोंने आश्चर्यपूर्वक अपना परस्पर-का सब वैर छोड़ दिया ॥२३३॥

तदनन्तर पुष्पात्मा श्रीपालने सदासे पीछे लगे हुए जन्म, रोग, जरा और मृत्युको नह करनेके लिए बुद्धि स्थिर कर धर्मरूपी अमृतका पान किया ॥२३४॥ वह सोचने लगा कि यह चक्रवर्तीका साम्राज्य कुम्हारकी जीवनीके समान है क्योंकि जिस प्रकार कुम्हार अपना चक्र ( चाक ) चुमाकर मिट्टीसे बने हुए घड़े आदि बरतनोंसे अपनी आजीविका चलाता है

<sup>१</sup> तत्कालभवः । <sup>२</sup> श्रीपालस्याप्यभिष्ठी जाता । <sup>३</sup> पिष्पली ल०, प०, इ०, अ०, स० । <sup>४</sup> संपूर्णकला ।  
<sup>५</sup> पुरुरवस इति विद्याधरस्य । <sup>६</sup> भगिनीपुत्रस्य निराकरणेन । <sup>७</sup> तत्काले । <sup>८</sup> अहित्यनेन । <sup>९</sup> तव भगिनी-  
 शिशोः । <sup>१०</sup> पुनर्जाम्बर्दिः सह संयोगः । <sup>११</sup> निरस्तरानुगमनशीलाम् । <sup>१२</sup> पषी । षेष्ट पाने इति धातुः ।  
<sup>१३</sup> भोजनक्रिया । <sup>१४</sup> चक्ररत्नम् धटक्रियायन्ती च । <sup>१५</sup> क्षेत्रोत्पश्चकलप्राप्तिरूपः । मुस्तिष्ठोत्पश्चप्राप्तिरूपः ।

आयुषयुर्य<sup>१</sup> भोहो<sup>२</sup> भोगो भक्षी<sup>३</sup> हि संगमः<sup>४</sup> । वपुः पापस्य दुष्यात्रं विशुलोला विभूतयः ॥२३६॥  
 मार्गविभ्रंशहेतुस्वाद् यौवनं गहनं वनम् । या रतिर्विषयेष्वेषा गवेषयति साऽरतिम् ॥२३७॥  
 संवर्म<sup>५</sup> तस्मुखाय स्याद् यावन्मतिविपर्ययः<sup>६</sup> । प्रगुणायां मतौ सत्यां किं तरयाज्यभ्रतः परम् ॥२३८॥  
 चित्तमुमस्य चेद् बुद्धिरमिकाविषयाहुरैः । कथं तुःखकलानि स्युः संभोगविषये नः ॥२३९॥  
 भुजो भोगो दशाङ्कोऽपि यथेष्टु सुचिरं मथा । मात्रामात्रेऽपि नात्रासीतुस्तुप्याविवालिना ॥२४०॥  
 अस्तु वास्तु समस्तं च संकल्पविषयाहुतम् । इहमेव तथाप्यस्याज्ञास्ति अप्यस्ताऽपि निर्वृतिः<sup>७</sup> ॥२४१॥  
 किल चीभ्यः सुखावासिः पौरुषं<sup>८</sup> किमतः परम् । दै-यमात्मनि संभाष्यं<sup>९</sup> सौख्यं स्यां परमः<sup>१०</sup> तुमान् ॥  
 इति शीपालाचक्षेषः सत्यजन् वक्षतो खियः । अक्रमेणाखिलं त्वं कु सचकं मतिमातनोत् ॥२४२॥  
 ततः सुखावतीपुत्रं नरपालाभिधानकम् । कृतानिवेकमारोप्य समुक्तुः निजासनम् ॥२४३॥  
 जयवत्यादिभिः स्वाभिर्देवीभिर्धरणीश्वरैः । वसुपालादिभिर्भासा संवर्मं प्रस्थपद्यत ॥२४४॥  
 स वायामन्तराहं च तपस्तप्त्वा यथाविष्ठि । क्षपकशेणिमारुण्यं<sup>११</sup> मासेन (?) हत्मोहकः ॥२४५॥  
 यथायन् द्वितीयशुश्लेष शीचाररहितात्मना<sup>१२</sup> ॥२४६॥

उसी प्रकार चक्रवर्ती भी अपना चक्र ( चक्ररत्न ) धुमाकर मिट्टीसे उत्पन्न हुए रत्न पा कर आदिसे अपनी आजीविका चलाता है – भोगोपभोगकी सामग्री जुटाता है इसलिए इस चक्रवर्ती-के साम्राज्यको धिक्कार है ॥२३५॥ यह आयु वायुके समान है, भोग मेथके समान हैं, इष्ट-जनोंका संयोग नष्ट हो जानेवाला है, शरीर पापोंका खोटा पात्र है और विभूतियाँ बिजलीके समान चंचल हैं ॥२३६॥ यह श्रौतन सभीचीन सागरे अप्तुकरनेका कारण होनेसे सधन बनके समान है और जो यह विषयोंमें प्रीति है वह द्वेषको ढूँढ़नेवाली है ॥२३७॥ इन सब वस्तुओंसे सुख तभी तक मालूम होता है जबतक कि बुद्धिमें विपर्ययपना रहता है । और जब बुद्धि सीधी हो जाती है – तब ऐसा जान पड़ने लगता है कि इन वस्तुओंके सिवाय छोड़ने योग्य और वया होगा ? ॥२३८॥ जब कि अभिलाषारूपी विषके अंकुरोंसे इस चित्तरूपी वृक्षकी सदा वृद्धि होती रहती है तब उसकी संभोगरूपी डालियोंपर भला दुःखरूपी फल क्यों नहीं लगें ? ॥२३९॥ मैंने इच्छानुसार चिरकाल तक दसों प्रकारके भोग भोगे परन्तु इस भवमें तृष्णाको नष्ट करनेवाली तृप्ति भुजे रंचमात्र भी नहीं हुई ॥२४०॥ यदि हमारी इच्छाके विषयभूत सभी दृष्ट पदार्थ एक साथ मिल जायें तो उनसे थोड़ा-सा भी सुख नहीं मिलता है ॥२४१॥ लियोंसे सुखकी प्राप्ति होना ही पुरुषत्व है ऐसा प्रसिद्ध है परन्तु इससे बढ़कर और दीनता क्या होगी ? इसलिए अपने आत्मामें ही सच्चे सुखका निश्चय कर पुरुष हो सकता हूँ – पुरुषत्वका धनी बन सकता हूँ ॥२४२॥ इस प्रकार बुद्धिकी वक्ताको छोड़ते हुए श्रीपाल चक्रवर्तीने चक्ररत्नसहित समस्त परिप्रहको एक साथ छोड़नेका विचार किया ॥२४३॥ तदनन्तर उसने नरपाल नामके सुखावतीके पुत्रका राज्याभिषेक कर उसे अपने बहुत ऊचे सिंहासनपर बैठाया और स्वयं जयवत्ती आदि रानियों तथा वसुपाल आदि राजाओंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥२४४-२४५॥ उन्होंने विधिपूर्वक बाल्य और अन्तरेंग तप सपा, क्षपक श्रेणीमें चढ़कर मोहरूपी शत्रुको नाश करनेसे प्राप्त होनेवाला कषायरहित यथारूपात नामका उत्कृष्ट चारित्र प्राप्त किया, शीचाररहित द्वितीय शुक्ल ध्यानके द्वारा आत्मस्वरूपका

१ वायुवेगो । २ मेथो ल० । ३ विनाशी । ४ हृष्टसंयोगः । ५ सन्मार्गच्छुतिकारणोत्तात् । ६ लक्ष्मव्यादि ।  
 ७ मतेवयामः, भोहः । ८ इहस्तकाभिन्यादिकादन्यत् । ९ अस्थरूपकालेऽपि । १० अस्त्वापि । ११ सुखम् ।  
 १२ शुचलाकुशलसमावरणलक्षणं पौरवम् । १३ संकल्पसुखम् । १४ अहं परमपुरुषो भवेयम् । १५ मोहाराति-  
 जयाज्ञितम् ल०, प०, अ०, स०, इ० । १६ एकरवितर्कवीचारकपृष्ठीयवृष्टकम्भ्यानेत ।

धातिकर्मन्यं हत्वा संप्राप्नवकेवलः<sup>१</sup> । सयोगस्थानमाकम्य विषोगो वीतवलमषः ॥२४८॥  
 २ शरीरचित्तसापापाद्विधकृतगुणोत्करः । अनन्तशास्त्रमप्राप्तमवाप्य सुखमुत्तमम् ॥२४९॥  
 रास्य राज्यश्च ताः सर्वां विधाय विविधं तपः । स्वर्गलोके स्वयोग्योहित्तामेवभजन् सुराः ॥२५०॥  
 आवो व्याकर्यं तं नत्वा गत्वा नाकं निजोचित्तम्<sup>२</sup> । अनुभूय सुखं प्राप्नेत् शेषपुण्यविशेषतः ॥२५१॥  
 इहागताविति व्यक्तं ज्याजहारं सुलोचना । जयोऽपि स्वप्रियाप्रज्ञाप्रमाणादतुष्टदा ॥२५२॥  
 तदा सदसदः<sup>३</sup> सर्वे प्रतीयुर्स्तदुदाहृतम्<sup>४</sup> । कः प्रत्येति<sup>५</sup> म दुष्टश्चेत् सद्भिर्निर्गदित्वं वचः ॥२५३॥  
 एवंसुखेन साम्राज्यमोगसारं निरन्तरम् । भुजानौ रजितान्योन्यौ कालं गमयतः सम तौ ॥२५४॥  
 तदा<sup>६</sup> उगमवावाप्तप्रश्निप्रमुखाः शिताः । विद्यास्त्रात्<sup>७</sup> च महीशां<sup>८</sup> च संप्रीत्या तौ नदित्तुः<sup>९</sup> ॥२५५॥  
 तद्वलात् कान्तया साहूं विहतुं सुरगोचरात् । वाम्छन् देशान् निजं राज्यं नियोज्य विजयेऽनुजे ॥२५६॥  
 यथेष्ट सप्रियो विद्यावाहनः सरितो पतीन्<sup>१०</sup> । कुलशीलाजदीर्घवधानि विविधान्यपि ॥२५७॥  
 विहरज्ञन्यदा मेघस्वरः कैलासशैलजे । वने सुलोचनाम्बरणाद्वैष्णविजिदपासरत्<sup>११</sup> ॥२५८॥

चिन्तवन करते हुए ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन वातिया कर्मोंको नष्ट कर नी केवललिंगियां प्राप्त कीं, सयोगकेवली गुणस्थानमें पहुँचकर क्रमसे योगरहित होकर सब कर्मं नष्ट किये और अन्तमें शौदारिक, तैजस, कामणि-तीनों शरीरोंके नाशसे गुणोंका समूह प्रकट कर अनन्त, शान्त, नवीन और उत्तम सुख प्राप्त किया ॥२४६-२४९॥ श्रीपाल चक्रवर्तीकी सब रानियाँ भी अनेक प्रकारका तप तपकर स्वर्गलोकमें अपने-अपने योग्य बड़े-बड़े विमानोंमें देव हुईं ॥२५०॥ सुलोचना जयकुमारसे कह रही है कि हम दोनों भी ये सब कथाएं सुनकर एवं गुणपाल तीर्थ करको नमस्कार कर स्वर्ग चले गये थे और वहाँ यथायोग्य सुख भोगकर आयुके अन्तमें बाकी बचे हुए पुण्यविशेषसे यहाँ उत्पन्न हुए हैं । ये सब कथाएं सुलोचनाने स्पष्ट शब्दोंमें कही थीं और जयकुमार भी अपनी प्रियाकी बुद्धिके प्रभावसे उस समय अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ था ॥२५१-२५२॥ उस समय सभामें बैठे हुए सभी लोगोंने सुलोचना के कहनेपर विश्वास किया सो ठीक ही है, क्योंकि जो दुष्ट नहीं है वह ऐसा कैनत है जो सज्जनों-के द्वारा कहे हुए वचनोंपर विश्वास न करे ॥२५३॥ इस प्रकार साम्राज्य तथा श्रेष्ठ भोगोंका निरन्तर उपभोग करते और परस्पर एक दूसरेको प्रसन्न करते हुए वे दोनों सुखसे समय बिताने लगे ॥२५४॥ उसी समय पहले विद्याधरके भवमें लक्ष्मीको बद्धानेवाली जो प्रज्ञप्ति आदि विद्याएँ थीं वे भी बड़े प्रेमसे जयकुमार और सुलोचना दोनोंको प्राप्त हो गयीं ॥२५५॥ उन विद्याओंके बलसे महाराज जयकुमारने अपनी प्रिया-सुलोचनाके साथ देवोंके योग्य देशोंमें विहार करनेकी इच्छा की और इसलिए ही अपने छोटे भाई विजयकुमारको राज्यकार्यमें नियुक्त कर दिया ॥२५६॥

तदनन्तर जिसकी सवारियाँ विद्याके द्वारा बनी हुई हैं ऐसा वह जयकुमार अपनी प्रिया-सुलोचनाके साथ-साथ समुद्र, कुलाचल और अनेक प्रकारके मनोहर वनोंमें विहार करता

१ संप्राप्तव्याधिकज्ञानदर्शनसम्बन्धवल्लचारिशदानलाभभोगभीगवीर्यणीतित्वकेवललिंगः । २ आदारिकशारीर-कामणिति शरीरत्रयविनाशात् । ३ अनन्तं शान्तमप्राप्तमवाप्तः इ०, अ०, स०, ल०, प० । अप्राप्तमनुपमम् । 'प्राप्तव्यानशने मृत्यो तुत्यबाहुत्ययोरपि' इत्यभिधानात् । ४ यद्योचित्तम् ल०, प०, अ०, स०, इ० । ५ आयुरस्ते । ६ उवाच । ७ सदः सीदन्तीति सदसदः । सभां प्राप्ता इत्यर्थः । ८ विश्वस्तवतः । ९ सुलोचनावचनम् । १० न अदृषाति । ११ हिरण्यवर्मप्रभावतीभवे प्राप्त । १२ सुलोचनाम् । १३ जयम् । १४ विवितश्रियः ल०, प०, इ०, स० । १५ प्रज्ञप्त्यादिविद्यावलात् । १६ पतिम् ल०, प०, इ०, स० । १७ अपसरति सम ।

अमरेन्द्रे सभामध्ये शीलमाहास्युद्धासनम् । जयस्य तस्मियाथाइव प्रकुर्वति कदाचन ॥२५६॥

शुभ्वा लदादिमे कवये<sup>१</sup> रविप्रभविभानजः । श्रीशो<sup>२</sup> रविप्रभालयेन तच्छालान्वेषणं प्रति ॥२६०॥

प्रेषितां<sup>३</sup> कांचना नाम देवी प्राप्य जयं सुशीः । क्षेत्रेऽस्मिन् भारते खेचराद्ग्रेत्वराद्विकृतदे ॥२६१॥

सनौहसरेण्यविषये रौजादेवपुरोधिषः । अमूर्ते<sup>४</sup> पिङ्गलगाम्धारः सुखदा तस्य सुप्रभा ॥२६२॥

तयोर्विद्युत्प्रभा पुत्री नमेभार्या यदृश्या । स्वां नन्दने महामेरी क्रीडन्त वीक्ष्य सोऽसुका ॥२६३॥

तदा प्रभृति भृत्यस्तेऽभवस्त्रं लिखिताङ्कतिः । रवसमागममेशाहं ध्यावती दैवयोगतः ॥२६४॥

रषबस्यस्मि कान्त्वा<sup>५</sup> स्मिभिकेण<sup>६</sup> सोऽुमक्षमा । इत्यपास्तोपकण्ठस्थान् उक्तीयान् रमरविहृता ॥२६५॥

स्वानुरागं जये व्यक्तमकरोद् चिकृतेभ्यणा । तद्दुष्टुद्वेषितं द्वृवा मा भृत्याः पापमादशम् ॥२६६॥

सोदर्या व्यं भमाद्यार्थं भया सुनिवराद् ब्रतस् । पराङ्मनाङ्गसंसाक्षसुखे मे विषभक्षणम् ॥२६७॥

महीशेनेति संप्रोक्ता<sup>७</sup> मिथ्या सा<sup>८</sup> कोषवेविनी । उपात्तराशसीवेषा ते<sup>९</sup> समुद्धृत्य गम्वरी<sup>१०</sup> ॥२६८॥

मुष्पादक्षयसंसक्तनृष्टकाम्तामिलजिता<sup>११</sup> । मार्चा तच्छालमाहात्म्यात्<sup>१२</sup> काङ्गनाऽद्वयती गमा ॥२६९॥

अदिभ्यदेवता चैव शीलवत्याः परे न के । ज्ञात्वा तच्छालमाहात्म्यं गम्वा स्वस्त्रामिनं प्रति ॥२७०॥

हुआ किसी समय कैलाश पर्वतके बनमें पहुँचा और किसी कारणवश सुलोचनासे कुछ दूर चला गया ॥२५७-२५८॥ उसी समय इन्द्र अपनी सभाके बीचमें जयकुमार और उसकी प्रिया सुलोचनाके शीलकी महिमाका वर्णन कर रहा था उसे सुनकर पहले स्वगंके रविप्रभ विमानमें उत्पन्न हुए लक्ष्मीके अधिपति रविप्रभ नामके देवने उनके शीलकी परीक्षा करनेके लिए एक कांचना नामकी देवी भेजी, वह बुद्धिमती देवी जयकुमारके पास आकर कहने लगी कि 'इसी भरतक्षेत्रके विजयार्थं पर्वतकी उत्तरथ्रेणीमें एक भनोहर नामका देश है, उसके रत्नपुर नगरके अधिपति राजा पिङ्गलगाम्धार हैं, उनके सुख देनेवाली रानी सुप्रभा है, उन दोनोंकी में विद्युत्प्रभा नामकी पुत्री हूँ और राजा नमिकी भार्या हूँ । महामेह पर्वतपर नन्दन बनमें क्रीड़ा करते हुए आपको देखकर मैं अत्यन्त उत्सुक हो उठी हूँ । उसी समयसे मेरे चित्तमें आपकी आकृति लिख-सी गयी है, मैं सदा आपके समागमका ही ध्यान करती रहती हूँ । दैवयोगसे आज आपको देखकर आनन्दके वेगको रोकनेके लिए असमर्थ हो गयी हूँ ।' यह कहकर उसने समीपमें बैठे हुए अपने सब लोगोंको दूर कर दिया और कामसे विहृल होकर तिरछी और्जे चलाती हुई वह देवी जयकुमारमें अपना अनुराग स्पष्ट रूपसे प्रकट करने लगी । उसकी हुष्ट चेष्टा देखकर जयकुमारने कहा कि तू इस तरह पापका विचार भत कर, तू मेरी बहन है, मैंने मुनिराजसे ब्रत लिया है कि मुझे परस्तियोंके शरीरके संसर्गसे उत्पन्न होनेवाला सुख विष खानेके समान है । महाराज जयकुमारके इस प्रकार कहनेपर वह देवी झूठमूठके क्रोधसे कौपने लगी और राक्षसीका वेष धारण कर जयकुमारको डाढ़ाकर जाने लगी । फूल तोड़नेमें लगी हुई सुलोचनाने यह देखकर उसे ललकार लगायी जिससे वह उसके शीलके माहात्म्यसे डरकर अहशय हो गयी । देखो, शीलवती स्त्रीसे जब देवता भी डर जाते हैं तब औरोंकी तो बात ही क्या है ? वह कांचना देवी उन दोनोंके शीलका माहात्म्य जानकर अपने स्वामीके पास गयी, वही उसने उन दोनोंके उस माहात्म्यकी प्रशंसा की जिसे सुनकर वह रविप्रभ देव भी आश्चर्यसे उनके गुणोंमें प्रेम करता हुआ उन दोनोंके पास आया । उसने अपना सब

<sup>१</sup> रविप्रभविमानोत्पन्नलक्ष्मीपतिः । <sup>२</sup> श्रीशो ल० । <sup>३</sup> निरूपिता । <sup>४</sup> सो प्रिय । <sup>५</sup> एतस्मिन् प्रदेशे ।

<sup>६</sup> कामवेगम् । <sup>७</sup> स्वजनान् । <sup>८</sup> स्वीकृतम् । <sup>९</sup> संसर्ग—ल०, प०, ६०, स० । <sup>१०</sup> सम्प्रोक्तं ल० । <sup>११</sup> पाप-वेपनो ट० । अशोभनं कम्यगती । <sup>१२</sup> जयम् । <sup>१३</sup> गमसशीला । <sup>१४</sup> सुलोचनात्मजिता । <sup>१५</sup> कांचनात्म-मराङ्गना ।

प्राप्तं सत्<sup>१</sup> सा तेषोस्ताऽङ्गमाहास्यं सोऽपि विस्मयात् । रविप्रमः समागत्य लाशुभौ तद्गुणप्रियः ॥२७१॥  
 स्वबृत्ताभ्यां समाप्त्याय युवाभ्यां क्षम्यतामिति । दूजयित्वा महारथैर्जितोऽ समीयितात् ॥२७२॥  
 तेषां चिरं विहृत्यात्संग्रीतिः कामतया समस् । विवृत्य पुरमागत्य सुखसारं समन्वयत् ॥२७३॥  
 अथान्यदा समुत्पक्षोधिमेष्वस्वराधिपः । तीर्थीयिताथैर्मासाद्य अन्दित्वाऽन्वभाजनम् ॥२७४॥  
 कुर्वा धर्मग्रिद्वनं श्रुत्वा तस्माद्यथोचितम् । आक्षेपिण्यादिकाः<sup>२</sup> सम्यक् कथाबन्धोदयादिकम् ॥२७५॥  
 कर्मनिर्मुक्तसंप्राप्तं शार्मसारं प्रबुद्धधीः । शिवंकरमहादेव्यासतनूजो जगतां प्रियः ॥२७६॥  
 अवायौऽनन्तर्वीर्यात्ययः शश्रुभिः शशशास्त्रविश् । आकुमारै यशस्तस्य<sup>३</sup> शीर्यं शशुजयावधि ॥२७७॥  
 त्यागः सर्वीर्थिसंतर्पीं सत्यं इवनेऽत्यविप्लुतम्<sup>४</sup> । विद्यायाभिष्वं तस्मै प्रदायामीयसंपदम् ॥२७८॥  
 पदं परं परिग्राप्तुमव्यग्रमभिलाषुकः । विसर्जितसरगोत्रा<sup>५</sup> दिविनिर्जितनिजेन्द्रियः ॥२७९॥  
 वितजितमहामोहः समजितशुभाशयः<sup>६</sup> । विजयेन अवस्तेन संजयगतेन सानुजैः ॥२८०॥  
 अन्तीङ्ग निश्चितत्वागै रागदेषाविद्वयितैः । रविकीर्ती<sup>७</sup> रिषुजयोऽरिन्दमोऽरिजयाद्यः ॥२८१॥  
 सुजयश्च सुकान्तश्च सप्तमश्च जितंजयः । महाजयोऽतिवीर्यैङ्ग<sup>८</sup> श्रीरंजयसमाहृयः ॥२८२॥  
 रविवीर्यस्तथाऽन्ये च तनूजाइचक्लवर्तिनः । तैश्च साहौ सुनिविण्णैश्वरमाङ्गो विशुद्धिभाक् ॥२८३॥

वृत्तान्त कहकर उन दोनोंसे धर्मा माँगी और फिर बड़े-बड़े रत्नोंसे पूजा कर वह स्वर्गको जला गया । इधर जयकुमार भी प्रिया—सुलोचनाके साथ चिरकाल तक बड़े प्रेमसे विहारकार वापस लौटे और नगरमें आकर श्रेष्ठ सुखोंका अनुभव करने लगे ॥२५९—२७३॥

अथानन्तर—जिसे आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे जयकुमारने किसी एक दिन आनन्दके पात्र श्री आदिनाथ तीर्थकरके पास जाकर उनकी बन्दना की, धर्मविषयक प्रश्न कर उनका यथा धोग्य उत्तर सुना, आक्षेपिणी आदि कथाएं कहीं और कर्मोंके बन्ध उदय आदिकी चर्चा की ॥२७४—२७५॥ इस प्रकार प्रबुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले जयकुमारने कर्मके नाशसे प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ सुखको प्राप्त किया । तदनन्तर उसने जो लोगोंको बहुत ही प्रिय है, जिसे शश्रु नहीं रोक सकते हैं, जो शस्त्र और शास्त्र दोनोंका जाननेवाला है, जिसका यश कुमार अवस्थासे ही फैल रहा है, जिसकी शूरवीरता शश्रुओंके जीतने तक है, जिसका दान सब यात्रकोंको सन्तुष्ट करनेवाला है, और जिसका सत्य कभी स्वप्नमें भी खण्डित नहीं हुआ है ऐसे शिवंकर महादेवीके पुत्र अनन्तवीर्यका राज्याभिषेक कर उसे अपनी सब राज्य-सम्पदा देंदी ॥२७६—२७८॥ तदनन्तर जो आकुलतारहित परम पद प्राप्त करनेकी इच्छा कर रहा है, जिसने अपने सब कुटुम्बका परित्याग कर दिया है, अपनी इन्द्रियोंको वश कर लिया है, महामोहको डाँट दिखा दी है और शुभासूक्षका संचय किया है ऐसे चरमशरीरी तथा विशुद्धिको धारण करनेवाले जयकुमारने विजय, जयन्त, संजयन्त तथा परिग्रहके त्यागका निश्चय करनेवाले और राग-द्वेषसे अदूषित अन्य छोटे भाइयों एवं रविकीर्ति, रविजय, अरिदम, अरिजय सुजय, सुकान्त, सातवीं अजितंजय, महाजय, अतिवीर्य, वरंजय, रविवीर्य तथा इनके सिवाय और भी वैराग्यको प्राप्त हुए चक्रवर्तीके पुत्रोंके साथ-साथ दीक्षा धारण की ॥२७९—२८३॥

१ ग्रंथस्त्रोत्कार । २ जयसुलोचनयोः । ३ तथा ल० । ४ मण्डभाजनं कल्याणभाजनं वा । तीर्थादि-ल० ।  
 ५ आक्षेपणी विक्षेपणी संवेजनी निर्बेजनीति चेति चतुर्सः । “आक्षेपणीं स्वमत्संप्रहृणीं समेकीं विक्षेपणीं कुमतनिप्रहृणीं पथाहम् । संवेजनीं प्रथयितुं सुकृतानुभावं निर्बेजनीं बदत् षमकथादिरवत्यै ॥” ६ कुर्वा कथाबन्धोदयसदिकाः ल०, प०, इ०, स० । ७ कर्मवन्धविमुक्तैः प्राप्तुं योग्यम् । ८ जनताप्रियः ल०, प०, अ०, स०, इ० । ९ कुमारकालादारम् । १० अनन्तवीर्यस्य । ११ अविच्युतम् । निवर्धि वा । १२ वाचवादि ।  
 ‘सगोत्रवान्धवकातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः’ इत्यमिधानात् । १३ शुभालकः ल० । १४ रविकीर्तिनामा ।  
 १५ रविजयो ल०, प०, स०, इ० । १६ वरंजय ल०, अ०, प०, स० ।

एव पात्रविशेषस्ते संबोधुं शासनं महतः । इति विश्वमहीशेनैः देवदेवस्यैः सोऽर्पितःैः ॥२८४॥  
 कृतग्रन्थपरिख्यागः प्राप्तग्रन्थार्थं संग्रहः । प्रकृष्टं संघमं प्राप्त्य सिद्धसंदर्भदर्दितः ॥२८५॥  
 चतुर्हानामलजयोतिर्हताततमनस्तमाः । अभूत् गणधरो भूतरेकसंसातिपूरकः ॥२८६॥  
 सुलोचनापदसंहार्यशोका पतिदिव्योगतः । गलिताकरुपवज्ञीव इम्लानामरभूत्वात् ॥२८७॥  
 शमिताैः चक्रवर्तीष्टकान्तव्याऽशु सुभद्रया । आग्नीसमीपं प्रवज्य भावितिहित्विरं तपः ॥२८८॥  
 कृतवा चिमाने साऽनुसरेऽभूत् क्षेत्रेऽस्युतेऽमरः । आदितीर्थाधिनाथोऽपि मोक्षमार्गं प्रवर्तयन् ॥२८९॥  
 चतुरुत्तरव्याऽशीत्या विविधिर्द्विविभूषितैः । चिरं वृषभसेनादिगणेणैः परिवेष्टिः ॥२९०॥  
 खपञ्चसलकारादिभित्पूर्वधरान्वितः । खपञ्चकचतुर्मैर्यशिक्षकैसुनिमिैः युतः ॥२९१॥  
 'सुलोचनामसज्जैः सहस्रं अभिष्वृतःैः । केवलावगमैविशतिसहस्रैः समन्वितः ॥२९२॥  
 खद्यतुं उपक्षोहविक्रियद्विविहितःैः । खपञ्चसपक्षैकमित्तुर्यविदन्वितःैः ॥२९३॥  
 तावद्विविदिभिर्वैन्यो विस्तपत्वादिभिः । चतुरष्टखवाद्वशमितैः सर्वैश्च पिण्डितैः ॥२९४॥  
 सर्वमस्थानसंभ्राससंपत्तिस्तद्विरचितः । खचतुकेन्द्रियागम्युक्तपूज्यव्रह्मार्थिकादिभिः ॥२९५॥  
 आर्थिकाभिरस्त्रियमाननानागुणोदयः । दद्वतादिभिरक्षक्रयोऽहौ आवक्तैः श्रितः ॥२९६॥  
 आविकाभिः स्तुतः पञ्चलक्षाभिः सुव्रतादिभिः । मावनादिचतुर्मैददेवदेवीदित्तक्रमः ॥२९७॥

उस समय भगवान् ऋषभदेवके समीप जयकुमार ऐसा सुशोभित हो रहा था मात्र आपके बड़े भारी शासनको धारण करनेके लिए यह एक विशेष पात्र है यही समझकर महाराज भरतने उसे भगवान्के लिए सौंपा हो ॥२८४॥ इस प्रकार जिसने सब परिप्रहका त्याग कर दिया है, सम्पूर्ण श्रुतका अर्थसंग्रह प्राप्त किया है, जो उक्ष्य संघम धारण कर सात ऋद्धियोंसे निरन्तर बढ़ रहा है, और चार लानरूपी निमंल ज्योतिसे जिसने मनका विस्तीर्ण अन्धकार नष्ट कर दिया है ऐसा वह जयकुमार भगवान्का इकहत्तरवाँ गणधर हुआ ॥२८५-२८६॥ इधर पतिके वियोगसे जिसे बड़ा भारी शोक रहा है और जो पढ़े हुए कल्यवृक्षसे नीचे शिरी हुई कल्पलताके समान तिष्ठभ हो गयी है ऐसी सुलोचनाने भी चक्रवर्तीकी घटरानी सुभद्राके समझानेपर ब्राह्मी आर्थिकाके पास शीघ्र ही दीक्षा धारण कर ली और जिसे आगामी पर्यायमें मोक्ष होनेवाला है ऐसी वह सुलोचना चिरकाल तक तप कर अच्युतस्वर्गके अनुत्तरविमानमें देव पैदा हुई ।

इधर जो मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति चला रहे हैं, अनेक ऋद्धियोंसे सुशोभित वृषभसेन आदि चौरासी गणधरोंसे चिरे हुए हैं, चार हजार सात सौ पचास पूर्वज्ञानियोंसे सहित हैं, चार हजार एक सौ पचास शिक्षक मुनियोंसे युक्त हैं, तौ हजार अवधिज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले मुनियोंसे सहित हैं, बीस हजार केवलज्ञानियोंसे युक्त हैं, बीस हजार छह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक मुनियोंसे वृद्धिको प्राप्त हो रहे हैं, बारह हजार सात सौ पचास मनःपर्यायज्ञानियोंसे अन्वित हैं, परवादियोंको हटानेवाले बारह हजार सात सौ पचास वादियोंसे बन्दनीय हैं, और इस प्रकार सब मिलाकर तपश्चरणरूपी सम्पदाओंको प्राप्त करनेवाले चौरासी हजार चौरासी मुनिराज जिनकी निरन्तर पूजा करते हैं, ब्राह्मी आदि तीन लाख पचास हजार आर्थिकाएँ जिनके गुणोंका स्तवन कर रही हैं, दुढ़वत आदि तीन लाख श्रावक जिनकी सेवा कर रहे हैं, सुव्रता आदि पाँच लाख श्राविकाएँ जिनकी लूति कर रही हैं, भवनवासी आदि चार प्रकारके देव देवियाँ जिनके चरणकमलोंका स्तवन कर रही हैं, औपाये आदि तिर्यंचगतिके जीव जिनकी

१-भरतेष्वरेण । २-वृषभेष्वरस्य । ३-जयः । ४-अष्टादश-ल०, प०, अ०, स०, इ० । ५-उपशास्ति नीता ।  
 ६-मातुं योग्य । ७-भिष्वृतः ल० । ८-अवधिज्ञान । ९-भिर्युतः ल० । १०-राजितः । ११-मनः-  
 पर्यायज्ञानिसहितः ।

चतुष्पदादिभिस्त्वयेषां तिनिश्चामिषेवितः । चतुर्खिशादतीशेषै विशेषैर्बंधितोदयः ॥२९८॥  
 आत्मोपाधिविशिष्टाद्यौथद्युक्ति सुखवीर्यसदृः । देहसौन्दर्यवासोक्त्वा सर्वस्थानसंगतः ॥२९९॥  
 प्रतिहार्याङ्गोद्दिष्टनष्टवातिचतुष्पदः । वृषमायन्वितार्थाङ्गसहत्वाहृष्मावितः ॥३००॥  
 विकासितविषेयाम्बुजावलिर्वचनाशुभिः । संबूताअस्तिष्ठैजसुकुलेनाविलेशिना ॥३०१॥  
 भरतेन सम्भवचर्य दृष्टो धर्ममाघम । विष्णुते भारवायस्त्वै विनेयान् कुगतेस्ततः ॥३०२॥  
 धर्म इत्युच्यते सञ्जित्त्वाभुभेदं समाश्रितः । सम्यग्दक्षान्त्वारित्रितोरुपः कृपापरः ॥३०३॥  
 जीवादिसहके तत्त्वे अद्वार्तन् यत् स्वतोऽज्ञाना । १० परप्रणयनाद् वा तत् सम्यग्दर्शनमुच्यते ॥३०४॥  
 शक्तादिवोषान्मुक्तं भावत्रयविवेचितम्<sup>१</sup> । सेषां जीवादिसहानां संशयादिविवर्जनात्<sup>२</sup> ॥३०५॥  
 याधारात्मद्वयं परिज्ञानं सम्यग्ज्ञानं समादिशेत् । यथाकर्मस्त्रिवो न स्यावारित्र्य संयमस्तथा ॥३०६॥  
 निर्जरा कर्मणां येन तेन दृष्टस्तपो भलम् । चतुर्वैर्यतानि मिश्चाणि कृपायैः स्वर्गहेतवः ॥३०७॥  
 निष्कर्षायाणि नाकस्य मोक्षस्य च हितैविष्णाम् । चतुष्पदिदं वर्त्मं मुक्तेर्द्वयापरंगिभिः ॥३०८॥  
 मिथ्यात्मस्त्रवत्ताचारः प्रमादाः सकृष्टायता<sup>३</sup> । वौगाः शुभाद्युभा जन्तोः कर्मणां वर्मधरेतवः ॥३०९॥

सेवा कर रहे हैं, चींतीस अतिशय विशेषोंसे जिनका अभ्युदय प्रकट हो रहा है, जो केवल आत्मा-स उत्पन्न होनेवाले विशिष्ट ज्ञान, विशिष्ट दर्शन, विशिष्ट सुख और विशिष्ट वीर्यको प्राप्त हो रहे हैं, जो शरीरकी सुन्दरतासे युक्त हैं, जो सज्जाति आदि सात परम स्थानोंसे संगत हैं, जो आठ प्रातिहार्योंसे युक्त हैं, जिन्होंने चार धातिधा कर्म नष्ट कर दिये हैं, जो वृषभ आदि एक हजार आठ नामोंसे कहे जाते हैं और जिन्होंने भव्य जीवरूपी कमलोंके बनको प्रफुल्लित कर दिया है ऐसे भगवान् वृषभदेवके पास जाकर मुकुलित कमलके समान हाथ जोड़े हुए चक्रवर्ती भरतने उनको पूजा की और धर्मका स्वरूप पूछा तब भगवान् इस प्रकार कहने लगे –

जो शिष्योंको कुगतिसे हटाकर उत्तम स्थानमें पहुँचा दे सत् पुरुष उसे ही धर्म कहते हैं । उस धर्मके चार भेद हैं – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप । यह वर्त्म कत्व्य प्रधान है ॥२८७-३०३॥ अपने-आप अथवा दूसरेके उपदेशसे जीव आदि सात तत्त्वामें जो यथार्थ श्रद्धान होता है वह सम्यग्दर्शन कहलाता है ॥३०४॥ यह सम्यग्दर्शन शंका आदि दोषोंसे रहित होता है तथा औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीन भावों-द्वारा इसकी विवेचना होती है अर्थात् भावोंकी अपेक्षा सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं । संशय, विपर्यय और अनध्यवसायका अभाव होनेसे उन्हीं जीवादि सात तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान कहलाता है । जिससे कर्मोंका आस्रव न हो उसे चारित्र अथवा संयम कहते हैं ॥३०५-३०६॥ जिससे कर्मोंकी निर्जरा हो ऐसी वृत्ति धारण करना तप कहलाता है । ये चारों ही गुण यदि कषायसहित हों तो स्वर्गके कारण हैं और कषायरहित हों तो आत्माका हित चाहनेवाले लोगोंको स्वर्ग और मोक्ष दोनोंके कारण हैं । ये चारों ही मोक्षके मार्ग हैं और प्राणियोंको बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं ॥३०७-३०८॥ मिथ्यात्म, अन्नताचरण, ( अविरति ), प्रमाद, कषाय और शुभ-अशुभ योग ये जीवोंके कर्मबन्धके कारण हैं ॥३०९॥

१ अतिशय । २ आत्मा उपाधि: कारणं यस्य । ३ वीर्यगः ल०, ४०, ८०, ८०, ८०, ८० । प्रशस्त-सौन्दर्यवास ।  
 शमवसरण । ४ सौन्दर्यवास् स्वोक्तसप्ता-ल०, ४०, ८०, ८०, ८०, ८० । ५ अभ्युदयनिःशेषस्त्रूपोन्नतस्थाने ।  
 ६ अभ्यान् । ७ दुर्गते: सकाशात् अपशार्य । ८ ततः कारणात् । ९ दयाप्रधानः । क्रियापरः ल० । १० परोप-  
 रेणात् । ११ औपशामेकक्षायकक्षायोपशमिकभावैनिर्णीतम् । १२ विसर्जनात् ल० । १३ सकृष्टप्राप्तम् ।

मिथ्यात्वं पञ्चादा लाष्टशालं चाऽविरतिर्मता । प्रमादाः पञ्चदश च कथायास्ते चनुर्विधाः ॥३१०॥

४ वीताः पञ्चदशोऽस्याः सप्तशतम् अविलोक्यनि । सदृशीलसभेदेन कर्मण्युक्तानि कोविदैः ॥३११॥

बन्धश्शतुर्विधो ज्ञेयः प्रकृत्यादिविक्षिप्तः । कर्मण्युक्तयसंग्राम्या हेतवः फलवन्धयोः ॥३१२॥

५ तथूर्यं संस्कृतेहेतुं परित्यज्य गृहाश्रमम् । दोषदुःखजामुख्याप्रायं भवावहम् ॥३१३॥

६ शक्तिमन्तस्समासङ्गविनेया<sup>१</sup> विदितागमाः । गुण्यादिष्वद्विधे<sup>२</sup> सम्बगनुगत्य यथोचितम् ॥३१४॥

७ श्रोक्तोपेक्षादिभेदेषु वीतरागादिकेषु च । पुलाकादिप्रकारेषु व्यवेतागारकादिषु ॥३१५॥

८ प्रमत्तादिगुणस्यानविशेषेषु च सुस्थिताः । निश्चयव्यवहारोऽसुपाश्च मोक्षसुखमम् ॥३१६॥

९ तथा गृहाश्रमस्थाश्च सम्यग्दर्शनपूर्वकम् । वानशीलोपवासार्हदादिष्वजोपलक्षिताः ॥३१७॥

१० आश्रितैकादशोणसक्षताः सुखुभावायाः<sup>३</sup> । संप्राप्तस्मस्थानसक्ताः सत्तु धीधनाः ॥३१८॥

११ इति<sup>४</sup> सत्तस्वसंदर्भं गर्भवान्विभवात्प्रमो<sup>५</sup> । सप्तभो<sup>६</sup> मरताधीशः सर्वमेवममन्यत ॥३१९॥

१२ शिखाननेत्रसम्यग्दर्शनशुद्धिभाग् देशसंयतः । लक्षणमिष्वन्यायात् कैलासाक्षारोऽस्मम् ॥३२०॥

१३ जगद्वितयनायोऽपि धर्मक्षेत्रेणानारतम् । उपवा सद्वर्मवीजानि व्यविष्वद्वर्मवृद्धिभिः ॥३२१॥

मिथ्यात्वं पौच तरहका है, अविरति एक सौ आठ प्रकारकी है, प्रमाद पन्द्रह है, कथायके चार भेद हैं, और सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले लोगोंको योगके पन्द्रह भेद जानना चाहिए। विद्वानोंने कर्मोंका निरूपण मूल और उत्तरभेदके ढारा किया है – कर्मोंके मूल भेद आठ हैं और उत्तरभेद एक सौ अड़तालीस हैं ॥३१०–३११॥ प्रकृति आदिके भेदसे बन्ध चार प्रकारका जानना चाहिए तथा कर्म उदयमें आकर ही फल और बन्धके करण होते हैं। भावार्थ – पहलेके बैधे हुए कर्मोंका उदय आनेपर ही उनका सुख-दुःख आदि फल मिलता है तथा नवीन कर्मोंका बन्ध होता है ॥३१२॥ तुम लोग भक्तिमान् हो, निकटभव्य हो और आगमको जाननेवाले हो, इसलिए संसारके कारण स्वरूप – दोष, दुःख, बुद्धापा और मृत्यु आदि पापोंसे भरे हुए इस भयकर गृहस्थाश्रमको छोड़कर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्र इन छहोंका अच्छी तरह अभ्यास करो तथा जिनके उपेक्षा आदि भेद कहे गये हैं ऐसे वीतरागादि मुनियोंमें, जिनके पुलाक-आदि भेद हैं ऐसे अनगारादि मुनियोंमें अथवा प्रमत्त-संयतको आदि लेकर उत्कृष्ट गुण-स्थानोंमें रहनेवाले प्रमत्तविरत आदि मुनियोंमें-से किसी एककी अवस्था धारण कर निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकारके उत्तम मोक्षकी उपासना करो ॥३१३–३१६॥ इसी प्रकार गृहस्थाश्रममें रहनेवाले बुद्धिमान् पुरुष सम्यग्दर्शन पूर्वक दात, शील, उपवास तथा अरहन्त आदि परमेष्ठियोंकी पूजा करें, शुभ परिणामोंसे श्रावकोंकी ग्यारह प्रतिमाओंका पालन करें और यथायोग्य सज्जाति आदि सात परमस्थानोंको प्राप्त हों ॥३१७–३१८॥ इस प्रकार भरतेश्वरने समीचीन तत्त्वोंकी रचनासे भरी हुई भगवान्की बचनरूप विभूति सुनकर सब सभाके साथ-साथ कही हुई सब बातोंकी ज्योंकी त्यों माना अर्थात् उनका ठीक-ठीक श्रद्धान किया ॥३१६॥ मति, श्रुत, अवधि – इन तीनों ज्ञानरूपी नेत्रों और सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिको धारण करनेवाला देशसंयमी भरत भगवान् वृषभदेवकी वन्दना कर कैलास पर्वतसे अपने उत्तम नगर अयोध्याको आया ॥३२०॥ इधर तीनों लोकोंके स्वामी भगवान् आदिनाथने भी धर्मके योग्य क्षेत्रोंमें समीचीन धर्मका बीज बोकर उसे धर्मवृष्टिके

१ वाष्टशतधाविरति –स०, प०, अ०, स०, इ० । २ उत्त कारणात् । ३ भक्ति–ल०, प०, इ०, अ०, स० ।  
४ अस्यासन्नभव्याः । ५ गुप्तिसमितिधर्मनिप्रेक्षापरोष्टवृजयचारित्रभेदैः । ६ सुख शोभनपरिणामाः । ७ पूर्वोत्तर-  
तरद । ८ पुरोस्सकाशात् । विभी ल० । ९ सभासहितः ।

सता सल्कलमंप्राप्तै विहरन् स्वगणैः समम् । अतुर्दशदिनोपेतसहलाच्छीनपूर्वकम् ॥३२२॥  
 लक्ष्मी कैलासमासाच्य श्रीसिद्धशिखराभ्यर्थे । पौर्णमासीर्दिने चौथे<sup>१</sup> मिरिचः ससुपाविशत् ॥३२३॥  
 तदा भस्तराजेन्द्रो महामन्दरभूत्यरम् । आप्रग्रामारं व्यलोक्षिष्ठ स्वप्ने दैव्येण संस्थितम् ॥३२४॥  
 तदैव युवराजोऽपि<sup>२</sup> स्वगदिव्य महीषधिः । द्रुमशिखरा नृणां जन्मरोगं स्वयन्तमैक्षण्यैः ॥३२५॥  
 कल्पद्रुमभीष्टार्थं वृत्था नृभ्यो निरस्तरम् । गृहेण्टे<sup>३</sup> निशामयाभासं स्वर्गप्राप्तिसमुच्चरतम् ॥३२६॥  
 रत्नद्वीपं जिवक्षुभ्यो<sup>४</sup> नानारकवृत्तकम् । प्रादायान्नगमोद्यकमद्रासीत् सचिवाग्रिमः ॥३२७॥  
 वज्रपञ्चमुक्तिश्च कैलासं गजवैरिणम् । उक्तविष्णुमुखम् सेनापतिमपश्यत ॥३२८॥  
 आलुलोके बुधो<sup>५</sup> अनन्तवीर्यः श्रीमान् जयारमजः । यान्तं वैलोक्यभामास्य सतार्दे तत्त्वकेष्टरम् ॥३२९॥  
 यशस्वतीसुनन्ददाभ्यां सार्वं शकमनःग्रिया । शोचम्भतीहिचरमन्नाक्षीति सुभद्रां<sup>६</sup> एव व्यगोचरा ॥३३०॥  
 वाराणसीपतिश्चित्त्राङ्कदोऽप्यालोकताक्षुलः । खमुख्यतन्तं भास्वन्तं प्रकाश्य घरणीतलम् ॥३३१॥  
 १ एवमालोकितस्वप्ना राजराजपुरस्सराः । युरोधसं फलं तेषामपृष्ठज्ञायमोदये<sup>७</sup> ॥३३२॥  
 कर्मीणि हृष्टा निष्ठुले अुर्वनेभिर्भुमिः समम् । पुरोः सर्वेऽपि शंखन्ति स्वप्नाः स्वर्गमिग्नामिलाम्<sup>८</sup> ॥३३३॥  
 इति स्वप्नफलं तेषां<sup>९</sup> भाष्यमाणे पुरोहिते । तदैवानन्दनामैत्य सर्वुः<sup>१०</sup> स्थितिमवेदयत् ॥३३४॥  
 अबनी भगवता दिग्ये संहरते मुकुलीभवत् । कराम्बुजा समा जाता एव्णीक<sup>११</sup> सरसीत्यसौ ॥३३५॥

द्वारा खूब ही सीचा ॥३२१॥ इस प्रकार सज्जनोंको मोक्षरूपी उत्तम फलकी प्राप्ति करानेके लिए भगवान् ने अपने गणधरोंके साथ-साथ एक हजार वर्ष और चौदह दिन कम एक लाख पूर्व विहार किया । और जब आयुके चौदह दिन बाकी रह गये तब योगोंका विरोध कर पौष मासकी पौर्णमासीके दिन श्रीशिखर और सिद्धशिखरके बीचमें कैलास पर्वतपर जा विराजमान हुए ॥३२२ - ३२३॥ उसी दिन महाराज भरतने स्वप्नमें देखा कि महामेश पर्वत अपनी लम्बाई-से सिद्ध शेष तक पहुँच गया है ॥३२४॥ उसी दिन युवराज अर्ककीर्तिने भी स्वप्नमें देखा कि एक महीषधिका वृक्ष मनुष्योंके जन्मरूपी रोगको नष्ट कर फिर स्वर्गको जा रहा है ॥३२५॥ उसी दिन गृहपतिने देखा कि एक कल्पवृक्ष निरन्तर लोगोंके लिए उनकी इच्छानुसार अभीष्ट फल देकर अब स्वर्ग जानेके लिए तैयार हुआ है ॥३२६॥ प्रधानमन्त्रीने देखा कि एक रत्न-द्वीप, प्रहृण करनेकी इच्छा करनेवाले लोगोंको अनेक रत्नोंका समूह देकर अब आकाशमें आनेके लिए उच्चत हुआ है ॥३२७॥ सेनापतिने देखा कि एक सिंह वज्रके पिंजड़ोंको तोड़कर कैलास पर्वतको उल्लंघन करनेके लिए तैयार हुआ है ॥३२८॥ जपकुमारके विद्वान् पुत्र श्रीमान् अनन्त-वीर्यने देखा कि चन्द्रमा तीनों लोकोंको प्रकाशित कर ताराओं सहित जा रहा है ॥३२९॥ सोती हुई सुभद्राने देखा कि यशस्वती और सुनन्दाके साथ बैठी हुई हन्द्राणी बहुत देर तक शोक कर रही है ॥३३०॥ बनारसके राजा वित्तांगदने घबड़ाहटके साथ यह स्वप्न देखा कि सूर्य पूर्णिमातलको प्रकाशित कर आकाशकी ओर उड़ा जा रहा है ॥३३१॥ इस प्रकार भरतको आदि लेकर सब लोगोंने स्वप्न देखे और सूर्योदय होते ही सबने पुरोहितसे उनका फल पूछा ॥३३२॥ पुरोहितने कहा कि ये सभी स्वप्न कर्मोंको बिलकुल नष्ट कर भगवान् घृषभदेवका अनेक मुनियोंके साथ-साथ मोक्ष जाना सूचित कर रहे हैं ॥३३३॥ इस प्रकार पुरोहित उन सबके लिए स्वप्नोंका फल कह ही रहा था कि इतनेमें ही आनन्द तामका एक मनुष्य आकर भगवान्का सब हाल कहने लगा ॥३३४॥ उसने कहा कि भगवान् ने अपनी दिव्यधर्वनिका

१ पुष्यमासे । २ पूर्वसिद्धक्षेत्रपर्यन्तम् । ३ अर्ककीर्तिः । ४ स्वर्गं गतम् । ५ गृहपतिरत्नम् । ६ ददर्श । ७ गृहीतु-मिच्छुभ्यः । ८ वृद्धिमान् । ९ तारकासहितम् । १० स्त्रीरत्नम् । ११ एवं विलोकित-स्त्री । १२ सूर्योदये । १३ मोक्षगमित्वम् । १४ भरतादीताम् । १५ पुरोः । १६ सूर्ये । इत्यसाक्षेदयदिति संबन्धः ।

तदाकर्णेनमात्रेण सखरः सर्वं संगतः । चक्रवर्तीं तमभ्येत्य श्रिः परीक्ष्य कृतस्तुतिः ॥३३६॥  
 महामहमहापूजां भगवान् निरवर्तयमस्त्वयम् । चतुर्दश दिनान्येवं भगवन्तमसेवत ॥३३७॥  
 माघकृष्णचतुर्दशीं भगवान् भास्करोदये । मुहूर्तेऽभिजिति प्राप्तपत्पञ्चो मुनिभिः समर्द् ॥३३८॥  
 प्राप्तिद्वयुलक्ष्मूलोदये शुक्लपूज्यानेन रुद्रवान् । योगश्रितयमस्त्वयेन ध्यानेनावातिकर्मणाम् ॥३३९॥  
 पञ्चदशस्त्रस्वरोद्धारणप्रमाणेन संक्षयम् । कालेन विद्वध्यानतगुणस्थानमधिष्ठितः ॥३४०॥  
 शरीरश्रितयापाये प्राप्त्य सिद्धत्वपर्यायम् । निजाद्गुणसंपूर्णः क्षणासतनुशास्त्रकः ॥३४१॥  
 नित्यो निरञ्जनः किञ्चिद्गूर्णे वेहादमूर्तिभास्क । हित्यतः स्वसुखसाकृतः पश्यन्विश्वमनारतम् ॥३४२॥  
 तदागत्य सुराः खर्वे प्रान्तपूजाश्रिकोर्ध्वायाः । पवित्रं परमं मोक्षसाधनं शुचिनिर्मलम् ॥३४३॥  
 शरीरं भर्तुरस्थेति परादृद्यशिविकापिंतम् । अग्निन्द्रकरम्भामासिप्रोसुङ्गमुक्तोद्धुवा ॥३४४॥  
 चम्भनागुरुकर्पूरपारी काष्मीरजादिभिः ॥ शूलश्रीरादिभिश्वासद्विदिना हुतभोजिना ॥३४५॥  
 जगद्गृहस्य सौगन्ध्ये संपाद्यासूलपूर्वकम् । तदाकारोपमदेन पर्यायान्तरमानयन् ॥३४६॥  
 अन्यर्थिताभिकुण्डस्य गन्धपुष्पादिभिस्तथा । तस्य दक्षिणभागोऽभूद् गणभूतसंस्कियानलः ॥३४७॥  
 तस्यापरस्मिन् दिग्भागे शेषकेवलिकायगः । एवं विद्विषयं भूमा अवस्थाप्यामरेक्षराः ॥३४८॥

संकोच कर लिया है इसलिए सम्पूर्ण सभा हाथ जोड़कर बैठी हुई है और ऐसा जान पड़ता है मानो सूर्यस्तके समय निमीलित कमलोंसे युक्त सरसी ही हो ॥३३५॥ यह सुनते ही भरत चक्रवर्ती बहुत ही श्रीम्, सब लोगोंके साथ-साथ कैलाल्यपर्वतपात्र द्वारा, वहीं जाकर उसने भगवान् वृषभदेवको तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, सुन्ति कीं और भक्तिपूर्वक अपने हाथसे महामह नामकी पूजा करता हुआ वह चौदह दिन तक इसी प्रकार भगवान्की सेवा करता रहा ॥३३६-३३७॥ माघ कृष्ण चतुर्दशीके दिन सूर्योदयके शुभ मुहूर्त और अभिजित् नक्षत्रमें भगवान् वृषभदेव पूर्वदिशाको और मुँहकर अनेक मुनियोंके साथ-साथ पर्यंकासनसे विराजमान हुए, उन्होंने तीसरे-सूक्ष्मकियाप्रतिपाति नामके शुक्ल ध्यानसे तीनों योगीोंका निरोध किया और फिर अन्तिम गुणस्थानमें ठहरकर पाँच लघु अक्षरोंके उच्चारण प्रमाण कालमें चौथे व्युपरत क्रियान्विति नामके शुक्लध्यानसे अघातिया कर्मोंका नाश किया । फिर ओदारिक, तैजस और कामेण इन तीनों शरीरोंके नाश होनेसे सिद्धत्वपर्याय प्राप्त कर वे सम्यक्त्व आदि निजके आठ गुणोंसे युक्त हो क्षण भरमें ही तनुवासवलयमें जा पहुँचे तथा वहांपर नित्य, निरंजन, अपने शरीरसे कुछ कम, अमूर्त, आत्मसुख तल्लीनमें और निरन्तर संसारको देखते हुए विराजमान हुए ॥३३८-३४२॥ उसी समय मोक्ष-कल्याणकी पूजा करनेकी इच्छासे सब देव लोग आये उन्होंने 'यह भगवान्का शरीर पवित्र, उत्कृष्ट, मोक्षका साधन, स्वच्छ और निर्मल है' यह विचारकर उसे बहुमूल्य पालकीमें विराजमान किया । तदनन्तर जो अग्निकुमार देवोंके इन्द्रके रत्नोंकी कान्तिसे देवीप्रमाण उत्तम मुकुटसे उत्पत्त हुई है तथा चंदन, अगुरु, कपूर, केशर आदि सुगन्धित पदार्थों और वीं दूध आदिसे बढ़ायी गयी है ऐसी अग्निसे जगत्की अभूतपूर्व सुगन्धित प्रकाट कर उसका बत्तमान आकार नष्ट कर दिया और इस प्रकार उसे दूसरी पर्याय प्राप्त करा दी ॥३४३-३४६॥ गन्ध, पुष्प आदिसे जिसकी पूजा की गयी है ऐसे उस अग्निकुण्डके दाहिनी और गणधरोंके शरीरका संस्कार करनेवाली अग्नि स्थापित की और खायों और तीर्थंकर तथा गणधरोंसे अस्तिरिक्त अन्य सामान्य केवलियोंके शरीरका संस्कार

१ बिनम् । २ लोकालोकम् । ३ निर्विणपूजां कर्तुमिच्छया । ४ याते स्थापितम् । ५ मुकुटोद्भूतेन ।  
 ६ कर्पूरमणि । ७ कुंकुमादिभिः । ८ पूर्वस्मिन्नजातम् । ९ शरीराकारोपमर्दनेन । १० भस्मीभावं अकृतिपथः ।

ततो भस्म समादाय पञ्चकलपाणभागिनः । वयं चैवं भवामेति स्वल्लादे मुजाहृषे ॥३४१॥  
 एष्टे हृष्ट्यदेहे रूपेष्ट्वा इतिलः । ततेविश्रतम् मत्वा धर्मरागरसाहिताः ॥३४०॥  
 तोषाद् रूपादपासामासुः संभूयानन्दनाटकम् । सप्तमोपासकाणास्ते सर्वेऽपि प्रग्राहारिणः ॥३४१॥  
 गाहेपत्याभिघ्वं पूर्वं परमाहवनीयकम् । दक्षिणाग्निं ततो न्यस्थं संध्यासु लिप्तु स्वयम् ॥३४२॥  
 तच्छिक्षिअथसानिध्ये चक्रमातपदारणम् । जिनेन्द्रप्रतिमाश्वीर्वा॑ स्थाप्य मन्त्रायुरस्तरम् ॥३४३॥  
 ताजिकार्ण समभवद्यं गृहस्थैरिहितादराः । मवतातिथयो॑ पूर्यमित्याचल्लुप्यासकान् ॥३४४॥  
 चेदेनेष्टविषयोगोत्थः प्रदीप्तः शोकपावकः । तत्रा प्रकुद्धमप्यस्य॑ चेतोऽधार्कादर्पीशितुः ॥३४५॥  
 गणी वृषभसेनाध्यहतरछोकापनिनीषयर्मा॑ । प्राकस्त॑ वक्तुं सर्वेषां स्वेषां व्यक्तां भवावलीम् ॥३४६॥  
 जयवर्मा भवे पूर्वे द्वितीयेऽभूत्सहायलः । तृतीये लिताङ्गालयो वक्त्रजङ्घशतुर्थके ॥३४७॥  
 पञ्चमे भौगभूजोऽभूत् पष्ठेऽप्य श्रीधरोऽभरः । सप्तमे सुविधिः क्षमासुवद्यमेऽच्युतनायकः ॥३४८॥  
 नवमे वज्रन् मीदो दशमेऽनुत्तरान्त्यजः॑ । ततोऽवतीर्यं सर्वेऽन्द्रवन्दितो वृषमोऽभवत् ॥३४९॥  
 धनश्रीरादिमे जग्मन्त्यतो निर्णीयिका ततः । स्वयंप्रमा ततस्तस्माच्छ्रीमत्यार्या ततोऽभवत् ॥३५०॥  
 स्वयंप्रभः सुरस्तस्मादस्मादपि च केशवः । ततः प्रतीन्द्रस्तस्माच्च धनदत्तोऽहमिष्ठताम् ॥३५१॥  
 गस्तस्तस्ततः शेयान् दानतीर्थस्य नयकः । आश्वर्यपञ्चकस्यापि प्रधमोऽभन् प्रवर्तकः ॥३५२॥

करनेवाली अग्नि स्थापित की, इस प्रकार इन्द्रोने पृथिवीपर तीन प्रकारकी अग्नि स्थापित की । तदनन्तर उन्हीं इन्द्रोने पंचकल्याणको प्राप्त होनेवाले श्री वृषभदेवके शरीरकी भस्म उठायी और 'हम लोग भी ऐसे ही हों' यही सोचकर बड़ी भवित्से अपने ललाटपर दोनों भुजाओंमें, गलेमें और बक्षस्थलमें लगायी । वे सब उस भस्मको अत्यन्त पवित्र मानकर धमनिरागके रससे तन्मय हो रहे थे ॥३४७-३५०॥ सबने मिलकर बड़े सन्तोषसे आनन्द नामका नाटक किया और फिर श्रावकोंको उपदेश दिया कि 'हे सप्तमादि प्रतिमाओंको धारण करनेवाले सभी ब्रह्मचारियो, तुम लोग तीनों सन्ध्याओंमें स्वयं मार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि इन तीन अग्नियोंकी स्थापना करो, और उनके समीप ही धर्मचक्र, छत्र तथा जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाओंकी स्थापना कर तीनों काल मन्त्रपूर्वक उनकी पूजा करो । इस प्रकार गृहस्थोंके द्वारा आदर-सत्कार पाते हुए अतिथि बनो' ॥३५१-३५४॥

इधर उस समय इष्टके वियोगसे उत्पन्न हुई और स्नेहसे प्रज्वलित हुई शोकरूपी अग्नि भरतके प्रबुद्ध चित्तको भी जला रही थी ॥३५५॥ जब भरतका यह हाल देखा तब वृषभसेन गणधर भरतका शोक दूर करनेकी इच्छासे अपने सब लोगोंके पूर्वभव स्पष्ट रूपसे कहने लगे ॥३५६॥ उन्होंने कहा कि वृषभदेवका जीव पहले भवमें जयवर्मी था, दूसरे भवमें महाबल हुआ, तीसरे भवमें ललितांगदेव और चौथे भवमें राजा वज्रजंघ हुआ। पाँचवें भवमें भोग-भूमिका आर्य हुआ। छठवें भवमें श्रीधरदेव हुआ, सातवें भवमें सुविधि राजा हुआ। आठवें भवमें अच्युतेन्द्र हुआ, नीवें भवमें राजा वज्रनाभि हुआ, दशवें भवमें सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ और वहांसे आकर सब इन्द्रोंके द्वारा बन्दनीय वृषभदेव हुआ है ॥३५७-३५९॥ श्रेयान्-का जीव पहले भवमें बनश्ची था, दूसरे भवमें निणमिका, तीसरे भवमें स्वर्यप्रभा देवी, चौथे भवमें श्रीमती, पाँचवें भवमें भोगभूमिकी आर्या, छठवें भवमें स्वर्यप्रभदेव, सातवें भवमें केशद, आठवें भवमें अच्युतस्वर्गका प्रतीन्द्र, नीवें भवमें धनदस्त, दशवें भवमें अहमिन्द्र हुआ और वहांसे

४ भस्मना । २ भस्मं ३ संस्थाप्य । ४ चावस्थाप्य ल०, प०, इ०, स० । ५ पात्रतमाभीक्षकाः । ६ चक्रिणः ।  
७ दहति स्म । ८ भरतस्य शोकप्रभेतुमिच्छता । ९ प्रारभते स्म । १० सवर्धितिदिजः ।

अतिगृहः पुरा पश्चात्तारकोऽनु चमुरकः । दिवाकरप्रभो देवस्तथा मतिवराह्यः ॥३६३॥  
 सतोऽहमिन्द्रस्तस्माच्च सुबाहुरहमिन्द्रसाम् । ग्राप्य त्वं भरतो जातः षट्खण्डाण्डपालकः ॥३६४॥  
 आदः सेनापतिः पश्चादार्थस्तस्माप्रभंकरः । ततोऽकम्पनभूपालः कल्पासीतस्तस्ततः ॥३६५॥  
 महाशाहुस्ततश्चाभूदहमिन्द्रस्तस्तच्चुतः । एव बाहुबली जातो जातापूर्वमहोदयः ॥३६६॥  
 मन्त्री प्राग् भोगभूजोऽनु सुरोऽनु कनकप्रभः । आनन्दोऽन्वहमिन्द्रोऽनु ततः पीठाह्यस्ततः ॥३६७॥  
 अहमिन्द्रोऽग्निमोऽभूवमहमय गणाधिपः । पुरोहितस्ततश्चायो वभूवाहमत्प्रभञ्जनः ॥३६८॥  
 घनमिन्नस्तस्तस्तस्मादहमिन्द्रस्तस्तच्चुतः । महापाठीऽहमिन्द्रोऽस्मादनन्तविजयोऽभयतः ॥३६९॥  
 उद्गसेनश्चमूरोऽतो भोगभूमिसमुद्भवः । उत्तरित्वाऽऽदस्तस्माद् वरदसः सुरो जयः ॥३७०॥  
 ततो यत्वाऽहमिन्द्रोऽभूतस्माच्चागाम्य भूतकम् । महासेनोऽभवत् कर्ममहासेनाजयोजितः ॥३७१॥  
 हरिवाहननामाचो चराहार्थस्ततोऽभवत् । मणिकुण्डल्यस्तस्तस्माद् वरसेनः सुरीतमः ॥३७२॥  
 तसोऽस्माद् विजयस्तस्मादहमिन्द्रो दिवश्चुतः । अजनिष्ठ विशिष्टेषुः श्रीषेणः सेवितः त्रिया ॥३७३॥  
 नागदत्तस्ततो वानरार्थोऽस्माच्च मनोहरः । देवदित्यश्रांगदस्तस्मादभूत् सामानिकः सुरः ॥३७४॥  
 ततश्चुतो जयन्तोऽभूदहमिन्द्रस्तस्ततः । महीतलं समाप्ताध गुणसेनोऽभवत् गणी ॥३७५॥

आकर दानतीर्थका नायक तथा पंचाश्चर्यकी सबसे पहले प्रवृत्ति करानेवाला राजा श्रेयान् हुआ है ॥३६०-३६२॥ तेरा जीव पहले भवमें अतिगृह नामका राजा था, दूसरे भवमें नारकी हुआ, तीसरे भवमें शार्दूल हुआ, चौथे भवमें दिवाकरप्रभदेव हुआ, पाँचवें भवमें मतिवर हुआ, छठवें भवमें अहमिन्द्र हुआ, सातवें भवमें सुबाहु हुआ, आठवें भवमें अहमिन्द्र हुआ और नीवें भवमें छह खण्ड पृथिवीका अखण्ड पालन करनेवाला भरत हुआ है ॥३६३-३६४॥ बाहुबलीका जीव पहले सेनापति था, फिर भोगभूमिमें आर्य हुआ । उसके बाद प्रभंकर देव हुआ, तदनन्तर अकंपन हुआ, उसके पश्चात् अहमिन्द्र हुआ, फिर महाबाहु हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ और अब उसके बाद अपूर्व महा उदयको धारण करनेवाला बाहुबली हुआ है ॥३६५-३६६॥ मैं पहले भवमें राजा प्रतिवर्धनका मंत्री था, उसके बाद भोग-भूमिका आर्य हुआ, फिर कमकप्रभ देव हुआ, उसके पश्चात् आनन्द हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ, वहसे आकर पीठ हुआ, फिर सर्वधिसिद्धिका अहमिन्द्र हुआ और अब भगवान् वृषभदेवका गणधर हुआ है । अनन्तविजयका जीव सबसे पहले पुरोहित था, फिर भोगभूमिका आर्य हुआ, उसके बाद प्रभंजन नामका देव हुआ, फिर घनमिन्न हुआ, उसके पश्चात् अहमिन्द्र हुआ, उसके अनन्तर महापीठ हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ और अब अनन्तविजय गणधर हुआ है ॥३६७-३६८॥ महासेन पहले भवमें उग्रसेन था, दूसरे भवमें शार्दूल हुआ, तीसरे भवमें भोगभूमिका आर्य हुआ, चौथे भवमें चित्राङ्गद देव हुआ, पाँचवें भवमें वरदत्त राजा हुआ, छठे भवमें देव हुआ, सातवें भवमें जय हुआ, वहसे चलकर आठवें भवमें अहमिन्द्र हुआ और नीवें भवमें वहसे पृथिवीपर आकर कर्मरूपो महासेनाको जीतनेमें अत्यन्त बलवान् महासेन हुआ है ॥३७०-३७१॥ श्रीषेणका जीव पहले भवमें हरिवाहन था, दूसरे भवमें वराह हुआ, तीसरे भवमें भोगभूमिका आर्य हुआ, चौथे भवमें मणिकुण्डली देव हुआ, पाँचवें भवमें वरसेन नामका राजा हुआ, छठवें भवमें उत्तम देव हुआ, सातवें भवमें विजय हुआ, आठवें भवमें अहमिन्द्र हुआ और नीवें भवमें अतिशय पूज्य तथा लक्ष्मीसे सेवित श्रीषेण हुआ है ॥३७२-३७३॥ गुणसेनका जीव पहले नागदत्त था, फिर बानर हुआ, उसके बाद भोगभूमिका आर्य हुआ, फिर मनोहर नामका देव हुआ, उसके पश्चात् चित्राङ्गद नामका राजा हुआ, फिर सामानिक देव हुआ, वहसे च्युत होकर

लोलुपो नक्षत्रायौऽस्मारेतस्मारसमनोथः । तलोऽपि शःन्तमद्वस्तुतः सामानिकामरः ॥३७६॥  
राजाऽपराजितस्मादहमिन्द्रस्त्रोऽजनि । सतो ममानुजो आतो जयसेनोऽयमूर्जितः ॥३७७॥

### शार्दूलविक्रीडितम्

हृष्टस्मिन्मवसंकटे भवन्तुः स्वेष्टरनिष्टैस्तथा

संयोगः सहसा विशेषाचरमः सर्वेष्य नन्वीशाम् ।  
त्वं जानक्षिपि किं विषणगहृदयो विश्लिष्टकर्माणिको

निर्वाणं भगवानवापदतुलं तोषे विषादः कुरु ॥३७८॥

### मालिनी

बद्रमधि चरमाङ्गः संगमाच्छुद्धुदेः

सकलमलविलोपपादितात्मस्वरूपा ।

मिरुपमसुखसारं चक्रवर्तिस्तदीयं<sup>१</sup>

पदमधित्सरेण प्राप्नुमोऽनाप्यमन्यैः ॥३७९॥

हरिणी ।

भवतु सुहदां मृत्यौ शोकः शुभाशुभकर्ममिः

भवति हि सं चेतेषामस्मिन्मुनर्जननावहः ।

पितिहृष्टकेप्राप्तेऽहिंश्च एवं समुपागते

कथमवस्थाहो धीमान् कुर्याच्छुचं यदि नो रिषुः ॥३८०॥

यसन्ततिलका<sup>२</sup> ।

अष्टापि दुष्टरिकोऽस्य समूलतूल<sup>३</sup>

जष्टा गुणैरुद्धमिरष्टमिरष्ट जुष्टः<sup>४</sup> ।

किं नद्यमत्र निधिनाथ जहाहि भोहं

<sup>५</sup>सम्बेदि शोकविजयाय खिर्य विशुद्धाम् ॥३८१॥

जयन्त हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ और अब वहांसे पृथिवीपर आकर गुणसेन नामका गणधर हुआ है ॥३७४—३७५॥ जयसेनका जीव पहले लोलुप नामका हुलवाई था, फिर नेवला हुआ, उसके बाद भोगभूमिका आर्य हुआ, फिर मनोरथ नामका देव हुआ, उसके पश्चात् राजा शान्तमदन हुआ, फिर सामानिक देव हुआ, तदनन्तर राजा अपराजित हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ और अब मेरा छोटा भाई अतिशय बलवान् जयसेन हुआ है ॥३७६—३७७॥ श्री वृषभसेन गणधर चक्रवर्ती भरतसे कह रहे हैं कि इस संसाररूपो संकटमें इसी प्रकार सब प्राणियोंको इष्ट-अनिष्ट वस्तुओंका संगम होता है और अन्तमें अकस्मात् ही उसका नाश हो जाता है, तू मह सब जानता हुआ भी इतना खिल्लहृदय क्यों हो रहा है? भगवान् वृषभदेव तो आठों कर्मोंको नष्ट कर अनुपम मोक्षस्थानको प्राप्त हुए हैं फिर भला ऐसे सन्तोषके स्थानमें विषाद क्यों करता है? ॥३७८॥ हे चक्रवर्तिन्, हम सब लोग भी चरमशरीरी हैं, शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले भगवान्के समागमसे सम्पूर्ण कर्ममलको नष्ट कर आत्मस्वरूपको प्राप्त हुए हैं और अनुपम मुखसे श्रेष्ठ तथा अन्य मिथ्यादृशियोंके दुर्लभ उन्हीं भगवान्के पद्मको हम लोग भी बहुत शीघ्र प्राप्त करेंगे ॥३७९॥ इष्ट मित्रोंकी मृत्यु होनेपर शोक हो सकता है क्योंकि उनकी वह मृत्यु शुभ अशुभ कर्मोंसे होती है और फिर भी इस संसारमें उनका जन्म करानेवाली होती है, परन्तु जिसने संसारका नाश कर दिया है और निरन्तर जिसकी प्रार्थना की जाती है ऐसा सिद्ध पद यदि स्वयं प्राप्त हो जावे तो इस बुद्धिमात् भनुष्ठको यदि वह शत्रु नहीं है तो शोक कैसे करना चाहिए? भावार्थ-हर्षके स्थानमें शत्रुको ही शोक होता है, मित्रको नहीं होता इसलिए तुम सबको आनन्द मानना चाहिए न कि शोक करना चाहिए ॥३८०॥ हे निधिपते, भगवान् वृषभदेवके आठों ही दुष्ट शत्रु जड़ और शास्त्रासहित बिलकुल

१ वृषभसेनभरतसादयः । २ पुरोः सम्बन्धिः । ३ अप्राप्णीयम् । ४ मृत्युः । ५ संसारे । ६ मृत्यी । ७ कारण-सहितम् । ८ सेवितः । ९ सम्यग् भारव ।

देहच्युती यदि गुरोर्गुरु<sup>१</sup> शोचसि त्वं  
तं<sup>२</sup> भस्मसाकृतिमवाच्य<sup>३</sup> विवृद्धरागाः ।  
प्रागजन्मनोऽपि<sup>४</sup> परिकर्मकृतोऽस्य<sup>५</sup> कस्मा-  
दानन्दनुत्तमधिकं विद्युषुर्णाथाः ॥३८२॥

शादूलविक्रीडितम्

नेत्रे विश्वदां शृणोमि न वचो दिव्यं लद्धुगिरुये  
नम्रस्तस्त्रभावाविभासिमुकुट<sup>६</sup> कर्तुं समे नामुना ।  
तस्मान् ज्ञेहवशोऽस्म्यहं वहुतं शोकीसि वेदस्तिवदं  
किन्तु आनितरियं ल्यसीतविषयप्राप्यै मवप्रार्थना ॥३८३॥

बसन्ततिलका

श्रिज्ञानधूर<sup>७</sup> त्रिभुषनैकगुरुगुहस्ते  
स्नेहेन मोहविहितेन<sup>८</sup> घिनाशयेः किम् ।  
स्वीदासतां<sup>९</sup> शतमतस्य न लज्जासे किं  
तस्मात्त्वं<sup>१०</sup> प्रथमसुक्षिगतिं न वेस्ति<sup>११</sup> ॥३८४॥

शादूलविक्रीडितम्

इष्टं किं किममिष्टमय वितर्थं संकल्प्य जन्मुर्जदः  
किंचिद्दृष्ट्यपि वष्टि<sup>१२</sup> किंचिद्वयोः कुर्यादपि ल्यस्यम् ।  
तेमैनोऽनुगतिसततो<sup>१३</sup> भवत्ते भव्योऽस्यभव्योपमो  
धामयस्ये कुमारं द्विलिङ्घनो<sup>१४</sup> वाऽतक्षमीहुःस्तिः ॥३८५॥

ही नष्ट हो गये हैं और अब वे आठ बड़े-बड़े गुणोंसे सेवित हो रहे हैं, भला, इसमें क्या हानि हो गयी ? इसलिए अब तू मोह छोड़ और शोकको जीतनेके लिए विशुद्ध बुद्धिको धारण कर ॥३८१॥ पूज्य पिताजीका शरीर छूट जानेसे यदि तू इतना अधिक शोक करता है तो बतला, जन्मसे पहले ही उनकी सेवा करनेवाले और बढ़े हुए अनुरागको धारण करनेवाले ये देव लोग भगवान्के शरीरको भस्म कर इतना अधिक आनन्द नृत्य क्यों कर रहे हैं ? भावार्थ – ये देव लोग भी भगवान्से अधिक प्रेम रखते थे जन्मसे पहले ही उनकी सेवामें तत्पर रहते थे फिर ये उनके शरीरको जलाकर क्यों आनन्द भना रहे हैं इससे मालूम होता है कि भगवान्का शरीर छूट जाना दुःखका कारण नहीं है तू व्यर्थ ही क्यों शोक कर रहा है ? ॥३८२॥ कदाचित् तू यह कहेगा कि ‘अब मैं उनके दर्शन नहीं कर रहा हूँ, उनके दिव्य वचन नहीं सुन रहा हूँ, और उनके दोनों चरणोंमें नम्र होकर उनके नखोंकी कानितसे अपने मुकुटको देवीप्यमान नहीं कर पाता हूँ, इसलिए ही स्नेहके वशसे आज मुझे वहुत शोक हो रहा है तो तेरा यह कहना ठीक है परन्तु बीती हुई वस्तुके लिए प्रार्थना करना तेरी भूल ही है ॥३८३॥ हे भरत, तेरे पिता तो तीनों लोकोंके अद्वितीय गुरु थे और तू भी तीन ज्ञानोंका धारक है फिर इस मोहजात स्नेह-से अपनी उत्तमता क्यों नष्ट कर रहा है ? क्या तुझे ऐसा करते हुए इन्द्रसे कुज्जा नहीं आती ? अथवा क्या तू यह नहीं समझता है कि मैं इन्द्रसे पहले ही मोक्षको प्राप्त हो जाऊँगा ? ॥३८४॥ इस संसारमें क्या इष्ट है ? क्या अनिष्ट है ? फिर भी यह मूर्ख प्राणी व्यर्थ ही संकल्प कर किसीसे द्वेष करता है, किसीको चाहता है और कभी दोनोंको उलटा समझ लेता है, इसलिए ही इसके पापकी परम्परा चलती रहती है और इसलिए ही यह भव्य होकर भी १ बहुलं यथा भवति तथा । २ चैहम् । ३ भस्माधीनम् । ४ नीत्वा । ५ उत्पत्तेरादावपि । ६ परिचयकिरा ।  
७ वृषभस्य । ८ तस्य नम्रकाल्या भासत हैति । ९ भो विज्ञानधारिन् भग्नत । १० अज्ञानकृतेन । ११ भवदु-  
दासत्वम् । १२ शतमखात् । १३ न जानासि किम् । १४ वाङ्छति । १५ कारणेन । १६ पापानुगतिः ।  
१७ निधन इष्ट ।

भव्यस्यापि मतोऽभवत् भवतः<sup>१</sup> कालादिलदधेविना  
 कालोऽनादिरचिन्त्यदुःखनिचितो धिक् धिक् स्थिति संस्तुते<sup>२</sup> ।  
 इत्येतदित्युपाऽत्र<sup>३</sup> शोद्यमथवा नीत्य यदेहिनां  
 भव्यत्वं बहुधा महीश सहजा वस्तुस्थितिस्तादशी ॥३८६॥

## उपजाति

गतानि संबन्धशतानि जन्मोरन्वतकालं परिवर्तनेन  
<sup>४</sup>नावेहि किं त्वं हि विबुद्धविश्वो शूष्टैष मुद्दोः<sup>५</sup> किमिहेतरो वा ॥३८७॥

## अनुष्टुप्

कर्ममिः कृतमस्यापि न स्थास्तु विजगत्यते<sup>६</sup> । शारीरादि तत्स्थायात्यं मन्त्रसे तस्मनीषिणः ॥३८८॥  
 प्रागश्चिगोचरः संप्रत्येष चेतसि वर्तते<sup>७</sup> । भगवांस्तत्र कः शोकः पद्मैनं सत्र सर्वदा ॥३८९॥

## मालिनी

इति मनसि यथार्थं चिन्तयन् शोकवह्नि  
 शमय विमलबोधाद्मोमिरित्यावभाषे ।  
 गणभृदथ स चक्री दावहार्षो महीषो  
 नवजालदमलैर्वा लह्वोमिः ब्रह्मान्तः ॥३९०॥

## वसन्ततिलका

चिन्तां व्यपास्य गुरुशीङ्करां गणेश-  
 मानस्य नम्रमुकुटे निकटात्मवोषिः ।  
 निन्दजितान्तनितरां निजमोगतुष्णां  
 मोक्षोक्षणकः<sup>८</sup> स्वनगरं व्यविशद् विभूत्या ॥३९१॥

अभ्यकी तरह दुःखी, निधनं, कुमारमें प्रवृत्ति करनेवाला और रोगोंसे भयभीत होता हुआ इस संसाररूपी वनमें भ्रमण करता रहता है ॥३८५॥ काल आदि लब्धियोके बिना पूज्य भव्य जीवको भी संसारमें रहना पड़ता है, यह काल अनादि है तथा अचिन्त्य दुःखोंसे भरा हुआ है इसलिए संसारकी इस स्थितिको बार-बार धिक्कार हो, यही सब समझ विद्वान् पुरुषोंको इस संसारमें शोक नहीं करना चाहिए यथवा जीवोंका यह भव्यत्वपना भी अनेक प्रकारका होता है । हे राजत, वस्तुका सहज स्वभाव ही ऐसा है ॥३८६॥ हे भरत, तू तो संसार-का स्वरूप जाननेवाला है, क्या तू यह नहीं जानता कि अनन्त कालसे परिवर्तन करते रहनेके कारण इस जीवके सैकड़ों सम्बन्ध हो चुके हैं? फिर क्यों अज्ञानीकी तरह व्यर्थ ही मोक्षित होता है ॥३८७॥ तीनों लोकोंके अधिपति भगवान् वृषभदेवका शरीर भी तो कर्मोंके द्वारा किया हुआ है इसलिए वह भी स्थायी नहीं है और इसलिए ही विद्वान् लोग उसे हेय समझते हैं ॥३८८॥ जो भगवान् पहले अलिंगे दिखायी देते थे वे अब हृदयमें विद्यमान हैं इसलिए इसमें शोक करनेकी क्या बात है? तू उन्हें अपने चित्तमें सदा देखता रह ॥३८९॥ इस प्रकार मनमें वस्तुके यथार्थ स्वरूपका चिन्तयन करता हुआ तू निर्मल ज्ञानरूपो जलसे शोक-रूपी अग्नि शान्त कर, ऐसा गणधर वृषभसेनने कहा तब चक्रवर्तीं भी जिस प्रकार दोवानलसे जला हुआ पर्वत नवीन बादलोंके जलसे शान्त हो जाता है उसी प्रकार उनके चक्रोंसे शान्त हो गया ॥३९०॥ जिसे आत्मज्ञान शीघ्र होनेवाला है और जिसका मुकुट नम्रभूत हो रहा है ऐसे भरतने पिताके शोकसे उत्पत्त हुई चिन्ता छोड़कर गणधरदेवको नमस्कार किया और अत्यन्त बढ़ी हुई अपनी भोगविषयक तृष्णाकी निन्दा करते हुए तथा मोक्षके लिए शीघ्रता करते हुए उसने बड़े बैमबके साथ अपने नगरमें प्रवेश किया ॥३९१॥

<sup>१</sup> संसारानुगतः । <sup>२</sup> संसारे । <sup>३</sup> शोकविषयम् । <sup>४</sup> अन्य अज्ञ इवेत्यर्थः । <sup>५</sup> चेतसि । <sup>६</sup> मुक्तयुद्धोगे दक्षः ।  
 'दक्षे तु चतुरपेणलघुटवः । सूत्यान् उष्णद्वच' इत्यभिधानात् शीघ्रकारी वर्गः । मोक्षोत्सुकः ल० ।

द्रुतविलम्बितम्

अथ कदाचिदसौ च दनाम्भुजं  
समभिवीक्ष्य समुज्ज्वलदर्पणे ।  
पलितमैक्षत द्रुतमिवागते  
परमसोऽवयपदात् पुरुषं निषेः ॥३९२॥

वसन्ततिळका

आलोक्य तं गलितमोहरमः स्वराज्यं  
मत्वा जरन्तृणमिवोद्गतवीचिल्लान् ।  
आदामुमारमहितमामजमकर्क्कते  
लक्ष्म्या स्वया स्वयमयोजयदूजितच्छः ॥३९३॥

मालिनी

विदितसकृतस्वः सोऽपर्यग्नस्य मार्गं  
जिग्मिपुरपसर्वदुर्गमि<sup>१</sup> निष्प्रवासम् ।  
यमसमितिसमयं संयमं शम्बलं<sup>२</sup> वा  
अदिति<sup>३</sup> विदितसमधो<sup>४</sup> किं परं प्रार्थयस्ते ॥३९४॥

मुजङ्गप्रयातम्

मनःपर्यग्नानमप्यरुप सद्यः  
समुत्पज्जवन् केवलं चानु<sup>५</sup> तस्मात्<sup>६</sup> ।  
तदैवा भवत् भव्यता ताद्यां सा  
विचित्राङ्गिना निर्वृतेः प्राप्तिरत्र ॥३९५॥  
स्वदेशोद्भवेत्<sup>७</sup> संपूजितोऽसौ  
सुरेन्द्रादिभिः सोप्रतं वन्द्यमानः ।  
त्रिलोकाधिनाथोऽभवत् किं न साध्यं  
सपो दुष्करं चेत् समादातुमीशः<sup>८</sup> ॥३९६॥

अथानन्तर भरत महाराजने किसी समय उज्ज्वल दर्पणमें अपना मुखकमल देखकर परम सुखके स्थान स्वरूप भगवान् वृषभदेवके पाससे आये हुए द्रुतके समान सफेद बाल वेशा ॥३९२॥ उसे देखकर जिनका सब मोहरस गल गया है, जिन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ है, जो आरम्भितको ग्रहण करनेके लिए उद्युक्त हैं और जिनकी वैराग्यविषयक हङ्गा अत्यन्त सुदृढ़ तथा वृद्धिशील है ऐसे भरतने अपने राज्यको जीर्णतृणके समान मानकर अपने पुत्र अकंकीति-को अपनी लक्ष्मीसे युक्त किया अर्थात् अपनी समस्त सम्पत्ति धक्कीतिको प्रदान कर दी ॥३९३॥ जिसने समस्त तत्त्वोंको जान लिया है और जो हीन जीवोंके द्वारा अगम्य मोक्षमार्गमें गमन करना चाहते हैं ऐसे घक्रवर्ती भरतने मार्ग हितकारी भोजनके समान प्रयासहीन यम सथा समितियोंसे पूर्ण संयमको धारण किया था सो ठीक ही है क्योंकि पदार्थके यथार्थ स्वरूपको समझनेवाले पुरुष संयमके सिवाय अन्य किसी पदार्थकी प्रार्थना नहीं करते हैं ? ॥३९४॥ उन्हें उसी समय मनःपर्यग्नान उत्पन्न हो गया और उसके बाद ही केवलज्ञान प्रकट हो गया । उनकी वैसी भव्यता उसी समय प्रकट हो गयी सो ठीक ही है क्योंकि प्राणियोंको मोक्षकी प्राप्ति बड़ी विचित्र होती है ॥३९५॥ जो भरत पहले अपने देशमें उत्पन्न हुए राजाओंसे ही पूजित थे वे अब इन्द्रोंके द्वारा भी वन्दनीय हो गये । इतना ही नहीं, तीत लोकके स्वामी भी हो गये सो ठीक ही है जो कठिन तपश्चरण ग्रहण करनेके लिए समर्थ रहता है उसे क्या-क्या वस्तु साध्य

१ वन्द्यमानः । २ गन्तुमिच्छुः । ३ अपगतवर्तीः । ४ मूलगुणसमूहः । ५ पार्थेयमिद । ६ स्त्रीकृतवान् । ७ ज्ञात-समीक्षीतार्थीः । ८ ज्ञातार्थकियात्मर्थी वा । ९ समुद्रभूतम् । १० परमात् । ११ वट्टकाण्डमीः । १२ समर्थः ।

मालिनी

परिचितयतिहंसो<sup>१</sup> धर्मवृद्धि तिविवान्  
नमसि कृतनिषेशो निर्मलस्तुक्तवृत्तिः ।

कलमविकलमद्यं भव्यसस्त्रेषु कुर्वन्  
भ्यहरदलिलदेशान् शारदो वा स मेघः ॥३९३॥

पृथ्वी

विहृथ्य सुचिरं विनेयजनतोपकृस्वायुषो,  
सुहृत्परिसास्थितौ<sup>२</sup> विहितसंकियो विष्युतौ ।

तनुत्रितयवन्धनस्य गुणसारसूर्जिः स्फुरत्  
ब्रह्मत्रयशिखामणिः सुखनिधिः स्वधामिनि स्थितः ॥३९४॥

वसन्ततिलका

सवृष्टिः ते शुचमस्त्रेषु भुजोश्चभुज्यते ।

सौख्यं गताः सकलजनतुषु शास्त्रिताः ।  
कालक्रमेण यमशीलगुणाभिपूर्णा  
निर्बाणमापुरमितं गुणिनो गणीन्द्राः ॥३९५॥

शार्दूलचिक्रीडितम्

यो नेतेष्वं पृथुं जग्नान् दुरितारात्मं चतुर्स्साधनो<sup>३</sup>  
येनाहं कनकाश्मनेव विमलं रूपं स्वसाभास्वरम्<sup>४</sup> ।

आभेशुद्वरणी सरोजजयिनी यस्यालिङ्गो वाऽमरा-  
स्तं त्रैलोक्यगुरुं पुरुं श्रितवतां श्रेष्ठांसि वः स किञ्चात् ॥४००॥

शार्दूलचिक्रीडितम्

योऽभूत्पञ्चदशो विभुः कुलभूतां तीर्थेशिनां आश्रिमो  
हस्तो येन मनुष्यजीवर्नविविसुक्तेऽस्त्र मार्गो महान् ।

बोधो<sup>५</sup> रोधविसुक्तवृत्तिरखिलो यस्योदपाध्यनिमः<sup>६</sup>  
स श्रीमान् जनकोऽविलावनिपतेराणः<sup>७</sup> स दद्याच्छ्रियम् ॥४०५॥

तहीं है अर्थात् सभी वस्तुएं उसे साध्य हैं ॥३९६॥ मुनिरूपी हंस जिनसे परिचित हैं, जो धर्म-की वर्धी करते रहते हैं, जो आकाशमें निवास करते हैं, निर्मल हैं, उत्तमद्रुतिवाले हैं (पक्षमें ऊँचे स्थानपर विद्यमान रहते हैं) और जो भव्य जीवरूपी धानोंमें मोक्षरूपी पूर्ण कल लगानेवाले हैं ऐसे भरत महाराजने शारद कृतुके मेघके समान समस्त देशोंमें विहार किया ॥३९७॥ चिरकाल तक विहार कर जिन्होंने शिक्षा देने योग्य जनसमूहका बहुत भारी कल्याण किया है ऐसे भरत महाराजने अपनी आयुकी अन्तमूर्हतं प्रमाण स्थिति बाकी रहनेपर योगनिरोध किया और औदारिक, तैजस तथा कार्याणि इन तीन शरीररूप बन्धनोंके नष्ट होनेपर सम्यक्त्व आदि सारभूत गुण ही जिनकी मूर्ति रह गयी है, जो प्रकाशमान है, जगत्रयके चूडामणि है और सुखके भाष्टार हैं ऐसे वह भरतेश्वर आत्मधाममें स्थित हो गये अर्थात् मोक्षको प्राप्त हो गये ॥३९८॥ जो समस्त जीवोंके विषयमें शास्त्रित है, उत्तम सुखको प्राप्त है, यम शील आदि गुणोंसे पूर्ण हैं, गुणवान् हैं और गण अर्थात् मुनिसमूहके इन्द्र हैं ऐसे वृषभसेन आदि मुख्य मुनिराज भी कालक्रमसे अपरिमित निर्बाणधामको प्राप्त हुए ॥३९९॥ जिन्होंने नेताकौ तरह चार आराधनारूप चार प्रकारकी सेनाको साथ लेकर पापरूपी विशाल शत्रुको नष्ट किया था, जिन्होंने सुवर्ण पाषाणके समान अपना देवीप्यमान स्वरूप प्राप्त किया है, भ्रमरोंके समान सब देवलोग जिनके कमलविजयी चरणोंकी सेवा करते हैं और जो तीन लोकके गुरु हैं ऐसे श्री भगवान् वृषभदेवकी सेवा करनेवाले तुम सबको वे ही कल्याण प्रदान करनेवाले हों ॥४००॥ जो कुलकरोंमें पन्द्रहवें कुलकर थे, तीर्थकरोंमें प्रथम तीर्थ कर थे, जिन्होंने मनुष्योंकी जीविका

१ परिवेष्टियतिमूर्खः । २ भव्यजनसमूहस्योपकारि । ३ मुहूर्तपरिसास्थितौ सत्पाम् । ४ सख्यं ल० ।  
५ सेनापतिरिव । ६ चतुर्विधाराधनसाधनः । ७ आ समन्ताद् भास्वरम् । ८ जीवितकल्पः । ९ आदरण-  
विमुक्तः । १० उत्पन्नवान् । ११ भरतस्य ।

वसन्तसिंहका

साक्षात्कृतप्रथितसप्तपदार्थसार्थः  
सद्बर्मसीर्थपथपालनमूलहेतुः ।  
भव्यात्मनां सबन्नतां स्वपरार्थसिद्धि-  
मिद्वाकुर्वंशाशृष्टमो वृषभो विद्ययत् ॥४०२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

यो नाभेस्तनयोऽपि विद्वचिदुषां पूज्यः स्वधर्मूर्तिः  
स्वकाशेषपरिग्रहोऽपि सुधियां स्वामीति यः शब्दते ।  
मध्यस्थोऽपि विनेयस्त्वसमितेरेवोपकारी मतो  
निवृत्तोऽपि वृष्टिरपास्थ चरणो यः सोऽस्तु वा शान्तये ॥४०३॥

इत्यार्थे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिविलक्षणमहापुराणसंवहे प्रथमतीर्थ-  
करचकधरपुराणे नाम सप्तचत्वारिंशत्तम् ॥४०३॥

को विधि और मोक्षका महान् मार्ग प्रत्यक्ष देखा था, जिन्हें आवरणसे रहित पूर्ण अन्तिम – केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और जो समस्त पृथिवीके अधिपति भरत चक्रवर्तीके पिता थे वे श्रीमान् प्रथम तीर्थकर तुम सबको लक्ष्मी प्रदान करें ॥४०१॥ जिन्होंने प्रसिद्ध सप्त पदार्थके समूह को प्रत्यक्ष देखा है और जो समीचीन धर्मरूपी तीर्थके मार्गकी रक्षा करनेमें मुर्ल्य हेतु हैं ऐसे इष्वाकु बंशके प्रमुख श्री वृषभनाथ भगवान् संसारी भव्य प्राणियोंको मोक्षरूपी आत्माकी उल्लङ्घ सिद्धिको प्रदान करें ॥४०२॥ नाभिराजके पुत्र होकर भी स्वयंभू हैं अर्थात् अपने आप उत्पन्न हैं, समस्त विद्वानोंके पूज्य हैं, समस्त परिग्रहका त्याग कर चुके हैं फिर भी विद्वानों-के स्वामी कहे जाते हैं, मध्यस्थ होकर भी भव्यजीवोंके समूहका उपकार करनेवाले हैं और दान-रहित होनेपर भी विद्वानोंके द्वारा जिनके चरणोंकी सेवा की जाती है ऐसे भगवान् वृषभदेव तुम सबकी शान्तिके लिए हों अर्थात् तुम्हें शान्ति प्रदान करनेवाले हों ॥४०३॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध भगवान् गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिविलक्षण श्रीआदिपुराण  
संग्रहके हिन्दी भाषानुवादमें प्रथम तीर्थकर और प्रथम चक्रवर्तीका वर्णन  
करनेवाला यह संतालीसवां पर्व पूर्ण हुआ ।

पुराणकिधरगत्योऽयमर्थवीचिकिभूषितः ।  
सर्वथा शरणं सन्ये जिनसेनं महाकविम् ॥

पारप्रामो जन्मभूमिर्यवीया  
गस्तीलालो जन्मदाता यदीयः ।  
पक्षालालः क्षुप्रशुद्धिः स चाहं  
टीकामेतां स्वक्षयुद्धयः चकार ॥  
आषाद्वृष्णपक्षस्य त्रयोदश्यां लिथावियम् ।  
पञ्चसप्ताहतुर्युग्मवर्षे पूर्णा वभूष सा ॥  
ते ते जन्मन्तु विद्वासो वन्दनीयगुणधराः ।  
यत्कृपाकोणमालम्बद तीर्णोऽयं शास्त्रसागरः ॥

आनन्दवाच्यो यः सहस्राविकल्पः स चकुरीष्म पूजा अन्यद्वु पूजागतिरुपः । जहों कंग शब्द आये वहों ८५००००० को ६५ से शुणा करना जहों कंग शब्द नहीं है वहों ८७००००० से गणा करना ।

आचार्य जिनसेनकृत

# आदिपुराण

[ हिंसीय भाग ]

शब्दसूची

## पारिभाषिक शब्द-सूची

**अ**

**अक्षीणमहानस-** जैन मुनिकी एक ऋषि। जिसके प्रभाव से जहाँ

इस अद्विप्राप्त मुनिका  
भोजन होता है वहाँकी  
भोजन सामग्री अक्षीण हो  
जाती है। अर्थात् वहाँ  
कितने ही लोग भोजन  
करते जायें, पर भोजन-  
सामग्री कम नहीं होती।

३६।१५५

**अक्षीणावस्थ-** जैन मुनिकी एक  
ऋषि, जहाँ इस अद्विका  
धारक मुनि निवास करता  
है, वहाँ छोटे स्थानमें भी  
बहुत बड़ा समूह भी  
स्थान प्राप्त कर सकता है।

३६।१५५

**अग्निवृति-** गभन्वय क्रियाका  
एक भेद। ३८।१६२

**अग्निमादिगुण-** अग्निमा, महिमा  
गरिमा, लघिमा, प्राप्ति,  
प्राकास्य, ईशित्र और  
वशित्र में आठ सिद्धियाँ  
अथवा गुण कहलाते हैं।

३८।१९३

**अग्नीव-** जानने देखनेकी शक्तिसे  
रहित। इसके पाँच भेद  
हैं - १ पूद्यम, २ घर्म,  
३ अधर्म, ४ आकाश और  
५ काल। ३४।१९२

**अग्नुषत-** हिसादि पौच पापोंका  
एकदेश त्याग करना, ये  
अहिसाणुषत आदि पौच  
हैं। ३९।४

**अग्नुषेका-** पदार्थके स्वरूपका  
वारन्तार चिन्तन करना।  
इसका दूसरा नाम भावना

है। ये वारह होती है -

१ अनित्य, २ अशारण, ३  
उपसर्ग, ४ अनुकूल, ५ अन्य-  
त्व, ६ अशुचित्व, ७ आखत्र,  
८ संवर, ९ निर्जंता, १०  
लोक, ११ बोधिदुर्लभ, और  
१२ वर्मस्वास्थातत्व। ३६।  
१५९-१६०

**अनुकरौपयादिकदशाङ्क-** द्वादशां-  
गका नौवा भेद। जिसमें  
प्रत्येक तीर्थकरके तीर्थमें  
उपसर्ग सहन कर अनुकूल  
विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले  
दश-दश पुरुषोंका वर्णन  
होता है। ३४।१४२

**अनुचान-** अज्ञसहित वेदका  
अध्ययन करनेवाला ३९।५३

**अनुप्रवृद्धकस्थान-** एक उपोषित  
व्रतका नाम ४६।१००

**अन्तकृदशाङ्क-** द्वादशाङ्कका  
आठवाँ भेद ३४।१४२

**अन्वयदत्ति-** पुनके लिए परिग्रह-  
का भार सौंपना। इसीका  
दूसरा नाम सकलदत्ति है।  
३८।४०

**अपायविज्ञय-** धर्मव्याप्तिका एक  
भेद ३६।१६१

**अवज्ञ-** अक्रवर्तीकी एक निधि।  
इसीका दूसरा नाम शहू  
भी है ३७।७३

**अभिषेक-** गभन्वय क्रियाका एक  
भेद ३८।६०

**अवतार-** गभन्वय क्रियाका एक  
भेद ३८।६०

**अवतार-** दीक्षान्वय क्रियाका एक  
भेद ३८।६४

**अरिषद्वर्ग-** काम, क्रोध, लोभ,  
मोह, मद, मात्सर्य में छह

अन्तरञ्ज शत्रुओंका समूह  
है। ३८।२८०

**अल्लीक-** लोकके बाहरका अनन्त  
आकाश ३३।१३२

**अद्व-** चक्रवर्तीका एक सचेतन  
रत्न ६७।८४

**असि-** चक्रवर्तीका एक निर्जीव  
रत्न ६७।८४

**आ**

**आकिञ्चन्य-** परिग्रहका त्याग  
करना ३६।१५३

**आचाराङ्क-** द्वादशाङ्कका पहला  
बङ्ग, जिसमें मुनियोंके  
आचारका वर्णन है। ३४।  
१३५

**आज्ञाविच्चय-** धर्मव्याप्तिका एक  
भेद ३६।१६१

**आतपन्न-** चक्रवर्तीका एक निर्जीव  
रत्न ६७।८४

**आतपन्नम-** ग्रीष्म क्रहुमें पर्वत-  
चट्ठानोंपर ज्यान करना  
३४।१५४

**आधान-** गभन्वय क्रियाका एक  
भेद ३८।५५

**आवश्यक-** अवश्य करने योग्य  
छह कार्य - १ समता,  
२ बन्दना, ३ स्तुति, ४  
प्रतिक्रमण, ५ स्वाध्याय  
और ६ व्यूहसर्ग ३६।१३४

**आज्ञ-** मायाचारकी जीतना  
३६।१५३

**आयै षट्कर्म-** इज्या, वार्ता,  
दत्ति, स्वाध्याय, संयम  
और तप ये आयैकी छह  
कर्म हैं। ३९।२४

**आहंती-** वरहन्त सम्बन्धी  
३६।१५५

**आहंत्वा—गमन्त्रिय क्रियाका एक भेद** ३८।१६२

**आहवनीय—** वह अरित जिसमें गणधरोंका अन्तिम संस्कार होता है ४०।८४

**आष्टाह्लिक—** पूजाका एक भेद। कातिक, फाल्गुन और आषाढ़ मासके अन्तिम आठ दिनोंमें नन्दीश्वर द्वीप सम्बन्धी ५२ वैत्यालयोंकी पूजा ३८।१२६

**इ**

**इज्या—** पूजा, पूजाके चार भेद हैं १ सदाचर्च (नित्यमह), २ चतुर्मुख मह, ३ कल्पवृत्तमह और ४ आष्टाह्लिकमह ३८।१२६

**इन्द्रत्याग—** गमन्त्रिय क्रियाका एक भेद ३८।१६०

**इन्द्रोपपाद—** गमन्त्रिय क्रियाका एक भेद ३८।१६०

**इमर्ज चक्रवर्तीका** एक सचेतन रत्न—हाथी ३७।८४

**उ**

**उत्तमक्षमा—** क्रोधपर विजय प्राप्त करना ३८।१५७

**उत्तरगुण—** भुनियोंके चौरासी लाल उत्तर गुण होते हैं ३८।१३५

**उपधा—** धर्म, अर्थ, काम और भयके सम्पर्क किसी इहानेसे दूसरेके चित्तकी परीक्षा करना उपधा है। ४४।२२

**उपनीलि—** गमन्त्रिय क्रियाका एक भेद ३८।१५६

**उपयोगिता—** दीक्षान्त्रिय क्रियाका एक भेद ३८।१६४

**उपासकाध्याय—** द्वादशाङ्कका सत्तर्वी भेद जिसमें आवकाचारका वर्णन है ३४।१४१

**ओ**

**ओहु—** स्त्रीकी रज़ाणुद्दिके दिन-

से लेकर पन्द्रह दिन तकका काल अस्तुकाल कहलाता है। ३८।१३४

**ओद्धि—** तपसे प्रकट हुई विशिष्ट शक्तियाँ। ये बुद्धि, विक्रिया आदिके भेदसे अनेक प्रकारकी होती हैं ३६।१४४

**ऐ**

**ऐन्द्रध्वज—** इन्द्रोंके द्वारा की हुई पूजा। पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाकी पूजा इन्द्रध्वज पूजा है। इसमें मनुष्यमें इन्द्रका आरोप कर उसके द्वारा पूजा की जाती है।

**औ**

**औषधर्दि—** इसके अनेक भेद हैं आमप, इवल, जल्ल, मल्ल आदि ३८।१५३

**ऋ**

**ऋर्मस्क—** ज्ञानावरणादि कर्मोंका समूह ४३।२

**ऋर्मन्त्र—** ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय ४७।२४७

**ऋग्वेद्य क्रिया—** एक विशिष्ट क्रिया, इसके ७ भेद हैं ३८।१५१

**ऋषभुम—** जिनपूजाका एक भेद। इसे चक्रवर्ती ही कर पाता है। ३८।२६

**ऋषाय—** क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार ऋषाय हैं ३८।१३९

**काकिणी—** चक्रवर्तीका एक रत्न जिससे दीक्षालपर लिखनेसे प्रकाश उत्पन्न होता है, ३२।१५

**काहण्ड—** दुखी जीवोंका दुख दूर करनेका भाव होन ३९।१४५

**काल—** चक्रवर्तीकी एक निषि-इ३।७३

**कुल—** पितामो-वंशजुदि ३९।१८५

**कुलवर्या—** गमन्त्रिय क्रियाका एक भेद ३८।१५७

**कृत्युग—** चतुर्थकाल ४१।५

**केशवाप—** गमन्त्रिय क्रियाका एक भेद ३८।१५६

**केवलाल्य ज्योति—** केवलज्ञान-रूपी ज्योति ३३।१३२

**कोष्ठुदि—** बुद्धिकृदिका एक भेद ३८।१६

**क्षणकथेषी—** चारित्र मोहका कथ करनेके लिए परिणामोंकी विशुद्धता। यह विशुद्धता आठवेंसे दसवें गुणस्थान तक रहती है ४७।२४६

**क्षयोपशाम—** आतिथा कर्मोंकी एक अवस्था विशेष, जिसमें वर्तमान कालमें उदय आनेवाले सर्वधाति स्पर्द्धकोंका उदयाभावी कथ आगामी कालमें उदय आनेवाले सर्वधाति स्पर्द्धकोंका सदृ-स्था रूप उपशम और देशधाति स्पर्द्धकोंका उदय रहता है ३६।१४५

**क्षयाद—** मासि कानेवाले व्यक्ति ३९।१३७

**ग**

**गण—** समवसरणकी १२ समार्द्दि ३३।१५३

**गणप्रह—** दीक्षान्त्रिय क्रियाका एक भेद ३८।१६४

**गणग्रह—** मिथ्या देवी-देवताओंकी अपने घरसे अन्यत्र लिसर्जित करना, ३९।१४५

**गणोपग्रहण—** गमन्त्रिय क्रियाका एक भेद ३८।१५८

**गणधुटी—** समवसरणका वह मूलस्थान जहाँ भगवान् विराजमान रहते हैं ३३।१५०



## पारिभाषिक शब्द-सूची

५२९

**श्रेणीकरणसंबिला-** सम्बद्धरूप, सम्पाद्यान और सम्पर्क-  
वारित्र सम्बन्धी ३९।११५

व

**दक्षिणामि-** वह अग्नि जिसके  
द्वारा साधान्य केवलियोंके  
शरीरका वाह संस्कार  
होता है ४०।८४

**दधकपाटादि-** केवलिसमुद्घात-  
के भेद— १ दधक, २ कपाट,  
३ प्रतर और ४ लोकपूरण  
३८।३०७

**दग्ध-** चक्रवर्तीका एक निर्भव  
रूप ३७।४४

**दसि-** दान, इसके बार भेद है—  
१ पावदति, २ समदति,  
३ अन्वदति और ४  
कहणादति ३८।३५—३६

**दधादति-** कहणा दान ३८।३६  
**दधधर्म-** १ धर्मा, २ धार्दव,  
३ आर्जव, ४ शौच, ५  
सत्य, ६ संयम, ७ तप,  
८ त्याग, ९ आकिञ्चन और  
१० बहुवर्य ३६।१३७

**दिव्या जाति-** इनकी जाति  
दिव्या जाति कहलाती है।  
३९।१६८

**दिव्यामृद्य-** गमनिय क्रियाका  
एक भेद ३८।६१

**दीक्षाय-** गमनिय क्रियाका एक  
भेद ३८।५७

**दीक्षामृद्य क्रिया-** एक विशिष्ट  
क्रिया, इसके ४८ भेद होते  
हैं। ३८।५१

**दीपोद्वीधरसंदिधि-** पूजाके  
समय दीपक बरलाना। इस  
कार्यमें वक्षिणाग्निका प्रयोग  
होता है। ४०।८६

**दिव्याद-** दादशाङ्कका वारहवा  
भेद ३८।१४६

**द्वावस्थण-** समवस्थणमें सन्ध-  
कुटीके बारों ओर परिकला

रूपसे स्थित वारह सभाएँ  
४२।४५

**दादशाङ्क-** वाचाराङ्क आदि  
वारह वज्र ३४।१३३

**द्विज-** आहुण, खत्रिय और  
वैश्य ३८।४८

**द्वितीय शुक्लाम्बा-** एकत्व-  
वितर्क, यह वारहवें गुण-  
स्थानमें होता है ४७।२४७

**द्विचाम्लात-** अन्तरज्ञ और वहि-  
रज्ञके भेदसे दो प्रकारका  
माना हुआ ३४।१७२

**द्विरष्टी भावना-** सोलह कारण  
भावनाएँ १ दण्डनिशुद्धि,  
२ विनयसम्पन्नता, ३ शील-  
वतेव्वनती चार, ४ अभीष्ट  
ज्ञानोपयोग, ५ संबोग, ६  
शक्तितत्त्वस्थान, ७ शक्ति-  
संस्तप, ८ साधुसमाधि, ९  
वैयावृत्यकरण, १० अहंह-  
भक्षित, ११ आचार्यभक्षित,  
१२ बहुश्रुतभक्षित, १३ प्रव-  
चन भक्षित, १४ आचार्यका-  
परिहाणि, १५ मार्गप्रभावना  
और १६ प्रवचनवात्सर्य

ष

**धर्मध्यान-** ध्यानका एक भेद,  
इसके बार भेद है—१  
आज्ञाविचय, २ अपायवि-  
चय, ३ विपाकविचय और  
४ संस्थानविचय ३६।१६१

**धूलीसाङ्क-** समवस्थणका एक  
कोट जो कि रक्तमयी धूलीसे  
निपित होता है ३३।१६०

**धृति-** गमनिय क्रियाका एक  
भेद ३८।५५

ग

**नामकर्म-** गमनिय क्रियाका  
एक भेद ३८।५५

**गिरोत-** सम्पूर्णल जीव विदेश  
३८।१८

**गिरसङ्कात्मभावना-** गमनिय

क्रियाका एक भेद ३८।५५  
निर्जरा- कमोका एकदेश अग्न  
होता ३६।१३८

**निषदा-** गमनिय क्रियाका एक  
भेद ३८।५५

**निष्कान्ति-** गमनिय क्रियाका  
एक भेद ३८।५२

**नैवपै-** चक्रवर्तीकी एक निषि  
३७।७३

**नौकर्म-** औदारिक, वैक्षियिक,  
आहारक शरीर ४२।९१

प

**पश्च-** एक वृत्तिका भेद—जिस  
धर्मका पश्च स्वीकृत करना  
३९।१४५

**पञ्चवमस्कारपद-** गमोकार-  
मन्त्रणमो अरहन्ताण आदि  
३९।४३

**पञ्चवेन्द्रिय-** १ स्पर्शन, २ रसना,  
३ ध्वनि, ४ चक्षु और ५  
कर्ण में पीछे इन्द्रिय हैं  
३६।१३०

**पञ्चोद्धुर्वर-** बड़, पीपल, पाफर,  
ऊपर और अन्धीर  
३८।१२२

**पश्च-** चक्रवर्तीकी एक निषि  
३७।७३

**परमलिपिणी-** कर्त्तव्य क्रियाका  
एक भेद ३८।६७

**परमा जाति-** अरहन्त मगवान्की  
परमा जाति कहलाती है  
३९।१६८

**परमादैन्य-** कर्त्तव्य क्रियाका  
एक भेद ३८।६७

**परमावधि-** अद्वितीयका एक  
भेद, जो अनियोंके होता है  
३६।१४७

**परमेहिन्-** अरहन्त, सिद्ध,  
आचार्य, उपाधाय और  
साधु में पीछे परमेष्ठी है  
३८।१८८

**परिकर-** समर्ता भावसे आगत

**विषयिको सहन करना।** इसके २२ भेद हैं—१ क्षुधा, २ तुषा, ३ लोत, ४ चषण, ५ दंशमशक, ६ नाम्य, ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चर्या, १० निषद्या, ११ शब्दा, १२ आक्रोश, १३ वष, १४ याचना, १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृणस्तर्य, १८ चल, १९ सत्कार पुरस्कार, २० प्रश्ना, २१ अज्ञान और २२ अदर्शन, ३६।१२८  
**पर्णङ्गाधी—** एक विद्या, जिसके प्रभावसे भारी शरीर पत्ते-के समान हल्का होकर आकाशसे नीचे आ जाता है ४७।२२  
**पश्यङ्ग—** एक आसन—पालकी ३४।१८८  
**पाण्डुक—** चक्रवर्तीकी एक निधि ३७।७३  
**पात्रदान—** मुनि-आयिका, आवक-आविक आवि चतुर्स्रेष्ठको विधिपूर्वक दान देना ३८।३७  
**पात्रिवज्य—** कर्त्तव्य क्रियाका एक भेद ३८।६७  
**पिङ्ग—** चक्रवर्तीकी एक निधि ३७।७३  
**पुण्यवद्ध—** दीक्षान्वय क्रियाका एक भेद ३८।६४  
**पुराकल्प—** एक्चमकाल ४१।३  
**पुरोधस्—** चक्रवर्तीका पुरोहित रत्न ३७।८४  
**पूजाराध्य—** दीक्षान्वय क्रियाका एक भेद ३८।६४  
**प्रलिमा घोर धारण—** पर्वके उप-वासके बाद रातमें एकान्तमें प्रतिमाके समान नम्न रह-कर ध्यान धारण करना। ३९।५२  
**अमोद—** गुणो मनुष्योंको देखकर

## आदिपुराणम्

**हृषि धारण करना ३९।१४५**  
**ग्रहनव्याकरण—** द्वादशाङ्गका दशवारी भेद ३४।१४४  
**ग्राहान्ति—** गमन्त्वय क्रियाका भेद ३८।५७  
**ग्रालिहार्य—** अरहन्त अवस्थामें तीर्थकरके प्रकट होनेवाले आठ विशिष्ट कार्य—१ अशोक वृक्ष, २ सिंहासन, ३ छक्कप, ४ भामण्डल, ५ दिव्यछक्कनि, ६ पुष्पवृष्टि, ७ चौसठ चमर, ८ दुम्भुभि बाजा ४२।४५  
**ग्राशन—** गमन्त्वय क्रियाका एक भेद ३८।५५  
**ग्रासुक—** निर्जीव ३४।१९२  
**ग्रियोदम्बर—** गमन्त्वय क्रियाका एक भेद ३८।५५  
**ग्रीति—** गमन्त्वय क्रियाका एक भेद ३८।५५  
**घ**  
**बलर्दि—** कृदि का एक भेद ३६।१५।  
**बहिर्यनि—** गमन्त्वय क्रियाका एक भेद ३८।५५  
**बोधि—** सम्यक्षर्थान, सम्यक्षान, सम्यक् चारित्र ३९।८५-८६  
**ब्रह्माचर्य—** आत्मस्वरूपमें लीन रहना अथवा स्त्री मात्रका परिणयाग करना ३६।१५८  
**झ**  
**मोगङ्ग—** चक्रवर्तीके भोगके वश वज्ज्ञ होते हैं—१ रल और निषिया, २ देविया, ३ नगर, ४ शश्या, ५ आसन, ६ सेना, ७ नाटयशाला, ८ वर्तन, ९ भोजन और १० वाहन—सवारी ३७।१४३  
**झ**  
**मणि—** चक्रवर्तीका एक निर्जीव रत्न ३७।८४  
**मलिङ्गान—** पौच हन्तियों और मनको सहायतासे होनेवाला एक ज्ञान ३६।१४२  
**मनःपर्यायज्ञान—** दूसरेके मनमें स्थित पदार्थको जानेवाला ज्ञान। यह ज्ञान मुनिके ही होता है ३६।१४३  
**मन्दरेत्रामिथेक—** गमन्त्वय क्रियाका एक भेद ३८।६१  
**महामह—** भगवान्की एक विशिष्ट पूजा ३८।६  
**महाकाल—** चक्रवर्तीकी एक निधि ३७।७३  
**महाव्रत—** हिसादि पापोंका सर्व-देश त्याग करना। ये पाँच हैं ३९।४  
**महाचैत्यद्वाम—** समवसरणमें विद्यमान चैत्यवृक्ष; इनके नीचे जिन-प्रतिमाएँ विद्यमान रहती हैं। ४१।२०  
**माणस—** चक्रवर्तीकी एक निधि ३७।७३  
**माध्यस्थ्य—** विपरीत मनुष्योंपर समाव रखना ३९।१४५  
**मानसहस्रम्—** समवसरणकी चारों दिशाओंमें विद्यमान रत्नमय चार स्तम्भ इनके देखनेसे मानो जीवोंका मान नष्ट हो जाता है। ४०।२०  
**मार्दव—** मालको जीतना ३६।१५७  
**मूलगुण—** मुनियोंके मूलगुण २८ होते हैं—५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इन्द्रिय वसन, ६ आवश्यक, ७ शेष सात गुण ३६।१३५  
**मैत्री—** किसी जीवको दुख न हो ऐसी भावना रखना ३९।१४६  
**मोद—** गमन्त्वय क्रियाका एक भेद ३८।५५  
**मौनाध्ययम् शूलस्व—** गमन्त्वय क्रियाका एक भेद ३८।५८

**थ**

थथारुयात्— चारित्र शोहके अभावमें प्रकट होनेवाला चारित्र। इसके औपचारिक और क्षायिकके भेदसे दो भेद हैं। ३७।२४७

योगस्थान्— गमनिवय क्रियाका एक भेद ३८।१६२

योगनिवाणिसंप्राप्ति— गमनिवय क्रियाका एक भेद ३८।१५९

यौवराज्य— गमनिवय क्रियाका एक भेद ३८।१६१

योगसम्मह— गमनिवय क्रियाका एक भेद ३८।१६२

योजन— चारकोशका एक योजन होता है परन्तु अकुविस चीजोंके नापमें दो हजार कोशका योजन लिया जाता है। ३३।१५९

योषित्— घक्कवर्तीका एक सचेतन रत्न, स्त्री ३७।८४

**र**

रत्नत्रय— सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्पर्कचारित्र ये तीन रत्नत्रय हैं। ३६।१३९

रसद्वि— ऋद्विका एक भेद ३६।१५४

रहस्य— अन्तराय कर्म ३५।१८६

राजधिया— आम्बोक्षिकी, व्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये खार, राजधियाएँ हैं। ४१।१३९

**स**

लिपि— गमनिवय क्रियाका एक भेद ३८।१५६

लेश्या— कषायके उदयसे अनुरक्षित योगोंकी प्रवृत्ति। इसके ६ भेद हैं—१ कृष्ण, २ नील, ३ कापोत, ४ पील, ५ पथ और ६ शुक्ल। ३६।१८४

लोक— जहाँ तक जीव आयि रह

द्रव्य पाये जायें सके लोक कहते हैं। यह १४ राजु़ ऊँचा है और ३४३ राष्ट्र क्षेत्रफल वाला है। ३३।१३२

**थ**

बृहलाभ— गमनिवय क्रियाका एक भेद ३८।१५७

बार्ता— ये ती बादिके द्वारा निर्दोष आजीविका करना ३८।३५

विकथा— राग द्वेषको बढ़ानेवाली कथाएँ, ये चार हैं—१ स्त्री कथा, २ राष्ट्र कथा, ३ मोजन कथा और राज कथा। ३६।१४०

विक्रिया— एक प्रकारकी ऋद्वि, इसके ८ अवान्तर भेद हैं। ३६।१५२

विजयाश्रिता— चक्रवर्तियोंकी जाति विजयाश्रिता जाति कहलाती है। ३३।१६९

विधिदान— गमनिवय क्रियाका एक भेद ३८।१६०

विपाक विचय— वस्त्रध्यानका एक भेद ३६।१६१

विपाकसूत्र— द्वादशाङ्गका व्यारहवाँ भेद ३४।१४५

विपुलमति— मनस्तर्यय ज्ञानका उत्कृष्ट भेद ३६।१४७

विमुक्ता— निष्परिग्रहता ३४।१६९

विवाह— गमनिवय क्रियाका एक भेद ३८।१५७

शोदासन— आसनका एक भेद, जिसमें दोनों पग्यली अंघापर रखकर व्यानस्य हुआ जाता है। ३४।१८७

शूतलाभ— वीक्षान्वय क्रियाका एक भेद ३८।१६४

शत— हिंसादि पौचि पापोंके त्यागके प्रकट होनेवाले पौचि महावत— १ अर्हिसा, २

सत्य, ३ अन्वौये, ४ ब्रह्मदर्श और अपरियोग ३६।१३३  
शतकर्या— गमनिवय क्रियाका एक भेद ३८।१५६

शतावतरण— गमनिवय क्रियाका एक भेद ३८।१५६  
शूल-चारित्र— गमनिवय क्रियाका से दिरत होना ३३।२४

श्वास्याप्रजहि— द्वादशांगका पौचिका भेद ३४।१३८  
श्वुष्टि— गमनिवय क्रियाका एक भेद ३८।१५६

**श**

शहस्य— १ माया, २ मिष्या और ३ निदान ये तीन शहस्य हैं। वही मनुष्यके इनका अभाव होना चाहिए। ३६।१३७

शुक्लध्यान— ध्यानका सर्वोत्कृष्ट भेद ३६।१४४

शौच— लोभका त्याग करना ३६।१५७

श्रीमण्डप— समवसरणका मूल मण्डप जिसमें भगवान्‌की मन्त्रकुटी होती है। ३३।१५९

शुत— पौचि इन्द्रियों और मनकी सहायतासे उत्पन्न होनेवाला एक तर्कणाशील ज्ञान ३६।१४२

**ष**

षड्हकम्— अवृतालीस (षणा-महकं षड्हकम्) ३९।६

**स**

सञ्चाति— कर्त्तव्यय क्रियाका एक भेद ३८।१६४

सत्य— हितमित प्रामाणिक वचन दोलना ३६।१५७

सदाचारन-नित्यमह— पूजाका एक भेद धरसे लाशी दृष्टि सामग्री से जिनेन्द्रदेवका प्रतिदिन पूजन करना ३८।२५

<b>संवृद्धिका— कर्त्रिय क्रियाका</b>	एक भेद ३८।६७
<b>संज्ञाय—</b> १ इस लोकका भय,	
२ परलोकका भय, ३ बेदनाभय, ४ आकस्मिक भय, ५ मरण भय, ६ अगुप्तिभय और ७ अस्था- भय ३४।१७६	
<b>संसमझी—</b> किसी पदार्थका निरू- पण करने के लिए वक्ताकी इच्छाते होनेवाले सात-भेंगों का समूह। जो इस प्रकार है— १ स्यादस्ति, २ स्या- न्नास्ति, ३ स्यादस्तिनास्ति, ४ स्याद् अवस्थात्वय, ५ स्याद् अस्ति अवस्थात्वय, ६ स्याद् नास्ति अवस्थात्वय, और ७ स्याद् अस्ति नास्ति अव- स्थात्वय, ३३।१३५	
<b>समवाच—</b> द्वादशाङ्गका चौथा-	भेद, ३४।१३८
<b>समानदत्ति—</b> सहधर्मीके लिए	
दान देना। ३८।३८-३९	
<b>समिति—</b> प्रभादरहित प्रवृत्ति	
करना। समितियों पैंच	
है— १ ईर्यि, २ भाषा, ३ एषणा, ४ आदान निष्ठे- पण और ५ प्रतिष्ठापन,	
३६।१३५	
<b>संवर्तन—</b> चक्रवर्तीकी एक निधि,	३७।१७३
<b>संवर्तिति—</b> अवधिकानका एक-	
भेद जो मुनियोंके होता है	३६।१४७

## आदिपुराणम्

<b>संवेदनसंघ—</b> गभन्विय क्रिया-	का एक भेद ३८।१६
<b>संज्ञा—</b> एक प्रकारकी इच्छाएँ।	
ये ४ हैं १ आहार, २ भय,	३ मैथुन और परिघह,
४ मैथुन और परिघह,	३६।१३१
<b>संयम—</b> पौच इन्द्रिय और मन-	को बह करना साधा उह कायके जीवोंकी रक्षा करना
	३६।१५७
<b>संस्थानविश्वम्—</b> वर्ष्यध्यानका	एक भेद ३८।१६१
<b>साधन—</b> धायुके अन्तमें संन्यास	
धारण करना, ३९।१४५	
<b>सामाधिक—</b> चारित्रिका एक भेद	
जिसका सामान्य रूपसे	समस्ते पौचोंका त्याग कर
समताभाव धारण करना	समताभाव धारण करना
अर्थे है ३४।१३०	अर्थे है ३४।१३०
<b>सामाजिक—</b> गभन्विय क्रियाका	एक भेद ३८।६२
<b>सामाजिक—</b> कर्त्रियक्रियाका एक	भेद ३८।६७
<b>सिद्धार्थपादप—</b> समवसरणमें	
विद्यमान एक वृक्ष ४०।२०	
<b>सिद्धि—</b> १ बणिमा, २ महिमा,	
३ गरिमा, ४ लिमा, ५	
प्राप्ति, ६ प्रमाणम्, ७	
ईशित्य, और ८ वाशत्व ये	
आठ सिद्धियाँ हैं ३४।२।१४	
<b>सुखोदय—</b> गभन्विय क्रियाका	
एक भेद ३८।६०	
<b>सुप्रीति—</b> गभन्विय क्रियाका एक	
भेद ३८।५५	

## भारतीयिक शब्द-सूची

**अ**

अङ्ग = एक देश – भागलपुरका  
समीपवर्ती प्रदेश २९।३८

असिंगम्बीरा = एक नदी २९।५०

अद्वीन्द्र = सुमेरु पर्वत ३६।५०

अलङ्ग = एक पर्वत २९।३०

अलम्बर पाषाण्ड = एक देश  
२९।८०

अपशम्स = पश्चिम दिम्भाग  
३०।१

अस्मोणा = एक नदी २९।८७

अयोध्या = सम्राट् भरतकी राज-  
धानी उत्तरप्रदेशकी प्रसिद्ध  
नगरी २६।८३

अहुगा = एक नदी २९।५०

अद्वितिकामा = एक नदी २९।६४

अदन्ती = मालवाका एक भाग –  
उज्जैनका समीपवर्ती भाग  
२९।४०

असुरभूपन = एक पर्वत २३।७०

आम्ब्र = एक देश २९।७९

आन्ध्र = आन्ध्र देशके लोग  
२९।९२

आषाढ़र गिरि = एक पर्वत  
२९।४६

**इ**

इशुमती = एक नदी २९।८३

**उ**

उण्ड = एक देश २९।४१

उम्मम्मजला = विजयार्थीकी गुफा-  
में बहनेवाली एक नदी  
३२।२१

उम्मयश्रेणी = विजयार्थी उत्तर  
और दक्षिण श्रेणी ३५।७३

उम्मीरखती = गान्धार देशकी  
एक नदी ४६।१४५

उम्मीनर = एक देश २९।४२

**ऋ**

ऊर्जयस्तात्रि = गिरनार पर्वत  
३०।१०२

ऊहा = एक नदी २९।६२

**ऋ**

ऋक्षवत् = एक पर्वत २९।६९

ऋष्यमूक = एक पर्वत २९।५६

**ओ**

ओड़ = ओड़ देशके लोग २९।९३

ओद्र = दक्षिण भारतका एक  
देश २९।७३

ओमुम्हरी = एक नदी २९।५४

**क**

काष्ठ = एक देश काठियावाड  
२९।४१

कञ्जा = एक नदी २९।६२

कर्पाचती = एक नदी २९।४९

कमेकुर = एक देश २९।८०

कम्बलात्रि = एक पर्वत २९।६९

कम्बुक = एक सरोवर २९।५१

करमचेमिनी = एक नदी २९।६५

करीरी = एक नदी ३०।५७

कण्टिक = कण्टिक देशके लोग  
२९।९१

कलिङ्ग = उडीसा – भुवनेश्वरका  
समीपवर्ती प्रदेश २९।३८

कागन्तु = एक नदी २९।६४

काञ्चनपुर = विदेहका एक नगर  
४७।१८

कायडक्क्रपात = एक गुफा  
३२।१८८

कान्तपुर = पुष्करार्ध द्वीपके  
पश्चिम विदेह क्षेत्रके पश्चक

देशका एक नगर ४७।१८०

कामरूप = एक देश – आसाम  
२९।४२

काकमही = एक नदी २९।५०

काळकूट = एक देश २९।४८

काळतोया = एक नदी २९।१०

कालिङ्ग = कलिङ्ग देशके लोग  
२९।९३

कालिन्द = एक देश २९।४८

काश्मीर = भारतका उत्तर  
दिशावर्ती एक प्रसिद्ध प्रदेश  
२९।४२

काशी = वाराणसीका समीपवर्ती  
प्रदेश २९।४०

किरातविषय = मैत्रेयोंका एक  
देश २९।४८

किञ्चिक्ष्य = एक पर्वत २९।९०

कुदुम्ब = एक देश २९।८०

कुम्बा = एक नदी २९।८७

कुह = उत्तर प्रदेशके अन्तर्गत  
मेरठका समीपवर्ती प्रदेश  
२९।४०

कुरुक्षाकुल = मेरठका समीपवर्ती  
प्रदेश ४५।१६९

कुटाद्रि = एक पर्वत २९।६७

कुतमाला = एक नदी २९।६३

कुलाणगिरि = एक पर्वत ३०।५०

कुण्यावेणा = एक नदी २९।८६

केतम्बा-केतवा = एक नदी  
३०।५७

केल = एक देश २९।७९

कैलात = वर्तमान हिमालय  
३३।११

कोलाहलगिरि = एक पर्वत  
३३।११

कौसल = अयोध्याका समीपवर्ती  
प्रदेश २९।४०

कौशिकी = एक नदी २९।५०

**ख**  
खलराष्ट्र = विजयार्थ पर्वत  
३७।१९८

**ग**  
गङ्गा = एक प्रसिद्ध नदी २९।४९

**गङ्गापात** = एक कुण्ड जिसमें हिमवत् पर्वतसे गङ्गा नदी गिरती है ३२।१६३  
**गङ्गाद्वार** = जिस ठारसे गङ्गा नदी लवणसमुद्रमें प्रवेश करती है ३५।६८  
**गजपुर** = विजयार्थी पर्वतके दक्षिणभागमें स्थित एक नगर ४७।१२८  
**गदागिरि** = एक पर्वत २९।६८  
**गम्भीरा** = एक नदी २९।५०  
**गान्धारदेश** = पुष्कलावती देशके विजयार्थी पर्वतकी दक्षिण-श्रेणीका एक देश ४६।१४५  
**गोदावरी** = एक नदी २९।८५  
**गोमती** = एक नदी २९।४३  
**गोरथ** = एक पर्वत २९।४६  
**गोशीर्घ** = एक पर्वत २९।८९  
**गोइ** = एक देश २९।५१  
**गौरी दिव्य** = विजयार्थीकी दक्षिण-श्रेणीका एक देश ४६।१४७

**च**

**चर्मवती** = एक नदी – चम्बल २९।६४  
**चित्रवती** = एक नदी २६।५८  
**चुलितापी** = एक नदी २९।६५  
**चूर्णी** = एक नदी २९।८७  
**चेदिककूश** = एक देश २९।५७  
**चेदिपर्वत** = एक पर्वत २९।५५  
**चेदिराष्ट्र** = चेदी देश २९।५५  
**चेदी** = एक देश मालवाका एक भाग २९।४१

**ज**

**जगती** = लवणसमुद्रकी चेदी २८।६७  
**जम्बूदीप** = प्रथम दीप ४३।७४  
**जम्बूमती** = एक नदी २९।६२  
**जाह्नवी** = गंगा नदी २६।१४७

**त**

**तत्साह** = वरतनु नामका दीप २९।१६६  
**तमसा** = एक नदी २९।५४

**आदिपुराणम्**

**तमिळा** = विजयार्थी पर्वतकी एक गुफा ३२।६  
**तापी** = एक नदी ३०।६१  
**तात्रा** = एक नदी २९।५०  
**तुक्तवरक** = एक पर्वत ३०।४९  
**तैरधिक** = एक पर्वत २९।६४  
**तैला** = एक नदी २९।८३  
**त्रिक्लिङ्ग** = दक्षिण भारतका एक देश २९।७३  
**त्रिकूट** = दक्षिणका एक पर्वत ३०।२५  
**त्रिमुख** = त्रिमुखीय द्वीपके पश्चिम त्रिमार्गा = गंगा २८।१९  
**त्रैराज्य** = ओल, केरल, पाण्ड्य ३०।३५

**द**

**दशार्थी** = विदिशाका समीपवर्ती प्रदेश २९।४२  
**दशार्थी** = धसान नदी २९।६०  
**दमला** = एक नदी ३०।५९  
**ददुराद्वि** = एक पर्वत २९।८९  
**दालवेणा** = एक नदी ३०।५५  
**देवनिम्नगा** = गंगा नदी २७।३

**ध**

**धान्यकमाल** = विदेह धेशके पुष्कलावती देश सम्बन्धी विजयार्थी पर्वतके निकट स्थित एक बन ४६।९४  
**धान्यपुर** = विजयार्थीका एक नगर ४७।१४६  
**धैर्यी** = एक नदी २९।८७

**न**

**नक्षरवा** = एक नदी २९।८३  
**नम्दा** = एक नदी २९।६५  
**नम्दा** = भारतकी एक प्रसिद्ध नदी २९।५२  
**नाग** = एक पर्वत २९।८७  
**नागप्रिय** = एक पर्वत २९।५८  
**नामिनील** = वृषभाचल जिसपर चक्रवर्ती धर्मी प्रवासित लिखता है ४५।५८  
**नालिका** = एक नदी २९।६१  
**निकुरा** = एक नदी २९।५०

**निमसला** = विजयार्थीकी गुफामें बहनेवाली एक नदी ३२।२१

**निविन्ध्या** = एक नदी २९।६२

**निषध** = एक कुलाचल ३६।४८

**निष्कुन्दरी** = एक नदी २९।६१

**नीरा** = एक नदी ३०।५६

**नीरुद्धि** = एक कुलाचल ३६।४८

**य**

**पुष्करार्थी द्वीपके पश्चिम विदेहका एक प्रसिद्ध देश ४७।१८०**

**पनसा** = एक नदी २९।५४

**पम्बासरस्** = एक प्रसिद्ध सरोबर २९।५५

**परज्ञा** = एक नदी २९।६३

**पाल्लाल** = पंजाब २९।४०

**पाण्डव** = एक देश २९।८०

**पाण्डव कथाटक** = एक पर्वत २९।८९

**पारा** = एक नदी ३०।५९

**पारिवान्न** = एक पर्वत २९।६७

**पुष्टि** = एक देश २९।४१

**पुष्टरीकिणी** = विदेहकी एक नदी ४६।११

**पुन्नाम** = एक देश २९।६९

**पुष्कलावती** = विदेहका एक देश ४६।१९

**पुष्पगिरि** = एक पर्वत २९।६८

**पोदन** = पोदनपुर – बाहुबलीकी राजधानी ३४।६८

**प्रसूशा** = एक नदी २९।५४

**प्रवेणी** = एक नदी २९।८६

**प्रहरा** = एक नदी ३०।५८

**प्रात् विदेह** = पूर्व विदेह ४६।१९

**प्राक्माल्यगिरि** = एक पर्वत २९।५६

**प्रतार** = एक देश २९।७३

**ब**

**बङ्ग** = बंगाल २९।३८

जहुवङ्गा = एक नदी २९।६१

जाणा = एक नदी ३०।५७

जीजानदी = एक नदी २९।५२

## भ

भरत = जम्बू ढीपका दक्षिण दिवाचत्ती लेन्ड्र ४३।३४

भूतवन = भूतारण्य नामका वन ४७।५६

भैमरथी ( भीमरथी ) = एक नदी ३०।५१

भोगपुर = गौरी देशकी नगरी ४६।१४७

## म

मरेम = एक पर्वत २९।७०

मद्र = एक देश २९।४१

मनोरम = एक देश ४७।४२

मलय = दक्षिणका एक पर्वत ३०।२६

मलयकाञ्चन = विजयार्थ पर्वत-के समीपस्थ एक पर्वत ४६।१३५

मलद = एक देश २९।४७

मलदेश = एक देश २९।४८

महाकाल = एक गुफा ४७।१०३

महेन्द्र = एक पर्वत २९।८८

महेन्द्रका = एक नदी २९।८४

मागधिक = मगध देशके राजा। राजगृही ( विहार ) का समीपवर्ती प्रदेश मगध कहलाता था २९।३८

मानस = एक प्रसिद्ध सरोवर २९।८५

मालयवती = एक नदी २९।५९

माषवती = एक नदी २९।८४

महिष = एक देश २९।८०

मुकुन्द = एक पर्वत ३०।५०

मुररा = एक नदी ३०।५८

मूला = एक नदी ३०।५६

मुण्डालवती = विदेहकी एक नगरी ४६।१०१

मेरखला नदी = एक नदी २९।५२

## भौगोलिक शब्द-सूची

### य

यमकादि = विदेहका एक पर्वत, जिसे वेरकर सीता नदी बहती है ३७।९८

यमुना = एक प्रसिद्ध नदी २९।५४

### र

रम्नावर्त = एक पर्वत ४७।२२

रथासका = एक नदी २९।४९

रम्या = एक नदी २९।६१

राजत = विजयार्थ पर्वत ३१।१४

राजपुर = जम्बू ढीपके विदेह क्षेत्रमें स्थित विजयार्थ पर्वत-का एक नगर ४७।७३

रुद्ध्यादि = विजयार्थ पर्वत ३७। १७३

रेयिक = एक पर्वत २९।७०

रेवतक = गिरमार पर्वत ३०। १०१

रेवा = एक नदी २९।६५

रोहितास्था = एक महानदी ३२।१२३

रौप्य शैल = विजयार्थ पर्वत ३७।८६

### ल

लाङ्क खातिका = एक नदी ३०।६२

लौहित्य समुद्र = एक सरोवर २९।५१

### च

चङ्गा = एक नदी २९।८३

चस्त = प्रयागके पासका एक देश २९।४१

चस्तकावती = जम्बू ढीपका एक देश ४७।७८

चसुमती = एक नदी २९।६३

चातपृष्ठ = एक पर्वत २९।८९

चासवत = एक पर्वत २९।७०

चिजयपुर = विजयार्थका एक नगर ४७।१४०

चिजयार्थाश्वल = विजयार्थ पर्वत ३५।७३

चिनीता = अशोड्यापुरी ३४।१

चिन्ध्य = एक पर्वत २९।८८

चिन्ध्यादि = भारतका एक प्रसिद्ध पर्वत ४५।१५३

चिन्ध्यपुरी = विजयार्थके निकटमें स्थित एक नगरी ४५।१५३

चिमलपुर = एक नगर ४७।११८

चिन्धापगा = गंगा नदी २६। १५०

चिकाला = एक नदी २९।६१

चूतवस्ती = एक नदी २९।५८

चूषभाद्रि = चूषभाचल, जिसपर चक्रवर्ती अपनी प्रशस्ति लिखता है ३५।७७

केणा = एक नदी २९।८७

केणी = एक नदी ३०।८३

केणुमती = एक नदी २९।५९

कैतर्णी = एक नदी २९।८४

कैजयन्त = समुद्रका द्वार २५। १६७

विदर्म = बरार २९।४०

वैमार पर्वत = एक पर्वत २९।४६

वैदूर्य = एक पर्वत २९।६७

व्याघ्री = एक नदी २९।६४

### श

शातभोगा = एक नदी २९।६५

शर्करावती = एक नदी २९।६३

शिवंकर = मनोरमदेशका एक नगर ४७।४९

शिवंकर = एक वन ४६।४८

शिल्पपुर = विजयार्थका एक नगर ४७।१४४

शुभकन्दी = एक नदी २९।८४

शुक्लमती = एक नदी २९।५४

शीतलगुह = एक पर्वत २९।८९

शोण = एक नदी—सोन २९।५२

शोभानगर = विदेह क्षेत्र पुष्कला-वती देशका एक नगर ४६।९५

शीपुर = सुरम्य देशका नगर

४७।१४

श्रीकट = एक पर्वत २९।८९  
 श्रीपर्वत = एक पर्वत २९।९०  
 श्रेयस्तुर = विजयार्थीका एक  
     नगर ४७।१४२  
 श्वसना = एक नदी २९।८३

## स

समयारा = एक नदी २९।६५  
 समीरा = एक नदी २९।८६  
 समतोदावर = एक नदी २९।८५  
 समतोथा = एक नदी २९।६२  
 सरयू = अयोध्याके निकट बहने-  
     वाली एक नदी ४५।१४४  
 सर्पसरोवर = धार्यकमाल बनका  
     एक सरोवर ४६।१०२  
 साहाचल = एक पर्वत ३०।२७  
 साकेत = अयोध्यापुरी ३७।११  
 मिकतिनी = एक नदी २९।६१

## आदिपुराणम्

सितगिरि = एक पर्वत २९।६८  
 सिंहाकृत = विजयार्थीका एक  
     चेत्यालय ४६।१५८  
 सिंधु = एक नदी २३।६१  
 सिंगा = एक नदी २९।६३  
 सिंहल = एक देश (श्रीलंका)  
     ३०।२६  
 सीता = विदेहकी एक नदी  
     ३७।१८  
 सीममहाचल = सीम नामका  
     पर्वत ४७।१३४  
 सुप्रयोगा = एक नदी २९।८६  
 सुमन्दर = एक पर्वत ३०।५०  
 सुमागधी = एक नदी २९।४९  
 सुरम्य = विदेहका एक देश  
     ४७।१४  
 सुरगिरि = एक पर्वत ४७।६

सुसीमा = विदेहका एक देश  
     ४७।६५  
 सुसीमानगर = बास्तु देशका नगर  
     ४६।२५६  
 सुकाक = एक देश २९।४१  
 सूकारका = एक नदी २९।८७  
 स्वामवर्षी = गंगा नदी २६।  
     १४८  
 स्वधुर्मी = गंगा नदी ३५।३७  
     ३  
 हयपुर = विजयार्थीका एक नगर  
     ४७।१३२  
 हस्तिपानी = एक नदी २९।६४  
 हस्तिनाल्यपुर = हस्तिनापुर  
     ४३।७६  
 हिमाद्रि = हिमवत् नामका कुला-  
     चल ३६।६१



व्यक्तिगत शब्द-सूची	
आ	
अकम्पन— बाराणसीके राजा	४३।१२७
अकम्पन— ब्रह्मकाव्यती देशके विजयार्थपर रहनेवाला एक विद्याधर राजा — पिपला का चिता ४३।१३५	
अक्षमाला— सुलोचनाकी बहिन लक्ष्मीमतीका दूसरा नाम ५२।२१	
अक्षिमाला— सुलोचनाकी बहिन लक्ष्मीमती, इसके दूसरे नाम अक्षिमाला, अक्षमाला ४३।६४	
अग्निदेव— भगवान् वृषभदेवका एक गणधर ४३।४५	
अचल— भगवान् वृषभदेवका एक गणधर ४३।५७	
अजितञ्जय— चक्रवर्ती भरतका रथ २८।५८	
अजितञ्जय— भरत चक्रवर्तीका पुत्र ४३।२८२	
अटवीश्वी— शोभा नवरके शक्ति-वेण सामन्तकी स्त्री ४३।९६	
अतिबल— एक विद्याधर ४३।१०८	
अतिबल— भगवान् वृषभदेवका एक गणधर ४३।५५	
अतिवीर्य— भरत चक्रवर्तीका पुत्र ४३।२८२	
अतिपिङ्गल— पिंगल नामक कोतवालका पुत्र ४३।३६१	
अधिराट— भरत चक्रवर्ती ३६।१९२	
अनवदामति— भरत चक्रवर्तीका एक मन्त्री, जो कि सुलोचनाके स्वयंवरके समय अक्षकीर्तिके साथ गया था ४३।२२	
अ	
अनन्तमति— एक आयिका ४६।४७	
अनङ्गपताका— विद्युदेगाकी सखी ४७।३४	
अनन्तवीर्य— जयकुमारका पुत्र ४७।२।७७	
अनिलवेग— शिवेकरपुरका राजा ४७।४९	
अनुक्तर— चक्रवर्ती भरतका सिहासन ३७।१५४	
अनुपमाम— चक्रवर्ती भरतके चमर ३७।१५५	
अनुपम— भगवान् वृषभदेवका एक गणधर ४३।६६	
अनुपमनु— भरत चक्रवर्ती ३६।१०३	
अपराजित— भगवान् वृषभदेवका एक पुत्र ४३।५९	
अभेद— भरत चक्रवर्तीका कवच ३७।१५९	
अमितमति— एक आयिका का नाम ४६।४७	
अमृत— भरत चक्रवर्तीका पेय रस ३७।१८९	
अमृतकेश्वर— भरत चक्रवर्तीके खाद्य पदार्थ ३७।१८९	
अमृतगर्भ— भरत चक्रवर्तीके खाने योग्य लड्डू आदि पदार्थ ३७।१८८	
अमीर— चक्रवर्ती भरतके वाज ३७।१६२	
अमोघ— चक्रवर्ती भरतका सेनापति ३७।१७४	
अरिन्दम— भरत चक्रवर्तीका पुत्र ४३।२८१	
अरिष्णय— भरत चक्रवर्तीका पुत्र ४३।२८१	
अक्षकीर्ति— भरत चक्रवर्तीका पुत्र ४३।५३	
अ	
अदत्तसिंह— चक्रवर्ती भरतकी रत्नमाला ३७।१५३	
अशनिवेग— एक विद्याधर ४३।२१	
अशनिवर— एक विद्याधर राजा ४३।१७५	
अशोकदेव— मृणालवती नगरीका एक सेठ ४६।१०६	
अहमन्द्र— विद्याधरविशेष ४४।११३	
आ	
आदिगुरु— भगवान् वृषभदेव ३४।४५	
आदिभर्ता— भगवान् आदिनाथ ४।४	
आदिवेश्य— भगवान् आदिनाथ ३५।१०९	
आदित्यगति— उसीरक्षी नगरीका राजा ४६।१४६	
आदित्यगति— हिरण्यवमिका पिता ४७।१८५	
आद्यवेधा— भगवान् वृषभदेव ४२।२	
आष्टलष्टा— भगवान् वृषभदेव ३६।९५	
आनन्द— एक राजा ४६।२८०	
आनन्दिनी— भरत चक्रवर्तीकी भैरी ३७।१४२	
आप्त— जिनेन्द्रका नाम ३९।१३	
आवर्त— विजयार्थके उत्तरमें रहनेवाला एक म्लेच्छ संडका राजा ३२।४६	
उ	
उष्णलमाका— एक वेश्या ४६।३००	
ऐ	
ऐश्वारक— इश्वाकुर्वंशी राजा भरत ३५।६७	

**क**

कच्छ— भगवान् वृषभदेवका एक गणधर ४३।१६५

कनकरथ— कान्तपुरका राजा ४३।१८१

कनकप्रभ— राजा कनकरथ और रानी कनकप्रभाका पुत्र ४७।१८१

कनकप्रमा— राजा कनकरथकी स्त्री ४७।१८१

कनकमाला— राजा प्रजापतिकी रानी ४६।४९

कनकश्री— मूणालवतीके सेठ सुकेतुकी स्त्री ४६।१०४

कमलावती— विमेलसेनकी पुत्री ४७।११४

काकोदर— एक सौपिका नाम ४३।१५३

कालिना— स्वर्गकी एक देवी ४७।२६१

कान्तवर्ती— अनिलवेगकी स्त्री ४७।४९

कामदेव— भगवान् वृषभदेवका एक पुत्र ४३।६६

कामदृष्टि— भरत चक्रवर्तीके गृहपति-रत्नका नाम ३७।१७६

काली— नागीका जीव मरकर काली नामकी जलदेवी हुई ४३।१५

काशिपालजा— सुलोचना ४५।१६९

काशिराज— बाराणसीका राजा अक्षयन ४४।१०

कीर्तिमती— वरकीर्ति राजाकी प्रिय स्त्री ४७।१४१

कीर्ति— एक देवी ३८।२२६

कुबेरकान्त— कुबेरमित्र सेठ और घनवतीका पुत्र कुबेरकान्त ४६।३१

कुबेरश्री— बनुपालकी माता ४७।५

## आदिपुराणम्

**कुबेरकान्त— चक्रवर्ती भरतका अक्षय भाण्डार ३७।१५१**

**कुबेरमित्र— एक सेठका नाम ४६।२१**

**कुबेरमित्रा— ममद्रदन सेठकी स्त्री ४६।४१**

**कुमार— अर्ककीर्ति ४५।४२**

**कुम्भमस्तव्यंशुभृत्यु वृषभदेवकारः कुम्भोऽस्मद्यत्युभृत्यु वृषभदेवका एक गणधर ४३।५२**

**कुरुरघज— लक्ष्मिनामुरके राजा सोमप्रभका पुत्र जयकुमार ३२।६८**

**कौरम्य— जयकुमार ४५।७८**

**कृतमाल— एक देव ३२।७३**

**कृतमाल— एक देव ३।१९४**

**क्षिणिसार— चक्रवर्ती भरतके प्राकार-कोटिका नाम ३७।१४६**

**ग**

**गङ्गा— गंगा नामकी देवी ३७।१०**

**गङ्गा देवी— एक देवी ४५।१४९।१५१**

**गणवद्वामर— चक्रवर्तीकी आज्ञा-का पालन करनेवाले एक प्रकारके देव, जो कि सोलह हजारकी संख्यामें चक्रवर्ती-को निधियों और रत्नोंकी रक्षा करते हैं ३७।१४५**

**गम्भीरावर्त— भरत चक्रवर्तीके शोहका नाम ३७।१०४**

**गाम्भारी— एक आदिका ४६।२३७**

**गिरिकृष्टक— चक्रवर्ती भरतका राजमहल, जिसपर चक्रकर सब दिशाओंको शोभा देता है ३७।१४९**

**गुणपाल—एक मुनिराज ४७।६**

**गुणपाल— श्रीपालकी जयवती रानीसे जरूपन पुत्र ४७।१७२**

**गुणपाल— विदेह सेवके एक तीर्थकर ३७।१६३**

**गुणपाल— राजा लोकपालका पुत्र ४६।२४३**

**गुणवतो— एक आदिका ४६।२१९**

**गुणवती— राजा प्रजापालकी पूत्री ४६।४५**

**गुप्तफलु— भगवान् वृषभदेवका एक गणधर ४३।५२**

**गुप्तफलु— भगवान् वृषभदेवका एक गणधर ४३।५४**

**गुह— भगवान् आदिनाथ ३६।२०३**

**गृहकृष्ण— चक्रवर्ती भरतका वर्षाकालीन महल ३७।१५०**

**गौतम— भगवान् महावीरके प्रतिगण्यर**

**घ**

**घकूधर— भरत चक्रवर्ती ३४।८५**

**चक्रपाणि— , ३४।७१**

**चक्रिन्— , २६।१९**

**चण्डवेग— चक्रवर्ती भरतके दण्ड रत्नका नाम ३७।१७०**

**चन्द्रचूल— भगवान् वृषभदेवका गणधर ४३।६४**

**चित्ररथ— मनोरथका पुत्र ४६।१८१**

**चित्रवेगा— व्यन्तर देवी ४६।३५९**

**चित्रसेमा— अतिकल विद्याधरकी स्त्री ४७।१०९**

**चित्रवेणा— व्यन्तर देवी ४६।३५५**

**चित्ताजननी— भरत चक्रवर्तीकी काकिणी रत्नका नाम ३७।१७३**

**चिलात— विजयाधिके उत्तरवर्ती खण्डमें रहनेवाला एक म्लेच्छ राजा ३२।४६**

**चूडामणि— चक्रवर्ती भरतके भणिका नाम ३२।४६**

**ज**

**जगद्गुरु— भगवान् आदिनाथ ४१।१७**

**जगत्पाल— एक चक्रवर्ती ४७।९**

**जगन्माता—** भगवान्‌की माताका  
नाम ३८।२२५  
**जय—** जयकुमार ४३।५०  
**जय—** भगवान् वृषभदेवका गण-  
धर ४३।६५  
**जयन्त—** जयकुमारका छोटा भाई  
४३।२८०  
**जयधाम—** सर्वदयित सेठका एक-  
मित्र ४३।२१०  
**जयद्रूषा—** सर्वदयित सेठकी  
स्त्री ४३।१९४  
**जयमामा—** जयधामकी स्त्री  
४३।२१०  
**जयवती—** राजा श्रीवर और  
रानी श्रीमतीकी पुत्री  
४३।१४  
**जयवती—** श्रीपाल चक्रवर्तीकी  
स्त्री ४३।१५५  
**जयसेना—** सर्वदयित सेठकी स्त्री  
४३।१९४  
**जयसेना—** श्रीपालके पुत्र गुण-  
पालकी स्त्री ४३।१७६  
**जयवर्मा—** जयवतीका भाई  
४३।१७४  
**जयवर्मा—** एक राजा ४३।१०६  
**जितशास्त्र—** समुद्रदस्तका शांकित  
पुत्र ४३।२११  
**जितद्रूषा—** मृणालधतीके सेठ  
अशोकदेवकी स्त्री ४३।१०६  
**जितवैष्ण—** धरोहर रखनेवाला  
एक पुरुष ४३।२७४  
**जिनस्तिका—** भगवान्‌की माता-  
का नाम ३८।२२५  
**जीमूत—** चक्रवर्ती भरतका स्नान-  
गृह ३७।१५२  
**झोलिवेश—** अशनिवेशकी माता-  
का नाम ४३।२९

त

**तेजोराशि—** भगवान् वृषभदेव-  
का एक गणधर ४३।६३

द  
दिवस्त्रहितका— चक्रवर्ती भरतकी  
सभाभूमिका नाम ३७।१४८  
**दुर्मरण—** एक राजकुमार ४३।११  
**दुमुख—** भद्रदेवका दूसरा नाम  
४३।१०६  
**देवकीति—** एक राजा ४३।१०६  
**देवमाव—** भगवान् वृषभदेव-  
का एक गणधर ४३।१५४  
**देवरम्या—** चक्रवर्ती भरतकी  
कपड़ेकी चाँदीनी ३७।१५३  
**देवश्री—** शोभानगरके राजा  
प्रजापालकी स्त्री ४३।१५५  
**देवश्री—** एक यक्षी, श्रीपाल  
चक्रवर्तीकी पूर्वभवको माता  
४३।१५३  
**देवश्री—** सर्वदयित सेठके पिताकी  
इच्छेश्वरीवृषभदेवकी इच्छेश्वरी  
**देवशमी—** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।१५४  
**देवसत्य—** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।६०  
**ददरथ—** भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।१५४  
**दद्यात्—** भगवान् वृषभदेवके  
समवसरणका प्रमुख श्रावक  
४३।२९६  
**देवाग्नि—** भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।१५५  
**दोबली—** बाहुबली, भगवान्  
आदिनायका सुनन्दा स्त्रीसे  
उत्पन्न पुत्र ३५।१

घ

**धनञ्जय—** एक सेठ ४३।२००  
**धनञ्जय—** धनधीका बड़ा भाई  
४३।१९२  
**धनवत्तरि—** मेरुकदत्त सेठका  
सन्त्री ४३।११३  
**धनदेव—** दण्डधमान एक पुरुष  
४३।२७५  
**धनपालक—** भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।६३

**धनवर्ती—** व्यक्तरेखी ३८।३५५  
**धनवर्ती—** कुंचरमिथ सेठकी  
बच्चीसे स्त्रियांमें एकाग्रा  
नाम ४३।२१  
**धनश्री—** सर्वेसमृद्ध वृणिककी  
स्त्री ४३।१६२  
**धनश्री—** व्यक्तरदेवी ४३।३५६  
**धरणिकम्प—** राजपुरका राजा  
विद्याधर ४३।७३  
**धरणीपति—** मृणालवर्ती नगरोका  
राजा ४३।१०३  
**धारागृह—** चक्रवर्तीका फवारा,  
जहाँ बैठकर वे गरमीको  
शान्त करते थे ३७।१५०  
**धारिणी—** मेरुकदत्त सेठकी स्त्री  
४३।११२  
**धारिणी—** राजा सुरदेवकी स्त्री  
४३।३५२  
**धूमर्ग—** एक विद्याधर ४३।९०  
**धूति—** एक देवी ३८।२२६

न

**नन्दन—** भगवान् वृषभदेवका एक  
गणधर ४३।५५  
**नन्दिमित्र—** भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।६६  
**नन्दी—** भगवान् वृषभदेवका एक  
गणधर ४३।६६  
**नन्दावती—** चक्रवर्तीकी सेनाका  
पड़ाव ३७।१४७  
**नमि—** भगवान् वृषभदेवका एक  
गणधर ४३।६५  
**नमि—** विद्याधर राजा ३८।१८०  
**नरपति—** शिल्पपुरका राजा  
४३।१४४  
**नागमुख—** एक देव ३२।५६  
**नायामर** „ ४३।११  
**नायमाल—** „ ३८।१९१  
**नायमालिला—** नाट्याचार्यकी  
पुत्री ४३।२९९  
**निधिपति—** चक्रवर्ती भरत  
२६।११०

## आदिपुराणम्

निधिराट्—चक्रवर्ती भरत	४१।४२
निधीशा	३६।६३
निधीहवर—	४१।१८
निधीशिन्—	३६।६५
निमैल—भगवान् वृषभदेवका गणधर	४३।६०
नृपशार्युल—चक्रवर्ती भरत	३६।६०
<b>प</b>	
पर्वतभूमि—भरतचक्रवर्तीकी अवधि-रत्नका नाम	३७।१७९
पित्रल—राजा सुरदेवका जीव, नगररक्षक	४३।३५६
पितामह—भगवान् आदिनाथ	४४।२८
पिप्पला—सुखावतीकी सखी	४७।३७५
पुराणपुरुष—भगवान् आदिनाथ	३४।२२०
पुरु—भगवान् आदिनाथ	४३।४९
पुरुकराष्ट्रि—चक्रवर्ती भरतका खास महल	३७।१५१
पुरुषालिका—एक मालिनी की पुत्री	४६।२५२
पुरुषवती—एक मालिनी की पुत्री	४६।२५८
पृथिवी—राजा सुरदेवकी स्त्री	४६।३५२
पृथिवीश्वर—भरत चक्रवर्ती	३६।२०
पृथुधी—मन्त्रीका पुत्र	४६।३०५
प्रजापाल—विदेहक्षेत्र सम्बन्धी पुरुकलावती देशके शोभानगरका राजा	४३।९५
प्रजापाल—पुण्डरीकिणी नगरी-का राजा	४६।२०
प्रजापति—भगवान् आदिनाथ-का गणधर	४३।६३
प्रभञ्जन—एक राजकुमार	४३।१८९
प्रभावती—रतिषेणा कदूतरीका जीव	४६।१४८

प्रभावती—सुलोचनाके पूर्वभवके वर्णनमें जानेवाला एक नाम	
प्रभास—श्यन्तर देवोंका अधिपति	३०।१२३
प्रियकारिणी—प्रभावतीकी सखी	४६।१५५
प्रियमुखी—विन्द्यपुरीके राजा	४५।१५३
प्रियवसा—समुद्रदत्त और कुवेर-सत्राकी पुत्री	
प्रियरति—एक नट	
प्रियसेन—कुवेरकान्तका एक मित्र	४६।३२
पौरवा—भगवान् वृषभदेव सम्बन्धी	
<b>क</b>	
कलुमति—राजा लोकपालका मन्त्री	४६।५१
<b>ख</b>	
खल—भगवान् वृषभदेवका गणधर	४३।६५
वाहुबली—भगवान् वृषभदेवका पुत्र	३४।६७
कुदिसागर—चक्रवर्ती भरतका पुरोहित	३७।१७५
कुहस्पति—मेहकदत्त सेठका मन्त्री	४६।११३
आही—भगवान् वृषभदेवकी पुत्री	४५।२८८
<b>भ</b>	
भगदत्त—भगवान् वृषभदेवका गणधर	४३।६२
भगदेव	४३।६२
भगफल्गु	४३।६२
भवदेव—मृणालवतीके सेठ सुकेतुका पुत्र	४६।१०४
भद्रमुख—चक्रवर्ती भरतका शिलादट	३६।१७७
भद्रवल—भगवान् वृषभदेवका गणधर	४३।६६
भरत—भरत चक्रवर्ती	३८।४४

भरताधीश—भरत चक्रवर्ती	३६।१८६
भरतेश—भरत चक्रवर्ती	३४।३१
भरतेहर—	३४।२२३
भरतेशिन्—	३६।१८८
भीम—एक मुनि	४६।२६२
भीमभुज—एक राजकुमार	४३।१९०
भुजबली—वाहुबली	३४।८८
भुजविक्रमी—	३६।५१
भूतमुख—भरत चक्रवर्तीकी ढाल	३७।१६८
भूतार्थ—मेहकदत्त सेठका मन्त्री	४६।११३
भौयवती—अनिलदेव और कान्त-वतीकी पुत्री	४७।५०
<b>म</b>	
मध्यान—भगवान् वृषभदेवका गणधर	४३।६३
मणिनागदत्त—रतिकुल मुनिके पिता	४६।३६३
मदनवती—पिप्लाकी सखी	४६।७८
मद्रमेघा—एक नटी प्रियरति-नटकी पुत्री	४७।१७
मनु—भरत चक्रवर्ती	३०।१४
मनोरथ—प्रभावतीके पिता वायुरथका पुत्र	४६।१७९
मनोदेव—भरत चक्रवर्तीके एक कणप (पास्त्रविशेष) का नाम	३७।१६६
मनोदेव—एक विशाधर राजा	४७।१७७
महाकछु—भगवान् वृषभदेवका एक गणधर	४३।६५
महाकथाणक—भरत चक्रवर्तीके भोजनका नाम	३७।१८७
महाकाल—महाकाल गुफामें रहनेवाला एक व्यगतरदेव	४७।१०४
महाजय—चक्रवर्तीका पुत्र	४७।२८२

महादेवी— भगवान्‌की माताका  
नाम ४८।२२५  
मित्रफल्गु— भगवान् वृषभदेव-  
का एक गणधर ४३।६२  
महाकलिन्— बाहुबलीका पुत्र  
३६।१०५  
महाबाल— भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।६४  
महामारी— भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।६६  
महाबीर— „ ४३।६३  
महारस— „ ४३।६५  
महारथ— „ ४३।६६  
महासती— भगवान्‌की माताका  
नाम ३८।२२५  
महोधर— भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।५६  
महन्द्रदत्त— राजा अकमपनका  
कन्चुकी ४३।२७८  
महेन्द्र— भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।५६  
मागध— लवण समुद्रका अधि-  
ष्ठाता एक व्यन्तरदेव  
३८।१२२  
मित्रादिन— भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।५६  
मित्रायज्ञ— भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।६२  
मुनिदत्त— „ ४३।६१  
मुनिष्ठ— „ ४३।६१  
मुमिशुल— भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।६१  
मुनिदेव— „ ४३।६१  
मंघसुख— एक देव ३२।५६  
मेघधोषा— एक भेरीका नाम  
४४।९३  
मेघस्वर— जयकुमारका दूसरा  
नाम ४३।१९०  
मेघप्रस— एक विद्याधर ४४।१०८  
मेनका— इन्द्रकी हन्द्राणी  
४३।२५७

मेहकदत्त— एक सेठका नाम ४६।  
११२  
मेरु— भगवान् वृषभदेवका गणधर  
४३।५७  
मेहधन— „ ४३।५७  
मेहभूति— „ ४३।५७  
  
य  
यशःपाल— विदेह क्षेत्रकी पुण्ड-  
रीकिणी नगरीका राजा  
४७।१९१  
यशःपाल— सुखादतीका पुत्र  
४७।१८८  
यशस्वती— राजा प्रजापालकी  
पुत्री ४३।४५  
यशोबाहु— भगवान्‌का एक गण-  
धर ४३।५५  
योगिराज— मुनि बाहुबली  
३६।२०१  
  
र  
रतिकारिणी— प्रियदत्ताकी चेटी  
४६।४२  
रतिकूल— एक मुनि ४६।२६३  
रतिपिङ्गल— एक वैश्याभक्त चौर  
४६।२७६  
रतिवर— एक कबूतर ४६।२२  
रतिवर्मी— मृणालवतीका एक  
सेठ ४६।१०४  
रतिविमला— शिल्पपुरके राजा  
नरपतिकी पुत्री ४७।१४५  
रतिवेणा— मृणालवतीके सेठ श्री-  
दत्तकी पुत्री ४६।१०५  
रतिवेणा— अच्युत स्वर्गके प्रतीन्द्र-  
की देवी ४६।३५३  
रतिवेणा— रतिवर कबूतरकी स्त्री  
४६।३०  
रतिप्रभा— प्रभावतीकी पुत्री  
४६।१८०  
रतिप्रभा— प्रभावतीकी पुत्री  
४६।१८०  
रतिवर— एक मुनि ४७।२२३  
रत्नेश— भरत चक्रवर्ती ३६।१९५

रथचरण हंति— चक्रायुध-चक्रवर्ती  
२८।२०७  
रथवर— एक राजकुमार  
४३।१८९  
रविकीर्ति— भरत चक्रवर्तीका एक  
पुत्र ४७।२८८  
रविप्रस— स्वर्गका देव ४७।२६०  
रविवीर्य— भरत चक्रवर्तीका पुत्र  
४७।२८८  
राजग्रन्थ— हस्तिनापुरके राजा  
सोमप्रभका दूसरा नाम  
४३।८२  
राजराज— भरत चक्रवर्ती ४५।४८  
रिपुजय— भरत चक्रवर्तीका पुत्र  
४७।२८१  
  
ल  
लक्ष्मीवाल— भरत चक्रवर्ती  
३८।२०  
लक्ष्मी— एक देवी ३८।२३६  
लक्ष्मीसती— वाराजसोके राजा  
अकम्पनकी पुत्री ४३।१३५  
लक्ष्मीवती— जयकुमारकी माता  
४३।७८  
लोकपाल— राजा प्रजापालका  
पुत्र ४६।४८  
लोल— एक किसान ४६।२७८  
कोहवाहिनी— भरत चक्रीकी  
छुरीका नाम ३७।११५  
  
व  
वज्र— भगवान् वृषभदेवका एक  
गणधर ४३।६४  
वज्रकाण्ड— भरत चक्रवर्तीका  
धनुष ३७।१६१  
वज्रकेश— एक पुरुष जिसे लोग  
दण्ड दे रहे थे ४६।२७३  
वज्रतुण्डा— भरत चक्रवर्तीकी  
वज्रितका नाम ३७।१६३  
वज्रमय— भरत चक्रवर्तीके वर्म-  
रसका नाम ३७।१७१  
वज्रसार— भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।६४

वज्रायुध— एक राजकुमार ४३।१८९  
 वरतनु— व्याघ्र देवोंका स्थानी ४३।१६६  
 वरकीर्ति— विजयपुरका राजा ४३।१४१  
 वरथमंगुह— एक मुनि ४६।७४  
 वरण— भगवान् वृषभदेवका गण-  
 धर ४३।६३  
 वर्धमानकल्पकृतीका वाटहर्ण ४३।५३  
     गृह ४३।१४९  
 वरसेन— विमलसेनका पुत्र  
     ४३।११७  
 वलि— एक राजकुमार ४३।१८९  
 वसन्तिका— राजा सुरदेवकी  
     एक दासी ४६।३५२  
 वसु— राजाका साला ४६।३१८  
 वसुपाल— पुष्कलावती देश-  
     पुष्टरीकिणी नगरीका  
     राजा ४६।२८९  
 वसुपाल— धीपाल चक्रवर्तीका  
     भाई ४३।४  
 वसुपाल— राजा गुणपालका  
     पुत्र ४६।३३२  
 वसुदेव— भगवान् वृषभदेवका  
     एक गणधर ४३।५६  
 वसुधारक— चक्रवर्ती भरतका  
     कोठार— संचयगृह ४३।१५२  
 वसुन्धर— भगवान् वृषभदेवका  
     गणधर ४३।५६  
 वसुष्ठरा— राजा सुरदेवकी स्त्री  
     ४६।३५१  
 वसुमती— लोकपालकी स्त्री  
     ४६।६२  
 वसुमित्र— भगवान् वृषभदेवका  
     पुत्र ४३।५३  
 वसुवेणा— राजा सुरदेवकी स्त्री  
     ४६।३५१  
 वायुरथ— प्रभावतीका पिता  
     ४३।१८५  
 वायुरथ— मोगपुरका एक विद्य-  
     धर राजा ४६।१४७

वायुशर्मा— भगवान् वृषभदेवका  
     गणधर ४३।५५  
 वारिषेणा— वसुपालकी स्त्री  
     ४६।३३२  
 वालव— एक मनुष्य ४३।१८  
 विचित्राङ्गद— अकम्पनका मित्र—  
     देव ४३।२०४  
 विजयगुह— भगवान् वृषभदेवका  
     गणधर ४३।५८  
     विजयशुभ्रे कल्पकुमारकी स्त्री  
     भाई ४६।२८०  
 विजयघोष— चक्रवर्ती भरतके  
     पटह— नगाडेका नाम  
     ३३।१८३  
 विजयपर्वत— भरतका हाथी-  
     रत्न ३३।१७९  
 विजयमित्र— भगवान् वृषभदेव-  
     का एक गणधर ४३।५९  
 विजयार्थ— नयकुमारका हाथी  
     ४४।१०२  
 विजयार्थ— विजयार्थ पर्वतका  
     अधिष्ठाता देव ३१।४२  
 विजयार्थेश— विजयार्थ पर्वतका  
     स्वामी देव ३३।१२  
 विजयार्थकुमार— विजयार्थपर्वत-  
     का अधिष्ठाता देव  
     ३३।१५५  
 विजयिळ— भगवान् वृषभदेवका  
     गणधर ४३।५९  
 विष्णुप्रभ— हस्तिनापुरके राजा  
     सोमप्रभका दूसरा नाम  
     ४३।८४  
 विष्णुप्रभ— चक्रवर्ती भरतके  
     कुण्डल ३३।१५७  
 विष्णुधर्मा— गुणपालकी स्त्री  
     ४३।१८२  
 विष्णुहेग— एक चोर ४६।२९०  
 विष्णुहेग— एक विद्याशरी  
     ४३।२७  
 विष्णुबोह— हिरण्यवर्मी और  
     प्रभावतीपर उपसर्ग करने-  
     वाला एक चोर ४६।२४८  
 विनमि— भगवान् वृषभदेवका  
     गणधर ४३।६५  
 विनमि— विद्याधर राजा  
     ३३।१८०  
 विनील— भगवान् वृषभदेवका  
     गणधर ४३।६१  
 विन्ध्यकेतु— विन्ध्यपुरीके राजा  
     निवासी राजा ४५।१५३  
 विन्ध्यश्री— विन्ध्यपुरीके राजा  
     विन्ध्यकेतु और राजी  
     प्रियकृशीकी पुत्री  
     ४५।१५४  
 विषुलमसि— एक चारण ऋद्धि-  
     धारी मुनि ४६।७६  
 विमलसेन— धान्यपुरके राजा  
     विशालकी पुत्री ४३।१४७  
 विमलसेन— एक विद्याधर  
     ४३।११४  
 विमलश्री— मृणालवती नगरी-  
     के सेठ श्रीदत्तकी स्त्री  
     ४६।१०५  
 विमला— राजा सुरदेवकी एक  
     दासी ४६।३५२  
 विमलि— एक पुरुष ४६।२३१  
 विद्यामति— चक्रवर्ती भरत  
     २६।८८  
 विराग— जिनेन्द्रदेवका नाम  
     ३३।१३  
 विशामीशः— भरत चक्रवर्ती  
     ४६।१९  
 विशालाक्ष— भगवान् वृषभदेव-  
     का गणधर ४३।६४  
 विशाल— धान्यपुरका राजा  
     ४३।१४६  
 विश्वलेन— भगवान् वृषभदेवका  
     गणधर ४३।५९  
 विश्वेष्वर— जगत्के ईश्वर तीर्थ-  
     कर ३३।२७  
 विश्वेष्वरा— भगवान्की माता-  
     का नाम ३८।२२५  
 विश्वसूज— भगवान् वृषभदेव  
     ३४।२२२

## व्यक्तिवाचक शब्द-सूची

**विषमाचिका—** भरत चक्रवर्तीको  
पादुका ४७।१५८  
**बीतशोका—** श्रेयस्तुरके राजा  
शिवसेनको पुत्री ४७।१४३  
**बीतशोका—** राजा सुरदेवको  
एक दासी ४६।३५२  
**बीतअय—** भरत चक्रवर्तीका  
पुत्र ४७।२८२  
**धाराकुद—** भरत चक्रवर्तीकि  
हाथके कड़ेका नाम  
३७।१८५  
**हृषम—** भगवान् आदिनाथ  
३४।२१६  
**हृषमध्वज—** प्रथम तीर्थकर  
४३।१  
**हृषमसेन—** भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।१५४  
**हृषभेश्विन्—** प्रथम तीर्थकर  
३७।४  
**दैजयन्त—** चक्रवर्ती भरतके  
महलका नाम ३७।१४७  
**दैश्वदण्डक—** सागरसेन और  
सागरसेनाका पुत्र ४७।१९७  
**दैश्वदण्डक—** सागरसेन और  
सागरसेनाकी पुत्री  
४७।१९७

### श

**शङ्कुनि—** भेदकदत्त सेठका  
मत्ती ४६।११३  
**शक्तिरेण—** शोभानगरके, राजा  
प्रजापालका एक सामन्त  
४६।१९६  
**शार्ची—** इन्द्रकी इन्द्राणी ४६।२५७  
**शतधनु—** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।५४  
**शतमाहुर—** भरत चक्रवर्ती  
( शतस्य माता शतमाता,  
तस्या अपत्यं पुमान् शत-  
मातुरः ) ३७।२१  
**शतिप्रभा—** उशीरवती नगरीके  
राजा आदित्यगतिकी स्त्री

**शिव—** एक विद्वाश्वर राजा  
४७।१७५  
**शिवंकर महादेवी—** जयकुमारकी  
रानी ४७।२७६  
**शिवंकर—** पुण्डरीकिणी पुरीका  
एक उद्धान ४६।३४९  
**शिवंकरा—** सुलोचनाकी सपत्नी  
४६।१०  
**शिवकुमार—** एक राजकुमार  
४७।१००  
**शिवक्षेत्र—** श्रेयस्तुरका राजा  
४७।१४२  
**शिवघोष—** एक मुनि, जिन्हें  
सुसीमा नगरमें केवल ज्ञान  
उपर्युक्त हुआ ४६।२५६  
**शुचिसाल—** भगवान् वृषभदेव-  
का एक गणधर ४३।१४४  
**शीरुगुप्ता—** एक मुनि ४३।१८८  
**शीरुगुप्त—** „ ४६।४८  
**श्री—** एक देवी ३८।२२६  
**श्रीदत्त—** मृणालवती नगरीका  
एक सेठ ४६।१०५  
**श्रीधर—** एक राजा ४४।१०६  
**श्रीधर—** श्रीपुरका राजा ४७।१४४  
**श्रीपाल—** एक मुनि ४६।२१७  
**श्रीपाल—** राजा गुणपालका छोटा  
पुत्र ४६।३४०  
**श्रीपाल—** अस्त्र द्वीपके पूर्व विदेह  
क्षेत्र सम्बन्धी पुण्डरीकिणी  
पुरीका राजा ४७।४  
**श्रीमती—** सुलोचनाकी सपत्नी  
४६।१०  
**श्रीमती—** राजा सुरदेवकी एक  
दासी ४६।३५२  
**श्रीमती—** श्रीपुरके राजा श्रीधर-  
की स्त्री ४७।१४  
**श्रेणिक—** राजगृहका राजा, भग-  
वान् महात्मीर स्वामीका  
प्रधान श्रोता ३८।४  
**श्रेयास्त—** हस्तिनापुरके राजा  
सोमप्रभके छोटे माई, दान-  
तीर्थके प्रवर्तक ४३।८२

### स

**संजयस्त—** जयकुमारका छोटा  
भाई ४७।२८०  
**सत्यगुस—** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।६०  
**सत्यदेव—** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।६०  
**सत्यवेष—** शोभानगरके शक्तिवेष  
सामन्तका पुत्र ४६।१५६  
**सत्यमित्र—** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।६०  
**सत्यवती—** एक स्त्री ४६।३०६  
**समार्गदेशिन्—** जिनेन्द्रका नाम  
३९।१३  
**समाख्यिगुप्त—** एक मुनिराज  
४७।१८३  
**समुद्रदत्त—** एक सेठ, कुबेरमित्र  
की स्त्री घनवतीका भाई  
४६।४१  
**समुद्रदत्त—** एक जुआळी ४६।२७९  
**समुद्रदत्त—** सागरसेन और  
देवधीका पुत्र ४७।१९६  
**समुद्रदत्त—** प्रियदत्ताका पिता  
४७।१८५  
**समाट—** भरत चक्रवर्ती ३८।११  
**संबर—** भगवान् वृषभदेवका एक  
गणधर ४३।६१  
**सर्वदिजय—** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।५८  
**सर्वतोभद्र—** चक्रवर्ती भरतके  
गोपुरका नाम ३७।१४६  
**सर्वतोभद्र—** एक महत्वका नाम  
४३।२७८  
**सर्वदेव—** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।५८  
**सर्वविल—** सर्वश, जिनेन्द्रका नाम  
३९।१३  
**सर्ववश—** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।५७  
**सर्ववश—** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।५७

## आदिपुराणम्

**सर्वसमृद्ध-** पुष्टिरीक्षणी नगरी-  
का राजा ४३।१९२  
**सर्वदिवित-** सर्वसमृद्ध विणिक् और  
वनथोका पुत्र ४३।१९३  
**सर्वपित्र-** भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।१५८  
**सर्वसन्ध-** भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।१६३  
**सर्वगुप्त-** भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।१५८  
**सर्वशिल-** कोतवालका नाम  
४३।१३०३  
**सर्वदिविता-** सर्वसमृद्ध विणिक्  
और वनथोकी पुत्री, सर्वदि-  
यितकी वहिन ४३।१९३  
**सर्वदिविता-** समुद्रदत्तकी स्त्री  
४३।१९८  
**सागरदत्त-** सागरसेन और देव-  
धीका पुत्र ४३।१९६  
**सागरदत्त-** एक जुआका लिलाडी  
४६।२०८  
**सागरदत्त-** वैश्ववणदत्ताका पति  
४३।१९८  
**सागरदत्ता-** वैश्ववणदत्तकी स्त्री  
४३।१९९  
**सागरसेन-** देवधीका पति  
४३।१९५  
**सागरसेना-** सागरसेनकी छोटी  
बहन ४३।१९७  
**साधुसेन-** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।१५९  
**सार्व-** जिनेश्वरका नाम ३१।१३  
**सिन्धार्थ-** वाराणसीके राजा  
अकम्पनका मन्त्री ४३।१८८  
**सिन्धु-** सिन्धु नामकी देवी  
७३।१०  
**सिन्धुरेखी-** सिन्धु नदीकी अधि-  
कारी देवी ३२।७९  
**सिंहवाहिनी-** भरत चक्रवर्तीकी  
शब्दा ३७।१५४  
**सिंहाटक-** भरत चक्रवर्तीके  
सालेका नाम ३७।१६४  
**सुकान्त-** वाराणसीके राजा  
अकम्पनका पुत्र ४३।१३४  
**सुकान्त-** हिरण्यवर्मिका देवक  
४३।१६४

**सुकान्त-** भरत चक्रवर्तीका पुत्र  
४३।१६४ ४३।२५३ ४३।२५४ ४३।२५५  
**सुकान्त-** मृणालवती नगरीके  
सेठ अशोकदेव और जिन-  
दत्ताका पुत्र ४३।१०६  
**सुकेशुरी-** वाराणसीके राजा  
अकम्पनका पुत्र ४३।१३४  
**सुकेतु-** एक राजा ४३।१०६  
**सुकेतु-** मृणालवतीका एक सेठ  
४३।१०४  
**सुखावती-** अच्युतस्वर्गके प्रतीन्द्र-  
की देवी ४३।३५४  
**सुखावती-** धरणिकम्प और  
सुप्रभाकी पुत्री ४३।७४  
**सुजय-** भरत चक्रवर्तीका पुत्र  
४३।२८२  
**सुदर्शन-** भरत चक्रवर्तीका  
चक्ररत्न ३७।१६९  
**सुनमि-** एक विद्याधर ४३।११२  
**सुप्रभा-** धरणिकम्प विद्याधर-  
की स्त्री ४३।७३  
**सुप्रभा-** अकम्पनकी स्त्री  
सुलोचनाकी माता ४५।७  
**सुमगा-** अच्युत स्वर्गके प्रतीन्द्र-  
की देवी ४३।३५५  
**सुमद्भा-** भरत चक्रीकी पट्ट-  
राजी ३२।१८३  
**सुमति-** वाराणसीके राजा  
अकम्पनका एक मन्त्री  
४३।१९४  
**सुमली-** सुमित्रा-सुलोचनाकी  
धाय ४३।१३७  
**सुमङ्गला-** भगवान् की माताका  
नाम ३८।२२५  
**सुमुक्त-** अकम्पनका दूत ४५।३४  
**सुरदेव-** एक राजा ४३।३५१  
**सुर्कोचना-** वाराणसीके राजा  
अकम्पनकी पुत्री ४३।१३५  
**सुर्वण्वर्मी-** हिरण्यवर्मिका पुत्र  
४३।२५२  
**सुविधि-** चक्रवर्ती भरतकी छाड़ी-  
का नाम ३७।१४८

**सुद्रता-** भगवान् वृषभदेवकी  
स्त्री ४३।३५३  
**सुसीमा-** अच्युतस्वर्गके प्रतीन्द्र-  
की देवी ४३।३५२  
**सूरदत्त-** भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।१५५  
**सूर्यप्रस-** चक्रवर्ती भरतके छवका  
नाम ३७।१५६  
**सूर्यमिश्र-** एक राजा ४४।१०६  
**सोमदत्त-** भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।१५५  
**सोमगम-** हरितनापुरके राजा  
जयकुमारके पिता ४३।७०३  
**सौनाम्बुद्धक-** भरत चक्रवर्तीकी  
तलवारका नाम ३७।१६७  
**सौम्य-** जयकुमार ४३।१२०  
**सूर्यनितिवेग-** अशनिवेगका पिता  
४३।२९  
**स्वर्यप्रसाम-** भोगपुरके राजा  
वायुरथकी स्त्री ४६।१४८  
**स्वर्यभू-** भगवान् वृषभदेवका  
गणधर ४३।१५२  
**ह**  
**हरिंसु-** भोगवतीका नाम  
४३।१६८  
**हरिवर-** एक विद्याधर ४३।१९०  
**हलमृग-** भगवान् वृषभदेवका  
एक गणधर ४३।१५६  
**हिमबदीश-** हिमवान् पर्वतका  
स्वामी देव ३७।१२  
**हिरण्यवर्मी-** प्रभावसीका पति  
४६।१६०  
**हिरण्यवर्मी-** आदिप्रगति और  
शशिप्रभाका पुत्र रतिवर  
कदूतरका जीव ४६।१४६  
**हेमवत्-** हिमवत् पर्वतके हिमवत्  
कूटपर रहनेवाला एक देव  
३२।८९  
**हेमाङ्ग-** वाराणसीके राजा  
अकम्पनका पक पौत्र  
४३।१३४  
**हेमाङ्गदत्तुणा-** सुलोचना  
४६।१४८  
**ही-** एक देवी ३८।२२६

## विशिष्ट शब्द-सूची

अवश्यकता = विनायक ३११	भौतिकी = पर्यातकी	ऊपरी	अनदुतनतुक = बांधने की सीफिल २९।१३७
अकथन = स्वयं अपनी प्रशंसा करनेवाला ३५।२३	मैदान ३३।३१	हुआ	अनधितमस = गाह अधिकार ३।१७१
अकामसाथक = कामबाण ४७।८०	अधीयान = पढ़ता		अन्यपुष्ट = कोयल ३।७।१३०
अकाक्षरन्द्र = अपमृस्यु ३।४।११	अधीक्षी = अध्ययनकुशल ३६।१०५		अपक्षपत्रित = प्रसवात्मे रहित ४२।२००
अकृतकहनेह = वास्तविक भ्रम ३५।२१७	अध्यध्यम् = मार्गमे ३।१५		अपराग = देपरहित ३५।२३८
अक्षरपद = अविनाशी पद मोक्ष ३।४।१९७	अमगार = मुनि ३।८।७		अपदान = पराक्रम ३।२।७४
अक्षरम्लेच्छ = हिंसादिमे प्रवृत्ति करनेवाला ४।२।१८४	अनन्यज = काम ३।५।१९२		अपश्वान्त = आधकारसे रहित ३।५।७४
अक्षसाद = घरोरपीड़ा ३।६।८७	अनन्तुकामा: = नमस्कार करने- के अनिच्छुक ३।४।२२०		अपचिति = पूजा ४।२।२०७
अमेसर = प्रधान ३।४।२२३	अनंशुक = किरणरहित, नम्भ ३।५।१५७		अपवर्ग = मोक्ष ३।४।२१६
अगोपद = जहाँ गायोंका भी प्रवेश असम्भव है – अत्यन्त निर्जन २।७।३३	अनाविल = निर्दोष ३।१९		अपत्रपा = लज्जा ३।६।२०५
अग्रज = बड़े भाई भरत चक्रवर्ती ३।६।९१	अनाक्षान् = उपवास करनेवाला ३।६।१०७		अपाय = विद्वन ३।४।१९४
अग्रजनमा = शाहाण ४।०।९०	अनिकेत = निवासरहित मुनि ३।४।१७४		अप्रतिष्ठासन = प्रतिष्ठानोंसे रहित शासनवाला ३।४।१४
अग्निकार्य = होम ३।९।१११	अनुदासता = निझुष्टा, नीचता ३।६।९१		अपसम्य = जलमें होनेवाला २।८।१९३
अग्नेत्रता = नमनता ३।६।१३३	अनुदन्ति = हाथियोंके पीछे ४।४।७९		अप्सुज = जलमें उत्पन्न होने- वाला मत्स्य २।८।१९४
अजयूथ = बकरोंका समूह ४।१।६८	अनुद्विग्न = उद्देशरहित ३।४।१८३		अपदकाल = बर्षाश्वतु ३।६।२।११
अजसा = पथर्य ३।४।१३७	अनुपानलः = जूतासे रहित ३।९।१९३		अमिगम्य = आराम्य ३।६।२०२
अजन्माणु = प्रमादरहित ३।९।१००	अनुशाय = पश्चात्पाप ३।५।१९८		अमिचारकिया = मारणक्रिया २।६।४
अजन्मित = बालस्वरहित ३।८।१५५	अनूचान = शासका सामोर्पण अध्ययन करनेवाले ३।४।२।१७		अमिसारिका = श्यभिचारके लिए पतिके घर जानेवाली बेद्या ३।५।१७०
अतिकूम = दोष – अतिवार ३।१।१३५	अनेकप्रेक्षित = हाथीकी चेष्टा ४।६।३।१२		अम्बरिल = अग्निके समुक्त ४।४।१८६
अतिगृह्णन्ता = अत्यासक्ति ३।५।११०	अन्तर = स्थान ३।४।१८५		अम्बुषकाश = खुला आकाश ३।४।१५८
अतिलिङ्ग = अक्षमा, कोष ३।४।१२०	अन्तर = भेद ३।५।११		अम्बवनि = अजन्म २।८।१६५
अतिरेकिणी = अधिक ३।४।२।११	अन्तःप्रकृतिज = मूलवर्गमें उत्पन्न हुआ ३।५।१८		अमिङ्ग = जानकार ३।४।१३६
अतिवालिङ्ग = अतिमूर्खता ४।१।३२	अन्तीय = अनुकूल ३।५।१२३		अम्बर्ण = निकट ४।१।४७
अदीन्द्र = मेष्यर्वत ३।४।३२			अम्ब्र = पात्र ३।४।१९८
अदीपा = सुमेरु पर्वत २।६।७२			

अमा = साथ ४५।१७  
 असुत्र = परलोकमें ३४।११०  
 अमोघपाती = अव्यर्थपातो  
     ३५।१७२  
 अम्बर = आकाश, वस्त्र ३६।२२  
 अम्बरमणि = सूर्य ३४।१०  
 अरनि = मुझे बंधा हुआ हाथ  
     ३५।१३१  
 अररीपुट = किंवाड़ोंकी जोड़ी  
     ३१।१२४  
 अरण्यानी = भयंकर अटवी  
     ३४।८१  
 अर्क = सूर्य ३५।१६९  
 अर्ककान्त = सर्वकान्तमणि  
     ३४।४४  
 अलक = केश, आगे के बाल  
     २६।६  
 अलिनी = भ्रमरी ३५।२३५  
 अल्पोदक = घोड़े कलबाला  
     ३५।१४४  
 अवधृभयष्टिका = सहारेकी  
     लकड़ी ३७।४३  
 अवन्ध्य = अव्यर्थ ३५।८६  
 अवश्याय = बर्फ, ओसकी बूँदें  
     २७।१०३  
 अवस्कराण = विषाका भोजन  
     ४६।२८१  
 अवाय = परशास्त्रचित्ता  
     ४१।१३८  
 अवारणारीण = दोनों पार, तटों-  
     में होनेवाले २९।७४  
 अव्यध्या = पीड़िते रहित  
     ३४।१५६  
 अशन = आहार ३४।१९२  
 अशनीयित = बज्जे समान  
     ओचरण करनेवाला  
     ३७।१६६  
 अशीय = घोड़ोंका समूह ३६।३  
 अशुमत = सूर्य ३४।८  
 अशाखत = भंगुर, नाशशील  
     ३४।१२१  
 अशिव = अमोगलिक ३४।१८२

## आदिपुराणम्

असन = सहजनके बृक्ष २६।५२  
 असाध्वस = निर्भय ३४।१७९  
 असंस्कृत = संस्काररहित ३५।६३  
 असिपुष्टिका = शुरी ३४।१६५  
 असुमति = मूर्ख, दुर्बुद्ध २८।१८२  
 अस्मदुपश्म = मेरे ढारा ब्राह्मिभृत ४१।१२  
 अस्त = औसु ३५।२३१  
 अह = दिन ३५।१५१  
 अंहस् = पाप ४४।६७  
 अहिमस्तिष्ठ = सूर्य ३५।१६०  

### आ

आकम्पनि = अकम्पनके गुत्र  
     हेमोगुद आदि ४३।२३१  
 आकोशवाराणी = आकाशलपी  
     समुद्र ३५।१६३  
 आकालिकी = अस्थिर २९।१०७  
 आकुलाकुल = अत्यन्त आकुल  
     ३८।१२४  
 आगःपराग = अपराधकी घूलि  
     ३५।१२७  
 आगाढ = प्रविष्ट ३६।५३  
 आजि = युद्ध ४३।११९  
 आजीमुख = रणाप्रभाग ३७।१६८  
 आजानेय = उच्चजातिके घोड़े  
     ३०।१०८  
 आत्रिक = इस्तोक - सम्बन्धी  
     ३८।२७१  
 आधूत = बहुत खानेवाला २८।७६  
 आध्यानमात्रम् = स्मरण करते  
     ही ३६।६६  
 आधूति = अकम्पन ३५।१४७  
 आधोरण = हाथीके महावत  
     ४४।२०५  
 आनन्दधु = हर्ष ३४।५५  
 आनाय = जाल ३५।११  
 आनुषक्षिणी = गौण ४१।११९  
 आपाटल = कुछ-कुछ गुलाबी  
     ३७।९०  
 आसीय = आप-जिनेन्द्र सम्बन्धी  
     बचन ३९।२  
 आसिष = मांस ३९।२७

आमुक्रिक = परलोकसम्बन्धी  
     ३८।२७१  
 आमुख्यायण = प्रसिद्ध पितासे  
     उत्पन्न पुत्र ३९।१०९  
 आयुशलानक = आयुर्ली खम्भा  
     ३६।८८  
 आयुधालय = शस्त्रागार ३३।८५  
 आयुष = युद्धपर्यात ४५।३  
 आयति = उत्त रकाल ४१।५४  
 आयुरमन् = हे चिरंजीव ३५।८८  
 आसित = शब्द ३४।१७८  
 आरह = आरह देशके घोड़े  
     ३०।१०७  
 आरेका = शंका ३९।१४३  
 आजुनम् = चौदोका ३३।९६  
 आषभी = भगवान् ऋषभदेव-  
     सम्बन्धी ३४।२१६  
 आलष = कुपित ३४।१८६  
 आलान = हाथी बैधनेका स्तम्भ  
     २९।१६६  
 आवर्जित = वशीकृत ३७।८७  
 आवस्थ = स्थान ३४।१३२  
 आवान् = आता हुआ २९।१६४  
 आविष्ट = प्रविष्ट, युसा हुआ  
     ३५।१०  
 आशा = दिशा और अभिलाषा  
     २६।२२  
 आशितसम्बव = सन्तोष, तृप्ति  
     ३४।११८  
 आश्रुत निष्ठिलि = शास्त्रकी  
     समाप्ति पर्यन्त ३८।१६१  
 आशु = शीघ्र ३९।२१०  
 आसक्तमध्य = निकटभव्य  
     ३९।८२  
 आसिस्त्रादयिषु = स्वाद लेनेका  
     इच्छुक ४३।४७  
 आसेनुहिमादि = सेनुबन्धसे  
     लेकर हिमगिरि तक  
     ३७।२०३  
 आस्माका = मेरी ३८।५  
 आस्थायिका = सभा ४६।२९९  
 आहव = युद्ध ३५।१२९

**आहार्य** = आभूषण ३।१२१  
इ   
इज्या = पूजा ३।१२४  
इन = स्वामी ४।४।२६५  
इम = हाथों ३।४।४३  
इषुधि = तरकश ३।६।१२  
इष्टिकालिक = इष्टिकालिक यज्ञ ३।४।४७५  
इह = इस लोकमें  
इ  
ईडा = स्तुति ३।६।७५  
ईडित = स्तुति ४।१।२६  
**उ**  
उद्गमरप्रिय = युद्धके प्रेमी २।९।१२  
उच्चावच = नानाप्रकारके  
३।५।२४८  
उकड़ा = उक्कड़ा ३।५।१८७  
उत्कौश = घूस ४।६।२९६  
उत्सेक = गवे ३।६।१२९  
उत्तरसत = खेदखिल ४।१।२  
उदगाह = जलप्रवेश ३।७।१२६  
उदच = उत्तर दिशा ३।०।१५  
उदन्यन् = प्राप्ति युक्त होता  
हुआ ३।४।१०७  
उदन्वान् = समूद्र ३।५।१८४  
उदर्क = फल ३।५।१  
उदात्र = काटनेके लिए हैसिया  
जैवा उठाये हुए ३।५।१३०  
उदितोदित = एकसे एक बढ़कर  
अम्बुदयसे युक्त ४।३।१९०  
उद्देश = स्थान ४।०।१७  
उद्द = प्रशस्त ३।५।२४४  
उद्दिष्ट = अपने सदैश्यसे निर्मित  
३।४।१९९  
उद्गस = नाक ऊपर करनेवाला  
अहंकारी ३।९।१०९  
उपक्षेत्रम् = खेतोंके समीप ३।५।३८  
उषधि = बाह्य और अस्थन्तर  
परियह ३।४।१८९  
उष्णम् = आश्रयभूत ३।०।१७  
उपर्युक्त = आलिङ्गित ३।६।११०  
उष्णहृषित = वृद्धिको प्राप्त हुआ  
३।४।१३०

उपनाह = बाँधना ३।२।२७  
उपशब्दभूत = गीवोंको निकट-  
वर्तिनी भूमि ३।५।४०  
उपाधिक = वरणके समीप  
३।६।१६५  
उपात्त = स्वीकृत-गृहीत ३।८।२१  
उपालब्ध = उल्लाहना दिया हुआ  
३।९।११३  
उपोषित = उपवास करनेवाला  
३।५।१२१  
उरसुक = जलती हुई लकड़ी  
३।४।५५  
उरुवण = बहुत भारी ३।७।१५८  
**क**  
ऊर्जस्त्र = बलिष्ठ ३।७।१८७  
ऊर्जिता = बलिष्ठता २।८।१३४  
**ए**  
एकतान = मुहूररूपसे लगे हुए  
तन्मय ३।८।२२१  
एकाशली = एक लड़का हार  
३।७।९६  
एणाजिन = मृगचर्म ३।९।२८  
एप्स्यू = पाप ३।५।१५५  
एन्प्रकर्षतः = पापकी अधिकता-  
से ४।१५  
**ओ**  
ओक्षक = बैलोंका समूह २।९।१६२  
ओत्पातिक = उत्पातको सूचित  
करनेवाला ३।५।१५  
ओपालिक = उपासकाचार  
सम्बन्धी ३।९।१५  
**क**  
कक्षा = लुलना ३।५।१०५  
कज्जल = कमल २।६।११  
कदङ्कर = बुस (भूसा) २।९।१५६  
कणिश = बाले २।६।१७  
कणिशमञ्जरी = धानकी बाले  
३।५।१३१  
कदर्यक = कृपण २।९।११०  
कबरी = चोटी ३।७।१०७  
कमलावती = लकड़ी ३।५।४५  
कर = किरण, टैक्स ३।५।१५७  
करक = ओले बद्दा २।९  
कराल = सीकण भर्यकर ३।६।१६५  
कर्णजाह = कानोंके पास  
३।५।२०४  
कहि = कब ३।५।१४९  
कलकण्ठी = कोयल ३।७।१२१  
कलज = स्त्री ३।४।११९  
कलम = हाथीके बच्चे ३।६।१६८  
कलम = धान ३।५।३२  
कलधौतमय = स्वर्णनिर्मित  
४।३।२६१  
कलपाधिप = हन्द ३।९।१५  
कादम्बजाया = कलहंसी ३।६।१०  
काञ्चीस्थान = नितम्ब ४।३।१४३  
कामरूपक्रियाविनी = मनवाहा  
रुप बना देनेवाली ४।६।३।१७  
कामितसंसिद्धि = इष्टिदि  
३।४।२।१६  
कामिनीकलकाञ्जी = दिव्योंकी  
सुन्दर मेललाए ३।५।२०३  
काम्बोज = काढ़ुली घोड़े ३।०।१०७  
कायभान = कुटियोंके प्रकार  
३।७।१३२  
काहुल = अस्फुट कचन बोलने-  
वाले २।७।२१  
किमीय = किसका २।८।१४३  
किलावक = केसर २।६।११  
किलासिन = कुछी ३।३।२२  
कुहिमभूतल = फसे २।६।९  
कुक्षिकास = जही रस्तोंका  
ब्यापार होता है ३।७।७०  
कुटिय = हलमें लगी हुई बीज  
बोनेकी नले ३।७।६८  
कुम्भ = टेढ़ी अंगुलीवाला  
४।७।१३८  
कुम्होंही = कुप्पके समान बड़े-  
बड़े धनवाली गर्मे २।६।४६  
कुख्य = मकानकी देहरी २।९।५७  
कुम्ह = भाला ३।७।१५४  
कुम्हक = अस्त्रपूरमे रहनेवाले  
बोने मनूष ३।७।१४१

**कृष्णित्व** = भूपतिष्ठना, खोटा  
राजपत्र ३०।१०  
**कुमार** = बालक ४८।४४  
**कुलाल** = कुम्हार ३५।२६  
**कुल्या** = नहर ३५।४०  
**कुवलय** = पृथ्वीमण्डल, नील-  
कमल ४३।७७  
**कुमुक्तु** = वसन्त २७।८३  
**कुमुक्याण** = कामदेव २७।१९  
**कूरित** = पश्चियोंका कलरब  
२३।५५  
**कृतक्षण** = कृतोत्साह ४१।१३९  
**कृत्तकृत** = व्यर्थ-व्यर्थ ३६।६७  
**कृत्तदी** = कृतज्ञ ४३।११७  
**कृतसङ्गर** = कृतप्रतिज्ञ ४३।५३  
**कृतानुकृधन** = जिससे आग्रह  
किया गया ३८।१५  
**कृतान्तत्राकृ** = व्यमवचन ३९।२२  
**कृत्स्ना** = सम्पूर्ण ४२।२०८  
**कैतन** = गृह ४७।२०७  
**केनुमालाकुल** = पता काभोंके  
समूहसे उपाप्त ४१।८४  
**केरल** = केरल देशके लोग २९।९४  
**केवलार्क** = केवलज्ञान सूर्य सूर्य  
४१।३  
**कोक** = चक्रवा ३५।२३०  
**कोककान्ता** = चक्रवी ३५।२२३  
**कोटी** = अथभाग, चरम सीमा  
३०।१३०  
**कोषा** = म्यान ४७।१३५  
**कौशिक** = तलवार ३६।११  
**कौबेरी** = उत्तर दिशा ३१।१२  
**कौशिक** = उलू ४१।३३  
**क्रमण** = क्रमको जाननेवाला  
३५।३  
**क्रियकीत** = मूल्य देकर खरीदा  
हुआ ३४।१९५  
**क्रमांडज** = चरणकमल ३५।२४५  
**कर्म** = सेव ३४।११७  
**अत्रिय** = एक वर्ण ३८।४६  
**क्षीरस्यत्** = दूधकी इच्छा रसने-  
वाला २६।४८

**क्षेपीयस्** = अत्यन्त शीघ्र ४१।१७  
**क्षेम** = प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा  
करना २९।२८  
**ओदीवान्** = अत्यन्त शुद्र ३४।१४  
**क्षमा** = भूमि ३४।७६  
**क्षमाज** = वृक्ष ३५।१५३  
**क्षमाध्र** = पर्वत ३७।१६६  
**क्षमात्राण** = पृथिवी रक्षा ३७।८३  
**क्ष**  
**क्षग** = बाण ४४।१२१  
**क्षेत्राद्युपिदाधर** ४७।४१  
**क्षणिका** = वियोगिनी स्त्री,  
जिसका पति सकेत देकर  
भी न आवे ३५।१९३  
**क्षरशृणि** = सूर्य २६।२११  
**क्षरांशु** = सूर्य २७।९३  
**क्षलकल्पाः** = दुर्जनके समान  
४४।११८  
**क्षवर** = विद्याधर ४३।१७  
**ग**  
**गजता** = हाथियोंका समूह  
३०।४८  
**गजप्रेक** = श्रेष्ठ हाथी ३०।१०५  
**गन्धर्व** = व्यन्तर देवीका एक  
भेद ४१।२६  
**गरुडप्रावसङ्घर्षि** = नीलमणि-  
के समान वर्णवाला  
३६।४९  
**निर्वृति** = शारीरिक सुख  
३७।१२७  
**गाम्धार** = कान्धारके घोड़े  
३०।१०७  
**गुणमाम** = गुणोंका समूह ३५।५०  
**गुप्ति** = रक्षा ३६।११७  
**गुह** = पिता, सगवान् वृषभदेव  
३६।१०४  
**गुरु** = पिता ३८।१३७  
**गुरुकृष्ण** = पितृसुल्य ४४।८१  
**गुरुसुगृह** = गुरुकी कृपा ३५।६५  
**गुरुफद्ग** = गुटने प्रयाण  
३३।७१  
**गूच्छ** = लोभी ३५।१३५  
**गृहकोकिल** = छिपकुलो  
४६।३३८  
**गोशृष्टि** = पहली बार वियानी  
हुई गाय २६।४४  
**गोमत्स्वलन** = स्त्रीके समने  
हृदयमें बसी हुई दूसरी  
स्त्रीका नाम उच्चरित  
होना ४६।७  
**गोमत्स्तिका** = धेष्ठगाये २६।४५  
**गोमस्यगृह** कृष्ण ४५।१२१  
**घ**  
**घनहत्तनित** = मेघगर्जना ३७।१३१  
**घस्त्र** = विनाशक ४४।१०६  
**च**  
**चक्र** = चक्रवर्तीका एक अजीव-  
रत्न ३७।८४  
**चक्राङ्ग** = चक्रवा २७।२८  
**चक्रोद्योत** = चक्ररत्नका प्रकाश  
३६।२३  
**चक्षुःश्रवस्** = सीप ३६।१७६  
**चक्षापुरुष** = लूणका बना पुरुष  
२८।१३०  
**चण्डमहत्** — तेजवायु - आधी  
३६।१  
**चतुष्क** = चौराहा २६।३  
**चतुरस्त्र** = समचतुरस्त्रसंस्थानसे  
युक्त मनोज ३७।२८  
**चमरिस्त्र** = चमर ३५।२४४  
**चरमाङ्गधर** — लद्दस्वमोक्षगामी  
३६।३९  
**चर्याशुद्धि** — चारित्रकी शुद्धता  
३४।१३५  
**चातुरन्त** — चतुर्दिग्मुख ३५।११२  
**चातुरमृत** = सब दिशाओंका  
स्वामी चक्रवर्ती ३८।८५  
**चार्मीकर** = स्वर्ण ३६।५०  
**चारमट** = शूरवीर ३१।५५  
**चरचक्षुः** = गुप्तचरलूपी नेत्रसे  
युक्त ४५।४१  
**चित्तजम्बन्** = काम ३७।४२  
**चुन्दुक** = प्रतीत-प्रसिद्ध २९।९४

चौलिक = चौलदेशके	लोग	त
२३।१५		
ज		
जगद्गतगद्गार = लोक और		तक = कुत्सिता : ते तके ३३।६३
अलोकणी भवन ३५।२४०		ज. विज्ञानशास्त्री = विज्ञानशास्त्री (विज्ञान) २३।१८५
जइमिय = मूर्खोंके प्यारे, (पक्ष-		२३।१८६
में जलप्रिय, जिन्हे जल प्रिय		तिव्य = कार्यित ३३।१६
है ) २६।१९		त्रिक = त्रितम्ब ३।१।३२
जयसाधन = विजयी सेना		त्रिपथगा = गङ्गा ३।१।३५
३५।७५		त्रिदिवीक्ष = देव ३।१।६०
जयाङ्क = विजयका साधन		त्रिधामक युद्ध = १. दृष्टियुद्ध,
३६।३०		२. जलयुद्ध, ३. मलयुद्ध
जलवाहिन् = मेघ ३४।१५८		३।४२
जलार्द्धा = पंख ३५।१९३		त्रियामा = रात्रि ३।१।३०
जातकर्म = जन्मरोक्तार २६।४		द
जातरूप = नगममुद्गा ३९।७८		दक्षिणायरदिग्भाग = मैफृत्य-
जातरूप = सुवर्ण ४५।१७२		दिशा ३।०।१
जाति = जन्म ४६।३२५		दण्ड = दण्डरत्न अथवा सेना
जात्यश्व = उच्च जातिके दोरे		३।१।१२६
३७।१०५		दरी = पवतको गुफा ३।१।८८
जलाशय = जलका आधार,		दरोहित = कुछ-कुछ प्रकट
जड़बुद्धिवाला २।१।७२		३।७।५८
जलोर्णव = जलका समूह		दर्भेशश्वा = कुशाकी शश्वा
२।१।१६		३५।१२५
जिस्वरी = जीतनेवाली ३।३।६१		दशनष्ठद = ओढ ३।५।२१।१
जिनसूष = जिनेन्द्र ३।१।२२३		दाक्षिणात्य = दक्षिणदिशा-
जिनाची = जिनप्रतिमा ३।१।३१		सम्बन्धी ३।०।३३
जिनास्थानभूमि = समवसरण-		दोमन = भवनवासी देव ४।।।।।२६
भूमि ४।।।।।८		दिग्मिभवदन = दिग्मजका मुख
जिष्णु = विजयी ३।१।५४		३।५।२३४
जीमूतदन्तिन् = मैवर्णी हाथी		दिधक्षा = जलानेका इच्छुक
२।१।५५		४।।।।।१
जीवकाय = जीवोंका समूह		दिविजनाथ = इन्द्र ३।५।२६८
३।४।१९४		दुष्कलश्वत् = खोटी स्त्रीके
जुहूष्टि = बुलाना चाहता है		समान ३।६।७।१
३।४।१०३		दुष्कुलित = खोटे शास्त्र ४।।।।।४९
जैश = विजयी ३।४।।।।।७		दीक्षा = धृत धारण करना ३।।।।।३
ज्यायश्व = अत्यन्त ऐष		दुरारोह = जिनपर चढ़ना कठिन
३।४।।।।।२४		है ऐसे पर्वत २।।।।।७२
द		दुरापा = दुष्प्राप्य ३।४।।।।।६८
हृष्टभ = पत्नया सौंप ३।५।।।।।३		दुर्लित = गवित मस्त ३।४।।।।।०४
		दूना = दुखो होती हृद
		३।५।।।।।१०

तक = कुत्सिता : ते तके ३३।६३	
२३।१०७	
ततुश्चाण = कवच ३।३।१५९	
ततुभूषा = पारीरहपी सौंचा	
३।४।२१२	
ततुभूष = कृषा ३।४।२०८	
ततुश्चक = कवच ३।३।१४	
तत्र = स्वराष्ट्र चित्ता ४।।।।।३७	
तत्त्वभूयस्त्व = सेनाकी अधिकता	
३।६।३०	
तपस्त्वनपाद = तपहपी अभिन	
३।६।११३	
तपात्यय = वर्षी क्रृतु ३।३।११	
तमिला = औषधी रात ३।४।१८४	
तमामुख = गविका प्रारम्भ	
३।०।७७	
तमोऽवगुपिष्ठा = अन्धकारसमूह-	
से आच्छादित ३।५।१३०	
तरण = सूर्य ३।३।१००	
तरणाहोपर्जीविन् = नाव चला-	
कर ३।५।७	
तक = कुत्सित आजीविका करने-	
वाला ३।५।१७०	
तलवर = कीतवाल ४।।।।।०४	
तारकित = ताराओंसे व्याप्त	
२।।।।।२६	
तिलिक्षा = शमा ३।४।।।।।२९	
तिमांशु = सूर्य ३।५।१५२	
तिर्णिट = मुकुट २।।।।।५८	
तिमिरक्षित् = अन्धकारहपी	
हाथी ३।५।२३२	
तुज् = पुत्र ४।।।।।७	
तुरुषक = तुर्की चोड ३।०।१०६	
तेजः = भासण्डल ३।५।२४४	
तेतिल = तेतिल देशके घोड़े	
३।०।१०७	
तोक = पुत्र ४।।।।।७	
त्रिपुक्षमस्त = तुम्हारे-द्वारा प्रव-	
तित ३।४।३४	

## आदिपुराणम्

**दृष्ट्यकुटी** = कृष्णका तम्बु  
 ३०।१५३  
**दृष्ट्यदाला** = कपड़ेकी चाढ़ी  
 ३०।२६  
**दृष्ट्यगत** = दृढ़प्रतिक्ष ३०।२०८  
**दृष्ट्य** = गूर्हा हुई ३०।१४१  
**देव** = स्वर्गके निवासों देव  
 ४।२६  
**देवहस्त** = विचित्राङ्गुल नामक  
 देवके द्वारा किया हुआ  
**देवदीर्घकि** = ठारी दीर्घकि जूलिडिल्लाम्प  
**देवभूय** = देवत्व ३०।१०८  
**देवसन्धि** = दो देशोंके मिलनेकी  
 सीमाएँ ३५।२७  
**दोषात** = मुजाओंका आघात  
 ३६।७९  
**दोदण्ड** = भूजदण्ड २९।१५  
**देवज्ञान** = उत्तीर्ण शास्त्र  
 ४।१४८  
**दैव्य** = द्वारा दोनोंवाले २९।७४  
**द्वेराज्ञदुष्प्रियता** = दो राजाओंके  
 राज्यसे बद्धप्राप्ति ३४।४७  
**द्वोणासुख** = बन्दरगाह ३०।६२  
**द्वन्द्व** = परोपह ३६।११६  
**द्विजमन्** = द्विज ३८।४९  
**द्विजिङ्गला** = दुष्टा, कुट्टला  
 ३४।८८  
**द्विषष्टक** = शत्रुओंका समूह  
 ३६।६५  
**द्विष्ट** = वारह २८।११५  
**द्विद** = हाथी ३५।११५  
**द्वुसद्** = देव ३५।७०  
**द्वुभणि** = सूर्य २९।१०८  
  
**ध**  
**धनाया** = तृष्णा ३६।७८  
**धनोल्लनसुच्छुता** = घन इकट्ठा  
 करनेको तत्परता ३५।१२२  
**धन्वन्** = धनुष, धारण करनेकाले  
 ३७।१११  
**धव** = पति ४३।९८  
**धर्मसर्ग** = धर्मसुष्टि ४।१३२

**धर्मी** = धर्मयुक्त ३४।१४०  
**धात्रीकर्त्त** = धायके समान  
 ४।३।३३  
**धीरित** = वैर्य-भरे बचन ३६।२१  
**धुर्य** = धुरन्धर ४३।८५  
**धूर्णत** = महावत ३६।१०  
**धूमध्वज** = अग्नि ४४।१०  
**धृतिप्रावार** = धैर्यरूपी ओढ़नी  
 ३४।१५३  
**धृतिसंबंधित** = धैर्यरूपो कवचसे  
 ३५।१५४  
**धेनुका** = हयिनी २९।१५६  
**धेनुष्या** = बैधानमें दो हुई गायें  
 २६।४८  
**धौरित** = घोड़ोंकी एक चाल।  
 घोड़ोंकी चालको बारा  
 कहते हैं। इसके पांच भेद  
 हैं - आस्कान्दित, २ धौरि-  
 तक, ३ रेचित, ४ बलिगत  
 और ध्लुत। ३१।१  
**धौरेव** = थेषु ३८।८  
**ध्याति** = ध्यान ४५।४  
**ध्याद्वक्ष** = कौए ४।१।३७  
  
**न**  
**नदा** = बैधी हुई २६।८  
**नन्दधु** = आनन्द ३५।२  
**नभोग** = विद्याधर ३५।७३  
**नर्मदा** = क्रीड़ा देनेवाली ३०।८५  
**नवमह** = नया पकड़ा हुआ  
 २९।१२२  
**नवोद्या** = नवी विवाहित ४४।२०७  
**नागस्थितुन** = नाग-नागोंका जोड़ा  
 ४।१९०  
**नाथवंश** = वाराणसीके राजा  
 अकम्पनका वंश ४४।२७  
**नार्यत्व** = राज्य ( नृपते: कार्य  
 नार्यत्वम् ) ४३।८६  
**नालिकं** = सत्य ३५।१९६  
**निकार** = तिरस्कार ४६।३।१६  
**निगम** = गवि २६।१३४  
**निशल** = बैही ४३।७६  
  
**निगलस्य** = बैड़ीमे पढ़ा हुआ  
 ४२।७६  
**निष्मता** = अधीनता ३७।१४२  
**निलुल** = बैतका बृक्ष २७।४६  
**नितम्बिनी** = स्त्री ३५।१९४  
**निष्वन्** = मृत्यु २८।१३४  
**निषुब्धन** = मैयुन ३५।२१८  
**निष्यान** = अवलोकन ४।१।६८  
**निनृत्यु** = नृत्यके इच्छुक  
 ३६।१७४  
**नियति** = ईति, भाग्य ३५।१६७  
**नियाम** = नियम ४५।६  
**नियुद्ध** = वाहुयुद्ध, कुरुतं ३६।४५  
**निरारेका** = सन्देहरहित ३०।२३  
**निरुद्ध** = प्रसिद्ध ३७।२६  
**निर्वात** = बच २६।७७  
**निर्वात - निर्वेष** = वज्रयातका  
 शब्द २८।१२२  
**निर्मल** = निरतिवार (निर्मम =  
 ममतारहित) ३४।१७१  
**निर्मूल्य** = सोहरहित ३४।१७३  
**निवाणिक्षेत्र** = मुकितस्वाम ४०।८९  
**निविष्ट** = चपभूत ३३।१९  
**निर्वृति** = सुख ३७।१४  
**निर्वर्तित** = पूर्ण-समाप्त ३७।१  
**निर्णिकता** = प्रभालित ३३।१२६  
**निर्विष्ट** = बैठे हुए ४२।१  
**निःश्रेयस** = मोक्ष ३३।१  
**निशात** = तीक्ष्ण ३६।११  
**निषधाद्वि ( भी )** = निषध  
 कुलाचल ३३।८०  
**निष्प्रवाणी** = नदीन शास्त्र,  
 अभी हाल यन्त्रसे उतारे  
 हुए ३८।५४  
**निष्ठा** = पूर्णता ४२।१०७  
**निसर्गसुखग** = स्वभावसे सुन्दर  
 ३७।२९  
**निस्तृष्टार्थ** = राजदूत ४३।२०२  
**नीरेक** = निःसन्देह ३५।१३८  
**नोहुत्तम्बुद्ध** = नोहतनियुगता  
 ३५।१२  
**नृपद्म** = नीच मनुष्य ३५।११४



प्रत्येय = विश्वास दिलानेके  
योग्य ३५।१२४  
प्रथन = युद्ध २८।१३४  
प्रभाष्य = प्रकृष्ट कान्तिसे युक्त  
३७।१२३  
प्रभूत = बहुत भारी ४१।१७१  
प्रमथ = भूत ४१।१३७  
प्रयुक्तिमा = युद्ध करनेकी  
इच्छा ३६।१७  
प्रवयस् = युद्ध २७।१२०  
प्रवालबन = भूमि का बन  
अर्थात् भूमि का बन ३६।१२०  
प्रसोमुषी = शान्त होती हुई  
२८।१५४  
प्रश्य = विनय ३५।१०६  
प्रश्यी = विमयी ३५।७  
पष्ठ = थोड़ा ४३।३८  
प्रस्थ = शिखर ३५।१५३  
प्रसादा = हठपूर्वक, जबरदस्ती  
३५।१७२  
प्रह्लाद = नम्रता ३४।२२३  
प्राकृत = साधारण पुरुष ४३।४५  
प्राकृतनी = पूर्वभव-सम्बन्धिनी  
३६।१८८  
प्राण्य = पूर्वदिशाके राजा  
३०।११२  
प्रजित् = सारथि २८।१०४  
प्राज्य = थोड़ा ३६।२०४  
प्राज्ञ = चुंडिमान् ३५।७  
प्रातिकूल्य = प्रतिकूलता ३५।५  
प्रातोप्य = शशुता २८।१४९  
प्राप्त्यकृत्य = वस्त्रनमै ढालकर  
३५।७०  
प्राचीधिक = जगानेके कार्यमें  
नियुक्त वारण ३५।२२६  
प्रारोहित = अंकुरित २९।१३५  
प्रात्येष्य = वर्षाकृतु-सम्बन्धी  
३२।६९  
प्राणु = ऊंचे ३६।५५  
प्रासुक = जीवरहित २८।१५  
प्रासिक = माले वारण करने-  
याला २७।१११

प्रेषस्कर = पतिका हाथ  
फ  
फालिनीकल = गुम्बारीके कल  
२८।३९  
व  
वद्रकश = तत्पर ३४।१४५  
वन्ध = वन्धन ३६।१७  
वन्धुक = लाल रंगके पुष्पदिशेष  
जिन्हें दुपहरियाके फूल  
कहते हैं । २६।२१  
वलपरिवृद्ध = सेनापति ३५।२४३  
वलाम्भोध = सेनारूपी समृद्ध  
३५।१  
वाणासन = पुष्पदिशेष जिन्हें  
किण्ठ कहते हैं २६।२४  
वाणासन = घनुष ३६।२४  
वालार्क = प्रातःकालका सूर्य  
३५।२३५  
वालिश = मूर्ख ४६।१९२  
वाल्हीक = वाल्हीक देशके घोड़े  
३०।१०७  
वाल्हालिकास्थल = खेलका मैदान  
३७।४७  
संहित = हाथियोंकी चिंगधाड़  
३४।१८५  
वद्वावच्चस = आत्मतेज ३९।१०१  
वहसूत्र = जनेऊ २६।६३  
वाहण = एक वर्ण ३८।४६  
भ  
भगवद = जिसका दीत टूट गया  
है ३५।११५  
भट्टमुख = अपनेको लूढ़-मूढ़ योद्धा  
कहनेवाला २८।१३१  
भवदेववर = भवदेवके जीव  
( भूतपूर्वो भवदेवो भव-  
देवचरः ) ४५।१४४  
भर्मकुम्म = स्वणकालश ४३।२१०  
भास्वत् = सूर्य ३५।२३३  
भिदा = भेद ३५।११५  
भूत्र = पर्वत ३६।२१०  
भूसूद = पर्वत, राजा ३५।१५७  
भूसि = सम्पत्ति ३५।११४

भृगुपात = पर्वतोंके ऊपरी भागसे  
नीचे गिरकर मरना  
३०।७०  
भेदण्ड = एक पक्षी ४३।४४  
मोग = सांपिका फन ३६।१०८  
मोगिन् = सौंप ३६।१७१  
आत्मजाया = भाईकी स्त्री  
३५।१३४  
आत्ममाण्ड = भाईहुए मूलधन  
३४।५९  
भ  
मकरकेतन = कामदेव ३५।१८४  
मकरालय = समुद्र ३५।६८  
मगधावास = मगध नामक देश-  
का निवासस्थान ३५।७१  
मधु = वसन्त औहु ३७।१२०  
मधुकरवज = भमरसमूह २६।६  
मन्त्रविशाखण = मन्त्रविशाखण  
प्रसिद्ध विद्वान् ३५।१०  
मन्दसान = हंस २६।१८  
मनोभू = काम ३५।१८६  
मन्द्राकाष्ठा = मन्द गमन करने-  
वाली २८।१९२  
मन्दुरा = धुड़साल २९।१११  
मन्तु = क्रोध ३५।१९२  
महामक = बड़े-बड़े नगाहे ३७।३  
महापितृवन = महामशान  
३४।१८२  
महामिळन = महाकुल ४२।३७  
महाहव = महायुद्ध ३७।१५९  
महास्थान = सभामण्डप ४१।१५  
महीकिल् = राजा ३७।३२  
महीयस् = अत्यन्त महान्  
३४।२१८  
मागधाचितम् = सुति पाठकोंके  
समान आचरण किया  
२९।३९  
मालूकल्प = मालाके समान  
३४।१९१  
माधवी = वसन्तकृतु-सम्बन्धी  
३५।४६

**माधवी** = एक लता-मधुकामिनी  
२७।४७

**मुखोमुखी** = मुख के सम्पुर्ण  
३७।१०५

**मृगेन्द्रासन** = सिंहासन  
२१।१५८

**मैथुन** = साला ४६।३।१७

**मौत्री** = मौज की रसीसे बनी  
हुई मैलला ३८।१०४

**य**

**वर्षीयान** = अतिशय युवा  
३४।४४

**वर्षीयान्** = छोटे भाई बाहुबली  
३६।५२

**वहस्याः** = पूजा करने योग्य  
४१।१३

**वाचिक्रिम** = वाचनासे प्राप्त  
३६।१३२

**वादस्** = जलजन्तु ३६।७९

**वाद्याँ परि:** = समुद्र ३६।७९

**वाममात्र** = प्रहरमात्र ४२।१७४

**वाहीक** = यष्टि-कड़ी घारण  
करनेवाले २७।१११

**वुग्य** = वाहन ३५।२१

**योग** = व्यान ३८।१७९

**योग** = अप्राप्त वस्तुको प्राप्त  
करना ३७।१७

**योगसिद्धि** = व्यानसिद्धि  
३६।१५८

**योगज** = तपके प्रभावसे होने-  
वाली ३६।१४४

**र**

**रजःसम्मास** = धूलिहपी गाढ  
बन्धकार ३६।२३

**रथकट्या** = रथीका समूह ३६।४

**रथाङ्ग** = रथका ३५।१६८

**रथ्या** = रथ चलने वाली बोडी  
सहक २६।३

**रह** = दौत ३७।२३

**रहस्** = बेग ३७।२४

**राजवली** = कृतित राजाओंसे  
युक्त भूमि ३४।४७

**४५**

**राजन्मती** = उत्तम राजासे युक्त  
भूमि ३४।४७

**राजीवास्थ** = कमलके समान  
मुखवाले २८।१८७

**राजेष** = चन्द्रमाके समान  
४४।३८

**रोगाञ्चु** = रोगरूपी चूहे ३६।८९

**रोहसी** = आकाश और पुष्पिकी-  
का अन्तराल ३६।१

**रैराशि** = घनकी राशि ३१।६२

**ऋ**

**ऋघु** = शीत्र ३४।३४

**ऋधीयान्** = अरथस्त छोटा  
३४।२४

**ऋट** = लाट देशके राजा  
३०।९७

**ऋक्षा** = लार ३५।४३

**ऋक्षितेषु** = संदर्भ ४३।१५७

**ऋक्षक** = शिकारी ३७।१३४

**ऋ**

**वचोहर** = दूत ३५।१३८

**वज्राग्नुम्भु** = प्रतारणापटु,  
ठानेमें होशबार ४६।८

**वज्रसर** = वज्रके समान स्तिर  
३५।५२

**वज्रिक्षय** = हृदविजय ३७।१६३

**वणिज्** = वैश्य ३८।४६

**वास्तराजसम्** = एक वर्षका  
उपवास ३६।१८५

**वस्त्रैशुग्रा** = आगमी - पञ्चम  
काल ४१।५३

**वस्त्रायकुक्त** = दानियोंका समूह  
२६।१२

**वस्त्रिय** = सरोवर २८।२२

**वत्सातङ्क** = जंगली हाथी  
३४।१८६

**वत्सकमात्र** = वत्सके वृक्ष ३६।१२

**वत्ससामज** = जंगली हाथी  
३०।६३

**वत्सेषणा** = कमललोचना  
४७।१४३

**वनीपकानीक** = मात्रकसमूह  
४५।१३७

**वद्वारु** = वद्वा करनेवाले  
४२।२०७

**वग्रभूमि** = खेतकी भूमि २६।१४४

**वरश्वा** = अमडेकी मजबूत रसी  
३५।१४९

**वरिष्ठ** = अत्यन्त व्रेष्ट ४४।३२

**वरसेहा** = उत्तम नितम्बवाली  
स्त्री ३७।९२

**वस्थ** = रथ ३३।९

**वर्क** = तरुण हाथी २५।१५३

**वर्ष** = क्षेत्र ४८।४

**वर्मन्** = शरीर ३५।५२

**वसुवाहन** = धन, सवारी ३८।८

**वामुरा** = जाल ३७।४८

**वामदेवी** = सरस्वती ३५।४९

**वाम्यम** = मीमी ३८।१६२

**वाम्यमल्ल** = मौनद्रव ४१।२०५

**वाचिक** = सन्देश ३४।८४

**वाजि** = धोहा ३५।४३

**वासक** = वल्लोंका समूह  
२६।१११

**वायेय** = वापी देशके बोडे  
३०।१०७

**वामी** = थोड़ी ३०।१०१

**वामुवीष्यनुगामिन्** = वामुकी  
मार्गका अनुसरण करनेवाले,  
निष्पत्रिग्रह ३४।१९०

**वाहणी** = मदिरा, परिषम विश्व  
३५।१५५

**वारी** = हाथी वैष्णवी उपास  
२९।१२२

**वार्षिकी** = वर्षाहालसम्बन्धी  
४४।१५६

**वास्तु** = पर २८।५१

**विकर्षितम्** = कम नहीं हुआ  
३७।१५

**विकल्पा** = विकार ३५।०७

**विगात** = प्रविष्ट ४१।१४५

**विघ्न** = वारोर २६।६

**विघ्न** = युद्ध ३५।२३

**विचक्षण** = वृद्धिमात् ३४।१९७  
**विजाति** = पश्चियोंकी जाति,  
 नीच जाति ३०।७२  
**वितृष्ट (वितृष्ट)** = प्याससे  
 रहित २७।८  
**विव्रस्त** = भयभीत २९।१६१  
**विदाम्बर** = विद्वानोंमें श्रेष्ठ  
 ३४।१४३  
**विशाधर** = विजयार्थ पर्वतके  
 निवासी विद्यामोंसे सुरो-  
 भित मनुष्य ४१।२६  
**विद्वुम** = मूँगा ३५।१६३  
**विषु** = चन्द्रमा ३५।१७५  
**विधूय** = कम्पित करके ३५।२३०  
**विधेयता** = आज्ञाकारिता,  
 अद्विषेषक ३५।१७३ ३५।१७५  
**विनियोग** = कार्य ४०।८६  
**विनिपात** = बाधा ३६।१७९  
**विनियम्यन्त** = निर्युक्त ३६।२५  
**विनीलवस्त्रमा** = नीले वस्त्र  
 धारण करनेवाली ३५।१७०  
**विपाश** = बन्धनसे मुक्त ४२।७८  
**विप्रकृष्ट** = दूरवर्ती पदार्थ  
 ४२।५६  
**विप्रतिपत्ति** = सन्देह ४१।४१  
**विभावती** = रात्रि ३५।२१२  
**विमलाम्बरा** = निर्मल वस्त्रवाली,  
 निर्मल आकाशवाली २६।५  
**विमातता** = तिरस्कार ३४।२०४  
**विरूपक** = विश्व—कष्टकारी  
 ३६।२७  
**विरूपा** = अमूर्ति, कुरुपा  
 ३५।२४१  
**विलक्षणा** = आवर्य ३६।६३  
**विलक्षणा** = लज्जा, अद्वचर्य  
 ३३।१९  
**विवस्त्रद** = सूर्य ३५।१६२  
**विवृत्सु** = जमीनपर लोटनेका  
 हस्तुक २९।११२  
**विशारद** = नश्वर ४६।१७७  
**विशङ्कट** = विशाल ३१।१४

## आदिपुराणम्

**विशाप** = जिसका जाप नहु हो  
 चुका है ३५।२३३  
**विशिखाकृष्णी** = वाण पद्मित  
 ४४।१२३  
**विश्वविन्मत** = सर्वेन्मत  
 ४१।१४१  
**विष** = देश ४६।१४  
**विष्वग्** = सब ओरसे ३५।१७  
**विष्वातिग** = लोकोत्तर  
 ३३।१४९  
**विष्वाण** = भोजन ३६।११२  
**विसिनी** = कमलिनी ३५।२३०  
**विष्ववध** = निविचन्त, विष्वासको  
 प्राप्त ३६।१६४  
**विहितायक** = कृतपृथ्य ४७।१०३  
**विहितायुक्ती** = लोटेंडे ३५।२५५  
**विहितायुक्ती** = श्रेष्ठ ३६।३४  
**वीरधू** = लता ३६।२०८  
**वृत्तिमेह** = आजीविका भ्रेद  
 ३८।४५  
**वृष्ट** = बैल ४१।७७  
**वेष्टु** = कम्पन ३६।८६  
**वेशमत** = स्वल्प जलाशय ३३।५०  
**वेसर** = छच्चर २९।१६१  
**वैलक्ष्य** = आवर्य, लज्जा, लौप  
 ३६।९२  
**वैवस्वतास्पद** = यमपुर ४४।८  
**वैशालिकस्थान** = वाण चलानेका  
 एक आसन ३२।८७  
**व्यञ्जन** = तिल मसे आदि चिह्न  
 ३७।२९  
**व्यामूढि** = मूढता — मूर्खता  
 ३५।२३५  
**व्युत्थित** = विश्व आचरणबाले  
 ३४।४०  
**व्यूहोरस्क** = खोड़ी आतीवाला  
 ३१।१४६  
**व्यपरोपण** = वात करना ३८।१७  
**व्युत्सृष्ट** = त्यक्त ३६।१२३  
**व्रज** = गोष्ठ — गायोंके रहनेका  
 स्थान ३७।६९  
**व्रतमात** = ग्रतोंका समूह ३१।३६

**व्याघ्रधेनुका** = नवप्रसूता व्याघ्री  
 ३६।१६६  
**व्यासास्य** = जिसने मुख लोल  
 रखा है २८।१८०  
**व्यातुक्षी** = एक दूसरेपर पानी  
 उछालना, काग ३६।५३  
**व्यावहासी** = परस्पर हास्य-  
 मजाक २६।३३  
**श**  
**शक्त** = विष्णा ४६।२९१  
**शतमलेष्वास** = इन्द्रधनुष २६।२०  
**शताभ्यर** = इन्द्र ३६।१९६  
**शब्दविद्या** = व्याकरण शास्त्र  
 ३८।११९  
**शम्बल-(सम्बल)** = मार्गहित-  
 कारी भोजन ३५।२२  
**शम्भली** = हूती ३४।१६  
**शरण्यता** = लक्ष्यता २८।१९  
**शयुपोत** = अजारके बच्चे  
 २७।३४  
**शशक्तसात्कृतात्** = लण्ड-खण्ड  
 किये ३४।६०  
**शरत्रूप** = बाणोंकी शम्या  
 ३५।२११  
**शरवात** = बाणोंका समूह ३६।८७  
**शरम्य** = निशाना ३५।७१  
**शर्वरी** = रात्रि ३४।१५५  
**शक्तम्** = शक्ति समूह (उत्साह-  
 शक्ति, मन्त्रशक्ति, प्रभूत्य-  
 शक्ति) ३०।७  
**शक्तिक** = शक्तिनामुक शस्त्रको  
 धारण करनेवाले २७।१११  
**शास्त्रामृग** = बानर ४१।३७  
**शास्त्रिन्** = वृक्ष ३६।४६  
**शारीर** = शरीर सम्बन्धी ३७।३०  
**शारदी** = शरद ऋतु सम्बन्धी  
 ३७।१४०  
**शार्वर** = रात्रि सम्बन्धी ३५।२२२  
**शालिग्रोपिका** = बानके सेत  
 रसानेवाली गोपिया ३५।३६  
**शालिवप्र** = बानके लेत ३५।३६  
**शासन** = शिक्षक ३५।८६

शासनहर = हूल ३४।५०  
 शिखण्डन = मयूर २६।१९  
 शिलित = नूपुरोंको इनहार  
     २६।१५  
 शिवा = शृगाली ३४।१८२  
 शिरस्त्र = शिरका टोप ३६।१४  
 शीक्ष्यमान = सीचे गये २८।१०९  
 शुचि = प्रीत्य अतु ३३।४३  
 शूद्र = एक वर्ण ३८।४६  
 शेषुषो = बुद्धि २८।१५८  
 श्रमधर्मस्मुत्रिपुष् = पसीनाको  
     बूँदें ३५।३५  
 श्रावकाचारसुन्न = श्रावकाचारसे  
     प्रसिद्ध ४०।३०  
 श्रीगृह = लज्जा ३७।८५  
 शुक्रोपासक सूत्र = उपासकाध्य-  
     यनाङ्गावकाचारका वर्णन  
     करनेवाला शास्त्र ३८।१४  
 श्रीत = श्रुति अथवा वेद सम्बद्धी  
     ३४।१०  
 इत्याध्य परिच्छद = प्रशंसनोय  
     परिकरसे सहित ३४।१२४  
 श्वेतभानु = चन्द्र ४१।७६

४

षट्कर्मजीविन् = असि, - मषी,  
 कुषि, शिल्प, वाणिज्य, और  
 विद्या इन छह कार्योंसे  
 आजीविका करनेवाले  
 ३९।१४३  
 षट्कर्मी = छह मेदसे युक्त ३८।४२  
 षड़ह = हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल-  
     सेनिक, देव, और विद्याधर  
     ये चक्रवर्तीकी सेनाके ६  
     अंग कहलाते हैं । ३६।५  
 वाहुण्य = संधिं, विषह, वान,  
 वासन, देवीभाव, आश्रय,  
     ये राजाओंके छह गुण हैं ।  
 २८।२८

५

सङ्कर = युद्ध ४३।५२  
 सङ्कर = प्रतिशा ३४।१७०

संग्रामनिकष = युद्धल्पी कसीटी  
     ३५।१३७  
 सजयकेतन = विजय पताकासे  
     सहित २६।६  
 सजानि = स्त्रियोंसे सहित  
     २९।१०८  
 सत्योच = सत्यपदार्थका कथन  
     करनेवाला ३३।१२  
 सख्योपचात = प्राणिघात ४१।५१  
 सदोऽवनि = समवसरण भूमि  
     ४१।१९  
 सधीची = सलो २६।१४६  
 सनामि = वन्धु ४५।१२५  
 सनामि = सगोच, कुटुम्बीजन  
     ३४।२०  
 सनामित्व = सगा भाईपना  
     ३५।२  
 सच्चाह = कवच २२।६९  
 सच्चिधि = सामीप्य, सञ्चिवान,  
     ३६।२०३  
 सच्चिधि = एकत्र उपस्थिति  
     ३५।४६  
 ससच्चद = सप्तपर्ण नामका  
     एक वृक्ष, जो शरद ऋतुमें  
     फूलता है । इसको डण्ठल-  
     में सात-सात पत्ते होते हैं ।  
 २६।६  
 सभाषनि = सभाभूमि ३६।२००  
 सभामण्डल = समवसरण  
     ४७।१६३  
 समरसंघपितृगुन = युद्धके  
     सम्मर्दको सूचित करने-  
     वाला ३५।१४१  
 सभवाय = समूह ३४।१३८  
 समवर्ती = यम ४६।१४३  
 सम्पत्तन्ती = उड़ती हुई २६।८  
 संश्रीत = प्रसन्न ३९।४४  
 संभूत = समूल्यम ३४।११२  
 सुमा = वर्ष ३३।२०२  
 समानता = मानसे सहितपना  
     ३५।११७

समांसर्माना = प्रतिवर्ष गर्भिणी  
     होनेवाली गाय २६।१३६  
 समित्सहन = हजारों लकड़ियाँ  
     ३५।११  
 समिद्ध = प्रचण्ड ४४।३४६  
 समुत्सिक्त = गवित ४४।६२  
 समुद्राह = विवाह २६।६५  
 सरोजरागरन = पदारागमण  
     ३३।६०  
 सर्जन = सृष्टि ४१।१२  
 सर्वंक्षम = सर्वधाती ३३।२९  
 सर्वसोमीणा = सबके भोगने  
     योग्य ३४।११९  
 सलिलालोकित = पानीमें धुला  
     हुआ ३१।४३  
 सव्येष = सारधि २८।५९  
 सहसान = मयूर २६।१८  
 सहसारसाः = सारस पश्चियोंसे  
     सहित २६।१५  
 संख्यातरात्र = कुछ राते ३५।२७  
 संख्याहान = यणित शास्त्र  
     ३८।१२०  
 संघात = समूह ३६।८  
 संदेशित = कवच पहने हुए  
     ३६।१५  
 संप्रेक्षा = आलोकन ३६।२२  
 संप्लुष्ट = दग्ध ३४।१५४  
 संयुग = युद्ध ४४।९९  
 संबंधित = कवच धारण किये  
     हुए ३६।१३८  
 संवाह = पहाड़ोंपर बसने वाले  
     गाँव ३७।६६  
 संविद् = जान ४६।२४५  
 संवेद = संसारसे भय ३४।१४६  
 संस्कृत = उत्तम मनुष्य ४३।४५  
 संहित = इकट्ठे हुए, मिले हुए  
     ४२।१  
 साक्षमणि = आक्षमणि - अक-  
     मनके पुत्रोंसे / सहित  
     ४४।१०५  
 सामार = युहस्य ३८।७

**साम्भूतिकी** = युद्ध सम्बन्धी  
३६।२  
**सातोष** = वादित्रोंसे सहित  
३७।५९  
**सादिन्** = चूड़सबार ३६।११  
**साखल** = सेना ३६।१८  
**साध्वस** = भय ३६।२  
**साध्वाचार** = मूलिके पोर्य  
आचारसे सहित ३४।१३५  
**सात्त्वानिकी** = कल्पवृक्षसम्बन्धी  
३०।१२४  
**साज** = साम, दान, दण्ड, भेद  
इन चार उपायोंमें से एक  
उपाय ३५।१००  
**सामग्री** = हाथी के लकड़ी के गुण ३५।१०५  
**सामवाचिक** = सहायक ४४।२१  
**साम्राज्य** = युक्त-ठोक ४१।४३  
**सामि** = कुछ ३६।१११  
**साम्बातिक** = सुबह शामके  
२८।५५  
**साराम** = अगीचोंसे सहित  
३४।४१  
**सार्व** = सर्वहितकारी ३५।२४४  
**सार्वभौमिक** = अक्षतिका  
४५।५७  
**सावनी** = सवन-यज्ञसम्बन्धिनी  
३३।९३  
**सावधि** = अवधिसानसे सहित  
४५।४१  
**सावध** = पापसहित कार्य  
३४।१९२  
**सावधमीर** = पापसहित कार्यों-  
से इरनेवाले ३८।१४  
**सिंहालाली** = हंसीकी पंखिल  
२६।८  
**सितपश्चिन्** = हंस २६।१२  
**सिद्ध** = वेयस्तर देवोंका एक भेद  
४१।२६  
**सिद्धार्थविटप** = सिद्धार्थ नामक  
वृक्ष जिसके नीचे जिन-  
प्रतिमाएँ होती हैं ३३।९९  
**सिंहु** = नदी ३५।२७

## आदिपुराणम्

**सिद्धि** = मुक्ति ३६।१५८  
**सिति** = काले ३६।१७२  
**सीमन्त** = पर्याय ३५।३४  
**सीमान्त** = गौदोंकी सीमा  
३५।३९  
**सुधाशिन्** = देव ३०।२०२  
**सुधासुम्** = देव ३६।३१  
**सुधासित** = चूनासे पुता हुआ  
सफेद ३७।१५१  
**सुरजबन्** = होम करनेवाले  
३४।२१५  
**सुमधस्** = बुद्धिमान् ३४।५७  
**सुरगत** = ऐरावत हाथी ३७।२३  
**सुरदेव** = शकुनज ४५।१४२  
**सुरभिमाल** = वैद्र मास, वसन्त-  
मास ३७।१२२  
**सुरमीहुत** = सुगन्धीहुत  
३७।१२२  
**सुरा** = मदिरा ३६।१७  
**सुरेम** = सुन्दर शब्दसे युक्त  
२८।६  
**सैकारोह** = रेतीले तटकी  
नितम् २६।१४८  
**सैन्धव** = सिंहु नदी सम्बन्धी  
२८।१७२  
**सैन्धव** = सिंहु देवके घोड़े  
३०।१०७  
**सोमक्षणाक्षिप** = राजा सोम-  
प्रभलघी कल्पवृक्ष ४३।८३  
**सोदर्य** = सगे भाई ३४।४५  
**सौराहिक** = सौराष्ट्र देवके  
३०।९९  
**सौविदल** = कंचुकी, असःपुरका  
पहरेदार २७।११८  
**स्कन्धाचार** = शिविर = सेनाका  
पहाड़ ४५।१०७  
**स्वतंत्र** = दूष ३६।१६६  
**स्वतित** = मेघगर्जन ३३।७  
**स्वत्वकरित्वम्** = धानके पीधे  
३५।२९  
**स्वमेवम्** = हाथी ३६।१७०  
**स्वचिन्** = मेघ ४६।१७७

**स्थपुद** = ऊचे नीचे स्थान  
२६।९१  
**स्थलप्रायित** = गुलाबके फूलके  
समान अन्वरण करनेवाला  
३५।७६  
**स्थविराकार** = वृद्धका रूप  
४७।१०६  
**स्फीत** = अत्यन्त विस्तृत ३७।२०१  
**स्मराकार्यावस्थाद** = कामका  
असमयमें हुआ आक्रमण  
३७।१२३  
**स्वर्गिणी** = भाला पहननेवाली  
३५।१८३  
**स्वर्णमी** = गङ्गा नदी ३५।१९७  
**स्वःसद्** = देव २७।५७  
**स्वधराह** = उत्तम ललाटसे युक्त,  
पक्षमें सुखु प्रतिबन्धसे युक्त  
३६।४३  
**स्वायमसुव** = भगवान् सम्बन्धी  
३४।२१५  
**स्वारोह** = जिम्फर अच्छी तरह  
चढ़ा जाम ऐसे पर्याप्त  
२९।७२  
**स्वात्म** = चित्त ३४।१८३

॥

**हरि** = घोड़े ४४।७५  
**हरि** = सिंह ३४।११२  
**हरिणाराति** = सिंह ३६।१६७  
**हरिमुख** = दिद्मुख २७।१८  
**हरिपित्र** = सिंहासन ४२।१  
**हरिरि** = मनोहर ३५।६२  
**हार्य** = हरण करने योग्य - नश्वर  
३४।११६  
**हासिक** = हासियोंका चमूह  
३६।३  
**हिमानी** = बहुत भारी बर्फ  
३०।२११  
**हेमि** = वास्त्र ३६।१३  
**हृद्भू** = काम ३७।१३४  
**हेवित** = घोडोंकी हिनहिनाहट  
३३।६  
**हैमली** = हेमला कहु सम्बन्धी  
३०।१६०